

Sri Garib Dass Oriental Series No 94

PRAMEYAKAMALA-MĀRTANDA

by

Shri Prabha Chandra

**(A Commentary on Shri Manik Nandi's
Pareeksha Mukh Sutra)**

Edited with Introduction, Indexes etc.

by

Pt. Mahendra Kumar Shastri

Foreword

Dr. V.N. Jha

Director

**Centre of Advanced Study in Sanskrit
University of Poona
Poona**

SRI SATGURU PUBLICATIONS

(A Division of Indian Books Centre)

DELHI - INDIA

Published by
Sri Satguru Publications
Indological and Oriental Publishers
A Division of
INDIAN BOOKS CENTRE
40/5, SHAKTI NAGAR
DELHI - 110007
(INDIA)

First Edition 1912
Second Edition: 1941
Third Edition 1990

ISBN 81-7030-206-4

Printed in India at
D K. Fine Art Press, DELHI

Foreword

It is indeed a great pleasure that Indian Books Centre, is bringing out this reprint of *Premeyakamala-Mārtanda* of *Prabhācandraśāstri* edited by Pandit Mahendra Kumar Sastri and published by Satyabhamabai Panduranga at Nirmayasagar Press, Bombay in the year 1941. This text has remained out of Print for a long time. I am confident that scholars of Indian philosophy will be extremely happy to have this reprint.

Premeyakamalamārtanda is an encyclopaedic work on Indian Philosophy. It is treasure house of Indian rational thoughts. It not only elaborate Jaina rationale but also considers the opinions of all others systems of Indian Philosophy. *Prabhācandra* systematically presents the *Purvapakṣa*-views and gives thorough and authentic exposition of their views and thus helps a reader grasp the doctrine of those systems in a lucid and better way. By reading this single text one can master almost all related systems of Indian Philosophy. This text has the character of that of the *Nyāyamnījarī* of Jayanta Bhaṭṭa, which is also an encyclopaedic work of Indian Philosophy.

If one simply puts a glance at the contents of this text, he will find it nothing but amazing. Right from the general definition of *Pramāṇa*, the nature of individual *Pramāṇa*'s, the nature of *Śabda-dvāita* of *Bharthari*, *akhyativāda*, *prasiddhāntakhyativāda*, *atmakhyativāda*, *anurvacanīya-khyativāda*, *smṛtipramoṣa* of *Prabhākaras*, *Brahmadvaita*, *Citradvaita*, *Śūnyavāda*, *sākārajñānavāda* of the Buddhists, *Bhūtaçaitanyavāda* of the *Cāravakas*, *Ātmapratyakṣatva*, *Pramāṇyavāda*, Nature of *Śakti*, *Abhāvavicāra*, *Yogyatā-vicāra*, *sarvajñatā-vāda*. Nature and role of God, nature of liberation, *anekantavāda*, *smṛti-pramāṇyavāda*, *anvītabhidhānavāda*, relations and fallacies, and a host of similar topics have been discussed here and while discussing them all the views on the respective issues available at *Prabhācandra*'s time have been taken note of and thoroughly examined. This plan of presentation has made the text encyclopaedic in character. After thoroughly examining the views of others, he establishes the Jaina view. Thus, while discussing the nature of general definition of *Pramāṇa*, *Prabhācandra* considers Jayanta's view of *Samagri* as *Pramāṇa* and refutes it. Similarly he sets aside the *aphovāda* of the Buddhists and hundred of other theories held by other systems.

In the history of development of Indian Philosophical thought the era upto Udayana has been a golden era. The respective systems reached their peaks and all this happened because of the freedom of thought and speech granted to them. Every system enjoyed the freedom of severely criticising other's views. But the criticism was never aimed at mere criticism, but it was always directed towards arriving at the truth. As a matter of fact, it was this healthy culture of constructive criticism and freedom of speech that enriched Indian thought and gave solid basis to each philosophical system of that time. Unorganised thoughts got organised and what looked irrational become rational.

Had there not been Buddhist and Jaina logicians and the Cāravakas, the Brahmanical system of philosophy could not have reached the height which they reached. The entire Prācīna Nyāya is a development caused by the free dialogue between the Naiyāyikas and the Nāstikas. The Brahmanical system were left with no other alternative than to give solid grounds for their philosophical and metaphysical assumptions.

The *Prameyakamalamārtanda*, is a specimen of the survey of that healthy tradition. It has involved the Nyāya System, the Mīmāṃsā system, the Buddhist system, the philosophy of Bhartṛhari, the Advaitins and the Sāṃkhya. It has references to almost all the prominent philosophical literature available at that time. At times, we find direct quotations from a number of texts. While discussing relations, Prabhācandra has quoted twenty two verses from the *Sambandhaparīkṣā* of Dharmakīrti and has added his own commentary to them. I have translated these verses along with the Commentary of Prabhācandra and it has appeared in my work *The Philosophy of Relations*, published by Indian Books Centre, Delhi, published in 1990, in their Sri Garb Dass Oriental series. Dharmakīrti's *Sambandhaparīkṣā* is thus, presented in the *Prameyakamalamārtanda*, which was otherwise lost in origin. Sanskrit. such is the importance of this reprint.

The editor Pandit Mahendra Kumar Sastri, has given a very elaborate and informative introduction to the text in Hindi. I have extensively used that introduction for writing this foreword. The editor has supplied studied grounds for the date of Prabhācandra 990 and 1020 AD. The editor has also shown the relationship of Prabhācandra with his predecessors and contemporary Philosophers and the access of the author of *Prameyakamalamārtanda*, to the Sanskrit Literature available at his time through the identification of the quotations is well demonstrated. The Hindi introduction is indeed very much informative.

Thus, the Indian Books Centre unreservedly deserves our appreciation for bringing out the reprint of this excellent text on Indian Philosophy in general and Jaina Philosophy and logic in particular. Every scholar in the field should have a copy of this text in his library.

V.N. Jha
Director
Centre of Advanced Study in Sanskrit
University of Poona,
Poona.



“न्यायेऽकुतोभयतयोन्नतकन्धरस्य,
जीवन्धरस्य चरणार्चनतोऽर्जितेन ।
संशोध्य संप्रति भयाद्य नवीकृतेन,
भक्त्या प्रमेयकमलेन तमर्चयामि ॥”

तदन्यतमशिष्योऽहं

—भट्टेन्द्रकुमारः ।



१ सम्पादकीयम्	१-३
२ भूमिका	४-७८
१ ग्रन्थकार	४-६७
२ ग्रन्थ	६७-७८
३ परीक्षामुखसूत्राणां तुलना	७९-८३
४ मूलग्रन्थस्य विषयावुक्तम्:	१-७२
५ मूलग्रन्थ	१-६९४
६ परिशिष्टानि	६९७-७५५
१ परीक्षामुखसूत्रपाठः	६९७-७०३
२ प्रमेयकमलमार्तण्डगतावतरणसूचिः	७०४-७२०
३ परीक्षामुखगतलाक्षणिकशब्दसूचिः	७२१
४ प्रमेयकमलमार्तण्डगतालाक्षणिकशब्दसूचिः	७२२-७२३
५ प्रमेयकमलमार्तण्डनिर्दिष्टाः ग्रन्थाः ग्रन्थकृतश्च	७२४
६ प्रमेयकमलमार्तण्डस्य केचिद्विशिष्टाः शब्दाः	७२५-७३३
७ आराप्रते. पाठान्तराणि	७३४-७४८
८ मूलविष्णुपञ्चग्रन्थसूचिः	७४९-७५३
९ शुद्धिद्विपत्रम्	८, ७५४-७५५

शुद्धिपत्रम् ।

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२१	१५	तदनन्तर-	तदनन्तर-
६६	६	विधास-	अविधास-
७०	१४	-पर्यायाचेत-	-पर्यायचेत-
८७	८	-क्षिप्ताक्षिनि	-क्षिप्ताक्षिनि
११५	१५	-तत्त्वा (तस्मात्त्वा)न्त-	-तत्त्वान्त-
११७	६	-तम्	-तन्यम्
१६९	४	शुद्धिच्छे-	तृप्तिच्छे
१७१	७,८	-चेतना-	-चेतना-
१९२	१२	-चैकलक्षि-	-चैकलक्षणलक्षि-
२०१	१६	-स्वाध्याय-	-स्वाध्यायार्थ-
२१७	२	प्रति (ती) यतो	प्रतियतो
३१७	१३	अज्ञानस्य	अज्ञातस्य
३४७	११	-पक्ष्यानं	-पक्षयानं
३६६	२३	-तो दृष्टं	-तोऽदृष्टं
४५६	२९	-णामपि	-णायपि
५१०	२	सम्बन्धौ	सम्बन्धो
६९४	१०	-तादुरितै-	-ताद्वारितै-

सम्पादकीय

जब न्यायकुमुदचन्द्रका सम्पादन चल रहा था तब श्रीयुत कुन्दनलालजी जैन तथा पं० सुखलालजी के आग्रह से मुझे प्रमेयकमलमार्तण्ड के पुनःसम्पादन का भी भार देना पड़ा ।

इसके प्रथमसंस्करण के संपादक पं० बंशीधरजी धात्री सोलापुर थे । मैंने उन्हींके द्वारा सम्पादित प्रति के आधार से ही इस संस्करण का सम्पादन किया है । मैंने मूलपाठ का शोधन, विषयवर्गीकरण, अवतरणनिर्देश तथा विरामचिह्न आदि का उपयोग कर इसे कुछ सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है । प्रथम तो यही विचार था कि न्यायकुमुदचन्द्र की ही तरह इसे तुलनात्मक तथा अर्थबोधक टिप्पणों से पूर्ण सज्जद बनाया जाय, और इसी संकल्प के अनुसार प्रथम अध्याय में कुछ टिप्पण भी दिए हैं । ये टिप्पण अंग्रेजी अंकों के साथ चालू टिप्पण के नीचे पृथक् मुद्रित कराए हैं । परन्तु प्रकाशक की मर्यादा, प्रेस की दूरी आदि कारणों से उस संकल्प का दूसरा परिच्छेद प्रारम्भ नहीं हो सका और वह प्रथम परिच्छेद के साथ ही समाप्त हो गया । आगे तो यथासंभव पाठशुद्धि करके ही इसका संपादन किया है ।

श्री पं० बंशीधरजीसा० ने, जब वे काशी आए थे, कहा था कि—“प्रमेयकमलमार्तण्ड में मुद्रित टिप्पण एक प्रति से ही लिया गया है” और यही बात उन्होंने पं० नाथूरामजी त्रेमी से भी कही थी । इसलिए मुद्रित टिप्पण जो कहीं कहीं अस्वव्यत्यय का अशुद्ध था, जैसा कि तैसा रहने दिया है । प्राचीन टिप्पण की मौलिकता के संरक्षण के लिये ही उसे जैसे के तैसे रूप में छपाने को प्रेरित किया है । इस संस्करण के टाइप, साइज, कागज आदि की पसन्दगी प्रकाशकजीने अपनी सुविधाके ही अनुसार की है । यदि मेरी पसन्द के अनुसार इसकी प्रकाशनव्यवस्था हुई होती तो अवश्य ही यह अपने सहोदर न्यायकुमुदचन्द्र की ही तरह प्रकाशित होता ।

संस्करणपरिचय—

इस संस्करण में प्रथमसंस्करण की अपेक्षा निम्नलिखित सुधार किए हैं—

१ सूत्रयोजना—प्रमेयकमलमार्तण्ड परीक्षामुखसूत्र की विस्तृत व्याख्या है और इसका परीक्षामुखालङ्कार नाम भी है । अतः इसमें सूत्रों का यथास्थान विनिवेश किया है जिससे प्रत्येक सूत्रकी व्याख्या का पृथक्करण होजाय । इसलिए सूत्राङ्क भी पेजके ऊपरी काने में दे दिए हैं ।

२ पाठशुद्धि—प्रकरण तथा अर्थ की दृष्टि से जो अशुद्धियाँ प्रथम

१ देखो रत्नकर्णभाषाकाचार की प्रस्तावना पृ० ६० नी टिप्पणी ।

संस्करण में भी उनका यथालाभ सुधार किया है और खास खास स्थानों में ऐसी शुद्धियों को [] ऐसे या () ऐसे त्रेकिट में ही सुचित कराया है। प्रकृतम्बन्धी कुछ अशुद्धियाँ यदि प्रथम संस्करण की सुचारी गई हैं तो कुछ नई अशुद्धियाँ भी दृष्टिदोष और प्रेसकी बुरी के कारण हो गई हैं जिनका स्थूल शुद्धिपत्र ग्रन्थके अन्त में लगा दिया है।

३ अवतरणनिर्देश—मूलग्रन्थ में जितने ग्रन्थान्तरीय अवतरण आए हैं, उन्हें डबलइन्वर्टेड क्रमा “ ” के साथ छपाया है और अवतरण के बाद ही [] इस त्रेकिट में उनके मूलग्रन्थों के नाम दे दिए हैं। जिन अवतरणवाक्यों के मूलस्थल नहीं मिल सके हैं उनका [] त्रेकिट खाली छोड़ दिया है। कुछ अवतरणों के स्थल ग्रन्थ के छप जाने पर खोजे जा सके हैं ऐसे अवतरणों के मूलस्थल परिशिष्ट (अवतरणसूची) में दे दिए हैं।

४ विषयसूची—यह ग्रन्थ बहुतदिनों से गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज काशी, कलकत्ता, और बम्बई के जैन परीक्षालय के परीक्ष्य ग्रन्थक्रम में नियत है। अतः छात्रों की, तथा ग्रन्थगत प्रत्येक प्रकरण की मुख्य मुख्य दलीलों को संक्षेप में समझने के अभिलाषी इतर जिज्ञासु पाठकों की सुविधा के लिए प्रत्येक प्रकरण के पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की शुक्तियों की क्रमबद्ध विस्तृत विषयसूची बनाई है। छात्रों के लिए तो यह सूची नोदस का काम देगी। इसके आचार से प्रत्येक प्रकरण सहज ही बाद किया जा सकता है।

५ पाठान्तर—परिशिष्ट नं० ७ में जैनसिद्धान्तमयन आरा की प्रति के पाठान्तर दिए हैं। ये पाठान्तर ग्रन्थ छप जाने के बाद लिखे गए हैं, अतः इन्हें ग्रन्थके अन्त में ही एम्बेड्ड सुचित कराया है। यद्यपि यह प्रति पूर्ण शुद्ध नहीं है; फिर भी इसके पाठभेद कहीं कहीं मेरे द्वारा सुधारे गए मूलपाठ के संवादक और कहीं कहीं स्वतन्त्ररूपसे शुद्धपाठ के निर्देशक हैं। यह प्रति अधिक पुरानी नहीं है। इसमें “१४४८३” साइज के २४९ पत्र हैं। पत्र के एक ओर १५ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ४९-५० अक्षर हैं।

६ परिशिष्ट—इस ग्रन्थ में निम्नलिखित ७ परिशिष्ट लगाए गए हैं—१ परीक्षामुख सूत्रपाठ। २ प्रमेयकमलमार्तण्डगत अवतरणों की सूची। ३ परीक्षा-मुख के लाक्षणिकशब्दों की सूची। ४ प्रमेयकमलमार्तण्ड के लाक्षणिकशब्दों की सूची। ५ प्रमेयकमलमार्तण्ड में निर्दिष्ट ग्रन्थ और ग्रन्थकारों की सूची। ६ प्रमेयकमलमार्तण्डगत विशिष्ट शब्दों की सूची। ७ आराकी प्रति के पाठान्तर।

७ परीक्षामुखसूत्रतुलना—यह तुलना प्रस्तावना के अनन्तर सुचित है। इसमें परीक्षामुख के पूर्ववर्ती विभाग, धर्मेकीर्ति और अकलङ्क के ग्रन्थ तथा उत्तरवर्ती वादिदेवसूरी और हेमचन्द्रके सूत्र ग्रन्थों से परीक्षामुखसूत्रों की तुलना की गई है। इससे सूत्रों के विम्ब-प्रतिविम्ब भाव का स्पष्ट बोध हो सकेगा।

८ तुलनात्मक टिप्पण-ग्रन्थके प्रथम अध्याय में अन्य जैन जैनेतर दर्शनग्रन्थों से प्रमेयकमलमार्तण्ड की तुलना करने में सहायक टिप्पण दिए हैं। ऐसे टिप्पण न केवल तुलना में ही उपयोगी होते हैं, किन्तु भावोद्घाटन में भी उनसे पर्याप्त सहायता मिलती है। प्रकाशक की मर्यादा के अनुसार मैंने इन टिप्पणों का प्रथम परिच्छेद लिखकर ही सन्तोष कर लिया है।

९ प्रस्तावना-यद्यपि निर्णयसागर से प्रकाशित ग्रन्थों की प्रस्तावनाएँ संस्कृत में लिखी जाती हैं परन्तु राष्ट्रभाषा की यत्किञ्चित् सेवा करने के विचार से मैं अपने सम्पादित ग्रन्थों की प्रस्तावनाएँ हिन्दी में ही लिखता आया हूँ। इसी-विचारसे इस ग्रन्थ की प्रस्तावना को भी हिन्दी में लिखाया है। प्रस्तावना में प्रस्तुत ग्रन्थ और ग्रन्थकारों के समय आदिका उपलब्ध सामग्री के अनुसार विवेचन किया है। प्रभाचन्द्राचार्य का द्वितीय न्यायग्रन्थ न्यायकुसुदचन्द्र है। उसके द्वितीयभाग की प्रस्तावना का “आचार्य प्रभाचन्द्र” अंश इसमें ज्यों का त्यों दे दिया गया है।

आभार-श्रीमान् पं० सुलालजी तथा श्री कुन्दनलालजी जैन की प्रेरणा से मैं इस ग्रन्थ के सम्पादन में प्रवृत्त हुआ।

भाषिकचन्द्र ग्रन्थमालाके मन्त्री, सुप्रसिद्ध इतिवृत्तज्ञ पं० नाथूरामजी त्रेमानी न्यायकुसुदचन्द्र द्वि० भाग की प्रस्तावना को इस ग्रन्थ में भी प्रकाशित करने की उदारतापूर्वक अनुमति दी है। जैन सिद्धान्त भवन आरा के पुस्तकाध्यक्ष श्री पं० भुजबलीजी शास्त्री आराने प्रमेयकमलमार्तण्ड की लिखित प्रति भेजी। श्री पं० कृष्णलालचन्द्रजी M. A. साहिबुल्लाचार्यने मिलालेख का मूल-पाठ पढ़कर सहायता की।

प्रियशिष्य श्री गुलाबचन्द्रजी न्याय-सांख्यतीर्थ और श्री केशरीमलजी न्यायतीर्थने पाठान्तर लेने में तथा परिशिष्ट बनाने में सहायता पहुँचाई।

निर्णयसागर प्रेसके मालिक ने अपनी मर्यादा के अनुसार ही सही, इसका द्वितीय संस्करण निकालने का उत्साह किया। मैं इन सब का हार्दिक आभार मानता हूँ।

माघकृष्ण पंचमी
वीरगि० संवत् २४६७
१७११/१९४१ ई०

सम्पादक—
न्यायाचार्य महेन्द्रकुमार
स्या० वि० काशी

॥ प्रस्तावना ॥

सूत्रकार माणिक्यनन्दि

जैनन्यायशास्त्र में माणिक्यनन्दि आचार्य का परीक्षामुखसूत्र आद्य सूत्रग्रन्थ है। प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्याचार्य लिखते हैं कि—

“अकलङ्क्यचोम्नोषेः ब्रह्मे जैन वीमता।

न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ॥”

अर्थात्—जिस वीमात् ने अकलङ्क के वचनसागर का प्रषण करके न्याय-विद्यामृत निकाला उस माणिक्यनन्दि को नमस्कार हो। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि माणिक्यनन्दि ने अकलङ्कन्याय का मन्थन कर अपना सूत्रग्रन्थ बनाया है। अकलङ्कदेवने जैनन्यायशास्त्र की रूपरेखा बौध्दरूपतदनुसार दार्शनिकपदार्थों का विवेचन किया है। उनके लघीयलख, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाण-संग्रह आदि न्यायप्रकरणों के आधार से माणिक्यनन्दि ने परीक्षामुखसूत्र की रचना की है। गौडवर्धन में हेतुमुख, न्यायमुख जैसे ग्रन्थ थे। माणिक्यनन्दि जैनन्याय के कोषागार में अपना एकमात्र परीक्षामुखरूपी माणिक्य को ही जमा करके अपना अमरस्थान बना गए हैं। इस सूत्रग्रन्थ की संक्षिप्त पर विषयसारावाली विदोष शैली अपना अनोखा स्थान रखती है। इसमें सूत्रका यह लक्षण—

“अत्याक्षरसत्तन्निर्गमं सारवद्विश्रुतो मुञ्च्य।

अल्लोभमनवद्यच्च सूत्रं सूत्रमिदो विदुः ॥”

सर्वाक्षतः पाया जाता है। अकलङ्क के ग्रन्थों के साथही साथ विभाग के न्याय-प्रवेश और धर्मकीर्ति के न्यायबिन्दु का भी परीक्षामुख पर प्रभाव है। उत्तरकालीन वादिदेवसूत्रि के प्रमाणनयतत्त्वालोकलङ्कार और हेमचन्द्र की प्रमाण-मीमांसा पर परीक्षामुख सूत्र अपना अमिट प्रभाव रखता है। वादिदेवसूत्रि ने तो अपने सूत्र ग्रन्थके बहु भाग में परीक्षामुख को अपना आदर्श रखा है। उन्होंने प्रमाणनयतत्त्वालोकलङ्कार में नय, सप्तमंगी और वाद का विवेचन बढ़ाकर उसके आठ परिच्छेद बनाए हैं जबकि परीक्षामुख में मात्र प्रमाण के परिकर का ही वर्णन होत्रे से ६ परिच्छेद ही हैं। परीक्षामुख में प्रज्ञाकरगुप्त के भाविकारण-वाद और अतीतकारणवाद की समालोचना की गई है। प्रज्ञाकर गुप्त के चार्ति-कालङ्कभर का मिश्रुवर राहुलसांख्यसाधन के अद्वैत साहस परिश्रम के फलस्वरूप उद्धार हुआ है। उनकी प्रेसकपी में भाविकारणवाद और भूतकारणवाद का निम्नलिखित शब्दों में समर्थन किया गया है—

“अविद्यमानस्य करणमिति कोऽर्थः ? तदनन्तरमायिनी तस्य सत्ता, तदेतदा

नन्तर्यमुभयापेक्षयापि समानम्—यथैव भूतापेक्षया तथा भाव्यपेक्षयापि । नचा-
नन्तर्येनेव तत्त्वे निबन्धनम्, व्यवहितस्य कारणत्वात्—

गाढसुप्तस्य विज्ञानं प्रबोधि पूर्वमेवनात् ।

जायते व्यवधानेन कालेनेति विनिश्चितम् ॥

तस्मादन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वं निबन्धनम् ।

कार्यकारणभावस्य तद् भाविन्यपि विद्यते ॥

भावेन च भावो भाविनापि लक्ष्यत एव । मत्सुप्रयुक्तमरिष्टमिति लोके व्यवहारः,
यदि मत्सुर्न भविष्यन्न भवेदेवम्भूतमरिष्टमिति ।”—प्रमाणवार्तिकलङ्कार पृ० १७६ ।
परीक्षासुख के निम्नलिखित सूत्र में प्रज्ञाकरगुप्त के इन दोनों सिद्धान्तों का खंडन
किया गया है—

“भाव्यतीतयोः भरणजाग्रद्वोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुलम् । तथापारा-
धितं हि तद्भावभावितम् ।”—परीक्षासु० ३।६२, ६३ ।

छठे अध्याय के ५७ वें सूत्र में प्रभाकर की प्रमाणसंख्या का खंडन किया
है । प्रभाकर गुरु का समय ईसा की ८ वीं सदी का प्रारम्भिक भाग है ।

माणिक्यनन्दि का समय—अनेयरत्नमालाकार के उल्लेखानुसार माणि-
क्यनन्दि आचार्य अकलंकदेव के अनन्तरवर्ती हैं । मैं अकलङ्कप्रत्यग्रय की
प्रस्तावना में अकलंकदेव का समय ई० ७२० से ७८० तक सिद्ध कर आया हूँ ।
अकलङ्कदेव के उद्योगक्षय और न्यायविनिषय आदि तर्कग्रन्थों का परीक्षासुख
पर पर्वीत प्रभाव है, अतः माणिक्यनन्दि के समयकी पूर्वावधि ई० ८०० निर्वाच
मानी जा सकती है । प्रज्ञाकरगुप्त (ई० ७२५ तक) प्रभाकर (८ वीं सदी का
पूर्वभाग) आदि के मतों का खंडन परीक्षासुख में है, इसके भी माणिक्यनन्दि
की उक्त पूर्वावधि का समर्थन होता है । आ० प्रभाचन्द्र ने परीक्षासुख पर अने-
यकमलमार्तण्डनामक व्याख्या लिखी है । प्रभाचन्द्र का समय ई० की ११ वीं
शताब्दी है । अतः इनकी उत्तरावधि ईसा की १० वीं शताब्दी समझना
चाहिए । इस लम्बी अवधि को संकुचित करने का कोई निश्चित प्रमाण अभी
दृष्टि में नहीं आया । अधिक संभव यही है कि ये विद्यानन्द के समकालीन हों
और इसलिए इनका समय ई० ९ वीं शताब्दी होना चाहिए ।

आ० प्रभाचन्द्र

आ० प्रभाचन्द्रके समयविषयक इस निबन्धको वर्गीकरणके ध्यानसे तीन स्थल
आगों में बाँट दिया है—१ प्रभाचन्द्र की इतर आचार्यों से तुलना, २ समय-
विचार, ३ प्रभाचन्द्र के ग्रन्थ ।

१. प्रभाचन्द्र की इतर आचार्यों से तुलना—

इस तुलनात्मक भागको प्रत्येक परम्पराके अपने क्रमविकासको लक्ष्यमें रख-

कर निम्नलिखित उपभागोंमें क्रमशः विभाजित कर दिया है । १ वैदिक दर्शन—वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, महाभारत, वैयाकरण, सांख्य योग, वैशेषिक न्याय, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा । २ अवैदिक दर्शन—बौद्ध, जैन-दिगम्बर, श्वेताम्बर ।

(वैदिकदर्शन)

वेद और प्रभाचन्द्र—आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्डमें पुरातनवेद ऋग्वेदसे “पुरुष एवेदं यद्भूतं” “हिरण्यगर्भः समवर्ततामे” आदि अनेक वाक्य उद्धृत किये हैं । कुछ अन्य वेदवाक्य भी न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ७२६) में उद्धृत हैं—“प्राजापतिः सोमं राजानमन्वसृजत्, ततस्त्रयो वेदा अन्वसृज्यन्त” “कथं वेदकर्तारम्” आदि । न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ७७०) में “आदौ ब्रह्मा सुखतो ब्राह्मणं ससर्ज, बाहुभ्या हृत्रियमुरुभ्या वैश्वं पश्या श्वहम्” यह वाक्य उद्धृत है । यह ऋग्वेद के “ब्राह्मणोऽस्य सुखमासीद्” आदि सूक्तकी छाया रूप ही है ।

उपनिषत् और प्रभाचन्द्र—आ० प्रभाचन्द्रने अपने दोनों न्यायग्रन्थोंमें ब्रह्मवैतवाद तथा अन्य प्रकरणोंमें अनेकों उपनिषदों के वाक्य प्रमाणरूपसे उद्धृत किये हैं । इनमें बृहदारण्यकोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, कठोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्, तैत्तिरीयुपनिषद्, ब्रह्मसिन्धूपनिषद्, रामतामिन्धुपनिषद्, जाबालोपनिषद् आदि उपनिषत् मुख्य हैं । इनके अवतरण अवतरणसूची में देखना चाहिये ।

स्मृतिकार और प्रभाचन्द्र—महर्षि मनुकी मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यकी याज्ञवल्क्यस्मृति प्रसिद्ध हैं । आ० प्रभाचन्द्रने ऋकसाकत्यवादके पूर्वपक्ष (प्रमेयक० पृ० ८) में याज्ञवल्क्यस्मृति (२।२२) का “लिखित साक्षिणो भुक्ति.” वाक्य कुछ शाब्दिक परिवर्तनके साथ उद्धृत किया है । न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ५७५) में मनुस्मृतिक “अशुर्वेदं लिहितं कर्म” श्लोक उद्धृत है । न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ६३४) में मनुस्मृतिके “यश्चार्थं पश्यन् सृष्ट्याः” श्लोकका “न हिंस्यात् सर्वा भूतानि” इस कर्मपुराणके वाक्यसे विरोध दिखाया गया है ।

पुराण और प्रभाचन्द्र—प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुमचन्द्रमें मत्स्यपुराणका “प्रतिमन्वतरमैव श्रुतिरन्या विधीयते ।” यह श्लोकांश उद्धृत मिलता है । न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ६३४) में कर्मपुराण (अ० १६) का “न हिंस्यात् सर्वा भूतानि” वाक्य प्रमाणरूपसे उद्धृत किया गया है ।

व्यास और प्रभाचन्द्र—महाभारत तथा गीताके प्रणेता महर्षि व्यास माने जाते हैं । प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ५८०) में महाभारत वनपर्व (अ० ३०।२८) से “अज्ञो जन्तुरनीशोऽप्यात्मनः सुखदुःखयोः...” श्लोक उद्धृत किया है । प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ३६८ तथा ३०९) में भगवद्गीताके निम्नलिखित श्लोक “व्यासवचन” के नामसे उद्धृत हैं—“यथैवास्ति समिद्धोऽग्निः...” [गीता ४।३७] “द्वाविमौ पुरुषौ लोके, उत्तमपुरुषस्तन्यः...” [गीता

१५।१६, १७] इसी तरह न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ३५८) में गीता (२।१६) का “नाभावो विद्यते सतः” अंश प्रमाणरूपसे उद्धृत किया गया है ।

पतञ्जलि और प्रभाचन्द्र—पाणिनिपुत्रके ऊपर महाभाष्य लिखनेवाले ऋषि पतञ्जलिके समय इतिहासकारोंने ईसवी सन् से पहिले माना है । आ० प्रभाचन्द्रने जैनैन्द्रव्याकरणके साथ ही पाणिनिव्याकरण और उसके महाभाष्यका गभीर परिशीलन और अध्ययन किया था । वे शब्दान्मोचभास्करके प्रारम्भमें स्वयं ही लिखते हैं कि—

“शब्दानामनुशासनानि निखिलन्याय्यायताऽहर्निशम्”

आ० प्रभाचन्द्रका पातञ्जलमहाभाष्यका तलस्पर्शी अध्ययन उनके शब्दान्मो-
चभास्करमें पद पद पर अनुभूत होता है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २७५) में वैयाकरणोंके मतसे गुण शब्दका अर्थ बताते हुये पातञ्जलमहाभाष्य (५।१।११९) से “यस्य हि गुणस्य भावात् शब्दे ब्रह्मविविधः” इत्यादि वाक्य उद्धृत किया गया है । शब्दोंके साधुत्वासाधुल-विचारमें व्याकरणकी उपयोगिता का समर्थन भी महाभाष्यकी ही शैलीमें किया है ।

मर्तुहरि और प्रभाचन्द्र—ईसवी ७ वीं शताब्दीमें मर्तुहरि नामके प्रसिद्ध वैयाकरण हुए हैं । इनका वाक्यपदीय ग्रन्थ प्रसिद्ध है । वे शब्दाद्वैत-दर्शनके प्रतिष्ठाता माने जाते हैं । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय-कुमुदचन्द्रमें शब्दाद्वैतवादके पूर्वपक्षको वाक्यपदीय की अनेक कारिकाओंको उद्धृत करके ही परिपुष्ट किया है । शब्दोंके साधुल-असाधुल विचार से पूर्वपक्षका खुलासा करनेके लिए वाक्यपदीयकी सरणीका पर्याप्त सहारा लिया है । वाक्य-पदीयके द्वितीयकाण्डमें आए हुए “आख्यातशब्दः” आदि दशविध या अष्टविध वाक्यलक्षणोंका सविस्तर खण्डन किया है । इसी तरह प्रभाचन्द्रकी कृति जैनैन्द्र-न्यासके अनेक प्रकरणोंमें वाक्यपदीयके अनेक श्लोक उद्धृत मिलते हैं । शब्दा-द्वैतवादके पूर्वपक्षमें वैखरी आदि चतुर्विधवाणीके स्वरूपका निरूपण करते समय प्रभाचन्द्रने जो “स्थानेषु विवृते वायौ” आदि तीन श्लोक उद्धृत किये हैं वे सुप्रति वाक्यपदीयसे नहीं हैं । टीकामें उद्धृत हैं ।

व्यासभाष्यकार और प्रभाचन्द्र—योगसूत्र पर व्यासऋषि का व्यास-भाष्य प्रसिद्ध है । इनका समय ईसवी पञ्चम शताब्दी तक समझा जाता है । आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० १०९) में योगदर्शनके आधारसे ईश्वरवादका पूर्वपक्ष करते समय योगसूत्रके अनेक उद्धरण दिए हैं । इसके विवेचनमें व्यासभाष्यकी पर्याप्त सहायता ली गई है । अग्निमादि अष्टविध ऐश्वर्यका वर्णन योगभाष्यसे मिलता जुलता है । न्यायकुमुदचन्द्रमें योगभाष्यसे “चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपम्” “विच्छक्तिपरिणामिन्यप्रतिसङ्ख्या” आदि वाक्य उद्धृत किये गये हैं ।

ईश्वरकृष्ण और प्रभाचन्द्र—ईश्वरकृष्णकी सांख्यसप्तति या सांख्यकारिका

प्रसिद्ध है। इनका समय ईसाकी दूसरी शताब्दी समझा जाता है। सांख्यदर्शनके मूलसिद्धान्तों का सांख्यकारिकामें संक्षिप्त और स्पष्ट विवेचन है। आ० प्रभाचन्द्रने सांख्यदर्शनके पूर्वपक्षमें सर्वत्र सांख्यकारिकाओंका ही विशेष उपयोग किया है। न्यायकुसुमचन्द्रमें सांख्योके कुछ वाक्य ऐसे भी उद्धृत हैं जो उपलब्ध सांख्यग्रन्थोंमें नहीं पाये जाते। यथा—“बुद्ध्याध्यवसितमर्थं पुरुषधेतयते” “आसर्ग-प्रत्ययवेत्ता बुद्धिः” “प्रतिनियतदेहा द्युतिरमिब्यज्येत” “प्रकृतिपरिणामः शुद्धं कृष्याद्य कर्म” आदि। इससे ज्ञात होता है कि ईश्वरकृष्णकी कारिकाओंके सिवाय कोई अन्य प्राचीन सांख्य ग्रन्थ प्रभाचन्द्रके सामने था जिससे ये वाक्य उद्धृत किये गए हैं।

माठराचार्य और प्रभाचन्द्र—सांख्यकारिकाकी पुरातन टीका माठर-द्युति है। इसके रचयिता माठराचार्य ईसाकी चौथी शताब्दीके विद्वान् समझे जाते हैं। प्रभाचन्द्रने सांख्यदर्शनके पूर्वपक्षमें सांख्यकारिकाओंके साथ ही साथ माठरद्युतिको भी उद्धृत किया है। जहाँ कहीं सांख्यकारिकाओं की व्याख्याका प्रसङ्ग आया है, माठरद्युतिके ही आधारसे व्याख्या की गई है।

प्रशस्तपाद और प्रभाचन्द्र—कणादसूत्र पर प्रशस्तपाद आचार्यका प्रशस्तपादभाष्य उपलब्ध है। इनका समय ईसाकी पाँचवीं शताब्दी माना जाता है। आ० प्रभाचन्द्रने प्रशस्तपादभाष्यकी “एवं वर्मोर्वेना वर्मिणमेव विदेशः कृतः” इस पङ्क्तिसे अमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ५३१) में “पदार्थप्रवेशकग्रन्थ” के नामसे उद्धृत किया है। न्यायकुसुमचन्द्र तथा अमेयकमलमार्तण्ड दोनोंकी वद-पदार्थपरिष्ठाका बावत पूर्वपक्ष प्रशस्तपादभाष्य और उसकी पुरातनटीका व्योमवतीसे ही स्पष्ट किया गया है। अमेयकमलमार्तण्ड (पृ० १७०) के ईश्वरवादके पूर्वपक्षमें “प्रशस्तमतिना च” लिखकर “सर्गादी पुरुषाणां व्यवहारो” इस्रादि अनुमान उद्धृत है। यह अनुमान प्रशस्तपादभाष्यमें नहीं है। तत्त्वसंग्रह की पङ्क्ति (पृ० ४३) में भी यह अनुमान प्रशस्तमतिके नामसे उद्धृत है। ये प्रशस्तमति, प्रशस्तपादभाष्यकारसे भिन्न माध्यम होते हैं, पर इनका कोई ग्रन्थ अद्यावधि उपलब्ध नहीं है।

व्योमशिव और प्रभाचन्द्र—प्रशस्तपादभाष्यके पुरातन टीकाकार आ० व्योमशिवकी व्योमवती टीका उपलब्ध है। आ० प्रभाचन्द्रने अपने दोनों ग्रन्थोंमें, न केवल वैशेषिकमतके पूर्वपक्षमें ही व्योमवतीको अपनाया है किन्तु अनेक मतोंके संक्षेपमें भी इसका प्रयोग अनुसरण किया है। यह टीका उनके विभिन्न अध्यायनकी वस्तु थी। इस टीकाके तुलनात्मक अंशोंको न्यायकुसुमचन्द्रकी टिप्पणीमें देखना चाहिए। आ० व्योमशिवके समयके विषयमें विद्वानोंका मतभेद चल आ रहा है। डॉ० कीथ इन्हें नवमशताब्दी का कहते हैं तो डॉ० दासगुप्ता इन्हें छठीं शताब्दीका। मैं इनके समयका कुछ विस्तार से विचार करता हूँ—

राजशेखरने प्रशस्तपादभाष्यकी ‘कन्दली’ टीकाकी ‘पंक्ति’ में प्रशस्तपाद-

भाष्यकी चार टीकाओंका इस क्रमसे निर्देश किया है—सर्वप्रथम ‘व्योमवती’ (व्योमशिवाचार्य), तत्पश्चात् ‘न्यायकन्दली’ (श्रीधर), तदनन्तर ‘किरणवली’ (उदयन) और उसके बाद ‘लीलावती’ (श्रीवत्साचार्य) । ऐतिहासपर्यालोचनसे भी राजशेखरका यह निर्देशक्रम संगत जान पड़ता है । यहाँ हम व्योमवतीके रचयिता व्योमशिवाचार्यके विषयमें कुछ विचार प्रस्तुत करते हैं ।

व्योमशिवाचार्य शैव थे । अपनी गुरु-परम्परा तथा व्यक्तिके विषयमें सब उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा । पर रणिपदपुर रानोद, वर्तमान नारोद ग्राम की एक बापी प्रशस्ति * से इनकी गुरुपरम्परा तथा व्यक्तिक-विषयक बहुतसी बातें मालूम होती हैं, जिनका कुछ सार इस प्रकार है—

“कदम्बगुहाधिवासी मुनीन्द्रके संखगणिकाधिपति नामक शिष्य थे, उनके तेर-म्बिपाल, तेरम्बिपालके आभर्दकतीर्थनाथ और आभर्दकतीर्थनाथके पुरन्दरगुह नामके अतिशय प्रतिभाशाली तार्किक शिष्य हुए । पुरन्दरगुहने कोई अन्य अवश्य लिखा है; क्योंकि उसी प्रशस्ति-शिलालेखमें अत्यन्त स्पष्टतासे यह उल्लेख है कि—“इनके कनकोंका खण्डन आज भी बड़े बड़े नैयायिक नहीं कर सकते ।”† साक्षाद्वरणाकर आदि ग्रन्थोंमें पुरन्दरके नामसे कुछ वाक्य उद्धृत मिलते हैं, सम्भव है वे पुरन्दर थे ही हों । इन पुरन्दरगुहको अवन्तिबर्मा उपेन्द्रपुरसे अपने वैद्यको ले गया । अवन्तिबर्मने इन्हें अपना राज्यभार सौंप कर शैवरीक्षा चारण की और इस तरह अपना जन्म सकल किया । पुरन्दरगुहने मत्तमयूरमें एक बड़ा मठ स्थापित किया । दूसरा मठ रणिपदपुरमें भी इन्होंने स्थापित किया था । पुरन्दरगुहका कवचशिव और कनकशिवका सदाशिव नामक शिष्य हुआ, जो कि रणिपदपुरके तापसाधन में तपःसाधन करता था । सदाशिवका शिष्य हृदयेश और हृदयेशका शिष्य व्योमशिव हुआ, जोकि अच्छा प्रभावशाली, उत्कट प्रतिभासम्पन्न और समर्थ विद्वान् था ।” व्योमशिवाचार्यके प्रभावशाली होनेका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इनके नामसे ही व्योममन्त्र प्रचलित हुए थे ।‡ ये सद्-गुष्ठानपरायण, शत्रु-मित्रभाषी, मित्र-मन-संयमके अद्भुत स्थान तथा अग्रतिम प्रतापशाली थे । इन्होंने रणिपदपुरका तथा रणिपदमठका उद्धार एवं सुधार किया था और वहाँ एक शिवमन्दिर तथा बापीका भी निर्माण कराया था । इसी बापीपर उक्त प्रशस्ति खुदी है ।

इनकी विद्वत्ताके विषयमें शिलालेखके ये श्लोक पर्याप्त हैं—

“सिद्धान्तेषु भवेद्य एव नियतो न्यायेऽस्यपादो मुनिः ।

गम्भीरे च कणाकिनस्तु कममुग्रशाले ध्रुवो जैमिनिः ॥

* प्राचीन लेखपाल दि० भाग शिलालेख नं १०८

† “मस्यधुनापि शिष्यैरतिशुल्लसति व्याहृतये न वचनं नयमार्गविहिः ॥”

‡ “अस्य व्योमपदादिमन्त्ररचनास्वत्तामिषामल न ।” —बापीप्रशस्तिः

सांख्येऽनल्पमतिः स्वयं स कपिलो लोकयते सद्गुरुः ।
 बुद्धो बुद्धमते जिनोक्तिषु जिनः को वाच नार्थं कृती ॥
 यद्भूतं यदनागतं यदधुना किञ्चित्कचिद्वर्धे (तै) वे ।
 सम्यग्दर्शनसम्पदा तदस्ति परमं प्रमेयं महत् ॥
 सर्वज्ञः स्फुटमेव कोपि भगवानन्यः क्षितौ सं(शं)करः ।
 वते किन्तु न शान्तधीर्विषमदृष्टौर्धं यपुः केवलम् ॥”

इन श्लोकों में बतलाया है कि ‘ज्योमशिवार्च्य शैवसिद्धान्तमें स्वयं शिव, न्यायमें अक्षपाद, वैशेषिक शास्त्रमें कणाद, मीमांसामें जैमिनि, सांख्यमें कपिल, चार्वाकशास्त्रमें बृहस्पति, बुद्धमतमें बुद्ध तथा जिनमतमें स्वयं जिनदेवके समान थे । अधिक भया; अतीतानागतवर्तमानवर्ती यावत् प्रमेयोंको अपनी सम्यग्दर्शनसम्पत्तिसे स्पष्ट देखने जानने वाले सर्वज्ञ थे । और ऐसा भाव्य होता था कि मात्र विषयनेत्र (चूतियनेत्र) तथा रौद्रभरीर को धारण किए बिना वे पृथ्वी पर दूसरे शंकर भगवान् ही अवतारे थे । इनके गगनेश, ज्योमशम्भु, ज्योमेश, गगन-शशिभौलि आदि भी नाम थे ।

शिलाखेखके आधारसे समय—ज्योमशिवके पूर्ववर्ती चतुर्थशुक्र पुरन्दरको अव-
 न्तिवर्मा राजा अपने नगरने के भया था । अवन्तिवर्मा के चौबीस सिकों पर
 “विजितावनिरवनिपतिः श्री अवन्तिवर्मा दिवं जयति” लिखा रहता है तथा
 संवत् २५० पड़ा गया है * । यह संवत् संभवतः शुभ संवत् है । डॉ० फ्लीडके
 मतानुसार शुभ संवत् ई० सन् २२० की २६ फरवरी को आरम्भ होता है † ।
 अतः ५७० ई० में अवन्तिवर्माका अपनी मुद्राको प्रचलित करना इतिहाससिद्ध
 है । इस समय अवन्तिवर्मा राज्य कर रहे होंगे । तथा ५७० ई० के आसपास
 ही वे पुरन्दरशुक्रको अपने राज्यमें लाए होंगे । ये अवन्तिवर्मा मोहरीवंशीय
 राजा थे । शैव होने के कारण शिवोपासक पुरन्दरशुक्रको अपने यहाँ लाना भी
 इनका ठीक ही था । इनके समयके सम्बन्ध में दूसरा प्रमाण यह है कि—वैसवंशीय
 राजा हर्षवर्धनकी छोटी बहिन राज्यश्री, अवन्तिवर्माके पुत्र प्रहवर्माको विवाही गई
 थी । हर्षका जन्म ई० ५९० में हुआ था । राज्यश्री उससे १ या २ वर्ष
 छोटी थी । प्रहवर्मा हर्षसे ५-६ वर्ष बड़ा जरूर होगा । अतः उसका जन्म
 ५८४ ई० के करीब मानना चाहिए । इसका राज्यकाल ई० ६०० से ६०६ तक
 रहा है । अवन्तिवर्माका यह इकलौता लड़का था । अतः भाव्य होता है कि
 ई० ५८४ में अर्थात् अवन्तिवर्माकी उल्टी अवस्थामें वह पैदा हुआ होगा ।
 अस्तु यहाँ तो इतना ही प्रयोजन है कि ५७० ई० के आसपास ही अवन्तिवर्मा
 पुरन्दरको अपने यहाँ ले गए थे ।

* देखो, भारतके प्राचीन राजवश, द्वि० भाग पृ० ३७५ ।

† देखो, भारतके प्राचीन राजवश, द्वितीय भाग पृ० २३९ ।

यद्यपि सन्यासियोंकी शिष्य-परम्पराके लिए प्रत्येक पीढ़ीका समय २५ वर्ष मानना आवश्यक नहीं है; क्योंकि कभी कभी २० वर्षमें ही शिष्य-प्रशिष्यों की परम्परा चल जाती है। फिर भी यदि प्रत्येक पीढ़ीका समय २५ वर्ष ही मान लिया जाय तो पुरन्दरसे तीन पीढ़ी के बाद हुए व्योमशिवका समय सन् ६७० के आसपास सिद्ध होता है।

दार्शनिकग्रन्थोंके आधारसे समय—व्योमशिव स्वयं ही अपनी व्योमवती टीका (पृ० १९२) में श्रीहर्षका एक महत्त्वपूर्ण टंगसे उल्लेख करते हैं। यथा—

“अत एव मदीयं शरीरमित्यादिप्रत्ययेष्वात्मानुरागसद्भावेऽपि आत्मनोऽवच्छेद-
कत्वम् । अहर्षं देवकुलमिति ज्ञाने श्रीहर्षस्यैव उभयत्रापि बाधकसद्भावात्, यत्र
ह्यनुरागसद्भावेऽपि विशेषणत्वे बाधकमस्ति तत्रावच्छेदकत्वमेव कल्प्यते इति ।
अस्ति च श्रीहर्षस्य विद्यमानत्वम् । आत्मनि कर्तृत्वकरणत्वयोरसम्भव इति
बाधकम्...” ।”

यद्यपि इस सन्दर्भका पाठ कुछ छूटा हुआ माखन होता है फिर भी ‘अस्ति च श्रीहर्षस्य विद्यमानत्वम्’ यह वाक्य खास तौरसे ध्यान देने योग्य है। इससे साफ माखन होता है कि श्रीहर्ष (606-647 A. D. राज्य) व्योमशिवके समयमें विद्यमान थे। यद्यपि यहाँ यह कहा जा सकता है कि व्योमशिव श्रीहर्षके बहुत बाद होकर भी ऐसा उल्लेख कर सकते हैं; परन्तु जब शिलालेखसे उनका समय ई० सन् ६७० के आसपास है तथा श्रीहर्षकी विद्यमानताका वे इस तरह जोर देकर उल्लेख करते हैं तब उस कल्पनाको स्थान ही नहीं मिलता।

व्योमवतीका अन्त परीक्षण—व्योमवती (पृ० ३०६, ३०७, ६८०) में धर्मकीर्तिके प्रमाणवार्तिक (२-११, १२ तथा १-६८, ७२) से कारिकाएँ उद्धृत की गई हैं। इसी तरह व्योमवती (पृ० ६१७) में धर्मकीर्तिके हेतुबिन्दु प्रथमपरिच्छेदके “छिण्डिकरागं परित्यज्य अक्षिणी निर्मात्य” इस वाक्यका प्रयोग पाया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रमाणवार्तिककी और भी बहुतसी कारिकाएँ उद्धृत देखी जाती हैं।

व्योमवती (पृ० ५९१, ५९२) में कुमारिके भीमांश-श्लोकवार्तिककी अनेक कारिकाएँ उद्धृत हैं। व्योमवती (पृ० १२९) में उद्योतकरत्न नाम लिया है, ‘मर्तुहरिके शब्दाद्वैतदर्शनका (पृ० २० व) खण्डन किया है और प्रभाकरके स्वप्तिप्रमोषवादका भी (पृ० ५४०) खंडन किया गया है।

इनमें मर्तुहरि, धर्मकीर्ति, कुमारिक तथा प्रभाकर ये सब प्रायः समसामयिक और ईसाकी सातवीं शताब्दीके विद्वान् हैं। उद्योतकर छठी शताब्दीके विद्वान् हैं। अतः व्योमशिवके द्वारा इन समसामयिक एवं किन्तिपूर्ववर्ती विद्वानोंका उल्लेख तथा समालोचनका होना संगत ही है। व्योमवती (पृ० १५) में बाणकी

कदम्बरीका उल्लेख है। बाण हर्षकी समाके विद्वान् ये, अतः इसका उल्लेख भी होना ठीक ही है।

ज्योमवती टीकाकर उल्लेख करनेवाले परवर्ती ग्रन्थकारोंमें शान्तरक्षित, विशा-
नन्द, जयन्त, वाचस्पति, सिद्धर्षि, श्रीधर, उदयन, प्रभाचन्द्र, वादिराज,
वादिदेनसुरि, हेमचन्द्र तथा गुणरत्न, विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं।

शान्तरक्षितने वैशेषिक-सम्मत षट्पदार्थोंकी परीक्षा की है। उसमें वे प्रशस्त-
पादके साथ ही साथ शंकरस्वामी नामक नैयायिकका मत भी पूर्वपक्षरूपसे उप-
स्थित करते हैं। परंतु अब हम ज्ञानसे देखते हैं तो उनके पूर्वपक्षमें प्रशस्त-
पादज्योमवतीके शब्द स्पष्टतया अपनी छाप मारते हुए नजर आते हैं।
(तुलना-तत्त्वसंग्रह पृ० २०६ तथा ज्योमवती पृ० ३४३।) तत्त्वसंग्रहकी
पंजिका (पृ० २०६) में ज्योमवती (पृ० १२९) के स्वरूपसमवाय तथा
सत्तासमवायरूप उत्पत्तिके लक्षणका उल्लेख है। शान्तरक्षित तथा उनके शिष्य
कमलशीलका समय ई० की आठवीं शताब्दिका पूर्वार्द्ध है। (देखो, तत्त्वसंग्रहकी
भूमिका पृ० xovi)

विद्यानन्द आचार्यने अपनी आप्तपरीक्षा (पृ० २६) में ज्योमवती टीका
(पृ० १०७) से समवायके लक्षणकी समस्त पदकृत्य उद्धृत की है। 'द्रव्यलौप-
लक्षित समवाय इत्यका लक्षण है' ज्योमवती (पृ० १४९) के इस मन्तव्यकी
समालोचना भी आप्तपरीक्षा (पृ० ६) में की गई है। विद्यानन्द इसकी नवम-
शताब्दीके पूर्वार्द्धवर्ती हैं।

जयन्तकी न्यायमंजरी (पृ० १३) में ज्योमवती (पृ० ६२१) के अनर्थ-
जलात् स्मृतिको अप्रमाण माननेके सिद्धान्तका समर्थन किया है, साथही पृ० ६५
पर ज्योमवती (पृ० ५५६) के फलविशेषणपक्षकी स्वीकारकर कारकसामग्रीको
प्रमाणमाननेके सिद्धान्तका अनुसरण किया है। जयन्तका समय हम आगे इसकी
९ वीं शताब्दीका पूर्वभाग सिद्ध करेंगे।

वाचस्पति मिश्र अपनी तात्पर्यटीकमें (पृ० १०८) प्रत्यक्षलक्षणसूत्रमें 'यत्'
पदका अव्याहार करते हैं तथा (पृ० १०२) लिंगपरामर्श ज्ञानको उपादानबुद्धि
कहते हैं। ज्योमवतीटीकामें (पृ० ५५६) 'यत्' पदका प्रयोग प्रत्यक्षलक्षणमें
किया है तथा (पृ० ५६१) लिंगपरामर्शज्ञानको उपादानबुद्धि भी कहा है।
वाचस्पति मिश्रका समय ८४१ A.D. है।

प्रभाचन्द्र आचार्यने मोक्षनिरूपण (प्रमेयकमलमार्तण्ड पृ० ३०७) आल-
स्वरूपनिरूपण (न्यायकुसुमचन्द्र पृ० ३४९, प्रमेयकमलमा० पृ० ११०) समवाय-
लक्षण (न्यायकुसु० पृ० २९५, प्रमेयकमलमा० पृ० ६०४) आदिमें ज्योमवती
(पृ० २०, ३९३, १०७) का पर्याप्त सहारा लिया है। स्वसंवेदनसिद्धिमें
ज्योमवतीके ज्ञानान्तरवेद्यज्ञानवादका खंडन भी किया है।

श्रीधर तथा उदयनाचार्यने अपनी कन्दली (पृ० ४) तथा किरणावलीमें

व्योमवती (पृ० २० क) के "नवानामात्मविशेषगुणानां सन्तानोऽस्तन्तमुच्छिद्यते सन्तानत्वाद्.....यथा प्रवीपसन्तानः ।" इस अनुमानको 'तार्किकः' तथा 'आचार्यः' शब्दोंके साथ उद्धृत किया है। कन्दली (पृ० २०) में व्योमवती (पृ० १४९) के 'द्रव्यलोपलक्षितः समवायः द्रव्यत्वेन योगः' इस मतकी आलोचना की गई है। इसी तरह कन्दली (पृ० १८) में व्योमवती (पृ० १२९) के 'अनित्यत्वं तु प्रागभावप्रपञ्चसामावोपलक्षिता वस्तुतत्ता ।' इस अनित्यत्वके लक्षणका खण्डन किया है। कन्दली (पृ० २००) में व्योमवती (पृ० ५९३) के 'अनुमान-लक्षणमे विद्याके सामान्यलक्षणकी अनुवृत्ति करके संशयादिका व्यवच्छेद करना' तथा स्मरणके व्यवच्छेदके लिये 'द्रव्यादिषु उत्पद्यते' इस पदका अनुवर्तन करना' इन दो मतोंका समालोचन किया है। कन्दलीकार श्रीधरका समय कन्दलीके अन्तमें दिए गए "अधिकदशोत्तरनवशतशकाब्दे" पदके अनुसार ९१३ शक अर्थात् ९९९ ई० है। और उदयनाचार्यका समय ९८४ ई० है।

यादिराज अपने न्यायविनिश्चय-विवरण (लिखित पृ० १११ B. तथा १११ A.) में व्योमवतीसे पूर्वपक्ष करते हैं। वादिदेवसूरी अपने स्याद्वादरत्नाकर (पृ० ३१८ तथा ४१८) में पूर्वपक्षरूपसे व्योमवतीका उद्धरण देते हैं।

सिद्धार्थि न्यायावतारश्रुति (पृ० ९) में, हेमचन्द्र प्रमाणमीमांसा (पृ० ७) में तथा गुणरत्न अपनी पददर्शनसमुच्चयकी श्रुति (पृ० ११४ A.) में व्योमवतीके प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगम रूप प्रमाणत्रिलकी वैशेषिकमरम्परका पूर्वपक्ष करते हैं। इन तरह व्योमवतीकी सक्षिप्त तुलनासे ज्ञात हो सकता है कि व्योमवतीका जैनग्रन्थोंसे विशिष्ट सम्बन्ध है।

इस प्रकार हम व्योमशिवका समय थिलालेख तथा उनके ग्रन्थोंके उल्लेखोंके आधारसे इसी सातवीं शताब्दीका उत्तर भाग अनुमान करते हैं। यदि ये आठवीं या नववीं शताब्दीके विद्वान् होते तो अपने समसामयिक शंकराचार्य और शान्तरक्षित जैसे विद्वानोंका उल्लेख अवश्य करते। हम देखते हैं कि—व्योमशिव शाकरोवेदान्तका उल्लेख भी नहीं करते तथा विपर्यय ज्ञानके विषयमें अलौकिका-धर्म्यादि, सृष्टिप्रमोष आदिका खण्डन करने पर भी शंकरके अनिविचनीयार्थ-ख्यातिवादका नाम भी नहीं लेते। व्योमशिव जैसे बहुश्रुत एवं सैकड़ों मतमतान्तरोंका उल्लेख करनेवाले आचार्यके द्वारा किसी भी अष्टमशताब्दी या नवम शताब्दीवर्ती आचार्यके मतका उल्लेख न किया जाना ही उनके सप्तमशताब्दी-वर्ती होनेका प्रमाण है।

अतः डॉ० क्रीचन इन्हें नववीं शताब्दीका विद्वान् लिखना तथा डॉ० एस० एन० दामस्ताका इन्हें छठी शताब्दीका विद्वान् बतलाना ठीक नहीं जँचता।

श्रीधर और प्रभाचन्द्र-प्रशस्तपाद भाष्यकी टीकाओंमें न्यायकन्दली टीकाका भी अपना अच्छा स्थान है। इसकी रचना श्रीधरने शक ९१३

(ई० १९१) में की थी। श्रीधराचार्य अपने पूर्व टीकाकार व्योमशिवका शब्दा-
नुसरण करते हुए भी उनसे मतभेद प्रदर्शित करनेमें नहीं चूकते। व्योमशिव
बुद्धपादि विशेष गुणोंकी सन्ततिके अस्तित्वको मोक्ष कहते हैं और उसकी
सिद्धिके लिए 'सन्तानत्वात्' हेतुका प्रयोग करते हैं (प्रवा० व्यो० पृ० २० क)।
श्रीधर आख्यानिक अद्वैतनिष्ठतिको मोक्ष मानकर भी उसकी सिद्धिके लिए
प्रयुक्त होनेवाले 'सन्तानत्वात्' हेतुको पार्थिवपरमाणुकी रूपादिसन्तानसे व्यभिचारी
बताते हैं (कन्दली पृ० ४)। आ० प्रभाचन्द्रने भी वैशेषिकोंकी भुक्तिका खंडन
करते समय न्यायकुसुद० (पृ० ८२६) और प्रमेयकमल० (पृ० ३१८) में
'सन्तानत्वात्' हेतुको पाकलपरमाणुओंकी रूपादिसन्तानसे व्यभिचारी बताया है।
इसी तरह और भी एकाधिकस्थलोंमें हम कन्दलीकी आमा प्रभाचन्द्रके ग्रन्थों
पर देखते हैं।

वात्सायन और प्रभाचन्द्र-न्यायसूत्रके ऊपर वात्सायनकृत न्यायभाष्य
उपलब्ध है। इनका समय ईसाकी तीसरी-चौथी शताब्दी समझा जाता है।
आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुदचन्द्रमें इनके न्यायभाष्यका
कहीं न्यायभाष्य और कहीं भाष्य शब्दसे उल्लेख किया है। वात्सायनका नाम न
लेकर सर्वत्र न्यायभाष्यकार और भाष्यकार शब्दोंसे ही इनका निर्देश
किया गया है।

उद्योतकर और प्रभाचन्द्र-न्यायसूत्रके ऊपर न्यायवार्तिक ग्रन्थके
रचयिता आ० उद्योतकर ई० ६ वीं सदी, अन्ततः सातवीं सदीके पूर्वपादके
विद्वान् हैं। इन्होंने दिङ्नागके प्रमाणसमुच्चयके खंडनके लिए न्यायवार्तिक
रचनाया था। इनके न्यायवार्तिकका खंडन धर्मेकीर्ति (ई० ६३५ के बाद) ने
अपने प्रमाणवार्तिकमें किया है। आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्डके सृष्टिकर्तृत्व
प्रकरणके पूर्वपक्षमें (पृ० २६८) उद्योतकरके अनुमानोंको 'वार्तिककारेणापि'
शब्दके साथ उद्धृत किया है। प्रमेयकमलमार्तण्डमें एकाधिकस्थानोंमें 'उद्योतकर'
का नामोल्लेख करके न्यायवार्तिकसे पूर्वपक्ष किए गए हैं। न्यायकुसुदचन्द्रके बोध-
शपदार्थवादका पूर्वपक्ष भी उद्योतकरके न्यायवार्तिकसे पर्याप्त पुष्टि पाया है।
'पूर्वच्छेषवत्' आदि अनुमानसूत्रकी वार्तिककारकृत विविध व्याख्याएँ भी
प्रमेयकमलमार्तण्डमें खंडित हुई हैं। वार्तिककारकृत साधकतयलका "भावा-
भावयोस्तद्वत्ता" यह लक्षण प्रमेयकमलमार्तण्डमें प्रमाणरूपसे उद्धृत है।

महजयन्त और प्रभाचन्द्र-महजयन्त जरमैयायिकके नामसे
प्रसिद्ध थे। इन्होंने न्यायसूत्रोंके आधारसे न्यायकलिका, और न्यायमञ्जरी ग्रन्थ
लिखे हैं। न्यायमञ्जरी तो कतिपय न्यायसूत्रोंकी विशद व्याख्या है। अब हम
महजयन्तके समयका विचार करते हैं—

जयन्तकी न्यायमञ्जरीका प्रथम संस्करण विजयनगर की राजधानी सन १८९५
में प्रकाशित हुआ है। इसके संपादक म० म० पंभाधर शाली मानवर्ती हैं।

उन्होंने भूमिकाएँ लिखा है की—“जयन्तमङ्कल गंगेशोपाध्यायने उपमान-चिन्तामणि (पृ० ६१) में जरबैयायिक शब्दसे उल्लेख किया है, तथा जयन्त-मङ्कले न्यायमञ्जरी (पृ० ३१२) में वाचस्पति मिश्रकी तात्पर्य-टीकासे “जातं च सम्बद्धं चेत्येकः कालः” यह वाक्य ‘आचार्यैः’ करके उद्धृत किया है। अतः जयन्तका समय वाचस्पति (841 A. D.) से उत्तर तथा गंगेश (1175 A. D.) से पूर्व होना चाहिये।” इन्हींका अनुसरण करके न्यायमञ्जरीके द्वितीय संस्करणके सम्पादक पं० सूर्यनारायणजी श्रुक्ले, तथा ‘संस्कृतसाहित्यका संक्षिप्त इतिहास’के लेखकोने भी जयन्तको वाचस्पतिका परवर्ती लिखा है। ख० डॉ० शतीशचन्द्र विद्याभूषण भी उक्त वाक्यके आधार पर इनका समय ९ वीं से ११ वीं शताब्दी तक मानते थे*। अतः जयन्तको वाचस्पतिका उत्तरकालीन माननेकी परम्पराका आधार म० म० गंगाधर शास्त्री-द्वारा “जातं च सम्बद्धं चेत्येकः कालः” इस वाक्यको वाचस्पति मिश्रका लिख देना ही मालूम होता है। वाचस्पति मिश्रने अपना समय ‘न्याय-सूची निबन्ध’ के अन्तमें स्वर्य दिया है। यथा—

“न्यायसूचीनिबन्धोऽयमकारि सुधियां मुदे।

श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वसंकवसुवत्सरे ॥”

इस श्लोकसे ८९८ वत्सर लिखा है।

म० म० विन्ध्येश्वरीप्रसादजीने ‘वत्सर’ शब्दसे शकसंवत् लिया है†। डॉ० शतीशचन्द्र विद्याभूषण विक्रम संवत् लेते हैं‡। म० म० गोपीनाथ कविराज लिखते हैं§ कि “तात्पर्यटीकाकी परिशुद्धिटीका बनानेवाले आचार्य उदयनने अपनी ‘लक्षणवली’ शक सं० ९०६ (984 A. D.) में समाप्त की है। यदि वाचस्पतिका समय शक सं० ८९८ माना जाता है तो इतनी जल्दी उस पर परिशुद्धि जैसी टीकाका बन जाना संभव मालूम नहीं होता।

अतः वाचस्पतिमिश्रका समय विक्रम संवत् ८९८ (841 A. D.) प्रायः सर्वसम्मत है। वाचस्पतिमिश्रने वैशेषिकदर्शनको छोड़कर प्रायः सभी दर्शनों पर टीकाएँ लिखी हैं। सर्वप्रथम इन्होंने मंडनमिश्रके विधिविवेक पर ‘न्यायकणिका’ नामकी टीका लिखी हैं, क्योंकि इनके दूसरे ग्रन्थोंमें प्रायः इसका निर्देश हैं। उसके बाद मंडनमिश्रकी ब्रह्मसिद्धिकी व्याख्या ‘ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा’ तथा ‘तत्त्वविन्दु’, इन दोनों ग्रन्थोंका निर्देश तात्पर्य-टीकामें मिलता है, अतः उनके बाद ‘तात्पर्य-टीका’ लिखी गई। तात्पर्य टीकाके साथही ‘न्यायसूची-निबन्ध’ लिखा

* हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन जॉनिक, पृ० १४६।

† न्यायवार्त्तिक-भूमिका, पृ० १४५।

‡ हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन जॉनिक, पृ० १३३।

§ हिस्ट्री पद मिन्डोग्राफी ऑफ न्यायवैशेषिक लिटरेचर Vol. III, पृ० १०१।

होगा; क्योंकि न्यायसूत्रोंका निर्णय तात्पर्य-टीकामें अत्यन्त अपेक्षित है। 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' में तात्पर्य-टीका उद्धृत है, अतः तात्पर्य-टीकाके बाद 'सांख्य-तत्त्वकौमुदी' की रचना हुई। योगशास्त्रकी तत्त्ववैशारदी टीकामें 'सांख्यतत्त्व-कौमुदी' का निर्देश है, अतः निर्दिष्ट कौमुदीके बाद 'तत्त्ववैशारदी' रची गई। और इन सभी ग्रन्थोंका 'भामती' टीकामें निर्देश होनेसे 'भामती' टीका सबके अन्तमें लिखी गई है।

जयन्त वाचस्पति मिश्रके समकालीन वृद्ध हैं-वाचस्पतिमिश्र अपनी आद्यकृति 'न्यायकणिका' के मङ्गलाचरणमें न्यायमञ्जरीकारको बड़े महत्त्व-पूर्ण शब्दोंमें गुरुरूपसे स्मरण करते हैं। यथा—

“अज्ञानतिसिरशमनीं परदमनीं न्यायमञ्जरीं वचिराम्।

प्रसवित्रे प्रमवित्रे विद्यातरवे नमो गुरवे ॥”

अर्थात्-जिनने अज्ञानतिसिरका नाश करनेवाली, प्रतिवादियोंका दमन करने-वाली, वचिर न्यायमञ्जरीको जन्म दिया उन समर्थ विद्यातरु गुरुको नमस्कार हो।

इस श्लोकमें स्मृत 'न्यायमञ्जरी' मध्य जयन्तकृत न्यायमञ्जरी जैसी प्रसिद्ध 'न्यायमञ्जरी' ही होनी चाहिये। अभी तक कोई दूसरी न्यायमञ्जरी तो सुनने में भी नहीं आई। जब वाचस्पति जयन्तको गुरुरूपसे स्मरण करते हैं तब जयन्त वाचस्पति के उत्तरकालीन कैसे हो सकते हैं। यद्यपि वाचस्पतिने तात्पर्य-टीकामें 'त्रिलोचनगुरुजीत' इत्यादि पद देकर अपने गुरुरूपसे 'त्रिलोचन' का उल्लेख किया है, फिर भी जयन्तको उनके गुरु अथवा गुरुसम होने में कोई शका नहीं है; क्योंकि एक व्यक्तिके अनेक गुरु भी हो सकते हैं।

अभी तक 'जातश्च सम्बद्धं चेत्येकः कालः' इस वचनके आधार पर ही जयन्तको वाचस्पतिक उत्तरकालीन माना जाता है। पर, यह वचन वाचस्पतिकी तात्पर्य-टीकाका नहीं है, किन्तु न्यायवार्तिककार भी उद्योतकरका है (न्यायवार्तिक पृ० २३६), जिस न्यायवार्तिक पर वाचस्पतिकी तात्पर्य-टीका है। इनका समय भर्षकीर्तिसे पूर्व होना निर्विवाद है।

म० म० गोपीनाथ कविराज अपनी 'हिस्ट्री एण्ड विन्लोग्राफी ऑफ न्याय वैशेषिक लिटरेचर' में लिखते हैं* कि—“वाचस्पति और जयन्त समकालीन होने चाहिए, क्योंकि जयन्तके ग्रन्थों पर वाचस्पतिक कोई असर देखने में नहीं आता।” “जातश्च” इत्यादि वाक्यके विषय में भी उन्होंने सन्देह प्रकट करते हुए लिखा है कि—“यह वाक्य किसी पूर्वाचार्य का होना चाहिये।” वाचस्पतिके पहले भी शंकराचार्य आदि नैयायिक हुए हैं, जिनका उल्लेख तत्त्व-संग्रह आदि ग्रन्थोंमें पाया जाता है।

म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने जयन्तको वाचस्पतिक उत्तरकालीन मानकर

* सरस्वती भवन सीरीज III पार्ट I।

न्यायमञ्जरी (पृ० १२०) में उद्धृत 'यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः' इस पद्यको टिप्पणीमें 'आमती' टीकाका लिख दिया है। पर वस्तुतः यह पद्य वाक्यपदीय (१-३४) का है और न्यायमञ्जरी की तरह आमती टीकामें भी उद्धृत ही है, मूलका नहीं है।

न्यायसूत्रके प्रत्यक्ष-रक्षणसूत्र (१-१-४) की व्याख्यामें वाचस्पति मिश्र लिखते हैं कि—'व्यवसायात्मक' पदसे सविकल्पक प्रत्यक्षका ग्रहण करना चाहिये तथा 'अव्यपदेश्य' पदसे निर्विकल्पक ज्ञानका। संशयज्ञानका निराकरण तो 'अव्यभिचारी' पदसे हो ही जाता है, इसलिये संशयज्ञानका निराकरण करना 'व्यवसायात्मक' पदका मुख्य कार्य नहीं है। यह बात मैं 'शुद्धीत मार्ग' का अनुगमन करके कह रहा हूँ। इसी तरह कोई व्याख्याकार 'अयमश्वः' इत्यादि शब्दसंस्पृष्ट ज्ञानको समयज्ञान कहकर उसकी प्रत्यक्षताका निराकरण करनेके लिये अव्यपदेश्य पदकी सार्थकता बताते हैं। वाचस्पति 'अयमश्वः' इस ज्ञानको समयज्ञान न मानकर ऐन्द्रियक कहते हैं। और वह भी अपने शब्दके द्वारा स्पष्टिष्ट इस भाषाके आधार पर—

शब्दजत्वेन शब्दज्ज्ञेत् प्रत्यक्षं चाक्षजत्वतः।

स्पष्टग्रहरूपत्वात् युक्तमैन्द्रियकं हि तत् ॥

इसलिये वे 'अव्यपदेश्य' पदका प्रयोजन निर्विकल्पका संग्रह करना ही बताते हैं।

न्यायमञ्जरी (पृ० ७८) में 'समयज्ञानका व्यवच्छेद करना अव्यपदेश्यपदका कार्य है' इस मतका 'आचार्याः' इस शब्दके साथ उल्लेख किया गया है। उसपर व्याख्याकारकी अनुपपत्ति दिखाकर न्यायमञ्जरीकारने समयज्ञानका खंडन किया है।

म० म० गङ्गाधरशास्त्रीने इस 'आचार्याः' पदके नीचे 'तात्पर्यटीकायां वाचस्पतिमिश्राः' यह टिप्पणी की है। यहाँ यह विचारणीय है कि—यह मत वाचस्पति मिश्र का है वा अन्य किसी पूर्वार्चार्थका ? तात्पर्य-टीका (पृ० १४८) में तो स्पष्ट ही समयज्ञान नहीं मानकर उसे ऐन्द्रियक कहा है। इसलिये वह मत वाचस्पतिका तो नहीं है। व्योमवती* टीका (पृ० ५५५) में

* "न, इन्द्रियसहकारिणा शब्देन यज्जन्मते तस्य व्यवच्छेदायैतत्, तथा शब्द-समयो रूप प्रत्यक्षमि चक्षुषा रूपमिति न जानीते रूपमिति शब्दोच्चारणान्तर प्रतिपद्यत इत्युभयं शक्यम्; चक्षु च शब्देन्द्रिययोरेकसिन् काके व्यापारादसम्भवादयुक्तमेतत् । तथाहि-मनसाऽभिधित न ओज शब्दं गृह्णाति पुनः क्रियाक्रमेण चक्षुषा सम्भवे सति रूपग्रहणम् । न च शब्दज्ञानस्यैतावत्काष्ठमवसान सम्भवतीति कथमुभयनं शक्यम् ? अत्रैका ओजसचन्द्रे मनसि कियोपपत्ति निगमनारभते...ततः स्वज्ञानसहायशब्दसहकारिणा चक्षुषा रूपज्ञानमुत्पद्यते इत्युभयनं शक्यम् । यदि वा...भवत्येवमयनं शक्यम्"।

प्रश्न० व्यो० पृ० ५५५ ।

उभयजज्ञानका स्पष्ट समर्थन है, अतः यह मत व्योमशिवाचार्यका हो सकता है। व्योमवतीमें न केवल उभयजज्ञानका समर्थन ही है किन्तु उसका व्यवच्छेद भी अव्यपदेश्य पदसे किया है। हाँ, उसपर जो व्याख्याकार की अनुपपत्ति है वह कदाचित् वाचस्पतिकी तरफ लग सकती है; सो भी ठीक नहीं; क्योंकि वाचस्पतिने अपने गुरुकी जिस गथाके अनुसार उभयजज्ञानको ऐन्द्रियक माना है, उससे साफ मालूम होता है कि वाचस्पतिके गुरुके सामने उभयजज्ञानको भान-नेवाले आचार्य (संभवतः व्योमशिवाचार्य) की परम्परा थी, जिसका खण्डन वाचस्पतिके गुरुने किया। और जिस खण्डनको वाचस्पतिने अपने गुरुकी गथाका प्रमाण देकर तात्पर्य-टीकामें स्थान दिया है।

इसी तरह तात्पर्य-टीकामें (पृ० १०२) 'यद्वा ज्ञानं तदा हानोपादानोपेक्षाबुद्ध्यः फलम्' इस भाष्यका व्याख्यान करते हुए वाचस्पति मिश्रने उपादेयताज्ञानको 'उपादान' पदसे लिया है और उसका क्रम भी 'तोयालोचन, तोयविकल्प, दृष्टतज्जातीयवैस्कारोद्बोध, स्मरण, 'तज्जातीयं चेदम्' इत्याकारकपरामर्श' इत्यादि बताया है।

न्यायमंजरी (पृ० ६६) में इसी प्रकरणमें कहा है कि—'प्रथम आलोचन-ज्ञानका फल उपादानादिबुद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें कई क्षणोंका व्यवधान पड़ जाता है'। इसका उत्तर देते हुए मंजरीकारने 'आचार्याः' शब्द लिखकर 'उपादेयताज्ञानको उपादानबुद्धि कहते हैं' इस मतका उल्लेख किया है। इस 'आचार्याः' पद पर भी म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने 'न्यायवार्त्तिक-तात्पर्यटीकायां वाचस्पतिमिश्राः' ऐसा टिप्पण किया है। न्यायमंजरीके द्वितीय संस्करणके संपादक पं० सूर्यनारायणजी न्यायाचार्यने भी उन्हींका अनुसरण करके उसे बड़े टाइपमें हेडिंग देकर छपाया है। मंजरीकारने इस मतके बाद भी एक व्याख्याताका मत दिया है। जो इस परामर्शात्मक उपादेयता-ज्ञानको नहीं मानता। यहाँ भी वह विचारणीय है कि—यह मत स्वयं वाचस्पतिक है या उनके पूर्ववर्ती उनके गुरुका? यद्यपि यहाँ उन्होंने अपने गुरुका नाम नहीं लिया है, तथापि जब व्योमवती* जैसी प्रसिद्धपादकी प्राचीन टीका (पृ० ५६१) में इसका स्पष्ट समर्थन है, तब इस मतकी परम्परा भी प्राचीन ही मानना होगी और 'आचार्याः' पदसे वाचस्पति न लिए जाकर व्योमशिव जैसे कोई प्राचीन आचार्य लेना होंगे। मालूम होता है म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने "जातञ्च सम्प्रवर्द्धं चैत्येकः कालः" इस वचनको वाचस्पतिका माननेके कारण ही उक्त दो स्थलों में 'आचार्याः' पद पर 'वाचस्पतिमिश्राः' ऐसी

* "द्रव्यादिजातीयसः पूर्वं सुखदुःखसाधनबोधोपलब्धेः तन्वानानान्तरं यथा द्रव्यादिजातीयं तत्तत्सुखसाधनमित्यभिधानावधारणम्, तथा चेद द्रव्यादिजातीयमिति परं मर्शज्ञानम्, तस्मात् सुखसाधनमिति निमित्तव्ययः तत् उपादेयज्ञानम्" —अश० व्यो० पृ० ५६१।

टिप्पणी कर दी है, जिसकी परम्परा चलती रही। हाँ, म० म० गोपीनाथ कविराजने अवश्य ही उसे सन्देह कोटिमें रखा है।

भट्ट जयन्तकी समयावधि-जयन्त मंजरीमें धर्मकीर्तिके मतकी समा-लोचनाके साथ ही साथ उनके टीकाकार धर्मोत्तरकी आदिवाक्यकी चर्चाको स्थान देते हैं। तथा प्रज्ञाकरगुप्तके 'एकमेवेदं हर्षविपादाद्यनेकाकार-विवर्त्तं पद्म्यामः तत्र यथेष्टं संज्ञाः क्रियन्ताम्' (मिश्र राहुल्जीकी वार्तिकालंकारकी प्रेसकॉपी पृ० ४२९) इस वचनका खंडन करते हैं, (न्यायमंजरी पृ० ७४)।

मिश्र राहुल्जीने टिबेटियन गुरुपरम्पराके अनुसार धर्मकीर्तिके समय ई० ६२५, प्रज्ञाकरगुप्तका ७००, धर्मोत्तर और रविगुप्तका ७२५ ईस्वी लिखा है। जयन्तने एक जगह रविगुप्तका भी नाम लिया है। अतः जयन्तकी पूर्वावधि ७६० A. D. तथा उत्तरावधि ८४० A. D. होनी चाहिए। क्योंकि वाचस्पतिके न्यायसूचीविबन्ध ८४१ A. D. में बनाया गया है, इसके पहिले भी ने ब्रह्मसिद्धि, तत्त्वविन्दु और तात्पर्यटीका लिख चुके हैं। संभव है कि वाचस्पतिने अपनी आणकृति न्यायकणिक ८१५ ई० के आसपास लिखी हो। इस न्याय-कणिक में जयन्तकी न्यायमंजरीका उल्लेख होनेसे जयन्तकी उत्तरावधि ८४० A. D. ही मानना समुचित ज्ञात होता है। यह समय जयन्तके पुत्र अभिनन्द द्वारा भी गई जयन्तकी पूर्वजावलीसे भी संगत बैठता है। अभिनन्द अपने कादम्बरीकथासारमें लिखिते हैं कि-

“भारद्वाज कुलमें शक्ति नामका गौड़ ब्राह्मण था। उसका पुत्र मित्र, मित्रका पुत्र शक्तिसामी हुआ। यह शक्तिसामी कर्कोटवंशके राजा मुकापीड ललिता-दिलके मंत्री थे। शक्तिसामीके पुत्र कल्याणसामी, कल्याणसामीके पुत्र चन्द्र तथा चन्द्रके पुत्र जयन्त हुए, ओ नवशक्तिकारके नामसे मशहूर थे। जयन्तके अभिनन्द नामका पुत्र हुआ।”

कादम्बरीके कर्कोट वंशीय राजा मुकापीड ललितादिलका राज्य काल ७२३ से ७६८ A. D. तक रहा है*। शक्तिसामी के, जो अपनी औढ़ अवस्थामें मन्त्री होंगे, अपने मन्त्रितत्वकालके पहिले ही ई० ७२० में कल्याणसामी उत्पन्न हो चुके होंगे। इसके अनन्तर यदि प्रत्येक पीढ़ीका समय २० वर्ष भी मान लिया जाय तो कल्याण सामिके ईस्वी सन् ७४० में चन्द्र, चन्द्रके ई० ७६० में जयन्त उत्पन्न हुए और उन्होंने ईस्वी ८०० तकमें अपनी 'न्यायमंजरी' बनाई होगी। इसलिये वाचस्पतिके समयमें जयन्त बूढ़ होंगे और वाचस्पति इन्हें आबर की दृष्टिसे देखते होंगे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी आणकृतिमें न्यायमंजरीकारका स्मरण किया है।

* देखो, संस्कृतसाहित्यका इतिहास, परिशिष्ट (ख) पृ० १५।

जयन्तके इस समयका समर्थक एक प्रबल प्रमाण यह है कि—हरिभद्रसूरिने अपने षड्वर्षीयसमुच्चय (श्लो० २०) में न्यायमञ्जरी (विजयानगर सं० पृ० १२९) के—

“गम्भीरगर्जितारम्भनिर्मिन्नगिरिगङ्गाराः ।
रोलम्बगवळव्यालतमालमलिनत्विषः ॥
त्वक्चक्षुःश्लेषितासङ्गपिशङ्कोत्तुङ्गविग्रहाः ।
वृद्धिं व्यभिचरन्तीह नैवंप्रायाः पयोमुचः ॥”

इन दो श्लोकोंके द्वितीय पादोंको जैसाक्यों तैसा शामिल कर लिया है। प्रसिद्ध इतिवृत्तज्ञ मुनि जिनविजयजीने ‘जैन साहित्यसंशोधक’ (भाग १ अंक १) में अनेक प्रमाणोंसे, खासकर उद्योतनसूरिकी कुवलयमाला कथामें हरिभद्रका गुरुत्वसे सन्तुष्ट होनेके कारण हरिभद्रका समय ई० ७०० से ७७० तक निर्धारित किया है। कुवलयमाला कथाकी समाप्ति शक ७०० (ई० ७७८) में हुई थी। मेरा इस विषयमें इतना संशोधन है कि उस समयकी आयु-स्थिति देखते हुए हरिभद्रकी निर्धारित आयु स्वल्प मात्रा में होती है। उनके समयकी उत्तरावधि ई० ८१० तक माननेसे वे न्यायमञ्जरीको देख सकेंगे। हरिभद्र जैसे सैकड़ों प्रकरणोंके रचयिता विद्वान्के लिए १०० वर्ष जीना अस्वाभाविक नहीं हो सकता। अतः ई० ७१० से ८१० तक समयवाले हरिभद्रसूरिके द्वारा न्यायमञ्जरीके श्लोकोंका अपने ग्रन्थमें शामिल किया जाना जयन्तके ७६० से ८४० ई० तकके समयका प्रबल साधकप्रमाण है।

आ० प्रभावचन्द्रने जात्सायनभाष्य एवं न्यायवार्तिककी अपेक्षा जयन्तकी न्यायमञ्जरी एवं न्यायकलिका ही अधिक परिशीलन एवं समुचित उपयोग किया है। बोधसप्तवर्षीके निरूपणमें जयन्तकी न्यायमञ्जरीके ही शब्द अपनी आभा दिखाते हैं। प्रभावचन्द्रको न्यायमञ्जरी सम्बन्ध थी। वे कहीं कहीं मञ्जरीके ही शब्दोंको ‘तथा चाह भाष्यकारः’ लिखकर उद्धृत करते हैं। भूतनैतन्यवादके पूर्वपक्षमें न्यायमञ्जरी में ‘अपि न’ करके उद्धृत की गई १७ कारिकाएँ न्यायकुसुदचन्द्रमें भी ज्योंकी त्यों उद्धृत की गई हैं। जयन्तके कारकसाक्यका सर्वप्रथम खण्डन प्रभावचन्द्रने ही किया है। न्यायमञ्जरीकी निम्नलिखित तीन कारिकाएँ भी न्यायकुसुदचन्द्रमें उद्धृत की गई हैं।

(न्यायकुसुद० पृ० ३३६) “ज्ञातं सम्यगसम्भवा बन्धोद्धार मवाय वा ।

तत्प्रमेयमिदानीं न प्रमाणार्थमात्रकम् ॥” [न्यायसं० पृ० ४४७]

(न्यायकुसुद० पृ० ४५१) “भूयोऽवयवसमान्ययोगो वक्ष्यते ।

सादृश्यं तस्य तु ज्ञातिः पृथीति प्रतिबोधिनि ॥” [न्यायसं० पृ० १४६]

(न्यायकुसुद० पृ० ५११) “नन्वस्त्वेव गृहद्वारवर्तिनः संगतिग्रहः ।

भावेनाभावसिद्धौ तु कथमेतद्विप्यति ॥” [न्यायसं० पृ० ३८]

इस तरह न्यायकुमुदचन्द्रके आधारभूत ग्रन्थोंमें न्यायमंजरीका नाम लिखा जा सकता है ।

वाचस्पति और प्रभाचन्द्र-बह्दर्शनटीकाकार वाचस्पतिने अपना न्यायसूचीनिबन्ध ई० ८४१ में समाप्त किया था । इनने अपनी तात्पर्यटीका (पृ० १६५) में सांख्यों के अनुमान के मात्रामात्रिक आदि सात भेद गिनाए हैं और उनका खंडन किया है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ४६२) में भी सांख्योंके अनुमानके इन्हीं सात भेदोंके नाम निर्दिष्ट हैं । वाचस्पतिने शाकरभाष्यकी भामती टीकामें अविव्यासे अविव्याके उच्छेद करने के लिए “यथा पयः पयोऽन्तरं जरयति स्वयं च जीर्यति, विषं विपान्तरं समयति स्वयं च क्षाम्यति, यथा वा कतकरजो रजोऽन्तराविले पाषसि प्रक्षितं रजोन्तराणि भिन्दत् स्वयमपि भिद्यमानमनाविलं पाथ करोति...” इत्यादि दृष्टान्त दिए हैं । प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ६६) में इन्हीं दृष्टान्तों को पूर्वपक्ष में उपस्थित किया है । न्यायकुमुदचन्द्रके विधिवादके पूर्वपक्षमें विधिविवेकके साथही साथ उसकी वाचस्पतिकृत न्यायकणिका टीकाका भी पर्याप्त सादृश्य पाया जाता है । वाचस्पतिके उक्त ई० ८४१ समयका साधक एक प्रमाण यह भी है कि इन्होंने तात्पर्यटीका (पृ० २१७) में शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रह (श्लो० २००) से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—“नर्तकीभ्रूलताक्षेपो न श्लोकः पारमार्थिकः । अनेकाशुसमूहलात् एकलं तस्य कल्पितम् ॥” शान्तरक्षितका समय ई० ७६२ है ।

शाबर ऋषि और प्रभाचन्द्र-जैमिनिसूत्र पर शाबरभाष्य लिखने वाले महर्षि शाबरका समय ईसाकी तीसरी सदी तक समझा जाता है । शाबरभाष्यके ऊपर ही कुमारिल और प्रभाकर ने व्याख्याएँ लिखी हैं । आ० प्रभाचन्द्रने शब्द-मिललवाद, वेदापौरुषेयलवाद, आदिमें कुमारिल के श्लोकवार्तिकके साथ ही साथ शाबरभाष्य की दलीलों को भी पूर्वपक्षमें रखा है । शाबरभाष्य से ही “गौरिल्लजः शब्दः । गकारौकारविसर्जनीया इति भगवानुपवर्ष” यह उपवर्ष ऋषि का मत प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४६४) में उद्धृत किया गया है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २७५) में शब्दको बायवीम माननेवाले शिक्षास्वर भीमांसकोंका मत भी शाबरभाष्यसे ही उद्धृत हुआ है । इसके सिवाय न्यायकुमुदचन्द्र में शाबरभाष्यके कई वाक्य प्रमाणरूपमें और पूर्वपक्ष में उद्धृत किए गए हैं ।

कुमारिल और प्रभाचन्द्र-अट्ट कुमारिलने शाबरभाष्य पर भीमांशश्लोक-वार्तिक, तन्त्रवार्तिक और टुप्टीका नामकी व्याख्या लिखी है । कुमारिलने अपने तन्त्रवार्तिक (पृ० २५१-२५३) में वाक्यपदीयके निम्नलिखित श्लोककी समालोचना की है—

“अस्त्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याप्यलक्षणम् ।

अपूर्वदेवतास्वर्गैः समसाहर्षवादिषु ॥” [वाक्यप० २।१२१]

इसी तरह तन्त्रवार्तिक (पृ० २०९-१०) में वाक्यपदीय (१।७) के

“तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादते” अंश उद्धृत होकर खंडित हुआ है । भीमांसांश्लोकवार्तिक (वाक्याधिकरण श्लो० ५१) में वाक्यपरीय (१११-२) में निर्दिष्ट दशविध या अष्टविध वाक्यलक्षणोंका समालोचन किया गया है । भर्तृहरिके स्तोत्रवादकी आलोचना भी कुमारिलने भीमांसांश्लोकवार्तिकके स्तोत्रवादमें बड़ी प्रखरतासे की है । चीनी यात्री इत्सिंगने अपने यात्राविवरणमें भर्तृहरिका मृत्युसमय ई० ६५० बताया है अतः भर्तृहरिके समालोचक कुमारिलका समय ईस्वी ७ वीं शताब्दी का उत्तर भाग मानना समुचित है । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमदचन्द्रमें सर्वज्ञवाद, शब्दनित्यलवाद, वेदापीठपेयलवाद, आगमादिप्रमाणोंका विचार, प्रामाण्यवाद आदि प्रकरणोंमें कुमारिलके श्लोकवार्तिकसे पचासों कारिकाएँ उद्धृत की हैं । शब्दनित्यलवाद आदि प्रकरणोंमें कुमारिलकी युक्तियोंका तिलतिलवार सप्रमाण उतार दिया गया है । कुमारिलने आत्माको व्यावृत्त्यनुगमात्मक या नित्यानित्यात्मक माना है । प्रभाचन्द्रने आत्माकी नित्यानित्यात्मकताका समर्थन करते समय कुमारिलकी “तस्मादुभयद्वानेन व्यावृत्त्यनुगमात्मकः” आदि कारिकाएँ अपने पक्षके समर्थनमें भी उद्धृत की हैं । इसी तरह सृष्टिकर्तृलखंडन, ब्रह्मवादखंडन, आदिमें प्रभाचन्द्र कुमारिलके साथ साथ चलते हैं । सारांश यह है कि प्रभाचन्द्रके सामने कुमारिलका भीमांसांश्लोकवार्तिक एक विशिष्ट ग्रन्थके रूप में रहा है । इसीलिए इसकी आलोचना भी जमकर की गई है । श्लोकवार्तिक की मट्ट उन्मेषकृत तात्पर्यटीका अनी ही प्रकाशित हुई है । इस टीकाका आलोचन भी प्रभाचन्द्रने चुप किया है । सर्वज्ञवादमें कुछ कारिकाएँ ऐसी भी उद्धृत हैं जो कुमारिलके मौजूदा श्लोकवार्तिकमें नहीं पाई जाती । संभव है वे कारिकाएँ कुमारिलकी बृहद्गीका या अन्य किसी ग्रन्थ की हों ।

मंडनमिश्र और प्रभाचन्द्र-आ० मंडनमिश्रके भीमांसांश्लोकमणी, विधिविवेक, भावनाविवेक, नैष्कर्म्यसिद्धि, ब्रह्मसिद्धि, स्तोत्रसिद्धि आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । इनका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका पूर्वभाग है । आचार्य विद्यानन्दने (ई० ९ वीं शताब्दी का पूर्वभाग) अपनी अष्टसहस्रीमें मण्डनमिश्र का नाम लिया है । अतः मण्डनमिश्र अपने ग्रन्थोंमें सप्तमशतकवर्ती कुमारिलका नामोल्लेख करते हैं । अतः इनका समय ई० की सप्तमशताब्दीका अन्तिमभाग तथा ८ वीं सदी का पूर्वार्ध सुनिश्चित होता है । आ० प्रभाचन्द्र ने न्यायकुसुमदचन्द्र (पृ० १४९) में मंडनमिश्रकी ब्रह्मसिद्धिका “आहुर्विघातु प्रत्यक्षं” श्लोक उद्धृत किया है । न्यायकुसुमदचन्द्र (पृ० ५७२) में विधिवादके पूर्वपक्षमें मंडनमिश्रके विधिविवेकमें वर्णित अनेक विधियादियोंका निर्देश किया गया है । उनके मतनिरूपण तथा समालोचन में विधिविवेक ही आधारभूत माध्यम होता है ।

प्रभाकर और प्रभाचन्द्र-शाबरभाष्यकी बृहती टीकाके रचयिता प्रभाकर करीब करीब कुमारिलके समकालीन थे । मङ्ग कुमारिलका शिष्य परिवार भाट्टके नामसे ख्यात हुआ तथा प्रभाकर के शिष्य प्रभाकर या शुद्धमतानुयायी कहलाए । प्रभाकर विपर्ययज्ञानको स्मृतिप्रमोष या विवेकाख्याति रूप मानते हैं । ये अभावको स्वतन्त्र प्रमाण नहीं मानते । वेदवाक्योंका अर्थ नियोगपरक करते हैं । प्रभाचन्द्रने अपने ग्रन्थोंमें प्रभाकरके स्मृतिप्रमोष, नियोगवाद आदि सभी सिद्धान्तों का विस्तृत खंडन किया है ।

शालिकनाथ और प्रभाचन्द्र-प्रभाकरके शिष्योंमें शालिकनाथका अपना विशिष्ट स्थान है । इनका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दी है । इन्होंने बृहतीके ऊपर ऋजुविमला नाम की पञ्जिका लिखी है । प्रभाकरगुरुके सिद्धान्तोंका विवेचन करनेके लिए इन्होंने प्रकरणपञ्जिका नामका स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखा है । ये अन्वकारको स्वतन्त्र पदार्थ नहीं मानते किन्तु ज्ञानानुत्पत्तिको ही अन्वकार कहते हैं । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० २३८) तथा न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ११६) में शालिकनाथके इस मतकी विस्तृत समीक्षा की है ।

शाङ्कराचार्य और प्रभाचन्द्र-आद्य शाङ्कराचार्यके ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, गीताभाष्य, उपनिषद्भाष्य आदि अनेकों ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । इनका समय ई० ७८८ से ८२० तक माना जाता है । शाङ्करभाष्यमें धर्मकीर्तिके 'सहोपलम्भ-नियमात्' हेतुका खण्डन होनेसे यह समय समर्थित होता है । आ० प्रभाचन्द्रने शाङ्करके अविर्भवनीयार्थव्याप्तिवादकी समालोचना प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुमचन्द्रमें की है । न्यायकुसुमचन्द्रके परमब्रह्मवादके पूर्वपक्षमें शाङ्करभाष्यके आधार से ही वैषम्य नैर्गुण्य आदि दोषोंका परिहार किया गया है ।

सुरेश्वर और प्रभाचन्द्र-शाङ्कराचार्यके शिष्योंमें सुरेश्वराचार्यका नाम उल्लेखनीय है । इनका नाम विश्वरूप भी था । इन्होंने तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य-वार्तिक, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक, मानसोद्भास, पञ्चीकरणवार्तिक, काशीसू-तिमोक्षविचार, नैष्कर्म्यसिद्धि आदि ग्रन्थ बनाए हैं । आ० विद्यानन्द (ईसाकी ९ वीं शताब्दी) ने अष्टसहस्री (पृ० १६२) में बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवा-र्तिकसे "ब्रह्मविद्यावदिष्टं चैकतु" इत्यादि कारिकाएँ उद्धृत की हैं । अतः इनका समय भी ईसाकी ९ वीं शताब्दीका पूर्वभाग होना चाहिए । ये शाङ्कराचार्य (ई० ७८८ से ८२०) के साक्षात् शिष्य थे । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४४-४५) तथा न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० १४१) में ब्रह्मवादके पूर्वपक्षमें इनके बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक (१।५।४३-४४) से "यथा विशुद्धमाकाशं" आदि दो कारिकाएँ उद्धृत की हैं ।

१ प्रष्टव्य-अच्युतपत्र वर्ष ६ अङ्क ४ में म० ज० गोपीनाथ कविराव का लेख ।

भामह और प्रभाचन्द्र-भामहका काव्यालङ्कार ग्रन्थ उपलब्ध है। शान्तरक्षितने तत्त्वसंग्रह (पृ० २९१) में भामहके काव्यालङ्कारकी अपोह-खण्डन वाली “यदि गौरिलयं अन्धः” आदि तीन कारिकाओंकी समालोचना की है। ये कारिकाएँ काव्यालङ्कारके ६ वे परिच्छेद (श्लो० १७-१९) में पाई जाती हैं। तत्त्वसंग्रहकारका समय ई० ७०५-७६२ तक सुनिर्णीत है। चौदसम्मत प्रत्यक्षके लक्षणका खण्डन करते समय भामहने (काव्यालङ्कार ५।६) दिङ्नागके मात्र ‘कल्पनापोह’ पदवाले लक्षणका खण्डन किया है, धर्मकीर्तिके ‘कल्पनापोह और अग्रान्त’ उभयविशेषणवाले लक्षणका नहीं। इससे ज्ञात होता है कि भामह दिङ्नागके उत्तरवर्ती तथा धर्मकीर्तिके पूर्ववर्ती हैं। अन्ततः इनका समय ईसाकी ७ वीं शताब्दी का पूर्वभाग है। आ० प्रभाचन्द्रने अपोहवादका खण्डन करते समय भामहकी अपोहखण्डनविषयक “यदि गौरिलयं” आदि तीनों कारिकाएँ प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४३२) में उद्धृत की हैं। यह भी संभव है कि ये कारिकाएँ सीधे भामहके ग्रन्थसे उद्धृत न होकर तत्त्वसंग्रहके द्वारा उद्धृत हुई हों।

बाण और प्रभाचन्द्र-प्रसिद्ध गणकाव्य कादम्बरीके रचयिता बाणभट्ट, सम्राट् हर्षवर्धन (राज्य ६०६ से ६४८ ई०) की सभाके कविरत्न थे। इन्होंने हर्षचरितकी भी रचना की थी। बाण, कादम्बरी और हर्षचरित दोनों ही ग्रन्थोंको पूर्ण नहीं कर सके। इनकी कादम्बरीका आद्यश्लोक “रजोऽयं जन्मनि सत्त्ववृत्तये” प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० २९८) में उद्धृत है। आ० प्रभाचन्द्रने वेदापीरूपेयलप्रकरणमें (प्रमेयक० पृ० ३९३) कादम्बरीके कर्तृत्वके विषयमें सन्देहात्मक उल्लेख किया है—“कादम्बर्यकीना कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेः”—अर्थात् कादम्बरी आदिके कर्ताके विषयमें विवाद है। इस उल्लेखसे ज्ञात होता है कि प्रभाचन्द्रके समयमें कादम्बरी आदि ग्रन्थोंके कर्ता विवादप्रसू थे। हम प्रभाचन्द्रका समय आगे ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दी सिद्ध करेंगे।

माघ और प्रभाचन्द्र-शिष्टपालवध काव्यके रचयिता माघ कविकाल समय ई० ६६०-६७५ के लगभग है। माघकविके पितामह सुप्रसन्न राजा वर्मलातके मन्त्री थे। राजा वर्मलात का उल्लेख ई० ६२५ के एक शिलालेखमें विद्यमान है अतः इनके नाती माघ कविकाल समय ई० ६७५ तक मानना समुचित है। प्रभाचन्द्रने माघकाव्य (१।२३) का “युगान्तकालप्रसिद्धतात्मनो...” श्लोक प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ६८८) में उद्धृत किया है। इससे ज्ञात होता है कि प्रभाचन्द्रने माघकाव्यको देखा था।

(अवैदिकदर्शन)

अश्वघोष और प्रभाचन्द्र-अश्वघोषका समय ईसाका द्वितीय शतक माना जाता है। इनके बुद्धचरित और सौन्दरनन्द दो महाकाव्य प्रसिद्ध हैं।

सौन्दरनन्दने अश्वघोषने प्रसङ्गतः बौद्धदर्शनके कुछ पदार्थोंका भी सारगर्भ विवेचन किया है। आ० प्रभाचन्द्रने शून्यनिर्वाणवादका खंडन करते समय पूर्वपक्षमें (प्रमेयक० पृ० ६८७) सौन्दरनन्दकाव्यसे निम्नलिखित दो श्लोक उद्धृत किए हैं—

“धीपी यथा निर्धृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काचिद् विदिशं न काचित् केहक्षयाव केवलमेति शान्तिम् ॥
जीवस्तथा निर्धृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काचिद्विदिशं न काचित्केहक्षयाव केवलमेति शान्तिम् ॥”

[सौन्दरनन्द १६।२८, २९]

नागार्जुन और प्रभाचन्द्र—नागार्जुन की साध्यमिककारिका और विग्रहव्यावर्तिनी दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ये इसाकी तीसरी शताब्दीके विद्वाज हैं। इन्हें शून्यवादके प्रस्थापक होनेका श्रेय प्राप्त है। साध्यमिककारिकामें इन्होंने विस्तृत परीक्षाएँ लिखकर शून्यवादको शार्वाणिक रूप दिया है। विग्रहव्यावर्तिनी भी इसी तरह शून्यवादका समर्थन करनेवाला छोटा प्रकरण है। प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ११२) में साध्यमिकके शून्यवादका खंडन करते समय पूर्वपक्षमें प्रमाणवार्तिककी कारिकाओंके साथ ही साथ साध्यमिककारिकासे भी ‘न सतो नापि परतः’ और ‘यथा मया यथा स्वप्ने ...’ ये दो कारिकाएँ उद्धृत की हैं।

वसुबन्धु और प्रभाचन्द्र—वसुबन्धुका अभिधर्मकोश ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनका समय ई० ४०० के करीब माना जाता है। अभिधर्मकोश बहुत अंशोर्ध्व बौद्धदर्शनके सूत्रग्रन्थका कार्य करता है। प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ३९०) में वैभाषिक सम्मत द्वादशाष्ट्र प्रतीत्यसमुत्पादका खंडन करते समय प्रतीत्यसमुत्पादका पूर्वपक्ष वसुबन्धुके अभिधर्मकोशके आधारसे ही लिखा है। इसमें यथावसर अभिधर्मकोशसे २।३ कारिकाएँ भी उद्धृत की हैं। देखो न्यायकुसुमचन्द्र पृ० ३९५।

विहङ्गनाग और प्रभाचन्द्र—आ० विभागका स्थान बौद्धदर्शनके विभिन्न संस्थापकोंमें है। इनके न्यायप्रवेश, और प्रमाणसमुच्चय प्रकरण सुप्रसिद्ध हैं। इनका समय ई० ४२५ के आसपास माना जाता है। प्रमाणसमुच्चयमें प्रत्यक्षका कल्पनापोह लक्षण किया है। इसमें अभिधर्मपद धर्मकीतिने जोड़ा है। इन्हींके प्रमाणसमुच्चय पर धर्मकीतिने प्रमाणवार्तिक रचा है। मिश्र राहुलजीने विभाग के आलम्बनपरीक्षा, त्रिकाल्पपरीक्षा, और हेतुचक्रमह आदि ग्रन्थोंका भी उल्लेख किया है। आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ८०) में ‘स्तुतव्य भद्रैतादिप्रकरणानामादौ विभागादिभिः सूत्रैः’ लिखकर प्रमाणसमुच्चयका

‘प्रमाणभूताय’ इत्यादि मंगलश्लोकांक उद्धृत किया है। इसी तरह अणोद्वादके पूर्वपक्ष (प्रमेयक० पृ० ४३६) में दिग्गगे नामसे निम्नलिखित गयाश भी उद्धृत किया है—“दिग्गगेन विशेषणविशेष्यभावसमर्थनार्थम् ‘नीलोत्पलादिशब्दा अर्थान्तरनिवृत्तिविशिष्टानर्थानाहुः’ इत्युक्तम्।”

धर्मकीर्ति और प्रभाचन्द्र-बौद्धदर्शनके युगप्रधान आचार्य धर्मकीर्ति इसाकी ७ वीं शताब्दीमें नालन्दाके बौद्धविद्यापीठके आचार्य थे। इनकी लेखनीने भारतीय दर्शनशास्त्रोंमें एक युगान्तर उपस्थित कर दिया था। धर्मकीर्तिने वैदिकसंस्कृति पर दृढ़ प्रहार किए हैं। यद्यपि इनका उद्धार करनेके लिए व्योमविच, जयन्त, वाचस्पतिमिश्र, उदयन आदि आचार्योंने कुछ उठा नहीं रखा। पर बौद्धोंके खंडनमें जितनी कुशलता तथा सतर्कतासे जैवाचार्योंने लक्ष्य दिया है उतना अन्यने नहीं। यही कारण है कि अकलङ्क, हरिमित्र, अनन्तवीर्य, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, अमरदेव, वादिदेवसूत्रि आदिके जैनन्यायशास्त्रके ग्रन्थोंका बहुभाग बौद्धोंके खंडनने ही रोक रखा है। धर्मकीर्तिके समयके विषयमें विशेष ऊहापोह “अकलङ्कग्रन्थत्रय” की प्रस्तावना (पृ० १८) में कर आया है। इनके प्रमाणवार्तिक, हेतुविन्दु, न्यायविन्दु, सन्तानान्तरसिद्धि, वादन्याय, सम्बन्धपरीक्षा आदि ग्रन्थोंका प्रभाचन्द्रको गहरा अभ्यास था। इन ग्रन्थों की अनेकों कारिकाएँ, खासकर प्रमाणवार्तिक की कारिकाएँ प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंमें उद्धृत हैं। साम्प्रत होता है कि सम्बन्धपरीक्षाकी अब से इति तक २३ कारिकाएँ प्रमेयकमलमार्तण्डके सम्बन्धवादके पूर्वपक्ष में ज्यों की त्यों रखी गई हैं, और खण्डित हुई हैं। विद्यानन्दके तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में इसकी कुछ कारिकाएँ ही उद्धृत हैं। वादन्यायका “हसति हसति स्वामिनि” आदि श्लोक प्रमेयकमलमार्तण्डमें उद्धृत है। संवेदनाद्वैतके पूर्वपक्षमें धर्मकीर्तिके ‘सहोपलम्भनियमात्’ आदि हेतुओंका निर्देश कर बहुविध विकल्पजालोंसे खण्डन किया गया है। वादन्यायकी “असाधनाप्रवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः” कारिकाका और इसके विविध व्याख्यानोका सङ्क्षिप्त उच्चार प्रमेयकमलमार्तण्डमें दिया गया है। इन सब ग्रन्थोंके अवतरण और उनसे की गई तुलना न्यायकुसुमद्वन्द्वके टिप्पणोंमें देखनी चाहिए।

प्रज्ञाकरगुप्त और प्रभाचन्द्र-धर्मकीर्तिके व्याख्याकारोंमें प्रज्ञाकरगुप्तका अपना खास स्थान है। उन्होंने प्रमाणवार्तिक पर प्रमाणवार्तिकालङ्कार नामकी विस्तृत व्याख्या लिखी है इनका समय भी ईसाकी ७ वीं शताब्दीका अन्तिम भाग और आठवींका प्रारम्भिक भाग है। इनकी प्रमाणवार्तिकालङ्कार टीका वार्तिकालङ्कार और अलङ्कारके नामसे भी प्रख्यात रही है। इन्हींके वार्तिका-लङ्कारसे भावना विधि नियोगकी विस्तृत चर्चा विद्यानन्दके ग्रन्थों द्वारा प्रभाचन्द्रके न्यायकुसुमद्वन्द्वमें अवतीर्ण हुई है। इतना विशेष है कि-विद्यानन्द और प्रभाचन्द्रने प्रज्ञाकरगुप्तकृत भावना विधि आदिके खंडनका भी स्थान स्थान पर विशेष समालोचन किया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ३८०) में प्रज्ञाकरके

भाषिकारणवाद और भूतकारणवादका उल्लेख प्रज्ञाकरका नाम देकर किया गया है। प्रज्ञाकरगुप्तने अपने इस मतका प्रतिपादन प्रमाणवार्तिकालङ्कार में किया है^१। मिश्र राहुलसांकृत्यायनके पास इसकी हस्तलिखित कापी है। प्रभाचन्द्रने धर्मकीर्तिके प्रमाणवार्तिककी तरह उनके शिष्य प्रज्ञाकरके वार्तिकालङ्कारका भी आलोचन किया है।

प्रभाचन्द्रने जो ब्राह्मणलजातिका मण्डन लिखा है, उसमें शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहके साथ ही साथ प्रज्ञाकरगुप्त के वार्तिकालङ्कारका भी प्रभाव मालूम होता है। ये बौद्धाचार्य अपनी संस्कृतिके अनुसार सदैव जातिवाद पर खड़े रहते थे। धर्मकीर्तिने प्रमाणवार्तिकके मन्त्रलिखित श्लोकमें जातिवादके मदको जलताका विह बताना है—

“वेदप्रामाण्यं कस्यचित्कर्तृवादः ज्ञाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः ।

सन्तापारम्भः पापहानाय चेति व्यस्यप्रज्ञानां पथं लिङ्गानि जायते ॥”

उत्तराख्यनसूत्रमे ‘कम्मुणा बग्गो होइ कम्मुणा होइ खतिओ’ लिखकर कर्मणा जातिका स्पष्ट समर्थन किया गया है।

दि० जैनौचार्योंने धराप्रचरित्रके कर्ता जटासिंहनन्दिने धराप्रचरितके २५ में अध्यायमें ब्राह्मणलजातिका निरास किया है। और जी रविपेण, अमिगतगति आदिने जातिवादके खिलाफ योद्धा बहुत लिखा है पर तर्कत्रयोंमें सर्वप्रथम हम प्रभाचन्द्रके ही ग्रन्थोंमें जन्मना जातिका सयुक्तिक खण्डन यथेष्ट विस्तारके साथ पाते हैं।

कर्णकगोमि और प्रभाचन्द्र-प्रमाणवार्तिकके तृतीयपरिच्छेद पर धर्मकीर्तिकी खोपड़वृत्ति भी उपलब्ध है। इस वृत्तिपर कर्णकगोमिकी विस्तृत टीका है। इस टीकामें प्रज्ञाकर गुप्तके प्रमाणवार्तिकालङ्कारका ‘अलङ्कार’ शब्दसे उल्लेख है। इसमें मण्डनमिश्रकी ब्रह्मसिद्धिका ‘आहुर्विधातु’ श्लोक उद्धृत है। अतः इनका समय ई० ८ वीं सदीख पूर्वार्ध संभव है। न्यायकुसुमद्वन्द्वके सन्दनिलयलवाद, वेदापौरुषेयलवाद, स्फोटवाद आदि प्रकरणों पर कर्णकगोमिकी खण्डितटीका अपना पूरा असर रखती है। इसके अवतरण इन प्रकरणोंके टिप्पणोंमें देखना चाहिये।

शान्तरक्षित, कमलशील और प्रभाचन्द्र-तत्त्वसंग्रहकार शान्तरक्षित तथा तत्त्वसंग्रहपत्रिकाके रचयिता कमलशील नाळन्दाविश्वविद्यालयके आचार्य थे। शान्तरक्षितका समय ई० ७०५ से ७६२ तथा कमलशीलका समय ई० ७१३ से ७६३ है। शान्तरक्षितकी अपेक्षा कमलशीलकी प्रावाहिक प्रसाद-

१ इसके अवतरण अलङ्कार ग्रन्थकी प्रस्तावना पृ० २७ में देखना चाहिये।

२ इन आचार्योंके ग्रन्थोंके अवतरणके लिए देखो न्यायकुसुमद्वन्द्व पृ० ७७२ टि० १।

३ देखो तत्त्वसंग्रहकी प्रस्तावना पृ० Xovi

शुभमयी भाषाने प्रभाचन्द्रको अत्यधिक आकृष्ट किया है। वहाँ तो प्रभाचन्द्रके प्रायः प्रत्येक प्रकरणपर कमलशीलकी पत्रिका अपना उन्मुख प्रभाव रखती है। पर इसके लिए षट्पदार्थपरीक्षा, शब्दब्रह्मपरीक्षा, ईश्वरपरीक्षा, प्रकृतिपरीक्षा, शब्दनित्यत्वपरीक्षा आदि परीक्षाएँ खास तौरसे दृष्टव्य हैं। तत्त्वसंग्रहकी सर्वज्ञ-परीक्षामें कुमारिलकी पचासों कारिकाएँ उद्धृत कर पूर्वपक्ष किया गया है। इनमेंसे अनेकों कारिकाएँ ऐसी हैं जो कुमारिलके श्लोकवार्तिकमें नहीं पाई जातीं। कुछ ऐसी ही कारिकाएँ प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय-कुसुमचन्द्रमें भी उद्धृत हैं। संभव है कि ये कारिकाएँ कुमारिलके ग्रन्थसे न लेकर तत्त्वसंग्रहसे ही ली गई हों। तात्पर्य यह कि प्रभाचन्द्रके आधारभूत ग्रन्थोंमें तत्त्वसंग्रह और उसकी पत्रिका अग्रस्थान पानेके योग्य है।

अर्चट और प्रभाचन्द्र-धर्मकीर्तिके हेतुविन्दु पर अर्चटकृत टीका उपलब्ध है। इसका उल्लेख अनन्तवीर्यने अपनी सिद्धिविनिश्चयटीकामें अनेकों स्थलोंमें किया है। 'हेतुलक्षणसिद्धि' में तो धर्मकीर्तिके हेतुविन्दुके साथही साथ अर्चटकृत विवरणका भी उल्लेख है। अर्चटका समय भी करीब ईसाकी ९ वीं शताब्दी होना चाहिये। अर्चटने अपने हेतुविन्दुविवरणमें सहकारिल दो प्रकारका बताया है—१ एकार्यकारिल, २ परस्परतत्त्वसाधायकल। आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० १०) में कारकसाकल्यवादकी समीक्षा करते समय सहकारिलके वही दो विकल्प किये हैं।

धर्मोत्तर और प्रभाचन्द्र-धर्मकीर्तिके न्यायविन्दु पर आ० धर्मोत्तरने टीका रची है। मिश्र राहुलजी द्वारा लिखित टिबेटियन गुरुपरम्पराके अनुसार इनका समय ई० ७२५ के आसपास है। आ० प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० २) तथा न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० २०) में सन्बन्ध, अभिधेय, शब्दमातृछानिष्ठप्रयोजनरूप अनुबन्धत्रयकी चर्चामें, जो उन्मत्तवाक्य, काकदन्त-परीक्षा, मातृविबाहोपदेश तथा सर्वज्वरहरतक्षकचक्षुहारमालह्वारोपदेशके उदाहरण दिए हैं वे धर्मोत्तरकी न्यायविन्दुटीका (पृ० २) के प्रभावसे अछूते नहीं हैं। इनकी शब्दरचना करीब करीब एक जैसी है। इसी तरह न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० १६) में प्रत्यक्ष शब्दकी व्याख्या करते समय अज्ञातितलको प्रत्यक्ष-शब्दका न्युत्पत्तिनिमित्त बताया है और अज्ञातितलोपलक्षित अर्थसाक्षात्कारिक को प्रवृत्तिनिमित्त। ये प्रकार भी न्यायविन्दुटीका (पृ० ११) से अक्षरशः मिलते हैं।

ज्ञानश्री और प्रभाचन्द्र-ज्ञानश्रीने क्षणमंगाध्याय आदि अनेक प्रकरण लिखे हैं। उदयनाचार्य ने अपने आलतत्त्वविवेकमें ज्ञानश्रीके क्षणमंगाध्यायका नामोल्लेखपूर्वक आनुपूर्वी से खंडन किया है। उदयनाचार्यने अपनी लक्षणावली तर्काम्बरां (१०६) शक, ई० १८४ में समाप्त की थी। अतः ज्ञानश्रीका

समय ई० १८४ से पहिले तो होना ही चाहिए। मिश्र राहुल सांकृत्यायनजीके जोट्स देखनेसे ज्ञात हुआ है कि-ज्ञानश्रीके अणमंगाध्याय या अपोहसिद्धि(१)के आरम्भमें यह कारिका है-

“अपोहः शब्दलिङ्गाभ्यां न वस्तु विधिनोच्यते।”

विद्यानन्दकी अष्टसहस्रीमें भी यह कारिका उद्धृत है। आ० प्रभाचन्द्रने भी अपोहवाद के पूर्वपक्षमें “अपोहः शब्दलिङ्गाभ्यां” कारिका उद्धृत की है। वाचस्पतिमिश्र (ई० ८४१) के ग्रन्थों में ज्ञानश्रीकी समालोचना नहीं है पर उदयनाचार्य (ई० १८४) के ग्रन्थोंमें है, इसलिए भी ज्ञानश्रीका समय ईसाकी १० वीं शताब्दीके बाद तो नहीं जा सकता।

जयसिंहराशिभट्ट और प्रभाचन्द्र-मद श्री जयसिंहराशिका तत्त्वोपप्लवसिंह नामक ग्रन्थ गायकपाड सीरीजमें प्रकाशित हुआ है। इनका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दी है। तत्त्वोपप्लवग्रन्थ में प्रमाण प्रमेय आदि सभी तत्त्वोंका बहुविध विकल्पजालसे खंडन किया गया है। आ० विद्यानन्दके ग्रन्थोंमें सर्वप्रथम तत्त्वोपप्लववादीका पूर्वपक्ष देखा जाता है। प्रभाचन्द्रने संशयज्ञानका पूर्वपक्ष तथा बाधकज्ञानका पूर्वपक्ष तत्त्वोपप्लव ग्रन्थसे ही किया है और उसका खतने ही विकल्पों द्वारा खंडन किया है। प्रमेयकमलमार्गण्ड (पृ० ६४८) में ‘तत्त्वोपप्लववादि’ का दृष्टान्त भी दिया गया है। न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ३३९) में भी तत्त्वोपप्लववादिका दृष्टान्त पाया जाता है। तात्पर्य यह कि परमतके खंडनमें कतिपय तत्त्वोपप्लववादिकृत विकल्पोंका उपयोग कर केने पर भी प्रभाचन्द्रने स्थान स्थान पर तत्त्वोपप्लववादिके विकल्पोंकी भी समीक्षा की है।

कुन्दकुन्द और प्रभाचन्द्र-दिगम्बर आचार्यों में आ० कुन्दकुन्दका विशिष्ट स्थान है। इनके सारत्रय-अवचनसार, पञ्चास्तिक्यसमयसार और समयसार-के सिवाय बारसभणवेक्खा अष्टपाहुड आदि ग्रन्थ उपलब्ध हैं। प्रो० ए० एन० उपाध्येने अवचनसारकी भूमिकामें इनका समय ईसाकी प्रथमशताब्दी सिद्ध किया है। कुन्दकुन्दाचार्यने बोधपाहुड (पा० ३७) में केवलीको आधार और मिहारसे रहित वताकर कल्लाहारका निषेध किया है। सूत्रप्राभृत (पा० २३-३६) में लीको प्रव्रज्याका निषेध करके लीमुक्तिका निरास किया है। कुन्दकुन्दके इस मूलमार्गका दार्शनिकरूप हम प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंमें केवलिकवलाहारवाद तथा लीमुक्तिवादके रूपमें पाते हैं। यद्यपि शाकटायनने अपने केवलिभुक्ति और लीमुक्ति प्रकरणोंमें दिगम्बरोंकी मान्यताका विस्तृत खंडन किया है, जिससे ज्ञात होता है कि शाकटायनके सामने दिगम्बराचार्योंका उक्त सिद्धान्तद्वयका समर्थक विकसित साहित्य रहा है। पर आज हमारे सामने प्रभाचन्द्रके ग्रन्थ ही इन दोनों मान्यताओंके समर्थकरूपमें समुपस्थित हैं। आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुदचन्द्रमें अवचनसारकी ‘जिचडु इ भरडु य’ गाथा, भावपाहुडकी ‘एगो मे संस्तदो’

गाथा, तथा प्रा० सिद्धमक्तिकी 'पुवेदं वेदन्ता' गाथा उद्धृत की है। प्राकृत दशमक्तियों भी कुन्दकुन्दाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं।

समन्तभद्र और प्रभाचन्द्र—आद्यस्तुतिकार स्वामि समन्तभद्राचार्यके बृहत्स्रयम्भूस्तोत्र, आत्ममीमांसा, युत्तयनुशासन आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दी माना जाता है। किन्हीं विद्वानोंका विचार है कि इनका समय विक्रमकी पाचवीं या छठवीं शताब्दी होना चाहिए। प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुदचन्द्रमें बृहत्स्रयम्भूस्तोत्रसे “अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः” “मातुर्पी प्रकृतिमभ्यतीतवान्” “तदेव च स्यान्न तदेव” इत्यादि श्लोक उद्धृत किए हैं।

आ० विद्यानन्दने आत्मपरीक्षाका उपसंहार करते हुए यह श्लोक लिखा है कि—

“श्रीमत्तत्त्वार्थशास्त्रादनुत्तमसलिलनिधेरिद्धरत्नोद्भवस्य

प्रोत्थानारम्भकाळे सकलमलभिदे क्षालकारैः कृतं यत् ।

स्तोत्रं तीर्थोपमानं प्रथितप्रपुण्यं स्वामिमीमांसितं तत्

विद्यानन्दैः स्वस्वत्वात् कथमपि कथितं सत्यवाक्यार्थसिद्धौ ॥ १२३ ॥”

अर्थात् तत्त्वार्थशास्त्ररूपी अद्भुत समुद्रसे भीतरलोकें उद्भवके प्रोत्थानारम्भ-काल—प्रारम्भिक समयमें, क्षालकारने, पापोंका नाश करनेके लिए, मोक्षके पथको बतानेवाला, तीर्थस्वरूप जो स्तवन किया था और जिस स्तवनकी स्वामीने मीमांसा की है, उसीका विद्यानन्दने अपनी स्वल्पशक्तिके अनुसार सत्यवाक्य और सत्यार्थकी सिद्धिके लिए विवेचन किया है। अथवा, जो भीतरलों के उद्भव-उत्पत्ति का स्थान है उस अद्भुत सलिलनिधि के समान तत्त्वार्थशास्त्र के प्रोत्थानारम्भकाल—उत्पत्तिक निमित्त बताते समय या प्रोत्थान-उत्पत्तिक भूमिका बांधने के प्रारम्भिक समय में क्षाल्यकरने जो मंगलस्तोत्र रचा और जिस स्तोत्र में वर्णित आत्मकी स्वामीने मीमांसा की उसीकी मैं (विद्यानन्द) परीक्षा कर रहा हूँ।

वे इस श्लोकमें स्पष्ट सूचित करते हैं कि स्वामी समन्तभद्रने ‘मोक्षमार्गस्य नेतारम्’ मंगलश्लोकमें वर्णित जिस आत्मकी मीमांसा की है उसी आत्मकी मैंने परीक्षा की है। यह मंगलस्तोत्र तत्त्वार्थशास्त्ररूपी समुद्रसे भीतर रत्नोंके उद्भवके प्रारम्भिक समयमें या तत्त्वार्थशास्त्र की उत्पत्तिक निमित्त बताते समय क्षाल्यकरने बनाया था। यह तत्त्वार्थशास्त्र यदि तत्त्वार्थसूत्र है तो उसका मथन करके रत्नोंके निकालनेवाले या उसकी उत्पत्तिक बांधनेवाले—उसकी उत्पत्ति का निमित्त बतानेवाले आचार्य पूज्यपाद हैं। यह ‘मोक्षमार्गस्य नेतारं’ श्लोक स्वयं सूत्रकारका तो नहीं गारुड होता; क्योंकि पूज्यपाद, अष्टाकलहृदय और विद्यानन्दने सर्ववार्थसिद्धि, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकमें इसका व्याख्यान नहीं किया है। यदि विद्यानन्द इसे सूत्रकारकृत ही मानते होते तो वे अवश्य

ही श्लोकवार्तिकमें उसका व्याख्यान करते। परन्तु यही विद्यानन्द आत्मपरीक्षा (पृ० ३) के प्रारम्भमें इसी श्लोकको सूत्रकारकृत भी लिखते हैं। यथा—

“किं पुनस्तत्परमेष्ठिनो गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ सूत्रकाराः प्राहु-
रिति निगद्यते—मोक्षमार्गस्य नेतारं...” इस पंक्तिमें यही श्लोक सूत्रका-
रकृत कहा गया है। किन्तु विद्यानन्दकी बौलीका ध्यानसे समीक्षण करने पर,
यह स्पष्टरूपसे विदित हो जाता है कि वे अपने ग्रन्थोंमें किसी भी पूर्वार्थको
सूत्रकार और किसी भी पूर्वग्रन्थको सूत्र लिखते हैं। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (पृ०
१८४) में वे अकलङ्कदेवका सूत्रकार शब्दसे तथा राजवार्तिकका सूत्र शब्दसे
उल्लेख करते हैं—“तेन इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षमतीतव्यभिचारं साकारग्रहणम्” इत्ये-
तत्सुत्रोपात्तमुक्तं भवति। ततः, प्रलम्बलक्षणं प्राहुः स्पष्टं साकारमज्ञता। इत्यप-
र्यायसामान्यविशेषार्थात्मवेदनम् ॥ ४ ॥ सूत्रकारा इति त्रैयमाकलङ्कावबोधने”
इस अवतरणमें “इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षं” वाक्य राजवार्तिक (पृ० ३८) का है
तथा “प्रलम्बलक्षणं” श्लोक व्यायविनिश्चय (श्लो० ३) का है। अतः मात्र
सूत्रकारके नामसे ‘मोक्षमार्गस्य नेतारं’ श्लोकको उद्धृत करनेके कारण हम ‘विद्या-
नन्दा कृपाव इसे मूल सूत्रकारकृत माननेकी ओर हैं’ यह नहीं समझ सकते।
अन्वयात् वे इसका व्याख्यान श्लोकवार्तिकमें अवश्य करते। अतः इस पंक्तिमें
सूत्रकार शब्दसे भी इन्द्रियोंके उद्भवकर्ता या तत्त्वार्थशास्त्र की भूमिका बोधनेवाले
आचार्यका ही ग्रहण करना चाहिए। आत्मपरीक्षा के

“इति तत्त्वार्थशास्त्रादौ मुनीन्द्रस्तोत्रगोचरा।

अर्णीतात्मपरीक्षेयं कुविवाचनिवृत्तये ॥”

इस अष्टमसुत्र श्लोक में तत्त्वार्थशास्त्रादौ पद ‘प्रोत्पानारम्भकाले’ पद के अर्थमें ही
अयुक्त हुआ है। ३२ अक्षरवाले इस संक्षिप्त श्लोक में इससे अधिक की गुंजाइश
ही नहीं है। ‘मोक्षमार्गस्य नेतारं’ श्लोक वस्तुतः सर्वार्थसिद्धि का ही संगलश्लोक
है। यदि पूज्यपाद स्वयं भी इसे सूत्रकारकृत मानते होते तो उनके द्वारा उसका
व्याख्यान सर्वार्थसिद्धि में अवश्य किया जाता। और जब समन्तमद्भने इसी
श्लोकके ऊपर अपनी आत्ममीमांसा बनाई है, जैसा कि विद्यानन्दका उल्लेख है,
तो समन्तमद्भ कमसे कम पूज्यपादके समकालीन तो सिद्ध होते ही हैं।
पं० मुखलाकजी का यह तर्क कि—“यदि समन्तमद्भ पूज्यपादके आकाङ्क्षी होते
तो वे अपने इस युगप्रधान आचार्य की आत्ममीमांसा जैसी अनूठी कृति का उल्लेख

१ आ० विद्यानन्द अष्टमसुत्री के मूलश्लोक में भी लिखते हैं कि—

“शास्त्रावताररन्तस्तुतिगोचरात्ममीमांसितं कुविरुद्धक्रियते अयादृश ॥”

अर्थात्—शास्त्र तत्त्वार्थशास्त्रके अवतार—अवतरणिका—भूमिका के समय रही गई
स्तुति में वर्णित आत्म की मीमांसा करनेवाले आत्ममीमांसा नामक प्रयत्न का व्याख्यान
मिया जाता है। अर्थात् “शास्त्रावताररन्तस्तुति” पद आत्मपरीक्षा के ‘प्रोत्पानारम्भकाल’
यद का समानार्थक है।

किए बिना नहीं रहते” हृदयको छगता है । यद्यपि ऐसे नञ्कारात्मक प्रमाणों से किसी आचार्यके समयका खतञ्च मोक्षसे साधन बाधन नहीं होता फिर भी विचार की एक स्पष्ट कोटि तो उपस्थित हो ही जाती है । और जब विद्यानन्द के उल्लेखों के प्रकाश में इसका विचार करते हैं तब यह पर्याप्त पुष्ट मालूम होता है । समन्तभद्रकी आत्ममीमांसाके चौथे परिच्छेदमें वर्णित “विस्मकार्या-रम्भाय” आदि कारिकाओंके पूर्वपक्षों की समीक्षा करनेसे ज्ञात होता है कि समन्तभद्रके सामने संभवतः दिग्भागके ग्रन्थ भी रहे हैं । बौद्धदर्शन की इतनी स्पष्ट विचारधाराकी सम्भावना दिग्भागेसे पहिले नहीं की जा सकती ।

हेतुविन्दुके अर्चटकृत विवरणमें समन्तभद्रकी आत्ममीमांसाकी “द्रव्यपर्याय-शोरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः” कारिकाके खंडन करनेवाले ३०-३५ श्लोक उद्धृत किए गए हैं । ये श्लोक दुर्वैकर्मिश्च भी हेतुविन्दुटीकानुटीका के लेखानुसार स्वयं अर्चटने ही बनाए हैं । अर्चटका समय ९ वीं सदी है । कुमारिलके भीमांसा-श्लोकवार्तिकमें समन्तभद्रकी “षट्मौलिसुवर्णार्था” कारिकासे समानता रखनेवाले निम्न श्लोक पाये जाते हैं—

“वर्धमानकमग्रे च कचकः कियते यदा ।

तदा पूर्वार्थिनः श्लोकः प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिनः ॥

हेमार्थिनस्तु माध्यस्थ्यं तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम् ।

न नाशेन विना शोको नोत्पादेन विना दुःखम् ॥

स्थित्या विना न माध्यस्थ्यं तेन सामान्यनिजता ॥”

[सी० श्लो० पृ० ६१९]

कुमारिलका समय इसाकी ७ वीं सदी है । अतः समन्तभद्रकी उत्तरावधि सातवीं सदी मानी जा सकती है । पूर्वार्थिका नियामक प्रमाण दिग्भागका समय होना चाहिए । इस तरह समन्तभद्रका समय इसाकी ५ वीं और सातवीं शताब्दीका मध्यभाग अधिक संभव है । यदि विद्यानन्दके उल्लेखमें ऐतिहासिक दृष्टि की निविष्ट है तो समन्तभद्रकी स्थिति पूज्यपादके बाद या समसमय में होनी चाहिए ।

पूज्यपाद के जैनेन्द्रव्याकरण के अमरवन्दिसम्मत प्राचीनसूत्रपाठ में “चतुष्टयं समन्तभद्रस्य” सूत्र पाया जाता है । इस सूत्र में यदि इन्हीं समन्तभद्र का निर्देश है तो इसका निर्वाह समन्तभद्रको पूज्यपाद का समकालीनवृद्ध मानकर भी किया जा सकता है ।

पूज्यपाद और प्रभाचन्द्र—आ० देववन्दिक अपर नाम पूज्यपाद या । ये विक्रम की पांचवीं और छठी सदीके ख्यात आचार्य थे । आ० प्रभाचन्द्रने पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धि पर तत्त्वार्थवृत्तिपठविवरण नामकी लघुवृत्ति लिखी है । इसके सिवाय इन्होंने जैनेन्द्रव्याकरण पर शब्दात्मोजभास्कर नामका व्यास

१ देखो अनेकान्त वर्ष १ पृ० १९७। प्रेमी जी सूचित करते हैं कि इसकी प्रती संश्लेषके देखक पत्राणालसरसदी अमरमें मौजूद है ।

लिखा है। 'पूज्यपादकी संस्कृत सिद्धमकिते 'सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः' पद भी न्यायकुसुदचन्द्रने प्रमाणरूपसे उद्धृत किया गया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुदचन्द्रमें जहा कहीं भी व्याकरणके सूत्रोंके उद्धरण देनेकी आवश्यकता हुई है वहां प्रायः जैनेन्द्रव्याकरणके अमयनन्दिसम्मत सूत्रपाठसेही सूत्र उद्धृत किए गए हैं।

धनञ्जय और प्रभाचन्द्र—‘संस्कृतसाहित्यका संक्षिप्त इतिहास’ के लेखक-
द्वयने धनञ्जयका समय ई० १२ ने शतकका मध्य निर्धारित किया है (पृ० १७३)। और अपने इस मतकी पुष्टिके लिए के० बी० पाठक महाशयका यह मत भी उद्धृत किया है कि—“धनञ्जयने द्विसन्धान महाकाव्यकी रचना ई० ११२३ और ११४० के मध्यमें की है।” डॉ० पाठक और उक्त इतिहास के लेखकद्वय अन्य कई जैन कवियोंके समय निर्धारणकी भांति धनञ्जयके समयमें भी झान्ति कर बैठे हैं। क्योंकि विचार करनेसे धनञ्जयका समय ईसापूर्व ८ वीं सदीका अन्त और नवींका प्रारम्भिक भाग सिद्ध होता है—

१ जल्हण (ई० द्वावशतक) विरचित सूक्तिमुक्तावलीमें राजशेखरके नामसे धनञ्जयकी प्रशंसामें निम्न लिखित पद्य उद्धृत है—

“द्विसन्धाने निपुणतां सतां चक्रे धनञ्जयः।

यथा जातं फलं तस्य स ता चक्रे धनञ्जयः ॥”

इस पद्यमें राजशेखरने धनञ्जयके द्विसन्धानकाव्यका मनोमुग्धकर सरणिले निर्देश किया है। संस्कृत साहित्यके इतिहासके लेखकद्वय लिखते हैं कि—“यह राजशेखर प्रमथकोशका कर्ता जैन राजशेखर है। यह राजशेखर ई० १३४८ में विद्यमान था।” आश्चर्य है कि १२ वीं शताब्दीके विद्वान् जल्हणके द्वारा विरचित ग्रन्थमें उल्लिखित होने वाले राजशेखरको लेखकद्वय १४ वीं शताब्दीका जैन राजशेखर बताते हैं। यह तो मोटी बात है कि १२ वीं शताब्दीके जल्हणने १४ वीं शताब्दीके जैन राजशेखरका उल्लेख न करके १० वीं शताब्दीके प्रसिद्ध काव्यमीमांसाकार राजशेखरका ही उल्लेख किया है। इस उल्लेखसे धनञ्जयका समय ९ वीं शताब्दीके अन्तिम भागके बाद तो किसी भी तरह नहीं जाता। ई० ९६० में विरचित सोमदेवके वक्तासिलह्वम्पूमें राजशेखरका उल्लेख होनेसे इनका समय करीब ई० ९१० ठहरता है।

२ बादिराजसूरी अपने पार्श्वनाथचरित (पृ० ४) में धनञ्जयकी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—

“अनेकमेदमन्धानाः खनन्तो हृदये सुहुः।

बाणा धनजयोन्मुखाः कर्णसेज प्रियाः कथम् ॥”

इस छिष्ट श्लोकमें ‘अनेकमेदमन्धानाः’ पदसे धनञ्जयके ‘द्विसन्धानकाव्य’ का उल्लेख बढ़ी कुशलतासे किया गया है। बादिराजसूरीने पार्श्वनाथचरित ९४७ शक

(ई० १०१५) में समाप्त किया था । अतः धनञ्जयका समय ई० १० वीं शताब्दीके बाद तो किसी भी तरह नहीं आ सकता ।

३ आ० वीरसेनने अपनी धवलटीका (अमरावतीकी प्रति पृ० ३८७) में धनञ्जयकी अनेकार्थनाममाळाका निम्न लिखित श्लोक उद्धृत किया है—

“हेतावेवं प्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः ॥”

आ० वीरसेनने धवलटीकाकी समाप्ति तक ७३८ (ई० ८१६) में की थी । श्रीमान् प्रेमीजीने धनारसीबिळास की सत्यानिका में लिखा है कि “ध्वन्या-लोक के कर्ता आनन्दवर्धन, हरचरित्र के कर्ता रत्नाकर और अल्हण ने धनञ्जय की स्तुति की है ।” संस्कृत साहित्य के संक्षिप्त इतिहास में आनन्दवर्धन का समय ई० ८४०-७०, एवं रत्नाकर का समय ई० ८५० तक निर्धारित किया है । अतः धनञ्जयका समय ८ वीं शताब्दीका उत्तरभाग और नवीं शताब्दीका पूर्व-भाग सुनिश्चित होता है । धनञ्जयने अपनी नाममाळाके—

“प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।

धनञ्जयरुवेः कान्वं रत्नत्रयमपस्विमम् ॥”

इस श्लोकमें अकलङ्कदेवका नाम लिया है । अकलङ्कदेव ईसाकी ८ वीं सदीके आचार्य हैं अतः धनञ्जयका समय ८ वीं सदीका उत्तरार्ध और नवींका पूर्वार्ध मानना सुसंगत है । आचार्य प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४०१) में धनञ्जयके त्रिसन्धानकाव्यका उल्लेख किया है । न्यायकुसुदचन्द्रमें इसी स्थल पर त्रिसन्धानकी जगह त्रिसन्धान नाम लिया गया है ।

रविभद्रशिष्य अनन्तवीर्य और प्रभाचन्द्र—रविभद्रपादोपजीवि अनन्तवीर्याचार्यकी सिद्धिविनिश्चयटीका समुपलब्ध है । ये अकलङ्कके प्रकरणोंके तलद्गृहा, विवेचयिता, व्याख्याता और मर्मज्ञ थे । प्रभाचन्द्रने इनकी सक्तियोंसे ही दूरवगाह अकलङ्कनाट्ययका सुश्रु अभ्यास और विवेचन किया था । प्रभाचन्द्र अनन्तवीर्यके प्रति अपनी कृतज्ञताका भाव न्यायकुसुदचन्द्रमें एकाधिक बार प्रदर्शित करते हैं । इनकी सिद्धिविनिश्चयटीका अवलोकनाध्ययके टीकासाहित्यका बिरोरत्न है । उसमें सैकड़ों मतमतान्तरोंका उल्लेख करके उनका समिन्धर निरास किया गया है । इस टीकामें धर्मकीर्ति, अर्चट, धर्मोत्तर, प्रज्ञाकरप्रसन्न, आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध धर्मकीर्तिसाहित्यके व्याख्याकारोंके मत उनके ग्रन्थोंके रूपमें लम्बे अवतरण केसर उद्धृत किए गए हैं । यह टीका प्रभाचन्द्रके ग्रन्थों पर अपना विचित्र प्रभाव रखती है । शान्तिसूरिने अपनी जैनतर्कवार्तिकवृत्ति (पृ० ९८) में “एके अनन्तवीर्यादयः” पदसे संभवतः इन्हीं अनन्तवीर्यके मतका उल्लेख किया है ।

विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र-आ० विद्यानन्दका जैनतार्किकोंमें अपना विशिष्ट स्थान है। इनकी श्लोकार्त्तिक, अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, सत्यशासनपरीक्षा, युक्त्यनुशासनटीका आदि तार्किककृतियों इनके अतुल्य तत्त्वस्पर्शी पाण्डित्य और सर्वतोमुख अध्ययन का पदे पदे अनुभव कराती हैं। इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थमें अपना समय आदि नहीं दिया है। आ० प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र दोनों ही प्रमुखग्रन्थों पर विद्यानन्दकी कृतियोंकी सुनिश्चित अमिट छाप है। प्रभाचन्द्रको विद्यानन्दके ग्रन्थोंका अनुदा अभ्यास था। उनकी शब्दरचना भी विद्यानन्दकी शब्दभंगीसे पूरी तरह प्रभावित है। प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्डके प्रथमपरिच्छेदके अन्तमें—

“विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतो विलं मनोनन्दनम्”

इस श्लोकमें लिख्यसे विद्यानन्दका नाम लिया है। प्रमेयकमलमार्तण्डमें पत्रपरीक्षासे पत्रका लक्षण तथा अन्य एक श्लोक भी उद्धृत किया गया है। अतः विद्यानन्दके ग्रन्थ प्रभाचन्द्रके लिए उपजीव्य निर्विवादरूपसे सिद्ध हो जाते हैं।

आ० विद्यानन्द अपने आप्तपरीक्षा आदि ग्रन्थोंमें ‘सत्यवाक्याधिपसिद्धौ’ ‘सत्यवाक्याधिपा’ विशेषणसे तत्कालीन राजाका नाम भी प्रक्षरान्तरसे सूचित करते हैं। बाबू कमताप्रसादजी (जैनसिद्धान्तभास्कर भाग ३ किरण ३ पृ० ८७) लिखते हैं कि—“बहुत संभव है कि उन्होंने गंगवादि प्रदेश में बहुवास किया हो, क्योंकि गंगवादि प्रदेशके राजा राजमल्लने भी गंगवंशमें होनेवाले राजाओंमें सर्वप्रथम ‘सत्यवाक्य’ उपाधि या अपरनाम धारण किया था। उपर्युक्त श्लोकोंमें यह संभव है कि विद्यानन्दजीने अपने समयके इस राजाके ‘सत्यवाक्याधिप’ नामको ध्वनित किया हो। युक्त्यनुशासनालंकारमें उपर्युक्त श्लोक प्रशस्ति रूप है और उसमें रचयिता द्वारा अपना नाम और समय सूचित होना ही चाहिए। समयके लिए तत्कालीन राजाका नाम ध्वनित करना पर्याप्त है। राजमल्ल सत्यवाक्य विजयादित्यका लड़का था और वह सन् ८१६ के लगभग राज्याधिकारी हुआ था। उनका समय भी विद्यानन्दके अनुकूल है। युक्त्यनुशासनालंकारके अन्तिम श्लोकके “प्रोक्तं युक्त्यनुशासनं विजयिभिः श्रीसत्यवाक्याधिपैः” इस अंशमें सत्यवाक्याधिप और विजय दोनों शब्द हैं, जिनसे गंगराज सत्यवाक्य और उसके पिता विजयादित्यका नाम ध्वनित होता है।” इस अनवरणसे यह सुनिश्चित हो जाता है कि विद्यानन्दने अपनी कृतियों राजमल्ल सत्यवाक्य (८१६ ई०) के राज्यकालमें बनाई हैं। आ० विद्यानन्दने सर्वप्रथम अपना तत्त्वार्थश्लोकार्त्तिक ग्रन्थ बनाया है, तदुपरान्त अष्टसहस्री और विद्यानन्दमहोदय, इसके अनन्तर अपने आप्तपरीक्षा आदि परीक्षान्तनामवाले लघु प्रकरण तथा युक्त्यनुशासनटीका; क्योंकि अष्टसहस्रीमें तत्त्वार्थश्लोकार्त्तिकका, तथा आप्तपरीक्षा आदिमें अष्टसहस्री और विद्यानन्दमहोदयका उल्लेख पाया जाता

है। विद्यानन्दने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक और अष्टसहस्रीमें, जो उनकी आद्य रचनाएँ हैं, 'सत्यवाक्य' नाम नहीं लिया है, पर आसपरीसा आदिमें 'सत्यवाक्य' नाम लिया है। अतः माह्य होता है कि विद्यानन्द श्लोकवार्तिक और अष्टसहस्रीको सत्यवाक्यके राज्यसिंहासनासीन होनेके पहिले ही बना चुके होंगे। विद्यानन्दके ग्रन्थोंमें मंडनमिश्रके मतका खंडन है और अष्टसहस्रीमें सुरेश्वरके सम्बन्धवार्तिकसे ३।४ कारिकाएँ भी उद्धृत की गई हैं। मंडनमिश्र और सुरेश्वरका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका पूर्वभाग माना जाता है। अतः विद्यानन्दका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध और नवींका पूर्वार्ध मानना सद्युक्तिक माह्य होता है। प्रभावचन्द्रके सामने इनकी समस्त रचनाएँ रही हैं। तत्त्वोपप्लवगादका खंडन तो विद्यानन्दकी अष्टसहस्रीमें ही बिस्तारसे मिलता है, जिसे प्रभावचन्द्रने अपने ग्रन्थोंमें स्थान दिया है। इसी तरह अष्टसहस्री और श्लोकवार्तिकमें पाई जानेवाली भावना विधि नियोगके विचारकी दुरवगाह चर्चा प्रभावचन्द्रके न्याय-कुमुदचन्द्रमें प्रसङ्गरूपसे अवतीर्ण हुई है। आ० विद्यानन्दने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (पृ० २०६) में न्यायदर्शनके 'पूर्ववत्' आदि अनुमानसूत्रका निरास करते समय केवल आप्यकार और वार्तिककारका ही मत पूर्वपक्ष रूपसे उपस्थित किया है। वे न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकाकारके अभिप्रायको अपने पूर्वपक्षमें शामिल नहीं करते। वाचस्पतिमिश्रने तात्पर्यटीका ई० ८४१ के लगभग बनाई थी। इससे भी विद्यानन्दके उक्त समयकी पुष्टि होती है। यदि विद्यानन्दका ग्रन्थरचना-काल ई० ८४१ के बाद होता तो वे तात्पर्यटीका उल्लेख किये बिना न रहते।

अनन्तकीर्ति और प्रभावचन्द्र—लघीयजयादि संग्रहमें अनन्तकीर्तिकृत लघुसर्वज्ञसिद्धि और बृहत्सर्वज्ञसिद्धि प्रकरण सुप्रित हैं। लघीयजयादिसंग्रहकी प्रस्तावनामें पं० नाथूरामजी प्रेमीने इन अनन्तकीर्तिके समयकी उत्तरावधि विक्रम संवत् १०८२ के पहिले निर्धारित की है, और इस समयके समर्थनमें चांदिराजके पार्ष्णाथचरितका यह श्लोक उद्धृत किया है—

“आत्मनैवाहितीयेन जीवसिद्धिं निबध्नात् ।

अनन्तकीर्तिना मुक्तिराभिमाणैव लक्ष्यते ॥”

चांदिराजने पार्ष्णाथचरित की रचना विक्रम संवत् १०८२ में की थी। प्रमेय तो यह है कि इन्हीं अनन्तकीर्तिने जीवसिद्धिकी तरह लघुसर्वज्ञसिद्धि और बृहत्सर्वज्ञसिद्धि ग्रन्थ बनाये हों। सिद्धिविनिश्चयटीकामें अनन्तवीर्यने भी एक अनन्तकीर्तिका उल्लेख किया है। यदि पार्ष्णाथ चरितमें स्पष्ट अनन्तकीर्ति और सिद्धिविनिश्चयटीकामें उल्लिखित अनन्तकीर्ति एक ही व्यक्ति हैं तो मानना होगा कि इनका समय प्रभावचन्द्रके समयसे पहिले है; क्योंकि प्रभावचन्द्रने अपने ग्रन्थोंमें सिद्धिविनिश्चयटीकाकार अनन्तवीर्यका समुद्गमाल स्मरण किया है। अस्तु। अनन्तकीर्तिके लघुसर्वज्ञसिद्धि तथा बृहत्सर्वज्ञसिद्धि ग्रन्थोंका और प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रके सर्वज्ञसिद्धि प्रकरणोंका आभ्यन्तर

परीक्षण यह स्पष्ट बताता है कि इन ग्रन्थोंमें एकका दूसरेके ऊपर पूरा पूरा प्रभाव है ।

बृहत्सर्वज्ञसिद्धि- (पृ० १८१ से २०४ तक) के अन्तिम पृष्ठ तो कुछ ओढ़ेये हेरफेरसे न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ८३८ से ८४७) के मुक्तिवाद प्रकरणके साथ अपूर्व सादृश्य रखते हैं । इन्हें पढ़कर कोई भी साधारण व्यक्ति कह सकता है कि इन दोनोंमेंसे किसी एकने दूसरेका पुस्तक सामने रखकर अनुसरण किया है । मेरा तो यह विश्वास है कि अनन्तकीर्तितकृत बृहत् सर्वज्ञसिद्धिका ही न्याय-कुमुदचन्द्र पर प्रभाव है । उदाहरणार्थ-

“किन्तु अज्ञो जनः दुःखानुषक्तमुखसाधनमपश्यन् आत्मज्ञेहात् सांसारिकेषु दुःखानुषक्तमुखसाधनेषु प्रवर्तते । हिताहितविवेकज्ञस्तु तादात्मिकमुखसाधनं क्वादिकं परित्यज्य आत्मज्ञेहात् आत्यन्तिकमुखसाधने मुक्तिमार्गे प्रवर्तते । यथा पथ्यापथ्यविवेकमज्ञानात्तुरः तादात्मिकमुखसाधनं व्याधिविवृद्धिनिमित्तं दम्बादि-कमुपादत्ते, पथ्यापथ्यविवेकज्ञस्तु तत्परित्यज्य पेयादौ आरोग्यसाधने प्रवर्तते । उपाय-तदाल्लुखसंज्ञेषु भावेष्वाज्ञोऽनुरज्यते । हितमेवानुरज्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः ॥”-न्यायकुमुदचन्द्र पृ० ८४२ ।

“किन्तु तज्ज्ञो जनो दुःखानुषक्तमुखसाधनमपश्यन् आत्मज्ञेहात् संसारान्तः-पतिवेदुः दुःखानुषक्तमुखसाधनेषु प्रवर्तते । हिताहितविवेकज्ञस्तु तादात्मिकमुख-साधनं क्वादिकं परित्यज्य आत्मज्ञेहादात्यन्तिकमुखसाधने मुक्तिमार्गे प्रवर्तते । यथा पथ्यापथ्यविवेकमज्ञानात्तुरः तादात्मिकमुखसाधनं व्याधिविवृद्धिनिमित्तं दम्बादिकमुपादत्ते, पथ्यापथ्यविवेकज्ञस्तु आतुरत्वादात्मिकमुखसाधनं दम्बादिकं परित्यज्य पेयादावारोग्यसाधने प्रवर्तते । तथा च कस्यचिद्विदुषः शुभापितम्-तदाल्लुखसंज्ञेषु भावेष्वाज्ञोऽनुरज्यते । हितमेवानुरज्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः ॥”-बृहत्सर्वज्ञसिद्धि पृ० १८१ ।

इस तरह यह समूचा ही प्रकरण इसी प्रकारके शब्दानुसरणसे ओत-प्रोत है ।

शाकटायन और प्रमाचन्द्र-राष्ट्रकूटवंशीय राजा अमोघवर्षके राज्यकाल (ईस्वी ८१४-८७७) में शाकटायन नामके प्रसिद्ध वैयाकरण हो गए हैं । ये यापनीय संधके आचार्य थे । यापनीयसंधका वास्तु आचार बहुत कुछ दिगम्बरोंसे मिलता जुलता था । ये नम्र रहते थे । श्वेताम्बर आगमोंको आदरकी दृष्टिसे देखते थे । आ० शाकटायनने अमोघवर्षके नामसे अपने शाकटायनव्याकरण पर ‘अमोघवृत्ति’ नामकी टीका बनाई थी । अतः इनका समय जी लगभग ई०

१ देखो-प० नाम्दारमनेनीका ‘यापनीय साहित्यकी खोज’ (अनेकाल्प वर्ष ३ किरण १) तथा प्रो० प० पन्० स्याध्यायका ‘यापनीयसंध’ (जैनदर्शन वर्ष ४ अंक ७) केव ।

८०० से ८७५ तक समझना चाहिए। यापनीयसंघके अनुयायी दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंकी कुछ कुछ बातोंको खींकर करते थे। एक तरहसे यह संघ दोनों सम्प्रदायोंके जोड़नेके लिए मूँछलाकड़ कार्य करता था। आचार्य मलयगिरिने अपनी नन्दीसूत्रकी टीका (पृ० १५) में शाकटायनको 'यापनीय-यतिग्रामाग्रणी' लिखा है—“शाकटायनोऽपि यापनीययतिग्रामाग्रणीः खोपज्ञाब्दानु-शासनवृत्तौ”। शाकटायन आचार्यने अपनी अमोघवृत्तिमें छेदसूत्र निर्युक्ति कालि-कसूत्र आदि श्रे० ग्रन्थोंका बड़े आदरसे उल्लेख किया है। आचार्य शाकटायनने केवलिकवलाहार तथा ज्ञीमुक्तिके समर्थनके लिए ज्ञीमुक्ति और केवलिमुक्ति नामके दो प्रकरण बनाए हैं^१। दिगम्बर और श्वेताम्बरोंके परस्पर निलगावमें ये दोनों सिद्धान्त ही मुख्य माने जाते हैं। यों तो दिगम्बर ग्रन्थोंमें कुन्दकुन्दाचार्य पूज्यपाद आदिके ग्रन्थोंमें ज्ञीमुक्ति और केवलिमुक्तिका सूत्ररूपसे निरसन किया गया है, परन्तु इन्हीं विषयोंके पूर्वोत्तरपक्ष स्थापित करके शास्त्रार्थका रूप आ० प्रभाचन्द्रने ही अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुमद्वन्द्वमें दिया है। श्वेताम्बरोंके तर्कसाहित्यमें इन सर्वप्रथम हरिभद्रसूत्रकी छलितविस्तारमें ज्ञीमुक्तिका संक्षिप्त समर्थन देखते हैं, परन्तु इन विषयोंको शास्त्रार्थका रूप सन्मतिटीकाकार अमर्यदेव, उत्तराध्ययन पाइयटीकाके रचयिता शान्तिसूत्रि, तथा स्याद्वादरत्नाकर-कार वादिदेवसूत्रिने ही दिया है। पीछे तो यशोविजय उपाध्याय, तथा मेघवि-जयगणि आदिने पर्याप्त साम्प्रदायिक रूपसे इनका विस्तार किया है। इन विवादप्रसू विषयोंपर लिखे गए अमर्यपक्षीय साहित्यका ऐतिहासिक तथा तार्त्विक-दृष्टिसे सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ज्ञीमुक्ति और केवलिमुक्ति विषयोंके समर्थनका प्रारम्भ श्वेताम्बर आचार्योंकी अपेक्षा यापनीयसंघ-वालोंने ही पहिले तथा दिलचस्पी के साथ किया है। इन विषयोंको शास्त्रार्थका रूप देनेवाले प्रभाचन्द्र, अमर्यदेव, तथा शान्तिसूत्रि करीब करीब समकालीन तथा समदर्शीय थे। परन्तु इन आचार्योंने अपने पक्षके समर्थनमें एक दूसरेका उल्लेख या एक दूसरेकी दलीलोंका साक्षात् खंडन नहीं किया। प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमद्वन्द्वमें ज्ञीमुक्ति और केवलिमुक्तिका जो विस्तृत पूर्वपक्ष लिखा गया है वह किसी श्वेताम्बर आचार्यके ग्रन्थका न होकर यापनीयाग्रणी शाकटायनके केवलिमुक्ति और ज्ञीमुक्ति प्रकरणोंसे ही लिया गया है। इन ग्रन्थोंके उत्तरपक्षमें शाकटायनके उक्त दोनों प्रकरणोंकी एक एक दलीलका सन्दर्भ-पूर्वपक्ष करके समुक्तिक निरास किया गया है। इसी तरह अमर्यदेवकी सन्मतितर्कटीका, और शान्तिसूत्रिकी उत्तराध्ययन पाइयटीका और जैनतर्कवार्तिकमें शाकटायनके इन्हीं प्रकरणोंके आधारसे ही उक्त बातोंका समर्थन किया गया है। हाँ, वादिदेवसूत्रिके रत्नाकरमें इन मतभेदोंमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सामने सामने आते हैं। रत्नाकरमें प्रभाचन्द्रकी दलीलें पूर्वपक्ष रूपमें पाई जाती हैं। तत्पर्य यह कि-प्रभाचन्द्रने ज्ञीमुक्तिवाद तथा केवलिकवलाहारवादमें श्वेताम्बर आचा-

१ ये प्रकरण जैनसाहित्यसंशोधक खड्ड २ अंक ३-४ में मुद्रित हुए हैं।

गौरी वजाय शाकटायनके केवलिमुक्ति और जीमुक्ति प्रकरणोंको ही अपने खंडनका प्रधान उद्ध्य बनाया है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ८६९) के पूर्व-प्रश्नमें शाकटायनके जीमुक्ति प्रकरणकी यह कारिका भी प्रमाण रूपसे उद्धृत की गई है—

“गार्हस्थ्येऽपि घुसत्त्वा विस्वाताः शीलवन्तया जगति ।

सीतादयः कथं तास्तपसि विशीला विसत्त्वाथ ॥” [जीमु० श्लो० ३१]

अभयनन्दि और प्रभाचन्द्र-जैनेन्द्रव्याकरणपर आ० अभयनन्दिकृत महावृत्ति उपलब्ध है । इसी महावृत्तिके आधारसे प्रभाचन्द्रने ‘शब्दाम्भोजभास्कर’ नामका जैनेन्द्रव्याकरणका महान्यास बनाया है । पं० नाथूरामजी त्रेमीने अपने ‘जैनेन्द्रव्याकरण और आचार्य देवनन्दी’ नामक लेखमें जैनेन्द्रव्याकरणके प्रचलित दो सूत्र पाठोंमेंसे अभयनन्दिसम्मत सूत्रपाठको ही प्राचीन और पूज्य-पादकृत सिद्ध किया है । इसी पुरातनसूत्रपाठ पर प्रभाचन्द्रने अपना न्यास बनाया है । त्रेमीजीने अपने उक्त गवेषणापूर्ण लेखमें महावृत्तिकार अभयनन्दिको चन्द्रप्रमचरित्रकार वीरनन्दिका शुरु बताया है और उनके समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीका पूर्वभाग निर्धारित किया है । आ० नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तिके शुरु भी यही अभयनन्दि थे । गोम्मतसार कर्मकाण्ड (गा० ४३६) की निम्न-लिखित गायारसे भी यही बात पुष्ट होती है—

“अत्स य पायपसापुण्णतर्त्तसारजलहिमुतिष्णो ।

वीरिदणंविचच्छो णमामि तं अभयणंदिपुरं ॥”

इस गायारसे तथा कर्मकाण्डकी गायार नं० ७८४, ८९६ तथा लघिसार गा० ६४८ से यह सुनिश्चित हो जाता है कि वीरनन्दिके शुरु अभयनन्दि ही नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तिके शुरु थे । आ० नेमिचन्द्रने तो वीरनन्दि, इन्द्रनन्दि और इन्द्रनन्दिके शिष्य कनकनन्दि तकका शुरुरूपसे स्मरण किया है । इन सब उल्लेखों से ज्ञात होता है कि अभयनन्दि, उनके शिष्य वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि, तथा इन्द्रनन्दिके शिष्य कनकनन्दि सभी प्रायः नेमिचन्द्रके समकालीन बुद्ध थे ।

बादिराजसूरिने अपने पार्श्वचरितमें चन्द्रप्रमचरित्रकार वीरनन्दिका स्मरण किया है । पार्श्वचरित शकसंवत् ९४७, ई० १०२५ में पूर्ण हुआ था । अतः वीरनन्दिकी उत्तरावधि ई० १०२५ तो सुनिश्चित है । नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिने गोम्मतसार ग्रन्थ चासुण्डरायके सम्बोधनार्थ बनाया था । चासुण्डराय गंगवंशीय महाराज मारसिंह-द्वितीय (९७५ ई०) तथा उनके उत्तराधिकारी राजमल्ल द्वितीयके मन्त्री थे । चासुण्डरायने अवणवेलगुलख बाहुवलि गोम्मटे-शरीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा ई० ९८१ में कराई थी, तथा अपना चासुण्डपुराण

१ इसका परिचय ‘प्रभाचन्द्रके ग्रन्थ’ शीर्षक खन्नामें देखना चाहिए ।

२ जैन साहित्यसंशोधक माग १ अंक २ ।

३ देखो त्रिलोकसार की प्रस्तावना ।

ई० ९७८ में समाप्त किया था। अतः आ० नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका समय ई० ९८० के आसपास अनुनिश्चित किया जा सकता है। और लगभग यही समय आचार्य अमयनन्दि आदिका होना चाहिए। इन्होंने अपनी महावृत्ति (लिखित पृ० २२१) में मर्तुहरि (ई० ६५०) की वाक्परीयका उल्लेख किया है। पृ० ३९३ में माघ (ई० ७ वीं सदी) काव्यसे 'सटाच्छटाम्बिन' श्लोक उद्धृत किया है। तथा ३।२।५५ की वृत्तिमें 'तत्त्वार्यवार्तिकमधीयते' प्रयोगसे अकलङ्कदेव (ई० ८ वीं सदी) के तत्त्वार्यराजवार्तिकका उल्लेख किया है। अतः इनका समय ९ वीं शताब्दीसे पहिले तो नहीं ही है। यदि यही अमयनन्दि जैनेन्द्र महावृत्तिके रचयिता हैं तो कहना होगा कि उन्होंने ई० ९९० के लगभग अपनी महावृत्ति बनाई होगी। इसी महावृत्ति पर ई० १०६० के लगभग आ० प्रभाचन्द्रने अपना शब्दाम्भोजभास्कर न्यास बनाया है; क्योंकि इसकी रचना न्यायकुसुदचन्द्रके बाद की गई है और न्यायकुसुदचन्द्र जयसिंहदेव (राज्य १०५६ से) के राज्य के प्रारम्भकाल में बनाया गया है।

मूलाचारकार और प्रभाचन्द्र—मूलाचार ग्रन्थके कर्ताके विषयमें विद्वान् मतमेद रखते हैं। कोई इसे कुन्दकुन्दकृत कहते हैं तो कोई बह्मकेरिङ्कत। जो हो, पर इतना निश्चित है कि मूलाचारकी सभी गाथाएँ स्वयं उसके कर्ताने नहीं रची हैं। उसमें अनेकों ऐसी प्राचीन गाथाएँ हैं, जो कुन्दकुन्दके ग्रन्थोंमें, भगवती आराधनामें तथा आवश्यकनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति और सम्मतिर्तक आदि में भी पाई जाती हैं। संभव है कि गोम्मतसार की तरह यह भी एक संग्रह ग्रन्थ हो। ऐसे संग्रहग्रन्थोंमें प्राचीन गाथाओंके साथ कुछ संग्रहकाररचित गाथाएँ भी होती हैं। गोम्मतसारमें बहुभाग खरचित है जब कि मूलाचारमें खरचित गाथाओंका बहुभाग नहीं माछस होता। आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ८४५) में "एगो मे सत्सदो" "संजोगमूलं जीवनं" ये दो गाथाएँ उद्धृत की हैं। ये गाथाएँ मूलाचारमें (२।४८, ४९) दर्ज हैं। इनमें पहिली गाथा कुन्दकुन्दके भावपाहुड तथा नियमसारमें भी पाई जाती है। इसी तरह प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ३३१) में "आचेलकुहेसिय" आदि पायाँश दशविध स्थितिकल्पका निर्देश करने के लिए उद्धृत है। यह गाथा मूलाचार (गाथा नं० ९०९) में तथा भगवती आराधनामें (गाथा ४२१) नियमान है। यहाँ यह बात खास ध्यान देने योग्य है कि प्रभाचन्द्रने इस गाथाको श्वेताम्बर आगममें आचेलक्यके समर्थनका प्रमाण बताने के लिए श्वेताम्बर आगमके रूपमें उद्धृत किया है। यह गाथा जीतकल्पमाध्य (गा० १९७२) में पाई जाती है। गाथाओं की इस संक्रान्त स्थितिको देखते हुए यह सहज ही कहा जा सकता है कि—कुछ प्राचीन गाथाएँ परम्परासे चली आई हैं, जिन्हें दिग० और श्वेता० दोनों आचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें स्थान दिया है।

नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती और प्रभाचन्द्र—आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती वीरसेनापति श्री चामुण्डरायके समकालीन थे। चामुण्डराय वंगव-

श्रीय महाराज मारसिंह द्वितीय (१७५ ई०) तथा उनके उत्तराधिकारी राज-
मह द्वितीयके मन्त्री थे । इन्हींके राज्यकालमें ज्ञानमुण्डरायने गोमटेश्वरकी प्रतिष्ठा
(सन् १८१) कराई थी । आ० नेमिचन्द्रने इन्हीं ज्ञानमुण्डरायको सिद्धान्त
परिज्ञान करनेके लिए गोमटद्वारा ग्रन्थ बनाया था । यह ग्रन्थ प्राचीन सिद्धान्त-
प्रत्योक्त संक्षिप्त संस्करण है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २५४) में 'लोयाया-
सपण्णे' गाथा उद्धृत है । यह गाथा जीवकाण्ड तथा द्रव्यसंग्रह में पाई जाती
है । अतः आपाततः यही निष्कर्ष निकल सकता है कि यह गाथा प्रभावचन्द्रने
जीवकाण्ड या द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत की होगी, परन्तु अन्वेषण करने पर मालूम
हुआ कि यह गाथा बहुत प्राचीन है और सर्वार्थसिद्धि (५।३९) तथा श्लो-
कार्ति (पृ० ३९९) में भी यह उद्धृत की गई है । इसी तरह प्रमेयकम-
लमार्तण्ड (पृ० ३००) में 'विमहाहगद्मावणा' गाथा उद्धृत की गई है । यह
गाथा भी जीवकाण्ड में है । परन्तु यह गाथा भी वस्तुतः प्राचीन है और धव-
लादीका तथा उमास्वातिकृत भाष्यप्रवृत्तिमें मौजूद है ।

प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्य और प्रभावचन्द्र-रविभद्रके शिष्य
अनन्तवीर्य आचार्य, अकलंकके प्रकरणोंके स्वात टीकाकार विद्वान् थे । प्रमेयरत्न-
मालाके टीकाकार अनन्तवीर्य उनसे पृथक् व्यक्ति हैं; क्योंकि प्रभावचन्द्रने अपने
प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रमें प्रथम अनन्तवीर्यका स्मरण किया है,
और द्वितीय अनन्तवीर्य अपनी प्रमेयरत्नमालामें इन्हीं प्रभावचन्द्र का स्मरण करते
हैं । वे लिखते हैं कि प्रभावचन्द्रके बचनोंको ही संक्षिप्त करके यह प्रमेयरत्नमाला
बनाई जा रही है । प्र० ए० एन्० उपाध्यायने प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्यके
समयका अनुमान तयारहवीं सदी किया है, जो उपयुक्त है । क्योंकि आ० हेम-
चन्द्र (१०८८-११७३ ई०) की प्रमाणसीमांसा पर शब्द और अर्थ दोनों
दृष्टिसे प्रमेयरत्नमालाका पूरा पूरा प्रभाव है । तथा प्रभावचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड
और न्यायकुमुदचन्द्रका प्रभाव प्रमेयरत्नमाला पर है । आ० हेमचन्द्रकी प्रमाण-
सीमांसाने प्रायः प्रमेयरत्नमालाके द्वारा ही प्रमेयकमलमार्तण्ड को पाया है ।

देवसेन और प्रभावचन्द्र-देवसेन श्रीविमलसेन गणीके शिष्य थे ।
इन्होंने धारानगरीके पार्श्वनाथ मन्दिरमें माघ शुक्ल दशमी विक्रमसंवत् १९०

१ प्रमेयकमलमार्तण्डके प्रथम संस्करणके संपादक प० बन्नीषर्जीसाजी सोलापुरने
प्रमेयक० की प्रस्तावनामें यही निष्कर्ष निकाला भी है ।

२ "प्रमेयवचनोदाहरचन्द्रिकाप्रसरे सति ।

माहृशाः नव नु गण्यन्ते व्योमिद्विज्ञानसत्तिमाः ॥

तथापि तद्वचोऽपूर्ववचनाकतिरे सताम् ।

चेतोहर चतुर् यद्वक्ष्या नवषटे जलम् ॥"

३ देखो औनदर्शन वर्ष ४ अंक ९ ।

४ नयचक्री प्रस्तावना पृ० ११-॥

(ई० ९३३) में अपना दर्शनसार ग्रन्थ बनाया था। दर्शनसारके बाद इन्होंने भावसंग्रह ग्रन्थकी रचना की थी; क्योंकि उसमें दर्शनसारकी अनेकों गाथाएँ समूत मिलती हैं। इनके आराधनासार, तत्त्वसार, नयचक्रसंग्रह तथा आत्मपद्धति ग्रन्थ भी हैं। आ० प्रभावचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ३००) तथा न्यायकसुन्दर (पृ० ८५६) के कवलाहारवादेमें देवसेनके भावसंग्रह (गा० ११०) की यह गाथा उद्धृत की है—

“शोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो ।

ओज मणोवि य कमसो आहारो छव्विहो जेयो ॥”

यद्यपि देवसेनसूरिने दर्शनसार ग्रन्थके अन्तमें लिखा है कि—

“पुब्बायरियक्याहं गाहाहं संचिज्ज एयत्थ ।

सिरिदेवसेणगणिणा चाराए संवसेण ॥

रइयो दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए णवए ।

सिरिपासणाहोहे सुविमुद्धं माहमुद्धदसमीए ॥”

अर्थात् पूर्वाचार्यकृत गाथाओंका संचय करके यह दर्शनसार ग्रन्थ बनाया गया है। तथापि बहुत खोज करने पर भी यह गाथा किसी प्राचीन ग्रंथमें नहीं मिल सकी है। देवसेन चारानगरीमें ही रहते थे, अतः चारानिवासी प्रभावचन्द्रके द्वारा भावसंग्रहसे भी उक्त गाथाका उद्धृत किया जाना असंभव नहीं है। बल्कि दर्शनसारके बाद भावसंग्रह बनाया गया है, अतः इसका रचनाकाल संभवतः विक्रम संवत् ९९७ (ई० ९४०) के आसपास ही होगा।

श्रुतकीर्ति और प्रभावचन्द्र-जैनेन्द्रके प्राचीन सूत्रपाठपर आचार्य श्रुतकीर्तिकृत पंचवस्तुप्रक्रिया उपलब्ध है^१। श्रुतकीर्तिने अपनी प्रक्रियाके अन्तमें श्रीमद्भूतिशब्दसे अभयवन्दिकृत महावृत्ति और न्यासशब्दसे संभवतः प्रभावचन्द्रकृत न्यास, दोनोंका ही उल्लेख किया है। यदि न्यासशब्द पुन्यपादके जैनेन्द्र-न्यासका निर्देशक हो तो ‘टीकामाल’ शब्दसे तो प्रभावचन्द्रकी टीकाका उल्लेख किया ही गया है। यथा—

“सूत्रसम्मसमुद्धृतं प्रविलसत्तयासोरजशक्ति,

श्रीमद्भूतिकपाठसंपुटयुतं भाष्यौषधव्यातलम् ।

टीकामालमिहारुस्तुरचितं जैनेन्द्रशब्दागमम्,

प्रासादं पृथुपक्षवस्तुकमिदं सोपानमारोहतात् ॥”

कनकी भाषाके चन्द्रप्रभवचरित्रके कर्ता अगलकविने श्रुतकीर्तिको अपना गुरु बताया है—

“इति परमपुस्तनायकुलभूसुत्समुद्भूतप्रवचनसरित्सरिभायश्रुतकीर्तित्रैविषयकव-

१ देखो प्रेमीजीका ‘जैनेन्द्र व्याकरण और आचार्यदेवगन्दी’ केस जैनसा० सं० भाग १ अंक २।

तिपदपञ्चविधानदीपवर्तिश्रीमदमलदेवविरचिते चन्द्रप्रमचरिते” । यह चरित्र शक संवत् १०११, ई० १०८९ में बनकर समाप्त हुआ था । अतः श्रुतकीर्तिका समय लगभग १०८० ई० मानना युक्तिसंगत है । इन श्रुतकीर्तिने न्यासको जैनैन्द्र व्याकरण रूपी प्रासादकी रत्नमूषिकी उपमा दी है । इससे चन्द्राम्भोज-भास्करका रचनासमय लगभग ई० १०६० समर्थित होता है ।

श्रे० आगमसाहित्य और प्रभाचन्द्र-भ० महावीरकी अर्धमागधी दिव्यव्यक्तिको गणधरों ने द्वादशांगी रूपमें गूँथा था । उस समय उस अर्धमागधी भाषामय द्वादशांग आगमोंकी परम्परा श्रुत और स्मृत रूपमें रही, लिपिवद्ध नहीं थी । इन आगमोंका आखरी संकलन वीर सं० १८० (वि० ५१०) में श्वेताम्बरार्च्य देवर्दिगणि क्षमाभ्रमणने किया था । अंगभ्रम्योंके सिवाय कुछ अंगबाह्य या अर्धगालक श्रुत भी है । छेदसूत्र अर्धगद्युत्तमें शामिल है । आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ८६८) के जीसुक्तिवादके पूर्वपक्षमें कल्पसूत्र (५१२०) से “नो कल्पइ विगंधीए अचेलाए होतए” यह सूत्रवाक्य उद्धृत किया है ।

तत्त्वार्थभाष्यकार और प्रभाचन्द्र-तत्त्वार्थसूत्रके दो सूत्रपाठ प्रचलित हैं । एक तो यह, जिस पर स्वयं वाचक उमासातिका खोपज्ञभाष्य प्रसिद्ध है, और दूसरा यह जिस पर पूज्यपादकृत सार्धसिद्धि है । दिगम्बर परम्परामें पूज्यपादसम्मत सूत्रपाठ और श्वेताम्बरपरम्परामें भाष्यसम्मत सूत्रपाठ प्रचलित है । उमासातिके खोपज्ञभाष्यके कर्तृत्वके विषयमें आज कल विवाद चल रहा है । गुप्ताखा० आदि कुछ विद्वान् भाष्यकी उमासातिकर्तृत्ताके विषयमें सन्देह हैं । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रमें दिगम्बरसूत्रपाठसे ही सूत्र उद्धृत किए हैं । उन्होंने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ८५९) के जीसुक्तिवादके पूर्वपक्षमें तत्त्वार्थभाष्यकी सम्बन्धकारिकाओंमेंसे “अयन्ते भानन्ताः सामाधिकमानसंविदाः” कारिकाएँ उद्धृत किया है । तत्त्वार्थ-राजवार्तिक (पृ० १०) में भी “अन्ताः सामाधिकमानसंविदाः” वाक्य उद्धृत मिलता है । इसी तरह तत्त्वार्थभाष्यके अन्तमें पाई जाने वाली ३२ कारिकाएँ राजवार्तिकके अन्तमें उक्तम् लिखकर उद्धृत हैं । पृ० ३६१ में भाष्यकी ‘वने बीजे’ कारिका उद्धृत की गई है । इत्यादि प्रमाणोंके आधारसे यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत भाष्य अमलदेवके सामने भी था । उनसे इसके कुछ मन्तव्योंकी समीक्षा भी की है ।

सिद्धसेन और प्रभाचन्द्र-आ० सिद्धसेनके सन्मतिवर्क, न्यायावतार, द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशतिका ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । इनके सन्मतिवर्क पर अभयदेवसूरिने निरुक्त व्याख्या लिखी है । डॉ० जैकोबी न्यायावतारके प्रत्यक्ष लक्षणमें अज्ञान्त्

पद देखकर इनको धर्मकीर्तिका समकालीन, अर्थात् ईसाकी ७ वीं शताब्दीका विद्वान् मानते हैं। पं० सुखलाल जी इन्हें विक्रमकी पांचवी सदीका विद्वान् सिद्ध करते थे। पर अब उनका विश्वास है कि “सिद्धसेन ईसाकी छठी या सातवीं सदीमें हुए हों और उन्होंने संभवतः धर्मकीर्तिके ग्रन्थोंको देखा हो।” न्यायावतारकी रचानामें न्यायप्रवेशके साथ ही साथ न्यायमिन्दु भी अपना यत्किञ्चित् स्थान रखता ही है। आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ४३७) में पक्षप्रयोगका समर्थन करते समय ‘धातुष्क’ का दृष्टान्त दिया है। इसकी तुलना न्यायावतारके श्लोक १४-१६ से मज़ीमाति की जा सकती है। न केवल मूलश्लोकसे ही, किन्तु इन श्लोकोंकी सिद्धपिंकृत व्याख्या भी न्यायकुसुदचन्द्रकी शब्दरचनासे तुलनीय है।

धर्मदासगणि और प्रभाचन्द्र—शे० आचार्य धर्मदासगणिका उपदेश-माला ग्रन्थ प्राकृतगायानिबद्ध है। प्रसिद्धि तो यह रही है कि ये महावीरश्रावणोंके वीक्षित शिष्य थे। पर यह इतिहासविरुद्ध है, क्योंकि इन्होंने अपनी उपदेश-मालामें वज्रसूरी आदिके नाम लिए हैं। अस्तु। उपदेशमाला पर सिद्धपिंसूरीकृत प्राचीन टीका उपलब्ध है^१। सिद्धपिने उपमितिभवप्रपञ्चाका वि० सं० ९६२ ज्येष्ठ शुद्ध पंचमीके दिन समाप्त की थी। अतः धर्मदासगणिकी उत्तरावधि विक्रम की ९ वीं शताब्दी माननेमें कोई बाधा नहीं है। प्रभाचन्द्रने अमेयकमल-मार्तण्ड (पृ० ३३०) में उपदेशमाला (गा० १५) की ‘वरिससयदिवस्त्रयाए अज्जाए अज्ज दिक्खिओ साहु’ इत्यादि गायत्रि प्रमाणरूपसे उद्धृत की है।

हरिभद्र और प्रभाचन्द्र—आ० हरिभद्र शे० सम्प्रदायके युगप्रधान आचार्यमंसे हैं। कहा जाता है कि इन्होंने १४०० के करीब ग्रन्थोंकी रचना की थी। मुनि श्री जिनविजयजीने अनेक प्रबल प्रमाणोंसे इनका समय ई० ७०० से ७७० तक निर्धारित किया है। मेरा इसमें इतना संशोधन है—कि इनके समयकी उत्तरावधि ई० ८१० तक होनी चाहिए; क्योंकि जयन्त भट्टकी न्यायमंजरीका ‘गम्भीरगर्जितारम्भ’ श्लोक षड्दर्शनसमुच्चयमें शामिल हुआ है। मैं विस्तारसे लिख चुका हूँ कि जयन्तने अपनी मंजरी ई० ८०० के करीब बनाई है अतः हरिभद्रके समयकी उत्तरावधि कुछ और लम्बानी चाहिए। उस युगमें १०० वर्षकी आयु तो साधारणतया अनेक आचार्यों की देखी गई है। हरिभद्रसूरीके दार्शनिक ग्रन्थोंमें ‘षड्दर्शनसमुच्चय’ एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसका—

“प्रत्यक्षमनुमानञ्च शब्दश्रोतमया सह ।

अर्थोपतिरभावश्च षट् प्रमाणानि जैमिनेः ॥ ७२ ॥”

यह श्लोक न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ५०५) में उद्धृत है। वर्यपि इसी भावका

१ इंग्लिश सन्मतितर्क की प्रस्तावना ।

२ जैनसाहित्यको इतिहास पृ० ३८६ ।

एक श्लोक—“प्रत्यक्षमनुमानम् शब्दबोधमया सह । अर्थापत्तिरभावश्च षडेते साध्यसाधकः ॥” इस शब्दावलीके साथ कमलशीलकी तत्त्वसंग्रहपञ्जिका (पृ० ४५०) में मिलता है और उससे संभावना की जा सकती है कि जैमिनीकी षट्प्रमाणसंख्याका निदर्शक यह श्लोक किसी जैमिनिमतानुयायी आचार्यके ग्रन्थसे लिया गया होगा । यह संभावना हृदयको लगती सी है । परन्तु जबतक इसका प्रसाधक कोई समर्थ प्रमाण नहीं मिलता तबतक उसे हरिभद्रकृत माननेमें ही लायब है । और बहुत कुछ संभव है कि प्रमाचन्द्रने इसे षड्दर्शनसमुच्चयसे ही उद्धृत किया हो । हरिभद्रने अपने ग्रन्थमें पूर्वपक्षके पञ्चवत् और उत्तरपक्षके पोषणके लिए अन्यग्रन्थकारोंकी कारिकाएँ, पर्याप्त मात्रामें, कहीं उन आचार्योंके नामके साथ और कहीं बिना नाम लिए ही शामिल की हैं । अतः कारिकाओंके विषयमें यह निर्णय करना बहुत कठिन हो जाता है कि ये कारिकाएँ हरिभद्रकी स्वरचित हैं या अन्यरचित होकर संगृहीत हैं ? इसका एक और उदाहरण यह है कि—

“विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ।
समुदेति यतो लोके रागादीनां गणोऽस्मिन् ॥
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः समुदायः स सम्मतः ।
क्षणिका सर्वसत्कारा इत्येवं वासना यत्नः ॥
स मार्ग इति विज्ञेयो निरोधो मोक्ष उच्यते ।
पञ्चेन्द्रियाणि ज्ञान्दाया विषया पञ्च मानसम् ॥
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि च—”

ये चार श्लोक षड्दर्शनसमुच्चयके बौद्धदर्शनमें मौजूद हैं । इसी आनुपूर्वीसे ये ही श्लोक किञ्चित् अव्यदमेदके साथ जिनसेनके आदिपुराण (पृ० ५ श्लो० ४२-४५) में भी विद्यमान हैं । रचनासे तो ज्ञात होता है कि ये श्लोक किसी बौद्धाचार्यने बनाए होंगे, और उसी बौद्धग्रन्थसे षड्दर्शनसमुच्चय और आदिपुराणमें पहुँचे हों । हरिभद्र और जिनसेन प्रायः समकालीन हैं, अतः यदि ये श्लोक हरिभद्रके होकर आदिपुराणमें आए हैं तो इसे उससमयके असम्प्रदायिक भावकी महत्त्वपूर्ण घटना समझनी चाहिए । हरिभद्रने तो शास्त्रवार्तासमुच्चयमें समन्तभद्रकी आत्ममीमांसाके श्लोक उद्धृत कर अपनी षड्दर्शनसमुच्चयक बुद्धिके प्रेरणा बीजको ही मूर्तस्वरूपमें अङ्कुरित किया है । यदि न्यायप्रवेशवृत्तिकार हरिभद्र ये ही हरिभद्र हैं तो उस वृत्ति (पृ० १३) में पाई जाने वाली पक्षशब्दकी ‘पञ्चते व्यक्तीक्रियते योऽर्थः स. पक्षः’ इस व्युत्पत्तिकी अस्पष्ट छाया न्यायकुसुद-चन्द्र (पृ० ४३८) में की गई पक्षकी व्युत्पत्ति पर आभासित होती है ।

सिद्धार्थि और प्रमाचन्द्र—श्रीसिद्धार्थिगणि खे० आचार्य दुर्गस्वामीके शिष्य थे । इन्होंने ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी, विक्रम संवत् १६२ (१ मई १०६ ई०) के दिन उपसिद्धिभवप्रस्था कथाकी समाप्ति की थी । सिद्धसेन दिवाकरके न्यायावता-

रपर भी इनकी एक टीका उपलब्ध है। न्यायावतार (खो० १६) में पक्षप्रयोगके समर्थनके प्रसंगमें लिखा है कि—“जिस तरह लक्ष्यनिर्देशके बिना अपनी धनुर्विद्याका प्रदर्शन करने वाले धनुर्धारीके गुण-दोषोंका यथावत् निर्णय नहीं हो सकता, गुण भी दोषरूपसे तथा दोष भी गुणरूपसे प्रतिभासित हो सकते हैं, उसी तरह पक्षका प्रयोग किए बिना साधनवादीके साधन सम्बन्धी गुण-दोष भी विपरीत रूपमें प्रतिभासित हो सकते हैं, प्रात्रिक तथा प्रतिवादी आदिको उनका यथावत् निर्णय नहीं हो सकता।” न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ४३७) के ‘पक्षप्रयोगविचार’ प्रकरणमें भी पक्षप्रयोगके समर्थनमें धनुर्धारी का दृष्टान्त दिया गया है। उसकी शब्दरचना तथा भावव्यञ्जनामें न्यायावतारके मूलश्लोकके साथ ही साथ सिद्धविकृत व्याख्याका भी पर्याप्त शब्दसादृश्य पाया जाता है। अवतार-णोंके लिए देखो—न्यायकुमुदचन्द्र पृ० ४३७ टि० १।

अभयदेव और प्रभाचन्द्र—चन्द्रगुप्तमें प्रद्युम्नसूरि बड़े ख्यात आचार्य थे। अभयदेव सूरि इन्हीं प्रद्युम्नसूरिके शिष्ये थे। न्यायवनसिंह और तर्कप्रधानन इनके विरुद्ध थे। सन्मतिदर्शकी गुजराती प्रस्तावना (पृ० ८३) में श्रीमान् पं० सुखलालजी और पं० जेवरदासजीने इनका समय विक्रमकी दशवीं सदीका उत्तरार्ध और ग्यारहवींका पूर्वार्ध निश्चित किया है। उत्तराध्ययनकी पाइयटीकाके रचयिता शान्तिसूरिने उत्तराध्ययनटीकाकी प्रशस्तिमें एक अभयदेव को प्रमाणविद्याका गुरु लिखा है। पं० सुखलालजीने शान्तिसूरिके गुरुत्वमें इन्हीं अभयदेवसूरिकी संभावना की है। प्रभावकचरित्रके उल्लेखानुसार शान्तिसूरिका स्वर्गवास वि० सं० १०९६ में हुआ था। इन्हीं शान्तिसूरिने जनपालकविकी तिलकमजरी आख्यायिका का संशोधन किया था, और उस पर एक टिप्पण लिखा था। जनपाल कवि गुञ्ज तथा भोज दोनोंकी राजसभाओं में सम्मानित हुए थे। इन सब घटनाओंको मद्दे नजर रखते हुए अभयदेव सूरिका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग तक मान लेने में कोई बाधा प्रतीत नहीं होती। अभयदेव सूरिकी प्रामाणिकप्रकाण्डताका जीवन्त रूप उनकी सन्मतिटीका में पद पद पर मिलता है। इस सुविस्तृत टीका की ‘वाद्यमहार्णव’ के नामसे भी प्रसिद्धि रही है।

प्रभाचन्द्रके न्यायकुमुदचन्द्रकी अपेक्षा प्रमेयकमलमार्तण्डका अकल्पित सादृश्य इस टीका में पाया जाता है। अभयदेवसूरिने सन्मतिटीका में जीसुक्ति और केवलिकवलाहारका समर्थन किया है। इसमें ही गई दलीलोंमें तथा प्रभाचन्द्रके द्वारा किए गए उक्त नादोंके खण्डन की युक्तियोंमें परस्पर कोई पूर्वोत्तरपक्षता नहीं देखी जाती। अभयदेव, शान्तिसूरि, और प्रभाचन्द्र करीब करीब समकालीन और समदेशीय थे। इसलिए यह अधिक संभव था कि जीसुक्ति और केवलिसुक्ति जैसे साम्प्रदायिक प्रकरणोंमें एक दूसरेका खंडन करते। पर हम इनके ग्रन्थोंमें परस्पर खंडन नहीं देखते। इसका कारण मेरी समझमें तो यही आता है कि उस समय दिगम्बर आचार्य आपनीयोंके साथ ही इस विषयकी

चरचा करते होंगे। यही कारण है कि जब प्रभाचन्द्रने शाकटायनके क्रीमुक्ति और केवलमुक्ति प्रकरणोंका ही शब्दशः खंडन किया है तब श्वेताम्बराचार्य अमरदेव और शान्तिसूरिने शाकटायनकी दलीलोंके आधारसे ही अपने ग्रन्थोंके उक्त प्रकरण पुष्ट किए हैं। वादिदेवसूरिने अवश्य ही प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंके उक्त प्रकरणोंको पूर्वपक्षमें प्रभाचन्द्रका नाम लेकर उपस्थित किया है।

सन्मतितर्कके सम्पादक श्रीमान् पं० मुखलाजी और नेचरदासजीने सन्मतितर्क प्रथम भाग (पृ० १३) की गुजराती प्रस्तावनामें लिखा है कि—“जो के आ टीकामां सैकड़ों दार्शनिकग्रन्थों ऊ दोहन अणाय छे, छतां सामान्यरीते शीर्मासकमुमारिलभट्टनुं श्लोकवार्तिक, नालन्दाविश्वविद्यालयना आचार्य शान्तरक्षितकृत तत्त्वसंग्रह ऊपरनी कमलशीलकृत पंजिका अने विगम्भराचार्य प्रभाचन्द्रना प्रमेयकमलमार्तण्ड अने न्यायकुसुदचन्द्रोदय विगेरे ग्रंथोंउं प्रतिविम्ब मुख्यपणे आ टीकामां छे।” अर्थात् सन्मतितर्कटीका पर शीर्मासाश्लोकवार्तिक, तत्त्वसंग्रहपंजिका प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्र आदि ग्रन्थोंका प्रतिविम्ब पड़ा है। सन्मतितर्कके विद्वद्रूप सम्पुदकोफी उक्त बातसे सहमति रखते हुए भी मैं उसमें इतना परिवर्धन और कर देना चाहता हूं कि—“प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रका सन्मतितर्कसे शब्दसादृश्य मात्र साक्षात् विम्ब-प्रतिविम्बभाव होनेके कारण ही नहीं हैं, किन्तु तीनों ग्रन्थोंके बहुभागमें जो अकल्पित सादृश्य पाया जाता है वह तृतीयराशिमूलक भी है। ये तृतीय राशिके ग्रंथ हैं—भाट्टनवसिंहराशिका तत्त्वोपप्लवसिंह, ज्योमशिवकी ज्योमवती, जयन्तकी न्यायमञ्जरी, शान्तरक्षित और कमलशीलकृत तत्त्वसंग्रह और उसकी पंजिका तथा विद्यानन्दके अष्टसहस्री, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, प्रमाणपरीक्षा, आत्मपरीक्षा आदि प्रकरण। इन्हीं तृतीयराशिके ग्रन्थोंका प्रतिविम्ब सन्मतितर्कटीका और प्रमेयकमलमार्तण्डमें आया है।” सन्मतितर्कटीका, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रका तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट साक्ष्य होता है कि सन्मतितर्कका प्रमेयकमलमार्तण्डके साथ ही अधिक शब्दसादृश्य है। न्यायकुसुदचन्द्रमें अर्धों की यत्किम्बिद् सादृश्य देखा जाता है वह प्रमेयकमलमार्तण्डप्रयुक्त ही है साक्षात् नहीं। अर्थात् प्रमेयकमलमार्तण्डके जिन प्रकरणों के जिस सन्दर्भसे सन्मतितर्कका सादृश्य है उन्हीं प्रकरणोंमें न्यायकुसुदचन्द्रसे भी शब्दसादृश्य पाया जाता है। इससे वह तर्कणा की जा सकती है कि—सन्मतितर्ककी रचनाके समय न्यायकुसुदचन्द्रकी रचना नहीं हो सकी थी। न्यायकुसुदचन्द्र जयसिंहदेवके राज्यमें सन् १०५७ के आसपास रचा गया था जैसा कि उसकी अन्तिम प्रशस्तिये विहित है। सन्मतितर्कटीका, प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुदचन्द्रकी तुलनाके लिए देखो प्रमेयकमलमार्तण्ड प्रथम अध्यायके टिप्पण तथा न्यायकुसुदचन्द्रके टिप्पणमें दिए गए सन्मतितर्क के अवतरण।

चादि देवसूरि और प्रभाचन्द्र-देवसूरि श्रीमुनिचन्द्रसूरिके शिष्य थे। प्रभावक चरित्रके लेखानुसार मुनिचन्द्रने-शान्तिसूरिसे प्रमाणविद्याका अध्ययन किया था। ये प्रागादवर्षाके रत्न थे। इन्होंने वि० सं० ११४३ में गुर्जर देशको अपने जन्मसे पूरा किया था। ये मडोच नगरमें ९ वर्षकी अल्पवयमें वि० सं० ११५२ में दीक्षित हुए थे तथा वि० सं० ११७४ में इन्होंने आचार्यपद पाया था। राजर्षि कुमारपालके राज्यकालमें वि० सं० १२२६ में इनका स्वर्गवास हुआ। प्रसिद्ध है कि-वि० सं० ११८१ वैशाख शुद्ध पूर्णिमाके दिन सिद्धराजकी सभामें इनका दिगम्बरवासी कुसुदचन्द्रसे वाद हुआ था और इसी वादमें विजय पानेके कारण देवसूरि चादि देवसूरि कहे जाने लगे थे। इन्होंने प्रमाणनवतत्त्वा-लोकालङ्कार नामक सूत्र ग्रन्थ तथा इसी सूत्रकी व्याख्याद्वारा नामक विस्तृत व्याख्या लिखी है। इनका प्रमाणनवतत्त्वालोकालङ्कार माणिक्यनन्दिकृत परीक्षा-मुखसूत्रका अपने ढंगसे किया गया दूसरा संस्करण ही है। इन्होंने परीक्षामुखके ६ परिच्छेदोंका विषय ठीक उसी क्रमसे अपने सूत्रके आद्य ६ परिच्छेदोंमें बतकिशित शब्दभेद तथा अर्थभेदके साथ प्रयित किया है। परीक्षामुखसे अतिरिक्त इसमें नयपरिच्छेद और वादपरिच्छेद नामक दो परिच्छेद और जोड़े गए हैं। माणिक्यनन्दिके सूत्रोंके सिवाय अकलङ्कके खविद्यतिवृत्त लघीयलक्ष्य, न्यायविनिश्चय तथा विशालन्दके तत्त्वार्थलोकातिरिक्तका भी पर्याप्त साहाय्य इस सूत्रग्रन्थमें लिखा गया है। इस तरह मिश्र मिश्र ग्रन्थोंमें विशालकित जैन-पद्यायोंका शब्द एवं अर्थदृष्टिसे सुन्दर संकलन इस सूत्रग्रन्थमें हुआ है।

परीक्षामुखसूत्रपर प्रभाचन्द्रकृत अमेयकमलमार्तण्ड नामकी विस्तृत व्याख्या है तथा अकलङ्कदेवके लघीयलक्ष्यपर इन्हीं प्रभाचन्द्रका न्यायकुसुदचन्द्र नामका बृहत्काय टीकाग्रन्थ है। प्रभाचन्द्रने इन मूल ग्रन्थोंकी व्याख्याके साथही साथ मूलग्रन्थसे सम्बद्ध विषयोंपर विस्तृत लेख भी लिखे हैं। इन लेखोंमें विविध विकल्पजालोंसे परपक्षका खंडन किया गया है। अमेयकमलमार्तण्ड और न्याय-कुसुदचन्द्रके रीक्षण एवं आह्लादक प्रकाशमें जब हम व्याख्याद्वारा नामको तुलनात्मक दृष्टिसे देखते हैं तब चादिदेवसूरिकी गुणग्राहिणी संग्रहदृष्टिकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। इनकी संग्राहक नीजमुद्धि अमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुद-चन्द्रसे अर्थ शब्द और भावोंको इतने चेतव्यमत्कारक ढंगसे जुन लेती है कि अनेके व्याख्याद्वारा नामके पद लेनेसे न्यायकुसुदचन्द्र तथा अमेयकमलमार्तण्डका आवाहिय विशद रीतिसे अवगत हो जाता है। वस्तुतः यह रत्नाकर उक्त दोनों ग्रन्थोंके शब्द-अर्थरत्नोंका सुन्दर आकर ही है। यह रत्नाकर मार्तण्डकी अपेक्षा चन्द्र (न्यायकुसुदचन्द्र) से ही अधिक उद्भूत हुआ है। प्रकरणोंके क्रम और पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्षके जमानेकी पद्धतिमें कहीं कहीं तो न्यायकुसुदचन्द्रका इतना अधिक शब्दसादृश्य है कि दोनों ग्रन्थोंकी पाठशुद्धिमें एक दूसरेका सुलभप्रतीकी तरह उपयोग किया जा सकता है।

प्रतिबिम्बवाद नामक प्रकरणमें बादि देवसूरिने अपने रत्नाकर (पृ० ८६५) में न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ४५५) में निर्दिष्ट प्रभाचन्द्रके मतके खंडन करनेका प्रयास किया है। प्रभाचन्द्रका मत है कि-प्रतिबिम्बकी उत्पत्तिमें जल आदि ब्रह्म उपादान कारण हैं तथा चन्द्र आदि बिम्ब निमित्तकारण। चन्द्रादि बिम्बोंका निमित्त पाकर जल आदिके परमाणु प्रतिबिम्बाकारसे परिणत हो जाते हैं।

बादि देवसूरि कहते हैं कि-मुखादिबिम्बोंसे छायापुद्गल निकलते हैं और वे जाकर दर्पण आदिमें प्रतिबिम्ब उत्पन्न करते हैं। वहाँ छायापुद्गलोंका मुखादि बिम्बोंसे निकलनेका सिद्धान्त देवसूरिने अपने पूर्वार्च्य श्रीहरिमग्नसूरिके धर्म-सारप्रकरणका अनुसरण करके लिखा है। वे इस समय यह भूल जाते हैं कि हम अपनेही ग्रन्थमें नैयायिकोंके ज्ञानसे रश्मियोंके निकलनेके सिद्धान्तका खंडन कर चुके हैं। जब हम भासुरूपवाली आंखसे भी रश्मियोंका निकलना युक्ति एवं अनुभवसे विरुद्ध बताते हैं तब मुख आदि मलिन बिम्बोंसे छायापुद्गलोंके निकलनेका समर्थन किस तरह किया जा सकता है? मजेदार बात तो यह है कि इस प्रकरणमें भी बादि देवसूरि न्यायकुसुदचन्द्रके साथही साथ प्रमेयकमल-मार्तण्डका भी शब्दशः अनुसरण करते हैं, और न्यायकुसुदचन्द्रमें निर्दिष्ट प्रभाचन्द्रके मतके खंडनकी धुनमें स्वयं ही प्रमेयकमलमार्तण्डके उसी आशयके शब्दोंको सिद्धान्त मान बैठते हैं। वे रत्नाकरमें (पृ० १९८) ही प्रमेयकमल-मार्तण्ड का शब्दानुसरण करते हुए लिख जाते हैं कि-“स्रच्छताविशेषादि जलदर्पणादयो मुखादिसादिप्रतिबिम्बाकारविकारधारिणः सम्पद्यन्ते।”-अर्थात् विशेष स्रच्छताके कारण जल और दर्पण आदि ही मुख और सूर्य आदि बिम्बोंके आकारवाली पर्यायों को धारण करते हैं। कबलाहारके प्रकरणमें इन्होंने प्रभाचन्द्रके न्यायकुसुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्डमें दी गई दृष्टान्तोंका नामोल्लेख पूर्वक पूर्वपक्षमें निर्देश किया है और उनका अपनी दृष्टिसे खंडन भी किया है। इस तरह बादि देवसूरिने जब रत्नाकर लिखना प्रारम्भ किया होगा तब उनकी आंखोंके सामने प्रभाचन्द्रके ये दोनों ग्रन्थ बराबर नाचते रहे हैं।

हेमचन्द्र और प्रभाचन्द्र-विक्रमकी १२ वीं शताब्दीमें आ० हेमचन्द्रसे जैनसाहित्यके हेमयुगका प्रारम्भ होता है। हेमचन्द्रने व्याकरण, काव्य, छन्द, योग, न्याय आदि साहित्यके सभी विभागोंपर अपनी श्रद्धा संप्राप्त कर लेखनी चलाकर भारतीय साहित्यके मंडारको खूब समृद्ध किया है। अपने बहुमुख भाण्ड्यके कारण ये ‘कलिकालसर्वज्ञ’ के नामसे भी ख्यात हैं। इनका जन्म-समय क्रांति की पूर्णिमा विक्रमसंवत् ११४५ है। वि० सं० ११५४ (ई० सन् १०९७) में ८ वर्षकी लघुवयमें इन्होंने धीसा धारण की थी। विक्रमसंवत् ११६६ (ई० सन् १११०) में २१ वर्षकी अवस्थामें ये सुरिपद पर प्रतिष्ठित हुए। ये महाराज जयसिंह सिद्धराज तथा राजर्षि कुमारपाळकी राजसभाओंमें सगुमान लब्धप्रतिष्ठ थे। वि० सं० १२२९ (ई० ११७३) में ८४ वर्षकी आयुमें ये दिवंगत हुए। इनकी न्यायविषयक रचना प्रमाणमीमांसा जैनन्यायके

अन्योंमें अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है । प्रमाणमीमांसाके निग्रह-स्थानके निरूपण और खंडनके समूचे प्रकरणमें तथा अनेकान्तमें दिए गए आठ दोषोंके परिहारके प्रसंगमें प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डका शब्दशः अनुसरण किया गया है । प्रमाणमीमांसाके अन्य स्थलोंमें प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डकी छाप साक्षात् न पड़कर प्रमेयरत्नमालाके द्वारा पड़ी है । प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्यने प्रमेयकमलमार्तण्डको ही संक्षिप्त कर प्रमेयरत्नमालाकी रचना की है । अतः मध्यकदवाली प्रमाणमीमांसामें बृहत्काय प्रमेयकमलमार्तण्डका सीधा अनुसरण न होकर अपने समान परिमाणवाली प्रमेयरत्नमालाका अनुसरण होना ही अधिक संगत मालूम होता है । प्रमाणमीमांसाके प्रायः प्रत्येक प्रकरण पर प्रमेयरत्नमालाकी शब्दरचनाने अपनी स्पष्ट छाप लगाई है । इस तरह आ० हेमचन्द्रने कहीं साक्षात् और कहीं परम्परया प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डको अपनी प्रमाणमीमांसा बनाते समय मद्देनजर रखा है । प्रमेयरत्नमाला और प्रमाणमीमांसाके स्थलोंकी तुलनाके लिए सिंची सीरिजसे प्रकाशित प्रमाणमीमांसाके भाषा टिप्पण देखना चाहिए ।

मलयगिरि और प्रभाचन्द्र-विक्रमकी १२ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध तथा तेरहवीं शताब्दीका प्रारम्भ जैनसाहित्यका हेमयुग कहा जाता है । इस युगमें आ० हेमचन्द्रके सहविहारी, प्रख्यात टीकाकार आचार्य मलयगिरि हुए थे । मलयगिरिने अवश्यकनिर्युक्ति, ओषनिर्युक्ति, नन्दीसूत्र आदि अनेकों आगमिकग्रन्थों पर संस्कृत टीकाएँ लिखी हैं । अवश्यकनिर्युक्ति की टीका (पृ० ३७१ A.) में वे अकलङ्कदेवके 'नयवाक्यमें भी स्यात्पदका प्रयोग करना चाहिए' इस मतसे असहमति जाहिर करते हैं । इसी प्रसंगमें वे पूर्वपक्षरूपसे लघीयलक्ष्यलक्षिवृत्ति (का० ६२) का 'नयोऽपि तथैव सन्त्यगेकान्तविषयः स्यात्' यह वाक्य उद्धृत करते हैं । और इस वाक्यके साथ ही साथ प्रभाचन्द्रकृत न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ६९१) से उक्त वाक्यकी व्याख्या भी उद्धृत करते हैं । व्याख्याका उद्धरण इस प्रकारसे लिया गया है—“अत्र टीकाकारेण व्याख्या कृता नयोऽपि नयप्रतिपादकमपि वाक्यं न केवलं प्रमाणवाक्यमित्यपिज्ञाच्चायः, तथैव स्यात्पदप्रयोगप्रकारेणैव सन्त्यगेकान्तविषयः स्यात्, यथा स्यात्स्थलेषु जीव इति स्यात्पदप्रयोगाभावे तु मिथ्यैकान्तगोचरतया दुर्नय एव स्यादिति ।”—इस अवतरणसे यह निश्चित हो जाता है कि मलयगिरिके सामने लघीयलक्ष्यकी न्यायकुमुदचन्द्र नामकी व्याख्या थी ।

अकलङ्कदेवने प्रमाण, नय और दुर्नयकी निम्नलिखित परिभाषाएँ की हैं—अनन्तधर्मालोक वस्तुको अखंडभावसे ग्रहण करनेवाला ज्ञान प्रमाण है । एकधर्मको मुख्य तथा अन्यधर्मोंको गौण करनेवाला, उनकी अपेक्षा रखनेवाला ज्ञान नय है । एकधर्मको ही ग्रहण करके जो अन्य धर्मोंका निषेध करता है—उनकी अपेक्षा नहीं रखता वह दुर्नय कहलाता है । अकलङ्कने प्रमाणवाक्यकी तरह नयवाक्यमें भी नयान्तरसापेक्षता दिखानेके लिए 'स्यात्' पदके प्रयोगका विधान किया है ।

आ० मलयगिरि कहते हैं कि—जब नयवाक्यमें स्यात्प्रदका प्रयोग किया जाता है तब 'स्यात्' शब्दसे सूचित होनेवाले अन्य अशेषधर्मोंको भी विषय करनेके कारण नयवाक्य नयरूप न होकर प्रमाणरूप ही हो जायगा। इनके मतसे जो नय एक धर्मको अवधारणपूर्वक विषय करके इतरनयसे निरपेक्ष रहता है वही नय कहा जा सकता है। इसीलिए इन्होंने सभी नयोंको मिथ्यावाद कहा है। मलयगिरिके कोषमें सुनय नामका कोई शब्द ही नहीं है। जब स्यात्प्रदका प्रयोग किया जाता है तब वह प्रमाणकोटिमें पहुँचेगा तथा जब नयान्तरनिरपेक्ष रहेगा तब वह नयकोटिमें जाकर मिथ्यावाद हो जायगा। इन्होंने अकलंकदेवके इस तत्त्वको मदेनजर नहीं रखा कि—नयवाक्यमें स्यात् शब्दसे सूचित होनेवाले अशेषधर्मोंका मात्र सङ्काव ही जाना जाता है, सो भी इसलिए कि कोई बाड़ी उनका ऐकान्तिक विषय न समझ ले। प्रमाणवाक्यकी तरह नयवाक्यमें स्याच्छब्दसे सूचित होनेवाले अशेषधर्म प्रमाणमादसे विषय नहीं होते। यही तो प्रमाण और नयमें भेद है कि—जहाँ प्रमाणमें अशेष ही धर्म एकरूपसे—अखण्डभावसे विषय होते हैं वहाँ नयमें एकधर्म मुख्य होकर अन्य अशेषधर्म गौण हो जाते हैं, 'स्यात्' शब्दसे मात्र उनका सङ्काव सूचित होता रहता है। दुर्नयमें एकधर्म ही विषय होकर अन्य अशेषधर्मोंका तिरस्कार हो जाता है। अतः दुर्नयसे सुनयका पार्यव्य करनेके लिए सुनयवाक्यमें स्यात्प्रदका प्रयोग आवश्यक है। मलयगिरिके द्वारा की गई अकलंककी यह समालोचना उन्हीं तक सीमित रही। हेमचन्द्र आदि सभी आचार्य अकलंकके उक्त प्रमाण, नय और दुर्नयके विभागको निर्वादादरूपसे मानते आए हैं। इतना ही नहीं, उपाध्याय यशोविजयने मलयगिरिकी इस समालोचनाका सगुणिक उत्तर पुस्तकविनिश्चय (पृ० १७ B.) में दे ही दिया है। उपाध्यायजी लिखते हैं कि यदि नयान्तरसापेक्ष नयका प्रमाणने अन्तर्भाव किया जायगा तो व्यवहारमय तथा शब्दनय भी प्रमाण ही हो जायेंगे। नयवाक्यमें होनेवाला स्यात्प्रदका प्रयोग तो अनेक धर्मोंका मात्र द्योतन करता है, वह उन्हें विवक्षितधर्मकी तरह नयवाक्यका विषय नहीं बनाता। इसलिए नयवाक्यमें मात्र स्यात्प्रदका प्रयोग होनेसे वह प्रमाण कोटिमें नहीं पहुँच सकता।

देवभद्र और प्रभाचन्द्र—देवभद्रसूरि मलयगिरिच्छके श्रीचन्द्रसूरिके शिष्य थे। इन्होंने न्यायवतारटीका पर एक टिप्पण लिखा है। श्रीचन्द्रसूरिने वि० संवत् ११९३ (सन् ११३६) के दिवालीके दिन 'मुनिमुप्रतचरित्र' पूर्ण किया था। अतः इनके साक्षात् शिष्य देवभद्रका समय भी करीब सन् ११५० से १२०० तक सुनिश्चित होता है। देवभद्रने अपने न्यायवतार टिप्पणमें प्रभाचन्द्रकृत न्यायकुसुदचन्द्रके निम्नलिखित दो अवतरण लिए हैं—

१—“परिमण्डलाः परमाणवः तेषां भावः...परिमण्डलं वर्तुल्लक्ष्म, न्यायकुसुदचन्द्रे प्रभाचन्द्रेणाप्येवं व्याख्यातत्वात्।” (पृ० २५)

२-“प्रभाचन्द्रस्तु न्यायकुसुमद्वन्द्वे विभाषा सहस्रप्रतिपादको ग्रन्थविशेषः तां विदन्ति अधीयते वा वैभाषिकाः इत्युवाच ।” (पृ० ७९)

ये दोनों अवतारण न्यायकुसुमद्वन्द्वमें क्रमशः पृ० ४३८ पं० १३ तथा पृ० ३९० पं० १ में पाए जाते हैं । इसके सिवाय न्यायावतारटिप्पणमें अनेक स्थानोंपर न्यायकुसुमद्वन्द्वका प्रतिबिम्ब स्पष्टरूपसे झलकता है ।

मल्लिषेण और प्रभाचन्द्र-आ० हेमचन्द्रकी अन्ययोग्यवच्छेदिकाके ऊपर मल्लिषेण की स्याद्वादमंजरी नामकी सुन्दर टीका मुद्रित है । ये श्वेताम्बर सम्प्रदायके नागेन्द्रगच्छीय श्रीउदयप्रभसूरिके शिष्य थे । स्याद्वादमंजरीके अन्तमें भी हुई प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि-इन्होंने शक संवत् १२१४ (ई० १२९३) में वीष्मालिका शनिवारके दिन जिनप्रभसूरिकी सहायतासे स्याद्वादमंजरी पूर्ण की थी । स्याद्वादमंजरीकी शब्दरचनापर न्यायकुसुमद्वन्द्वका एक विलक्षण प्रभाव है । मल्लिषेणने का० १४ की व्याख्यामें विधिवादकी चर्चा की है । इसमें उन्होंने विधिवादियोंके आठ मतोंका निर्देश किया है । साथही साथ अपनी ग्रन्थमर्यादाके विचारसे इन मतोंके पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्षोंके विशेष परिज्ञानके लिए न्यायकुसुमद्वन्द्व ग्रन्थ देखनेका अनुरोध निम्नलिखित शब्दोंमें किया है-
“एतेषा निराकरणं सपूर्वोत्तरपक्षं न्यायकुसुमद्वन्द्वदत्तसेवम् ।” इस वाक्यसे स्पष्ट हो जाता है कि मल्लिषेण न केवल न्यायकुसुमद्वन्द्वके विभिन्न अभ्यासी ही थे किन्तु वे स्याद्वादमंजरीमें अन्वर्तित या अल्पवर्तित विषयोंके ज्ञानके लिए न्यायकुसुमद्वन्द्वको प्रमाणभूत आकरग्रन्थ मानते थे । न्यायकुसुमद्वन्द्वमें विधिवादकी विस्तृत चरचा पृ० ५७३ से ५९८ तक है ।

गुणरत्न और प्रभाचन्द्र-विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें तथा गच्छमें श्रीदेवसुन्दरसूरि एक प्रभावक आचार्य हुए थे । इनके पट्टशिष्य गुणरत्नसूरिने हरिभद्रकृत ‘बह्दर्शनसमुच्चय’ पर तर्करहस्यटीपिका नामकी बृहद्दृष्टि लिखी है । गुणरत्नसूरिने अपने किन्नारजसमुच्चय ग्रन्थकी प्रतियोग्य छेन्नकल विक्रम संवत् १४६८ दिया है । अतः इनका समय वीं विक्रमकी १५ वीं सदीका उत्तरार्ध झुनिश्चित है । गुणरत्नसूरिने बह्दर्शनसमुच्चय टीकाके जैनमत निरूपणमें मोक्षतत्त्वका सविस्तर विषाद निवेचन किया है । इस प्रकरणमें इन्होंने स्वाभिमत मोक्षस्वरूपके समर्थनके साथही साथ वैशेषिक, सांख्य, वेदान्ती तथा बौद्धोंके द्वारा माने गए मोक्षस्वरूपका नष्टे विचारसे निराकरण भी किया है । इस परखंडनके भागमें न्यायकुसुमद्वन्द्वका मात्र अर्ध और भावकी दृष्टिसे ही नहीं, किन्तु शब्दरचना तथा युक्तियोंके कोटिक्रमकी दृष्टिसे भी पर्याप्त अनुसरण किया गया है । इस प्रकरणमें न्यायकुसुमद्वन्द्वका इतना अधिक शब्दसादृश्य है कि इससे न्यायकुसुमद्वन्द्वके पाठकी शब्दशुद्धि करनेमें भी पर्याप्त सहायता मिली है । इसके

१ देखो-न्यायकुसुमद्वन्द्व पृ० ८१३ से ८४७ तकके टिप्पण ।

सिवाय इस शक्तिके अन्य स्थलोंपर खासकर परमखंडनके मार्गोंपर न्यायकुमुद-चन्द्रकी शुभ्रज्योत्स्ना जहाँ तहाँ छिटक रही है ।

यशोविजय और प्रभाचन्द्र-उपाध्याय यशोविजयजी विक्रमकी १८ वीं सदीके युगप्रवर्तक विद्वान् थे । इन्होंने विक्रम संवत् १६८८ (ईस्वी १६३१) में पं० नयविजयजीके पास बीछा ग्रहण की थी । इन्होंने काशीमें नव्यन्यायका अध्ययन कर बादमें किसी विद्वान् पर विजय पानेसे 'न्यायविशारद' पद प्राप्त किया था । श्रीविजयप्रभसूरिने वि० सं० १७१८ में इन्हें 'वाचक-उपाध्याय' का सम्मानित पद दिया था । उपाध्याय यशोविजय वि० सं० १७४३ (सं० १९८६) में अनशन पूर्वक स्वर्गस्थ हुए थे । दसवीं शताब्दीसे ही नव्य-न्यायके विकासने भारतीय दर्शनशास्त्रमें एक अपूर्व क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी । यद्यपि दसवीं सदीके बाद अनेकों बुद्धिवाली जैनाचार्य हुए पर कोई भी उस नव्यन्यायके शब्दजालके जटिल अध्ययनमें नहीं पड़ा । उपाध्याय यशोविजय ही एकमात्र जैनाचार्य हैं जिन्होंने नव्यन्यायका समग्र अध्ययन कर उसी नव्यपद्धतिसे जैनपदार्थोंका निरूपण किया है । इन्होंने सैकड़ों ग्रन्थ बनाए हैं । इनका अध्ययन अत्यन्त तत्पस्पर्शी तथा बहुमुख था । सभी पूर्ववर्ती जैनाचार्योंके ग्रन्थोंका इन्होंने विधिबत् पारायण किया था । इनकी तीव्र दृष्टिसे धर्मभूषण-भक्तिकी छोटीसी पर बुविशब्द रचनावाली न्यायदीपिका भी नहीं छूटी । जैनतर्क-माषामें अनेक जगह न्यायदीपिकाके शब्द आजपूर्वसे ले लिए गए हैं । इनके शास्त्रवार्तासमुच्चयदीका आदि दृष्टग्रन्थोंके परपक्ष खंडनवाले अंशोंमें प्रभाचन्द्रके विविध चिकित्साल स्पष्टरूपसे प्रतिबिम्बित हैं । इन्होंने प्रभाचन्द्रका केवल अनु-सरण ही नहीं किया है किन्तु साम्प्रदायिक झीमुक्ति और कबलाहार जैसे प्रकर-णोंमें प्रभाचन्द्रके मन्तव्योंकी समालोचना भी की है ।

उपरिलिखित वैदिक-अवैदिकदर्शनोंकी तुलनासे प्रभाचन्द्रके अगाध, तत्पस्पर्शी, सूक्ष्म दार्शनिक अध्ययनका यत्किंचित् आभास हो जाता है । बिना इस प्रकारके बहुमुक्त अवलोकनके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र जैसे जैनदर्शनके प्रतिनिधि ग्रन्थोंके प्रणयनका उल्लास ही नहीं हो सकता था । जैनदर्शनके मध्य-युगीन ग्रन्थोंमें प्रभाचन्द्रके ये ग्रन्थ अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । ये पूर्वयुगीन ग्रन्थोंका प्रतिबिम्ब लेकर भी पारदर्शी दर्पणकी तरह उत्तरकालीन ग्रन्थोंके लिए आधारभूत हुए हैं, और यही इनकी अपनी विशेषता है । बिना इस आदान-प्रदानके दार्शनिक साहित्यका विकास इस रूपमें तो हो ही नहीं सकता था ।

प्रभाचन्द्रका आयुर्वेदज्ञान-प्रभाचन्द्र शुष्क तार्किक ही नहीं थे; किन्तु उन्हें जीवनोपयोगी आयुर्वेदका भी परिज्ञान था । प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४२४) में वे बधिरता तथा अन्य कर्णरोगोंके लिए बलातैलका उल्लेख करते हैं । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ६६९) में छाया आदिको पौद्गलिक सिद्ध करते समय

उनमें गुणोंका सङ्गाव दिखानेके लिए उनने वैयकशास्त्रका निम्नलिखित श्लोक प्रमाणरूपसे उद्धृत किया है—

“आतपः कटुको रुधः जया मधुरशीतलः ।

कषायमधुरा ज्योत्स्ना सर्वव्याधिहरः(करं) तमः ॥

यह श्लोक राजनिषण्ड आदिमें कुछ पाठभेदके साथ पाया जाता है । इसी तरह वैशेषिकोंके गुणपदार्थका खंडन करते समय (न्यायकु० पृ० २७५) वैयक-तन्त्रमें प्रसिद्ध विषय, स्थिर, खर, पिच्छल आदि गुणोंके नाम लिए हैं । अभेयकमलमार्तण्ड (पृ० ८) में नङ्गलोदक-तृणविशेषके जठसे पादरोगकी उत्पत्ति बताई है ।

प्रभाचन्द्रकी कल्पनाशक्ति-सामान्यतः वस्तुकी अनन्तात्मकता या अनेकधर्माधारताकी सिद्धिके लिए अकलंक आदि आचार्योंने चित्रज्ञान, सामान्य-विशेष, मेचकज्ञान और नरसिंह आदिके दृष्टान्त दिए हैं । पर प्रभाचन्द्रने एक ही वस्तुकी अनेकरूपताके समर्थनके लिए न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० २६९) में ‘उमेश्वर’ का दृष्टान्त भी दिया है । वे लिखते हैं कि जैसे एक ही शिव नामाङ्गमें रुमा-गर्वातीरुम होकर भी दक्षिणाङ्गमें विरोधी शिवरूपको धारण करते हैं और अपने अर्धनारीश्वररूपको दिखाते हुए अखंड बने रहते हैं उसी तरह एक ही वस्तु विरोधी दो या अनेक आकारोंको धारण कर सकती है । इसमें कोई विरोध नहीं होना चाहिए ।

उदारविचार-आ० प्रभाचन्द्र सचे तार्किक थे । उनकी तर्कणाशक्ति और उदार विचारोंका स्पष्ट परिचय ब्राह्मणल जातिके खण्डनके प्रसङ्गमें मिलता है । इस प्रकरणमें उन्होंने ब्राह्मणल जातिके निखल और एकलका खण्डन करके उसे सहस्रपरिणमन रूप ही सिद्ध किया है । वे जन्मना जातिका खण्डन बहुविध विकल्पोंसे करते हैं और स्पष्ट शब्दोंमें उसे गुणकर्मानुसारिणी मानते हैं । वे ब्राह्मणलजातिनिमित्तक वर्णाश्रमव्यवस्था और तप दान आदिके व्यवहारको भी कियाविशेष और यज्ञोपवीत आदि विहसे उपलक्षित व्यक्ति-विशेषमें ही करनेकी सलाह देते हैं—

“ननु ब्राह्मणलादिसामान्यान्मन्युपगमे कथं भवतां वर्णाश्रमव्यवस्था तच्चिबन्वनी वा तपोदानादिव्यवहारः स्यात् ? इत्यप्यचोद्यम् ; कियाविशेषयज्ञोपवीतादिचिह्नो-पलक्षिते व्यक्तिविशेषे तद्व्यवस्थायां तस्यव्यवहारस्य चोपपत्तेः । तत्र भवत्कल्पितं नित्यादिस्वभावं ब्राह्मण्यं कुतश्चिदपि प्रमाणात् प्रसिद्ध्यतीति कियाविशेषविबन्धन एवायं ब्राह्मणादिव्यवहारो भुक्तः ।”

[न्यायकुसुदचन्द्र पृ० ७७८ । अभेयकमलमार्तण्ड पृ० ४८६]

“प्रश्न—यदि ब्राह्मणल आदि जातियों नहीं हैं तब जैनमतमें वर्णाश्रमव्यवस्था और ब्राह्मणल आदि जातियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला तप दान आदि व्यवहार कैसे होगा ? उत्तर—जो व्यक्ति यज्ञोपवीत आदि चिह्नोंको धारण करें तथा

ब्राह्मणोंके योग्य विशिष्ट क्रियाओंका आचरण करें उनमें ब्राह्मणल जातिसे सम्बन्ध रखनेवाली वर्णाश्रमव्यवस्था और तप दान आदि व्यवहार भरी भोंति किये जा सकते हैं। अतः आपके द्वारा माना गया निम्न आदि स्वभाववाला ब्राह्मणल किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता, इसलिये ब्राह्मण आदि व्यवहारों को क्रियासुसार ही मानना युक्तिसंगत है।”

वे प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४८७) में और भी स्पष्टतासे लिखते हैं कि—
“ततः सदृशक्रियापरिणामादिनिबन्धनैवेयं ब्राह्मणक्षत्रियादिव्यवस्था—इसलिये यह समस्त ब्राह्मण क्षत्रिय आदि व्यवस्था सदृश क्रिया रूप सदृश परिणमन आदिके निमित्तसे ही होती है।”

बौद्धोंके धम्मपद और जे० आगम उत्तराध्ययनसूत्रमें स्पष्ट शब्दोंमें ब्राह्मणल जातिको गुण और कर्मके अनुसार बताकर उसको जन्मना माननेके सिद्धान्तका खण्डन किया है—

“न जडाहिं न गोतेहिं न जप्ता होति ब्राह्मणो ।

जम्हि सर्वं न धम्मो न सो सुची सो न ब्राह्मणो ॥

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसंभवं ।” [धम्मपद पा० ३९३]

“कम्मुणा बंसणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ ।

वईसो कम्मुणा होइ सुहो इवइ कम्मुणा ॥” [उत्तरा० २५।३३]

द्विगम्बर आचार्योंमें ब्राह्मचरित्रके कर्ता श्री जटासिंहनन्दि कितने स्पष्ट शब्दोंमें जातिको क्रियानिमित्तक लिखते हैं—

“क्रियाविशेषाद् व्यवहारमात्रात् दयागिरिस्नातुषिस्नपनेदात् ।

विष्टाश्च वर्णास्तुरो बवन्ति न चान्यथा वर्णचतुष्टयं स्यात् ॥”

[ब्राह्मचरित २५।११]

“शिष्टजन इन ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको ‘अहिंसा आदि व्रतोंका पालन, रक्षा करना, खेती आदि करना, तथा शिल्पवृत्ति’ इन चार प्रकारकी क्रियाओंसे ही मानते हैं। यह सब वर्णव्यवस्था व्यवहार मात्र है। क्रियाके सिवाय और कोई वर्णव्यवस्थाका हेतु नहीं है।”

ऐसे ही विचार तथा उद्धार पद्मपुराणकार रविषेण, आदिपुराणकार जिवसेन, तथा धर्मपरीक्षाकार अमितागति आदि आचार्योंके पाए जाते हैं। आ० प्रमाचन्द्रने, इन्हीं वैदिक संस्कृति द्वारा अनभिभूत, परम्परागत जैनसंस्कृतिके विशुद्ध विचारोंका, अपनी प्रखर तर्कधारासे परितुष्टि कर पोषण किया है। यद्यपि ब्राह्मणलजातिके खण्डन करते समय प्रमाचन्द्रने प्रधानतया उसके निम्न और ब्रह्मप्रभवत्व आदि अशोंके खण्डनके लिए इस प्रकरणको लिखा है और इसके लिखनेमें प्रज्ञाकर गुप्तके प्रमाणवार्तिकालङ्कार तथा शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहने

पर्याप्त प्रेरणा दी है परन्तु इससे प्रभाचन्द्रकी अपनी जातिविषयक सतक चिन्तनश्रुतिमें कोई कमी नहीं आती। उन्होंने उसके हर एक पहलू पर विचार करके ही अपने सफ विचार स्थिर किए।

§ २. प्रभाचन्द्रका समय—

कार्यक्षेत्र और गुरुकुल-आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र आदिकी प्रशस्तिमें 'पद्मनन्दि सैद्धान्त' को अपना गुरु लिखा है। श्रवणवेल्लोलाके शिलालेख (नं० '४०') में गोलाचार्यके शिष्य पद्मनन्दि सैद्धान्तिकका उल्लेख है। और इसी शिलालेखमें आगे चलकर प्रथिततर्क-ग्रन्थकार, शब्दाम्मोहभास्कर प्रभाचन्द्रका शिष्यरूपसे वर्णन किया गया है। प्रभाचन्द्रके प्रथिततर्कग्रन्थकार और शब्दाम्मोहभास्कर ये दोनों विशेषण यह स्पष्ट बतला रहे हैं कि ये प्रभाचन्द्र न्यायकुमुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे प्रथित तर्कग्रन्थोंके रचयिता थे तथा शब्दाम्मोहभास्करनामक जैनग्रन्थोंके कर्ता भी थे। इसी शिलालेखमें पद्मनन्दि सैद्धान्तिकको अविद्वक्कादिक और कौमारदेवप्रती लिखा है। इन विशेषणोंसे ज्ञात होता है कि—पद्मनन्दि सैद्धान्तिकने कर्णवेष होनेके पहिले ही धीखा चारण की होगी और इसीलिए ये कौमारदेवप्रती कहे जाते थे। ये मूलसंघान्तर्गत नन्दिगणके प्रमेयरूप देशीगणके श्रीगोलाचार्यके शिष्य थे। प्रभाचन्द्रके सधर्मा श्रीकुलभूषणमुनि थे। कुलभूषण मुनि भी सिद्धान्त शास्त्रोंके पारगामी और चारित्रसागर थे। इस शिलालेखमें कुलभूषणमुनिकी शिष्य-परम्पराका वर्णन है, जो दक्षिणदेशमें हुई थी। तात्पर्य यह कि आ० प्रभाचन्द्र मूलसंघान्तर्गत नन्दिगणकी आचार्यपरम्परामें हुए थे। इनके गुरु पद्मनन्दि सैद्धान्त थे और सधर्मा थे कुलभूषणमुनि। मान्य होता है कि प्रभाचन्द्र पद्मनन्दिसे शिक्षा-धीखा लेकर धारानगरीमें चले आए, और यहीं उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की। ये धारावीश ओजके मान्य विद्वान् थे। प्रमेयकमलमार्तण्डकी "श्रीगोला-देवराज्ये धारानिवासिना" आदि अन्तिम प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि—यह ग्रन्थ धारा-नगरीमें ओजदेवके राज्यमें बनाया गया है। न्यायकुमुदचन्द्र, आराधनागण-कथाकोश और महापुराणटिप्पणकी अन्तिम प्रशस्तिमें "श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना" शब्दोंसे इन ग्रन्थोंकी रचना ओजके उत्तराधिकारी जयसिंह-देवके राज्यमें हुई ज्ञात होती है। इसलिए प्रभाचन्द्रका कार्यक्षेत्र धारानगरी ही मान्य होता है। संभव है कि इनकी शिक्षा-धीखा दक्षिणमें हुई हो।

श्रवणवेल्लोलाके शिलालेख नं० ५५ में मूलसंघके देशीगणके देवेन्द्रसैद्धान्तदे-वका उल्लेख है। इनके शिष्य चतुर्मुखदेव और चतुर्मुखदेवके शिष्य गोपनन्दि थे। इसी शिलालेखमें इन गोपनन्दिके सधर्मा एक प्रभाचन्द्रका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

“अवर सचमैद-

श्रीधाराधिपभोजराजमुकुटप्रोतामरश्मिच्छटा-

च्छायाकुङ्कुमपङ्कलितवरणाम्बोजातलक्ष्मीधवः ।

न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शान्दाब्जरोदोमणिः,

स्थेयात्पण्डितपुण्डरीकतरणिः श्रीमान् प्रभाचन्द्रमाः ॥ १७ ॥

श्रीचतुर्मुखदेवानां शिष्योऽवृष्यः प्रवादिभिः ।

पण्डितश्रीप्रभाचन्द्रो रुद्रवादिगजाङ्गुः ॥ १८ ॥”

इन श्लोकोर्मि वर्णित प्रभाचन्द्र भी धाराधीश भोजराजके द्वारा पूज्य थे, न्यायरूप कमलसमूह (प्रमेयकमल) के दिनमणि (मार्तण्ड) थे, शान्दरूप अब्ज (शब्दाम्बोज) के विकास करनेको रोदोमणि (भास्कर) के समान थे । पण्डित रूपी कमलोंके प्रफुल्लित करने वाले सूर्य थे, रुद्रवादि गजोंको बध करनेके लिए अङ्गुशके समान थे तथा चतुर्मुखदेवके शिष्य थे । क्या इस शिलालेखमें वर्णित प्रभाचन्द्र और पद्मनन्द सैद्धान्तके शिष्य, प्रथिततर्कग्रन्थकार एवं शब्दाम्बोजभास्कर प्रभाचन्द्र एक ही व्यक्ति हैं ? इस प्रश्न का उत्तर ‘हाँ’ में दिया जा सकता है, पर इसमें एक ही बात नहीं है । वह है-गुरुरूपसे चतुर्मुखदेवके उल्लेख होनेकी । मैं समझता हूँ कि-यदि प्रभाचन्द्र धारामें आनेके बाद अपने ही देशीयगणके श्री चतुर्मुखदेवकी आदर और गुरुकी दृष्टिसे देखते हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । पर यह धुनिश्चित है कि प्रभाचन्द्रके आश और परमादरणीय उपास्य गुरु पद्मनन्द सैद्धान्त ही थे । चतुर्मुखदेव द्वितीय गुरु या गुरुसम हो सकते हैं । यदि इस शिलालेखके प्रभाचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि के रचयिता एक ही व्यक्ति हैं तो यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि प्रभाचन्द्र धाराधीश भोजके समकालीन थे । इस शिलालेखमें प्रभाचन्द्रको गोपनन्दिक सचर्मा कहा गया है । हलेबेल्लोकके एक शिलालेख (नं० ४९९, जैनशिलालेखसंग्रह) में होयसल्लनरेश एरेयन्न द्वारा गोपनन्द पण्डितदेवको दिए गए दानका उल्लेख है । यह दान वीष शुद्ध १३, संवत् १०१५ में दिया गया था । इस तरह सन् १०९४ में प्रभाचन्द्रके सचर्मा गोपनन्दिकी स्थिति होनेसे प्रभाचन्द्रका समय सन् १०६५ तक माननेका पूर्ण समर्थन होता है ।

समयविचार-आचार्य प्रभाचन्द्रके समयके विषयमें डॉ० पाठक, प्रेमीजी*

* श्रीमान् प्रेमीजीका विचार मजबूत मिला है । वे अपने “श्रीचन्द्र और प्रभाचन्द्र” लेख (जनेकान्त नं० ४ अंक १) में महापुराणटिप्पणकार प्रभाचन्द्र तथा प्रमेयकमलमार्तण्ड और यथकथाकोश आदिके कर्त्ता प्रभाचन्द्रका एक ही व्यक्ति होना सूचित करते हैं । वे अपने एक पत्रमें मुझे लिखते हैं कि-“हम समझते हैं कि प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमचन्द्रके कर्त्ता प्रभाचन्द्र ही महापुराणटिप्पणके कर्त्ता हैं । और तत्पार्थवृत्तिपद (सर्वार्थसिद्धिके पदोंका प्रतीकरण), समाधितत्रयीका, आलानुशासन-शिल्प, क्रियाकलापटीका, प्रवचनसारसरोजभास्कर (प्रवचनसारकी टीका) आदिके कर्त्ता, और शायद रत्नकरण्डवीकाके कर्त्ता भी वही है ।”

तथा मुस्तार सा० आदिका प्रायः सर्वसम्मत मत यह रहा है कि आचार्य प्रभाचन्द्र इसाकी ८ वीं शताब्दीके उत्तरार्ध एवं नवी शताब्दीके पूर्वार्धवर्त विद्वात् थे । और इसका मुख्य आधार है जिनसेनकृत आदिपुराण का यह श्लोक—

“चन्द्रांशुशुभ्रवशसं प्रभाचन्द्रकविं स्तुवे ।

कृत्वा चन्द्रोदयं येन चन्द्रदाहादितं जगत् ॥”

अर्थात्—‘जिनका यश चन्द्रमाकी किरणोंके समान धवल है उन प्रभाचन्द्रक-
विकी स्तुति करता हूँ । जिन्होंने चन्द्रोदयकी रचना करके जगत् को आह्लादित
किया था ।’ इस श्लोकमें चन्द्रोदयसे न्यायकुसुदचन्द्रोदय (न्यायकुसुदचन्द्र)
ग्रन्थका सूचन समझ गया है । आ० जिनसेनने अपने गुरु वीरसेनकी अधूरी
जयधवला टीकाको शक सं० ७५९ (ईसवी ८३७) की फाल्गुन शुक्ला दशमी
तिथिको पूर्ण किया था । इस समय अमोघवर्षका राज्य था । जयधवलाकी समा-
प्तिके अनन्तर ही आ० जिनसेनने आदिपुराणकी रचना की थी । आदिपुराण
जिनसेनकी अन्तिम कृति है । वे इसे अपने जीवनमें पूर्ण नहीं कर सके थे । उसे
इनके शिष्य गुणभद्रने पूर्ण किया था । तात्पर्य यह कि जिनसेन आचार्यने ईसवी
८४० के लगभग आदिपुराणकी रचना प्रारम्भ की होगी । इसमें प्रभाचन्द्र तथा
उनके न्यायकुसुदचन्द्रका उल्लेख मानकर डॉ० पाठक आदिने निर्विवादरूपसे प्रभा-
चन्द्रका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध तथा नवी का पूर्वार्ध निश्चित
किया है ।

सुहृद्वर पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने न्यायकुसुदचन्द्र प्रथमभाग की प्रस्तावना
(पृ० १२३) में डॉ० पाठक आदिके मतका निरास करते हुए प्रभाचन्द्रका

† पं० कैलाशचन्द्रजीने आदिपुराणके ‘चन्द्रांशुशुभ्रवशसं’ श्लोकमें चन्द्रोदयकार
किसी अन्य प्रभाचन्द्रकविका उल्लेख बताया है, जो ठीक है । पर उन्होंने आदिपुराण-
कार जिनसेनके द्वारा न्यायकुसुदचन्द्रकार प्रभाचन्द्रके स्मृत होनेमें बाधक जो अन्य चीज
हेतु दिए हैं वे बलवत् नहीं मालूम होते । यतः (१) आदि-पुराणकार इसके लिए बाध्य
नहीं माने जा सकते कि यदि वे प्रभाचन्द्रका स्मरण करते हैं तो उन्हें प्रभाचन्द्रके द्वारा
स्मृत अनन्तवीर्य और विद्यानन्दका स्मरण करना ही चाहिए । विद्यानन्द और अनन्तवीर्यका
समय ईसाकी नवी शताब्दीका पूर्वार्ध है, और इसलिये वे आदिपुराणकारके समकालीन
होते हैं । यदि प्रभाचन्द्र भी ईसाकी नवी शताब्दीके विद्वान् होते, तो भी वे अपने
समकालीन विद्यानन्द आदि आचार्योंका स्मरण करके भी आदिपुराणकार द्वारा स्मृत हो-
सकते थे । (२) ‘जयन्त और प्रभाचन्द्र’ की तुलना करते समय मैं जयन्तका समय
ई० ७५० से ८४० तक सिद्ध कर आया हूँ । यतः समकालीनवृद्ध जयन्त से प्रभावित
होकरभी प्रभाचन्द्र आदिपुराणमें उल्लेख्य हो सकते हैं । (३) गुणभद्रके आत्मानुशासन से
‘अन्धादर्यं महानन्धः’ श्लोक उद्धृत किया जाना अवश्य ऐसी बात है जो प्रभाचन्द्रका
आदिपुराणमें उल्लेख होनेकी बाधक हो सकती है । क्योंकि आत्मानुशासनके “जिन-
सेनाचार्यपादस्मरणाचीनचेतसाम् । गुणभद्रमदन्वानां कृतिरात्मानुशासनम् ॥”

समय ई० ९५० से १०२० तक निर्धारित किया है। इस निर्धारित समयकी शताब्दियाँ तो ठीक हैं पर दशकोंमें अन्तर है। तथा जिन आधारोंसे यह समय निश्चित किया गया है वे भी अग्रान्त नहीं हैं। पं० जीने प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंमें ज्योमशिवआचार्यकी ज्योमवती टीकाका प्रभाव देखकर प्रभाचन्द्रकी पूर्वावधि ९५० ई० और पुष्पदन्तकृत महापुराणके प्रभाचन्द्रकृत टिप्पणको वि० सं० १०८० (ई० १०९३) में समाप्त मानकर उत्तरावधि १०२० ई० निश्चित की है। मैं 'ज्योमशिव और प्रभाचन्द्र' की तुलना करते समय (पृ० ८) ज्योमशिवका समय ईसाकी सातवीं शताब्दीका उत्तरार्ध निर्धारित कर आया हूँ। इस-लिए मात्र ज्योमशिवके प्रभावके कारण ही प्रभाचन्द्रका समय ई० ९५० के बाद नहीं जा सकता। महापुराणके टिप्पणकी वस्तुस्थिति तो यह है कि-पुष्पदन्तके महापुराण पर भीचन्द्र आचार्यका भी टिप्पण है और प्रभाचन्द्र आचार्यका भी। ब्रह्माक्षरगणके भीचन्द्रका टिप्पण भोजदेवके राज्यमें बनाया गया है। इसकी प्रशस्ति निम्न लिखित है—

इस अन्तिमकोशसे ज्ञात होता है की यह ग्रन्थ जिनसेन स्वामीकी मृत्युके बाद बनाया गया है, क्योंकि वही समय जिनसेनके पादोंके सरणके लिए ठीक जँचता है। अतः आत्मानुशासनका रचनाकाल सन् ८५० के करीब माक्स होता है। आत्मानुशासन पर प्रभाचन्द्रकी एक टीका उपलब्ध है। उसमें प्रथम श्लोकका उत्थान वाक्य इस प्रकार है—
 “बृहद्धर्मज्ञातुल्लोकसेनस्य विषयव्यामुग्धबुद्धेः सम्बोधनव्याजेन सर्वसम्बोध-
 कारकं सम्मार्गमुपदर्शयितुकामो गुणभद्रदेवः॥” अर्थात्-गुणभद्र स्वामीने विषयोकी ओर चक्क चित्तवृत्तिवाले बड़े धर्मगर्ह (!) लोकसेनको समझानेके बहाने आत्मानुशासन ग्रन्थ बनाया है। ये लोकसेन गुणभद्रके प्रियशिष्य थे। उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें इन्हीं लोकसेनको साथ गुणभद्रने 'विदितसकलशास्त्र, मुनीश, कवि अविकल-
 वृत्त' आदि विशेषण दिए हैं। इससे इतना अनुमान तो सहज ही किया जा सकता है कि आत्मानुशासन उत्तरपुराणके बाद तो नहीं बनाया गया; क्योंकि उस समय लोकसेन मुनि विषयव्यामुग्धबुद्धि न होकर विदितसकलशास्त्र एवं अविकलवृत्त हो गए थे। अतः लोकसेनकी प्रारम्भिक अवस्थामें, उत्तर पुराणकी रचनाके पहिले ही आत्मानुशासनका रचा जाना अविकल संभव है। पं० नाम्प्रसन्नजी प्रेमीने विद्वद्भक्तमात्र (१० ७५) में यही संभावना की है। आत्मानुशासन गुणभद्रकी प्रारम्भिक कृति ही माक्स होती है। और गुणभद्रने इसे उत्तरपुराणके पहिले जिनसेन की मृत्युके बाद बनाया होगा। परन्तु आत्मानुशासनकी अन्तरिक जाँच करने से हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि इसमें अन्य कवियोंके सुभाषितोंका भी ब्यावसर समावेश किया गया है। उदाहरणार्थ—
 आत्मानुशासनका ३२ वाँ पद्य 'नेता यस्य बृहस्पतिः' मरुहरिके नीतिश्रुतकला ८८ का श्लोक है, आत्मानुशासनका ६७ वाँ पद्य 'मदेतस्त्वच्छम्भु' वैराग्यशतकका ५० वाँ श्लोक है। ऐसी स्थितिमें 'अन्धादृषं महानम्बः' सुभाषित पद्य भी गुणभद्रका स्वरचित ही है यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते। तथापि किसी अन्य प्रबल प्रमाणके अभावमें अभी इस विषयमें अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।

“श्री विक्रमादित्यसंवत्सरे वर्षाणामचीलधिकसहस्रे महापुराणविषमपदविवरणं सागरसेनसैद्धान्तान् परिज्ञाय मूलटिप्पणिकाशालोक्य कृतमिदं समुचयटिप्पणम् अज्ञपातसीतेन श्रीमद्वला [त्कार] गणश्रीसंघाचार्यसत्कविशिष्येण श्रीचन्द्रमुनिना निजदोर्दण्डाभिभूतरीपुराज्यविजयिनः श्रीभोजदेवस्य ॥ १०२ ॥ इति उत्तरपुराण-टिप्पणकं प्रभाचन्द्राचार्य (१) विरचितं समाप्तम् ।”

प्रभाचन्द्रकृत टिप्पण जयसिंहदेवके राज्यमें लिखा गया है। इसकी प्रशस्तिके श्लोक रत्नकरण्डभावकाचारकी प्रस्तावनासे न्यायकुमुदचन्द्र प्रथम भागकी प्रस्तावना (पृ० १२०) में उद्धृत किये गये हैं। श्लोकोंके अनन्तर—“श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्वारानिवासिना परापरपरमेष्ठिप्रणामोपाजितामलपुण्यनिराकृताखिलमलकलङ्गेन श्रीप्रभाचन्द्रपण्डितेन महापुराणटिप्पणके शतत्रयधिकसहस्रत्रयपरिमाणं कृतमिति” यह पुष्पिकालेख है। इस तरह महापुराण पर दोनों आचार्योंके पृथक् पृथक् टिप्पण हैं। इसका खुलासा प्रेमीजीके लेखसे स्पष्ट हो ही जाता है। पर टिप्पण-लेखकने श्रीचन्द्रकृत टिप्पणके ‘श्रीविक्रमादित्य’ वाले प्रशस्तिलेखके अन्तमें ‘अम-वश’ इति उत्तरपुराणटिप्पणकं प्रभाचन्द्राचार्यविरचितं समाप्तम् लिख दिया है। इसी लिए डॉ० पी० एल० बैर्य, प्रो० हीरालालजी तथा पं० कैलाशचन्द्रजीने अमवश प्रभाचन्द्रकृत टिप्पणका रचना काल संवत् १०८० समझ लिया है। अतः इस भ्रान्त आधारसे प्रभाचन्द्रके समयकी उत्तरावधि सन् १०२० नहीं ठह-राई जा सकती। अब हम प्रभाचन्द्रके समयकी निश्चित अवधिके साधक कुछ प्रमाण उपस्थित करते हैं—

१-प्रभाचन्द्रने पहिले प्रमेयकमलमार्तण्ड बनाकर ही न्यायकुमुदचन्द्रकी रचना की है। मुद्रित प्रमेयकमलमार्तण्डके अन्तमें “श्री भोजदेवराज्ये श्रीमद्वारानिवा-सिना परापरपरमेष्ठिप्रणामोपाजितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलङ्गेन श्रीमप्रभा-चन्द्रपण्डितेन निखिलप्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्योतिपरीक्षामुखपदमिदं विवृतमिति ।” यह पुष्पिकालेख पाया जाता है। न्यायकुमुदचन्द्रकी कुछ प्रतियोंमें उक्त पुष्पिकालेख ‘श्रीभोजदेवराज्ये’ की जगह ‘श्रीजयसिंहदेवराज्ये’ पदके साथ जैसाका तैसा उपलब्ध है। अतः इस स्पष्ट लेख से प्रभाचन्द्रका समय जयसिंहदेवके राज्यके कुछ वर्षों तक, अन्ततः सन् १०६५ तक माना जा सकता है। और यदि प्रभाचन्द्रने ८५ वर्षकी आयु पाई हो तो उनकी पूर्वावधि सन् ९८० मानी जानी चाहिए।

श्रीमान् सुल्तारसा० तथा पं० कैलाशचन्द्रजी प्रमेयकमल० और न्यायकुमुद-चन्द्रके अन्तमें पाए जानेवाले उक्त ‘श्रीभोजदेवराज्ये’ और ‘श्री जयसिंहदेवराज्ये’ आदि प्रस्तिलेखोंको स्वयं प्रभाचन्द्रकृत नहीं मानते। सुल्तारसा० इस प्रशस्ति-वाक्यको टीकाटिप्पणकर द्वितीय प्रभाचन्द्रका मानते हैं तथा पं० कैलाशचन्द्रजी

१ देखो पं० नाथरामजी प्रेमी लिखित ‘श्रीचन्द्र और प्रभाचन्द्र’ शीर्षक लेख अनेकान्त वर्ष ४ किरान १। २ महापुराणकी प्रस्तावना पृ० XIV। ३ रत्नकरण्ड-प्रस्तावना पृ० ५९-६०। ४ न्यायकुमुदचन्द्र प्रथमभागकी प्रस्तावना पृ० १२१।

इसे पीछेके किसी व्यक्तिकी कृतता बताते हैं । पर प्रशस्तिवाक्य को प्रभाचन्द्र-कृत नहीं माननेमें दोनोंके आधार छुटे छुटे हैं । सुस्तारसा० प्रभाचन्द्रको जिनसेन के प्रहिलेका विद्वान् मानते हैं, इसलिए 'भोजदेवराज्ये' आदिवाक्य के स्वयं उन्हीं प्रभाचन्द्रका नहीं मानते । पं० कैलाशचन्द्रजी प्रभाचन्द्रको ईसाकी १० वीं और ११ वीं शताब्दीका विद्वान् मानकर भी महापुराणके टिप्पणकार श्रीचन्द्रके टिप्पणके अन्तिमवाक्यको अथवा प्रभाचन्द्रकृत टिप्पणका अन्तिमवाक्य समझ लेनेके कारण उक्त प्रशस्तिवाक्योंको प्रभाचन्द्रकृत नहीं मानना चाहते । सुस्तारसा० ने एक हेतु यह भी दिया है कि—अथेयकमल-मार्तण्डकी कुछ प्रतियों में यह अन्तिमवाक्य नहीं पाया जाता । और इसके लिए भाण्डारकर इन्स्टीट्यूटकी प्राचीन प्रतियोंका हवाला दिया है । मैंने भी इस ग्रन्थका पुनः सम्पादन करते समय सैनसिद्धान्तमवन आरामकी प्रतिके पाठान्तर लिए हैं । इसमें भी उक्त 'भोजदेवराज्ये' वाला वाक्य नहीं है । इसी तरह न्यायकुमुदचन्द्रके सम्पादनमें जिन आ०, व०, अ०, और भा० प्रतियोंका उपयोग किया है, उनमें आ० और व० प्रतियों 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' वाला प्रशस्ति लेख नहीं है । हाँ, भा० और अ० प्रतियों, जो ताड़पत्र पर लिखी हैं, उनमें 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' वाला प्रशस्तिवाक्य है । इनमें भा० प्रति शास्त्रिबाहुनशक १७५४ की लिखी हुई है । इस तरह अथेयकमलमार्तण्डकी किन्हीं प्रतियोंमें उक्त प्रशस्तिवाक्य नहीं है, किन्हींमें 'श्रीपद्मनन्दि' श्लोक नहीं है तथा कुछ प्रतियोंमें सभी श्लोक और प्रशस्ति वाक्य हैं । न्यायकुमुदचन्द्रकी कुछ प्रतियोंमें 'जयसिंह-

१ रत्नकरण्ड० प्रस्तावना पृ० ६० । २ देखो इनका परिचय न्यायकु० अ० भाग के सम्पादकीयमें ।

३ प० नागूरामजी प्रेमी अपनी नोटबुकके आधारसे सूचित करते हैं कि—“भाण्डा-रकर इन्स्टीट्यूटकी न० ८३६ (सन् १८७५-७६) की प्रतियों प्रशस्तिका 'श्रीपद्म-नन्दि' वाला श्लोक और 'भोजदेवराज्ये' वाक्य नहीं । वहीं की न० ६३८ (सन् १८७५-७६) वाली प्रतियों 'श्री पद्मनन्दि' श्लोक है पर 'भोजदेवराज्ये' वाक्य नहीं है । पहिली प्रति सन् १४८९ तथा दूसरी सन् १७९५ की लिखी हुई है ।” औरशाणीबिलास भवनके अध्यक्ष पं० लोकनाथ पार्थनाथशास्त्री अपने यहाँ की ताड़प-त्रकी दो पूर्ण प्रतियोंको देखकर लिखते हैं कि—“प्रतियोंकी अन्तिम प्रशस्तिमें मुद्रितपु-स्तकानुसार प्रशस्ति श्लोक पूरे हैं और 'श्री भोजदेवराज्ये श्रीमद्भारगिवासिना' आदि वाक्य हैं । अथेयकमलमार्तण्डकी प्रतियोंमें बहुत वैयिक्य है, परन्तु करीब ६०० वर्ष पहिले लिखित होगी । उन दोनों प्रतियोंमें शकसंवत् नहीं है ।” सोलापुरकी प्रतियों 'श्रीभोजदेवराज्ये' प्रशस्ति नहीं है । दिल्लीकी आधुनिक प्रतियों भी उक्तवाक्य नहीं है । अनेक प्रतियोंमें प्रथम अध्यायके अन्तमें पाप जानेवाले “सिद्ध सर्वजनप्रबोध” श्लोककी व्याख्या नहीं है । शन्दौरकी सुकोणवाली प्रतियों प्रशस्तिवाक्य है और उक्त श्लोककी व्याख्या भी है । सुर्खकी प्रतियों 'भोजदेवराज्ये' प्रशस्ति नहीं है, पर चारों प्रशस्तिश्लोक हैं ।

देवराज्ये' प्रशस्तिवाक्य नहीं है। श्रीमान् मुस्तारसा० प्रायः इसीसे उक्त प्रशस्तिवाक्योंको प्रभावचन्द्रकृत नहीं मानते।

इसके विषयमें मेरा यह वक्तव्य है कि—लेखक प्रमादवश प्रायः मौजूद पाठ तो छोड़ देते हैं पर किसी अन्यकी प्रशस्ति अन्यग्रन्थमें छगानेका प्रयत्न कम करते हैं। लेखक आखिर नकल करनेवाले लेखक ही तो हैं, उनमें इतनी बुद्धि-मानीकी भी कम संभावना है कि वे 'श्री भोजदेवराज्ये' जैसी सुन्दर गद्य प्रशस्तिको स्वकपोलकल्पित करके उसमें जोड़ दें। जिन प्रतियोंमें उक्त प्रशस्ति नहीं है तो समझना चाहिए कि लेखकोंके प्रमादसे उनमें वह प्रशस्ति लिखी ही नहीं गई। जब अन्य अनेक प्रमाणोंसे प्रभावचन्द्रका समय करीब करीब भोजदेव और जयसिंहके राज्यकाल तक पहुँचता है तब इन प्रशस्तिवाक्योंको टिप्पणकारकृत या किसी पीछे होनेवाले व्यक्तिकी कृतक कहकर नहीं ढाला जा सकता। मेरा यह विश्वास है कि 'श्रीभोजदेवराज्ये' या 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' प्रशस्तियाँ सर्वप्रथम प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रके रचयिता प्रभावचन्द्रे ही बनाई हैं। और जिन जिन ग्रन्थोंमें ये प्रशस्तियाँ पाई जाती हैं वे प्रसिद्ध तर्कग्रन्थकार प्रभावचन्द्र के ही ग्रन्थ होने चाहिए।

२—भापनीयसंघाप्रणी शाकटायनाचार्यने शाकटायन व्याकरण और अमोघवृत्तिके सिवाय केवलभुक्ति और क्षीभुक्ति प्रकरण लिखे हैं। शाकटायनने अमोघवृत्ति, महाराज अमोघवर्षके राज्यकाल (ई० ८१४ से ८७०) में रची थी। आ० प्रभावचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रमें शाकटायनके इन दोनों प्रकरणोंका खंडन आनुपूर्वीसे किया है। न्यायकुमुदचन्द्रमें क्षीभुक्तिप्रकरणसे एक कारिका भी उद्धृत की है। अतः प्रभावचन्द्रका समय ई० ९०० से पहिले नहीं माना जा सकता।

३—सिद्धसेनदिवाकरके न्यायावतारपर सिद्धार्थिगणिकी एक वृत्ति उपलब्ध है। हम 'सिद्धार्थि और प्रभावचन्द्र' की तुलना में बता आए हैं कि प्रभावचन्द्रने न्यायावतारके साथ ही साथ इस वृत्तिको भी देखा है। सिद्धार्थिने ई० ९०६ में अपनी उपसंहारिकप्रपञ्चाकथा बनाई थी। अतः न्यायावतारवृत्तिके द्वारा प्रभावचन्द्रका समय सन् ९१० के पहिले नहीं माना जा सकता।

४—भासवर्णका न्यायसार ग्रन्थ उपलब्ध है। कहा जाता है कि इसपर भासवर्णकी खोपड़ा न्यायभूषणा नामकी वृत्ति थी। इस वृत्तिके नामसे उत्तरकालमें इनकी भी 'भूषण' रूपमें प्रसिद्धि हो गई थी। न्यायलीलावतीकारके कथनसे ज्ञात होता है कि भूषण क्रियाको संयोग रूप मानते थे। प्रभावचन्द्रने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २८२) में भासवर्णके इस मतका खंडन किया है। प्रमेयकमलमार्तण्डके छठवें अध्यायमें जिन विशेष्यासिद्ध आदि हेलाभासोंका निरूपण है वे सब न्यायसारसे ही लिए गए हैं। ख० डॉ० क्षतीधचन्द्रने विद्याभूषण इनका समय

ई० १०० के लगभग मानते हैं। अतः प्रभाचन्द्रका समय भी ई० १०० के बाद ही होना चाहिए।

५-आ० देवसेनने अपने दर्शनसार ग्रंथ (रचनासमय १९० वि० ५३३ ई०) के बाद भावसंग्रह ग्रंथ बनाया है। इसकी रचना संभवतः सन् ९४० के आसपास हुई होगी। इसकी एक 'नौकम्मकम्महारो' गाथा प्रमेयकमलमूर्तित तथा न्यायकुसुदचन्द्रमें उद्धृत है। यदि यह गाथा स्वयं देवसेनकी है तो प्रभाचन्द्रका समय सन् ९४० के बाद होना चाहिए।

६-आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमल० और न्यायकुसुद० बनानेके बाद शब्दाम्भोजभास्कर नामका जैनेन्द्रन्यास रचा था। यह न्यास जैनेन्द्रमहाश्रितिके बाद इसीके आधारसे बनाया गया है। मैं 'अमयनन्दि और प्रभाचन्द्र' की तुलना (पृ० ३९) करते हुए लिख आया हूँ कि नैमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिके शुद्ध अमयनन्दिने ही यदि महाश्रुति बनाई है तो इसका रचनाकाल अनुमानतः ९६० ई० होना चाहिए। अतः प्रभाचन्द्रका समय ई० ९६० से पहिले नहीं माना जा सकता।

७-पुष्पदन्तकृत अपभ्रंशभाषाके महापुराण पर प्रभाचन्द्रने गूक टिप्पण रचा है। इसकी प्रशस्ति रत्नकरण्डभावकाचार की प्रस्तावना (पृ० ६१) में दी गई है। यह टिप्पण जयसिंहदेवके राज्यकालमें लिखा गया है। पुष्पदन्तने अपना महापुराण सन् ९६५ ई० में समाप्त किया था। टिप्पणकी प्रशस्तिसे तो यही माहस होता है कि प्रसिद्ध प्रभाचन्द्र ही इस टिप्पणकर्ता हैं। यदि यही प्रभाचन्द्र इसके रचयिता हैं, तो कहना होगा कि प्रभाचन्द्रका समय ई० ९६५ के बाद ही होना चाहिए। यह टिप्पण इन्होंने न्यायकुसुदचन्द्रकी रचना करके लिखा होगा। यदि यह टिप्पण प्रसिद्ध तर्कग्रन्थकार प्रभाचन्द्रका न माना जाय तब भी इसकी प्रशस्तिके श्लोक और पुष्पिकालेख, जिनमें प्रमेयकमलमूर्तित और न्यायकुसुदचन्द्रके प्रशस्तिश्लोकोका एवं पुष्पिकालेखका पूरा पूरा अनुकरण किया गया है, प्रभाचन्द्रकी उत्तरावधि जयसिंहके राज्य कालतक निश्चित करनेमें साधक तो हो ही सकते हैं।

८-श्रीधर और प्रभाचन्द्रकी तुलना करते समय हम बता आए हैं कि प्रभाचन्द्रके ग्रन्थों पर श्रीधरकी कन्दली भी अपनी आसा दे रही है। श्रीधरने कन्दली टीका ई० सन् ९९१ में समाप्त की थी। अतः प्रभाचन्द्रकी पूर्वावधि ई० ९९० के करीब मानना और जनक कार्यकाल ई० १०२० के लगभग मानना संगत माहस होता है।

९-श्रवणनेलोलोके लेख नं० ४० (६४) में गूक पद्मनन्दसिद्धान्तिका उल्लेख है और इन्हींके शिष्य कुलभूषणके सधर्मा प्रभाचन्द्रको शब्दाम्भोदभास्कर और प्रथिततर्कग्रन्थकार लिखा है-

१ देखो महापुराणकी प्रस्तावना।

यह विवेचन शक सं० १०८५ में लिखे गए शिलालेखोंके आधारसे किया गया है। शिलालेखकी वस्तुओंका ध्यानसे समीक्षण करने पर यह प्रश्न होता है कि जिस तरह प्रभाचन्द्रके सघर्षा कुलभूषणकी शिष्यपरम्परा दक्षिण प्रान्तमें कही उस तरह प्रभाचन्द्रकी शिष्य परम्पराका कोई उल्लेख क्यों नहीं मिलता? मुझे तो इसका संभाव्य कारण यही मालूम होता है कि पद्मनन्दिके एक शिष्य कुलभूषण तो दक्षिणमें ही रहे और दूसरे प्रभाचन्द्र उत्तर प्रांतमें आकर धारा नगरीके आसपास रहे हैं। यही कारण है कि दक्षिणमें उनकी शिष्य परम्पराका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस शिलालेखीय अंकगणनासे निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि प्रभाचन्द्र भोजदेव और जयसिंह दोनोंके समयमें विद्यमान थे। अतः उनकी पूर्वावधि सन् ९९० के आसपास माननेमें कोई बाधक नहीं है।

१०-बादिराजसूरिने अपने पार्श्वचरितमें अनेकों पूर्वाचार्योंका स्मरण किया है। पार्श्वचरित शक सं० ९४७ (ई० १०२५) में बनकर समाप्त हुआ था। इन्होंने अकलंकदेवके न्यायविनिश्चय प्रकरण पर न्यायविनिश्चयविवरण या न्याय-विनिश्चयतात्पर्यावयवोत्तनी व्याख्यानरत्नमाला नामकी विस्तृत टीका लिखी है। इस टीकामें पचासों जैन-जैनैतर आचार्योंके ग्रन्थोंसि प्रमाण उद्धृत किए गए हैं। संभव है कि बादिराजके समयमें प्रभाचन्द्रकी प्रसिद्धि न हो पाई हो, अन्यथा तर्कशास्त्रके रसिक बादिराज अपने इस बहाली ग्रन्थकारका नामोल्लेख किए बिना न रहते। यद्यपि ऐसे नकारात्मक प्रमाण स्वतन्त्रमानसे किसी आचार्यके समयके साधक या बाधक नहीं होते फिर भी अन्य प्रबल प्रमाणोंके प्रकाशमें इन्हें प्रसन्नसाधनके रूपमें तो उपस्थित किया ही जा सकता है। यही अधिक संभव है कि बादिराज और प्रभाचन्द्र समकालीन और सम-व्यक्तित्वशाली रहे हैं अतः बादिराजने अन्य आचार्योंके साथ प्रभाचन्द्रका उल्लेख नहीं किया है।

अब हम प्रभाचन्द्रकी उत्तरावधिके नियामक कुछ प्रमाण उपस्थित करते हैं—

१-ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके विद्वान् अभिनवधर्मभूषणने न्यायबीपिका (पृ० १६) में प्रमेयकमलमार्तण्डका उल्लेख किया है। इन्होंने अपनी न्याय-बीपिका वि० सं० १४४२ (ई० १३८५) में बनाई थी*। ईसाकी १३ वीं शताब्दीके विद्वान् मल्लिवेणने अपनी स्याद्वाक्यजरी (रचना समय ई० १२९३) में न्यायकुसुदचन्द्रका उल्लेख किया है। ईसाकी १२ वीं शताब्दीके विद्वान् आ० मलयगिरिने आवश्यकनिर्युक्तिटीका (पृ० ३७१ A.) में लघ्वीयज्ञयकी एक कारिकाका व्याख्यान करते हुए 'टीकाकारके' नामसे न्यायकुसुदचन्द्रमें की गई सप्त कारिकाकी व्याख्या उद्धृत की है। ईसाकी १२ वीं शताब्दीके विद्वान् देवभद्रने न्यायावतारटीकाटिप्पण (पृ० २१, ७६) में तथा भाणिवचनचन्द्र ने काव्यप्रकाश की टीका (पृ० १४) में प्रभाचन्द्र और उनके न्याय-कुसुदचन्द्रका नामोल्लेख किया है। अतः इन १२ वीं शताब्दी तकके

* स्वामी समन्तभद्र पृ० २२७।

विद्वानों के उल्लेखों के आधारसे यह प्रामाणिकरूपसे कहा जा सकता है कि प्रभाचन्द्र ई० १२ वीं शताब्दी के बाद के विद्वान् नहीं हैं ।

२-रत्नकरण्डभावकाचार और समाधितन्त्र पर प्रभाचन्द्रकृत टीकाएँ उपलब्ध हैं । पं० जुगलकिशोर जी सुस्तार *ने इन दोनों टीकाओंको एक ही प्रभाचन्द्रके द्वारा रची हुई सिद्ध किया है । आपके मतसे ये प्रभाचन्द्र प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके रचयितासे भिन्न हैं । रत्नकरण्डटीकाका उल्लेख पं० आशाधरजी द्वारा अनागारधर्मासृत टीका (अ० ८ खो० ९३) में किये जाने के कारण इस टीकाका रचना काल वि० सं० १३०० से पहिलेका अनुमान किया गया है; क्योंकि अनागारधर्मासृत टीका वि० सं० १३०० में बनकर समाप्त हुई थी । अन्ततः सुस्तारसा० इस टीकाका रचनाकाल विक्रमकी १३ वीं शताब्दीका मध्यभाग मानते हैं । अस्तु, फिलहाल सुस्तारसा० के निर्णयके अनुसार इसका रचनाकाल वि० १२५० (ई० ११९३) ही मान कर प्रस्तुत विचार करते हैं ।

रत्नकरण्डभावकाचार (पृ० ६) में केवलिकवलाहारके खंडनमें न्यायकुसुदचन्द्रगत शब्दावलीका पूरा पूरा अनुसरण करके लिखा है कि—“तद्वलमतिप्रसंगेन प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे प्रपञ्चतः प्रकर्मणात् ।” इसी तरह समाधितन्त्र टीका (पृ० १५) में लिखा है कि—“यैः पुनर्योगसाधनैः मुक्तौ तत्प्रच्युतिरालो-नोऽभ्युपगता ते प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे च मोक्षविचारे विलसतः प्रसाध्याताः ।” इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्र ग्रन्थ इन टीकाओंसे पहिले रचे गए हैं । अतः प्रभाचन्द्र ईसा की १२ वीं शताब्दी के बादके विद्वान् नहीं हैं ।

३-बादिदेवसरिका जन्म वि० सं० ११४३ तथा स्वर्गवास वि० सं० १२२२ में हुआ था । ये वि० सं० ११७४ में आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए थे । संभव है इन्होंने वि० सं० ११७५ (ई० १११८) के लगभग अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ स्याद्वावरत्नाकरकी रचना की होगी । स्याद्वावरत्नाकरमें प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रका न केवल शब्दार्थानुसरण ही किया गया है किन्तु कवलाहारसमर्थन-प्रकरणमें तथा प्रतिबिम्ब चर्चामें प्रभाचन्द्र और प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डका नामोल्लेख करके खंडन भी किया गया है । अतः प्रभाचन्द्रके समयकी उत्तरावधि अन्ततः ई० ११०० सुनिश्चित हो जाती है ।

४-जैनेन्द्रव्याकरणके अभयनन्दिसम्मत सूत्रपाठ पर श्रुतकीर्तिने पंचवस्तु-प्रक्रिया बनाई है* । श्रुतकीर्ति कनडीचन्द्रप्रभचरित्रके कर्ता अगलकविके गुरु थे । अगलकविने शक १०११ ई० १०८९ में चन्द्रप्रभचरित्र पूर्ण किया था । अतः श्रुतकीर्तिका समय भी लगभग ई० १०७५ होना चाहिए । इन्होंने अपनी प्रक्रियामें एक न्यास ग्रन्थका उल्लेख किया है । संभव है कि यह प्रभाचन्द्रकृत

* रत्नकरण्डभावकाचार सूत्रिका पृ० ६९ से ।

१ देखो-वही प्रस्तावनाका ‘श्रुतकीर्ति और प्रभाचन्द्र’ अंक, पृ० ४९ ।

शब्दाम्भोजभास्कर नामका ही न्यास हो। यदि ऐसा है तो प्रभाचन्द्रकी उत्तरावधि ई० १०७५ मानी जा सकती है। शिमोगा जिलेके शिलालेख नं० ४६ से ज्ञात होता है कि पूज्यपादने श्री जैनेन्द्रन्यासकी रचना की थी। यदि श्रुतकीर्तिने न्यास पदसे पूज्यपादकृत न्यासका निर्देश किया है तब 'टीकामाल' शब्दसे सूचित होनेवाली टीकाकी मालामें तो प्रभाचन्द्रकृत शब्दाम्भोजभास्करको पिरोया ही जा सकता है। इस तरह प्रभाचन्द्रके पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती जल्लेखोंके आधारसे हम प्रभाचन्द्रका समय सन् ९८० से १०६५ तक निश्चित कर सकते हैं। इन्हीं जल्लेखोंके प्रकाशमें जब हम प्रमेयकमलमार्तण्डके 'श्री भोजदेवराज्ये' आदि प्रशस्ति-लेख तथा न्यायकुसुमद्वन्द्वके 'श्री जयसिंहदेवराज्ये' आदि प्रशस्ति-लेखको देखते हैं तो वे अत्यन्त प्रामाणिक मालूम होते हैं। उन्हें किसी टीका टिप्पणकारका या किसी अन्य व्यक्तिकी कृतक कहकर नहीं टाला जा सकता।

उपर्युक्त विवेचनसे प्रभाचन्द्रके समयकी पूर्वावधि और उत्तरावधि करीब करीब भोजदेव और जयसिंह देवके समय तक ही आती है। अतः प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमद्वन्द्वमें पाए जाने वाले प्रशस्ति लेखोंकी प्रामाणिकता और प्रभाचन्द्रकृतत्वमें सन्देहको कोई स्थान नहीं रहता। इसलिये प्रभाचन्द्रका समय ई० ९८० से १०६५ तक माननेमें कोई बाधा नहीं है*।

§ ३. प्रभाचन्द्र के ग्रन्थ—

आ० प्रभाचन्द्रके जितने ग्रन्थोंका अभी तक अन्वेषण किया गया है उनमें कुछ खताग्र ग्रन्थ हैं तथा कुछ व्याख्यात्मक। उनके प्रमेयकमलमार्तण्ड (परीक्षा-मुख्याख्या), न्यायकुसुमद्वन्द्व (लघीयलज्ज व्याख्या), सर्वार्थवृत्तिपदविवरण (सर्वार्थसिद्धि व्याख्या), और शाकटायनन्यास (शाकटायनन्याकरणव्याख्या) इन चार ग्रन्थोंका परिचय न्यायकुसुमद्वन्द्वके प्रथमभागकी प्रस्तावनामें दिया जा चुका

* प्रमेयकमलमार्तण्डके प्रथमसंस्करणके सम्पादक प० बशीरुल्लाह शाही सोलापुरने उक्त संस्करण के उपोद्घातमें श्रीभोजदेवराज्ये प्रशस्तिके अनुसार प्रभाचन्द्रका समय ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दी सूचित किया है। और आपने इसके समर्थनके लिये 'नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीकी गाथाओंका प्रमेयकमलमार्तण्डमें उद्धृत होना' यह प्रमाण उपस्थित किया है। पर आपका यह प्रमाण अज्ञात नहीं है। प्रमेयकमलमार्तण्डमें 'विनादगहमावण्णा' और 'लोमासप्तपेसे' गाथाएँ उद्धृत हैं। पर ये गाथाएँ नेमिचन्द्रकृत नहीं हैं। पहिली गाथा धवलदीक्षा (रचनाकाल ई० ८१६) में उद्धृत है और उमासातकृत भावकप्रशस्तिमें भी पाई जाती है। दूसरी गाथा पूज्यपाद (ई० ९ वीं) कृत सर्वार्थसिद्धिमें उद्धृत है। अतः इन प्राचीन गाथाओंको नेमिचन्द्रकृत नहीं माना जा सकता। अवश्य ही इन्हें नेमिचन्द्रने जीवकाण्ड और द्रव्यसंग्रहमें संयुहीत किया है। अतः इन गाथाओंका उद्धृत होना ही प्रभाचन्द्रके समयको ११ वीं सदी नहीं साध सकता।

है। यहाँ उनके शब्दाम्भोजभास्कर (जैनेन्द्रव्याकरण महान्यास); प्रवचनसारस-
रोजभास्कर (प्रवचनसारटीका) और गद्यकथाकोश का परिचय दिया जाता है।
महापुराणटिप्पण आदि भी इन्हींके ग्रन्थ हैं। इस परिचयके पहिले हम 'शाकट्या-
यनन्यास' के कर्तृत्व पर विचार करते हैं—

भाई पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने शिलालेख तथा किंवदन्तियोंके आधारसे
शाकट्यायनन्यासकी प्रभाचन्द्रकृत लिखा है* । धिमोगा जिलेके नगरताह्लुकेके
शिलालेख नं० ४६ (एपि० कर्ना० पु० ८ भा० २ पृ० २६६-२७३) में
प्रभाचन्द्रकी प्रशंसापरक ये दो श्लोक हैं—

“भाषिवयनन्दिजिनराजवाणीप्राणाधिनाथः परवादिमर्दा ।

चित्रं प्रभाचन्द्र इह क्षमायां मार्तण्डवृद्धौ नितरां व्यतीपित ॥

† सुखि...न्यायकुसुदचन्द्रोदयकृते नमः ।

शाकट्यायनकृतसूत्रन्यासकर्त्रे प्रतीन्दवे ॥”

जैनसिद्धान्तभवन आरामि वर्धमानमुनिकृत दशमस्त्यादिमहाशास्त्र है। उसमें
भी ये श्लोक हैं। उनमें 'सुखि...' की जगह 'सुखीशे' तथा 'प्रतीन्दवे' के
स्थानमें 'प्रमेन्दवे' पाठ है। यह शिलालेख १६ वीं शताब्दीका है और वर्ध-
मानमुनिका समय भी १६ वीं शताब्दी ही है। शाकट्यायनन्यासके प्रथम दो
अध्यायोंकी प्रतिलिपि स्याद्वादविद्यालयके सरस्वतीभवनमें मौजूद है। उसको
सरसरी तौर से पलटने पर मुझे इसके प्रभाचन्द्रकृत होनेमें निम्नलिखित कारणों
से सन्देह उत्पन्न हुआ है—

* न्यायकुसुदचन्द्र प्रथमभागकी प्रस्तावना पृ० १२५ ।

† इस शिलालेखके अनुवादमें 'तदस' सा० ने आ० पूज्यपादको ही न्यायकुसुद-
चन्द्रोदय और शाकट्यायनन्यासका कर्ता लिख दिया है। यह गल्ती आपसे इसलिये हुई
कि इस श्लोकके बाद ही पूज्यपादकी प्रशंसा करनेवाला एक श्लोक है, उसका मन्वय
आपने भूलसे “सुखि” इत्यादि श्लोकके साथ कर दिया है। वह श्लोक यह है—

“न्यासं जैनेन्द्रसंज्ञं सकलबुधनुतं पाणिनीयस्य सूत्रो

न्यासं शब्दावतारं मनुजततिहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा ।

यस्तत्त्वार्थस्य टीकां व्यरचयदिह तां भालसौ पूज्यपाद-

स्वामी भूपालबन्धः स्वपरहितवचः पूर्णदृग्बोधवृत्तः ॥”

भोदी सी सावधानीसे विचार करने पर यह स्पष्ट मालूम होता जाता है कि 'सुखि'
इत्यादि श्लोकके चतुर्थ्यन्त पदोंका 'न्यास' वाले श्लोकसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। म०
शीतलप्रसादजीने 'मद्रस और मैसूरप्रान्तके सारक' में तथा ओ० हीरालालजीने 'जैन-
शिलालेख संग्रह' की भूमिका (पृ० १४१) में भी रास्स सा० का अनुसरण करने
इसी गल्तीको दुहराया है।

१-इस ग्रन्थमें मंगलश्लोक नहीं है जब कि प्रभावचन्द्र अपने प्रत्येक ग्रन्थमें मंगलचरण नियमित रूपसे करते हैं* ।

२-सन्धियोंके अन्तमें तथा ग्रन्थमें कहीं भी प्रभावचन्द्रका नामोल्लेख नहीं है जब कि प्रभावचन्द्र अपने प्रत्येक ग्रन्थमें 'इति प्रभावचन्द्रविरचिते' आदि पुष्पि-कालेख या 'प्रमेन्दुर्जितः' आदि रूप से अपना नामोल्लेख करनेमें नहीं चूकते ।

३-प्रभावचन्द्र अपनी टीकाओंके प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र, शब्दा-म्भोजभास्कर आदि नाम रखते हैं जब कि इस ग्रन्थके इन श्लोकोंमें इसका कोई खास नाम सूचित नहीं होता-

“शब्दानां शासनाख्यस्य शास्त्रस्यान्वयनामतः ।

प्रसिद्धस्य महामोचवृत्तेरपि विशेषतः ॥

सूत्राणां च विवृतिर्लिख्यते च यथामति ।

ग्रन्थस्यास्य च न्यासेति (!) कियते नामनामतः ॥”

४-शाकटायन यापनीयसंघके आचार्य वे और प्रभावचन्द्र ये कट्टर दिग्गम्बर । इन्होंने शाकटायनके क्रीडुक्ति और केवलिभुक्तिप्रकरणोंका खंडन भी किया है । अतः शाकटायनके व्याकरणपर प्रभावचन्द्रके द्वारा न्यास लिखा जाना कुछ समझमें नहीं आता ।

५-इस न्यासमें शाकटायनके लिए प्रयुक्त 'संचाधिपति, महाभ्रमणसंघप' आदि विशेषणों का समर्थन है । यापनीय आचार्यके इन विशेषणोंके समर्थनकी आशा प्रभावचन्द्र द्वारा नहीं की जा सकती । यथा-

“एवंभूतमिवं शास्त्रं चतुरव्यायरूपतः, संचाधिपतिः श्रीमानाचार्यः शाकटायनः ।

महत्तारभते तत्र महाभ्रमणसंघपः, भ्रमेण शब्दतरत्वं च विशदं च विशेषतः ॥

महाभ्रमणसंचाधिपतिरित्यनेन मनःसमाधानमाख्यायते । विषयेषु विक्षिप्तचेतसो न मन समाधि...असमाहितचेतसश्च किं नाम शास्त्रकरणम्, आचार्य इति तु शब्दविधायया गुरुत्वं शाकटायन इति अन्वयबुद्धिप्रकर्षः, विशुद्धान्वयो हि विद्वैरुप-सीयते । महाभ्रमणसंचाधिपतेः सन्मार्गावुशासनं युक्तमेव...”

६-प्रभावचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रमें जैनेन्द्रव्याक-रणसे ही सूत्रोंके उद्धरण दिए हैं जिसपर उनका शब्दाम्भोजभास्कर न्यास है ।

* मैसूर सूक्ति ० में न्यासग्रन्थकी दूसरे अध्यायके चौथे पादके १२४ सूत्र तक की कापी है (नं० A. 605) । उसमें निम्नलिखित मंगलश्लोक है-

“प्रणम्य जयित्वा प्राप्तविश्वव्याकरणश्रियाः । शब्दावुशासनस्येयं वृत्तेर्विव-रणोद्यमः ॥ अस्मिन् भाष्याणि भाष्यन्ते वृत्तयो वृत्तिमाश्रिताः । न्यासा न्यस्ताः कृताः टीकाः पारं पारायणान्ययुः ॥ तत्र वृत्ता (न्या) धावयं मंगलश्लोकः श्रीवीरमन्मृतमिल्लादि ।”

परन्तु इन कोशोंकी रचनाशैली प्रभावचन्द्रकृत न्यायकुमुदचन्द्र आदि के मंगलश्लोकोंसे अत्यन्त विकल है ।

यदि शाकटायनपर भी उनका न्यास होता तो वे एकाध स्थानपर तो शाकटायनव्याकरणके सूत्र उद्धृत करते ।

७-प्रभाचन्द्र अपने पूर्वग्रन्थोंका उत्तरग्रन्थोंमें प्रायः उल्लेख करते हैं । यथा न्यायकुमुदचन्द्रमें तत्पूर्वकालीन प्रमेयकमलमार्तण्डका तथा शब्दाम्भोजभास्करमें न्यायकुमुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड दोनोंका उल्लेख पाया जाता है । यदि शाकटायनन्यास उन्होंने प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके पहिले बनाया होता तो प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिमें शाकटायनव्याकरणके सूत्रों के उद्धरण होते और इस न्यासका उल्लेख भी होता । यदि यह उत्तरकालीन रचना है तो इसमें प्रमेयकमल आदिका उल्लेख होना चाहिये या जैसा कि शब्दाम्भोजभास्करमें देखा जाता है ।

८-शब्दाम्भोजभास्करमें प्रभाचन्द्रकी भाषाकी जो प्रसजता तथा प्रावाहिकता है वह इस दुरुद्ध न्यासमें नहीं देखी जाती । इस बौलीवैचित्र्यसे भी इसके प्रभाचन्द्रकृत होनेमें सन्देह होता है । प्रभाचन्द्रने शब्दाम्भोजभास्कर नामका न्यास बनाया था और इसलिए उनकी न्यासकारके रूपसे भी प्रसिद्धि रही है । मालूम होता कि वर्धमानमुनिने प्रभाचन्द्रकी इसी प्रसिद्धिके आधार से इन्हें शाकटायनन्यासका कर्ता लिख दिया है । मुझे तो ऐसा लगता है कि यह न्यास स्वयं शाकटायनने ही बनाया होगा । अनेक व्याकरणोंने अपने ही व्याकरण पर न्यास लिखे हैं ।

शब्दाम्भोजभास्कर-श्रवणवेलगोलके शिलालेख नं० ४० (६४) में प्रभाचन्द्रके लिये 'शब्दाम्भोजविवाकर' विशेषण भी दिया गया है । इस अर्थ-गर्भ विशेषणसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र जैसे प्रथिततर्क ग्रन्थोंके कर्ता प्रथिततर्कग्रन्थकार प्रभाचन्द्रही शब्दाम्भोजभास्कर नामक जैनेन्द्रव्याकरण महान्यासके रचयिता हैं । ऐलक पञ्चालक दि० जैन सर-स्वतीमवनकी अधूरी प्रतिके आधारसे इसका दृक परिचय यहाँ दिया जाता है । यह प्रति संवत् १९८० में देहलीकी प्रतिसे लिखाई गई है । इसमें जैनेन्द्रव्याकरणके मात्र तीन अध्यायका ही न्यास है सो भी बीचमें जगह जगह छुटित है । ३९ से ६७ नं० पत्र इस प्रतिमें नहीं हैं । प्रारम्भके २८ पत्र किसी दूसरे लेखकने लिखे हैं । पत्रसंख्या २२८ है । एक पत्रमें १३ से १५ तक पंक्तियाँ और एक पंक्तिमें ३९ से ४३ तक अक्षर हैं । पत्र बड़ी साहजके हैं ।

मंगलाचरण-

“श्रीपूज्यपादमकलङ्कमनन्तबोधम्, शब्दार्थसंक्षयहरं विखिलेषु बोधम् ।

सच्छब्दलक्षणमशेषमतः प्रसिद्धं वक्ष्ये परिस्फुटमलं प्रणिपत्य सिद्धम् ॥ १ ॥

सविस्तरं यद् गुरुभिः प्रकाशितं महामतीनामभिधानलक्षणम् ।

मनोहरैः स्वल्पपदैः प्रकाश्यते महद्भिरुपदिष्टि याति सर्वापिमात्रे-(-१)

***तदुक्तं कृतशिक्ष (१) श्लाघ्यते तदि तस्य ।-

किमुक्तमखिलज्ञैर्भाषमाणे गणेशो विविक्तमखिलार्थं श्लाघ्यतेऽतो मुनीन्द्रैः ॥३॥

शब्दानामनुशासनानि निखिलान्याध्यायताहर्निशम्,
यो यः सारतरो विचारचतुरस्राङ्गवर्णांशो गतः ।
तं स्वीकृत्य तिलोत्तमेव विदुषां चैतश्चमत्कारकः,
मुष्यैरसमैः प्रसन्नवचनैर्न्यासः समारभ्यते ॥ ४ ॥

श्रीपूज्यपादस्वामि (श्री) विनेयानां शब्दसाधुसासाधुलविवेकप्रतिपत्त्यर्थं शब्द-
लक्षणप्रणयनं कुर्वाणो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकमभिलषन्निद्वेदवतास्तुतिविषयं
नमस्कुर्वन्नाह—लक्ष्मीरास्यन्तिकी यस्य....”

यह न्यास अभयनन्दिकृत जैनेन्द्रमहावृत्तिके बाद बनाया गया है। इसमें
महावृत्तिके शब्द आनुपूर्वसे के लिए गए हैं और कहीं उनका व्याख्यान भी
किया है। यथा—

“सिद्धिरनेकान्तात्—प्रकृत्यादिविभागेन व्यवहाररूपा ओत्रप्राप्यतया परमार्थतो-
येता प्रकृत्यादिविभागेन च शब्दानां सिद्धिरनेकान्ताद् भवतीत्यर्थाधिकार आशा-
स्त्रपरिसमाप्तेर्वेदितव्यः । अस्तिस्त्वनास्तिस्त्वनित्यस्त्वसामान्यसामानाधिकरण्यविशेषणवि-
शेष्यादिकोऽनेकः अन्तः स्वभावो यस्मिन् भावे सोऽयमनेकान्तः अनेकान्ता
इत्यर्थः”—महावृत्ति पृ० १ ।

“द्विविधा च शब्दानां सिद्धिः व्यवहाररूपा परमार्थरूपा चेति । तत्र प्रकृ-
तीत्य (१) विकारागमादिविभागेन कृपा तत्सिद्धिः तद्भेदस्यात्र प्राधान्यात् । ओत्र-
प्राप्तौ (२) परमार्थतो ये प्रकृत्यादिविभागाः प्रमाणनयादिभिरभिगमनोपायैः
शब्दानां तत्त्वप्रतिपत्तिः परमार्थरूपा सिद्धिः तद्भेदस्यात्र प्राधान्यात्, सामयित्वा
सिद्धिरनेकान्ताद्भवतीत्येषोऽधिकारः आशास्त्रपरिसमाप्तेर्वेदितव्यः । अथ कोऽयमने-
कान्तो नामेत्याह—अस्तिस्त्वनास्तिस्त्वनित्यत्वाग्नित्यत्वासामान्यसामानाधिकरण्यविशेषण-
विशेष्यादिकोऽनेकान्तः स्वभावो यस्यार्थस्यासावनेकान्तः अनेकान्तात्मक इत्यर्थः”—
शब्दाम्भोजमास्कर पृ० २ A ।

इस दुल्लासे तथा तृतीयाध्यायके अन्तमें लिखे गए इस श्लोकसे अत्यन्त
स्पष्ट हो जाता है कि यह न्यास जैनेन्द्रमहावृत्तिके बाद बनाया गया है—

“नमः श्रीवर्धमानाय महते देवनन्दिने ।

प्रभाचन्द्राय गुरवे तस्यै चाभयनन्दिने ॥”

इस श्लोकमें अभयनन्दिको नमस्कार किया गया है । प्रत्येक पादकी समाप्तिमें
“इति प्रभाचन्द्रविरचिते शब्दाम्भोजमास्करे जैनेन्द्रव्याकरणमहान्यासे द्विती-
याध्यायस्य तृतीयः पादः” इसी प्रकारके पुष्पिकालेख हैं ।

तृतीय अध्यायके अन्तमें निम्नलिखित पुष्पिका तथा श्लोक है—

“इति प्रभाचन्द्रविरचिते शब्दाम्भोजमास्करे जैनेन्द्रव्याकरणमहान्यासे तृती-
याध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ श्रीवर्धमानाय नमः ॥

सन्मार्गप्रतिबोधको बुधजनैः संस्तूयमानो ब्रूतात् ।

अज्ञानान्धतमोपहः क्षितितले श्रीपूज्यपादो महान् ॥

सार्वः सन्ततसत्रिसन्धिनियतः पूर्वापरानुक्रमः ।

शब्दाम्भोजदिवाकरोऽस्तु सहसा नः श्रेयसे यं च वै ॥

नमः श्रीवर्धमानाय महते देवनन्दिने ।

प्रभाचन्द्राय शुभे तस्मै नमयनन्दिने ॥ छ ॥

श्री वासुपूज्याय नमः । श्री रूपतिविक्रमादित्यराज्येन संवत् १९८० मासोत्तममासे चैत्रशुक्लपक्षे एकादश्यां ११ श्री महावीर संवत् २४४९ । हस्ताक्षर छाजूराम जैन विजेश्वरी लेखक पालम (सूबा देहली)।

जैनेन्द्रव्याकरणके दो सूत्र पाठ प्रचलित हैं—एक तो वह जिस पर अभयनन्दिने महावृत्ति, तथा ध्रुतकीर्तिने पञ्चवस्तु नामकी प्रक्रिया बनाई है; और दूसरा वह जिस पर सोमदेवसुरिकृत शब्दार्णवचन्द्रिका है । पं० नाथूरामजी प्रेमीने^१ अनेक पुष्ट प्रमाणोंसे अभयनन्दिसम्मत सूत्रपाठको ही प्राचीन तथा पूज्यपादकृत मूलसूत्रपाठ सिद्ध किया है । प्रभाचन्द्रने इसी अभयनन्दिसम्मत प्राचीन सूत्रपाठ पर ही अपना यह शब्दाम्भोजभास्कर नामका महान्यास बनाया है ।

आ० प्रभाचन्द्रने इस ग्रन्थको प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमदचन्द्रकी रचनाके बाव बनाया है जैसा कि उनके निम्नलिखित वाक्यसे सूचित होता है—

“तदालम्ब्य चार्थस्य अध्यक्षतोऽनुमानादेश यथा सिध्यति तथा प्रपञ्चतः प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुमदचन्द्रे च प्ररूपितमिह द्रष्टव्यम् ।”

प्रभाचन्द्र अपने न्यायकुसुमदचन्द्र (पृ० ३२९) में प्रमेयकमलमार्तण्ड ग्रन्थ देखनेका अनुरोध इसी तरहके शब्दोंमें करते हैं—“एतच्च प्रमेयकमलमार्तण्डे सप्रपञ्चं प्रपञ्चितमिह द्रष्टव्यम् ।”

व्याकरण जैसे शुष्क शब्दविषयक इस ग्रन्थमें प्रभाचन्द्रकी प्रसक्त लेखनीसे प्रसूत दर्शनशास्त्रकी कृत्रिम अर्थप्रधान चर्चा इस ग्रन्थके गौरवको असाधारणतया बढ़ा रही है । इसमें विधिविचार, कारकविचार, लिंगविचार जैसे अनूठे प्रकरण हैं जो इस ग्रन्थको किसी भी दर्शनग्रन्थकी कोटिमें रख सकते हैं । इसमें समन्तभद्रके शुच्यनुशासन तथा अन्य अनेक आचार्योंके पद्योंको प्रमाण रूपसे

१ देखो—‘जैनेन्द्रव्याकरण और आचार्य देवनन्दी’ लेख, जैनसाहित्य संशोधक भाग १ अंक २ ।

२ पंक्ति नाथूलाल शास्त्री इन्दौर सूचित करते हैं कि हुकोमन इन्दौरके ग्रन्थ-मण्डारमें भी शब्दाम्भोजभास्करके तीन ही अध्याय हैं । उसका मंगलाचरण तथा अन्तिम प्रशस्तिलेख वन्धेईकी प्रतिके ही समान है । पं० सुवर्लीजी शास्त्रीके पत्रसे बात-झूठा है कि कारकल्लके मठमें भी इसकी प्रति है । इस प्रति में भी तीन अध्यायका न्यास है । प्रेमीजी सूचित करते हैं कि वन्धेईके मवनमें इसकी एक प्राचीन प्रति है उसमें चतुर्थ अध्यायके तीसरे पादके २११ में सूत्र तकका न्यास है, आगे नहीं । हाँ सक्ता है कि यह प्रभाचन्द्रकी अन्तिमकृति ही हो और इसलिये पूर्ण न हो सकी हो ।

उद्धृत किया है। पृ० ९१ में 'विश्वरूपाऽस्य पुत्रो जनिता' प्रयोगका हृदयग्राही व्याख्यान किया है। इस तरह क्या भाषा, क्या विषय और क्या प्रसन्नशैली, हर एक दृष्टिसे प्रभाचन्द्रका निर्मल और श्रौढ़ पाण्डित्य इस ग्रन्थमें उदात्तभावसे निहित है।

प्रवचनसारसरोजभास्कर—यदि प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलको विकसित करनेके लिए मार्तण्ड बनानेके पहिले प्रवचनसारसरोजके विकासार्थ भास्करका उदय किया हो तो कोई अनहोनी बात न होकर अधिक संभव और निश्चित बात मात्तम होती है। (प्रमेय) कमलमार्तण्ड, (न्याय) कुमुदचन्द्र, (शब्द) अम्भोजभास्कर जैसे सुन्दर नामोंकी कल्पित प्रभाचन्द्रीय छुट्टिने ही (प्रवचन-सार) सरोजभास्करका उदय किया है। इस ग्रन्थकी संवत् १५५५ की लिखी हुई जीर्ण प्रति हमारे सामने है। यह प्रति ऐलक पञ्चालाल सरस्वती भवन बम्बईकी है। इसका परिचय संक्षेपमें इस प्रकार है—

पत्रसंख्या ५३, श्लोकसंख्या १७४६, साइज १३×६ । एक पत्रमें १२ पंक्तियां तथा एक पंक्तिमें ४३-४३ अक्षर हैं। लिखावट अच्छी और शुद्धप्राय है। प्रारम्भ—

“ओं नमः सर्वज्ञाय सिध्दाश्रयः ।

वीरं प्रवचनसारं निखिलार्थं निर्मलजनानन्दम् ।

वक्ष्ये सुखावबोधं निर्वाणपदं प्रणम्याप्तम् ॥

श्रीकुन्दकुन्दाचार्यः सकललोकोपकारकं मोक्षमार्गमव्ययनवचिविनेयाशयवशेनो-
पदर्शयितुकामौ निर्विघ्नतः शालपरिसमाप्तादिकं फलमभिलषन्निष्टदेवताविशेषं
शालस्याधौ नमस्कृत्यैवाह ॥ ८ ॥ एस सुरासुर...।”

अन्त—“इति श्रीप्रभाचन्द्रदेवविरचिते प्रवचनसारसरोजभास्करे शुभोपयोगा-
धिकारः समाप्तः ॥ ८ ॥ संवत् १५५५ वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे पून्य(र्णि)मायां तिथौ
शुक्लासरे गिरिपुरे व्या० पुरुषोत्तम लि० ग्रन्थसंख्या षट्सत्तारिंशदधिकानि
सप्तदशशतानि ॥ १७४६ ॥”

मध्यकी सन्धियोंका पुष्पिकालेख—“इति श्री प्रभाचन्द्रदेवविरचिते प्रवचन-
सारसरोजभास्करे...” है।

इस टीका में जगह जगह उद्धृत दार्शनिक अवतरण, दार्शनिक व्याख्यापद्धति एवं सरल प्रसन्नशैली इसे न्यायकुमुदचन्द्रादिके रचयिता प्रभाचन्द्रकी कृति सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त हैं। अवतरण—(शा० २।१०) “नाशोत्पादौ समं यद्वशा-
मोक्षमौ तुलान्तयोः” (शा० २।२८) “स्वोपासकर्मवशाद् भवाद् भवान्तर-
वाप्तिः संसारः” इनमें दूसरा अवतरण राजवार्तिक का तथा प्रथम किसी बौद्ध

ग्रन्थका है। ये दोनों अन्तरण प्रमेयकमल० और न्यायकुमुद० में भी पाए जाते हैं। इस व्याख्याकी दार्शनिक शैलीके नमूने—

(गा० २।१३) “यदि हि द्रव्यं स्वयं सदात्मकं न स्यात् तदा स्वयमसदात्मकं सत्तातः पृथग्वा ? तत्राद्यः पक्षो न भवति; यदि सत् सद्रूपं द्रव्यं तदा असद्रूपं शुर्वं निश्चयेन न तं तत् भवति । कथं केन प्रकारेण द्रव्यं स्वरविपाणवत् । हवदि-पुणो अणं वा । अयं सत्तातः पुनरन्वद्वा पृथग्भूतं द्रव्यं भवति तदा अतः पृथग्भूतस्यापि सत्त्वे सत्ताकल्पना व्यर्था । सत्तासम्बन्धात्सत्त्वे चान्योन्याभयः—सिद्धे हि तत्सत्त्वे सत्तासम्बन्धसिद्धिः तस्याम्ब सम्बन्धसिद्धौ सत्तां तत्सत्त्वसिद्धिरिति । तत्सत्त्वसिद्धिमन्तरेणापि सत्तासम्बन्धे स्वपुष्पादेरपि तत्प्रसङ्गः । तस्मात् द्रव्यं स्वयं सत्ता स्वयमेव सदभ्युपगन्तव्यम् ।” (गा० २।१६) “...तथाहि—द्रवति द्रोष्यत्वादु-द्रवतांस्त्वान् गुणपर्यायान् गुणपर्यायैर्वा द्रोष्यते द्रुतं वा द्रव्यमिति । गम्यते उपलभ्यते द्रव्यमनेनेति गुणः । द्रव्यं वा द्रव्यान्तरात् येन विशिष्यते स गुणः । इत्येतस्मादर्थ-विशेषात् यद् द्रव्यस्य गुणरूपे गुणरूपेण गुणस्य वा द्रव्यरूपेणानभवं एतौ एव हि अतद्भावाः ।” इन गायार्थोंकी असूतचन्नीय और जयसेनीय टीकाओंसे इस टीकाकी तुलना करने पर इसकी दार्शनिकप्रसूतता अपने आप झलक मारती है। इस टीकाका जयसेनीयटीका पर प्रभाव है और जयसेनीयटीकासे यह निश्चय ही पूर्वकालीन है।

असूतचन्द्राचार्यने प्रवचनसारकी जिन ३६ गायार्थोंकी व्याख्या नहीं की है प्रायः वे गायार्थ प्रवचनसारसरोजमास्करमें यथास्थान व्याख्यात हैं। जयसेनीय-टीकामें प्रभाचन्द्रका अनुसरण करते हुए इन गायार्थोंकी व्याख्या की गई है। हाँ, जयसेनीयटीकामें दो तीन गायार्थ अतिरिक्त भी हैं। इस टीकाका लक्ष्य है गायार्थोंका संक्षेपसे खुलासा करना। परन्तु प्रभाचन्द्र प्रारम्भसे ही दर्शनशास्त्रके विशिष्ट अभ्यासी रहे हैं इसलिए जहाँ खास अवसर आया वहाँ उन्होंने संक्षेपसे दार्शनिक मुद्दोंका भी निर्देश किया है।

प्रो० ए० एन० उपाध्येने प्रवचनसारकी भूमिकामें भावत्रिमंगीकर श्रुतानुजिने ‘सारत्रयनिपुण प्रभाचन्द्र’ के उल्लेखसे प्रवचनसारसरोजमास्करके कर्ताका समय १४ वीं सदीका प्रारम्भिक भाग सूचित किया है। परन्तु यह संभावना किसी दृढ़ आधार से नहीं की गई है।

जयसेनीय टीकापर इसका प्रभाव होनेसे ये उनसे प्राकालीन तो हैं ही। आ० जयसेन अपनी टीका में (पृ० २९) केवलिकवलहारके खंडनका उपसंहार करते हुए लिखते हैं कि—“अन्येपि पिण्डशुद्धिकथिता बहवो दोषाः ते चान्यत्र तर्कशास्त्रे ज्ञातव्या अत्र चाध्यात्मग्रन्थलाभोच्यन्ते ।” सम्भव है यहाँ तर्कशास्त्रसे प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिकी विवक्षा हो। अस्तु, उसे तो यह संक्षिप्त पर विशद टीका प्रभाचन्द्राचार्यकी प्रारम्भिककृति मान्य होती है।

गद्यकथाकोश—यह ग्रन्थ भी इन्हीं प्रभावचक्र मास्य होता है । इसकी प्रतियें ८९ वीं कथाके बाद “जयसिंहदेवराज्ये” प्रकाशित है । इसके अशक्ति श्लोकोंका प्रभावचक्र न्यायकुसुदचन्द्र आदिके प्रकाशितश्लोकोंसे पूरा पूरा सादृश्य है । इसका मंगलश्लोक यह है—

“प्रणम्य मोक्षप्रदमस्तदोषं प्रकृष्टपुण्यप्रभवं जिनेन्द्रम् ।

वक्ष्येऽज भव्यप्रतिबोधनार्थमाश्रयनासत्सुक्याप्रबन्धः ॥”

८९ वीं कथाके अनन्तर “जयसिंहदेवराज्ये” प्रकाशित लिखकर ग्रन्थ समाप्त कर दिया गया है । इसके अनन्तर भी कुछ कथाएँ लिखीं हैं । और अन्तमें “शुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः” श्लोक तथा “इति भट्टारकप्रभावचक्रतः कथाकोशः समाप्तः” यह पुष्पिकाश्लेष है । इस तरह इसमें दो स्थलों पर ग्रन्थसमाप्तिकी सूचना है जो खासतौरसे विचारणीय है । हो सकता है कि प्रभावचक्रने प्रारम्भकी ८९ कथाएँ ही बनाई हों और बादकी कथाएँ किसी दूसरे भट्टारकप्रभावचक्रने । अथवा लेखकने श्रुतिसे ८९ वीं कथाके बाद ही ग्रन्थसमाप्तिसूचक पुष्पिकाश्लेष लिख दिया हो । इसको खासतौरसे जाँचे बिना अभी विशेष कुछ कहना शक्य नहीं है ।

मेरे विचारसे प्रभावचक्रने तत्त्वार्थवृत्तिपदविवरण और प्रवचनसारसरोजभास्कर भोजदेवके राज्यसे पहिले अपनी प्रारम्भिक अवस्थानें बनाए होंगे यही कारण है कि उनमें ‘भोजदेवराज्ये’ या ‘जयसिंहदेवराज्ये’ कोई प्रकाशित नहीं पाई जाती और न उन ग्रन्थोंमें प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिका उल्लेख ही पाया जाता है । इस तरह हम प्रभावचक्रकी ग्रन्थरचनाका क्रम इस प्रकार समझते हैं—तत्त्वार्थवृत्तिपदविवरण, प्रवचनसारसरोजभास्कर, प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुसुदचन्द्र, शब्दा-

१ न्यायकुसुदचन्द्र ग्रन्थभागकी प्रस्तावना पृ० १२२—

“वैराग्यं चतुर्विधमनुपमाभारवर्णा निरैकम् ।

प्राप्तं सर्वसुखात्सर्वं निरुपमं स्वर्गापवर्गप्रदा (१) ।

तेषां धर्मकथाप्रपञ्चरचनासारावना संक्षिता ।

सेवाय कर्मविशुद्धिहेतुरभला चन्द्रार्कतारावधि ॥ १ ॥

शुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः पदैः प्रभावचक्रतः प्रबन्धः ।

कल्याणकालेऽज जिनेश्वरणां सुरेन्द्रदन्तीषु विराजतेऽलौ ॥ २ ॥

श्रीमज्जयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्वाराणिवासिना परदारपञ्चपरमैरिष्यन्त्योपाजितामकुपुण्य-
निराकृतनिखिलमलकलङ्केन श्रीमद्वाराचन्द्रपण्डितेन आराधनासत्कथाप्रबन्धः कृतः ।”

२ योगसूत्रपर भोजदेवकी राजमार्तण्ड नामक टीका पाई जाती है । संभव है प्रमेय-
कमलमार्तण्ड और राजमार्तण्ड नाम परस्पर प्रभावित हों ।

म्होजभास्कर, महापुराणटिप्पण और गद्यकथाकोश । श्रीमान् प्रेमीजीने रत्नकरण्ड-

१ पं० जुगलकिशोर जी सुस्तारने रत्नकरण्डभावनकाचार की प्रस्तावनामें रत्नकरण्ड-
भावनकाचारकी टीका और समाधितत्रयीकाको एकही प्रभावचन्द्र द्वारा रचित सिद्ध किया
है; जो ठीक है । पर आपने इन प्रभावचन्द्रको प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके रचयिता
तर्कग्रन्थकार प्रभावचन्द्रसे भिन्न सिद्ध करनेका जो प्रयत्न किया है वह बस्तुतः बृहद् प्रमाणों
पर अवलम्बित नहीं है । आपके मुख्यप्रमाण हैं कि—“प्रभावचन्द्रका आदिपुराणकारने
स्मरण किया है इस लिपि ये ईसाकी नवमशताब्दीके विद्वान् हैं, और इस टीकामें
यशस्तिलकचम्पू (ई० ९५९) वसुनन्दिभावनकाचार (अनुमानतः वि० की १३ वीं
शताब्दीका पूर्व भाग) तथा पद्मनन्दि उपासकाचार (अनुमानतः वि० सं० ११८०)
के श्लोक उद्धृत पाए जाते हैं, इसलिपि यह टीका प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके रचयिता
प्रभावचन्द्रकी नहीं हो सकती ।” इनके विषयमें मेरा वह वक्तव्य है कि—जब प्रभा-
वचन्द्र का समय अन्य अनेक पुष्ट प्रमाणोंसे ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दी सिद्ध होता है तब
यदि ये टीकाएँ भी उन्हीं प्रभावचन्द्रकी ही हों तो भी इनमें यशस्तिलकचम्पू और
नीतिवाक्यानुसृतके वाक्योंका उद्धृत होना अस्वाभाविक एवं अनैतिहासिक नहीं है ।
वसुनन्दि और पद्मनन्दिका समय भी विक्रमकी १२ वीं और तेरहवीं सदी अनुमान-
मात्र है, कोई बृहद् प्रमाण इसके साक्ष्य नहीं दिए गए हैं । पद्मनन्दि शुभचन्द्रके शिष्य
ये यह बात पद्मनन्दिके ग्रन्थसे तो नहीं मालूम होती । वसुनन्दिकी ‘पद्मिगहसुखद्वय’
गाथा स्वयं उन्हीं की बनई है या अन्य किसी आचार्यकी यह भी अभी निश्चित नहीं
है । पद्मनन्दिभावनकाचारके ‘अधुनाशरणे’ आदि श्लोक भी रत्नकरण्डटीकामें पद्मनन्दिका
नाम लेकर उद्धृत नहीं हैं और न इन श्लोकोंके पहिले ‘उक्त च, तथा चोक्तम्’ आदि
कोई पद ही दिया गया है जिससे इन्हें उद्धृत ही माना जाय । वास्तव्य यह कि सुस्तार
सा० ने इन टीकाओंके प्रसिद्ध प्रभावचन्द्ररूप न होने में जो प्रमाण दिए हैं वे बृहद् नहीं
हैं । रत्नकरण्डटीका तथा समाधितत्रयीकामें प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रका
एक साथ विक्षिप्तवैलीसे उल्लेख होना इसकी सूचना करता है कि ये टीकाएँ भी प्रसिद्ध
प्रभावचन्द्रकी ही होनी चाहिए । वे उल्लेख इस प्रकार हैं—

“तद्वलमतिप्रसङ्गेन प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे प्रपञ्चतः प्ररूप-
णात्”—रत्नक० टी० पृ० ६ । “यैः पुनर्योगसांख्यैर्मुक्तौ तत्पच्युतिरात्मनोऽ-
भ्युपगता ते प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे च भोक्षविचारे विस्तरतः
प्रत्याख्याताः ।”—समाधितत्रयी० पृ० १५ ।

इन दोनों अवतरणोंकी प्रभावचन्द्रकृत शब्दाम्मोजभास्करके निम्नलिखित अवतरणसे
सुलना करने पर स्पष्ट मालूम हो जाता है कि शब्दाम्मोजभास्करके कर्ताने ही उक्त
टीकाओंको बनाया है—

“तदाल्मकत्वं चार्थस्य अभ्यक्षतोऽनुमानादेव यथा सिद्ध्यति तथा प्रमेयकमल-
मार्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे च प्ररूपितमिह द्रष्टव्यम् ।”—शब्दाम्मोजभास्कर ।

प्रभावचन्द्रकृत गद्यकथाकोशमें पाई जानेवाली अजनचोर आदिकी कथाओंसे रत्न-
करण्डटीकागत कथाओंका अक्षरशः सादृश्य है । इति ।

टीका, समाधितन्त्रटीका क्रियाकलापटीका*, आत्मानुशासनतिलका आदि ग्रन्थोंकी

* क्रियाकलापटीकाकी एक लिखित प्रति वर्णमाला के सरसती मन्त्रमें है। उसके मंगल और प्रशस्ति श्लोक निम्नलिखित हैं—

मंगल—“जिनेन्द्रमुन्मूलितकर्मबन्धं प्रणम्य सन्मार्गकृतस्वरूपम् ।

अनन्तबोधदिभवं शुणौघं क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये ॥”

प्रशस्ति—“वन्दे मोहतमोविनाशनपटुल्लोकावदीपप्रभुः

संस्मृतिरसमन्वितस्य निखिलजेहस्य संशोषकः ।

सिद्धान्तादिसमस्तशास्त्राकिरणः श्रीपञ्चनन्दिप्रभुः

तच्छिष्याप्रकटावर्ता स्तुतिपदं प्राप्तं प्रभाचन्द्रतः ॥ १ ॥

यो रात्रौ दिवसे वृथि प्रयतां (?) दोषा यतीनां कुतो प्योपाताः (?)

प्रलये तु...रमलक्षेपां महादर्शितः ।

श्रीमद्गौतमनाभिभिर्गणधरैर्लोकत्रयोद्व्योतकैः, सत्यकृ (?)

सकलोऽप्यसौ यतिपतेर्जातः प्रभाचन्द्रतः ॥ २ ॥

यः (यत्) सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितौष्ठद्वयम्,

नो बान्छाकलितञ्च दोषमलिनं न आसतुह (हृद्) कमम् ।

शान्तामर्याविपदैः (मर्षविपैः) समं परब्रु (पब्रु) गणैराकर्णितं कर्णतः,

तद्वत् सर्वविद्ः प्रणष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥ ३ ॥”

इन प्रशस्तिश्लोकोंसे ज्ञात होता है कि जिन प्रभाचन्द्रने क्रियाकलापटीका रची है वे पञ्चनन्दिशैक्षान्तिकर्ता शिष्य थे । न्यायकुमुदचन्द्र आदिके कर्ता प्रभाचन्द्र भी पञ्चनन्दि शैक्षान्तिकर्ता ही शिष्य थे, अतः क्रियाकलापटीका और प्रमेयकमलार्चण आदिके कर्ता एक ही प्रभाचन्द्र है इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता । प्रशस्तिश्लोकोंकी रचनाशैली भी प्रमेयकमल० आदिकी प्रशस्तिश्लोकोंसे मिलती जुलती है ।

† आत्मानुशासनतिलककी प्रति श्री प्रेमीजीने मेजी है । उसका मंगल और प्रशस्ति इस प्रकार है—

मंगल—“वीरं प्रणम्य भवचारिनिधिप्रपोतमुद्घोसिताखिलपदार्थमनल्पपुण्यम् ।

निर्वाणमार्गमनवधगुणप्रबन्धमात्मानुशासनमहं प्रवदं प्रवक्ष्ये ॥”

प्रशस्ति—“भोक्षोपःथमनल्पपुण्यममलज्ञानोदयं निर्मलम् ।

अव्यर्थं परमं प्रमेन्दुकृतिना व्यक्तैः प्रसन्नैः पदैः ।

व्याख्यानं धरमात्मशासनमिदं ध्यामोहविच्छेदतः ।

सुक्तार्थेषु कृताद्वैरहरहश्चेतस्यलं चिन्सताम् ॥ १ ॥

इति श्री आत्मानुशासन(नं) सतिलक(कं) प्रभाचन्द्राचार्य-

विरचित(वै) सम्पूर्णम् ॥”

भी प्रभावन्निरुक्त होनेकी संभावना की है, वह खास तौरसे विचारणीय है ।
 यथावसर इन ग्रन्थोंके विषयमें विशेष प्रकाश डाल जायगा । अन्तमें मैं उन
 सब ग्रन्थकार विद्वानोंके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनके
 ग्रन्थोंसे इस प्रस्तावनामें सहायता मिली है ।

काल्युनशुल द्वादशी
 आष्टादिकपर्व
 गीर नि० सं० २४६७ }

न्यायाचार्य महेन्द्रकुमार शास्त्री.
 स्याद्वाद विद्यालय काशी.



परीक्षामुखसूत्राणां तुलना ।

- न्यायप्र०—न्यायप्रवेशः [बह्वैदा सीरिज्]
 न्यायवि०—न्यायविन्दुः [चौखम्बा सीरिज्]
 न्यायविलि०—न्यायविलिखयः [सकलकुप्रन्यत्रयान्तर्गतः सिंधी सीरिज् कलकत्ता]
 न्यायसा०—न्यायसारः [एशियाटिक सो० कलकत्ता]
 न्याया०—न्यायावतारः [वे० कार्नेस बम्बई]
 प्रमाणनय०—प्रमाणनयतत्त्वालोकलङ्कारः [यधो० काशी]
 प्रमाणप०—प्रमाणपरीक्षा [जैनसिद्धान्तप्र० कलकत्ता]
 प्रमाणमी०—प्रमाणमीमांसा [सिंधी जैन सीरिज् कलकत्ता]
 प्रमाणसं०—प्रमाणसंग्रहः [सिंधी जैन सीरिज्]
 लघी० खट्ट०—लघीयलघवं सङ्क्षिप्तयुतम् [सिंधी जैन सीरिज् कलकत्ता]

परीक्षामु०

- १११.—प्रमाणनय० ११२. प्रमाणमी० १११२.
 ११२.—लघी० पृ० २१ पं० ६. प्रमाणनय० ११३.
 ११३.—प्रमाणनय० ११६.
 ११६, ७, ८.—प्रमाणनय० ११९६.
 ११११.—प्रमाणनय० १११७.
 १११३.—प्रमाणनय० ११२०. प्रमाणमी० ११११८.
 २११, २.—लघी० का० ३. प्रमाणनय० २११. प्रमाणमी० ११११९, १०.
 २१३.—न्याया० का० ४. लघी० का० ३. प्रमाणनय० २१३. प्रमाणमी० १११११३.
 २१४.—लघी० का० ४. प्रमाणनय० २१३. प्रमाणमी० १११११४.
 २१५.—लघी० ख० का० ६१. प्रमाणमी० ११११२०.
 २१६.—लघी० खट्ट० का० ५५. प्रमाणमी० ११११२५.
 २१७.—लघी० का० ५५.
 २१११.—न्याया० का० २७. लघी० खट्ट० का० ४. प्रमाणनय० २१२४.
 प्रमाणमी० १११११५.
 ३११.—न्याया० का० ३१. लघी० का० ३. प्रमाणनय० ३११. प्रमाणमी० ११२११.
 ३१२.—लघी० का० १०. प्रमाणनय० ३११. प्रमाणमी० ११२१२.
 ३१३, ४.—प्रमाणप० पृ० ६९. प्रमाणनय० ३११, २. प्रमाणमी० ११२१३.
 ३१५-१०.—प्रमाणप० पृ० ६९. प्रमाणनय० ३१४. प्रमाणमी० ११२१४.
 ३१११, १२, १३.—प्रमाणसं० का० १२. प्रमाणप० पृ० ७०. प्रमाणनय० ३१५, ६.
 प्रमाणमी० ११२१५.

३।१४.—न्याया० का० ५, लघी० का० १२, न्यायविनि० का० १७०.

प्रमाणप० पृ० ७०, प्रमाणमी० १।२।७.

३।१५.—न्यायविनि० का० २६९, प्रमाणसं० का० २१, प्रमाणप० पृ० ७०,

प्रमाणनय० ३।९.

३।१६.—प्रमाणमी० १।२।१०.

३।१९.—न्यायविनि० का० ३२९, प्रमाणमी० १।२।११.

३।२०.—न्यायप्र० पृ० १ पं० ७, न्यायवि० पृ० ७९ पं० ३, १२, न्यायविनि०

का० १७२, प्रमाणसं० का० २०, प्रमाणनय० ३।१२, प्रमाणमी० १।२।१३.

३।२१.—प्रमाणनय० ३।१३.

३।२२.—प्रमाणनय० ३।१४, १५.

३।२५.—प्रमाणमी० १।२।१५.

३।२७.—न्यायप्र० पृ० १ पं० ६, प्रमाणनय० ३।१८, प्रमाणमी० १।२।१६.

३।२८—३०.—प्रमाणनय० ३।१९, २०, प्रमाणमी० १।२।१७.

३।३२.—प्रमाणनय० ३।१६.

३।३४, ३५.—प्रमाणनय० ३।२२, प्रमाणमी० २।१।८.

३।३६.—प्रमाणनय० ३।२३.

३।३७.—न्यायवि० पृ० ११७ पं० ११, प्रमाणनय० ३।२६, प्रमाणमी० १।२।१८.

३।३८.—प्रमाणनय० ३।३१.

३।३९.—प्रमाणनय० ३।३२.

३।४०.—प्रमाणनय० ३।३३.

३।४१.—प्रमाणनय० ३।३४.

३।४४.—प्रमाणनय० ३।३७.

३।४५.—प्रमाणनय० ३।३८.

३।४६.—प्रमाणनय० ३।३९, प्रमाणमी० २।१।१०.

३।४७.—न्यायप्र० पृ० १ पं० १५, प्रमाणनय० ३।४१, प्रमाणमी० १।२।२१.

३।४८.—न्यायप्र० पृ० १ पं० १६, न्याया० का० १८, प्रमाणनय० ३।४२, ४३,

प्रमाणमी० १।२।२२.

३।४९.—न्यायप्र० पृ० २ पं० २, न्याया० का० १९, प्रमाणनय० ३।४४, ४५,

प्रमाणमी० १।२।२३.

४।५०.—प्रमाणनय० ३।४६, ४७, प्रमाणमी० २।१।१४.

३।५१.—प्रमाणनय० ३।४८, ४९, प्रमाणमी० २।१।१५.

३।५२, ५३.—न्यायवि० २।१, २, न्याया० का० १०, न्यायसा० पृ० ५ पं० १०.

प्रमाणनय० ३।७, प्रमाणमी० १।२।८.

३।५४.—न्यायवि० २।३, प्रमाणनय० ३।८, प्रमाणमी० १।२।९.

३।५५, ५६.—न्यायवि० ३।१, २, न्याया० का० १०, १३, प्रमाणनय० ३।२१.

प्रमाणमी० २।१।१, २.

- ३१५७.—प्रमाणनय० ३१५१.
 ३१५८.—प्रमाणनय० ३१५२.
 ३१५९.—प्रमाणनय० ३१६४, ६५.
 ३१६०.—प्रमाणनय० ३१६६.
 ३१६१.—प्रमाणनय० ३१६७.
 ३१६२.—प्रमाणनय० ३१६८.
 ३१६३.—प्रमाणनय० ३१६९, ७०.
 ३१६४.—प्रमाणनय० ३१७२.
 ३१६५.—प्रमाणनय० ३१७३.
 ३१६७.—प्रमाणप० पृ० ७२.
 ३१६८.—लघी० का० १४. प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१७६.
 ३१६९.—प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१७७.
 ३१७०.—प्रमाणनय० ३१७८.
 ३१७१.—प्रमाणनय० ३१८२.
 ३१७२, ७३.—न्यायवि० पृ० ४९, ५०. प्रमाणप० पृ० ७३.
 ३१७५.—प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१८६.
 ३१७६.—प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१८७.
 ३१७८.—प्रमाणनय० ३१९०, ९१.
 ३१७९.—प्रमाणनय० ३१९२.
 ३१८०.—न्यायवि० पृ० ४९. प्रमाणप० पृ० ७४. प्रमाणनय० ३१९३.
 ३१८१.—न्यायवि० पृ० ४८. प्रमाणनय० ३१९४.
 ३१८३.—न्यायवि० पृ० ५३. प्रमाणप० पृ० ७४. प्रमाणनय० ३१९६.
 ३१८४.—प्रमाणप० पृ० ७४. प्रमाणनय० ३१९७.
 ३१८७.—प्रमाणनय० ३१९०१.
 ३१८८.—प्रमाणनय० ३१९०२.
 ३१८९.—प्रमाणनय० ३१९०३.
 ३१९४, ९५.—न्यायवि० पृ० ६२-६३. न्याया० का० १७. प्रमाणनय० ३१२७-
 ३०. प्रमाणनी० २११३-६.
 ३१९८.—न्याया० का० १४. प्रमाणनी० २११७.
 ३१९९.—प्रमाणनय० ४११.
 ३१९००.—प्रमाणनय० ४१११.
 ३१९०१.—प्रमाणनय० ४१३.
 ४११.—न्याया० खो० २९. लघी० का० ७. प्रमाणप० पृ० ७९. प्रमाणनय०
 ५११. प्रमाणनी० १११३०.
 ४१२.—प्रमाणनय० ५१२. प्रमाणनी० १११३३.

- ४१३.—प्रमाणनय० ५१३.
 ४१४.—प्रमाणनय० ५१४.
 ४१५.—प्रमाणनय० ५१५.
 ४१८.—प्रमाणनय० ५१८.
 ४१९.—लघी० खट्ट० का० ६७.
 ५११.—आप्तमी० का० १०२. न्याया० का० २८. न्यायविति० का० ४७६.
 प्रमाणप० पृ० ७९. प्रमाणनय० ६१३-५. प्रमाणमी० १११३८, ४०.
 ५१३.—प्रमाणनय० ६१०. प्रमाणमी० १११४१.
 ६११.—प्रमाणनय० ६१२३.
 ६१२.—प्रमाणनय० ६१२४.
 ६१३, ४.—प्रमाणनय० ६१२५, २६.
 ६१६.—प्रमाणनय० ६१२७, २९.
 ६१८.—प्रमाणनय० ६१३१.
 ६१९.—प्रमाणनय० ६१३३, ३४.
 ६११०.—प्रमाणनय० ६१३५.
 ६१११.—प्रमाणनय० ६१३७.
 ६११२.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १३. प्रमाणनय० ६१३८.
 ६११३.—प्रमाणनय० ६१४६.
 ६११४.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० ४.
 ६११५.—न्यायप्र० पृ० २ न्यायवि० पृ० ८४, ८५. प्रमाणनय० ६१४०. प्रमा-
 णमी० ११२१४.
 ६११६.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १७. न्यायवि० पृ० ८४. प्रमाणनय० ६१४१.
 ६११७.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १८. न्यायवि० पृ० ८४. प्रमाणनय० ६१४९.
 ६११८.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १९. प्रमाणनय० ६१४३.
 ६११९.—न्यायप्र० पृ० २ पं० २०. प्रमाणनय० ६१४४.
 ६१२०.—न्यायप्र० पृ० २ पं० २१. प्रमाणनय० ६१४५.
 ६१२१.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० ८. न्याया० का० २२. न्यायविति० का० ३६६.
 प्रमाणनय० ६१४७. प्रमाणमी० २१११६.
 ६१२२.—न्याया० का० २३. प्रमाणनय० ६१४८. प्रमाणमी० २१११७.
 ६१२३.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० १२. न्यायवि० पृ० ८९. न्यायविति० का० ३६५.
 प्रमाणनय० ६१५०.
 ६१२५.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० १४. न्यायवि० पृ० ९१.
 ६१२९.—न्यायप्र० पृ० ५ पं० ६. न्याया० का० २३. प्रमाणनय० ६१५२.
 प्रमाणमी० २११२०.
 ६१३०.—न्यायवि० पृ० १०५. न्याया० का० २३. प्रमाणनय० ६१५४.
 प्रमाणमी० २११२१.

- ६।३१.—प्रमाणनय० ६।५६.
 ६।३३.—प्रमाणनय० ६।५७.
 ६।३५.—न्यायविनि० का० ३७०.
 ६।४०.—न्यायप्र० पृ० ५ पं० २०, न्यायवि० पृ० ११९, न्याया० का० २४,
 न्यायविनि० का० ३८०, प्रमाणनय० ६।५८, प्रमाणसी० २।१।२२.
 ६।४१.—न्यायप्र० पृ० ६ पं० १, न्यायवि० पृ० १२२, प्रमाणनय० ६।६०—
 ६२, प्रमाणसी० २।१।२३.
 ६।४२.—न्यायप्र० पृ० ६, पं० १२, न्यायवि० पृ० १२४, प्रमाणनय० ६।६८,
 प्रमाणसी० २।१।२६.
 ६।४४.—न्यायप्र० पृ० ६ पं० १४, न्यायवि० पृ० १२५, न्याया० का० २५,
 प्रमाणनय० ६।६९, प्रमाणसी० २।१।२४.
 ६।४५.—न्यायप्र० पृ० ७ पं० ७, न्यायवि० पृ० १३०, प्रमाणनय० ६।७९,
 प्रमाणसी० २।१।२६.
 ६।५१.—प्रमाणनय० ६।८३.
 ६।५२.—प्रमाणनय० ६।८४.
 ६।५५.—प्रमाणनय० ६।८५.
 ६।६१.—प्रमाणनय० ६।८६.
 ६।६६.—प्रमाणनय० ६।८७.
-

प्रमेयकमलमार्त्तण्डस्य विषयानुक्रमः ।

विषयाः	५०
मङ्गलाचरणम्	१
परीक्षामुखस्य आदिश्लोकः	२
सम्बन्धाभिधेयाविचारः	२
प्रमाणतदाभासयोरलक्षणस्याभिधेयता	३
प्रत्यतदभिधेययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकलक्षणः सम्बन्धः ...	३
साक्षात्प्रयोजनं लक्षणव्युत्पत्तिः हानोपादानादिकं तु परम्परया ...	३
प्रमाणवाच्यस्य कर्तृकरणभावसाधनता	३
ब्रह्मपर्याययोः मेदामेदविवक्षायां प्रमाणवाच्यस्य त्रिषु कर्तृकरण-	
भावसाधनेषु व्युत्पत्तिः	४
मेदामेदात्मकत्वे विरोधपरिहारः	४
अर्थस्य हेयोपादेयमेदात् त्रैविध्यम्	४
उपेक्षणीयस्य हेयेऽन्तर्भावः	४
असत्प्रादुर्भाषाऽभिलषितप्राप्तिभावश्रुतिमेवेव सिद्धेऽत्रैविध्यम् ...	५
ज्ञापकप्रकरणद्वयं भावश्रुतिरूपेण सिद्धिः विवक्षिता	५
जातिप्रकृत्यादिमेवेन उपकारकार्यसिद्धिरपि युज्यते	५
तदाभासपदस्य व्युत्पत्तिः	५
सिद्धात्मपदयोः सार्वक्यम्	६
‘लघीयसः’ इत्यत्र काल-क्षरीरपरिणाम-मतिक्रान्तिविषयत्ववेषु	
मतिक्रान्तस्यैव लघवस्य ग्रहणम्	६
नमस्कारस्त्रिविधः मनोव्याकृत्यकारणमेदात्	७
आदिश्लोकस्य नमस्कारपरत्वम्	७
प्रमाणसामान्यलक्षणसूत्रम्	७
अरञ्जैयायिकमद्वैजयन्ताभिमतकारकसाकल्यस्य नि-	
रासः	७-१३
अव्यभिचारादिविशोधनविशिष्टमपि कारकसाकल्यं अज्ञानरूपत्वेन	
प्रमितौ साधकतमत्ताभावात् प्रमाणम्	७
प्रतीपादीनामुपचारत एव परिष्कृतौ साधकतमत्वपक्षेऽः ...	८
प्रमितिं प्रति बोधेन व्यवचानात् कारकसाकल्यस्य प्रमाणता ...	८
किं सकलान्येव कारकाणि साकल्यस्वरूपं तदर्थो वा तत्कार्यं वा	
पदार्थान्तरं वा ?	९
प्रथमविकल्पे साकल्यस्य कर्तृकर्मरूपत्वे करणत्वाद्युपपत्तिः ...	९
यमेव संयोगरूपः अन्यो वा ?	९

विषयाः	५०
धर्मैः कारकेभ्यो भिन्नोऽभिधो वा ?	९
तत्कार्यपक्षे निर्यानां जनकत्वे सर्वदा तदुत्पत्तिप्रसक्तिः	१०
सहकारिसव्यपेक्षया कार्ये देहादिप्रतिनियमे किं विशेषाधायित्वेन	
सहकारित्वमेकार्थकारित्वेन वा ?	११
विशेषाधायित्वपक्षे विशेषः भिन्नोऽभिधो वा ?	११
साहित्येऽपि भावनां स्वरूपेणैव कार्यकारिता न तु पररूपेण ...	११
किं सकलानि कारकाणि साकल्योत्पादने प्रवर्तन्तेऽसकलानि वा ?	१२
वैशेषिकाद्यभिमतसन्निकर्षस्य विचारः... ..	१४-१८
सन्निकर्षो न प्रमाणं प्रमित्युत्पत्तौ साधकतमत्ताभावात्	१४
योग्यता च शक्तिः, प्रतिपत्तुः प्रतिबन्धापायो वा ?	१५
शक्तिरपि अतीन्द्रिया सहकारिसन्धिभिरूपा वा ?	१५
सहकारिकारणं च द्रव्यं गुणः कर्म वा ?	१५
द्रव्यमपि व्यापिद्रव्यमव्यापि द्रव्यं वा ?	१५
अव्यापि द्रव्यमपि मनो नयनमालोको वा ?	१५
गुणोऽपि प्रमेयगतः प्रमातृगतः उभयगतो वा सहकारी स्यात् ?	१५
कर्माभ्यर्थान्तरगतसिन्ध्रियगतं वा सहकारि स्यात् ?	१५
भावेन्द्रियलक्षणा योग्यतापि प्रमाणम्	१६
प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरस्य प्रमाणस्य प्रतिषिधानम्	१६
सन्निकर्षस्य प्रामाण्ये च सर्वज्ञाभावः	१७
इन्द्रियस्य योगजन्यमातृप्रसङ्गोऽपि किं स्वविषये प्रवर्तमानस्य अति-	
श्लाघाधानरूपं सहकारित्वमात्रं वा ?	१७
अणुमनसोऽपि नाशेषार्थैः साक्षात्परम्परया वा सम्बन्धः ...	१८
सांख्य-यौगाभिमतेन्द्रियवृत्तिवादः	१९
इन्द्रियेभ्यो वृत्तिर्व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्ता वा ?	१९
व्यतिरिक्तत्वे तेषां धर्मैः अर्थान्तरं वा ?	१९
प्रमाकाराभिमतज्ञातृव्यापारविचारः	२०-२५
ज्ञातृव्यापारस्य अज्ञानरूपस्य उपचारत एव प्रामाण्यं युक्तम् ...	२०
ज्ञातृव्यापारस्वरूपग्राहकं प्रत्यक्षमनुमानमन्यद्वा ?	२०
प्रत्यक्षमपि स्वसंवेदनं बाह्येन्द्रियजं मनःप्रमत्तं वा ?	२०
अनुमानप्रयोजकोऽविनाशानसम्बन्धः किमन्वयनिश्चयद्वारेण प्रती-	
यते व्यतिरेकनिश्चयद्वारेण वा ?	२१
अन्वयनिश्चयोऽपि प्रत्यक्षेण अनुमानेन वा ?	२१
तदनुपलम्भाभिधये किं इत्यानुपलम्भोऽभिप्रेतः अदृश्यानुपलम्भो	
वा ?	२१

विषयाः	४०
दृश्यानुपलम्भोऽपि स्वभावकारणव्यापकानुपलम्भविरुद्धोपलम्भमेवेन चतुर्धा भिद्यते	२१
विरुद्धोपलम्भो द्विधा विरोधस्य द्वैविध्यात्	२२
ज्ञातृव्यापारः कारकैर्जन्योऽजन्यो वा ?	२३
अजन्यत्वे अभावरूपो भावरूपो वा ?	२३
भावरूपत्वे नित्यः अनित्यो वा ?	२३
अनित्यत्वे कालान्तरस्थायी क्षणिको वा ?	२३
जन्यत्वे क्रियात्मकोऽक्रियात्मको वा ?	२३
अक्रियात्मकत्वे बोधरूपोऽबोधरूपो वा ?	२३
असौ ज्ञातृव्यापारः धर्मिस्वभावः धर्मस्वभावो वा ?	२४
ज्ञातृव्यापारजनने प्रवर्तमानानि कारकाणि किमपरव्यापारसापेक्षाणि न वा ?	२४
ज्ञातृव्यापारोऽपि प्रकृतकार्ये व्यापारान्तरसापेक्षो निरपेक्षो वा ? ...	२४
अर्थप्राकट्यं ज्ञातृव्यापारकल्पकमर्याद् मिश्रमभिन्नं वा ? ...	२४
अर्थप्राकट्यमन्यथालुपपन्नत्वेन निश्चितं न वा ?	२५
ज्ञानस्वभावज्ञातृव्यापारमुररीकुर्वाणस्य भाट्टस्य निराधः	२५
प्रमाणस्य ज्ञानात्मकत्वसमर्थनम्	२५
अर्थक्रियाप्रसाधकार्यप्रदर्शकत्वमेव प्रापकत्वम्	२५
प्रवृत्तिमूला तृपादेयार्थप्राप्तिर्न प्रमाणाधीना	२६
अप्रवर्तकत्वेऽपि ज्ञानस्य चन्द्रार्कदिज्ञानवत् प्रामाण्यम्	२६
सुगतज्ञानं व्याप्तिज्ञानं सुखसंवेदनं वा न स्वविषयेऽर्थिनं प्रवर्तयन्ति प्रकृतेर्विषयः भावी वर्तमानो वा ?	२६
बीजाभिमतनिर्विकल्पकप्रत्यक्षत्वाद्	२७-२८
सविकल्पकं ज्ञानं प्रमाणं समारोपविरुद्धत्वात्, प्रमाणत्वाद्वा ...	२७
निर्विकल्पकं नीलवर्णं नीलमिदमिति विकल्पस्य क्षणक्षत्वाद्वा न नीलं क्षणिकं सत्त्वादित्यनुमानस्यापेक्षणाच्च प्रमाणम्	२७
असव्यापारानन्तरं विषयविकल्पसीवानुभवः न तु निर्विकल्पस्य सुगपदृष्टौर्विकल्पाविकल्पयोरेकलाभ्यवसायाभिर्विकल्पकवैषम्यस्य विकल्पे प्रतिमासाभ्युपगमे दीर्घक्षण्णुलीमक्षणादौ रूपादिज्ञान- पक्षकस्य अनेदाध्यवसायः स्यात्	२८
लघुवृत्तेरनेदाध्यवसाये स्वररटितादौ अनेदाध्यवसायप्रसङ्गः ...	२८
सविकल्पाविकल्पयोः सादृश्याद् मेदेनानुपलम्भोऽभिमतत्वाद्वा ? ...	२८
सादृश्यं विषयभेदकृतं ज्ञानरूपताकृतं वा ?	२८
अभिमतो विकल्पेनाविकल्पस्य बलीयस्त्वात्	२९

विषयाः	४०
कुतो विकल्पस्य बलीयस्त्वं बहुविषयात् निश्चयात्मकत्वाद्वा ? ...	२९
निश्चयात्मकत्वं स्वरूपैर्यत्नैः वा ?	२९
एकलाभ्यवसायः किमेकविषयस्य अन्यतरस्यान्यतरेण विषयी- करणं परत्रेतरस्याच्चारोपो वा ?	३०
दृश्ये विकल्पन्यस्यारोपश्च किं गृहीतयोरगृहीतयोर्वा तयोः स्यात् ?	३०
निर्विकल्पे विकल्पस्यारोपो विकल्पे निर्विकल्पस्य वा ?	३०
विकल्पेन निर्विकल्पस्याभिभवः सद्भावमात्रात् अभिन्नविषयत्वा- दभिन्नसामग्रीजन्यत्वाद्वा स्यात् ?	३१
अनयोरैकत्वं निर्विकल्पकमध्यवस्यति विकल्पो वा ज्ञानान्तरं वा ?	३१
संज्ञतसकलविकल्पावस्थायां रूपादिदर्शनस्य निर्विकल्पस्य न संभवः किन्तु स्थिरस्थूलार्थग्राहिणः विकल्परूपस्यैव	३२
अनिश्चयात्मनो निर्विकल्पस्य न प्राप्ताप्यम्	३२
निश्चयहेतुत्वादपि न निर्विकल्पस्य प्राप्ताप्यम्	३२
निर्विकल्पस्य विकल्पोत्पादकत्वमपि दुर्घटम्	३३
विकल्पवासनापेक्षस्यापि निर्विकल्पस्य अर्थवत्त्व विकल्पोत्पादकत्वम्	३३
निर्विकल्पस्य अनुभवमात्रेण विकल्पजनकत्वे नीलादाविच क्षण- क्षयादावपि विकल्पजनकत्वप्रसङ्गः	३३
क्षणक्षयादौ अभ्यासप्रकरणदुस्विपाटवार्थित्वामावाह निर्विकल्पकं विकल्पवासनाप्रबोधकम्	३४
अभ्यासो हि भूयोदर्शनं बहुसो विकल्पोत्पत्तिर्वा ?	३४
पाटवं तु विकल्पोत्पादकत्वं स्फुटतरानुभवो वा अविद्यावासना- विनाशादान्मलानो वा ?	३४
अर्थित्वमभिलषितत्वं जिज्ञासितत्वं वा ?	३४
सविकल्पकप्रत्यक्षवादिनां अवग्रहादिसङ्गावेऽपि अभ्यासात्मकधार- णामावात् न खोच्छ्वासादिसंख्यायाः सकलवर्णपदादेर्वा स्मृतिः	३५
तदन्त्यव्यावृत्त्या निर्विकल्पे अभ्यासानभ्यासकल्पनं न युक्तिसम्यक्तम्	३५
विकल्पस्य शब्दाद्यैर्विकल्पवासनाप्रभवत्वे ततोऽभ्यस्तस्य रूपादि- विषयत्वनियमो न स्यात्	३५
विकल्पः प्रमाणं संवादकत्वात्, अर्थपरिच्छिन्नौ साधकतमत्वात् अनिश्चितार्थनिश्चयकत्वात् प्रतिपन्नपेक्षणीयत्वाच्चानुमानवत्	३६
स्पष्टाकारविकल्पत्वादिकल्पस्याप्राप्त्या धर्मादपादिदर्शनस्याप्राप्ता- भ्यप्रसङ्गः	३७
गृहीतग्राहित्वादप्राप्त्या अनुमानस्याप्यप्राप्त्याप्यम्	३७
असति प्रवर्तनादप्राप्त्या प्रत्यक्षादीनामपि तत्प्रसङ्गः	३७

विषयाः	५०
हिताहितप्राप्तिपरिहारसामर्थ्यं तु विकल्पस्यैव	३७
कदाचिद्विस्वादस्तु प्रत्यक्षादावपि समानः	३७
समारोपनिषेधकत्वं तु विकल्पेऽस्त्येव	३७
व्यवहारयोग्यश्च विकल्प एव	३७
खलक्षणगोचरत्वाद्विकल्पस्याप्रामाण्ये अनुमानस्याप्यप्रामाण्यं स्यात्	३७
शब्दसंसर्गयोग्यप्रतिभासत्त्वमनुमानेऽपि तुल्यम्	३७
ग्राह्यार्थं विना शब्दमात्रप्रभवत्वं तु विकल्पेऽसिद्धमेव	३८
विकल्पाभिधानयोः कार्यकारणभावे किञ्चित्पदगतः पूर्वानुभूत- तत्सदृशस्मृत्यादि न स्यात्	३८
पदस्य वर्णानां वा नामान्तरस्मृतावसथ्यामप्यवसायः सत्तां वा ?	३८
अर्थद्वयमिमतः शब्दाद्वैतवाद्:	३९-५७
शब्दादुपविद्धत्वेनैव सकलज्ञानानां अविकल्पकता	३९
सकलं बाध्यवाचकतत्त्वं शब्दब्रह्मण एव विवर्तः	३९
शब्दादुपविद्धत्वं ज्ञाने ऐन्द्रियेण प्रत्यक्षेण प्रतीयेत स्वसंवेदनेन वा ?	३९
किमिदं शब्दादुपविद्धत्वमर्थस्य अभिन्नदेशे प्रतिभासः तादात्म्यं वा ?	४०
मिथिचेन्द्रियजनज्ञानप्राप्त्याश्च शब्दार्थयोस्तादात्म्यम्	४०
रूपमिदमिति ज्ञानेन बाधपूताप्रतिपक्षाः पदार्थाः प्रतिपद्यन्ते मिथ- बाधपूताविशेषणविशिष्टा वा ?	४०
अर्थस्याभिधानादुपचयता किमर्थज्ञाने तत्प्रतिभासः, अर्थदेशे तद्वेदनं वा, तत्काले तत्प्रतिभासो वा ?	४१
लोचनाभ्यर्क्षं भोत्रप्राज्ञां वैखरीम् अन्तर्जल्परूपां मध्यमां वा वार्चं न संस्पृष्टमिति	४१
पश्यन्ती अन्तर्ज्योतीरूपा च वागेव न भवति अर्थात्मदर्शनलक्षणत्वात्	४१
चतुर्विधवानो लक्षणम्	४२
नाप्यनुमानाच्छब्दब्रह्मसिद्धिः	४३
जगतः शब्दमयत्वं प्रत्यक्षबाधितत्वात्	४३
शब्दपरिणामरूपत्वाजगतः शब्दमयत्वं शब्दादुत्पत्तेर्वा ? ...	४३
शब्दब्रह्म नीलादिरूपं परिणमत् शब्दरूपतां परित्यजति न वा ?	४३
शब्दात्मा परिणामं गच्छन् प्रतिपदार्थमेवं प्रतिपद्येत न वा ? ...	४४
कार्यसमूहः ब्रह्मणोऽर्थान्तरमनर्थान्तरं वा उत्पद्येत ?	४४
योगिनोऽपि न ब्रह्म पश्यन्ति	४५
अविद्याऽपि ब्रह्मव्यतिरिक्ता नास्ति	४५
अनुमानं कार्यलिङ्गं स्वभावादिलिङ्गं वा ब्रह्मसाधकं स्यात् ? ...	४५
शब्दाकारादुत्पत्तत्वं जगतोऽसिद्धम्	४६

विषयाः	५०
सर्वाणां शब्दात्मकत्वे सङ्केताग्राहिणोऽपि शब्दाद् अर्थबोधः स्यात्	४६
लक्ष्मिपाषाणादिशब्दध्वनात् श्रोत्रस्य दाहामिषातादिप्रसङ्गः ...	४६
श्रागमस्य शब्दब्रह्मणो भेदे द्वैतापत्तिः अमेदे प्रतिपाद्यप्रतिपादक-	
भावाभावः	४६
अपूर्वार्थविशेषणेन धारावाहिकविपर्यययोः निरासः	४७
अथवा व्यवसायात्मकविशेषणेन विपर्ययस्य निरासः	४७
संशयस्वरूपविचारः	४७-४८
(तत्त्वोपपन्नवादिनः पूर्वपक्षः) संशयज्ञाने धर्मोऽधर्मो वा	
प्रतिभासते?	४७
धर्मो तात्त्विकः अतात्त्विको वा?	४७
धर्मः स्थाणुलक्षणः पुरुषलक्षणः उभयं वा?	४७
सन्दिग्धोऽर्थः विद्यते न वा?	४७
(उत्तरपक्षः) संशयः चलितप्रतिपत्त्यात्मकत्वेन स्वात्मसंवेद्यः ...	४७
धर्मविषयो धर्मविषयो वेत्यादिप्रश्ना अपि संशयस्वरूपा एव ...	४८
उत्पादककारणभावात् संशयस्य निरासः, असाधारणस्वरूपाभावात्	
विषयाभावाद्वा?	४८
अख्यातिवादः	४८-४९
(चार्वाकादीनां पूर्वपक्षः) जलादिविपर्यये जलं जलामात्रः मरीचयो	
वा न प्रतिभासन्ते अतः निर्विषयमेव जलादिविपर्ययज्ञानम्	४८
तोयाकारेण मरीचिग्रहणमपि न संभाव्यते	४९
(उत्तरपक्षः) विरालम्बनत्वे जलादिविपर्ययस्य विशेषतोऽव्यपदेशा-	
भावप्रसङ्गः	४९
आन्तिमुद्रत्यवस्थयोरविशेषप्रसङ्गश्च	४९
बौद्धाद्यभिमतोऽसत्ख्यातिवादः	४९
असतः खपुष्पादिवत् प्रतिभासमानः	४९
आन्तिवैचित्र्याभावप्रसङ्गश्च	४९
प्रसिद्धार्थख्यातिवादः	४९-५०
(सांख्यस्य पूर्वपक्षः) प्रतिभासमानस्य असत्त्वं नोपपद्यते ...	४९
यद्यप्युत्तरकालमर्थो नास्ति तथापि यदा प्रतिभाति तदाऽस्त्येव	४९
(उत्तरपक्षः) यथावस्थितार्थग्रहणे आन्ताऽऽन्तव्यवहाराभावः	५०
प्रतिभासकालेऽर्थस्य सत्त्वे न तत्कालेऽर्थस्यानुपलब्ध्यापि तच्चिह्नस्य	
भूतिवचतादेः पञ्चाहुपलम्भः स्यात्	५०
प्रसिद्धार्थख्यातौ बाध्यनाशकमाशङ्क्यं न स्यात्	५०
आत्मख्यातिवादः -	५०-५१
(योगाचारस्य पूर्वपक्षः) अनादिविचित्रवासनावशाज्ज्ञानस्यैवाय-	
माकारः बहिः स्थितत्वेन भासते	५०

विषयाः

पृ०

(उत्तरपक्षः) सर्वज्ञानानां स्वाकारमात्रग्राहित्वे भ्रान्ताभ्रान्तविवेको

चाध्यबाधकभावश्च न स्यात् ५०

रजताकारस्य आत्मस्थितत्वेन बहिःस्थरूपेण प्रतीतिर्न स्यात् ... ५०

प्रतिपत्ता च तदुपादानार्थं न प्रवर्तते ५१

अविद्यावशात् बहिःस्थ-स्थिरत्वेन भावे विपरीतख्यातिरैव ... ५१

अनिर्वचनीयार्थख्यातिवादः ५१-५२

(वेदान्तिनः पूर्वपक्षः) न ज्ञानस्य विषय उपदेश्यम्यः अनुमान-

साध्यो वा येन विपरीतार्थकल्पना ५१

प्रतिभासमानश्च जल्यर्थः सदसदुभयात्मको न भवति अतोऽ-

निर्वचनीयः ५१

(उत्तरपक्षः) जलविभ्रान्तौ नियतदेशकालस्वभावो जल्यर्थ एव

सद्रूपेण प्रतिभासते ५२

विचार्यमाणस्यासत्त्वे विपरीतख्यातिः ५२

पुरुषविपरीते स्थणौ पुरुषोऽयमिति ख्यातिः विपरीतख्यातिः ५२

स्मृतिप्रमोषवादः ५३-५८

(प्राभाकराणां पूर्वपक्षः) इदं रजतमिति नैकं ज्ञानं कारणाभावात् ५३

न हि दोषैः चक्षुरादीनां अक्षैः प्रतिबन्ध-प्रवृत्तौ वा क्रियते तथा

सति कार्यानुत्पादकत्वमेव स्यात् न विपरीतकार्योत्पादकत्वम् ५३

अग्रहीतरजतस्य नैदं ज्ञानम्, ग्रहीतस्य च तद्रजतमिति स्यात् ५३

ततो ज्ञानद्वयमेतत्-इदमिति हि पुरोव्यवस्थितार्थप्रतिभासनं रजत-

मिति च स्मरणं प्रमुष्टतदंशत्वात् स्मृतिप्रमोषोऽभिधीयते ... ५४

अवृत्तिश्च भेदाग्रहणसन्निवाद्रजतज्ञानात् संजायते ५४

(उत्तरपक्षः) दोषसमवधाने चक्षुरादिभिः विपरीतं ज्ञानमुत्पाद्यते ५५

नैवमसत्ख्यातिः; सादृश्यहेतुकत्वात् ५५

नापि ज्ञानख्यातिः संस्कारहेतुकत्वात् ५५

नापि भेदाग्रहणात् अवृत्तिः किन्तु यतोऽयमित्याद्यभेदज्ञानात् ... ५५

गुणदोषयोः एकज्ञानजनकत्वमेव ५५

स्वप्रकाशवादिप्रभाकरमते इदं रजतम् इति ज्ञानयोः भेदाग्रहणम-

संभाव्यम् ५६

विवेकख्यातेः प्रागभावरूपापि अख्यातिः अभावानभ्युपगन्तृणां

प्राभाकराणां न संभवति ५६

कक्षायं स्मृतिप्रमोषः किं स्मृतेरभावः अन्यावभासः विपरीताकार-

वेदित्वम् अतीतकालस्य वर्तमानतया ग्रहणम् अनुभवेन सह ५६

क्षीरोदकवदविभेकेनोत्पादो वा ? ५६

अमेयकमलमार्तण्डस्य

विषयाः	५०
द्विचन्द्रादिविपर्ययस्य स्मृतिरूपत्वे इन्द्रियान्नयव्यतिरेकानुविधा- यित्वं न स्यात्	५८
स्मृतिप्रमोषपक्षे बाधकप्रत्ययो न स्यात्	५८
स्मृतिप्रमोषाभ्युपगमे स्वतःप्रामाण्यव्याघातः	५८
प्रमाणसद्भावश्च परिच्छित्तिविशेषसद्भावं एवाभ्युपगम्यते ...	५९
अनिश्चितस्य अपूर्वार्थत्वम्	५९
दृष्टोऽपि समारोपादपूर्वार्थः	५९
मीमांसकाभिमतस्य तत्रापूर्वार्थविज्ञानमित्यादिप्रमाण- लक्षणस्य विचारः... ..	६०-६४
बलान्वयिगतेऽनधिगते वाऽव्यभिचारिप्रमां जनयतो ज्ञानस्य प्रामा- ण्यमनिवार्यमेव	६०
एकान्ततोऽनधिगतार्थाधिगन्तुत्वे प्रमाणस्य प्रामाण्यमपि शङ्कं न शक्यते	६०
प्रामाण्यं हि तदर्थोत्तरज्ञानवृत्तिर्वादादवसीयते	६०
सामान्यविशेषयोस्तादात्म्येऽनधिगतार्थाधिगन्तुत्वमसंभाव्यमेव ...	६०
प्रतिपत्तिविशेषसद्भावादेकविषयाणामपि आगमानुमानाव्यक्षाणां प्रमाणता	६१
अनधिगतार्थप्राहित्वे प्रत्यभिज्ञानस्य प्रमाणत्वं न स्यात्	६१
व्याप्तिज्ञानगृहीतार्थप्राहिणोऽनुमानस्य च प्रामाण्यं न स्यात् ...	६२
कथञ्चिदपूर्वार्थत्वे तु स्मृतिर्तर्कादीनामपि पृथक् प्रामाण्यं स्यात्	६२
अपूर्वार्थप्राहिणः प्रामाण्ये द्विचन्द्रवेदनस्य प्रामाण्यं स्यात् ...	६२
बाधानिरहस्तत्कालभावी उत्तरकालभावी वा प्रामाण्यहेतुः स्यात् ?	६२
उत्तरकालभावी च ज्ञातः अज्ञातो वा ?	६२
ज्ञातश्चेत् पूर्वज्ञानेन उत्तरज्ञानेन वा ?	६३
बाधानिरहस्य ज्ञायमानत्वेऽपि कथं सत्यत्वम् ?	६३
कश्चित् कदाचित्कस्यचिद्बाधानिरहो विज्ञानप्रमाणताहेतुः सर्वत्र सर्वदा सर्वस्य वा ?	६३
अदुष्टकारणारब्धत्वमपि ज्ञातमज्ञातं वा तद्वैतुः ?	६३
अदुष्टकारणारब्धः ज्ञानान्तरात् संवादप्रत्ययाद्वा ?	६३
जैनमते च अदुष्टकारणारब्धत्वादि अभ्यासदशायां स्वतः प्रति- भासते अनभ्यासदशायाश्च परत इति	६४
ब्रह्माद्वैतवाद्ः	६४-७७
(वेदान्तिनां पूर्वपक्षः) अविकल्पकप्रत्यक्षेण हि सर्वत्र एकत्वमेव अन्यानपेक्षतया प्रतिभासते	६४

विषयाः

पृ०

मेदो नार्थस्वरूपम् अन्यापेक्षतया अविद्यासंकेतस्मरणजनितविकल्प-

प्रतीत्या भासमानत्वात्... ..

६४

प्रतिभासमानत्वात् सर्वेषां प्रतिभासान्तःप्रमिष्टसिद्धिरपि ब्रह्मसिद्धिः

६४

सर्वं वै खल्विदमित्याद्यागमादपि ब्रह्मसिद्धिः

६४

प्रत्यक्षं विधातुं न निषेद्धुं अतः प्रत्यक्षं सद्ब्रह्मसाधकमेव ...

६५

अंशनाम् ऊर्णनाम इव ब्रह्म सर्वजन्मिनां हेतुः

६६

मेदवर्धिनो निन्दा च श्रूयते मूलोः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव

पश्यति इति

६५

अर्थानां मेदो देशमेदात् कालमेदात् आकारमेदाद्वा स्यात् ? ...

६५

ब्रह्मणो विद्यास्वभावत्वेऽपि शास्त्रादीनां न वैयर्थ्यात् अविद्याव्या-

पारनिवर्तनफलत्वात्तेषाम्

६६

अनादित्वेऽपि प्रागभाववदविद्याया उच्छेदो चटते

६६

मिथ्याभिधादिविकल्पस्य अवस्तुभूताऽविद्यायामप्रवृत्तिरेव ...

६६

यथैव रजो रजोऽन्तराणि क्षमयति स्वयं च शाम्यति मिथं वा

विधान्तरं प्रथमयत् शाम्यति तथैव श्रवणमननादिमेदात्मि-

काऽविद्या अविद्यां क्षमयन्ती स्वयं शाम्यति

६६

समारोपितमेदादहेतौ बन्धमोक्षसुखदुःखादिव्यवस्था कुचटा ...

६७

(उत्तरपक्षः) मेदस्य प्रमाणबाधितत्वादमेदः साध्यते अमेदे

साधकप्रमाणसङ्गावादा ?

६७

मेदमन्तरेण प्रमाणैतरव्यवस्थान्यसंभाव्या

६७

निर्विकल्पकप्रत्यक्षेण एकव्यक्तिगतमेकत्वम् अनेकव्यक्तिगतं व्यक्ति-

मात्रगतं वा प्रतीयेत ?

६७

एकव्यक्तिगतं तु साधारणमसाधारणं वा ?

६७

अनेकव्यक्तिगतं सत्तासामान्यं व्यक्त्यधिकरणतया प्रतिमास्यनधि-

करणतया वा ?

६८

तथा एकव्यक्तिग्रहणद्वारेण तत्प्रतीयते सकलव्यक्तिग्रहणद्वारेण वा ?

६८

एकत्वं व्यक्तिभ्यो मिश्रमभिन्नं वा ?

६८

एकत्वं नानात्वमन्तरेण न सिध्यति

६८

मेदव्यवहारो हि अन्यापेक्षो न तु मेदस्य स्वरूपं तस्य प्रत्यक्षादेव

प्रतीतेः

६८

कल्पना च किं ज्ञानस्य स्मरणान्तरभाषितं शब्दाकारानुविद्यत्वं

वा जालाद्युल्लेखो वा असदर्थविषयत्वं वा अन्यापेक्षतयाऽर्थ-

स्वरूपावधारणं वा उपचारमात्रं वा ?

६९

किं शब्दजनितो मेदप्रतिभासः मेदप्रतिभासजनितो वा शब्दः ?

६९

विषयाः	५०
प्रथमपक्षे शब्दादेव भेदप्रतिभासः ततोऽसौ भवत्येव वा ? ...	६९
शब्दादनेकलप्रतिभासे 'एकं ब्रह्मणो रूपम्' इति आगमस्यापि भेदप्रतिभासजनकत्वं स्यात्	६९
अनुमानाद् ब्रह्माद्वैतसाधने किं स्वतः प्रतिभासमानत्वं हेतुः परतो वा ?	७०
आगमाद्ब्रह्मसाधने प्रतिपाद्यप्रतिपादकरूपेण द्वैतं स्यात्	७०
ब्रह्मणः सकललोकसर्गस्थितिप्रलयहेतुलमसंभाव्यं कार्यकारणभाव- तया द्वैतप्रसङ्गात्	७०
व्यसनितयाऽस्य जगद्वैचित्र्यविधाने अपेक्षापूर्वकारित्वम् ...	७१
तद्व्यतिरेकेण परस्यासत्त्वाच्च कृपया परोपकारार्थमपि तद्विधानम्	७१
अनुकम्पावधानाच्च सृष्टिविधाने सदा सुखितमेव जगत् कुर्यात् प्रलयश्च न करणीयः	७१
स्वतन्त्रस्य प्राण्यदृष्टापेक्षणमनुपपन्नम्	७१
अदृष्टवधाच्च सृष्टिसंभावनाया किं ब्रह्मणा	७१
ऊर्णनाभश्च न स्वभावतया जालादिविधाने प्रवर्तते किन्तु प्राणि- भक्षणलान्पव्यात्	७२
प्रत्यक्षस्य विधातृत्वं किं सत्तामात्रावबोधः असाधारणवस्तुस्वरूप- परिच्छेदो वा ?	७२
आकारभेदस्यैव सर्वत्र अर्थभेदकत्वम्	७२
अभेदोऽप्यर्थानां देशभेदात् काल्यभेदादाकारभेदाद्वा ? ...	७३
यद्यविद्या अवस्तुसती कथं प्रयत्ननिवर्तनीया	७३
तत्त्वतः सद्भावेऽपि अविद्यायाः निवृत्तिः संभवत्येव घटादिवत्	७३
घटादीनामविद्यानिर्मितत्वेन असत्त्वे अन्योन्याश्रयः	७३
अभेदस्य विद्यानिर्मितत्वेऽपि परस्परश्रयः	७३
अविद्यायाः तत्त्वज्ञानप्रागभावरूपत्वे भेदज्ञानलक्षणकार्योत्पाद- कत्वाभावः	७३
भेदज्ञानस्वभावात्मिकायामविद्यायां प्रागभावस्य भावात्मकत्वापत्तिः	७४
न ज्ञानस्य भेदाभेदग्रहणकृता विद्येतरव्यवस्था अपि तु संवादविसं- वादाधीना	७४
अविद्यायाः अवस्तुलाद्विचाराणोचरत्वं विचाराणोचरत्वाद्वाऽवस्तुलम्	७४
मिथ्याभिज्ञादिविचारः प्रमाणसम्प्रमाणं वा ?	७४
बाध्यबाधकमावाभावे कथं श्रवणमननादिलक्षणाऽविद्या अविद्यां प्रशमयेत्	७४
बाध्यबाधकमावच्छ सतोरेव न लसतोः सदसतोर्वा	७५
न च भेदस्योच्छेदो भवति वस्तुधर्मत्वादस्य	७५

विषयाः

५०

स्वप्नावस्थायां मेदस्य बाध्यमानत्वादसत्त्वेऽपि जाग्रदृक्षायामबाध्य-

मानत्वात्सत्त्वमस्तु ७५

बाधकेन ज्ञानमपह्रियते विषयो वा फलं वा, बाधकमपि ज्ञानमर्थो

वा ? ज्ञानमपि समानविषयं भिन्नविषयं वा ? अर्थोऽपि प्रतिभा-

तोऽप्रतिभातो वा ? क्वचित्कदाचिद्बाधकादसत्यत्वं सर्वत्र सर्वदा

वा इत्यादि दूषणमसत् ; यतो हि रजतप्रत्ययस्य उत्तरकाल-

भाविना कृत्तिप्रत्ययेन एकविषयतया बाध्यत्वोपलम्भात् ... ७५-७६

विपरीतार्थरूपापकं ज्ञानं बाधकम् ७६

मिथ्याज्ञानस्येदमेव बाध्यत्वं यदस्मिन् मिथ्यात्वात्पादनम्, क्वचि-

त्प्रवृत्तिप्रतिषेधोऽपि फलम् ७६

बाध्यबाधकभावाभावे कथं विद्या अविद्या बाधेत ? ७७

निरर्थो आत्मनि समारोपिता सुखदुःखादिव्यवस्थाप्यसम्भाव्या ... ७७

यौगाचारामिमत्तविज्ञानाद्वैतवादः ७७-७८

किमविभागज्ञानस्वरूपावेदकप्रमाणसङ्गावतो विज्ञप्तिमात्रं तत्त्वम-

भ्युपगम्यते बहिरर्थसङ्गावबाधकप्रमाणावष्टम्भेन वा ? ... ७७

प्रत्यक्षञ्च न अर्थोभावनिश्चयमन्तरेण विज्ञप्तिमात्रमेवेत्यधिगन्तुं

समर्थम् ७७

न च प्रत्यक्षेणाऽर्थोभावः प्रतीयते ७७

नाप्यनुमानेन अर्थोभावो वेद्यते ७८

अर्थोभावप्राद्वक्तं चानुमानं स्वभावलिङ्गं कार्यहेतुसमुत्थमनुपलब्धि-

प्रसृतं वा स्यात् ? ७८

अदृश्यानुपलब्धिपर्याभावसाधिका दृश्यानुपलब्धिर्वा ७८

अर्थसविदोः सहोपलम्भनियमात् अमेदसाधनमप्यसत् ; पक्षस्य

प्रत्यक्षबाधितत्वात् ७९

बाह्यार्थमन्तरेण द्विचन्द्रदर्शनस्यासम्भवात् द्विचन्द्रदृष्टान्तोऽपि

साध्यविकलः ७९

सहोपलम्भनियमश्चासिद्धः अर्थसविदोः विवेकेन प्रतीयतेः ... ८०

अनेकान्तिकश्च सहोपलम्भः रूपालोकयोः मित्रयोरपि सहोप-

लम्भात् ८०

सर्वज्ञज्ञानस्य तज्ज्ञेयस्य चेतारजनचित्तस्य सहोपलम्भेऽपि मेदाह्ला-

मिचारः ८०

सहोपलम्भस्य युगपदुपलम्भार्थकत्वे विकृद्वत्तम् ८०

क्रमेणोपलम्भभावाच्च असिद्धः ८०

क्रमेणोपलम्भभावाद् अमेदः साध्यते मेदामावो वा ? ८१

विषयाः	५०
एकोपलम्भरूपसहोपलम्भे किम् एकत्वेनोपलम्भः एकोपलम्भः	
एकेनैव दोपलम्भः एकलोलीभावेन चोपलम्भः, एकस्यैवोप-	
लम्भो वा ?	६१
एकस्यैवोपलम्भे किं ज्ञानस्योपलम्भः अर्थस्य वा ?	६२
नीलादिकमहं वेदि इति नीलादिभ्यो भिजेनाहमप्रत्ययेन तत्प्रति-	
भासाभ्युपगमात् असिद्धः स्वतोऽवभासनलक्षणो हेतुः ...	६३
अहमप्रत्ययो गृहीतोऽगृहीतो वा निर्वापारः सव्यापारो वा निरा-	
कारः साकारो वा भिन्नकालः समकालो वा नीलादेर्ग्राहकः ?	
गृहीतत्वेत् स्वतः परतो वा, व्यापारवत्त्वे व्यतिरिक्तो व्यापारः	
अव्यतिरिक्तो वा, अर्थमहं वेदि इत्यादि कर्तृकरणादिप्रतीतिः	
द्विचन्द्रादिवद्भ्रान्ता इति पूर्वपक्षीयविकल्पाः	६४-६६
अहमप्रत्ययो गृहीत एव ग्राहकः तद्ग्रहणं स्वत एव	६६
स्वपरप्रकाशस्वभावता एव च ज्ञानस्य व्यापारः	६६
नीलादेर्ज्ञानरूपत्वे सप्रतिधारिरूपतास्थूलरूपता च न स्यात् ...	६६
अन्तर्बहिः प्रतिभासमेवेन च ज्ञानार्थयोः भेदः	६६
निराकारमेव ज्ञानमर्थग्राहकम् योग्यताप्रतिनियमाच्च नाद्योवार्थग्रह-	
प्रसङ्गः	६६
भिन्नकालस्य समकालस्य वा योग्यस्यैवार्थस्य ग्रहणम्	६७
अनुमानेऽप्ययं विकल्पजालः समानः—किं किं भिन्नकालं सदनुमा-	
नस्य जनकं समकालं वेत्यादि	६७
एकसामान्यधीनरूपाधीनां समसमयत्वेऽपि यथा स्वरूपप्रतिनियमा-	
दुपादानेतरव्यवस्था तथा ग्राह्यग्राहकव्यवस्थापि स्यात् ...	६७
स्वार्थग्रहणैकस्वभावत्वाद्विज्ञानस्य न 'ज्ञानं येन स्वभावेन स्वकर्म'	
निषयीकरोति तेनैव अर्थ स्वभावान्तरेण वा' इत्यादि दोषाः	६९
रूपाधीनां यथा सजातीयेतरकर्तृत्वं स्वभावप्रतिनियमात्तथा ज्ञानं	
स्वपरग्राहकम्	६९
स्वरूपस्य स्वतोऽवगतावपि भिन्नकालसमकालादिविकल्पः समानः	९०
परतः प्रतिभासमानत्वञ्च वादिनोऽसिद्धम्	९०
यदवभासते तज्ज्ञानमिति साध्यसाधनयोः व्याप्तिव्याप्तिश्च ...	९१
जडस्य प्रतिभासायोगश्च प्रतिपक्षस्य अप्रतिपक्षस्य वा जडस्याभि-	
धीयते	९१
नैयायिकस्य सुखादौ ज्ञानरूपत्वाऽसिद्धेः साध्यविकल्पो दृष्टान्तः ...	९२
सुखादेरज्ञानत्वे पीडाजुप्रहाद्यभावे किं सुखाद्येव पीडाजुप्रहौ ततो	
भिन्नौ वा	९२

विषयाः	पृ०
जैनमते शुद्धादर्शनरूपत्वेऽपि नीलद्यौ स्वप्रकाशत्वमसिद्धमेव ...	१३
कर्तृकर्मकरणादिप्रसीदेः अबाधितत्वात् द्विचन्द्रादिप्रत्ययवद् आन्त- ता युष्मा	१३
अद्वैतप्रसाधकप्रमाणसङ्गावे च द्वैतापत्तिः, प्रमाणमन्तरेण च न द्वैतप्रसिद्धिः	१४
अद्वैतमिस्त्र प्रसज्यप्रतिषेधः, पशुदास्यो वा !	१४
द्वैतादद्वैतस्य व्यतिरेकोऽन्यतिरेको वा !	१४
प्रज्ञाकरगुप्ताभिमतचित्राद्वैतवादस्य निरासः... ..	१५-१६
अशक्यविवेचनत्वं साधनं किं बुद्धेरभिन्नत्वं सहोत्पन्नानां नील- दीनां बुद्ध्यन्तरपरिहारेण विवक्षितबुद्ध्यवानुभवः मेदेन विवेच- नाभावमात्रं वा !	१५
बहिरन्तर्देशासम्बन्धित्वेन ज्ञानार्थयोः विवेचनं शक्यमेव ...	१६
चित्रज्ञानस्य युगपदनैकाकारव्यापित्ववत् क्रमेणाप्यनेकाकारव्यापित- मात्मनः किञ्चेष्यते !	१६
माध्यमिकाभिमतशून्यवादस्य निरासः	१६-१७
एकस्य चित्रज्ञानस्य अनेकाकारव्यापित्वाभावे नीलज्ञानसम्येकं न स्यात् तत्रापि प्रतिपरमाणुज्ञाननेदकल्पनात्	१७
आमाराभादीनां प्रतिभासमानत्वात् कथं सकलशून्यताभ्युपगमः भेदान्	१७
अखिलशून्यतायाः प्रमाणतः सिद्धिः प्रमाणमन्तरेण वा ! ...	१७
ज्ञानस्य स्वव्यवसायात्मकत्वसमर्थनम्	१७
सांख्याभिमतप्रकृतिपरिणामात्मक-अचेतनज्ञानवाद- स्य निरसनम्	१८-१०३
प्रधानविवर्तत्वाच्चैतनं ज्ञानं न स्वव्यवसायात्मकमिति; तच्च; आत्मविवर्तत्वाज्ज्ञानस्य	१८
ज्ञानविवर्तमानात्मा प्रवृत्तात्	१८
चेतनोऽहमित्यनुभवाच्चैतन्यस्वभावतावत् ज्ञाताहमित्यनुभवाज्ज्ञान- स्वभावताप्यस्तु	१९
ज्ञानसंसर्गात् पुरुषस्य कृत्वे चैतन्यादिसंसर्गादेव चेतनः शुद्धः उदासीनश्च पुरुषः स्यात् न तु स्वतः	१९
आत्मनो ज्ञानस्वभावत्वेऽनिश्चलापत्तिः प्रधानेऽपि समाना ...	१९
बुद्धेः स्वसंवेदनप्रत्यक्षभावे प्रतिनिधितार्थव्यवस्थापकत्वं न स्यात्	१००
बुद्धिः स्वव्यवसायात्मिका कारणान्तरनिरपेक्षतयाऽर्थव्यवस्थाप- कत्वात्	१००

विषयाः	५०
अर्थव्यवस्थितौ बुद्धेः पुरुषानुभवापेक्षलभयुक्तम्; बुद्धिचैतन्ययोः	
मेदानुपलब्धेः	१००
एकमेवेदं द्वर्षविषादाद्यनेकाकारं चैतन्यम्, तस्यैव बुद्ध्यवसाया-	
दयः पर्यायाः	१००
तत्तायोगोलके यथा अयोगोलकाभ्योः संसर्गादभेदः तथा बुद्धिचै-	
तन्ययोः मेदानवधारणमयुक्तम्; अयोगोलकाभ्योरपि मेदा-	
भावात्	१०१
बुद्धेरचेतनत्वे विषयव्यवस्थापकत्वं न स्यात्	१०२
आदर्शादिवदचेतनस्य आकारवत्त्वेऽपि नार्थव्यवस्थापकत्वम् ...	१०२
अन्तःकरणल-पुरुषोपभोगप्रत्यासन्नहेतुलक्षरूपबुद्धिलक्षणयोः मनो-	
ऽशादिनाऽनैकान्तिकता	१०२
अन्तःकरणमन्तरेण अर्थप्रत्यक्षाताऽभावे कथमन्तःकरणस्य	
प्रत्यक्षाता ?	१०२
विषयाकारधारिता च अमूर्त्या बुद्धेरनुपपत्त्या	१०३
बौद्धाभिमतसाकारज्ञानवादस्य निरासः	१०३-११०
प्रत्यक्षेण विषयाकाररहितं ज्ञानमनुभूयते	१०३
विषयाकारधारित्वे ज्ञानस्यार्थे दूरनिकटादिव्यवहाराभावः ...	१०३
ज्ञानं यथा नीलतामनुकरोति तथा जडतामपि तदा जडं स्यात् ...	१०४
जडतानुकरणे कथं तस्या ग्रहणम् ?	१०४
ज्ञानान्तरेण केवल्य जडता प्रतीयते तद्वन्नीलताऽपि वा ? ...	१०५
ज्ञानं प्रतिनियतसामर्थ्यवशात् प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकम् ...	१०५
नीलाकारवज्जडाकारस्य अदृष्टेन्द्रियायाकारस्य वाऽनुकरणप्रसङ्गः ...	१०५
पुत्रस्य पित्रोरन्यतराक्षराणुकरणवज्ज्ञानस्य नीलाकारस्यैवानुकरणे	
निराकारत्वेऽपि प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं किञ्च स्यात् ? ...	१०५
सकलं वस्तु निखिलज्ञानस्य कारणं साकारार्पकं च किञ्च स्यात् ?	१०६
प्रमाणत्वाज्ज्ञानस्य नार्थाकारानुकरणम्	१०६
यतो घटयति विवक्षितं ज्ञानमर्थरूपता, अर्थसम्बद्धं वा ज्ञानं	
निश्चाययति ?	१०७
विशिष्टविषयोत्पाद एव च ज्ञानस्यार्थेन सम्बन्धः	१०७
साकारं ज्ञानं किमिति सन्नहितं नीलायाकारमेवानुकरोति न विप्र-	
कृष्टार्थाकारम् ?	१०८
ज्ञाने साक्षरता साकारेण ज्ञानेन प्रतीयते निराकारेण वा ? ...	१०८
साकारसवेदनस्य अखिलसमानार्थसाधारणत्वेनानियतार्थवद्वन-	
प्रसङ्गः	१०८

विषयाः

पृ०

तदुत्पत्तेरिन्द्रियादिना व्यभिचारः	१०८
तद्वयस्य समानार्थसमनन्तरप्रत्ययेन व्यभिचारः	१०८
पुत्रस्य पित्राज्जकरणवत् अर्थेन्द्रिययोः अर्थाकारस्यैवानुकरणे	
स्वोपादानमात्रानुकरणप्रसङ्गः	१०९
उपादानभूतस्य पूर्वज्ञानस्याप्यनुकरणे तस्यापि विषयतापत्तिः ...	१०९
तत्त्वस्यादित्रयस्य कामलिनः शुद्धे शंखे पीताकारज्ञानेन व्यभिचारात्	१०९
ज्ञानयताञ्जीलाद्याकारात् क्षणिकत्वाद्याकारो मित्रोऽमित्रो वा ? ...	१०९
यस्मिंश्च शेषे संस्कारपाटवाभिष्वयोत्पत्तिस्तत्रैव प्रामाण्येऽभ्युपगम्य-	
माने स निश्चयः साकारो निराकारो वा स्यात् ?	११०
आर्वाकामिमतभूतचैतन्यवादस्य निरासः	११०-१२०
भूतपरिणामत्वे हि ज्ञानस्य बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षप्रसङ्गः	११०
सहस्रो भूतविशेषः चैतन्यजातीयो विजातीयो वा चैतन्योपादानं	
स्यात् ?	११०
असाधारणलक्षणत्वाच्चैतन्यं पृथिव्यादिभ्यस्त्वन्तरम्	१११
सुखदुःखमित्यादिरूपतया प्रतीयमानत्वात् प्रत्यक्षेणैव आत्मनः सिद्धिः	१११
न चाहम्प्रत्ययः क्षरीरालम्बनो बहिःकरणनिरपेक्षाऽन्तःकरण-	
व्यापारेणोत्पत्तेः	११२
अहमिति प्रत्ययस्यैव न जीवस्वस्वभाषता	११२
लक्षणभेदेन च एकस्यैवात्मनः कर्तृत्वं कर्मत्वं चाविरुद्धम् ...	११३
ओत्रादिकरणं कर्तृप्रयोज्यं करणत्वादित्यनुमानेनापि आत्मसिद्धिः	११३
रूपाद्युपलब्धिः करणकार्यं क्रियात्वात्	११३
शब्दाद्विज्ञानं क्वचिदाश्रितं गुणत्वाद्रूपादिवत् इत्यनुमानादपि आत्म-	
सिद्धिः	११३
ज्ञानं न क्षरीरगुणं सति क्षरीरे निवर्तमानत्वात्	११४
क्षरीरं न चैतन्यगुणाश्रयो भूतविकारत्वात्	११४
न इन्द्रियं चैतन्यवत् करणत्वाद्भूतविकारत्वाद्वा वास्यादिवत् ...	११४
स्मरणादिचैतन्यमिन्द्रियगुणो न भवति तद्विनाशेऽप्युत्पत्त्यमानत्वात्	११४
न चैतन्यगुणवन्मनः करणत्वात्	११५
नापि विषयगुणः तदसाक्षिण्ये तद्विनाशे च अनुत्पत्त्यादिदर्शनात्	११५
तेभ्यश्चैतन्यमित्यत्र 'अभिव्यज्यते' इति क्रियाध्याहारे सतोऽभि-	
व्यक्तिचैतन्यस्य असतो वा सदसद्रूपस्य वा ?	११६
सर्वथाऽसतोऽभिव्यक्तौ व्यञ्जककारकयोः नैवभावः स्यात् ...	११६
पिष्टोदकादिष्वपि शक्तिरूपेण सादकलस्य अवस्थानम्	११७
चैतन्यमुत्पद्यते इत्यत्र भूतानां चैतन्यं प्रति उपादानकारणत्वं सह-	
कारिकारणत्वं वा ?	११७

विषयाः	४०
भूतोपादानत्वे धारणेणादिभूतस्वभावानां चैतन्येऽनुवृत्तिः स्यात्	११७
प्राणिनामायं चैतन्यं चैतन्यकारणकं चिद्विवर्तत्वात् मध्यचिद्विवर्त- वत् इत्यनुमानाच्चैतनतत्त्वसिद्धिः	११७
अन्त्यचैतन्यपरिणामश्चैतन्यकार्यः चिद्विवर्तत्वात्	११८
भूतानां सहकारिकारणत्वे उपादानमन्यद्वाच्यमनुपादानकार्यानुत्पत्तेः	११८
गोमायादेर्न वृक्षिकचैतन्यमुत्पद्यते अपि न वृक्षिकशरीरम् ...	११८
प्रथमपथिकाम्रेः अनभ्युपादानत्वे जलदेरप्यजलधुपादानत्वापत्तेः तत्त्वचतुष्टयव्याघातः	११८
अनाद्येकानुभवितृव्यतिरेकेण जन्मादौ बालस्य स्वन्यपानादौ स्मर- णामिलाषादयो न स्युः	११९
‘अहं जानामि’ इत्यत्र कर्तृत्वेन आत्मनः प्रतिभासो भवत्येव ...	११९
अनाद्यनन्त आत्मा द्रव्यत्वात्	१२०
द्रव्यमसौ गुणपर्ययवत्त्वात्	१२०
शरीररहितस्य आत्मनः प्रतिभासः सादित्यत्र किं शरीरस्वभाववि- कलस्य शरीरवैशपरिहारेण अन्यवैशावस्थितस्य वा ? ...	१२०
शरीरप्रदेशादन्यत्रानुपलम्भादन्यत्र तदभावः शरीर एव वा ? ...	१२०
शरीरादात्मनोऽन्यत्वाभाषः किं तत्स्वभावत्वात् तद्गुणत्वात् तत्कार्य- त्वाद्वा स्यात् ?	१२०
मीमांसकामिममतपरोक्षज्ञानवादस्य निरासः	१२१-१२८
कर्मलस्य प्रत्यक्षतां प्रत्यक्षत्वे आत्मनोऽप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गः	१२१
आत्मनः प्रत्यक्षत्वे परोक्षज्ञानकल्पना किमर्थिका ?	१२१
भावेन्द्रियमनसोः लब्धिरूपयोः न परोक्षता	१२२
उपयोगरूपस्य नु प्रत्यक्षतैव	१२२
करणज्ञानस्य करणत्वेनानुभूयमानत्वात् फलज्ञान-आत्मवत् प्रत्यक्ष- ताऽस्तु	१२२
आत्मफलज्ञानार्थ्यां करणज्ञानस्य कथञ्चिद्भेदे प्रत्यक्षतैव स्यात् ...	१२३
आत्मज्ञानयोः सर्वथा कर्मलाप्रसिद्धिः कथञ्चिद्वा ?	१२३
प्रत्यक्षता अर्थधर्मैः ज्ञानधर्मो वा ?	१२४
अस्वसंवेदनज्ञानवादिनः न प्रत्यक्षाज्ज्ञानसद्भावसिद्धिः अतद्विष- यत्वात्	१२५
अनुमानाज्ज्ञानसद्भावसिद्धौ अर्थज्ञप्तिः लिङ्गं स्यात् इन्द्रियायौ वा तत्सहकारिप्रगुणं मनो वा ?	१२५
अर्थज्ञप्तिः किं ज्ञानस्वभावा अर्थस्वभावा वा ?	१२५
इन्द्रियायौ च न लिङ्गम् ज्ञानाविनाभावाभावात्	१२६

विषयाः	५६
मनोऽपि न लिङ्गं तत्सङ्गावसिद्धिः	१२६
गुणपञ्चानानुत्पत्तेरपि न मनःसङ्गावसिद्धिः	१२६
ज्ञानस्याप्रत्यक्षतैकान्ते त्रेन लिङ्गस्याभिनाभावो न प्रहीतुं शक्यः	१२७
फलत्वेन प्रतिभासनात् प्रमितेः प्रत्यक्षतावत् आत्मनोऽपि कर्तृत्वेन	
प्रतिभासनात् प्रत्यक्षताऽस्तु	१२८
शब्दानुव्याप्येऽपि स्वस्य प्रतिभासः अर्थवत्	१२८
आत्मप्रत्यक्षत्वसिद्धिः	१२८-१३२
मुखादेः संवेदनादर्थान्तरस्याऽप्रतिभासनात्, आह्लादनाकारपरिणत-	
ज्ञानविशेषस्यैव मुखत्वात् तस्य च प्रत्यक्षत्वात्	१२९
मुखस्य परोक्षत्वे अन्यप्रत्यक्षज्ञानप्राप्त्यत्वे वा अनुग्रहोपचातक्य-	
रितार्थमवः	१२९
न पुनरुत्साधुपलम्भमात्रादात्मनोऽनुग्रहः अपि न सौमनस्यादि-	
जनित्वाभिमानिकपरिणतेः	१२९
न खलु मुखादि अविवक्षितस्वरूपं पूर्वमुत्पन्नं पश्चात् तस्य ग्रहणम्	
अपि न स्वप्रकाशरूपस्यैव मुखादेरुदयः	१२९
विभिन्नप्रमाणप्राप्त्याणां मुखादीनामनुग्रहादिकारित्वविरोधः ...	१३०
आत्मनः मुखादेरत्यन्तमेवे आत्मीयेतरविभागभावः	१३०
आत्मीयत्वं हि मुखादीनां तद्वृणत्वात्, तत्कार्यत्वात् तत्र समवा-	
यात्, तदाधेयत्वात्, तददृष्टनिष्पाद्यत्वात्	१३०
तदाधेयत्वं च किं तत्र समवायः तादात्म्यं तत्रोत्कलितत्वमात्रं वा ?	१३१
अदृष्टादेरपि भेदैकान्ते न आत्मीयत्वनियमः	१३२
नैयायिकाभिमतज्ञानान्तरवेद्यज्ञानवादस्य निरासः ... १३२-१४९	
अमेयत्वात् ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वे मुखसंवेदनेन हेतोर्व्यभिचारो	
महेश्वरज्ञानेन च	१३२
ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वे अनवस्था	१३३
नच ज्ञानद्वयमीश्वरे; समानकालमावृत्त्यभाविज्यातीतगुणद्वयस्य	
एकत्राभावात्	१३३
द्वितीयज्ञानं च प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा ?	१३३
प्रत्यक्षं चेत् स्वतो ज्ञानान्तराह्ला ?	१३३
अनयोर्ज्ञानयोर्महेश्वरपदे कथं तदीयत्वसिद्धिः ?	१३३
ज्ञानस्य ईश्वरे समवेतत्वं नेश्वरेण प्रतीयते, स्वसंवेदित्वप्रसङ्गात्	१३३
नापि ज्ञानेन 'महेश्वरेऽहं समवेतम्' इति प्रतीयतिः	१३४
अज्ञानस्य अप्रत्यक्षत्वे च कथं महेश्वरस्य सर्वज्ञत्वम् ?	१३४
अप्रत्यक्षेण ज्ञानेन अशेषज्ञतायामीश्वरानीश्वरविभागभावः ...	१३४
ज्ञानसामान्यस्य स्वपरप्रकाशकत्वं धर्मो न तु विशिष्टस्य ज्ञानस्य ...	१३५

विश्रयाः	५०
धर्मिणो ज्ञानस्यासिद्धेः आश्रयासिद्धः प्रमेयत्वादिति हेतुः ...	१३५
धर्मिज्ञानस्य सिद्धिः किं प्रत्यक्षादनुमानतो वा ?	१३५
न मानसप्रत्यक्षादपि धर्मिज्ञानसिद्धिः	१३५
घटादिज्ञानज्ञानमिन्त्रियायैसन्निकर्षेण प्रत्यक्षत्वे सति ज्ञानत्वादि- स्यनुमानादपि न मनःसिद्धिः	१३६
स्वात्मनि क्रियाविरोधाच्च स्वसंवेदनं ज्ञानस्यैवात्र हि स्वात्मा किं क्रियायाः स्वरूपं क्रियावदात्मा वा ?	१३६
स्वात्मनि उत्पत्तिलक्षणा वा क्रिया विरुध्यते परिसन्दात्मिका धात्वर्थरूपा ज्ञातिरूपा वा ?	१३७
ज्ञानक्रियायाः कर्मतयाऽपि न स्वात्मनि विरोधः	१३७
ज्ञानान्तरापेक्षया तत्र कर्मत्वविरोधः स्वरूपापेक्षया वा ? ...	१३७
कर्मत्ववच्च ज्ञानक्रियातोऽर्थान्तरस्यैव करणत्वदर्शनात् करणत्वस्यापि विरोधोऽस्तु	१३८
युगपज्ज्ञानोत्पत्तिप्रतीतेः न तदनुत्पत्त्या मनःसिद्धिः	१४०
'चक्षुरादिकं क्रमवत्कारणापेक्षं कारणान्तस्साकल्ये सत्यनुपायोत्पा- दकत्वात्' इत्यनुमानादपि न मनःसिद्धिः	१४०
अनुत्पाद्योत्पादकत्वं क्रमेण युगपद्वा ?	१४०
मनसोऽपि प्रतिनियतात्मीयत्वं तत्कार्यत्वात् तदुपक्रियमाणत्वात् तत्संयोगात् तददृष्टप्रेरितत्वात् तदात्मप्रेरितत्वाद्वा ?	१४१
ईश्वरस्य स्वसविदितज्ञानानभ्युपगमे 'सदसद्द्वर्गः एकज्ञानालम्बन- मनेकत्वात्' इत्यस्य व्यभिचारिता	१४२
आद्ये ज्ञाने सति द्वितीयज्ञानमुत्पद्यतेऽसति वा ?	१४२
तज्ज्ञानान्तरमस्मदावीनां प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा ?	१४२
'प्रयोजनाभावाच्चतुर्थादिज्ञानकल्पनाऽभावाज्ज्ञानवस्था' इत्ययुक्तम्; ज्ञानस्य जिज्ञासाप्रभवत्तानभ्युपगमात्	१४५
अर्थजिज्ञासायामहं समुत्पन्नमिति तज्ज्ञानादेव प्रतीतिः ज्ञानान्तराद्वा ?	१४५
'अर्थज्ञानमर्थमात्मानं च प्रतिपद्य अज्ञातमेव मया ज्ञानमर्थपरिच्छे- दकम्' इति ज्ञानान्तरं प्रतीयादप्रतिपद्य वा ?	१४५
नापि शक्तिक्षयात् ईश्वरात् निषयान्तरसम्भाराददृष्टाद्वा अनवस्था- वारणम्	१४६
स्वपरप्रकाशश्च स्वपरोद्योतनरूपोऽभ्युपगम्यते	१४७
स्वपरप्रकाशयोः कथञ्चिद्वेदामेदात्मकत्वाऽभ्युपगमाच्च स्वभावत- द्वत्पक्षभाविनो दोषाः	१४८
प्रामाण्यत्वाद्ः	१४९-१७६
स्वतःप्रामाण्यं किमुत्पत्तौ ज्ञातौ स्वकार्ये वा ?	१५०

विषयाः	४०
प्रमाणस्य किं कथं यत्र कथं प्रवृत्तिः किं यथावैपरिच्छेदः प्रमाण- सिद्धिमिच्छवद्यायो वा ?	१६५
अनुमानोत्पादकहेतोस्तु साध्याविनामाविलम्बेन गुणः	१६५
आगमस्यापि गुणवत्पुरुषप्रणीतत्वेनैव प्रामाण्यम्	१६५
अपोरुपेयत्वं नीलोत्पलादिषु दहनादीनां वित्तप्रतीतिजनकलोप- भाद् व्यभिचारि	१६५
इतिष्व निर्विमिता वनिसिता वा ?	१६६
वनिसितत्वे वनिसिता अन्यनिसिता वा ?	१६६
अन्यनिसितत्वे तर्कि प्रत्यक्षमनुमानं वा ?	१६६
अनुमाने च' अर्थप्रकट्यं किं किं यथायथविशेषणविशिष्टं निर्विशेषणं वा ?	१६७
संवादस्य संवादरूपलादेव न संवादान्तरप्रपञ्चते	१६८
अर्थक्रियाज्ञानमपि न अर्थक्रियान्तराद् प्रामाण्यमभिप्रायोति यतः अनवस्था अपि तु स्वत एव	१६८
अर्थक्रियाहेतुज्ञानमिति प्रमाणलक्षणं कथं फलभूतायामर्थक्रियाया- भाषाज्ञाते ?	१७०
निश्चिदेकवर्तिमपिप्रमाणां अणिज्ञानस्य अप्रामाण्यमेव	१७१
कतिपयार्थक्रियादर्शनाच्च ज्ञानं प्रमाणम्	१७१
अस्मिन्मात्र एव संवादसंवादकभावनिमित्तं न समानजातीयत्वे- तरादि	१७१
बाधकामावात्प्रामाण्ये किं बाधकभावो बाधकप्रवृत्ते तदभाव- निश्चये वा ?	१७२
बाधकभावनिश्चयोऽपि सम्यग्ज्ञानप्रवृत्तेः प्राक् उत्तरकालं वा ? ...	१७२
बाधकभावनिश्चयेऽनुपलब्धिः किं प्राक्का उत्तरकालं वा ? ...	१७२
अनुपलब्धिः स्वसम्बन्धिनी आत्मसम्बन्धिनी वा स्याद् ? ...	१७३
त्रिचतुरज्ञानमात्रोत्पत्तेः स्वतस्त्वस्वीकारे कथं न पञ्चमज्ञाने पञ्चापेक्षा ?	१७३
चोदनाप्रभवज्ञानेन गुणवद्भूतकलाभावात्कर्तृ निःशङ्का प्रवृत्तिः ?	१७५
इति प्रथमः परिच्छेदः ।	
प्रत्यक्षैकप्रमाणवादः	१७७-८०
(नार्वाकस्य पूर्वपक्षः) प्रत्यक्षमेकमेव प्रमाणम् अपौगण्यत्वाद् ...	१७७
अनुमानाज्ञातविषयः	१७७
सामान्ये सिद्धसाध्याता विशेषेऽनुगमाभावः	१७७
व्याप्तिग्रहण-पक्षधर्मतावगमस्य असंगमवाञ्छानुमानप्रवृत्तिः ...	१७७
(उत्तरपक्षः) अविसंवादकलादनुमानं प्रमाणम्	१७८
अनुमानस्य कुतो गौणत्वं गौणार्थविषयत्वाद् प्रत्यक्षपूर्वकलाद्रा ? ...	१७८
व्याप्तिग्रहणं तु तर्कप्रमाणेन	१७८

विषयाः	५०
सर्वमन्तरेण प्रत्यक्षप्रामाण्यस्य अगौणत्वादिलिङ्गेनापि व्याप्तिग्रहण- सहाय्यमेव	१७८
अनुमानमात्रस्याप्रामाण्यम् अतीन्द्रियार्थानुमानस्य वा !	१७९
अनुमानं विना न प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यनिश्चयः, नापि परलोकाद्यभावः साधयितुं शक्यः	१८०
बौद्धाभिमतस्य प्रमेयद्वैविध्यात् प्रमाणद्वैविध्यस्य नि- रासः	१८०-८२
एक एव सामान्यविशेषात्माऽर्थः प्रमेय इति द्वैविध्यमसिद्धमेव	१८०
अनुमानस्य सामान्यमात्रविषयत्वे विशेषेष्वप्रवृत्तिरेव	१८०
व्यापकं गम्यम्, व्यापकं न कारणं कार्यस्य स्नातानो भावस्य अतः स्वलक्षणमेव गम्यम्	१८१
प्रमेयद्विल्लं प्रमाणद्विल्लस्य ज्ञातमज्ञातं वा ज्ञापकम् ?	१८१
ज्ञातं चेत् किं प्रत्यक्षादनुमानाद्वा ?	१८१
ज्ञान्यां प्रमेयद्विल्लस्य ज्ञाने प्रमेयद्विल्लस्य प्रमाणद्विल्लज्ञापकलक्ष- णात्	१८१
अन्यदपि ज्ञानम् एकमनेकं वा स्यात् ?	१८२
प्रत्यक्षसिद्धं प्रमेयद्वित्वं तु न युज्यते प्रमेयस्य सामान्यविशेषा- त्मकत्वात्	१८२
नैयायिकादिभिः आगमस्य पृथक् प्रामाण्यसमर्थनम्	१८२-८५
यद्यपि शब्दः परोक्षार्थं सम्बद्धमपि गमयति तथापि प्रत्यक्षादिवत् भिन्नज्ञानप्रीजन्यतया पृथगेव प्रमाणम्	१८३
शान्दं ज्ञानं न प्रत्यक्षं सविकल्पास्पष्टस्वभावत्वात्	१८३
नाप्यनुमानं त्रिरूपलिङ्गाग्रभवात्त्वादननुमेयार्थविषयत्वाच्च	१८३
न शब्दस्य पक्षधर्मत्वं धर्मिणोऽयोगात्	१८३
नाप्यर्थो धर्मी	१८३
शब्दोऽर्थवान् शब्दलादित्यत्र प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धो हेतुः	१८३
न अर्थस्य शब्देनान्वयः	१८४
न हि यत्र देशो कालो वा शब्दः तत्र अवश्यमर्थो विद्यते	१८४
मीमांसकादिभिरुपमानस्य पृथक् प्रामाण्यसमर्थनम्	१८५-८६
इदममानाद् यदन्यत्र सादृश्योपाधितो ज्ञानं तदुपमानम्	१८५
तस्य विषयः सादृश्यविशिष्टो गौः गोविशिष्टं वा सादृश्यम्	१८५
अनधिगताधीनगन्तुतया तस्य प्रामाण्यम्	१८५
नेदं प्रत्यक्षम्	१८६
नाप्यनुमानं हेतुभावात्	१८६

विषयाः	पृ०
गोगतं गवयगतं वा सादृश्यमत्र हेतुः स्यात्	१८६
मीमांसकैः अर्थापत्तेः पृथक् प्रामाण्यसमर्थनम् ...	१८७-१८८
प्रत्यक्षादिप्रमाणप्रसिद्ध्यर्थेन यदविनामृताऽदृष्टार्थकल्पना साऽर्थापत्तिः	१८७
प्रत्यक्षापूर्विका-दाहाद्हनसक्तिसम्बन्धः	१८७
अनुमानपूर्विका-सूर्ये गमनाद्गमनसक्तिसम्बन्धः	१८७
श्रुतार्थापत्तिः पीनो दिवा न मुञ्क्ते इति श्रवणाद् रात्रिमोजन- प्रतिपत्तिः	१८८
अर्थापत्त्यर्थापत्तिः कन्दे अर्थापत्तिप्रबोधितवान्वक्तृसामर्थ्यान्वित्यल- ज्ञानम्	१८८
उपमानार्थापत्तिः-गवयोपमितायाः गोः तज्ज्ञानप्राप्त्युत्पत्तिः	१८८
अभावार्थापत्तिः-अभावप्रमितचैत्राभावविक्षिप्तपृष्ठाचैत्रवहिर्भाव- सिद्धिः	१८८
मीमांसकैः अभावप्रमाणसमर्थनम्	१८९-१९२
अभावप्रमाणं निवेष्ट्याचारदिसामग्रीतः उत्पन्नं कचित् चटायीना- मभावं विभावयति	१८९
अभ्यक्षेण नाभावज्ञानम्	१८९
नानुमानेन हेतोरभावात्	१८९
अभावो न स्यात्तदा कारणादिविभागतः प्रतीतस्य लोकव्यवहा- रस्याभावः स्यात्	१९०
प्रागभावादिमेदान्यथानुपपत्तेः वस्तुत्वभावस्य	१९०
अनुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिप्राप्त्याप्त्यव वस्तुत्वावः	१९०
प्रागभावादिमेवेन चतुर्विधोऽभावः	१९०
वस्तुत्वसङ्घट्टरसिद्धयर्थमभावस्य प्रमाणता	१९०
सदसदात्मके वस्तुनि असदसदग्रहणाय अभावस्य प्रामाण्यम् ...	१९१
वस्तुन्यभिज्ञेऽपि सदसतोः धर्मयोः भेदः	१९१
नचाभावस्य भावरूपेण प्रमाणेन परिच्छेदः	१९२
जैनमतापेक्षया आगमादीनां परोक्षेऽन्तर्भावः	१९२
आगमादयः परोक्षम् अविशदस्तात्	१९२
उपमानस्य प्रत्यभिज्ञानेऽन्तर्भावः	१९३
अर्थापत्तेरनुमानेऽन्तर्भावसमर्थनम्	१९३-१९४
अर्थापत्त्युत्पापकोऽर्थोऽन्यथानुपपत्तेनानवगतः अवगतो वा ? ...	१९३
अस्य अन्यथानुपपत्तिलावगमः अर्थापत्तेरेव प्रमाणान्तराद्वा ? ...	१९३
प्रमाणान्तरादविनाभाववगमे तत्किं मूयोदर्शनम् विपक्षेऽनु- पलम्भो वा ?	१९४

विषयाः

४०

दृष्टान्ते प्रवृत्तं भूयोदर्शनं दृष्टान्त एव अविनाभावं निश्चययति	
साध्यधर्मिणि वा ?	१९४
"लिङ्गस्य दृष्टान्तेऽविनाभावग्रहणम्, अर्थापत्तौ तु पक्ष एव"	
इत्यपि नानयोः मेदं साधयति	१९४
लिङ्गस्य न सपक्षानुगमात्प्रकृता अपि तु अन्तर्व्याप्तिवत्त्वेन ...	१९४
सपक्षानुगमानुगमरूपेण अनुमानाऽर्थापत्त्योर्मेदं पक्षधर्मैलसहि-	
तायाः अर्थापत्तेः सद्रहिताऽर्थापत्तिः पृथक् प्रमाणं स्यात् ...	१९५
विपक्षेऽनुपलम्भस्य सर्वात्मसम्बन्धिनोऽसिद्धानैकान्तिकत्वात् ...	१९५
शक्तिस्वरूपविचारः	१९५-२०२
(नैयायिकस्य पूर्वपक्षः) निष्ठा हि शक्तिः पृथिवीत्यादिकम् ...	१९६
अन्त्या तु चरमसहकारिरूपा	१९६
शक्तिर्नित्या अनित्या वा ?	१९६
अनित्या चेत्, किं शक्तिमतः शक्त्याभायते अशक्त्या ?	१९६
शक्तिः शक्तिमतो निष्ठा अभिज्ञा वा ?	१९६
शक्तिः किमेका अनेका वा ?	१९७
(उत्तरपक्षः) ग्राहकप्रमाणाभावाच्छफेरभावः अतीन्द्रियत्वाद्वा ?	१९७
प्रतिनियतसामम्भाः प्रतिनियतकार्यकारित्वमतीन्द्रियशक्तिसङ्गा-	
वमन्तरेणानुपपन्नम्	१९७
शक्त्यभावे कथं प्रतिबन्धकमण्यदिसभिधानेऽप्यभिः स्वकार्यं न	
कुर्यात् ?	१९७
प्रतिबन्धकेन हि अभिः स्वरूपं प्रतिहन्यते सहकारिणो वा ? ...	१९७
प्रतिबन्धकेन स्वभावनिवृत्तौ उत्तम्भकसभिधाने कार्यानुत्पत्ति-	
प्रसङ्गात्	१९८
प्रतिबन्धकोत्तम्भकमणिमञ्जोरभावेऽभिः स्वकार्यं करोति न वा ?	१९८
आद्ये कस्याभावः सहकारी; तयोरन्यतरस्य उभयस्य वा ? ...	१९८
अन्यतरस्य चेत्, किं प्रतिबन्धकस्य उत्तम्भकस्य वा ? ...	१९८
कस्याभावः कार्योत्पत्तौ सहकारी-किमितरेतराभावः प्रायसावः	
प्रश्वंसो वा अभावमात्रं वा	१९८
यदि शक्तिर्नास्ति तदा मन्त्रादिना कंचित्प्रति प्रतिबन्धोऽप्यभिः स	
एवान्यस्य स्फोटोदिकं कार्यं कथं करोति ?	१९९
स्वरूपसहकारिव्यतिरेकेण शक्तेः प्रतीत्यभावे अदृष्टादेरपि अभावः	
स्यात्	१९९
पृथिवीलस्य शक्तिलरूपे मृत्पिण्डादपि पटोत्पत्तिः स्यात्	१९९
द्रव्यशक्तिस्तु नित्या पर्यायशक्तिस्त्वनित्या	२००
शक्त्यादेव शक्तिप्रादुर्भावः स्वीक्रियते	२००

विषयाः	पृ०
शक्तिः शक्तिमता कथञ्चिद्भिन्नाऽभिन्ना च	२०१
अर्थानां च अनेकैव शक्तिः कार्यभेदान्ध्यानुपपत्तेः	२०१
अभावार्थापत्तिनिराकरणम्	२०२
गृहे यत्तस्य जीवनं तदेव गृहे चैत्रामावस्य विशेषणमुत अन्यत्र	२०२
पञ्चावयवसंभवाद्सावर्थापत्तिरनुमानरूपैव	२०३
अभावस्य प्रत्यक्षादावन्तर्भावः -	२०३-१६
विषेध्याधारो वस्तुन्तरं प्रतियोगिसंघट्टं प्रतीयते असंघट्टं वा ?	२०३
प्रतियोगिनोऽपि वस्तुन्तरसंघट्टस्य स्मरणमसंघट्टस्य वा ?	२०४
अभावांशो भावांशवत् प्रत्यक्षः	२०४
कचिद् प्रत्यभिज्ञानरूपोऽप्यभावः	२०४
अनुपलब्धिर्लिङ्गतः प्रबोधने अनुमानस्वरूपोऽभावः	२०५
प्रतियोगिनिवृत्तिः प्रतियोगिस्वरूपसम्बद्धा असम्बद्धा वा ?	२०५
प्रमाणपक्षकाभावो नीरूपत्वात्कथमभावपरिच्छेदकः स्याद् ?	२०५
न च यत्र प्रमाणपक्षकाभावस्तत्रावयवम् अभावज्ञानं भवति	२०६
प्रमाणपक्षकाभावश्च ज्ञातोऽज्ञातो वा तज्ज्ञानहेतुः ?	२०६
अन्यवस्तुनो भूतलस्य ज्ञानं तु प्रत्यक्षमेव	२०६
आत्मा च किं सर्वथा ज्ञाननिर्मुक्तः कथञ्चिद्वा ?	२०६
भावरूपेणापि प्रत्यक्षेणभावो वेद्यते	२०७
अभावादपि च भावस्य प्रतीतिः भावादपि चाभावस्येति	२०७
इतरेतरभावविचारः	२०६-२११
यदि चैतरेतरभाववशाद् षटः पटादिभ्यो व्यावर्तेत तर्हि इतरै- तरभावोऽपि भावादभावान्तराच्च स्वतो व्यावर्तेत अन्यतो वा ?	२०८
अन्यतश्चेत् किमितरेतरभावान्तराच्च असाधारणधर्माद्वा ?	२०८
इतरेतरभावोऽपि असाधारणधर्मेणाव्यावृत्तस्य भेदको व्यावृत्तस्य वा ?	२०८
इतरेतरभावेन षटे पटः प्रतिविध्यते पटत्तसामान्यं वा उभयं वा ?	२०९
किं पटविशिष्टे षटे पटः प्रतिविध्यते पटविशिष्टे वा ?	२०९
इतरेतरभावादप्यत्र पटविषयता स एव वा विषयताशब्दाभिधेयः ?	२०९
‘षटे पटो नास्ति’ इति पटरूपताप्रतिषेधः सा किं प्राप्ता प्रतिवि- ध्यते अप्राप्ता वा ?	२०९
‘अन्यत्र प्राप्तं पटरूपमन्यत्र प्रतिविध्यते’ इत्यत्र किं सनवायप्रति- षेधः संयोगप्रतिषेधो वा ?	२०९
इतरेतरभावप्रतिपत्तिपूर्विका षटप्रतिपत्तिः, षटग्रहणपूर्वकत्वं चैत- रेतरभावग्रहणस्य ?	२०९
षट्पदं गृह्यमाणः पटादिभ्यो व्यावृत्तो गृह्यतेऽव्यावृत्तो वा ?	२१०

विषयाः	५०
आहतस्य ग्रहणे किं कतिपयपदादिव्यक्तिभ्योऽसौ व्यावर्तते सकल-	
पदादिव्यक्तिभ्यो वा ?	२१०
घटश्च घटान्तरात्किं घटरूपतया व्यावर्ततेऽन्यथा वा ?	२१०
यद्यघटरूपतया; तत्किमघटरूपता पदादिवद् घटेऽप्यस्ति न वा ?	२१०
घटासम्भविभूतलगतासाधारणधर्मोपलक्षितं हि भूतत्वं घटाभावः	२११
प्रागभावविचारः	२११-२१४
सत्प्रत्ययविलक्षणस्य हेतोः 'प्रागभावादौ नास्ति प्रध्वंसादिः' इति	
प्रत्ययेनानैकान्तिकत्वात्	२११
न प्रागभावः प्रध्वंसादौ इत्यादेरभावविशेषणस्याप्यभावस्य प्रसिद्धेः	२१२
प्रागभावाः सादिः सान्तः परिकल्प्यते सादिरन्तः अनादिः सान्तो	
वा अनाद्यनन्तो वा ?	२१२
अनन्ताश्च प्रागभावाः किं सतन्त्राः भावतन्त्रा वा ?	२१२
भावतन्त्राश्चेत् किमुत्पन्नभावतन्त्राः उत्पत्त्यमानभावतन्त्रा वा ? ...	२१२
विशेषणमेदात् प्रागभावस्य मेदे एक एवाभावः स्वीकार्यः तस्यैव	
विशेषणमेदाच्चातुर्विध्यं स्यात्	२१३
सतैकत्वेऽपि यथा विशेषणवशाद्विभिन्नप्रत्ययास्तथा अभावस्यैक-	
त्वेऽपि प्रागभावादि प्रत्ययमेदाः भविष्यन्ति	२१३
प्रागभावोऽपि भावान्तररूप एव, प्रागवन्तरपरिणाममिषिर्हं चतुः-	
व्यमेव घटप्रागभावः	२१४
तुच्छभावत्वे हि सद्योत्पत्तिवतां सद्योत्पत्तिवर्गादीनामुपादान-	
सांकर्यं स्यात्	२१४
प्रध्वंसाभावविचारः	२१४-१६
यदभावे नियमतः कार्यविपत्तिः स प्रध्वंसो यथा चतुर्व्यानन्तरो-	
त्तरपरिणामः	२१५
प्रध्वंसस्य तुच्छरूपत्वे मुद्गरादिव्यापारवैयर्थ्यं स्यात्	२१५
प्रध्वंसो हि घटादिव्यापारेण घटावैर्मिश्रः विधीयते अविशो वा ?	२१५
विनाशसम्बन्धाद्विनाशप्रत्यये विनाशतद्वतोः किं तादात्म्यं तदुत्पत्तिः	
विशेषणविशेष्यभावो जा सम्बन्धः स्यात् ?	२१५
प्रध्वंसस्य उत्तरपर्यायात्मकत्वे तद्विनाशे न पूर्वस्य पुनरुत्थिषणम्;	
कारणस्य कार्योपमर्दनात्मकत्वात्	२१५
विभिन्नधामप्रीप्रभवतयाऽपि न कपाड्भ्योऽभावस्य अर्थान्तरत्वं	
किन्तु एकेनैव मुद्गरादिव्यापारेण घटविनाश-कपालोत्पादयो-	
रूपतैः	२१६
प्रत्यक्षस्य स्वरूपम्	२१६

निधयाः

५७

अकस्माद्भूमदर्शनाद्बहिरत्रेति ज्ञानं व्याप्तिज्ञानं वा न प्रत्यक्षम-

स्पष्टत्वात् २१६

अकस्माद्भूमदर्शनजनितबहिर्ज्ञाने सामान्यं प्रतिभासेत विशेषो वा ? २१६

अस्पष्टत्वं किं ज्ञानधर्मैः अर्थधर्मो वा ? २१७

संवेदनस्यैव हि अस्पष्टताधर्मः स्पष्टतावत् २१७

नचास्पष्टसंवेदनं निर्विषयं संवादकत्वात् २१८

ततः उत्पन्नाया अतदाकारबुद्धेः अस्पष्टत्वे द्विचन्द्रबुद्धावपि अस्प-

ष्टव्यवहारः स्यात् २१८

स्पष्टज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमादेव कचिज्ज्ञाने स्पष्टता ... २१८

न हि अस्यात् स्पष्टता २१८

वैशद्यस्य लक्षणम् २१९

ईहावीनामपरापरेन्द्रियव्यापारादेवोत्पद्यमानत्वाच्च तत्र प्रतीत्यन्तर-

व्यवधानम् २१९

परोक्षज्ञानानां स्वसंवेदनस्य प्रत्यक्षत्वात् २२०

बहिरर्थग्रहणापेक्षया हि विज्ञानानां प्रत्यक्षेतरव्यपदेशः न स्वरूप-

ग्रहणापेक्षया २२०

नैयायिकाद्यमिममतचक्षुःसन्निकर्षवादनिरासः ... २२०-२२

बाह्येन्द्रियत्वेन प्राप्यकारित्वे किमिदं बाह्येन्द्रियत्वं किं बहिरर्थमि-

शुष्यं बहिर्देवावस्थायित्वं वा ? २२१

न च बाह्यविशेषणेन मनो व्यवच्छेद्यं तस्यापि संयुक्तसमवाय-

सन्निकर्षबलेनैव सुखादौ ज्ञानजनकत्वात् २२१

चक्षुश्च धर्मित्वेनोपातं गोलकस्वभावं रश्मिरूपं वा ? २२१

न च रश्मिरूपचक्षुषः इन्द्रियेण सन्निकर्षोऽस्ति येन तस्य प्रत्यक्षता २२१

अनुमानाग्रिमसाधने किमत एव अनुमानान्तराद्वा तत्सिद्धिः ? २२२

यदि च रश्मयः चक्षुःशब्दवाच्याः तदा गोलकस्योन्मीलनमन्त्र-

नादिना संस्कारश्च वृथैव २२२

गोलकादिलभस्य च कामलादेः प्रकाशकत्वं स्यात् तत्र व्यक्तिरू-

पस्य शक्तिरूपस्य च चक्षुषः सम्बन्धसङ्गावात् २२२

शक्तिरूपं च चक्षुः व्यक्तिरूपचक्षुषो मित्रदेशमभिधदेशं वा ? ... २२२

अभिधदेशं चेत्, तत्तत्र सम्बन्धमसम्बन्धं वा ? २२२

गोलकाक्षिःसरन्ति चेद्रश्मयस्त्रया तेषां रूपस्पर्शवतां प्रत्यक्षेणैवो-

पलब्धिः स्यात् २२३

अनुद्भूतरूपस्पर्शस्य तेजोद्रव्यस्याप्रतीतेः २२३

तेजसत्वाद्देतोः किं चक्षुषो रश्मयः साध्यन्ते, अन्यतः सिद्धानां

तेषां प्राप्तार्थसम्बन्धो वा ? २२४

विषयाः

५०

स्वतः उत्पद्यते इति किं कारणमन्तरेण उत्पद्यते स्वसामग्रीतो	
विज्ञानसामग्रीतो वा ?	१५०
(मीमांसकस्य पूर्वपक्षः) गुणविशेषणविशिष्टेभ्यः चक्षुरादिभ्यो न	
प्रामाण्यमुत्पद्यते प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा गुणानामप्रतीतेः	१५१
गुणानुमानमपि स्वभावलिङ्गात् कार्यात् अनुपलब्धेर्वा भवेत् ? ...	१५१
यथार्थोपलब्धिस्तु स्वरूपमात्रानुमापिका न गुणानुमापिका ...	१५२
नैर्मल्यं च स्वरूपमेव न गुणः	१५२
अर्थतयालप्रकाशनलक्षणप्रामाण्यस्य चक्षुरादिभ्योऽनुत्पत्तौ ततः	
प्राक् विज्ञानस्य स्वरूपं वक्तव्यम्	१५२
अर्थतयालपरिच्छेदरूपा शक्तिः प्रामाण्यम्, शक्तयश्च स्वतः एवो-	
त्पद्यन्ते	१५३
ज्ञप्तिरपि प्रामाण्ये कारणगुणानपेक्षते संवादप्रत्ययं वा ?	१५४
संवादज्ञानमपि समानजातीयं भिन्नजातीयं वा ?	१५४
समानजातीयमपि एकसन्तानप्रभवं भिन्नसन्तानप्रभवं वा ? ...	१५४
एकसन्तानप्रभवमपि अभिन्नविषयं भिन्नविषयं वा ?	१५४
भिन्नजातीयं च किमर्थक्रियाज्ञानमुत्तान्यत् ?	१५४
अर्थक्रियाज्ञानस्य च अन्यायक्रियाज्ञानात् प्रामाण्यनिश्चयः प्रथम-	
प्रमाणाद्वा ?	१५५
समानकालमर्थक्रियाज्ञानं प्रामाण्यव्यवस्थापकं भिन्नकालं वा ? ...	१५५
यथैककालं पूर्वज्ञानविषयं तदविषयं वा ?	१५५
अप्रामाण्ये बाधकारणदोषज्ञानयोरपश्यंभावित्वात् परतोऽप्रामाण्य-	
निश्चयः	१५६
चोदनावुद्दिष्टु अपौरुषेयत्वात् स्वतःप्रमाणम्	१५६
स्वकार्यं च संवादप्रत्ययमपेक्षेत कारणगुणान् वा ?	१५६
कारणगुणाच्च गृहीताः अगृहीता वा सहकारिणः स्युः ?	१५६
(उत्तरपक्षः) शक्तिरूपे इन्द्रिये गुणानाममात्रः साध्यते व्यक्तिकृते	
वा ?	१५९
आतमात्रस्य नैर्मल्यप्रतीतेः तस्य गुणरूपत्वाभावे तिमिरादिदोषस्य	
दोषरूपत्वमपि न स्यात्	१५९
घटादीनां च रूपादिगुणस्वभावता न स्यात्	१६०
नैर्मल्यदेर्मल्यभावरूपत्वेपि न गुणरूपताशक्तिः	१६०
दोषाभावस्यैव गुणत्वात्	१६१
शक्तिरूपप्रामाण्यस्य स्वतो भावे अप्रामाण्यचक्रेरपि स्वतो भावोऽस्तु	
संवेदनस्वरूपस्य आप्त्यभावे कारणपेक्षितायां नान्या काचित् प्रक-	
र्तिर्या स्वयं स्यात्	१६४

विषयाः

पृ०

भार्गुरादिचक्षुषो मासुररूपदर्शनात् तैजसत्वे गवादिलोचनयोः कृष्णलस्य नारीनयनयोः घावत्पस्य चोपलम्भात् पार्थिवत्वमा- प्यत्वं च स्यात्	२२४
रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वादिति हेतोरपि न चक्षुषस्तैज- सत्त्वसिद्धिः माणिक्यादिना व्यभिचारात्	२२५
न तैजसं चक्षुः तमःप्रकाशकत्वात्	२२५
रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वादिति हेतुः जलाघनचन्द्रमाणि- क्यादिभिरनैकान्तिकः	२२५
द्रव्यं रूपप्रकाशकं मासुररूपमभासुररूपं वा ?	२२६
संयुक्तसमवायवशाच्चक्षुर्यथा रूपप्रकाशकं तथा रसादिप्रकाशक- मपि स्यात्	२२७
कथं च चक्षुषा स्फटिकाद्यन्तरितार्थस्य ग्रहणम् ?	२२७
यदि रसमयः स्फटिकं भिन्दन्ति तदा तैः समलज्जान्तरितार्थस्यो- पलब्धिः स्यात्	२२८
नीरेण नाशितस्नात्र समलज्जान्तरितस्योपलब्धिश्चैत् कथं स्वच्छ- ज्जान्तरितस्योपलब्धिः	२२८
चक्षुरग्राप्तार्थप्रकाशकम् अस्मादसत्कार्याप्रकाशकत्वात्	२२८
न च साध्यावशिष्टलम् ; असत्प्रसाधनत्वादस्य	२२८
न च स्पर्शनेन आभ्यन्तरस्मरीरावयवस्पर्शाऽप्रकाशकेन व्यभि- चारः ; स्वकारणव्यतिरिक्तार्थप्रकाशकलस्य विवक्षितत्वात्	२२८
चक्षुर्गत्ता नार्थेन सम्बध्यते इन्द्रियत्वात् स्पर्शनादीन्द्रियवद्विशु- भानादप्राप्यकारिलसिद्धिः	२२९
सांख्यवह्नारिकप्रत्यक्षस्य लक्षणम्	२२९
द्रव्येन्द्रियं पुद्गलात्मकम्	२२९
भावेन्द्रियं लब्धुपयोगात्मकम्	२२९
लब्धुपयोगयोः लक्षणम्	२२९
यौगाभिमतस्य इन्द्रियाणां प्रतिनियतभूतकार्यत्वस्य- निरासः	२३०
गन्धस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात् पार्थिवं प्राणमिति सूर्यरश्मिमिरुदकसेकेन च व्यभिचारि	२३०
रसस्यैवाभिव्यञ्जकत्वाद्भक्षनमाप्यमिति च लवणेनानैकान्तिकम्	२३०
रूपस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात् तैजसं चक्षुरिति माणिक्यादिना व्यभिचारि	२३०
स्पर्शस्यैवाभिव्यञ्जकत्वाद्वायवं स्पर्शानमिति कर्पूरादिनाऽनैकान्तिकम्	२३०
अर्थालौकौ न कारणं परिच्छेद्यत्वात्	२३१

विषयाः	४०
बौद्धनैयायिकाद्यभिमतया अर्थकारणताया निरासः	२३२-२३७
अर्थकार्यतया ज्ञानं प्रत्यक्षतः प्रतीयते प्रमाणान्तराद्वा ?...	२३२
प्रत्यक्षत्वेत्; तत एव प्रत्यक्षान्तराद्वा ?	२३२
प्रमाणान्तरं च किं ज्ञानविषयम्, अर्थविषयम्, उभयविषयं वा स्यात् ?	२३२
नानुमानादर्थकार्यतावसायः अन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात् केशो-	
ण्डकविज्ञानवत्	२३३
केशोण्डकज्ञाने हि केशोण्डकस्य व्यापारः नयनपक्षादेर्वा तत्के-	
शानां वा कामलादेर्वा ?	२३४
संशयज्ञानेन च व्यभिचारः, नहि तदर्थं सति भवति	२३४
संशयविपर्यययोः सामान्यं वा हेतुः विशेषो वा द्वयं वा ? ...	२३४
कारणमेव परिच्छेद्यमित्यभ्युपगमे योमिनः अतीतज्ञानमेव स्यात्	
वर्तमानानागतज्ञानम्	२३५
भावस्रोतपक्षमात्रता किमुत्पद्यमानार्थसमसमयभाविना ज्ञानेन प्रती-	
येत पूर्वभाविना उपरकालभाविना वा ?	२३६
निलेश्वरज्ञानपक्षे च सिद्धमकारणस्याप्यर्थस्य परिच्छेद्यत्वम् ...	२३६
नन्वर्थभावे ज्ञानसञ्जावे अतीतानामतादावपि ज्ञानं स्यादित्यत्र किं	
तत्रोत्पद्येत तद्ग्राहकं वा भवेदिति ?	२३७
बौद्धनैयायिकाभिमतया आलोककारणताया निरासः २३७-२३९	
अजानादिसंस्कृतचक्षुषां नफक्षराणां च आलोकभावेऽपि ज्ञानोत्पत्तेः	२३७
अन्धकारेऽपि अन्धकारस्य ज्ञानमस्त्येव	२३८
न ज्ञानाद्युत्पत्तिमात्रमन्धकारः	२३८
आलोकज्ञानस्य च अत एवालोकाद्वैशद्यम् आलोकान्तरादन्यतो वा	
कृतमित् ?	२३८
प्रवीपादयश्च आवरणापनयनद्वारेण अर्थे प्राश्रयताम् इन्द्रियमनसोर्वा	
प्राहकतामुत्पादयन्ति	२३८
योग्यतालक्षणम्	२४०
योग्यताबलादेव प्रतिनियतार्थव्यवस्था	२४०
कारणस्य परिच्छेद्यत्वनियमे इन्द्रियादिना व्यभिचारः	२४०
मुख्यप्रत्यक्षलक्षणम्	२४१
आवरणविचारः	२४१-४४
आवरणं हि घरीरं रगादयः देशकालादिकं वा ?	२४१
न घरीरादिकमावरणं किन्तु पौद्गलिकं कर्म	२४२
कर्मणां सञ्जावसिद्धिः	२४२

विषयाः

पृ०

भाविवैव आवरणम्; मयिरादिना मूर्तेनापि अमूर्तस्य ज्ञानादेरा-	
वरणदर्शनात्	२४३
कर्मणात्मगुणत्वे हि आत्मपारतन्त्र्यनिमित्तत्वं न स्यात्	२४३
आत्मा परतन्त्रः हीनस्थानपरिग्रहवत्त्वात्	२४३
कर्मौघादिकमात्मनः पारतन्त्र्यनिमित्तत्वात्	२४३
नापि प्रधानविधत्तैः कर्मैः आत्मपारतन्त्र्यनिमित्तत्वाभावे कर्म-	
सायोगात्	२४४
संचरनिर्ज्वरयोः सिद्धिः	२४४-४६
सम्यग्दर्शनादिभ्यः संचरो निर्ज्वरा न भवतः	२४५
विपाकान्तत्वात् निर्ज्वरा कर्मणाम्	२४५
तारतम्यप्रकर्षदर्शनात् क्वचित् सम्यग्दर्शनादेः परमः प्रकर्षः	
संभवति	२४५
आवरणहानिः क्वचित्प्रकृत्यते आवरणहानित्वात्	२४६
वागमद्वारेण अक्षेपार्थगोचरं ज्ञानं विवक्षितम्	२४६
भावनाप्रकर्षपर्यन्तजलाद्योगिज्ञानस्य आवरणक्षयहेतुकत्वमिति चेत्;	
न; भावनाप्रतिबन्धकभावे भावनायद् ज्ञानप्रतिबन्धकापाये	
सर्वज्ञता भवत्येव	२४७
सर्वज्ञत्वत्वाद्	२४७-२५६
(नीमांसकस्य पूर्वपक्षः) नास्ति सर्वज्ञः सद्रूपलम्बकप्रमाणपक्ष-	
कगोचरचारित्वाभावात्	२४७
न प्रसङ्गेन अतीन्द्रियसर्वज्ञसद्भावः प्रतीयते	२४७
नाप्यनुमानेन; अविनाभावग्रहणासंभवात्	२४७
सर्वज्ञसत्तासाधने भावाभावोभयधर्माणां हेतूनामसिद्धविरुद्धानेका-	
न्तिकत्वम्	२४८
अविशेषेण सर्वज्ञः साध्यते विशेषेण वा ?	२४८
'कसचित्प्रत्यक्षाः' इत्यत्र हि एकज्ञानप्रत्यक्षत्वं सूत्रार्थानामभि-	
प्रेतमनेकज्ञानप्रत्यक्षत्वं वा ?	२४८
प्रमेयत्वमपि किमेषोपज्ञेयस्यापिप्रमाणविषयत्वरूपम्, असत्तादिप्रमाण-	
विषयत्वरूपं वा, सम्यग्व्यक्तिसाधारणसामान्यत्वमार्थं वा ?	२४९
आगमो हि निराः अनित्यो वा सर्वज्ञप्रतिपादकः ?	२४९
नाप्युपमानात् सर्वज्ञतासिद्धिः	२४९
साध्यार्थापत्तिः सर्वज्ञसिद्धिः	२५०
देशान्तरे कालान्तरे वा नान्यद्वक्ष्यमाणसंभावना, येन देशकाला-	
न्तरे सर्वज्ञतासिद्धिः स्यात्	२५१
इन्द्रियादीनां स्वर्यादिलङ्घनेन नातिशयो भवितुमर्हति	२५१

विषयाः	पृ०
प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां च सर्वज्ञत्वं बाध्यते	२५२
सर्वज्ञस्य ज्ञानं चक्षुरादिजनितं धर्मादिग्राहकम्, अभ्यासजनितं वा, शब्दप्रमत्तं वा, अनुमानाविर्भूतं वा ?	२५३
अखिलायं ग्रहणं सर्वज्ञत्वम्, प्रधानयुक्ततिपयार्थग्रहणं वा ? ...	२५४
आद्यपक्षे क्रमेण तद्ग्रहणं युगपद्वा ?	२५४
एकक्षण एवाशेषार्थग्रहणत्वं द्वितीयक्षणे अकिञ्चिज्ज्ञः स्यात् ...	२५४
परस्थरागादिसाक्षात्करणाच्च रागादिमत्त्वम्	२५४
कथञ्चातीतानागतग्रहणं तत्स्वरूपमावात्	२५४
तद्वाद्याखिलार्थाग्रहणे तत्कालेऽपि सर्वज्ञः कथं ज्ञातुं शक्य इति ?	२५४
(उत्तरपक्षः) सर्वज्ञसाधकयनुमानम्	२५५
न चात्र सर्वज्ञो धर्मो किन्तु कश्चिदात्मा	२५५
सत्तासाधने दोषत्रयं भूमादभ्यनुमानेऽपि समानम्	२५५
सामान्यत एव सर्वज्ञः साध्यते, विशेषतः पुनर्दृष्ट्याविरुद्धवाक्या- वर्जितेन सेत्स्यति	२५६
प्रत्यक्षसामान्येन च सूक्ष्माधार्यानां कल्पवित्प्रत्यक्षत्वं साध्यते ...	२५६
योगिप्रत्यक्षमिन्द्रियाद्यनपेक्षं सूक्ष्माधार्यविषयत्वात्	२५६
एवं साध्यविकले सर्वानुमानोच्छेदः—साध्यधर्मिषमौऽपि साध्य- त्वेनाभिप्रेतः दृष्टान्तधर्मिषमौ वा उभयधर्मौ वा ?	२५६
तथा भूमेऽपि साध्यधर्मिषमौ हेतुः दृष्टान्तधर्मिषमौ वा उभय- गतसामान्यरूपौ वा ?	२५७
न च प्रत्यक्षत्वसत्प्रयोगजन्यविद्यमानोपलम्बनत्वधर्मोऽयनिमित्त- त्वानां व्याप्यापकभावः सिद्धो येन प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां सर्वज्ञत्वं बाध्येत	२५७
धर्मादेरतीन्द्रियत्वाच्चक्षुरादिनाऽनुपलम्बः अनिश्चयमानत्वाद्वा अवि- शेषणत्वाद्वा ?	२५८
सामान्यतः उत्पादयितुं सति ज्ञानसम्भवात् अभ्यासो युक्त एव	२५९
आगमादिज्ञानेनाभ्यासप्रतिबन्धकापायादिसामग्रीसहायेन सर्वज्ञ- त्वाविर्भाव्यते	२५९
सकलवरणक्षये सहस्रकिरणवद् युगपदशेषार्थप्रकाशकत्वमावर्त्तं सर्वज्ञज्ञानस्य	२६०
परस्परविरुद्धशीतोष्णधार्यानामभावादप्रतिभासः ज्ञानस्यासाम- र्थ्योद्वा ?	२६०
द्वितीयक्षणे हि नार्थानां न च ज्ञानस्याभावो येन अज्ञता स्यात् ...	२६०
रागिणिकारणं हि रागरूपतया परिणमनं न तु रागस्य ज्ञानमात्रम्	२६०

विषयाः

५०

अतीतादेः स्वत्पासंभवः किमतीतादिकालसम्बन्धित्वेन तज्ज्ञानका-

लसम्बन्धित्वेन वा ? २६१

ज्ञानस्य किमिदं विधान्तत्वं नाम-किं किञ्चित्परिच्छेद्यापरसापरि-
च्छेदः, विषयदेशकालगमनासामर्थ्याद्वान्तरेऽवस्थानं वा,

कस्मिद्विषये उत्पद्य विनाशो वा ? २६१

असर्वज्ञोऽपि सर्वज्ञं ज्ञातुं समर्थः, कथमन्ययाऽवेदज्ञः जैमिनिं
वेदार्थज्ञत्वेन जानीयात् ? २६२

अनिश्चितासम्भवद्व्यावकप्रमाणत्वाच्च सर्वज्ञस्य संसिद्धिः २६२

सर्वज्ञाभावः प्रत्यक्षेणाधिगम्यः प्रमाणान्तरेण वा ? २६२

नापि निवर्तमानं प्रत्यक्षं सर्वज्ञाभावसाधकम् २६२

वक्तुं हि हेतुः संवादिबहुलरूपं विपरीतं वा वक्तुलमात्रं वा ? २६३

वचनस्य असर्वज्ञत्ववर्मानुविधानाभावात् २६४

आगमोऽपि तत्प्रणीतः अन्यप्रणीतो वाऽपौरुषेयो वा सर्वज्ञस्य

साधकः ? २६४

नाप्नुपमानात् सर्वज्ञाभावः साधयितुं शक्यः २६५

नाऽन्यभावप्रमाणं सर्वज्ञाभावसाधकं तत्सामग्रीस्वरूपयोरसंभवात् २६५

ईश्वरवाद् : २६६-२८३

(बौगक्ष्य पूर्वपक्षः) ईश्वरोऽनादिमुक्तः आनादिक्रियादिपरम्परयाः

कर्तृत्वात् २६६

क्रियादिकं बुद्धिमत्वेतुं कार्यत्वात् २६६

क्रियादिगतकार्यत्वात् प्रासादादिगतकार्यत्वस्य वैलक्षण्यं व्युत्पत्ति-
पतुन् प्रति उच्यते अन्युत्पन्नान् वा ? २६६

न च अकृष्टप्रभवस्थावरादिषु कर्त्रभावो निश्चितः किन्त्वग्रहणम् २६६

क्रियादिमात्रान्वयव्यतिरेकोपलम्भात् तन्मात्रस्यैव कारणत्वे अदृष्ट-
स्यापि कारणत्वं न स्यात् २६७

न च स्थावरादिषु बुद्धिमत्तोऽभावादग्रहणं भावेऽप्यनुपलब्ध-
क्षणप्राप्तलाद्वेति सन्दिग्धो व्यतिरेकः, सर्वानुमानोच्छेदप्रसङ्गात् २६७

न च शरीराभावे कर्तृत्वाभावः २६७

ज्ञानेच्छाप्रयत्नत्रयस्य कारकप्रयोजकत्वम् २६८

सर्वज्ञता च अशेषकार्यकरणात् २६८

वेदस्य कार्यवत् स्वरूपेऽपि प्रामाण्यमेव २६८

अगवान् करुणया सृष्टिं कुर्वते २६९

अदृष्टसहकारिणश्च कर्तृत्वाच्च बुद्धिनामेव प्राणिनां विधानम् ... २६९

अदृष्टश्च चेतनाधिष्ठितत्वेन अवर्ततेऽचेतनत्वात् २६९

विप्रयाः

५०

महाभूतादिव्यक्तं चेतनाधिष्ठितं रूपादिभिरवात् अनिलत्वादिति वार्ति-

ककारोक्तं प्रमाणे

... ..

२६९

अविद्धकर्णोक्तं च प्रमाणं रूपादिमत्त्वादिति

... ..

२६९

सर्गादौ पुरुषव्यवहारः परोपदेशपूर्वक इत्यादि प्रशस्तमत्युक्तं

प्रमाणम्

... ..

२७०

स्मित्वा प्रवृत्तेः इति उद्योतकरोक्तं प्रमाणम्

... ..

२७०

(उत्तरपक्षः) किमिदं सावयवत्वं येन कार्यत्वं साध्यते; किम्

सहावयवैर्वर्तमानत्वं, तेर्जन्यमानत्वं वा, सावयवमिति बुद्धि-

विषयत्वं वा ?

२७०

प्रागसतः स्वरूपसमवायात् सत्तासमवायाद्वा कार्यत्वसिद्धौ कृतः

प्राक् ?

... ..

२७१

स्वरूपसमवायाच्चैत्, तत्समवायसमये प्रागिवास्त्य स्वरूपसर्वस्या-

भावो न वा ?

... ..

२७१

सत्ता सती असती वा ?

... ..

२७२

क्षित्यादेः कथञ्चित्कार्यत्वं सर्वथा वा ?

... ..

२७२

बुद्धिमत्स्वरूपमित्यत्र हि बुद्धिः बुद्धिमतो मिथा अमिथा वा ?

... ..

२७३

बुद्धिश्च ईश्वरे व्याप्त्या वर्तते अव्याप्त्या वा ?

... ..

२७३

ईश्वरबुद्धिः क्षणिका अक्षणिका वा ?

... ..

२७४

कार्यत्वं न अक्रियादर्शिनोऽपि कृतबुद्ध्युत्पादकत्वलक्षणं क्षित्यादौ

नास्ति इत्यसिद्धौ हेतुः

... ..

२७४

न चैतत्कार्यसमं नाम जात्युत्तरम्

... ..

२७५

स्थावरादौ कर्त्रभावानिश्चये गगनादौ रूपाद्यभावानिश्चयः स्यात्

शरीराभावे ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारत्वस्याप्यसंभवात्

... ..

२७५

अचेतनं चेतनाधिष्ठितमित्यस्य निरासः

... ..

२७५

न च कारकशक्तिपरिज्ञानाविनाभावि तत्प्रयोक्तृत्वम् तस्यानेकघोष-

लम्भात्

... ..

२७६

कार्यमात्रादि कारणमात्राजुमाने विशेषविरुद्धताऽसम्भवः न पुनर्बु-

द्धिमत्कारणाजुमाने

... ..

२८०

कारण्यात् सर्गविधाने सुखोत्पादकस्यैव शरीरादिसर्गस्य उत्पादकत्वम्

... ..

२८१

धर्माधर्मयोरपि ईश्वराद्यत्तत्वात्

... ..

२८१

अपवर्गविधानार्थं न सृष्टिविधाने कथमपूर्वसंज्ञयकर्तृत्वम्

... ..

२८१

न श्रयं नियमो यत्तिल्लिङ्गकार्यमेकेनैव कर्तव्यं नाप्येकनियतेर्बहु-

भिरिति अनेकधा कार्यकर्तृत्वोपलम्भात्

... ..

२८२

समर्थस्वभावस्येयस्य सहकार्यपेक्षाप्यनुष्ठा

... ..

२८३

सहकारिणोऽपि तदायतोत्पत्तयः अतदायतोत्पत्तयो वा ?

... ..

२८३

विषयाः	५०
वार्तिककारोक्तप्रमाणस्य रूपादिमत्त्वादेः निरासः	२८३
'सर्गादौ पुनर्वाप्यां व्यवहारः' इत्यत्र उत्तरकालं प्रयुद्धानामिति विरो-	
धनमसिद्धम्	२८३
स्मिताप्रवृत्तेरिति तु ईश्वरेणैव व्यभिचारि	२८४
क्षित्वादिकं नैकस्वभावमाद्यपूर्वकं विभिन्नदेसकालाकारत्वात् इत्य-	
नेन ईश्वरनिरासः	२८५
प्रकृतिकर्तृत्वत्वाद्	२८५-२८७
(सांख्यस्य पूर्वपक्षः) निखिलजगत्कर्तृत्वात् प्रकृतेरेव अक्षेपज्ञता	२८५
प्रकृतेर्महान् ततोऽहंकारः इत्यादि सृष्टिप्रक्रिया	२८५
प्रकृत्वात्मका एवेते महदादिभेदाः	२८६
त्रिगुणमित्यादि प्रधानस्य लक्षणम्	२८६
व्यप्योऽव्यक्तयोः लक्षणम्	२८६
प्रधानात्मनि च महदादीनाम् असदकरणादुपादानग्रहणादिहेतुपक्ष-	
त्वात् सङ्भावः	२८७
भेदानां परिमाणत्वात् समन्वयात् शक्तिः प्रवृत्तेरित्यादिहेतुपक्षत्वात्	
कारणभूतस्य प्रधानस्य सिद्धिः	२८८
(उत्तरपक्षः) प्रकृत्वात्मकत्वे महदादीनां ततः कार्यतया प्रवृत्ति-	
विरोधः	२८९
न च निवृत्त्यस्य कारणभावोऽस्ति	२९०
परिणामश्च भवन् पूर्वकपक्षाग्राह्या भवेदस्याग्राह्या	२९०
सर्वथा पूर्वकपक्षागः कथञ्चिद्वा ?	२९०
अवर्तमानो निवर्तमानश्च भवौ भविष्योऽर्थान्तरभूतोऽनर्थान्तर-	
भूतो वा ?	२९१
यच्च सत्कार्यवादे समर्थनाय हेतुपक्षकं तदसत्कार्यवादेऽपि समानम्	२९१
सर्वथा सत्कार्यं कथञ्चिद्वा ?	२९१
शक्तिरूपेण सत् चेत् तच्छक्तित्वं दृष्ट्यादेर्मिथ्यमभिधं वा ?	२९२
अभिव्यक्तौ कारणानां व्यापारे अभिव्यक्तिः पूर्वं सती असती वा ?	२९२
एतेषां हेतूनां संशयविनाशान्नं निश्चयोत्पादनं च सत्कार्यवादे कुर्वन्तम्	२९३
निश्चयस्य अभिव्यक्तिः किं स्वभावातिशयोत्पत्तिः, तद्विषयज्ञानम्,	
तदुपलम्भावरणविगमो वा ?	२९३
अतिशयश्च सन् असन्वा क्रियेत ?	२९३
बन्धमोक्षमाद्यश्च सत्कार्यवादिनाम्	२९४
नहि यदसद्वत् क्रियते एवेति व्याप्तिः, किन्तु यत्क्रियते तत्प्रा-	
शुत्पत्तेः कथञ्चिदसदेव	२९४
भेदानां परिमाणस्य अनेककारणपूर्वकत्वेऽप्यविरोधः	२९५

विषयाः	५०
मुखादिसमन्वयश्च चन्दादिष्वसिद्ध एव	२९५
प्रसादतापादिकाद्यौपलम्भात् प्रधानान्वितत्वम् अनैकान्तिकमेव चेतनत्वादिवर्गैः पुरुषाणां नित्यत्वादिवर्गैश्च प्रधानपुरुषाणां समन्व- येऽपि नैककारणपूर्वकत्वम्	२९५
प्रकाशत्कारणमेतेभ्यो हेतुभ्यः साध्यत्वे कारणमार्तं वा ? ...	२९६
प्रधानात्मनि महदादीनामविभागव्यायुक्तः, प्रलयकालस्याभावात् महदादीनां लयश्च पूर्वस्वभावप्रच्युतौ भवेदप्रच्युतौ वा ? ...	२९७
सेश्वरसांख्यवादिमतनिरासः	२९७-२९८
(पूर्वपक्षः) प्रधानं हि ईश्वरपक्षं कर्तुं	२९७
प्रधानगतं सत्त्वरजस्तमोगुणानाश्रित्य ईश्वरः स्थित्युत्पत्तिप्रलयहेतुः	२९८
(उत्तरपक्षः) प्रकृतेश्वरयोः सर्गाद्यन्यतमकार्यकले तदपरकार्यद्वय- सामर्थ्यमस्ति न वा ?	२९८
प्रधानवृत्तिसत्त्वादीनामुद्भूतवृत्तित्वं नित्यमनित्यं वा ?	२९९
अनित्यं चेत्, किं प्रकृतेश्वरादेव, अन्यतो, वा हेतोः, स्वतन्त्रो वा प्रादुर्भावः स्यात् ?	२९९
भाव आत्मानं जनयति निष्पन्नोऽनिष्पन्नो वा ?	२९९
सितपटान्मितस्य केवलिकवलाहारस्य निरासः ...	२९९-३००
कवलहारकारिणः केवलिनः अनन्तचतुष्टयस्वभावाभावः ...	२९९
अस्मदादिमुखादेः कादानित्कतया भोजनादिभ्यः समुत्पादः न तु मगवत्सुखस्य अनन्तस्य	२९९
केवली न भुङ्क्ते रागद्वेषाभावाऽनन्तवीर्यसद्भावाच्चान्यथाऽनुपपत्तेः	३००
भोजनं कुर्वतां साधूनां परमार्थतो वीतरागस्वभावः	३००
कवलाहारित्वे च सरागलप्रसङ्गः	३००
कवलाहारामवेपि नोक्त्यर्कमादानलक्षणाहारसद्भावात् देहस्थि- तिरविरुद्धा	३००
कवलाहारं विनापि त्रिदशाण्डजादीनामाहारित्वं भवति	३००
केवलिनः औदारिककरीरस्थितिर्हि परमौदारिकरूपा अतः आहा- रमावेऽपि तत्स्थितिः	३०१
केशादिब्रह्मभाववत् भुक्त्यभावोऽपि केवल्यवस्थायामभ्युपगन्तव्यः तपोमाहात्म्याच्चतुरास्यलादिवत् अमुक्तिपूर्वकत्वेऽपि देहस्थितौ को विरोधः	३०१
आयुःकर्मैव हि प्रधानं देहस्थितिनिमित्तम्	३०१
वेदनीयकर्मसद्भावाच्च तत्फलमात्रं सिध्येच्च पुनर्युक्तिः	३०१
असातवेदनीयं च मोहकर्माभावात् सामर्थ्यविकलं न स्वकार्यकारि	३०१

विषयाः

पृ०

मोहनीयाभावेऽपि यदि अन्यकर्मोदयः कार्यकारी तदा परमातोद- यात् परात् तावदेव परैस्ताव्येत वा	३०३
यदि मोहनीयनिरपेक्षः कर्मोदयः कार्यकारी तदा अप्रमत्तादिषु वेदोदयात् यैशुनादिकं स्यात्	३०३
नामादीनां शुभप्रकृतीनां केवलानि अप्रतिबद्धत्वात् स्वकार्यकारिता शुभुक्षा च न मोहनीयानपेक्षस्य वेदनीयस्यैव कार्यम्	३०४
भोजनाकांक्षा च प्रतिपक्षभावनातो निवर्तते कथायाकाङ्क्षावत्	३०४
शुभुक्षार्यां केवली किं समवधारणास्थित एव भुङ्क्ते, चर्याभोगेण वा गत्ता ?	३०५
'देवा आहारं सम्पादयन्ति' इति च निष्प्रमाणकम्	३०५
चर्याभोगेण चैतः किं शुद्धं शुद्धं गच्छति एकस्मिन्नेव वा शुद्धे भिक्षालाभं ज्ञात्वा प्रवर्तते ?	३०५
भोजनं च किमेकाकी करोति शिष्यैर्वा परिवृतः ?	३०६
केवली भुङ्क्ता प्रतिक्रमणादिकं करोति वा न वा ?	३०६
किमर्थं चासौ भुङ्क्ते-शरीरोपचयार्थं ज्ञानध्यानसंयमसिद्ध्यर्थं शुद्धे- नाशरीकारार्थं प्राणप्राणार्थं वा ?	३०६
'एकादश जिने' इति आगमस्य च एकेन अधिका न दश इत्यर्थ- कत्वेन परीपहृतिपेक्षपरलमेव	३०६
'भोजनं कुर्वाणो भगवान् नावलोकयते' इत्यत्रादर्शनेऽयुक्तसेविलादे- कान्तमाश्रित्य भुङ्क्ते इति कारणम्, बहलान्वकारस्थितभोजनं वा, विद्याविशेषेण स्वस्य तिरोधानं वा ?	३०७
कथञ्चादृश्याय दातुभिः भोजनं क्षीयते	३०७
भोक्षस्वरूपविचारः	३०७-३२८
(नैयायिकस्य पूर्वपक्षः) बुद्ध्यादिविशेषगुणोच्छेदरूपो भोक्षः बुद्ध्यादिसन्तानस्य अत्यन्तसुच्छिद्यमानत्वात्	३०७
आरब्धशरीरेन्द्रियविषयकार्ययोः धर्माधर्मयोः फलोपभोगात् प्रक्षयः	३०८
नामुक्तं क्षीयते कमी	३०८
'यथैवास्ति' इत्यागमोऽपि फलोपभोगद्वारेव कर्मक्षयं समर्थयति	३०९
अन्ये तु मिथ्याज्ञानजनितसंस्काराख्यसहकारिणोऽभावादिदयमाना- न्यपि कर्मणि न जन्मान्तरे फलादानसमर्थानि इति मन्यन्ते; तेषां कर्मणा निललापतिः	३०९
निलानैमित्तिकानुष्ठानं च प्रत्यवायपरिहारार्थम्	३०९
वेदान्त्यभिमतता आनन्दरूपता तु भोक्षस्यानुष्ठाः यतो हि सुखं भोक्षे निलमनिष्टं वा ?	३१०

विधयाः

५०

नित्यवेदः तत्तद्वेदज्ञं नित्यमनित्यं वा ? ३१०

सौन्दर्यारिकसुखेन सह नित्यसुखस्यावस्थानात् सुखद्वयोपलम्भः स्यात् ३११

अनित्यं हि सुखं न योगजधर्मानुग्रहीतान्तःकरणसंयोगात् ; शुचौ योगजधर्माभावात् ३११

यदि सुखवस्थानां सुखं नित्यं तदा देहादिकमपि नित्यं कल्पनीयम् ३१२

सुखस्वभावत्वं च किं सुखलजातिसम्बन्धित्वं सुखाधिकरणत्वं वा ? ३१२

अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयस्वमनन्यपरतयोपासीयमानत्वं च साधनम-
सिद्धम् ; दुःखितायामात्मन्यप्रियबुद्धेरपि भावात् ३१२आनन्दं ब्रह्मणो रूपमित्यत्र आनन्दशब्दो हि दुःखामावे प्रयुक्त-
लक्षणः ३१३

आत्मस्वरूपात्तज्जितं सुखमव्यतिरिक्तं व्यतिरिक्तं वा ? ३१३

बौद्धाभिमतो विद्वदज्ञानोत्पत्तिरूपोऽपि मोक्षो न युक्तः ... ३१३

रागादिमतो ज्ञानात् तद्वद्विषय उत्पत्त्ययोगात् ३१३

बोधाद्विषयरूपत्वे हि पूर्वकालभावित्वं समानजातीयत्वमेकसन्तानत्वं
वा न हेतुः व्यभिचारात् ३१३

सुषुप्तावस्थानां ज्ञानान्युपगमे जाग्रदवस्थातो न कश्चिद्विरोधः ... ३१४

अभ्यासाप्रागादिबिनाशो न युक्तः ; सौगतमते विनाशस्य निर्हेतु-
कत्वात् अभ्यासानुपपत्तेश्च ३१४

जैनाभिमताऽनेकान्तभावनातोऽपि न मोक्षः ३१५

अनेकान्तज्ञानं सिध्यैव विरोधादिदोषात् ३१५

स्वदेशादिषु सत्त्वं परदेशादिषु असत्त्वमितरेतरभावादिष्वपि एव
शुक्तावपि अनेकान्ताः स्यात्तथा च स एव युक्तः संसारी चेति ३१५

प्राप्तम् ३१५

आत्मैकलज्ञानात् परमात्मलयरूपो मोक्षोऽपि न युक्तः ... ३१५

आत्मैकलज्ञानस्य सिध्यारूपत्वात् ३१५

शब्दाद्वैतज्ञानमपि सिध्यारूपत्वाच्च निःश्रेयससाधनम् ३१६

सांख्याभिमतप्रकृतिपुरुषविनैकोपलम्भमात्मरूपे चैतन्यमात्रेऽप-
स्थानं मोक्षः इत्यपि असङ्गतमेव ३१६अचानं हि पुरुषस्य निमित्तमपेक्ष्य पुरुषार्थसाधनाय प्रवर्तते अन-
पेक्ष्य वा ? ३१६

यद्यपेक्ष्य प्रवर्तते तदा किमपेक्ष्य विवेकानुपलम्भोऽदृष्टं वा ? ... ३१६

चिद्रूपेऽवस्थानमिति न युक्तम् ; चिद्रूपताया अविश्रुत्वात् ... ३१६

चिद्रूपता आत्मनोऽभिज्ञा भिन्ना वा ? ३१७

(उत्तरपक्षः) बुद्ध्यादीनामात्मनः सर्वेषां भिन्नानाम् आत्मगुणल-
भेव असिद्धम् ३१७

विषयाः

५०

सन्तानसं हेतुः सामान्यरूपो विशेषरूपो वा ? ३१७

विशेषरूपमपि संपादानोपादेयभूतबुद्ध्यादिलक्षणक्षणविशेषरूपम्,
पूर्वापरसमानजातीयक्षणप्रवाहमात्ररूपं वा ? ३१७

शब्दप्रतीपादीनामत्यन्तोच्छेदाभावात् साध्यविकलो दृष्टान्तः ... ३१८

बुद्ध्यादिसन्तानो नात्यन्तोच्छेदवान् तथातुपलभ्यमानत्वादिति सत्प्र-
तिपक्षश्च ३१८

तत्त्वज्ञानस्य विपर्ययादिव्यवच्छेदकमेण धर्माधर्मादिनाशहेतुत्वेऽपि
न बुद्ध्यादिविनाशहेतुता ३१८

इन्द्रियजनानां तु बुद्ध्यादीनां नाशोऽस्माभिरप्यभ्युपगम्यत एव ... ३१८

उपयोगात्कर्मणां प्रक्षये तदुपयोगकाले समुत्पन्नाऽभिव्यवात्पूर्वक-
मैवाद्बुद्ध्यादौऽवश्यम्भावी ३१९

आनन्दरूपता तु मोक्षे स्वीक्रियते एव किन्तु सा परिणामिनी
नैकान्तविद्या ३२०

तत्संबेदनस्योत्पत्तिकारणश्च ज्ञानावरणादिप्रतिबन्धकक्षय एव ... ३२०

विशुद्धज्ञानोत्पत्तिकोऽपि मोक्षोऽसीष्ट एव, परन्तु चित्तसन्तानः
सान्त्वयोऽभ्युपगन्तव्यः ३२०

सन्तानैक्याद्वद्वत्स्यैव मोक्षे यदि सन्तानार्थः परमार्थः सन् तथा
आत्मैव नामान्तरेण उक्तः ३२१

सान्त्वयचित्तसन्तानसमाये च प्रत्यभिज्ञानादिप्रादुर्भावो न स्यात् ... ३२१

सुषुप्तावस्थानां ज्ञानसद्भावेऽपि न जाग्रदवस्थातोऽविशेषः; तदानीं
ज्ञानस्य भिद्वेनाभिभूतत्वात् ३२२

भिद्वेनाभिभवश्च स्वरूपसामर्थ्यप्रतिबन्धलक्षणोऽभ्युपगम्यते । ... ३२२

स्वापलक्षणार्थनिरूपणमप्यस्ति 'एतावत्कालं निरन्तरं सुप्तः एताव-
त्कालश्च सान्तरम्' इत्यादिरूपम् ३२३

यावोऽहं तदा सुप्त इति स्मरणमेव च तादात्मिकाजुषवे प्रमाणम् ३२३

सुषुप्तावस्थानां विज्ञानाभावं स एवात्मा प्रतिपद्यते पार्श्वस्थो वा ? ३२३

ज्ञानान्तरासदभावगतौ; किं तत्कालमाविनः जाग्रदप्रबोधकाल-
माविनो वा ? ३२३

'चैतन्यप्रभवप्राणादिः जाग्रदवस्थायां प्राणादिप्रभवप्राणादिश्च सुषु-
प्तावस्थायाम्' इत्यपि न युक्तम्; सुषुप्तेतरावस्थयोः प्राणादेर्विशे-
षाभावात् ३२४

सुषुप्तादौ नाशः प्राणादिः कुतो जायताम् ? ३२५

स्वापसुखसंबेदनं नात्र सुप्रतीतयेव ३२५

विषयाः	४४
अनेकान्तज्ञानमेव वस्तुतोऽबाधितं प्रतीयमाने विरोधाद्यनवकाशात्	३१६
इतरेतराभावात् स्वपरदेशादिषु सत्त्वासत्त्वे नाभ्युपगन्तुं युक्ते	
इतरेतराभावस्य प्रतिक्षेपात्	३२६
स हि घटाद्विचोऽभिधो वा ?	३२६
द्विविधोऽनेकान्तः क्रमानेकान्तः अक्रमाऽनेकान्तश्च	३२६
अनेकान्तेऽपि अनेकान्तः, प्रमाणपरिच्छिन्नानेकान्तस्य नयपरि- च्छेदैकान्ताऽविनाभावित्वात्	३२७
चैतन्यविशेषे धनन्तज्ञानादावस्थानस्यैव वस्तुतः भोक्षलम् ...	३२७
उत्पत्तिमत्त्वाज्ज्ञानस्य अचेतनत्वे अनुसन्धेयं व्यभिचारः	३२७
ज्ञानादीनां चेतनसंसर्गाच्चैतन्यत्वे शरीरादीनामपि चैतन्यप्रसङ्गः ...	३२७
ततो नाऽचेतना ज्ञानादयः स्वसंवेद्यत्वात्	३२८
सुखात्मको मोक्षः चेतनात्मकत्वे सत्यखिलदुःखविवेकात्मकत्वात्	३२८
अनन्तं तत् आत्मस्वभावत्वे सति अपेक्षप्रतिबन्धकत्वात् ...	३२८
अवेतपटामिमंतायाः क्रीमुक्तेः निरासः	३२८-३३४
मोक्षहेतुः ज्ञानादिपरमप्रकर्षः क्रीषु नास्ति परमकर्षत्वात् ...	३२८
अयं नियमः-यदेदस्य मोक्षहेतुपरमप्रकर्षः तद्वेदस्य सप्तमष्टमिवी- गमनकारणपापप्रकर्षोऽप्यस्ति	३२८
परमप्रकर्षत्वाद्वा हेतोः क्रीणां मोक्षहेतुपरमप्रकर्षाभावः	३२९
क्रीणां मायाबाहुल्यमस्ति न तु तत्परमप्रकर्षः	३२९
क्रीणां संयमो न मोक्षहेतुः नियमेनर्द्विविधेषाहेतुत्वात्	३३०
सचेतसंयमत्वाच्च न क्रीणां संयमः मोक्षहेतुः	३३०
क्षियो न मोक्षहेतुसंयमवस्थाः साधूनामवस्थत्वात्	३३०
बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहवत्त्वाच्च न क्षियो मोक्षहेतुसंयमवस्थाः ...	३३०
गृहीतेऽपि वक्षे जन्तूपघातस्तदवस्थ एव	३३१
बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहत्यागरूपः संयमः कथं याचनसीवनाद्युपाधि- मति वक्षे गृहीते स्यात्	३३१
अनुरक्षागण्डादिप्रतीकारार्थं पिच्छीषादिग्रहणं न परिग्रहो ममे- दम्भावासूचकत्वात्	३३२
बुद्धिपूर्वकं हि पतितं वज्रं हस्तेनादाय परिदधानोऽपि कथं मूर्च्छा- रहितः स्यात् ?	३३३
पुनर्वेद वेदन्ता इत्यागमः भाववेदापेक्षयैव प्राणः	३३३
क्रीलान्यथापुपपत्तेश्च न तासां मोक्षप्राप्तिः	३३३
नास्ति क्रीणां मोक्षः पुरुषादन्यत्वात्	३३३
नास्ति क्रीणां मोक्ष उक्तवृत्त्यानफलत्वात् सप्तमनरकगमनवत् ...	३३४

इति, द्वितीयः परिच्छेदः ।

अथ तृतीयः परिच्छेदः (उत्तरार्धम्)



विषयाः	पृ०
परोक्षस्य लक्षणम्	३३५
परोक्षस्य भेदाः	३३५
स्मृतिर्लक्षणम्	३३५
स्मृतिप्रामाण्यवादः	३३६-३३८
स्मृतिः प्रमाणं संवादकत्वात्	३३६
(चौद्वितीयां पूर्वपक्षः) किं ज्ञानमात्रं स्मृतिः अनुभूतार्थविषयं वा विज्ञानम् ?	३३६
'अनुभूते जायमानम्' इति केन प्रतीयते अनुभवेन स्मृत्या वा ?	३३६
नचानुभूतता प्रत्यक्षगम्या ततस्तान् अनुभवानुसारिस्मृतिर्जानीयात् (उत्तरपक्षः) न ज्ञानमात्रं स्मृतिः किन्तु तद्विज्ञाकारं प्रागनुभूत-वस्तुविषयं विज्ञानम्	३३६
'अनुभूते स्मृतिः' इति अनुभवनस्मरणपर्यायव्यापिना आत्मना प्रतीयते	३३६
परिच्छित्तिविशेषसम्भवाच्च पृथीतप्राहितया स्मृतिरप्रमाणम् ...	३३६
विषयं भावनाज्ञानं तु न प्रमाणम्	३३७
अनुभूतविषयत्वात्स्मरणस्याप्रामाण्ये अनुमानाभिगते बहौ प्रवर्त-मानं प्रत्यक्षमप्यप्रमाणं स्यात्	३३७
असंख्यतीतेऽपि प्रवर्तनं तु प्रत्यक्षेऽप्यविशिष्टम्	३३७
सन्मन्वाभावात्तस्याः विसंवादकत्वं कल्पितसम्बन्धविषयत्वाद्वा सतोऽप्यस्य अनया विषयीकर्तुमशक्यत्वाद्वा ?	३३७
लिंगलिङ्गिसम्बन्धः किं सत्ताभावेण अनुमानप्रवृत्तिहेतुः तद्दर्शनात् तत्स्मरणाद्वा ?	३३८
व्याप्तिस्मरणस्य प्रामाण्यमनुमानप्रामाण्यवादिना तु स्वीकर्तव्यमेव समारोपव्यवच्छेदकत्वाच्च प्रमाणं स्मृतिः	३३८
प्रत्यभिज्ञानस्य लक्षणम्	३३८
न प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षम्; इन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात् स्मृतिविरपेक्षता च प्रत्यक्षस्य सुप्रतीता	३३९
प्रत्यभिज्ञा हि पूर्वोत्तरविवर्तवर्त्येकलविषया	३३९
अयं स इति प्रत्यक्षस्मरणव्यतिरेकेणाप्यस्ति पूर्वोत्तरविवर्तवर्त्येक-द्रव्यविषयं प्रत्यभिज्ञानम्	३४०
प्रत्यभिज्ञानानभ्युपगमे अतस्तत्सर्वं क्षणिकमित्यनुमानं व्यर्थम् ...	३४१

विषयाः

पृ०

प्रत्यभिज्ञाऽभावे 'यदुदष्टमनुमितं वा तदेव प्राप्तम्' इत्येकलाप्यव-

साध्याभावे प्रत्यक्षानुमानयोः प्रामाण्यं न स्यात् ३४१

प्रत्यभिज्ञाभावे नैरात्म्यभावनाभ्यासश्च मिष्कलः... .. ३४१

नीलवर्णैकाकाराकान्तं चित्रज्ञानमभ्युपगच्छद्भिः 'स एवायम्'

इति आकारद्वयाकान्तं प्रत्यभिज्ञानमभ्युपगन्तव्यम् ... ३४१

स एवायमिति आकारद्वयं कथञ्चित्परस्परानुप्रवेशेन आत्माधिकर-

णतया आत्मन्येव प्रतिभासते ३४२

स्वनपुनर्जातनखकेशादिवत् न निर्विषया प्रत्यभिज्ञा ३४२

प्रत्यभिज्ञानविलोपे अनुमानस्याप्रवृत्तिरेव ३४३

प्रत्यभिज्ञानस्याप्रामाण्यं हि गृहीतग्राहित्वात् स्मरणानन्तरमावि-

त्वात्, शब्दाकारधारित्वाद्वा बाध्यमानत्वाद्वा ? ३४३

'गोसदयो गवयः' इति सादृश्यप्रत्यभिज्ञानं प्रमाणम् ३४४

न सादृश्यप्रत्यभिज्ञानमनुमानरूपम्; अनवस्थाप्रसङ्गात् ३४५

सदृशाकारे च कुतः सदृशव्यवहारः ? ३४५

सादृश्यप्रतीतेः सङ्ख्यनात्मकत्वात् प्रत्यभिज्ञानत्वमेव नोपमानत्वम्

सादृश्यज्ञानस्य उपमानत्वे वैलक्षण्यज्ञानं किञ्चामकं प्रमाणम् ! ... ३४६

संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानरूपमुपमानं नैयायिकरूपितमपि न युक्तम्,

इदमस्माद्दूरं वृथोऽयमिति ज्ञानयोरपि भ्रूयक प्रमाणता स्यात् ३४७

तर्कस्य लक्षणम् ३४८

उपलम्भानुपलम्भशब्देन सङ्कृतपुनः पुनर्वा दृढतरं निश्चयानिश्चयो

प्राप्तौ न तु प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षे ३४८

तर्कस्याप्रामाण्यं किं गृहीतग्राहित्वात्, विसंवादिताद्वा, प्रमाणविषय-

परिशोधकत्वाद्वा ? ३४९

न बौद्धमिमत्प्रत्यक्षपृष्ठभाविनो विकल्पाद् व्याप्तिप्रतिपत्तिः ... ३४९

नानुमानेनापि व्याप्तिग्रहणम् ३५१

योगिप्रत्यक्षस्यापि अविचारकतया न व्याप्तिग्राहकता ३५१

योगिज्ञानं किं विकल्पमात्राभ्यासात् अनुमानाभ्यासाद्वा जायते ? ३५१

योगी परार्थानुमानेन गृहीतव्याप्तिकमगृहीतव्याप्तिकं वा परं प्रति-

पादयेत् ? ३५१

नापि मानसप्रत्यक्षाव्याप्तिप्रतिपत्तिः ३५१

साध्यं च किमभिसामान्यम्, अभिविशेषः, अभिसामान्यविशेषो वा ? ३५१

उद्भापोहविकल्पज्ञानस्य प्रत्यक्षफलत्वेऽपि अनुमानलक्षणफलहेतु-

त्वात्प्रामाण्यम् ३५२

समारोपव्यवच्छेदकत्वात् प्रमाणं तर्कः ३५२

विषयाः

पृ०

प्रमाणं तर्कः प्रमाणविषयपरिपोषकत्वात्	३५२
प्रमाणं तर्कः प्रमाणानामनुप्राद्वकत्वात्	३५३
तर्कस्योत्पत्तौ न सम्बन्धग्रहणापेक्षा येन अनवस्था	३५३
अनुमानस्य लक्षणम्	३५४
हेतुलक्षणम्	३५४
चौद्धाभिमतत्रैरूप्यस्य निरासः	३५४-५६
त्रैरूप्यमात्रं हेतोरलक्षणं विशिष्टं वा त्रैरूप्यम्	३५४
उद्देष्ट्यति शक्यं कृतिकोदयादिसा त्रैरूप्याभावेऽपि गमकत्वम्	३५५
न धावणत्वस्य हेतोरसाधारणानैकान्तिकता	३५५
सप्तविधस्योर्हि हेतुरसत्त्वेन निश्चितोऽसाधारणः संशयितो वा ?	३५५
नैयायिकाभिमतपञ्चरूप्यस्य खण्डनम्	३५७-३६२
साध्याविनाभावित्वव्यतिरेकेण नापरमबाधितविषयत्वमसत्प्रतिपक्षत्वं वा समक्षि	३५७
बाधाविनाभावयोर्विरोधात्	३५७
अव्यक्तागमयोः कृतो हेतुविषयबाधकत्वम् ?	३५८
एकसाक्षात्प्रभवत्वानुमानं कृतो भ्रान्तम्-अध्यक्षवाध्यत्वात् त्रैरूप्य-वेकत्वाद्वा ?	३५८
अबाधितविषयत्वं निश्चितमनिश्चितं वा हेतोरलक्षणम् ?	३५८
बाधामावनिश्चयनिबन्धनं हि अनुपलम्भः संवादो वा ?	३५८
सत्प्रतिपक्षे हि प्रतिपक्षस्तुल्यबलोऽतुल्यबलो वा स्यात् ?	३५९
अतुल्यबलत्वं हि पक्षधर्मत्वादिसाधारणकृतमनुमानबाधजनितं वा ?	३५९
अनुपलम्भमाननिरासधर्मकत्वं शब्दे तत्त्वतोऽप्रसिद्धं न वा ?	३५९
साध्यधर्मान्विते धर्मिणि तत्प्रसिद्धं तद्वहिते वा ?	३५९
निरासधर्मानुपलब्धिः प्रसज्यप्रतिषेधरूपा पूर्वदासरूपा वा ?	३६१
एकस्य हेतोः यदि पक्षधर्मत्वाद्यनेकरूपतेष्वपि तदा अनेकान्तसिद्धिः	३६१
परैः सामान्यरूपो हेतुरुपाधीयते विशेषरूपो वा उभयमनुसर्य वा ?	३६१
सामान्यरूपश्चेत् तर्हि व्यक्तिभ्यो भिन्नमभिन्नं वा ?	३६१
अभिन्नश्चेत् कथञ्चित् सर्वथा वा ?	३६२
परैः किं साध्यते सामान्यं विशेषो वा उभयमनुसर्य वा ?	३६२
नैयायिकाभिमतपूर्ववदादि-अनुमानत्रैविध्यस्य निरासः	३६२-६८
पूर्ववच्छेषवत् केवलान्वयि	३६२
पूर्ववत्सामान्यतोऽदृष्टं केवलव्यतिरेकि	३६२
पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोऽदृष्टमन्यव्यतिरेकि	३६२

विषयाः

४०

अविनाभावस्य अन्वयेन व्याप्त्यभावात् नान्वयो गमकलाङ्गम् ...

३६३

‘सदसद्गर्गः’ इत्यनुमानेऽनेकलादिति हेतुः किं व्यतिरेकभावात्
केवलान्वयी विपक्षाभावाद्वा ?

३६३

विपक्षाभावस्यैव विपक्षता

३६४

त्रिधा व्याप्तिः बहिर्व्याप्तिः, साकल्यव्याप्तिरन्तर्व्याप्तिश्चेति ...

३६४

सकलव्याप्तिश्चेदन्वयः, सा कुतः प्रतीयते प्रत्यक्षादनुमानाद्वा ?

३६५

साध्यत्वश्चासतः करणम्, सतो ज्ञापनं वा ?

३६६

सात्मकं जीवच्छरीरं प्राणादिमत्त्वादित्यं हेतुः कुतः केवलव्यति-
रेकी ?

३६६

व्यतिरेकस्य क्वचित् कदाचित् सर्वत्र सर्वदा वा ?

३६७

पूर्ववत् कारणात्कार्यानुमानं शेषवत् कार्यात् कारणादनुमानम् सामा-
न्यतो दृष्टम्-अकार्यकारणादकार्यकारणादनुमानं सामान्यतोऽवि-
नाभावादिति व्याख्यानमपि न युक्तम्

३६७

पूर्ववत् पूर्वं व्याप्तिं गृहीत्वा गदनुमानम्, शेषवत्परिशेषानुमानं
सामान्यतो दृष्टं विशिष्टव्यक्तौ सम्बन्धाग्रहणात् सामान्येव दृष्ट-
मिति न व्याख्यानम् असङ्गतम्

३६८

न चायं पूर्ववदादिभेदः युक्तः; परिशेषाद्यनुमानस्यापि पूर्ववत्त्वाद्

३६८

अविनाभावस्य लक्षणम्

३६९

सहभावस्य स्वरूपम्

३६९

क्रमभावस्य स्वरूपम्

३६९

साध्यस्य लक्षणम्

३६९

असिद्धेष्टावाधितानां साध्यविशेषणानां सार्थक्यम्

३६९-७०

असिद्धविशेषणं प्रतिवाद्यपेक्षया इष्टञ्च चादिनः ...

३७०

क्वचिद् धर्मः साध्यः क्वचिच्च तद्विशिष्टो धर्मो ...

३७१

धर्मिणो लक्षणम्

३७१

विकल्पसिद्धे सत्तत्त्वयोः साध्यता

३७१

व्याप्तिकाले धर्मः साध्यम्

३७२

प्रतिज्ञाप्रयोगस्य सार्थकता

३७३

प्रतिज्ञाया अवचनं किं साध्यसिद्धिप्रतिबन्धकत्वात् प्रयोजना-
भावाद्वा ?

३७३

प्रतिज्ञाहेतु एव अनुमानाङ्गम्

३७४

उदाहरणस्य अनुमानावयवत्वनिरासः

३७४-७६

तद्वि किं साध्यप्रतिपत्त्यर्थमुपादीयते साध्याविनाभावनिव्यर्थं वा
व्याप्तिस्मरणार्थं वा

३७४

विषयाः

५०

अनादिसत्त्वरूपस्यापौरुषेयत्वं कथं प्रलक्षम् ? ३९१

अनुमानश्च कर्त्रस्मरणहेतुप्रमथम्, वेदाध्ययनशब्दवाच्यलक्षण-

जनितं वा काललसाधनसमुत्पत्तिं वा ? ३९२

कर्तृस्मरणश्च किं कर्तृस्मरणाभावः अस्मर्यमाणकर्तृकत्वं वा ? ... ३९२

नित्यं हि वस्तु अकर्तृकं भवति न स्मर्यमाणकर्तृकं नाप्यस्मर्यमाण-

कर्तृकम् ३९२

सम्प्रदायाविच्छेदे सति अस्मर्यमाणकर्तृकत्वमपि अनैकान्तिकम् ३९२

स्मृतिपुराणादिवत् ऋषिनामाहिताः कान्वयाप्यन्दिनादिशास्त्राभेदाः

कथमस्मर्यमाणकर्तृकाः ? ३९२

एतास्तत्कृतत्वात्तन्नामभिरङ्किताः तद्गुणत्वात् तत्प्रकाशितत्वाद्वा ? ... ३९३

कर्तृस्मरणं हि अभ्यक्षेणानुसन्धानमाभावात् छिन्नमूलं प्रमाणान्तरेण वा ? ३९३

'वेदार्थानुष्ठानसमये कर्तुः स्मरणयोग्यत्वे सत्यप्यस्मर्यमाणकर्तृक-

त्वात्' इत्यपि अनैकान्तिकम् ३९४

न च पौरुषेयत्वेन सह कर्तुः स्मरणयोग्यत्वस्य विरोधो येन तदेत-

द्विशेषणं स्यात् ३९४

न चायं नियमो यदनुष्ठानसमये कर्ता अवश्यमेव स्मर्यमान इति ३९५

अस्मर्यमाणकर्तृकत्वं वादिनः प्रतिवादिनः सर्वस्य वा ? ३९५

अतः स्मृतकथेन अपौरुषेयत्वं साध्यते पौरुषेयत्वसाधनमनुमानं

वा बाध्यते ? ३९५

अपौरुषेयत्वस्य स्मृतकथेन साधनं प्रसङ्गो वा ? ३९५

बाबापक्षे किमनेन पौरुषेयत्वसाधकानुमानस्य स्वरूपं बाध्यते

विषयो वा ? ३९६

वेदाध्ययनवाच्यत्वं किं निर्विशेषणं कर्त्रस्मरणविशेषणविशिष्टं वा

अपौरुषेयत्वं साधयेत् ? ३९६

अपौरुषेयत्वं किमन्यतः प्रमाणात् प्रतिपन्नमत एव वा ? ... ३९७

कर्त्रस्मरणं विशेषणं किमभावात्त्वं प्रमाणम् अर्थापत्तिरनुमानं वा ? ३९८

कालशब्दामिधेयत्वादेतोरपि न अपौरुषेयत्वसिद्धिः ३९९

नापि आगमतोऽपौरुषेयत्वम् ३९९

समानादपि नापौरुषेयत्वसिद्धिः ३९९

अपौरुषेयत्वं विनानुपपन्नमानोऽर्थः किमप्राप्त्याभावलक्षणः,

अतीन्द्रियार्थप्रतिपादनस्वभावो वा, परार्थशब्दोच्चारणरूपो वा ? ३९९

अपौरुषेयत्वं प्रसज्यप्रतिषेधरूपं पर्युदासस्वभावं वा ? ४००

पर्युदासपक्षे सत्त्वं किं निर्विशेषणम् अनादिविशेषणविशिष्टं वाऽपौ-

रुषेयशब्दामिधेयं स्यात् ? ४००

विषयाः	पृ०
वेदः व्याख्यातः अव्याख्यातो वा स्वार्थप्रतीतिं कुर्यात् ? ...	४००
व्याख्यानमपि स्वतः, पुरुषाद्वा ?	४००
व्याख्याता चातीन्द्रियार्थद्रष्टा तद्विपरीतो वा ?	४०१
मन्वादीनां प्रज्ञातिशयश्च स्वतः, वेदार्थान्ध्यासात्, अदृष्टात्, प्रज्ञातो वा स्यात् ?	४०१
अधुतकाव्यादिवत् वेदार्थस्य संवादित्वे व्याचिख्यासितार्थनियमो न स्यात् अनेकार्थत्वाच्छब्दानाम्	४०२
नररचितरचनाविशिष्टत्वात् पौरुषेयो वेदः	४०२
शब्दनित्यत्ववादः	४०४-२७
(सीमासकस्य पूर्वपक्षः) शब्दस्य निवृत्तत्वं स्वार्थप्रतिपादकत्वान्ध- थानुपपत्तेः	४०४
सम्बन्धावगमश्च प्रमाणत्रयसम्पाद्यः	४०४
सादृश्यादर्थप्रतिपत्तेः	४०५
सादृश्यादर्थप्रतीतो अन्तः शब्दः प्रत्ययः स्यात्	४०५
गलादीनां वाचकत्वं गादिव्यक्तीनां वा ?	४०५
व्यक्तीनां वाचकत्वे किं गादिव्यक्तिविशेषो वाचको व्यक्तिमात्रं वा ? व्यक्तिमात्रश्च सामान्यान्तःपाति व्यत्यन्तर्भूतं वा ?	४०५
न विभक्त्यदेषादितयोपलभ्यमानत्वाद् गकारादीनां नानात्वम्; अनेकप्रतिपत्तुभिः भिन्नदेशादितयोपलभ्यमानादित्येनानेकान्तात् विभिन्नदेशादितयोपलम्भश्च व्यञ्जकध्वन्यधीनः	४०६
नाप्येकेन भिन्नदेशोपलम्भात् षटादिनञानात्वम्; आदित्येनैवाने- कान्तात्	४०७
ऊमारिलोका प्रतिविम्बनिराकरणपरा चर्चा	४०८
प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षेण च एक एव शब्दः प्रतीयते	४०९
(उत्तरपक्ष) धूमादिवदनित्यस्यापि शब्दस्यावगतसम्बन्धस्य सादृश्यतोऽर्थप्रतिपादकत्वसम्भवात्	४०९
सादृश्यस्य स्वरूपं व्यक्तिभ्यो भिन्नमभिन्नश्च प्रतीयते	४११
लक्षितलक्षणया विशेषप्रतिपत्तिश्च अनुक्ता	४११
सामान्याद्विशेषः प्रतियोग्येन रूपेण लभ्येत साधारणेन वा ?	४११
जातिव्यत्ययोश्च सम्बन्धस्तदा प्रतीयते पूर्वं वा ?	४१२
जातिव्यक्तिनिष्ठेति प्रत्यक्षेण प्रतीयते अनुमानेन वा ?	४१२
वर्णेष्वपि अनुगतप्रत्ययस्य भावात् वर्णत्वमस्ति	४१३
अनेको गोशब्दः एकेनैकदा विभिन्नदेशादितयोपलभ्यमानत्वात् षटादिवत्	४१३

विषयाः	४०
न सदात्तादयो व्यञ्जकधर्मा अपि तु शब्दधर्मा एव	४१४
श्रुतितीमलस किं-महत्वरहितस्वार्थस्य महत्त्वेनोपलम्भः, यथाव- स्थितस्यात्यन्तस्पर्शतया वा ग्रहणम् ?	४१४
तात्वादीनां व्यञ्जकत्वे तदर्थोपेतस्य शब्दस्य नियमेनोपलब्धिर्न स्यात्	४१५
ध्वनयः श्रोत्रप्राप्ता न वा ?	४१५
किं कारणानुविधायित्वमल्पत्वमहत्त्वयोः स्वभावसिद्धत्वादसिद्धम्, स्वभावतस्तद्वहितत्वात् कारणकृते ते न स्तः ?	४१६
ध्वनयश्च प्रत्यक्षेण अनुमानेन अर्थोपेत्या वा प्रतिपन्नाः ? ...	४१६
विशिष्टसंस्कृत्यन्यथानुपत्तेः ध्वनयः सन्ति इत्यपि न युक्तम् ...	४१६
शब्दसंस्कारपक्षे कोऽयं शब्दसंस्कारः-शब्दस्योपलब्धिः, तस्या- त्मभूतः क्वचिदतिशयः, अनतिशयव्यावृत्तिः, स्वरूपपरिपोषः, व्यक्तिसमवायः, तद्ग्रहणापेक्षग्रहणता, व्यञ्जकसक्तिमानमात्रम्, आवरणविगमो वा ?	४१९
व्यञ्जकैः किं क्रियते येन ते तैर्निर्यमेनापेक्षते-योग्यता; किमात्मनः, शब्दस्य, इन्द्रियस्य वा ?	४२०
न हि दिगाद्यपेक्षया ग्रहणमिष्यते अपि तु श्रवणान्तर्गतत्वेन ...	४२१
आवरणविगमः संस्कारस्तु तदा स्यात् यदि आवरणं कृतवित्त- सिद्धेत्	४२१
व्योमव्यापिनः बहुवक्षेदावारकाः; ते किं सान्तरा निरन्तरा वा ?	४२१
क्वचिदावरणविगमे सर्वत्र आवरणविगमात् सर्वशब्दश्रुतिः स्यात्	४२१
अभिप्रेक्ष्योऽभिधेयिग्रहाद्ये चापार्थे आवरणमेदस्याभिव्यक्तकमे- दस्य चाप्रतीतेः,	४२२
जलसेकादयो न भूमिगन्धस्य व्यञ्जका अपि तृप्तादका एव ...	४२३
इन्द्रियसंस्कारपक्षे सकृत्संस्कृतं श्रोत्रं युगपद्विखिलवर्णान् शृणुयात्	४२४
उभयसंस्कारपक्षे उभयदोषः	४२५
जले च उपलभ्यमानान्नामादिस्यप्रतिबिम्बानामनेकत्वात् ...	४२५
जलादिस्यादिलक्षणसामग्रीवशात् सुखादिप्रतिबिम्बं समुत्पद्यते ...	४२५
शब्दस्य गमनागमनपक्षभाविनो दोषाः व्यञ्जकताव्यागमनेऽपि समानाः	४२७
सहजयोग्यतावशात् शब्दस्य अर्थप्रतिपादकत्वम्	४२८
हस्तसंज्ञादिबन्धद्वार्यसम्बन्धस्य अनित्यत्वेऽपि अर्थप्रतिपत्ति- हेतुता	४२८
शब्दार्थसम्बन्धस्य नित्यत्वेऽपि तदभिव्यक्तौ अनवस्थादोषमुत्पद्यः	४२९

विषयाः

पृ०

संकेतश्च अतीन्द्रियज्ञानविकल्पपुराभितः, स चान्यथापि संकेतं

कुर्यात् ४३०

वेदः नित्यसम्बन्धवशादेकार्थनियतः अनेकार्थनियतो वा ? ... ४३०

एकार्थनियतश्च किमेकदेशेन सर्वात्मना वा ४३०

एकदेशेन चेत्, सकिमेकदेशः अभिमतैकार्थनियतः अनभिमतै-
कार्थनियतो वा ? ४३०

अभिमतार्थनियतश्चेत् किं पुरुषात्स्वभावाद्वा ? ४३०

सम्बन्धश्च ऐन्द्रियः अतीन्द्रियः अनुमानगम्यो वा ? ४३०

अनुमानगम्यत्वे लिङ्गम्-ज्ञानम्, अर्थः, शब्दो वा स्यात् ? ... ४३०

चौख्यमभिमतस्य अपोहस्य निरासः ४३१-४५१

अर्थवन्तः शब्दाः नार्थाभावे हृद्यन्ते अतो न अन्यापोहमात्राभि-

धायकाः ४३१

यत्नतः परीक्षितः शब्दोऽर्थवत्त्वेतरतां न व्यभिचरति ४३१

अन्यापोहामिवायित्वे प्रतीतिविरोधः गवादिशब्देभ्यो हि विधि-
रूपेण प्रत्ययः समुत्पद्यते ४३१

एकेन गोशब्देन च विधिविधेयद्वयं न स्यात् ४३१

प्रथमश्च गोशब्दश्चवणादगौरिति प्रतीयेत ४३२

अपोहलक्षणं सामान्यं पशुदास्यरूपं प्रसज्यरूपं वा वार्च्यं स्यात् ? ४३२

अन्नादिनिवृत्तिलक्षणश्च को भावोऽभिप्रेतः ? ४३३

अपोहवादिनां मते विभिन्नसामान्यवाचिनां शब्दानां शावलेयादि-
विशेषशब्दानाञ्च पर्यायवाचिन् स्यात् ४३३

अपोहमेवादपि न शब्दभेदः प्रमेयाभिधेयादिशब्दानामप्रवृत्ति-
प्रसङ्गात् ४३४

कथञ्च सदृशपरिणामभावे शावलेयादीनामेव अगोपोहाश्रयत्वं न
स्तु कर्काशश्चव्यचीनामिति ४३४

न चापोहे संकेतः संभवति ४३५

अपोहप्रतिपत्ती च इतरेतराश्रयः ४३५

अपोहपक्षे च नीलोत्पलादौ विशेषणविशेष्यभावो न स्यात् ? ... ४३६

अपोहश्च न कस्यचिद्विशेषणं साक्षात्पुनरुक्तवृत्त्यनुत्पादकत्वात् ... ४३७

वस्तुभूतं सामान्यं शब्दविषयः ४३८

अपोहो वस्तु अपोहत्वात् ४३९

अपोहानां परस्परतो वैलक्षण्यमवैलक्षण्यं वा स्यात् ? ४३९

विभिन्नसामान्यवाचिनां शब्दानां परस्परतोऽपोहभेदः वासनाभेद-
निमित्तः वाच्यापोहभेदनिमित्तो वा ? ४३९

विषयाः	४७
अतः अपोहयोः न गम्यगमकभावः अवस्तुलात्	४४०
अपोहः वाच्योऽवाच्यो वा ?	४४०
वाच्योऽपि विधिरूपेण अन्यव्यावृत्त्या वा ?	४४०
नान्यापोहः अनन्यापोह इत्यत्र विधिरूपमेव वाच्यमुपलभ्यते ...	४४१
विजातीयव्यावृत्तार्थानुभवक्रमेण जायमानविकल्पप्रतिबिम्बेऽन्यापो- हसंज्ञाकरणेऽपि स विकल्पः पारमार्थिकार्थग्राही अभ्युपगन्तव्यः	४४१
शब्दादर्थे प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिप्रतीतेः स एव शब्दाद्यो न तु विकल्पप्रतिबिम्बमात्रम्	४४२
शब्दानां प्रतिनियतार्थे प्रवर्तकत्वात् वस्तुभूतार्थविषयता ...	४४२
शब्दस्य अर्थवाचकत्वम्	४४२-४५१
(चौदस्य पूर्वपक्षः) अकृतसमया च्चनयोऽर्थाभिधायकाः कृत- समया वा ?	४४२
द्वितीयपक्षे संकेतः—स्वरूपे, जातौ, तद्योगे, जातिमत्त्वार्थे, बुद्ध्या- कारे वा ?	४४२
समयः उत्पन्नेषु क्रियते अनुत्पन्नेषु वा ?	४४३
(उत्तरपक्षः) सामान्यविशेषात्मन्यर्थे सङ्केतोऽभ्युपगम्यते न जाल्यादिमात्रे	४४४
समानपरिणामापेक्षया व्यक्तियु संकेतः संभवति	४४५
सदृशपरिणामाभावे अन्यव्यावृत्तेरेव नियमवित्तुमशक्यत्वात् ...	४४५
शब्देन चार्थस्य अस्पष्टाचरतया प्रतिभासः, अतः स्पष्टप्रति- पत्त्यर्थं चक्षुरादीनामुपयोगः	४४६
अतीतानागताद्यपि स्वकाले सत्त्ववत्त्वार्थे संवादात् शब्दस्य प्राभाष्यम्	४४६
सामग्रीभेदादेव विशदेतरप्रतिभासभेदो न तु विषयभेदात् ...	४४७
अन्यदेवेन्द्रियप्राप्त्यमिति शब्देन कश्चिदर्थोऽभिधीयते न वा ? ...	४४७
साक्षादेन्द्रियागोचरत्वे यदि पारम्पर्येण सद्विषयता तदा तज्जा प्रतीतिः किमिन्द्रियजप्रतीतिस्तुल्या, तद्विरूपणा वा ? ...	४४८
दाहशब्देन च किमग्निः उष्णस्पर्शः रूपविशेषः स्फोटः तदुक्तं वाऽभिप्रेतम् ?	४४८
यदि चाभावोऽभिधीयते भावो नाभिधीयते तदा कथम् अपूर्वे स्पर्शोदौ घर्शोदौ वा गुणतवाक्यात् प्रतिपत्तिः	४४८
कथं स अर्थवाचकत्वे सत्वेतरव्यवस्थाऽभावः	४४९
पारमार्थिकानाक्यस्य अर्थगोचरत्वे कथं ततोऽमितार्थसिद्धिः ? ...	४४९
उत्पत्त्यर्थं विवक्षामात्रविषयत्वे सर्वं शब्दविज्ञानं प्रमाणं स्यात्	४४९

विषयाः

५०

अर्थव्यभिचारवत् निवक्ष्याव्यभिचारस्यापि दर्शनात् कथं शब्दाः

निवक्ष्यामपि प्रतिपादयेयुः

४४९

बहिरर्थे प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्त्यादिप्रतीतेः न निवक्ष्यायास्तदधिकृतार्थस्य

वा वाचकः शब्दः

४४९

किं शब्दोच्चारणेच्छामात्रं निवक्षा, अनेन शब्देनामुमर्थं प्रतिपाद-

यामि इत्यभिप्रायो वा निवक्षा ?

४५०

किं समयानपेक्षं वाक्यं निवक्षा गमयति समयसापेक्षं वा ? ...

४५०

स्वल्पक्षणास्य अनिर्देश्यत्वं हि तच्छब्देनाप्रतिपाद्य उच्येत प्रतिपाद्य वा ?

४५०

विकल्पप्रतिभास्यन्यापोहगता वाच्यता वस्तुनि प्रतिषिध्यते वस्तुगता

वा वाच्यता ?

४५१

स्फोटवादः

४५१-५७

(वैयाकरणानां पूर्वपक्षः) वर्णो हि समस्ता व्यक्ता वा तद्वाचकाः ?

४५१

न अन्त्यवर्णस्य पूर्ववर्णानुपहृतिस्तस्य अर्थप्रतिपादकत्वम्

४५२

अन्त्यवर्णानुग्रहो हि अन्त्यवर्णं प्रति जनकत्वम् अर्थज्ञानोत्पत्तौ

सहकारित्वं वा ?

४५३

संवेदनप्रभवसंस्काराश्च स्तोत्रादकविज्ञानविषयस्त्वतिहेतवो नार्था-

न्तरस्त्वृतिविधातारः

४५२

न च पूर्ववर्णानपेक्षस्यैव अन्त्यवर्णस्य वाचकता

४५२

ओत्रविज्ञाने चातौ स्फोटः निरवयवोऽक्रमश्च प्रतिभासते ...

४५२

निरुक्तासौ स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः

४५३

(उत्तरपक्षः) पूर्ववर्णेष्वसिद्धिद्वन्द्ववर्णादर्थप्रतीतिः

४५३

पूर्ववर्णविज्ञानाभावविशिष्टः तन्मनितसंस्कारसम्पत्तेः वाऽन्त्यवर्णो

वाचकः

४५३

पूर्ववर्णविज्ञानप्रभवसंस्काराणाम् अन्त्यवर्णं प्रति सहकारित्वस्य

प्रणाली

४५३

क्षयोपशमवशाच्च अविनष्टा एव पूर्ववर्णसंविदः तत्संस्काराश्च

अन्त्यवर्णसंस्कारं कुर्वन्ति

४५३

पूर्वस्त्वृत्तिसव्यपेक्षो वाऽन्त्यो वर्णो वाचकः

४५४

वर्णो हि किं समस्ताः स्फोटं व्यञ्जयन्ति व्यक्ता वा ?

४५४

पूर्ववर्णः स्फोटस्य संस्कारः किं वेगरूपः, वासनारूपः, स्थितस्था-

पकाख्यो वा विधीयते ?

४५४

संस्कारश्च स्फोटस्वरूपः तदर्थो वा ?

४५५

पूर्ववर्णः स्फोटसंस्कारः एकदेशेन क्रियते सर्वात्मना वा ? ...

४५५

स्फोटसंस्कारश्च स्फोटविषयसंवेदनोत्पादनम् आवरणापनयनं वा ?

४५५

विषयाः

पृ०

निदात्मव्यतिरेकेण अन्यस्य स्फोटस्याप्रतीतिः, पदवाक्यावरण- संयोपशमविशिष्टश्चिदात्मैव पदवाक्यस्फोटः	४५६
वायुभ्योऽपि न स्फोटाभिव्यक्तिः	४५६
एवञ्च शब्दस्फोटवद् गन्धादिस्फोटोऽप्यभ्युपगन्तव्यः	४५७
हस्तपादकरणमात्रिकाङ्गद्वारादिस्फोटोऽपि स्वीकार्यः	४५७
शब्दस्फोटवत् पद-वाक्यलक्षणविचारः	४५८-६०
परस्परपेक्षवर्णानां निरपेक्षः समुदायः पदम्	४५८
निराकाङ्क्षं हि प्रतिपदधर्मः वाक्येष्वप्यारोप्यते	४५८
परस्परपेक्षपदानां निरपेक्षः समुदायो वाक्यम्	४५८
प्रकरणादिगम्यपदान्तरसापेक्षस्यापि वाक्यत्वम्	४५८
'आख्यातशब्दः संघाता' इत्यादि द्वाविधमपि वाक्यञ्च चटते	४५९
आख्यातशब्दः पदान्तरनिरपेक्षः सापेक्षो वा वाक्यम् ?	४५९
सापेक्षत्वे क्वचिन्निरपेक्षो न वा ?	४५९
संघातोऽपि देशकृतः कालकृतो वा ?	४५९
कालकृतपक्षेऽसौ वर्गेभ्यः अभिन्नः भिन्नो वा ?	४५९
अमेदे सर्वथा कथञ्चिद्वा ?	४५९
बुद्धिरपि भाववाक्यं इव्यवाक्यं वा स्यात् ?	४६०
अनुसंहृतेः अनुभवरूपतया भाववाक्यत्वमिष्टमेव	४६०
प्राभाकराभिमत-अन्विताभिधानवादस्य निरासः	४६१-६३
यदि देशदत्तपदेनैव ह्यतरार्थान्वितदेशदत्तस्य प्रतीतिः तदा द्विती- यादिपदोच्चारणं व्यर्थम्	४६१
थावन्ति वा पदानि तावतां वाक्यत्वम्	४६१
गम्यमानस्यापि अभिधीयमानवत् पदार्थत्वात्	४६२
पदप्रयोगः पदार्थप्रतिपत्त्यर्थः वाक्यार्थप्रतिपत्त्यर्थो वा विधीयते ?	४६२
विशेष्यपदं विशेषणसामान्येनान्वितं विशेष्यमभिधत्ते, विशेषण- विशेषेण तदुभयेन वाऽन्वितम् ?	४६३
भाट्टाभिमत-अभिहितान्वयवादस्य निरासः	४६४
पदैरभिहिता अर्थाः शब्दान्तरादन्वीयन्ते बुद्ध्या वा ?	४६४

इति तृतीयः परिच्छेदः ।

सामान्यविशेषात्माऽर्थः प्रमाणस्य विषयः ४६६

अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात् उत्पादव्ययत्रौ व्यलक्षणपरिणामेना-
र्थक्रियोपपत्तेश्च ४६६

विषयाः	५०
तिर्यगूर्ध्वतामेदात् द्विविधं सामान्यम्	४६६
सदृशपरिणामस्य तिर्यक्सामान्यता	४६७
बौद्धाभिमतसामान्यस्य निरासः	४६७
एकेन्द्रियाध्यवसेयत्वात्तिव्यवस्थोरभेदे वातातपादावप्यभेदप्रसङ्गः	४६७
दूरदूर्ध्वतासामान्यमेव च प्रतिभासते न स्थाणुपुरुषविशेषौ ...	४६८
अदूरेऽपि सामान्यस्य विशदप्रतिभासो भवति	४६८
अनुगतप्रत्ययस्य प्रतिनियतस्य बहिःसाधारणनिमित्तव्यतिरेकेणा- नुपपत्तेः	४६८
अतत्कार्यकारणव्यावृत्तिरपि सदृशपरिणामभावे न कचिदेव निय- मयितुं शक्यते	४६९
अनुगतप्रत्ययस्य सामान्यमन्तरणैव भावे व्यावृत्तप्रत्ययोऽपि विशेष- व्यतिरेकेणैव स्यात्	४६९
नामैककार्यतासादृश्येन व्यक्तीनामेकत्वाध्यवसायः	४६९
नाम्यनुभवानामेकपरामर्शप्रत्ययहेतुत्वमुपैनेकत्वं तद्वैतत्वाच्च व्यक्ती- नामेकतेत्युपचरितोपचारः षट्ते	४६९
सामान्यं हि अनित्यासर्वगतस्वरूपं न तु सर्वगत- नित्यैकस्वभावम्	४७०
नित्यसर्वगतत्वे अर्थक्रियाऽयोगात्	४७०
स्वविषयज्ञानजनने केवलसामान्यस्य व्यापारः व्यक्तिहितस्य वा ?	४७०
व्यक्तिहितस्य चेत् ; प्रतिपक्षाखिलव्यक्तिहितस्य अप्रतिपक्षाखिल- व्यक्तिहितस्य वा ?	४७०
प्रथमपक्षे तस्य तामिरुपकारः क्रियते न वा ?	४७१
सामान्येन सहैकज्ञानजनने व्यक्तीनां किमालम्बनभावेन व्यापारोऽ- धिपतिरिव वा ?	४७१
सामान्यं सर्वसर्वगतं स्वव्यक्तिसर्वगतं वा ?	४७१
व्यत्ययन्तरालेऽनुपलम्भः किमव्यक्तत्वात् व्यवहितत्वात् दूरस्थितत्वात् अदृश्यत्वात् स्वाश्रयेन्द्रियसम्बन्धविरहात् आश्रयसमवेतरूपा- भावाद्वा ?	४७२
स्वव्यक्तिसर्वगतत्वे अनेकत्वप्रसङ्गः	४७२
एकत्र वर्तमानस्यान्यत्र दृष्टिः तद्देशे गमनात् पिण्डेन सहोत्पादात् तद्देशे सङ्क्रावादंशवत्तया वा स्यात् ?	४७३
पूर्वपिण्डपरित्यागेन तत्तत्र गच्छेत् अपरित्यागेन वा ?	४७३
सामान्यविशेषयोस्तादात्म्यवादिनो मादृश्य निरासः	४७३
व्यक्तिवत्सामान्यस्यापि असाधारणत्वमुत्पादादियोगित्वाच्च स्यात् ...	४७३

विषयाः	५०
अनुगतप्रत्ययस्य सदृशपरिणामहेतुकतया व्यवस्थितत्वात् ...	४७४
सामान्यस्य निलैकरूपस्य सर्वात्मना बहुषु परिसमाप्तत्वे सर्वव्यक्ती- नामेकत्वं सामान्यस्य बाधनेकत्वं स्यात्	४७५
उद्योतकरोक्तस्य विशेषकत्वादिति हेतोः विरासः	४७६
किं यत्रानुगतज्ञानं तत्र सामान्यं यत्र वा सामान्यं तत्रानुगत- ज्ञानमिति ?	४७६
न चाभावे सत्ताद्वयं महासामान्यम्	४७७
पाचकादिषु सामान्याभावेऽपि अनुगतज्ञानोपलम्भात्	४७७
पाचके निमित्तान्तरश्च किं कर्म कर्मसामान्यं शक्तिर्व्यक्तिर्वा स्यात् ?	४७७
कर्मापि नित्यमनित्यं वा ?	४७७
कर्मसामान्यं हि कर्माधितं कर्माभ्याधितं वा ?	४७८
शक्तिश्च पाचकादन्या अनन्या वा ?	४७८
पाचकत्वञ्च द्रव्योत्पत्तिकाले व्यक्तमव्यक्तं वा ?	४७८
पाचकत्वस्य पाकक्रियातः प्राक् द्रव्यसमवायधर्मः अस्ति न वा ?	४७९
अभिव्यक्तिश्च द्रव्येण क्रियया समाभ्यां वा ?	४७९
किं गोष्पेव गोत्वं गोषु गोलनेव गोषु गोत्वं वर्तत एव ? ...	४७९
विभिन्नं हि प्रतिव्यक्ति सदृशपरिणामलक्षणं सामान्यम्	४७९
द्विविधो हि वस्तुधर्मः परापेक्षः, परानपेक्षश्च	४८०
सादृश्येऽपि सामान्ये शबलं दृष्ट्वा धनले स एवायं गौरिति प्रत्ययः एकत्रोपचारात् षट्ते	४८१
विभिन्नसामान्यवादिनः तेन समानोऽयमिति प्रत्ययो न स्यात् ...	४८१
समानपरिणामे नान्यः समानपरिणामः केनाऽनवस्था	४८१
नित्यैकब्राह्मणत्वजातिनिरासः	४८२-८७
(नैयायिकादीनां पूर्वपक्षः) ब्राह्मणोऽयं ब्राह्मणोऽयमिति प्रत्यक्षत एवायं प्रतिपत्तिः	४८२
पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानपूर्वकोपदेशसहाया व्यक्तिव्यास्य व्यञ्जिका ...	४८२
पदत्वात् हेतोः व्यक्तिव्यतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयसम्बद्धं ब्राह्मण- पदम्	४८२
वर्णविशेषयज्ञोपवीतादिव्यतिरिक्तनिमित्तनिबन्धनं ब्राह्मण इति ज्ञानं तन्निमित्तमुद्धिद्विलक्षणत्वात्	४८२
'ब्राह्मणेन यष्टव्यम्' इत्याद्यागमाच्चासौ प्रतीयते	४८२
(उत्तरपक्षः) प्रत्यक्षादि निर्विकल्पकात्, समिक्त्वाद्वा तत्प्रतीतिः ?	४८२
पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानञ्च प्रमाणमप्रमाणं वा ?	४८३
ब्राह्मणशब्दोपाधिकस्य किं पित्रोरभिहितत्वं निमित्तं ब्रह्मप्रभवत्वं वा ?	४८३,

विषयाः

पृ०

क्रियाविलोपाद् सूत्राभादेश आतिलोपाभ्युपगमे तद्विलोपादिनिष-	
न्वनैव ब्राह्मण्यजातिः स्वीकरणीया	४८३
ब्राह्म्यासन्निवृत्तिमिश्रादीनां ब्राह्मणपित्रजन्मत्वात् कथं ब्राह्मण्यं स्यात् ?	४८४
ब्राह्मसूत्राज्जातो ब्राह्मणः इत्यपि न युक्तम्	४८४
ब्राह्मणो ब्राह्मण्यमस्ति वा न वा ?	४८४
अस्ति चेत् किं सर्वत्र युक्तप्रदेश एव वा ?	४८४
ब्राह्मण एव तन्मुखाज्जायते तन्मुखादेवासी जायेत ?	४८४
ब्राह्मण्यजातिनिश्चये हि आक्षरविशेषो निमित्तमभ्ययनादिकं वा ?	४८५
पदत्वादिति हेतुश्च कालाख्यपदिष्टः	४८५
अप्रसिद्धविशेषणश्च पक्षः व्यक्तिव्यतिरिक्तनिमित्तस्य अस्तिदेः ...	४८५
पदत्वादिति हेतुः आकाशादिपदेनानैकान्तिकः	४८५
मगरादौ च व्यक्तिव्यतिरिक्तनिमित्ताभावेऽपि अनुगतज्ञानोप-	
लब्धेः	४८५
ततः क्रियाविशेषयज्ञोपवीतादिष्विहोपलक्षिते व्यक्तिविशेषे एव	
तपोदानादिव्यवहारः, तन्निमित्तैव च वर्णाभिमन्यवस्था ...	४८६
जातेः पवित्रताहेतुत्वे वेद्यापाटकादिप्रविष्टानां ब्राह्मणीनां विन्दा	
न स्यात्	४८६
क्रियाप्रकाराद् जातिविलोपे क्रियात् एव ब्राह्मण्यम् सिद्धम् ...	४८६
ब्राह्मणत्वं जीवस्य शरीरस्य उभयस्य वा संस्कारस्य वा वेदाध्यय-	
नस्य वा ?	४८७
संस्काराद् प्राग्ब्राह्मण्यबालस्य ब्राह्मणत्वमस्ति न वा ?	४८७
ऊर्ध्ववैतास्तामान्यस्य स्वरूपम्	४८८
क्षपमङ्गवाद्ः	४८८-५०४
प्रत्यक्षेणैव अर्थानामन्वयिरूपस्य प्रतीतिः	४८८
तुल्यैः क्षणिकत्वेऽपि प्रतिपन्नुरक्षणिकत्वाद् कालजगज्जुयायिरूपायाः	
स्थितेः प्रतिपत्तिः	४८८
न च इत्यग्रहणे अतीताद्यनस्थाना ततोऽभिन्नत्वाद्ग्रहणप्रसंगः,	
अभेदस्य ग्रहणं प्रत्यनङ्गत्वात्	४८९
आत्मनो नित्यत्वाभावे मध्यक्षणस्य पूर्वोत्तरक्षणयोरभावरूपस्य	
क्षणिकत्वस्य प्रतीतिरपि न स्यात्	४९०
स्थास्यता हि पूर्वोत्तरयोः मध्ये मध्यस्य वा पूर्वोत्तरयोः सङ्गावः,	
अतः स्य तत्क्षणप्रवृत्तिविवेकप्रतीत्यते	४९०
न हि त्रिकालेन नित्यता क्रियते अपि तु वस्तुत्वमात्रेण च ...	४९०
अतीतादिसमयस्य च स्वत एव अतीतादिरूपता तत्सम्बन्धाच्च	
अर्थानामतीतादिसंरूपत्वम्	४९१

विषयाः

अनुवृत्ताकारे प्रतिपक्षे अप्रतिपक्षे वा विशेषप्रतिभासः तद्वाचकः ?	४०
न हि प्रत्यक्षेण क्षणक्षयावभासः	४११
नापि सदृशापरापरोत्पत्तिविप्रलम्भादेकलभानम्	४१२
क्षणक्षयावगमे स्वभावहेतोर्व्यापारः कार्यहेतोर्वा ?	४१३
विनाशं प्रत्यन्यानपेक्षत्वादिति हेतुश्चासिद्धः; मुद्रारायपेक्षत्वात् घट- नाशस्य	४१३
अन्यानपेक्षलभानं हेतुः तत्स्वभावत्वे सति अन्यानपेक्षत्वं वा ? ...	४१३
अहेतुकोपि विनाशः मुद्रादिव्यापारानन्तरमुपलभ्यमानः तदैवा- भ्युपगन्तव्यो नोदयानन्तरम्	४१३
उदयानन्तरत्वं सितं भावानामन्येन च्वत्तस्यासंभवादभिधीयते अभाणान्तराद्वा ?	४१३
भावहेतोरेव तत्प्रच्युतिहेतुत्वे किमसौ भावजननाट्प्राक् तत्प्रच्युतिं जनयति उत्तरकालं वा समकालं वा ?	४१४
न च मुद्रारायीनां कपालोत्पादे व्यापारः किन्तु विनाश एव ...	४१४
वडादेः मुद्रादिकमपेक्ष्य असमर्थ-तर-तमक्षणोत्पादने मुद्रादिना घटस्य कश्चित् सामर्थ्यविघातो निधीयते न वा ?	४१५
विनाशकहेतुव्यापारानन्तरं शत्रुसिन्धुसंसे सुखदुःखालुभवनादति- रिक्तो विनाशः सहेतुक एव स्वीकार्यः	४१५
अभावस्यार्थान्तरत्वाभ्युपगमे किं घट एव प्रध्वंसः, कपालानि, पदार्थान्तरं वा ?	४१६
कपालकाले 'सः न' इति चान्दयोः मिथार्थलभमिथार्थत्वं वा ? ...	४१६
अन्यानपेक्षतया च स्थितिरपि स्वभावत एव किञ्च स्यात् ? ...	४१६
अहेतुकविनाशाभ्युपगमे उत्पादस्याप्यहेतुकत्वं किञ्च स्यात् ? ...	४१६
कार्यकारणयो उत्पादविनाशौ न सहेतुकाहेतुकौ कारणानन्तरं सह- भावाद्रूपादिवत्	४१७
'सत्त्वात्' हेतोरेपि न क्षणिकलसिद्धिः	४१७
नापि विद्युदादेः निरन्वया सन्तानोच्छिष्टिः	४१७
विपक्षे नित्ये सत्त्वस्य बाधकं प्रत्यक्षमनुमानं वा ?	४१८
क्रमयोगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधादपि न नित्यात् सत्त्वव्यावृत्तिः सत्त्वनित्यत्वयोर्हि सहानवस्थानलक्षणो विरोधः स्यात् परस्परपदि- हारस्थितिरूपो वा ?	४१८
एकान्तनित्यवदनित्येऽपि क्रमाक्रमेणार्थक्रियाविरोधात् सत्त्वा- भावः स्यात्	४१९
क्षणिकं वस्तु विनष्टं सत्कार्यमुत्पादयति अविनष्टमुपमयरूपमनुभव- रूपं वा ?	४१९

विषयाः	५०
निरन्वयविनाशो उपादान-सहकारिव्यवस्थापायः	४९९
उपादानस्य हि स्वरूपं किं स्वसन्ततिनिवृत्तौ कार्यजनकत्वम् अनेकस्यानुत्पद्यमाने कार्ये स्वगतविशेषाधायकत्वं समनन्तर-	
प्रत्ययत्वं नियमवदन्वयव्यतिरेकालुविधानं वा ?	५००
प्रथमपक्षे कथमित्सन्ताननिवृत्तिः सर्वथा वा ?	५००
द्वितीये स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वं सकलविशेषाधायकत्वं वा ?	५००
कार्ये कारणस्य सर्वात्मना समलभेकदेशेन वा ?	५०१
अनन्तरत्वस्य देशकृतं कालकृतं वा ?	५०१
निरन्वयविनाशोऽन्वयव्यतिरेकालुविधानमपि न घटते	५०२
अर्थक्रियात्मकत्वं सत्त्वमित्यत्र लक्षणशब्दः कारणार्थः स्वरूपार्थः ज्ञापकार्यो वा स्यात् ?	५०२
सत्त्वात् हि लक्षणस्थायितारूपं क्षणिकत्वं साध्येत क्षणादूर्ध्वसमावो वा ?	५०४
कृतकलादपि न क्षणिकत्वसिद्धिः	५०४
सम्बन्धसद्भाववादाः	५०४-५२०
(बौद्धानां पूर्वपक्षः) सम्बन्धोऽर्थानां पारतन्त्र्यलक्षणः रूपश्लेष-	
समावो वा स्यात्	५०४
आद्ये किमसौ निष्पन्नयोरनिष्पन्नयोर्वा ?	५०४
नैरन्तर्यस्य अन्तरालाभावरूपतया सम्बन्धत्वविरोधात्	५०५
रूपश्लेषः सर्वात्मना एकदेशेन वा स्यात् ?	५०५
एकदेशेन चेत्, ते देशास्त्वस्य आत्मभूताः परभूता वा ?	५०५
परापेक्षैव सम्बन्धः, यथापेक्षते भावः स्वयं सत् असन्वा ?	५०५
सम्बन्धः सम्बन्धिभ्यां भिन्नोऽभिन्नो वा ?	५०५
एकेन सम्बन्धेन सह तयोः सम्बन्धिनोः कः सम्बन्धः ?	५०५
कार्यकारणभावोऽपि कार्यकारणयोरसहभावतत्त्वभिन्नो न संभवति नापि कार्ये कारणे वा क्रमेणासौ कार्यकारणभावः वर्तते	५०६
नापि एकार्थाभिसम्बन्धात् कार्यकारणता	५०७
अन्वयव्यतिरेकादेव कार्यकारणता; ताभ्यां तत्प्रसाधनं तु संकेत-	
करणाय	५०८
कार्यकारणभूतोऽर्थो भिन्नः अभिन्नो वा ?	५०८
संयोग्यादीनामपि परस्परपक्षकार्यकारणभावभावस्य संयोगादि-	
सम्बन्धाः घटन्ते	५०९
कार्यकारणभावस्य प्रतिपक्षस्य अप्रतिपक्षस्य वा सत्त्वं सिध्येत् ?	५११
आद्ये प्रत्यक्षेण प्रत्यक्षानुपलम्भाभ्याम् अनुमानेन वा तत्प्रतिपत्तिः ?	५११

विषयाः

४०

प्रत्यक्षेण चेत्; अमिस्वरूपग्राहिणा, धूमस्वरूपग्राहिणा, सम्य- स्वरूपग्राहिणा वा ?	५११
नापि स्मरणापेक्षमिन्द्रियं कार्यकारणभावग्राहकम्	५११
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कार्यकारणभावनित्यये वक्तृत्वस्य असर्वज्ञत्वेन व्याप्तिः स्यात्	५१२
कार्यकारणभावः अखिलधूमाग्निनिष्ठतया ज्ञातुं न शक्यते ...	५१३
कारणत्वं हि कार्योत्पादनशक्तिविशिष्टत्वं न च शक्तिः प्रत्यक्षानुसंज्ञाया (उत्तरपक्षः) सम्बन्धस्य तन्नुपदादौ प्रत्यक्षत एव प्रतीतेः ...	५१४
रज्जुबन्धदण्डादीनामाकर्षणाद्यन्यथानुपपत्तेरव्याप्तिः सम्बन्धः ...	५१४
निष्ठिरूपतापरित्यागेन संश्लिष्टरूपतया परिणतिः हि सम्बन्धः ...	५१४
स च सम्बन्धः क्वचिदन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशतः, क्वचिच्च प्रदेश- संश्लिष्टताभावेन	५१५
परमाणुनामंशवत्त्वे अंशशब्दः स्वभावार्थः अवयवार्थो वा स्यात् ?	५१५
कथमिच्छिष्यपक्षयोश्च सम्बन्धोऽभ्युपगम्यते	५१५
पारतन्त्र्यभावे सम्बन्धस्वाभावे पारतन्त्र्येण व्याप्तः सम्बन्धः क्वचित् प्रसिद्धो न वा ?	५१५
अवयवविवेचनस्वरूपः कथमिदं कलापतिरूपो वा रूपक्षेपोऽभ्यु- पगम्यते	५१६
कारणं हि किञ्चित्सहभावि किञ्चित्तु क्रमभावि	५१६
कार्यकारणभावनित्यस्य क्षयोपशमविशेषरूप-तद्भावभावित्वाभ्या- सात्मकबाह्यान्तःकारणप्रभवत्वात्	५१७
अकार्यकारणभावेऽपि च सर्वे विकल्पा समानाः	५१९
विशेषो द्विधा	५२०
पर्यायस्य स्वरूपम्	५२०
अन्वयव्यात्मनः सिद्धिः	५२०-२४
चित्रसंवेदनवदनेकपर्यायव्यापिन आत्मनः स्वयमनुभवत्वात् ...	५२०
सुखादीनामत्यन्तमेवे प्रागहं सुख्यासं सम्प्रति दुःखी वर्तते इत्यनु- सन्धानप्रत्ययो न स्यात्	५२१
न हि अनुसन्धानवासानातः प्रत्यभिज्ञानम्	५२१
नापि सुखादीनामेकसन्ततिपतितत्वेन प्रत्यभिज्ञानहेतुता ...	५२१
आत्मनोऽनभ्युपगमे कृतानाशाऽकृताभ्यागमप्रसङ्गः	५२१
अहमेव ज्ञातवानहमेव वेद्मि इत्येकप्रमातृविषयकप्रत्यभिज्ञानावात्म- सिद्धिः	५२१
‘अहमेव ज्ञातवान्’ इति प्रत्यभिज्ञाने प्रमाता विषयो भवन् आत्मा वा भवेज्ज्ञानं वा ?	५२२

विषयानुक्रमः

५७

विषयाः	पृ०
ज्ञानयेत् स ज्ञानक्षणः अतीतो वर्तमानः उभौ सन्तानो वा ...	५२२
आत्मा हि स्वयमेव सुखादिरूपतया परिणमते न तु पृथक् सिद्धेः	
सुखादिभिस्तस्य सम्बन्धः	५२३
नीलाद्यनेकाकारव्यापिभिन्नज्ञानवत् स्वपरग्रहणशक्तिह्यात्मकैकविज्ञानवद्वा स्वयमात्मनः सुखादिपरिणामः.... ..	५२३
व्यतिरेकस्य लक्षणम्	५२४
पदपदार्थवादः	५२४
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) अर्थस्य सामान्यविशेषात्मकत्वमयुक्तम् ;	
प्रतिभासमेवेन सामान्यविशेषयोरत्यन्तमेवात्	५२४
भिन्नप्रमाणप्राप्त्याश्च सामान्यविशेषावत्यन्तभिन्नौ	५२५
विरुद्धधर्माभ्यासाश्च अवयव-अवयविनावपि अत्यन्तभिन्नौ	५२५
विभिन्नकर्तृकत्वाच्च अवयवावयविनोरत्यन्तमेदः	५२५
पूर्वोत्तरकारुणावित्वात् विभिन्नशक्तिकत्वाच्च तयोर्मेदः	५२५
तन्तुपटयोस्तादात्म्ये पटस्तन्तव इति वचनमेदः, पटस्य भावः	
पटत्वमिति पटो तद्वितोत्पत्तिश्च न स्यात्	५२५
तादात्म्यमित्यत्र च विग्रहस्य अनुपपत्तिः	५२५
तन्तुपटादीनां मेदामेदात्मकत्वे च संशयविरोधवैयधिकरण्योभय- दोषसङ्गद्भव्यतिकरानवस्थाऽप्रतिपत्त्यभावाख्याः दोषाः प्रसज्यन्ते	५२६
अतः परस्परभिन्नाः इव्यगुणादयः पद पदार्थाः	५२६
नव इव्याणि	५२६
चतुर्विंशतिर्गुणाः	५२७
पञ्च कर्माणि	५२७
सामान्यं द्विविधं	५२७
(उत्तरपक्षः) वास्तवानेकधर्मात्मकोऽर्थः विभिन्नार्थक्रियाकारित्वात्	५२८
प्रत्यक्षातुमानाभ्यां विभिन्नप्रमाणप्राप्त्येऽपि नात्मनो मेदः	५२८
अवयवावयव्यादीनां विभिन्नप्रमाणप्राप्त्याल्लक्ष्यसिद्धम्	५२९
दृष्टान्तश्च साम्यसाधनविकलो चटादीनामपि सद्रूपेणामेदात्	५२९
विरुद्धधर्माभ्यासोऽपि स्वसाध्येतरापेक्षया गमकत्वागमकत्वधर्मोपेक्षेन घूमादिना व्यभिचारी	५३०
अप्राप्तपटावस्थेभ्यः तन्तुभ्यः पटस्य मेदः साम्येत् पटावस्थामा- विभ्यो वा ?	५३०
'तन्तावः, पटः' इति संज्ञामेदोऽवस्थामेदनिबन्धनः	५३०
'धर्माणां पदार्थानामस्तित्वम्' इत्यत्र मेदामावेऽपि पटो अवलोक्य अस्तित्वादेः पदपदार्थैः ग्रह संयोगः समवायो वा ?	५३१

विषयाः	४०
'अस्तित्वम्' इत्यत्राऽपरास्त्रित्वाभावात्कथं षष्ठी भावप्रत्ययो वा ?	५३१
'स्वस्य भावः स्वत्वम्' इत्यत्रामेदेऽपि तद्धितोत्पत्तिः भवत्येव ...	५३२
तस्य वस्तुनः आत्मानो द्रव्यपर्यायी सत्त्वासत्त्वादिधर्मौ वा तदा- त्मानौ तयोर्भावस्यादात्म्यम्	५३२
ते तन्तव आत्मा यथेति विग्रहे पटस्य किमनेकावयवात्मकत्वं स्यात् प्रवितन्तु पटत्वप्रसङ्गो वा स्यात् ?	५३२
मेदामेदप्रतीतो हि न संशयः	५३२
कथमिदं पितयोः सत्त्वासत्त्वयोः विरोधोऽपि नास्ति	५३२
न च स्वरूपेण भाव एव पररूपेणाभावः; तदपेक्षणीयनिमित्तमेदात् एकलक्षित्वादिसंख्यावत्	५३३
विरोधश्चात्र सहानवस्थालक्षणः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणः बन्ध- वातकभावो वा ?	५३३
विरोधो हि धर्मयोः धर्मधर्मिणोर्वा स्यात् ?	५३३
विरोधः स्रवेया कथमिदं ?	५३४
भावेभ्यो भिन्नोऽभिन्नो वा विरोधः ?	५३४
विरोधस्य द्रव्यादौ सम्बन्धे सति विशेषणत्वम् असम्बन्धे वा ?	५३५
सम्बन्धश्चेत्; संयोगेन समवायेन विशेषणभावेन वा ?	५३५
नापि वैयधिकरण्यदोषः	५३५
नाप्युभयदोषः सङ्करव्यतिकरौ अनवस्थाऽभावौ वा	५३६
नित्यैकरूपे ह्यात्मनि कर्तृत्वभोक्तृत्वजीवनहिंसकत्वादिव्यपदेशा- भावः तेषामनेकान्ते एव संभवात्	५३६
सर्वस्य कृण्वलेतरावस्थापेक्षया व्यावृत्त्यनुगमात्मकत्ववत् आत्म- नोऽपि उभयस्वभावता	५३७
परमाणुरूपनित्यद्रव्यविचारः	५३७-४०
एकान्तनित्ये परमाणौ क्रमयौगपथाभ्यामर्थक्रियाविरोधात् ...	५३७
अथानां नित्यत्वेन संयोगादीनामपेक्षाऽनुपपत्तेः	५३८
संयोग एवातिशयश्चेत्; स किं नित्यः अनित्यो वा ?	५३८
अनित्यश्चेत्तदुत्पत्तौ कोऽस्तिशयः संयोगः क्रिया वा ?	५३८
संयोगो हि परमाण्वाद्याधितः तदन्याधितः अनाधितो वा ?	५३८
प्रथमपक्षे तदुत्पत्तौ आश्रयः उत्पद्यते न वा ?	५३८
संयोगः सर्वात्मना एकदेशेन वा ?	५३९
परमाणूनां स्फुट्यावयवविनिर्वाहकारणकत्वेन अकारणवत्त्वासिद्धेः	५३९
यौगाभिमत-अवयविद्रव्यस्य निरासः	५४०-५४७
तन्त्रावयववेभ्यो भिन्नस्यावयविनः अनुपलम्भादसत्त्वम् ...	५४०

विषयः

५०

अवयवानवयविनोः शास्त्रीयदेशापेक्षया समानदेशत्वं लौकिकदेशा-

पेक्षया वा ?

५४०

कतिपयावयवप्रतिभासे अवयविनः प्रतिभासो निरित्त्ववयवप्रति-

भासे वा ?

५४०

नापि भूयोऽवयवग्रहणेऽवयविनः प्रतिभासः

५४०

अर्वागभागभाव्यवयवग्राहिणा प्रत्यक्षेण परमागस्य तेन वाऽर्वागभा-

गस्याग्रहणात् न पूर्वापरभागव्यापी अवयवी गृहीतुं शक्यते

५४०

नापि स्मरणेन प्रत्यभिज्ञानेन वा पूर्वापरवयवभागव्याप्यवयवी

गृह्यते

५४०-४१

न च निरंशावयविनोऽनेकधावयवेषु वृत्तिः

५४२

अवयविनोऽवयवेषु वृत्तिः सर्वात्मना एकदेशेन वा ?

५४२

एकदेशेन चेत् किमेकावयवकोटीकृतेन स्वभावेनैव अन्यत्र वृत्तिः

स्वभावान्तरेण वा ?

५४२

यद्यवयवी निरंशस्तदा एकदेशावारणे रागे च सर्वत्रावारणं रागश्च

स्यात्

५४३

संयोगस्याव्याप्यवृत्तित्वं किं सर्वद्रव्याव्यापकत्वम् एकदेशवृत्तित्वं वा ?

अवयविनिरासे च प्रमत्तसाधनमेव अभ्युपगम्यते

५४३

५४४

कथं विद्वदवयवरूपस्यावयविनः सिद्धिः

५४५

एकस्य रूपादिमतोऽवयविनोऽसिद्धिः किं विरुद्धधर्माध्यसेनैकत्र

एकत्वानेकत्वयोः तादात्म्यविरोधात् तद्ग्रहणोपायासंभवाद्वा ?

५४६

इदं स्वभावादिब्यपदेश्यं रूपम् क्रमेण प्रत्येकम्, अनेकानंशपर-

माणमवयवमात्रं वा ?

५४६

जातिभेदेन वृत्तिव्यापीनान्योन्यं भेदस्त्वनुक्तः जलादीनां परस्पर-

मुपादानोपादेयभावदर्शनात्

५४७

आकाशाद्रव्यविचारः

५४८

(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) शब्दलिङ्गादाकाशसिद्धिः

५४८

शब्दाः क्वचिदाधिताः गुणत्वात्

५४८

शब्दो गुणः प्रतिपिध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वे सति सत्तासम्बन्धित्वात्

शब्दो द्रव्यं न भवत्येकद्रव्यत्वात्

५४८

५४८

कर्मापि न भवत्यसौ संयोगविभागाकारणत्वाद्रूपादिवदिति

५४८

यद्येवामाश्रयः तत्पारिशेष्यादाकाशम्

५४९

शब्दलिङ्गाविशेषोपाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकम्

५४९

विभुच सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वात्

५४९

(उत्तरपक्षः) शब्दानां सामान्येनाश्रितत्वं साध्यते निलैक्यपूर्त-

विभुद्रव्याश्रितत्वं वा ?

५५०

५५०

विषयाः	४०
द्रव्यं शब्दः स्पर्शाल्पत्वमहत्त्वपरिमाणसंख्यासंयोगगुणाश्रयत्वात्	५५०
स्वसम्बन्धार्थाभिधातहेतुत्वात् स्पर्शवान् शब्दः	५५०
अल्पत्वमहत्त्वप्रतीतिविषयत्वात् अल्पत्वमहत्त्वपरिभाषाश्रयः शब्दः	५५०
न मन्दतीव्रताविबन्धनोऽयम् अल्पत्वमहत्त्वप्रत्ययः	५५२
एकः शब्द इत्यादिप्रतीत्या संख्याश्रयः शब्दः	५५२
सपचारेऽपि कारणगता विषयगता वा संख्या शब्दे सपचर्येत ...	५५२
वाप्यादिनाऽभिहृत्यमानत्वात् संयोगाश्रयः शब्दः	५५२
क्रियानत्वाच्च द्रव्यं शब्दः	५५३
निष्क्रियत्वे शब्दस्य श्रोत्रेण ग्रहणं न स्यात्	५५३
सम्बन्धकल्पने श्रोत्रं वा शब्दोत्पत्तिदेशं गच्छेत् शब्दो वा श्रोत्र- प्रदेशमागच्छेत् ?	५५३
वीचीतरङ्गन्यायेन हि अपरापरशब्दोत्पत्तिर्न युक्ता प्रत्यभिज्ञाना- च्छब्दस्यैकत्वनिश्चयात्	५५३
अस्मदादिप्रत्यक्षत्वे सति विभुद्रव्यविशेषगुणत्वादेतोर्न शब्दक्षणि- कत्वसिद्धिः	५५५
वीचीतरङ्गन्यायेन प्रथमतो वक्तव्यापारादेकः शब्दः प्रादुर्भवति अनेको वा ?	५५८
आद्यःशब्दोऽनेकोऽस्तु, तद्याप्यसौ स्वदेशे शब्दान्तराण्यारभते देशान्तरे वा ?	५५८
देशान्तरेऽपि; तद्देशे गत्वा स्वदेशस्य एव वा ?	५५९
आकाशगुणत्वे शब्दस्य अस्मदादिप्रत्यक्षता न स्यात्	५५९
सत्तासम्बन्धित्वञ्च स्वरूपभूतया सत्तया, अर्थान्तरभूतया वा ? ...	५५९
अनेकद्रव्यः शब्दः अस्मादादिप्रत्यक्षत्वे सत्यपि स्पर्शवत्त्वात् ...	५६०
नाऽकारणगुणपूर्वकः शब्दः अस्मादादिबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वे सति गुण- त्वात् पटरूपादिवत्	५६१
अथावद्रव्यभावित्वञ्च शब्दस्य विरुद्धम्	५६१
आकाशस्य समवायिकारणत्वे शब्दे नित्यत्वं विभुत्वञ्च स्यात् ...	५६२
कथं वा शब्दस्य विनाशः ? नाशयविनाशाच्चापि विरोधिगुण- प्रादुर्भावात्	५६२
पौद्गलिकत्वेऽपि शब्दस्य अनुद्भूतरूपादिमत्त्वाच्च चक्षुरादिभि- रुपलम्भः	५६२
पौद्गलिकः शब्दः अस्मादादिप्रत्यक्षत्वेऽचेतनत्वे च सति क्रियाव- त्त्वात् नाणादिवत्	५६३
आकाशस्य तु युगपद्विखिलद्रव्यावगाहकार्यान्यथानुपपत्त्या सिद्धिः	५६३

विषयाः	४०
कालद्रव्यवादः	५६४-६८
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) परापरादिप्रत्ययलिङ्गात् कालद्रव्यस्य सिद्धिः	५६४
परापरव्यतिकरादपि कालानुमानम्	५६४
न च परापरादिप्रत्ययस्य आदित्यकिवादयो निमित्तम्	५६४
(उत्तरपक्षः) काल एकद्रव्यमनेकद्रव्यं वा ?	५६४
न च व्यवहारकालो मुख्यकालद्रव्यमन्तरेण घटते	५६४
प्रलोकानुदेशं विभिन्नो व्यवहारकालः कुरुक्षेत्रलङ्कादिषु दिवसादि- भेदान्यथानुपपत्तेः	५६५
निरवयवैकद्रव्यत्वे कालस्य अतीतादिव्यवहारः किमतीताद्यर्थक्रिया- सम्बन्धात् स्वतो वा ?	५६५
कालैकत्वे च योग्यपद्यादिव्यवहाराभावः	५६५
नाप्युपाधिभेदात् कालभेदः	५६६
न हि परापरादिप्रत्ययाः निर्निमित्ताः	५६७
नाप्यादित्यादिक्रिया परापरादिप्रत्ययनिमित्तम्	५६७
नापि कर्तृकर्मणी एव योग्यपद्यादिप्रत्ययनिमित्तम्	५६७
लोकव्यवहाराय कालद्रव्यस्य सिद्धिः	५६८
दिग्द्रव्यवादः	५६८-७०
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) अत इदं पूर्वणेत्यादिप्रत्ययेभ्यः दिग्द्रव्य- सिद्धिः	५६८
दिग्द्रव्यलैक्येऽपि सवितुर्मेरुप्रदक्षिणमावर्तमानस्य लोकपालयुद्धी- तदिकप्रदेशैः संयोगाद् प्राच्यादिव्यवहारो घटते	५६८
(उत्तरपक्षः) उक्तप्रत्ययानामाकाशहेतुकत्वेन आकाशादिशोऽर्था- न्तरालादिभेदः	५६९
सवितुर्मेरुं प्रदक्षिणमावर्तमानसेत्यादिन्यायेन आकाशे एव प्राच्या- दिव्यवहारः कर्तव्यः	५६९
दिग्द्रव्यवत् देशद्रव्यमपि पृथक् कल्पनीयं स्यात्	५६९
आत्मद्रव्यविचारः	५७०-५८६
प्रलक्षणे हि आत्मा स्वदेहे एवानुभूयते	५७०
नात्मा परममहापरिमाणः द्रव्यान्तरासाधारणसामान्यवत्त्वे सति अनेकलात्	५७०
नात्मा व्यापकः दिक्काकाशान्त्यल्ले सति द्रव्यलात् घटवत्	५७०
नात्मा व्यापकः क्रियावत्त्वात्	५७०
आत्मा अणुपरममहापरिमाणानधिकरणः चेतनलात्	५७१
अणुपरिमाणानधिकरणसमिलस्य किं नवमं पर्युदासः प्रसज्यो वा ?	५७१

विषयाः	५७०
असंख्यपक्षे असौ तुच्छाभावः साध्यस्य स्वभावः कार्यं वा ? ...	५७१
नित्यद्रव्यत्वात्मा कथञ्चित् सर्वथा वा ?	५७२
देवदत्ताङ्गनाम्नादिकार्यस्य कारणत्वेनाभिमतता देवदत्तात्मगुणाः ज्ञानदर्शनादयो धर्माधर्मौ वा ?	५७३
धर्माधर्मयोरुत्तमगुणलमेव नास्ति	५७४
न धर्माधर्मौ आत्मगुणौ अचेतनत्वात्	५७५
आसादिवदिति दृष्टान्ते च आत्मनः को गुणः धर्मादिः प्रयत्नो वा ?	५७६
एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वादितोर्नादृष्टस्य स्वाश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे क्रियाजनकत्वसिद्धिः	५७७
अदृष्टस्य एकद्रव्यत्वं हि एकस्मिन् द्रव्ये संयुक्तत्वात् समवायेन वर्तनात् अन्यतो वा स्यात् ?	५७८
द्वीपान्तरवर्तिमण्यादिद्रव्यक्रियाहेत्वदृष्टं किं देवदत्तशरीरसंयुक्तात्म- प्रदेशे वर्तमानं सत् क्रियाकारणम् उत द्वीपान्तरवर्तिद्रव्य- संयुक्तात्मप्रदेशो, किं वा सर्वत्र ?	५७९
तथाऽदृष्टं स्वयमुपसर्पत् अन्येषां मण्यादीनां क्रियाहेतुः, उत द्वीपा- न्तरवर्तिद्रव्यसंयुक्तात्मप्रदेशस्थमेव ?	५८०
प्रयत्ने स्वयमेवादृष्टं तं प्रत्युपसर्पति अदृष्टान्तराद्वा ?	५८१
यथा प्रयत्नस्य वैविध्यं तथाऽदृष्टस्याप्यस्तु	५८२
सर्वत्र चादृष्टस्य कृतौ सर्वद्रव्यक्रियाहेतुत्वं स्यात्	५८३
“पश्चादयः अजानादिसत्त्वमेणा समाकृष्टाः” इत्यपि वक्तुं शक्यत्वात्	५८४
“देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः” इत्यत्र किं शरीरं देवदत्तशब्दाध्य- मात्मा तत्संयोगो वा आत्मसंयोगविशिष्टं शरीरं शरीरसंयोग- विशिष्ट आत्मा वा शरीरसंयुक्त आत्मप्रदेशो वा ?	५८५
आत्मप्रदेशाश्च काल्पनिकाः पारमार्थिका वा ?	५८६
पारमार्थिकाश्चेदभिन्नाः भिन्ना वा ?	५८७
स्वशरीर एव सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वं निवक्षितम् उत स्वशरीरवत् परशरीरे अन्यत्र च	५८८
मनुष्यजन्मवत् जन्मान्तरेऽप्युपलभ्यमानगुणत्वं किं क्रमेण युगपद्वा ?	५८९
सक्रियत्वे आत्मनः भूर्तिमत्त्वं स्यात् इत्यत्र कीदृक् मूर्तत्वं निव- क्षितं किं रूपादिमत्त्वम् असर्वगतद्रव्यपरिमाणात्मकत्वं वा ?	५९०
आत्मनः अनित्यत्वं च सर्वथा कथञ्चिद्वा आपायते ?	५९१
आत्मनो निष्क्रियत्वे संसारभावः ?	५९२
संसारो हि शरीरस्य भनसः आत्मनो वा स्यात् ?	५९३

विषयाः

५०

अचेतनं च मनः कथमिष्टे स्वर्गादौ प्रवर्तत—किं सामावतः ईश्वरात्

तदात्मनः अदृष्टाद्वा ? ५८०

आत्मना प्रेरणे अज्ञातं मनस्वेन प्रेर्येत ज्ञातं वा ? ५८०

आकाशस्य च को गुणः सर्वत्रोपलभ्यते शब्दो महत्त्वं वा ? ५८१

अमूर्तत्वं च मूर्तत्वाभावः, तत्र किं रूपादिमत्त्वं मूर्तत्वम् असर्व-
गतद्रव्यपरिमाणात्मकं वा ? ५८२

अमूर्तत्वादित्यत्र किं त्वर्थः पर्युदासः प्रसज्यो वा ? ५८२

प्रसज्यपक्षे तद्गृहणोपायः प्रसक्षममुमानं वा न युज्यते ५८२

मनोऽन्यत्वे सति अस्पर्शवद्रव्यत्वमिति हेतुः सन्निधानैकान्तिकः

सर्वगतत्वे सर्वपरमाणुभिः संयोगात् सर्वद्रव्यक्रियाहेतुत्वे न जाने

क्रियत्परिमाणं शरीरं स्यात् ५८४

संयोगात्तददृष्टापेक्षत्वे कैयमदृष्टापेक्षा किमेकार्यसमवायः उपकारः

सहायकसंजननं वा ? ५८४

सावयवत्वेन मिश्रावयवारम्बत्वस्य व्याप्त्यभावात् ५८५

आत्मनो मिश्रावयवारम्बत्वम् आदौ मध्यावस्थायां वा साध्येत ?

सावयवशरीरव्यापिलेपि आत्मनः शरीरच्छेदे कथमिच्छेदो भवत्येव

गुणपदार्थत्वाद् : ५८७-६००

(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) रूपरसगन्धादयश्चतुर्विधसिर्गुणाः ५८७

संख्या एकद्रव्या अनेकद्रव्या च ५८७

महदणुवीर्षहस्तमेवेन चतुर्धा परिमाणम् ५८७

संयोगादीनां लक्षणाणि ५८७

वैगो भावना स्थितस्थापकश्चेति त्रिविधः संस्कारः ५८८

(उत्तरपक्षः) नहि रूपं श्रुत्यव्यादित्रयकृत्येव वायोरपि रूपवत्त्वात्

अल्लनल्लयोरपि गन्धरसादिमत्ता ५८९

संख्यापि न संख्येकार्यमिच्छोपलभ्यते ५८९

एको गुणः बहवो गुणाः इत्यत्र यथा संख्याभावेषु एकत्वादिवृद्धिः

स्वरूपमात्रनिबन्धनैव घटते तथैव घटादिष्वपि भविष्यति ५८९

नायुपचारात् गुणेषु संख्याप्रतीतिः; यतः आश्रयगता विषयगता

वा संख्योपचर्येत ? ५८९

भेदवदस्याः संख्यायाः असमवायिकारणत्वासंभवात् ५९०

अपेक्षादुद्धितव घटपटादौ प्रतिनियतसंख्या प्रतीवते ५९१

संख्याव्यवहारस्य स्वरूपमात्रनिबन्धनत्वे वद्व्यंशविंशतिभिः सार्धं

शतमिसादिव्यवहारोऽपि युज्यते स्यात् ५९१

परिमाणस्यापि घटाद्यर्थव्यतिरेकेण प्रतीत्यभावात् ५९२

विषयाः

४०-

असत्यपि महत्त्वादौ प्रासादमात्रादिषु महती प्रासादमालेखादि-

प्रत्ययप्रतीतेः

५९२

न हि मात्रा द्रव्यस्वभावा जातिस्वभावा वा द्रव्यते

५९३

आपेक्षिकलाञ्च परिमाणस्य न गुणरूपता

५९३

अतो न हस्तादि परिमाणं संस्थानविशेषाद्विज्ञम्

५९३

पृथक्त्वमपि न मिश्रतयोत्पन्नपदार्थस्वरूपादपरम्

५९३

रूपादिगुणेष्वपि च पृथगिति प्रत्ययः प्रतीयते

५९३

पृथग्भूतेभ्योऽर्थेभ्यः पृथग्भूता मित्रा अभिज्ञा वा क्रियेत ?

५९३

संयोगोऽपि निरन्तरोत्पन्नपदार्थद्वयव्यतिरेकेण नापरः

५९४

संयुजौ प्रासादौ ह्यत्र संयोगगुणाभावेऽपि संयुक्तबुद्धिः मन्त्रलेन

५९४

विभागस्य च संयोगाभावरूपत्वाच्च गुणरूपता

५९५

संयोगनिवृत्तिश्च क्रियात् एव स्यात्

५९५

विभागजविभागो विभागस्वरूपाच्चापरः, स च क्रियात् एव

५९५

परत्वापरत्वेऽपि नार्थान्तरम्

५९६

रूपादिषु तदभावेऽपि परापरप्रत्ययोत्पत्तेः

५९६

अतः विप्रकृष्टसंश्लिष्टावेव परत्वापरत्वे नापरे

५९६

एवं च मध्यममपि गुणोऽभ्युपगन्तव्यः

५९७

सुखदुःखादीनामवृद्धिरूपत्वे नात्मगुणता

५९७

शुरुत्वादयस्तु पुद्गलद्रव्यस्य गुणाः

५९७

नहि शुरुत्वमतीन्द्रियम्

५९७

द्रवत्वं हि अप्सु एव पृथिव्यनलयोस्तु तत्संयुक्तसमवायवशा-

त्प्रतीतिः

५९७

स्नेहोऽम्भसेवेत्ययुक्तम् ; घृतादावपि पार्थिवे ज्ञेहप्रतीतेः

५९८

ज्ञेहस्य गुणत्वे काठिन्यमार्दवादेरपि गुणरूपता स्यात्

५९८

न हि काठिन्यादयः संयोगविशेषा अपि तु स्पर्शविशेषाः

५९८

वेगस्य आत्मन्यपि संभवात् ; तस्य सक्रियत्वात्

५९८

न च क्रियातोऽर्थान्तरं वेगः

५९९

न च संस्कारोऽर्थात् विभिन्नः

५९९

भवना तु धारणारूपत्वेन स्वीक्रियत एव

५९९

स्थितस्थापकश्च किं स्वयमस्थिरस्वभावं भावं स्थापयति स्थिर-

स्वभावं वा

५९९

धर्माधर्मादयस्तु नात्मगुणाः

६००

कर्मपदार्थवादः

६००-१

(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) उत्क्षेपणादीनि पञ्च कर्माणि

६००

विषयाः	५०
उत्क्षेपणादीनि चत्वारि नियतदिग्देशसंयोगविभागकारणानि ...	६००
यमनं तु अनियतदिग्देशसंयोगविभागकारणम्	६००
(उत्तरपक्षः) देशादेशान्तरप्राप्तिहेतुः अर्थस्य परिणाम एव कर्म ...	६००
अमणरेचनस्यन्दनादीनामपि पृथक् कर्मैल्लप्रसङ्गः	६००
न चैकरूपस्यार्थस्य क्रियासमावेशः	६००
नापि क्षणिकस्य क्रिया घटते	६००
नापि अर्थादर्थान्तरं कर्म	६०१
विशेषपदार्थविचारः	६०१-६०४
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) नित्यद्रव्यवृत्तयः अन्त्या विशेषाः ...	६०१
अगद्विनाशारम्भकोटिभूतेषु परमाणुषु मुक्तात्मसु मुक्तामनःसु चान्तेषु भवा अन्त्याः	६०२
व्यावृत्तिबुद्धिविषयत्वं विशेषाणां सद्भावसाधकं प्रमाणम् ...	६०२
(उत्तरपक्षः) अणवादीनां स्वस्वभावव्यवस्थितं स्वरूपं परस्पर- सङ्कीर्णस्वरूपं स्यात् सङ्कीर्णं वा	६०२
यदि विशेषपदार्थमन्तरेण न व्यावृत्तबुद्धिः तदा विशेषपदार्थेषु परस्परं कथं व्यावृत्तप्रत्ययः ?	६०३
विशेषेषु उपचारेण प्रत्ययोपगमे कोऽयमुपचारः ? असतो विषय- त्वेनाक्षेपमेव, स किं संशयत्वेनाक्षिप्यते विपर्ययत्वेन वा ?	६०३
अनुमानवाधितो हि विशेषसद्भावः	६०४
समवायपदार्थविचारः	६०४-६२२
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) अयुतसिद्धानामाधारार्थाधारभूतानामित्यादि समवायस्य लक्षणम्	६०४
समवायलक्षणस्य पदसार्थक्यम्	६०४
प्रत्यक्षत एव समवायः प्रतीयते	६०५
‘अवाच्यमानेहप्रत्ययत्वात्’ इत्यनुमानेनापि समवायः प्रतीयते ...	६०५
नहि इह तन्नुप पट इत्यादिहेतुं प्रत्ययः तन्नुपटहेतुः, नापि वासनाहेतुः	६०६
इदमिहेति ज्ञानं हि समवायविशिष्टतन्तुपटलम्बनम्	६०६
इहेतिप्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकः समवायः	६०७
समवायस्यैकत्वेऽपि आधारशक्तिवशात् द्रव्यमेव द्रव्यलस्याभिन्व- जकम् न गुणादयः	६०७
समवायीनि द्रव्याणीति प्रत्ययः विशेषणपूर्वकः विशेष्यप्रत्ययत्वादि- त्यनुमानात् समवायसिद्धिः	६०७

विषयाः	पृ०
नानिष्पन्नयोः निष्पन्नयोर्वा समवायः; स्वकारणसत्तासम्बन्धस्यैव निष्पत्तिरूपत्वात्	६०८
(उत्तरपक्षः) अयुतसिद्धत्वं हि शास्त्रीयम् लौकिकं वा ? ...	६०९
पृथगाश्रयवृत्तित्वं युतसिद्धिलक्षणम् आकाशादावव्याप्तम् ...	६०९
नित्यानां पृथगतिमत्त्वमपि आकाशादिषु न संघटते ...	६०९
एकद्रव्याभितरूपादीनां पृथगाश्रयवृत्तेरभावात् अयुतसिद्धत्वं स्यात्	६०९
युतसिद्धिलक्षणे इतरेतराश्रयश्च	६०९
समवायस्यासाधारणं स्वरूपं किम् अयुतसिद्धसम्बन्धत्वं सम्बन्ध- मार्त्तं वा ?	६१०
सम्बन्धरूपतया चासौ सम्बन्धबुद्धौ प्रतिभासेत, इहेति प्रत्यये वा, समवाय इत्यनुमये वा ?	६१०
सम्बन्धश्च किं सम्बन्धलजातियुक्तः स्यात् अनेकोपादानजनितो वा अनेकाभितो वा सम्बन्धबुद्धपुत्पादको वा सम्बन्धबुद्धि- विषयो वा ?	६१०
सर्वसमवायानुगतैकत्वभावः समवायः सम्बन्धबुद्धौ प्रतिभासेत तद्व्यावृत्तस्वभावो वा	६११
अवाध्यमानेहप्रत्ययत्वं च हेतुराश्रयासिद्धः	६११
'पटे तन्तवः वृक्षे शाखाः' इत्यादि प्रतीयते ननु तन्तुषु पटः इत्यादि	६११
'इह प्रागभावेऽनादित्वम्' इत्यादीहेदम्प्रत्ययस्य सम्बन्धपूर्व- कत्वाभावात्	६१२
अनुमानात् सम्बन्धमार्त्तं साध्यते तद्विशेषो वा ?	६१२
सम्बन्धविशेषश्चेत्; संयोगः समवायो वा ?	६१२
परिशेषात्समवायसिद्धौ परिशेषः किं प्रमाणमप्रमाणं वा ? ...	६१२
प्रमाणं चेत् किं प्रत्यक्षमनुमानं वा ?	६१२
इहेदमिति प्रत्ययो हि तादात्म्यहेतुकः	६१२
संयोगस्वरूपस्वण्डनम्	६१३
विशिष्टपरिणामापेक्षया बीजादीनाम् अङ्करोत्पादकत्वमतो न संयो- गस्यैवापेक्षा	६१४
यदि न संयोगमात्रापेक्षा एव बीजादय अङ्कुरादिकमुत्पादयन्ति तदा प्रथमोपनिपात एव उत्पादयन्तु	६१४
न द्रव्याभ्यामर्थान्तरभूतः संयोगो विशेषणतया प्रतिभासेते ...	६१५
चैत्रकुण्डलयोः विशिष्टावस्थाप्राप्तिः हि सर्वदा न भवति अतः कुण्डलीति बुद्धिरपि न सार्वदिकी	६१५

विषयाः	पृ०
विशेषविरुद्धानुमानं न किमनुमानाभासोच्छेदकत्वाच्च वर्णव्यभ	
सम्यगनुमानोच्छेदकत्वाद्वा ?	६१५
अनेकः समवायः विभिन्नदेशकालाकारार्थेषु सम्बन्धवृद्धिहेतुत्वात्	६१६
नाना समवायः अयुतसिद्धावयविद्वन्वाश्रितत्वात् संख्यावत् ...	६१६
अनाश्रितत्वेऽपि समवायस्य अनेकत्वमेव	६१६
इहात्मनि ज्ञानमिह घटे रूपादय इति विशेषप्रत्ययस्य सद्भावाद-	
नेकः समवायः	६१७
सत्तावदिति दृष्टान्तोऽपि साध्यसाधनविकलः	६१७
समवाय इति प्रत्ययेनानेकान्तिकोऽयं हेतुः ? स हि विशेष्यप्रत्ययो	
न च विशेषणमपेक्षते	६१८
किं येन सत्ता विशेष्यज्ञानमुत्पद्यते तद्विशेषणम्, किं वा यस्यानु-	
रागः प्रतिभासते तदिति ?	६१८
स्वकारणसत्तासम्बन्धस्य आत्मलामरूपत्वे किं सतां सत्तासमवायः	
असतां वा ?	६१९
सत्तासमवायाद् पदार्थानां सत्त्वे तयोः कुतः सत्त्वम् ?	६१९
समवायस्य स्वरूपासिद्धौ स्वतःसम्बन्धत्वमपि न तत्र सिद्धम् ...	६२०
परतत्त्वेत् किं संयोगाद्, समवायान्तरात्, विशेषणभावाददृष्टाद्वा ?	६२०
विशेषणमानोऽपि समवायसमवायिभ्योऽज्ञानं मित्रः कुतस्तत्रैव	
नियाम्येत ?	६२१
विशेषणभावः षट्पदार्थेभ्यो मित्रः अभिज्ञो वा ?	६२१
मित्रत्वेत् किं भावरूपः अभावरूपो वा ?	६२१
अदृष्टश्च न सम्बन्धरूपः द्विष्टत्वाभावात्	६२१
न आदृष्टोऽपि असम्बद्धः सम्बन्धिप्रतिनियमहेतुः	६२१
अयं समवायः समवायिनोः परिकल्प्यते असमवायिनोर्वा ? ...	६२२
समवायिनोश्चेत्, तयोः समवायित्वं समवायाद् स्वतो वा ? ...	६२२
अभिन्नं तेनानयोः समवायित्वं विधीयते मित्रं वा ?	६२२
निष्क्रियेषु हि आधेयत्वम् अल्पपरिमाणत्वात् तत्कार्यत्वात् तथा-	
प्रतिभासाद्वा ?	६२२
नैयायिकाभिमतबोद्धशपदार्थानां निरासः	६२३-२४
विषययानव्यवसाययोरपि बोद्धशपदार्थातिरिक्तत्वव्यवस्थितेः न	
पदार्थानां बोद्धशसंख्यानियमः	६२३
वर्माधर्मद्वययोश्च पृथक्सिद्धेः न बोद्धसत्त्वप्रतिनियमः	६२३
सकलजीवपुद्गलगतिस्थितयः साधारणबाह्यनिमित्तापेक्षाः युगपद्भा-	
विगतितिस्थितिलादिति हेतोः वर्माधर्मद्वययोः सिद्धिः	६२३

विषयाः	पृ०
न गतिस्थितिपरिणामिन एवार्थाः परस्परं तदेतवः; अन्योन्याश्रय- प्रसंगात् ६२३	
नापि पृथिवी नभो वा गतिस्थितिहेतुः ६२४	
नाप्यदृष्टनिमित्ता गतिस्थित्योः ६२४	
फलस्वरूपविचारः ६२५-२७	
अज्ञाननिवृत्त्यादयः प्रमाणस्य फलम् ६२५	
अज्ञाननिवृत्तिः प्रमाणादभिन्नं फलम् ६२४	
अज्ञाननिवृत्ति-ज्ञानयोः सामर्थ्यसिद्धयमपि जेदे सत्येवोपलब्धम् ६२५	
अमेदेऽपि कार्यकारणभावस्याविरोधात् ६२५	
ज्ञानोपादानोपेक्षाश्च भिन्नं फलम् अज्ञाननिवृत्तिलक्षणफलेन व्यव- धानात् ६२५	
आत्मनः प्रमाणफलरूपेण परिणामेऽपि लक्षणमेवात् प्रमाणफल- भावाऽविरोधः ६२६	
साधनमेवाश्च प्रमाणफलयोर्मेदः ६२६	
सर्वथाऽमेदे हि प्रमाणफलव्यवस्थाया अभावः स्यात् ६२७	
नापि व्यावृत्तिमेवादेकत्रापि प्रमाणफलभावकल्पना युष्मा ... ६२७	

इति चतुर्थः परिच्छेदः ।

तदाभासस्य स्वरूपम् ६२९	
अखर्वविदितादयः प्रमाणाभासाः ६२९	
प्रत्यक्षाभासस्य स्वरूपम् ६२९	
परोक्षाभासस्य स्वरूपम् ६३०	
स्मरण-प्रत्यभिज्ञानाभासयोः लक्षणम् ६३०	
अनिष्टादयः पक्षाभासाः ६६०	
सिद्धः पक्षाभासः ६३१	
प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनविकल्पात् पंचधा वाचितः पक्षाभासः ६३१	
असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्करमेवेन चतुर्धा हेत्वाभासः ६३२	
द्विविधोऽसिद्धहेत्वाभासः ६३२	
विशेष्यासिद्धादयोऽष्ट असिद्धहेत्वाभासाः अत्रैवान्तर्भवन्ति ... ६३३	
व्यधिकरणस्यापि कृतिकोदयादेः सदेतुलदर्शनाच्च व्यधिकरणासिद्धो हेत्वाभासः ६३३	
माणासिद्धोऽपि अविनाभावसद्भावाद् गमक एव ६३४	

विषयाः	५०
सन्दिग्धविशेषासिद्धादयः अत्रैवान्तर्भूताः	६३५
एतेऽसिद्धहेलाभासाः केचिदन्यतरासिद्धाः केचिच्च उभयासिद्धाः	६३५
अन्यतरासिद्धहेलाभासस्य समर्थनम्	६३५
विरुद्धहेत्वाभासस्य लक्षणम्	६३५
सति सपक्षे चत्वारो विरुद्धाः असति सपक्षे च चत्वार इति अष्टौ विरुद्धभेदाः अत्रैवान्तर्भवन्ति	६३६
अनैकान्तिकहेत्वाभासस्य लक्षणम्	६३७
पक्षसपक्षान्यवृत्तित्वं व्यभिचारः	६३७
निश्चितवृत्ति-सन्दिग्धवृत्तिभेदेन द्विधा अनैकान्तिकः	६३७
पक्षत्रयव्यापकादयोऽष्टौ अनैकान्तिकभेदाः अत्रैवान्तर्भावनीयाः	६३८
अकिञ्चित्करहेत्वाभासस्य लक्षणम्	६३९
अकिञ्चित्को लक्षणकाल एव होयो न तु प्रयोगकाले	६३९
इष्टान्ताभासनिरूपणम्	६४०-४१
अन्वयइष्टान्ताभासविवेचनम्	६४०
व्यतिरेकइष्टान्ताभासनिरूपणम्	६४०
शालप्रयोगाभासनिरूपणम्	६४१
आगमाभासविचारः	६४२
संख्याभासनिरूपणम्	६४२-४३
विषयाभासविवेचनम्	६४३-४४
फलाभासनिरूपणम्	६४४-४५
जयपराजयव्यवस्था	६४५-४६
वादो विजिगीषुविषयत्वेन चतुरङ्गः	६४५
वादो नाविजिगीषुविषयः निग्रहस्थानवत्त्वात्स्वरूपवितण्डावत् ...	६४६
वादस्वरथाभ्यवसायसंरक्षणार्थः प्रमाणतर्कसाधनोपलम्भत्वे सिद्धा- न्ताविरुद्धत्वे पञ्चावयवोपपन्नत्वे च सति पक्ष-प्रतिपक्षपरिग्रह- वत्त्वात्	६४७
पक्षप्रतिपक्षौ न ब्रह्मधर्मौ एकाधिकरणौ विरुद्धावैककाल्यवनवसितौ	६४७
वादचतुरङ्गः स्वाभिप्रेतव्यवस्थापनफलत्वात् वादलाद्वा लोकप्रसिद्ध- वाद्वात्	६४८
समापतिप्राप्तिकवादिप्रतिवादिभेदेन चत्वार्यङ्गानि	६४९
छलादीनामसदुत्तरत्वाच्च तैः जय-पराजयव्यवस्था ...	६४९
छललक्षणम्	६४९
नहि बाह्यछलमात्रेण जयः	६४९
नापि सामान्यच्छलाद् जयः	६५०
नाप्युपचारच्छलाद् जयः	६५१

विषयाः

५०

नापि जातिप्रयोगाज्जयः	६५१
(नैयायिकस्य पूर्वपक्षः) जातेः सामान्यलक्षणम्	६५१
आव्यकारमतेन साधर्म्यसमायाः स्वरूपम्	६५२
वार्तिककारमतेन साधर्म्यसमायाः लक्षणम्	६५२
वैधर्म्यसमायाः लक्षणम्	६५२
सत्कार्पापकर्मसमयोः लक्षणम्	६५३
वर्ण्यवर्ण्यसमयोः लक्षणम्	६५३
विकल्पसमायाः लक्षणम्	६५३
साध्यसमायाः लक्षणम्	६५४
ग्राह्यप्राप्तिसमयोः लक्षणम्	६५४
प्रसङ्गसमायाः लक्षणम्	६५४
प्रतिदृष्टान्तसमायाः लक्षणम्	६५४
अनुत्पत्तिसमायाः लक्षणम्	६५५
संशयसमायाः लक्षणम्	६५६
प्रकरणसमायाः लक्षणम्	६५६
अहेतुसमायाः लक्षणम्	६५६
अर्यापत्तिसमायाः लक्षणम्	६५७
अविशेषसमायाः लक्षणम्	६५७
उपपत्तिसमायाः लक्षणम्	६५७
उपलब्धिसमायाः लक्षणम्	६५७
अनुपलब्धिसमायाः लक्षणम्	६५८
अनित्यसमायाः लक्षणम्	६५८
नित्यसमायाः लक्षणम्	६५९
कार्यसमायाः लक्षणम्	६५९
(उत्तरपक्षः) असाधो साधने प्रयुक्ते जातीनां प्रयोगः साधनदोष-						
स्यान्निज्ञतया वा, तद्दोषप्रदर्शनार्थं प्रसङ्गव्याज्येन वा ?	६५९
जातिवादी च साधनाभासमेतदिति प्रतिपद्यते वा न वा ?	६५९
कथम्भूतेन उत्तराप्रतिपत्त्युद्भावनेनासौ विजयते—किं खोपन्यस-						
जात्यपरिज्ञानोद्भावनरूपेण, परोद्भावितजात्यन्तरनिराकरणलक्ष-						
णेन, उत्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्भावनाकारेण वा ?	६६१
नापि निग्रहस्थानैः अथपराजयव्यवस्था	६६३
निग्रहस्थानस्य लक्षणम्	६६३
प्रतिज्ञादानैर्लक्षणम्	६६३
वार्तिककारमतेन प्रतिज्ञादानैर्लक्षणम्	६६४
प्रतिज्ञान्तरस्य लक्षणम्	६६४

विषयाः	४०
प्रतिज्ञाविरोधस्य लक्षणम्	६६५
प्रतिज्ञासंन्यासस्य लक्षणम्	६६५
हेतुन्तरस्य लक्षणम्	६६५
अर्थान्तरस्य लक्षणम्	६६५
निरर्थकस्य लक्षणम्	६६६
अविज्ञातार्थस्य लक्षणम्	६६६
अपार्थक्यस्य लक्षणम्	६६७
अप्राप्तकालस्य लक्षणम्	६६७
संस्कृतप्राकृतशब्दविचारः	६६७
पुनरुक्तस्य लक्षणम्	६६८
अननुभाषणस्य लक्षणम्	६६९
अज्ञानस्य लक्षणम्	६६९
अप्रतिभाषाः लक्षणम्	६६९
पर्यनुयोज्योपेक्षणस्य स्वरूपम्	६६९
निरनुयोज्यानुयोगस्य लक्षणम्	६६९
विक्षेपस्य लक्षणम्	६७०
मतानुज्ञाया लक्षणम्	६७०
न्यूनस्य लक्षणम्	६७०
अधिकस्य लक्षणम्	६७०
अपसिद्धान्तस्य लक्षणम्	६७१
हेतुनाशस्वरूपम्	६७१
असाधनाङ्गवचनादेः बौद्धोक्तनिग्रहस्थानस्य निरा- करणम्	६७१-७४
संपर्कं साधयन् वादिप्रतिवादिनोरन्यतरः असाधनाङ्गवचनाद- बोधोद्भावनाद्वा परं निगृह्णाति असाधयन् वा ?	६७१
प्रतिज्ञावचनस्य असाधनाङ्गनिराकरणम्	६७२
‘साधर्म्यवचनेऽपि वैधर्म्यवचनमसाधनाङ्गत्वात् निग्रहस्थानम्’ इति संपर्कं साधयतो वादिनः स्यात् असाधयतो वा ?	६७२
अतः संप्रसासिष्यसिद्धिनिबन्धनावेव जय-पराजयौ	६७३
न संप्रसाधनाज्ञाननिबन्धनौ जय-पराजयौ वक्तुं शक्यौ	६७३
ज्ञानाज्ञानमात्रनिबन्धनार्थं जयपराजयव्यवस्थायां पक्षप्रतिपक्षपरि- ग्रहवैयर्थ्यं स्यात्	६७४
अदोषोद्भावनस्य निराकरणम्	६७४

इति पञ्चमः परिच्छेदः ।

विषयाः

पृ०

नयनयाभासयोः लक्षणम्	६७६
नैगमस्य लक्षणम्	६७६
नैगमाभासस्य लक्षणम्	६७७
संग्रहस्य लक्षणम्	६७७
संग्रहाभासस्य स्वरूपम्	६७७
व्यवहारस्य लक्षणम्	६७७
व्यवहाराभासस्य लक्षणम्	६७८
श्रुतसूत्रनयस्य लक्षणम्	६७८
श्रुतसूत्राभासस्य स्वरूपम्	६७८
शब्दनयस्य लक्षणम्	६७८
शब्दनयाभासस्य स्वरूपम्	६७९
समभिरूढनयस्य लक्षणम्	६८०
समभिरूढनयाभासस्य लक्षणम्	६८०
एवम्भूतनयस्य स्वरूपम्	६८०
एवम्भूताभासस्य लक्षणम्	६८०
नत्वारोऽर्थनथाः त्रयः शब्दनयाः	६८०
नयेषु पूर्वैः पूर्वो बहुविषयः कारणभूतश्च परः परोऽल्पविषयः	
कार्यभूतश्च	६८१
यत्रोत्तरोत्तरो नयः तत्र पूर्वैः पूर्वो भवत्येव	६८१
नयसप्तमङ्गीप्रवृत्तिप्रकारः	६८१
प्रमाण नयसप्तमङ्गयोः सकलवैश्विकलक्ष्यकृतो विशेषः ...	६८२
सप्तैव मङ्गाः संभवन्ति प्रभाषीनां सप्तविधत्वात्	६८२
न च वक्तव्यलस्य धर्मान्तरता	६८४
पत्रवाक्यविचारः	६८४-९४
पत्रस्य लक्षणम्	६८४
स्थान्तभासितादि जैनोक्तम् अवयवद्वयात्मकं पत्रम्	६८५
वित्रास्यदन्तराणीयमिलादि पञ्चावयवात्मकं जैनपत्रम्	६८६
सैन्यलक्ष्माग इत्यादि यौगोक्तपत्रस्य विवरणम्	६८६-६८९
यदा पत्रे विवादः स्यात्-तदैवं प्रष्टव्यः यो भवन्मनसि वर्तते स	
पत्रस्यार्थः, उत यो वाक्यात्प्रतीयते, अथवा यो भवन्मनसि	
वर्तते वाक्याच्च प्रतीयते ?	६८९
सृतीयपक्षे केनेदमवगम्यताम् वादिना प्रतिवादिना प्राश्निकैर्वा ?	६९१
इदं पत्रं तद्वातुः स्वपक्षसाधनवचनम् परपक्षदूषणवचनमुभय-	
वचनमनुभयवचनं वा ?	६९२
ग्रन्थकृतोऽन्तिमं वक्तव्यम्	६९३
ग्रन्थकृतप्रशस्तिः	६९४

इति षष्ठः परिच्छेदः ।



श्रीमाणिक्यनन्दाचार्यविरचित-परीक्षामुखसूत्रस्य व्याख्यारूपः

श्रीप्रभाचन्द्राचार्यविरचितः

प्रमेयकमलमार्त्तण्डः ।

श्रीस्याद्वादविधायै नमः ।

सिद्धेर्धामं महारिमोहहननं कैर्त्तैः परं मन्दिरम्,
 मिथ्यात्वप्रतिपक्षमक्षयसुखं संशीतिविध्वंसनम् ।
 सर्वप्राणिहितं प्रमेन्दुमवैनं सिद्धं प्रमालक्षणम्,
 सन्तश्चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्द्धमानं जिनम् ॥ १ ॥ ५
 शास्त्रं करोमि वरमल्पतरावबोधि
 माणिक्यनन्दिपदपङ्कजसत्प्रसादात् ।
 अर्थं न किं स्फुटयति प्रकृतं लघीया-
 ल्लोकस्य भानुकरविस्फुरिताद्गवाक्षः ॥ २ ॥
 ये नूनं प्रथयन्ति नोऽसमर्गुणा मोहादवज्ञां जनाः,
 ते सिद्ध्यन्तु न ताम्प्रति प्रयतिर्तैः प्रारभ्यते प्रक्रमः ।
 सन्तः सन्ति गुणानुरागमनसो ये धीधनास्ताम्प्रति,
 प्रायैः शास्त्रैर्कृतो यदत्रै हृदये धृष्टं तदाख्यायते ॥ ३ ॥

१०

१ मय्यसिद्धिं प्रति कारणं भवति भगवान्त आश्रयत्वेनाभिधीयते । २ वाण्याः ।
 ३ आश्रयः । ४ शास्त्रादौ देवशास्त्रपुराणो भगवत्स्वरणीया अत एव देवनमस्कृतौ
 श्रीवर्द्धमानं विज्ञेयं कृत्वा हेतुहेतुमद्भाषतयाऽन्वयानुसारेणान्यानि विज्ञेयानि योजयेत्,
 गतः शास्त्रनमस्कृतौ प्रमालक्षणं विज्ञेयं कृत्वा, गुरुनमस्कृतौ चिदं विज्ञेयं कृत्वा,
 चान्यानि विज्ञेयानि योजयेत् । ५ इष्टदेवतामभिष्टुत्य शास्त्रं करोमीति प्रतिष्ठां कुर्वन्ति
 चरयः । ६ अर्थः । ७ साक्षात्प्राप्तिः । ८ दृष्टिगोचरः । ९ पश्यतः (इति शेषः) ।
 १० यद्यप्यर्थं प्रक्रमो भवतिः किञ्चित्, तथापि भवत्येते प्रक्रमे केचन जना अवज्ञां विद-
 धानाः सन्तीत्याह । ११ वक्तव्याः पुरुषाः । १२ औष्ण्यदिकोऽयमिकारान्तस्तत्तत्त्वत् ।
 प्रयत्नादित्यर्थः । १३ यद्यप्यर्थं प्रक्रमः प्रारभ्यते-तथापि स्वस्वविरचितत्वात्सत्तासम्प्रा-
 दणीयत्वं न स्यादित्याह प्राय इति वाङ्मतेनेत्यर्थः । १४ माणिक्यनन्दिमन्दिरकस्य ।
 १५ परीक्षामुखलङ्कारे । १६ अद्वयं ।

त्यंजति न विदधानः कार्यमुद्दिश्य धीमान्

खलजनपरिवृत्तेः स्पर्धते किन्तु तेन ।

किमु न वितनुतेऽकः पद्मवोचं प्रबुद्ध-

स्तदपहृतिविधायी शीतरश्मिर्यदीह ॥ ४ ॥

५ अजडमदोषं दृष्ट्वा मित्रं सुश्रीकमुद्यतमतुष्यत् ।

विपरीतबन्धुसङ्कतिर्मुद्गिरति हि कुवलयं किं न ॥ ५ ॥

श्रीमदकलङ्कार्योऽप्युत्पन्नप्रवैरवगन्तुं न शक्यत इति तदव्यु-
त्पादनाय करतलामलंकवत् तदर्थमुद्यत्य प्रतिपादयितुकामसै-
त्परिज्ञानानुग्रहेच्छाप्रेरितस्तदर्थप्रतिपादनप्रेरणं प्रैकरणमिदमा-
१० चार्यः प्राह । तत्र प्रकरणस्य सैम्बन्धाभिधेयरहितत्वाशङ्कापनोदार्थं
तदभिधेयस्य चाऽप्रयोजनवत्त्वपरिहारानभिमतप्रयोजनवत्त्वव्यु-
दासाशक्यानुष्ठानत्वनिराकरणदक्षमक्षुण्णसकलशास्त्रार्थसंग्रह-
समर्थं 'प्रमाण' इत्यादिश्लोकमाह—

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।

१५ इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥ १ ॥

सैम्बन्धाभिधेयशक्यानुष्ठानेऽप्रयोजनवन्ति हि शास्त्राणि प्रेक्षा-
वद्भिराद्रियन्ते नेतराणि-सम्बन्धाभिधेयरहितस्योन्मत्तादिवाक्य-
वत्; तद्वतोऽप्यप्रयोजनवतः कौकदन्तपरीक्षावत्; अनभिमत-
प्रयोजनवतो वा मातृविवाहोपदेशवत्; अशक्यानुष्ठानस्य वा
२० सर्वच्चरहरतक्षकचूडारत्नालङ्कारोपदेशवत् तैरनादरणीयत्वात् ।
तदुक्तम्—

१ वयसि सतः प्रकृतः प्रारम्भते-तथापि बुद्धा बुद्धत्वं न मुञ्चेयुस्तत्तत्प्रत्येकं प्रकृतो
नारम्भस्य इत्युक्ते खगतीत्याह । २ उद्वेगं प्राप्य । ३ व्यापारात् । ४ मित्रं स्वर्गं,
पक्षे प्रमाचन्द्रम् । ५ मुष्टिमगच्छत् । ६ बन्धु- । ७ चञ्चलति । ८ कुमुदः, पक्षे
धूमपङ्क (मिथ्यादृष्टिसमूहम्) । ९ गतिवत् । १० संगृह्य । ११ तयोर्लक्ष्मणार्था-
व्युत्पन्नयोः यौ परिज्ञानानुग्रहौ तयोर्वा इच्छा तथा प्रेरितः । १२ दक्षम् । १३ "शास्त्र-
कदेवसम्बन्धं शास्त्रकार्यान्तरस्मिन् । आहुः प्रकरणं नाम शास्त्रमेदं विपर्ययः" ॥
शास्त्रकदेवेत्यादिविशेषणाय साकल्येन प्रतिपादकमात्रादेः प्रकरणत्वं परास्तम् । शास्त्र-
कार्यान्तरं तु वैशय्यं लघुत्वं च । तच्चोपोद्घातप्रतिपादनभेदाद्विपर्ययः । तत्र प्रतिपाद्यमर्थं
बुद्धौ संगृह्य (आलोच्य) प्रागेव तदर्थमर्थान्तरवर्णनमुपोद्घातः । प्रतिपाद्यमर्थं बहिरेव
५ रिवाय पश्चात्तत्सिद्धये तद्वैतवर्णनं प्रतिपादनम् । सकलप्रतिपादकशास्त्रकार्यात् (प्रकृत-
शास्त्रकार्यात्) अन्यत्कार्यं कार्यान्तरम् । १४ शास्त्रावतरे सति । १५ प्रस्तुतसार्थस्य
अनुरोधेनोचोत्तरस्य विधानं सम्बन्धः । १६ पूर्वोक्तलक्षणः सम्बन्धः । १७ यस्यात् ।

“सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोता श्रोतुं प्रवर्तते ।

शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥ १ ॥

[गीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १७]

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् ।

यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यताम् ॥ २ ॥

[गीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १२]

अनिर्दिष्टफलं सर्वं न प्रेक्षापूर्वकारिभिः ।

शास्त्रमाद्रियते तेन वाच्यमग्रे प्रयोजनम् ॥ ३ ॥

[

]

शास्त्रस्य तु फले ज्ञाते तत्प्राप्त्याशावशीकृताः ।

प्रेक्षावन्तः प्रवर्तन्ते तेन वाच्यं प्रयोजनम् ॥ ४ ॥

[

]

यौवत् प्रयोजनेनास्यसम्बन्धो नाभिधीयते ।

असम्बन्धप्रलापित्वाद्भवेत्तावदसंज्ञतिः ॥ ५ ॥

[गीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० २०] १५

तस्माद् व्याख्यातैर्मिच्छद्भिः सहेतुः सप्रयोजनः ।

शास्त्रावतारसम्बन्धोवाच्यो नैव्योऽस्ति निष्फलः ॥ ६ ॥” इति ।

[गीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० २५]

तत्रास्य प्रकरणस्य प्रमाणतद्भासासयोर्लक्षणमभिधेयम् । अनेन च सहास्य प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः । शक्यातु-२०-
छावेष्टप्रयोजनं तु साक्षात्तल्लक्षणव्युत्पत्तिरेव-इति वक्ष्ये तयो-
र्लक्ष्म इत्यनेनाऽभिधीयते । ‘प्रमाणादर्थसंसिद्धिः’ इत्यादिकं तु
परस्परयेति समुदायार्थः । अथेदानीं व्युत्पत्तिद्वारेणाऽवयवाद्योऽ-
भिधीयते । अत्र प्रमाणशब्दः कर्तृकरणभावसाधनः-द्रव्यपर्यार्थ-
योर्भेदाऽभेदात्मकत्वात् स्वार्तैक्यसाधकतमत्वादिदिविवक्षापेक्षया २५

१ यदाद्रियते । २ अर्थसम्बन्धेनाभिधेयं प्रयोजनं च । ३ शास्त्रम् (इति शेषः) ।
४ प्रयुज्यते प्रतिपाद्यते इति प्रयोजनमभिधेयं प्रयुक्तिः, प्रयोजनं फलं ताभ्या सह
वर्तते । ५ ज्ञातफलमेवेति समर्थयते । ६ आदौ । ७ फलम् । ८ निरूपितेति फले
प्रवर्तनं न गतिव्यतीति शङ्कायामाह । ९ कारणेन । १० सिद्धसम्बन्धमेव पदं समर्थ-
यमानोऽप्येवमन्योक्तं ब्रूते । ११ अभिधेयेन । १२ परस्परसम्बन्धरहितं शास्त्रम् ।
१३ सम्बन्धादिप्रत्ययः । १४ साभिधेयः । १५ सफलः । १६ साभिधेयः सप्रयो-
जनश्च सम्बन्धो वाच्यः । १७ सम्बन्धादिप्रत्ययः । १८ सम्बन्धादिप्रत्यये वक्तव्ये
आदरणीयते सति शास्त्रप्रारम्भकाले । १९ प्रमाणेतरलक्षणस्य व्युत्पत्तिमन्दरेणपवर्णादेः
प्राप्तिर्न स्वादत एव साक्षात्सम्बन्धः । २० श्लोकस्य । २१ श्लोके । २२ आत्मद्रव्यम् ।
२३ ज्ञानपर्यायः । २४ साक्षाद् व्यापारे । २५ ज्ञानम् ।

तद्भावाऽविरोधात् । तत्र क्षयोपशमविशेषवशात् 'स्वपरप्रमेयस्वरूपं प्रमितीते यथावज्ञानाति' इति प्रमाणमात्मा, स्वपरग्रहणपरिणतस्यापरतन्त्रस्याऽऽत्मन एव हि कर्तृसाधनप्रमाणशब्देनाभिधानं स्वातन्त्र्येण विवक्षितत्वात्-स्वपरप्रकाशात्मकस्य प्रदीपादेः प्रकाशोऽभिधानवत् । साधकतमत्वादिविवक्षायां तु—प्रमीयते येन तत्प्रमाणं प्रमितिमात्रं वा-प्रतिबन्धापाये प्रादुर्भूतविज्ञानपर्यायस्य प्राधान्येनाश्रयणात् प्रदीपादेः प्रमाभारतमकप्रकाशवत् ।

मेदांमेदयोः परस्परपरिहारेणावस्थानादन्यंतरस्यैव वास्तवत्वा-दुभयात्मकत्वमयुक्तम् ; इत्यसमीक्षिताभिधानम् ; बाधकप्रमाणा-
१० भावात् । अनुपलम्भो हि बाधकं प्रमाणम्, न चात्र सोऽस्ति-सकल-
भावेर्वृथयात्मकत्वग्राहकत्वेनैवाखिलाऽस्त्वलत्प्रत्ययप्रतीतिः । विरो-
धो बाधकः ; इत्यप्यसमीचीनम् ; उपलम्भसम्भवात् । विरोधो हानु-
पलम्भसाध्यो, यथा-तुरङ्गमोत्तमाङ्गे शृङ्गस्य, अन्यथा स्वरूपेणापि
१५ तद्वृत्तो विरोधः स्यात् । न चान्यथोरेकत्र वस्तुन्यनुपलम्भोऽस्ति-
अमेदमात्रस्य मेदमात्रस्य वेर्तेरनिरपेक्षस्य वस्तुन्यप्रतीतिः । कै-
यताप्यमेदमात्रं मेदमात्रं वा प्रतीतिरवश्यंऽभ्युपगमनीया-सि-
बन्धनत्वाद् वस्तुव्यवस्थायाः । सा चेदुभयात्मन्यप्यस्ति किं तत्र
स्वसिद्धान्तविषमग्रहनिबन्धनप्रद्वेषैर्-अप्रामाणिकत्वप्रसङ्गादित्य-
लमतिप्रसङ्गेन, अनेकान्तसिद्धिप्रक्रमे विस्तरेणोपक्रमत् ।

२० वैक्षेपमाणलक्षणलक्षितप्रमाणमेदमनैमिषेत्यानैन्तरसकलप्रमाण-
विशेषसाधारणप्रमाणलक्षणपुरःसरः 'प्रमाणाद्' इत्येकवचननि-
र्देशः कृतः । किं हेतौ । अर्थ्यतेऽमिल्यते प्रयोजनार्थमिरित्यर्थो हेव
उपादेयश्च । उपेक्षणीयस्यापि परित्यजनीयत्वादेर्यत्त्वम् ; उपादान-
क्रियां प्रत्यर्कर्मभावाच्चोपादेयत्वम्, हानक्रियां प्रतिविपर्ययात्तत्त्व-
२५ म् । तथा च लोको वदति 'अहमनैनेनोपेक्षणीयत्वेन परित्यक्तः' इति ।

१ कथं । २ कर्तृसाधनोऽयम् । ३ भाव । ४ सम्बन्धिनः । ५ करणे भावे
चात्र धृत् । ६ परः शङ्कते । ७ मेदस्याऽमेदस्य वा । ८ पदार्थेण । ९ उपलम्भो
यत्र मेदस्तत्रामेद इति । १० अभावः । ११ अभावोऽर्थेष्वर्थोऽयम् । १२ ज्ञानधर्मोऽ-
यम् । १३ विरोधः । १४ पदार्थस्य । १५ जानाभावयोः । १६ मेदस्यामेदस्य
वा । १७ प्रतिवादिना । १८ अन्यथेति शेषः । १९ प्रारम्भात् । २० निषर्दं
प्रत्यक्षमतिशयं परोक्षमिति । २१ अविवक्षितत्वात् । २२ स्थापनेत्यादि । २३ पञ्चमी ।
२४ अर्थस्य । २५ हेयत्वेऽर्थेऽन्तर्गतादित्यर्थः । २६ कालविषयभूतं वस्तु कर्म-
भिधीयते मध्यस्तमात्रेण सिद्धत्वात्कर्मभावं न प्राप्त इत्यर्थः । २७ कर्मभावात् ।
२८ हेयत्वम् । २९ पुरुषेण ।

सिद्धिरसतः प्रादुर्भावोऽभिलषितं प्राप्तिर्भावश्च मिश्रोच्यते । तत्रैका-
 पकप्रकरणेन असतः प्रादुर्भावलक्षणा सिद्धिर्नेह गृह्यते । समीचीना
 सिद्धिः संसिद्धिरस्य संसिद्धिः 'अर्थसंसिद्धिः' इति । अनेन कार-
 णान्तराहितविपर्ययादिज्ञाननिवन्धनाऽर्थसिद्धिर्निरस्ता । जाति-
 प्रकृत्यादिभेदेनोपकारकार्यसिद्धिस्तु संगृहीता; तथाहि-केवल-
 निम्बलवणरसादावस्मदादीनां द्वेषबुद्धिविषये निम्बकीटोद्वादीनां
 जात्याऽभिलाषबुद्धिरुपजायते अस्मादाद्यभिलाषविषये चन्दनादौ
 नुतेषां द्वेषः, तथा पित्तप्रकृतेरुष्णस्पर्शं द्वेषो-चातप्रकृतेरभिलाषः-
 शीतस्पर्शं नु चातप्रकृतेर्द्वेषो न पित्तप्रकृतेरिति । न चैतज्ज्ञानम-
 सत्यमेव-हितोऽहितप्राप्तिपरिहारसमर्थत्वात् प्रसिद्धसत्यज्ञानवत् । १०
 हिताऽहितव्यवस्था चोपकारकत्वापकारकत्वाभ्यां प्रसिद्धेति ।
 तदिव स्वपरप्रमेयस्वरूपप्रतिभासिप्रमाणमिवाभासन इति तदा-
 र्थसम्पन्नसकलमतसम्भूताऽचबुद्ध्यक्षणाकाद्येकान्ततत्त्वज्ञानं सञ्चि-
 कर्षाऽविकल्पकं-ज्ञानाऽप्रत्यक्षज्ञानज्ञानान्तरप्रत्यक्षज्ञानाऽनासत्प्र-
 णीताऽऽगमैऽविनाभावविकललिङ्गनिवन्धनाऽभिनिबोधोर्ध्वदिक् सं- १५
 शयविपर्ययानव्यवसायज्ञानं च, तस्माद् विपर्ययोऽभिलषि-
 तार्थस्य स्वर्गापवर्गादेरनवद्यतत्साधनस्य वैहिकसुखदुःखादिसाध-
 नस्य वा सम्प्राप्तिस्तिलक्षणसमीचीनसिद्ध्यभावः । प्रमाणस्य प्रथ-
 मतोऽभिधानं प्रधानत्वात् । न चैतदसिद्धम् ; सम्यग्ज्ञानस्य निश्चे-
 यसंप्रतिः सकलपुरुषार्थोपयोगित्वात्, निखिलप्रयासस्य प्रेक्षा- २०
 वतां नदर्थत्वात्, प्रमाणेनरविवेकस्यापि तत्प्रसाध्यत्वाच्च । तदा-
 भासस्य त्वकप्रकाराऽसम्भवादप्राधान्यम् । 'इति' हेत्वर्थः । पुरु-
 षार्थसिद्ध्यसिद्धिनिवन्धनत्वादिति हेतोः 'तयोः' प्रमाणतदामा-
 सयो'लक्ष्म' असाधारणस्वरूपं व्यङ्ग्यमेवेति तज्ज्ञातिनिमित्तं लक्षणं

१ यथा कुललाद्वटसिद्धिः । २ पदार्थः । ३ त्रिषण्येषु मध्ये । ४ प्रमाणादव-
 नसिद्धिरिति । ५ गृही । ६ आपकपक्षस्य प्रकरणात् प्रस्तावात् । ७ चक्षुरादिकारणा-
 दन्तकारणं कारकामणदिसिध्यात्वादि वा कारणान्तरम् । ८ अवस्थाक्षेत्रकाणादि वा ।
 ९ अन्यरससंयोगरहितः । १० उद्यद्दिनाला कृत्वा । ११ निम्बकीटकस्य निम्बः
 कटकोऽपि हितत्वात् स एव रोचते । १२ वैयक्तिकादिज्ञानम् । १३ सकलमतानि
 सम्पत्तानि यस्य स सकलमतसम्मतो विनयवादी तस्माच्चबुद्धिर्ज्ञानं तदामासमित्यर्थः ।
 १४ निर्विकल्पकः । १५ अगौरूपेयः । १६ अनुमानः । १७ लिङ्गामिमुखनियतस्य
 लिङ्गिनो बोधनं वा । १८ उपमानार्थोपपत्त्यभावप्रमाणानि । १९ घटते । २० मर्या-
 दानां (का पञ्चमी) । २१ मैदस्य । २२ 'हेतवेवंप्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।
 अधिकारे समानौ च इतिशब्दः प्रकीर्तितः' । २३ तदामासेभ्यः । २४ व्यङ्ग्यमेवे-
 नाऽसाधारणत्वं सत्यस्यमेवेन साधारणत्वमिति साक्षादसिद्धिः ।

‘वैक्ष्ये’ व्युत्पादनार्हत्वात्तल्लक्षणस्य यथावत्तत्स्वरूपं प्रस्पष्टं कथयिष्ये । अनेन ग्रन्थकारस्य तद्व्युत्पादने स्वातन्त्र्यव्यापारोऽवसीयते-निखिललक्ष्यलक्षणभावावबोधोऽन्योपकारनियतचेतोवृत्तित्वात्तस्य ।

- ५ नैतु चेदं वक्ष्यमाणं प्रमाणेतरलक्षणं पूर्वशास्त्राप्रसिद्धम्, तद्विपरीतं वा ? यदि पूर्वशास्त्राऽप्रसिद्धम्-तर्हि तद्व्युत्पादनप्रयासो नारम्भणीयः-स्वरुचिविरचितत्वेन सतामनादरणीयत्वात्, तत्प्रसिद्धं तु नितरामेतन्न व्युत्पादनीयं-पिष्टपेषणप्रसङ्गादित्याह-‘सिद्धमल्पम्’ । प्रथमविशेषणेन व्युत्पादनवत्तल्लक्षणप्रणयने स्वातन्त्र्यं परिहृतम् ।
- १० तदेव आकलङ्कमिदं पूर्वशास्त्रपरम्पराप्रमाणं प्रसिद्धं लैङ्गपायेन प्रतिपाद्य प्रज्ञापरिपाकार्यं व्युत्पाद्यते-न स्वरुचिविरचितं-नापि-प्रमाणानुपपन्नं-परोपकारनियतचेतसो ग्रन्थकृतो विनेयविसंवादेने प्रयोजनानामावात् । तथाभूतं हि वदन् विसंवादकैः स्यात् । ‘अल्पम्’ इति विशेषणेन यदन्यत्र अकलङ्कदेवैर्विस्तरेणोक्तं प्रमाणेतरलक्षणं-१५ तदेवात्र संक्षेपेण विनेयव्युत्पादनार्थमभिधीयत इति पुनरुक्तव-निरासः । विस्तरेणान्यत्राभिहितस्यात्र संक्षेपाभिधाने विस्तररुचि-विनेयविदुषां नितरामनादरणीयत्वम् । की हि नाम विशेषव्युत्प-त्यर्थी प्रेक्षावांस्तत्साधनाऽन्यैसङ्गावे सत्यन्यत्राऽतैसाधने कृता-दरो भविदित्याह-‘लघीयसः’ । अतिशयेन लघवो हि लघीयांसः
- २० संक्षेपरुचय इत्यर्थः । कालशरीरपरिमाणकृतं तु लाघवं नेह गृह्यते-तस्य व्युत्पाद्यत्वव्यभिचारात्, क्वचित्तथाविधे व्युत्पादकस्याऽ-प्युपलम्भात् । तस्मावभिप्रायकृतमिह लाघवं गृह्यते । येषां संक्षेपेण व्युत्पत्त्यभिप्रायो विनेयानां तान् प्रतीदमभिधीयते-प्रतिपादकस्य

१ मूलं द्विकर्मकः । २ व्युत्पत्तिकरणार्हत्वात् । ३ आ कृत्वा (द्वतीयान्तं तेन कृत्स्नेत्यर्थः) । ४ परः । ५ पुनरुक्तवत्प्रमाणम् । ६ ईप् यथा-(व्युत्पादने यथा) । ७ कथने । ८ प्रमाणतदभासलक्षणम् अकलङ्केन प्रोक्तयाकलङ्कम् । कलङ्केन दोषेण रक्षितं वा । ९ पूर्वशास्त्रपरम्परा च प्रमाणं चेति पूर्वशास्त्रपरम्पराप्रमाणे तात्पर्यामित्यर्थः । १० परम्पराप्रमाणप्रसिद्धमिति वा पाठः । ११ संक्षिप्तशब्दरूपेण । १२ प्रतारणे । १३ प्रतारकः । १४ प्रमाणसंग्रहादौ । १५ परीक्षासुखे । १६ प्रमाणसंग्रहादौ । १७ प्रमाणसंग्रहादिसङ्गावे । १८ परीक्षासुखे । १९ निक्षेपव्युत्पत्त्यसाधने । २० न कोपि । २१ तर्हि कान् प्रतीलाभकृत्यायाह । २२ निमतो व्युत्पाद्यः काङ्क्षकृत्काम-वादिष्युक्ते गन्ताऽष्टमवर्षादिभ्यास्तत्त्वानसम्पन्नेन व्यभिचारात् । धीतः प्रतिपाद्यः नयकृत-कावचादिष्युक्ते ज्ञपीतशास्त्रेण कुम्भादिनाऽनेकान्तात् । तयोर्व्युत्पादकत्वादिति भावः । २३ बुद्धिः । २४ शूरोः ।

प्रतिपाद्योशयवशवर्तित्वात् । 'अकथितम्' [पाणिनि सू० १।४।५१] इत्यनेन कर्मसंज्ञायां सत्याकर्मणीपै ।

ननु चेष्टदेवतानमस्कारकरणमन्तरेणैवोक्तप्रकाराऽऽदिस्तोका-
भिधानमाचार्यस्याऽयुक्तम् । अविज्ञेन शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं हि
फलमुद्दिश्येष्टदेवतानमस्कारं कुर्वाणाः शास्त्रकृतः शास्त्रादौ प्रती-
यन्ते; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम् ; बाह्वनमस्काराऽकरणेपि काय-
मनोनमस्कारकरणात् । त्रिविधो हि नमस्कारो-अनोवाक्याकरण-
मेवात् । दृश्यते चातिलघुपौषेन विनेयव्युत्पादनमनसां धर्म-
कीर्त्यादीनामप्येवंविधा प्रवृत्तिः बाह्वनमस्कारकरणमन्तरेणैव "स-
म्यग्ज्ञानपूर्विका सर्वपुरुषार्थसिद्धिः" [न्यायवि० १।१] इत्यादि-
वाक्योपन्यासात् । यद्वा बाह्वनमस्कारोऽप्यनेनैवादिस्तोकेन कृतो
अन्त्यकृता; तथाहि-मा अन्तरङ्गबहिरङ्गानन्तज्ञानप्राप्तिहार्या-
दिभ्रीः, अण्यते शन्यते येनार्थोऽसावाणः शब्दः, मा चाणश्च माणौ,
प्रकृष्टौ महेश्वराद्यसम्भविनौ माणौ यस्याऽसौ प्रमाणो भगवान्
सर्वज्ञो दृष्टेष्टाऽविरुद्धवाक् च, तस्मादुक्तप्रकारार्थसंसिद्धिर्भवति । १५
तदमासाशु महेश्वरादेर्विपर्ययस्तत्संसिद्धिभावः । इति वक्ष्ये तयो-
र्लक्ष्म 'सामग्रीविशेषविश्लेषिताऽखिलावरणमतीन्द्रियम्' इत्याद्य-
साधारणस्वरूपं प्रमाणस्य । किंविशिष्टम् ? सिद्धं वक्ष्यमाण-
प्रमाणप्रसिद्धम्, तद्विपरीतं तु तदाभासस्य; तच्चाऽल्पं संक्षिप्तं
यथा भवति तथा, लघीयसः प्रति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्मेति । शास्त्रा-
रम्भे चाऽपरिमितगुणोदधेर्मगवतो गुणलवव्यावर्णनमेव बाह्वस्तु-
तिरित्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ छ ॥

प्रमाणविशेषलक्षणोपलक्षणाकाङ्क्षायास्तत्सामान्यलक्षणोपलक्ष-
णपूर्वकत्वात् प्रमाणस्वरूपविप्रतिपत्तिनिराकरणद्वारेणाऽबाधन-
त्सामान्यलक्षणोपलक्षणायेदमभिधीयते—

२५

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ॥ १ ॥

प्रमाणत्वान्यायानुपपत्तेरित्ययमेव हेतुर्दृष्टव्यः । विशेषणं हि व्यव-
च्छेदफलं भवति । तत्र प्रमाणस्य ज्ञानमिति विशेषणेन 'अर्थ्यभि-
चारोद्विशेषणविशिष्टार्थोपलक्षिजनकं कारकसाकल्यं साधक-

१ शिष्य । २ शत्रुण । ३ द्वितीया । ४ यतः । ५ उपायेन शब्देनेत्यर्थः ।
६ योवाचार्योवाच । ७ अथवा । ८ 'कश्चिदुक्त' इत्यादि । ९ वक्षसा नमस्कार-
करणं तु तस्य संखनम् । १० पूर्वक्षेत्र । ११ परिज्ञान । १२ साध्वे । १३ लक्षण
न्यायिकफलं तदाभासात्परिहारफलमित्यर्थः । १४ अविषयः व्यभिचारो नाम
कतिप्यातिः । १५ अन्त्यात्यतिन्यासभवादिरहितविशेषणसंभवसंज्ञादिन्यभिचारः ।
१६ प्रतीति । १७ जरजैवापिका बाह्यज्ञादीनां साकल्यं प्रमाणमित्याहुः ।

तमत्वात् प्रमाणम्' इति प्रत्याख्यातम्; तस्याऽज्ञानरूपस्य प्रमे-
यार्थवत् स्वपरपरिच्छित्तौ साधकतमत्वाभावतः प्रमाणत्वायो-
गात्-तत्परिच्छित्तौ साधकतमत्वस्याऽज्ञानविरोधिना ज्ञानेन
व्यासत्वात् । छिद्यै परश्वादिनां साधकतमेन व्यभिचार इत्ययुक्तम्;
५ तत्परिच्छित्ताविति विशेषणात्, न खलु सर्वत्र साधकतमत्वं
ज्ञानेन व्याप्तं परश्वादेरपि ज्ञानरूपताप्रसङ्गात् । अज्ञानरूपस्यापि
प्रदीपादेः स्वपरपरिच्छित्तौ साधकतमत्वोपलम्भात्तेन तस्याऽ-
व्याप्तिरित्यप्ययुक्तम्; तस्योपचारात्तत्र साधकतमत्वव्यवहारात् ।
साकल्यस्याप्युपचारेण साधकतमत्वोपगमे न किञ्चिदनिर्दिष्टम्-
१० मुख्यरूपतया हि स्वपरपरिच्छित्तौ साधकतमस्य ज्ञानस्योत्पादक-
त्वात् तस्यापि साधकतमत्वम्; तस्माच्च प्रमाणं-कारणे कार्यो-
पचारात्-अत्र वै प्राणा इत्यादिष्वत् । प्रदीपेन मया दृष्टं चक्षुषाऽ-
र्थगतं धूमेन प्रतिपन्नमिति लोकव्यवहारोऽप्युपचारतः; यथा
ममाऽयं पुरुषश्चक्षुरिति-तेषां प्रमितिं प्रति बोधेन व्यवधानात्,
१५ तस्य त्वपरेणैव व्यवधानात्तन्मुख्यम् । न च व्यपदेशोमात्रात्पार-
मार्थिकवस्तुव्यवस्था 'नैद्वल्लोदकं पादरोगः' इत्यादिष्वत् । ततो
यद्वोधाऽवोचरूपस्य प्रमाणत्वामिधानकम्—

'लिखितं सौक्ष्मिणो मुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम्' [] इति
नत्प्रत्याख्यातम्; ज्ञानस्यैवाऽनुपचरितप्रमाणव्यपदेशाद्वत्त्वात् ।
२० तथाहि-यद्यत्राऽपरेण व्यवहितं न तत्तत्र मुख्यरूपतया साधक-

१ ज्ञानन्तं प्रति निरस्तम् । २ वटवत् । ३ व्याप्यस्य । ४ परः । ५ अज्ञान-
रूपेण । ६ कारणत्वेनाभिप्रेते वस्तुनि । ७ अस्पृश्या । ८ परः । ९ अप्रमाण-
विरोधिज्ञानेन व्याप्तं तत्तत्स्वपरपरिच्छित्तौ साधकतममतोऽज्ञानरूपस्य स्वपरपरिच्छित्तौ
साधकतमस्य तेन ज्ञानेनाभ्यासिः । १० न परमार्थतः । ११ प्रदीपस्य स्वपरप्रकाशक-
रूपेण साधकतमत्वं न तु स्वपरपरिच्छित्तरात्मकत्वेनेति भावः । १२ परैः ।
१३ जैनानाम् । १४ ज्ञानजनकत्वेन । १५ अज्ञानरूपत्वादित्यस्य हेतोरनैकान्तिकत्वे ।
१६ प्रदीपादेः प्रामाण्यम् । १७ वस्तुरूपं वह्निः । १८ ज्ञानधर्मसाधकतमस्य ।
१९ अग्निस्वरूपस्य । २० साधकतमज्ञानहेतुत्वेन । २१ साधकतमत्वेन । २२ साध-
कतमज्ञानस्य हेतुत्वेन । २३ प्रमितिक्रियां प्रति । २४ परिच्छिष्टं प्रति प्रदीपादेः
साधकतमत्वं न मुख्यम् । २५ प्रदीपादेसाधकतमत्वमिति व्यपदेशमात्रात् । २६ प्रदी-
पादेः प्रामाण्यम् । २७ 'शाङ्ख्यं हरितं प्रोक्तं । नद्वर्कं नद्वर्कं नद्वर्कं' (क) दृगसंज्ञ-
मुदकं नद्वर्कं कथ्यते । २८ पादरोगकारणतया व्यपदिश्यमानं नद्वर्कलोदकं यथा पाद-
रोगत्वेन न पारमार्थिकं तथा प्रकृतमपि । २९ ज्ञानस्यैव साधकतमत्वं यतः ।
३० नैयायिकस्य वैशेषिकस्य च । ३१ आसनादिलोके यत्रादि, तत्प्रमाणम् । ३२ पुरुषाः
प्रमाणम् । ३३ अनुभवः प्रमाणम् ।

तमव्यपदेशार्हम्, यथा हि च्छिदिक्रियायां कुठारेण व्यवहितोऽ-
यस्कारः, स्वरपरिच्छितौ विज्ञानेन व्यवहितं च परपरिकल्पितं
साकल्यादिकमिति । तस्मात् कारकसाकल्यादिकं साधकतम-
व्यपदेशार्हं न भवति ।

किंच; स्वरूपेण प्रसिद्धस्य प्रमाणत्वादिव्यवस्था स्यान्नान्यथा-५
अतिप्रसङ्गात् न च साकल्यं स्वरूपेण प्रसिद्धम् । तत्स्वरूपं हि
सकलान्येव कारकाणि, तद्धर्मो वा स्यात्, तत्कार्यं वा, पदार्थान्तरं
वा गत्यन्तराभावात् ? न तावत्सकलान्येव तानि साकल्यस्व-
रूपम्; कर्तृकर्मभावे तेषां करणत्वानुपपत्तेः । तद्भावे वा—अन्येषां
कर्तृकर्मरूपता, तेषामेव वा ? न तावदन्येषाम्, सकलकारकव्यति-१०
रेकेणान्येषामभावात्, भावे वा न कारकसाकल्यम् । नापि तेषा-
मेव कर्तृकर्मरूपता; कारणत्वाभ्युपगमात् । न चैतेषां कर्तृकर्म-
रूपाणामपि करणत्वं-परस्परविरोधात् । कर्तृता हि ज्ञानचिकीर्षा-
प्रयत्नाधारता स्वातन्त्र्यं वा, निर्वैत्यत्वादिधर्मयोगित्वं कर्मत्वम्,
करणत्वं तु प्रयत्नक्रियाऽनोधारत्वमित्येतेषां कथमेकैव सम्भवः ? १५
तत्र सकलकारकाणि साकल्यम् ।

नापि तद्धर्मः—स हि संयोगः, अन्यो वा ? संयोगश्चेत्त; आस्था-
ऽनन्तरं-विस्तरतो निवेधात् । अन्यश्चेत्; नास्य साकल्यरूपपता
अतिप्रसङ्गात्-व्यस्तैर्धर्मैर्मपि तत्सम्भवात् । किं चाऽसौ कारके-
भ्योऽव्यतिरिक्तः, व्यतिरिक्तो वा ? यद्यव्यतिरिक्तः, तदा धर्ममात्रं २०
कारकमात्रं वा स्यात् । व्यतिरिक्तश्चेत्सम्बन्धाऽसिद्धिः । सम्बन्धे-
ऽपि वा सकलकारकेषु युगपत्तस्य सम्बन्धेऽनेकदोषदुष्टसामौ-

१ प्रदीपादि लिखितादि ॥ तथाहीत्यत्र कारकसाकल्यादिकं धर्मि, मुख्यरूपतया
साधकतमव्यपदेशार्हं न भवतीति धर्मैः, स्वरपरिच्छितौ विज्ञानेन व्यवहितत्वाद्
प्रदीपादिवत् । २ ज्ञातृत्वम् । ३ साधकतमम् । ४ स्वरविषाणादेः । ५ अत्र बधार्थस्य
स्वार्थे भावे कर्मणि ध्वञ् । ६ प्रमाणरूपसाकल्यस्य करणस्वरूपत्वं मतः । ७ कारका-
णाम् । ८ गीमासकानां कर्वादीनां लक्षणमिदम् । ९ “ध्यायं विषयमूर्तं च निर्वैत्यं
विक्रियात्मकम् । कर्तृश्च क्रियया व्याप्तमीप्सितानीप्सितेतरत्वं” । १० छेदनम् ।
उत्तरेषाणामप्येव आचारत्वं न तु स्थितिरित्यर्थः । ११ कर्मकारोरेव छिदि प्रमेति-
लक्षणप्रधानक्रियाधारत्वं न तु करणम् । १२ विरुद्धवर्णणम् । १३ साकल्ये ।
१४ प्रमेयत्वप्रमातृत्वसत्त्वादि । १५ सन्निकर्षः । १६ साधारणमिदमर्थः । १७ अन्य-
धर्मः । १८ कारकाणां द्विगमादीनाम् । १९ धर्मो वा कारकरूपधर्मो वा स्यात् कार-
केभ्योऽन्यधर्मस्याव्यतिरिक्तत्वाद् । २० एकसमावेनानेकत्वमावेन च वृत्तौ सामान्या-
नवसादयः स्युः । २१ सामान्यादौ ये दोषास्तेऽत्रापि स्थितिरित्यर्थः । एकत्वमावेन
समावेदेन च वृत्तौ सामान्यत्वानवसादयः ।

न्यादिरुपतापेक्षिः। क्रमेण सम्बन्धे सकलकारकधर्मता साकल्यस्य न स्यात्-यदैव हि तस्यैकेन हि सम्बन्धो न तदैवाऽन्येनेति ।

नापि तत्कार्यं साकल्यम्—नित्यानां तज्जननस्वभावत्वे सर्वदा तदुत्पत्तिप्रसक्तिः, एकप्रमाणोत्पत्तिसमये सकलतदुत्पाद्यप्रमाणो-
 ५ त्पत्तिश्च स्यात् । तथाहि—यदा यज्जनकमस्ति तत्तदोत्पत्तिमत्प्रसि-
 द्धम्, यथा तत्कालाभिमतं प्रमाणम्, अस्ति च पूर्वोत्तरकालभाविनां
 सर्वप्रमाणानां तैदा नित्याभिमतं जनकमात्मादिकं कारणमिति ।
 आत्मादिकारणे सत्यपि तेषामनुत्पत्तौ ततः कदाचनान्पुत्पत्तिर्न
 स्यादिति सकलं जगत् प्रमाणविकलमापद्यते । आत्मादौ तत्क-
 १० रणसमये सत्यपि स्वयमेव तेषां यथाकालं भावे तत्कार्यता-
 विरोधः-तस्मिन् सत्यप्यभावात्-स्वयमेवान्यदा भावात् । न च
 स्वकालेपि तत्सङ्गावे भावात्तत्कार्यता, गङ्गादिकार्यताप्रसक्तेः ।
 न च तस्यापि तत्प्रति कारणत्वस्येष्टेरदोषोयमिति न कव्यम्;
 आत्माऽनात्मविभागाभावप्रसङ्गात् । यत्र प्रमितिः समवेता
 १५ सोऽत्रात्मा नान्यै इत्यप्यनालोचितवचनम्; समवर्थाऽसिद्धौ सम-
 वेतत्वाऽसिद्धेः । यदा यत्र यथा यद्भवति तदा तत्र तथाऽऽत्मा-
 देस्तत्करणसमर्थत्वाभैकदा सकलप्रमाणोत्पत्तिप्रसक्तिरित्यप्यस-
 म्भाव्यम्; तत्स्वभावभूतसामर्थ्यमेवेदमन्तरेण कार्यस्य कालौदि-
 मेदायोगात्, अन्यथौ द्वैतस्य पृथिव्यादिकार्यनानात्वस्याऽदृष्ट-
 २० पार्थिव्यादिपैरप्रमाणैदिकारणत्वातुर्विध्यं किमर्थं समर्थ्यते ? नित्य-
 स्वभावमेकमेव हि किञ्चित्समर्थनीयम् । यथा च कारणजातिभेद-
 मन्तरेण कार्यभेदो नोपपद्यते तथा तच्छक्तिभेदमन्तरेणापि । न च

१ अवयवी । २ रूपमिव रूपं यस्य तद्वर्त्मस्य सामान्ये ये दोषास्तोऽत्रापि स्युः ।
 ३ कारकेण । ४ नेत्रोद्घाटनयोग्यदेशगमनादि । ५ आत्माकाशकालदिगमनसाम् ।
 ६ कार्यलक्षणसाकल्यप्रमाणस्य । ७ सकलपदार्थपरिच्छेदकार्यलक्षणसाकल्यप्रमाणाना-
 नुत्पत्तिः स्यात् । ८ कारणाऽवीनानि कार्याणि यतः । ९ उपनयः । १० विषयित-
 कालाऽभिमतकार्योत्पत्तिसमये । ११ कार्यविकल्पः । १२ युगपद प्रमाणकार्यस्य ।
 १३ अन्यथा । १४ परः । १५ गगनादिः । १६ चतुर्वेपरिच्छेदेऽयं निराकरिष्यते ।
 १७ परः । १८ आत्मादि । १९ नानाकर्मणि विभिन्नशक्तिहेतुकानि विभिन्नकार्य-
 त्वात् द्रव्यादिभेदकार्यवत् । २० सर्वेषां कार्याणां युगपदुत्पत्तिर्यतः । २१ देश-
 स्वभावः । २२ तत्सामर्थ्यमेदं विनापि कार्यस्य कालादिभेदो भविष्यतीति चेत् ।
 २३ प्रत्यक्षस्य । २४ आप्यतेनसत्तावयवी । २५ इमशुकादि । २६ प्रज्ञादि ।
 २७ कारणम् । २८ पार्थिव्यादिकाति । २९ अत्रागिमायस्तु योग्यतावच्छिन्नस्वरूप-
 सदकारणसमवधानमेव शक्तिरिति गौतमीयन्यायिकवेत्ते द्रव्याच्छक्तिरूपवत्ते चेति नैना
 बदन्तीति मत्वा द्रुपदं बदलपरःतद्वृत्त्यपरिनिहीर्षया न चेलाह ।

ययैकयाशक्त्यैकमनेकाः शक्तीर्विमर्ति तत्राप्यनेकशक्तिपरिकल्प-
नेऽनवस्थाप्रसङ्गात्, तयैव तदनेकं कार्यं करिष्यतीति वाच्यम्;
यतो न भिन्नाः शक्तीः कयाविच्छत्तया कश्चिद्वारयतीति जनो
मन्यते-स्वकारणकलापात्तदात्मिकस्यैवाऽस्योत्पादात् ।

संहकारिसव्यपेक्षाणां जनकत्वादेशकालस्वभावभेदः कार्यं न^५
विरुध्यतइत्यपि चार्तम्; नित्यस्यानुपकार्यतया सहकार्येऽपेक्षया
अयोगात् । सहकारिणो हि भावाः किं विशेषार्थोयित्वेन, एकार्थकौ-
रित्वेन वामिधीयन्ते? प्रथमपक्षे किमसौ विशेषस्तेभ्यो भिन्नः,
अभिन्नो वा तैर्विधीयते? भेदे सम्बन्धासिद्धेस्तदवस्थमेवाकारक-
त्वमेतेषां पूर्ववस्थायामिव पञ्चादप्यनुपज्यते । तदैसिद्धिश्च सम-^{१०}
वायादिसम्बन्धस्याग्रे निराकरिष्यमाणत्वात् सुप्रसिद्धा । विभि-
न्नातिशयात् कार्योत्पत्तौ चात्र कौरकव्यपदेशोऽपि कल्पनाश्लिष-
कल्पित एव-अतिशयस्यैव कारकत्वात् । द्वितीयपक्षे तु कथमेतेषां
नित्यता उत्पादविनाशात्मकातिशयादभिन्नत्वात्तत्स्वरूपवत् ?
एकार्थकारित्वेन त्वेषां सहकारित्वं नौत्सामिः प्रतिक्षिप्यते, किंत्व-^{१५}
परिणामित्वे तेषां प्रोक्त पञ्चात् पूर्ववत्भाववस्थायामपि कार्यकारि-
त्वप्रसङ्गतः 'संहैव कुर्वन्ति' इति नियमो न घटते । न खलु संहि-
त्येऽपि भौवाः परैरूपेण कार्यकारिणः । स्वयमकारिकाणामन्यसञ्चि-
धानेऽपि तत्कारित्वासम्भवात्, सम्भवे वा पर एव परमार्थतः
कार्यकारको भवेत् स्वात्मनि तु कारकव्यपदेशो विकल्पकल्पितो^{२०}
भवेत् । तैसा चान्यस्यानुपकारिणो भवमनपेक्षयैव कार्यं तद्विक-
लेभ्य एव सहकारिभ्यः समुत्पद्येत । तेभ्योऽपि वा न भवेत्,
स्वैवं तेषामप्यकारकत्वात् परैरूपेणैव कारकत्वात् । अतः सर्वेषां

१ आत्मादिभरण । २ अनेकशक्तिभरणे । ३ भरणस्य । ४ हे जन तव
हेतोः । ५ आत्मादि । ६ परेण । ७ आत्मा । ८ आत्मादि । ९ पुण्यपाप ।
१० नानाशक्त्यात्मकस्य । ११ आत्मादेः । १२ परः । १३ आत्मादीना । १४ कार-
णानां । १५ कार्यस्य । १६ अतिशय उपकार । १७ कारकविशेषः क्रियते तेः ।
१८ कारकाणां विशेषाप्यारोपकत्वेन । १९ एकार्थकरणत्वेनोभयोरपि । २० कार-
केभ्यः । २१ सहकारिरहितानस्यामिव । २२ जनकत्वेन ? [सम्बन्धासिद्धिश्च] ।
२३ आत्मादेः । २४ आत्मादीना । २५ अतिशयस्वरूपवत् । २६ सहकारिणा ।
२७ जनैः । २८ सहकारिभ्यः । २९ भिन्नभावावस्थानां । ३० सहकारिभिः ।
३१ सहकारिणां । ३२ आत्मादयः । ३३ सहकारिरूपेण । ३४ आत्मादीना ।
३५ सहकारि । ३६ आत्मादी । ३७ एवं सति । ३८ आत्मनः । ३९ जनकत्वेन ।
४० सद्भावं । मुख्यकारकस्य स्वरूप । ४१ आत्मादिक । ४२ सहकारिकारकेभ्यः ।
४३ स्वरूपेण । ४४ आत्मादिरूपेण ।

स्वयमकारकत्वे पररूपेणाप्यकारकत्वात् तद्वातौच्छेदतो न कुतश्चित् किञ्चिदुत्पद्येत । ततः स्वरूपेणैव भावाः कार्यस्य कर्तार इति न कदाचित्त्तिक्रियोपैरतिः स्यात् ।

ननु कार्याणां सामग्रीप्रभवस्वभावत्वात् तस्याश्चापरापरप्रत्यय-
५ योगरूपत्वात्त्येकं नित्यानां तत्किंयास्वभावत्वेऽप्यनुत्पत्तिस्तोषा-
मिति, तदप्यसाम्प्रतम्; यतोऽयमेकोऽपि भावः क्रमभाविकार्यो-
त्पादने समर्थोऽतः कथमेषां भिन्नकालापरापरप्रत्यययोगैर्लक्षणाऽ-
नेकसामग्रीप्रभवस्वभावता स्यात्? एकेर्नापि हि तेन तज्जनन-
सामर्थ्यं विभाणेन तान्युत्पादयितव्यानि, कथमन्यथा केवलस्य
१० तज्जननस्वभावता सिद्ध्येत्? तस्याः कार्यप्रादुर्भावानुमीयमानस्व-
रूपत्वात् प्रयोगः—यो यन्न जनयति नासौ तज्जननस्वभावः यथा
गोधूमो यवाङ्कुरमजनयन्न तज्जननस्वभावः, न जनयति धौंयं
केवलः कदाचिदप्युत्तरोत्तरकालभावीनि प्रत्ययान्तरापेक्षाणि
कार्याणीति । ननु प्रत्ययान्तरमपेक्ष्य कार्यजननस्वभावत्वात्तासौ
१५ केवलस्तज्जनयति, न च सहकारिसहितासहितावस्थयोरस्य स्वभा-
वभेदः; प्रत्ययान्तरापेक्षस्वकार्यजननस्वभावतायाः सर्वदा भावात्,
तदप्यपेशलम्; यतः प्रत्ययान्तरसन्निधानेऽपि स्वरूपेणैवैवस्य
कार्यकारिता, तच्च प्रौढप्यस्तीति प्रागेवैतः कार्योत्पत्तिः स्यात् ।
प्रत्ययान्तरमेव्यश्चास्यातिशयसम्भवे तदपेक्षा स्यादुपकारैकेन्द्रे-
२० वास्याः सम्भवात्, अन्यथाऽतिप्रसङ्गात् । तैसन्निधानस्यासन्नि-
धानतुल्यत्वाच्च केवल एवासौ कार्यं कुर्यात्, अकुर्वच्च केवलः
सहितावस्थार्या च कुर्वन् कथमेकस्वभावो भवेद्विरुद्धभर्माध्या-
सतः स्वभावभेदानुषङ्गात्?

किञ्च सकलानि कारकाणि सौकस्योत्पादने प्रवर्तन्ते, असक-
२५ लानि वा? न तावत्सकलानि साकल्यासिद्धौ तैसकलत्वासिद्धेः ।

१ आत्मादिरूपेणापि । २ कारक । ३ कार्य । ४ स्थायीनतया । ५ कार्य ।
६ करण । ७ विश्रामः । ८ परः । ९ कारण । १० कदाचित् रूपमिन्नकालक्रम-
भाविकारणयोगरूपत्वात् । ११ केवलं । १२ करण । १३ नित्यः । १४ कारण ।
आ । १५ नित्यम् । १६ केवलेन । १७ परिणामित्वं । १८ न तथा । *प्रलेक-
मात्मादिर्भर्मा (*केवलः) तदजनकत्वादिति हेतुः तज्जननस्वभावो न भवतीति साध्यम् ।
१९ हेतुः । २० भर्मा । २१ अयमेवोपनयः । २२ तस्यदात्मादिः प्रलेक्युत्तरोत्तर-
निगमनम् । २३ परः । २४ कारणान्तर । २५ सहकारिलक्षणकारणान्तर । २६ नित्यस्य ।
२७ सहकारिसन्निधानात् । २८ आत्मादिकारकत्वात् । २९ कारकस्य । ३० उपकार-
काणामेवापेक्षा भवति नाऽन्येषामित्यर्थः । ३१ अनुपकारकेवैव सम्भवे । ३२ पदोत्पत्तौ
कुविन्दस्य कृषिण्डे अपेक्षा भवेत् । ३३ अनुपकारकत्वान्तर । ३४ प्रमाण ।
३५ यतोऽद्यापि विचार्यमाणं (ततः) । ३६ विभाणामपि प्राप्नोति ।

अन्योऽन्याश्रयश्च-सिद्धे हि साकल्ये तेषां सकलरूपतासिद्धिः, तत्सिद्धौ च साकल्यसिद्धिरिति । नाप्यसकलान्यतिप्रसक्तेः । किञ्च यथा प्रेत्यासत्यां तथाविधान्येतानि साकल्यमुत्पादयन्ति तथैव प्रमामप्युत्पादयिष्यन्तीति व्यर्थं साकल्यकल्पना । करण-मन्तरेण प्रमोत्पत्त्यभावे साकल्येऽप्यन्यत् करणं कल्पनीयमित्यन-५ वस्था । न चाध्यक्षसिद्धत्वात्साकल्यस्यादोषोऽयम् ; आत्मान्तः-करणसंयोगोर्गौदेरतीन्द्रियस्याध्यक्षाऽविषयत्वात् । केवलं विशि-ष्टार्थोर्पलब्धिलक्षणकार्यस्याऽध्यक्षसिद्धस्य करणमन्तरेणानुपपत्ते-स्तत्परिर्कल्पना, तच्च मनोलक्षणकरणसङ्गावे साकल्यमेवेत्यव-धारयितुं न शक्यम् । तन्न सकलकारककार्यं साकल्यम् । १७

नापि पैदार्थान्तरं सर्वस्य पदार्थान्तरस्य साकल्यरूपताप्रस-ङ्गात् । तथा च तत्सङ्गावे सर्वत्र सर्वदा सर्वस्यार्थोर्पलब्धिरिति सर्वैः सर्वदर्शी स्यात् । ततः कारकसाकल्यस्य स्वरूपेणाऽसिद्धेः सिद्धौ वा ज्ञानेन व्यवधानाच्च प्रामाण्यम् ॥ छ ॥

१ स्वभावेन । प्रलासत्तिः स्वभावः । २ कारकाणि । ३ परः । ४ साकल्यस्य । ५ पुनः । ६ ज्ञान । ७ अर्थापत्तिप्रमाणम् । ८ ज्ञेयता (मन्यते) । ९ अर्थापत्ति-प्रमाणप्रसिद्धं करणं । १० भावमनो । ११ प्रमितिरूपः पदार्थः । १२ नृः । १३ सर्वपदार्थान्तरसाकल्यरूपप्रमाणत्वात् ।

१ कारकसाकल्यस्य स्वरूपं तावत् सामग्रीप्रमाणवादी व्यवन्तमदुः इत्थं निरूपयति 'अन्यभिचारिणीमसन्निवृत्तमर्थोपलब्धिं विदधती बोधावोपसम्भावा सामग्री प्रमाणम् । बोधाऽवोपसम्भावा हि तस्य स्वरूपम् अन्यभिचारादिविशेषणार्थोपलब्धिस्तावन्तं लक्षणम्' (न्यायमं० पृ० १२)

सामग्री च कारकसाकल्यस्यैव व्यपदेशान्तरम्, अतएवार्थं कारकसाकल्यवादः 'सामग्रीप्रमाणवादः' इति शब्देनापि व्यपदिश्यते । तस्य च साधिका मुख्या युक्तिः इत्यर्थः—'यत एव साधकतमं करणम् करणसाधनश्च प्रमाणशब्दः, तत एव सामग्र्याः प्रमाणत्वं युक्तम्, तद्वतिरेकेण कारकान्तरे कचिदपि तमवयवस्यसर्वाण्युपपत्तेः । अनेक-कारकसन्निधाने कार्यं घटमानम् अन्यतरव्यपगमे च विघटमानं कसौ जतिशयं प्रयच्छेत् ? नचातिशयः कार्यजन्मनि कस्यचिदवधार्यते सर्वेषां तच्च व्याप्तिप्रमाणत्वात्' (न्याय मं० पृ० १३)

सामग्रीप्रमाणत्वादस्य द्विधा छेदो न्यायमंजया दृश्यते । एकस्तावत् पूर्वोक्त एव द्वितीयस्तु प्रकारः, 'कर्तुं कर्मविलक्षणसाधनविपर्ययद्विवाडवैवोपनिषासिनी बोधाऽवोप-सम्भावा सामग्री प्रमाणम्' इत्यादिरूपः 'अपरे पुनराचक्षते' इति कृत्वा तत्रैव (पृ० १४) निर्दिष्टो दृश्यते ।

प्र० क० भा० २

मा भूत् कारकसाकल्यस्यासिद्धस्वरूपत्वात् प्रामाण्यं सन्निकर्षादेस्तु सिद्धस्वरूपत्वात्प्रमित्युत्पत्तौ साधकतमत्वाच्च तत्स्यात् । सुप्रसिद्धो हि चक्षुषो घटेन संयोगो रूपादिना (संयुक्तसमवायः रूपत्वादिना) संयुक्तसमवेतसमवायो ज्ञानजनकः । साधकतमत्वं च प्रमाणत्वेन व्याप्तं न पुनर्ज्ञानत्वमज्ञानत्वं वा संशयादिवत्प्रमेयार्थवच्च, इत्यसमीक्षिताभिधानम् ; तस्य प्रमित्युत्पत्तौ साधकतमत्वाभावात् । यद्भावे हि प्रमितेर्भाववत्ता यदभावे चाभाववत्ता तैस्तत्र साधकतमम् ।

“भावाभावयोस्तद्वत्ता साधकतमत्वम्” []

१० इत्यभिधानात् ।

न चैतत्सन्निकर्षादौ सम्भवति । तद्भावेऽपि कचित्प्रमित्युत्पत्तेः ; न हि चक्षुषो घटवदाकाशे संयोगो विद्यमानोऽपि प्रमित्युत्पादकः, संयुक्तसमवायो वा रूपादिवच्छब्दरसादौ, संयुक्तसमवेतसमवायो वा रूपत्ववच्छब्देत्वादौ । तदभावेऽपि च १५ विशेषणज्ञानाद्विशेष्यप्रमितेः सद्भावोपगमात् । योग्यताभ्युपगमे सैवास्तु किमनेनान्तर्गङ्गुनी ?

१ परः । २ लिङ्गशब्दः । ३ द्रव्यत्वकर्मसामान्य । ४ शुणत्वकर्मत्व । ५ प्रमितौ । ६ सतोः । ७ यस्य तस्य तत्त । ८ आदिपदेन कन्दलिङ्ग । ९ नयति । १० एगनमिति प्रमितेः । ११ कर्म । १२ रसत्वत्पक्षेत्वादि । १३ सन्निकर्ष । १४ दण्ड । १५ दण्डोऽस्मात्स्तीति तस्मिन् दण्डिनि । १६ सन्निकर्षस्य शक्तिः । १७ यद्यपि घटाकाशयोरविशिष्टश्चक्षुषः सन्निकर्षोऽस्ति तथापि योग्यतावशाद् घट एव प्रमितिं जनयेत्काकाशे इति सन्निकर्षशक्त्यभ्युपगमे । १८ सन्निकर्षेण । १९ ग्रन्थिना (अणेन) ।

अस्य च सामर्थ्यपरनामकस्य कारकसाकल्यस्य विविचरीत्या खंडनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—न्यायकु० चं० लि० परि० २ । सन्मालि० टी० पृ० ४७३ । स्वा० रत्नाकर पृ० ३५ ।

प्रस्तुतार्थगतखंडने (पृ० ११ पं० ८) आवातस्य ‘सहकारिणो हि भावाः किं विशेषाधायात्वेन धर्माकारित्वेन बाऽभिधीयन्ते’ इत्याचंशस्य तुलना जर्नेटकृत-हेट्टु-विन्दुटीकायाः—‘नैयायिकास्तु मन्वन्ते भावानां सहकारिसत्तिपावाऽसत्तिपावापेक्षया कारकस्य भावव्यवस्था....’ (पृ० १५०) इत्याचंशेन विधेया ।

१ यद्यपि सन्निकर्षस्य सामान्यतो निर्देशः कणाद-न्यायसूत्रे तद्भाष्ययोरपि समस्ति तथापि तस्य प्रक्रियानर्कं निवरणं बोधा तद्वेदनिरूपणं च न्यायवा० पृ० ३१ तथा पृ० ३७३ । न्यायवा० वा० टी० पृ० ११६ तथा पृ० ५२० । न्यायमं० पृ० ४७७ । प्रश्न० कन्द० पृ० २३ तथा १९५ । इत्यादिषु द्रष्टव्यम् ।

२ ‘कः सन्निकर्षकतमार्थः ? साधकतमं प्रमाणमिति केवलं वाक्यमभिधीयते नार्थः इति ? नानाऽभावयोस्तद्वत्ता’ न्यायवा० पृ० ६ ।

योग्यता च शक्तिः, प्रतिपत्तुः प्रतिबन्धापायी वा ? शक्तिश्चेत् ; किमतीन्द्रिया, सहकारिसाक्षिध्यलक्षणा वा ? न तावदतीन्द्रिया; अनभ्युपगमात् । नापि सहकारिसाक्षिध्यलक्षणा; कारकसाक्ष्य-पक्षोक्तशेषदोषानुषङ्गात् । सहकारिकारणं चात्र द्रव्यम्, गुणः, कर्म वा स्यात् ? द्रव्यं चेत् ; किं व्यापि द्रव्यम्, अव्यापि द्रव्यं वा ? ५ न तावद् व्यापिद्रव्यम् ; तत्साक्षिध्यस्याकाशादीन्द्रियसन्निकर्षेऽप्यविशेषात् । कथमन्यथा दिक्कालाकाशात्मनां व्यापिद्रव्यता । अथाऽव्यापि द्रव्यम् ; तर्हि मनः, नयनम्, आलोको वा ? त्रितय-स्याप्यस्य साक्षिध्यं घटादीन्द्रियसन्निकर्षवदाकाशादीन्द्रियसन्नि-कर्षेऽप्यस्त्येव । गुणोऽपि तत्सहकारी प्रमेयगतः, प्रमातृगतो वा १० स्यात्, उभयगतो वा । प्रमेयगतश्चेत् ; कथं नाकाशस्य प्रत्यक्षता द्रव्यत्वतोऽस्यापि गुणसद्भावाविशेषात् ? अमूर्तत्वाभास्य प्रत्यक्ष-तेऽस्यप्ययुक्तम् ; सामान्यादेरप्यप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् । प्रमातृगतोऽप्येदृष्टोऽन्यो वा गुणो गगनेन्द्रियसन्निकर्षसमयेऽस्त्येव । न कलु तैनास्यं विरोधो येनानुत्पत्तिः प्रध्वंसो वा तैत्सद्भावेऽस्य १५ स्यात् । उभयगतपक्षेऽप्युभयपक्षोपक्षितदोषानुषङ्गः । कर्मोऽप्यर्थो-न्तरगतम्, इन्द्रियगतं वा तैत्सहकारि स्यात् ? न तावदर्थोन्तर-गतम् ; विज्ञानोत्पत्तौ तैस्थानकृत्वात् । इन्द्रियगतं तु तत्तत्रास्त्येव ; आकाशेन्द्रियसन्निकर्षे नयनोन्मीलनौदिकर्मणः सद्भावात् । प्रति-बन्धोपायरूपयोग्यतोपगमे तु सर्वे सुखम्, यस्य यैत्र यथाविधौ २० हि प्रतिबन्धापायस्तस्य तत्र तथाविधार्थपरिच्छित्तित्दैपद्यते । प्रतिबन्धापायश्च प्रतिपत्तुः सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे प्रसाधयिष्यते ।

न च योग्यताया एवार्थपरिच्छित्तौ साधकतमत्वतः प्रमाण-त्वानुषङ्गात् 'ज्ञानं प्रमाणम्' इत्यस्य विरोधः ; अस्याः स्वार्थग्रहण-शक्तिलक्षणभावेन्द्रियसमाधायाः 'यैदसन्निकर्षाने कौरकान्तरसन्नि- २५

१ सन्निकर्षः । २ येन्द्रिया चेद् पटवद्भूयेत न च दृश्यत्वे इयमतोऽतीन्द्रिया । ३ परैः । ४ धर्मकार्यपक्षयोः धर्मरूपे पक्षे । ५ सन्निकर्षे । ६ क्रिया । ७ रूपरूपत्व । ८ ज्ञेयपदार्थः । ९ परः । १० धन्वादेः । ११ पुण्यपापरूपः । १२ इच्छादिः । १३ नमो-नयनसन्निकर्षेण । १४ सहकारिगुणस्य । १५ सन्निकर्षः । १६ गुणस्य । १७ प्रमेयः । १८ सन्निकर्षः । १९ अन्यथा सिरार्थानामप्रतीतिप्रसङ्गात् । २० निमीजनः । २१ आव-रणोपायः । २२ घटादौ प्रतीत्यधत्ते नाकाशादाविति । २३ जुः । २४ अर्थः । २५ शानं । २६ नरस्य । २७ कक्षणस्य । २८ न च विरोधो कुतः । सामग्रीत्वत इति पर्यन्तमस्य हेतुर्द्रव्यः । २९ भावेन्द्रियः । ३० अनुमानम् । यदभावसन्निकर्षादिसङ्गानौ प्रसिद्धौ । सार्धसंवेदनजननी न भवत इति साध्वो वीर्यः । अदनुपपन्नमानत्वात् । ३१ सन्निकर्षः ।

१ जु०—यदसन्निकर्षाने कारकान्तरसन्निकर्षाने इत्यादि प्रमाण ४ पृ० ५१ ।

धामेऽपि यत्रोत्पद्यते तत्तत्करणकम्, यथा कुठारासन्निधाने कुठार-
र(काष्ठ)च्छेदनमनुत्पद्यमानं कुठारकरणकम्, नोत्पद्यते च भावे-
न्द्रियासन्निधाने स्वार्थसंवेदनं सन्निकर्षादिसङ्गावेऽपीति तद्भावे-
न्द्रियकरणकम् इत्यनुमानतः प्रसिद्धस्वभावायाः स्वार्थावभासिज्ञा-
नलक्षणप्रमोणसामग्रीत्वतः तदुत्पत्तावेव साधकतमत्वोपपत्तेः ।
ततोऽन्यनिरपेक्षतया स्वार्थपरिच्छित्तौ साधकतमत्वाज्ञानमेव
प्रमाणम् । तद्धेतुत्वात्सन्निकर्षादेरपि प्रामाण्यम्, इत्यप्यसमीची-
नम् । छिदिक्रियायां करणभूतकुठारस्य हेतुत्वादयस्कारादेरपि
प्रामाण्यप्रसङ्गात् । उपचारमात्रेणाऽस्य प्रामाण्ये च आत्मादेरपि
१० तत्प्रसङ्गसिद्धेतुत्वाविशेषात् ।

नैवे आत्मनः प्रमादत्वाद् वटादेश्च प्रमेयत्वाच्च प्रमाणत्वं
प्रमादप्रमेयाभ्यामर्थान्तरस्य प्रमाणत्वाभ्युपगमात् इत्यप्यसङ्ग-
तम् । न्येयप्राप्तस्याभ्युपगममात्रेण प्रतिषेधायोगात्, अन्यथा
‘अचेतनादर्थान्तरं प्रमाणम्’ इत्यभ्युपगमात्सन्निकर्षादेरपि तैश्च
१५ स्यात् । किञ्च प्रमेयत्वेन सह प्रमाणत्वस्य विरोधेप्रमाणमप्रमेय-
मेव स्यात्, तथा चैतत्त्वप्रसङ्गः संविधिहेतुवैकल्यावस्थितैः,
इत्ययुक्तमेतत्—

‘प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं प्रमितिरिति चतसृष्वेवंविधास्तु तैस्त्वं

१ तत्साह । २ ता । ३ बोधता । ४ हाने साधकतमत्वसामर्थ्यं । ५ भावेन्द्रियाह ।
६ सन्निकर्ष । कारकान्तर । ७ परः । ८ तत्प्रसङ्गादिति पाठान्तरम् । ९ प्रमातुः ।
१० मुख्यज्ञान । ११ परः । १२ कर्तृत्वाद् । १३ निवृत्त्य । १४ परेणाह । १५ बुद्ध्या
प्राप्तस्य प्रमाणत्वस्य । १६ बुद्ध्या रक्षितानुपपत्तेन । १७ चेतनं । १८ परैः चेतैः ।
१९ अचेतनत्वाद् । २० प्रामाण्यं । २१ वस्तुनि । २२ प्रमितिविषयाः प्रमेया इति
वचनानुज्ञानविषयत्वाद्भावात् व्यवस्थितैः प्रमितिविषयप्रमेयत्वे सत्येव सत्यव्यवस्थिति-
स्तु प्रमाणो नास्तेवाप्रमेयकत्वादिति भावः । २३ अप्रमेयत्वात् सादृश्यं च न
स्यादिति (हेतोः) सन्निकर्षानेकान्तिकत्वे सत्याह । २४ परिच्छित्तं ज्ञानं । २५ प्रमाणं
सन्न भवति अप्रमेयत्वात्परिमाणवत् । २६ सत्ता । २७ यदाह । २८ तत्तत् ।
२९ परमार्थः ।

१ ‘ननु प्रमादप्रमेययोरेपि उपलब्धिहेतुत्वात् प्रमाणत्वं प्रसज्येत विज्ञेयो वा वक्तव्यः
इति । अयं विज्ञेयः—प्रमादप्रमेययोचरितामेत्याह—प्रमाणे प्रमाता प्रमेयं च चरितार्थ-
वत्’ अंचरितार्थं च प्रमाणम् अतस्त्वेव उपलब्धिप्राप्तमिति’ न्याय बा० पृ० ५ ।

२ ‘यत्नेसाविज्ञासाप्रवृत्तस्य प्रवृत्तिः स प्रमाता, चेनार्थं प्रमितोति तत्प्रमाणम्,
योऽर्थः प्रमीयते तत्प्रमेयम्, यद् अर्थविज्ञानं सा प्रमितिः, अतस्तदु चेवंविधास्तु तत्वं
परिसमाप्यते’ न्यायुक्ता० पृ० १ ।

परिसमाप्यत ईति" [] । कथं वा सर्वज्ञज्ञानेनाप्यस्या-
प्रमेयत्वे तस्य सर्वज्ञत्वम् ? किञ्च प्रमाणवत् प्रमातुरपि प्रमेय-
त्वधर्माधारत्वं न स्यात्तस्य तद्विरोधोविशेषात् । तथा चाश्वविपा-
णस्येवास्यासत्त्वानुषङ्गः । तद्धर्माधारत्वे वा प्रमात्रा ततोऽर्थान्तर-
भूतेन भवितव्यं प्रमाणवत् । तस्यापि प्रमेयत्वे ततोऽप्यर्थान्तरभू-
तेनैत्येकत्रात्मनि प्रमेयेऽनन्तप्रमातृमालाप्रसक्तिः । यदि धर्ममे-
वैदेकत्रात्मनि प्रमातृत्वं प्रमेयत्वं चाविरुद्धं तर्हि प्रमाणत्वमप्य-
विरुद्धमनुमन्यताम् । ततो निराकृतमेतत्—“प्रमातृप्रमेयान्ध्याम-
र्थान्तरं प्रमाणम्” इति ।

चक्षुषश्चाप्राप्यकारित्वेनाग्रे समर्थनात्कथं घटेन संयोगस्तदभा- १०
वात्कथं रूपदिना संयुक्तसमवायादिः ? इत्यन्येति सन्निकर्ष-
प्रमाणवादिनाम् । सर्वज्ञाभावश्चेन्द्रियाणां परमाण्वादिभिः साक्षा-
त्सम्बन्धाभावात् ; तथाहि—नेन्द्रियं साक्षात्परमाण्वादिभिः स-
म्बध्यते इन्द्रियत्वावसादादीन्द्रियवत् ।

योगजधर्मानुग्रहोत्तस्य तैः साक्षात्सम्बन्धश्चेत् ; कोऽयमिन्द्रि- १५
यस्य योगजधर्मानुग्रहो नाम-स्वविषये प्रवर्तमानस्यातिशयार्थो-
नम्, सहकारित्वमात्रं वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः ; परमाण्वादौ स्वय-
मिन्द्रियस्य प्रवर्तनाभावाद्, भावे तदनुग्रहवैयर्थ्यम् । तैत एवास्य
तैत्र प्रवृत्तौ परस्परश्रयः—लिङ्गे हि योगजधर्मानुग्रहे तत्र तस्य
प्रवृत्तिः, तस्यां च योगजधर्मानुग्रह इति । द्वितीयपक्षोप्यस- २०

१ परिपूर्णता वाति जन्मेवान्तं ग्रामोदीत्यर्थः । २ इति बहुलं तच्चतुर्पक्षस्याप्रकल्प
प्रमाणस्याभावादुक्तमेव प्रमाणवत् । ३ सति । ४ प्रमेयत्वेन प्रमातृत्वस्य ।
५ प्रमातृः । ६ प्रमात्रन्तरस्यापि । ७ स्वभावः । ८ प्रमित्यन्वयः प्रमाता । ९ प्रमाविषयः
प्रमेयः । १० प्रमितिक्रिया प्रति करणत्वम् । ११ आत्मनः । १२ प्रमाणहेतुत्वात् ।
१३ प्रमात्रन्तर्गतत्वात्प्रमाणस्य । १४ आदिपदेन रूपत्वादिर्मात्रः । १५ (संयुक्त-
समवेतसमवायादिः) । १६ कर्तृकदेशवृत्तिरन्यासिरिति ज्ञानात्तस्य स्पर्शोदिचतुर्भि-
न्द्रियेषु प्राप्यकारित्वं चक्षुष्याप्राप्यकारित्वमित्यन्यासिः । १७ समाधिः । १८ ईश-
रस्य । १९ परः । २० अदृष्ट । २१ उपकारात् । २२ कर्तृत्वं । २३ धर्मात् ।
२४ परमाण्वादौ ।

1 'असद्विशिष्टानां तु योगिनां बुक्तानां योगधर्मानुग्रहीतेन मनसा सात्मान्त-
राकाशदिक् कालपरमाणुवायुमनस्सु तत्समवेतगुणकर्मसामान्यविशेषेषु समवाये चाऽवितर्कं
स्वरूपदर्शनमुत्पद्यते । विशुक्तानां पुनः चतुष्टयसंश्लेषाद् योगजधर्मानुग्रह-
सामर्थ्याद् सङ्गम्यवहितविप्रकृष्टेषु मलसुसुप्तवते' प्रज्ञा० भा० पृ० १८७ । यद-
त्सलस्य व्योमवती कन्दली च टीकाऽनुसन्धेया ।

म्भाव्यः; स्वविषयातिक्रमेणास्य योगजधर्मसहकारित्वेनाप्यनुग्रहा-
योगात्, अन्यैकैकैवेन्द्रियस्याशेषरसादिविषयेषु प्रवृत्तौ तदनु-
ग्रहप्रसङ्गः स्यात् । अथैकमेवान्तःकरणं (योगजधर्मोऽनुग्रहीतं युग-
पत्सुक्ष्माद्यशेषार्थविषयज्ञानजनकमिष्येते तत्र; अणुमनसोऽशे-
षार्थैः संकृतसम्बन्धामावैतस्तज्ज्ञानजनकत्वासम्भवात्, अन्यथा
दीर्घशङ्कुलीभक्षणादौ सकृच्चक्षुरादिर्मितस्तत्सम्बन्धप्रसक्ते रूपादि-
ज्ञानपञ्चकस्य सकृदुत्पत्तिप्रसङ्गात्-

“युगपज् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्” [न्यायसू० १।१।१६] इति
विरुध्यते । क्रमशोऽन्यत्र तद्वर्तमानादपि क्रमकल्पनायां योगिर्नः
१० सर्वार्थेषु सम्बन्धस्य क्रमकल्पनास्तु तैर्थादर्शनाविशेषात् । तदनु-
ग्रहसामर्थ्याद् दृष्टान्तिक्रमेणैव च आत्मैव समाधिविशेषोत्पत्त्यधर्म-
माहात्म्यादन्तःकरणनिरपेक्षोऽशेषार्थग्राहकोऽस्तु किमदृष्टपरि-
कल्पनया ? तत्राणुमनसोऽशेषार्थैः साक्षात्संकृतसम्बन्धो भटते ।

अथ परम्परया, तथा हि—मनो महेश्वरेण सम्बद्धं तेन च
१५ घटादयोऽर्थास्तेषु रूपादय इति, अत्रार्थविशेषार्थज्ञानासम्भवः ।
सम्बन्धसम्बन्धोऽपि हि तैस्याशेषार्थैर्वर्तमानैरेव नानुत्पन्नैर्विनष्टैः ।
तैर्काले तैरपि सह सोऽस्तीति चेन्न; तदा वर्तमानार्थसम्बन्ध-
सम्बन्धस्यासम्भवात् । ततोऽयमन्य एवेति चेत्, तर्हि तज्जनितज्ञा-
नमपि अनुत्पन्नविनष्टार्थकालीनसम्बन्धसम्बन्धजनितज्ञानादन्य-

२० इति एकज्ञानेनाशेषार्थज्ञत्वासम्भवः । बहुमिरेव ज्ञानैस्तदिति
चेत्, तेषां किं क्रमेण भावः, अक्रमेण वा ? क्रमभावे; नानन्तेवापि
कालेनानन्तता संसारस्य प्रतीयेत—य एव हि सम्बन्धसम्बन्ध-
वशाज् ज्ञानजनकोऽर्थः स एव तज्जनितज्ञानेन गृह्यते नान्य
इति । अक्रमभावेस्तु नोपपद्यते विनष्टानुत्पन्नार्थज्ञानानां वर्तमा-

२५ नार्थज्ञानकालेऽसम्भवात् । न हि कारणाभावे कार्यं नामातिप्र-
सङ्गात् । न च बौद्धानामिव यौगानां विनष्टानुत्पन्नस्य कारणत्वं
सिद्धान्तविरोधात् । नित्यत्वादीश्वरज्ञानस्योक्तदोषानवकाश

१ इन्द्रियस्य । २ विषयान्तरेऽपि सहकारित्वरूपानुग्रहमेव । ३ योगजधर्मस्य ।
४ परः । ५ परैः । ६ युगपत् । ७ परमते । ८ तदर्थैः सकृत्सम्बन्धसम्बन्धः ।
९ मनसः । १० परप्रत्ययः ॥ ११ परः । १२ घटादौ । १३ मनःसम्बन्धः ।
१४ सर्वज्ञस्य । १५ मनसः । १६ क्रमेण मनःसम्बन्धः । १७ परः । १८ क्रमेण
मनःसम्बन्धस्य । १९ युगपदशेषार्थग्रहणमितीदृशौ । २० परः । २१ अशेषार्थैरणुमनसो
हि सम्बन्धः । २२ सर्वगतत्वात् (महेश्वरस्य) । २३ सम्बन्धसम्बन्धे । २४ मनसः ।
२५ तेषामसत्त्वात् । २६ परः । २७ अनुत्पन्नविनष्टार्थकाले । २८ अनुत्पन्नविन-
ष्टार्थसम्बन्धसम्बन्धात् परः । २९ युगात् । ३० ईश्वरेण । ३१ युगपत् । ३२ परः ।
३३ असर्वज्ञत्वज्ञानासम्भवः ।

इत्यप्यवाच्यम्; तन्नित्यत्वस्यैश्वरनिराकरणप्रवृत्ते निराकरिष्य-
माणत्वात् । तन्न सन्निकर्षोप्यनुपचरितप्रमाणव्यपदेशभाक् ॥ छ ॥

एतैर्नेन्द्रियैर्वृत्तिः प्रमाणमित्यभिधानः साङ्ख्यः प्रत्याख्यातः ।
ज्ञानस्वभावमुख्यप्रमाणकरणत्वात् तत्राप्युपचारतः प्रमाणव्यव-
हाराभ्युपगमात् । न चेन्द्रियेभ्यो वृत्तिर्व्यतिरिक्ता, अव्यतिरिक्ता^५
चा घटते । तेभ्यो हि र्यद्यव्यतिरिक्तसौ; तदा श्रोत्रादिमात्रमेवासौ,
तच्च सुताद्यवस्थायामप्यस्तीति तदाप्यर्थपरिच्छिन्नप्रसङ्गेः सुता-
दिव्यवहारोच्छेदः । अथ व्यतिरिक्ता; तदाप्यसौ किं तेषां धर्मः,
अर्थान्तरं वा ? प्रथमपक्षे वृत्तेः श्रोत्रादिभिः सह सम्बन्धोर्वैकल्याः-
स हि तादात्म्यम्, सैमवायादिर्वा स्यात् ? यदि तादात्म्यम्; १०
तदा श्रोत्रादिमात्रमेवासाविति पूर्वोक्त एव दोषोऽनुषज्यते । अथ
सैमवायः; तदास्य व्योपिनः सम्भवे व्यापिश्रोत्रादिसद्भावे च ।

“प्रतिनियतदेशावृत्तिरभिधेय्येत्” [] इति सूक्ष्मे ।
अथ संयोगः; तदा द्वैव्यान्तरत्वप्रसङ्गेन तद्वर्गो वृत्तिर्भवेत् ।
अर्थान्तरमसौ; तदा नासौ वृत्तिरर्थान्तरत्वात् पदार्थान्तरवत् । १५
अर्थान्तरत्वेऽपि प्रतिनियतविशेषसद्भावात्तेषामसौ वृत्तिः; नन्वसौ
विशेषो यदि तेषां विषयप्राप्तिरूपः; तदेन्द्रियादिसन्निकर्ष एव
नामान्तरेणोक्तः स्यात् । स चानन्तरमेव प्रतिव्युदः । अथाऽर्था-
कारपरिणतिः; न; असौ बुद्धावेवाभ्युपगमात् । न च श्रोत्रा-

१ प्रस्तावे । २ सन्निकर्षप्रमाणनिराकरणेन । ३ नेत्रादीनामुच्चाटनादिः । ४ अभिज्ञा ।
५ वृच्छागतप्रमत्तादि । ६ हेतोः । ७ जाग्रदृष्टाया यथा । ८ प्रवृत्त । ९ भिन्ना ।
१० स्वरूपः । ११ परः । १२ आदिपदेन संयोगः । १३ वृत्तेः श्रोत्रादिभिः ।
१४ नित्य पक्षो व्यापी समवायः । १५ इन्द्रियाणां व्यक्तीक्रियते । १६ सम्बन्धतः
नश्यति । १७ द्वयोर्द्रव्ययोः संयोगः इति हेतोः संयोगित्वात् । १८ इन्द्रियवृत्तेः ।
१९ परः । २० अर्थः । २१ परः । २२ वृत्तिः । २३ परिणतेः । २४ अर्थाकार-
परिणतिः किम् । २५ साङ्ख्यैः । २६ किञ्च ।

१ प्रवृत्तदिष्टा सन्निकर्षस्य संबन्धतत्प्राप्त्यर्थको० पू० १६५ । प्रमाणप० पू०
५२ । न्यायक० चं० लि० परि० १ । स्था० रत्नाकर पू० ५४ । इत्यादिषु
ग्रन्थेषु प्रवृत्तीर्यच ।

२ ‘इन्द्रियप्रणालिकया बाह्यवस्तुपरागात् सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारण-
प्रणालावृत्तिः प्रत्यक्षम्’ । योगद० व्यासमा० पू० २७ ।

‘अत्रेयं प्रक्रिया इन्द्रियप्रणालिकया अर्थसन्निकर्षेण लिंगज्ञानादिचा ‘चा जादौ पुच्छेः
आर्थाकारावृत्तिः जायते’ । सांख्यप्र० भा० पू० ४७ ।

विषयैश्चित्तसंयोगाद् बुद्धीन्द्रियप्रणालिकात् ।

प्रत्यक्षं सांप्रतं ज्ञानं विशेषसाधारणम् ॥ २३ ॥ योगकारिका ।

दिखभावा तद्धर्मरूपा अर्थान्तरखभावा चा तत्परिणतिर्घटते; प्रतिपादितदोषानुपज्ञात् । न च परंपक्षे परिणामः परिणामिनो भिन्नोऽभिन्नो वा घटते इत्यग्रे विचारयिष्यते ॥ छ ॥

एतेन प्रभाकरोपि 'अर्थतथात्वप्रकाशको ज्ञातव्यापारोऽज्ञानरूपोऽपि प्रमाणम्' इति प्रतिपादयन् प्रतिव्यूढः प्रतिपत्तव्यः; सर्वज्ञानस्योपचारादेव प्रसिद्धेः । न च ज्ञातव्यापारस्वरूपस्य किञ्चित्प्रमाणं ग्राहकम्-तद्धि प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, अन्यद्वा ? यदि प्रत्यक्षम्; तर्हि स्वसंवेदनम्, बाह्येन्द्रियजम्, मनःप्रभवं वा ? न तावत्स्वसंवेदनम्; तस्याज्ञाने विरोधादर्नभ्युपगमाच्च । १० नापि बाह्येन्द्रियजम्; इन्द्रियाणां स्वस्वबन्धेऽर्थं ज्ञानजनकत्वोपगमात् । न च ज्ञातव्यापारेण सह तेषां सम्बन्धः; प्रतिनियतरूपादिविपर्ययत्वात् । नापि मनोजन्यम्; तथाप्रतीत्यभावादनभ्युपगमादतिप्रसङ्गाच्च । नाप्यनुमानम्;

“ज्ञातिसम्बन्धस्यैकदेशदर्शनादसंभिकृष्टेऽर्थे बुद्धिः” [शाबर-१५ भा० १।१।५] इत्येवंलक्षणत्वात्तस्य । सम्बन्धश्च कार्यकारणभार्यादिनिराकरणेन निर्यमलक्षणोऽभ्युपगम्यते । तदुक्तम्-

१ साङ्ख्य । २ इन्द्रियस्य । ३ इन्द्रियवृत्तिः प्रमाणमित्येतद्विराकरणेन । ४ चैतनासमवायावैतन आत्मा न स्वरूपतोऽतस्तस्यापारोऽपि (अज्ञानरूपः) । ५ (निराकृतः) । ६ यत्ते । ७ स्यात् । ८ अर्थापत्तिरूपम् । ९ अनुभूतिः प्रत्यक्षमिदमाश्रित्य । १० ज्ञातव्यापारे अभ्युत्तिः । ११ प्रभाकरैः । १२ ज्ञातव्यापारस्याऽलान्तं परोक्षत्वाच्च । १३ अत्यन्तपरोक्षतया ज्ञातव्यापारग्राहकत्वप्रकारेण मनोजन्यप्रत्यक्षस्य । १४ परः । १५ भर्मादेरप्यतीन्द्रियस्य मनःप्रत्यक्षत्वं स्यात् परमाण्वादेरपि ग्राहकत्वं मनसः स्यात् । १६ ज्ञः । १७ इन्द्रियैः । १८ तादात्म्यादि । १९ अविनाभाव । २० परेण ।

१ इन्द्रियवृत्ति-प्रमाणमादस्य खंडनं विविचरीत्या निम्नप्रयेषु अवलोकनीयम् न्यायशा० ता० टी० पृ० २६३ । न्यायमं० पृ० २६ । उत्तरार्थको० पृ० १८७ । न्यायकु० च० लि० परि० १ । स्वा० रत्नाकर पृ० ७२ ।

२ 'तेन जन्मैव विषये बुद्धेर्यापार इत्यते ।

तदेव च प्रमाकर्म तद्वती कर्म च बीः ॥ ६१ ॥

न्यापारो न यदा तदा नोत्पद्ये फलम् ॥ ६१ ॥ मीमां० को० पृ० १५२ ।

‘अथवा ज्ञानक्रियाद्वाराको यः कर्तृभूतस्य आत्मनः कर्मभूतस्य च अर्थस्य परस्परसम्बन्धो व्याघृष्टाप्यवलक्षणः स मानसप्रत्यक्षत्वगतो विज्ञानं कल्पयति’ शास्त्रदी० पृ० २०२ ।

३ ‘ज्ञातिसम्बन्धस्यैकदेशदर्शनात् एकदेशान्तरेऽसंभिकृष्टे बुद्धिः’ शाबर भा० पृ० ८ ।

कार्यकारणभावादिसम्बन्धानां द्वयी गतिः ।

नियमानियमाभ्यां स्यादनियमादनङ्गता ॥ १ ॥

सर्वेऽप्यनियमा ह्येते नानुमोत्पत्तिकारणम् ।

नियमात्केवलमेव न किञ्चिन्नानुमीयते ॥ २ ॥

एवं परोक्तसम्बन्धप्रत्याख्याने कृते सति ।

नियमो नाम सम्बन्धः स्वमतेनोच्यतेऽधुना ॥ ३ ॥ []

इत्यादि ।

सं च सम्बन्धः किमन्वयनिश्चयद्वारेण प्रतीयते, व्यतिरेक-
निश्चयद्वारेण वा ? प्रथमपक्षे किं प्रत्यक्षेण, अनुमानेन वा तन्नि-
श्चयः ? न तावत्प्रत्यक्षेण; उर्मयरूपग्रहणे ह्यन्वयनिश्चयः, न च १०
ज्ञातृव्यापारस्वरूपं प्रत्यक्षेण निश्चीयते इत्युक्तम् । तदभावे च- न
तत्प्रतिबद्धत्वेनार्थप्रकाशनलक्षणहेतुरूपमिति । नाप्यनुमानेन^१;
अस्य निश्चितान्वयहेतुप्रभवत्वाम्युपगमात् । न च तस्यान्वयनि-
श्चयः प्रत्यक्षसमधिगम्यः पूर्वोक्तदोषानुषङ्गात् । नाप्यनुमान-
गम्यः; तदन्तरेण प्रथमानुमानाभ्यां तन्निश्चयेऽनैवेद्ये तरेतराश्चया- १५
नुषङ्गात् । नापि व्यतिरेकनिश्चयद्वारेण; व्यतिरेको हि साध्याभावे
हेतोरभावः । न च प्रकृतसाध्याभावः प्रत्यक्षाधिगम्यः; तस्य
ज्ञातृव्यापाराविषयत्वेन तदभाववत्तदभावेऽपि प्रवृत्तिविरोधात् ।
समर्थितं चास्य तदविषयत्वं प्राणिति । नाप्यनुमानाधिगम्यः;
अत एव । २०

अथानुपलम्भनिश्चयः अत्रापि किं दृष्ट्यानुपलम्भोऽभिप्रेतः,
अदृष्ट्यानुपलम्भो वा ? यद्यदृष्ट्यानुपलम्भः; नासौ गमकोऽतिप्रस-
ङ्गात् । दृष्ट्यानुपलम्भोऽपि चतुर्धा भिद्यते स्वभाव-कारण-व्याप-
कानुपलम्भविद्वन्द्वोपलम्भमेवात् । तत्र न तावदाद्यो युक्तः; सैवा-

१ यत्र सति च किञ्च । २ गोपालघटिकादौ व्यभिचारात् । ३ अनुमानं प्रति ।
४ सौगतायुक्तं । ५ प्रमाकरमतेन । ६ साध्यसाधनयोरभिनाभावलक्षणः । ७ ज्ञातृ-
व्यापारे सति अर्थप्रकाशलक्षणो हेतुर्न भटते । ८ साध्यसाधनरूपः । ९ पूर्वस्य ।
१० ज्ञातृव्यापारस्य । ११ सम्बन्धः । १२ अर्थप्रकाशो ज्ञातृव्यापारहेतुकस्तस्मिन्
सत्येनोपनायमानत्वादित्यनुमानेन । १३ हेतोः । १४ द्वितीयानुमानः । १५ अर्थ-
प्रकाशान्वयानुपपत्तिज्ञातृव्यापारयो(र्)गन्वयः । तस्मिन्ननुमानं । तत्स्वयमेव जानाति
अनुमानान्तरेण वा । प्रथमस्येतराश्रयः । द्वितीयेऽनवस्था । १६ ज्ञातृव्यापारलक्षणः ।
१७ यदि यद्भावप्रादक तदेव तद्भावप्रादकमिति । १८ तद्भाववत्तदभावेऽपि प्रवृत्ति-
विरोधात् । १९ व्यतिरेकः ज्ञातृव्यापार आत्मनि नास्ति अनुपलम्भ्यमानत्वात् खर-
शृङ्गवदित्यनुपलम्भस्वरूपस्य । २० पदार्थानां । २१ पिशाचपरमाण्यादेरपि गमकर्त्तृ
स्यात् । २२ शुद्धभूतलोपलम्भ यत्र स्वभावानुपलम्भः ।

वानुपलम्भस्यैवविधे विषये व्यापाराभावात्, एकज्ञानसंसर्गिण्यै-
थान्तरोपलम्भरूपत्वात्तस्य । न च हातुव्यापारेण सह कैस्यविदे-
कज्ञानसंसर्गित्वं सम्भवतीति । नापि द्वितीयः; सिद्धे हि कार्य-
कारणभावे कारणानुपलम्भः कार्यभावनिश्चायकः । न च हातु-
५ व्यापारस्य केनचित् सह कार्यत्वं निश्चितम्; तस्यादृश्यत्वात् ।
अतएव हातुपलम्भनिबन्धनञ्च कार्यकारणभावः । तत एव केनचित्सह
व्याप्यव्यापकभावस्यासिद्धेर्न व्यापकानुपलम्भोऽपि तन्निश्चायकः ।
विरुद्धोपलम्भोपि द्विधा भिद्यते विरोधस्य द्विविधत्वात्; तथा
हि-को(एका) विरोधोऽविकलकारणस्य भवतोऽन्यभावेऽभावा-
१० त्सहानवस्थालक्षणः शीतोष्णयोरिव, विशिष्टात्प्रत्यक्षाभिधीयते ।
न च प्रकृतं साध्यमविकलकारणं कैस्यचिद्भावे निवर्तमानमुपल-
भ्यते; तस्यादृश्यत्वात् । द्वितीयस्तु परस्परपरिहारस्थितिलक्षणः ।
सोप्युपलभ्यस्वभावभावनिष्ठत्वात्प्रकृतविषये न सम्भवति ।

किञ्चानुपलम्भोऽभावप्रमाणं प्रमाणपञ्चकविनिवृत्तिरूपम् । तच्च
१५ हातमेवाभावसाधकम्; कृतयज्ञस्यैव प्रमाणपञ्चकविनिवृत्तेरभा-
वसाधकत्वोपगमात् । तदुक्तम्-

गत्वा गत्वा तु तान्देशान् यद्यर्थो नोपलभ्यते ।

तैदान्यकारणाभावात्सन्नित्यवगम्यते ॥

[सीमांसांख्ये० वा० अर्था० खे० ३८]

२० तज्ज्ञानं चान्यस्मादभावप्रमाणात्, प्रमेयाभावाद्वा ? तत्राद्य-
पक्षेऽनवस्यैप्रसङ्गः-तस्याप्यन्यस्मादभावप्रमाणात्परिज्ञानात् । प्रमे-
याभावात्तज्ज्ञाने च-इतरेतराश्रयैत्वम् ।

१ जलन्तपरोहे । २ घटेन सह प्रतिषेध्याचारसूतयुक्तम् । ३ यदि भूतलापाद-
तयापि विधेयं तदा प्रत्यक्षेणैव लभ्येत । ४ आत्मनः । ५ हातुव्यापारलक्षण ।
६ कारणेन । ७ अन्यः व्यतिरेकः (प्रत्यक्षेणान्वयव्यतिरेकनिबन्धनः) । ८ हातु-
व्यापारस्यादृश्यत्वादेव । ९ आत्मादिव्यापारस्य । १० हातुव्यापाराभाव । ११ ता ।
१२ शीतकालादेः । १३ जावमानस्य । १४ बहिः । १५ हातुव्यापाररूप । १६ विरो-
धिनः । १७ हातुव्यापारस्य । १८ विरोधः । १९ कैव । २० अर्थानुपलम्भकाले ।
२१ इन्द्रियाभावस्यालोकाभावस्य च कारणस्य । २२ आद्यप्रमाणपञ्चकभावस्य प्रथम-
प्रमाणपञ्चकविषयप्रमाणपञ्चकभावात्, परिधानं तस्यापि प्रमाणात्.....
.....द्वितीयस्याद्वितीयप्रमाणपञ्चकविषयप्रमाणपञ्चकभावात्, परिधानं तस्याप्येव-
मित्यादि प्रकारेण । २३ सिद्धे हि प्रमेयाभावे अभावप्रमाणपरिधानं सिद्धाति तत्सिद्धौ
न प्रमेयाभावसिद्धिरिति ।

किञ्चासौ ज्ञातृव्यापारः कारकैर्जन्यः, अजन्यो वा ? यद्यजन्यः, तदासावभावरूपः, भावरूपो वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः, तस्याभावरूपत्वेऽर्थप्रकाशनलक्षणफलजनकत्वविरोधात् । विरोधे वा फलार्थिनः कारकान्वेषणं व्यर्थम्, तत एवामिमतफलसिद्धेर्विश्वेभ्यो वरिष्ठं च स्यात् । अथ भावरूपोऽसौ, तत्रापि किं नित्यः, अनित्यो वा ? ५ न तावन्नित्यः, अन्धादीनामप्यर्थदर्शनप्रसङ्गात् सुप्तादिव्यवहाराभावः सर्वसर्वज्ञताप्रसङ्गः कारकान्वेषणवैर्यर्थ्यं च स्यात् । अथानित्यः, तदयुक्तम्, अजन्यस्वभावभावस्यानित्यत्वेन केनचिद्व्यनश्युपगमात् । भवतु वाऽनित्यः, तथाप्यसौ कालान्तरस्थायी, क्षणिको वा ? न तावत्कालान्तरस्थायी; १०

“क्षणिका हि सा न कालान्तरमवतिष्ठते” [शाबरभा०] इति वचसो विरोधप्रसङ्गात् । कारकान्वेषणं चापार्थक्यम्-तत्कालं यावत्तत्फलस्यापि निष्पत्तेः । क्षणिकत्वे, विश्वं निखिलार्थप्रतिभासरहितं स्यात् क्षणानन्तरं तस्यासत्त्वेनार्थप्रतिभासाभावात् । द्वितीयादिकक्षेपे स्वत एवात्मनो व्यापारान्तरोत्पत्तेर्नायं दोषः, ११ इत्यप्यसङ्गतम्, कारकानाथस्य देशकालस्वरूपप्रतिनिधमायोगात् । किञ्च, अनवरतव्यापाराभ्युपगमे तज्जन्यार्थप्रतिभासस्यापि तथा भावात् तद्वत्त्वः सुप्ताद्यभावदोषानुषङ्गः । तन्नाऽजन्योऽसौ ।

नापि जन्यः, यतोऽसौ क्रियात्मकः, अक्रियात्मको वा ? प्रथमपक्षे किं क्रिया परिस्पन्दात्मिका, तद्विपरीता वा ? तत्राप्यः पक्षोऽयुक्तः, निश्चलस्यात्मनः परिस्पन्दात्मकक्रियाया अयोगात् । नापि द्वितीयः, तथाविधक्रियायाः परिस्पन्दाभावरूपतया फलजनकत्वायोगात्, अभावस्य फलजनकत्वविरोधात् । न चोसौ परिस्पन्दस्वभावा तद्विपरीता वा-कारकफलान्तरालवैतिनी प्रमाणतः प्रतीयते । तज्ज क्रियात्मको व्यापारः । नापि तद्विपरीतः, अक्रियात्मको २५ हि व्यापारो बोधरूपः, अबोधरूपो वा ? बोधरूपत्वे, प्रमादवत्प्रमा-

- १ खरविषाणवी । २ आकाशावी । ३ किञ्च । ४ अभावरूपव्यापारादेव । ५ वगत् । ६ सहाकारकारणैर्नित्यसानुपकारत्वात् । ७ अगम्याद् अभिचारप्राप्त्या भावशब्दः प्रयुक्तः । ८ पदार्थस्य । ९ वादिना नरेण । १० ज्ञातृव्यापाररूपा क्रिया । ११ ज्ञातृव्यापारः । १२ परः । १३ पुरुषस्य । १४ ज्ञातृव्यापारजः । १५ परैः । १६ सर्वदाभावात् । १७ किञ्च । १८ प्रमाता । १९ अर्थप्रकाशः । २० ज्ञातृव्यापारलक्षणा ।

र्णान्तरगम्यता न स्यात् । अवोचरूपता तु व्यापारस्यायुक्ता; चिद्रूपस्य ज्ञातुरचिद्रूपव्यापारायोगात् । 'जानाति' इति च क्रिया ज्ञातृव्यापारो भवतामिधीयते, स च बोधात्मक एव युक्तः ।

किञ्चासौ धर्मस्वभावः, धर्मस्वभावो वा ? प्रथमपक्षे-ज्ञातृवञ्च ५ प्रमाणान्तरगम्यता । द्वितीयेपि पक्षे-धर्मिणो ज्ञातृव्यतिरिक्तो व्यापारः, अव्यतिरिक्तो वा, उभयम्, अनुभयं वा ? व्यतिरिक्तत्वे-सम्बन्धाभावः । अव्यतिरिक्ते-ज्ञातृत्वं तत्स्वरूपवत् । उभयपक्षे तु विरोधः । अनुभयपक्षोऽप्ययुक्तः, अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणां संकृत प्रतिषेधायोगात् एकनिषेधेनापरविधानात् ।

- १० किञ्च, व्यापारस्य कारकजन्यत्वोपगमे तज्जनने प्रवर्तमानानि कारकाणि किमपरव्यापारसापेक्षाणि, न वा ? तत्राद्यपक्षे अवस्था; व्यापारान्तरस्याप्यपरव्यापारान्तरसापेक्षैस्तैर्जननात् । व्यापारनिरपेक्षाणां तज्जनकत्वे-फलजनकत्वमेवास्तु किमदृष्टव्यापारकल्पनाप्रयासेन ? अस्तु वा व्यापारः, तथाप्यसौ प्रकृतकार्ये १५ व्यापारान्तरसापेक्षः, निरपेक्षो वा ? न तावत्सापेक्षः, अपरापरव्यापारान्तरापेक्षायामेवोपेक्षीणशक्तिकत्वेन प्रकृतकार्यजनकत्वाभावप्रसङ्गात् । व्यापारान्तरनिरपेक्षस्य तज्जनकत्वे कारकाणामपि तथा तदस्तु विशेषाभावात् । अथैवं पर्यनुयोगः सर्वसौख्यस्वभावव्यावर्तकः, तथाहि-बहेर्दाहकस्वभावत्वे गगनस्यापि तत्स्यात् इत- २० रथा बहेरपि न स्यात्, तदसमीक्षिताभिधानम्, प्रत्यक्षसिद्धत्वेनात्र पर्यनुयोगस्यानवकाशात्, व्यापारस्य तु प्रत्यक्षसिद्धत्वाभावाच्च तैसास्वभावबलम्बनं युक्तम् ।

अर्थप्राकट्यं व्यापारमन्तरेणानुपपद्यमानं तं कल्पयतीत्यर्थोपपत्तितत्तत्सिद्धिरित्यपि फलुप्रायम्; अर्थप्राकट्यं हि ततो भिन्नम्, २५ अभिन्नं वा ? यद्यभिन्नम्, तदाऽर्थ एवेति थावदर्थं तत्तद्भावात्सुप्तार्थभावः । भेदे-सम्बन्धासिद्धिरनुपकारात् । उपकारेऽनवस्था । किञ्च, एतदर्थंथानुपपद्यमानत्वेनानिश्चितं तं कल्पयति,

१ ज्ञातृव्यापारोक्तिः अर्थप्राकट्यान्वयानुपपत्तेरित्यर्थोपपत्तिरूप । २ अक्रियात्मकत्वात् । ३ अभिन्नत्वात् । ४ धर्मरूपत्वात् । ५ वस्तुधर्माणां । ६ परः । ७ कारकाणां । ८ अर्थप्राकट्यं । ९ अर्थप्राकट्यलक्षणे । १० नष्टः । ११ निरपेक्षत्वप्रकारेण । १२ प्रश्नः । १३ पदार्थः । १४ व्यापारान्तरनिरपेक्षत्वप्रकारेण कार्यजनकत्वलक्षणे । १५ अन्यद्वा इत्युत्तरीय विकल्पं शोचयति । १६ अर्थप्राकट्यस्य सर्वदा भावात् । १७ उपकारस्यानुपकारकरणे सम्बन्धो न सादित्युपकारकत्पने । १८ ज्ञातृव्यापारमन्तरेण । १९ अर्थप्राकट्यं । २० व्यापारः ।

निश्चितं वा? न तावदनिश्चितम्; अतिप्रसङ्गात्-तथाभूतं हि तद्यथा तं कल्पयति तथा येन विनाप्युपपद्यते तदपि किं न कल्पयत्यविशेषात्? निश्चितं चेत्; क तस्यान्यथानुपपन्नत्वनिश्चयः-दृष्टान्ते, साध्यधर्मिणि वा? दृष्टान्ते चेत्; लिङ्गस्यापि तत्र साध्य-नियतत्वनिश्चयोऽस्तीत्यनुमानमेवार्थापत्तिरिति प्रमाणसंख्याव्या-५ घातः। साध्यधर्मिण्यपि कुतः प्रमाणात्तस्य तन्निश्चयः? विपक्षे-ऽनुपलम्भाच्चेत्; न; तस्य सर्वात्मसम्बन्धिनोऽसिद्धानैकान्तिकत्वादित्युक्तम्। ततः प्रमाणतोऽच्चेतनस्वभावज्ञातृव्यापारस्या-प्रतीतेः कथमर्थतथात्वप्रकाशकोऽसौ यतः प्रमाणं स्यात् ॥ छ ॥

ज्ञानस्वभावस्य ज्ञातृव्यापारस्यार्थतथात्वप्रकाशकतया प्रमाण-१० ताभ्युपगमात् न भट्टस्यानन्तरोक्ताशेषदोषानुषङ्गः, इत्यप्यसमीक्षितामिधानम्; सर्वथा परोक्षज्ञानस्वभावस्यास्यासत्त्वेन प्रतिपादयिष्यमाणत्वात्। सकलज्ञानानां स्वपरव्यवसायात्मकत्वेन व्यवस्थितेः इत्यलं प्रपञ्चेन। 'तत्राज्ञानं प्रमाणमन्यत्रोपच रात्' इत्यभिप्रायवान् प्रमाणस्य ज्ञानविशेषणत्वं समर्थयमानः प्राह— १५

हिताऽहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ॥२॥

हितं सुखं तत्साधनं च, तद्विपरीतमहितम्, तयोः प्राप्तिपरिहारौ। प्राप्तिः खलूपदेयभूतार्थक्रियाप्रसाधकौर्धप्रदर्शकत्वम्। अर्थक्रियार्थी हि पुरुषस्तन्निष्पादनसमर्थं प्राप्तुकामस्तत्प्रदर्शकमेव प्रमाणमन्वेपत इत्यस्य प्रदर्शकत्वमेव प्रोपकत्वम्। न हि तेन प्रद- २० शितेऽर्थे प्राप्त्यभावः। न च क्षणिकस्य ज्ञानस्यार्थप्राप्तिकालं यावदवर्त्येनामावात्कथं प्रापकतेति वौच्यम्? प्रदर्शकत्वव्यतिरेकेण तस्यास्तर्जसम्भवात्। न चान्यस्य ज्ञानान्तरस्यार्थप्राप्तौ संश्लिष्टत्वात्तदेव प्रापकमित्याशङ्कनीयम्; यतो यद्यप्यनेकसाज्ज्ञानक्षणात्तद्वृत्तावर्थप्राप्तिस्तथापि पर्यालोच्यमानमर्थप्रदर्शकत्वमेव २५

१ कथं तथाहि। २ सम्भावनावेन। ३ ज्ञातृव्यापारेण सह। ४ अर्थप्राप्त्यस्य। ५ अविनाशः। ६ ज्ञातृव्यापाराभावे सम्भावदो प्राकट्यस्य। ७ परः। ८ ज्ञातृव्यापारस्य निराकरणेन। ९ ज्ञानपानादि। १० जगदि। ११ जगदिकं। १२ प्राप्तिनिवन्धनत्वं। १३ बौद्धो वदति। १४ स्थिति। १५ परेण। १६ अर्थज्ञाने। १७ समीपत्वात्। १८ पुरुषस्य।

१ ज्ञातृव्यापारमिव ज्ञातृव्यापरूपप्रमाणस्य समीक्षा निश्चयवेपु समबलोक्य तुलनीया न्याययं० पृ० १६। न्यायकु० चं० लि० परि० १। सन्मति० टी० पृ० २०।

२ तु०—'प्रवर्तकत्वमपि प्रवृत्तिविषयप्रदर्शकत्वमेव' न्यायवि० टी० पृ० ५।

प्र० क० सा० ३

ज्ञानस्य प्रापकत्वम्-नान्यत् । तच्च प्रथमत एव ज्ञानक्षणे सम्पन्न-
मिति नोत्तरोत्तरज्ञानानां तैदुपेयोगि(त्वम्), तद्विशेषांशप्रदर्शक-
त्वेन तु तत् तेषामुपपन्नमेव । प्रवृत्तिमूला तूपादेयार्थप्राप्तिर्न
प्रमाणाधीना-तस्याः पुरुषेच्छाधीनप्रवृत्तिप्रभवत्वात् । न च प्रवृ-
५ त्त्यभावे प्रमाणस्यार्थप्रदर्शकत्वलक्षणव्यापाराभावा वाच्यः, प्रेती-
तिविरोधात् । न खलु चन्द्रार्कादिविषयं प्रत्यक्षमप्रवर्तकत्वाच्च तत्प्र-
दर्शकमिति लोके प्रतीतिः । कथं चैवंवादिनः सुगतज्ञानं प्रमाणं
स्यात् ? न हि हेयोपादेयतत्त्वज्ञानं कैचित् तस्य प्रवर्तकं कृतार्थ-
त्वात्, अन्यथा कृतार्थता न स्यादितरजनवत् । सुखादिस्वसंवेदनं
१० वाँ; न हि कैचित्तत्पुरुषं प्रवर्तयति फलात्मकत्वात्, अन्यथा प्रवृ-
त्त्यनवस्था । व्याप्तिज्ञानं वाँ न खलु स्वविषयेऽर्थिनं तत्प्रवर्तयति
अनुमानवैफल्यप्रसङ्गात् । तैतः प्रवृत्त्यभावेऽपि प्रवृत्तिविषयोपद-
र्शकत्वेन ज्ञानस्य प्रामाण्यमभ्युपगन्तव्यम् ।

नैतु प्रवृत्तेर्विषयो भावी, वर्तमानो वार्थः ? भावी चेत्, नासौ
१५ प्रत्यक्षेण प्रवर्तयितुं शक्यस्तात्र तस्याप्रवृत्तेः । वर्तमानश्चेत्, न; अर्थि-
नोऽत्राऽप्रवृत्तेः, न हि कश्चिदनुभूयमान एव प्रवर्ततेऽनैवस्योपत्तेः;
इत्येताम्प्रतम्, अर्थक्रियासमर्थार्थस्य अर्थक्रियायाश्च प्रवृत्तिविषय-
त्वात् । तैवार्थक्रियासमर्थार्थोऽध्यक्षेण प्रदर्शयितुं शक्यः । न ह्यर्थ-
क्रियावत्सोप्यनैवगतः । न चास्याध्यक्षत्वे प्रवृत्त्यभावप्रसङ्गः; अर्थ-
२० क्रियार्थत्वात्तस्याः । कैर्यादृष्टौ कथम् 'एतैर्तत्रैव समर्थम्' इत्येवमो-
द्यतः प्रवृत्तिः स्यादिति चेत्, आस्तां तावदेतत्-कार्यकारणभाव-

१ जात । २ प्रदर्शकत्वम् । ३ फलवत् । ४ अर्थ । ५ नेद । ६ प्रदर्शकत्वं ।
७ जलादि । ८ कारणका । ९ प्रवर्तकत्वाभावे । १० नुः । ११ या । १२ यत्र
प्रवर्तकं तत्र प्रमाणमित्येवमादिनः । १३ विषये । १४ कृतार्थकमपि प्रवर्तयति चेत् ।
१५ सुगतो न सर्वत्र ज्ञानेन प्रवर्तमानत्वादुपपत् । विषये गोपस सर्वत्र तत्र
यत्र सुगतवत् । १६ कृतार्थकमपि प्रवर्तयतीति चेत् । १७ कथं प्रमाणम् (अपि तु
न स्यात् अस्ति च प्रमाणं प्रदर्शकत्वात्) । १८ अर्थे । १९ प्रवृत्तेः फलहेतुत्वात्तत्रापि
फलेन भाव्यम् । २० अनुपपत्त्या । २१ कथं प्रमाणम् । २२ अखिलासाध्यसाधन-
लक्षणे । २३ पुरुषं । २४ यतः प्रदर्शकत्वमेव प्रापकत्वं ज्ञानस्य । २५ सद्भावे ।
२६ अर्थे । २७ प्रकाशकत्वेन । २८ परेण । २९ परः । ३० हयोर्मध्ये ।
३१ विषये । ३२ अन्यथा । ३३ अर्थप्राप्त्यर्थं हि प्रवृत्तिः सा प्रलया जातेति ।
३४ प्रवृत्तेः फलहेतुत्वात्तत्रापि फलेन भाव्यम् । ३५ तयोर्मध्ये । ३६ जलादिः ।
३७ अलक्ष्यत्वप्रसङ्गादर्थस्य । ३८ अर्थप्राप्त्यर्थं हि प्रवृत्तिः सा प्रलये जायते इति ।
३९ परः । ज्ञानादि । ४० जलं । ४१ अर्थक्रियाया । ४२ निश्चयः ।

विचारप्रस्तावे विस्तरेणामिधानात् । प्रतीयते च 'इदमभिमतार्थ-
क्रियाकारि न त्विदम्' इत्यर्थमात्रप्रतिपत्तौ प्रवृत्तिः पशूनामपि ।
तस्मादर्थक्रियासमर्थार्थप्रदर्शकत्वमेव प्रमाणस्य हितप्रापणम् ।
अहितपरिहारोपि 'अनभिप्रेतप्रयोजनप्रसाधनमेतत्' इत्युपदर्शन-
मेव । तैयोः समर्थमव्यवधानेनार्थतथाभावप्रकाशकं हि यस्मा-
त्प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् । न चाज्ञानस्यैवविधं तैत्प्राप्तिपरि-
हारयोः सामर्थ्यं ज्ञानकल्पनावैयर्थ्यप्रसङ्गात् ।

ननु साधूकं प्रमाणस्याज्ञानरूपतापनोदार्थं ज्ञानविशेषणमस्मा-
कमपीष्टत्वात्, तद्धि समर्थयमानैः साहाय्यमनुष्ठितम् । तैस्तु
किञ्चिद्विचिकल्पकं किञ्चित्सविकल्पकमिति मन्यमानं प्रति अशेष-
स्यापि प्रमाणस्याविशेषेण विकल्पात्मकत्वविधानार्थं व्यवसाया-
त्मकत्वविशेषणसमर्थनपरं तन्निश्चयात्मकमित्याद्याह । यत्प्राक्प्र-
वन्धेन समर्थितं ज्ञानरूपं प्रमाणम्—

तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ॥ ३ ॥

संशयविपर्यासानध्यवसायात्मको हि समारोपः, तद्विरुद्धत्वं १५
वस्तुतथाभावग्राहकत्वं निश्चयात्मकत्वेनानुमाने व्याप्तं सुप्रसिद्धम्
अन्यत्रापि ज्ञाने तद् दृश्यमानं निश्चयात्मकत्वं निश्चाययति,
समारोपविरोधिग्रहणार्थं निश्चयस्वरूपत्वात् । प्रमाणत्वाद्धौ तैत्त-
दात्मकमनुमानवदेव । परं निरपेक्षतया वस्तुतथाभावप्रकाशकं हि
प्रमाणम्, न चाविकल्पकम् तथा-नीलादौ विकल्पस्य क्षणक्ष-
येऽनुमानेऽपेक्षणात् । ततोऽप्रमाणं तत् वस्तुव्यवस्थायामपे-
क्षितपरव्यापारत्वात् सन्निकर्षादिवत् । नैवेदमनुभूयते-अक्ष-
व्यापारानन्तरं स्वार्थव्यवसायात्मनो नीलादिविकल्पस्यैव वैशद्ये-
नानुभवात् ।

१ किञ्च । २ वस्तु । ३ पाषाणादिकम् । ४ अहिकण्टकादि । ५ हिता-
हितप्राप्तिपरिहारयोः । ६ अन्यवधानेनार्थतथात्वप्रदर्शकत्वलक्षणम् । ७ हिताहित ।
८ अन्यथा । ९ बोधना । १० जैः । ११ कृतम् । १२ ज्ञानं । १३ नौदं ।
१४ प्रधानं । १५ सापूर्वत्वादि । १६ व्यापकेन । १७ प्रत्यक्षे । १८ ज्ञानस्य ।
१९ सम्यग्ज्ञानत्वादविसर्वादित्वाभिमुख्यहेतुत्वात् । २० ज्ञानविशेषणमितिहं प्रमाणं ।
२१ प्रमाणत्वं च साभिमुख्यात्मकत्वं च न सादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह ।
परं सविकल्पकं ज्ञानम् । २२ दर्शनं सीगताभिमतम् । २३ नीलमीदं पीतमीदम् ।
२४ सर्वं क्षणिकं सत्त्वात् इत्यस्य । २५ ज्ञानापेक्ष । २६ किञ्च । २७ निर्विकल्प-
कम् । २८ प्रत्यक्षसिद्धं च अनदीत्यर्थः । २९ नयनोन्मीलनानन्तरम् ।

नच विकल्पाविकल्पयोर्युगपद्वृत्तेर्लघुवृत्तेर्वा एकत्वाध्यवसा-
यादिकल्पे वैशद्यप्रतीतिः; तद्व्यतिरेकेणापरस्याप्रतीतिः । मेदेन
प्रतीतौ ह्यन्यत्रान्यस्यारोपो युक्तो मित्रे चैववत् । न चाऽस्पष्टाभो
विकल्पो निर्विकल्पकं च स्पष्टाभं प्रत्यक्षतः प्रतीतम् । तथाप्यनु-
५ भूयमानस्वरूपं वैशद्यं परित्यज्यानुभूयमानस्वरूपं वै (पमवैशद्यं)
परिकल्पयन् कथं परीक्षको नाम ? अनवस्थाप्रसङ्गात्-ततोप्यपर-
स्वरूपं तदिति परिकल्पनप्रसङ्गात् । युगपद्वृत्तेर्भावेदाध्यवसाये
दीर्घशङ्कुलीभक्षणादौ रूपादिज्ञानपञ्चकस्यापि सहोत्पत्तेरमे-
दाध्यवसायः किञ्च स्यात् ? मित्रविषयत्वात्तेषां तदभावे-अत
१० एव स प्रकृतयोरपि न स्यात् क्षणसन्तीनविषयत्वेनैनयोरप्यैसा-
विशेषात् । लघुवृत्तेर्भावेदाध्यवसाये-खररटितमित्रादावप्य-
मेदाध्यवसायप्रसङ्गः । कथं चैवं कौपिलानां बुद्धिचैतन्ययोर्मे-
दोऽनुपलभ्यमानोपि न स्यात् ?

अथानैयोः सादृश्याद्भेदेनानुपलम्भः, अमिमवाद्भिमिधीयते ?
१५ ननु किञ्चित्तमनयोः सादृश्यम्-विषयाभेदेकृतम्, स्वरूपताकृतं

१ क्रमसत्त्वेऽपि । २ अविकल्पविकल्पयोः स्पष्टाऽस्पष्टत्वेन मेदेन प्रत्यक्षतः प्रतीत-
भावे । ३ विकल्पे । ४ अवैशद्यम् । ५ सौगतः । ६ अवैशद्यमार्गः । ७ पीतम् ।
८ सविकल्पकम् । ९ परः । १० अविकल्पविकल्पयोः । ११ सामान्य ।
१२ अविकल्पविकल्पयोः । १३ मित्रविषयत्वम् । १४ किञ्च । १५ विकल्पाविकल्प-
योरनुपलभ्यमानभेदसम्भवप्रकारेण । १६ सादृश्याभावात् । १७ अप्रतीतिमानः ।
१८ अनुपलभ्यमानत्वात् सिध्येत् । १९ अन्त्युपगममात्रस्य तत्रापि सङ्गाभावात् ।
२० परः । २१ विकल्पेतरयोः । २२ प्रवक्तव्याध्यवसायस्य । २३ परामर्शात् ।
२४ परेण । २५ ना (तृतीया) ।

१ 'मनसोर्युगपद्वृत्तेः सविकल्पाऽविकल्पयोः ।

निमूढः सम्प्रवृत्तेर्वा (लघुवृत्तेर्वा) तयोरैक्यं व्यवस्यति' ॥

प्रमाणवा० ३ । १३३

२ 'विकल्पज्ञानं हि संकेतकालदृष्टत्वेन वस्तुगुणत्वं सत्त्वसत्त्वयोर्नैव शङ्कीयात् ।
संकेतकालदृष्टत्वं च संकेतकालोत्पन्नज्ञानविषयत्वम् । यथाच पूर्वोपपन्नं विनष्टं शानं
संप्रत्यक्षं तद्वत् पूर्वविनष्टज्ञानविषयत्वमपि संप्रति नास्ति वस्तुनः । तदसङ्गं वस्तुनो
गुणदसन्निहितार्थमादित्वादस्फुटाभम् अस्फुटामत्वादेव च सविकल्पकम् । ततः
स्फुटामत्वात् निर्विकल्पकम्....'

न्यायवि० टी० पृ० २१

३ श्रुता—'अथ विकल्पाविकल्पयोः सादृश्याद्भिमवाद्भिमिधीयते....'

स्वा० रत्नाकर पृ० ७२

वा? न तावद्विषयाभेदकृतम्; सन्तानेतरविषयत्वेनानयोर्विषयाभे-
दाऽसिद्धेः ज्ञानरूपतासादृश्येन त्वैवेदाध्यवसाये—नीलैपीतादि-
ज्ञानानामपि भेदेनोपलम्भो न स्यात्। अथाभिभवात्; केन कस्या-
भिभवः? विकल्पेनाविकल्पस्य भानुना तारानिकरस्येवेति चेत्;
विकल्पस्याप्यविकल्पेनाभिभवः कुतो न भवति? बलीयस्त्वा-
दस्येति चेत्; कुतोस्य बलीयस्त्वम्—बहुविषयात्, निश्चयात्म-
कत्वाद्वा? प्रथमपक्षोऽयुक्तः, निर्विकल्पविषय एव तत्प्रवृत्त्य-
भ्युपगमात्, अन्यथा अगृहीतार्थग्राहित्वेन प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गः।
द्वितीयपक्षेपि स्वरूपे निश्चयात्मकत्वं तस्य, अर्थरूपे वा? न
तावत्स्वरूपे— १०

“सर्वैर्विचैतैर्ज्ञानात्मात्मसंवेदनं ग्रन्थक्षम्” [न्यायवि० पृ० १९]
इत्यस्य विरोधात्। नाप्यर्थे—विकल्पस्यैकस्य निश्चयानिश्चयसमा-
वश्यप्रसङ्गात्। तच्च परस्परं तैर्द्वयैकान्तैर्तोमिन्नं चेत्; सम-
वायायनभ्युपगमात् सम्बन्धासिद्धेः ‘बलवान्विकल्पो निश्चयात्म-
कत्वात्’ इत्यस्यैव सिद्धेः। अमेदैकान्तेपि—तैर्द्वयं तैर्द्वानैव वा भवेत्। १५
कथंचित्तादात्म्ये—निश्चयानिश्चयस्वरूपसाधारणमात्मौनं प्रतिपद्यते
चेद्विकल्पः—स्वरूपेपि सर्ववैकल्पकः स्यात्, अन्यथा निश्चयसैक्य-
तादात्म्यविरोधः। न च स्वरूपमनिश्चिन्वन्विकल्पोऽर्थनिश्चयायकः,
अन्यथाऽगृहीतस्वरूपमपि ज्ञानमर्थग्रौहकं भवेत् तथाच—

“अग्रन्थक्षोपलम्भस्य” [] इत्येदिविरोधः; तत्स्वरूप-२०

१ क्षण। २ पुनः। ३ क्षण। ४ तिरस्कारः। ५ परैः। ६ निर्विकल्पकत्वोप।
७ सविकल्पक्षण। ८ निर्विकल्पकक्षण। ९ नीलमिति लसंवेदनेन। १० लसंवेद-
नम्। ११ नीलपाकारतया सविकल्पाः क्षणाः। १२ सर्वज्ञानानां स्वरूपे निर्वि-
कल्पकत्वान्भ्युपगमस्य अन्यस्य। १३ स्वरूपेऽनिश्चयात्मकत्वमर्थे निश्चयात्मकत्वम्।
१४ ततः स्वरूपनिश्चयाभावात्। १५ विकल्पात्। १६ स्वरूपम्। १७ परेयम्।
१८ अयाणां भेदात्। १९ सौगताभ्युपगतस्य हेतोः। २० स्वरूपम्। २१ विकल्पः।
२२ सति। २३ स्वरूपम्। २४ तथा चापसिद्धान्तप्रसङ्गः। २५ भा। २६ विक-
ल्पस्य। २७ किञ्च। २८ अज्ञातम्। २९ नाकारं नाम आपकम्। ३० अलम्ब-
नपरोक्षज्ञानस्य। ३१ नार्थसिद्धिः प्रसिद्धयति।

१ जुलना—‘अथ विकल्पस्य बलीयस्त्वाद’—सन्ध्याति० टी० पृ० ५००

स्या० रत्नाकर पृ० ५०

२ ‘अप्रसिद्धोपलम्भस्य नार्थसिद्धिः प्रसिद्धयति।

तत्र ग्राह्यस्य संविधिग्राहकानुसंधादिवे’ ॥ २०७४ ॥ तत्सर्वं०

स्यानुभूतस्याप्यनिश्चितस्य क्षणिकत्वादिविज्ञान्यनिश्चायकत्वम् ।
विकल्पान्तरेण तन्निश्चयेऽनवस्था ।

कैश्चानयोरेकत्वाध्यवसायः—किमेकविषयत्वम्, अन्यतरेणान्यतरस्य विषयीकरणं वा, परत्रेतरस्याध्यारोपो वा ? न तावदेकविषयत्वम्; सामान्यविशेषविषयत्वेनानयोर्मिन्नविषयत्वात् । दृश्यविकल्प(ल्प)योरेकत्वाध्यवसायादभिन्नविषयत्वम्, इत्यप्ययुक्तम्; एकत्वाध्यवसायो हि दृश्ये विकल्पस्याध्यारोपः । स च गृहीतयोः, अगृहीतयोर्वा तयोर्मेवेत् ? न तावद्गृहीतयोः, भिन्नस्वरूपतया प्रतिभासमानयोर्घटपटयोरिवैकत्वाध्यवसायायोगात् ।
१० न चान्योर्ग्रहणं दर्शनेन; अस्य विकल्प्यागोचरत्वात् । नापि विकल्पेन; अस्यापि दृश्यागोचरत्वात् । नापि ज्ञानान्तरेण, अस्यापि निर्विकल्पकत्वे विकल्पैवात्मकत्वे चोक्तदोषानतिक्रमात् । नाप्यगृहीतयोः स सम्भवति अतिप्रसङ्गात् । सादृश्यनिबन्धनआरोपोर्दृष्टः, वैस्त्ववस्तुनोऽत्र नीलखरविषाणयोरिव सादृश्याभावाच्चा-
१५ ध्यारोपो युक्तः । तन्नैकविषयत्वम् ।

अन्यतरस्यान्यतरेण विषयीकरणमपि—समानकालमविनोरापारतन्त्र्यादनुपपन्नम् । अविषयीकृतस्यान्यस्यान्यमध्यारोपोऽप्यसम्भवी । किञ्च, विकल्पे निर्विकल्पकस्याध्यारोपः, निर्विकल्पके विकल्पस्य वा ? प्रथमपक्षे—विकल्पव्यवहारोच्छेदः निखिलज्ञानानां
२० निर्विकल्पकत्वप्रसङ्गात् । द्वितीयपक्षेपि—निर्विकल्पकवार्तोच्छेदः—सकलज्ञानानां सविकल्पकत्वानुपपन्नात् ।

किञ्च, विकल्पे निर्विकल्पकधर्मोपाद्वैशद्यव्यवहारवत् निर्विकल्पके विकल्पधर्मोपाद्वैशद्यव्यवहारः किञ्च स्यात् ? निर्विकल्पकधर्मेणाभिभूतत्वादिकल्पधर्मस्य इत्यन्यत्रापि समानम् । भवतु

१ उपलम्भः स्वरूपं जानाति न वा ? न जानाति चेत्कर्तुं सर्वं जानातीत्यभिप्रायः ।
२ नीलनीलमिति । ३ नीलोयमिति । ४ नैयायिकं प्रति बोधेनोक्तम् । ५ विकल्प-स्वरूपं यथा क्षणिकत्वादिनिश्चायकं न भवति अनिश्चितत्वाच्चयाऽर्थस्यापि न निश्चायकं तत्र ध्व । ६ अर्थः । ७ निर्विकल्पकसविकल्पकयोः । ८ आ । ९ परमाणु । १० निर्विकल्पकसविकल्पकयोः । ११ परः, सकलज्ञ । १२ नीलादि । १३ दृश्यविकल्पयोः । १४ सति । १५ खरविषाणयोरप्येकत्वाध्यवसायप्रसङ्गः परमाण्वादावपि स्याद्वा । १६ लोके । १७ दृश्यविकल्पयोः । १८ विकल्पाविकल्पयोः । १९ अविकल्पस्य । २० विनल्पे । २१ इदं निर्विकल्पकमिति । २२ वैशद्य । २३ विकल्पधर्मस्यावैशद्यस्य निर्विकल्पके आरोपेन न (इति चेत्) । २४ विकल्पधर्मेण निर्विकल्पधर्मस्याभिभूतत्वात् विकल्पे निर्विकल्पकधर्मोपाद्वैशद्यव्यवहारो भाव्यः ।

वा तेनैवाभिभवः; तथाप्यसौ सहभावमात्रात्, अभिन्नविषयत्वात्, अभिन्नसामग्रीजन्यत्वाद्वा स्यात् ? प्रथमपक्षे गोदर्शनसमयेऽश्व-
विकल्पस्य स्पष्टप्रतिभासो भवेत्सहभावाविशेषात् । अथानयोर्भि-
न्नविषयत्वात् न अस्पष्टप्रतिभासमभिभूयाश्चविकल्पे स्पष्टतया
प्रतिभासः; तर्हि शब्दस्वलक्षणमध्यक्षेणानुभवता तत्र क्षणक्षयानु-
मानं स्पष्टमनुभूयतामभिन्नविषयत्वालीलादिविकल्पवत् । भिन्न-
सामग्रीजन्यत्वादनुमानविकल्पस्यैवाध्यक्षेण तद्धर्माभिभवोभावे-
सकलविकल्पानां विशदावभासिखसंवेदनप्रत्यक्षेणभिन्नसामग्री-
जन्येनाभिभवप्रसङ्गः । अथ तत्राभिन्नसामग्रीजन्यत्वं नेध्यते-तेषां
विकल्पैवांसनाजन्यत्वात्, सवेदनमात्रप्रभवत्वाच्च खसंवेदनस्य १०
इत्यसत्; नीलादिविकल्पस्याप्यध्यक्षेणाभिभवाभावप्रसङ्गासैत्रापि
तदविशेषात् ।

किंच, अैनयोरेकत्वं निर्विकल्पकमध्यवस्यति, विकल्पो वा,
ज्ञानान्तरं वा ? न तावन्निर्विकल्पकम्; मध्यवसायविकलत्वात्तस्य,
अन्यथा भ्रान्तताप्रसङ्गः । नापि विकल्पः; तेनाविकल्पस्याविष-
यीकरणात्, अन्यथा स्वलक्षणगोचरताप्राप्तेः “विकल्पोऽवस्तुनि-
र्भासः” [] इत्यस्य विरोधः । न चाविषयीकृतस्यान्यत्रै-
रोपः । न ह्यप्रतिपन्नरजैतः शुक्तिकायां रजतमारोपयति । ज्ञाना-
न्तरं तु निर्विकल्पकम्, स्वविकल्पकं वा ? उभयत्रानुभूयमयोपा-
पङ्गतस्तदुभयविषयत्वायोगः । तदन्यतरविषयेणैनयोरेकत्वा- २०

१ निर्विकल्पकधर्मेणाभिभूत्वात् । २ दर्शने । ३ अवैशेष । ४ तिरस्कृत्य लोच्य
वा । ५ वैशेषेण । ६ श्रोत्रेन्द्रियदर्शनेन । ७ परेण । ८ सर्वं क्षणिकमिति । ९ परेण ।
१० नीलादिप्रतिभासो यथाजुभूयते । ११ प्रत्यक्षं श्रोत्रचक्षुःआदिजनितमनुमानं च
लिङ्गजनितम् । १२ दर्शनेन । १३ अनुमान स्पष्टं जानुभूयते । १४ प्रधानादि-
विकल्पानां । १५ सर्वव्यतिचैतानामभिन्नसामग्रीप्रभवत्वात् । १६ विशदतयाप्रति-
भासो भवेत्सकलविकल्पानाम् । १७ परः । १८ सर्वविकल्पेषु स्वसंवेदनेषु च ।
१९ सौगतैरस्याभिः । २० संस्कार । २१ प्रत्यक्षस्य । २२ नीलादिविकल्पे ।
२३ विकल्पेवरयोः । २४ नीलादिविकल्पवत् । २५ अवस्तुनि निर्भासः प्रतिभासो
यस्य विकल्पस्य सः । २६ प्रपञ्चस्य । २७ निर्विकल्पकस्य । २८ विकल्पे ।
२९ षट्पदे । ३० ना । ३१ समिकल्पकनिर्विकल्पकयोः । ३२ ज्ञानेन ।

१ तुलना—‘तदैकत्वं हि दर्शनमध्यवसति’...प्रमाणप० पृ० २३ । न्यायकुसुं
प्र० परि० । सम्मति० टी० पृ० ५०० । व्या० रत्नाकर पृ० ५२ ।

२ तु०—‘विकल्पोऽवस्तुनिर्भासात् निसर्वादादुपपन्नः ।’

प्रश० कन्दली पृ० १२०

ध्यवसाये-अतिप्रसङ्गः-अक्षज्ञानेन त्रिविप्रकृष्टेतरयोरप्येकत्वा-
ध्यवसायप्रसङ्गात् । तन्न तयोरेकत्वाध्यवसायाद्विकल्पे वैश-
द्यप्रतीतिः, अविकल्पकस्यानेनैवैकत्वाध्यवसायस्य चोक्तन्यायेना-
प्रसिद्धत्वात् ।

५ यच्चोच्यते-संहृतसकलविकल्पावस्थायां रूपादिदर्शनं निर्वि-
कल्पकं प्रत्यक्षतोऽनुभूयते । तदुक्तम्—

“संहृत्य सर्वैतर्ज्जिन्तांस्तिमितेनान्तरात्मना ।

स्थितोपि चक्षुषा रूपमीक्षते साऽक्षजा मतिः” ॥ १ ॥

[प्रमाणवा० ३।१२४]

१० “प्रत्यक्षं कैल्पनापोढं प्रत्यक्षेणैव सिद्ध्यति ।

प्रत्यात्मवेद्यः सर्वेषां विकल्पो नामसंश्रयः” ॥ २ ॥

[प्रमाणवा० ३।१२३] इति ।

न चात्रार्थस्थायां नामसंश्रयतयाऽननुभूयमानानामपि विक-
ल्पानां सम्भवः-अतिप्रसङ्गादित्यप्युक्तिमात्रम्; अश्वं विकल्पयतो
१५ गोदर्शनलक्षणायां संहृतसकलविकल्पावस्थायां स्थिरस्थूलादि-
स्वभावार्थसाक्षात्कारिणो विपरीतौरोपविर्द्येक्षस्याध्यक्षस्यानिश्चया-
त्मकत्वायोगात् । तत्त्वे वा अश्वविकल्पाद्युत्थितचित्तस्य गति-
स्मृतिर्न स्यात् क्षणिकत्वादिवत् । नामसंश्रयात्मनो विकल्पस्यात्र
निषेधे तु न किञ्चिदनिर्दिष्टम् । न चाशेषविकल्पानां नामसंश्रयतैव
२० स्वरूपम्; समारोपविरोधिर्ग्रहणलक्षणत्वात्तेषामित्येवैवास्तो
वक्ष्यामः । न चानिश्चयात्मनः प्रामाण्यम्; गच्छन्नुपसर्शसंवेद-
नस्यापि तत्प्रसङ्गात् । निश्चयहेतुत्वात्तस्य प्रामाण्यमित्युक्तम्;
संशयादिविकल्पजनकस्यैव प्रामाण्यप्रसङ्गात् । स्वैकक्षणानध्य-

१ देशकालसमावयवहिताव्यवहितयोः वयदिपरमाण्वयोः । २ विकल्पस्य ।
३ घरेण । ४ नष्ट । ५ नीलादि । ६ नातिद्वयशुण्णक्रियातिवन्धनाः । ७ सामत्येन ।
८ विकल्परूपाय । ९ स्थिरीभूतेन । १० गच्छन् वा । ११ रहितं । १२ मनसा ।
१३ प्रतिस्वरूपवेद्यः । १४ स्वसवेदनेन वेद्यः । १५ शब्दः संमयः कारणं यस्य
विकल्पस्य सः । १६ नष्टविकल्पाया । १७ सुप्तमनसादावपि स्यात् । १८ पुरुषस्य ।
१९ साधारणं सामान्यरूपं । २० क्षणिकादि । २१ त्व (पृष्ठी) । २२ निर्विकल्प-
कस्य । २३ व्यावृत्त । २४ नरस्य । २५ जेनानां । २६ ज्ञानं । २७ शब्दाद्वैत-
वादे । २८ विस्तरतः । २९ दर्शनस्य । ३० दर्शयस्य । ३१ अनुक्षणिक ।

१ ‘अविकल्पमपि ज्ञानं विकल्पोत्पत्तिशक्तिमत् ।

निःशेषव्यवहारकं तद्वारेण अवलतः’ ॥ १३०६ ॥ तत्त्वसं०

वसायित्वात्तद्विकल्पस्यादोषोऽयम्, इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि नीलादिविकल्पोपि स्वलक्षणाध्यवसायी; तदनालम्बनस्य तदध्यवसायित्वविरोधात् । 'मनोराज्यादिविकल्पः कथं तदध्यवसायी' ? इत्यप्यस्यैव दूषणं यस्यासौ राज्याद्यग्राहकसमावो नास्माकम्, सत्यराज्यादिविपर्ययस्य तद्ग्राहकसमावत्वाभ्युपगमात् । ५

न चास्य विकल्पोत्पादकत्वं घटते स्वयमविकल्पकत्वात् खल-
क्षणवत्, विकल्पोत्पादनसामर्थ्याविकल्पकत्वयोः परस्परं विरो-
धात् । विकल्पैवावसानापेक्षस्याविकल्पकस्यापि प्रत्यक्षस्य विक-
ल्पोत्पादनसामर्थ्यानि(वि)रोधे-अर्थस्यैव तैथाविधस्य सोस्तु किम-
न्तर्गडुना निर्विकल्पकेन ? अथाक्षतोर्थः कथं तज्जनकोऽतिप्रस- १०
ङ्गात् ? दर्शनं कथमनिश्चर्यात्मकमित्यपि समानम् ? तस्यानु-
भूतिमात्रेण जनकत्वे-क्षणक्षयादौ विकल्पोत्पत्तिप्रसङ्गः । यत्रार्थे
दर्शनं विकल्पवाचनायाः प्रबोधकं तत्रैव तज्जनकमित्यप्यसाम्प्र-
तम् ; तस्यानुभवमात्रेण तत्प्रबोधकत्वे नीलादाविव क्षणक्षयादौ-
वपि तत्प्रबोधकत्वप्रसङ्गात् । १५

तत्राभ्यासप्रकरणवृद्धिपाटवार्थित्वाभावाच्च तत्तस्याः प्रबोधक-
मिति चेत् ; अथ कोयमभ्यासो नाम-भूयोदर्शनम्, बहुशो
विकल्पोत्पत्तिर्वा ? न तावद्भूयो दर्शनम् ; तस्य नीलादाविव

१ संशयादि । २ नीलादिविकल्पे । ३ स्वलक्षण । ४ विकल्पः स्वलक्षणाध्य-
वसायी न भवति तदनालम्बनत्वात् मनोराज्यादिना (मनोराज्याध्यवसायिनित्यर्थः)
अनेकान्तोऽस्य । ५ मनोराज्यादिसंख्यालम्बनोपि राज्याध्यवसायी । ६ बौद्धस्य ।
७ मनोराज्यादिविकल्पस्य । ८ किंच । ९ निर्विकल्पकदर्शनस्य । १० स्वलक्षणे यथा ।
११ अविकल्पवत् च सादिकल्पोत्पादनसामर्थ्यं च सादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे
सत्यात् । १२ अभिलाषसंसर्गयोग्यताराहित्यमविकल्पकत्वं तस्मिन्सति कथं विकल्पो-
त्पादनसामर्थ्यं सादविकल्पकस्य । १३ परः । १४ विकल्पवाचनापेक्षस्य । १५ (परः)
अगृहीतः । १६ विकल्प । १७ सर्वस्य सर्वेण विकल्पं जनयेत् । १८ विकल्पजनकं ।
१९ लभ्यमात्राणि । २० विकल्प । २१ यथा नीलमिदमिति विकल्पस्तथा क्षणिकमिद-
मिति विकल्पः स्यात् । २२ न क्षणक्षयादौ । २३ विकल्प । २४ स्वसुवेदनेन ।
२५ स्वर्गप्रापणशक्तिः । २६ दर्शनस्य । २७ अनुभूतिमात्राविशेषात् । २८ पश्यन्नर्थ
क्षणिकमेव पश्यन्तीति वचनात् । २९ इदं क्षणिकमिदं क्षणिकमिति । ३० प्रस्ताव ।
३१ दर्शनम् ।

१ तुलना—'अथ अवयव-अभ्यासप्रकरणवृद्धिपाटवार्थित्वेभ्यो...'

प्रमाण प० पृ० ५४ ।

सा० रत्नाकर पृ० ५४ ।

क्षणक्षयादौवप्यविशेषात् । अथ बहुशो विकल्पोत्पत्तिरभ्यासः, तस्य क्षणाक्षयादिदर्शने कुतोऽभावः ? तस्य विकल्पवासनाप्रबोधकत्वाभावाच्चेत् ; अन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि क्षणक्षयादौ दर्शनस्य विकल्पवासनाप्रबोधकत्वाभावे तल्लक्षणाभ्यासाभावसिद्धिः, त-
 ५ त्सिद्धौ चास्य सिद्धिरिति । क्षणिकाक्षणिकविचारणायां क्षणिक-
 प्रकरणमप्यस्त्येव । पाटवं तु नीलादौ दर्शनस्य विकल्पोत्पाद-
 कत्वम्, स्फुटतरानुभवो वा स्यात्, अविद्यावासनाविनाशादात्म-
 लाभो वा ? प्रथमपक्षे—अन्योन्याश्रयात् । द्वितीयपक्षे तु—क्षणक्ष-
 यादावपि तैत्प्रसङ्गः स्फुटतरानुभवस्यात्राप्यविशेषात् । तृतीयप-
 १० क्षोप्ययुक्तः, तुच्छस्वभावाभावानभ्युपगमात् । अन्योत्पादककार-
 णस्वभावस्योपगमे क्षणक्षयादौ तैत्प्रसङ्गः, अन्यथा दर्शनमेव-
 स्याद्विद्वेदधर्माध्यासात् । योगिन एव चै तथाभूतं तैत्सम्भावित,
 ततोऽस्यापि विकल्पोत्पत्तिप्रसङ्गात् “विधूतकल्पनाजाल”
 [] इत्यादिविरोधः । अर्थित्वं चाभिलषितत्वम्, जिज्ञा-
 १५ सितैर्वै वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः ; कचिदनभिलषितेपि वस्तुनि तस्याः
 प्रबोधदर्शनात् । चैकप्रसङ्गश्च—अभिलषितत्वस्य वस्तुनिश्चय-
 पूर्वकत्वात् । द्वितीयपक्षेतु—क्षणक्षयादौ तैद्वासनाप्रबोधप्रसङ्गो
 नीलादाविवात्रापि जिज्ञासितत्वाविशेषात् ।

न चैवं सविकला(ल्प)कप्रत्यक्षवादिनामपि प्रतिवोद्ध्युपन्यस्तस-
 २० कलवर्णपदादीनां सौच्छ्रासौदिसंख्यायाश्चाविशेषेण स्मृतिः प्रैस-

१ पश्यन्नयं क्षणिकमेव पश्यतीति वचनात् । २ इदं क्षणिकमिदं क्षणिकमिति ।
 ३ पश्यन्नयं क्षणिकमेव पश्यतीति वचनात् । ४ क्षणिकादौ दर्शनस्य विकल्पवासनाप्र-
 बोधकत्वाभावे सिद्धे विकल्पोत्पादकत्वलक्षणपाटवानावसिद्धिसिद्धौ चास्य सिद्धिरिति ।
 ५ विकल्पवासनाप्रबोधकत्वम् । ६ सिद्धे हि विकल्पोत्पादकत्वे (पाटवे) नीलादौ
 विकल्पवासनाप्रबोधकत्वसिद्धिसिद्धस्तदुत्पादकत्वसिद्धिरिति । ७ सौगतैः । ८ इडेः ।
 ९ विकल्पवासनाप्रबोधकत्वोत्पत्तिः । १० अविद्यावासनातोऽन्यदिन्द्रियं वा ज्ञाना-
 न्तरं वा जात्मा वा । ११ वसः । अविद्यावासनाविनाशस्य । १२ विकल्पोत्पादकत्वम् ।
 १३ निर्विकल्पक । १४ नीलादौ पाटवं क्षणक्षयादावपाटवमिति । १५ एकक्षणस्यैव
 पाटवनाशमात्रम् । १६ किञ्च । १७ पाटवं । १८ निर्विकल्पक । १९ योगिनः
 प्रत्यक्षादपि । २० विधूतकल्पनाजालं प्रत्यक्षं योगिना मतम् । २१ ग्रन्थविरोधः ।
 २२ ज्ञानुमिहर्ष । २३ अहिकण्टकादौ । २४ अविद्यापादिकल्पवासनाप्रबोधकत्वसाध-
 विकल्पसाक्षात्तमभिलषितत्वम् । २५ विकल्प । २६ विकल्प । २७ निर्विकल्पकप्रत्यक्ष-
 वादिप्रकरणेनातिव्याप्तकस्य विकल्पावबकत्वे । २८ जैनानाम् । २९ सौगत ।
 ३० वाक्य । ३१ जैन । ३२ निश्वास । ३३ बोधस्य निश्चयात्मकत्वात् ।

[illegible]

三

A handwritten musical score for the song 'The Rose Tree'. The score is written on five staves. The first staff begins with a treble clef and a key signature of one flat (B-flat). The melody is written in a cursive, handwritten style. The lyrics 'The Rose Tree' are written below the first staff. The second staff continues the melody. The third staff continues the melody. The fourth staff continues the melody. The fifth staff continues the melody. The score is written on aged, slightly yellowed paper.

३८

A handwritten musical score for the song 'The Rose Tree'. The score is written on ten staves. The first staff begins with a treble clef and a key signature of one sharp (F#). The melody is written in a cursive, handwritten style. The lyrics 'The Rose Tree' are written below the first staff. The score continues with several more staves of music, each with corresponding lyrics. The handwriting is fluid and characteristic of 18th or 19th-century musical notation. The paper appears aged and slightly discolored.

A page of handwritten musical notation on ten staves. The notation is in a cursive, handwritten style, likely a form of musical shorthand or a specific dialect of musical notation. It includes various notes, rests, and bar lines, with some text written above and below the staves.

Handwritten musical notation on a five-line staff. The notation includes various note values, rests, and bar lines, typical of a musical score.

1907

三、三、三、三

भावात् ? न तावत्स्पष्टाकारविकलत्वात्तस्याऽप्रामाण्यम् ; काचा-
भ्रंकादिव्यवहितार्थदूरपादपौदिप्रत्यक्षस्याप्यप्रामाण्यप्रसङ्गात् । न
चैतद्युक्तम्, अज्ञातवस्तुप्रकाशनसंवादलक्षणस्य प्रमाणलक्षणस्य
सद्भावात् । प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गो वा; अस्पष्टत्वालिङ्गजत्वाभ्यां
प्रमाणद्वयानन्तर्भूतत्वात् । नापि गृहीतग्राहित्वात्; अनुमान-^५
स्याप्यप्रामाण्यानुषङ्गात्, व्याप्तिर्ज्ञानयोगिसंवेदनगृहीतार्थग्राहि-
त्वात् । कथं वा क्षणक्षयानुमानस्य प्रामाण्यम्-शब्दरूपाव-
भास्यर्ध्यक्षावगतक्षणक्षयविषयत्वात् ? नच अर्च्यक्षणे धर्मिस्व-
रूपग्राहिणा शब्दग्रहणेपि न क्षणक्षयग्रहणम्; विवेकधर्माभ्या-
सैतस्तद्भेदैर्प्रसङ्गेः । नाप्यसतिप्रवर्तनात्, अतीतानागतार्थोर्विकल्प-^{१०}
काले असत्त्वेपि स्वकाले सत्त्वात् । तथाप्यस्याप्रामाण्ये-प्रत्यक्ष-
स्याप्यप्रामाण्यानुषङ्गः तद्विषयस्यापि तत्कालेऽसत्त्वाविशेषात् ।
हिताऽहितप्राप्तिपरिद्वारासमर्थत्वादित्यसम्भाव्यम्; विकल्पादेवे-
ष्टार्थप्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिदर्शनात् अनिष्टार्थाच्च निवृत्तिप्रतीतेः ।
कदाचिदर्थप्रापकत्वाभावेस्तु-प्रत्यक्षेपि समानोऽनर्थत्वादप्रवृत्त-^{१५}
स्यार्थप्रत्यक्षैवत् । कदाचिद्विस्मवादादित्यप्यसाम्प्रतम्; प्रत्यक्षेप्य-
प्रामाण्यप्रसङ्गात्, तिसिरीद्युपहतचैक्षुषोऽर्थोभावेपि प्रत्यक्षप्रवृ-
त्तिदर्शनात् । भ्रान्ताद्भ्रान्तस्य भेदोऽन्यत्रापि समानः । समारो-
पानिषेधकत्वादित्यप्यसङ्गतम्; विकल्पविषये समारोपासम्भ-
वात् । नापि व्यवहारायोग्यत्वात्; सकलव्यवहाराणां विकल्प-^{२०}
मूलत्वात् । स्वलक्षणाऽगोचरत्वादित्यप्यसमीक्षिताभिधानम्;
अनुमानेपि तैत्प्रसङ्गेः तद्वैतस्यापि सामान्यगोचरत्वात् । न च
तद्भास्यस्य सामान्यरूपत्वेप्यव्यवसेयस्यै स्वलक्षणरूपत्वाद् हेतु-
विकल्प्यावर्थाविकीर्णेत्यतः प्रवृत्तेरनुमानस्य प्रामाण्यम्; प्रकृत-
विकल्पेऽप्यस्यै समानत्वात् । शब्दसंसर्गयोग्यप्रतिभासत्वादित्य-^{२५}

१ स्फटिकजलादि । २ पर्वतादि । ३ पारमार्थिकं लक्षणमिदम् । ४ व्याव-
हारिकम् । ५ व्याप्तिज्ञानं च तद्योगिसंवेदनं च । ६ सर्वज्ञ । ७ भावणाध्यक्षगृही-
तार्थग्राहितात् । ८ भावणाध्यक्ष । ९ निर्विकल्पकेन । १० सर्वं वस्तु क्षणिकं
सत्त्वात् । ११ तस्यैवग्रहणमग्रहणमिति । १२ शब्दवर्णिनः । १३ क्षणिकत्वधर्मस्य ।
१४ धर्मिरूपस्य वस्तुनः क्षणिक(कर्त्तव्यं) न अवतीत्यर्थः । १५ रात्रिगणकप्रवृत्तिः ।
१६ जयध्वजः । १७ आयमज्ञाने । १८ समकाले ग्राह्यग्राहकत्वाभावात्सन्नेतर-
गोविधानवत् । १९ प्रत्यक्ष । २० सर्पादिः । २१ पुरुषस्य । २२ इदं जलमिति ।
२३ ईप् (सप्तमी, सप्तम्यर्थे मन्त्रित्वार्थः) । २४ रोग । २५ पुरुषस्य । २६ आन्त-
विकल्पे । २७ अप्रामाण्यम् । २८ तस्य पूर्वावृत्ततत्त्वसङ्गस्य । २९ सामान्यारो-
पोद्भिर्कारणं स्वलक्षणमव्यवसेयम् । ३० स्वलक्षणम् । ३१ स्थूलम् । ३२ पुरुषस्य ।
३३ नीलम् । ३४ न्यायस्य ।

प्र० क० भा० ४

प्यसमीचीनम्; अनुमानेपि समानत्वात् । शब्दप्रभवत्वादित्य-
प्यसाम्प्रतम्; शब्दाध्यक्षस्योपामाण्यप्रसङ्गात् । आहार्ये विना
तन्मात्रप्रमेवत्वं चासिद्धम्; नीलादिविकल्पानां सर्वद्वयं सत्येव
भावात् । कैस्याचित्तु तन्मन्तरेणापि भावोऽध्यक्षेपि समानः
५ द्विचन्द्रादिप्रत्यक्षस्यार्थभावेपि भावात् । भ्रान्ताद्भ्रान्तस्यान्य-
त्वमत्रापि समानम् ।

किञ्च, विकल्पाभिधानयोः कार्यकारणत्वनियमकल्पनायाम्-
किञ्चित्प्रत्ययतः पूर्वानुभूततत्सदृशं स्मृतिर्न स्यात् तन्नामविशेषा-
स्मरणौत्, तदस्मरणे तदभिधानाप्रतिपत्तिः, तदप्रतिपत्तौ तेन
१० तदयोजनम्, तदयोजनात्तदनेव्यवसाय इत्यविकल्पाभिधानं
जगदापद्येत ।

किञ्च, पदस्य वैर्णानां च नामान्तरस्मृतावसत्यामध्यवसायः,
सत्यां वा तत्रापक्षे-नाज्ञो नामान्तरेण विनापि स्मृतौ केवै-
कार्याध्यवसायः किञ्च स्यात् ? 'स्वामिधानविशेषापेक्षा एवार्थो
२५ निर्देश्यैर्निश्चीयन्ते' इत्येकान्तत्यागात् । द्वितीयपक्षे तु-अनवस्था-
वर्णपदाध्यवसायेऽप्यपरनामान्तरस्यावश्यं स्मरणौत् ॥ छ ॥

१ शब्दजनितप्रत्यक्षस्य । २ वटः काष्ठे तत्रास्ते इत्यादि । ३ शब्दः । ४ विकल्-
पस्य । ५ विकल्पस्य । ६ वक्ष्याम्युत्तरार्थः । ७ नीलं । ८ पुः । ९ तेन दृश्येन
नीलेन सदृशं पूर्वानुभूतं च तच्च तत्सदृशं च तस्य स्मृतिः । १० स्मृतिर्विकल्पः ।
११ पूर्वानुभूततत्सदृशार्थस्मरणान्पूर्वं नामविशेषस्य पूर्वानुभूततत्सदृशार्थस्मरणोत्पाद-
कस्याभावात्तस्य तत्प्रत्ययतया पूर्वानुभूततत्सदृशार्थनामविशेषवत्त्वमनन्तरमाभित्याद ।
१२ नामविशेषः । १३ नाम । १४ शब्देन । १५ नीलशब्देनेदं नाप्यस्मिति
योजनाभावः । १६ दृश्यस्य नीलस्य । १७ दृश्यमाने नीले विकल्पानुत्पत्तिः ।
१८ विकल्पाभिधानवृत्त्यै । १९ गौरिस्य । २० गकारणोकारविशद्वैनीयानां ।
२१ अभिधान । २२ नामनिरपेक्षः । २३ निकल्पैः ।

१ पु०—“तस्मादयं किञ्चित्प्रत्ययन् तत्सदृशं पूर्वं दृष्टं न सङ्गुमईति तन्नामविशे-
षास्मरणौत्, तदस्मरणैव तदभिधानं प्रतिपद्यते, तदप्रतिपत्तौ तेन तच्च योजयति,
तदयोजनवशाध्यवसायीति न कमिद्विकल्पः शब्दो वैलविकल्पाभिधानं जगत्स्यात्” ।

अष्टश० अष्टसह० पु० ११९ । सा० रत्ना० पु० ७७ ।

२ पु०—“नाज्ञो नामान्तरेण विनापि स्मृतौ केवलार्थव्यवसायः किञ्च स्यात्”
तन्नामान्तरपरिकल्पनायामनवस्था” । (अष्टश०) “तदुक्तं न्यायविनिश्चये (११६)
अभिधापतद्वशानामभिधापविवेकतः । अग्रमाणप्रमेयत्वमवश्यमनुवर्त्यते” ॥ अष्टसह०
पु० १२० ।

३ बौद्धमिममतिर्विकल्पकप्रत्यक्षस्य खण्डनमनयैवानुपूर्वम्—अष्टश० अष्टसह०
पु० ११८, प्रमाणप० पु० ५३, न्यायकु० च० प्र० परि०, सम्प्रति० टी० पु० ४९५ ।
सा० रत्ना० पु० ७६ । इत्यादिषु ग्रन्थेषु ।

येपि शब्दाद्वैतवादिनो निखिलप्रत्ययानां शब्दानुविद्धत्वैनैव
सविकल्पकत्वं मन्यन्ते-तत्स्पर्शवैकल्ये हि तेषां प्रकाशरूपताया
एवाभावप्रसङ्गः । बाग्रूपता हि दशाभवती प्रत्यर्वमर्शिनी च ।
तदभावे प्रत्ययानां नीपरं रूपमवशिष्यते । सकलं चेदं वाच्यवा-
चकतत्त्वं शब्दब्रह्मण एव विद्यते नान्यविवर्तौ नापि स्वतन्त्र-
मिति । तदुक्तम्-

न सोस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमार्हते ।

अनुविद्धमिर्वाभाति सर्वं शब्दे प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥

[वाक्यप० १।१२३]

बाग्रूपता चेदुक्तैर्मेदवबोधस्य शाश्वती ।

१०

न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥ २ ॥

[वाक्यप० १।१२५]

अनादिनिधनं शब्दब्रह्मतैत्वं यदक्षरम् ।

विर्वर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रियौ जगतो यतः ॥ ३ ॥

[वाक्यप० १।१]

१५

अनादिनिधनं हि शब्दब्रह्म उत्पादविनाशाभावात्, अक्षरं च
अकाराद्यक्षरस्य निमित्तत्वात्, अनेन वैचक्ररूपता 'अर्थभावेन'
इत्यनेन तु वैचक्ररूपतास्य सूचिता । प्रक्रियेति मेदाः । शब्दब्रह्मेति
नामसङ्कीर्तनमिति;

तेष्यतत्त्वज्ञाः; शब्दानुविद्धत्वस्य ज्ञानेष्वप्रतिभासनात् । तं हि २०-
प्रत्यक्षेण प्रतीयते, अनुमानेन वा ? प्रत्यक्षेण चेत्किमैन्द्रियेण,

१ परः । २ ज्ञानार्ता । ३ ईप् । ४ तादात्म्य । ५ शब्दरूपपञ्चत्वेनैव ।
६ शब्दानुविद्धत्व । ७ अभ्यभिचारिणी । ८ प्रकाशहेतुभूता च । ९ परंविषयभू-
ताऽभावे । १० प्रकाशोपायभूत । ११ प्रपान । १२ ज्ञानं । १३ शब्दान्वय-
रहितः । १४ कुतो नास्ति ? शब्दरूपपञ्चत्वेन निश्चं शब्दे विमान्तं यतः ।
१५ अनुस्यूत । १६ एव । १७ अपगच्छेत् । १८ तदा । १९ ज्ञानं । २० शब्द-
रूपपञ्चत्वेन । २१ यतः । २२ ता (पञ्ची, पञ्चीसमाप्त इत्यर्थः) । २३ कर्तुं ।
२४ परिणमति । २५ मेदाः नवेद्युः । २६ शब्द । २७ नवै ।

१ अर्धहरिमयुजयः ।

२ "न तत्प्रलम्बतः सिद्धमविभागमभासनात् ।

मिसादुत्पत्त्ययोगेन कार्यलिङ्गं च तद्वत् ॥ १४७ ॥ तत्त्वसं० । न्यायकु०
च० प्र० परि०, सम्प्रति० टी० पृ० ६८४, आ० रत्ना० पृ० ९८ ।

स्वसंवेदनेन वा ? न तावदैन्द्रियेण; इन्द्रियाणां रूपादिनियतत्वेन
 ज्ञानाविषयत्वात् । नापि स्वसंवेदनेन; अस्य शब्दागोचरत्वात् ।
 अथार्थस्य तदनुविद्धत्वात् तदनुभवे ज्ञाने तदप्यनुभूयते
 इत्युच्यते; ननु किमिदं शब्दानुविद्धत्वं नाम-अर्थस्याभिन्नदेशे प्रति-
 ५ भासः, तादात्म्यं वा ? तत्राद्यविकल्पोऽसमीचीनः; तद्विहितस्यैवा-
 र्थस्याध्यक्षे प्रतिभासनात् । न हि तत्र यथा पुरोचस्थितो नीलादिः
 प्रतिभासते तथा तद्देशे शब्दोपि-ओतुओत्रप्रदेशे तत्प्रति-
 भासात् । न चान्यदेशतयोपलभ्यमानोप्यन्यदेशोऽसौ शुक्तः,
 अतिप्रसङ्गात् । नापि तादात्म्यम्; विभिन्नेन्द्रियजनितज्ञान-
 १० ग्राह्यत्वात् । ययोर्विभिन्नेन्द्रियजनितज्ञानग्राह्यत्वं न तयोरैक्यम्
 यथा रूपरसयोः, तथात्वं च नीलादिरूपशब्दयोरिति । शब्दा-
 काररहितं हि नीलादिरूपं लोचनज्ञाने प्रतिभाति, तद्विहितस्तु
 शब्दः श्रोत्रज्ञाने इति कथं तयोरैक्यम् ? रूपमिदमित्यभिधान-
 विशेषणरूपप्रतीतेस्तयोरैक्यम्; इत्यसत्; रूपमिदमिति ज्ञानेन
 १५ हि बाधपूर्वप्रतिपन्नाः पदार्थाः प्रतिपद्यन्ते, भिन्नेवाग्रूपताविशे-
 षणविशिष्टा वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः; न हि लोचनविज्ञानं बाध-
 पतायां प्रवर्तते तस्यास्तद्विषयत्वाद्रसादिवत्, अन्येन्द्रिया-
 न्तरेपरिकल्पनावैयर्थ्यम् तस्यैवाशेषैर्यथाहकत्वप्रसङ्गात् । द्वितीय-
 पक्षेपि अभिधानेऽप्रवर्तमानं शुद्धरूपमात्रविषयं लोचनविज्ञानं
 २० कथं तद्विशिष्टतया स्वविषयमुच्यते ? न ह्यगृहीतविशे-
 षेणा विशेष्ये बुद्धिः दण्डाग्रहणे दण्डिवत् । न च ह्यनन्तरे तस्य
 प्रतिभासाद्विशेषणत्वम्; तथा सति अन्योर्मेदसिद्धिः स्यादित्यु-
 क्तम् । अभिधानानुवैकार्यसरणार्थविधौ दर्शनसिद्धिः; इत्यप्य-

१ शब्दानुविकार्य । २ (शब्दग्रहण) । ३ अवता परेण । ४ अर्थस्य शब्देन
 तादात्म्यम् । ५ शब्द । ६-७ अर्थः । ८ अर्थ । ९ शब्दार्थौ नैकरूपमिति धर्मी ।
 १० साधनसमर्थन । ११ अर्थ । १२ अर्थोकार । १३ दण्डिपुराणे ज्यमित्रारो
 मानुमानस । १४ शब्द । १५ अर्थोकार । १६ शब्दार्थयोः । पदार्थाः स्वभाव-
 कादभिज्ञासाद्विशेषणविशिष्टत्वात् । १७ रूपविशेषणविशिष्टत्ववत् । १८ तादात्म्येन ।
 १९ अर्थात् । २० तत्तत्सां प्रवर्तते चेत् । २१ लोचनाच्छ्रोत्रादि । २२ रसादि ।
 २३ शब्दे । २४ केवल । २५ मित्रवाग्रूपताविशेषण । २६ शब्द । २७ अर्थ ।
 २८ श्रोत्रज्ञाने । २९ बाधपूर्वताविशेषणस्य । ३० रूपरूपशब्दयोः । ३१ विभिन्ने-
 न्द्रियजनितज्ञानग्राह्यत्वादिना पूर्वमेव । ३२ परः । ३३ सम्बन्ध । ३४ पुरोवर्ति ।
 ३५ यद्रूपार्थस्य दर्शनं तद्रूपार्थस्य सरणमिति वचनात् ।

१ “नास्ति शब्दार्थयोस्तादात्म्यं मित्रदेशत्वात् मित्रकारत्वात् मित्राकारत्वात्
 सम्प्रकुम्भवत्” । सा० रत्ना० पृ० १४ ।

सारम्; अन्योन्याश्रयानुषङ्गात्-तथाविचार्यदर्शनसिद्धौ वचनपरि-
करितार्थस्वरूपसिद्धिः, ततश्च तथाविचार्यदर्शनसिद्धिरिति ।

का चैयमर्थस्याभिधानानुषक्तता नाम-अर्थज्ञाने तत्प्रतिभासः,
अर्थदेशे तद्वेदनं वा, तैत्काले तत्प्रतिभासो वा ? न तावदाद्यो
विकल्पः; लोचनाध्यक्षे शब्दस्याप्रतिभासनात् । नापि द्वितीयः;^५
शब्दस्य श्रोत्रप्रदेशे निरस्तशब्दसन्निधीनां च रूपादीनां स्वप्रदेशे
स्वविज्ञानेनानुभवात् । नापि तृतीयः; तुल्यकालस्याप्यभिधानस्य
लोचनज्ञाने प्रतिभासाभावात्, मित्रज्ञानवैद्यत्वे च भेदप्रसङ्ग इत्यु-
क्तम् । कथं चैवंवादिनो बालकादेरर्थदर्शनसिद्धिः, तत्राभिधाना-
प्रतीतेः, अश्वं विकल्पयतो गोदर्शनं वा ? न हि तदा गोशब्दोल्लेखः-^{१०}
स्तज्ज्ञानस्यानुभूयते युगपद्वृत्तिद्वयानुत्पत्तेरिति । कथं वा बाभ्रुप-
ताऽवबोधस्य शीघ्रवती यतो 'बाभ्रुपता चेदुत्क्रामेत्' इत्याद्यवति-
ष्ठेत लोचनाध्यक्षे तत्संस्पर्शाभावात् ? न खलु श्रोत्रग्राह्यां वैकरीं
वाचं तैत् संस्पृशति तस्यास्तद्विषयत्वात् । अन्तर्जल्परूपां
मध्यमां वा; तामन्तरेणापि शुद्धसंविदोर्भावात् । संवृताशेषवर्णा-^{१५}
दिविभागां (तु) पश्यन्ती, सूक्ष्मा चान्तर्ज्योतीरूपा चाग्रेव न
भवति; अनयोरर्थात्मदर्शनलक्षणत्वात् वाचस्तु वर्णपदार्थानुक्रम-
लक्षणत्वात् । ततोऽयुक्तमेतत्तल्लक्षणप्रणयनम्-

१ बाभ्रुपताविशेषणविशिष्टार्थः । २ सहितः । ३ अवबोधः । ४ अग्रेव सह ।
५ पूर्वमेव । ६ अभिधानानुषक्तार्थ एव प्रत्यक्षे प्रतिभासीत्येववादिनः । ७ युक्तः ।
८ अवयवदर्शने । ९ प्रतिभासः । १० नित्या । ११ ओर्ध्वं बहिष्कृत्य । १२ बाभ्रुपता ।
१३ वचनात्मिका । १४ लोचनाध्यक्षः । १५ लोचनाध्यक्षं न संस्पृशति ।
१६ लोचनज्ञानस्य । १७ नष्टः । १८ पदवाच्यः । १९ अवयवदर्शने । २० अवयवदर्श-
नलक्षणा । २१ आत्मदर्शनलक्षणा । २२ बाधः ।

1 "वैकरीं मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चेतदद्भुतम् ।

अनेकतीर्थभेदायास्तस्या वाचः परं पदम् ॥ १४४ ॥

यस्याः श्रोत्रविषयत्वेन प्रतिनियतं श्रुतिरूपं सा वैकरी, छिद्यवर्णसमुच्चारणप्रतिबद्धसाधु-
भावा अष्टसंस्कारा च इन्द्रुमिनेषुवीणादिशब्दरूपा चैतपरमितभेदा । मध्यमा तु
अन्तःसन्निवेशिनी परिगृहीतकमेव । बुद्धिमात्रोपादाना सूक्ष्मा प्राणवृत्त्यनुगता प्रतिसं-
तकमा सत्यप्यभेदे समाविष्टक्रमशक्तिः । पश्यन्ती तु सा चञ्चलका प्रतिबद्धसमाधाना
सन्निविष्टेयाकारा प्रतिलीनाकारा निराकारा च परिच्छिन्नायैप्रलयभासा संसृष्टवर्णप्रलय-
भासा च प्रचान्तसर्गायैप्रलयभासा चैतपरमितभेदा । तत्र व्यावहारिकीषु सर्वांश्च
वागवस्थांश्च व्यवस्थितसाध्वसाधुप्रविभागा पुरुषसंस्कारहेतुः परन्तु पश्यन्त्या रूपमनप-

- “स्थानेषु विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा ।
 वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिवन्धना ॥ १ ॥
 प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मर्ष्यमा वाक् प्रवर्तते ।
 अविभागाऽनु(गा तु)पश्यन्ती सर्वतः संहृतक्रमा ॥ २ ॥
 स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा चार्जनपाथिनी ।
 तया व्याप्तं जगत्सर्वं ततः शब्दात्मकं जगत् ॥ ३ ॥”
 [] इत्यादि ।

१ कण्ठादिषु । २ प्रसूते सति । ३ पुनरेव । ४ इदित्यो वायुः प्राणः ।
 ५ परित्यज्य । ६ वर्णादिरहिता । ७ जटवर्णादिक्रमो यतः । ८ स्थान्वती ।

अक्षमसङ्कीर्णं लोकम्यवधारणीयम् । तस्या एव वाचो व्याकरणेन साङ्ख्यज्ञानकर्मण
 शब्दपूर्वेण योगेनाऽभिगमः इत्येकेषामागमः—” वाक्यप० टी० १।१४४

“उक्तं च—वैखरी शब्दनिष्पत्तिः मर्ष्यमा वृत्तिगोचरा ।

ओषितार्था च पश्यन्ती सूक्ष्मा चाग्नपाथिनी ॥”

कुमारसं० टी० २।१७ ।

१ “मन्त्रार्थः—स्थानेषु तात्त्वादिस्थानेषु, वायौ प्राणसंज्ञे, विवृते अभिवातार्थं
 निवृत्ते सति, कृतवर्णपरिग्रहेति हेतुद्वारेण विज्ञेयवत् ततः ककारादिवर्णरूपस्वीकारात्
 वैखरी संज्ञा नक्षुमिर्निश्चिदायां खरावस्याया स्पष्टरूपामा मवा वैखरीति निवृत्तेः ।
 वाक्प्रयोक्तृणां सन्त्यन्धिनी । यदा तेषां स्थानेषु तस्याश्च प्राणवृत्तिरेव निवन्धनं तत्रैव
 निवृत्त्या सा तन्मयत्वादिति” सा० रत्नाकर पृ० ८९ ।

२ “था पुनरन्तःसङ्ख्यमाना क्रमवती ओषितार्थावर्णरूपाऽभिव्यक्तिरहिता वाक्
 सा मर्ष्यनेत्युच्यते ।

तदुक्तम्—केवलं बुष्णुपादानात् क्रमरूपानुपातिनी ।

प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मर्ष्यमा वाक् प्रवर्तते ॥

इयुक्तां प्राणवृत्तिं हेतुत्वेन वैखरीनदनपेक्ष्य केवलं बुद्धिरेव उपादानं हेतुर्गत्ताः सा
 प्राणसत्त्वात् क्रमरूपमनुपतति । अस्याश्च मनोभूमाववस्थानत्वं वैखरीपश्यन्तोर्मन्त्रे
 मवात् मर्ष्यमा वागिति ।” सा० रत्नाकर पृ० ८९ ।

३ “था तु आशयेदक्रमादिरहिता स्वप्रकाशा संविद्रूपा वाक् सा पश्यन्तीषु-
 च्यते” । “...यस्यां वाच्यवाचकयोर्विभागेभावभासो नास्ति सर्वत्रद्वय सजातीयविभा-
 सीयपेक्षया संवृत्तो नाच्याना वाचकाना च क्रमो देशकालकृतो यत्र, क्रमनिवर्तयत्किञ्च
 विद्यते” सा० रत्नाकर पृ० ९० ।

४ “स्वरूपज्योतिः स्वप्रकाशा वेद्यते वेदकमेवादतिक्रमात् । सूक्ष्मा दुर्लभा,
 जनपाथिनी कालभेदाऽऽस्पन्नादिति ।” सा० रत्नाकर पृ० ९० ।

५ चतुर्विधवाचां स्वरूपं तत्त्वार्थलोकवाचिकेऽपि (पृ० २४१) न्यमितमस्ति । एते
 त्रयः क्रोधाः वाक्यपदीयटीकायां (पृ० ५९) ‘पुनश्चाह’ इति कृत्वा उभूताः वर्तन्ते ।

अनुमानात्तेषां तदनुविद्धत्वप्रतीतिरित्यपि मनोरथमात्रम्; तद्विनाभाविलिङ्गाभावात् । तत्सम्भवे चाऽध्यक्षादिवाधितपक्ष- निर्देशानन्तरं प्रयुक्तत्वेन कालात्ययापदिष्टत्वाच्च । अथ जगतः शब्दमयत्वाच्चतुदरवर्तिनां प्रत्ययानां तन्मयत्वाच्चतुदरविद्धत्वं सिद्धमेवेत्यभिधीयते; तदप्यनुपपन्नमेव; तत्तन्मयत्वस्याध्यक्षादि-^५ बाधितत्वात्, पदवाक्यादितोऽन्यस्य गिरितरुपुरलतादेस्तदाकारपराङ्मुखेणैव सविकल्पकाध्यक्षेणात्यन्तं विशदतयोपलम्भात् । 'ये यदाकारपराङ्मुखास्ते परमार्थतोऽतन्मयाः यथा जलाकार- विकलाः स्यासकोशकुशूलादयस्तत्त्वतो न तन्मयाः, परमार्थत- स्तदाकारपराङ्मुखाश्च पदवाक्यादितो व्यतिरिक्ता गिरितरुपुरल-^{१०} तादयः पदार्थाः' इत्यनुमानतोऽस्य तद्वैधुर्यसिद्धेः ।

किंच, शब्दपरिणामरूपत्वाज्जगतः शब्दमयत्वं साध्यते, शब्दादुत्पत्तेर्वा ? न तावदाद्यः पक्षः, परिणामस्यैवात्रासम्भवात् । शब्दात्मकं हि ब्रह्म नीलादिरूपतां प्रतिपद्यमानं स्वाभाविकं शब्दरूपं परित्यज्य प्रतिपद्येत, अपरित्यज्य वा ? प्रथमपक्षे-^{१५} अस्याऽनादिनिधनत्वविरोधः पौरस्त्यस्वभावविनाशात् । द्वितीय- पक्षे तु नीलादिसंवेदनकाले बाधिरस्यापि शब्दसंवेदनप्रसङ्गो नीलादिवसंवेदनव्यतिरेकीत् । यत्तल्लु यदव्यतिरिक्तं तत्तस्मिन्संवे- दमाने संवेद्यते यथा नीलादिसंवेदनावस्थायां तस्यैव नीला- देरात्मा, नीलाद्यव्यतिरिक्तश्च शब्द इति । शब्दस्यासंवेदने वा^{२०} नीलादेरप्यसंवेदनप्रसङ्गः तादात्म्याविशेषात्, अन्यथा विरुद्ध- धर्माभ्यासात्तस्य ततो मेदप्रसङ्गः । न ह्येकैकस्यैकदा एकप्रतिपन्न- पेक्षया ग्रहणमग्रहणं च युक्तम् । विरुद्धधर्माभ्यासेऽप्यत्र मेदा-

१ तेषां प्रत्ययानां । २ शब्दः । ३ सर्वे प्रत्ययाः शब्दानुविद्धा इत्यत्र साध्ये साधनाभावः । ४ श्लोकः । ५ मित्रसः । ६ शब्दानुविद्धत्वादि । ७ शब्दप्रमाणः । ८ लीङ्गवैयः । ९ वस्तु । १० तादात्म्यसङ्गापादः । ११ वा (पञ्चमी पञ्चमीसमास इत्यर्थः) । १२ शब्दसः । १३ नीलादेरेव संवेदनं न शब्दसेति चेत् । १४ वैजा- नेयत्वधर्मसादित्वात् । १५ ब्रह्मणः । १६ नीलात् । १७ अभिन्नसः शब्दलिङ्गसः । १८ अन्यथा । १९ नीलनीलशब्दयोः ।

1 "अत्र कदाचिच्छब्दपरिणामरूपत्वाद्वा जगतः शब्दमयत्वं साध्यत्वेनेष्टम्, कदाचिच्छब्दानुत्पत्तेर्वा शब्दात्मकं ब्रह्म नीलादिरूपतां प्रतिपद्यमानं कदाचिन्निर- स्वाभाविकं शब्दरूपं परित्यज्य प्रतिपद्येत, अपरित्यज्य वा ?" तत्त्वसं० पं० पृ० ६८ । न्यायकु० च० प्र० परि० । सन्मति० टी० पृ० १८० । सा० रत्नाकर पृ० १०० ।

संभवे हिमवद्विन्ध्यादिभेदानामप्यभेदानुषङ्गः । किंच, असौ शब्दात्मा परिणामं गच्छन्प्रतिपदार्थभेदं प्रतिपद्येत, न वा ? तत्राद्यविकल्पे-शब्दब्रह्मणोऽनेकत्वप्रसङ्गः, विभिन्नानेकार्थस्वभावात्मकत्वात्तत्त्वरूपेण च । द्वितीयविकल्पे तु-सर्वेषां नीलादीनां देशकालस्वभावव्यापारावस्थोदिभेदाभावः प्रतिभासभेदाभावश्चानुषज्येत-एकस्वभावाच्छब्दब्रह्मणोऽभिर्भत्वात्तत्त्वरूपेण च । तत्र शब्दपरिणामरूपत्वाज्जगतः शब्दमयत्वम् ।

नामि शब्दादुत्पत्तेः, तस्य नित्यत्वेनाविकारित्वात्, क्रमेण कार्योत्पादविरोधात् सकलकार्याणां युगपदेवोत्पत्तिः स्यात् ।
१० कारणवैकल्याद्धि कार्याणि विलम्बन्ते नान्यथा । तच्चेदविकलं किमपरं तैरपेक्ष्यं येन युगपन्न भवेयुः ? किंच, अपरापरकार्यग्रामोऽतीर्थोत्तरम्, अनर्थान्तरं वोत्पद्येत ? तत्रार्थान्तरस्योत्पत्तौ-कथं 'शब्दब्रह्मविवर्तमर्थरूपेण' इति घटते । न ह्यर्थान्तरस्योत्पादे अन्यस्य तत्त्वभावमनाश्रयतः तार्क्ष्येण विवर्त्तो युक्तः । तद्वदर्थान्तरस्य तैत्पत्तौ-तैस्यानादिनिघनत्वविरोधः ।

ननु परमार्थतोऽनादिनिघनेऽभिन्नस्वभावेपि शब्दब्रह्मणि अविवर्त्तितमिरोपहतो जनः प्रादुर्भावविनाशोवत् कार्यभेदेन विविर्त्तमिव मन्यते । तदुक्तम्-

“यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपेक्षुतो जनः ।

२० संकीर्णमिव मीत्राभिश्चिन्नाभिरभिमन्यते ॥

[बृहदा० भा० वा० ३।५।४३]

१ ब्रह्मा । २ उत्पादविनाशं । ३ नीलत्वपीतत्वादि । ४ विभिन्नानेकार्थस्वरूपेण च । ५ पदार्थैः सहैकत्वे । ६ ज्ञान । ७ प्रमेयभेदाद् ज्ञानभेद इति वचनात् । ८ पदार्थेभ्यः । ९ शब्दब्रह्मस्वरूपेण च । १० शब्दब्रह्मणः । ११ कार्यैः । १२ घटपटादि । १३ शब्दब्रह्मणः । १४ भिन्नमविच्छेदं वा । १५ पूर्वयुक्तं निवर्त्ततेऽर्थभावेनेति । १६ अपरापरकार्यग्रामस्य । १७ शब्दब्रह्मणः । १८ अर्थान्तर । १९ अर्थान्तररूपेण । २० ब्रह्मा । २१ सत्ता । २२ शब्दब्रह्मणः । २३ उत्पादविनाशात्मकादर्थोदभिन्नत्वात् । २४ अभेदरूपे भेदरूपप्रतिभासः । २५ नष्टः स्वार्थः । २६ घटपटादि । २७ नानारूपं । २८ उपहतः । २९ संछिन्नम् । ३० रेखाभिः । ३१ नानारूपाभिः ।

१ “स हि शब्दात्मा परिणामं गच्छन् प्रतिपदार्थं भेदं वा प्रतिपद्येत न वा ?” सत्त्वसं० पृ० ७० । न्यायकु० प्र० परि० । सम्प्रति० टी० पृ० १८९ । स्वा० रत्नाकर पृ० १०१ ।

तथेवममलं ब्रह्मनिर्विकारमविद्या ।
कलुषैत्वमिवापि च मेदेरूपं प्रपश्यति” ॥

[बृहदा० भा० वा० ३।५।४४] इति ।

तदप्यसाम्प्रतम्; अत्रार्थे प्रमाणाभावात् । न खलु यथोपवर्णित-
स्वरूपं शब्दब्रह्म प्रत्यक्षतः प्रतीयते, सर्वदा प्रतिनियतार्थस्वरूप-
ग्राहकत्वेनैवास्य प्रतीतेः । यच्च-अभ्युदयनिश्रेयसफलधर्मादुपगृही-
तान्तःकरणा योगिन एव तत्पश्यन्तीत्युक्तम्, तदप्युक्तिमात्रम्;
न हि तैद्व्यतिरेकेणान्ये योगिनो वस्तुभूताः सन्ति येन ‘ते
पश्यन्ति’ इत्युच्येत । यदि च तैज्ज्ञाने तैस्य व्यापारः स्यात्तदा
‘योगिनस्तस्य रूपं पश्यन्ति’ इति स्यात् । यौवतोकप्रकारेण कार्ये १०
व्यापार पदवाच्य न संगच्छते । अविद्यायाश्च तैद्व्यतिरेकेणासंभवा-
त्कथं मेदप्रतिभासहेतुत्वम् ? आकाशे च वितैधप्रतिभासहेतुभूतं
वास्तवमेवास्ति तिमिरम् इति न द्वैद्यान्तदार्ष्टान्तिकयोः
(साम्यम्) ।

नाप्यनुमानतस्तत्प्रतिपत्तिः; अनुमानं हि कार्यलिङ्गं वा भवेत्, १५
स्वभाववैदिलिङ्गं वा ? अत्रुपलब्धेर्विधिसाधकत्वेनानभ्युपगमात् ।
तत्र न तावत्कार्यलिङ्गम्; नित्यैकस्वभावासेतः कार्योत्पत्तिप्रतिषे-
धात्, क्रमयौगपद्याभ्यां तैस्यार्थक्रियारोधात् । नापि स्वभा-

१ उपावमिनाधारहितं । २ मेदप्रकमे इवशब्दः । ३ इव । ४ इव । ५ पुरो-
वर्ति । ६ स्वर्ग । ७ मोक्ष । ८ वस्तु । ९ परेण भवता । १० ब्रह्मणः ।
११ परमार्थभूताः । १२ योगिज्ञाने । १३ ब्रह्मणः । १४ अहमिति जनकत्व-
लक्षणव्यापारः । १५ सावत्येन । १६ ब्रह्मणः । १७ घटवे । १८ किंच ।
१९ ब्रह्म । २० मिथ्या । २१ तिमिराविषयोः । २२ ब्रह्म । २३ कारणलिङ्गं ।
२४ (अनुपलब्धिरूपो हि हेतुर्न विधिसाधकः) । २५ शब्दब्रह्मणः । २६ वटादि ।
२७ ब्रह्मणः । २८ कार्यं । २९ स्वरूपं ।

१ “विशुद्धज्ञानसन्ताना योगिनोऽपि ततो न तत् ।

विदन्ति ब्रह्मणो रूपं ज्ञाने व्यापृतं सङ्गतेः ॥ १५१ ॥

यदि हि ज्ञाने योगत्वे तस्य व्यापारः स्यात्तदा योगिनः तस्य रूपं पश्यन्तीति स्यात्
...” तत्त्वसं० पं० पृ० ७४ ।

२ “नचापि भवतां तद्व्यतिरेकिण्यविद्याऽस्ति” तत्त्वसं० पं० पृ० ७४ । सा०
रसा० पृ० ९९ । आकाश० समु० टी० पृ० २३७ उ० ।

३ “आकाशे च नित्यप्रतिभासहेतुभूतं वास्तवमेव तिमिरं प्रतिदृश्य, अविद्यायाश्च
अवास्तवत्वेन विचित्रप्रतिभासहेतुत्वानुपपत्तितो द्वैद्यान्तदार्ष्टान्तिकयोः साम्याऽसंभवात् ।”
न्यायक० प्र० परि० । सा० रसा० पृ० ९९ ।

बलिकम्; शब्दब्रह्माख्यधर्मिण एवासिद्धेः । न ह्यसिद्धे धर्मिणि तत्त्वभावभूतो धर्मः स्वातन्त्र्येण सिद्ध्येत् ।

यथोच्यते—‘ये यदाकारानुस्यूतास्ते तन्मया यथा घटशरावो-
दञ्चनादयो मृद्विकारा मृदाकारानुगता मृन्मयत्वेन प्रसिद्धाः,
५ शब्दाकारानुस्यूताश्च सर्वे भावा इति’; तदप्युक्तिमात्रम्; शब्दा-
कारान्वितत्वस्यासिद्धेः । प्रत्यक्षेण हि नीलादिकं प्रतिपद्यमानोऽ-
नोविष्टाभिलापमेव प्रतिपत्ता प्रतिपद्यते । कल्पितत्वाच्चोक्त्याऽ-
सिद्धिः । शब्दान्वितरूपाधारार्थासत्त्वेपि हि ते तदन्वितत्वेन त्वया
कल्पन्ते । तथाभूताश्च हेतोः कथं पारमार्थिकं शब्दब्रह्म
१० सिद्ध्येत् ? साध्यसाधनविकलञ्च दृष्टान्तो घटादीनामपि सर्वथै-
कमयत्वस्यैकान्वितत्वस्य चासिद्धेः । न खलु भावानां परमार्थैकै-
करूपाणुगमोस्ति, सर्वार्थानां समानाऽसमानपरिणामात्मकत्वात्
किञ्च, शब्दात्मकत्वेऽर्थानाम् शब्दप्रतीतौ सङ्केतोप्राप्तिरप्यर्थै-
र्सेन्द्रेण न स्यात्तद्वत्तस्यापि प्रतीतत्वात्, अन्यथा तादात्म्य-
१५ विरोधः । अग्निपाषाणादिशब्दभ्रवणाच्च ओम् इत्येव दाह्याभिघातावि-
प्रसङ्गः । तस्मानुमानतोपि तत्प्रतीतिः ।

नाप्यागमात्, “सर्वे खल्विदं ब्रह्म” [मैत्र्यु०] इत्याद्यागमस्य
ब्रह्मणोऽर्थान्तरभावेद्वैतप्रसङ्गात्, अनर्थान्तरभावे तु तद्वदागम-
स्याप्यसिद्धिप्रसङ्गः । तदेवं शब्दब्रह्मणोऽसिद्धेर्न शब्दानुविद्धत्वं
२० सविकल्पकलक्षणं किन्तु समारोपविरोधिर्ब्रह्ममिति प्रति-
पत्तव्यम् ।

१ नवता परेण । २ शब्दमयाः । ३ हेतोः । ४ पदार्थः । ५ शब्देन रहितम् ।
६ शरा । ७ शब्दान्वितत्वस्य । ८ अर्थाः । ९ शब्दः । १० परेण । ११ कल्पित-
शब्दान्वितत्वरूपात् । १२ विसृष्टः । १३ पुरुषस्य । १४ अर्थं घटः पदो वेलादि ।
१५ शब्दवशीलादेरपि । १६ सन्देहश्चेत् । १७ अर्थार्थोपनिवृत्तशब्दस्य ओम्-
सम्बन्धितत्वात् । १८ न च तथास्ति । १९ ब्रह्म । २० आगमो भिन्नो ब्रह्मणः ।
२१ तस्मात्कारणात् कल्पप्रकारेण । २२ ज्ञानम् ।

१ “शब्दार्थयोश्च तादात्म्ये क्षुराक्षिमोदकादिशब्दोच्चारणे आत्मपाठनदहनपूरणादि-
प्रसक्तिः । सम्मति० टी० पृ० ३८६ । आख्यवा० टी० पृ० २३७पृ० ।

२ “ ब्रह्म खल्विदं वाच सर्वम् ” मैत्र्यु० ४।६ ।

३ शब्दब्रह्मपादस्य विविधरीत्या खण्डनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—मीमांसासौ०
प्रलक्ष्णं को० १७६ । न्यायमं० पृ० ५३१ । तत्त्वसं० पृ० ६७ । तत्त्वार्थको०
पृ० २४० । न्यायकु० प्र० परि० । सम्मति० टी० पृ० ३८०, ४९४ । सां०
रत्ना० पृ० ८८ ।

ननु व्यवसायात्मकविज्ञानस्य प्रामाण्ये निखिलं तदात्मकं ज्ञानं प्रमाणं स्यात्, तथा च विपर्ययज्ञानस्य धारावाहिविज्ञानस्य च प्रमाणताप्रसङ्गात् प्रतीतिसिद्धप्रमाणेतरव्यवस्थाविलोपः स्यात्, इत्याशङ्क्याऽतिप्रसङ्गापनोदार्थम् अपूर्वार्थविशेषणमाह । अतोऽनयोरनर्थविषयत्वाविशेषग्राहित्वाभ्यां व्यञ्जकत्वेऽपि सिद्धः । यद्वा नै-
नाऽपूर्वार्थविशेषणेन धारावाहिविज्ञानमेव निरस्यते । विपर्ययज्ञानस्य तु व्यवसायात्मकत्वविशेषणेनैव निरस्तत्वात् संशयादि-
स्वभावसमारोपविरोधिग्रहणत्वात्तस्य ।

ननु संशयादिज्ञानस्यासिद्धस्वरूपत्वात्कस्य व्यवसायात्मकत्व-
विशेषणत्वेन निरासः ? संशयज्ञाने हि धर्मी, धर्मो वा प्रति-
भाति ? धर्मी चेत्, स तात्त्विकः, अतात्त्विको वा ? तात्त्विक-
कञ्चेत्, कथं तद्बुद्धेः संशयरूपता तात्त्विकार्थगृहीतिरूपत्वात्कर-
तलादिनिर्णयवत् ? अथातात्त्विकः, तथाप्यतात्त्विकार्थविषय-
त्वात् केशोण्डुकादिज्ञानवद् भ्रान्तिरेव संशयः । अथ धर्मः-स
स्याणुत्वलक्षणः, पुरुषत्वलक्षणः, उभयं वा ? यदि स्याणुत्वल-
क्षणः, तत्र तात्त्विकाऽतात्त्विकयोः पूर्ववद्दोषः । अथ पुरुषत्व-
लक्षणः, तत्राप्ययमेव दोषः । अयोभयम्, तथाप्युभयस्य तात्त्विक-
त्वाऽतात्त्विकत्वयोः स एव दोषः । अथैकैकस्य तात्त्विकत्वमन्य-
स्यातात्त्विकत्वम्, तथापि तद्विषयं ज्ञानं तदेव भ्रान्तमभ्रान्तं
चेति प्राप्तम् । अथ सन्दिग्धोर्थस्तत्र प्रतिभासते, सोऽपि विधेति
न वैतथ्यादिकैकैक्ये तदेव दूषणम् । तत्र संशयो घटते । नापि
विपर्ययस्तस्यापि स्मृतिप्रमोषाद्यभ्युपगमेनाव्यवस्थितः ।

इत्यप्यसमीचीनम्, यतः संशयः सर्वप्राणिनां अलितप्रति-
पत्त्यात्मकत्वेन स्वात्मसंवेद्यः । स धर्मविषयो वास्तु धर्मविषयो

१ परः । २ षटोऽर्थं षटोऽप्यमिति । (निश्चयानन्तरं तेनैवाकारेण पुनः पुनर्यत्नवर्तते
तज्ज्ञानम्) । ३ निश्चयात्मकत्वाविशेषणम् । ४ परिहारः । ५ जैनैः । ६ प्रमाकरो
मूले [तत्त्वोपपन्नवादी] । ७ पुरुषः । ८ पुरुषत्वं । ९ सक्रयो धर्मी सकयरूपतापन्नो
न भवतीति साध्यो धर्मः तात्त्विकार्थगृहीतिरूपत्वात् । १० गृहीतिग्रहणम् । ११ वसः ।
(वेति शब्दैकदेशेन बहुव्रीहिग्रहणं सकारात्समासाधेयोः) । १२ उभयप्रतिभासे ।
१३ स्याणुत्वम् । १४ सागौ पुरुषत्वम् । १५ उभयम् । १६ पूर्वोक्तं । १७ एक-
मेव ज्ञानं । १८ परः । १९ सकयज्ञाने । २० तात्त्विकः । २१ अतात्त्विको वा ।
२२ उभयम् ।

1—“तस्मिन् सन्देहज्ञाने किञ्चित्प्रतिभासि आहोस्मिन् ? यदि किञ्चित् प्रतिभासि
स किं धर्मी, धर्मो वा ? तत्त्वोप० लि० पृ० २६ । सा० रत्ना० पृ० २४३ ।

वा तात्त्विकातात्त्विकार्थविषयो वा किमेभिर्विकल्पैरस्य बालाग्र-
मपि खण्डयितुं शक्यते ? प्रत्यक्षसिद्धस्याप्यर्थस्वरूपस्यापह्नवे
सुखदुःखादेरप्यपह्नवः स्यात् । कथं च 'धर्मिविषयो धर्मविषयो
वा' इत्यादि प्रश्नहेतुकसंशयादि(धि)रूढेपवायं संशयं निराकुर्यात्
५ न चेद्वस्त्वः ? किंच, उत्पादककारणाभावात्संशयस्य निरासः,
असाधारणस्वरूपाभावात्, विषयाभावाद्वा ? तत्राद्यः पक्षोऽ-
शुक्तः, तदुत्पादककारणस्य सङ्गावात्, स ह्याहितसंस्कारस्य
प्रतिपत्तुः सैमानाऽसैमानधर्मोपलम्भादुपलम्भतो मिथ्यात्वकर्मो-
दये सत्युत्पद्यते । असाधारणस्वरूपाभावोप्यसिद्धः, चलितप्रति-
१० पत्तिरक्षणस्यासाधारणस्वरूपस्य तत्र सत्त्वात् । विषयाभावस्तु
दूरोत्सारित एव, स्थाणुत्वविशिष्टतया पुरुषत्वविशिष्टतया
वाऽनवधारितस्य ऊर्द्धतासामान्यस्य तद्विषयस्य सङ्गावात् ।

एतेन विपर्ययनिरासोपि निराकृतः । तत्राप्युत्पादककारणादेः
सङ्गावाविशेषात् । किंच, अयं विपर्ययोऽर्थ्यातिम्, असत्त्वैया-
१५ तिम्, प्रसिद्धैर्यथ्यातिम्, आत्मैयातिम्, सर्वसत्त्वैधनिर्वै-
नीयार्थ्य्यातिम्, विपर्ययीतार्थ्य्यातिम्, स्मृतिप्रैमोर्ष धामिमेत्य
निराक्रियेत प्रकारान्तराऽसम्भवात् ?

अर्थ्याति चेत्, तैथा हि जलवर्मासिनि ज्ञाने तावन्न जलस-
त्तालम्बनीभूतास्ति अर्धान्तत्वप्रसङ्गात् । जलभावस्त्वैत्रै न
२० प्रतिभात्येव, तद्विधिपरत्वेनास्य प्रवृत्तेः । अत एव मरीचयोऽपि

१ संशयज्ञानस्य । २ त्वया परेण (अपि तु न) । ३ सुखमवयविरूपं परमाणु-
रूपं वा । न तावदाद्यः पक्षोऽनभ्युपगमात् । द्वितीयपक्षे तु प्रतिभासामात्रः स्यादिति ।
४ संशयः । ५ प्राभाकरः [तत्त्वोपप्लववादी] । ६ संशयः । ७ ऊर्द्धता । ८ शिरः-
पाण्यादिमत्स्वनक्रतोदरादिमत्त्वं । ९ अनिश्चितस्य । १० संशयनिरासनिराकरणपरेण
अन्येन । ११ तत्तदादिनः प्रत्युज्यते । १२ चार्वाकः । १३ लौत्रान्तिकमाध्यमिकौ ।
१४ साङ्ख्यः । वैदान्तिको मास्फरीयः । १५ विज्ञानाद्वैतवादी योगाचारः । १६ शाङ्क-
रीयः । ब्रह्माद्वैतमायावादी च । १७ समयः । १८ नैवाधिकवैशेषिकभाट्टवैशेषिकज्ञेयः ।
१९ ईप्सु । (सप्तमी) । २० प्राभाकरः । २१ अग्रवेदनं । २२ अर्थस्य । २३ परः ।
२४ अल्प ज्ञानस्य विषयः कः जलं वा तदभासो वा मरीचयो वा अन्यद्वा । २५ मरी-
चिकानलज्ञाने । २६ अन्यथा । २७ मरीचिकार्या । २८ जलास्तित्वप्रधानत्वेन ।

१—अन्यैव भगवा सस्यस्वरूपविचारः (पूर्वपक्षः) तत्त्वोप० लि० पृ० २६ ।
(समग्रः) सा० रसा० पृ० १४३ । इत्यादिषु द्रष्टव्यः ।

२ “इदं रजतमिति प्रस्तुतज्ञाने रजतसत्ता विषयभूता तावन्नास्ति अर्धान्तत्वाज्ज-
न्नात्” न्यायकु० चं० प्र० परि० । सा० रसाकर पृ० १२४ ।

नालम्बनम्; तत्त्वे वा तद्ग्रहणस्याभ्रान्तत्वप्रसङ्गः । तोयाकारेण मरीचिग्रहणमित्यप्ययुक्तम्; तदन्यत्वात् । न खलु घटाकारेण तदन्यस्य पटादेर्ग्रहणं दृष्टम् । ततो निर्गलम्बनं जलादिविपर्ययज्ञानम्; इत्यप्यविचारितरम्णीयम्; विशेषतो व्यपदेशाभावप्रसङ्गात् । यत्र हि न किञ्चिदपि प्रतिभाति तत्त्वेन विशेषेण जल-५ ज्ञानं रजतज्ञानमिति वा व्यपदिश्येत? भ्रान्तिसुषुप्तावस्थयोरविशेषप्रसङ्गश्च । न ह्यत्र प्रतिभासमानार्थव्यतिरेकेणान्योऽस्ति विशेषः । प्रतिभासमानश्च तज्ज्ञानस्यालम्बनमित्युच्यते । तन्नाख्यातिरेव विपर्ययः ।

सैल्यमेतत्; तथापि प्रतिभासमोनोऽर्थः सैद्रूपो विचार्यमाणो १० नास्तीत्यसत्ख्यातिरेचासौ । शुक्तिकाशकले हि न शुक्तिर्कादिप्रतिभासः, किं तर्हि? रजतप्रतिभासः । स च रजताकारस्तत्र नास्तीति;

तदयुक्तम्, ईर्यपरः । कस्मात्? असंतः खपुष्पादिवत्प्रतिभासासम्भवात् । भ्रान्तिवैचित्र्याभावप्रसङ्गश्च; न ह्यसत्ख्यातिवा-१५ दिनोऽर्थगतं ज्ञानगतं वा वैचित्र्यमस्ति येनानेकप्रकारा भ्रान्तिः स्यात् । तस्मात्प्रमाणप्रसिद्ध एवार्थो विचित्रैस्तत्र प्रतिभाति । न चोस्य विचार्यमाणस्यासत्त्वम्; विचारस्य प्रतीतिव्यतिरेकेणाऽन्यस्यासम्भवात् । प्रतीत्यबाधितत्वाच्च; करतलादेरपि हि प्रतिभासबलेनैव सत्त्वम्, स च प्रतिभासोऽन्यत्राप्यस्ति । यद्यप्युत्तर-२० कालं तैथा सोऽर्थो नास्ति, तथापि यदा प्रतिभाति तदा तावद्-

- १ मरीचिविषयत्वे च । २ ज्ञानस्य । ३ ज्ञानस्य सत्यार्थमाहकत्वात् । ४ तोयात् । ५ ज्ञाने । ६ निर्विषयं । ७ ज्ञाने । ८ ज्ञानं । ९ भ्रान्तज्ञाने । १० जल । ११ स्नादादिविरक्तम् । १२ माध्यमिकोऽनवीय । १३ बलादिः । १४ तज्ज्ञानस्याभ्रान्तताप्रसङ्गात् । १५ विपर्ययः । १६ जल । १७ विपर्ययस्थले । १८ साक्ष्यः । १९ शुक्तिस्त्रया रजतज्ञानमेकचक्रे द्विचन्द्रज्ञानमिलादि । २० अर्थस्याऽसत्त्वात् । २१ ज्ञानत्वेनैकाग्रश्रुत्यात् । २२ सत्यभूतः । २३ नावाप्रकारः । २४ भ्रान्तत्वेन उपगते ज्ञाने । २५ रजतावर्षस्य । २६ पूर्वकालवत् ।

१ विपर्ययज्ञाने अख्यातिवादस्य अनवैवानुपूर्व्या विचारः न्यायकु० चं० प्र० परि० तथा सा० रत्ना० पृ० १२४ इत्यादिषु द्रष्टव्याः ।

२ “असतः प्रत्ययोपाख्याविरहितस्य खपुष्पादिवत् प्रतिभासाऽसंभवात्—भ्रान्तिवैचित्र्याभावप्रसङ्गश्च । न्यायकु० चं० प्र० परि० । सा० रत्नाकर पृ० १२५ ।

३ असत्ख्यातेः प्रतिविषयत्वं न्यायवा० ता० टी० पृ० ८६, व्याख्यं० पृ० १७७, न्यायकु० प्र० परि०, सा० रत्ना० पृ० १२५ । इत्यादिषु द्रष्टव्यम् ।
प्र० क० मा० ५

इत्येव, अन्यथा विद्युदादेरपि सत्त्वसिद्धिर्न स्यात् । तस्मात्प्रसिद्धो-
र्थस्यातिरेव युक्ताः ।

इत्यप्यसाम्प्रतम् ; यथावस्थितार्थगृहीतित्वाविशेषे हि भ्रान्ताऽ-
भ्रान्तव्यवहारभावः स्यात् । अपि चोत्तरकालमुदकादेरभावेऽपि
५ तच्चिद्वस्य भूजिग्यतादेरुपलम्भः स्यात् । न खलु विद्युदादिवदुद-
कादेरप्याशुभावी निरन्वयो विनाशः कचिदुपलभ्यते । सर्वतद्देश-
द्रष्टृणामविसंवादेनोपलम्भश्च विद्युदादिवदेव स्यात् । बाध्यबाधक-
भावश्च न प्राप्नोति ; सर्वज्ञानानामवित्थार्थविषयत्वाविशेषात् ।

यदप्युच्यते-ज्ञानसौवार्थमाकारोऽनाद्यऽविद्योपप्लवसामर्थ्याद्-
१० हिरिव प्रतिभासते । अनादिविचित्रवासनाश्च क्रमविर्योक्तवत्यः
पुंसां सन्ति तेर्नैवेककारिणि ज्ञानानि सैवकारमोक्षसंवेद्यानि
क्रमेण भवन्तीत्यैवात्मैयातिरेवेति ; तदप्युक्तिमात्रम् ; यतः
सैवात्ममात्रसंविद्धिनिष्ठत्वे अर्थाकारैवे च ज्ञानस्यात्मख्यातिः
सिद्ध्येत् । न च तत्सैवम्, उत्तरत्रोभयस्यापि प्रतिषेधात् । सैव-
१५ ज्ञानानां स्वाकारप्राप्तित्वे च भ्रान्ताऽभ्रान्तविवेको बाध्यबाधक-
भावश्च न प्राप्नोति, तैश्च व्यभिचारभावाविशेषात् । सैवात्मसित-
त्वेन रजताद्याकारस्य संवेदनेन च सुखाद्याकारवद्बहिर्भूतया

१ मरीचिकार्या जलकृष्णोऽर्थः सत्यभूतः प्रतिभासमानत्वात् षट्पद । २ सर्व-
ज्ञानानामग्रीक्षिपमाणे । ३ सति । ४ तत्र प्रवृत्तस्य पुरुषस्य । ५ उत्तरकाले ।
६ विचारिते सति । ७ सत्यभूतार्थः । ८ ज्ञानादितवादिना योवाचारेण । ९ कुकि-
कादौ रजताद्याकारः । १० अवयवार्थविशेषात् । निमित्तान्तिः । ११ ज्ञानात् ।
१२ कद्रोपवत्यः । १३ स्वरूपेण । १४ अनाद्यविद्यासाधर्म्येण । १५ षटादि ।
१६ प्राज्ञप्राप्तक । १७ संविद्धिरूपाणि । १८ ज्ञान । १९ वस्तुः । (वदुमीक्षि-
समाप्त इत्यर्थः) । २० मरीचिकार्या जलकारः ज्ञानात्मा प्रतिभासमानत्वात्
ज्ञानस्वरूपवत् । २१ ज्ञानप्रतीतिः । २२ ज्ञानस्य । २३ सिद्धे । २४ हर्ष ।
२५ नीलकैशोष्णकादिसर्वविकल्पानां । २६ आत्मस्वरूपमात्रे । २७ तस्य ज्ञान-
आत्मा स्वरूपं तत्र सितत्वेन । २८ बहिःसिततया ।

१ अनयैव रीत्या प्रसिद्धार्थस्यातेर्विचारः न्यायकु० पृ० प्र० परि० । सा०
रत्ना० पृ० १२६ । इत्यादिषु द्रष्टव्यम् ।

२ आत्मख्यातेर्निरूपणं न्यायमजयामित्वं दृश्यते (पृ० १७८)

“विज्ञानमेव स्वरूपकृत्वात्मानमात्मना ।

बहिर्निरूप्यमाणस्य आत्मस्यानुपपत्तितः ॥

बुद्धिः प्रकाशमाना च तेन तेनात्मना बहिः ।

तद्ब्रह्मसर्वशून्यापि लोकनात्रामिदं दृश्यम् ॥”

प्रतीतिर्न स्यात् । प्रतिपत्ता च तदुपादानार्थं न प्रवर्त्तत, अबहिष्ठाऽ-
स्थिरत्वेन प्रवृत्त्यविषयत्वात् । अथाविद्योपप्लववशाद्बहिष्ठ-स्थिर-
त्वेनाध्यवसायः, कथमेवं विपरीतक्यातिरेव नैष्टा, ज्ञानादभिन्न-
स्यास्थिरस्य चार्थाकारस्यान्यथाध्यवसायाभ्युपगमादिति ?

यञ्चोच्यते-न ज्ञानस्य विषयं उपदेशगम्योऽनुमानसाध्यो वा^५
येन विपरीतोऽर्थः कल्प्येत । किं तर्हि ? यो यस्मिन् ज्ञाने प्रति-
भाति स तस्य विषय इत्युच्यते । जलादिज्ञाने च जलाद्यर्थ एव
प्रतिभाति न तद्विपरीतः, जलादिज्ञानव्यपदेशाभावप्रसङ्गात् । स
च जलाद्यर्थः सन्न भवति; तद्विपरीतत्वप्रसङ्गात् । नाप्यसन् ।
क्षुपुष्पादिवत्प्रतिभासप्रवृत्त्योरविषयत्वानुषङ्गात् । नापि सद-^{१०}
सद्वृत्तः, उभयवोषानुषङ्गात्, सदसतोरैकात्म्यविरोधाच्च । तस्मा-
द्यं बुद्धिसन्दर्शितोऽर्थः सत्त्वेनासत्त्वेनान्येन वा भ्रमान्तरेण
निर्वर्त्तुं न शक्यत इत्यनिर्वचनीयार्थक्यातिः सिद्धा; इत्यपि मनो-

१ प्रमाता । २ किञ्च । ३ रजतादि । ४ ज्ञानस्य क्षणिकत्वात् । ५ परः ।
६ रजतादेः । ७ अनिर्वचनीयार्थक्यातिवादिना शाङ्करीवेण । ८ विपरीतार्थक्याति
दूषणम् अनिर्वचनीयार्थक्याति समर्थयते । ९ रजतादिः । १० विपरीत इति ।
११ रजतमिदमिति ज्ञाने किङ्करोऽर्थः प्रतिभासते इति प्रश्ने पर उपदेशं करोति । कथं
शुक्तिकाक्षकमिति रजतमिदमिति ज्ञानं पुरोवर्तिवस्तुविषयं तत्रैव प्रवर्तकत्वात्सम्प्रति-
पन्नज्ञानवदित्यनुमानं रजतमिदमित्येतस्मिन् ज्ञाने प्रतिभासमानार्थस्योपदेशगम्यत्वेऽनु-
मानसाध्यत्वे वा विपरीतार्थक्यातिः स्थाप्यतिभासमानार्थस्यतिरेकेणार्थान्तरस्य सङ्गात्वात्
शुक्तिशक्यत्वात् । १२ मरीचिकाक्षके जलकक्षुणः । १३ प्रतिभासमानाद्विपरीतोऽर्थः
शुक्तिशक्यकक्षुणः । १४ अन्यथा । १५ अन्यथा । १६ लक्षरकाळे बाणकानुत्पत्ति-
प्रसङ्गात् । १७ उभयेन । १८ निरूपयितुं । १९ विवादापन्नो जलकक्षुणोऽर्थः
सत्त्वाऽसत्त्वावनिर्वचनीयः प्रतिभासमानत्वे सति बाध्यमानत्वान्नानुपपत्तेः ।

१ आत्मक्यातेर्विभिन्नीया पर्यालोचनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्-न्यायवा० ता० टी०
पृ० ८५, आमतटी पृ० १४, न्यायवर्म० पृ० १७८, न्यायकुसु० प्र० परि०, सा०
रत्ना० पृ० १२८ ।

२ “तत्किं मरीचिषु तोयनिर्मासप्रत्ययः तत्त्वगोचरः, तथा च समीचीन इति न
जान्ते नापि बाध्येत । अद्या न बाध्येत यदि मरीचीनतोयात्मतस्या न तोयात्मना(१)-
गृहीयात् । तोयात्मना तु गृह्यन् कथमप्राप्तः कथं वाऽबाध्यः ? इन्त तोयाभावात्मनां
मरीचीनां तोयभावात्फलं तावन्न सदः; तेषां तोयाभावादभेदेन तोयमानात्मताऽनु-
पपत्तेः । नाप्यसदः; वस्तुवन्तरत्नेन हि वस्तुवन्तरत्नासत्त्वमालीयते ‘आवाप्तन्तरममो-
ऽन्यो न कश्चिदनिरूपमा’ इति वदद्भिः ।तस्माच्च सदः, नापि सदसदः
परस्परविरोधात्, इत्यनिर्वाच्यमेवारोपणीयं मरीचिषु तोयमात्रेण । तदनेन क्रमेण

एथमात्रम्; अद्वैतसिद्धौ ह्येतत्सिद्ध्येत, तच्चाद्वैतं निराक-
रिष्यामः । यैश्चोक्तम्-न ज्ञानस्य विषय उपदेशगम्य इत्यादि;
तद्व्यवतामेव प्राप्तम्, तथा हि—जलादिभ्रान्तौ नियतदेशकाल-
स्वभावः सदात्मकत्वेनैव जलाद्यर्थः प्रतिभाति तद्ग्रहणेऽस्त्येव
५ प्रवृत्तिदर्शनात् तत्कथमसौ अनिवर्चनीयः स्यात् ? न ह्येवंभूते
प्रतिभासप्रवृत्तौ अनिवर्चनीयेऽर्थे सम्भवतः । अथ विचर्यमाण
एवासौ सदसत्त्वादिभिरनिर्वर्चनीयः सम्पद्यते न तु भ्रान्तिकाले
तथा प्रतिभातीति; नन्वेवमर्थेयाप्रतिभासाद्विपरीतस्यातिरेव
स्यात् ।

- १० ननु विपरीतस्यातिरपि प्रतिभासविरोधोऽत्र युक्तिः । क एव-
माह—‘विपरीतोऽयमर्थः’ इति ख्यातिः ? किं तर्हि ? पुरुषविपरीते
स्थाणौ ‘पुरुषोऽयम्’ इति ख्यातिर्विपरीतस्यातिः । ननु पुरुषाव-
भासिनि ज्ञाने स्थाणोरप्रतिभासमानस्य विषयत्वमर्थ्युक्तं सर्वत्रो-
प्यव्यवस्थाप्रसङ्गात् । तदयुक्तम्; यतः स्थाणुरेवात्र ज्ञाने तद्रूपस्या-
१५ नवधारणादर्थैर्मादिवशाच्च पुरुषाद्याकारेणाध्यवसीयते । बाधो-
त्तरकालं हि प्रतिसंन्धचे स्थाणुरयं मे ‘पुरुषः’ इत्येवं प्रतिभात

१ मेवेन निरूपयितुमशक्यत्वं तदेताभितं पुरुषादेताभावे तदसम्भावित्वार्थः ।
२ भवदुक्तम् । ३ परेण । ४ अनुमानसाध्य । ५ अर्थोऽनिर्वर्चनीय इति उपदेश-
गम्येनेत्यादि । ६ रजतसर्पादि । ७ इति नियतदेशादित्यभावस्यार्थस्य सदात्मकप्रति-
भासमानस्योपदेशादनिर्वर्चनीयत्वं कथं स्यात् । रजसादिभ्रान्तौ प्रतिभासमानोऽर्थः
अनिर्वर्चनीयः सत्त्वादिना बाध्यमानत्वे सति प्रतिभासमानत्वान्वापन्नपपत्तेरित्यर्थ-
स्योपदेशागम्यत्वमनुमानबाध्यत्वं च भवतामेवापातम् । ८ सदात्मकविषयतद्ग्रहणेषु
निवन्धने । ९ रजतलक्ष्मणस्य । १० यदि । ११ उत्तरकाले । १२ अनिवर्चनीय
यत्र तत्काले सर्वत्रेव भातीति । १३ अनिवर्चनीयार्थस्य अनिवर्चनीयरूपतया प्रति-
भासनात् । १४ परः । १५ विपरीतोवमर्थ इति प्रतिभासाभावात् । १६ चेत् ।
१७ परः । १८ अन्यथा । १९ षट्पटादिप्रतिभासिनि ज्ञाने । २० अप्रतिभासमानस्य
द्रुक्त्वस्य विपरीतत्वं स्यात् । २१ चेत् । २२ काचादिदोष । २३ प्रत्यभिज्ञानं ।

अप्यस्तं तोयं परमार्थतोयमिव अत एव पूर्वदृष्टमिव, तत्त्वतस्तु न तोयं न च पूर्वदृष्टम्,
किन्त्वव्युत्तमनिर्वाण्यम्” । मामदी ५० ११ ।

“प्रलेकं सदसत्त्वान्मां विचारपदवीं न यत् ।

शाहते तदनिर्वाण्यमाहुर्वेदान्तवादिनः ॥” वित्तुखी ५० ७९ ।

१ ५० ५१ पं० ५ ।

२ अनिवर्चनीयार्थस्यावेविचारः अज्ञानतरेण न्यायवा० ता० टी० ५० ८५,
न्यायकुसु० प्र० परि०, सा० रत्ना० ५० १३३ इत्यादिषु द्रष्टव्यः ।

इति, कथमेवं विपर्ययनिरासः तस्या एव तद्रूपत्वादिति ? सृष्टि-
प्रमोषाभ्युपगमेन तु विपर्ययप्रत्याख्यानमयुक्तम् । तस्यासिद्ध-
रूपत्वात् ।

ननु शुक्तिकायाम् 'इदं रजतम्' इति प्रतिभासो विपर्ययः, न
चासौ विचार्यमाणो घटते । नहि 'इदं रजतम्' इत्येकमेवेदं ज्ञानं
कारणाभावात् ; तथाहि-न दोषैर्ब्रह्मरादीनां शक्तेः प्रतिबन्धः
क्रियते, कार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न हि दुष्टा यवा विपर्यीतं कार्य-
माविर्भावयन्ति । अत एव प्रवेष्टोऽपि । किञ्च, "सम्बद्धं वर्तमानं
च गृह्यते चक्षुरादिना" । [गी० श्लो० प्रत्यक्ष० श्लो० ८४] रजतस्य
चासम्बद्धत्वाद्वर्तमानत्वाच्च चक्षुषा कथं वर्तमानरजताकारः-
वभासः स्यात् ? किं च कस्यायमाकारः प्रर्थते ? न तावद्रजतस्य,
अवर्तमानत्वात् । नापि ज्ञानस्यैव ; सैसिद्धान्तविरोधात् । किञ्च, "
अंगुहीतैरजतस्येदं विज्ञानं नोपजायते, अतैरप्रसङ्गात् । गृही-
तैरजतस्य च 'तद्रजतमिदम्' इति स्यात्, इन्द्रियैस्संस्कारसादृश्य-

१ विपरीतकपालभ्युपगमप्रकारेण । २ विपरीतकपालैः । ३ विवेकाव्याप्तिनि-
मेष विपर्ययनिरासः क्रियते इति प्रमादोक्तं तं प्रत्याह । ४ परः । ५ एकत्वेन
ज्ञानोत्पत्तौ । ६ कायकालादिदोषैः । ७ इदं रजतमिदं जडं । ८ वषाट्क-
दन्यात् शास्त्रद्वारादि । ९ न हि बीजप्रभंसोऽङ्कुरं जगति । १० कारणभावः ।
११ वस्तु । १२ शुक्तिकार्या । १३ विषयभावः । १४ चक्षुषा जतिरे रजतज्ञाने ।
१५ वस्तुनः । १६ प्रकाशते । १७ जैवल्य । १८ सकृदाभावः । १९ अज्ञातः ।
२० पुनः । २१ इदं रजतमिति । २२ अन्यथा । २३ भूतवनश्रितोचितसाम्येदं
रजतमिति विज्ञानं नवतु । २४ पुनः । २५ इन्द्रियेणैदमंगुष्ठेति कार्यं संस्कारेण
तद्रूपमिदंशोष्ठेसिसर्यं सादृश्यदोषलक्षणाभ्यां कारणभ्यां तद्रजतमिदमिति सामानाधि-
करण्यं भवति । नापि सादृश्यादेव केवलात् सामानाधिकरण्यं पूर्वं गृहीतरजतस्य पुनः
इदमनेन सत्तरजते तद्रजतमिदमिति सामानाधिकरण्यप्रसङ्गात् सादृश्यानिषेधात् ।
नापि दोषात्केनचित्सामानाधिकरण्यं साम्येति तत्प्रसङ्गात् दोषलक्षणसंस्कारणस्य
साम्येति विद्यमानत्वात् । तस्मादुभयं कारणं सादृश्यदोषौ ।

१ "शुक्लं च दुष्टायाः कार्याऽङ्गमत्वं न पुनः कार्यान्तरसामर्थ्यम्" ।

इहती ५० ५३ ।

"दोषा हि कारणानां सामर्थ्यं सिद्ध्यन्ति न पुनः कार्यान्तरजननसामर्थ्यमादधति, न
अङ्ग अङ्गद्वयबीजं न्यमोषणानयै कल्पते, किन्तु न करोति कुटजबानम् ।"
न्यायभा० शा० टी० ५० ८८ । आश्वी ५० १४ । न्यायसं० ५० १७६ ।

२ "रजतप्रतिपक्षिन्नं नैयमन्वस्य जायते ।

तेनेयमिन्द्रियाणीनां संयुक्ते नैत्रिणं भिन्नम् ॥ १२ ॥"

प्रकरणं० ५० ३३ ।

दोषैर्जन्यमानत्वात् । किञ्च, शुक्तिकायां रजतसंसर्गो न तावद्-
सन् प्रतिभासते, खे खपुष्पसंसर्गवत् असत्प्राप्तित्वप्रसङ्गात् ।
नापि सन्; रजतस्य तत्रासत्त्वात् । ततो ज्ञानद्वयमेतत् 'इदम्'
इति हि पुरोव्यवस्थितार्थप्रतिभासनम्, 'रजतम्' इति च पूर्वो-
५ गतरजतस्मरणं सौहर्दयादेः कुतश्चिन्मिमात् । तच्च स्मरणमपि
स्वरूपेण नावभासत इति स्मृतिर्मोषोऽभिधीयते । यत्र हि
'स्मरामि' इति प्रत्ययस्तत्र स्मृतेरप्रमोषः, न पुनर्यत्र स्मृतित्वेऽपि
'स्मरामि' इति रूपाप्रवेदनम् । प्रवृत्तिश्च मेदाऽग्रहणादेवोपपन्ना ।
ननु कोऽयं तदग्रहो नाम ? न तावदेकत्वग्रहः; तस्यैव विपर्यय-
१० रूपत्वात् । नापि तैग्रहणं प्रागभाषः; तस्याऽप्रवृत्तिहेतुत्वात्,
प्रवृत्तिनिवृत्त्योः प्रमाणफलत्वादिति चेत्; न; मेदाऽग्रहणस-
र्व्वेष्वस्य रजतज्ञानस्य प्रवृत्तिहेतुत्वोपपत्तेरिति ।

१ जन्मया (जसतः प्रतिभासते) । २ शुक्तिकायां । ३ बोधात् । ४ मनोदोषः ।
५ रजतज्ञानं । ६ प्रागभाषण । ७ ज्ञाने । ८ प्रतीतिः । ९ प्रत्यक्षस्मरणयोर्भि-
न्नयोरेकत्वेन ग्रहणं विपर्ययः । १० सत्यासत्यज्ञानयोरित्यादि । ११ निपरीत-
व्याप्तिप्रसङ्गादित्यर्थः । १२ मेद । १३ ज्ञानस्य । १४ नावकोत्पत्तेः पूर्वं ।
१५ सहायकः ।

१ "विज्ञानद्वयं नैतत् इदमिति प्रत्यक्षं रजतमिति स्मरणम् ।" बृहदी ५० ५१ ।
"रजतमिदमिति नैकं ज्ञानम्, किन्तु द्वे यत्ने विज्ञाने । तत्र रजतमिति स्मरणं तत्ता-
ननुभवरूपत्वाच्च श्रुत्याप्रसङ्गः । इदमिति विज्ञानमनुभूतं प्रमाणमिष्यत यत् ।"
प्रकरणार्थं ५० ४१ ।

२ "शुक्तिकायां रजतज्ञानं स्मरामीति श्रुत्यात् स्मृतिज्ञानमुक्तं शुक्लं रजतादिषु—"
बृहदी ५० ५१ ।
"स्मरामीति ज्ञानशून्यानि स्मृतिज्ञानान्येतामि" बृहदी ५० ५५ ।
३—"सा च रजतस्मृतिर्न तदा लेन रूपेण प्रकाशते स्मरामीतिप्रत्ययमाभावात्"
न्यायार्थं ५० १७८ ।

४ "ग्रहणकरणे चेमे विवेकजनवभासिनी ॥ ११ ॥

सम्बन्धजननोपायु मिमे यथापि तत्पतः ।
तथापि मिमे बागावः सैदाग्रहसमत्वतः ॥ १४ ॥

सम्बन्धजनतदोषश्च समर्थकार्यगोचरः ।

ततो मिमे ननुष्ठा तु स्मरणग्रहणे इमे ॥ १५ ॥

समानेनैव रूपेण केनचिन्मन्वते जवः ।

अवधारोऽपि तदुत्पत्तः तत् यत्न प्रवर्तते ॥ १६ ॥

अमलेन च संविद्येः मेदसाग्रहणेन च ।" प्रकरणार्थं ५० १४ ।

अत्र प्रतिविधीयते-न दोषैः शैकेः प्रतिबन्धः प्रध्वंसो वा विधीयते, किन्तु दोषसमवधाने चक्षुरादिभिरिव विज्ञानं विधीयते । दोषाणां चेदमेव सामर्थ्यं यत्तत्सन्निधानेऽविद्यमानेऽप्यर्थे ज्ञानमुत्पादयन्ति चक्षुरादीनि । न चैवमसत्ख्यातिः स्यात्, सादृश्यस्यापि तद्धेतुत्वात् । असत्ख्यातिस्तु न तद्धेतुका, ५ संपुष्पज्ञानवत् । रजताकारश्च प्रतिभासमानो न क्षीनस्य, संस्कारस्यापि तद्धेतुत्वात् । दोषाद्वि संस्कारसहायादनुभूतस्यैव रजतस्यायमाकारः पुरोवर्तिन्यर्थे प्रतिभासते । न चैवं 'तद्रजतम्' इति स्यात्, दोषवशात्पुरोव्यैवस्थितार्थे रजताकारस्य प्रतिभासनात् । कथमन्यथा भवतोऽपि तद्रजतमिति प्रतिभासो न स्यात् ? ततो १० यथा तैव सृष्टिप्रमोषस्तथा दोषेभ्यः सैमानाधिकरण्येन पुरोवर्तिन्यवर्तमानरजताकारावभासः किञ्च स्यात् ? अनेन 'तत्संसर्गः सैन्नसन्वा प्रतिभासते' इत्यपि निरस्तम् । न च विवेकीऽख्यातिसहायाद्रजतज्ञानात् प्रवृत्तिर्घटते, 'घटोयम्' इत्याद्यभेदज्ञानात्प्रवृत्तिप्रतीतेः । विवेकाख्यातिश्च भेदे सिद्धे सिद्धोत् । न १५ अत्र क्षीनभेदः कुतश्चित् सिद्धः, तथापि तत्कल्पने 'घटोयम्' इत्यादावपि ज्ञानभेदः कल्प्यतामविशेषौत् । अथौत्र सतो घटस्य ग्रहणान्नसौ कल्प्यते, तर्हि अन्यत्राप्यसतो ग्रहणात्तत्कल्पना मामूत् । यथैव हि गुणान्वितैश्चक्षुरादिभिः सति वस्तुन्येकं ज्ञानं जन्यते, तथा दोषान्वितैः सादृश्यवशादसत्येकं ज्ञानं जन्यते । २०

१ परोके प्रत्युपर दीयते नैनेः । २ ज्ञानकामादिभिः । ३ नेत्रादीनां । ४ रजतं । ५ रजते । ६ पूर्ववृष्टरजतेन शुक्तिकायाः सादृश्यं । ७ जन्याख्यातिः । ८ विषयैवज्ञानस्य सादृश्यं हेतुः । ९ सादृश्यहेतुश्च । १० सादृश्यहेतुः । ११ एवं तर्हि ज्ञानख्यातिः स्यात् । १२ न ज्ञानस्य आकारः व्यात्यख्यातिप्रसङ्गात् । १३ रजतज्ञानं । १४ शुक्तिकद्वौ । १५ रजतमिदमिति ज्ञानस्य सादृश्यविनियमनत्वेन । १६ पूर्वं रजतानुभवाऽविशेषात् । १७ परस्य । १८ अभाषः । १९ तद्रजतमित्येतदभिधित् रजतमिति ज्ञानं यथा ते प्रमोषनसाज्जायते । २० इदं रजतमिति इदंरजतपरोकाधिकरणत्वेन । २१ शुक्तिकद्वौ । २२ सर्वपासमिति बर्तुं न शक्यते सहस्रकल्पानुभूयमानत्वात्सर्वपासमिति बर्तुं न शक्यते अनुसूतरजतस्य पुरोदेहे असम्भवात् कथञ्चिदनुभव इति-इति यावः । २३ भेदाऽप्रहर्षः । २४ इदं रजतमित्यत्र । २५ इदं प्रत्यक्षं रजतमिति सरूपम् । २६ प्रमाणात् । २७ ज्ञानभेदसिद्ध्यावश्यम् । २८ परः । २९ घटोयमित्यत्र । ३० इदं रजतमित्यत्र । ३१ नैर्यस्यादि ।

१ सु०-“यतो न तैस्तस्याः प्रतिबन्धः प्रध्वंसो वा विधीयते, किन्तु सत्सन्निधाने रजतमिदमिति ज्ञानमेवेतोपायते”
व्यापकुसु० प्र० परी० ।

गुणदोषाणां च सद्भावं ज्ञानजनकत्वं च सतःप्राभाष्यप्रतिषेध-
प्रस्तावे प्रतिपादयिष्यामः । न च प्रमाकरमते विवेकौख्यातिः
सम्भवति, तत्र हि 'इदम्' इति प्रत्यक्षं 'रजतम्' इति च स्वरण-
मिति संविचिच्छयं प्रसिद्धम्, तच्चाऽऽत्मैर्माकट्येनैवोत्पद्यते ।
१ आत्मप्राकट्यं चान्योन्यभेदग्रहणेनैव संबध्यते घटपटादिसंवि-
त्तित्वम् । किञ्च, विवेकख्यातेः प्रागभावो विवेकौख्यातिः । न
चाभावः प्रमाकरमतेऽस्ति ।

क्रद्वायं स्मृतेः प्रमोषः—किं स्मृतेरभावः, अन्यावभासो वा
स्यात्, विपरीतकार्यविदित्वं वा, अतीतकालेन वर्तमानतया
१० ग्रहणं वा, अंशुमवेन सह क्षीरोदकवदविवेकैर्नोत्पादो वा प्रकाश-
न्तरासम्भवात् ? तत्र न तावदाद्यः पक्षः, स्मृतेरभावे हि कथं
पूर्वदृष्टरजतप्रतीतिः स्यात् ? मूर्च्छाद्यवस्थायां च स्मृतिप्रमोषव्य-
पदेशः स्यात् तदभावाविशेषात् । अथात्र 'इदम्' इति भासामा-
वाञ्छासौ; ननु 'इदम्' इत्यत्रापि किं प्रतिभातीति चेत्कथम् ?
१५ पुरोव्यवस्थितं शुक्तिकाशकलमिति चेत्, ननु संप्रसंगविशिष्टत्वेन
तत्तत्र प्रतिभाति, रजतसंविहितत्वेन वा ? प्रथमपक्षे कुतः
स्मृतिप्रमोषः ? शुक्तिकाशकले हि लगतर्धैर्नविशिष्टे प्रतिभास-
माने कुतः रजतस्वरणसम्भवो यतोऽस्य प्रमोषः स्यात् ? न खलु

१ किं न । २ ता (पक्षी) । ३ भेदप्रतिभास इत्यर्थः । ४ ज्ञानद्वयं । ५ सक्तम् ।
६ कानिनां । ७ भेदस्याप्रतिभासः । ८ अभावः । ९ सूर्यमागद्वत्तदस्पष्टाकापत्त्यदन्त्यस्य
शुक्तिशयकसंसाधनात् । १० सूर्यमागद्वत्तदस्पष्टाकापत्त्यदन्त्यस्य । ११ जदीयः
कालो यस्य रजतस्य तदिदमतीतकालं तस्मातीतकालस्य रजतस्य । १२ प्रसङ्गेन
सह स्मृतेः । १३ स्मृतेरभेदेन । १४ अन्यथा । १५ स्मृतेः (मूर्च्छाद्यवस्था-
यात्) । १६ नैनानाद्युक्ते प्राभासः । १७ ग्रहणम् । १८ प्राभाकरप्रतिभासः ।
१९ नो प्राभाकर । २० अलक्ष्यगुणादि । २१ तुल्यत्वेन । २२ न कुतोऽपि
स्मृतिप्रमोषो भवेत् । २३ अत्रादि । २४ न कुतोऽपि ।

१ गु०—“कोऽयं विप्रमोषो नाम—किन्नुपवाकरलीकरणम्, स्वप्नाकारमर्जो
वा, पूर्वोदगृहीतत्वं वा, इन्द्रियार्थसन्निकर्षित्वं वा, इन्द्रियार्थसन्निकर्षित्वं वा ।”

तत्सोपपन्नं लि० पृ० २५ ।

“कोऽयं स्मृतेः, प्रमोषो नाम—विनाशः, प्रसङ्गेन सहैकस्याभ्यवसायात्, प्रसङ्ग-
वापत्तिः, तदित्यवसायानुसारात्, क्षीरोलावभासं वा ।”

अप्युक्तम् प्र० परि० ।

सा० रत्ना० पृ० १२० ।

“किं स्मृतेरभावः, घट अन्यथाभासः, आहोस्तिदन्वाकारवैदित्यम् इति निरुक्ताः”

तन्मति० टी० पृ० २८ ।

घटे गृहीते पटस्मरणसम्भवः । अथ शुक्तिकारजतयोः सादृश्या-
च्छुक्तिकाप्रतिभासे रजतस्मरणम्, न, भेद्याऽकिञ्चित्करत्वात् ।
यदा ह्यसाधारणैर्धर्माभ्यासितं शुक्तिकास्वरूपं प्रतिभाति तदा
कथं संहशवस्तुस्मरणम्? अन्यथा सर्वत्र स्यात् । सामान्यमात्र-
ग्रहणे हि तैत् कदाचित्स्यादपि नाऽसाधारणस्वरूपप्रतिभासे । ५
द्विचन्द्रादिषु च जीतितैमिरिकप्रतिभासविषये संहशवस्तुप्रति-
भासाभावात् कथं स्मृतैरुत्पत्तिर्यतः प्रमोषः स्यात्? नापि तैत्स-
भिहितत्वेन प्रतिभासः, रजतस्य तैत्रासत्वेन तत्सन्निधानायो-
गात् । इन्द्रियसम्बद्धानां च तद्देशैर्वर्तिनां परमाण्वादीनामपि
प्रतिभासः स्यात् तदेविशेषात् । नाप्यन्यावर्भासोऽसौ, स हि किं १०
तैत्कालभावी, उत्तरकालभावी वा स्यात्? तैत्कालभावी चेत्, तर्हि
घटादिज्ञानं तैत्कालभावि तस्याः प्रमोषः स्यात् । नाप्युत्तरकाल-
भाव्यन्यावभासोऽस्यैः प्रमोषः, अतिप्रसङ्गात् । यदि हि उत्तरकाल-
भाव्यन्यावभासः समुत्पन्नस्तर्हि पूर्वज्ञानस्य स्मृतिप्रमोषत्वेनासौ
नाभ्युपगमनीयः, अन्यथा सकलपूर्वज्ञानानां स्मृतिप्रमोषत्वेना- १५
भ्युपगमनीयः स्यात् । किञ्च, अन्यावर्भासस्य सद्भावे परिस्फुट-
वर्णः स एव प्रतिभातीति कथं रजते स्मृतिप्रमोषः? निखिला-
न्यावैभासानां स्मृतिप्रमोषेतापत्तेः । अथ विपरीताकारवेदित्वं
तस्याः प्रमोषः, तर्हि विपरीतख्यातिरेव । कश्चासौ विपरीत
आकारः? परिस्फुटार्थावभासित्वं चेत्, कथं तस्य स्मृतिसम्ब- २०
न्धित्वं प्रत्यक्षाकारत्वात्? तत्सम्बन्धित्वे वा प्रत्यक्षरूपतैव तस्याः
स्यान्न स्मृतिरूपता । नाप्यतीतकालस्य वर्तमानतया ग्रहणं तस्याः
प्रमोषः, अन्यैस्मृतिवत्तस्याः स्पष्टवेदनामावाजुपक्तात्, न चैवम् ।

१ सादृश्यस्य । २ अकिञ्चित्करत्वमेव भावयन्ति । ३ भेद्यादि । ४ शुक्ति-
काशकलस्य । ५ रजतादिसदृशवस्तु । ६ सन्निहितशुक्तिकाशकलप्रतीती वाचकोत्तर-
कारं शुक्तिकाशकलप्रतीती च घटादौ वा । ७ सद्दृशवस्तुस्मरणम् । ८ विशेष ।
९ स्मृतेः सादृश्यलिखनत्वे इत्यत्र किं च । १० जन्मना । ११ रजत । १२ शुक्ति-
कायात् । १३ किञ्च । १४ शुक्तिकादेशवतिनाम् । १५ रजतेन सन्निहितत्वस्य ।
१६ परमाण्वा । १७ स्मृतिप्रमोषः । १८ रजतस्मरण । १९ रजतस्मरण ।
२० रजतस्मरण । २१ स्मृतेरभावः । २२ स्मृतेः । २३ रजत । २४ परेण
अवता । २५ शुक्तिकाशकल । २६ विशदस्वरूपः । २७ शुक्तिरूप । २८ स्वभावः ।
२९ अन्यथा । ३० अभावरूपतापत्तेः । ३१ स्मृतिविपरीत । ३२ पदार्थानां ।
३३ स्मृतेः । ३४ परिस्फुटार्थावभासित्वाकारस्य । ३५ स्मृतेः । ३६ रजतस्य ।
३७ स्मरणं । ३८ स्मृतेः । ३९ वेददसादिस्मृतिवत् । ४० शुक्तिकार्या रजतस्मृतेः ।

अतीतकालस्य स्पाष्टयेनाधिकस्य संवेदनं स इति चेत्, न, तत्र परमार्थतः स्पाष्ट्यसम्भावे अतीन्द्रियार्थवेदिनो निषेधो न स्यात्, तत्स्मृतिवत् अन्यस्यापीन्द्रियमन्तरेण वैशद्यसम्भवात् । अथात्र पारस्पर्येणोन्द्रियादेव वैशद्यम्, न, तद्विशेषात्सर्वस्यास्तत्त्वस-
 ५ ज्ञात् । अथानुभवेन सह क्षीरोदकवदविवेकेनोत्पादोऽस्याः प्रमोषः, ननु कोयमविवेको नाम-भिन्नयोः सर्तोरभेदेन ग्रहणम्, संश्लेषो वा, आनन्तर्येण उत्पादो वा ? प्रथमपक्षे विपरीतव्याप्तिरेव । संश्लेषस्तु ज्ञानयोर्न सम्भवत्येव, अस्य मूर्च्छद्वयव्येव प्रतीतेः । आनन्तर्येणोत्पादस्य स्मृतिप्रमोषरूपत्वे अनुमेयशब्दार्थेषु देवद-
 १० सादिज्ञानानां सरणानन्तरमाविनां स्मृतिप्रमोषतामसङ्गः स्यात् ।

यदि च द्विचन्द्रादिवेदनं सरणम्, तर्हीन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधायि न स्यात्, अन्यत्र सरणे तद्वद्वेष्टेः । तदनुविधायि चेदम्, अन्यथा न किञ्चित्चतुर्विधायि स्यात् । तद्विकारविकारित्वं चैत यच्च तुल्यं स्यात् । किञ्च, स्मृतिप्रमोषपक्षे बाधकप्रत्ययो न
 १५ स्यात्, स हि पुरोवर्त्तिन्यर्थे तत्त्वैतिमासस्यासद्विषयतामादर्शयन् 'नेदं रजतम्' इत्युल्लेखेन प्रवर्त्तते, न तु 'रजतप्रतिभासः स्मृतिः' इत्युल्लेखेन । स्मृतिप्रमोषाभ्युपगमे च स्वतःप्रामाण्यव्याधौ, सम्यग्रजतप्रतिभासेऽपि ह्याशङ्कोत्पद्यते 'किमेव स्मृतावपि स्मृतिप्रमोषः, किं वा सत्यप्रतिभासे' इति, बाधकामावापेक्षणात्-
 २० यत्र हि स्मृतिप्रमोषस्तत्रोत्तरकालमवश्यं बाधकप्रत्ययो यत्र तु तदभावस्तत्र स्मृतेः प्रमोषासम्भवः । बाधकामावापेक्षार्थां चानवस्था । तस्मात् 'इदं रजतम्' इत्यत्र ज्ञानद्वयकल्पनाऽसम्भवा-

१ रजतस्मृतौ । २ सर्ववत् । ३ रजत । ४ संवेदनस्य । ५ स्मृतिविषयं रज-
 तमपीन्द्रियम् । ६ रजतसरणे । ७ इति चेत् । ८ प्रत्यक्षसरणयोः । ९ सम्बन्धः ।
 १० अनुमेयार्थोऽस्यादिः । ११ अत्रविहितार्थग्राहकज्ञानस्य स्मृतित्वमितिसिद्धौ
 दूषणम् । १२ किञ्च । १३ घटादौ । १४ तदप्रतीयेः । १५ घटादिज्ञानं प्रत्यक्षं ।
 १६ इन्द्रियम् । १७ कञ्चादि । १८ ता (पट्टी) । १९ द्विचन्द्रादि । २० ज्ञानस्य ।
 २१ तस्य बाधकामावापेक्षा द्विचन्द्रादिग्राहित्वेन परिणामित्वम् । २२ इन्द्रियान्वय-
 व्यतिरेकानुविधायित्वाभावादेव द्विचन्द्रज्ञानस्य सरणत्वादेव वा । २३ शुक्तिकाशकले ।
 २४ रजत । २५ उत्तरकाले । २६ परेण । २७ ज्ञाने । २८ रजतस्य । २९ घटदेव
 बाधयति । ३० ज्ञाने । ३१ किञ्च । ३२ ग्राहकत्वम् ।

तत्सृतिप्रमोषामावः । ततः सूक्तम्-विपर्ययज्ञानस्य व्यवसायात्मक-
त्वविशेषणेनैव निरास इति ।

तेनोपूर्वार्थविशेषणेन धारावाहिविज्ञानं निरस्यते । नैन्वेवमपि
प्रमाणसम्बन्धवादिताव्याघातः प्रमाणप्रतिपक्षेऽर्थे प्रमाणान्तरा-
प्रतिपत्तिः, इत्यचोद्यम्, अर्थपरिच्छित्तविशेषसङ्गावे तत्प्रवृत्तेर-
प्यभ्युपगमात् । प्रथमप्रमाणप्रतिपक्षे हि वस्तुन्याकारविशेषं
प्रतिपद्यमानं प्रमाणान्तरम् अपूर्वार्थमेव वृक्षो न्यग्रोव इत्यादिवत् ।
एतदेवाह-

अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ॥ ४ ॥

स्वरूपेणाकारविशेषरूपतया चानैवगतोऽखिलोप्यपूर्वार्थः । १०

दृष्टोपि समारोपात्तादृक् ॥ ५ ॥

न केवलमप्रतिपक्ष एवापूर्वार्थः, अपि तु दृष्टोऽपि प्रतिपक्षोपि
समारोपात् संशयमदिसङ्गावात् तादृगपूर्वार्थोऽधीतानभ्यस्त-
शास्त्रवत् । एवंविधैर्धर्मस्य यन्निश्चयात्मकं विज्ञानं तत्सकलं प्रमाणम् ।

तत्र अनैर्धिगतायाधिगन्तृत्वमेवं प्रमाणस्य लक्षणम् । तद्वि १५

१ वतो विपर्ययज्ञानादिक समर्थितम् । २ कारणेन । ३ भाट्टः शङ्कते । ४ नहन्ति
प्रमाणानामेकसिद्धये प्रवृत्तिः प्रमाणसम्बन्धः । ५ वैजानां विरोधः । ६ प्रत्यक्षादि ।
७ सङ्ख्यादिलक्षण । ८ अपूर्वः अर्थो यस्य । ९ सङ्ख्यादिमत्त्वेन । १० अथातः ।
११ दृष्टोपि समारोपात्तादृगिति वृत्तम् । १२ अपूर्वस्य । १३ पूर्वाग्रहीतार्थमादि ।
१४ सर्वथा ।

1 विवेकाख्याति-अस्यात्मपरपर्यायस्यास्य सृष्टिप्रयोगस्य विविधरीत्या मीमासा-
न्यायवा० ता० टी० पृ० ८८, भावती पृ० १५, प्रश्न० कन्दली पृ० १८०,
न्यायमं० पृ० १७६, निवरणप्रमेय दं० पृ० २८, न्यायलीलाव० पृ० ४१, तत्त्वो-
पप्लव सि० पृ० २५, न्यायकुमु० प्र० परि०, सन्मति० टी० पृ० २८, १७६ ।
स्या० रत्ना० पृ० १०४ इत्यादिषु समबलोकनीया ।

2 "प्रमाणः प्रमातव्येऽर्थे प्रमाणाया सङ्करोऽसि सम्बन्धः ।"

न्यायमा० १११३ पृ० १९ ।

3 "उपयोगविशेषस्याभावे प्रमाणसम्बन्धस्याऽनस्त्युपगमात् । सति हि प्रतिपक्ष-
प्रयोगविशेषे देशादिविशेषसमवधानाद् आगमात्मप्रतिपक्षमपि धिरण्यरेतर्ह्य स पुनरनुमा-
नाप्रतिपत्तिस्तत्र सप्रतिपक्षपूर्वाधिविशेषसाक्षात्करणसत्प्रतिपत्तिविशेषवदनात् । पुनस्तत्रैव
प्रत्यक्षतो उक्तसत्वे सत्करणसम्बन्धात्तद्विशेषप्रतिभाससिद्धेः" । अद्वैत० पृ० ४ ।

4 "जीवचित्तकिरा दोषः कारणस्य निवार्यते ।

अवाचोऽभ्यतिरेकेण सतत्त्वेन प्रमाणता ॥ १० ॥

सर्वस्यानुपलब्धेऽर्थे प्रामाण्यं सृष्टिरित्यथा ।" मीमांसाको० पृ० २१०४

वस्तुन्यधिगतेऽनधिगते वाऽव्यभिचारादिविशिष्टां प्रमां जनयन्नो-
पादेन्मविषयः । न चाधिगतेऽर्थे किं कुर्वत्तत्प्रमाणतां प्राप्नोतीति
वक्तव्यम् ? विशिष्टप्रमां जनयतस्तस्य प्रमाणताप्रतिपादनात् । यत्र
तु सा नास्ति तत्र प्रमाणम् । न च विशिष्टप्रमोत्पादकत्वेऽप्यधिगत-
५ विषयेऽस्याऽकिञ्चित्करत्वम् ; अतिप्रसङ्गात् । न चैकान्ततोऽनधि-
गतार्थाधिगन्तुत्वे प्रामाण्यं प्रमाणस्यावसीतुं शक्यम् ; तद्वर्ष-
तथाभावित्वलक्षणं संवादादवसीयते, स च तदर्थोत्तरा-
नवृत्तिः । न चानधिगतार्थाधिगन्तुरेव प्रामाण्ये संवादप्रत्ययस्य
तद् घटते । न च तेनाप्रमाणमूलेन प्रथमस्य प्रामाण्यं व्यवस्थापयितुं
१० शक्यम् ; अतिप्रसङ्गात् । न च सामान्यविशेषयोस्तादात्म्याभ्युपगमे
तस्यैकान्ततोऽनधिगतार्थाधिगन्तुत्वं सम्भवति । ईदानींतन्नास्ति-
त्व(इदानीन्तनास्ति)स्य पूर्वोक्तित्वाद्भेदात् तस्य च पूर्वमप्य-
धिगतत्वात् । कथञ्चिदनधिगतार्थाधिगन्तुत्वे त्वस्यैवमतप्रवेशः ।
निश्चिते विषये किञ्चिद्व्यान्तरेण अपेक्षावत्त्वप्रसङ्गात् ; इत्यप्यवा-

१ अर्थपरिच्छिन्ति । २ दोष । ३ निमित्ते । ४ कार्य । ५ परेण । ६ प्रमाणा-
न्तरस्य । ७ काले । ८ विशिष्टप्रमाणनकता । ९ ज्ञानं । १० विशिष्टप्रमोत्पादकत्वे
व्यक्तिञ्चित्करत्वं तदा सर्वथाऽदृष्टेऽर्थे प्रमाणनकस्य ज्ञानस्याकिञ्चित्करत्वं सादृशिष्टप्रमो-
त्पादकत्वस्याविशेषात् । ११ किञ्च । १२ सर्वथा । १३ निश्चेतुं । १४ संवादः ।
१५ पूर्वज्ञानार्थः । १६ ईप् (सप्तमी) । १७ तदर्थेभ्यासो उत्तरज्ञानवृत्तिश्च ।
१८ ज्ञानस्य । १९ संवादात् । २० द्वितीयज्ञानेन । २१ गृहीतार्थमाहिलात् ।
२२ ज्ञानस्य । २३ न ज्ञातमस्तीति वक्तुं ज्ञानं तस्याज्ञातत्वविरोधाच्चेयाधिकः ।
२४ संशयादिना प्रथमज्ञानस्य प्रामाण्यप्रसङ्गात् । २५ किञ्च । २६ वृक्षवदादि ।
२७ प्रमाणस्य । २८ वद । २९ अधिगतार्थाधिगन्तुत्वात् । ३० वृक्ष । ३१ विशेषा-
पेक्षया । ३२ जैन । ३३ प्रयोजनं । ३४ अन्यथा ।

“यतश्च विशेषणत्रयमुपादानेन सूत्रकारेण कारणदोषबाधकरहितमगृहीतमाह ज्ञानं
प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणं सूचितम् ।” शास्त्रदीपिका पृ० १५२ ।

५ तु०—“यतः प्रमाणं वस्तुन्यधिगतेऽनधिगते वाऽव्यभिचारादिविशिष्टां प्रमां जन-
यन्नोपादेन्मविषयः । न चाधिगते वस्तुनि.....” सम्प्रति० टी० पृ० ४६६ ।

१ “नचैकान्ततोऽनधिगतार्थाधिगन्तुत्वे प्रामाण्यं तस्यावसातुं शक्यम्...”
सम्प्रति० टी० पृ० ४६६ ।

२ “इदानीन्तनास्ति स पूर्वोक्तित्वाद्भेदात् तस्य च पूर्वमप्यधिगतत्वसंभवात्”
सम्प्रति० टी० पृ० ४६६ ।

च्यम् । भूयो निश्चये सुखादिसाधकत्वविशेषप्रतीतिः । प्रथमतो हि वस्तुमात्रं निश्चीयते, पुनः 'सुखसाधनं दुःखसाधनं वा' इति निश्चि-
त्योपादीयते त्वज्यते वा, अन्यथो विपर्ययेणाप्युपादानस्यागमसङ्गः
स्यात् । केषाञ्चित्सङ्केदशनेपि तन्निश्चयो भवति अभ्यासादिति एक-
विषयाणामप्यागमानुमानाध्यक्षाणां प्रामाण्यमुपपन्नम् प्रतिपत्ति-
विशेषसद्भावात् । सामान्याकारेण हि वचनात्प्रतीयते बहिः, अनु-
मानादेशादिविशेषविशिष्टः, अध्यक्षात्वाकारनियत इति । ततोऽ-
शुक्लमुक्तम्-

“तत्रापूर्वार्थविज्ञानं निश्चितं बाधवर्जितम् ।

अदुष्टकारणारब्धं प्रमाणं लोकसम्मतम् ॥” [] इति । १०
प्रत्यभिज्ञानस्यानुभूतार्थग्राहिणोऽप्रामाण्यप्रसङ्गात्, तथैव कथ-
मतेः शब्दात्मोदेर्नित्यत्वसिद्धिः ? न चानुभूतार्थग्राहित्वमसौ-
सिद्धम्, स्मृतिप्रत्यक्षप्रतिपक्षेऽर्थे तत्रावृत्तेः । न ह्यप्रत्यक्षेऽसर्व-
माणे चार्थे प्रत्यभिज्ञानं नाम, अतिप्रसङ्गात् । पूर्वोत्तरावस्थाव्याप्ते-
कत्वे तस्य प्रवृत्तेरयमदोषः, इति चेत्, किं ताभ्यामेकत्वस्य भेदः, १५
अभेदो वा ? भेदे तत्र तस्याप्रवृत्तिः । न हि पूर्वोत्तरावस्थाभ्यां भिन्ने
सर्वथैकत्वे तत्परिच्छेदिज्ञानाभ्यां जन्यमानं प्रत्यभिज्ञानं प्रवर्त्तते
अर्थान्तरैकत्वेनैव, भेदान्तरप्रवेशश्च । ताभ्यामेकत्वस्य सर्वथाऽ-

१ परेण । २ ज्ञानात् । ३ निश्चयान्तरानङ्गीकारे । ४ सुखसाधनत्वदुःखसाधन-
त्वनिश्चय उत्तरज्ञानात् भवति चेत् । ५ व्यसत्तेन । ६ प्रवृत्त्या । ७ एकदा ।
८ दूयादेः । ९ मादेन । १० परप्रमाणलक्षणनिराकरणे च सति । ११ सर्वथा ।
१२ गृहीतग्राहित्वेन प्रत्यभिज्ञानस्याप्रामाण्ये च । १३ प्रत्यभिज्ञानात् । १४ वसः ।
१५ प्रत्यभिज्ञानस्य । १६ उत्तरप्रत्यक्ष । १७ तस्य । १८ वैवादी प्रत्यभिज्ञानत्व-
प्रसङ्गः । १९ पूर्वोत्तराकारग्राहिसंज्ञाप्रत्यक्षभ्याम् । २० ईप् । २१ सर्वथामेव ।
२२ वैयायिक ।

१ “यतो भूयो भूय उपलभ्यमाने दृढतरा प्रतिपत्तिर्भवतीति सुखसाधनं तथैव
निश्चिलोपादे-”

सम्पत्ति० टी० पृ० ४६७ ।

२ “यदि चानुपलब्धार्थग्राहि मानमुपेयते ।

तदर्थं प्रत्यभिज्ञायाः स्पष्ट एव वक्तव्यं ॥”

न्यायसं० पृ० २२ ।

३ “नहि पूर्वोत्तरावस्थाभ्यां भिन्ने च सर्वथैकत्वे तत्परिच्छेदिज्ञानाभ्यां जन्यमानं
प्रत्यभिज्ञानं प्रवर्त्तते सरणवत् सन्तानान्तरैकत्ववद्वा” । तत्त्वार्थको० पृ० १७४ ।

४ “विपत्ताभ्यामभेदभेदेकत्वस्य कथञ्चन ।

तद्ग्राहिण्याः कथञ्च सात्पूर्वार्थत्वं स्मृतमिव ॥ ७६ ॥”

तत्त्वार्थको० पृ० १७४ ।

मेदे अनुभूतग्राहित्वं प्रत्यभिज्ञानस्य स्यात् । ताभ्यां तस्य कथञ्चिद्-
मेदे सिद्धं तस्यै (कथञ्चिद्) अनुभूतार्थग्राहित्वम् । न चैवंवादिनः
प्रत्यभिज्ञानप्रतिपक्षे शब्दादिनित्यत्वे प्रवर्तमानस्य “दर्शनस्य
पर्यर्थत्वात्” [जैमिनिस्व० १।१८] इत्यादिः प्रमाणता घटते । सर्वेषां
५ चानुमानानां व्याप्तिज्ञानप्रतिपक्षे विषये प्रवृत्तेरप्रमाणता स्यात् ।
प्रत्यभिज्ञानाश्लेषशब्दादिसिद्धावपि कुतश्चित्समारोपस्य प्रसूतेस्त-
द्वावच्छेदार्थत्वादस्य प्रामाण्ये नैकान्तस्यागः । स्मृत्यूहादेर्वाभि-
मतप्रमाणत्वं व्याघातकृत्प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गः स्यात् । प्रत्यभि-
ज्ञानवक्तव्यं चिदपूर्वार्थत्वसिद्धेः । किञ्च, अपूर्वार्थप्रत्ययस्य प्रामाण्ये
१० द्विचन्द्रादिप्रत्ययोऽपि प्रमाणं स्यात् । निश्चितत्वं तु परोक्षज्ञान-
वादिनो न सम्भवतीत्यग्रे वक्ष्यामः ।

ननु द्विचन्द्रादिप्रत्ययस्य सवाचकत्वात् प्रमाणता, यत्र हि
वाधाविरहस्तत्प्रमाणम् ; इत्यप्यसङ्गतम् ; बाधाविरहो हि तत्काल-
भावी, उत्तरकालभावी वा विज्ञानप्रमाणताहेतुः ? न तावत्तत्का-
१५ लभावी ; क्वचिन्मिथैवाज्ञानेऽपि तस्य भावात् । अथोत्तरकालभावी ;
स किं ज्ञातः, अज्ञातो वा ? न तावदज्ञातः ; अस्य सत्त्वेनाप्य-

१ यत्कलस्य । २ प्रत्यभिज्ञानस्य । ३ सर्वथाऽपूर्वार्थविज्ञानं प्रमाणमित्येवंवादिनः ।
४ उच्चारणस्य । ५ शिष्यः । ६ अर्थापत्त्यादेः । शब्दो नित्य उच्चारणान्ध्याऽनुप-
पत्तेरिति । ७ किञ्च । ८ स प्रमाणं । ९ आत्मा । १० सर्वं क्षणिकं सत्त्वादिति
क्षणिकप्रतिपादकानुमानात् । ११ उत्पत्तेः । १२ व्याप्तिज्ञानेन निखिलसाध-
साधनानां सामान्येन ग्रहणेऽनुमानेन निवृत्तदेशकालकारतया साध्यप्रतिपक्षेऽनुमान-
प्रामाण्ये च । १३ सर्वथाऽपूर्वार्थविज्ञानमेव प्रमाणमित्येकान्तस्यागः । १४ इदमस्य-
मित्यादेः । १५ वदिति विज्ञाने । १६ स्थूलादीनाम् । १७ भाट्टस्य । १८ उत्तर-
काले । १९ ज्ञाने । २० तन्ज्ञानकाल । २१ विचार्यमाणप्रामाण्यविज्ञानकाल ।
२२ रजतादिज्ञाने । २३ न हि शुक्तिनायामिदं रजतमिति ज्ञानं यदा जायते तदैव
याप्यते प्रवृत्त्यादेरभावप्रसङ्गात् ।

१ “यदि पुनः प्रत्यभिज्ञानाश्लेषशब्दादिसिद्धावपि कुतश्चित्समारोपस्य.....”
तत्त्वावच्छेदः पृ० १७४ ।

२ प्रमाणलक्षणस्य जनविगतार्थत्वविशेषणस्य पर्यालोचनम् अक्षरशः तत्त्वाव-
च्छेदः पृ० १७३, सन्मति० टी० पृ० ४६६, मङ्गलन्देण च तत्त्वोप० लि० पृ०
३०, न्यायसू० पृ० २१, सा० रत्ना० पृ० ३८ इत्यादिषु ग्रन्थेषु ।

३ “किञ्च, अर्थसंवेदनानन्तरमेव बाधानुत्पत्तिः तत्त्वप्रामाण्यं व्यक्तस्याप्येव,
सर्वदा वा ?” अष्टसह० पृ० ३९ ।

“यतो बाधाविरहः तत्कालभावी, उत्तरकालभावी वा” सन्मति० टी० पृ० १९ ।

सिद्धेः । ज्ञातञ्चेत्—किं पूर्वज्ञानेन, उत्तरज्ञानेन वा ? न तावत्पूर्व-
ज्ञानेनोत्तरकालभावी बाधाविरहो ज्ञातुं शक्यः; तद्धि स्वसमान-
कालं नीलादिकं प्रतिपद्यमानं कथम् 'उत्तरकालमप्यत्र बाधकं
नोदेप्यति' इति प्रतीयात् ? पूर्वमनुत्पन्नबाधकानामप्युत्तरकालं
बाध्यमानत्वदर्शनात् । नाप्युत्तरज्ञानेनासौ ज्ञायते; तदा प्रमाण-^५
त्वाभिमतज्ञानस्य नाशात् । नष्टस्य च बाधाविरहचिन्ता गतसर्पस्य
घृष्टिकृद्वन्यायमनुकरोति । कैथं च बाधाविरहस्य ज्ञायमानत्वेपि
सत्यत्वम्; ज्ञायमानस्यापि केशोण्डुकादेरसत्यत्वदर्शनात् ? तज्ज्ञा-
नस्य सत्यत्वाच्चेत्, तस्यापि कुतः सत्यता ? प्रमेयसत्यत्वाच्चेत्,
अन्योन्याश्रयः । अपरबाधाभावज्ञानाच्चेत्, अनवस्था । अथ संवादा-^{१०}
दुर्त्तरकालभावी बाधाविरहः सत्यत्वेन ज्ञायते; तर्हि संवादस्याप्य-
परसंवादात्सत्यत्वसिद्धिस्तस्याप्यपरसंवादादित्यनवस्था । किञ्च,
कैचित्कदाचित्कस्यचिद् बाधाविरहो विज्ञानप्रमाणता हेतुः, सर्वत्र
सर्वदा सर्वस्य वा ? प्रथमपक्षे कस्यचिन्मिथ्याज्ञानस्यापि प्रमाणता-
प्रसङ्गः, क्वचित्कदाचित्कस्यचिद्बाधाविरहसद्भावात् । सर्वत्र सर्वदा^{१५}
सर्वस्य बाधाविरहस्तु नासर्वविदां विषयः ।

अदुष्टकारणारब्धत्वमप्यज्ञातम्, ज्ञातं वा तैज्ज्ञेत् ? प्रथमपक्षो-
ऽयुक्तः; अज्ञातस्य सत्त्वसन्देहात् । नापि ज्ञातम् । कर्णकुशलादे-
रतीन्द्रियस्य ज्ञातेरसम्भवात् । अस्तु वा तज्ज्ञातिः; तथाप्यसौ
अदुष्टकारणारब्धः ज्ञानान्तरात्, संवादप्रत्ययाद्वा ? आद्यविकल्पे^{२०}
अनवस्था । द्वितीयविकल्पेपि संवादप्रत्ययस्यापि ह्यादुष्टकारणार-
ब्धत्वं तथाविधादर्न्यतो ज्ञातव्यं तस्याप्यन्यत इति । न चानेकान्त-

१ न ज्ञातमस्तीतिवक्तुं शक्यं तस्माज्ज्ञातत्वविरोधात् । २ श्रुतिकादौ ।
३ प्रमाणं । ४ कालः । ५ ज्ञानानां । ६ पूर्वसिद्धं जलमिति ज्ञानस्य । ७ किञ्च ।
८ पूर्वकाले । ९ उत्तरकाले । १० पूर्वज्ञानापेक्षया । ११ विषये । १२ पूर्व ।
१३ पूर्वज्ञानप्रमाणताहेतुः । १४ इन्द्रियद्वयादि । १५ परिज्ञानस्य । १६ अदुष्ट-
कारणारब्धत्व । १७ अनवस्था । १८ ज्ञानात् ।

१ "बाधाविरहः किं सर्वपुरुषापेक्षया, जादोस्तिप्रतिपन्नपेक्षया ?" तत्सोपपन्न-
सिद्धेः ३० पृ० ३ । अष्टसह० पृ० ३९ । प्रमाणप० पृ० ३२ । सम्प्रति० टी०
पृ० १८ ।

२ "यद्यदुष्टकारकसन्दोहोत्पादत्वेन; तदा सैन कारकाणामदुष्टता कुतोऽवसीयते ?
न तापप्रत्यक्षाए; नयनकुशलादेः सवेदनकारणस्य जतीन्द्रियस्याऽदुष्टतायाः प्रत्यक्षी-
कर्तुमशक्तेः । नात्रुमानात्; तदभिनायमितिज्ञानाभावात्...." अष्टसह० पृ० ३८ ।
(तत्सोपपन्न०—) सम्प्रति० टी० पृ० १३ ।

वादिनामप्युपालम्भः समानोऽयम्, यथावदर्थनिश्चायकप्रत्ययस्याः
भ्यासदशायां बाधवैधुर्यस्यादुष्टकारणारब्धत्वस्य च स्वयं संवेद-
नात्, अनभ्यासदशायां तु परतोऽभ्यस्तविषयात् । न चैवमन-
वस्थाः क्वचित्कस्यचिदभ्यासोपपत्तेरित्यलं विस्तिरेण परतः प्रामाण्य-
विचारे विचारणात् । लोके सम्मतत्वं च यथावद्वस्तुस्वरूप-
निश्चयाच्चापरम् ।

ननु चोक्तलक्षणाऽपूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणमित्युक्त-
मुक्तम्, अर्थव्यवसायात्मकज्ञानस्य मिथ्यारूपतया प्रमाणत्वा-
योगात्, परमात्मस्वरूपग्राहकस्यैव ज्ञानस्य सत्यत्वप्रसिद्धेः ।
१० अक्षसन्निपातानन्तरोत्थाऽविकल्पकप्रत्यक्षेण हि सर्वत्रैकत्वमेवा-
ऽन्योन्येक्षतया श्रैयिगिति प्रतीयते इति तदेव वस्तुत्वस्वरूपम् ।
भेदः पुनरविद्यासंकेतस्मरणजनितविकल्पप्रतीत्याऽन्यौऽपेक्षतया
प्रतीयते इत्यसौ नार्थस्वरूपम् । तर्था, 'यत्प्रतिभासते तत्प्रतिभा-
सान्तःप्रविष्टमेव यथा प्रतिभासस्वरूपम्, प्रतिभासते बाधोऽपि
१५ चेतनाचेतनरूपं वस्तु' इत्यनुमानादप्यात्माऽद्वैतप्रसिद्धिः । न
चात्राऽसिद्धो हेतुः, साक्षादसौक्षाच्छेषवस्तुनोऽप्रतिभासमानत्वे
सकलशब्दविकल्पगोचरातिशयान्तया बहुमशक्तेः । तैथागमोऽ-
प्यस्यै प्रतिपादकोऽस्ति ।

“सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ।

२० औरामं तैस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन ॥” [] इति ।
तैथा “पुरुष एवेतत्सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं स एव हि सकललोका-
सैर्गच्छति प्रलयहेतुः ।” [अक्सं० मण्ड० १० सू० ९० क्र० २]
उक्तञ्च—

१ दोषः । २ ज्ञानस्य । ३ राहित्यस्य । ४ स्वरूपेण । ५ स्वयं संवेदनाच्चाप-
नुपालम्भः । ६ अर्थे । ७ ज्ञानस्य । ८ अनवस्थापरिहारस्य विस्तिरेण । ९ ज्ञानस्य ।
१० भास्करायः ग्राह । ११ अर्थे । १२ भेद । १३ क्वचित् । १४ अनेदे
भेदप्रतिभासो बाधिया । १५ षटः पटाङ्गिण इति । १६ पदस्य । १७ ग्राह ।
१८ ब्रह्मग्राहकप्रत्यक्षप्रकारेणानुमानमपि दर्शयति । १९ प्रतिभासमानत्वादिति ।
२० कल्पवृक्षतया । २१ प्रत्यक्षानुमानप्रकारेण । २२ परमात्मनः । २३ निवर्त ।
विकारं । २४ ग्राहणः । २५ प्रत्यक्षानुमानागमप्रकारेण । २६ उत्पत्तिः ।

१ “सर्वं खल्विदं ब्रह्म तस्मानिति ज्ञानं उपासीताय...” छान्दोग्योप० १।१।१।
“ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम्” मैत्रेयप० ४।६ “अनसैवानुब्रह्मं नेह नानास्ति
किञ्चन ।” बृहदा० ४।४।१९ “अनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।” कठोप०
४।११ “आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन ।” बृहदा० ४।१।१४ ।

“ऊर्णनाभं इवांशूनां चन्द्रकान्त इवाम्मसाम् ।

प्ररोहणामिव सूर्यः सँ हेतुः सर्वजन्मनाम् ॥” [] मेद-
दर्शिनो निन्दा च श्रूयते—“मृत्योः सँ मृत्युमाप्नोति य ईद नानेव
पश्यति ।” [बृहदा० उ० ४।४।१९] इति । न चाभेदप्रतिपादका-
क्षीयस्याऽप्यक्षवाधा; तस्याप्यभेदग्राहकत्वेनैव प्रवृत्तेः । तदुक्तम्—५

“आहुर्विद्यौ प्रत्यक्षं न निषेद्धं विपश्चितः ।

नैकत्वे आगमस्तेन प्रत्यक्षेण प्रवाच्यते ॥” []

किञ्च, अर्थानां भेदो देशभेदात्, कालभेदात्, आकारभेदाद्वा
स्यात् ? न तावद्देशभेदात्; स्वतोऽभिन्नस्याऽन्यभेदेऽपि भेदानु-
पपत्तेः । नह्यन्यभेदोऽन्यत्र संक्रामति । कथं च देशस्य भेदः ? १०
अन्यदेशभेदाच्चेदनवस्था । स्वतश्चेत्, तर्हि भौवभेदोऽपि स्वत
एवास्तु किं देशभेदाद्भेदैकल्पनया ? तत्र देशभेदाद्वस्तुभेदः ।
नापि कालभेदात्; तद्भेदस्यैवाध्यक्षतोऽप्रसिद्धेः । तद्धि सन्निहितं
चस्तुमात्रमेवाधिगच्छति नातीतादिकालभेदं तद्व्यतिरिक्तं वा
आकारभेदोऽप्यर्थानां भेदको व्यतिरिक्तप्रमाणात्प्रतिभाति, स्वतो १५
वा ? न तावद् व्यतिरिक्तप्रमाणात्; तस्य नीलसुखैदिव्यतिरिक्त-
स्वरूपस्याप्रतिभासमानत्वाद् । अथाहंप्रत्यये बोधात्मा तैर्ग्राहको-

१ कोटिः (कीटविशेषः) । २ लालरूपतन्तुत्वात् । ३ वटः । ४ तथा ।
५ यथा । ६ पुत्रः । ७ ब्रह्मणि । ८ भेदमिव । ९ ब्रह्माणं । १० किञ्च ।
११ आगमस्य । १२ विषयकं सम्मानग्राहकमित्यर्थः । १३ निषेधकं भेदग्राहक-
मित्यर्थः । १४ कारणेन । १५ स्वरूपेण । १६ स्वतोऽभिन्नस्य आत्तरस्य यथा
देशभेदाद्भेदो न पठते तथा पदार्थानामिति भावः । १७ अन्यस्य देशस्य भेदोऽभिन्ने सूर्ये
न संक्रामति । १८ जनवत्सापरिहारार्थं । १९ अर्थे । २० देशभेदादिति पदं नास्ति च
क्वचिद्व्यत्ये । २१ नहिर्वस्तु । २२ अन्तर्वस्तु । २३ भिन्न । २४ आकारलक्षणभेदः ।

१ “यथोर्णनाभिः सज्जते गृह्णते च यथा पृथिव्यासीमवयवः संभवन्ति । यथा सतः
पुत्राण्यैकेशोभानि तथाऽक्षराण्यसंभवतीह विश्वम् ॥” मुष्ककोप० १।१।७ “स
यथोर्णनाभिः सन्तनुचरेण, यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेव असादात्मनः सर्वे
लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति...” बृहदा० २।१।१० “यत्पूर्व-
नाम इव सन्तुभिः प्रधानैः सभावतः । देव एकः सयमावृणोति स जौ दवातु
जसाऽन्यथम् ॥” मेदात्र० ६।१० “ऊर्णनाभिर्वया सन्तु...” ब्राह्म० ३ ।
“ऊर्णनाभौ सन्तुना...” कछुर० ९ । “ऊर्णनाभौ मर्कटकः” तत्त्वसं० पं० ।

२ “यतो भेदः प्रलक्ष्यतीतिविषयत्वेनाभ्युपगम्यमानः किं देशभेदादभ्युपगम्यते,
आशोसिण् कालभेदात्, च अकारभेदात् ?” सन्नति० टी० पृ० १७३ । स्वा०
स्त्रा० पृ० १५२ ।

ऽवसीयते; न; तत्रापि शुद्धबोधस्याप्रतिभासनात् । स खलु 'अहं सुखी दुःखी स्थूलः कृशो वा' इत्यादिरूपतया सुखादि शरीरं चावलम्ब्यमानोऽनुभूयते न पुनस्तद्व्यतिरिक्तं बोधस्वरूपम् । स्वतश्चाकाराणां भेदसंवेदने स्वप्रकाशनिर्यतत्त्वप्रसङ्गः, तथा ५ चान्योऽन्यासंवेदनात्कृतः स्वतोऽप्याकारभेदसंविद्धिः ।

अथैकरूपब्रह्मणो विद्यास्वभावत्वे तदर्थानां शास्त्राणां प्रवृत्तीनां च वैयर्थ्यं निर्वर्त्यप्राप्तव्यस्वभावाभावात् । विद्यास्वभावत्वे चास्त्यत्वप्रसङ्गः, तथाच "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" [तैत्ति० २।१] इत्यस्य विरोधः, तदप्यसङ्गतम्, विद्यास्वभावत्वेऽप्यस्य शास्त्रा- १० दीनां वैयर्थ्यासंभवात् अविद्याव्यापारनिवर्तनफलत्वात्तेषाम् । यत एव चाविद्या ब्रह्मणोऽर्थान्तरभूता तत्त्वतो नास्त्यत एवासौ निवर्त्यते, तत्त्वतस्तस्याः सङ्गावे हि न कश्चिन्निवर्तयितुं शक्यत्वाद् ब्रह्मवत् । सर्वैरेव चातात्त्विकानाद्यविद्योच्छेदार्थं मुमुक्षूणां प्रयत्नोऽभ्युपगतः । न चानौदित्वेनाविद्योच्छेदासम्भवः, प्रागर्भावि- १५ नाऽनेकान्तात् । तत्त्वज्ञानप्रागभावरूपैव चाविद्या तत्त्वज्ञानलक्षणविद्योत्पत्तौ व्यावर्तत एव यदोत्पत्तौ तदप्रागभाववत् । मित्रा-ऽभिर्भादिविकल्पस्य च वस्तुविषयत्वात् अवस्तुभूताऽविद्यायाम-प्रवृत्तिरेव सैवेयमविद्या माया मिथ्याप्रतिभास इति ।

न भौतमश्रवणमननध्यानादीनां भेदरूपतयाऽविद्यास्वभावत्वा- २० त्कथं विद्याप्राप्तिहेतुत्वमित्यभिधातव्यम् ? यथैव हि रजःसंपर्कक-लुपोदके द्रव्यविशेषचूर्णं रजःप्रक्षितं रजोऽन्तराणि प्रशमयत्स्वय-मपि प्रशम्यमानं स्वच्छां स्वरूपावस्थामुपनयति, यथा वा विषं विषान्तरं शमयति स्वयं च शास्यति, एवमात्मश्रवणादिभिर्मेदमि- निवेशोच्छेदात्, स्वगतेऽपि भेदे समुच्छिन्ने स्वरूपे संसारी समव-

१ प्रमाण । २ पदार्थाः स्वप्रकाशनियताः । ३ भा (तृतीया) । ४ अनुष्ठानानां । ५ अविद्या । ६ विद्या । ७ अन्यस्य । ८ मित्रा । ९ परमार्थतः । १० नादिभिः । ११ मोक्षार्थिनां । १२ यथा गगनस्य । १३ अनानां । १४ उभय । १५ किञ्च । १६ स्वरूप । १७ अज्ञान । १८ दुराग्रह । १९ सति । २० एकत्वे ।

१ "न च कर्माऽविद्यात्मकं कथमविद्यामुच्छिनत्ति, कर्मणो वा तदुच्छेदकस्य कुत्र उच्छेद इति वाच्यम्; सजातीयस्तपरिरोपिनां यावानां बहुलमुपलब्धेः । यथा प्रयः पयोऽन्तरं जरयति स्वयं च जीवति, यथा विषं विषान्तरं शमयति स्वयं च शास्यति, यथा वा कतकरजो रजोन्तराविले पायसि प्रक्षिप्तं रजोन्तराणि भिन्दन् स्वयमपि मिश्रमानमनाविज्ञं पायः करोति एवं कर्म अविद्यात्मकमपि अविद्यान्तराण्यपगमयत् स्वयमप्यपगच्छतीति ।" ब्रह्मसू० शां० भा० मामती ५० ३९ ।

तिष्ठते । अवच्छेदक्यविद्याव्यावृत्तौ हि परमात्मैकस्वरूपताव-
स्थितेः घटाद्यवच्छेकमेदव्यावृत्तौ व्योम्नः शुद्धाकाशतावत् ।

न चाद्वैते सुखदुःखबन्धमोक्षादिमेदव्यवस्थानुपपन्नाः समा-
रोपितादपि मेदात्तद्भेदव्यवस्थोपपत्तेः, यथा द्वैतिनां 'शिरसि मे
वेदना पादे मे वेदना' इत्यात्मनः समारोपितमेदनिमित्ता^५
दुःखादिमेदव्यवस्था । पादादीनामेव तद्भेदनाधिकरणत्वात्तेषां च
मेदात्तद्व्यवस्था युक्त्यप्ययुक्तम् । यतस्तेषामहत्त्वेन भोक्तृत्वा-
योगात् । भोक्तृत्वे वा चार्वाकमतानुषङ्गः । तदेवमेकत्वस्य प्रत्य-
क्षानुमानागमप्रमितरूपत्वात्सिद्धं ब्रह्माऽद्वैतं तत्त्वमिति ॥ ७ ॥

अत्र प्रतिविधीयते । किं मेदस्य प्रमाणवाधितत्वादमेदः १०
साध्यते, अमेदे साधकप्रमाणसद्भावाद्वा ? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः ।
प्रत्यक्षैवेमेदानुर्कूलतया तद्वाधकत्वायोगात् । न खलु मेदमन्त-
रेण प्रमाणेतरेव्यवस्थापि सम्भाव्यते । द्वितीयपक्षोऽप्ययुक्तः ।
मेदमन्तरेण साध्यसाधकभावस्यैवासम्भवात् । न चामेदसाधकं
किञ्चित्प्रमाणमस्ति । १५

यद्युक्तम्—“अविकल्पकाभ्यक्षेणैकत्वमेवावसीयते” तत्र किमे-
कव्यक्तिगतम्, अनेकव्यक्तिगतम्, व्यक्तिमात्रगतं वा तत्त्वेन
प्रतीयते ? एकव्यक्तिगतं चेत्, तर्हि साधारणम्, असाधारणं
वा ? न तावत्साधारणम्, ‘एकव्यक्तिगतं साधारणं च’ इति
विप्रतिषेधात् । असाधारणं चेत्, कथं नातो मेदसिद्धिः असा-२०
धारणस्वरूपलक्षणत्वाद्भेदस्य । अथानेकव्यक्तिगतं सर्वसामान्य-

१ घटे पटस्य निषेधकः मेदोत्पादक इत्यर्थः । २ घटाकाशपटाकाश । ३ देव-
दत्तादेर्भाष । कल्पितात् । ४ नैयायिकादीनां । ५ अन्यथा । ६ परेण भट्टेन ।
७ अनुमानागमौ । ८ आह । ९ प्रवर्तमानत्वात् इति शेषः । १० उदाभास ।
११ सामान्य । १२ विरोधात् । १३ निषेध । १४ इदं सिद्धं सत् ।

१ “—एकस्यापि जीवात्मन उपाधिमेदात् सुखदुःखानुभवो दृश्यते पादे मे वेदना,
शिरसि मे शुद्धं वेदनेति—” न्यायसं० पृ० ५२८ । सा० रत्ना० पृ० १५१ ।

२ “तथाहि मेदस्य प्रमाणवाधितत्वात् किमयममेदानुपपन्नो भवतामुत्तसिद्धमेदस्यैव
प्रमाणसिद्धत्वादिति” न्यायसं० पृ० ५२८ ।

“किं मेदस्य प्रमाणवाधितत्वादिकल्पमुच्यते, आहोसिद् भेदे प्रमाणसद्भावात् ?”
संन्यति० टी० पृ० १८५ ।

३ “एकव्यक्तिगतं किं वाऽनेकव्यक्तिसमाधितम् ।

व्यक्तिमात्रगतं यदा तदेकत्वं प्रतीयते ॥” सा० रत्ना० पृ० १५१ ।

- रूपमेकत्वं प्रत्यक्षग्राह्यमित्युच्यते; तर्हि व्यक्त्यधिकरणतया प्रति-
भाति, अनधिकरणैतया वा? प्रथमपक्षे भेदप्रसङ्गः “व्यक्तिरधि-
करणं तद्वाच्यं च सत्तासामान्यम्” इति, अयमेव हि भेदः ।
द्वितीयपक्षे-व्यक्तिग्रहणमन्तरेणाप्यन्तराले तत्प्रतिभासप्रसङ्गः ।
५ तथा किमेकव्यक्तिग्रहणद्वारेण तत्प्रतीयते, सकलव्यक्तिग्रहणद्वारेण
वा? प्रथमपक्षे विरोधः, एकाकारता ह्यनेकव्यक्तिगतमेकं रूपम्,
तच्चैकसिन् व्यक्तिसरूपे प्रतिभातेऽप्यनेकव्यक्त्यनुयायितया कथं
प्रतिभासेत? अथ सकलव्यक्तिप्रतिपत्तिद्वारेण तत्प्रतीयते; तदा
तस्याऽप्रतिपत्तिरेवाखिलव्यक्तीनां ग्रहणासम्भवात् । भेदसिद्धि-
१० प्रसङ्गश्च-अखिलव्यक्तीनां विशेषणतया एकत्वस्य च विशेष्यत्वेन,
एकत्वस्य वा विशेषणतया तासां च विशेष्यत्वेन प्रतिभासनात् ।
तथा तद्व्यक्तिभ्यस्तद्विभक्तम्, अभिन्नं वा? यद्यभिन्नम्, तर्हि
व्यक्तिरूपतानुषङ्गोऽर्थः । न च व्यक्तिर्व्यत्यन्तरमन्वेतीति कथं
सकलव्यक्त्यनुयायित्वमेकत्वस्य । अथार्थान्तरम्, कथं नानात्वा-
१५ ऽप्रसङ्गः? यथा चातुर्गुणप्रत्ययजनकत्वेनैकत्वं व्यक्तिषु कैल्यप्ते
तथा व्याघ्रैस्तत्प्रत्ययजनकत्वेनानेकत्वमप्यविशेषात् । तच्चैकत्वं
नानात्वमन्तरेणावकाशं लभते । प्रयोगः विवादाध्यासितमेकत्वं
परमार्थसन्नानात्वाविनाभावि एकान्तैकत्वरूपतयाऽनुपलभ्यमा-
नत्वात्, घटादिभेदाविनाभूतमृद्व्यैकत्ववत् । एतेनैकं व्यक्तिमात्र-
२० गतमप्येकत्वं प्रत्युक्तम्, एकानेकव्यक्तिव्यतिरेकेण व्यक्तिमात्र-
स्यानुपपत्तेः ।

यच्चोक्तम्-“भेदस्यान्यापेक्षतया कल्पनाविषयत्वम्” तदप्युक्ति-
मात्रम्, एकत्वस्यैवापेक्षतया कल्पनाविषयत्वसम्भवात् । तद्व्य-
नेकव्यक्त्याश्रितम्, भेदस्तु प्रतिनियतव्यक्तिसरूपोऽध्यक्षाव-
२५ सेयः । अथैकत्वं प्रत्यक्षेणैव प्रतिपन्नम्, अन्यापेक्षया तु कल्पना-

१ परेण भवता । २ वसः । ३ वसः । ४ तस्मां व्यक्तावाधीयते आरोप्यते इति
तद्वाच्यं । ५ प्रतिपत्तृव्यक्त्योर्मध्ये । ६ किञ्च । ७ किञ्च । ८ व्यक्तिसरूपवत् ।
९ भिन्नं । १० इदं सदिदं सदिति । ११ समर्थते । १२ एतादृश घटो व्याघ्रश्च इति ।
१३ कल्प्यताम् । १४ सर्वथा । १५ विकल्पद्वयनिराकरणपरेण अन्येन । १६ निरा-
कृतम् । १७ परेण । १८ पटस्य । १९ भेदः । २० प्रतीयमानत्वात् । २१ विकल्पः ।
२२ एकत्वं । २३ घटः सन् पटः सन्नित्यादिशब्देन ।

1 “यदपि गदितं भेदः पुनः परापेक्षतया प्रतीयते इत्यादि, तदपि नोपपन्नम्;
एकत्वमपि हि परापेक्षतया प्रतीयते, तच्चैतत्प्रत्ययोऽपि कल्पनाप्रत्ययरूपत्वेनाप्रमाण-
त्वात् कथमिवैकत्वं साधयेत् ।”
सा० रत्ना० ६० २०० ।

ज्ञानेनानुयायिरूपतया व्यवहियते, तर्हि भेदोऽप्यव्यक्षेण प्रति-
पन्नोऽन्यापेक्षया विकल्पज्ञानेन व्युत्तिरूपतया व्यवहियते
इत्यप्यस्तु ।

का चेयं कल्पना नाम-ज्ञानस्य स्मरणानन्तरभावित्वम्, शब्दा-
कारानुविद्धत्वं वा स्यात्, जात्याद्युल्लेखो वा, असदर्थविषयत्वं^१
वा, अन्यापेक्षतयाऽर्थस्वरूपावधारणं वा, उपचारमात्रं वा प्रका-
रान्तराऽसम्भवात् ? न तावदाद्यविकल्पः, अमेदज्ञानस्यापि स्मर-
णानन्तरमुपलम्भेन कल्पनात्वप्रसङ्गात् । शब्दाकारानुविद्धत्वं च
ज्ञाने प्रागेव प्रतिविहितम् । ननु सकलो भेदप्रतिभासोऽभिलाष-
पूर्वकस्तदभावे भेदप्रतिभासस्याप्यभावः स्यात् ; तन्न; विकल्पाभि-^२
लाषयोः कार्यकारणभावस्य कृतोत्तरत्वात् । अस्तु वासो, तथापि
किं शब्दजनितो भेदप्रतिभासः, तज्जनितो वा शब्दः ? प्रथमपक्षे किं
शब्दादेव भेदप्रतिभासः, ततोऽसौ भवत्येवेति वा ? शब्दादेव
भेदप्रतिभासाभ्युपगमे प्रथमाक्षसन्निपातानन्तरं विप्रैपठ्यादिज्ञा-
नस्य भेदविषयस्यानुत्पत्तिप्रसङ्गः, निर्विकल्पकानुभवानन्तरं^३
संकेतस्मरणविवक्षाप्रत्यक्षतात्वादिपरिस्पन्दक्रमेणोपजायमानश-
ब्दस्याविकल्पकप्रथमप्रत्ययावस्थायामभावात् । शब्दादनैकत्व-
प्रतिभासो भवत्येवेत्यप्ययुक्तमुक्तम् ; 'एकं ब्रह्मणो रूपम्' इत्यादि-
शब्दस्य भेदप्रत्ययजनकत्वे सति आगमात्तस्यैकत्वप्रतिपत्तेरभावा-
नुपक्रात् । भेदप्रतिभासाच्छब्दे (ब्दोऽ)स्तीत्यभ्युपगते च अन्यो-^४
न्याभ्यत्वम्—शब्दाद्भेदप्रतिभासः, भेदप्रतिभासाच्छब्द इति ।
'षटोयं पटोयम्' इत्यादिभेदप्रतिभासस्य जात्याद्युल्लेखित्वात्कल्प-
नात्वे-अमेदज्ञानस्यापि कल्पनात्वानुपङ्गः, तस्यापि सैत्तदिसामा-
न्योल्लेखित्वात् । असदर्थविषयत्वं च भेदप्रतिभासस्यासिद्धम् ;
अर्थक्रियाकारिणो वस्तुभूतार्थस्य तत्र प्रतिभासनात् । विस्वादित्वं^५

१ अनुत्पत्तिरूपतया । २ घटस्य । ३ पट । ४ विसृष्टः । ५ सर्वखल्विदं प्रक्षेप्यादि-
रूपस्य सोऽभिलाषेर्वा । ६ प्रतीक्षा । ७ सविकल्पकसिद्धौ ब्रह्माद्वैते च । ८ परः ।
९ इति चेत् । १० सविकल्पकसिद्धौ । ११ पूर्वोपधारणम् । १२ उत्तरावधारणम् ।
१३ परेण । १४ त्रिगुणा पदानां समाहारः त्रिवपदी । १५ भेदो विषयो यस्य ।
१६ नीलादि । १७ वक्तुमिच्छा । १८ वत्साह । १९ वेद । २० प्रतिभास ।
२१ इदं सदिदं सत् । २२ जालत्व । २३ परामर्शित्वात् । २४ ज्ञानपानादि ।

१ "किंचान्यापेक्षया भवनमेव भेदप्रत्ययस्य कल्पनात्वं स्यात्, किंच स्मरणसम-
नन्तरभावित्वम्, यत्र शब्दानुविद्धत्वम्, उत जात्याद्युल्लेखित्वम्, अथासदर्थविषयत्वम्,
उपचाररूपत्वं वा ?"

आ० रत्ना० पृ० २०१ :

प्राध्यमानत्वं च कल्पनालक्षणमेतेन प्रत्युक्तम्; तस्यासदर्थविषयत्वादर्थान्तरत्वाऽसम्भवात् । अन्योपेक्षतयर्थस्वरूपावधारणं चान्तरमेव प्रत्याख्यातम्; यतो व्यवहार एवान्योपेक्षतया प्रवर्तते न स्वरूपावधारणम् । नापि भेदप्रतिभासस्योपचाररूपं कल्पनात्वम्; मुख्यासम्भवे तस्याप्यदर्शनात्प्राणवक्त्रे सिद्धान्तोपचारवत् । न चाभेदवादिनो मुख्यं भेदाम्युपगमोस्त्येवसिद्धान्तप्रसङ्गात् ।

यच्चानुमानादप्यात्माद्वैतसिद्धिरित्युक्तम्; तत्र स्वतःप्रतिभासमानत्वं हेतुः, परतो वा । स्वतश्चेत्; असिद्धिः । परतश्चेत्; विरुद्धोऽद्वैते साध्ये द्वैतप्रसाधनात् । 'घटः प्रतिभासते' इत्यादिप्रति-
१० भासैसाभानाधिकरणं तु विषये विषयिर्धर्मस्योपचारात्, न पुनः प्रतिभासात्मकत्वात् । प्रतिभासनं हि विषयिणो ज्ञानस्य धर्मः स विषये घटादावध्यारोप्यते । तदध्यारोपनिमित्तं च प्रतिभासनक्रियाधिकरणत्वम् । तथा च 'अर्थमहं वेत्ति' इत्यन्तःप्रकाशमानानन्तपर्यायाऽचेतनद्रव्यवद्बहिःप्रकाशमानानन्तपर्यायाऽचेतनद्र-
१५ व्यमपि प्रतिपद्यन्ते । 'सर्वे वै खल्विदं ब्रह्म' इत्याद्यागमोपि नाद्वैतप्रसाधकः; अमेवे प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावस्यैवासम्भवात् । न चांगमप्रामाण्यवादिना अर्थवादस्य प्रामाण्यमभिप्रेतमिति प्रसङ्गात् । आत्मैव हि सकललोकसर्गस्थितिप्रलयहेतुरित्यप्यसम्भाव्यम्; अद्वैतैकान्ते कार्यकारणभावविरोधात्, तस्य द्वैताविनाभावित्वात् ।
२० निराकृतं चै नित्यस्य कार्यकारित्वं सद्वाद्वैतविचारप्रक्रमे ।

किमर्थं चासौ जगद्वैचित्र्यं विदधाति ? न तावद्व्यसनित्यर्थः

१ असदर्थविषयनिराकरणेन । २ अपाधाने का (पञ्चमी) । ३ एकत्वप्रतिभास । ४ घट । ५ घट । ६ कर्म । ७ किन्तु आपेक्षतया एव प्रतिभासते । ८ वा । ९ भेदस्य । १० अस्ति । ११ अन्यथा । १२ परेण । १३ पदार्थानां । १४ पर-
वाचसिद्धो हेतुः । नहि पदार्थाः स्वत एव प्रतिभासन्ते । १५ अन्यसात् । १६ ईदृ । १७ स्वरूपस्य । १८ विषयस्य । परेण । १९ परेण । २० अर्थसारूप्यस्य । २१ अलादुनि निमग्नन्तीति सादेरपि प्रमाणवत्प्रसङ्गः । सारमित्यस्य प्रमाणवचनस्य अलादुपु सङ्गादात् । (१) ग्रानाणः उपपन्ते अन्यो मणिमविन्दत् । २२ किञ्च । २३ महा । २४ फलं विना प्रवृत्तिर्निरसनम् ।

१ "तत्र स्वतः प्रतिभासमानत्वं हेतुः, परतो वा ?" सा० रत्ना० पृ० १९४ । प्रमेयरत्ना० २।१९ ।

२ "जगच्चाऽसृजतस्तस्य किञ्चानेदं न सिद्ध्यति ॥ ५४ ॥

प्रयोजनमनुदिश्य न मन्योऽपि प्रवर्तते ।

पश्येव प्रवृत्तिक्षेत्रैतान्येनास किं भवेत् ॥ ५५ ॥" श्री० को० पृ०

६५३ । सम्मति० टी० पृ० ७१५ । सा० रत्ना० पृ० १९८ । प्रमेयरत्ना० २।१२ ।

अप्रेक्षाकारित्वप्रसङ्गात्, प्रेक्षाकारिप्रवृत्तेः प्रयोजनवत्तया व्याप्त-
त्वात् । कृपया परोपकारार्थं तत् करोतीति चेत्, न; तद्वैतिरेकेण
परस्याऽसत्त्वात् । सत्त्वे चानारकादिदुःखितप्राणिविधानं न
स्यात्, एकान्तसुखितमेवाखिलं जगज्जनयेत् । किञ्च, सृष्टेः प्रागनु-
कम्प्यप्राण्यभावात् किमालम्ब्य तस्यानुकम्पा प्रवर्तते येनानुक- ५
म्पावशादयं स्रष्टा कल्प्येत ? अनुकम्पावशाच्चैस्य प्रवृत्तौ देवमनु-
ष्याणां सदाभ्युदययोगिनां प्रलयविधानविरोधः, दुःखितप्राणि-
नामेव प्रलयविधानानुपपन्नात् । प्राण्यर्हद्व्यपेक्षोऽसौ सुखदुःखस-
मन्वितं जगत् जनयतीत्यप्यसङ्गतम्; स्वातन्त्र्यव्याघातानुपपन्नात् ।
समर्थस्वभावस्यासमर्थस्वभावस्य वा नित्यैकरूपस्य वस्तुनोऽन्या- १०
पेक्षाऽयोगात् । अदृष्टवशाच्च जगद्वैचित्र्यसम्भवे-किमनेनान्तर्ग-
ज्जुना पीडाकारिणा ? अदृष्टापेक्षा चास्यानुपपन्ना, किं त्ववधीर-
णमेवोपपन्नम्, अन्यथा कृपालुत्वव्याघातप्रसङ्गः । न हि कृपा-
लैवः परदुःखं तद्धेतुं वाऽन्विच्छन्ति, परदुःखतत्कारणवियोगवा-
च्छयैव प्रवृत्तेः । १५

१ पूर्ववत् । २ ब्रह्मा । ३ जगतः । ४ कुतितसृष्टेः किं फलम् । ५ ब्रह्मणः ।
६ किञ्च । ७ ब्रह्मणः । ८ पुण्यपाप । ९ ब्रह्मा । १० ब्रह्मणः । ११ जगता ।
१२ नराः ।

१ "अभावाच्चानुकम्प्यानां नानुकम्पा प्रवर्तते ।
सृष्टेर्न शुभमेवैकमनुकम्पाप्रबोधितः ॥ ५२ ॥ गी० श्लो० ५० ६५२ ।
"अथानुकम्पया कुर्यादेकान्तसुखितं जगत् ॥ २५६ ॥
आधिदारिद्र्योकादिति विधायासपीडितम् ।
जने तु खलुस्तस्य कानुकम्पा प्रतीयते ॥ २५७ ॥
सृष्टेः प्रागनुकम्प्यानामसत्त्वे नोपपद्यते ।
अनुकम्पायि यद्योवाह्यताऽर्जं परिकल्प्यते ॥ २५८ ॥
न चायं प्रलयं कुर्यात्तदभ्युदययोगिनाम् ।" तत्त्वसं० ५० ७६ ।
सम्मतं टी० ५० ७१६ । सा० रत्ना० ५० १९८ । प्रमेयरत्न० २।१२ ।

२ "अथाऽनुमादिना सृष्टिः सिद्धिर्ना नोपपद्यते ।
आत्मावीनान्मुपाये हि भवेत्किञ्चाम दुष्करम् ॥ ५३-॥
तथाचापेक्षमाणस्य स्वातन्त्र्यं प्रतिहन्यते ।" गी० श्लो० ५० ६५३ ।
"तददृष्टव्यपेक्षाया स्वातन्त्र्यमवहीयते ॥ २५९ ॥
पीडाहेतुमदृष्टं च किमर्थं स व्यपेक्षते ।
उपेक्षेव पुनस्तत्र दयायोगेऽस्य युज्यते ॥ २६० ॥ तत्त्वसं० ५० ७७ ।
सम्मतं टी० ५० ७१६ । सा० रत्ना० ५० १९९ । प्रमेयरत्न० २।१२ ।

ननु यथोर्णनामो जालादिविधाने स्वभावतः प्रवर्तते, तथात्मा जगद्विधाने इत्यप्यसत्; ऊर्णनामो हि न स्वभावतः प्रवर्तते । किं तर्हि ? प्राणिभक्षणलाम्पट्यात्प्रतिनियतहेतुसम्भूततया कादाचित्कात् । 'मृत्योः स मृत्युमामोति य इह नानेव पश्यति' इति ५ निन्दावादोप्यनुपपन्नः; सकलप्राणिनां मेदब्राह्मकत्वेनैवाखिलप्रमाणानां प्रवृत्तिप्रतीतेः ।

यच्चोक्तम्—'आहुर्विधातृप्रत्यक्षम्' इत्यादि; तत्र किमिदं प्रत्यक्षस्य विधातृत्वं नाम—सत्तामात्रावबोधः, असाधारणवस्तुस्वरूपपरिच्छेदो वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः, नित्यनिर्देशव्यापिनो विशेष-
१० निरपेक्षस्य सत्तामात्रस्य स्वप्नेत्यप्रतीतेः स्वरविषाणवत् । द्वितीयपक्षे तु—कथं नाद्वैतप्रतिपादकागमस्याव्यक्षबाधा ? भावमेदब्राह्मकत्वेनैवास्य प्रवृत्तेः, अन्यथाऽसाधारणवस्तुस्वरूपपरिच्छेदकत्वविरोधः ।

यच्च मेदो देशमेदौत्स्यादित्याहुँकम्, तदप्यसङ्गतम्; सर्वत्रा-
१५ कारमेदस्यैवैतर्थात्मेदकत्वोपपत्तेः । यत्रापि देशकालमेदस्तत्रापि तद्रूपतयाऽऽकारमेद एवोपलक्ष्यते । स चाकारमेदः स्वसामग्रीतो जातोऽहमहमिकया प्रतीयमानेनात्मना प्रतीयते । प्रसाधयिष्यते

१ प्रज्ञाद्वैतवादी । २ छुपा । ३ परेण । ४ भिन्नदृष्ट । ५ पदार्थे । ६ महत्त्वभावे । ७ परेण । ८ गद्विस्तृता । ९ साक्षादिनस्यादि । १० यथादि । ११ वस्तुनि । १२ वस्तुनि ।

१ "प्राणिनां भक्षणत्वादि तस्य कालः प्रवर्तते ।" गी० को० ५० १५२ ।

"प्रकृत्यैवाहुहेतुत्वमूर्णनामेऽपि वेत्तते ।

प्राणिभक्षणलाम्पट्यालालालं करोति यत् ॥ १६८ ॥" तत्सर्वं ० ५० ७९, न्यायकुसुदधं० प्रल० परि०, सम्प्रति० टी० ५० ७१७ । सा० रत्ना० ५० १९२ । प्रमेयरत्नामा० २।१२ ।

२ "यदभ्युक्तम्—आहुर्विधातृप्रत्यक्षमिति, तदप्यसाधु; विधातृ इति कोऽयं ? इदमपि वस्तुस्वरूपं शुद्धाति नान्वरूपं निषेधति प्रत्यक्षमिति चेन्नैवय, जन्वरूपनिषेधमन्तरेण तत्स्वरूपपरिच्छेदस्याप्यसम्पत्तेः । पीतादिन्यवच्छिन्नं हि नीलं नीलमिति शुद्धितं यवति नेतरथा ।"

न्यायमं० ५० ५९९ ।

"यतो विधातृत्वं किं प्रत्यक्षस्य अवस्वरूपग्राहित्वस्य, आहोसिदम्यात् । सम्प्रति० टी० ५० २८५ ।

"तत्र किमिदं प्रत्यक्षस्य विधातृत्वं नाम सत्तामात्रावबोधः, असाधारणस्वरूपपरिच्छेदो वा ?" सा० रत्ना० ५० २०१ ।

३ "यदपि—देशकालाकारमेदमेदो न प्रत्यक्षादिभिः प्रतीयते इत्याहुँकम्; जमेद-प्रतिपक्षानप्यस्य समानत्वात् ।" सम्प्रति० टी० ५० २८६ । सा० रत्ना० ५० २०३ ।

चात्मा सुखशरीरादिव्यतिरिक्तो जीवसिद्धिप्रघट्टके । कथं चामे-
दसिद्धिस्तत्प्रतिपत्तावप्यस्य समानत्वात् । तथाहि—अमेदोऽर्थानां
देशामेदात्, कालामेदात्, आकारामेदाद्वा स्यात् ? यदि देशामे-
दात् ; तदा देशस्यापि कुतोऽमेदः ? अन्यदेशामेदाच्चेद्वनवस्था ।
स्वतश्चेदर्थानामपि स्वत एवामेदोऽस्तु किं देशामेदादमेदकल्प-
नया ? इत्यादिसर्वमत्रापि योजनीयम् । तस्मात्सामान्यस्य विशे-
षस्य वा स्वभावतोऽमेदो मेदो धाम्युपगन्तव्यः ।

यच्चेदमुर्कम्—‘यत एवाविद्या ब्रह्मणोऽर्थान्तरभूता तत्त्वतो
नास्त्यत एवासौ निवर्त्यते’ इत्यादि; तदप्यसारम्; यतो यद्यव-
स्तुसत्यविद्या कथमेषा प्रयत्ननिवर्तनीया स्यात् ? न ह्यवस्तुसन्तः १०
शशशृङ्गादयो यत्ननिवर्तनीयत्वमनुभवन्तो दृष्टाः । न चास्यास्त-
त्त्वतः सद्भावे निवृत्त्यसम्भवः; घटादीनां सतामेव निवृत्ति-
प्रतीतिः । न चाविद्यानिर्मितत्वेन घटप्रामाण्यमादीनामपि तत्त्वतो-
ऽसत्त्वम्; अन्योऽन्याश्रयानुषङ्गात्—अविद्यानिर्मितत्वे हि घटा-
दीनां तत्त्वतोऽसत्त्वम्, तस्माच्चाविद्यानिर्मितत्वमिति । अमेदस्य १५
विद्यानिर्मितत्वेन परमार्थसत्त्वेपि अन्योन्याश्रयो द्रष्टव्यः । न
आनाद्यऽविद्योच्छेदे प्रागभावो दृष्टान्तः; वस्तुव्यतिरिक्तस्याना-
देस्तुच्छसभावस्यास्योऽसिद्धेः ।

यदपि—‘तत्त्वज्ञानप्रागभावरूपैवाविद्या’ इत्याद्यभिहितम्; तद-
प्यभिधानमात्रम्; प्रागभावरूपत्वे तस्या भेदज्ञानलक्षणकार्योत्पाद- २०
कत्वाभावादानुषङ्गात्, प्रागभावस्य कार्योत्पत्तौ सामर्थ्यासम्भवात् ।

१ विचारकः । २ अमेदपक्षे । ३ स्वरूपेण । ४ परेण । ५ आत्मजन्यजननादि ।
६ भेदस्याविद्याहेतुत्वे अमेदस्य विद्याहेतुत्वमाचार्यं तस्मात् दूषणम् । ७ वचन ।
८ अभावरूपत्वात्तदविषयत्वम् । ९ प्रागभावः स्वात्कार्योत्पादकत्वं च स्यादिति
सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह ।

१ “अनादिना प्रकृतेन प्रवृत्तावरणक्षया । यत्नोच्छेद्याप्यविवेचयसती कथ्यते
कथम् ? अस्तित्वे क यनास्तुच्छिन्नादिति चेत् कातरसमासोऽप्यत्र सतामेव हि दृष्टादी-
नास्तुच्छेदो दृश्यते नासता कथमविद्यानादीनाम् । तदित्युच्छेद्यत्वादविद्या नित्या भाभूय
सती नु भवत्येव ।” न्यायमं० पृ० ५२९ । सन्यासि० टी० पृ० २९५ । सा०
रत्ना० पृ० २०३ ।

२ “न च तस्मात्प्रागभावस्य विद्या, संशयनिवर्त्यतावप्यविवेच, तौ च भावसभाव-
स्वात्मकमसन्ती भवेताम् ? ग्रहणप्रागभावोऽपि नास्त्यिति शक्यते वक्तुम्; अथावस्या-
प्यस्तित्वसमर्थनादिति सर्वथा नास्त्यविद्या ।

असत्त्वे च विभिन्नेऽसास्तत्त्वमेव वक्ष्यते ।

सदस्यव्यतिरिक्तो हि राक्षसलम्बदुर्गन्धः ॥” न्यायमं० पृ० ५३० ।

प्र० क० भा० ७

न हि घटप्रागभावः कार्यमुत्पादयन्हृष्टः । केवलं घटवत् प्राग-
भावविनाशमन्तरेण तत्त्वज्ञानलक्षणं कार्यमेवं नोत्पद्येत । अथ न
भेदज्ञानं तस्याः कार्यम्, किं तर्हि ? भेदज्ञानस्वभावैवास्तौ, तच्च;
यैवं सति प्रागभावस्य भौवान्तरस्वभावतानुषङ्गात् । न च ज्ञानस्य
५ भेदाभेदग्रहणकृता विद्येतरव्यवस्था, संवादविसंवादकृतत्वात्तस्य
सत्येतरत्वव्यवस्थायाः । संवादश्च भेदाभेदज्ञानयोर्वस्तुभूतार्थ-
ग्राहकत्वासुख्य इत्युक्तम् ।

यद्युक्तम्-‘भिन्नाभिन्नादिविचारस्य च वस्तुविषयत्वात्’
इत्यादि; तत्राविद्यायाः किमवस्तुत्वाद्विचारगोचरत्वम्, विचा-
१० रगोचरत्वाद्वाऽवस्तुत्वं स्यात् ? न तावद्यद्यवस्तु तत्तद्विचार-
यितुमशक्यम्; इतरेतराभावादेरवस्तुत्वेऽपि ‘इदमित्थम्’ इत्या-
दिशाब्दप्रतिभासलक्षणविचारविषयत्वात् । नापि विचारगोचर-
त्वेनावस्तुत्वम्; इक्षुक्षीरादिमाधुर्यतारतम्यस्य तज्जनितसुखादि-
तारतम्यस्य वा ‘इदमित्थम्’ इति परस्मै निर्देष्टुमशक्यत्वेपि
१५ वस्तुरूपत्वप्रसिद्धेः । किञ्च, अयं भिन्नाभिन्नादिविचारः प्रमाणम्,
अप्रमाणं वा ? यदि प्रमाणम्; तेनाविषयीकृतायाः कथमविद्यायाः
सत्त्वम् ? तदसत्त्वे च कथं मुमुक्षोस्तदुच्छिद्ये प्रयासः फल-
वान् ? अथाप्रमाणम्; कथं तर्हि तस्य वस्तुविषयत्वम् ? यतो
‘भिन्नाभिन्नादिविचारस्य वस्तुविषयत्वात्’ इत्यभिधानं शोभेत ।

२० यच्चोक्तम्-‘यथा रजोरजोन्तराणि’ इत्यादि; तदप्यसमीचीनम् ।
यतो वाच्यबाधकभावमाभावे कथं भ्रवणमननादिलक्षणाऽविद्याऽ-

१ अविद्याविनाशमन्तरेण । केवलं यथा घटप्रागभावो घटप्रागभावविनाशरूपकार्य-
मन्तरा घटपटादिकर्णं कार्यं नोत्पादयितुमर्हं तथा विद्याप्रागभावरूपैवाविद्या विद्या-
प्रागभावविनाशमेव कार्यं कर्तुं समर्था न च विद्यारूपं भेदरूपं वा कार्यमुत्पादयितुं
समर्थैत्यर्थः । २ अविद्यायां भेदज्ञानस्वभावत्वे । ३ भेदज्ञान । ४ विकल्पस्य ।
५ खर-शृङ्गवद । ६ इतरसिधितरस्वभावः इतरेतरभावः । यदभावे नियमेन कार्य-
स्रोतसिः स प्रागभाव इतीदृशम् । ७ प्रतिपाद्याय । ८ यदि ।

१ “यत्पुनरविद्यैव विद्योपाय इत्यत्र इष्टान्तरपरम्परोद्भाटनं कृतं तदपि केशाव
नामसिद्धये । सर्वत्र उपायस्य स्वरूपेण सत्त्वादसदः तदुपस्थादेरुपायत्वाभावात् । रेखा-
गकारादीनां तु वर्णरूपतया सत्त्वं यद्यपि नास्ति तथापि स्वरूपतो विद्यन्त एव ।”
न्यायमं० पृ० ५३० । सन्मतिः टी० पृ० २९५ ।

“यच्चोक्तं यमेव हि रजःसम्पर्कवस्तुवेऽप्यसि इत्यादि; तदपि फल्युः यतो वाच्य-
बाधकभावमाभावे कथं भ्रवणमननादिलक्षणाविद्याऽविद्यान्तरं प्रशमयेत् ?” स्वा० रत्ना०
पृ० १०४ ।

विद्यां प्रशमयेत् ? बाध्यबाधकभावश्च सतोरेव अहिनकुलवत्, न त्वसतोः शशाश्वविषाणवत् । दैवरक्तौ हि किंशुकाः केन रज्यन्ते नाम । विद्यमानमेव हि रजो रजोन्तरस्य सकार्यं कुर्वतः सामर्थ्यापनयनद्वारेण बाधकं प्रसिद्धम्, विषद्रव्यं वा उपयुक्तविषद्रव्यसामर्थ्यापनयने चरितार्थत्वाद्व्यमलादिसदृशतया न कार्या-५ न्तरकरणे तत्प्रभवतीति । न च मेदस्योच्छेदो घटते, वस्तुसमाव-तयाऽमेदवत्तस्योच्छेदोऽनुमशकेः ।

ननु स्वप्नावस्थायां मेदार्भवेऽपि मेदप्रतिभासो दृष्टस्ततो न पारमार्थिको मेदस्तत्प्रतिभासो वा, इत्यमेवेपि समानम् । न खलु तदा विशेषैस्सैवामावो न पुनस्तद्व्यापकसामान्यस्य, अन्यथा कूर्म-१० रोमादीनामसत्त्वेपि तद्व्यापकस्य सामान्यस्य सत्त्वप्रसङ्गः । कथं च स्वप्नावस्थायां मेदस्यासत्त्वम् ? बाध्यमानत्वाच्चेत्, तर्हि जाग्रदवस्थायां तस्याबाध्यमानत्वात् सत्त्वमस्तु । एकत्रास्य बाध्यमानत्वोपलम्भात्सर्वत्रासत्त्वे च स्थाण्वादौ पुरुषप्रत्ययस्य बाध्यमानत्वेनासत्यतोपलम्भात् आत्मन्यप्यसत्यत्वप्रसङ्गः । ततो१५ जाग्रदवस्थायां स्वप्नावस्थायां वा यत्र बाधकोदयस्तदसत्यम्, यत्र तु तदभावस्तत्सत्यमभ्युपगन्तव्यम् ।

ननु बाधकेन ज्ञानमपह्नियते, विषयो वा, फलं वा ? न तावद् ज्ञानस्यापहारो युक्तः, तस्य प्रतिभातत्वात् । नापि विषयस्य, अत एव । विषयापहारश्च राज्ञां धर्मो न ज्ञानानाम् । फलस्यापि ज्ञान-२० पानावगाहनादेः प्रतिभातत्वाच्चापहारः । बाधैकमपि ज्ञानम्, अर्थो वा ? ज्ञानं चेत् तर्हि समानविषयम्, भिन्नविषयं वा ? तत्र

१ सपरकपञ्चमननादिच्छणाऽविषयोः । २ असत्त्वविषयोर्बाध्यबाधकभावः सादित्युक्ते आह । ३ यथा दैवरक्तः किंशुकाः केनापि न रज्यन्ते तथा असत्त्वविषयोर्बाध्यबाधकभावः केनापि कर्तुं न शक्यत इत्यभिप्रायः । ४ न केनापि । ५ कञ्चन्यच्छणं सकार्यं । ६ अज्ञानजननसामर्थ्यः (धर्मः) । ७ तिराकरणम् । ८ भरण-मृच्छादि । ९ किञ्च । १० अथैकत्वं प्रलक्षणेन प्रतिपन्नम् । ११ घटपटादीनाम् । १२ मेदज्ञानं । १३ मेदस्य । १४ विशेषभावे सामान्यसत्त्वं यदि । १५ रोमत्वस्य । १६ भौतिकचक्रे जगमिति ज्ञाने । १७ महापदादौ । १८ मयागेन । १९ इदं जगमिति ज्ञानस्य । २० अलादिच्छणम् । २१ उत्तरम् । २२ उत्तरम् ।

१ “किं पुनरत्र अभिचारि किमर्थः, आहो ज्ञानमिति ?” न्यायवा० पृ० ३७ । “अथ बाध्यमानत्वेन मिथ्यात्वमिति चेत्, किं बाध्यते अर्थः, ज्ञानम्, जगत् वा ?... अथ ज्ञानं बाध्यते; तस्यापि बाधा का ? स्वरूपव्यावृत्तिरूप, स्वरूपापह्नवरूप, विषया-पहारच्छणा वा ?” तत्त्वोप० पृ० १९-२१ । सा० रत्ना० पृ० १३९ ।

समानविषयस्य संवादकत्वमेव न बाधकत्वम् । न खलु प्राक्तनं
घटज्ञानमुत्तरेण तद्विषयज्ञानेन बाध्यते । भिन्नविषयस्य बाधकत्वे
चातिप्रसङ्गः । अर्थोऽपि प्रतिभातः, अप्रतिभातो वा बाधकः
स्यात् । तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः, प्रतिभातो ह्यर्थः स्वज्ञानस्य सत्य-
५ तामेवावस्थापयति, यथा घटः घटज्ञानस्य । द्वितीयविकल्पेऽपि
'अप्रतिभातो बाधकश्च' इत्यन्योन्यविरोधः । न हि खरविषाणम-
प्रतिभातं कस्यचिद्बाधकम् । किञ्च, कैचित्कदाचित्कस्यचिद्बाध्य-
बाधकमावाभावाभ्यां सत्येतरत्वव्यवस्थां, सर्वत्र सर्वदा सर्वस्य
वा ? प्रथमपक्षे-सत्येतरत्वव्यवस्थासङ्करः, मरीचिकाचक्रादौ
१० जलादिसंवेदनस्यापि कचित्कदाचित्कस्यचिद्बाधकस्यानुत्पत्तेः
सत्यसंवेदने नूत्पत्तेः प्रतीयमानत्वात् । द्वितीयपक्षे तु-सकल-
देशकालपुरुषाणां बाधकानुत्पत्त्युत्पत्त्योः कथमसर्वविदा वेदवं
तत्प्रतिपत्तुः सर्ववेदित्वप्रसङ्गात् ?

इत्यप्यनल्पतर्भोविलसितर्म, रजतप्रत्ययस्य शुक्तिकाप्रत्ययेनो-
१५ चरकालमाविनैकविधैयतया बाध्यत्वोपलम्भात् । नूनमेव हि
विपरीतार्थस्यापेक्षं बाधकमभिधीयते, प्रतिपादितासदर्थस्यापनं
तु बाध्यम् । ननु चैतन्नतैसर्पस्य घृष्टिं प्रति यद्व्यभिन्ननमिवाभा-
सते, यतो रजतैश्चानं चेदुत्पत्तिमात्रेण चरितार्थं किं तस्याऽस्ती-
तस्य मिथ्यात्वापादनलक्षणयापि बाधया ? तदसदं, एतदेव हि
२० मिथ्याज्ञानस्यातीतस्यापि बाध्यत्वम्-यदस्मिन् मिथ्यात्वापेक्षं-
नम्, कैचित्पुनः प्रवृत्तिप्रतिषेधोऽपि फलम्, अन्यथा रजतज्ञानस्य
बाध्यत्वासम्भवे शुक्तिकादौ प्रवृत्तिरविरता प्रामोति । कथं

१ मरु । २ अप्रतिभातत्वबाधकत्वयोः । ३ विषये । ४ असत्यम् । ५ ज्ञानम् ।
६ ज्ञानम् । ७ मरुत्रानेकेषां गुणपत्ताप्तिः सङ्करः । ८ जादिपदेन शुक्तिका ।
९ रजतादि । १० ज्ञानम् । ११ प्रमानन्ददेवः परमं प्रति नूते । १२ इदं रजतमिति
ज्ञानम् । १३ शुक्तिकैकविषयः । १४ रजतादि । १५ चरस्य । १६ शुक्ति-
शक्तेः प्रतिभातरजतादिपरीतोऽर्थः शुक्तिशकलम् । १७ शुक्तिकैकविषयस्यापेक्षं ।
१८ चररजनेन । १९ बोधित । २० बोधितमसदर्थस्यापनं (प्रतिपादनं) मरु-
दर्थग्रहणं यस्य पूर्वज्ञानम् । २१ बाध्यबाधकभावलक्षणम् । २२ रजतप्रत्ययस्य
शुक्तिविषयप्रत्ययः चररजत्वात् बाधकः इति प्रतिपादनम् । २३ मिथ्याज्ञानं ।
२४ प्रयोजनम् । २५ प्रथमज्ञानम् । २६ चररजनेन । २७ विषये । २८ मिथ्या-
त्वापादनाभावे ।

१ "बाधाविरहः किं सर्वपुरुषापेक्षया आहोस्तिप्रतिपन्नपेक्षया ?"

सत्योप० ६० ३ ।

चैवं वादिनोऽविद्याविद्ययोर्बाध्यबाधकभावः स्यात् तत्राप्युक्तैवि-
कल्पजालस्य समानत्वात् ?

यच्च समारोपितादपि भेदादित्याद्युक्तम् ; तदप्ययुक्तम् ; आत्मनः
सांशत्वे सत्येव भेदव्यवस्थोपपत्तेर्निर्देशस्यान्तर्बहिर्वा वस्तुनः सर्व-
थाप्यप्रसिद्धेरित्यात्माद्वैताभिनिवेशं परित्यज्यान्तर्बहिर्ज्ञानैकप्रकारं
वस्तु वार्तित्वं प्रमाणप्रसिद्धमुररीकर्तव्यम् ।

ननु चाविभागबुद्धिरूपव्यतिरेकेणार्थस्याप्रतीतितोऽसत्त्वा-
द्विज्ञप्तिमात्रमेव तत्त्वमभ्युपगन्तेव्यं तद्ग्राहकं च ज्ञानं प्रमाणमिति ;
तच्च ; यतोऽविभागस्वरूपावेदकप्रमाणसद्भावतो विज्ञप्तिमात्रं तत्त्व-
मभ्युपगम्यते, बहिरर्थसद्भावबाधकप्रमाणावर्धमेन वा ? यथाद्यः १०
पक्षस्तत्रापि तथाभूतविज्ञप्तिमात्रं ग्राहकं (मात्रग्राहकं) प्रत्यक्षम्,
अनुमानं वा ? प्रमाणान्तरस्य सौगतैरनभ्युपगमात् । तत्र न ताव-
त्प्रत्यक्षं बहिरर्थसंस्पर्शरहितं विज्ञप्तिमात्रमेवेत्यधिगन्तुं समर्थम् ;
अर्थाभावनिश्चयमन्तरेण विज्ञप्तिमात्रमेवेत्यवधारणानुपपत्तेः ।

“अयमेवेति यो ह्येष भवे भवति निर्णयः ।

१५

नैष वस्त्वन्तरेण भावसंविद्यर्तुगमादते ॥”

[मी० खो० अभावपरि० खो० २०]

इत्यभिधानात् । न चार्थाभावः प्रत्यक्षाधिगम्यः ; बाह्यार्थप्रकाश-
कत्वेनैवास्योत्पत्तेः । न च प्रत्यक्षे प्रतिभासमानस्याप्यर्थस्याभावो

१ बाधकेन ज्ञानमपहियते विषयो वेत्तेवं वादिनः । २ उक्तविकल्पैरतीतस्योत्तर-
कालीनं न बाधकमिति । ३ अपिच वा किं ज्ञानमपहियते विषयः फलं वा । ४ सदाद्यैः
वर्तते इति साशः । ५ सुखादिसम्पादि च । ६ शारदाधिक्य । ७ भवता
परेण । ८ विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार जाह । ९ ग्राह्यग्राहकसंविधिकृतो विभागः ।
१० ज्ञेयादिभिः । ११ इदं ज्ञानमर्थं विषय इति विभागः । १२ बाधक । १३ परेण ।
१४ वक्तेन । १५ प्रकृते विद्यासिमाये । १६ वदते । १७ बहिरर्थः । १८ सद्भाव-
दिना । १९ अस्तीति साध्यः ।

१ अद्याद्वैतवादस्य विविधरीत्या पत्रांशोचनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—मी० खेकवा०
पृ० १११—, तत्त्वसं० पुनरप० पृ० ७५—, न्यायसं० पृ० ५२६—, आशमीमांसा
अष्टम० अष्टसह० पृ० १५६—दि० परि०, न्यायकु० पं० प्रथमपरि०, सन्मति०
टी० पृ० २७७—२८५—, सा० रत्ना० पृ० १९०— ।

२ “ननु किमविभागबुद्धिरूपवेदकप्रमाणसद्भावतो विज्ञप्तिमात्रमभ्युपगम्यते,
बाह्येतिदर्थसद्भावबाधकप्रमाणसद्भावसङ्गतेरिति वक्तव्यम् ? तत्र यथाद्यः पक्षः स न
युक्तः ; यत्तत्तथाभूतविज्ञप्तिमात्रोपग्राहकं प्रत्यक्षं वा तद्भवेदनुमानं वा... ।” सन्मति०
टी० पृ० १४९ ।

विक्रतिमात्रस्याप्यभावानुपपत्तात् । न च तैमिरिकप्रतिभासे प्रति-
भासमानेन्दुद्वयवर्जितमनोऽक्षप्रभवप्रतिभासविषयस्याप्यसत्त्व-
मित्यभिधातव्यम् ; यतस्तैमिरिकप्रतिभासविषयस्यार्थस्य बाध्य-
मानप्रत्ययविषयत्वादसत्त्वं युक्तम्, न पुनः सत्यप्रतिभासविषय-
स्याऽबाध्यमानप्रत्ययविषयत्वेन सत्त्वसम्भवात् । बाध्यबाधक-
भावश्चानन्तरमेव ब्रह्माद्वैतप्रघट्टके प्रपञ्चितः । तन्नार्थाभावोऽप्य-
क्षेणाधिगम्यः ।

नाप्यनुमानेन; अन्येक्षविरोधेऽनुमानस्याप्रामाण्यात् । “प्रत्यक्ष-
निराकृतो न पक्षः” [] इत्यभिधानात् । न च बाह्यार्था-
१० वेदकाध्यक्षस्य भ्रान्तत्वाच्च तेनानुमानबाधेत्यभिधातव्यम् ; अन्यो-
ऽन्याश्रयात्-सिद्धे ह्यर्थाभावे तद्वैद्यक्ष्यं भ्रान्तं सिद्धेव, तत्सिद्धौ
चार्थाभावानुमानस्य तेनाऽवैधेति । किञ्च, तदनुमानं कार्यलिङ्ग-
प्रभवम्, स्वभावहेतुसमुत्थं वा, अनुपलब्धिप्रसूतं वा ? न ताव-
त्प्रथमद्वितीयविकल्पो; कार्यस्वभावहेत्वोर्विधिसाधकत्वाम्युप-
१५ गमात् । “अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ” [न्यायवि० पृ० ३९] इत्यभिधा-
नात् । तृतीयविकल्पोऽप्ययुक्तः; अनुपलब्धेऽसिद्धत्वाद्वाह्यार्थस्याप्य-
क्षादिनोपलम्भात् । किञ्च, अदृश्यानुपलब्धिस्तदभावसाधिका
स्यात्, दृश्यानुपलब्धिर्वा ? प्रथमपक्षेऽतिप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे तु
सर्वत्र सर्वदा सर्वेयार्थाभावाऽप्रसिद्धिः, प्रतिनियतदेशादवैवा-
२० स्यात्तदभावसाधकत्वसम्भवात् ।

पक्षेन बहिरर्थसद्भावबाधकप्रमाणावष्टम्भेन विक्रतिमात्रं तत्त्व-
मभ्युपगम्यत इत्येतन्निरस्तम् । तत्सद्भावबाधकप्रमाणस्योक्त-
प्रकारेणासम्भवात् ।

१ यत्प्रतिभासते तदस्तीति जनैकान्तिको न । (१) २ प्रतिभासमानत्वादिशेषात् ।
३ क्षान् । ४ बाह्यार्थस्य । ५ परेण । ६ नैवौ द्वौ चन्द्रौ । ७ ज्ञानद्वैतवादिनां
बाध्यबाधकभावो नास्तीत्युक्ते आह । ८ पूर्व । ९ वा (तृतीया, तृतीयासमास इत्यर्थः) ।
१० परेण । ११ अनुमानात् । १२ अर्थे । १३ सिद्धा । १४ अस्तित्व । १५ निष्ठु
हेतुषु मन्वे । १६ सिद्धान्तादिरप्यभावसाधिका । १७ काकप्रकार । १८ बहिरर्था-
भावसाधकप्रमाणनिराकरणपरेण ग्रन्थेन ।

१ “नाप्यनुमानं बाह्याभावमावेदयति, प्रत्यक्षभावे तस्यायोगात् । न च प्रत्यक्ष-
विरोधे अनुमानप्रामाण्यं संभवति “प्रत्यक्षनिराकृतो न पक्षः” इति वचनात् ।”

सम्प्रति० टी० पृ० १५१ ।

२ “स्वरूपेणैव स्वयमिष्टोऽनिराकृतः पक्ष इति । (पृ० ७९) अनिराकृत इति ।
यत्तल्लक्षणयोगेऽपि यः सापेक्षितमिष्टोऽप्यर्थः प्रत्यक्षानुमानप्रतीतिसम्पन्ननैतिपाक्षियते च
स पक्ष इति प्रदर्शयार्थम् ।” न्यायवि० पृ० ७९, ८१ ।

ननु नार्थाभावद्वारेण विश्वतिमात्रं साध्यते, अपितु अर्थसं-
विदोः सहोपलम्भनियमादमेदो द्विचन्द्रदर्शनवदिति विधिद्वारेणैव
साध्यते; तदन्यस्यारम्भः असेदपक्षस्य प्रत्यक्षेण बाधनाच्छब्दे श्राव-
(ब्देऽश्राव)णत्ववत् । दृष्टान्तोपि साध्यविकलः; विज्ञानव्यतिरिक्त-
याह्यार्थमन्तरेण द्विचन्द्रदर्शनस्याप्यसम्भवात् । कारणदोषवशात् ५
खलु बहिःस्थितमेकमपीन्दुं द्विरूपतया प्रतिपद्यमानं ज्ञानमुत्प-
द्यते, कारणदोषज्ञानाद्वाघर्कप्रत्ययाच्चास्य आन्तता । अर्थक्रिया-
कारिस्तन्मौल्युपलब्धौ तु तदभावात्सत्यता । सहोपलम्भनियम-

१ इन्द्रः । २ आत्मव्यतिरादी । ३ ईप् । ४ इन्द्रिय । ५ काचकामलादि ।
६ उत्तरकाले नेमौ द्वौ चन्द्रौ । ७ वटपटादि ।

१ “यत्संवेदनमित्यादिना नीलकाकारतद्वियोरमेदसाधनाय निराकारज्ञानवादिनं
प्रति प्रमाणयति—

यत्संवेदनेन साधस्य संवेदनं दुष्यत् ।

तस्मादव्यतिरिक्तं तत्ततो वा न विमिश्रते ॥ २०३० ॥

यथा नीलपियः स्वात्मा द्वितीयो वा यथोद्भूतः ।

नीलवीवेदनं चेदं नीलकारस्य वेदनात् ॥ २०३१ ॥

यद्युक्तं भवति—(यत्) यस्मादपृथक् संवेदनमेव तत्तत्सादृशिनं यथा नीलवीः
स्वसमाधात्, यथा वा तैमिरिकज्ञानप्रतिभासी द्वितीय उद्भूतः चन्द्रमाः, नीलवीवेदन-
शेदमिति पक्षधर्मोपसंहारः । धर्म्यं नीलकारतद्वियौ, तयोरभिन्नत्वं साध्यधर्मः,
यथोक्तः सहोपलम्भनियमो हेतुः । ईदृशं यत् आचार्याणि सहोपलम्भनियमादित्यादौ
प्रयोगे हेत्वर्थोऽभिप्रेतः ।” तत्त्वसं० पं० पृ० ५६७ ।

२ “—असदेतत्; अमेदस्य प्रत्यक्षेण नापनात्,....सम्बेदसाधनत्ववत् पक्षस्य
प्रत्यक्षेण निराकृत्यैः ।” सम्प्रति० टी० पृ० ३५२ ।

३ “पुनः स प्रमाद—यदि सहस्रान्द फकार्षस्तदा हेतुरसिद्धः; तथाहि—नटचन्द्र-
मण्डपेक्षाह नद्येकेनैवोपलम्भो नीलाद्यैः, ... यदा च सत्त्वं प्राणभृतां सर्वं चित्तकृपाः
सर्ववैनामसीयन्ते तदा कथमेकेनैवोपलम्भः सिद्धः स्यात् । नचान्योपलम्भप्रतिषेधस्य
स्वभावाभिप्रायस्य विधिप्रतिषेधाऽव्योगात् । अथ सहस्रान्द पक्षकारविवक्षया तदा बुद्ध-
विश्लेषत्वेन चित्तचैतस्य सर्वथाऽनैकान्तिकता हेतोः । यथा किञ्च बुद्धस्य भगवतो
यद्वैयं सन्धानान्तरनिर्णं तस्य बुद्धज्ञानस्य च सहोपलम्भनियमेऽप्यस्त्येव च नाना-
त्वम्, तथा चित्तचैतानां सत्यमि सहोपलम्भे नैकत्वमित्यतोऽनैकान्तिको हेतुः ।”
तत्त्वसं० पं० पृ० ५६७ । विधिवि० न्यायकणि० पृ० २६४ । सम्प्रति० टी० पृ०
३५३ । सा० रत्ना० पृ० १५५ ।

“यद्यप्यवधिं सहोपलम्भनियमादमेदो नीलतद्वियोः तदपि बालमानितमिव नः
प्रतिभाति; अमेदे सहाधीनपक्षः । अवैकोपलम्भनियमादिति हेत्वर्थो निवक्षितः; तद-
यमधिको हेतुः नीलादिप्राणमहणसमये वद्वाराधनुपलम्भात् ।” न्यायसं० पृ० ५५४ ।

आसिद्धः; नीलाद्यर्थोपलम्भमन्तरेणाप्युपरतेन्द्रियव्यापारेण सुखा-
दिसंवेदनोपलम्भात् । अनैकान्तिकश्चायम्; रूपालोकयोर्मिथ्ययो-
रपि सहोपलम्भनियमसम्भवात् । तथा सर्वज्ञज्ञानस्य तज्ज्ञेयस्य
चेतरजनचित्तस्य सहोपलम्भनियमेऽपि मेदाभ्युपगमादनेकान्तः ।
१ ननु सर्वज्ञः सन्तानान्तरं वा नेष्यते तत्कथमयं दोषः ? इत्यसत्;
सकललोकसाक्षिकस्य सन्तानान्तरस्यानभ्युपगममात्रेणाऽभावाऽ-
सिद्धेः । सुगतश्च सर्वज्ञो यदि परमार्थतो नेष्यते तर्हि किमर्थं
“प्रमाणभूताय” [प्रमाणसमु० श्लो० १] इत्यादिनासौ समर्थितः,
स्तुतश्चाद्वैतादिप्रकरणानामादौ दिग्भागादिभिः सद्भिः । न खलु
१० तेषामसति सत्त्वकल्पने बुद्धिः प्रवर्तते । विचार्य पुनस्त्यागाददोषं
इत्यप्यसारम्; त्यागाकृत्वे हि तस्य वरं पूर्वमेव नाङ्गीकरणमी-
श्वरादिवत् । अद्वैतमेव तथा स्तूयते इत्यपि वीच्यम्; तत्र स्तोत-
व्यत्सौष्टुस्तुतितत्फलानामत्यन्तासम्भवात् ।

किञ्च, सहोपलम्भः किं युगपदुपलम्भः, क्रमेणोपलम्भीभावो
१५ वा स्यात्, एकोपलम्भो वा ? प्रथमपक्षे विरुद्धो हेतुः; ‘सह
शिष्येणागतः’ इत्यादौ योगपदार्थस्य सहशब्दस्य मेदे सत्त्वो-
पलम्भात् । न श्लोकसिद्धे योगपदसुपपद्यते । द्वितीयपक्षेप्यसिद्धो
हेतुः; क्रमेणोपलम्भाभावमात्रस्य चादिप्रतिवादिनोरसिद्धत्वात् ।

१ प्रतीतिः । २ मिष्टेन्द्रियः । ३ पुरुषेण । ४ न चैकत्वम् । ५ परेण ।
६ ज्ञानान्तरं वा । ७ सीगतेः । ८ अगद्विर्तविणे प्रणम्य शाले सुगताय तामिने(तामिने) ।
९ असति सत्त्वकल्पने बुद्धिप्रवृत्त्यनावलक्षणो दोषः । १० कस्य । ११ दिक्भागादि ।
१२ साधनं विचार्यते । १३ प्रसक्त्यः । १४ विपरीतनिश्चिताविनाशयो विरुद्धः ।
१५ उपाध्याये । १६ असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः । १७ योगाचारजनान्तां दुष्क-
स्तभावप्रागभावप्रवृत्तिसामावलक्षणाऽभावयोरनभ्युपगमात् । १८ दुष्करूपाभावात् ।

“अथ साहाय्यं योगपदं वा विवक्षितं सहोपलम्भमानसं तथापि तयोर्भेदेनैव व्याप्तत्वात्
विरुद्धत्वम् । तथा सर्वज्ञः स्वचित्तेन सहोपलम्भते परचित्तं न च तस्य तस्यादमेव
इति व्यभिचारः सर्वेषां सर्वज्ञताप्रसङ्गात् ।” व्योमव० पृ० ५२७ ।

१ “यच्च सहोपलम्भनियम उक्तः सोऽपि विकल्पं न सधत्ते । यदि ज्ञानार्थोः
साहित्येन उपलम्भः ततो विरुद्धो हेतुर्नभिदं साधयितुमर्हति साहित्यस्य तद्विरुद्धमेद-
व्याप्तत्वात् अमेदे तदनुपपत्तेः । अयैकोपलम्भनियमः; न, यत्तत्त्वसाधकः सह-
शब्दः । अपि किमेकत्वेनोपलम्भः, आहो यत् उपलम्भो ज्ञानार्थोः ? न तावदेकत्वे-
नोपलम्भ इत्याह—वहिरुपलब्धेऽपि विनयस्य ।” महासू० शां० सा० भाष्यटी १।२।१८
सम्पत्ति० टी० पृ० ३५३ । “सहोपलम्भोऽपि किं युगपदुपलम्भः, क्रमेणोपलम्भाभावः,
एकोपलम्भो वाऽभिप्रेतो यस्य निवर्तो हेतुः स्यात् ?” सा० रत्ना० पृ० १५५ ।

किञ्च, असाधैर्भेदैः—एकत्वं साध्येत, भेदाभावो वा ? तत्राद्यविकल्पोऽसङ्गतः; भौवाऽर्भावयोस्तादात्म्यतदुत्पत्तिक्षणसम्बन्धाभावतो गर्भ्यगमकभावायोगात् । प्रसिद्धे हि धूमपावकयोः कार्यकारणभावे—शिंशपात्ववृक्षत्वयोश्च तादात्म्ये प्रतिर्वन्वे गम्यगमकभावो दृष्टः । द्वितीयविकल्पेपि—अभावस्वभावत्वात्साध्यसाध-^५नयोः सर्ववन्धाऽभावः, तादात्म्यतदुत्पत्त्योरर्थस्वभावप्रतिनियमात् । अनिष्टसिद्धिश्च; सिद्धेपि भेदप्रतिषेधे विज्ञप्तिमात्रस्येष्टस्यातोऽप्रसिद्धेः, भेदप्रतिषेधमात्रेऽस्य चरितार्थत्वात् । ततस्तत्सिद्धौ वा प्राज्ञप्राहकभावादिप्रसङ्गो बहिरर्थसिद्धेरपि प्रसार्धेकोऽनुषज्यते ।

अयेकोपलम्भः सहोपलम्भः । ननु किमेकत्वेनोपलम्भ एको-^{१०}पलम्भः स्यात्, एकैर्नैव बोपलम्भः, एकलोलीभावेन बोपलम्भः, एकस्यैवोपलम्भो वा ? प्रथमपक्षे—साध्यसमो हेतुर्यथाऽनित्यः शब्दोऽनित्यत्वादिति । बहिरन्तर्मुखाकारतया च नीलतद्वियोर्मदस्य सुप्रतीतत्वादे कथं तयोरेकत्वेनोपलम्भः सिद्ध्येत् ? एकैर्नै-

१ हेतोः । २ साध्यविचारः । ३ अवेसविदोः । ४ प्रसङ्गः । ५ साध्य । ६ अभावो हेतुः । ७ एकत्व । ८ साध्यसाधन । ९ सम्बन्धे । १० अद्यविधा-
गायविषाणयोरेव । ११ गुच्छानापत्तिरिति । १२ असाधेतोः । १३ अभावे ।
१४ क्रमेणोपलम्भाभावमात्राद् असात्तापनात् । १५ किञ्च । १६ व्याप्यव्यापक ।
१७ यथा प्राज्ञं प्राहकमिति हेतुं तथा बाह्योऽर्थः विज्ञानमिति हेतुसिद्धिरपि स्वादिसर्थः ।
१८ अवेसविदोस्तादात्म्यात् । १९ नीलतद्वयोः सर्वथा तादात्म्यात् । २० ज्ञानेन ।
२१ कथञ्चिन्नादात्म्य । २२ किञ्च । २३ स्वरूपासिद्धो हेतुः । २४ ज्ञानेन ।

१ “किञ्च, क्रमेणोपलम्भाभावमात्रादेव एकत्वं साध्येत, भेदाभावो वा ?”

सा० रत्ना० पृ० १५८ ।

२ “अयेकोपलम्भः सहोपलम्भः, ननु किमेकत्वेनैवोपलम्भः एकोपलम्भः, एकैर्नैव वा, एकस्यैव वा, एकलोलीभावेनैव वा ?”

सा० रत्ना० पृ० १५८ ।

३ “तदेकोपलम्भनियमोऽप्यसिद्धः साध्यसाधनयोरविशेषात् ।” अष्टश०, अष्ट-
सह० पृ० २४६ । “नचैकस्यैवोपलम्भनियमो हेतुः; अशब्दावत्त्वात्, साध्यवि-
शिष्टत्वात् । तथाऽनेकरूपावयवस्य हि तत्सार्वस्योपलम्भे स्वरूपाऽसिद्धोऽपीति ।”

ज्योमदी ५० ५२७ । सा० रत्ना० पृ० १५८ ।

४ “नापि नीलतदुपलम्भयोरिकैर्नैवोपलम्भः; तथाहि—नीलोपलम्भेऽपि तदुपल-
म्भानामन्यसन्तानगतानामुपलम्भात् ।” तत्त्वसू० पं० पृ० ५६७ । “अयेकैर्नैवोपल-
म्भमानस्य साधनम्; न; अन्यवेदनाऽभावसामसिद्धेः । अर्थस्तु तत्तत्मानस्यैरन्यै-
रुपलम्भ्यते इत्येकैर्नैवोपलम्भमानत्वमसिद्धम् ।”

ज्योमदी ५० ५२७ ।

बोपलम्भोप्यन्यवेदेनाऽभावे सिद्धे सिद्ध्येत् । न चासौ सिद्धः;
नीलाद्यर्थस्य तत्समानैर्नैवेदनैरुपलम्भप्रतीतेरित्येकेनैवोपल-
म्भोऽसिद्धः । एतेनैकलोलीभावेनोपलम्भः सहोपलम्भश्चिन्नज्ञाना-
कारवदशक्यविवेचनत्वं साधनमसिद्धं प्रतिपत्तव्यम् । नीलतद्वि-
५ योरशक्यविवेचनत्वासिद्धेः अन्तर्बहिर्वैशतया विवेकेनानयोः
प्रतीतेः ।

अथैकस्यैवोपलम्भः, किं ज्ञानस्य, अर्थस्य वा ? ज्ञानस्यैव चेत्;
असिद्धो हेतुः । न खलु परं प्रति ज्ञानस्यैवोपलब्धिः सिद्धा;
अर्थस्याप्युपलब्धेः । न चार्थस्याभावाद्नुपलब्धिः, इतरेतराभ्रया-
१० नुषङ्गात्-सिद्धे अर्थाभावे ज्ञानस्यैवोपलम्भः सिद्ध्येत्, तदुपलम्भ-
सिद्धौ चार्थाभावसिद्धिरिति । अथार्थस्यैवैकस्योपलम्भः, नन्वेवं
कथमर्थाभावसिद्धिः ? ज्ञानस्यैवाभावसिद्धिप्रसङ्गात् । उपलम्भ-
निबन्धनत्वाद्बस्तुव्यवस्थायाः । स्वर्ूपकारणभेदाच्चाभेदोभेदः;
प्राद्वक्स्वरूपं हि विज्ञानं नीलादिकं तु प्राद्वक्स्वरूपम् । अभेदे च
१५ तयोर्प्राद्वकता आद्यता वाऽविशेषेण स्यात् । कारणभेदस्तु

१ अर्थस्य । २ उपलम्भः । ३ सन्तानान्तरवेदेनैः । ४ पुरुष । ५ एकत्वैवो-
पलम्भनिराकरणपरेण प्रत्येन । ६ चिन्नज्ञानाद्यथा तदाकाराणां भेदादीनामशक्य-
विवेचनत्वं यथा न तत्रात्र । ७ अयमर्थ इदं ज्ञानमिति विवेकाभावात् । ८ परेण ।
९ नीलनीलज्ञानयोः । १० पृथक्त्वेन । ११ अभेदसंविदोरभेदः एकस्यैवोपलम्भात् ।
१२ जैनं प्रति । १३ अर्थज्ञानयोर्वदपटयोरिव ।

१ “एतेनैकलोलीभावेनैवोपलम्भः सहोपलम्भनियमः चिन्नज्ञानाकारवदशक्यविवे-
चनत्वं साधनमसिद्धं प्रतिपत्तव्यम्, अन्तर्बहिर्वैशतया विवेकेन ज्ञानार्थयोः प्रतीतेः ।”

साम० रत्ना० पृ० १५५ ।

२ “अपि च सहोपलम्भः, किं ज्ञानयोः, उत अर्थयोः, ज्ञानार्थयोर्नो ?” तत्सोप-
५० १२५ । “किञ्च, एकस्यैवोपलम्भो ज्ञानस्य, अर्थस्य वा ?”

सम्प्रति० टी० पृ० ३५३ ।

३ “अथ बाह्यार्थाभावादेकोपलम्भनियमः तत्र; इतरेतराभ्रयत्प्रसङ्गात् । तथा
चैकोपलम्भनियमाद् बाह्यार्थाभावसिद्धिः तत्सिद्धेः एकोपलम्भनियमसिद्धिरित्येकाग्रयादि-
तराभावः ।”

ज्योमवदी पृ० ५२७ ।

४ “तथा ज्ञानं प्राद्वक्स्वरूपं नीलादि प्राद्वक्स्वरूपमित्यनयोः श्रुत्वादीतयोरेव स्वभाव-
भेदात् भेदः । अभेदे हि बोधोऽपि नीलस्य आद्यं स्यात् नीलस्य बोधस्य प्राद्वक्स्वरूपमिति
स्यात्, न चैतदस्ति । कारणभेदाच्च नीलाद्बोधोऽर्थान्तरम्; तथा हि-बोधाद् बोध-
रूपता, इन्द्रियादिष्वप्यतिनियमः, निषेधात्कारणमप्यतिनियममिति भेदादेवा भेद एव ।”

ज्योमवदी० पृ० ५२७ ।

सुप्रसिद्धः, ज्ञानस्य चक्षुरादिकारणप्रभवत्वात्तद्विपरीतत्वाच्च
नीलाद्यर्थस्येति ।

यद्योच्यते—‘यदभा(यदवभा)सते तज्ज्ञानं यथा सुखादि, अव-
भासते च नीलादिकम्’ इति; तत्र किं स्वतोऽवभासमानत्वं हेतुः,
परतो वा, अभा(अवभा)समानत्वमात्रं वा? तत्रापक्षे हेतु-
रसिद्धः । न खलु ‘परनिरपेक्षा नीलादयोऽवभासन्ते’ इति परस्य
प्रसिद्धम् । ‘नीलादिकमहं वेशि’ इत्यहमहमिकया प्रतीयमानेन
प्रत्ययेन नीलादिभ्यो भिन्नेन तत्प्रतिभासाभ्युपगमात् । यदि च
परनिरपेक्षावर्भासा नीलादयः परस्य प्रसिद्धाः स्युस्तर्हि किमतो
हेतोस्तं प्रति साध्यम्? ज्ञानतोति चेत्; सा यदि प्रकाशता-तर्हि १०
हेतुसिद्धौ सिद्धैव न साध्या । असिद्धौ वा तस्याः—कथं नासिद्धौ
हेतुः? को हि नाम स्वप्रतिभासं तत्रेच्छन् ज्ञानतां नेच्छेत् ।

ननु बौद्धप्रत्ययो गृहीतः, अगृहीतो वा, निर्व्यापारः, सव्या-
पारो वा, निराकारः, साकारो वा, (भिन्नकालः, समकालो वा)
नीलादेर्भादकः स्यात्? गृहीतश्चेत्—किं स्वतः, परतो वा? स्वत-१५

१ प्रकाशः । २ आकृतनीलकारणप्रभवत्वात् । ३ परेण भवता । ४ तस्मात् ज्ञान-
मिति नियमन् । ५ प्रतिपादयितुः । ६ ज्ञान । ७ वैयस्य । ८ परनिरपेक्षोऽव-
भासो येषां हे । ९ वैयस्य । १० इष्टमवाधितमसिद्धं साध्यम् । ११ ज्ञानत्वम् ।
१२ नीलादीनाम् । १३ नीलादी ।

१ “प्रकाशमानसादात्म्यात्स्वरूपस्य प्रकाशकः ।

यथा प्रकाशोऽग्निमतस्तथा नीरात्मवेदिनी ॥” प्रमाणं वा० ३।३१७ ।

“सकृत्संवेद्यमानस्य नियमेन विद्या सह ।

विषयस्य ततोऽनन्तरं केवाकारेण सिद्ध्यति ॥” प्रमाणं वा० अर्क० ५०९१ ।

२ “यत्तु सवेदनादितं पुरुषादितवन्न तत् ।

सिधेत् स्वतोऽन्यतो वाऽपि श्रयाणात् स्नेहादितिः ॥”

भाष्यपरी० कारि० ५६ । न्यायकु० च० अथमपरि० । सा० रत्ना० ५० १६१ ।

३ “तथा हि—परः प्रकाशकः सन्बद्धोऽसन्बद्धो वा, गृहीतोऽगृहीतो वा, निर्व्या-
पारः सव्यापारो वा, निराकारः साकारो वा, भिन्नकालः समकालो वा पदार्थस्य
प्रकाशकः स्यात्? ” सा० रत्ना० ५० १६१ । “प्रत्यक्षमर्थं पुरुषकालं वा प्रकाशयति,
भिन्नकालं वा ? ” सन्मति० टी० ५० ३५४ ।

“अनिर्भासं समिर्भासमन्वनिर्भासमेव च ।

विज्ञानादिति न च ज्ञानं बाह्यमर्थं कथञ्चन ॥ १५११ ॥”

तत्त्वसं० ५० ५५१ ।

अवेत् । स्वरूपमात्रप्रकाशनिमग्नत्वाद्बहिरर्थप्रकाशकत्वाभाव एव
स्यात् । परतश्चेदनवस्था; तस्यापि ज्ञानान्तरेण ग्रहणात् । न च
पूर्वज्ञानाग्रहणेऽप्यर्थस्यैव ज्ञानान्तरेण ग्रहणमित्यभिधातव्यम्;
तस्यासन्नत्वेन जनकत्वेन च ग्राह्यलक्षणप्राप्तत्वात् । तदाह—

५ “तां ग्राह्यलक्षणप्राप्तामासन्नां जनिकां धियम् ।

अगृहीत्वोत्तरं ज्ञानं गृहीयार्दपरं कथम् ॥” [प्रमाणवा० ३।५१३]

अगृहीतश्चेद्ग्राहकोऽतिप्रसङ्गः । न च निर्व्यापारो बोधोऽर्थग्रा-
हकः; अर्थस्यापि बोधं प्रति ग्राहकत्वानुषङ्गात् । व्यापारवत्त्वे
चैतोऽव्यतिरिक्तो व्यापारः, व्यतिरिक्तो वा? आद्यविकल्पे-बोध-

१० स्वरूपमात्रमेव नापरो व्यापारः कश्चित् । न चानयोरभेदो युक्तः;
धर्मधर्मितया भेदप्रतीतेः । द्वितीयविकल्पे तु सम्बन्धासिद्धिः;
तैस्तत्त्वैरूपकाराभावात् । उपकारे चानवस्था तन्निवर्तने व्यापार-
स्यापरव्यापारपरिकल्पनात् । निराकारत्वे वा बोधस्य; अतः
प्रतिकर्मव्यवस्था न स्यात् । साकारत्वे वा बाह्यार्थपरिकल्पना-

१५ नर्थक्यं नीलाद्याकारेण बोधेनैव पर्याप्तत्वात् । तदुक्तम्—

“धियोऽ(योऽ)लादिरूपत्वे बाह्योऽर्थः किञ्चिन्न्यधनः ।

धियोऽ(यो)नीलादिरूपत्वे बाह्योऽर्थः किञ्चिन्न्यधनः ॥ १ ॥”

[प्रमाणवा० ३।४३१]

तथा न भिन्नकालोऽसौ तैद्ग्राहकः; बोधेन स्वकालेऽविद्यमानार्थस्य
२० ग्रहणे निखिलस्य प्राणिमात्रस्याशेषसत्त्वप्रसङ्गात् । नापि सम-

१ अहन्प्रत्ययस्य । २ द्वितीयेन । ३ ज्ञेयः । ४ पूर्वज्ञानस्य । ५ उत्तरज्ञानस्य ।
६ प्राक्ती । ७ कर्तुं । ८ नीलादिकम् । ९ नाशार्तं नापकं नाम । १० देवदत्तस्य
जिनदत्तेनाशार्तं सत् जिनदत्तस्यार्थग्राहकं भवेत् । ११ अन्यथा । १२ निर्व्यापारत्वा
विशेषात् । १३ बोधात् । १४ बोधव्यापारयोः । १५ स्वरूप । १६ बोध ।
१७ बोधस्यार्थं व्यापार इति । १८ व्यापारात् । १९ बोधस्य । २० षट्ज्ञानस्य षटः
षट्ज्ञानस्य षटो विषयः, इति प्रतिनियतविषय । २१ ज्ञानस्य । २२ निराकारत्वे ।
२३ ग्राहकव्यवस्थापकत्वाभावात् । २४ किञ्चिन्न्यधनः । किं निवृत्तं निमित्तं व्यवस्थापकं
यस्य बाह्यार्थस्य सः । २५ नीलादि । २६ अन्यथा ।

१ “न च पूर्वज्ञानाग्रहणेऽपि अर्थस्यैव ग्रहणमिति वाच्यम्, तेषामासन्नत्वे सति
ग्राह्यलक्षणप्राप्तत्वात् । तदाह—तां ग्राह्यलक्षण...न्योमवती ५० ५२४ ।

२

“धियोऽतितादिरूपत्वे सा तत्सामुपपन्नः कथम् ।

धियः तितादिरूपत्वे बाह्योऽर्थः किं प्रमाणकः ॥ २०५१ ॥”

उत्तरादं ५० ५४४ ।

कालः; समसमयमाविनोर्ज्ञानक्षेययोः प्रतिबन्धाभावतो ग्राह्य-
ग्राहकभावासम्भवात् । अन्यथाऽर्थोपि ज्ञानस्य ग्राहकः । अर्थार्थे
ग्राह्यताप्रतीतेः स च ग्राह्यः न ज्ञानम्; नै; तद्व्यतिरेकेणास्याः
प्रतीत्यभावात् । स्वैरूपस्य च ग्राह्यत्वे-ज्ञानेऽपि तदस्तीति तत्रापि
ग्राह्यता भवेत् । अथ जडत्वाध्यायो ज्ञानग्राहकः; ननु कुतोऽस्य
जडत्वसिद्धिः? तद्ग्राहकत्वाच्चेदन्वोन्याश्रयः-सिद्धे हि जडत्वे
तद्ग्राहकत्वसिद्धिः, ततश्च जडत्वसिद्धिरिति । अथ गृहीतिकर-
णादर्थस्य ज्ञानं ग्राहकम्, ननु साऽर्थार्थान्तरम्, अनर्थान्तरं वा
तेन क्रियते? अर्थान्तरत्वे अर्थस्य न किञ्चित्कृतमिति कथं तेनास्य
ग्रहणम्? तस्येयमिति सम्बन्धासिद्धिश्च । तथोप्यस्य गृहीत्यन्त-
रकरणेऽनवस्था । अनर्थान्तरत्वे तु तत्करणेऽर्थ एव तेन क्रियते
इत्यस्य ज्ञानता ज्ञानकार्यत्वादुत्तरज्ञानवत् । अर्थार्थोपादानोत्प-
त्तेर्न दोषश्चेत्, ननु पूर्वोऽर्थोऽप्रतिपक्षः कथमुपादानमिति प्रस-
ङ्गो? प्रतिपक्षश्चेत्, किं समानकालाद्भिन्नकालादित्यादिदोषानु-
पक्षः । किञ्च, गृहीतिरगृहीता कथमस्तीति निश्चीयते? अन्यज्ञानेन
चास्या ग्रहणे स एव दोषोऽनवस्थो च, ततोऽर्थो ज्ञानं गृहीतिरिति
त्रितयं स्वतन्त्रमाभातीति न परतः कस्यचिद्व्यभासनमिति
नासिद्धो हेतुः ।

ननु च 'अर्थमहं वेधि चक्षुषा' इति कर्मकर्तृक्रियाकरणप्रतीति-

१ जने प्रलयोनीकादेर्ग्राहकः । २ तदुत्पत्तिरक्षणसम्बन्धः । ३ सम्येतरगो-
विभाजनम् । ४ इति च (इत्यर्थः) । ५ अर्थस्य । ६ नो नैन । ७ परिच्छिन्धि ।
८ वटादेः । ९ घटस्य करणे घटस्य किमायातं यथा तथा । १० प्रथमया ।
११ सम्बन्धसिद्धयर्थम् । १२ अभिज्ञत्वे । १३ वृत्तिपञ्चादि । १४ अर्थस्य ।
१५ अज्ञातः । १६ अप्रतिपक्षत्वाविशेषात् । १७ करविभागादेरुत्पत्तादानस्त्वप्रसङ्गात् ।
१८ बोधात् । १९ अज्ञाता । २० भिन्नकालेन समकालेन वेत्तादि । २१ अन्यज्ञानेन
गृहीतो गृहीत्यन्तरमाद्यगृहीतेरर्थेन सम्बन्धसिद्धयर्थं क्रियते । एवं चेदन्वयज्ञानेन क्रियमाणं
गृहीतिः सा अर्थाद्भिन्ना अभिज्ञा नेति समयपक्षे सक्तदोषानुपपन्नः । पुनरपि भेदपक्षे

१ "अर्थार्थे ग्राह्यताप्रतीतेः स एव ग्राह्यो न ज्ञानमित्युच्यते; तजः तद्व्यतिरेके-
णास्याः प्रतीत्यभावात् ।" सा० रत्ना० ५० १६२ ।

२ "ननु तर्हि नीलमहं वेधि चक्षुषेति प्रतिभासः कथम्? तथा हि—नीलमिति
कर्म, अहमिति कर्ता, वेधीति क्रिया, चक्षुषेति करणमेतेषां परस्परव्यावृत्तवपुषा प्रति-
भासनादभेदप्रतिपादकमुन्मत्तमाश्रितम्; नैतदेवम्; तैमिरिकस्य द्विचन्द्रदर्शनवदस्याप्यु-
पपत्तेः । यथा हि—तैमिरिकस्य अर्थाभावेऽपि तदाकारं विज्ञानमुदेति, एवं कर्मादिभ्य-
विद्यमानेष्वपि अनादिप्रसन्नावच्छादकादं विज्ञानमिति ।" व्योमवती ५० ५२५ ।

प्र० क० सा० ८

ज्ञानमात्राभ्युपगमे कथम् ? इत्यप्यपेक्षालम् ; तैमिरिकस्य द्विचन्द्र-
दर्शनवदस्या अप्युपपत्तेः । यथा हि तस्यार्थमावेपि तदाकारं
ज्ञानमुदेत्येवं कर्मादिष्वविद्यमानेष्वपि अनाद्यविद्यावासनावशात्-
दाकारं ज्ञानमिति ।

५ अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्-‘अहंप्रत्ययो गृहीतोऽगृहीतो
वा’ इत्यादि; तत्र गृहीत एवार्थग्राहकोऽसौ, तद्गृह्यं स्वत एव ।
न च स्वतोऽस्य ग्रहणे स्वरूपभावप्रकाशनिमग्नत्वाद्विदित्यप्रका-
शकत्वाभावः; विज्ञानस्य प्रदीपवत्स्वपरप्रकाशस्वभावत्वात् ।

यच्चोक्तम्-‘निर्व्यापारः सव्यापारो वेत्यादि; तदप्युक्तिमात्रम्;
१० स्वपरप्रकाशस्वभावताव्यतिरेकेण ज्ञानस्य स्वपरप्रकाशनेऽपरव्या-
पाराभावात्प्रदीपवत् । न खलु प्रदीपस्य स्वपरप्रकाशस्वभावताव्य-
तिरेकेणान्यस्तत्प्रकाशनव्यापारोऽस्ति । न च ज्ञानरूपत्वे नीलादिः
सर्पतिघादिरूपता घटते । न च तद्रूपतयाऽध्यवसीयमानस्य
नीलादेः ‘ज्ञानम्’ इति नामकरणे काचिन्नैः क्षतिः । नामकरण-
१५ मात्रेण सप्रतिघत्वबाह्यरूपत्वादेरर्थधर्मस्याव्यावृत्तेः । न च तद्रूपता
ज्ञानस्यैव स्वभावः; तद्विपर्ययत्वेनानन्यवेद्यतया चास्यान्तःप्रतिभास-
नात्, सप्रतिघात्यैवेद्यस्वभावतया चार्थस्य बहिःप्रतिभासनात् ।
न च प्रतिभासमन्तरेणार्थव्यवस्थायामन्यन्निवन्धनं पश्यीमः ।

यदप्यभिहितम्-निराकारः साकारो वेत्यादि; तदप्यभिधान-
२० मात्रम् ; साकारवादप्रतिक्षेपेण निराकारदेव प्रत्ययीत् प्रतिकर्म-
व्यवस्थोपपत्तेः प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् ।

यच्चान्यदुक्तम्-न भिन्नकालोऽसौ तद्ग्राहक इत्यादि, तदप्य-
सारम् ; क्षणिकत्वानभ्युपगमात् । यो हि क्षणिकत्वं मन्यते

गृहीतेरर्थेन सम्बन्धसिद्ध्यर्थमप्यज्ञानेनापर गृहीतान्तरं क्लृप्ते । अपरगृहीतिरपि अर्था-
न्निष्ठा अभिज्ञा वेत्यादिप्रकारेणानवस्था ।

१ परेण । २ इदमपि ज्ञानं समकारं भिन्नकालं वेत्यादि । अन्यज्ञानमपि गृहीतम-
गृहीतमित्यादिप्रकारेण । ३ ग्रहणम् । ४ परेण । ५ ज्ञान । ६ अर्थ । ७ अर्थस्य ।
८ काठिन्य । ९ केदनाग्रहणादि । १० आसार्कं ज्ञानानां । ११ बहिरर्थं । १२ ज्ञाव ।
१३ कथं ज्ञानाः । १४ परेण । १५ अहम्यस्यः । १६ ज्ञानात् । १७ विषय ।
१८ ज्ञेयः । १९ अहम्यस्यः । २० अर्थ । २१ ज्ञानार्थयोः । २२ ज्ञानान्तरं ।

१ “निराकारपक्षेऽपि भवदमितसाकारवादप्रतिक्षेपेण निराकारदेव प्रत्ययापत्त्या
प्रतिकर्मव्यवस्था तथा प्रतिपादयिष्यते ।” सा० रत्ना० पृ० १६३ ।

२ “यत्वेदं ग्राह्यग्राहकयोरेककालानुभवाभावेन दूषणम् ; तदप्यपास्तम् ; क्षणिक-
त्वानभ्युपगमात् । यो हि क्षणिकत्वं मन्यते तस्यार्थं दोषो ज्ञानकालेऽर्थसासम्भावः
अर्थकाले ज्ञानक्षेपे तयोर्ग्राह्यग्राहकयोः अनुपपत्तिरिति ।” न्योमवती पृ० ५२९ ।

तस्यायं दोषः 'बोधकालेऽर्थस्याभावादर्थकाले च बोधस्यासत्त्वे तयोर्ग्राह्यग्राह्यकभावानुपपत्तिः' इति ।

यच्चाविद्यमानार्थस्य ग्रहणे प्राणिमात्रस्याशेषज्ञत्वप्रसक्तिरित्युक्तम्; तदप्युक्तम्; भिन्नकालस्य समकालस्य वा योग्यस्यैवार्थस्य ग्रहणात् । इदं यते हि पूर्वोत्तरचरादिलिङ्गप्रभवप्रत्ययाद्विन्नकाल-५ स्यापि प्रतिनिर्यतस्यैव शकटोदयाद्यर्थस्य ग्रहणम् ।

कथञ्चैवंवादिनोऽनुमानोच्छेदो न स्यात्, तथा हि—त्रिरूपा-
लिङ्गादिनि ज्ञानमनुमानं प्रसिद्धम् । लिङ्गं चावभासमानत्वमर्थेद्वा
यदि भिन्नकालं तस्य जनकम्; तर्ह्येकस्यानुमानस्याशेषमतीतम-
नागतं तज्जनकमित्येत एवाशेषानुमेयप्रतीतेरनुमानमेदकल्पनान-१०
र्थक्यम् । अथ भिन्नकालत्वाविशेषेपि किञ्चिदेव लिङ्गं कस्यचि-
ज्जनकमित्यदोषोपेयम् । नन्वेवं तदविशेषेपि किञ्चिदेव ज्ञानं कस्य-
चिदेवार्थस्य ग्राहकं किं नेर्प्यते ? अथातीतानुत्पन्नेऽर्थे प्रवृत्तं ज्ञानं
निर्विषयं स्यात्, तर्हि नष्टानुत्पन्नालिङ्गादुपजायमानमनुमानं निर्हे-
तुकं किं न स्यात् ? यथा च स्वकाले विद्यमानं स्वरूपेण जनकम् १५
तथा ग्राह्यमपि । तत्र भिन्नकालं लिङ्गमनुमानस्य जनकम् । नापि
समकालं तस्य जनकत्वविरोधात्, अविरोधे चानुमानमप्यस्य

१ ज्ञानकाले । २ सर्वज्ञत्व । ३ परेण भवता । ४ ग्राहीर्षु शक्यत्वं । ५ यतदेव
दर्शयति । ६ लोके । ७ अनुमानात् । ८ कियत् एव । ९ भिन्नकालः समकालो
वा अहम्यस्यः इत्यादि । १० योगाचारस्य । ११ साध्वे अन्यादौ । १२ सहो-
पलम्भादि । १३ लिङ्गं । १४ यनसादनुमानादेव । १५ सकलसाध्यपदार्थानां
परिगणनात् । १६ लिङ्गानामतीतानागतादीनाम् । १७ अनुमानस्य । १८ लिङ्ग-
प्रकारेण । १९ परेण । २० अतीतकारणवादिपक्षे क्षणिकत्वेन नष्टादित्युच्यते
भाविकारणवादिपक्षे लिङ्गवत्तासमानत्वमनुत्पन्नं लिङ्गं चानुमानस्य कारणं तदभावे
अनुमानलक्षणकार्यानुदयात् । २१ सौगतेनोच्यते चेत् । २२ अतीतकारणवादिपक्षे
क्षणिकत्वेन । २३ भाविकारणवादिपक्षे लिङ्गवत्तासमानत्वमनुमानस्य कारणं तदभावे
कार्यानुदयात् । २४ अतीति भविष्यति काले । २५ लिङ्गम् । २६ अनुमानस्य ।
२७ वस्तु । २८ ज्ञानस्य भवति । २९ सम्पत्तरगोविषयवत् ।

१ "भिन्नकालस्यापि योग्यसंस्कारस्य ज्ञानेन ग्रहणात् । इदं यते हि—पूर्वचरादि-
लिङ्गप्रभवप्रत्ययाद्विन्नकालस्यापि प्रतिनिर्यतस्यैव शकटोदयाद्यर्थस्य ग्रहणम् ।"

सू० २।६० पृ० १६३ ।

२ "किञ्चैवंवादिनो कथं भिन्नकालं किञ्चिदपि लिङ्गं साध्यस्यानुमापकं स्यात् ?
अनुमापकत्वे वा किञ्चिदेकमेव ससादिलिङ्गमतीतस्य पात्रकादेरिव समस्तसाध्यतीताना-
गतानुमेयस्य प्रतिपत्तिहेतुः स्याद् भिन्नकालत्वाविशेषात् ।" सू० २।६० पृ० १६३ ।

जनकं भवेत्, तथा चान्योन्याध्यायैकस्यापि सिद्धिः । अथानु-
मानमेव जन्यम्, तत्रैव जन्यताप्रतीतेः; न, अनुमानव्यतिरेकेणार्थे
ग्राह्यतावैजान्यतायाः प्रतीत्यभावात् । न च स्वरूपमेव जन्यता;
लिङ्गेऽपि तत्सङ्गादेन जन्यताप्रसङ्गे । तथा चान्योन्यजन्यताल-
५ क्षणो दोषः स एवानुषज्यते । अर्थानयोः स्वरूपाविशेषेऽप्यनुमान
एव जन्यता लिङ्गापेक्षया, न तु लिङ्गे तदपेक्षया सेत्युच्यते; तर्हि
ज्ञानार्थयोस्तदविशेषेपि अर्थस्यैव ज्ञानापेक्षया ग्राह्यता न तु ज्ञान-
स्यार्थापेक्षया सेत्युच्यताम् । न चोत्पत्तिकरणाद्विज्ञानमनुमानस्यो-
त्पादकम्, तस्यास्ततोऽर्थान्तरानर्थान्तरपक्षयोरसम्भवात् । सा
१० हि यद्यनुमानादर्थान्तरम्; तदानुमानस्य न किञ्चित्कृतमित्यस्या-
भावः । अनुमानस्योत्पत्तिरिति सम्बन्धासिद्धिश्चानुपकारात् ।
उपकारे वाऽनवस्था । अथानर्थान्तरभूता क्रियते; तदानुमानमेव
तेन कृतं स्यात् । तथा चानुमानं लिङ्गं लिङ्गजन्यत्वादुत्तरलिङ्गक्ष-
णवत् । न च प्राक्तनानुमानोपादानजन्यत्वाच्चानुमानं लिङ्गम्;
१५ यतस्तदप्यनुमानमन्यतो लिङ्गाब्धेर्चाहि तदप्यनुमानं लिङ्गं तज्जन्य-
त्वादुत्तरलिङ्गक्षणवदिति तदनर्थं बोध्यम् । उत्तरमपि तदेवेति
चेत्, अनवस्था स्यात् । अथ तैर्वाप्रतीतेर्लिङ्गजन्यत्वाविशेषे किञ्चि-
द्विज्ञानमपरमनुमानम्; तर्हि ज्ञानजन्यत्वाविशेषेपि किञ्चिज्ज्ञानमप-
रोऽर्थ इति किञ्च स्यात् ? तथा च 'अथो ज्ञानं ज्ञानकार्यत्वादुत्तर-
२० ज्ञानवत्' इत्युक्तम् । न च गृहीतिविधीनादर्थस्य ग्राह्यतेर्न्यते;
स्वरूपप्रतिनियमात्तदभ्युपगमात् । यथैव ह्येकसामग्र्यधीनानां
रूपैर्दीनां चक्षुरादीनां समसमयेऽपि स्वरूपप्रतिनियमादुपैदाने-
र्तेरत्वव्यवस्था, तथार्थज्ञानयोर्ग्राह्यतेरत्वव्यवस्था च भविष्यति ।

ननु यथा प्रत्यासत्त्या ज्ञानमात्मानं विषयीकरोति तथैव चेदर्थं

१ लिङ्गेन । २ ता (पृष्ठी ब्रह्मन्तान्मनुस्मृत्यः) (१) । ३ अनुमानस्य । ४ लिङ्गा-
नुमानयोः । ५ परेण भवता । ६ परेण । ७ लिङ्गेन । ८ उत्पत्त्यनुपपत्त्येव ।
९ अगिज्ञा । १० लिङ्गेन । ११ ननु प्राक्तनमनुमानं लिङ्गादुत्पद्यते । १२ प्राक्तनम् ।
१३ लिङ्गतया अनुमानतया । १४ अनुमानस्य । १५ उत्तरक्षण । १६ किञ्च ।
१७ परिच्छिन्ति । १८ कारणात् । १९ जेनेः । २० अर्थग्राह्यतालक्षणस्य प्रति-
नियतत्वात् । २१ पूर्वक्षण । २२ उत्तर । २३ उत्तररूपरसयोः उत्तरचक्षुर्ज्ञानयोः ।
२४ सङ्कारिकारण । २५ ग्राहक । २६ भवभासते तज्ज्ञानमित्यनुमानस्य विषये
बाधक प्रमाणम् । २७ शक्या ।

१ “ननु यथा प्रत्यासत्त्या ज्ञानमात्मानं विषयीकरोति तथैव चेदर्थं तर्हि तयोरे-
कम्...अथान्वया तर्हि समावद्वयाप्रतिज्ञानस्य भवेत्, तदपि समावद्वयं यद्यपरेण

तयोरैक्यम् । न ह्येकस्वभाववेद्यमनेकं युक्तमन्यथैकमेव न किञ्चित्स्यात् । अथान्यथा; स्वभावद्वयापत्तिर्ज्ञानस्य भवेत् । तदपि स्वभावद्वयं यद्यपरेण स्वभावद्वयेनाधिगच्छति तदाऽनवस्था तद्वेदनेष्यपरस्वभावद्वयापेक्षणात् । ततः स्वरूपमात्रग्राह्ये ज्ञानं नार्थग्राहि; इत्यप्यसमीचीनम् ; स्वार्थग्रहणैकस्वभावत्वाद्विज्ञानस्य । स्वभाव-^५ तद्वत्पक्षोपक्षितदोषपरिहाराच्च स्वसंवेदनसिद्धौ भविष्यतीत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

कथञ्चैवंवादिनो रूपोदेः सजातीयैतरकर्तृत्वम् तत्रार्थैस्त्वे समानत्वात् ? तथा हि—रूपादिकं लिङ्गं वा यथा प्रत्यासत्त्यो सजातीयक्षेपं जनयति तथैव चेद्वैसादिकमनुमानं वा; तर्हि तैयो-^{१०} रैक्यमित्यनैतरवेव स्यात् । अथान्यथा; तर्हि रूपोदेरेकस्य स्वभावद्वयमायातं तत्र चानवस्था परापरस्वभावद्वयकल्पनात् । न सलुयेन स्वभावेन रूपादिकैकेकां शक्तिं विभर्ति तेनैवापरां तैयोरैक्यप्रसङ्गात् । अथ रूपादिकैकेकस्वभावमपि भिन्नस्वभावं कार्यद्वयं कुर्यात्तत्परणैकस्वभावत्वात्; तर्हि ज्ञानमप्येकस्वभावं स्वार्थयोः^{१५} सङ्गव्यतिकरव्यतिरेकेण ग्राहकमस्तु तद्ग्रहणैकस्वभावत्वात् । ननु व्यवहारेणै कार्यकौरणभावो न परमार्थतत्सैनौयमदोषः; तर्हि तेनैवाहमहमिकया प्रतीयमानेन ज्ञानेन नीलैवेर्ग्रहणसिद्धेः कथमसिद्धः सैतोऽवभासमानत्वलक्षणो हेतुर्न स्यात् ?

१ इन्द्रः । २ स्वार्थग्रहणः । ३ ज्ञान । ४ एकत्वमनवस्था च । ५ ज्ञानान्तरप्रसङ्गपक्षविक्षेपणन्ते । ६ ज्ञान । ७ ज्ञानाद्वैतपक्षे दोषपरिहारवित्तरथः । ८ स्वभावानवस्था मुभाणस्य । ९ रसादिलिङ्गं च (१) । १० सजातीयं जनयन्निजादीर्यजनवेद (१) । ११ उत्तररूपमुत्तरलिङ्गं च । १२ अनवस्थादिदोषस्य । १३ न्यावस्य । १४ पूर्वं । १५ दूमादि । १६ पूर्वं । १७ स्वभावेन । १८ शक्त्या । १९ उत्तर । २० रूपलिङ्गं च । २१ विजातीयम् । २२ विजातीयं । २३ रूपरसयोर्ज्ञानानुमानयोर्वा । २४ रूपं वा रसो वा लिङ्गं वा अनुमानं वा स्यात् । २५ लिङ्गस्य । २६ कर्तृ । २७ अन्यथा । २८ लिङ्गं च । २९ रूपादेः । ३० ज्ञानस्य । ३१ रूपादेः । ३२ उपलक्षणात् । ३३ साध्यसाधनभावादि । ३४ कारणेन । ३५ पदार्थस्य । ३६ शक्तिः । ३७ ज्ञानात् (ज्ञानेन) प्रकाशमानत्वात् ।

स्वभावद्वयेनाधिगच्छति तदानवस्था...; तदरमणीयम् ; स्वार्थग्रहणोभयस्वभावत्वाद्विज्ञानस्य ।”

सा० रत्ना० पृ० १६५ ।

१ “कथञ्चैवंवादिनो रूपादेर्लिङ्गस्य वा सजातीयैतरकर्तृत्वं तत्राप्यस्य पर्यनुयोगस्य समानत्वात् । तथा हि—रूपादिकं लिङ्गं वा यथा प्रत्यासत्त्या सजातीयक्षेपं जनयति तथैव चेद्वैसादिकमनुमानं वा तर्हि तयोरैक्यमित्यनैतरवेव स्यात् । अथान्यथा तर्हि रूपादेरेकस्य स्वभावद्वयमायातं तत्र चानवस्था ।”

सा० रत्ना० पृ० १६५ ।

न चैवंवादिनः स्वरूपस्य स्वतोऽवगतिर्घटते; समकालस्यास्य प्रतिपत्तावर्थवत् प्रैर्सङ्गात् । न च स्वरूपस्य ज्ञानतादात्म्यार्थाय दोषः; तादात्म्येति समानेतरकालविकल्पानतिवृत्तेः । ननु ज्ञानमेव स्वरूपम्, तत्कथं तत्र भेदमावी विकल्पोऽवतरतीति चेत् ? कुत ५ पतित् ? तथैव प्रतीतेऽप्येत्; इयं यद्यप्रमाणं कथमतस्तत्सिद्धिरिति प्रैर्सङ्गात् ? प्रमाणं चेत्; तर्हि स्वपरग्रहणस्वरूपताप्यर्थं तथैवास्त्वलं तत्रापि तद्विकल्पकल्पनया प्रैत्यक्षविरोधात् । तत्र स्वतोऽवमा-
समानत्वं हेतुरसिद्धत्वात् ।

नापि परितो वैद्यसिद्धत्वात् । न खलु सौगतः कस्यचित्परतोऽ-
१० वमासमानत्वमिच्छति । “नान्योऽनुभवो बुद्ध्यास्ति तस्या नानु-
भवोपरः” [प्रमाणवा० ३।३२७] इत्यभिधानात् । कैथं च सौच्यसा-

१ समकालो भिन्नकालो वायौ न आद्य इत्येवं वादिनो योगाचारस्य । २ ज्ञानस्य । ३ ज्ञानात् । ४ परिच्छिन्तिः । ५ देशान्तरस्यमपि स्वरूपं गृहीयात्समकालत्वे तदुत्पत्तिच्छक्षणसम्बन्धाभावात् । ६ देशान्तरस्यमपि स्वरूपं गृहीयात्समकालत्वात् । ७ दूषणम् । ८ अवयवप्रसङ्गच्छक्षणः । ९ भिन्न । १० अनतिक्रमणात् । ११ अपि न कुतोऽपि । १२ ज्ञानस्वरूपे । १३ प्रमाणात् । १४ ज्ञानमेव स्वरूपं । १५ ज्ञानस्य स्वरूपतया । १६ ज्ञानमेव स्वरूपसिद्धिः । १७ संक्षयादेरपि तत्सिद्धिः । १८ ज्ञानस्य । १९ अवयवग्रहणे । २० समानेतरकाल इत्यादि । २१ अन्यथा । २२ जैनस्य । २३ ज्ञानात् । २४ योगाचार । २५ अवयवः । २६ आद्यः । २७ आहकः । २८ आद्यआहकवैभुष्योत्सवं सैव प्रकाशते । (इति उच्यते चोक्तम्) । २९ सौगतैः परतः प्रतिभासानभ्युपगमे । ३० किञ्च ।

1 “नान्योऽनुभवस्त्येवास्ति तस्या नानुभवोऽपरः ।

तस्यापि तुल्यचोद्यत्वात् स्वयं सैव प्रकाशते ॥ प्रमाणवा० ३।३२७ ।
“बुद्ध्या योऽनुभूयते स नास्ति परः, यथा अन्योऽनुभवो नास्ति तथा निवेदितम् ।
तस्यास्तर्हि परोऽनुभवो दुर्देरस्तु; न; तथापि आद्यआहकच्छक्षणभावः । परं हि
संवेदनस्वरूपेऽवस्थितं कथं परस्यानुभवः साक्षात्करणादिकं प्रत्याख्यातम् । तत्संवेदनानु-
प्रवेक्षे च तद्वैरिक्तमेव स्यात्, तथा च स्वयं सैव प्रकाशते न ततः पर इति स्मृतम् ।”

प्रमाणवाचिकाङ्कार ।

2 “नच प्रकाशनच्छक्षणस्य हेतोः ज्ञानत्वेन व्याप्तिरितिर्वतः स्वरूपमात्रपर्ववसितं
ज्ञानं सर्वमवभासनं ज्ञान (नल) व्याप्तमिति नाभिगन्तुं समर्थम् । नच सकलसम्ब-
न्धप्रतिपत्तौ सम्बन्धप्रतिपत्तिः । उक्तं च—

द्विष्टसम्बन्धसंविधिर्नैकरूपप्रवेदनात् ।

द्वयस्वरूपग्रहणे सति सम्बन्धवेदनम् ॥”

सम्प्रति० टी० पृ० ४८३ ।

धनयोर्व्याप्तिः सिद्धा ? यतो 'यदवभासते तज्ज्ञानम्' इत्यादि सूक्तं स्यात् । न खलु स्वरूपमात्रपर्यवसितं ज्ञानं 'निखिलमवभासमानत्वं ज्ञानत्वव्याप्तम्' इत्यधिगन्तुं समर्थम् । न चाखिलसम्बन्धप्रतिपत्तौ सम्बन्धप्रतिपत्तिः । "द्विष्टसम्बन्धसंविक्तिः" [] इत्याद्यभिधानात् । न च विवक्षितं ज्ञानं ज्ञानत्वमवभासमानत्वं^५ चार्त्तन्येव प्रतिपद्य तयोर्व्याप्तिमधिगच्छतीत्यभिधातव्यम् ; तत्रैवानुमानप्रवृत्तिप्रसङ्गात् । तत्र च तत्प्रवृत्तेर्वैयर्थ्यं साध्यस्याध्यक्षेण सिद्धत्वात् । अथ सकलं ज्ञानमात्मन्यनयोर्व्याप्तिं प्रत्येतीत्युच्यते ; ननु सकलज्ञानाज्ञाने कथमेवं वादिना प्रत्येतुं शक्यम् ? न चासिद्धव्याप्तिकलिङ्गप्रभवादनुमानात्तथागतस्य समतसिद्धिः^{१०} परस्यापि तयोर्भूतार्त्तकार्योद्यनुमानादीश्वराद्यभिमतसाध्यसिद्धिप्रसङ्गात् । न ज्ञानयोः कुतश्चित् प्रमाणाद्व्याप्तिः प्रसिद्धा ; ज्ञानैव-जडस्यैपि परतो ग्रहणसिद्ध्या हेतोरनैकान्तिकत्वानुपपन्नात् ।

यदप्युक्तम्—जडस्य प्रतिभासायोगादिति, तत्राप्यप्रतिपक्ष-स्यास्य प्रतिभासायोगः, प्रतिपक्षस्य वा ? न तावदप्रतिपक्षस्यासौ^{१५}

१ निश्चितम् । २ बाहुं । ३ सम्बन्धिनोरवभासमानत्वज्ञानत्वयोः । ४ नैकरूप-प्रवेदनात् । इयोः स्वरूपग्रहणे सति सम्बन्धवेदनम् । ५ प्रत्यक्षमनुमानं वा । ६ स्वसिद्धेः । ७ अवभासमानत्वज्ञानत्वयोः । ८ परेण । ९ अन्यथा । १० ज्ञानस्य । ११ जानाति । १२ परेण । १३ अपरिज्ञाने (सति) । १४ सकलं ज्ञानमित्यादिवादिना । १५ नीकादीनां ज्ञानरूपतासिद्धिः । १६ बीगादेरपि । १७ असिद्धव्याप्तिकलिङ्ग । १८ कार्यादेहेतोरुपपन्नानुमानात् । १९ सा हेतोः सम्बन्धिः । २० किञ्च । २१ अन्यथा । २२ साध्यसाधनज्ञानयोर्व्याप्तिज्ञानेन ग्रहणम् । २३ नीकादेरर्थस्य । २४ ज्ञानात् । २५ प्रतिभासमानत्वादित्यस्य । २६ परेण । २७ परेण त्वभावात्तस्य ।

१ "सद्युक्तमग्निः—इयसम्बन्धसंविक्तिर्नैकरूपप्रवेदनात् ।..."

तत्कार्यस्ये० पृ० ४२१ ।

२ "अथ ज्ञानत्वस्य प्रकाशनयोः साध्यसाधनयोः कुतश्चित्प्रमाणाद् व्याप्तिप्रसिद्धिः पारमार्थिकी ; ज्ञानवज्जडस्यापि परतो ग्रहणसिद्धेरनैकान्तिकत्वप्रसङ्गे ।"

संयति० टी० पृ० ४८४ ।

३ "जडस्य प्रतिभासायोगोऽप्यप्रतिपक्षस्य प्रतिपक्षमन्यः, शक्यत्वे वा सन्ताना-मरस्यापि स्वप्रकाशायोयः प्रतिपक्षस्यः इति तस्याप्यभावाः प्रसक्तः । तथा च परप्रतिपादनार्थं प्रकृतहेतुपन्थासो व्यर्थः । अथ प्रतिपक्षस्य जडस्य प्रकाशायोयः ; तथापि विरोधः—जडः प्रतीयते प्रकाशायोयस्य इति ।"

संय० टी० पृ० ४८४

"यदप्युच्यते—जडस्य प्रतिभासायोगादिति ; तत्राप्यप्रतिपक्षस्य प्रतिभासायोगः प्रक्षि-पन्नस्य वा ।"

स्या० रत्ना० पृ० १६५ ।

प्रत्येतुं शक्यः, अन्यथा सन्तानान्तरस्याप्रतिपक्षस्य स्वप्रतिभासा-
योगस्यापि प्रसिद्धेस्तस्याप्यभावः । तथा च तत्प्रतिपादनार्थं
प्रकृतहेतूपन्यासो व्यर्थः । अथ सन्तानान्तरं स्वस्य स्वप्रतिभासयोगं
स्वयमेव प्रतिर्पद्यते, जडस्यापि प्रतिभासयोगं तदेव प्रत्येतीति
५ किञ्चेत्येते ? प्रतीतेरुभयत्रापि समानत्वात् । अथाऽप्रतिपक्षेपि जडे
विचारात्तद्व्योगः, ननु तेनाप्यस्याविषयीकरणे स एव दोषो
विचारस्तत्र न प्रवर्तते । 'तैत एव वात्र तद्व्योगप्रतिपत्तिः' इति
विषयीकरणे वा विचारवत्प्रत्यक्षादिनाप्यस्य विषयीकरणात्प्रति-
भासायोगोऽसिद्धः । न च प्रतिपक्षस्य जडस्य प्रतिभासायोग-
१० प्रतिपत्तिरित्यभिधीतव्यम् ; 'जडप्रतीतिः, प्रतिभासायोगश्चास्य'
इत्यन्योन्यविरोधात् ।

सांध्यविकलश्चायं दृष्टान्तः, नैयायिकादीनां सुखादौ ज्ञानरूप-
त्वासिद्धेः । अस्मादेव हेतोस्तत्रापि ज्ञानरूपतासिद्धौ दृष्टान्तान्तरं
मुग्यम् । तत्राप्येतच्चोद्ये तदन्तरान्वेषणमित्यनवस्था । नीलादेर्द-
१५ द्रष्टान्तत्वे चान्योऽन्याश्रयः-सुखादौ ज्ञानरूपतासिद्धौ नीलादेस्तशि-
दर्शनात्तद्रूपतासिद्धिः, तस्यां च तस्मिन्दर्शनात्सुखादेस्तद्रूपतासिद्धि-
रिति । न च सुखादौ दृष्टान्तमन्तरेणापि तत्सिद्धिः, नीलादावपि
तथैव तदापत्तेस्तत्र दृष्टान्तवचनमनर्थकमिति निग्रहाय जायेत ।

अर्थं सुखादेरज्ञानत्वे-तैतः पीडानुग्रहौभावो भवेत् । ननु
२० सुखादेव पीडानुग्रहौ, ततो भिन्नौ वा ? प्रथमपक्षे-कं ज्ञानत्वेन
व्याप्तौ तौ प्रतिपक्षौ, यतस्तदभावे न स्याताम् । व्यापकाभावे हि

१ शिष्यादिकम् । २ सौमतेः । ३ स्वरूपेण । ४ बोधनार्थं । ५ प्रतिभास-
मानत्वात् । ६ ता । ७ संबन्ध । ८ जानाति । ९ परेण । १० सौमतेः ।
सर्व । ११ सन्तानान्तरप्रतिभासयोगे जडप्रतिभासयोगे च । १२ प्रतिभासायोगः ।
१३ विचारात् । १४ जडस्य विचारेण । १५ अनुभास । १६ जडस्य ।
१७ द्वितीयविकल्पस्य । १८ असम्भव । १९ परेण । २० ज्ञान । २१ सुखादिः ।
२२ प्रतिभासमानत्वादित्यस्यात् । २३ सुखादिष्वपि ज्ञानं भवतीति साध्यं प्रतिभास-
मानत्वात् । दृष्टान्तेन आर्थं द्यत । २४ जडवशात्तत्वे तज्ज्ञानमित्यनुमाने ।
२५ दुःख । २६ सुखादुःखात् । २७ सपकार । २८ जन्मवद्दृष्टान्ते । २९ परेण ।

१ "नच नैयायिकादीन् प्रति सुखादेशानता सिद्धेति साध्यविकलता दृष्टान्तस्य..."

संमति० टी० पृ० ४८४ ।

स्वा० रत्ना० पृ० १६७ ।

२ "अथ सुखादेरज्ञानत्वे ततोऽनुग्रहाभावो भवेत्, ननु किं सुखमेवाऽनुग्रहः,

नत ततो भिन्नम् ?..."

संमति० टी० पृ० ४८५ ।

नियमेन व्याप्याभावो भवति । अन्यथा प्राणादेः सात्मकत्वेन कैचिद्व्याप्त्यसिद्धावप्यात्माऽभावे स न भवेत् ततः केवलव्यतिरेकि-
हेत्वगमकत्वप्रदर्शनमयुक्तम् । तन्नाद्यर्पक्षः । नापि द्वितीयो यतो
यदि नाम सुखदुःखयोर्ज्ञानत्वाभावेः, अर्थान्तरभूतानुग्रहाद्यभावे
किमायातम् ? न खलु यद्वदत्तस्य गौरत्वाभावे देवदत्ताभावो ५
दृष्टः । ननु सुखादौ जैनस्य प्रकाशमानत्वं ज्ञानरूपतया व्याप्तं
प्रसिद्धमेवेत्यप्यसारम् ; यतः स्वतः प्रकाशमानत्वं ज्ञानरूपतया
व्याप्तं यत्तस्यात्र प्रसिद्धे तन्नीलौघये(थे) नास्तीत्यसिद्धो हेतुः । यत्तु
परतः प्रकाशमानत्वं तत्र प्रसिद्धं तत्र ज्ञानरूपतया व्याप्तम् ।
प्रकाशमानत्वमात्रं च नीलादावुपलभ्यमानं जडत्वेनाविरुद्धत्वं १०
नैकान्ततो ज्ञानरूपतां प्रसाधयेत् ।

यदप्युक्तम्-तैमिरिकस्य द्विचन्द्रादिवत्कर्त्रादिकमविद्यमानमपि
प्रतिभातीति, तदपि स्वमनोरथमात्रम्, अत्र धौधकप्रमाणाभा-
वात् । द्विचन्द्रादौ हि विपरीतार्थख्यापकस्य बाधकप्रमाणस्य

१ ज्ञानत्वेन पीडानुग्रहयोर्भावोऽप्यसिद्धापि ज्ञानाभावे पीडानुग्रहयोरभावो यदि ।
२ कञ्चासादेः । ३ अन्ययद्वष्टान्ते । ४ वटादौ । ५ सौगवस । ६ भेयात् ।
७ तदि । ८ पीडा । ९ दूषणम् । १० दृष्टान्ते । ११ दाद्यन्तिके । १२ सुतीपो
विकल्पः । १३ आपमानं । १४ सर्वथा । १५ परेण । १६ पुरुषस्य । १७ सौगत ।
१८ षट्महामात्मना वेणीति कर्त्रादौ । १९ नेदं कर्त्रादिकमिति । २० एकचन्द्र ।

१ “सम्प्रति द्वयोरेव सन्देहे जनैकान्तिकत्वं बहुमाह अनयोरेव जनय-व्यति-
रेकरूपयोः सन्देहात् संशयहेतुः । उदाहरणम्—

“सात्मकं जीवच्छरीर प्राणादिभस्यादिति ।” (१० १०५)

कलादनैकान्तिकः ।

“साध्येतरयोरतो निश्चयाभावात्”

साध्यस्य इतरस्य च विरुद्धस्य सन्दिग्धान्वयव्यतिरेकाभिधायिभावात् । सपक्षविपक्ष-
योर्हि सपक्षस्य (सदस्यस्य) सन्देहेन साध्यस्य न विरुद्धस्य सिद्धिः । नच सात्मक-
नात्मकान्यां च परः प्रकारः संभवति । ततः प्राणादियस्यात् भूमिणि जीवच्छरीरे सहायः
आत्मभावभावयोरित्यनैकान्तिकः प्राणदिरिति ।”

न्यायमिन्दु पृ० ११० ।

२ “यद्येदम् ‘नीलमहं वेधि’ इति ज्ञानं तैमिरिकस्य द्विचन्द्रदर्शनवद्भ्रान्तमिति;
असदेतत् ; अनाभ्यमानत्वात् । तथाहि-तैमिरिकस्य तिमिरविनाशादूर्ध्वनेकत्वज्ञाने
सति द्विचन्द्रदर्शनं भ्रान्तमिति प्रतिभाति अनुत्पत्तिमिरस्यान्वयः, नेवं नीलमिलादिज्ञाने
विपरीतार्थग्राहकप्रमाणानुपपत्तेर्मिथ्यात्वमिति ।”

प्रज्ञ० व्योमवती पृ० ५३० ।

सद्भावाद्युक्तमसत्यतिभासनम्, न पुनः कर्त्रादेः, तत्र तद्विपरी-
ताद्वैतप्रसाधकप्रमाणस्य कस्यचिदसम्भवनाऽयाधकत्वात् । प्रति-
पादितश्च बाध्यबाधकभावो ब्रह्माद्वैतविचारे तदलमतिप्रसङ्गेन ।
अद्वैतप्रसाधकप्रमाणसद्भावे चैतद्वैतपक्षितो नाद्वैतं भवेत् । प्रमाणा-
५ भावे चाद्वैताप्रसिद्धिः प्रमेयप्रसिद्धेः प्रमाणसिद्धिनिवन्धनत्वात् ।

किञ्चाद्वैतमित्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधः, पर्युदासो वा ? प्रसज्यपक्षे
नाद्वैतसिद्धिः । प्रतिषेधमात्रपर्यवसितत्वात्तस्य । प्रधानोपसर्जन-
भावेनाङ्गोक्तिर्भाष्यकल्पनायामपि द्वैतप्रसङ्गः । पर्युदासपक्षेपि द्वैत-
प्रसक्तिरेव प्रमाणप्रतिपक्षस्य द्वैतलक्षणवस्तुनः प्रतिषेधेनाऽद्वैत-
१० प्रसिद्धेरन्युपगमात् । द्वैतादद्वैतस्य व्यतिरेके चैतद्वैतानुपपन्न-
एव । अव्यतिरेकेपि द्वैतप्रसक्तिरेव भिन्नादभिन्नस्याभेदे(दं)विरो-
धात् ॥ छ ॥

१ एकत्व । २ कर्त्रादेः । ३ कैनेन मया । ४ बाध्यबाधकभावसमवेनेन ।
५ किंच । ६ प्रमाणमेकमद्वैतमेकं चेति द्वैतापत्तिः । ७ प्रसक्तस्य प्रतिषेधः प्रसज्यः ।
८ सङ्ख्ययाही पर्युदासः । ९ द्वैतनिषेधस्य प्रधानभावेन अद्वैतविषयप्रधानत्वेन ।
१० गौण । ११ कृत्वा । १२ विशेषण । १३ विशेष्य । १४ इदं विशेष्यमिदं च
विशेषणमिलनेन प्रकारेण द्वैतप्रसङ्गः । १५ मिश्रत्वे । १६ किञ्च । १७ द्वैतात् ।
१८ अद्वैतस्य । अन्यतिरिक्तस्य । १९ एकत्वे ।

१ हेतोरद्वैतसिद्धिरेव द्वैतं सायेतुसाध्ययोः ।
हेतुना चेदिना सिद्धिर्द्वैतं बाध्यामयो न किञ्च ॥”

आप्तमीमांसा का० २६ । अष्टसह० पृ० १६० ।

“अद्वैतप्रतिपादकस्य प्रमाणस्य सद्भावे द्वैतापत्तिरिति नाद्वैतम् । प्रमाणाभावे अद्वैता-
सिद्धिः ।” समति० टी० पृ० ४९८ ।

२ “अद्वैतं न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना ।
सन्निहः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्याइते कचिद ॥”

आप्तमीमांसा का० २७ । अष्टसह० पृ० १६१ ।

“किञ्च, अद्वैतमित्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधः, पर्युदासो वा ?...द्वैतादद्वैतस्य व्यतिरेके
च द्वैतप्रसक्तिरेव, परस्परव्यावृत्तस्वरूपाव्यावृत्तात्मकत्वे तस्य द्विरुपपत्तयः । अव्यतिरेके
पुनर्द्वैतप्रसक्तिः ।” समति० टी० पृ० ४९८ ।

३ अस्य च विज्ञानाद्वैतवादस्य विविचरीत्या खण्डनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—
शाबरभा० बृहती, पञ्जिका, शास्त्रदीपिका १।१।५। मीमांसासूत्रे० निरालम्बनवाद ।
योगसूत्रे०, व्यासभा०, तत्त्ववे० ४।१।४। ब्रह्मसूत्रे० सूत्रे० भा० आत्मती २।१।२।
विधिवि० पृ० २५४ । न्यायसं० पृ० ५२६ । आप्तमी०, अष्टसह०, अष्टसह०
पृ० २४२ । न्यायकुमुद० पृ० ११९ । तत्त्वप्रज्ञ० पृ० ४५ । तत्त्वार्थसूत्रे० पृ० ६६ ।
संमतिटी० पृ० ३४९ । सा० रत्ना० पृ० १४९ । स्वा० सं० का० २६ ।

एतेन “चित्रप्रतिभासाप्येकैव बुद्धिर्वाह्यचित्रविलक्षणत्वात्, शक्यविवेचनं हि वाह्यं चित्रमशक्यविवेचनास्तु बुद्धेर्नीलादय आकारः” इत्यादिना चित्राद्वैतमप्युपवर्णयन्नपाकृतः; अशक्य-विवेचनत्वस्यासिद्धेः । तद्धि बुद्धेरभिन्नत्वं वा, सहोत्पन्नानां नीलादीनां बुद्ध्यन्तरपरिहारेण विवक्षितबुद्ध्यैवानुभवो वा, मेदेन ५ विवेचनाभावमीदं वा प्रकारान्तरासम्भवात्? तत्राद्यपक्षे साध्य-समो हेतुः; तथाहि—यदुक्तं भवति—‘बुद्धेरभिन्ना नीलादयस्ततोऽ-भिन्नत्वात्’ तदेवोक्तं भवति ‘अशक्यविवेचनत्वात्’ इति । द्विती-यपक्षेप्यनैकान्तिको हेतुः; सचराचरस्य जगतः सुगतज्ञानेन सहोत्पन्नस्य बुद्ध्यन्तरपरिहारेण तज्ज्ञानस्यैवं ग्राह्यस्य तेन सहै- १० कत्वाभावात् । एकत्वे वा संसारी सुर्यतः संसारिणो वा सर्वे सुगता भवेयुः, संसारेर्तरूपता चैकस्य ब्रह्मवादं समर्थयते । अथ सुगतसप्ताकालेऽन्यस्योत्पत्तिरेव नेष्यते तत्कथमयं दोषः? नन्वेवं “प्रमाणभूताय” [प्रमाणसमु० १।१] इत्यादिना कैनासौ स्तूयते? कथं चापराधीनाऽसौ येनोच्यते— १५

“तिष्ठन्त्येव पराधीना येषां च महती कृपा” [प्रमाणवा० २।१९९] इत्यादि । न खलु वन्द्यासुताधीनः कश्चिद्भविष्यति ।

१ शानाद्वैतनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । २ नानाप्रकार । ३ पूर्ववादे ज्ञानगतानां नीलायाकाराणां आन्तत्वं । अत्र (चित्राद्वैतवादे) ज्ञानगतकाराणां सत्त्वत्वं । ४ विसृष्टम् । ५ असिद्धो हेतुरित्युक्ते सत्याह । ६ मध्यमस्तन्मादि । ७ इदं बुद्धिर्मी नीलादय आकारा इति विभागः कर्तुं न शक्यते । ८ योगाचारः । ९ नीलादीनाम् । १० बुद्ध्या सह भाव्युत्तानाम् । ११ स्वरूपम् । १२ साध्येन समं हेतुं दर्शयति । १३ साध्यमेवोक्तं भवति । १४ साध्यमेवोक्तं भवति । १५ नाम्नज्ञानस्य । १६ जग-दभिन्नत्वात् । १७ सुगताभिन्नत्वात्सुगतस्वरूपत्वात् । १८ असंसारः । १९ सुगतस्य । २० परेण मया । २१ पुरुषेण । २२ भगवा । २३ सुगताः । २४ (निर्वाणोपि-गेऽपि) परागतेः (परे ग्राप्ते) कृपादीकृतचेतस इत्यलोत्तरमर्थं वेद्यम् । २५ ना ।

१ “किमिदमशक्यविवेचनत्वं माम-ज्ञानाभिन्नत्वम्, सहोत्पन्नानां नीलादीनां ज्ञानान्तरपरिहारेण तज्ज्ञानेनैवानुभवः, मेदेन विवेचनाभावमार्त्तं वा ?”

न्यायकुसु० पृ० १२७ ।

२

“अकल्पकस्यासङ्गवेधभावनापरिवर्द्धिताः ।

तिष्ठन्त्येव पराधीना येषां तु महती कृपा ॥”

अभिसमयाङ्कारालोक पृ० १३४ ।

“तदुक्तम्—निर्वाणेऽपि परे ग्राप्ते कृपादीकृतचेतसान् ।

तिष्ठन्त्येव पराधीना येषां तु महती कृपा ॥” न्यायकुसु० पृ० ५ ।

मार्गोपदेशोपि व्यर्थो विनेयाऽसत्त्वात् । नापि ततः कश्चित्सौगती-
गतिं गन्तुमर्हति । सुगतसत्ताकालेऽन्यस्यानुत्पत्तेस्तत्कालश्चात्य-
न्तिक इति । बुद्ध्यन्तरपरिहारेण विवक्षितबुद्ध्यैवानुभवश्चासिद्धः,
नीलादीनां बुद्ध्यन्तरेणाप्यनुभवात् । ज्ञानरूपत्वात्तत्सिद्धौ चान्यो-
५ न्याश्रयः—सिद्धे हि ज्ञानरूपत्वे नीलादीनां बुद्ध्यन्तरपरिहारेण
विवक्षितबुद्ध्यैवानुभवः सिद्ध्येत्, तत्सिद्धौ च ज्ञानरूपत्वमिति ।
मेदेन विवेचनाभावमात्रमप्यसिद्धम् ; बहिरन्तर्देशसम्बन्धित्वेन
नीलतज्ज्ञानयोर्विवेचनप्रसिद्धेः । एकस्याक्रमेण नीलाद्यनेका-
कारव्यापित्ववत् क्रमेणाप्यनेकपुखाद्याकारव्यापित्वसिद्धेः सिद्धः
१० कथञ्चिदक्षणीको नीलाद्यनेकार्थव्यवस्थापैकः प्रमातेत्यद्वैताय दत्तो
जलाश्लिः ॥ छ ॥

ननु चाक्रमेणाप्येकस्यानेकाकारव्यापित्वं नैर्ज्यते ।

“किं स्यात्सौ चित्रतैकस्यां न स्यात्तस्यां मतावपि ।

यदीदं स्वयमर्थम्यो रोचते तत्र के वयम् ॥”

१५

[प्रमाणवा० ३१२१०]

१ अन्योत्पत्तिरहिता (१) । २ सत्तादिणामेवोत्पत्तिरहितः (१) । ३ किञ्च । ४ एकस्य
बोधस्य । ५ चित्राद्वैतादिनः । ६ दुर्गपद । ७ आहकः । ८ पुरुषः । ९ जैनं
प्रति भाष्यमिहो मूते । १० भावस्य । ११ परेण मया भाष्यमिहो । १२ मम
दूषणं किं स्यात् । १३ चित्रत्वेनाभिप्रेताया मता एकस्यां सा चित्रता न स्यात्तदा
किं स्यान्मम दूषणम् । १४ प्रसिद्धा । १५ चित्रत्वेनाभिप्रेताया । १६ दुद्धौ ।
१७ चित्रत्वम् । १८ ज्ञानेभ्यः ।

१ “अक्षयविवेचनत्वं साधनमसिद्धमुक्तम्—नीलतद्देदनवोः अक्षयविवेचनत्वा-
सिद्धेः, अन्तर्बहिर्देशतया विवेकेन प्रतीतेः ।” अष्टसह० पृ० २५४ ।

२ “अत्र देवेन्द्रव्याख्या—यदि नमैकस्यां मता न सा चित्रता भावतः स्यात् ।
किं स्यात् को दोषः स्यात् । तथा च भावतश्चित्रता मत्ता माया अपि विना सिध्यति”
सद्वदेव च सत्या मविष्यन्तीति प्रहुरभिप्रायः । आहकार आह—न स्यात्तस्यां मतावपि
इति । व्याहृतनेतव—एकं चित्रं च इति । एकत्वे हि सत्यनानारूपाणि वस्तुतो
नानाकारतया प्रलभमासते न पुनर्भावतस्ते तस्य आक्षरः सन्तीति नलादेष्टव्यम् ।
एकत्वद्वानिप्रसंगात् । नहि नानात्वैकत्वयोः सितोरन्वयः कश्चिदाज्योऽप्यत्र आविका-
न्यामाकारमेदामेदाभ्याम् । तत्र यदि बुद्धिर्भावतो नानाकारैका चेव्यते तदा सकलं
विश्वमप्येकं द्रव्यं स्यात्, तथाच सद्योत्पत्त्यादिदोषः । तस्माच्चैकाऽनेकाकारा । किन्तु
यदीदं स्वयमर्थानां रोचते अतद्रूपाणां सता यदेतत्ताद्रूप्येण प्रख्यानं तदेतदस्तु
यत्र स्थितं तत्त्वमिति । तत्र के वयं विवेच्यारः ? प्रथमस्तु ह्यनुमन्यत इति ।”

सो० रेखा० पृ० १८० ।

इत्यभिधानात् । तत्कथं तद्दृष्टान्तावष्टम्भेन क्रमेणाप्येकस्या-
नेकाकारव्यापित्वं साध्येत ? तदप्यसमीचीनम् ; एवंमतिस्वप्ने-
क्षिकया विचारयतो माध्यमिकस्य सकलशून्यतानुषङ्गात् ।
तथा हि-नीले प्रवृत्तं ज्ञानं पीतादौ न प्रवर्तते इति पीतादेः
सन्तानान्तरवदभावः । पीतादौ च प्रवृत्तं तन्नीले न प्रवर्तते ५
इत्यस्याप्यभावस्तद्वत् । नीलकुचलयस्वप्नांशे च प्रवृत्तिमज्ञं ज्ञानं
नेतरांशनिरीक्षणे क्षममिति तदंशानामप्यभावः । संविदितांशस्य
चावशिष्टस्य स्वयमनंशस्याप्रतिभासनात्सर्वाभावः । नीलकुचल-
यादिसंवेदनस्य स्वयमनुभवात्सत्त्वे च अन्यैरनुभवात्सन्तानान्तरा-
णामपि तद्वत् । अथान्यैरनुभूयमानसंवेदनस्य सद्भावासिद्धेस्तेषां १०
मभावः, तर्हि तन्निषेधासिद्धेस्तेषां सद्भावः किञ्च स्यात् ? अथ
तत्संवेदनस्य सद्भावासिद्धिरेवार्थसिद्धिः, नन्वेवं तन्निषेधा-
सिद्धिरेव तत्सद्भावसिद्धिरस्तु । अर्थाभावाभ्यां परसंवेदनसन्देहे
चैकान्ततः सन्तानान्तरप्रतिषेधासिद्धेः । कथं च ग्रामारामादि-
प्रतिभासे प्रतीतिभूधरशिखराकृढे सकलशून्यताभ्युपगमः प्रेक्षा- १५
वता युक्तः प्रतीतिबाधनात् ? दृष्टहानेरदृष्टकल्पनायाश्चानुषङ्गात् ।

किञ्च, अखिलशून्यतायाः प्रमाणतः प्रसिद्धिः, प्रमाणमन्तरेण

१ नोपपत्तिः । २ भवता जनेन । ३ चित्रकज्ञानस्य ज्ञानात्मसमर्पणप्रकारेण ।
४ शानेन । ५ उद्धृतम् । ६ नीलकुचलयः । ७ चित्र । ८ लेनेन । ९ नीलकुचल-
यस्य । १० सन्तानान्तरेः । ११ स्वयम् । १२ नो माध्यमिकम् । १३ सन्तानान्तरेः ।
१४ स्वयम् । १५ नीलकुचलयसंवेदनवादिनं प्रति । १६ साधकप्रमाणाभावात् ।
१७ साधकप्रमाणाभावात् । १८ नो माध्यमिकम् । १९ अन्यैरनुभूयमानसंवेदनस्य ।
२० माध्यमिको भूते—अन्यसंवेदनसद्भावे साधकं प्रमाणं नोपपन्नं यत्रात्रिः ।
असाधिश्व साधकं प्रमाणं नोपपन्नमिति परसंवेदनसन्देहः (इत्युक्ते जैनः ग्राहः) ।
२१ ग्रामादि । २२ सकलशून्यत्वस्य ।

१ “नन्वेवं नीलसंवेदनस्यापि प्रतिपरमाणुमेवाह नीलानुसंवेदनैः परस्पर निषेध-
वितर्कं तत्र एकलीलपरमाणुसंवेदनस्याप्येवं वेद्यवेदकसंविदाश्चरमेवाह त्रितयेन भवि-
तव्यम् । वेद्याकारादिसंवेदनत्रयस्यापि प्रत्येकमपरस्परवेद्यादिसंवेदनत्रयेण इति परा-
परवेदनत्रयकल्पनादनवसानाच्च कविदेकवेदनसिद्धिः संविदद्वैतसिद्धिर्नाम् ।”

अष्टसह० पृ० ७७ । न्यायकुसु० पृ० १३४ ।

२ “प्रमाणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् । न्यायसू० ४।२।३०। “कथं च सति सर्वं
नास्तीति नोपपद्यते । कस्मात् ? प्रमाणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम्, यदि सर्वं नास्तीति
प्रमाणमुपपद्यते, ‘सर्वं नास्ति’ इत्येतद्व्याहृत्यते । अथ प्रमाणं नोपपद्यते ; सर्वं नास्तीत्यस्य
कथं सिद्धिः ? अथ प्रमाणमन्तरेण सिद्धिः ; सर्वमस्ति इत्यस्य कथं सिद्धिः ?”

प्र० क० भा० ९

चा ? प्रथमपक्षे कथं सकलशून्यता वास्तवस्य तत्सद्भावावेदक-
प्रमाणस्य सद्भावात् ? द्वितीयपक्षे तु कथं तस्याः सिद्धिः प्रमेय-
सिद्धेः प्रमाणसिद्धिनिवन्धनत्वात् ? तदेवं सुनिश्चितासम्भवद्वाध-
कप्रमाणत्वात् प्रतीतिसिद्धमर्थव्यवसायात्मकत्वं ज्ञानस्याभ्युप-
५ गन्तव्यम्, अन्यथाऽप्रामाणिकत्वप्रसङ्गः स्यात् ॥ छ ॥

अथेदानीं प्राक् प्रतिज्ञातं स्वव्यवसायात्मकत्वं ज्ञानविशेषणं
व्याचिंस्यासुः खोन्मुखतयेत्याद्याह—

खोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ॥ ६ ॥

स्वस्य विज्ञानस्वरूपस्योन्मुखतोऽल्लेखिता तया इतीर्थमावे भो ।
१० प्रतिभासनं संवेदनमनुभवनं स्वस्य प्रमाणत्वेनाभिप्रेतविज्ञानस्वरू-
पस्य सम्बन्धी व्यवसायः ।

स्वव्यवसायसमर्थनार्थमर्थव्यवसायं स्वपरप्रसिद्धम् 'अर्थस्य'
इत्यादिना दृष्टान्तीकरोति ।

अर्थस्येव तदुन्मुखतया ॥ ७ ॥

१५ इवशब्दो यथार्थे । यथाऽर्थस्य घटादेस्तदुन्मुखतया खोल्लेखि-
तया प्रतिभासनं व्यवसायः तथा ज्ञानस्यापीति ।

सौन्मत्तम्—न ज्ञानं स्वव्यवसायात्मकमचेतनत्वाद् घटादिवत् ।
तदचेतनं प्रधानविवर्तत्वात्तद्वत् । यस्तु चेतनं तस्य प्रधानविवर्तः,
यथात्मा; इत्यप्यसङ्गतम्; तस्यात्मविवर्तत्वेन प्रधानविवर्तत्वा-
२० सिद्धेः; तथाहि-ज्ञानविवर्तवानात्मा हंपृत्वात् । यस्तु न तथा स

१ पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञानस्यार्थव्यवसायात्मकत्वे समर्थिते सति । २ व्याख्या-
मिच्छुः । ३ ग्राहकता । ४ तृतीया । ५ बादिप्रतिबादिप्रसिद्धम् । ६ कर्ष । ७ तस्य
सादृश्यस्य । ८ ज्ञानम् । ९ ज्ञानस्य । १० पर्वोपत्तेन । ११ जैनानुष्ठानम् ।
१२ चेतनवित्त्वात् ।

न्यायभा० ४।२।३० प्रस० व्योमवती ५० ५३२ । अष्टसह० ५० ११५ ।
संन्यति० टी० ४५५ । स्वा० म० का० १७ । रत्नाकरावता० ५० ३२ ।

१ “प्रकृतेर्महान् ततोऽहङ्कारः...” साख्यका० २२ ।

“तस्याः प्रकृतेर्महान् उत्पद्यते प्रथमः कश्चित् । महान् पुष्टिः मतिः प्रभा
संनित्तिः स्थाप्तिः चित्तिः स्मृतिरासृती हरिः हरः हिरण्यगर्भ इति पर्वायाः ।”

भाठवृत्ति, गौडपादभा० २२ । साख्यसं० ५० ६ ।

२ “तथापरिणामवानात्मा दृष्ट (दृ) त्वात् । यस्तु ज्ञानपरिणामवान् भवति नातो
द्रष्टा यथा ओद्यादिः, द्रष्टा चात्मा तस्मान्ज्ञानपरिणामवानिति ।” स्वा० रत्ना० ५० २३४ ।

न द्रष्टा यथा घटादिः, द्रष्टा चात्मा तस्मात्तद्विवर्धमानिति । प्रधानस्य ज्ञानवत्त्वे तु तस्यैव द्रष्टृत्वानुबन्नादात्मकल्पनानर्थक्यम् । 'चेतनोऽहम्' इत्यनुभवाच्चैतन्यस्वभावतावच्चैतमनो 'ज्ञाताऽहम्' इत्यनुभवाद् ज्ञानस्वभावताप्यस्तु विशेषाभावात् । ज्ञानसंसर्गात् 'ज्ञाताऽहम्' इत्यात्मनि प्रतिभासो न पुनर्ज्ञानस्वभावत्वादित्यप्य-^५ समीक्षिताभिधानम् । चैतन्यादित्यस्वभावस्याप्यभावप्रसङ्गात् । चैतन्यसंसर्गाद्धि चेतनो भोक्तृत्वसंसर्गाद्भोक्तृकौदासीन्यसंसर्गादुदासीनः शुद्धिसंसर्गाच्छुद्धो न तु स्वभावतः । प्रत्यक्षादिप्रमाणबाधोर्मयत्र । न खलु ज्ञानस्वभावताविकैलोऽयं कदाचनान्यर्तुभूयते, तद्विकलस्यानुभवविरोधात् । १०

आत्मनो ज्ञानस्वभावंत्वेऽनित्यत्वापत्तिः प्रधानेऽपि समाना । तत्परिणामस्य व्यक्त्यनित्यत्वोपगमात् अदोषे तु, आत्मपरिणामस्यापि ज्ञानविशेषादेरनित्यत्वे को दोषः ? तस्यात्मनः कथञ्चिद्व्यतिरेके भर्तृत्वप्रसङ्गः प्रधानेऽपि समानः । व्यक्त्यव्यक्तयोरेव्यतिरेकेऽपि व्यक्तमेवानित्यं परिणामत्वाच्च पुनरव्यक्तं परिणामित्वा-^{१५} दित्यभ्युपगमे, अत एव ज्ञानात्मनोरेव्यतिरेकेऽपि ज्ञानमेवानित्यमस्तु विशेषाभावात् । आत्मनोऽपरिणामित्वे तु प्रधानेऽपि तदस्तु ।

१ ज्ञान । २ आकाश्यान् । ३ चैतन्यस्वभावतया अनुभवः, ज्ञानस्वभावताया अनुभव इत्यभिधेयः । ४ कर्म तथा हि । ५ नैवेत्य । ६ आत्मनश्चैतन्यादित्यस्वभावाभावे ज्ञानस्वभावाभावे च । ७ आत्मा । ८ आत्मा आत्मना । ९ ज्ञानमनित्यमिति वचनात् ज्ञानस्वरूपवत् । १० महदादेः । ११ ज्ञानादेः । १२ प्रधानस्यानित्यत्वापत्तिकृणोऽदोषः । १३ का । १४ अभेदे । १५ आत्मनः । १६ विनश्रत्वे । १७ महदादेः । १८ प्रधानस्य ।

१ "वदु ज्ञानसंसर्गाज्ज्ञाताऽहमित्यात्मनि प्रतिभासो न पुनर्ज्ञानस्वभावत्वादिति चेत्; तदपि व्यावहारिकः चैतन्यादित्यस्वभावस्याप्येवमभावप्रसङ्गः । चैतन्यसंसर्गाद्धि चेतनो भोक्तृत्वसंसर्गाद् भोक्तृकौदासीन्यसंसर्गादुदासीनः शुद्धिसंसर्गात् शुद्धो न तु स्वभावादित्यपि ननु श्रवणत एव ।" स्मा० रत्ना० पृ० २३५ ।

२ "हेतुमदनित्यमप्यापि सत्क्रियमनेकगामितं शिङ्गम् ।

सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमत्यक्तम् ॥" सार्वभौमः १० ।

"प्रधानस्य नाऽनिलाद् व्यक्तादनर्थान्तरमूतस्य नित्यतां प्रतीवन् पुरुषस्यापि ज्ञानादज्ञात्वादनर्थान्तरमूतस्य नित्यत्वमुपैतु सर्वथा विशेषाभावात् ।" आह्वयः ५० ४१ ।

"नचात्मनः अनित्यज्ञानपरिणामात्मके अनित्यत्वापत्तिः; प्रधानेऽपि तत्प्रसङ्गात् । व्यक्ताऽभ्यक्तयोरेवेऽपि व्यक्तमेवाऽनित्यं परिणामत्वात् नत्वव्यक्तं परिणामित्वादित्यन्यापि समानम् ।" न्यायकुण्ड० पृ० १९१ । स्मा० रत्ना० पृ० २३५ ।

व्यंकापेक्षया परिणामि प्रधानं न शैत्यपेक्षया सर्वदा स्थाव-
त्वादित्यभिधाने तु आत्मापि तैथास्तु सर्वथा विशेषामावात्,
अपरिणामिनोऽर्थक्रियाकारित्वासम्भवेनाग्रेऽसत्त्वप्रतिपौदनाच्च ।
स्वसंवेदनप्रत्यक्षाविषयत्वे चास्याः प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं
५ न स्यात् । तद्व्यवस्थापकत्वं हि तदनुभवानम्, तत्कथं बुद्धे-
रप्रत्यक्षत्वे घटेत ? आत्मान्तरबुद्धितोपि तैत्प्रसङ्गात्, न चैवम् ।
ततो बुद्धिः स्वव्यवसायात्मिका कारणान्तरनिरपेक्षतयाऽर्थ-
व्यवस्थापकत्वात्, यत्पुनः स्वव्यवसायात्मकं न भवति न तस्यै-
थाऽर्थव्यवस्थापकं यथाऽऽदर्शादीति । अर्थव्यवस्थितौ तस्याः
१० पुरुषभोगौपेक्षत्वात् “बुद्ध्यर्थवैतन्मर्थं पुरुषश्चेतैयते” []
इत्यभिधानात् । ततोऽसिद्धो हेतुरित्यपि श्रद्धामात्रम्, मेवेनानयो-
रैतुपलम्भात् । एकमेवं ह्यनुभवसिद्धं संविद्रूपं हर्षविषादाद्यनेका-
कारं विषयव्यवस्थापकमनुभूयते, तस्यैवैते ‘चैतन्यं बुद्धिरव्यव-
सायो ज्ञानम्’ इति पर्यायाः । न च शब्दमेवमात्राद्वास्तवोऽर्थमे-
१५ दोऽतिप्रसङ्गैव ।

संसर्गविशेषवशाद्विप्रैलब्धो बुद्धिचैतैन्ययोः सैन्तमपि भेदं

१ नहदादि, द्वितीयपक्षे सुखादि । २ सूक्ष्मस्वभावा द्वितीयपक्षे सामान्यत्वा-
नाक्तिः । ३ परेण । ४ व्यक्त्यपेक्षया परिणाम्यस्तु । ५ व्यक्त्यपेक्षया परिणाम्यस्तु ।
६ किञ्च । ७ बुद्धेः । ८ अन्यथा । ९ पुरुषान्तर । १० स्वस्य । ११ व्यक्तिलक्ष-
णाया बुद्धेः बुद्धिलक्षणात्कारणादपर कारणान्तरमिन्द्रियम् । १२ कारणनिरपेक्षतया ।
१३ अनुभवः स एव कारणम् । १४ बुद्धिप्रतिमिवितत्वं । १५ अनुभवति ।
१६ कारणान्तरसापेक्षतया । १७ बुद्धेः । १८ यो साहचर्यम् । १९ बुद्धिपुरुषयोः ।
२० बुद्ध्यनुभवयोः । २१ अन्यथा । २२ इन्द्रः सकृद्भवादौ स स्यात् । २३ सम्बन्धः ।
२४ वञ्चितो नरः । २५ चैतन्यं पुरुषस्य रूपम् । २६ विषयमानम् ।

१ “एकमेवेदं संविद्रूपं हर्षविषादाद्यनेकाकारविचर्यं पश्यामः ।”

न्यायमं० पृ० ७४ । न्यायकुसु० पृ० १९३ ।

“बुद्धिरपक्षगिहानमिलनयान्तरम् । न्यायसु० १।१।१५ । प्रश्न० भा० पृ० १७१ ।

“बुद्धिरव्यवसायो हि संवित्संवेदनं तथा ।

समिधिक्षेपेना चेति सर्वं चैतन्यवाचकम् ॥” तत्त्वसं० का० १०२ ।

— सन्मति० टी० पृ० ३०० । स्वा० रत्ना० पृ० २३८ ।

२ “तस्मात्तत्संयोगाच्चैतनं चैतनावदिष सिद्ध्यत् ।

शुणक्तृत्वेऽपि तच्च कर्तव्यं अवस्तुदासीनः ॥ १० ॥

यस्याचैतन्यस्वभावः पुरुषः तस्मात् तत्संयोगाच्चैतनं महदादि सिद्ध्यत् अव्यवसा-
यमिमानसद्व्यवसायोचनादिषु इति चैतनावत् प्रवर्तते । को ह्यहन्तः ? तस्या-

नावधारयत्ययोगोलकादिवाग्नेः । न चात्रापि भेदो नास्तीत्यभिधौ-
तव्यम् । उभयैत्र रूपस्पर्शयोर्भेदप्रतीतिः । अयोगोलकस्य हि
वृत्तसन्निवेशः कठिनस्पर्शश्चान्योऽग्नि(ग्ने)र्मासुररूपोष्णस्पर्शाभ्यां
प्रमाणतः प्रतीयते । ततो यथात्राँऽन्योऽन्यानुप्रवेशलक्षणसंसर्गा-
द्विभागप्रतिपत्त्यभावास्तथा प्रकृतेपीत्यप्यसाम्प्रतम् ; बह्वययोगोल-^५
कयोरप्यभेदात् । अयोगोलकद्रव्यं हि पूर्वाकारपरित्यागेनाग्निस-
न्निधानाद्विशिष्टरूपस्पर्शपर्यायाधारमेकमेवोत्पन्नमनुभूयते आमा-
कारपरित्यागेन पाकाकारधारघटद्रव्यवत् । कथं तर्हि तैस्योत्तर-
कालं सत्पर्यायाधारताया विनाशप्रतीतिः ? इत्यप्यचोचम् ;
उत्पत्त्यनन्तरमेव तद्विनाशाप्रतीतिः । किञ्चिद्व्यौपाधिकं वस्तुरूप-^{१०}
मुपौद्ध्यपर्यायान्तरमेवापैति, यथा जपापुष्पसन्निधानोपनीतस्फ-
टिकरकिमा । किञ्चित्तु कौर्लीन्तरे, मनोहाङ्गनादिविषयोपनीता-
त्मसुखादिबत् । सकलर्माधामां सतोऽन्यतश्च निवर्त्तनप्रतीतिः ।
तन्नाश्रययोगोलकयोर्भेदः ।

तैर्द्विर्ह्येकस्मिन् स्वरप्रकाशात्मपर्यायेऽनुभूयमाने नैऋत्य-^{१५}
सङ्गावोऽभ्युपगन्तैव्यः, अन्यथा न कैचिदेकत्वव्यवस्था स्यात् ।
सकलव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गश्च ; अनिर्ह्यैवपरिहारेणैष्टे वस्तुन्येक-
स्मिन्ननुभूयमानेऽन्यसङ्गावाशङ्कया कचित्प्रवृत्त्याद्यभावात् ।
ततोऽवाधितैकत्वप्रतिभासादपरपरिहारेणावभासमाने वस्तुन्ये-

१ निश्चिनोति । २ अयोगोलकादयोः । ३ कैवेन भवता । ४ अयोगोलकादयोः ।
५ वस्तुलकारः । ६ प्रलम्बात् । ७ अयोगोलकादयोः । ८ भेदः । ९ बुद्धिचैतन्ये
(तन्मयोः) । १० कृष्णत्वादिलक्षणः । ११ अयोगोलकः । १२ करणः । १३ विनाशः ।
१४ अपयच्छति । १५ उपाप्यपाने सति । १६ अपैति । १७ अकृचन्दनादि । १८
पदार्थः । १९ परिणमनः । २० वृत्तफलादिबत् । २१ अयोगोलकवत् । २२ बुद्धिचैतन्ये
(तन्मयोः) । २३ स्वयम् । २४ चैतन्यः । २५ परेण । २६ विषये । २७ कथम् । २८
अहिकण्टकादि । २९ वनितादौ । ३० अहिकण्टकादि । ३१ विषये । ३२ निवृत्तिः ।

अनुष्णाशीतो घटः शीतानिरग्निः ससृष्टः शीतो भवति, अग्निना सञ्चक सण्यो भवति,
एवं महदादिलिङ्गमचेतनमपि मूल्या चैतनावद् भवति ।”

माठरवृत्ति, यौक्तपादपा० ।

१ “बह्वययोगोलकयोरपि अण्वोर्भेदो नास्तीत्यभिधौ-
परित्यागेन अग्निसन्निधानाद् विशिष्टरूपस्पर्शपर्यायाधारमेकमेवोत्पन्नमनुभूयते आमा-
कारपरित्यागेन पाकाकारधारघटद्रव्यवत् ।”

न्यायकुसु० पृ० १९३ । सा० रत्ना० पृ० २६७ ।

कत्वव्यवस्थामिच्छतां अनुभवसिद्धकर्तृत्वमोक्तत्वाद्यनेकधर्माधार-
रविद्विवर्त्तस्याप्येकत्वमभ्युपगन्तव्यं तद्विशेषात् । न चात्रैकत्व-
प्रतिभासे किञ्चिद्वाचकम्, यतो द्विचन्द्रादिप्रतिभासवन्मिथ्यात्वं
स्यात् । स्वसंवेदनप्रसिद्धस्वरप्रकाशरूपविद्विवर्त्तव्यतिरेकेणान्य-
५ चैतन्यस्य कदाचनान्यप्रतीतेः । न चोपदेशमात्रात्प्रोक्षावतां निर्वाच-
वोधाधिकृतोऽर्थोऽन्यथो प्रतिभासमानोऽन्यथापि कल्पयितुं युक्तो-
ऽतिप्रसङ्गात् । चैतन्यस्य च स्वरप्रकाशात्मकत्वे किं बुद्धिसाध्यं
येनीसौ कल्प्यते ?

बुद्धेरन्ये चेतनत्वे विषयव्यवस्थापकत्वं न स्यात् । ओंकारवत्त्वा-
१० तत्त्वमित्यप्ययुक्तम् ; अचेतनस्याकारत्वे (रत्नत्वे) व्यर्थव्यवस्थापक-
त्वासम्भवात्, अन्यथाऽऽदर्शादेरपि तत्प्रसङ्गाद्बुद्धिरुपतानुपपन्नः ।
अन्तःकरणत्व-पुरुषोपभोगप्रत्यासन्नहेतुत्वलक्षणविशेषोपि मनोऽ-
क्षादिनानैकान्तिकत्वाच्च बुद्धेर्लक्षणम् । यदि च भ्रममेकान्तः-
‘अन्तःकरणमन्तरेणार्थमात्मा न प्रत्येति’ इति, कथं तर्हि अन्तः-
१५ करणप्रत्यक्षता ? अन्यान्तःकरणविम्बादेवेति चेत्, अनवस्था ।
अन्यान्तःकरणविम्बमन्तरेणान्तःकरणप्रत्यक्षतायां च अर्थप्रत्यक्ष-
तापि तथैवास्त्वलं तत्परिकल्पनया । अन्तःकरणप्रत्यक्षताभावे
च कथं तद्वर्तार्थविम्बग्रहणम् ? न ह्यादर्शाग्रहणे तद्वर्तार्थप्रतिवि-
म्बग्रहणं दृष्टम् ।

२० विषयाकारधारित्वं च बुद्धेरनुपपन्नम्, मूर्त्तस्यामूर्त्ते प्रति-

१ परमं । २ आत्मनः । ३ बोधस्य । ४ प्रमाणं । ५ आगमात् । ६ बुद्धिलक्षणं ।
७ प्रकल्पेन । ८ स्वसंवेदनप्रत्यक्षं । ९ बुद्धिलक्षणः । १० यत्नत्वेन प्रतिभासमानः ।
११ बुद्धिवैतन्यमिति द्वयरूपतया । १२ अन्यथा । १३ केन कारणेन । १४ किञ्च ।
१५ अर्थाकारवत्त्वात् । १६ जलादेः । १७ मन्वे (१) । १८ अनुभवः । १९ कारणं
बुद्धिरूपम् । २० व्यस्यलक्षणं । २१ अदृष्टं । २२ कतिव्यतिः । २३ अन्तःकरणत्वं
बुद्धेर्लक्षणमित्युक्ते मनसा व्यभिचारः । कथं मनो ह्यन्तःकरणं भवति न च तस्य बुद्धिरुपता
पुरुषोपभोगप्रत्यासन्नहेतुत्वं बुद्धेर्लक्षणमित्युक्ते बाष्पादिना व्यभिचारस्यापि—पुरुषो-
पभोगप्रत्यासन्नहेतुनिर्दिष्टं भवति न च तस्य बुद्धिरुपता । २४ किञ्च । २५ बुद्धिः ।
२६ बुद्धिः । २७ आकारः । २८ बुद्धिः । २९ बुद्धिः । ३० अन्तःकरणतायां ।

१ “न चास्मा बाष्पवैतन्याभावे विषयव्यवस्थापनमितिर्लुका ।”

न्यायकुसु० पृ० १९३ । सा० रत्ना० पृ० २१८ ।

२ “न विषयाकारधारि ज्ञानममूर्त्तत्वात्, यदमूर्त्तं तद् विषयाकारधारि न भवति
यथा आकाशश्च, अमूर्त्तञ्च ज्ञानमिति । तस्मादित्ये वा अमूर्त्तत्वमस्य विकल्पते ।”

न्यायकुसु० पृ० १९३ । सा० रत्ना० पृ० २१८ ।

वेम्बासम्भवात् । तथा हि—न विषयाकारधारिणी बुद्धिरमूर्त-
चादाकाशवत्, यत्तु विषयाकारधारि तन्मूर्तं यथा दर्पणादि ।
१ चासिद्धो हेतुः; तस्याः सकलवादिभिरमूर्तत्वाभ्युपगमात् ।
अन्यथा बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गो दर्पणादिवदेव । अतिसूक्ष्म-
चात्तदप्रत्यक्षत्वे तद्वतार्थप्रतिबिम्बप्रत्यक्षतापि न स्यात् । मूर्तस्य
वेन्द्रियादिद्वारेणैव संवेदनसम्भवात् । तदभावेऽसंविदितत्व-
प्रसङ्गश्च । सर्वथा परोक्षत्वाभ्युपगमे चास्या मीमांसकमता-
नुषङ्गः ॥ छ ॥

एतेन बाह्यैर्प्याकारवत्त्वेन ज्ञाने प्रामाण्यं प्रतिपादयन्प्रत्या-
ख्यातः । प्रत्यक्षविरोधाच्च, प्रत्यक्षेण विपर्ययकाररहितमेव ज्ञानं^{१०}
प्रतिपुरुषमहमहमिकया चैतादिश्रावकमनुभूयते न पुनर्दर्पणादि-
वत्प्रतिबिम्बाकान्तम् । विषयाकारधारित्वे च ज्ञानस्यार्थं दूर-
निकटादिव्यवहाराभावप्रसङ्गः । न खलु स्वरूपे स्वतोऽभिन्नेऽनु-
भूयमाने सौत्ति, न चैवम्; 'दूरे पर्वतो निकटे मदीयो बाहुः'
इति व्यवहारस्याऽस्त्वेकद्रूपस्य प्रतीतेः । तैस्तदव्ययानुपपत्तेर्नि-^{१५}
राकारं तत् । न चाकाराधार्यैकस्य दूरादितया तथा व्यवहारो

१ हेतोः । २ पदार्थस्य । ३ किञ्च । ४ आलोकादि । ५ किञ्च । ६ बुद्धे-
र्विषयाकारधारित्वनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । ७ योगाचारः । ८ सौत्रान्तिकः (१) ।
९ पदार्थस्य । १० किञ्च । ११ सौत्रान्तिकः (१) । १२ स्वसंवेदनेन । १३ अर्थः ।
१४ पदार्थः । १५ स्वयं ज्ञानेन । १६ किञ्च । १७ दूरनिकटादिव्यवहारः ।
१८ अस्त्येवमिति चेत् । १९ अभ्यभिचरेत् । २० प्रतिपादनात् । २१ साकारत्वे
दूरनिकटादिव्यवहारो न घटते यतः । २२ समर्पकस्य पदार्थस्य ।

१ “स्वसंविधिः फलज्ञास ताद्रूप्यादर्थनिश्चयः ।

विषयाकार एवास्य प्रमाणं तेन नीयते ॥” प्रमाणसमु० १।१० ।

“अर्थसारूप्यमस्य प्रमाणम् ।” न्यायनि० १।१९ ।

२ “दूरासमादिमेवेन व्यक्त्यभ्यक्तं न युज्यते ।

तत्सादालोकेमेवास्ति तत्प्रमाणानामिधानयोः ॥

तुल्या दृष्टिदृष्टिर्वा सुज्ञोक्तस्य कश्चन ।

आलोकेन न मन्त्रेन वृक्षवरोऽतो मिदा यदि ॥”

प्रमाणभा० १।४०८-९ ।

“स्वतोऽभिन्नस्य चाकारस्य ज्ञानप्राप्त्यात्वे अर्थे दूरातीतादिव्यवहारो न स्यात् ।”

न्यायसमु० ५० १९९ ।

युक्तः, वर्णणादौ तथानुपलम्भात् । दीर्घस्वार्पवतश्च प्रबोधचेतसो जनकस्य जाग्रदशाचेतसो दूरत्वेनातीतत्वेन चात्रापि दूरातीत-
दिव्यवहारानुषङ्गः स्यात् ।

किञ्च, अर्थानुपजायमानं ज्ञानं यथा तस्य नीलतामनुकरोति
५ तथा यदि जडतामपि; तर्हि जडमेव तत् स्यादुत्तरार्थक्षणवत् ।
अथ जडतां नानुकरोति; कथं तस्या ग्रहणम् ? तदग्रहणे नीला-
कारस्याप्यग्रहणम् अन्यथा तथैवेदोऽनेकान्तो वा । नीलाकार-
ग्रहणेपि च, अंगुहीता जडता कथं तस्येत्युच्येत ? अन्यथा गृहीतस्य
स्तम्भस्यागृहीतं त्रैलोक्य(कथं)रूपं भवेत् । तथा त्रैलोक्यपलम्भो
१० नैकैत्वसाधनम् । अथ नीलाकारवज्जडतापि प्रतीयते किन्त्वैतदे-
कारेण ज्ञानेन, न; तर्हि नीलताप्यतदेकारेणैवानेन प्रतीयताम् ।
तथाहि—यद्येन स्वात्मनोऽर्थान्तरभूतं प्रतीयते तत्तेनातदाकारेण
यथा स्तम्भादेर्जाल्यम्, प्रतीयते च स्वात्मनोऽर्थान्तरभूतं नीला-
दिकमिति । किञ्च, नीलाकारमेव ज्ञानं जडतां प्रतिपद्यते, ज्ञानान्तरं
१५ वा ? आद्यविकल्पे नीलाकारतां स्वात्मभूततया, जडतां त्वैव्ययी-
तज्ज्ञानातीत्यर्धैरतीत्यन्यायानुसरणं ज्ञानस्य । अथ ज्ञानान्तरेण सा

१ पुरुषस्य । २ किञ्च । ३ ज्ञानस्य । ४ पुरुषस्य । ५ परिच्छिन्निः । ६ जडता-
ग्रहणेपि नीलस्य ग्रहणं चेत् । ७ नीलजडयोः । ८ गुह्यमाणाऽपुह्यमाणयो-
र्वैकल्यार्थेति च । ९ किञ्च । १० अगृहीतापि नीलस्य वर्णमेव । ११ यत् ।
१२ ज्ञानम् । १३ किञ्चनेकत्वसाधनम् । १४ विद्येते । १५ अलङ्कारेण ।
१६ निराकारेण । १७ अनीलाकारेण । १८ नीलादिकं वर्णं अतदाकारेण ज्ञानेन
प्रतीयते इति साध्यो वर्णः । तेन स्वात्मनोऽर्थान्तरभूततया प्रतीयमानत्वात् । १९ ज्ञान-
रूपात् । २० कर्तुं । २१ नीलाकारतया । २२ अलङ्कारतया । २३ अस्वात्म-
(अस्वात्म)भूततया चेत् ।

१ “न चाकारापायकस्य दूरातीतत्वात्तया व्यवहारः इत्यभिधातव्यः; ज्ञान-
चेतसो दूरातीतत्वेन प्रबोधचेतसि तस्या व्यवहारप्रसङ्गात् ।” न्यायकुसुमं पृ० १६९ ।

२ “अत्र नीलतां तत्तदाकारतया प्रतिपद्यते जडतां त्वतदाकारतया सद्विदमर्ध-
वरतीयन्यायानुसरणम् ।” न्यायकुसुमं पृ० १६८ ।

“अर्थं ज्ञात्वाः कामयन्ते अर्थं नेति ।” पात० महाभाष्य ४।१।७८ ।

“अर्थं मुखमार्गं वृक्षायाः कामयते गच्छति सोऽयमर्थवरतीयन्यायः ।” -

महासु० आ० भा० रत्नप्रभा १।१।८ ।

३ “अर्थेन सर्वात्मना तत्र स्वाकारापाये ज्ञानस्य जडताप्रसङ्गे उत्तरार्थक्षणवत् ।”

आकाश० टी० पृ० १५९ पृ० ।

प्रतीयते; तदप्यतदाकारं यथा जडतां प्रतिपद्यते तथाद्य(द्यं)नील-
तामिति व्यर्थं तदाकारकल्पनम् ।

किञ्च, ज्ञानान्तरेण जडतैव केवला प्रतीयते, तद्वशीलतापि
वा? न तावदुत्तरपक्षः; अर्द्धजरतीयन्यायानुसरणप्रसङ्गात् ।
प्रथमपक्षे तु नीलताया जडतेयमिति कुतः प्रतीतिः? नाद्यज्ञानात्; ५
तेन नीलाकारमात्रस्यैव प्रतीतिः । नापि द्वितीयाच्चस्य जडतामात्र-
विषयत्वात् । अथोभयविषयं ज्ञानान्तरं परिकल्प्यते, तच्चेदुभयत्र
साकारम्; सैव जडते । निराकारं चेत्, परमेतेप्रसङ्गः ।
कचित्साकारतायामुक्तदोषोऽनैवस्था ।

ननु निराकारत्वे ज्ञानस्याखिलं निखिलार्थवेदकं तत्स्यात् १०
केचित्प्रत्यासत्तिविप्रकर्षाभावादित्यप्यपेशलम्; प्रतिनियतसाम-
र्थ्येन तत्त्वार्थभूतमपि प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकमित्यग्रे वक्ष्यते ।
'नीलाकारवज्जडाकारस्याद्वैष्टेन्द्रियार्थोकारस्य बाहुकरणप्रसङ्गः
कारणत्वाविशेषात्प्रत्यासत्तिविप्रकर्षाभावाच्च' इति बोधे भवतोपि
योग्यतैव शरणम् । १५

यच्चोच्यते-^{३१}'यथैवाहारकालादेः^{३२} समानेऽपत्यं जननीपित्रोर्सदे-
कमाकारं धत्ते नान्यस्य कस्यचित्, तथा चक्षुरादेः कारणत्वा-
विशेषेपि नीलस्यैवाकारमनुकरोति ज्ञानं नान्यस्य' इति; तर्हि रौ-
कारज्ञानेपि समानम् । तत्कार्यत्वाविशेषेपि हि यथा प्रत्या-
सत्यां ज्ञानं नीलमेवानुकरोति तथैव सर्वज्ञानाकारत्वाविशेषेपि २०

१ आद्यज्ञानम् । २ नीलतारहिता । ३ जडतया युक्ता नीलता । ४ प्रथम-
ज्ञानात् । ५ न जडतायाः । ६ ज्ञानान्तरात् । ७ न नीलतायाः । ८ जडता
नीलता (च) विषयो यस्य । ९ तृतीयम् । १० परेष । ११ नीलतायां जडतायां
च । १२ स्यात् । १३ स्वस्य । १४ ज्ञानस्य । १५ जैन । १६ नीलतायाम् ।
१७ उक्तत्रोपपरिहारार्थं ज्ञानान्तरेण जडता प्रतीयते इति चेद्वैष्टेन्द्रियानुसरणात् । १८ अर्थः ।
१९ तादृष्यतदुत्पत्तिरक्षणसम्बन्धः । २० तदभावात् । २१ हाचम् । २२ निराकारम् ।
२३ पागादि । २४ मनः । २५ किञ्च । २६ ज्ञानस्य । २७ नीलकारेण प्रत्या-
सत्तिः । २८ इन्द्रियादिना विप्रकर्षस्य । २९ जेनेः । ३० वीरस्य । ३१ सौत्रान्ति-
केन । ३२ पित्रादेः । ३३ कारणे । ३४ अपलम् । ३५ यदुक्तं त्वया समाधानम् ।
३६ ज्ञानस्य । ३७ स्वभावेन । ३८ कर्तुं । ३९ अर्थः । ४० पदार्थः ।

1

“यथैवाहारकालादेः समानेऽपत्यमिति ।

पित्रोरुदयकमाकारं धत्ते नान्यस्य कस्यचित् ॥”

अभाषणा० १।१६५ ।

किञ्चिदेव प्रतिपद्यते न सर्वमिति विभागः किं नेष्यते? अन्यो-
न्याश्रयदोषश्चोभयत्र समानः । किञ्च, प्रतिनियतघटादिवत्सकलं
वस्तु निखिलज्ञानस्य कारणं साकारार्पकं वा किञ्च स्यात्? वस्तु-
सामर्थ्यात् किञ्चिदेव कस्यचित् कारणं न सर्वं सर्वस्येति चेत्;
५ तर्हि तत एव किञ्चित्कस्यचिद्वाह्यं ग्राहकं वा न सर्वं सर्वस्येत्यलं
प्रतीत्यपलापेन ।

प्रमाणत्वाच्चास्य तदभावः । अर्थाकारानुकारित्वे हि तस्य प्रमेय-
रूपतापत्तेः प्रमाणरूपताव्याघातः, न चैवम्, प्रमाणप्रमेययोर्बहि-
रन्तर्मुखाकारतया भेदेन प्रतिभासनात् । न चाप्यक्षेण ज्ञान-
१० मेवाऽर्थोकारमनुभूयते न पुनर्बाह्योऽर्थ इत्यभिधातव्यम्, ज्ञानरू-
पतया बोधस्यैवाप्यक्षे प्रतिभासनाभ्यर्थस्य । न ज्ञानहङ्कारास्पद-
त्वेनार्थस्य प्रतिभासेऽहङ्कारास्पदबोधरूपवत् ज्ञानरूपता युक्ता,
अहङ्कारास्पदत्वेनार्थस्यापि प्रतिभासोपपत्तेरिति तु 'अहं घटः' इति
प्रतीतिप्रसङ्गः । न चान्यथामृता प्रतीतिरन्यथामृतमर्थ व्यवस्था-
१५ पर्येति, नीलप्रतीतेः पीतादिव्यवस्थाप्रसङ्गात् ।

बोधस्यार्थाकारतां मुक्त्वाथैनं घटयितुमशक्तेः 'नीलस्यार्थं
बोधः' इति, निराकारबोधस्य केनचित्प्रत्यक्षसिद्धिर्विकर्षासिद्धेः
सर्वार्थवर्धनप्रसङ्गात्सर्वैकैवेदनापत्तेः प्रतिकर्मव्यवस्था ततो न
स्यादित्यर्थाकारो बोधोऽभ्युपगन्तव्यः । तदुक्तम्—

१ वस्तु । २ परेण ३ नियतार्थप्रतिपत्तौ नियतसमावसिद्धिरित्येव च नियतार्थ-
प्रतिपत्तिरिति, नियतनीलाकारानुकरणे च सिद्धे नियतानुकरणयोग्यतासिद्धिर्ज्ञानस्य
तत्सिद्धौ च नियतनीलाकारानुकरणसिद्धिरिति । ४ नियतार्थग्रहणानुकरणयोः ।
५ कस्यचित्पदार्थस्य । ६ किञ्च । ७ अर्थाकारानुकारित्वाभावः । ८ अस्त्यर्थं का
नो हानिरिति चेत् । ९ इन्द्रिय । १० परेण । ११ अर्थस्य बोधरूपतया । १२ परेण ।
१३ अन्यथा । १४ पदार्थेन । १५ ताद्रूप्यवस्तुसिद्धिज्ञानसम्बन्धः । १६ तदभावः ।
१७ ईप् (सप्तमी) । १८ निराकारबोधस्य सम्बन्धात् । १९ सम्बन्धः । २० सर्वा-
र्थानाम् । २१ पटज्ञानस्य पदो विषयो घटज्ञानस्य घट इत्यादि । २२ येनेन मगता ।

१ "प्रमाणरूपताविरोधानुवृत्त्यर्थः ।"

न्यायकुसु० पृ० १६८ ।

२ "तदाकारं हि सवेदनमर्थं व्यवसाययति नीलमिति पीतञ्चेति ।"

प्रमाणवा० अर्थ पृ० २ ।

"किमर्थं तर्हि सारूप्यमिष्यते प्रमाणम्? क्रियाकर्मेत्यवस्थायास्तदोके स्थातिवन्-
मम् ।" सारूप्यतोऽन्यथा न भवति नीलस्य कर्मणः संविधिः पीतस्य वेति क्रियाकर्मे-
प्रतिनियमार्थमिष्यते ।"

प्रमाणवा० अर्थ पृ० ११९ ।

“अथैन घटयत्वेनां न हि मुक्ता(क्त्वा)र्थरूपताम् ।

तस्मात्प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरूपता ॥” [प्रमाणवा० ३।३०५]

इत्यनल्पतमोविलसितम्; यतो घटयति सम्बन्धयतीति विवक्षितं ज्ञानमे, अर्थसम्बद्धमर्थरूपता निश्चाययतीति वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः; न ह्यर्थसम्बन्धो ज्ञानस्यार्थरूपतया क्रियते, किन्तु पक्षकारणैस्तज्ज्ञानैर्मर्थसम्बद्धमेवोत्पाद्यते । न खलु ज्ञानमुत्पद्य पश्चादर्थेन सम्बन्ध्यात् । न चार्थरूपता ज्ञानस्यार्थे सम्बन्धकारणं तादृशस्याभावानुषङ्गात् । द्वितीयपक्षोऽप्यसम्भाव्यः; सम्बन्धासिद्धेः । न खलु ज्ञानगतार्थरूपतां अर्थसम्बन्धेन ज्ञानेन सहचरिता कचिदुपलब्धा येनार्थसम्बद्धं ज्ञानं सा निश्चाययेत् । विशिष्टविषय-^{१०}योर्त्यौद एव च ज्ञानस्यार्थेन सम्बन्धः, न तु संश्लेषात्मकोऽस्य ज्ञानेऽसम्भवात् । स चेन्निर्गुरेव विधीयते इत्यर्थरूपतासाधन-^{११}प्रयोगो वृथैव । न चैवं सर्वत्रैव प्रसज्यते; यतो निराकारत्वेऽप्यवबोधस्य इन्द्रियवृत्त्या पुरोवर्तिन्येवार्थं नियमितत्वाच्च सर्वार्थघटन-^{१२}प्रसङ्गः । ‘कस्मात्तस्मात् तन्निमित्तमयते’ ? इत्येव वस्तुस्वरमावैक्यस्य^{१५} वाच्यम् । न हि कारणानि कार्यात्पत्तिप्रतिनियमे पर्यनुयोगमर्हन्ति तत्र तस्य वैफल्यत् । साकारत्वेऽपि चायं पर्यनुयोगः समानः-

१ अन्यस्तन्निकर्षादिक कर्तुं । २ निर्गुरेव वा दुक्तिम् । ३ यस्मात् । ४ प्रमाणं न घटयतीति सम्बन्धः । ५ मुक्तेः । ६ फलज्ञानस्य । ७ सम्बन्धित्वेन । ८ नैयायिकादिकल्पितम् । ९ ज्ञानस्यार्थरूपता । १० अर्थरूपता । ११ आ (१) । १२ कर्त्ता । १३ आ । १४ इन्द्रियादिभिः । १५ अर्थसम्बन्धज्ञानार्थरूपतयोः । १६ किञ्च । १७ अन्यथा । १८ अर्थरूपताज्ञानयोः । १९ आ । २० पूर्वसिद्धिकल्पे इत्यादि ग्रहणम् । २१ वसः । २२ ईप् । २३ किञ्च । २४ ज्ञाने । २५ ज्ञाने । २६ अर्थरूपताभावे । २७ असन्निहितेऽप्यर्थे । २८ ज्ञानोत्पादलक्षणः सम्बन्धः । २९ व्यापारेण । ३० चरणात् । ३१ ज्ञानम् । ३२ पूर्वपक्षे । ३३ अस्मान्निर्गुरेः । ३४ काशेषम् । ३५ किञ्च ।

1 “अथैन घटयत्वेना न हि मुक्त्वा^३र्थरूपताम् ।

अन्यास्तन्मेदो ज्ञानस्य मेदकोऽपि कवञ्जन ॥ ३०५ ॥

तस्मात् प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरूपता ।” प्रमाणवा० ।

2 “किञ्च, घटयतीति सम्बन्धयति इत्यभिप्रेतम्, अर्थसम्बद्धं निश्चाययति इति वा ?” न्यायकुसु० पृ० १७१ ।

3 “साकारत्वेऽपि चायं पर्यनुयोगः समानः । तथाहि-साकारमपि ज्ञानं किमिति नीलादिकमेव पुरोवर्ति तत्सन्निहितमेव च व्यवसाययति ? तेनैव तथा तस्य जननादिति चेत् समानमेतन्निराकरेऽपि ।” सम्प्रति० टी० पृ० ४६० ।

न्यायकुसु० पृ० १७१ ।

साकारमपि हि ज्ञानं किमिति सन्निहितं नीलादिकमेव पुरोवर्त्ति व्यवस्थापयति न पुनः सर्वम् ? तेनैव च तथा जननात् इत्युत्तरं निराकारत्वेपि समानम् । किञ्च, इन्द्रियादिजन्यं विज्ञानं 'किमितीन्द्रियाद्याकारं नानुकुर्यात्' इति प्रश्ने भवताम्यत्र वस्तुत्वभाव एवोत्तरं वाच्यम् । साकारतो च ज्ञाने साकारज्ञानेन प्रतीयते, निराकारेण वा ? साकारेण चेत् ; तत्रापि तत्प्रतिपत्तावाकारान्तरपरिकल्पनमित्यनवस्था । निराकारेण चेद्वाह्यार्थस्य तथाभूतज्ञानेन प्रतिपत्तौ को विद्वेषः ?

किञ्च, अस्य वादिनोऽर्थेन संविद्येर्घटनाऽन्यथानुपपत्तेः सन्नि-
१० कर्षः प्रमाणम्, अधिगतिः फलं स्यात्, तस्यास्तमन्तरेण प्रतिनि-
यतार्थसम्बन्धित्वासम्भवात् । साकारसंवेदनस्य अखिलसमाना-
र्थसाधारणत्वेन अनियतार्थेर्घटनप्रसङ्गात् निखिलसमानार्थानामे-
कवेदनापत्तिः, केनचित्प्रत्यासत्तिविप्रकर्षासिद्धेः ।

तैर्दुर्लभैरेन्द्रियादिना व्यभिचारान्नियामकत्वायोगः । तदुत्पत्ते-
१५ स्ताद्रूप्यार्थस्य बोधो नियामको नेन्द्रियादौर्वपर्ययादित्यप्यसा-
म्प्रतम् ; तद्व्यलक्षणस्यापि समानार्थसमनन्तरप्रत्ययेनानैकान्तिक-

१ व्यवस्थापकत्वप्रकारेण । २ ज्ञानस्य । ३ अवदीयत् । ४ ज्ञेयैः कृते । ५ परेण ।
६ पूर्वपक्षे । ७ अर्थरूपता । ८ किञ्च । ९ निराकारेण । १० सौप्रान्तिकस्य ।
११ ज्ञानस्य । १२ ज्ञाप्यप्रमितिः । १३ किञ्च । ताम्रूप्यनिर्णयं कुर्वन्ति । १४ अर्था-
कारमर्थादुत्पन्ननार्थव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणमिति विशेषणानि प्रत्येकं दूषयति ।
१५ ईप् । १६ अर्थ । १७ ताम्रूप्याभावात् । १८ प्रा(श्न)कृतज्ञानस्य च एव नीलाद्यर्थो
विषयः स एवोत्तरज्ञानस्येति एकसन्तानवर्तित्वेन समानोऽर्थ एको नीलः ।
१९ ईप् । २० प्रथमक्षणे नीलमिदमिति ज्ञानमुत्पन्नं तच्च द्वितीयस्य जनकं तत्र
ताद्रूप्यमस्ति तदुत्पत्तिज्ञानत्वेन समानव्यवहितत्वेनानन्तरमिति । २१ सदृश ।
२२ प्राक्तनज्ञानेन । २३ तदुत्पत्तेस्ताद्रूप्याच्च यथार्थस्य बोधो नियामकः सता
प्राक्तनज्ञानेनानेकान्तात् कथम् ? द्वितीयबोधस्य प्राक्तनबोधात्तदुत्पत्तिताद्रूप्यसङ्गानेति
द्वितीयबोधेन पूर्वान्तरबोधस्य नियामकत्वानुगात् । ज्ञानं ज्ञानस्य न नियामकं ज्ञानस्य
स्वप्रकाशकत्वात् ।

१ "साकारता विज्ञानस्य किं साकारेण प्रतीयते, बाह्योत्पत्तिरकारेण ?"

सन्मति० टी० पृ० ४६० ।

२

"तत्सारूप्यतदुत्पत्ती यदि सवेदकक्षणम् ।

तथा च स्वास्तमानार्थविज्ञान समनन्तरम् ॥"

प्रमाणपा० ११२२ ।

त्वात् । कथं चार्थवदिन्द्रियाकारं नानुकुर्यादसौ तदुत्पत्तेरविशेषात् ? तदविशेषेऽप्यस्य कौरणान्तरपरिहारेणार्थाकारानुकारित्वं पुत्रत्वेव पित्राकारानुकरणमित्यप्यसङ्गतम् ; स्वोपादानमात्रानुकरणप्रसङ्गात् । विषयस्यालम्बनप्रत्ययतया स्वोपादानस्य च समनन्तरप्रत्ययतया प्रत्यासत्तिविशेषसङ्गात् उभयाकारानुकरणे-५ ऽर्थवदुपादानस्यापि विषयतापत्तिरविशेषात् । तज्ज्ञानरूपाविशेषेऽप्यवसायनियमात् प्रतिनियतार्थनिर्यामकत्वेऽर्थवदुपादानेऽप्यवसायप्रसङ्गः, अन्यथोभयैत्राप्यसौ मा भूद्विशेषाभावात् । न च तज्ज्ञानादित्रयसङ्गावैष्यर्थप्रतिनियमः, कामलोद्युपहतचक्षुषः शुक्ले शङ्खे पीताकारज्ञानादुत्पन्नस्य तद्रूपस्य तदाकाराध्यवसायिनो-१० विज्ञानस्य समनन्तरप्रत्यये प्रामाण्यप्रसङ्गात् । न चैवैवादिनो विज्ञानस्य स्वरूपे प्रमाणता घटते तत्र सारूप्याभावात् ।

किञ्च, ज्ञानगतालीलाद्याकारात् क्षणिकत्वाद्यौकारः किं भिन्नः, अभिन्नो वा ? भिन्नश्चेत्, नीलाद्याकारस्याक्षणिकत्वप्रसङ्गस्तद्व्यावृत्तिलक्षणत्वोक्तस्य । अथभिन्नः, तर्हि तैतोऽर्थस्य नीलत्वादि-१५

१ किञ्च । तद्रूपत्वनिषेधं कुर्वन्ति । २ ज्ञानस्य । ३ अर्थलक्षणत्वात्कारणादपरमिन्द्रियलक्षणम् । ४ बोधस्य । ५ कारण । ६ अन्वयवहितकारण । ७ तदुत्पत्तिलक्षणत्वमन्वय । ८ अर्थपूर्वज्ञाने । ९ तज्ज्ञानमरूपविशेषाभावात् । १० अर्थोपादानान्वाद्युत्पत्तेरविशेषात् । ११ अर्थोपादानान्वा । १२ निश्चय । १३ बोधस्य । १४ अर्थोपादानयोः । १५ तज्ज्ञानरूप । १६ किञ्च इदानीं सद्य इवयति । १७ अर्थोत्पत्त्यादि । १८ बोधस्य । १९ बोध । २० पुत्रत्वस्य । २१ किञ्च । साकारत्वेन ज्ञानस्य प्रामाण्यवादिनः । २२ निरस्तत्वादि । २३ अज्ञानमाने षडादिवद् दृष्टान्तः । २४ नीलाकारात् ज्ञानात् ।

१ “न केवलं विषयवत्त्वाद् दृष्टेस्तत्तिरपि तु चक्षुरादिकेव । विषयाकारानुकरणादर्शनस्य तत्र विषयः प्रतिभासते, न पुनः कारणम् तदाकारानुकरणमिति चेत्तर्हि ; तदर्थनन्तरणमनुकुर्वन्मर्हति, न चार्थं विशेषाभावात् । दर्शनस्य कारणान्तरसङ्गादेऽपि विषयाकारानुकारित्वमेव सुतत्वेन पित्राकारानुकरणमित्यपि वार्तम् ; स्वोपादानमात्रानुकरणप्रसङ्गात् । विषयस्यालम्बनप्रत्ययतया स्वोपादानस्य च समनन्तरप्रत्ययतया प्रत्यासत्तिविशेषाद् दर्शनस्य उभयाकारानुकरणेऽप्यनुभावमाने रूपादिवदुपादानस्यापि विषयतापत्तिः, अतिशयाभावात् । वर्णादेवौ तद्वदविषयत्वप्रसङ्गात् ।”

अष्टश०, अष्टसह० पृ० ११८ ।

२ “दर्शनस्य तज्ज्ञानरूपाविशेषेऽपि तदध्यवसायनियमाद् दद्विषयविषयत्वमित्यस्य ; वर्णादाविव उपादानेऽपि अध्यवसायप्रसङ्गात् ।”

अष्टश०, अष्टसह० पृ० ११८ ।

वत् क्षणिकत्वादेरपि प्रसिद्धेस्तदर्थमनुमानमनर्थकम् । तदसिद्धौ वा नीलत्वादेरप्यतः सिद्धिर्न स्यादविशेषात् । ननु चानेकस्व-
भावार्थाकारत्वेऽपि ज्ञानस्य यस्यैवेवांशे संस्कारपाटवाच्चिर्भ्यो-
त्पादकत्वं तत्रैव प्रामाण्यं नान्यत्रेति । नैवैसौ निश्चयः साकारः,
५ निराकारो वा ? साकारत्वे-तत्रापि नीलाद्यौकारस्य क्षणिकत्वा-
द्याकाराद्भेदाभेदपक्षयोः पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गः । तत्रापि निश्चयान्तर-
रकल्पनेऽनवस्था । अथ निराकारः, तर्हि निश्चयौत्मना सर्वार्थेष्व-
विशिष्टस्य ज्ञानस्य 'अयमस्यार्थस्य निश्चयः' इति प्रतिकर्मनियमः
कुतः सिद्धेत् ? निराकारस्यापि कुतश्चिन्मिमात्वात् प्रतिकर्म-
१० सिद्धावन्यत्राप्यत एव तत्सिद्धेः किमाकौरकल्पनयेति ?

नैवैस्तु निराकारत्वं विज्ञानस्य, न तु स्वसंविदितत्वं भूतपरि-
णामत्वाद्दर्पणादिवदित्यप्ययुक्तम् ; हेतोरसिद्धेः । भूतपरिणामत्वे
हि विज्ञानस्य बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गो दर्पणादिवत् । सूक्ष्म-
भूतविशेषणपरिणामत्वाच्च तत्प्रसङ्गः ; इत्यप्यसङ्गतम् । स हि चैत-
१५ न्येन सजातीयः, विजातीयो वा तदुत्पादन(तदुपादान)हेतुः
स्यात् ? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यताः, सूक्ष्मो हि भूतविशेषोऽचेतन-
द्रव्यव्यावृत्तस्वभावो रूपादिरहितः सर्वदा बाह्येन्द्रियाविषयः

१ अर्थस्य । २ क्षणिकत्वादि । ३ सर्व क्षणिक सत्त्वात् । ४ नीलाकारज्ञानात् ।
५ अमित्रत्वस्य । ६ यस्य ज्ञानस्य । ७ नीले । ८ विकल्प । ९ क्षणिकाद्ये । १० जो
बौद्ध । ११ ज्ञानेनोत्पाद्यः । १२ साकारनिश्चयविषयेष्वे । १३ निश्चयगतस्य ।
१४ अक्षणिकत्वादि । १५ अमित्रपक्षे । निश्चयगतनीलाभाकारे । १६ नीलगतक्षणि-
कस्वनिश्चयपरिहारायैव । १७ ग्रन्थानवस्था । १८ निश्चयः । १९ स्वस्वरूपेण ।
२० साधारणस्य । २१ नीलस्य । २२ योग्यतातः । २३ निराकारज्ञानपक्षेऽपि ।
२४ किं प्रयोजनं न किमपि । २५ जैनं प्रति चार्वाको भूते । २६ हेतोरसिद्धत्वमेव
दर्शयन्ति । २७ ज्ञानस्य । २८ सूक्ष्मभूतविशेषः । २९ ज्ञानेन । ३० अस्माकं
ज्ञानानाम् । ३१ प्राणी । ३२ रसगन्धवर्णरसन्दैश्च ।

1

“सूक्ष्मो भूतविशेषश्चेदुपादानं चित्तो यतम् ।

स यवात्मास्तु चित्वातिसमन्वितवपुर्यदि ॥ ११० ॥

तदिवातिः कथन्नाम त्रिदुपादानकारणम् ।

भवतस्तेजसोऽन्धोवत् तथैवाऽष्टकल्पना ॥ १११ ॥

सत्त्वादिना समानत्वाच्चिदुपादानकल्पने ।

स्मादीनामपि तत्त्वेन निर्वर्तेत परस्परम् ॥ ११२ ॥

सूक्ष्मभूतविशेषः चैतन्येन विजातीयः सजातीयो वा ?”

तत्त्वार्थको० पृ० २९ । न्यायकुसु० पृ० ३६८ ।

स्वसंवेदनप्रत्यक्षाधिगम्यः परलोकादिसम्बन्धित्वेनानुमेयश्च आत्मापरनामा विज्ञानोपादानहेतुरिति परैरभ्युपगमात् ।

तस्यातो विजातीयत्वे नोपादानभावः । सर्वथा विजातीयस्योपादानत्वे बह्वर्जलाद्युपादानभावप्रसङ्गात् तत्त्वचतुष्टयव्याधातः । सत्त्वादिर्ना सजातीयत्वात्तस्योपादानभावेऽपि अयमेव दोषः । ५ प्रमाणप्रसिद्धत्वाच्चात्मनस्तदुपादानत्वमेव विज्ञानस्योपपन्नम् । तथा हि-यद्यतोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टं तत्त्वैतस्तत्त्वान्तरम्, यथा तेजसो वाय्वादिकम्, पृथिव्याद्यसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टं च चैतन्यमिति । न चायमसिद्धो हेतुः, चैतन्यस्य ज्ञाना(ज्ञान)दर्शनोपयोगलक्षणत्वात्, भूपयःपावकपवनानां धार-१० णेरणद्रवोष्णतास्वभावानां तल्लक्षणाभावात् । न हि भूतानि ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणानि असदाद्यनेकप्रतिपत्तृप्रत्यक्षत्वात् । यत्पुनस्तल्लक्षणं तत्रासदाद्यनेकप्रतिपत्तृप्रत्यक्षम् यथा चैतन्यम्, तथा च भूतानि, तस्माच्चयैवेति ।

ननु ज्ञानौघुपयोगविशेषव्यतिरेकेणापरस्य तद्वतः प्रमाणतो-१५ ऽप्रतीतिः असिद्धमेवासाधारणलक्षणविशेषविशिष्टैवम्; तथाहि-न तावत्प्रत्यक्षेणैतौ प्रतीयते; रूपादिवत्तत्त्वभावानवधारणात् । नाप्यनुमानेन; अस्य ग्रामाण्याप्रसिद्धेः । न च तद्भावावेदकं किञ्चिदनुमानमस्तिः इत्यसङ्गतम्; प्रत्यक्षेणैवात्मनः प्रतीतिः 'सुख्यहं

१ आदिपदेन पुष्पपाप । २ चिद्विवर्तत्वादिततः । ३ जैतः । ४ चैतन्यस्य । ५ अन्यथा । ६ प्रमेयत्ववस्तुत्वादि । ७ किञ्च । ८ स उपादानं यस्य तत् । ९ चैतन्य धर्मी पृथिव्यादिभ्योऽर्वान्तरं भवतीति साध्यो धर्मः । ततोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टत्वात् । १० पृथिव्यादिभ्यः । ११ विनदृष्ट । १२ पृथिव्यादिभ्यः । १३ भिन्नं । १४ का । १५ ज्ञानदर्शनरूपं यव उपयोगः । १६ अनेकसर्वरूपप्रत्यक्षेणासच्चैतन्येन व्यभिचारः । १७ अनेकप्रतिपत्तृप्रत्यक्षत्वादित्युक्ते । १८ प्रत्यक्षत्वादित्युक्ते प्रत्यक्षेण । १९ असच्चैतन्येन व्यभिचारः । २० दर्शनं । २१ आत्मनः । २२ साधनम् । २३ इन्द्रियप्रत्यक्षेण । २४ किञ्च । २५ हेतुः ।

१ "न हि भूतानि स्वसंवेदनलक्षणानि असदाद्यनेकप्रतिपत्तृप्रत्यक्षत्वात् ।"

अष्टसह० पृ० ६४ ।

२ "आत्मसद्भावे प्रमाणाभावात्; तथाहि न प्रत्यक्षेणोपलभ्यते रूपादिवत्तत्त्वभावानवधारणात् । नाप्यनुमानमसत्त्वात्प्रतिबद्धम् ।" प्रज्ञ० व्यो० पृ० १९१ ।

३ "अहमिति प्रत्यवे तस्य प्रतिभासनात्, तथाच सुख्यहं दुःख्यहमिच्छावानहमिति प्रत्ययो दृष्टः ।" प्रज्ञ० व्यो० पृ० ३९१ ।

दुःख्यहमिच्छावानहम्' इत्याद्यनुपचरिताहम्प्रत्ययस्यात्मप्राहिणः
प्रतिप्राणि संवेदनात् । न चायं मिथ्याऽवाच्यमानत्वात् । नापि
शरीरालम्बनः; बहिःकरणनिरपेक्षान्तःकरणव्यापारेणोत्पत्तेः । न
हि शरीरं तथोभूतप्रत्ययवेद्यं बहिःकरणविषयत्वात्, तस्यानुप-
५ चरिताहम्प्रत्ययविषयत्वाभावाच्च । न हि 'स्थूलोऽहं कशोहम्'
इत्याद्यभिज्ञाधिकरणतया प्रत्ययोऽनुपचरितः; अत्यन्तोपकारक-
कृत्ये 'अहमेवायम्' इति प्रत्ययस्याप्यनुपचरितत्वप्रसङ्गात् । प्रति-
भासमेवो बाधकः अन्यत्रापि समानः । न हि बहलतमः पटलपटाव-
गुण्ठितविग्रहस्यै 'अहम्' इति प्रत्ययप्रतिभासे स्थूलत्वादिधर्मोपेतो
१० विग्रहोपि प्रतिभासते । उपचारैश्च निमित्तं विना न प्रवर्तते
इत्यात्मोपकारकत्वं निमित्तं कल्प्यते भृत्यवदेव । 'मदीयो भृत्यः'
इतिप्रत्ययमेववत् 'मदीयं शरीरम्' इति प्रत्ययमेववत्तु मुख्यः ।

यच्चोक्तम्-रूपादिवत्त्वंभावानवधारणात्, तदयुक्तम्, 'मैहम्'

१ बहिःकरणनिरपेक्षान्तःकरणव्यापारादुत्पद्यमानप्रत्ययवेद्यम् । २ अभावोऽस्ति
इत्युक्ते सत्याह । ३ इच्छावानहम् । ४ ईदम् । ५ अनुकरणे । ६ देहः ।
७ अन्यथा । ८ उपचारेण । ९ स्थूलोहमिलादिप्रत्यये । १० आहृत । ११ पुनर्वस ।
१२ स्थूलत्वादौ । १३ स्थूलत्वादेः । १४ प्रयोजनम् । १५ शरीरम् । १६ ज्ञाने ।
१७ शरीरम् । १८ ज्ञान । १९ परेण । २० आत्म । २१ आत्मा ।

"स्वसंवेद्यः स भवति नासावन्नेन ज्ञयते द्रष्टुम्, नासावन्नेन ज्ञयते द्रष्टुं
कथमतो निर्दिश्येत... असौ पुरुषः स्वयमात्मानमुपलभते । न चान्यस्मै शक्तोऽप्युपदर्श-
यिष्यन् ।"

शाबरभा० १।१।५ ।

"अहम्प्रत्ययविज्ञेयः स्वयमात्मोपपद्यते ।" मीमांसाको० आत्मवादको० १०७ ।

"स्वसंवेदनतः सिद्धः सदात्मा बाधवर्जितात् ।

तस्य क्षमादिविवर्त्तात्मन्यात्मन्यनुपपत्तिरिति ॥ १६ ॥"

तत्त्वार्थको० पृ० ३३ । शास्त्रभा० समु० को० ७९ । व्यावक्रुण्ड० पृ० ३४३ ।

१ "न शरीरालम्बनमन्तःकरणव्यापारेण उत्पत्तेः । तथाहि न शरीरमन्तःकरण-
परिच्छेद्यं बहिर्विषयत्वात् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९१ ।

२ "नन्वेवं कशोऽहं स्थूलोऽहमिति प्रत्ययसार्हि कथम् ? मुख्ये बाधकोपपत्तेरुप-
चारेण । तथाहि-मदीयो भृत्य इति ज्ञानवन्मदीयं शरीरमिति मेवप्रत्ययदर्शनात्
भृत्यवदेव शरीरेऽप्यहमिति ज्ञानस्य औपचारिकत्वमेव युक्तम् । उपचारस्तु निमित्तं
विना न प्रवर्तते इत्यात्मोपकारकत्वं निमित्तं कल्प्यते ।" प्रश्न० व्यो० पृ० ३९१ ।
व्यावक्रुण्ड० पृ० ३४९ । सम्प्रति० टी० पृ० ८६ ।

३ "अहमिति स्वयमस्य प्रतिभासनात् । नचार्थान्तरस्य अर्थान्तरस्वभावेनाप्रत्य-
क्षत्वं दोषः, सर्वपदार्थानामप्रत्यक्षनामसङ्गात् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९१ ।

इति तत्त्वभावस्य प्रतिभासनात् । न चोर्थान्तरस्यार्थान्तरस्वभा-
वेनाप्रत्यक्षत्वं दोषः, सर्वैर्पदार्थानामप्रत्यक्षताप्रसङ्गात् । अथात्मनः
कर्तृत्वादेकसिद्धिं काले कर्मत्वासम्भवेनाप्रत्यक्षत्वम् ; तन्न, लक्षण-
मेवेन तदुपपत्तेः, स्वातन्त्र्यं हि कर्तृत्वलक्षणं तदैव च ज्ञानक्रियया
व्याप्यत्वोपलब्धेः कर्मत्वं चाविरुद्धम्, लक्षणाधीनत्वाद्भस्तु-^५
व्यवस्थायाः ।

तथाजुमानेनात्मा प्रतीयते । श्रोत्रादिकरणैर्नाम कर्तृप्रयोज्यानि
करणत्वाद्वास्यादिवत् । न चोत्र श्रोत्रादिकरणानामसिद्धत्वम् ।
'रूपरसगन्धस्पर्शशब्दोपलब्धिः करणकार्या क्रियात्वाच्छिदि-
क्रियावत्' इत्यनुमानात्तत्सिद्धेः । तथा 'शब्दादिज्ञानं कच्चिदा-^{१०}
श्रितं गुणत्वाद्गुणैर्दिवत्' इत्यनुमानतोऽप्यसौ प्रतीयते । प्रामाण्यं
चानुमानस्याग्रे समर्थयिष्यते । शरीरेन्द्रियमनोविषैश्चगुणत्वा-
द्विज्ञानस्य न तद्व्यतिरिक्ताश्रयाश्रितत्वम्, येनौत्तमसिद्धिः स्यादि-
त्यपि मनोरथमात्रम्, विज्ञानस्य तद्वृणत्वासिद्धेः । तथाहि-न

१ आत्म । २ चैतन्यस्य । ३ रूपादिलक्षणादर्शोदर्शान्तरमात्रायाः तस्य । ४ आत्म-
लक्षणादर्शोदयोर्नरं यदादिरूपस्य स्वभावो रूपादित्येव । ५ अन्यथा । ६ यदादीर्णा ।
७ रूपरसादिरूपेण पदेन प्रत्यक्षत्वात्सम्भवात् । (१) ८ कर्तृकाले । ९ स्वतन्त्रः कर्तेति
वचनात् । १० क्रियाम्बाहं कर्मेति वचनात् । ११ असाधारणस्वरूपम् । १२ प्रत्यक्ष-
प्रकारेण । १३ अर्थपरिच्छिद्यौ । १४ छिद्यौ । १५ अनुमाने । १६ प्रत्यक्षानुमान-
प्रकारेण । १७ आत्मनि । १८ यदाचये यथा । १९ आत्मा । २० असाभिप्रेतः ।
२१ यदादि ज्ञादि च । २२ केन ।

१ "अथात्मनः कर्तृत्वादेकसिद्धिं काले कर्मत्वासम्भवेनाप्रत्यक्षत्वम् ; तन्न, लक्षण-
मेवेन तदुपपत्तेः । तथाहि-ज्ञानविशीर्षाधारत्वात् कर्तृलक्षणस्योपपत्तेः कर्तृत्वम्,
तदेव च क्रियया व्याप्यत्वोपलब्धेः कर्मत्वमेति न दोषः । लक्षणतत्त्वत्वाद्भस्तु-
व्यवस्थायाः ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९२ ।

२ "करणैः शब्दाद्युपलब्धजुमितैः श्रोत्रादिभिः समभिगमः क्रियते वासादीनां
करणानां कर्तृप्रयोज्यत्वदर्शनात् । शब्दादिषु प्रसिद्धा च प्रसाधकोऽनुनीयते ।"

प्रश्न० आ० पृ० ३९ ।

"श्रोत्रादीनि करणानि कर्तृप्रयोज्यानि करणत्वात् वासादिवत् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९३ । न्यायकुसु० पृ० ३४९ ।

३ "शब्दोपलब्धिः करणकार्या क्रियात्वात् छिदिक्रियावत् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९३ । स्या० सं० का० १७ ।

४ "शब्दादिज्ञानं कच्चिदाश्रितं गुणत्वात् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९३ । न्यायकुसु० पृ० ३४९ ।

शरीरं चैतन्यगुणाश्रयो भूतविकारत्वाद् घटादिवत् । चैतन्यं वा शरीरविशेषगुणो न भवति सति शरीरे निर्वर्त्तमानत्वात् । ये तु शरीरविशेषगुणा न ते तस्मिन्सति निवर्त्तन्ते यथा रूपादयः, सत्यपि तस्मिन्निवर्त्तते च चैतन्यम्, तस्माच्च तद्विशेषगुणः ।

५ तथा, नेन्द्रियाणि चैतन्यगुणवन्ति करणत्वाद्भूतविकारत्वाद्वासादिवत् । तद्गुणत्वे चैतन्यस्येन्द्रियविनाशे प्रतीतिर्न स्याद्विनाशे गुणस्याप्रतीतेः । न चैवम्, तस्माच्च तद्गुणः । तथा च प्रयोगः—स्मरणं चैतन्यमिन्द्रियगुणो न भवति तद्विनाशेप्युत्पद्यमानत्वात्, यो यद्विनाशेप्युत्पद्यते स न तद्गुणो यथा पटविनाशेपि घटरूपादि, भवति चेन्द्रियविनाशेपि स्मरणादिकम्, तस्माच्च तद्गुणः । यदि चेन्द्रियगुणश्चैतन्यं स्यात्सर्हि करणं विना क्रियायाः प्रतीत्यभावात् करणान्तरेर्भवितव्यम् । तेषां च प्रत्येकं

१ शरीरस्य । २ चैतन्यस्य । ३ शरीरे । ४ किञ्च । ५ घटस्य । ६ किञ्च । ७ गुणो । ८ गुणः । ९ जानातीति । १० चैतन्यलक्षणयाः ।

१ “न शरीरेन्द्रियमनसामस्तत्वात् । न शरीरस्य चैतन्यं घटादिवत् भूतकार्यत्वात् नृते चासंभवात् ।” प्रश्न० भा० पृ० ६९ ।

“शरीरं चैतन्यशून्यं भूतत्वात् कार्यत्वाच्च ।...चैतन्यं शरीरविशेषगुणो न भवति सति शरीरे निवर्त्तमानत्वात् ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९४ । न्यायकुसु० पृ० ३४६ ।

“न शरीरगुणश्चेतना, कस्यार् ? ‘यावच्छरीरमावित्वात् रूपादीनाम् ।’ ‘शरीरं व्यापित्वात्’ ‘शरीरगुणवैचर्यात्’ ।” न्यायसू० ३।२।४९, ५२, ५५ ।

“न शरीरस्य ज्ञानादियोगः परिणामित्वात्, रूपादिमत्त्वात्, अनेकसमूहसंभवात्, सन्निवेशविशिष्टत्वात् ।” न्यायसू० पृ० ४६९ ।

“देहधर्मवैलक्षण्यात्—” प्रश्नसू० भा० भा० ३।३।५४ ।

२ “नेन्द्रियाणां करणत्वात् उपहतेषु विषयासाक्षिण्ये चाऽनुसृतिदर्शनात् ।” प्रश्न० भा० पृ० ६९ ।

“नेन्द्रियार्थयोः तद्विनाशेऽपि जानावस्थानात् ।” न्यायसू० ३।२।१८ ।

“नेन्द्रियाणां चैतन्यं करणत्वात् वासादिवत्, भूतत्वात्, कार्यत्वादित्यपि द्रष्टव्यम् ।...तदुपघातेऽपि स्मृतिदर्शनात् ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९४ । न्यायकुसु० पृ० ३४६ ।

३ “स्मरणमिन्द्रियगुणो न भवति यथा पटविनाशेऽपि पटरूपादिरिति । तथा च स्मरणमिन्द्रियविनाशेऽपि भवति तस्माच्च तद्गुण इति ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ ।

४ “यदि चेन्द्रियाणां चैतन्यं स्यात् करणं विना क्रियायाश्चानुपलब्धेति करणान्तरेर्भवितव्यम् । तानि करणानि इन्द्रियाणि विवादास्पदानि चास्मान्न ह्येकस्मिन् शरीरे पुरुषबहुत्वमन्युपगतं स्यात् ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ ।

चैतन्यगुणत्वे एकस्मिन्नेव शरीरे पुरुषबहुत्वप्रसङ्गः स्यात् । तथाच देवदत्तोपलब्धेऽर्थे यद्भूतस्यैवेन्द्रियान्तरोपलब्धे तस्मिन् न स्याद्विन्द्रियान्तरेण प्रतिसन्धानम् । दृश्यते चैतत्ततो नेन्द्रियगुणश्चैतन्यम् । अथैकमेवेन्द्रियमशेषकरणाधिष्ठायकमिष्यतेऽतोयमदोषः; तर्हि संज्ञामेदमात्रमेव स्यादात्मनस्तथा नामान्तरकरणात् । ५

नापि चैतन्यगुणवन्मनः करणत्वाद्वास्यादिवत् । कर्तृत्वोपगमे तस्य चैतनस्य संतो रूपाद्गुणलब्धौ करणान्तरोपेक्षित्वे च प्रकारान्तरेणात्मैवोक्तः स्यात् ।

नापि विषयगुणः; तदसाक्षिध्ये तद्विनाशे चानुस्मृत्यादिदर्शनात् । न च गुणिनोऽसाक्षिध्ये विनाशे वा गुणानां प्रतीतिर्युक्ता, १० गुणत्वैविरोधानुषङ्गात् । ततः परिशेषाच्छरीरेऽदिव्यतिरिकाधर्माभितं चैतन्यमित्यतो भवत्येवात्मसिद्धिः ।

ततो निराकृतमेतत्—‘शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञेभ्यः पृथिव्यादिभूतेभ्यश्चैतन्याभिर्व्यक्तिः, पिष्टोदकगुडघातक्यादिभ्यो मदशक्तिवत्’ । ततोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टत्वेऽप्यतस्त्वा(तस्तस्त्वा)न्तरेत्त्व- १५

१ चैतन्यं गुणो वेदां तानि तत्त्वे । २ चक्षुषा दृष्टेऽर्थं श्रोत्रेण प्रतिसन्धानं न स्यात् । ३ प्रलम्बिमानम् । ४ मनः । ५ प्रेरकम् । ६ परम । ७ निवर्तमानम् । ८ मनः । ९ चक्षुरादि । १० चैतन्यं । ११ सुखादि । १२ जन्मया । १३ गुणिनोऽस्मी गुणा इति । १४ इन्द्रियमनोविषय । १५ आत्म । १६ गुणत्वादिसापेक्षात् । १७ नापते । १८ तस्यैतन्यस्याभिन्नकिर्तवः । १९ ज्ञानदर्शनोपयोगरूप । २० चैतन्यस्य ।

१ “नदि चैकमिन्द्रियमशेषकरणाधिष्ठायकं चैतनमिष्येत; संज्ञामेदमात्रमेव स्यात् ।”

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ ।

२ “नापि मनसः करणान्तरोपेक्षित्वे भुगपदालोचनस्युत्तिप्रसङ्गात्, स्वयं करणभावाच्च ।”

प्रश्न० भा० पृ० ६९ ।

“नापि मनोगुणः करणत्वात् वास्यादिवत् ।”

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ । न्यायकुसु० पृ० ३४७ ।

“भुगपलब्धेयानुपलब्धेऽर्थे न मनसः ।”

न्यायसू० १।२।१९ ।

३ “अत एव विषयसापि न चैतन्यम् ।”

प्रश्न० कन्दली पृ० ७२ ।

“विषयासाक्षिध्ये तद्विनाशे चानुस्मृतिर्विद्या । न तत् गुणतद्विनाशे भवतीति ।”

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ । न्यायकुसु० पृ० ३४७ ।

४ “इत्याह—मदशक्तिवद्विज्ञानम् । नैव हि मयाज्ञानां किण्यादीनां देशकालावसाविशेषे मदशक्तिलक्षणवसाविशेषः प्रादुर्भवति यत्नं पृथिव्यादीनां तद्विशेषे प्रतिनियतवदादिप्रादुर्कं ज्ञानमिति ।”

न्यायकुसु० पृ० ३४२ ।

मेव । “पृथिव्य(व्या)पस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि, तत्समुदये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञाः तेभ्यश्चैतन्यम्” [] इत्यत्र ‘अभिव्यक्तिमुपयाति’ इति क्रियाध्याहारोदतः सन्दिग्धविषयव्यावृत्तिको हेतुरिति; शब्दसामान्याभिव्यक्तिनिषेधेनैतस्य चैतन्याभिव्यक्तिवादस्य विरोधार्थः ।

किंच, सैतोऽभिव्यक्त्यैतन्यस्य, असतो वा स्यात्, सदसद्रूपस्य वा? प्रथमकल्पनायाम् तस्यानाद्यनन्तत्वसिद्धिः, सर्वदा सतोऽभिव्यक्तेस्तामन्तरेणानुपपत्तेः । पृथिव्यादिसामान्यवत् । तथा च “परलोकिनोऽभावात्परलोकाभावः” [] ३० इत्यपरीक्षिताभिधानम् । प्रागसतश्चैतन्यस्याभिव्यक्तौ प्रतीतिविरोधः, सर्वथाप्यसतः कस्यचिदभिव्यक्त्येव प्रतीतेः । न चैवमादिनो व्यञ्जककारकयोर्भेदः; ‘माक्सतः स्वरूपसंस्कारकं हि व्यञ्जकम्, असतः स्वरूपनिर्वर्तकं कारकम्’ इत्येवं तयोर्भेदप्रसिद्धिः । कथञ्चित्सतोऽसतश्चाभिव्यक्तौ परमप्रवेशः—कथञ्चिद्रव्यतः सतश्चैतन्यस्य पर्यायतोऽसतश्च कायाकारपरिणतैः पृथिव्यादिपुद्गलैः

१ अग्ने । २ चैतन्यसामिव्यक्तिः । ३ वसः । ४ असाधारणकल्पविशेष-
विक्षिप्ततादिति । ५ आकाशात्तद्विरुद्धगुणशब्दोत्पत्तिं यौगमित्रां निराकृत्यतत्त्वार्थकस्य
अतृप्त्यस्यविरुद्धगुणचैतन्योत्पत्तिकथनमयुक्तं स्ववचनविरोधादित्यभिप्रायः । ६ अग्ने ।
७ यथा वदन्ता प्रदीपाद्यभिव्यक्त्यापारापूर्वं सज्जावग्राहकं प्रमाणमस्ति तथा
वाल्वादिभ्यापारापूर्वं कम्पादिसज्जावग्राहकप्रमाणाभावात्कथमभिव्यक्त्यापाराविरुद्धा-
दीनामभिव्यक्तिरिति चार्वाकेण कम्पाद्यभिव्यक्तिपक्षे भीमासकं प्रत्युक्त्याभ्यमानेन
दूषणेन चैतन्याभिव्यक्तिपक्षस्यापि निराकृतत्वात् । कथम्? अभिव्यक्त्यैतन्यापूर्वनन-
भिव्यक्तनिलचैतन्यसज्जावग्राहकप्रमाणभावादिति । ८ किञ्च । ९ पृथिवीत्वादि ।
१० अनाद्यनन्तात्मसिद्धौ । ११ सत्याम् । १२ स्वरविषायादिवत् । १३ किञ्च ।
१४ ना भूत् । १५ व्यञ्जकस्य । १६ जैन । १७ वरनारकादि ।

१ इदं वाक्यं तत्त्वोपप्लव ५० १, भागवती ३।३।५४, तत्त्वसं पं० ५० ५५०,
तत्त्वार्थे श्लो० ५० २८, न्यायकुसु० ५० ३४१ इत्यादिषु उद्धृतं वर्तते ।

२ “तथाहि—पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि तत्त्वानि । तेभ्यश्चैतन्यमिति । अत्र
केचिद्वृत्तिकारा व्याचक्षते—‘उत्पद्यते तेभ्यश्चैतन्यम्’ इति । अन्ये ‘अभिव्यन्त्यते’
इत्याहुः ।” तत्त्वसं० पं० ५० ५२० ।

३ “चैतन्यशक्तिं सतीमेव, प्रागसतीमेव, सदसती वा अभिव्यञ्जयेयुः ।”

सुख्यमुखा० टी० ५० ७५ । न्यायकुसु० ५० ३४५ ।

४ इदं वाक्यं तत्त्वोपप्लव० ५० ५८, तत्त्वसं० पं० ५० ५२३, न्यायकुसु०
५० ३४३, सम्मति० टी० ५० ७१ इत्यादिषु उद्धृतं वर्तते ।

परैरप्यभिव्यक्तेरभीष्टत्वात् पृथिव्यादिभूतचतुष्टयैवत् । नन्वेवं पिष्टोदकादिभ्यो मदश्चयभिव्यक्तिरपि न स्यात् तत्राप्युक्त-
विकल्पानां समानत्वादित्यप्यसाम्प्रतम् । तत्रापि द्रव्यरूपतया
प्राक्सत्त्वाभ्युपगमात्, सकलभावानां तद्रूपेणानाद्यनन्तत्वात् ।

शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञेभ्यश्चैतन्यस्योत्पत्त्यभ्युपगमात् 'तेभ्यश्चै-
तम्' इत्यत्र 'उत्पद्यते' इति क्रियाव्याहारात्तन्नाभिव्यक्तिपक्षभावी
दोषोऽवकाशं लभते इत्यर्थः । सोऽपि चैतन्यं प्रत्युपादानकारण-
त्वम्, सहकारिकारणत्वं वा भूतानाम् इति पृष्टं स्पष्टमा-
ख्यम् । न तावदुपादानकारणत्वं तेषाम् ; चैतन्ये भूतान्वयप्रस-
ङ्गात्, सुवर्णोपादाने किरीटादौ सुवर्णान्वयवत्, पृथिव्याद्युपादाने १०
काये पृथिव्याद्यन्वयवत् । न चात्रैवंम्, न हि भूतसमुद्यः पूर्वम-
चैतनाकारं परित्यज्य चैतनाकारमाददा(धा)नो धारणेणद्रव्यो-
ष्णतालक्षणेन रूपादिमत्त्वस्वभावेन वा भूतस्वभावेनान्वितः प्रेम्-
णप्रतिपक्षः, चैतन्यस्य धारणादिस्वभावरोहितस्यान्तःसंवेदनेनानु-
भवात् । न च प्रदीपौद्युपादानेन कज्जलादिना प्रदीपाद्यनन्वितेन १५
व्यभिचारः ; रूपादिमत्त्वमात्रेणात्राप्यन्वयदर्शनात् । पुद्गलविका-
राणां रूपादिमत्त्वमात्राव्यभिचारात् । भूतचैतन्ययोरप्येवं सत्त्वा-
दिक्रियाकारित्वादिधर्मैरन्वयसङ्गात् उपादानोपादेयभावः
स्यादित्यप्यसमीचीनम् ; जलानलादीनामप्यन्योन्यमुपादानोपादे-
यभावप्रसङ्गात्, तद्धर्मैस्तत्राप्यन्वयसङ्गावाविशेषात् । २०

किञ्च, 'प्राणिनामायं चैतन्यं चैतन्योपादानकारणकं चिद्विवर्त-

१ जैनैः । २ यथा पृथिव्यादिभूतचतुष्टयस्य पुद्गलरूपेण सतः षट्पादपर्यायरूपेणा-
सतश्चक्रादिकारणादाविर्भावस्तथा प्रकृतस्यापि । ३ चैतन्याभिव्यक्तिनिषेधप्रकारेण ।
४ मदश्चर्त्ता । ५ छन्दे । ६ अविकर्तृत्वमविकर्तृत्वविशेषः । ७ जैनैः । ८ अन्यथा ।
९ चैतन्यं भूतान्वयि तदुपादानत्वात् । यद्युपादानं तत्तदन्वयि यथा शुद्रोपादानको
वटः । १० पीतत्वमाहुरत्स्य । ११ धारणादि । १२ उपसंहारः । १३ मत्त्वम् ।
१४ प्रदीपादि उपादानं यस्य । १५ कज्जले प्रदीपरूपादिमत्त्वमात्रान्वयप्रकारेण ।
१६ जलानलादयः परस्परमुपादानोपादेयभाववन्तः सत्त्वादियधर्मैरन्वितत्वात्तद्वत्तच्चैत-
न्यवत् । १७ चैतन्यं यमि भूतोऽन्वयि यमयति साधो धर्मः । तदुपादानत्वात्
यथा शुद्रोपादानको वटो वृद्धन्वयी । १८ तज्जन्मापेक्षया । १९ पूर्वजन्मचैतन्यम् ।
२० वसः । २१ पूर्वनिवृत्ति । २२ प्रमेय । (पर्वय)

१ "भूतानि किमुपादानकारणं चैतन्यस्य सहकारिकारणं वा ?"

तत्त्वसं० पं० पृ० ५२६ । शुचयानु० टी० पृ० ७८ । न्यालकुसु० पृ० २४४ ।

२ "प्राणिनामायं चैतन्यं चैतन्योपादानकारणकं चिद्विवर्तत्वात् मध्यचैतन्यविवर्त-
वत् । तथा अन्यचैतन्यपरिणामः चैतन्यकार्यः सत एव तद्वत् ।" अष्टादश० पृ० ६३१

त्वान्मध्यचिद्विवर्तवत् । तथान्यच्चैतन्यपरिणामश्चैतन्यकार्यस्तत एव तद्वत् इत्यनुमानात्तस्य चैतन्यान्तरोपादानपूर्वकत्वसिद्धेर्न भूतानां चैतन्यं प्रत्युपादानकारणत्वकल्पना घटते । सहकारिकारणत्वंकल्पनायां तु उपादानमन्यद्वाच्यम्, अनुपादानस्य कस्यचि-
५ त्कार्यस्यानुपलब्धेः । शब्दविद्युदादेरनुपादानस्याप्युपलब्धेरदोषोय-
मित्यप्यपरीक्षिताभिधानम्, 'शब्दादिः सोपादानकारणकः कार्य-
त्वात् पटादिवत्' इत्यनुमानात्तत्सादृश्योपादानस्यापि सोपादान-
त्वसिद्धेः ।

गोमयादेरचैतनाच्चेतनस्य वृश्चिकादेरुत्पत्तिप्रतीतिः तेर्नाने-
१० कान्तः इत्ययुक्तम्, तस्य पक्षान्तर्भूतत्वात् । वृश्चिकादिशरीरं
श्वाचेतनं गोमयादेः प्रादुर्भवति न पुनर्वृश्चिकादिचैतन्यवि-
वर्त्तस्तस्य पूर्वचैतन्यविवर्त्तादेवोत्पत्तिप्रतिज्ञानात् । अथ यथार्थः
पथिकाग्निः अरणिनिर्मन्थोत्थोऽनग्निपूर्वकः अन्यस्त्वग्निपूर्वकः
तथायं चैतन्यं कायाकारपरिणतभूतेभ्यो भविष्यत्यन्यत्तु चैतन्य-
१५ पूर्वकं विरोधाभावादिष्यपि मनोरथमात्रम्, प्रथमपथिकाग्नेरनर्थ्यु-
पादानत्वे जलादीनामप्यजलाद्युपादानत्वापत्तेः पृथिव्यादिभूतचतु-
ष्टयस्य तत्त्वान्तरभावविरोधः । येषां हि परस्परमुपादानोपादेय-
भावस्तेषां न तत्त्वान्तरत्वम् यथा क्षितिविवर्त्तानाम्, परस्पर-
मुपादानोपादेयभावस्य पृथिव्यादीनामित्येकमेव पुद्गलतत्त्वं क्षित्या-

१ जन्मप्रभृतिमरणपर्यन्त । २ वसः (कर्मभारयसमासः) । ३ पर्यायः ।
४ वसः । ५ भूतानां । ६ कारणम् । ७ परेण । ८ वृश्चिकचैतन्येन । ९ वृश्चिक-
चैतन्यस्य । १० वसः । ११ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वम् । १२ जुष्टीसः । १३ मध्य-
चैतन्यम् । १४ कार्यत्वादिहेतोः । १५ काष्ठ । १६ पृथिव्यादयो धर्मिणस्तत्त्वान्तरत्वं
न प्राप्नुवन्तीति सार्धं परस्परमुपादानोपादेयभाववत्त्वात् । १७ सलिलदहनपवन ।

१ “नापि ते कारका विधेः अनन्ति सहकारिणः ।
सोपादानविहीनायास्तत्त्वान्तेभ्योऽप्रसूतिः ॥ २०७ ॥
नोपादानाग्निना शब्दविद्युदादिः प्रवर्त्तते ।
कार्यत्वात् कुम्भवत्... ॥ २०८ ॥ तत्त्वार्थलो० पृ० २८ ।

न्यायकुसु० पृ० १४४ ।

२ “गोमयादेरचैतनाच्चेतनस्य वृश्चिकादेरुत्पत्तिदर्शनात्तेन न्यामिचारी हेतुरिति
चेन्नः तस्यापि पक्षीकरणम् । वृश्चिकादिशरीरत्वाच्चेतनस्यैव तेन सम्पृच्छन् न पुनः
वृश्चिकादिचैतन्यविवर्त्तस्य, तस्य पूर्वचैतन्यविवर्त्तादेव उत्पत्तिप्रतिज्ञानात् ।”

अष्टसह० पृ० ६३ । तत्त्वार्थलो० पृ० २९ ।

३ “प्रथमपथिकाग्नेरनर्थ्युपादानत्वे जलादीनामप्यजलाद्युपादानत्वोपपत्तेः पृथि-
व्यादिभूतचतुष्टयस्य तत्त्वान्तरभावविरोधः ।”
अष्टसह० पृ० ६३ ।

दिविवर्त्तमवतिष्ठेत् सहकारिभावोपगमे तु तेषां चैतन्येपि सोऽस्तु । यथैव हि प्रथमाविर्भूतपावर्कदेस्तिरोहितपावर्कान्तरादिपूर्वकत्वं तथा गर्भचैतन्यस्याविर्भूतस्वभावस्य तिरोहितचैतन्यपूर्वकत्वमिति ।

न चानाद्यैकानुमवितृव्यतिरेकेणैष्टानिष्टविषये प्रत्यभिज्ञानाभि-^५ लाषादयो जन्मादौ युज्यन्ते; तेषामभ्यासपूर्वकत्वात् । न च मानुर्दर्शितस्य बहिर्विषयादर्शनेऽभ्यासो युक्तः; अतिप्रसङ्गात् । न चोबलज्ञावस्थायामभ्यासपूर्वकत्वेन प्रतिपन्नानामप्यनुसन्धानादीनां जन्मादीवतत्पूर्वकत्वं युक्तम्; अन्यथा धूमोऽग्निपूर्वको-^{१०} दृष्टोप्यनग्निपूर्वकः स्यात् । मातापित्रभ्यासपूर्वकत्वात्तेषामवोषो-^{१५} यमित्यप्यसम्भाव्यम्; सन्तानान्तरीयभ्यासादन्यत्र प्रत्यभिज्ञानेऽ-^{२०} तिप्रसङ्गात् । तदुपलब्धे 'सर्वे मैयवोपलब्धमेतत्' इत्यनुसन्धानं चैकिलापत्यानां स्यात् । परस्परं वा तेषां प्रत्यभिज्ञानप्रसङ्गः स्यात्, एकस्यैस्तानोद्भूतदर्शनस्पर्शनप्रत्ययवत् ।

'ज्ञानेनाहं घटादिकं जानामि' इत्यहमप्रत्ययप्रसिद्धत्वात्तन्मात्रो-^{१५} नोपलापो युक्तः । अत्र हि यथा कर्मतया विषयस्यावभासस्तथा कर्तृतयात्मनोपि । न चोत्र देहेन्द्रियादीनां कर्तृता; घटादिवत्तेषामपि कर्मतयाऽवभासनात्, तदप्रतिभासनेप्यहमप्रत्ययस्यानु-^{२०} भवात् । न हि बहुलतमः पटलपटावगुण्डितविग्रहस्योपरतेन्द्रिय-

१ वसः । २ परेण । ३ जगि प्रलरगिरूपपृथ्वादीनाम् । ४ दधि । ५ कृत्ति-
रूपसित । ६ उपादान । ७ कृत्तिरूपसित । ८ उपादान । ९ किञ्च । १० जाल ।
११ सस्कार । १२ नालकस । १३ त्रिविप्रकृष्टेण्येऽभ्यासो यवत्वदर्शनाविज्ञेयात् ।
१४ मध्यभावस्याया । १५ प्रलभिज्ञानादीनाम् । १६ जनन्यास । १७ अपत्यस ।
१८ नासापितृलक्षण । १९ अपले । २० वस्तुनि । २१ अपलेन । २२ किञ्च ।
२३ यन्मपलेन कृष्टेऽयं द्वितीयापत्यस्य प्रलभिज्ञानप्रसङ्गः स्यात् । २४ आत्मलक्षण ।
२५ किञ्च । २६ तिहवः । २७ ज्ञानेनाहं घटादिकं जानामीति प्रत्यये । २८ ज्ञानेनाहं
घटादिकं जानामीति प्रत्यये । २९ देहेन्द्रियादिकं जानामि । ३० अरस ।

१ "पूर्वाद्भूतस्मृत्यनुदन्वान्जातस्य हर्षमयसोक्तसम्प्रतिपत्तेः ।"

न्यायसू० ३।१।१९ । न्यायसं० ३० ४७० ।

"नातिस्मरणां संवादादपि सस्कारसंस्थितेः ।

अन्यथा कल्पयंछोक्तमतिक्रामति केवलम् ॥

नाऽस्मृतेऽभिज्ञापोऽस्ति न विना सापि दर्शनात् ।

तद्धि अगमन्तराध्यायं जातमानेऽपि कल्पते ॥"

न्यायविवि० २।७९,८० । न्यायकुसु० ३० ३४७ ।

व्यापारस्य गौरव्यौल्यादिधर्मोपेतं शरीरं प्रतिभासते । अहमप्रत्ययः स्वसंविदितः पुनस्तस्यानुभूयमानो देहेन्द्रियविषयादिव्यतिरिक्तार्थालम्बनः सिद्ध्यतीति प्रमाणप्रसिद्धोऽनादिनिधनो द्रव्यान्तरमात्मा । प्रयोगः—अनाद्यनन्त आत्मा द्रव्यत्वात्पृथिव्यादिवत् ।

१५ न तावदाश्रयासिद्धोऽयं हेतुः, आत्मनोऽहमप्रत्ययप्रसिद्धत्वात् । नापि स्वरूपोसिद्धः, द्रव्यलक्षणोपलक्षितत्वात् । तथाहि—द्रव्यमात्मा गुणपर्ययवत्त्वात्पृथिव्यादिवत् । न चायमप्यसिद्धो हेतुः, ज्ञानदर्शनादिगुणानां सुखदुःखहर्षविषादादिपर्यायाणां च तत्र सम्भावात् । न च घटादिनानेकान्तस्तस्य मृदादिपर्ययत्वात् ।

१० ननु शरीररहितस्यात्मनः प्रतिभासे ततोऽन्योऽनादिनिधनोऽसाविति स्यात् जलरहितस्यानलस्येव, न चैवम्, आसंसारं तत्सहितस्यैवास्यावभासनात् । तत्र 'शरीररहितस्य' इति कोऽर्थः ? किं तत्स्वभावविकलस्य, आहोस्वित्तद्देशपरिहारेण देशान्तरावस्थितस्येति ? तत्राप्यपक्षेऽस्त्येव तद्रहितस्यास्य प्रतिभासः—

१५ रूपादिमदचेतनस्वभावशरीरविलक्षणतया अमूर्त्तचैतन्यस्वभावतया चात्मनोऽव्यक्षगोचरत्वेनोक्तत्वात् । द्वितीयपक्षे तु—शरीरदेशादन्यत्रानुपलम्भात्तत्र तदभावः, शरीरप्रदेश एव वा ? प्रथमविकल्पे—सिद्धसाधनम्, तत्र तदभावाभ्युपगमौ । न कलु नैयायिकवज्जैनेनापि स्वदेहादन्यत्रात्मेप्यते । द्वितीयविकल्पे तु—
२० न केवलमात्मनोऽभावोऽपि तु घटादेरपि । न हि सोपि स्वदेशादन्यत्रोपलभ्यते ।

किञ्च, स्वशरीरादात्मनोऽन्यत्वाभावः तत्त्वमैवत्वात्, तद्वृणत्वात् वा स्यात्, तत्कार्यत्वाद्वा प्रकारान्तरासम्भवात् । पक्षत्रयेऽपि प्रागेव दत्तमुत्तरम् । ततश्चैतन्यस्वभावस्यात्मनः प्रमाणतः प्रसिद्धे—

१ पश्चात् । २ मनः । ३ आत्मा । ४ अनादिनिधनस्य । ५ ज्ञातृनि । ६ द्रव्यत्वादिति हेतोः । ७ सति । ८ परिहारमाह । ९ उक्ते अन्ये । १० प्रतिभासाभावः । ११ प्रतिभासाभावः । १२ देशे । १३ जीवस्य । १४ ता । १५ जैने । १६ तत्स्वभावस्य यद्यतोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टं तत्तत्सत्त्वान्तरमित्यादिना निरस्तत्वात् । १७ जैने ।

1

“द्रव्यतोऽनादिपर्यन्तः सत्त्वात् क्लिप्तादितत्त्वत् ।

स स्वाप्न न्यभिचारोऽत्र हेतोर्नाशिन्यसंभवात् ॥ १४० ॥”

तत्त्वार्थे को० पृ० ३२ ।

2 “शरीररहितस्येति कोऽर्थः—किं तत्स्वभावविकलस्य आहो तद्देशपरिहारेण देशान्तरावस्थितस्येति ।”
सा० रत्ना० पृ० १०८० ।

स्तत्स्वभावमेव ज्ञानं युक्तम् । तथा च स्वव्यवसायात्मकं तत् चैत-
नात्मपरिणामत्वात्, यस्तु न स्वव्यवसायात्मकं न तत्तथा यथा
घटादि, तथा च ज्ञानं तस्मात्स्वव्यवसायात्मकमित्यभ्युपगन्तव्यम् ।

नैतु विज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वेऽर्थवत्कर्मतापत्तेः करणात्मनो ज्ञाना-
न्तरस्य परिकल्पना स्यात् । तस्यापि प्रत्यक्षत्वे पूर्ववत्कर्मतापत्तेः ५
करणात्मकं ज्ञानान्तरं परिकल्पनीयमित्यनवस्था स्यात् । तस्या-
प्रत्यक्षत्वेऽपि करणत्वे प्रथमे कोऽपरितोषो येनास्य तथा करणत्वं
नेष्यते । न चैकैस्यैव ज्ञानस्य परस्परविरुद्धकर्मकरणाकाराभ्युप-
गमो युक्तोऽन्यत्र तथाऽदर्शनादित्याशङ्क्य प्रमेयैवेत्प्रमातृप्रमाण-
प्रमितीनां प्रतीतिसिद्धं प्रत्यक्षत्वं प्रदर्शयन्नाह— १०

घटमहमात्मना वेद्मीति ॥ ८ ॥

कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः ॥ ९ ॥

न हि कर्मत्वं प्रत्यक्षतां प्रत्यक्षमात्मनोऽप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् तद्व-
त्तस्यापि कर्मत्वेनाप्रतीतेः । तदप्रतीतावपि कर्तृत्वेनास्य प्रतीतेः
प्रत्यक्षत्वे ज्ञानस्यापि करणत्वेन प्रतीतेः प्रत्यक्षतास्तु विशेषः १५
भावात् । अथ करणत्वेन प्रतीयमानं ज्ञानं करणमेव न प्रत्यक्षम्;
तदैन्यत्रापि संमानम् । किञ्च, आत्मनः प्रत्यक्षत्वे परोक्षज्ञान-
कल्पनया किं सौध्यम् ? तस्यैव स्वरूपवद्वाक्यार्थग्राहकत्वप्रसिद्धेः ?
कर्तुः करणमन्तरेण क्रियायां व्यापारासम्भवात्करणभूतपरोक्ष-

१ वसः । २ चार्वाकिण भवता । ३ गीमासकः । ४ विज्ञानं कर्म-प्रत्यक्षत्वात्,
वदवत् । ५ करणस्वरूपस्य । ६ पूर्वज्ञानस्य यथा । ७ प्रथमज्ञानस्य । ८ अप्रत्यक्षत्वे ।
९ जैनेः । १० यत्कर्म तदेव करणम् । ११ घटे । १२ अर्थस्य यथा । १३ करण-
भूतेन । १४ अन्यथा । १५ आत्मा न प्रत्यक्षः कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वात्करणज्ञानवत् ।
१६ यत् कर्म न भवति तत्प्रत्यक्षमपि न भवतीत्युक्ते । १७ करणज्ञानवत् ।
१८ उभयत्र कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वस्य । १९ समाधानपरिहारम् । २० कर्तृत्वेनात्मा
प्रतीयमानः कर्तव्यं स्यात् प्रत्यक्ष इति समानम् । २१ प्रयोजनम् । २२ प्रमितिकृद्वाक्यार्थः ।

१ “कर्मत्वेनाप्रतिभासमानत्वात् करणज्ञानमप्रत्यक्षमिति चेन्न; करणत्वेन प्रतिभास-
मानस्य प्रत्यक्षत्वोपपत्तेः । कथञ्चिद् प्रतिभासते, कर्म च न भवति इति व्याघातस्य प्रति-
पादितत्वात् ।” तत्त्वार्थको० पृ० ४६ । न्यायकुसु० पृ० १७६ । प्रमाणप० पृ० ६१ ।

२ “अथ करणत्वेनानुभूयमानं ज्ञानं करणमेव स्यात् प्रत्यक्षं तर्हि कर्तृप्रमाणक-
रूपतया अनुभूयमानयोः आत्मप्रमाणकयोः कर्तृप्रमाणकरूपतैव स्यात् न प्रत्यक्ष-
त्वमिलेप्यस्तु ।”

स्मा० रत्ना० पृ० २१२ ।

ज्ञानकल्पना नानार्थिकेत्यप्यसाधीयः, मनसश्चक्षुरादेऽन्तर्बहिः-
करणस्य सद्भावात् ततोऽस्य विशेषाभावाच्च । अनयोरचेतनत्वा-
त्प्रधानं चेतनं करणमित्यप्यसमीचीनम्, भावेन्द्रियमनसोमेत-
नत्वात् । तत्परोक्षत्वसाधनं च सिद्धसाधनम्, स्वार्थग्रहण-
५ शकिलक्षणार्थं लब्ध्वैर्मनसश्च भावकरणस्य लब्धस्थाप्रत्यक्षत्वात् ।
उपयोगलक्षणं तु भावकरणं नाप्रत्यक्षम्, स्वार्थग्रहणव्यापारल-
क्षणस्यास्य स्वसंवेदनप्रत्यक्षप्रसिद्धत्वात् 'यदादिद्वारेण घटादि-
ग्रहणे उपयुक्तोऽप्यहं घटं न पश्यामि पदार्थान्तरं तु पश्यामि'
इत्युपयोगस्वरूपसंवेदनस्याखिलजनानां सुप्रसिद्धत्वात् । क्रियायाः
१० करणाविनाभावित्वे चैतनः स्वसंविता किङ्करणं स्यात् ? खैलै-
वेति चेत्, अर्थेऽपि स एवास्तु किमदृष्टार्थकल्पनया ? ततश्चक्षु-
रादिभ्यो विशेषमिच्छते कानस्य कर्मत्वेनाप्रतीतावप्यध्यक्षत्व-
मभ्युपगन्तव्यम् । फलज्ञानात्मनोः फलत्वेन कर्तृत्वेन चानुभूय-
मानयोः प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमे करणज्ञाने करणत्वेनानुभूयमानेपि
१५ सोऽस्तु विशेषाभावात् । न चैतन्मयी सर्वथा करणज्ञानस्य भेदो

१ परोक्षज्ञानस्य । २ परोक्षत्वेन । ३ उभयत्र । ४ मुख्यम् । ५ कर्मत्वेना-
प्रतीयमानत्वादेतोः । ६ भावेन्द्रियाभिधायाः । ७ अर्थग्रहणशक्तेः । ८ असदादि ।
९ अर्थग्रहणव्यापारः । १० तदेव दर्शयति । ११ व्याप्तिप्रमाणः । १२ किञ्च ।
१३ स्वरूपम् । १४ करणम् । १५ भेदम् । १६ परेण । १७ करणरूपस्य । १८ नय-
परिच्छिन्ति । १९ तादृशः (तादृशं पश्यताः । द्विःपदेन द्विवचनं ग्राह्यम्) । २० परेण ।
२१ करणज्ञानं प्रत्यक्षत्वेन स्वरूपेण प्रतिभासमानत्वात्फलज्ञानात्मनश्च । २२ स्वरूपेण
प्रतिभासाविशेषात् । २३ किञ्च । २४ का (पञ्चमी विभक्तिः) । २५ अन्यथा ।

१ "इन्द्रियमनसोरेव करणत्वात्, तयोरेचेतनत्वादुपकरणमात्रत्वात् प्रधान-
चेतनं करणमिति चेन्न; भावेन्द्रियमनसोः परेषां चेतनतयाऽवस्थितत्वात् ।" तत्प्रा-
रब्धो ५० ४६ । "मनसश्चक्षुरादेऽन्तर्बहिःकरणस्य सद्भावात्, ताभ्यां ज्ञानस्य
परोक्षत्वेन विशेषाभावाच्च । अथ मनसश्चक्षुरादिकावादेरेचेतनत्वात् ज्ञानार्थं कर्णं
चेतनत्वेन ताभ्यां मिश्रितं इत्युच्यते; तदप्यनुपपन्नम्; भावरूपयोरेन्द्रियमन-
सोऽपि चेतनत्वात् ।"

स्या० रत्ना० ५० २१४ ।

२ "अर्थग्रहणशक्तिः कश्चिः, उपयोगः पुनरर्थग्रहणव्यापारः ।"

कपी० स्वामि०, न्यायकुसु० ५० ११५ ।

३ "चक्षुरादिद्वारेणोपयुक्तोऽहं घटं पश्यामीत्युपयोगस्वरूपसंवेदनस्य सर्वथापि
प्रसिद्धत्वात् ।"

स्या० रत्ना० ५० २१४ ।

४ "तदेव तस्य फलमिति चेत्; प्रमाणादभिन्नं भिन्नं वा ?" कथञ्चिदभिन्नमिति
चेत् सर्वथा करणज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वं विरोधात् ।"

तत्प्रा-
रब्धो ५० ४६ ।

"किञ्च, ज्ञानप्रमाणप्रकाराणां सकाशात् करणज्ञानस्य सर्वथा भेदः, कथञ्चिद्विद्वत् ?

स्या० रत्ना० ५० २१४ ।

ऽर्थप्रत्यक्षत्वस्याप्यपलापप्रसङ्गात् । प्रतीतिसिद्धैसभावस्यैकत्राप-
लापेऽन्यत्राप्यनाभवासाक्ष कंचित्प्रतिनियतसंभावव्यवस्था स्यात् ।

- किञ्च, इयं श्रव्यक्षता अर्थधर्मः, ज्ञानधर्मो वा ? न तावदर्थधर्मः,
नीलतादिवचने शेषे ज्ञानकालादन्यदाप्यनेकप्रमातृसाधारणविषय-
५ तथा च प्रसिद्धिप्रसङ्गात् । न चैवम्, आत्मन्येवास्या ज्ञानकाले
एव स्वासाधारणविषयतया च प्रसिद्धेः । तथा च न प्रत्यक्षता
अर्थधर्मः तद्देशे ज्ञानकालादन्यदाप्यनेकप्रमातृसाधारणविषयतया
चाऽप्रसिद्धत्वात् । यस्तु तद्धर्मः स तद्देशे ज्ञानकालादन्यदाप्य-
नेकप्रमातृसाधारणविषयतया च प्रसिद्धो दृष्टः, यथा रूपादिः,
१० तद्देशे ज्ञानकालादन्यदाप्यनेकप्रमातृसाधारणविषयतया चाप्र-
सिद्धा चैवम् तस्माच्च तद्धर्मः । यस्यात्मनो ज्ञानेनार्थः प्रकटीक्रियते
तदज्ञानकाले तस्यैव सोऽर्थः प्रत्यक्षो भवतीत्यपि भ्रष्टाभावात्,
अर्थप्रकाशकविज्ञानस्य प्राकट्याभावे तेनार्थमेकटीकरणासम्भवा-
त्तदीपवत्, अन्यथा सन्तानान्तरवर्तिनोपि ज्ञानादर्थप्राकट्य-
१५ प्रसिद्धैः । चक्षुरादिवचनस्य प्राकट्याभावेऽर्थे प्राकट्यं घटेतेत्यप्यस-
मीचीनम्, चक्षुरादेरर्थप्रकाशकत्वासम्भवात् । तत्प्रकाशकज्ञान-
हेतुत्वात् खलूपचारेणार्थप्रकाशकत्वम् । कारणस्य चाज्ञातस्यापि
कार्ये व्यापाराविरोधो ज्ञापकस्यैवाज्ञातस्य ज्ञापकत्वविरोधात्
“नाज्ञातं ज्ञापकं नाम” [] इत्यखिलैः परीक्षादक्षैरभ्युप-
२० गमात् । प्रमातुरात्मनो ज्ञापकस्य स्वयं प्रकाशमानस्योपगमादर्थ-
प्राकट्यसम्भवे करणज्ञानकल्पनावैफल्यमित्युक्तम् । नापि ज्ञान-
धर्मः, अस्य सर्वथा परोक्षतयोपगमात् । यत्किञ्चु सर्वथा परोक्षं तन्न
प्रत्यक्षताधर्माधारे यथाऽदृष्टादि, सर्वथा परोक्षं च परैरभ्युपगतं
ज्ञानमिति ।

१ करणज्ञानं प्रत्यक्षमर्थप्रत्यक्षत्वान्वाजुपपत्तेः । २ प्रत्यक्षत्वरूपस्य । ३ करण-
ज्ञाने । ४ स्थूलत्वाच्च । ५ अविविधासात् । ६ वस्तुनि । ७ घटपटादि । ८ अन्यथा ।
९ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वमनेन ज्ञाप्येनार्थधर्मत्वादित्येतस्य हेतोः । १० करणज्ञानेन ।
११ करण । १२ ज्ञानं नार्थं प्रकटयति स्वयमप्रत्यक्षत्वात्परमाण्वादिनत् । १३ करण-
ज्ञानं प्रत्यक्षमर्थप्रकाशकत्वात्तदीपवत् । १४ अ(म)लक्षादपि ज्ञानादर्थप्राकट्ये ।
१५ पुनरागच्छ । १६ सत्स्य । १७ तत्रयत्रापि परोक्षत्वाविशेषात् । १८ क्षरकस्य ।
१९ किञ्च । २० करणज्ञानं न प्राकट्यमर्थोपि करणं सर्वथा परोक्षतयोपगमात् ।
२१ करणम् ।

१ “अथ प्रकाशतायाम् तदपि ज्ञानधर्मः, अर्थधर्मः उभयधर्मः, सततं वा स्यात्”

न्यायकुसु ५० १७९ ।

कुतश्चैवंवादिनो ज्ञानैसद्भावसिद्धिः-प्रत्यक्षात्, अनुमानादेर्वा?
न तावत्प्रत्यक्षात्तस्यातद्विषयतयोपगमौत् । यद्यद्विषयं न भवति
न तत्तद्व्यवस्थापकम्, यथास्मादकप्रत्यक्षं परमाण्वाद्यविषयं न
तद्व्यवस्थापकम् । ज्ञानाविषयं च प्रत्यक्षं परैरभ्युपगतमिति ।

नाप्यनुमानात्; तद्विनाभाविच्छिन्नाभावात् । तर्हि अर्थकृतिः; ५
इन्द्रियार्थो वा, तत्सहकारिर्गुणं मनो वा? अर्थकृतिश्चेत्सा किं
ज्ञानस्वभावा, अर्थस्वभावा वा? यदि ज्ञानस्वभावा; तदाऽसिद्धि-
त्वात्तस्याः कथमनुभापकत्वम्? न खलु ज्ञानस्वभावाविशेषेपि
'कृतिः प्रत्यक्षा न करणज्ञानम्' इत्यत्र व्यवस्थानिवन्धनं पद्या-
मोऽन्यत्र मंहामोहात् । ईश्वरमात्रभेदाच्च सिद्धासिद्धत्वभेदः १०
स्वेच्छापरिकल्पितोऽर्थस्याभिज्ञत्वात् । ज्ञानत्वेन हि प्रत्यक्षतावि-
रोधे कृतावपीयं न स्याद्विशेषात् । अर्थार्थस्वभावा कृतिः तदार्थ-
प्राकट्यं सा, न चैतदर्थग्राहकविज्ञानैस्यात्मैधिकरणत्वेनापि प्रोक्त-
व्याभावे घटते, पुरुषान्तरज्ञानादप्यर्थप्राकट्यप्रसङ्गात् । आत्मा-
धिकरणत्वपरिज्ञानाभावे च ज्ञानस्य ज्ञानेन ज्ञातोप्यर्थः नात्मानु- १५
भविर्देवत्वेन ज्ञातो भवेत् 'मैया ज्ञातोऽयमर्थः' इति । अर्थग-
तप्राकट्यस्य सर्वसाधारणत्वौच्चात्मान्तरबुद्धेरप्यनुमानं स्यात् ।
यैदृश्या यस्यार्थः प्रकटीभवति तद्बुद्धिमेवासौ ततोऽनुमि-

१ सर्वथा परोक्षकरणज्ञानमित्येवंवादिनः । २ करण । ३ वीरं प्रत्यक्षं करण-
ज्ञानाव्यवस्थापकं तदभिपयत्वादिति । ४ भीमासकैः । ५ नसः । ६ पक्षाग्रम् ।
७ करणज्ञान । ८ अभावासिद्धत्वम् । ९ पक्षे । १० महदज्ञानं वनेति ।
११ अर्थकृतिः करणज्ञानमिति । १२ प्रत्यक्षामलक्षणेदः । १३ ज्ञानलक्षणम् ।
१४ करणम् । १५ ज्ञानत्वेन प्रत्यक्षतायाः । १६ करणज्ञानम् । १७ जीव
अहमधिकरणमस्य ज्ञानमेति परिज्ञानाभावे । १८ अलक्ष्यपरोक्षत्वात् । १९ ख ।
२० किञ्च । २१ ज्ञानम् । २२ जीवेन । २३ किञ्च । २४ सर्वेषां करणज्ञानमसि
अर्थप्राकट्याप्यनुपपत्तेः । २५ ता । २६ अर्थप्राकट्यात् । २७ जानाति ।

१ "किन्, बुद्धेः स्वसंवेदनमलक्षणागोचरत्वे कुतस्तत्सर्वं तिष्ठेत् ?

प्रमाणान्तराद्येत् किं प्रत्यक्षरूपात्, अनुमानरूपाद्वा ?"

न्यायकुसु० पृ० १७७ । सा० रत्ना० पृ० २१६ ।

२ "तदि इन्द्रियम्, अर्थः, तदभिपयः, तत्सम्बन्धः, तत्र प्रवृत्तिर्वा भवेत् ?"

न्यायकुसु० पृ० १७८ । सा० रत्ना० पृ० २१६ ।

३ "यदि पुनरर्थवैसादर्यपरिच्छिन्नेः प्रत्यक्षत्वेऽप्यत्र, तदा साऽर्थप्राकट्यमुच्यते,
न चैतदर्थग्रहणविज्ञानस्य प्राकट्याभावे वदामदति अतिप्रसंगात् । न ह्यमकटे अर्थज्ञाने
सन्तानान्तरपतिनिरस्य विदर्यस्य प्राकट्यं वदते ।" प्रमाणप० पृ० ३१ ।

मीते नात्मान्तरबुद्धिमित्यप्यसारम्; बुद्ध्यात्मनोरप्रत्यक्षतैकान्ते
‘यद्बुद्ध्या यस्यार्थः प्रकटीभवति’ इत्यस्यैवान्धपरम्परया व्यवस्था-
पयितुमशक्तेः । प्रत्यक्षत्वे चात्मनः सिद्धं विज्ञानस्य स्वार्थव्यवसा-
यात्मकत्वम् । आत्मैव हि स्वार्थग्रहणपरिणतो जानातीति ज्ञान-
५ मिति कर्तृसाधनज्ञानशब्देनाभिधीयते ।

इन्द्रियार्थो लिङ्गमित्यप्यनालोचिताभिधानम्; तयोर्विज्ञान
सङ्गर्वाविनाभावासिद्धेः । योग्यदेशे स्थितस्य प्रतिपत्तिरिन्द्रियार्थ-
सङ्गवेष्ट्यन्यत्र गतमनसो विज्ञानाभावात् । तत्सिद्धौ चेन्द्रिय-
स्यातीन्द्रियत्वेनार्थस्यापि ज्ञानाऽप्रत्यक्षत्वेनासिद्धेः कथं तथ्यापि
१० हेतुत्वं तयोः ? सिद्धौ वा न साध्यज्ञानकाले ज्ञानान्तरात्तत्सिद्धि-
र्युगपद् ज्ञानानुत्पत्त्यभ्युपगमात् । उत्तरकालीनज्ञानात्तत्सिद्धौ-
तदा साध्यज्ञानस्याभावात्कस्यानुमानम् ? उभयविषयस्यैकज्ञान
स्यानभ्युपगमादर्नवस्थाप्रसङ्गाच्चानयोरसिद्धिः ।

इन्द्रियार्थसहकारिप्रयुक्तं मनो लिङ्गमित्यप्यपरीक्षिताभिधा-
१५ नम् । तत्सङ्गावासिद्धेः । युगपद् ज्ञानानुत्पत्तेस्तत्सिद्धिः, तथा
हि-आत्मनो मनसा तस्येन्द्रियैः सम्बन्धे ज्ञानमुत्पद्यते । यदा
चास्य चक्षुषा सम्बन्धो न तदा शेषेन्द्रियैरतिसम्भत्वात्, इत्यप्य-
सङ्गतम्; दीर्घशङ्कुलीमक्षणादौ युगपद्गूपादिज्ञानपञ्चकोत्पत्तिप्र-
तीतिः अश्वविकल्पकाले गोनिष्कयाश्च तदसिद्धेः । न चात्र क्रमैका-
२० न्तकरूपना-प्रत्यक्षविरोधात् । किञ्चैवंवादिना (किं) युगपत्प्रतीतिं
येन (वयवावयव्यादिव्यवहारः स्यात् ? घटपटादिकमिति चेत् न।
अत्रापि तैथा करूपनाप्रसङ्गात् । किञ्चातिर्यूक्षमस्यापि मनसो नयना-

१ करणज्ञान । २ ता । ३ ज्ञात् । ४ द्वितीयविकल्पस । ५ करणज्ञानस्य ।
६ भा (पुत्रीया) । ७ कसिद्धिद्विषये । ८ करणज्ञानस्य सर्वथा परोक्षत्वात् ।
९ इन्द्रियार्थयोः । १० असिद्धत्वेमि । ११ करणज्ञानं प्रति । १२ करणज्ञाने ।
१३ इन्द्रियार्थे । १४ इन्द्रियार्थाङ्गिज्ञात्करणज्ञानसिद्धिरिन्द्रियार्थेनोरपि सिद्धिः कस्यापि
प्रकरणज्ञानात्तस्यापि अपरेन्द्रियार्थादित्यनवस्था । १५ पक्षाग्रम् । १६ मनसः ।
१७ च शब्दः आधिक्ये । १८ दीर्घशङ्कुलीमक्षणादौ युगपद् ज्ञानं नोत्पद्यते ह्येवं-
वादिना । १९ अत्राज्ञेयार्थे किमिति पूर्वेण सम्बन्धः । २० क्रमैकान्त ।

१ “अश्वविकल्पकाले गोदर्शनानुसारात् युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिश्चासिद्धा क्वं मनोऽङ्ग-
भाषिकः ? नचाश्वविकल्पगोदर्शनयोर्युगपदनुभवोऽपि क्रमोत्पत्तिकरूपना प्रत्यक्षविरो-
धात् ।” सम्प्रति० टी० पृ० ४७७ ।

२ “किंच, चक्षुराद्यन्यतमेन्द्रियसम्बन्धात् रूपविज्ञानोत्पत्तिकाले मनसः सम्-
न्धात् मानसज्ञानं किञ्च भवेत् ? तथाविद्याहृद्यभावादित्युत्तरम् बहुवचनमिदं युगपज्ज्ञान-
नानुत्पत्तिप्रसक्तितो मनसोऽनिमित्तता... ।” सम्प्रति० टी० पृ० ४७७ ।

दीनामन्यतमेन सन्निकर्षसमये रूपादिज्ञानवन्मानसं सुखादिज्ञानं किञ्च स्यात् सम्बन्धसम्बन्धसद्भावात्? तथाविधादृष्ट्याभावा-
द्येत; अदृष्टता तर्हि युगपद् ज्ञानानुत्पत्तिस्तदेवांनुमापयेन्न मनः।

किञ्च, 'युगपद् ज्ञानानुत्पत्तेर्मनःसिद्धिस्तुतश्चास्याः प्रसिद्धिः'
इत्यन्योन्याश्रयः। अत्रकप्रसङ्गश्च—'विज्ञानसिद्धिपूर्विका हि युगपद् ५
ज्ञानानुत्पत्तिसिद्धिः, तत्सिद्धिर्मनःपूर्विका' इति। तस्माच्चैतसह-
कारि प्रगुणं मनो लिङ्गमित्यप्यसिद्धम्।

अस्तु वा किञ्चिद्विज्ञम्, तथापि—ज्ञानस्याप्रत्यक्षतैकान्ते तत्स-
म्बन्धासिद्धिः। न चासिद्धैसम्बन्ध(न्धं) लिङ्गं कैस्यचिद्वैमकमति-
प्रसङ्गात्। ततः परोक्षतैकान्ताग्रहग्रहाभिनिवेशेपरित्यागेन 'ज्ञानं १०
स्वव्यवसायात्मकमर्थज्ञप्तिनिमित्तत्वात् आत्मवत्' इत्यभ्युपगन्त-
व्यम्। नैत्रालोकादिनानेकान्त इत्यप्ययुक्तम्। तस्योपचार-
तोऽर्थज्ञप्तिनिमित्तत्वंसमर्थनात्, परमार्थतः प्रमातृप्रमाणयोरेव
तन्निमित्तत्वोपपत्तेरित्यलमतिप्रसङ्गेन।

एतेन 'आत्माऽप्रत्यक्षः कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वात्करणज्ञानवत्' १५

१ मनसा सन्धेः आत्मनि सुखादेः समवायसम्बन्धः सम्बन्धसम्बन्धः। २ युग-
पच्छानोत्पादकस्य। ३ करणज्ञानं कर्म। ४ करणज्ञान। ५ क्षति। ६ निश्चानसिद्धिः।
७ इन्द्रियार्थः। ८ अविनाभावः। ९ भा। १० लिङ्गस्य। ११ अज्ञातः।
१२ साध्यस्य। १३ अन्यथा। १४ दुराग्रहः। १५ करणज्ञानं। १६ साम्यसम-
स्यात् स्वक्षप्तिनिमित्तत्वाद्यङ्गात्। १७ कुठारेण व्यभिचारः। १८ भीमासकमादृक्-
णज्ञानदूषणकपनेन। १९ करणज्ञानस्य परोक्षत्वनिराकरणपरेण श्रवणेन।

१ "तथाहि—सिद्धे तद्विग्रहे मनःसिद्धिः, तत्सिद्धौ च युगपच्छानोत्पत्तिविग्र-
हसिद्धिरित्येतराश्रयत्वात् मनःसिद्धिः।" सम्प्रति० टी० पृ० ४७८।

२ "अस्तु वा किञ्चिद्विज्ञम्, तथापि अगृहीतप्रतिबन्धं तद् न परोक्षां बुद्धिम-
नुमापयितुं समर्थम्...प्रतिबन्धश्च लिङ्गलिङ्गिनोः अविनाशतत्वेन प्रमाणप्रतिपन्नयो-
रेव भवति। न च ज्ञानं तेन चाविनाशपूर्वं किञ्चिद्विज्ञं प्रमाणेन प्रतिपन्नं यतः सम्-
बन्धग्रहणपुरस्सरमनुमानं प्रवर्तते।" न्यायकुसु० पृ० १८१।

३ "ज्ञानं स्वपरिच्छेदकमर्थज्ञानत्वात्।" युक्त्यनुशा० टी० पृ० ९

"सम्बन्धसायावात्मकं ज्ञानमर्थपरिच्छित्तिनिमित्तत्वादात्मवत्"

प्रमाणप० पृ० १२।

४ "किञ्च अप्रकाशस्वभावानि ज्ञेयानि ज्ञाता च प्रकाशमपेक्षन्ताम्, प्रकाशस्तु
अज्ञातात्मकत्वाच्चान्वयमपेक्षते। ज्ञातव्यो हि ज्ञेयानि ज्ञाता च प्रकाशश्चे, अप्रकाशश्च न

इत्याचक्ष्णः प्रमाकरोपि प्रत्याख्यातः । प्रमितेः^१ कर्मत्वेनाप्रतीय-
मानत्वेपि प्रत्यक्षत्वान्युपगमात् । तस्याः क्रियात्वेन प्रतिभासना-
त्प्रत्यक्षत्वे करणज्ञान-आत्मनोः करणत्वेन कर्तृत्वेन च प्रतिभास-
नात्प्रत्यक्षत्वमस्तु । न चाभ्यां तस्याः सर्वथा भेदोऽभेदो वा-
^५ मतीन्तरानुपपन्नात् । कथञ्चिदभेदे-सिद्धं तयोः कथञ्चित्प्रत्यक्ष-
त्वम् ; प्रत्यक्षादभिर्भयोः सर्वथा परोक्षत्वविरोधात् । ननु शब्दी
प्रतिपत्तिरेषां 'घटमहमात्मना वेद्मि' इति नानुभवप्रभावा
तस्यास्तैद्विनाभावाभावात्, अन्यथा 'अङ्गुल्यग्रे हस्तिगृधशत-
मास्ते' इत्यादिप्रतिपत्तेरप्यनुभवत्वप्रसङ्गस्तर्कमतेः प्रमात्रादीनां
^{१०} प्रत्यक्षताप्रसिद्धिरित्याह—

शब्दानुच्चारणेपि स्वस्यानुभवनमर्थवत् ॥ १० ॥

यथैव हि घटस्वरूपप्रतिभासो घटशब्दोच्चारणमन्तरेणापि
प्रतिभासते । तथा प्रतिभासमानत्वाच्च न शाब्दस्तथा प्रमात्रा-
दीनां स्वरूपस्य प्रतिभासोपि तच्छब्दोच्चारणं विनापि प्रतिभा-
^{१५} सते । तस्माच्च न शाब्दः । तच्छब्दोच्चारणं पुनः प्रतिभातप्रमा-

१ मुच्य । २ इह । ३ अर्थपरिच्छिन्नेः । ४ प्रमाकरोण । ५ सति ।
६ कर्मत्वेनाप्रतीयमानयोरपि । ७ किञ्च । ८ नैवाधिकः । ९ वीक्षः । १० अन्यथा ।
योगसौगम्योः परिग्रहः । ११ कर्मत्वेन परोक्षत्वं कर्तृत्वेन करणत्वेन प्रत्यक्षत्वं
कर्तृज्ञानयोः । १२ प्रमितिरूपाय । १३ करणज्ञानात्मनोः । १४ वा । १५ अह-
मात्मना । १६ स्वसंवेदनप्रत्यक्ष । १७ अनुभवेन सह । १८ प्रतीतितात्प-
न्यप्रतिपन्नप्रतीतिवत् । १९ कारणात् । २० आभ्याः प्रतिपत्तेः श्वा (स) काद्यात् ।
२१ ता । २२ अयं घटः । २३ अनुमानसङ्गात्वाच्च । २४ सुखादिवत् ।

इयमपि प्रकाशते । न च तदानीं तत्रास्तेषु; प्रबोधे सति प्रत्यक्षिज्ञानात्, तत्र प्रकाश-
नकत्वे सुप्तसिद्धशायामपि इयं प्रकाशते, तस्मादप्रकाशात्मकमेतत् इयमंगीक्रियते ।
मेयानां भातुश्च स्वतःप्रकाशो नोपपन्न इति बुद्धे तयोः परापेक्षा, मित्रं च काश्चि-
दनुपपत्तिर्नास्ति इति स्वयम्प्रकाशैव मितिः ।” प्रक० पं० पृ० ५७ ।

१ तेषां फलज्ञानहेतोर्मन्त्रिचारः, कर्मत्वेनाप्रतीयमानस्य फलज्ञानस्य प्रमाकरोः
प्रत्यक्षत्वान्युपगमात् । तस्य क्रियात्वेन प्रतिभासनात् प्रत्यक्षत्वे प्रमात्ररूप्यात्मनः
कर्तृत्वेन प्रतिभासनात् प्रत्यक्षत्वमस्तु ।” प्रमाणप० पृ० ६१ ।

२ “तच्च फलज्ञानमालनोऽर्थान्तरसूतमनर्थांतरसूतमुच्यते वा ? न तावत् सर्व-
थाऽर्थान्तरसूतमनर्थांतरसूतं वा; भगवान्तरप्रवेशानुपपन्नात् । नाभ्युपगम्यः पक्षद्वयनिग-
हितदूषणानुपपत्तेः । कथञ्चिदर्थान्तरत्वे तु फलज्ञानादात्मनः कथञ्चित्प्रत्यक्षत्वमविचार्यम्,
प्रत्यक्षादभिग्रहः कथञ्चिदप्रत्यक्षत्वैकान्तविरोधात् ।” प्रमाणप० पृ० ६१ ।

प्रादिस्ररूपप्रदर्शनपरं नाऽनालम्बनमर्थवत्, अन्यथा 'सुख्यहम्'
इत्यादिप्रतिभासस्याप्यनालम्बनत्वप्रसङ्गः ।

ननु रथं सुखादिप्रतिभासः सुखादिसंवेदनस्याप्रत्यक्षत्वेऽप्युपप-
न्नस्तथार्थसंवेदनस्याप्रत्यक्षत्वेऽप्यर्थप्रतिभासो भविष्यति इत्यप्य-
विचारितरमणीयम्; सुखादेः संवेदनादर्थान्तरैस्त्वभावस्याप्रतिभा- ५
सनादाह्लादनाकारपरिणतज्ञानविशेषस्यैव सुखत्वात्, तस्य चाध्य-
क्षत्वात् तस्यानध्यक्षत्वेऽत्यन्ताप्रत्यक्षज्ञानेऽप्राप्तत्वे च-अनुग्रहो-
पेक्षातकारित्वासम्भवः, अन्यथा परकीयसुखादीनामर्प्यात्मनोऽ-
त्यन्ताप्रत्यक्षज्ञानप्राप्त्याणां तत्कारित्वप्रसङ्गः । ननु पुत्रादिसुखाद्य-
प्रत्यक्षत्वेऽपि तत्सद्भावोपलम्भमर्वादीर्त्मानोऽनुग्रहाद्युपलभ्यते १०
तत्कथमयमेकान्तः ? इत्यप्यशिक्षितलक्षितम्; नहि तत्सुखाद्युप-
लम्भमात्रात् सौमनस्यादिजनितभिमानीकसुखैरपरिणतिमन्तरे-
णोत्तमैर्नोऽनुग्रहादिसम्भवः, शैत्यसुखाद्युपलम्भादुन्नेहितादिर्नो
परित्यक्तपुत्रसुखाद्युपलम्भाच्च तत्प्रसङ्गात् । विभ्रंहादिकमितिस-
न्निहितमपि अभिमानीकसुखमन्तरेणोऽनुग्रहादिकं न विदधाति- १५
किमर्थं पुनरतिव्यवहिताः पुत्रसुखादयः ।

अस्तु नाम सुखादेः प्रत्यक्षता, सा तु प्रमाणान्तरेण न स्वतः
'स्वात्मनि क्रियाविरोधात्' इत्यर्थः, तस्यापि प्रत्यक्षविरोधः ।
न खलु घटादिवत् सुखाद्यविदितैस्वरूपं पूर्वमुत्पन्नं पुनरिन्द्रियेण
सम्ब्रूयते तैतो ह्येनं २० ग्रहणं चेति लोके प्रतीतिः । प्रथममेवेष्टी- २०

१ निर्विषय । २ ईप् (सप्तमी) । ३ शब्दद्वारस्य । ४ शब्दोच्चारणपूर्वकत्वात् ।
५ भाट्टः । ६ करणज्ञानं प्रत्यक्षमर्थप्रकाशनिमित्तमात्मदीपवदात्मवत्त्वात् । ७ अर्थद्वि-
निमित्तत्वादित्यस्य साधनस्यानैकान्तिकत्वम् । ८ करणज्ञानस्य । ९ परिच्छिन्तितः ।
१० सुखादि । ११ करणज्ञानस्य । १२ करणज्ञानस्य । १३ मित्र । १४ करण ।
१५ सुःखात्सत्यम् । १६ स्वस्य । १७ अनैकान्तिकत्वम् । १८ प्रमाणमात्रात् ।
१९ स्वस्य । २० पितुः । २१ कर्म । २२ वैमनस्यम् । २३ आत्मनः आत्मनि ।
२४ स्वस्य । २५ तातस्य । २६ जननया । २७ अनैकान्तिकत्वपरिहारः कृतः ।
२८ सुचेष्टितः । २९ शरीर । ३० उदासीनपुरुषस्य । ३१ पुः(ङ्)न । ३२ विशेषे ।
३३ नैवायिको वैकेमिको वा । ३४ अज्ञात । ३५ पश्चात् । ३६ इन्द्रियसम्बन्धात् ।
३७ करणरूपमुत्पद्यते । ३८ ज्ञानेन । ३९ परिच्छिन्निरूपम् । ४० स्वचन्द्रनादि ।

१ “न हि सुखापनिदिष्टस्वरूपं पूर्वं घटादिवदुत्पन्नं पुनरिन्द्रियसम्बन्धोपजातत्वा-
नात्पराद् वैद्यते इति लोकेप्रतीतिः, अति तु प्रथममेव लक्षणस्वरूपं तदुदपमासादय-
दुपलभ्यते ।”

सम्प्रति० टी० पृ० ४७६ ।

निर्द्वेषयाभुभवानन्तरं स्वप्रकाशात्मनोऽस्योदयप्रतीतेः । स्वात्मनि
क्रियाविरोधं चानन्तरमेव विचारयिष्यामः ॥ यदि चार्थान्तरभूत-
प्रमाणप्रत्यक्षाः सुखादयस्तर्हि तदपि प्रमाणं प्रमाणान्तरप्रत्यक्ष-
मित्यनवस्था । विभिन्नप्रमाणग्राह्याणां चार्तुग्रहादिकारित्वेवि-
५ रोधः । न हि स्त्रीसङ्गमादिभ्यः प्रतीयमानाः सुखादयोऽन्यस्या-
त्मनैस्तत्कारिणो दृष्टाः । ननु परकीयसुखादीनामनुमानगम्यत्वा-
च्चात्मनोऽनुग्रहादिकारित्वम् आत्मीयानां प्रत्यक्षाधिगम्यत्वात्त-
त्कारित्वमित्यप्यसारम् । योगिनोपि तत्कारित्वप्रसङ्गात् प्रत्यक्षा-
धिगम्यत्वाविशेषात् । आत्मीयसुखादीनामेव तत्कारित्वं नाप्येषा-
१० मित्यपि फलुप्रायम्, अत्यन्तभेदेऽर्थान्तरभूतप्रमाणग्राह्यात्वे
चात्मीयेतेरभेदस्यैवासम्भवात् ।

आत्मीयत्वं हि तेषां तद्वृणत्वात्, तत्कार्यत्वाद्वा स्यात्, तत्र
समवायाद्वा, तदधिष्यत्वाद्वा, तदद्वैतनिष्पाद्यत्वाद्वा । न तावच्चतुण-
त्वात्, तेषामात्मनो व्यतिरेकैकान्ते तस्यैव तेषां गुणा नाकाशादेर-
१५ न्यात्मनो वा इति व्यवस्थापयितुमशक्ये ।

तत्कार्यत्वाच्चेत्कुतस्तत्कार्यत्वम् ? तस्मिन् सति भावात्,
आकाशादौ तत्रप्रसङ्गः । तस्य निमित्तकारणत्वेन व्यापाराददोष-
श्चेत्, आत्मनोपि तथा तदस्तु । समवायिकारणमन्तरेण कार्या-
नुत्पत्तेरात्मनस्तत्कल्प्यते, गगनादेस्तु निमित्तकारणत्वमित्य-
२० प्ययुक्तम् ; विपर्ययेणापि तत्कल्पनाप्रसङ्गात् । प्रत्यासत्तेरात्मैव
समवायिकारणं चेन्न, देशकालप्रत्यासत्तेर्नित्यव्यापित्वेनात्मब-
दन्यत्रापि समानत्वात् । योग्यतापि कार्ये सामर्थ्यम्, तच्चोका-

१ अद्यादि । २ सुखादेः । ३ परिच्छित्तिलक्षणा । ४ अग्रे । ५ किञ्च ।
६ सुखादेर्मिन्नप्रमाणात् । ७ सुखादीनां । ८ किञ्च । ९ उपवात् । १० सस्य ।
११ परकीयसुखादिवृष्टान्तः । १२ देवदत्तस्य पुरुषस्य । १३ यन्नदत्तस्य सस्य ।
१४ गीमन्मुक्तस्य । १५ आत्मनः सकाशात्सुखादीनाम् । १६ परकीय । १७ देव-
दत्तात्म । १८ देवदत्तात्म । १९ देवदत्तात्मनि । २० देवदत्तात्म । २१ देव-
दत्तात्म । २२ आ । २३ भेदेकान्ते । २४ देवदत्तात्मनः । २५ सुखादयः ।
२६ यन्नदत्तात्मनः । २७ देवदत्तात्म । २८ देवदत्ते सति । २९ सुखादयः
आकाशकार्यत्वादाकाशादीयाः स्फुराकाशादौ सति भावात् । ३० उपादानकारण ।
३१ आत्मा निमित्तकारणं गगनादि समवायिकारणं । ३२ सुखादौ । ३३ कृत्विः
कार्योत्पादिका । ३४ किञ्च ।

१ 'न चात्मनो ज्ञानाच्च अर्थान्तरभूता' एव सुखादयोऽनुग्रहादिविषयिनो भवेयुः,
इतरथा योगिनोऽपि ते तथा स्युः ।" सम्प्रति० टी० पृ० ४७६ ।

शादेरप्यस्तीति । अथात्मन्यात्मनस्तज्जनसामर्थ्यं नान्यस्येव-
प्ययुक्तम्; अत्यन्तभेदे तथा तज्जनविरोधात् । तत्सामर्थ्यस्या-
प्यात्मनोऽत्यन्तभेदे 'तस्यैवेदं नान्यस्य' इति किङ्कृतोयं विभागः ?
समवायौदेश्च निषे (तस्य) र्मानत्वाभियामकत्वायोगः । तच्चान्वय-
मात्रेण सुखादीनामात्मकार्यत्वम् । तदभावेऽभावात्तच्चेन्न; नित्य-^{१०} ११ १२ १३ १४
व्यापित्वान्मयां तस्याभावासम्भवात् । तत्र समवायादित्यप्यसत्;
तस्यात्रैवं निराकरिष्यमाणत्वात्, सैर्वाविशेषोच्च; तेन^{१५} तेषां
तत्रैव^{१६} समवायासम्भवात् ।

तदाधेत्याचेत्किमिदं तदाधेत्यर्थं नाम तत्रैव समवायः, तौदात्म्यं १०
वा, तत्रोत्कलितत्वमात्रं वा ? न तावत्समवायः, दत्तोत्तरत्वात् ।
नापि तादात्म्यम्, मतान्तरेणुषङ्गात् । तेषामात्मनोऽत्यन्तभेदे
सकलात्मनां गगनौदीनां च व्यापित्वे 'तत्रैवोत्कलितत्वम्' इत्यपि
श्रद्धामात्रगम्यम् । अथाऽहंष्टान्नियमः 'यस्यात्मीयाऽदृष्टनिष्पाद्यं
सुखं तदात्मीयमर्थेण परकीयम्' इत्यप्यसारम्; अदृष्टस्याप्या-^{१५}
त्मीयत्वासिद्धेः । समवायादेस्तत्रियामकत्वेऽयुक्तदोषानुषङ्गः । यत्र
यददृष्टं सुखं दुःखं चोत्पादयति तत्तत्सत्येपि मनोरथमात्रम्, पर-
स्परश्रयानुषङ्गात्-अदृष्टेनियमे सुखादेर्नियमः, तत्रियमात्राददृष्ट-
स्येति । 'यस्य श्रद्धयोर्पेयुद्दीतानि ब्रह्मगुणकर्माणि यददृष्टं जनयन्ति
तत्तस्य' इत्यपि श्रद्धामात्रम्, तस्या अप्यात्मनोऽत्यन्तभेदे प्रतिनि-
यमासिद्धेः । 'यस्यादृष्टेनासौ जन्यते सा तस्य' इत्यर्थन्योन्याश्र-
यादयुक्तम् । 'ब्रह्मादौ यस्य दर्शनस्वरणौदीनि श्रद्धामाविर्भा-

१ सुखादि । २ कृपाद । ३ आत्मनः सकाशात्सुखादिकं सर्वेषां मित्रं ।
४ सुखादि । ५ देवदत्तस्य । ६ केन कृतः । ७ देवदत्तात्मनि सामर्थ्यस्य ।
८ अग्रे । ९ तस्मिन् सति गवाए । १० देवदत्तात्म । ११ सुखादीनां ।
१२ व्यतिरेक । १३ सुखादि । १४ देवदत्तसुखादीनाम् । १५ देवदत्तात्मनः ।
१६ आत्मनः । १७ देवदत्तात्मनि । १८ अन्ये । १९ आदावर्थे । २० समवायस्य ।
२१ कारणेन । २२ सुखादीनां । २३ देवदत्तात्मन्येव । २४ (सम्बन्ध) ।
२५ देवदत्तात्म । २६ आदौ । २७ वसः । २८ देवदत्तात्म । २९ देवदत्तात्मनि ।
३० सुखादीनां । ३१ देवदत्तात्मना सह । ३२ देवदत्तात्मनि । ३३ आविर्भूतत्वं ।
३४ जैनैः । ३५ अन्यथा । ३६ जैनमत । ३७ दिक्काण्डि । ३८ देव-
दत्तात्मनि । ३९ पुण्यादि । ४० सुखादय आत्मीया आत्मीयादृष्टनिष्पाद्यत्वात् ।
४१ पुनः । ४२ आत्मनि । ४३ आत्मनः । ४४ असेदमदृष्टमिति । ४५ आत्मनः ।
४६ निश्वासेन । ४७ स्वीकृतावि । ४८ श्रद्धा जसेति । ४९ श्रद्धाया नियमे
अदृष्टनिवमस्तसिस्तस्यियमः । ५० आत्मनः । ५१ प्रत्यक्ष । ५२ प्रत्यभिज्ञान ।

वयन्ति तस्य सा' इत्यप्युक्तिमात्रम्, दर्शनादीनामपि प्रतिनिय-
मासिद्धेः । समवायात्तेषां अद्यायाश्च प्रतिनियमः इत्यप्यसमीक्षि-
ताभिधानम्, तस्य षट्पदार्थपरीक्षायां निराकरिष्यमाणत्वात् ।

येतेनैतदपि प्रत्याख्यातम् 'ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं प्रमेयत्वात्पट्टा-
५ दिद्यत्,' सुखसंवेदनेन हेतोर्व्यभिचारान्महेश्वरज्ञानेन च, तस्य
ज्ञानान्तरावेद्यत्वेऽपि प्रमेयत्वात् । तस्यापि ज्ञानान्तैरप्रत्यक्षत्वेऽन-

१ दर्शनादीनाम् । २ सुखदुःखादेः स्वसंनिहितत्वसमर्थनपरेण ग्रन्थेन । ३ द्यौ-
मतमपि (तदेव योगमतं दर्शयति ज्ञानमिलादिना) । ४ सुखसंवेदनं ज्ञानं भवति
न तु ज्ञानान्तरवेद्यं । ५ सा ।

१ "नासाधना प्रमाणसिद्धिर्नापि प्रत्यक्षादिभ्यतिरिक्तप्रमाणान्मुपगमो... नापि च
तत्रैव व्यक्त्या तस्मा एव ग्रहणमुपैवते चेनात्मनि वृत्तिविरोधो भवेत्, नापि तु
प्रत्यक्षादिवासीयेन प्रत्यक्षादिवासीयस्य ग्रहणमाप्तिरिति । न चानवस्था, अस्ति
किञ्चित् प्रमाणं यः स्वज्ञानेन अन्यवीहेतुः यथा दूमादि, किञ्चित्पुनरुक्तानेव पुनरि-
त्तं यथा चक्षुरादि, तत्र पूर्वं स्वज्ञाने चक्षुराद्यपेक्षया, चक्षुरादि तु ज्ञानान्तरवेद्येन
ज्ञानसाधनमिति ज्ञानवत्त्वात् । तुमुत्तया च तदपि स्वप्नज्ञानं सा कदाचिदेव क्वचिदिति
ज्ञानवत्त्वात् ।"

न्यायवा० ता० टी० पृ० १७० ।

"विवादाध्यासिताः प्रत्ययान्तरेणैव वेद्याः प्रत्ययत्वात्, ये वे प्रत्ययास्ते सर्वे प्रत्य-
यान्तरवेद्याः यथा न प्रत्ययान्तरेणैव वेद्याः (१) अभिषमानस्यावभासेऽतिप्रसंग-
ज्ञायमानसौवाचनमासौऽप्युच्यते । तथा च विज्ञानस्य स्वसंवेदने तदेव तस्य कार्यं किञ्चा
चेति विवक्षमाप्येत । यथोक्तम्—

अमुक्यग्रं यथात्मानं नात्माना स्पष्टमर्हति ।

स्वाद्येन ज्ञानमप्येवं नात्मानं ज्ञातुमर्हति ॥ इति ।

यत् प्रत्ययत्वं वस्तुभूतमविरोधेन व्याप्तम्, तद्विरुद्धविरोधदर्शनात् स्वसंवेदनाभि-
वर्तमानं प्रत्ययान्तरवेद्यत्वेन व्याप्यते इति प्रतिबन्धसिद्धिः । एवं प्रमेयत्व-गुणत्वस-
त्त्वादयोऽपि प्रत्ययान्तरवेद्यत्वहेतवः प्रयोक्तव्याः । तथा च न स्वसंवेदनं विज्ञानमिति
सिद्धम् ।"

निधिवि० न्यायकणि० पृ० २९७ ।

"तस्मात् ज्ञानान्तरसंवेद्यं संवेदनं वेद्यत्वात् षट्पदिषत् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ५२९ ।

"अनवस्थाप्रसङ्गस्तु अवश्यमेवत्वान्मुपगमेन निरसनीयः... विवादाध्यासितमेवेदं
वेदनान्तरानोचरः वेदनत्वात् पुरुषान्तरवेदनवत्..." प्रश्न० किरणवली पृ० २८१ ।

२ "महेश्वरार्थज्ञानेन हेतोर्व्यभिचारात्, तस्य ज्ञानान्तरावेद्यत्वेऽपि प्रमेयत्वात् ।"

प्रमाणप० पृ० ६६ । सुखयुक्ता टी० पृ० १० । न्यायकुसु० पृ० १८१ ।

सा० रत्ना० पृ० २२२ ।

"मुखादिसंवेदनेन व्यभिचारी च" सम्प्रति० टी० पृ० ४७६ ।

वस्था-तस्यापि ज्ञानान्तरेण प्रत्यक्षत्वात् । ननु नानवस्था नित्य-
ज्ञानद्वयस्यैव सदा सम्भवात्, तत्रैकेनार्थजातस्य द्वितीयेन
पुनस्तज्ज्ञानस्य प्रतीतेर्नापरज्ञानकल्पनया किञ्चित्प्रयोजनं तावतै-
वार्थसिद्धेरित्यप्यसमीचीनम् ; समानकाल्यावद्ब्रह्मभाविसजातीय-
गुणद्वयस्यान्यत्रानुपलब्धेरत्रापि तत्कल्पनाऽसम्भवात् । ५

संभवे वा तद्वितीयज्ञानं प्रत्यक्षम्, अप्रत्यक्षं वा? अप्रत्यक्षं
चेत् ; कथं तेनाद्यज्ञानप्रत्यक्षतासम्भवः? अप्रत्यक्षादप्यतस्तत्स-
म्भवे प्रथमज्ञानस्याऽप्रत्यक्षत्वेऽप्यर्थप्रत्यक्षतास्तु । प्रत्यक्षं चेत् ;
स्वतः, ज्ञानान्तराद्वा? स्वतश्चेदाद्यस्यापि स्वतः प्रत्यक्षत्वमस्तु ।
ज्ञानान्तराद्येतैवानवस्था । आद्यज्ञानाच्चेदन्योन्याश्रयः-सिद्धे ह्याद्य-१०
ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वे ततो द्वितीयस्य प्रत्यक्षतासिद्धिः, तत्सिद्धौ
चाद्यस्येति ।

किञ्च, अनयोर्ज्ञानयोर्महेश्वराद्भेदे कथं तदीयत्वसिद्धिः सम-
वायादेरप्रे दत्तोच्चरत्वात्? तदाधेयत्वात्तत्त्वेऽर्थ्युकम् । तदाधेयत्वं
च तत्रैव समवेतैवम्, तच्च केन प्रतीयते? न तावदीश्वरेण, १५

१ द्वयोर्ज्ञानयोर्मध्ये । २ भावेन । ३ समूहस्य । ४ प्रयोजनम् । ५ कथमन-
वस्था । ६ गुणद्वयानुपलब्धेरित्युक्ते यातुलिङ्गे रूपरसाम्नां व्यभिचारस्तत्र तदुपलब्धेरतः
सजातीयत्वमुक्तं तथापि क्रमेण तस्मिन् सुखा[सुखा]स्वगुणद्वयस्योपलब्धेरतः समानकालेत्युक्तं
तथापि नानाप्रवृत्तयैवार्थमात्रसम्भवात् समानकालसजातीयगुणत्वेन आकाशे उपलब्धेरतो
वायुः प्रवृत्तयैवार्थमात्रसम्भवात् न आकाशस्य स्थितिपर्यन्तं शब्दानामनवस्थामं तेषामनित्यत्वेनोपगमात्
त्रिगुणस्यानित्यत्वाच्च । ७ मानद्वयं तावद्भावीति । ८ आत्मवटादौ । ९ ईश्वरो बीत-
गुणद्वयाधारो न भवति ब्रह्मत्वात्पटम् । १० तन्मतप्रक्रियापेक्षया । ११ ईश्वरस्य ।
१२ प्रथममेव । १३ ईप् । १४ तदाधेयत्वं समवायः तावत्त्वं तत्रोक्तलितत्वमित्यादौ
दूषणम् । १५ किञ्च । १६ ईश्वरे । १७ ईश्वरे समवेतं (समवायेन सम्बद्धं) ज्ञानद्वयं ।

१ “समानकाल्यावद्ब्रह्मभाविसजातीयगुणद्वयस्यान्यत्रानुपलब्धेरित्युक्तं तत्क-
ल्पनाया असंभवः । तत्रात्र प्रयोगः-ईश्वरः समानकाल्यावद्ब्रह्मभाविसजातीय-
गुणद्वयसाधारो न भवति ब्रह्मत्वात्...वदन् ।” सा० रत्ना० पृ० २२८ ।

२ “तदप्यर्थज्ञानमीश्वरस्य प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा? यदि प्रत्यक्षम् ; तदा स्वतो
ज्ञानान्तराद्वा? स्वतश्चेत् ; प्रथममप्यर्थज्ञानं स्वतः प्रत्यक्षमस्तु किं विज्ञानान्तरेण? यदि
तु ज्ञानान्तरात्प्रत्यक्षं तदपीभ्यते, तदा तदपि ज्ञानान्तरं किमीश्वरस्य प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं
वेति स एव पर्यनुयोगोऽनवस्थानं च दुःशक्यं परिहर्तुम् ।” प्रमाणप० पृ० ६०

३ “किंचानयोर्ज्ञानयोः विनाशभागेः सर्वथा भेदे कथं तदीयत्वसिद्धिः?”

सा० रत्ना० पृ० २२८ ।

तेनात्मनो ज्ञानद्वयस्य चाग्रहणे 'अत्रेदं समवेतम्' इति प्रतीत्य-
योगात् । तस्य तत्र समवेतत्वमेव तद्ग्रहणमित्यपि नोत्तरम् ;
अन्योन्याश्रयात्-सिद्धे हि 'इदमत्र' इति ग्रहणे तत्र समवेतत्व-
सिद्धिः, तस्याश्च तद्ग्रहणसिद्धिः । यैश्चात्मीयज्ञानमात्मन्यपि स्थितं
५ न जानाति सौर्यजातं जानातीति कैश्चेतनः अद्वधीतः ? नापि ज्ञानेन
'स्थाणावेदं समवेतम्' इति प्रतीयते; तेनाप्यार्थारस्यात्मेनश्चा-
ग्रहणात् । न च तदग्रहणे 'ममेदं रूपमत्र स्थितम्' इति सम्भवः ।

अस्तु धा समवेतत्वप्रतीतिः, तथापि-स्वैर्ज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वा-
त्सर्वज्ञत्वेविरोधः । तदप्रत्यक्षत्वे चैनेनाशेषार्थस्याप्यव्यक्षता-
१० विरोधः । कथमन्यथात्मान्तरज्ञानेनाप्यर्थसाक्षात्करणं न स्यात् ?
तथा चेश्वरानीश्वरविभागाभावः-स्वयमप्रत्यक्षेणापीश्वरज्ञानेना-
शेषविषयेणांशेषस्य प्राणिनोऽशेषार्थसाक्षात्करणप्रसङ्गात् । तत-
स्तद्विभागमिच्छता महेश्वरज्ञानं स्वतः प्रत्यक्षमभ्युपगन्तव्यमित्य-
नेनानेकान्तैः सिद्धः ।

१५ अथासंदादिज्ञानापेक्षया ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वं प्रमेयत्वहे-
तुना साध्यतेऽतो नेश्वरज्ञानेनानेकान्तोऽस्यासंदादिज्ञानाद्विशि-

१ ज्ञानविकल्पो गृह्णाति ज्ञानसहितो वा । ज्ञानविकल्पोऽपि ज्ञानद्वयकल्पनानर्पण-
मात्मैवार्थज्ञानस्य आहकोस्तु । ज्ञानसहितश्चेत् । तदपि ज्ञानमात्मनि समवेतमिति कुतो
जानाति आत्मैव ज्ञानं वेत्यादिभिचारः । २ अत्रेदं । ३ किञ्च । ४ ज्ञानमात्रं ।
५ ज्ञानद्वयेन प्रतीयते । ६ ईदृशे । ७ ज्ञानाद्वेदे सत्तात्वाणुसदृश इत्यर्थः । ८ ईश्वरस्य ।
९ ज्ञानरूपस्य । १० स्वसिद्धम् । ११ ज्ञानस्य स्वसन्निहितत्वात् । १२ स्वप्रक्रिया-
भावेण । १३ आत्मान्तरज्ञानेनाप्यर्थसाक्षात्करणं भवति चेत् । १४ ईश्वरज्ञानस्य ।
१५ महेश्वरस्य । १६ किञ्च । १७ स्वस्य संसारिज्ञानेनापीति अप्या (वा)ः ।
१८ ईश्वर । १९ वस्तुः । २० परेण । २१ यौनेन । २२ हेतोरीश्वरज्ञाने
व्यभिचारः । २३ परेण यथा ।

१ "यदि पुनरप्रत्यक्षमेवैवार्थज्ञानज्ञानं तदैश्वरस्य सर्वज्ञत्वविरोधः स्वज्ञानस्य-
प्रत्यक्षत्वात् । तदप्रत्यक्षत्वे च प्रथमार्थज्ञानमपि न तेन प्रत्यक्षम्, स्वयमप्रत्यक्षेण
ज्ञानान्तरेण तस्यार्थज्ञानस्य साक्षात्करणविरोधात् । कथमन्यथा आत्मान्तरज्ञानेनापि
कस्यचिद् साक्षात्करणं न स्यात् । तथा चानीश्वरस्यापि सकलस्य प्राणिनः स्वयमप्रत्यक्षे-
णापि ईश्वरज्ञानेन सर्वविषयेण सर्वार्थसाक्षात्करणं संगच्छेत् ततः सर्वस्य सर्वार्थवेदि-
त्वसिद्धेः ईश्वरानीश्वरविभागाभावो न्यते ।" प्रमाणपृ० पृ० ६० ।

२ "स्वात्मप्रतिरेषा ते बुष्माकमसंदादिज्ञानापेक्षया अवज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वं
प्रमेयत्वहेतुना साध्यते ततो नेश्वरज्ञानेन व्यभिचारः, तस्यासंदादिज्ञानाद्विशिष्टत्वात् ।

दृत्वात्, न खलु विशिष्टे दृष्टं धर्ममविशिष्टेऽपि योजयन् प्रेक्षावर्त्ता
 लभते निखिलार्थवेदित्वस्याप्यखिलज्ञानानां तद्वत्प्रसङ्गात् । इत्य-
 प्यसमीचीनम्; स्वभावावलम्बनात् । स्वपरप्रकाशात्मकत्वं हि
 ज्ञानसामान्यस्वभावो न पुनर्विशिष्टविज्ञानस्यैव धर्मः । तत्र तस्योप-
 लम्भमात्राच्च धर्मत्वे भानौ स्वपरप्रकाशात्मकत्वोपलम्भात् प्रदीपे^५
 तत्प्रतिषेधप्रसङ्गः । तत्स्वभावत्वे तद्वत्तेर्षां निखिलार्थवेदित्वानु-
 षङ्गश्चेत्; तर्हि प्रदीपस्य स्वपरप्रकाशात्मकत्वे भानुवन्निखिला-
 र्थोद्योतकत्वानुपङ्गः किञ्च स्यात् ? योग्यतावशाच्चदात्मकत्वावि-
 शेपेऽपि प्रदीपादेर्निर्यतायोद्योतकत्वं ज्ञानेऽपि समानम् । ततो ज्ञानं
 स्वपरप्रकाशात्मकं ज्ञानत्वान्महेऽश्वरज्ञानवत्, अव्यवधानेनैर्नैर्प्र-^{१०}
 काशकत्वाद्धौ, अर्थग्रहणैर्नात्मकत्वाद्धा तद्वदेव, यत्पुनः स्वपरप्र-
 काशात्मकं न भवति न तद् ज्ञानम् अव्यवधानेनार्थप्रकाशकम्
 अर्थग्रहणात्मकं वा, यथा चक्षुरादि ।

आधर्यौसिद्धिश्च 'प्रमेयत्वात्' इत्ययं हेतुः, धर्मिणो ज्ञानस्या-
 सिद्धेः । तत्सिद्धिः खलु प्रत्यक्षतः, अनुमानतो वा प्रमाणान्तरस्या-^{१५}
 ज्ञानधिकारात् ? तत्र न तावत्प्रत्यक्षतः; तस्येन्द्रियार्थसन्निकर्ष-
 जत्वाभ्युपगमात्, तज्ज्ञानेन चक्षुरादीन्द्रियस्य सन्निकर्षाभावात् ।
 अन्येन्द्रियं तेन चास्य सन्निकर्षो वैच्यः । मनोन्तःकरणम्, तेन
 चास्य संयुक्तसमवायः सम्बन्धः, तत्प्रभवं चाप्यक्षं धर्मित्वरूप-
 ग्राहकम्-मनो हि संयुक्तमात्मना तत्रैव समवायस्तज्ज्ञानस्येति;^{२०}
 तदयुक्तम्; मनसोऽसिद्धेः । अथ 'घटादिज्ञानज्ञानम् इन्द्रियैर्ध-

१ स्वपरप्रकाशात्मकत्वं स्वसिद्धितत्वं । २ असदादिज्ञाने । ३ अन्यथा ।
 ४ निदिष्ट ज्ञानमदितावेति ज्ञानत्वादीश्वरज्ञानवत् । ५ ता । ६ महेश्वरज्ञाने शम्नौ
 च । ७ स्वप्रक्रियामात्रात् । ८ रसो । ९ ईश्वरज्ञानवत् । १० असदादिज्ञानानां ।
 ११ शक्तिः । १२ कतिपय । १३ चक्षुरादिना न्ययिचारः । १४ भिन्नविशेषणं ।
 १५ परित्यज्य । १६ अभिन्नविशेषणं । १७ वसः । १८ किञ्च । १९ घटादि-
 ज्ञानस्य । २० परेण । २१ चक्षुरादिपञ्चमः । २२ परेण । २३ इन्द्रियं ।
 २४ मनः । २५ घटादिज्ञान ।

न हि निश्चिते दृष्टं धर्ममविशिष्टेऽपि घटवन् प्रेक्षावत्ता लभते इति; सापि न परीक्षा-
 सहा, ज्ञानान्तरस्यापि प्रज्ञानेन वेद्यत्वे अनवसानुपगमात् ।" प्रमाणप० पृ० ६० ।

न्यायकुसु० पृ० १८३ । स्वा० रत्ना० पृ० २२२ ।

I "अत्र प्रयोगे हेतुरात्मयासिद्धः स्वरूपासिद्धश्च धर्मिणो ज्ञानस्याप्रतिपत्तौ तदा-
 भित्तवेत्यवधर्मप्रतिपत्तेः ।" तत्प्रसिद्धिः अध्वक्ष्यतोऽनुमानतो वा प्रमाणान्तरस्या-
 ज्ञानधिकारात् ।" सन्नति० टी० पृ० ४७५ ।

सन्निकर्षजं प्रत्यक्षत्वे सति ज्ञानत्वात् चक्षुरादिप्रभवरूपादिज्ञानवत् इत्यनुमानात्तत्सिद्धिरित्यभिधीयते, तदप्यभिधानमात्रम्; हेतोरेप्रसिद्धविशेषणत्वात् । न हि घटादिज्ञानज्ञानस्याध्यक्षत्वं सिद्धम्, इतरेतराश्रयानुषङ्गात्-मनःसिद्धौ हि तस्याध्यक्षत्व-
 ५ सिद्धिः, तत्सिद्धौ च सविशेषणहेतुसिद्धेर्मनःसिद्धिरिति । विशेष्या-
 सिद्धत्वं च; न खलु घटज्ञानाद्भिन्नमन्यज्ञानं तद्भाहकमनुभूयते । सुखादिसंवेदनेनैव्यभिचारश्च, तद्धि प्रत्यक्षत्वे सति ज्ञानं न तज्जन्यमिति । अस्यापि पक्षीकरणाच्च दोष इत्ययुक्तम्; व्यभिचारविषयस्य पक्षीकरणे न कश्चिद्धेतुर्व्यभिचारी स्यात् । 'अनित्यः
 १० शब्दः प्रमेयत्वाद् घटवत्' इत्यादेरप्यात्मादिना न व्यभिचारस्तस्य पक्षीकृतत्वात् । प्रत्यक्षादिबाधोर्मयत्र समाना । न हि 'घटादि-
 वत्सुखाद्यविदितस्वरूपं पूर्वमुत्पन्नं पुनरिन्द्रियेण सम्बध्यते ततो ज्ञानं ग्रहणं च' इति लोके प्रतीतिः, प्रथममेवेष्टानिष्टविषयानु-
 मवानन्तरं स्वप्रकाशात्मनोऽसौदयप्रतीतिः ।

१५ स्वात्मनि किर्याविरोधान्मिथ्येयं प्रतीतिः, न हि सुतीक्ष्णोपि
 जङ्ग आत्मानं छिनत्ति, सुशिक्षितोपि वा नटबटुः स्वं स्कन्धमा-
 रोहतीत्यप्यसमीचीनम्; स्वात्मन्येव क्रियायाः प्रतीतिः । स्वात्मा
 हि किर्यायाः स्वरूपम्, किर्यावदात्मा वा ? यदि स्वरूपम्, कथं
 तस्यास्तत्र विरोधः स्वरूपस्याविरोधकत्वात् ? अन्यथा सर्वभार्वर्त्तना

१ अनुमानज्ञानेन व्यभिचारस्तत्परिहारार्थं प्रत्यक्षत्वे सति ग्रहणम् । २ अन्यथा ।
 ३ हेतोः । ४ घटज्ञान । ५ इन्द्रियार्थसन्निकर्षं न भवति । ६ प्रमेयेन ।
 ७ आत्मनोऽनित्यत्वे सुखादिसंवेदनस्येन्द्रियार्थसन्निकर्षनत्वे च । ८ पश्चात् । ९ नानसं
 करणरूपम् । १० सुखादिसंवेदनस्य । ११ प्रकाशलक्षणायाः । १२ ता ।
 १३ आत्मावैवाचकस्तद्व्यपक्षे । १४ आत्मीयार्थवाचकस्तद्व्यपक्षे । १५ विरोध-
 कत्वे । १६ घटादि ।

१ "न; अस्य हेतोरेप्रसिद्धविशेषणत्वात्, नहि घटादिज्ञानज्ञानस्य अध्यक्षत्वं सिद्धम्
 इतरेतराश्रयत्वात् ।" सम्मति० टी० पृ० ४७६

२ "सुखसंवेदनेन व्यभिचारी च; तथाहि-तत्संवेदनमध्यक्षत्वे सति ज्ञानं न च
 तज्जन्यमिति व्यभिचारः । अथास्यापि पक्षीकरणाच्च दोषः, तथाहि-सुखादिसंवेदनमि-
 न्द्रियार्थसन्निकर्षनम् अध्यक्षज्ञानत्वात् चक्षुरादिप्रभवरूपादिवेदनवत्, सुखादिर्वा भिन्न-
 ज्ञानवेद्यः वेद्यत्वाद् घटवत् ।" सम्मति० टी० पृ० ४७६

३ "स्वात्मनि वृत्तिविरोधात्, नहि तदेव अंगुल्यग्रं तेनैव अंगुल्यग्रेण स्पृश्यते,
 सैवातिपारा तथैवातिपारा च स्थिते ।" सुप्रार्थ-अभिप० पृ० ७८

४ "स्वात्मा हि क्रियायाः स्वरूपं क्रियावदात्मा वा ?" भाष्य० पृ० ४७ । व्याख्य-
 क्तुः पृ० १८८ । स्वा० रत्ना० पृ० १२९ ।

स्वरूपे विरोधान्नैस्वरूपत्वानुपपन्नः । विरोधस्य द्विष्टत्वाच्च न क्रियायाः स्वात्मनि विरोधः । क्रियावदात्मौ तस्याः स्वात्मा इत्यप्यसङ्गतम्, क्रियावत्येव तस्याः प्रतीतेस्तत्र तद्विरोधासिद्धेः^१ अन्यथा सर्वक्रियाणां निराश्रयत्वं सकलद्रव्याणां चाऽक्रियत्वं स्यात् । न चैवम्; कर्मस्थायास्तस्याः कर्मणि कर्तृस्थायाश्च कर्तरि^२ प्रतीयमानत्वात् । किञ्च, तैत्रोत्पत्तिलक्षणा क्रिया विरुध्यते, परिस्पन्दात्मिका, धात्वर्थरूपा, शक्तिरूपा वा ? यद्युत्पत्तिलक्षणा, सा विरुध्यताम् । नखलु 'ज्ञानमात्मानमुत्पादयति' इत्यभ्यनुजानीमः स्वसामग्रीविशेषवशात्तदुत्पत्त्यभ्युपगमात् । नापि परिस्पन्दात्मिकासौ तत्र विरुध्यते, तस्याः द्रव्यवृत्तित्वेन ज्ञाने सत्त्वसैवावस-१० म्मवात् । अथ धात्वर्थरूपा; सा न विरुद्धा 'भवति तिष्ठति' इत्यादिक्रियाणां क्रियावत्येव सर्वदोषलब्धेः । शक्तिरूपक्रियायांस्तु विरोधो दूरोत्सारित एव; स्वरूपेण कस्यचिद्विरोधासिद्धेः, अन्यथा प्रदीपस्यापि स्वप्रकाशनविरोधस्तद्धि स्वकारणकलापात्स्वप्रप्रकाशात्मकमेवोपजायते प्रदीपवत् । १५

ज्ञानक्रियायाः कर्मतया स्वात्मनि विरोधस्ततोऽर्थत्रैव कर्मत्वदर्शनादित्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; प्रदीपस्यापि स्वप्रकाशनविरोधानुपपन्नात् । यदि चैकैर्द्रव्यो भेदः सर्वत्राभ्युपगम्यते, तर्हि षटे प्रभासरोण्यादिधर्मानुपलब्धेः प्रदीपेऽप्यस्याभावप्रसङ्गः, रण्यापुरुषे वाऽसर्वज्ञत्वदर्शनात्मदेश्वरेऽप्यसर्वज्ञत्वानुपपन्नः । अत्र २० वस्तुवैचित्र्यसम्भवे ज्ञानेन किमपराद्धं येनैवैतौ नैवेत्येते ?

किञ्च ज्ञानान्तरापेक्षया तत्रैव कर्मत्वविरोधः, स्वरूपापेक्षया वा ?

१ जमाव । २ भव । ३ स्वरूप । ४ ओदवं पचति देवदत्तः । ५ न विरोधः । ६ शर्म गच्छति देवदत्तः । ७ ज्ञाने । ८ भवता परेण । ९ परेण । १० वयं जैनाः । ११ स्वात्मनि । १२ देवदत्तादौ । १३ जानाति । १४ स्वात्मनि । १५ जयस्य । १६ भक्त्यादिज्ञान । १७ कुतः । १८ गदादौ । १९ किञ्च । २० स्वच्छिदिक्रिया प्रति कर्मत्वविरोधलक्षणः । २१ खड्गादौ । २२ ज्ञाने । २३ आसुरीष्यसर्वज्ञत्वलक्षण । २४ केन । २५ स्वप्रकाशरूपो वैचित्र्यसम्भवः । २६ परेण । २७ ज्ञानक्रियायां ।

१ "का पुनः स्वात्मनि क्रिया विरुद्धा परिस्पन्दरूपा धात्वर्थरूपा वा ? तत्साध-
को० पृ० ४२ । सा० दशा० पृ० २२८ । "का पुनः स्वात्मनि क्रिया विरुध्यते शक्ति-
रूपचिर्वा ?" भाष० पृ० ४७ । साहादर्म० पृ० ९३ । "उत्पत्तिरूपा, परिस्पन्दा-
त्मिका, धात्वर्थसमाका, शक्तिलक्षणा वा ?" न्यायकुसु० पृ० १८७ ।

२ "किञ्च, ज्ञानान्तरापेक्षया तत्र कर्मत्वविरोधः स्वरूपापेक्षया वा ?" न्यायकुसु०
पृ० १८८ ।

प्रथमपक्षे-महेश्वरस्यासर्वज्ञत्वप्रसङ्गस्तज्ज्ञानेन तस्याऽवेद्यत्वात् ।
आत्मसमवेतानन्तरज्ञानवेद्यत्वामावे च

“स्वसमवेतानन्तरज्ञानवेद्यमर्थज्ञानम्” [] इति ग्रन्थ-
विरोधो मीमांसैकमतप्रवेशश्च स्यात् । ज्ञानान्तरापेक्षया तस्य
५ कर्मत्वाविरोधे च-स्वरूपापेक्षयाप्यविरोधोऽस्तु सहस्रकिरणव-
त्त्वपरोद्योतनत्वभावत्वात्तस्य । कर्मत्ववच्च ज्ञानक्रियातोऽर्थान्तर-
स्यैव करणत्वदर्शनात्तस्यापि तत्र विरोधोऽस्तु विशेषभावात् ।
तथा च ‘ज्ञानेनाहमर्थं जानामि’ इत्यत्र ज्ञानस्य करणतया प्रती-
तिर्न स्यात् ।

१० विशेषणज्ञानस्य करणत्वाद्विशेष्यज्ञानस्य तत्फलत्वेन क्रिया-
त्वात्तयोर्भेद एवेत्यपि श्रद्धामात्रम् ; ‘विशेषणज्ञानेन विशेष्यमहं
जानामि’ इति प्रतीत्यभावात् । ‘विशेषणज्ञानेन हि ‘विशेषणं
विशेष्यज्ञानेन च विशेष्यं जानामि’ इत्यखिलजनोंऽनुमन्यते ।

किञ्च, जैनयोर्विषयो भिन्नः, अभिन्नो वा । प्रथमपक्षे-विशेषणवि-
१५ शेष्यज्ञानद्वयपरिकल्पना व्यर्थोऽर्थभेदाभावाद्वादाहिविज्ञानवत् ।
द्वितीयपक्षे जैनयोः प्रमाणफलव्यवस्थाविरोधोऽर्थान्तरविषय-
त्वाद् घटपटज्ञानवत् । न खलु घटज्ञानस्य पटज्ञानं फलम् । न
चान्यत्र व्युत्पत्ते विशेणज्ञाने ततोऽर्थान्तरे विशेष्ये परिच्छिन्ति-
युक्ता । न हि खदिरादाबुत्पत्तननिय(प)तनव्यापारवति परशौ
२० ततोऽन्यत्र धवादौ छिदिक्रियोत्पद्यते इत्येतत्प्रातीतिकम् । छिन्न-

१ असदादिज्ञानस्य । २ प्रथमज्ञान । ३ द्वितीयज्ञानेन । ४ किञ्च । ५ योगस्य ।
६ करणज्ञानं न प्रत्यक्षं कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वात् । ७ ज्ञानान्तरेणाप्यप्रत्यक्षत्वात् ।
८ स्वरूपापेक्षया कर्मत्वविरोधं शून्यः । ज्ञानान्तरापेक्षया किं कर्मत्वविरोधोक्तिः ।
९ परेणाङ्गीकृते । १० किञ्च । ११ कुठारादेः । १२ ज्ञानाङ्गित्वस्य करणत्वसा-
मिशेषात्कर्मत्ववत् । १३ ज्ञानकरणत्वविरोधे सति । १४ करणज्ञानेन । १५ पक्षे ।
१६ लोके । १७ करणज्ञानक्रियाज्ञानयोः । १८ नीलादिज्ञानेन दण्डादिज्ञानेन
वा । १९ जानामि । २० उत्पत्तादिकं दण्डीत्यादिकं । २१ सा । २२ विशेषण-
ज्ञानविशेष्यज्ञानयोः । २३ विशेषणज्ञानविशेष्यज्ञानयोः । २४ भिन्नविषयत्वात् ।
२५ किञ्च । २६ नीलादौ विशेष्ये । २७ सति । २८ उत्पत्तादौ । २९ ज्ञानं ।
३० कर्म । ३१ सति । ३२ शूमादिज्ञानस्य ।

“प्रमाणफलते बुद्धोर्विशेषणविशेष्योः ।

यदा तदापि पूर्वोक्तऽभिप्रायत्वविराजिता ॥” भीमासाधो० पृ० १५६ ।

१ “विशेषणज्ञानं कारणं विशेष्यज्ञानं तत्फलत्वात् ज्ञानक्रियेति चेदः स्यादेवं यदि
विशेषणज्ञानेन विशेष्यं जानामीति प्रतीतिरूपवदे ।” स्वा० रत्ना० पृ० २२८ ।

ज्ञानस्यानुमानज्ञाने व्यापारदर्शनादत्राप्यविरोधे इत्यप्यसम्भाव्यं
तद्वत्कमभावेनात्र ज्ञानद्वयानुपलब्धेः, एकमेव हि तेयोर्ग्राहकं ज्ञान-
मनुभूयते । न चात्र विषयभेदाज्ज्ञानभेदकल्पना; सर्वमानेन्द्रिय-
ग्राह्ये योग्यदेशावस्थितेयं घटपटादिवदेकस्यापि ज्ञानस्य व्यापारा-
विरोधात् । न च घटादावपि ज्ञानभेदः सर्वमानशुणानां युगपद्भा-
वानभ्युपगमात् । क्रमभावे च प्रतीतिविरोधः सर्वज्ञाभावश्च ।
युगपद्भावाभ्युपगमे चानयोः सत्येतरगोविषाणवत्कार्यकारणभा-
वाभावः । विशेषणविशेष्यज्ञानयोः क्रमभावेऽप्याशुबृत्त्या यौगप-
द्याभिमानो यथोत्पलपत्रशतच्छेद इत्यप्यसङ्गतम्; निखिलभा-
वानां क्षणिकत्वप्रसङ्गात्सर्वत्रैकैतत्त्वाध्यैवसायस्याशुवृत्तिप्रवृत्त-
त्वात् । प्रत्यक्षप्रतिपन्नस्यैव दृष्टान्तमात्रेण निषेधविरोधोऽपि,
अन्यथा शुद्धे शब्दे पीतविभ्रमदर्शनात्सुवर्णेपि तद्विभ्रमः स्यात् ।
मूर्त्तस्य सूक्ष्मप्रत्योत्तराध्यैवस्थितमुत्पलपत्रशतं युगपत्प्राप्तुमशक्तेः
क्रमच्छेदेऽप्याशुबृत्त्या यौगपद्याभिमानो युक्तः, पुंसस्तु स्वावरण-
क्षयोपशमपेक्षस्य युगपत्स्वपरप्रकाशनस्वभावस्य समग्रैन्द्रियस्या-
प्राप्तार्थग्राहिणः स्वयममूर्त्तस्य युगपत्स्वविषयग्रहणे विरोधाभा-
वात् किं युगपज्ज्ञानोत्पत्तिः ?

न च नैनेपि सूक्ष्मप्रवन्मूर्त्तमिन्द्रियाणि तत्पलपत्रवत्परस्पर-
परिहारस्थितानि युगपत्प्राप्तुं न समर्थमिति वैच्यम् । तथाभूतस्या-
स्याऽसिद्धेः । युगपज्ज्ञानोत्पत्तिविभ्रमात्तत्सिद्धौ परस्परअश्वयः— २०

१ शक्यादिज्ञाने । २ विशेषपरिच्छितौ । ३ विशेषज्ञानव्यापारस्य । ४ लिङ्ग-
लिङ्गिज्ञानस्य । ५ नीलोत्पलमोविशेषणविशेष्ययोः । ६ एक । ७ अग्न्यादि ।
८ शानानां । ९ नैवाभिकानामनभ्युपगमात् । १० परैः । ११ कृत्वा । १२ कल्पना ।
१३ कथं । १४ घटपटादिपदार्थे । १५ यकोयमित्यव्यवसायः । १६ विशेषण-
विशेष्यज्ञानवैराग्यस्य । १७ किञ्च । १८ अविरोधे । १९ विशेषणविशेष्यरूप ।
२० कर्तुं । २१ कर्मरूपाणि । २२ परेण ।

१ “न चात्र विषयभेदाज्ज्ञानभेदकल्पनोपपत्तिमती; समानेन्द्रियग्राह्ये योग्यदेशा-
वस्थितेऽपि घटपटादिवदेकस्यापि ज्ञानस्य व्यापाराविरोधात् ।” सा० रत्ना० पृ० २३० ।

२ “मूर्त्तस्य सूक्ष्मप्रत्योत्तराध्यैवस्थितमुत्पलपत्रशतं युगपद् व्याप्तुमशक्तेः क्रम-
भेदेऽप्याशुबृत्तेः यौगपद्याभिमान इति युक्तम्, ज्ञानमस्तु क्षयोपशमसम्पेक्षस्य युग-
पत् स्वपरप्रकाशनस्वभावस्य स्वयममूर्त्तस्याप्राप्तार्थग्राहिणो युगपत् स्वविषयग्रहणे न
कथिद्विरोध इति किञ्च युगपज्ज्ञानोत्पत्तिः ।” सम्प्रति० टी० पृ० ४७८ ।

३ “नच मनोऽपि सूक्ष्मप्रवन्मूर्त्तमिन्द्रियाणि तत्पलपत्रवत् परस्परपरिहारस्थित-
स्वरूपाणि न युगपत्प्राप्तुं समर्थमिति न युगपज्ज्ञानोत्पत्तिः; तथाभूतस्य तत्सैवाऽ-
सिद्धेः ।”
सम्प्रति० टी० पृ० ४७८ ।

तद्विभ्रमसिद्धौ हि मनःसिद्धिः, ततस्तद्विभ्रमसिद्धिरिति । 'बन्धु-
रादिकं क्रमवत्कारणोपेक्षं कारणान्तरसाकल्ये संत्यज्यनुत्पाद्योत्पा-
दकत्वाद्वासीकैर्तैर्यादिवत्' इत्यनुमानात्तत्सिद्धिरित्यपि मनोरथ-
मात्रम्, भवदभ्युपगतेन मनसैवानेकान्तात् । न हि तत्साकल्ये तत्
५ तथाभूतमपि क्रमवत्कारणान्तरापेक्षमनवस्थाप्रसङ्गात् । किञ्च,
अनुत्पाद्योत्पादकत्वं युगपत्, क्रमेण वा ? युगपच्छेदिरैवो हेतुः,
तथोत्पादकत्वस्याक्रमिकारणाधीनत्वात् प्रसिद्धसहभाव्यनेककौ-
र्यैर्कारिसौमग्रीवत् । क्रमेण चेदसिद्धः, कर्कटीभक्षणादौ युगपद्वृषा-
दिशानोत्पादकत्वप्रतीतिः । आशुवृत्त्या विभ्रमकल्पनायां दूकम् ।
१० तन्न मनसः सिद्धिः ।

सिद्धौ वा न संयोगः, निरञ्जयोरेकदेशेन संयोगे सांशतैवम् ।
सर्वोत्पन्नैकत्वम् उभयव्याघातकारि स्यात् । 'यत्र' संयुक्तं मेनस्तत्र

१ मनः । २ वषट्त्पादकं तत्तत्क्रमवत्कारणोपेक्षम् । ३ आलोककृपादि ।
४ ज्ञान । ५ ता । ६ उत्पादकत्वादित्युच्यमाने नानाङ्गरोत्पादकैर्नानाधीनैकान्तस-
म्बन्धेदार्थमनुत्पाद्योत्पादकत्वादित्युक्तं तथापि धीनैरेवानेकान्तसम्बन्धेदार्थं कारणान्त-
साकल्ये ससीत्युक्तम् । एकसाधुपुरादिच्छणात्कारणादपरमालोककृपलक्ष्णं कारणान्तरं
कारणान्तरसाकल्ये समनुत्पाद्योत्पादकं न भवति किन्तुत्पादकमेव धीवत् । ७ इष्टः
क्रमवत्कारणमत्र । ८ मनः । ९ पर । १० साधनस्य । ११ मनः । १२ अन्यथा ।
१३ क्रमसाधये जक्रममेव साधयेत् । १४ नित्यः शब्दः कृतकत्वात् । १५ बन्धु-
रादि । १६ धीमानि । १७ क्षित्युदकादिच्छणा । १८ यथा धीमलक्षणा सामग्री
क्षित्युदकादिच्छणाऽक्रमकारणाधीना । १९ वक्षुरादीनां । २० तद्विभ्रमसिद्धौ हि
मनःसिद्धिस्तत्तद्विभ्रमसिद्धिरिति दूषणं । २१ स्वप्रक्रियामात्रेण । २२ आत्मना ।
२३ आत्ममनसोः । २४ वदते । २५ संयोगे । २६ अनौप्युपगम्य तत्र किञ्च ।
२७ आत्मनि । २८ समवायिनि ।

१ आसेन्द्रियार्थाः कारणान्तरापेक्षाः सङ्गापेक्षेऽपि अनुत्पाद्योत्पादकत्वात् । ने हि
सङ्गापेक्षेऽपि कार्यमनुत्पाद्य पश्चादुत्पादयन्ति ते सापेक्षाः यथा तन्त्रादयः अन्तर्भावो-
पापेक्षा इति ।" प्रश्न० व्यो० पृ० ४२४ । प्रश्न० कन्द० पृ० १० ।

२ "किञ्च, अनुत्पाद्योत्पादकत्वमस्य क्रमेण, युगपदा विवक्षितम् ।"

न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

३ "सिद्धौ वा न संयोगः, निरञ्जयोरात्ममनसोरेकदेशेन संयोगे सांशतैवम् ।"

न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

"नच निरञ्जयोरात्ममनसोः संयोग संसर्गः, एकदेशेन तत्संयोगे सांशतप्रसक्तेः,
सर्वात्मना संयोगे सम्योरेकत्वप्राप्तेः ।" सम्मति० टी० पृ० ४७६ ।

४ "यदिच यत्र मनः संयुक्तं तत्र समवेतं ज्ञानं समुत्पादयति तदा सर्वमर्था

समवेते ज्ञानमुत्पादयति' इत्यभ्युपगमे चाखिलात्मसमवेत-
सुखौदौ ज्ञानं जनयेत् तेषां नित्यव्यापित्वेन मनसा संयोगोऽ-
विशेषात् । तथा च प्रतिप्राणि भिन्नं मनोन्तरे व्यर्थम् । यस्य
र्यन्मनस्तेतत्समवायिनि ज्ञानहेतुरित्यप्यसारम्, प्रतिनियतात्मि-
सम्बन्धित्वस्यैवात्रोपसिद्धेः । तद्धि तत्कार्यत्वात्, तदुपक्रियमाण-
त्वात्, तत्संयोगात्, तददृष्टप्रेरितत्वात्, तदात्मप्रेरितैतत्त्वाद्वा
स्यात् ? न तावत्तत्कार्यत्वेन तैत्सम्बन्धिता, नित्ये तदयोगात् ।
नाप्युपक्रियमाणत्वेन; अत्रोपेयाप्रहेयैति शैथिल्ये तस्याप्यसम्भवात् ।
नापि संयोगात्, सर्वत्रैस्याविशेषात् । नापि 'यददृष्टप्रेरितं
प्रवर्तते निवर्तते वा तत्तस्य' इति बोध्यम्; अचेतनस्यादृष्टा १०
स्यानिष्टदेशादिपरिहारेणेष्टदेशादौ तैत्प्रेरणासम्भवात्, अन्यथे-
श्वरकल्पनावैफल्यम् । न चेश्वरस्यैष्टप्रेरणे व्यापारात्साफ-
ल्यम्, मनस एवासौ प्रेरकः कैलप्यताम् किं परम्परया ? तस्य

१ ब्रह्मादी । परेण । २ मनः कर्तुं । ४ निखिलात्मनाम् । ५ एकस्यैव मनसः
सम्भवे सति । ६ ज्ञानान्तर । ७ व्यर्थं भवतीत्युक्ते परः प्राह । ८ आत्मनः ।
९ कर्तुं । १० ब्रह्मादी । ११ भवति । १२ जीव । १३ अस्यात्मन इदं मन इति ।
१४ मनसि । १५ मनो धर्मि प्रतिनियतात्मसम्बन्धि भवतीति साध्यम् । १६ प्रति-
नियतात्म । १७ मनसः । १८ मनसः । १९ मनसः । २० वा । २१ ना ।
२२ मनसः । २३ मनसः । २४ मनसः । २५ मनसः । २६ नित्यपरमाणुपरिमाणं
मन इति वचनात् । २७ आत्मना । २८ आरोपमित्युक्तव्यम् । २९ स्फोटमित्युक्त-
व्यम् । ३० अतिशये मनसि । ३१ आत्मस्य । ३२ वा । ३३ अनिष्टात् ।
३४ परेण । ३५ काल । ३६ मनः । ३७ विषये । ३८ परेण । ३९ महेश्वरेणा-
दृष्टं त्रैवैते अदृष्टेन मन इति परम्परा तथा । ४० अदृष्टस्य ।

व्यापितया समानदेशत्वेन मनसस्तैः सञ्जुक्तत्वात् सर्वात्मसमवेतब्रह्मादिषु तदेवैकं
ज्ञानमुत्पादयतीति प्रतिप्राणि भिन्नमनःपरिकल्पनमनर्थकमासक्त्येत ।"

सन्मति० टी० पृ० ४७६ । न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

१ "न हि तत्कार्यत्वेन तत्सम्बन्धिता, तस्य नित्यत्वान्मुपगमात्, तत्र ज्ञानादे-
याप्रहेयातिशये तत्कार्यत्वाऽयोगात् ।" सन्मति० टी० पृ० ४७६ ।

२ "नापि संयोगात्, तस्यापि तत्रैकदेशेन सर्वात्मना वाऽयोगात् ।"

सन्मति० टी० पृ० ४७६ । न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

३ "नच यददृष्टप्रेरितं तत्प्रवर्तते तत्सम्बन्धीति वक्तव्यम्; अदृष्टस्य अचेतनत्वेन
प्रतिनियतविषय (ये) तत्प्रेरकत्वायोगात्, प्रेरकत्वे वा ईश्वरपरिकल्पनावैयर्थ्यप्रसक्तैः"

सन्मति० टी० पृ० ४७६ । न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

सर्वसाधारणत्वाच्चातो न तन्नियमः । चादृष्टस्यापि प्रतिनियमः सिद्धः; तस्यात्मनोऽत्यन्तमेदात् समवायस्यापि सर्वत्राविशेषात् । 'येनात्मना यन्मनः प्रेर्यते तत्तस्य' इत्ययुक्तम्, अनुपलब्धस्य प्रेरणासम्भवात् ।

- ५ किञ्च, ईश्वरस्यापि स्वसंविदितज्ञानानभ्युपगमे 'सदसद्द्वर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनोऽनेकत्वात्पञ्चाङ्गुलवत्' इत्यत्र पक्षीकृतैकदेशेन व्यभिचारः-तज्ज्ञानान्यसदसद्द्वर्गयोरनेकत्वाविशेषेभ्येकज्ञानालम्बनत्वाभावादेकशाखाप्रभवत्वानुमानेनैव । स्वसंविदितत्वाभ्युपगमे चास्य अनेनैव प्रमेयत्वहेतोर्व्यभिचार इत्युक्तम् ।
- १० 'असदादिज्ञानापेक्षया ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वं साध्यते' इत्यत्राप्युक्तम् ।

किञ्चाद्ये ज्ञाने सति, असति वा द्वितीयज्ञानमुत्पद्यते? सति चेत्-युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिविरोधः । असति चेत्, कस्य तद्भाहकम्? असतो ग्रहणे द्विचन्द्रादिज्ञानवदस्य भ्रान्तत्वप्रसङ्गः ।

- १५ किञ्च, असदादीनां तैज्ज्ञानान्तरं प्रत्यक्षम्, अप्रत्यक्षं वा । यदि प्रत्यक्षम्-स्वतः, ज्ञानान्तराद्वा? स्वतस्त्वेत्, प्रथममप्यर्थज्ञानं स्वतः प्रत्यक्षमस्तु । ज्ञानान्तरात्प्रत्यक्षत्वे तदपि ज्ञानान्तरं ज्ञानान्तरात्म्यक्षमित्यनवस्था । अप्रत्यक्षं चेत् कथं तेनाद्यज्ञानग्रहणम्? स्व-

१ किञ्च । २ असेदमदृष्टमिति । ३ आत्मसु गगनादौ । ४ परैः । ५ इत्य-
युगकर्मसामान्यविशेषसमवायरूपः सद्द्वर्गः । ६ प्राक्प्रवृत्तसंज्ञितरात्मन्तामावरूपोऽस-
द्द्वर्गः । ७ पारिषेष्वादीश्वरस्य । ८ युगरूपेण विज्ञानेन । ९ सद्द्वर्गेण । १० ईश्वर ।
११ इन्द्रः । १२ ईश्वरज्ञानान्यपदार्थयोरैकज्ञानालम्बनत्वे स्वसंविदितत्वप्रसङ्गः ।
१३ पक्षानि यतानि फलानि । १४ यत् । १५ हेतुः । १६ व्यभिचारपरिहाराय ।
१७ परैः । १८ ईश्वरस्य । १९ युगरूपेण भवेत्स्वरज्ञानेन । २० स्वभावालम्ब-
नादिति । २१ स्वभावालम्बनादित्यादि । २२ असदादेः । २३ ज्ञानान्तरत्वे ।
२४ मनस्येव । २५ ज्ञानस्य । २६ अर्थज्ञानं भ्रान्तमसद्ग्रहणात् । २७ द्वितीयम् ।

१ "नच येनात्मना यन्मनः प्रेर्यते तत्तत्सम्बन्धि इति प्रतिनियमः अदृष्टवदा-
त्मनोऽपि अचेतनत्वेन तत्प्रत्यप्रेरकत्वात् । चैतनत्वेऽपि नानुपलब्धस्य प्रेरणत्वं ।"

सन्मति० टी० पृ० ४७७, न्यायकुसु० पृ० २७२ ।

२ "किञ्च, स्वसंविदितज्ञानानभ्युपगमे 'सदसद्द्वर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनः अने-
कत्वात्पञ्चाङ्गुलवत्' इत्यत्र पक्षीकृतैकदेशेन व्यभिचारः, तज्ज्ञानान्यसदसद्द्वर्गयोरनेकत्वा-
विशेषेऽपि एकज्ञानालम्बनत्वाभावात् एकशाखाप्रभवत्वानुमानवत् ।"

सन्मति० टी० पृ० ४७७ ।

मप्रत्यक्षेण ज्ञानान्तरेणात्मान्तरज्ञानेनेवास्ये ग्रहणविरोधात् । ननु
ज्ञानस्य स्वविषये गृहीतिजनकत्वं ग्राहकत्वम्, तच्च ज्ञानान्तरेणा-
गृहीतस्यापीन्द्रियादिवद्युक्तमित्यपि मनोरथमात्रम्; अर्थज्ञान-
स्यापि ज्ञानान्तरेणागृहीतस्यैवार्थग्राहकत्वानुषङ्गात् । तथा च ज्ञान-
ज्ञानपरिकल्पनावैयर्थ्यं मीसांसकर्मतानुषङ्गम् । ५

लिङ्गशब्दसादृश्यानां चोगृहीतानां स्वविषये विज्ञानजनकत्वप्र-
सङ्गाच्च द्विर्षयविज्ञानोन्वेषणानर्थक्यम् । 'उभयथोपलम्भाददोषः'
इत्यभ्युपगमेपि किञ्चिल्लिङ्गादिकमन्वयमेव चक्षुरादिकं तु ज्ञात-
मेव स्वविषये प्रमितियुक्त्यादयेत्तत एव । अथ चक्षुरादिकमेवा-
ज्ञातं स्वविषये प्रमितिनिमित्तम्, न लिङ्गादिकं तत्तु ज्ञातमेव १०
नान्यथाऽतो नोभयत्रोभयथाप्रसङ्गः प्रतीतिविरोधात्, नन्वेवं यथा
अर्थज्ञानं ज्ञातमर्थं ज्ञतिनिमित्तम्, तथा ज्ञानज्ञानमपि ज्ञानेऽस्तु,
तत्रान्युभयथापरिकल्पने प्रतीतिविरोधाविशेषात् । यथैव हि-
'विबोधापूर्वकं चक्षुरादिकज्ञातमेवार्थं ज्ञतिनिमित्तं तत्त्वादस्य चक्षुरादि-
वत् । लिङ्गादिकं तु ज्ञातमेव कचिज्ज्ञतिनिमित्तं तत्त्वादुभयवादि- १५

१ द्वितीयेन । २ सन्तानान्तर । ३ ज्ञानस्य । ४ द्वितीयं । ५ अर्थज्ञाने ।
६ परिच्छिन्ति । ७ कथ्यते । ८ तृतीयज्ञानेन । ९ द्वितीयज्ञानस्य । १० अदृष्टादि ।
११ ईदृ । १२ मीमांसकमते अगृहीतस्यैव (परोक्षस्य) ज्ञानस्यावग्राहकत्वात् ।
१३ गामन्यावेत्यादि । १४ सञ्चारद्विषयप्रतिषेधेः कारणं सादृश्यं । १५ किञ्च ।
१६ अनुमेये । १७ गामन्यावेत्यादिवान्वाये । १८ लिङ्गादिभ्यासौ विषयश्च ।
१९ इन्द्रियस्याज्ञातस्य लिङ्गादेशात्तस्य । २० न त्वज्ञातं ज्ञापकं नाम । २१ गृही-
तस्यागृहीतस्य च गृहीतिजनकत्वेन । २२ अर्थज्ञानतद्ग्राहकज्ञानवच्च । २३ परेण ।
२४ परकीयं । २५ असदादिकं लिङ्गत्वं ज्ञातमेव । २६ परकीय । २७ परस्य ।
२८ चक्षुरादी लिङ्गादौ च । २९ यथाक्रमं ज्ञातत्वाज्ञातत्वप्रकारेण । ३० इति चेत् ।
३१ उभयभोगमयत्र निकल्पे प्रतीतिविरोधप्रकारेण । ३२ ज्ञातं । ३३ ज्ञतिनिमित्तं ।
३४ ज्ञाने । ३५ यत् ज्ञातमपरं ज्ञातार्थं स्वविषये प्रमितिजनकम् । ३६ परस्य ।
३७ परकीयम् । ३८ अप्रत्यक्षत्वाविशेषागमात् । ३९ परस्य । ४० स्वविषये ।

१ "स्यान्ततः-चक्षुरादिकमेवाज्ञातं स्वविषयज्ञतिनिमित्तं इदं न तु लिङ्गादिकम्,
तदपि ज्ञातमेव नान्यथा ततो नोभयत्रोभयथाप्रसङ्गः प्रतीतिविरोधः, तदिह यथा
अर्थज्ञानं व्यसितमर्थज्ञतिनिमित्तं तथा ज्ञानज्ञानमपि ज्ञानेऽस्तु, तत्रापि उभयथा परि-
कल्पनाया प्रतीतिविरोधस्याविशेषात् । कथा युन.प्रवीला अत्र निरोध इति चेत्;
चक्षुरादिषु कथेति सम्.पर्वजुयोगः । मिमांसापक्षं चक्षुरादिकमज्ञातमेव अर्थज्ञतिनिमित्तं
चक्षुरादिह्यात् ।" तथा मिमांसापक्षितं लिङ्गादिकं ज्ञातमेव कचिद्विज्ञतिनिमित्तम्
लिङ्गादिह्यात्, यदित्वं तदिदं यथोभयवादिप्रसिद्धं दृष्टादि, तथा च मिमांसापक्षितं

नोपि शैक्षिकायात्, ईश्वरात्, विषयान्तरसञ्चारात्, अदृष्टा-
द्वाऽनवस्थाभावः । न हि शैक्षिकायाच्चतुर्थ्यादिज्ञानस्यानुत्पत्तेरनव-
स्थानाभावः । तदनुत्पत्तौ प्राक्तनज्ञानासिद्धिदोषस्य तदवस्थ-
त्वात् । तैक्षये च कुतो रूपादिज्ञानं साधनादिज्ञानं वा र्थतो
५ व्यवहारः प्रवर्त्तते ? न च चतुर्थ्यादिज्ञानजननशक्तेरेव क्षयो
नेतारस्याः, युगपदनेकशक्त्यभावात् । भावे वा तथैव ज्ञानोत्पत्ति-
प्रसङ्गः । नित्यस्यापरोपेक्षान्यसम्भाव्या । क्रमेण शक्तिसङ्गावे
कुतोऽसौ ? न तावदात्मनोऽशैक्षात्, तदसम्भवात् । शक्त्यन्तर-
कल्पने चानवस्था ।

१० ईश्वरस्तां निवारयतीत्यपि बालविलसितम्, कृतकृत्यस्य तन्नि-
वारणे प्रयोजनाभावात् । परोपकारः प्रयोजनमित्यसत्, धर्मि-
ग्रहणाभावस्य तदवस्थत्वप्रसङ्गात्, अप्रतीतिर्निषिद्धत्वाच्च ।

न च विषयान्तरसञ्चारात्तन्निवृत्तिः, विषयान्तरसञ्चारो हि
धर्मिज्ञानविषयोदन्यत्र साधनादिविषये ज्ञानोत्पत्तिः । न च तज्ज्ञा-

१ किञ्च । २ प्रतिपद्युः । ३ पञ्चपद्यादि । ४ प्रथमद्वितीयतृतीय । ५ पूर्व-
निरूपित । ६ शक्तिः । ७ दृष्टान्तादि । ८ कुतः । ९ रूपादिज्ञाननित्यायाः शक्तेः ।
१० अपसिद्धान्तः । ११ आत्मनः । १२ ज्ञानोत्पत्तौ । १३ शक्तिः । १४ शक्ति-
र्भवेत् । १५ असमर्थात् । १६ ता । १७ शक्त्यादात्मनश्चेत् । १८ आत्मगताः
शक्तयः शक्तिमत्यदात्मनः उत्पद्यन्ते इत्यनेन प्रकारेण । १९ आपश्चान्नानामावस्य ।
२० पूर्वनिरूपित । २१ यदादिज्ञानज्ञानमित्यादौ । २२ धर्मिज्ञानज्ञानस्य । २३ तृतीय-
ज्ञानात् । २४ ता । २५ वसः । २६ आपश्चान्नस्य । २७ तृतीयज्ञानात् ।
२८ तृतीयज्ञानस्य । २९ द्वितीय ।

१ “न च शक्तिप्रक्षयाच्चतुर्थ्यानादेरनुत्पत्तेरनवस्थानिवृत्तिः, धर्मिग्रहणस्वैवमभावा-
पत्तेः । किञ्च, यदि शक्तिप्रक्षयादनवस्थानिवृत्तिः, बाह्यविषयमपि ज्ञानं न भवेत्
शक्तिप्रक्षयादेव ।” सन्मति० टी० पृ० ४७९ ।

२ “न च चतुर्थ्यादिज्ञानजननशक्तेरेव प्रक्षयाः न बाह्यविषयज्ञानशक्तेः, युगपदनेक-
शक्त्यभावात्, भावे वा युगपदनेकज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्गः ।” सन्मति० टी० पृ० ४७९ ।

३ “मतेन ईश्वरादनवस्थानिवृत्तिरिति प्रतिविहितम्, तस्यादृष्टकल्पनत्वात्, प्रति-
षिद्धत्वाच्च ।” सन्मति० टी० पृ० ४७९ ।

४ “न च विषयान्तरसञ्चारादनवस्थानिवृत्तिः, यतो धर्मिज्ञानविषयात् साधनादि-
विषयान्तरस्य, तत्र ज्ञानस्योत्पत्तेः निषयान्तरसञ्चारः । न चापरापरज्ञानग्राहिज्ञानस-
न्तत्युत्पत्तौ अवश्यस्याविद्यासंसाधनादिविषयसन्निधानस्य, येन तत्र ज्ञानस्य सञ्चारो
भवेत् । सन्निधानेऽपि अन्तरङ्गबहिरङ्गयोरन्तरङ्गस्वैव बलीयस्त्वात् नान्यदङ्गविषयपरिहारेण
बाह्यविषये ज्ञानोत्पत्तिर्भवेदिति कुतोऽनवस्थानिवृत्तिः ?” सन्मति० टी० पृ० ४७९ ।

नसन्निधानेऽवश्यं साधनादिना सन्निहितेन भवितव्यमसिद्धौदेर-
भावोपपत्तेः । सन्निहितेपि वा जिघृक्षिते धर्मिण्यर्गहीते कथं
विषयान्तरे ग्रहणाकांक्षा ? कथं वा तज्ज्ञानमेकार्थसमवेतत्वेन
सन्निहितं विहाय तद्विपरीते दृष्टान्तादौ शौनं ज्ञायेत् ?

अदृष्टात्तन्निवृत्तौ स्वसंविदितज्ञानोत्पत्तिरेवातोऽस्तु किं सिद्ध्यौ- ५
मिनिवेशेन ? तत्र प्रत्यक्षाद्धर्मिसिद्धिः ।

नौप्यनुमानात् ; तत्सद्भावावेदकस्यै तस्यैवासिद्धेः । सिद्धौ वा
तैर्ज्ञापर्याश्रयासिद्धादिदोषोपनिर्णतः स्यात् । पुनरत्राप्यनुमाना-
न्तरात्तत्सिद्धावनवस्था । ईत्युक्तदोषपरिजिहीर्षया प्रदीपवत्स्व-
परप्रकाशनशक्तिद्वयात्मकं ज्ञानमभ्युपगमैतव्यम् । तदपह्नवे १०
वैस्तुव्यवस्थाभावप्रसङ्गात् ।

ननु तैर्परप्रकाशो नाम यदि बोधरूपत्वं तदा साध्यविकलो
दृष्टान्तः प्रदीपे बोधरूपत्वस्यासम्भवात् । अथ भासुररूपसम्ब-
न्धित्वं तस्य ज्ञानेऽत्यन्तासम्भवात्कथं साध्यता ? अन्यैर्थां प्रत्यक्ष-
बाधस्तदप्यसमीचीनम् ; तत्प्रकाशो हि स्वरूपोद्योतैररूपोऽ- १५
भ्युपगम्यते । स च कैचिद्बोधरूपतया कचित्तु भासुररूपतया वा
न विरोधमध्यास्ते ।

१ तृतीयज्ञानलोकालसमवेतत्वेन । २ दृष्टान्तादि । ३ अन्यथा । ४ आश्रय ।
५ दृष्टान्त । ६ साधनादौ । ७ जर्मेज्ञाने । ८ तृतीयेन द्वितीयस्याग्रहणे द्वितीयेन
प्रथमस्याग्रहणे । ९ प्रतिपत्तुः । १० किञ्च । ११ धर्मिज्ञानतृतीयज्ञानं । १२ एका-
त्मनि । १३ तृतीयं चतुर्थं । १४ ज्ञानान्तरेणैव वैचं ज्ञानमिति । १५ द्वितीयविकल्पः ।
१६ ग्राहकत्व । १७ धर्मिज्ञान । १८ ता । १९ हेतोरसिद्धिः । २० द्वितीयेऽ-
नुमाने । २१ ईश्वरज्ञानेन सुप्तसवेदनेन ज्ञानेकात्मः धर्म्यसिद्धिः । २२ परेण ।
२३ मटादिज्ञान । २४ ज्ञानं स्वरूपप्रकाशकमवैप्रकाशकत्वाप्रदीपवत् । २५ प्रदीपे
बोधरूपत्वे ज्ञाने भासुररूपसम्बन्धित्वे सति । २६ ज्ञाने भासुररूपसम्बन्धित्वं विचते
चेत् । २७ प्रकटन । २८ जैनैः । २९ ज्ञाने ।

१ “नचादृष्टवशादनवस्थानिदृष्टिः ; स्वसंविदितज्ञानाभ्युपगमेनापि अनवस्थानिदृष्टेः
संभवाद, अन्यथा कार्येऽनुपपद्यमाने अदृष्टपरिकल्पनाया उपपत्तेः । स्वसवेदनेऽपि
अदृष्टस्य शक्तिप्रज्ञाभावात् ।” सम्मति० टी० पृ० ४७९ ।

२ “यदि प्रकाशकत्वं बोधरूपत्वं विवक्षितं तदा साधनविकल्पमुदाहर्यम्, प्रदीपे
बोधरूपत्वस्यासंभवाद । अथ प्रकाशकत्वं भासुररूपसम्बन्धित्वं तद् विज्ञाने नास्ति ।”

प्रश्न० पृ० ५२९ ।

३ “यतः अवैप्रकाशकत्वमर्थोत्पत्तव्यमुच्यते, तच्च क्वचिद्बोधरूपतया क्वचिद्भा-
सरूपतया वा न विरोधमध्यास्ते ।” न्यायकुमु० पृ० १८९ । सा० रत्ना० पृ० २११ ।

ननु 'यिनात्मना ज्ञानमात्मानं प्रकाशयति येन चार्थे ती चेत-
तोऽभिज्ञौ; तर्हि तौवेव न ज्ञानं तस्य तत्रानुप्रवेशाच्चतत्स्वरूपवत्,
ज्ञानमेव वा तयोस्तत्रानुप्रवेशात्, तथा च कथं तस्य स्वपर-
प्रकाशनशक्तिद्वयात्मकत्वम्? मिश्रौ चेत्सर्वविदितौ, स्वाश्रय-
५ ज्ञानविदितौ वा । प्रथमपक्षे स्वसंविदितज्ञानत्रयप्रसङ्गस्तत्रापि
प्रत्येकं स्वपरप्रकाशस्वभावद्वयात्मकत्वे र्स् एव पर्यनुयोगोऽन-
वस्था च । द्वितीयपक्षेऽपि स्वपरप्रकाशहेतुभूतयोस्तयोर्यदि ज्ञानं
तथाविधेन स्वभावद्वयेन प्रकाशकं तर्ह्यनवस्था । तदप्रकाशकत्वे
प्रमाणत्वायोगोस्तयोर्वा तैस्वभावत्वविरोध इति' एकान्तैर्वादिना-
१० मुपलम्भो नास्मीकम्; जैत्यन्तैरत्वात्स्वभावतद्वतोर्मेदामेदं प्रत्य-
नेकान्तात् । जैनात्मना हि स्वभावतद्वतोरमेदः, स्वपरप्रकाश-
स्वभावमात्मना च मेदः इति ज्ञानमेवामेदोऽतो मिश्रस्य जैनात्मिनोऽ-
प्रतीतिः । स्वपरप्रकाशस्वभावे च मेदस्तर्ह्यतिरिक्तयोस्तत्प्रती-
यमानत्वादित्युक्तदोषानवकाशः । कल्पितयोस्तु मेदामेदैकान्तै-
१५ योस्तद्वृषणप्रवृत्तौ सर्वत्र प्रवृत्तिप्रसङ्गात् न कस्यचिदिष्टतत्त्व-
व्यवस्था स्यात् । स्वपरप्रकाशस्वभावौ च प्रमाणस्य तत्प्रका-
शनसामर्थ्यमेव, तद्रूपतया चैस्य परोक्षता तत्प्रकाशनलक्षण-

१ स्वभावेन । २ भवतः । ३ तौ । ४ ज्ञानात् । ५ द्वौ स्वभावौ ज्ञानं च ।
६ प्रत्येकं स्वपरप्रकाशनस्वभावौ मिश्रानभिज्ञौ वा । ७ अभिज्ञपक्षे प्राशुक्तमेव दूषण
मिश्रपक्षे स्वसंविदितौ स्वाश्रयज्ञानविदितौ चेत्यदि । ८ भावयोः । ९ मिश्रेण ।
१ स्वभावद्वयप्रकाशनात् । १० ज्ञानस्य । ११ ज्ञानस्य । १२ ज्ञानं । १३ वा ।
१४ परेषां भवताम् । १५ जैनानाम् । १६ प्रकाशान्तरत्वात् । १७ क्वचित्
मेदामेदरूपत्वात् । १८ असम्यक्तत्वात् । १९ अनियमात् । २० स्वरूपेण ।
२१ ईदमेकः । २२ वा हिः । २३ ज्ञानस्य । २४ ता । २५ प्रा । २६ इति ।
२७ ज्ञानरूपस्वभावरूपामेदायां । २८ स्वभावतद्वतोः । २९ स्वपरप्रकाशनस्वभाव-
मेदामेदपक्षयोः । ३० भवत्पक्षे मया योगेन । ३१ शुद्धात्मनोरमेदो मत्तादेवमादिना
कथितस्तत्रामेदे त्वया दूषणमुद्गाध्यते मेदप्रतिभासो न सादेकात्मनि सौमतेन मेदः
कथितस्तत्र मेदे त्वया दूषणमुद्गाध्यते अनुसन्धानं न सादिति । तयामि मेदामेद-
पक्षदूषणं स्यात् । कथं त्वया प्रत्ययुपयोगोर्मेदोऽभ्युपगतः आत्मन्यमेदस्तत्पक्षेति परेणो-
द्गाध्यमानं दूषणं प्रसज्येत । ३२ वस्तुनि । ३३ कारकौ न आपकौ द्वाभ्याम् ।
३४ ज्ञानस्य ।

१ "युद्गाध्यदुर्कं येनैवात्मना ज्ञानमात्मानं प्रकाशयति तेनैवार्थ इत्यादि;
सदसमीक्षिताभिधानम्; स्वभावतद्वतोः मेदामेदं प्रत्यनेकान्तात् ।"

न्यायकुमु० पृ० १८९ । सा० रत्ना० पृ० २३९ । (तत्त्वार्थको० पृ० १२५)

कार्यानुमेयत्वाच्चेयोः । सकलभावानां सामर्थ्यस्य कार्यानुमेयतया निखिलवादिमिरभ्युपगमात् । अर्वागंद्वां चान्तर्बहिर्वाथौ नैकान्ततः प्रत्यक्ष इत्यत्राखिलवादिनामविप्रतिपत्तिरेवेत्युक्तदोषानवकाशतया प्रमाणस्य प्रत्यक्षताप्रसिद्धेरलं विवादेन । अमुमेवार्थं समर्थयमानः कोवेत्यादिना प्रकरणार्थमुपसंहरति । ५

को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छंस्तदेव
तथा नेच्छेत् ॥ ११ ॥

प्रदीपवत् ॥ १२ ॥

को वा लो (लौ) किकः परीक्षको वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छंस्तदेव प्रमाणमेव तथा प्रत्यक्षप्रकारेण नेच्छेत् ! १० अपि तु प्रतीतिं प्रमाणयन्निच्छेदेव । अत्रैवार्थं परीक्षकेतरजनप्रसिद्धत्वात् प्रदीपं दृष्टान्तीकरोति ? ययैव हि प्रदीपस्य स्वप्रकाशता प्रत्यक्षता वा विना तत्प्रतिभासिनोर्यस्य प्रकाशकता प्रत्यक्षता वा नोपपद्यते । तथैव प्रमाणस्यापि प्रत्यक्षतामन्तरेण तत्प्रतिभासिनोर्यस्य प्रत्यक्षता न स्यादित्युक्तं प्राक् प्रबन्धेनेत्युपरम्यते । १५ तदेवं सैकलप्रमाणव्यक्तिव्यापि साकल्येनाप्रमोणव्यक्तिर्भ्यो व्यावृत्तं प्रमोणप्रसिद्धं सापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणलक्षणम् । नैकलक्षणप्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतो वा स्यादित्याशङ्क्य प्रतिविधेये ।

तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ॥ १३ ॥

२०

तस्य सापूर्वार्थत्वादिलक्षणलक्षितप्रमाणस्य प्रामाण्यमुत्पत्तौ परत एव । ज्ञातौ सैकार्यं च स्वतः परतश्च अभ्यासानभ्यासापेक्षया ।

१ स्वप्रप्रकाशरूपयोः । २ किञ्चिज्ज्ञानम् । ३ व्यक्त्यपेक्षया प्रत्यक्षः कृत्तव्यपेक्षया परोक्षः । ४ ज्ञानं स्वप्रकाशकमर्थप्रकाशकत्वात् । ५ स्वप्रप्रकाशकसमर्थप्रकाशकत्वात् । ६ भीमासिकेन ज्ञानपरोक्षत्वरूपो यौगेन स्वात्मनि क्रियाऽभावप्रत्यक्षः । ७ स्वसंविदित । ८ ज्ञानम् । ९ अध्यक्षविषयम् । १० प्रदीपवत् । ११ प्रदीपप्रकाशः । १२ दूषणम् । १३ असाभिर्नैः । १४ प्रत्यक्षपरोक्षः । १५ गन्त्यात्मापरिहारः । १६ सन्निकर्षादि । १७ अतिव्याप्तिपरिहारः । १८ असम्भनपरिहारः । १९ सापूर्वत्वादि । २० अविस्मृतिवत् । २१ ज्ञेयः । २२ अर्थान्वयिचारित्वम् । २३ प्रत्यक्षपरिच्छिन्नलक्षणम् ।

१ “तत्प्रामाण्यप्रमाणत्वं निश्चितं स्वत एव नः ।

अनभ्यासे तु परतः इत्याहुः केचिदज्ञाता ॥

ये तु सकलप्रमाणानां स्वतः प्रामाण्यं मन्यन्ते तेऽत्र प्रष्टव्याः—
 किमुत्पत्तौ, ज्ञतौ, स्वकार्ये वा स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यं
 प्रार्थ्यते प्रकारान्तरासम्भवात्? यद्युत्पत्तौ, तत्रापि 'स्वतः
 प्रामाण्यमुत्पद्यते' इति कोर्यः? किं कारणमन्तरेणोत्पद्यते, स्वसा-
 ५ मग्रीतो वा, विज्ञानमात्रसामग्रीतो वा गत्यन्तरमावात्। प्रथम-
 पक्षे-वैशकालनियमेन प्रतिनियतप्रमाणाधारतया प्रामाण्य-
 प्रवृत्तिविरोधः स्वतो जायमानस्यैवरूपत्वात्, अन्यथा तदयोगात्।
 द्वितीयपक्षे तु सिद्धसाध्यता, स्वसामग्रीतः सकलमावानामुत्पत्त्य-
 भ्युपगमात्। तृतीयपक्षोप्यविचारितरमणीयः, विशिष्टैकार्यस्या-
 १० विशिष्टकारणप्रभवत्वायोगात्। तथा हि-प्रामाण्यं विशिष्टकारण-
 प्रभवं विशिष्टैकार्यत्वादप्रामाण्यवत्। यथैव ह्यप्रामाण्यलक्षणं
 विशिष्टं कार्यं काचकामलादिदोषलक्षणविशिष्टेभ्यश्चक्षुरादिभ्यो
 जायते तथा प्रामाण्यमपि गुणविशेषणविशिष्टेभ्यो विशेषाभावात्।

१ माहः । २ समर्थेत् । ३ आत्मवाचक आत्मीयवाचकश्च । ४ आत्मवाचक-
 पक्षे । ५ आत्मीयवाचकपक्षे । ६ आत्मीयपक्षे । ७ वटादि । ८ तदविरोधे ।
 ९ कारणमन्तरेण प्रवृत्तेरयोगात् । १० प्रामाण्यस्य । ११ ज्ञानेन व्यभिचारः ।
 १२ प्रामाण्यं न विज्ञानसामग्रीन्यं विज्ञानान्यत्वे सति कार्यत्वात् । प्रामाण्यविज्ञाने
 निवृत्तसामग्रीन्ये निवृत्तकार्यत्वाद् घटपटादिवत् । १३ विशिष्टकार्यत्वस्य ।

तच्च स्वाह्लादिनामेन स्वार्थनिश्चयनात् स्थितम् ।

ननु स्वनिश्चयोन्मुक्ततिः शेषज्ञानवादिनान् ॥” तत्त्वार्थको० पृ० १७७ ।

“इति स्थितमेतत्—प्रमाणादिष्टसंतिष्ठिः अन्यथाऽतिप्रसङ्गतः । प्रामाण्यं तु स्वतः
 सिद्धमभ्यासात्परतोऽन्यथा ॥” प्रमाणप० पृ० ६३ ।

“आन्यासिकं यथा ज्ञानं प्रमाणं गम्यते स्वतः ।

मिथ्याज्ञानं तथा किञ्चिदप्रमाणं स्वतः स्थितम् ॥”

तत्त्वसं० कारि० ३१०० ।

“नहि बौद्धैः पर्णा चतुर्णामेकमोऽपि पक्षोऽनीष्टः, अनिवचनपक्षेऽप्येष्टत्वात् ।
 तथाहि—उभयमन्येतत् किञ्चिद् स्वतः किञ्चिद् परत इति..... ।”

तत्त्वसं० पं० पृ० ८११ ।

१ “वर्तिक स्वतो जायते, स्वतो वा जायते, स्वतो वा व्याप्तिवते ?”

प्रश्न० कन्दली पृ० २१८ ।

२ “तत्रापि स्वतः कारणमन्तरेण आत्मनैव प्रामाण्यमुत्पद्यते इत्यर्थः स्यात्,
 आत्मनो वा सकाशात्, आत्मीयायाः सामग्रीतो वा ?” न्यायकुसु० पृ० १९९ ।

३ “प्रमा ज्ञानहेत्वतिरिक्तहेत्वपीना कार्यत्वे सति तद्विषयत्वाद् अप्रमावत् ।”

प्रश्न० किरणा० पृ० ३१८ ।

ज्ञातव्यनभ्यासदशायां न प्रामाण्यं स्वतोऽवतिष्ठते, सन्देह-
विपर्ययाक्रान्तत्वात्तद्वदेव । अभ्यासदशायां तूभयमपि स्वतः ।
नापि प्रवृत्तिलक्षणे स्वकार्यं तत्स्वतोऽवतिष्ठते, स्वग्रहेणसापेक्ष-
त्वाद्प्रामाण्यवदेव । तद्धि ज्ञातं सन्नित्वृत्तिलक्षणस्वकार्यकारि
नैवेत्यथा । ५

नैतु गुणविशेषणविशिष्टेभ्यः इत्यु(त्यु)क्तम्; तेषां प्रमाणतोऽ-
नुपलम्भेनासत्त्वात् । न खलु प्रत्यक्षं तान्प्रत्येतुं समर्थम्; अती-
न्द्रियेन्द्रियाप्रतिपत्तौ तद्वृणानां प्रतीतिविरोधात् । नैप्यनुमानम्;
तस्य प्रतिबन्धबलेनोत्पत्त्यभ्युपगमात् । प्रतिबन्धश्चेन्द्रियगुणैः
सह लिङ्गस्य प्रत्यक्षेण गृह्येत, अनुमानेन वा । न तावत्प्रत्यक्षेण, १०
गुणाग्रहणे तत्सम्बन्धग्रहणविरोधात् । नैप्यनुमानेन, अस्यापि
गृहीतसम्बन्धलिङ्गप्रभवत्वात् । तत्राप्यनुमानैर्नान्तरेण सम्बन्ध-
ग्रहणेऽनवस्था । प्रथमानुमानेनान्योन्याश्रयः । अप्रतिपन्नसम्ब-
न्धप्रभवं चानुमानं न प्रमाणमतिप्रसङ्गात् ।

किञ्च, सैभावहेतोः, कार्यात्, अनुपलब्धेर्वा तत्प्रभवेत् ? न १५
तावत्सर्मावात्, तस्य प्रत्यक्षगृहीतेर्न व्यवहारमात्रप्रवर्तनफल-
त्वाद्दृष्टादौ शिंशपात्वादिवत् । न चात्यक्षाऽक्षाश्रितगुणलिङ्गस-
म्बन्धः प्रत्यक्षतः प्रतिपन्नः । कार्यहेतोश्च सिद्धे कार्यकारणभावे का-
रणप्रतिपत्तिहेतुत्वम्, तत्सिद्धिश्चाप्यैक्षानुपलम्भप्रमाणसम्पाद्या ।
न चेन्द्रियगुणाश्रितसम्बन्धग्रहकत्वेनार्थक्षप्रवृत्तिः, येन तत्का- २०

१ सत्यसत्यमिति । २ प्रामाण्यमप्रामाण्यम् । ३ अभ्यासदशायां विषयं प्रति
गमनम् । ४ सत्यम् । ५ स्वसं ज्ञानेन । ६ प्रामाण्यम् । ७ अभेद्यमिच्छादित्वं ।
८ असत्यमिदमिति । ९ विषयं प्रत्यगमनम् । १० अज्ञातम् । ११ अभ्यासदशायां
स्वतः । १२ नीमासकः । १३ चक्षुरादिभ्यः । १४ अपरिज्ञाने । १५ प्रामाण्यं
विशयकारणातिरेककारणप्रभवं विज्ञानान्तरत्वे सति कार्यत्वाद्प्रामाण्यवत् । १६ अवि-
नाभावः । १७ प्रामाण्यम् । १८ लिङ्गम् । १९ प्रामाण्यं गुणनियतं तदन्वयव्यति-
रेकानुविधायित्वात् । २० द्वितीयानुमाने । २१ तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वं
गुणसङ्क्रान्तिनाभावि तस्मिन् (गुणे) सत्त्वोत्पन्नमानत्वात् । २२ अगृहीतम् । २३ अनु-
मानाभासम् । २४ तत्पुत्रत्वादेरुत्पन्नस्य प्रामाण्यप्रसङ्गात् । २५ वृक्षोर्न शिंशपा-
त्वात् । २६ हेतोः । २७ वृक्षोर्न शिंशपात्वात् । २८ ता । २९ प्रामाण्यं
(कार्यं) साध्येन (गुणेन) सम्बन्धि अनुमानकार्यत्वाद्भवत् । ३० हेतुः कार्यम् ।
३१ सम्बन्धः कारणम् । ३२ अन्वयव्यतिरेकान्तरम् । ३३ असत्यसङ्क्रान्तिः ।
३४ कार्यकारणभावः । ३५ ता ।

1 “नहि चक्षुरादिषु गुणा नाम केन्द्रियलभ्यन्ते ।”

नी० खो० न्यायरत्ना० ५० ५९ ।

यत्वेन कस्यचिद्विज्ञेयस्याप्यव्यक्तैः प्रतिपत्तिः स्यात् । अनुपलब्धे-
स्त्वेवंविधे विषये प्रवृत्तिरेव न सम्भवत्यभावमात्रसाधकत्वेनास्याः
व्यापारोपणमात् ।

न चोच्ये लिङ्गमस्ति । यथार्थोपलब्धिरस्तीत्यप्यसङ्गतम् । यतो
५ यथार्थत्वायर्थार्थत्वे विहाय यदि कार्यस्योत्पत्त्याख्यस्य स्वरूपं
निश्चितं भवेत्तदा यथार्थत्वलक्षणः कार्यविशेषः पूर्वसात्का-
रणकलापादनुत्पद्यमानो गुणोत्पत्तौ कारणान्तरं परिकल्प-
येत् । यदा तु यथार्थोपलब्धिः स्वयो(स्वो)त्पादककारणकलापा-
नुमापिका तदा कथं तद्वैतिरिक्तगुणसद्भावः ? अयथार्थत्वं तूपल-
१० ष्येर्विशेषः पूर्वसात्कारणसमूहादनुत्पद्यमानः स्वोत्पत्तौ सामान्य-
न्तरं परिकल्पयतीति परतोऽप्रामाण्यं तस्योत्पत्तौ दोषापेक्षत्वाद् ।

न चेन्द्रिये नैर्मल्यादिरेव गुणः, नैर्मल्यं हि तत्स्वरूपम्, न तु
स्वरूपाधिकौ गुणः तथा व्यपदेशस्तु दोषाभावनिवन्धनः ।
तथाहि-कामलादिदोषासत्त्वाभिर्मलमिन्द्रियं तत्सत्त्वे सदोषम् ।
१५ मनसोपि निद्राद्यभावः स्वरूपं तत्सद्भावस्तु दोषः । विषयस्यापि
निर्भलत्वादित्यरूपं चलत्वादित्यु दोषः । प्रमातुरपि क्षुधाद्यभावः
स्वरूपं तत्सद्भावस्तु दोषः ।

न चैतद्वैतैवम्-‘विज्ञानजनकानां स्वरूपमयथार्थोपलब्ध्या
समाधिगतम् यथार्थत्वं तु पूर्वसात्कारणकलापादनुत्पद्यमानं
२० गुणोत्पत्तौ सामान्यन्तरं परिकल्पयति’ इति; वैतोऽत्र लोकः प्रमा-
णम् । न चात्र मिथ्याज्ञानात्कारणस्वरूपमात्रमेवानुमिनोति किन्तु
सैन्यग्नानात् ।

किञ्च, अर्थतयाभावप्रकाशनरूपं प्रामाण्यम्, तस्य चक्षु-

१ प्रामाण्यस्य । २ सम्बन्धः । ३ ता । ४ किञ्च । ५ ज्ञानशुभे साधने ।
६ नयने गुणाः सन्ति यथावोपलब्धेः । ७ विशेषरूपे । ८ कार्यमात्रस्य ।
९ उपलब्धसामान्यस्य । १० सत् । ११ कर्ता । १२ द्युर्लभः । १३ अन्यत् ।
१४ इन्द्रिय । १५ इन्द्रिय । १६ इन्द्रिय । १७ कः । १८ निर्भलं चक्षुरिति ।
१९ इन्द्रियस्वरूपम् । २० पटादिपदार्थस्य । २१ भासन्नत्वादि । २२ नयनमात्रम् ।
२३ ज्ञेयः । २४ चक्षुरादीनां । २५ लिङ्गेन । २६ यथावोपलब्धिजनकवि-
द्विधात् । २७ विज्ञानसामान्यशुभात् । २८ चक्षुरादि । २९ प्रामाण्यं विज्ञानकारण-
(चक्षुरादि) प्रमदं विज्ञानसामान्यत्वाद् विज्ञानस्वरूपम् । ३० प्रमाणस्य कार्यविश-
ेषाभावप्रकाशनरूपं प्रामाण्यम् ।

१ “नैर्मल्यं गुण इति चेत् ; नन्वेवं दोषात्मनो गुणः ।”

गी० को० न्यायसूत्रा ५० ५१ ।

रादिसामग्रीतो विज्ञानोत्पत्तावप्यनुत्पत्त्युपगमे विज्ञानस्य स्वरूपं वैकव्यम् । न च तद्रूपव्यतिरेकेण तस्य स्वरूपं पश्यामो येन तदुत्पत्तावप्यनुत्पन्नमुत्तरकालं तत्रैवोत्पत्तिमदभ्युपगम्यते प्रामाण्यं मिताविव चित्रम् । विज्ञानोत्पत्तावप्यनुत्पत्तौ व्यतिरिक्तसामग्रीतश्चोत्पत्त्यभ्युपगमे विद्वद्वर्माध्यासात्कारणमेवाह ५ तयोर्मदः स्यात् ।

किञ्च, अर्थतथात्वपरिच्छेदरूपा शक्तिः प्रामाण्यम्, शक्त्यश्च भावानां सत(स्वत) एवोत्पद्यन्ते नोत्पादककारणाधीनाः । तदुक्तम्—

“स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गम्यताम् । १०

न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४७]

न चैतत्सत्कार्यदर्शनसमाधयणादभिधीयते; किन्तु यः कार्यगतो धर्मः कारणे समस्ति स कार्यवत्त एवोदयमासादयति यथा मृत्पिण्डे विद्यमाना रूपादयो घटेपि मृत्पिण्डादुपजायमाने १५ मृत्पिण्डरूपादिद्वारेणोपजायन्ते । ये तु कार्यधर्माः कारणेष्वविद्यमाना न ते ततः कार्यवत् जायन्ते किन्तु स्वत एव, यथा तस्यैवोदकाहरणशक्तिः । एवं विज्ञानेऽप्यर्थतथात्वपरिच्छेदशक्तिश्चक्षुरादिव्विद्यमाना तेभ्यो नोदयमासादयति किन्तु स्वत एवाविर्भवति । उक्तं च— २०

“आत्मलामे हि भावानां कारणापेक्षिता भवेत् ।

लब्धात्मनां स्वकार्येषु प्रवृत्तिः स्वयमेव तु ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४८]

यथा—मृत्पिण्डदण्डचक्रादि घटो जन्मन्यपेक्षते ।

उदकाहरणे त्वस्य तदपेक्षा न विद्यते” ॥ [] २५

१ प्रामाण्यस्य । २ जनैः । ३ बर्गं भीमासकाः । ४ विज्ञानस्य । ५ विज्ञाने ।

६ विविधज्ञाने चित्रं नोत्पद्यते विनष्टे तु भवतीति । ७ प्रामाण्यस्य । ८ प्रामाण्यस्य ।

९ विज्ञानस्य कारणमिन्द्रियं प्रामाण्यस्य गुण इति । १० उत्पत्त्यनुत्पत्तिचक्षण ।

११ इन्द्रियगुणी । १२ प्रमाणप्रामाण्ययोः । १३ प्रमाणप्रामाण्ये भिन्ने । १४ इति

परस्मानिष्टापत्तिः परेणामेदमित्युपेयमात्रं । १५ प्रमाणस्य भावशक्तिः । १६ विज्ञान-

कारणातिरिक्तकारणाधीनो गुणः । १७ भवति । १८ मिश्रीयताम् । १९ कारणे ।

२० स्वतः । २१ तस्यैवोदकाहरणशक्तिः । २२ अपरादेत्यम् ।

२३ तदपेक्षा । २४ तदपेक्षा । २५ चक्षुरादिव्विद्यमानां कारणमेवेति । २६ कार्याणां ।

१. स्वतः हि भावाः स्वात्मलामात्रैव कारणमपेक्षन्ते । घटो हि मृत्पिण्डादिकं स्वत-
मन्येव जपेक्षते, नोदकाहरणेऽपि । तथा ज्ञानमपि स्वोत्पत्तौ गुणवदितरदा कारणम-

चक्षुर्गादिविज्ञानकारणादुपजायमानत्वात्तस्य परतोऽभिधाने तु सिद्धसाध्यता । अनुमानौदिवुद्धिस्तु गृहीताविनामौवादिलिङ्गदे-
रुपजायमाना प्रमाणभूतैवोपजायतेऽतोऽत्रापि तेषां न व्यापारः ।
तन्नोत्पत्तौ तद्व्याप्यैक्षम् ।

- ५ नापि ह्यतौ, तद्वि तत्र किं कारणगुणानपेक्षते, संवादप्रत्ययं वा ?
प्रथमपक्षोऽयुक्तः, गुणानां प्रत्यक्षादिप्रमाणाविषयत्वेन प्रागेवा-
सत्त्वप्रतिपादनात् । संवादज्ञानापेक्षाप्ययुक्ता, तत्तल्लु सैमा-
नजातीयम्, भिन्नजातीयं वा ? प्रथमपक्षे किमेकसन्तानप्रभवम्,
भिन्नसन्तानप्रभवं वा ? न तावद्विन्नसन्तानप्रभवम्, देवैदत्तघ-
१० टज्ञाने यद्वदत्तघटज्ञानस्यापि संवादकत्वप्रसङ्गात् । एकसन्ता-
नप्रभवमप्यभिन्नविषयम्, भिन्नविषयं वा ? प्रथमविकल्पे सर्वै-
यसंवादकभावाभावोऽविशेषात् । अभिन्नविषयत्वे हि यथोत्तरं
पूर्वस्य संवादकं तथेदमप्यस्य किञ्च स्यात् ? कथं चैतस्य प्रमाण-
त्वनिश्चयः ? तदुत्तरकालभाविनोऽन्यैसात् तैथाविधादेवेति
१५ चेत्, तर्हि तस्याप्यन्यस्मात्तथाविधादेवेत्यनवस्था । प्रथमप्र-
माणोक्तस्य प्रामाण्यनिश्चयेऽन्योन्याश्रयः । भिन्नविषयमित्यपि
वार्त्तम्, शुक्तिशकले रजतज्ञानं प्रति उत्तरकालभाविशुक्तिका-
शकलज्ञानस्य प्रामाण्यव्यवस्थापकत्वप्रसङ्गात् ।

- नैपि भिन्नजातीयम्, तद्वि किमर्थं किंयाज्ञानम्, उतैन्यत् ? न
२० तावदन्यत्, घटज्ञानात्पटज्ञाने प्रामाण्यनिश्चयप्रसङ्गात् । नाप्यर्थ-
क्रियाज्ञानम्, प्रामाण्यनिश्चयाभावे प्रवृत्त्याभावेनार्थक्रियाज्ञाना-

१ प्रामाण्यस्य । २ आगमः । ३ सङ्केतादि । ४ शब्दः । ५ गुणानां ।
६ प्रामाण्यं । ७ गुणः । ८ प्रामाण्यं । ९ प्रामाण्यस्य । १० अवैशानेन समानं
सदृशा जातिविशिष्टो यस्य तत्समानजातीयत्वं । ११ पुरुषः । १२ अन्यथा ।
१३ भिन्नसन्तानप्रभवत्वाविशेषात् । १४ एकस्य जलज्ञानं जलज्ञानमिति । १५ अभि-
न्नविषयस्य । १६ संवादकं । १७ किञ्च । १८ उत्तरज्ञानस्य । १९ द्वितीयज्ञानात् ।
२० ज्ञानात् । २१ अभिन्नविषयात् । २२ प्रथमप्रमाणादुत्तरस्य निश्चयः उत्तर-
ज्ञानात्प्रथमनिश्चय इति । २३ ज्ञानात् । २४ पूर्वज्ञातं । २५ सदृशविषयत्वेन
समानजातीयत्वे सति भिन्नविषयत्वस्याविशेषात् । २६ संवादज्ञानं । २७ द्वितीय-
निकल्पं प्रत्याह परः । २८ ज्ञानावगाहनादि । २९ ता । ३० मरीचिकावके
जलज्ञानात्प्रज्ञानमरीचिकाज्ञानम् । ३१ अन्यथा । ३२ आद्यज्ञानस्य ।

वेक्ष्यां नाम स्वार्थे तु निश्चयनिश्चये अनपेक्षमेव ।”

गी० श्लो० न्यायरक्षा० पृ० ६० ।

कारिकेयं तत्त्वतःप्रदे (पृ० ७५७) पूर्वपक्षरूपेण वर्तते ।

घटनात् । चककप्रसङ्गश्च । कथं चार्थक्रियाज्ञानस्य तैश्चिद्वयः ?
अन्यार्थक्रियाज्ञानाच्चेदनवस्था । प्रथमप्रमाणाच्चेदन्योन्याश्रयः ।
अर्थक्रियाज्ञानस्य स्वतःप्रामाण्यनिश्चयोपगमे चोद्यस्य तथाभावे
किङ्कृतः प्रद्वेषः ? तदुक्तम्—

“यथैव प्रथमज्ञानं तैत्संवादमपेक्षते ।

५

संवादेनापि संवादः परो सृग्यस्तथैव हि ॥ १ ॥ []

कस्यचित्तु यदीष्येत स्वत एव प्रमाणता ।

प्रथमस्य तथाभावे प्रद्वेषः केन हेतुना ॥ २ ॥

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७६]

संवादस्याथ पूर्वैण संवादित्वात्प्रमाणता ।

१०

अन्योन्याश्रयभावेन प्रामाण्यं न प्रकल्पते ॥ ३ ॥ [] इति ।

अर्थक्रियाज्ञानस्यार्थाभावेऽदृष्टत्वाच्च स्वप्रामाण्यनिश्चयेऽन्यापेक्षा
सौधनज्ञानस्यै त्वर्थार्थमैविषि इष्टत्वात्तत्र तदपेक्षा युक्ता, इत्यप्य-
सङ्गतम्; तस्याप्यर्थमन्तरेण स्वप्रदशायां दर्शनात् । फलावातिरूप-
त्वात्तस्य तत्र नान्यापेक्षा सौधननिर्मासिज्ञानस्य तु फलावाप्तिः-
रूपत्वाभावात्तदपेक्षा, इत्यप्यनुत्तरम्; फलावाप्तिरूपत्वस्याप्रयोज-
कत्वात् । यथैव हि सौधननिर्मासिनो ज्ञानस्यान्यत्र व्यभिचारदर्श-
नात्सत्यासत्यविचारणायां प्रेक्षावतां प्रवृत्तिस्तथा तैस्यापि विशेष-
वर्माभावात् ।

किञ्च, समानकालमर्थक्रियाज्ञानं पूर्वज्ञानप्रामाण्यव्यवस्थाप-
कम्, मित्रकालं वा ? यद्येककालम्, पूर्वज्ञानविषयम्, तदविषयं

१ अर्थक्रियाज्ञानोत्पत्तौ पूर्वज्ञानस्य प्रामाण्यं पूर्वज्ञानप्रामाण्ये च प्रवृत्तिः प्रवृत्तौ
चार्थक्रियाज्ञानोत्पत्तिरिति । २ किञ्च । ३ प्रामाण्यं । ४ जैवेः । ५ ज्ञानस्य ।
६ स्वविषये । ७ स्वविषये । ८ द्वितीयज्ञानस्य । ९ ज्ञानस्य । १० आद्यज्ञानेन ।
११ न घटते । १२ जैनः । १३ अप्रतीतिः । १४ जलज्ञानस्य । १५ जललक्षण ।
१६ गरीविषयके । १७ साधनज्ञानप्रामाण्ये । १८ ज्ञानपानादिषु ।
१९ स्वप्रामाण्यनिश्चये । २० प्रथमवृत्तीयज्ञान । २१ कानादिक्रियायाः साधनं अलादि
तस्मिन् । २२ युक्तम् । २३ ज्ञानानपेक्षत्वं प्रति । २४ अर्थक्रियायाः । २५ जल ।
२६ गरीविषया । २७ ज्ञानप्रदशायां सुप्तावस्थायां च सत्यासत्यत्वस्य । २८ स्वप्रद-
शायां व्यभिचारदर्शनस्य । २९ सवादकं । ३० वसः । ३१ वसः । ३२ वसः ।

वा ? । न तावत्तदविषयम् ; चञ्चुरादिज्ञाने ज्ञानान्तरस्याप्रति-
भासनात्, प्रतिनियतरूपादिविषयत्वात्तस्य । तदविषयत्वे च
कथं तज्ज्ञानप्रामाण्यनिश्चायकत्वं तदग्रहे तैद्धर्माणां ग्रहणविरो-
धात् । भिन्नकालमित्यप्युक्तम् ; पूर्वज्ञानस्य क्षणिकत्वेन नाशे
५ तद्ग्राहकत्वेनोत्तरज्ञानस्य तत्प्रामाण्यनिश्चायकत्वायोगात् ।
सर्वप्राणभृतां प्रामाण्ये सन्देहविपर्ययाक्रान्तत्वासिद्धेर्ध्वं । समु-
त्पन्ने खलु विज्ञाने 'अयमित्यमेवार्थः' इति निश्चयेन न सन्देहो
विपर्ययो वा । तदुक्तम्—

“प्रमोषं ग्रहणात्पूर्वं स्वरूपेणैव संस्थितम् ।

१० निरपेक्षं स्वैकार्यं च गृह्यते प्रत्ययान्तरैः, ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ८३] इति

प्रमाणाप्रमाणयोरुत्पत्तौ तुल्यरूपत्वाच्च संवादविसंवादावन्त-
रेण तयोः प्रामाण्याप्रामाण्यनिश्चय इति च मनोरथमात्रम्, अग्र-
माणे बाधककारणदोषज्ञानयोरवश्यंभावित्वाद्प्रामाण्यनिश्चयः,
१५ प्रमाणे तु तयोरभावात्प्रामाण्यावसार्थः ।

१ स्वर्णरसनप्राणशोषः । २ द्वितीये ज्ञाने । ३ आद्यस्य जलज्ञानस्य । ४ रस-
गन्धस्पर्शशब्दः । ५ वसः । ६ नाशेन्द्रियजनितज्ञानस्य । ७ प्रामाण्यसत्त्वा-
धीनाय । ८ यदा ज्ञानश्रुत्यपत्ते तदा संशयादिरहितमेवोत्पद्यतेऽतः कथमपरापेक्षा ।
९ किञ्च । १० भवति । ११ प्रामाण्यं । १२ प्रामाण्यलक्षणस्य धर्मस्वाभाव-
न्यायान्तरमिप्रधानोऽयं निर्देशः । १३ परिच्छिन्नेः । १४ अर्थपरिच्छिन्नेप्रवृत्ति-
लक्षणे । १५ पुरुषैः । १६ संवादरूपैः । १७ सन्निकर्षरूपैः । १८ परतः ।
१९ निश्चयः । २० भवति ।

1 “अर्थान्यथात्वहेतुत्वदोषज्ञानादपोषते ॥ ५३ ॥

“दोषनिमित्तं हि ज्ञानस्यावधार्यत्वस्य, दोषान्वयव्यतिरेकश्रुतिविधानात् । जतो
दुष्टकारणजन्येन ज्ञानेन आत्मनः प्रामाण्यं विषयस्वार्थस्यातन्माश्रुतस्यापि तथालम्बनव-
त्तमपि अर्थान्यथात्वज्ञानेन दोषज्ञानेन बाधपोषते ।” मी० श्लो० न्यायरत्ना० पृ० ६९ ।

“यमेव स्वतः सर्वज्ञानानां प्रामाण्यम् ; अप्रामाण्यं तु परत एवेत्याश्रितं प्रत्य-
क्षेयम् ; तथाहि—विज्ञानं ज्ञायमानं यथाश्रुतवर्षयवमासपयति तथाश्रुतं यथावै इति
निश्चाययत्वेन न तु निश्चये ज्ञानान्तरमपेक्षणीयम्, तेन स्वत एव प्रामाण्यम् ।
अप्रामाण्यं तु अर्थस्यातथाभावनिश्चयनिरपेक्षं सत्तावयमपिदुष्टमकमिति परतोऽप्रा-
ण्यम् । अति च प्रमाणाप्रमाणसाधारणत्वे निश्चयस्य निश्चवानुसारेण पश्चादार्शकोप-
जायते ; सा परत एवेति परत एवाप्रामाण्यम् । न चापि सर्वमाशंका, किन्तु बाह्ये
व्यभिचारदर्शनेन तद्वद्वयं शङ्केति । नच सर्ववशे ज्ञाने व्यभिचारदर्शनमिति सर्वमा-
शंका ; सर्ववैवादाकाया परतोऽपि प्रामाण्यं न स्यात्, तस्यापि शङ्कास्पदत्वादिति ।”

समीक्षाप्राण्यपरि० पृ० ८ ।

यापि-तत्तुल्यरूपेऽन्यत्र तयोर्दर्शनात्तदौशङ्का; सापि त्रिचतुर-
ज्ञानपेक्षामात्राश्रित्येते । न च तदपेक्षायां स्वतः प्रामाण्यव्याघा-
तोऽनवस्था वा; संवादकज्ञानस्याप्रामाण्यव्यवच्छेदे एव व्यापारा-
दन्यज्ञानानपेक्षणाश्च । तदुक्तम्—

“दैवं त्रिचतुरज्ञानैर्जन्मनो नाधिका मेतिः ।

५

प्रार्थ्यते तावदेवैयं स्वतः प्रामाण्यमश्नुते ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६१]

यौऽप्यनुत्पद्यमानः संशयोऽबलादुत्पाद्यते सोऽप्यर्थक्रियार्थिनां
सर्वत्र प्रवृत्त्यादिव्यवहारोच्छेदकारित्वाच्च युक्तः । उक्तञ्च—

“आशङ्केतं हि यो मोहोदजातमपि बाधकम् ।

१०

स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत् ॥ १ ॥” []

१ अग्रमाणे । २ अग्रामाण्य । ३ प्रमाणे । ४ परिज्ञाने । ५ पञ्चमस्य
ज्ञानस्य । ६ सप्तम्योक्तप्रकारेण कथमाद्यज्ञानस्य द्वितीयादिसंवादज्ञानपेक्षितप्रकारेण ।
७ उत्पत्तेः । ८ का । ९ ज्ञानम् । १० वाञ्छते पुरुषेण । ११ प्राप्नोति ।
१२ यथाऽऽद्याद्यज्ञानं द्वितीयं द्वितीयं च तृतीयं तृतीयं च चतुर्थमपेक्षते । तथा
चतुर्थेनापि पञ्चममपेक्षणीयमित्यादिप्रकारेणानवस्था किमिति न स्यादित्युक्ते सत्याह ।
१३ विषये । १४ अज्ञानात् । १५ प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपेषु । १६ वतः ।

१ “ननु यथा बाधस्य द्वितीयेन दोषोऽनगतः तस्यापि तृतीयेन तथा तृतीयस्यापि
दोषाशङ्का भवत्येव, तथा सर्वदैवेति न कचिदाश्वासः स्वादत्त आह—‘दोषज्ञाने त्वनु-
त्पत्ते न शङ्क्या निष्प्रमाणता’ इति । दिक्षाज्जस्येन्द्रियमिषदोषा हि मिथ्यात्वहेतवो
लोकप्रसिद्धा यत्र नैव संभवति यथा जागर्याणामालोके स्वसेन्द्रियमनस्कस्य सप्रहित-
वदज्ञाने । तत्र नैव दोषाशङ्का, तदग्राबाध्याप्रामाण्याशङ्कापि नैव भवति । यथाविषेषु हि
अप्रामाण्यसंभवः तथाविषेणैव तदाशङ्का भवति, संभावितदोषेषु च तत्संभव इति
कथमन्यत्र शङ्क्यते ? नहि ज्ञानस्वभावेण संभवो युक्तः; संशयस्य साधारणवर्मादि-
निश्चयाधीनत्वात् । तदवश्यं कस्मिन्चिज्ज्ञानानि असन्दिग्धप्रामाण्यान्वेदोत्पद्यन्ते ।
तस्याश्च सर्वत्राशङ्का । यत्रापि दूरत्वादिदोषसम्भावप्रामाण्याशङ्का, यत्रापि प्रलोकादिग-
मनादिनाऽप्यन्तरपदार्थनिर्णयाच्चातिदूरगमनमिति । पूर्व च तृतीयज्ञाने दोषो यदि न
संभावितः तत्संवादपरिरेव निर्णयः । अथ नु संभावितः तत्संश्रित्यकरणप्रयत्नेन चतु-
र्थज्ञानावसानो निर्णय इति नाधिकज्ञानापेक्षा । तावतैव तृतीयेन चतुर्थेन वा द्वितीयस्य
तृतीयस्य वापि सति यस्यैवावस्य द्वितीयस्य वा प्रामाण्यं समर्थ्यते तस्य सामाविकं
प्रामाण्यमनपोहितं भवति । इतरथापवादोदप्रमाणमिति नानवस्था ।”

मी० श्लो० न्यायरत्ना० पु० ६४ ।

२ “उल्लेखेत् हि यो मोहोदजातमपि बाधकम् ।

स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत् ॥ २८७२ ॥ तत्त्वसं० (पूर्वपक्षे)

प्र० क० मा० १४

चोदनाजनिता तु बुद्धिरपौरुषेयत्वेन दोषरहिता चोदनावाक्या-
दुपजायमाना लिङ्गातोऽस्यक्षबुद्धिवत्त्वतः प्रमाणम् । तदुक्तम्—

“चोदनाजनिता बुद्धिः प्रमाणं दोषैवर्जितैः ।

कारणैर्जन्यमानत्वाल्लिङ्गातोऽस्यक्षबुद्धिवत् ॥ १ ॥”

५

[मी० खो० सू० २ खो० १८४]

तत्र ज्ञप्तौ पैरापेक्षा ।

नापि स्वकार्यैः तत्रापि हि किं तत्संवादप्रत्ययमपेक्षते, कारण-
गुणान् वा ? प्रथमपक्षः चक्रकप्रसङ्गः—प्रमाणस्य हि स्वकार्ये
प्रवृत्तौ सत्यामर्थक्रियार्थिनां प्रवृत्तिः, तस्यां चार्थक्रियाज्ञानोत्पत्ति-
१० लक्षणः संवादः तत्संवादे च संवादमपेक्ष्य प्रमाणं स्वकार्येऽर्थप-
रिच्छेदलक्षणे प्रवर्त्तते । भाविनं संवादप्रत्ययमपेक्ष्य तत्तत्र
प्रवर्त्तते; इत्यप्यनुपपन्नम्; तस्यासत्त्वेन स्वकार्ये प्रवर्त्तमानं विज्ञानं
प्रति सहकारित्वायोगात् ।

द्वितीयपक्षेऽपि गृहीताः स्वकारणगुणाः तस्य स्वकार्ये प्रवर्त्त-
१५ मानस्य सहकारित्वं प्रतिपद्यन्ते, अगृहीता वा ? न तावदुत्तरः
पक्षः; अतिप्रसङ्गात् । प्रथमपक्षेऽनवस्था-स्वकारणगुणज्ञानापेक्षा
हि प्रमाणं स्वकार्ये प्रवर्त्तते तदपि स्वकारणगुणज्ञानापेक्षां प्रमाण-
कारणगुणग्रहणलक्षणे स्वकार्ये प्रवर्त्तते तदपि च स्वकारणगुण-
ज्ञानापेक्षमिति । तस्य स्वकारणगुणज्ञानानपेक्षस्यैव प्रमाणकारण-
२० गुणपरिच्छेदलक्षणे स्वकार्ये प्रवृत्तौ प्रथमस्यापि कारणगुणज्ञाना-
नपेक्षस्यार्थपरिच्छेदलक्षणे स्वकार्ये प्रवृत्तिरस्तु विशेषामावात् ।
तदुक्तम्—

“जातेपि यदि विज्ञाने तावन्नार्थोऽवधार्यते ।

यौवत्कारणैश्चुद्धेत्वं न प्रमाणान्तराद्वैतम् ॥ १ ॥

१ वेद । २ इति गुणव्यापारमात्रः । ३ प्रलेकं सम्बन्धते । ४ सतः ।
५ अनातोक्तत्वलक्षण । ६ वेदवाक्यैः । ७ संवादानुमान । ८ प्रामाण्यस्य । ९ परापेक्षा
प्रामाण्यं न । १० प्रामाण्यं कर्तृ । ११ प्रामाण्यलक्षणस्य धर्मसाधनार्थाधर्मि-
प्रधानोऽर्थ निर्देशः । १२ अर्थपरिच्छित्तिरूपे । १३ लुण्णम् । १४ अविवक्षितत्वेन ।
१५ अर्थपरिच्छित्तिरूपे । १६ प्रमाणस्य । १७ सन्तानान्तरलोचनगुण अपि सह-
कारिणो भवन्तु अगृहीतत्वाविशेषात् । १८ इन्द्रियनैमित्त्यादि । १९ नवचक्षुर्नैमित्तिकमिति
शब्दः परोक्ष इति । २० प्रमाणकारणगुणज्ञान । २१ शब्द । २२ भाष्योक्त-
लक्षण । २३ प्रमाणकारणगुणज्ञानस्य । २४ अनपेक्षत्वस्य । २५ प्रथमज्ञानस्य ।
२६ चक्षुः । २७ नैमित्त्यं । २८ शब्दज्ञानात् । २९ ज्ञातव्यं ।

तत्र ज्ञानान्तरोत्पादः प्रतीक्ष्यः कारणान्तरात् ।
 यावद्धि न परिच्छिन्ना शुद्धित्वावदसत्समा ॥ २ ॥
 तस्यापि कारणे शुद्धे तज्ज्ञानस्य प्रमाणता ।
 तस्याप्येवमितीत्यं च न कंचिर्भवतिष्ठते ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४२-५१] इति । ५

अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्—‘प्रत्यक्षं न तौन्प्रत्येतुं सम-
 र्थम्’ इति; तत्रेन्द्रिये शक्तिरूपे, व्यक्तिकरूपे वा तेषामनुपलम्भो-
 नाभावः साध्यते ? प्रथमपक्षे-गुणबद्दोषाणामप्यर्थवः । न ह्या-
 धौराप्रत्यक्षत्वे अधेयप्रत्यक्षता नास्मातिप्रसङ्गात् । अथ व्यक्ति-
 रूपे; तत्रापि किमात्मप्रत्यक्षेण गुणानामनुपलम्भः, परप्रत्यक्षेण १०
 धौ ? प्रथमविकल्पे दोषाणामप्यसिद्धिः । न ह्यात्मीयं प्रत्यक्षं
 स्वचक्षुरादिगुणदोषविवेचने प्रवर्तते इत्येतत्प्रातीतिकम् ।
 रूपाद्यनादिप्रत्यक्षेण तु चक्षुरादिसद्भावमात्रमेव प्रतीयते इत्य-
 तोपि गुणदोषसद्भावासिद्धिः । अथ परप्रत्यक्षेण तै नोपलभ्यन्ते;
 तदसिद्धम् । यथैव हि काचकामलादयो दोषाः परचक्षुषि प्रत्य- १५
 क्षतः परेण प्रतीयन्ते तथा नैर्मल्यादयो गुणा अपि ।

जातमौत्रस्यापि नैर्मल्याद्युपेतैरेन्द्रियप्रतीतेः तेषां गुणरूपत्वाभावे
 जातितैमिरिकैस्त्याप्युपलम्भादिन्द्रियस्वरूपव्यतिरिक्तैरिति मिपादि-
 दोषाणामर्थ्यमार्थः । कथं वै रूपादीनां घटादिगुणस्वभावता

१ तदा । २ शब्दलक्षणस्य । ३ अन्येभ्यः । ४ शब्दलक्षणात् । ५ प्रथम-
 ज्ञानकारण(नेत्र)स्य । ६ द्वितीयस्य तृतीयज्ञानस्यापि । ७ दोषरहिते । ८ द्वितीयस्य
 तृतीयस्यापि । ९ ज्ञाने । १० जैनः । ११ जैनैः । १२ स्वकारणाभितान्गुणान् ।
 १३ ग्रन्थे । १४ गोलके । १५ गुणानाम् । १६ शक्तिरूपे इन्द्रिये । १७ शक्ति-
 रूपेन्द्रियस्य । १८ गुणदोष । १९ अन्यथा आत्मान्तरप्रत्यक्षत्वाभावेऽपि तज्ज्ञान-
 प्रत्यक्षताप्रसङ्गात् । २० गुणानाम् । २१ गुणाः । २२ प्राणिनः । २३ किन्तु
 नयनस्वरूपैव । २४ प्राणिनः । २५ कामलादिकं नयनस्वरूपानतिरेकि जातमात्रस्य
 नयनविशिष्टत्वेनोपलम्भमानत्वाद्गुणवत् । २६ न नैर्मल्यादयो गुणा इति । २७ किञ्च
 स्यात् । २८ घटादिरूपादयो धर्मिणो गुणा न भवन्तीति साध्यम् ।

१ “तत्र किमिन्द्रिये परोक्षशक्तिरूपे गुणानां प्रत्यक्षेणानुपलम्भप्रदाभावः साध्यते,
 आहोसिप प्रत्यक्षे चक्षुर्गोलकादी नास्तरूपे ?” स्या० रत्ना० पृ० २४४ ।

२ “जातमात्रस्यापि नैर्मल्यादिनेन्द्रियप्रतीतेनैर्मल्यादीनां गुणरूपत्वाभावे इत्युच्यते;
 तर्हि जाततैमिरिकस्य जातमात्रस्यापि तिमिरादिपरिकरितैरेन्द्रियप्रतीतेरेन्द्रियस्वरूपातिरिक्त-
 तिमिरादिदोषाणामप्यभावः कथञ्च स्यात् ? कथञ्चैव रूपादीनामपि कुम्भादिगुणस्वभावता
 वत्परोक्षारम्य कुम्भे तेषां प्रतीयमानत्वाविशेषात् ।” स्या० रत्ना० पृ० २४५ ।

उत्पत्तिप्रवृत्तितः प्रतीयमानत्वाविशेषात् ? 'यच्चक्षुरादिव्यतिरिक्त-
भावाभावानुविधायि तत्तत्कारणकम्, यथाऽप्रामाण्यम्, तथा
च प्रामाण्यम् । यच्च तद्व्यतिरिक्तं कारणं ते गुणाः' इत्यनुमानतोपि
तेषां सिद्धिः ।

५ यच्चेन्द्रियगुणैः सह लिङ्गस्य प्रतिबन्धः प्रत्यक्षेण गृह्येत,
अनुमानेन वेत्याद्युक्तम्, तदप्ययुक्तम्, ऊहाख्यप्रमाणान्तरोत्त-
रप्रतिबन्धप्रतीतिः । कथं चाप्रामाण्यप्रतिपादकदोषप्रतीतिः ?
तत्राप्यस्य समानत्वात् । नैर्मल्यादेर्मलाभावरूपत्वात्कथं गुण-
रूपतेत्यप्यसाम्प्रतम्, दोषाभावस्य प्रतियोगिपदार्थस्य भाव-
१० त्वात् । निःस्वभावेति कैर्यत्वधर्माधारत्वविरोधात् खरविषाण-
वत् । तथाविधस्य प्रतीतेरनभ्युपगमाच्च, अन्यथा—

“भौवान्तरविनिर्मुक्तो भौवोऽत्रानुपलम्भवत् ।

अभावः समस्त (सम्मत्तस्त)स्य हेतोः किञ्च समुद्भवः ॥” []

१ प्रामाण्यं यमि चक्षुरादिव्यतिरिक्तपदार्थकारणकं भवति चक्षुरादिव्यतिरिक्तपदार्थ-
भावाभावानुविधायित्वात् । २ कारणस्य । ३ यथार्थोपलम्भिलक्षणविशिष्टकार्यत्वादि-
त्यस्य । ४ अविनाभावः । ५ गुणसङ्गावे प्रामाण्यस्य सङ्गावसादभावे प्रामाण्यस्याभाव-
इति । ६ परेण । ७ इन्द्रियगुणलिङ्गस्य । ८ दोषप्रक्षेपि दोषैस्तद्व लिङ्गस्य सम्बन्धः
प्रत्यक्षेण गृह्यतेऽनुमानेन वेत्यादिदोषस्य । ९ भावान्तरस्वभावत्वादभावस्य । १० यद्
(गुण) निरूपणाधीनं निरूपणं यस्य (दोषस्य) तत्तत्प्रतियोगि । ११ गुणः । १२ अभा-
वस्य । १३ अजनादिना कियमाणत्वलक्षणकार्यत्व(नैर्मल्यादि) । १४ निस्स्वभावा-
भावस्य । १५ त्वया परेण । १६ अभ्युपगमे । १७ गुणादोषलक्षणं कपालक्षणादन्यो
वदो वा । १८ गुणः कपालं वा । १९ नीमासकमते । २० एकसात्कृतलोपलम्भ-
लक्षणसङ्गावादपरो वदोपलम्भलक्षणो भावो भावान्तरं तेव विनिर्मुक्तो भावो भूतलोप-
लम्भलक्षणः स एव वदस्यानुपलम्भो यथा । २१ लिङ्गस्य ।

१ “तथाहि—अतीन्द्रियलोचनाधामिता दोषाः किं प्रत्यक्षेण प्रतीयन्ते, उत अनु-
मानेन ? न तावत् प्रत्यक्षेण; इन्द्रियादीनामतीन्द्रियत्वेन तद्वददोषाणामप्यतीन्द्रियत्वेन
तेषु प्रत्यक्षस्याप्रवृत्तेः । नाप्यनुमानेन; अनुमानस्य गृहीतप्रतिबन्धलिङ्गप्रभवत्वान्नु-
पगमात् । लिङ्गप्रतिबन्धप्राप्तकस्य च प्रत्यक्षस्यानुमानस्य चात्र निषेदेऽसम्भवात् ।
प्रमाणान्तरस्य चात्रानन्तर्भूतत्वासत्त्वेन प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् इत्यादि सर्वमप्रामाण्यो-
त्पत्तिकारणभूतेषु लोचमाध्यामिषु दोषेष्वपि समानमिति ।” सम्मति० डी० पृ० ९ ।

२ “पदार्थान्तरेण विनिर्मुक्तः सक्तः मित्र इति यावत्, इत्यभ्युतो भाव पदभावाः
न पुनर्भावादतिरिच्यते इत्यर्थः । तत्र इष्टान्तोऽनुपलम्भः, यथा वदानुपलम्भो
वदतिरिक्तस्य वटादेरुपलम्भे पर्यवसति, तथा दोषा[ऽभावो]भावान्तरे पर्यवस्यी
माच्य इत्याशय इति” गु० टि० । सम्मति० डी० टि० पृ० ९ ।

इत्यस्य विरोधः ।

तथा च गुणदोषाणां परस्परपरिहारेणावस्थानादोषाभावे गुणसद्भावोऽवस्थाभ्युपगन्तव्योऽयमभावे शीतसद्भाववत्, अभावभावे भावसद्भाववद्वा । अन्यथा कथं हेतौ नियमाभावो दोषः स्यात् अभावस्य गुणरूपतावद्दोषरूपत्वस्याप्ययोगात् ? तथाच—^५ नैर्मल्यादिव्यतिरिक्तगुणरहिताच्चक्षुरादेरुपजायमानप्रामाण्यवन्नि-
यमविरहव्यतिरिक्तदोषरहिताद्धेतोरप्रामाण्यमभ्युपजायमानं स्वतो विशेषाभावात् । तथा च—

“अप्रामाण्यं त्रिधा भिन्नं मिथ्यात्वान्नसंशयैः ।

वैस्तुर्वीद्विविधैस्यात्र सम्भवो दुष्टकारणात् ॥”

१०

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५४]

इत्यस्य विरोधः । ततो हेतोर्नियमविरहस्य दोषरूपत्वे चेन्द्रिये मलापगमस्य गुणरूपतास्तु । तथाच सूक्तमिदम्—

“तस्माद्गुण्यो दोषाणामभावस्तदभावतः ।

अप्रामाण्यद्वयास्तत्त्वं तेनोत्तैर्गोऽनैपोदितः ॥”

१५

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६५] इति ।

‘गुणेभ्यो हि दोषाणामभावः’ इत्यभिर्द्वैधता ‘गुणेभ्यो गुणाः’
यवामिहितास्तैसा प्रामाण्यमेवाप्रामाण्यद्वयास्तत्त्वम्, तस्य
गुणेभ्यो भावे कथं न परतः प्रामाण्यम् ? कथं वै तस्यौ-

१ निस्त्वभावत्वामावे । २ वटस्य । ३ कपालस्य । ४ वटस्य । ५ नैव ।
६ साधने । ७ अविनाशभावः । ८ स्वतः । ९ भावान्तररहितकारणमात्रजन्य-
त्वस्य । १० विपर्ययः । ११ ज्ञानाभावः समभावस्याप्यस्य । १२ अज्ञानस्य ज्ञानभाव-
रूपतया स्वतःसिद्धत्वात् तत्र काचिदपेक्षा । १३ भावरूपत्वात् । १४ सश्रवविपर्यय-
रूपस्य । १५ त्रिषु मध्ये । १६ काचकामलादिदोषदूषिताच्चक्षुरः । १७ अन्यस्य ।
१८ अनुमानस्य प्रामाण्ये गुणानां व्यापारो न वृष्टो यतः । १९ संशयविपर्ययः ।
२० कारणेन । २१ प्रामाण्यम् । २२ अबाधित आस्ते । २३ परेण । २४ गुणा-
भावरूपत्वादोषाणां दोषाभाव एव च गुणः । २५ यथा गुणेभ्यो दोषाणामभावः ।
२६ किञ्च ।

१ “दोषाभावो हि पशुदासदृश्या गुणात्मक एव भवेत्, ततश्च सत्पतिशान्तमपि गुण-
ज्ञातात्मकं प्रामोक्षि ।” तत्त्वसं० पं० पृ० ७९९ । न्यायकुसु० पृ० १९८ । सम्प्रति०
टी० पृ० १० । सा० रत्ना० पृ० २४८ ।

त्सैर्गिकत्वम् दुष्टकारणप्रमवासत्यप्रत्ययेष्वभावात्? अप्रामाण्यस्य
चौत्सैर्गिकत्वमस्तु दोषाणां गुणोपगमे व्यापारात् । भवतु वा भीषा-
ङ्गिभ्योऽर्थावः; तथाप्यस्य प्रामाण्योत्पत्तौ व्याप्रायमाणत्वात्कथं
तत्त्वतः? न चाभावस्याऽर्जनकत्वम्, कृत्वाद्यभावस्य परमागा-
५ वस्थितघटादिप्रत्ययोत्पत्तौ जनकत्वप्रतीतिः, प्रमाणपञ्चकामावस्य
चाभावंप्रमाणोत्पत्तौ ।

योपि-यथार्थत्वायथार्थत्वे विद्वायोपलम्भसामान्यस्यानुपल-
म्भः-सोपि विशेषनिष्ठत्वात्तत्सामान्यस्य युक्तः । न हि निर्विशेषं
गोत्वादिसामान्यमुपलभ्यते गुणदोषरहितमिन्द्रियसामान्यं वा,

१ सैर्गिकत्वम् । २ गौत्सैर्गिकत्वम् । ३ किञ्च । ४ कृतः । ५ निराकरणे
नास्ते । ६ गुणरूपात् । ७ गुणेश्वो भिन्नो दोषाणामभाव इत्यर्थः । ८ प्रामाण्यं प्रति ।
९ प्रमितिः । १० न हि सर्वथा यथार्थत्वायथार्थत्वविशेषाङ्गिभ्योऽनुपलम्भसामान्यम् ।

१ “तस्माद्गुणेश्वो दोषाणामभावात्प्रमावतः ।

अप्रामाण्यद्वयात्तत्त्वं तेनोत्तर्गोऽनपोदितः ॥ १०५७ ॥

सर्वत्रैवं प्रमाणत्वं निश्चितं नैदिहाप्यती ।

पूर्वोदितो दोषगणः प्रसज्य चानवस्थितिः । १०५८ ॥

तस्मादेव च ते न्यायादप्रामाण्यमपि स्वतः ।

प्रसक्तं शक्यते वक्तुं यस्याप्यन्यादः स्फुटम् ॥ १०५९ ॥

तस्माद्गोपेश्वो गुणानामभावस्तदभावतः ।

प्रमाणरूपनास्तित्वं तेनोत्तर्गोऽनपोदितः ॥ १०६० ॥”

तत्त्वसं० पृ० ८०० । न्यायकुसु० पृ० १९८ । सन्मति० टी० पृ० ९ ।

२ “(पूर्वपक्षः) यदि हि यथार्थत्वायथार्थत्वरूपद्वयरहितमेव किञ्चिदुपलब्ध्याख्यं
कार्यं भवेत् तदा कार्यनैविध्यमध्यवसीनेत बहुत यथागोपलम्भैर्गुणवन्ति कारकाणि
अयथागोपलम्भैर्दोषकल्पितानि तत्रयरूपरहितायाः पुनरपलम्भैः स्वरूपावस्थितान्ये-
वेति, बल्वेनमस्ति, हेभा हीयमुपलम्भिरनुभूयते यथार्था चायथार्था च । तत्र अयथा-
गोपलम्भिस्तावत् दुष्टकारणजन्यैव संवेद्यते । यथाहि-दुष्टकारणकलापुःस्फितिकुला-
कादेः कुटिलकल्पादिकार्यमवलोक्यते तथा तिमिरादिदोषदुष्टावबनादिकारणकदम्बकाय
कुमुदवाल्म्वदितयप्रलयादिका अयथागोपलम्भिरिति, अत एव उत्पत्तौ दोषापेक्षत्वा-
दप्रामाण्यं परत भवेति कथ्यते । तदित्यमयथागोपलम्भौ दुष्टकारणजन्यत्वेन प्रतिक्षाया-
मिदानीं छदीयकार्याभावात् यथागोपलम्भिः स्वरूपावस्थितेभ्य एव कारणेश्वोऽनकत्वमे-
वेति न गुणकल्पनायै सा प्रभवति” (पृ० २४३) (उत्तरपक्षः-) यत्पुनरुक्तम्-
हेभा हीयमुपलम्भिरनुभूयते यथार्था च अयथार्था चेति; तत्र च विप्रतिपद्यामहे ।
न हि यथार्थत्वायथार्थत्वे विद्वांसि निर्विशेषगुणलम्भिसामान्यमुपपद्यते विशेषविष्ठत्वात्
सामान्यस्य, न खलु शब्देनैवाहुर्लेयादिविशेषविकलं गोत्वादिसामान्यं प्रतीयते येनेदमुप-
लम्भिसामान्यं यथार्थत्वायथार्थत्वविशेषरहितं प्रतीयेत” सा० रत्ना० पृ० २४६ ।

येनोपलम्भसामान्येऽप्ययं पर्यनुयोगः स्यात् । लोके च प्रमाण-
यतोर्मयं परतः प्रतिपत्तव्यम् । सुप्रसिद्धो हि लोकेऽग्रामाण्ये
दोषावष्टम्बचक्षुषो व्यापारः, ग्रामाण्ये नैर्मल्यादियुक्तस्य, यत्पूर्वं
दोषावष्टम्बमिन्द्रियं मिथ्याप्रतिपत्तिहेतुस्तदेवेदानीं नैर्मल्यादि-
युक्तं सम्यक्प्रतिपत्तिहेतुः, इति प्रतीतेः । ५

यच्चोच्यते—कंचिन्नैर्मलमपीन्द्रियं मिथ्याप्रतीतिहेतुरन्यत्रार-
कादिस्वभावं सत्यप्रतीतिहेतुः, तत्रापि प्रतिपेक्षुर्दोषः स्वच्छनील्या-
दिमले निर्मलमभिप्रायात् । अनेकप्रकारो हि दोषः मूढत्यादिमेवात्,
तदभावोपि भावान्तरस्वभावस्तथाविधस्तत एव । न चोत्पन्नं
सद्बिज्ञानं ग्रामाण्ये नैर्मल्यादिकमपेक्षते येनानयोर्मदः स्यात् । १०
गुणवच्चक्षुरादिभ्यो जायमानं हि तदुपासग्रामाण्यमेवोपजायते ।

अर्थतथाभावपरिच्छेदसामर्थ्यलक्षणाग्रामाण्यस्य स्वतो भावा-
भ्युपगमे च अर्थान्यथात्वपरिच्छेदसामर्थ्यलक्षणाग्रामाण्यस्यान्य-
विधैर्मानस्य केनचित्कर्तुर्मशक्तेः स्वतो भावोऽस्तु ।

कथं चैवं बौद्दिनो क्षीनरूपतात्मन्यविद्यमानेन्द्रियैर्जन्यते ? तस्या- १५

१ विशेषरहितगोत्रादिसामान्योपलम्भप्रकारेण । गुणोक्तहितेन्द्रियसामान्योपलम्भ-
प्रकारेण च । २ अपि ज्ञप्त्वेन एवकारार्थे । ३ यतो यथार्थत्वावधारणे विद्यतेत्यादिः ।
४ उपलम्भसामान्यसातुपलम्भलक्षणः । ५ अपि तु विशेषेणैवं पर्यनुयोगो ज्ञातव्यः ।
६ ग्रामाण्यामग्रामार्ण्यं । ७ चक्षुषः । ८ नरे । ९ पुरुषास्तरे । १० पुत्रवत् ।
११ निर्दूक इति । १२ वातपित्तादि । १३ नैर्मल्यादिगुण । १४ अनेकप्रकारः ।
१५ गुणम् । १६ कालमेव । १७ धानं कर्तुं । १८ न हि सतोऽसती कस्मिन्सख
दोषमाह । १९ परेण । २० साधनकारणे । २१ कारणेन । २२ यत्कारणेऽविचि-
मानं तत्सत एव जायते इत्येवंवादिनः । २३ यदावाकारविशेषितव्यावरुणता ।

१ “यतो यदि लोकव्यवहारसमाश्रयणेन ग्रामाण्याग्रामाण्ये व्यवसाय्येते तदा
अग्रामाण्यवत् ग्रामाण्यमपि परतो व्यवसायनीयम्...” सम्प्रति० टी० ५० ९ ।

२ “किञ्चाग्रामाण्यमप्येवं सत एव प्रसज्यते ।

नहि सतोऽसत्तत्त्वस्य कुतश्चिदपि संभवः ॥ २८४३ ॥

“...तथाह्यग्रामाण्यमपि विपरीतार्थपरिच्छेदोत्पादित्वा ज्ञप्तिः, ज्ञप्तेष्व विद्वानभि-
तायाः कालजयेऽन्यकरणस्य ग्रामाण्यवद्ग्रामाण्यास्मिन्ना ज्ञप्तिः सत एव प्रसज्येत ।”

तत्त्वसं० पं० ५० ७५५ ।

“एवमभिधानेऽन्यथावसिक्तार्थपरिच्छेदशक्तेरप्यग्रामाण्यवरुणाया असत्याः केनचि-
त्कर्तुर्मशक्तेस्तदपि सतः स्यात् ।” सम्प्रति० टी० ५० ९ ।

३ “किंच, यथात्मन्यविद्यमानं रूपं कारणैर्नापीयते कथं तदा कथमिन्द्रियादयो
ज्ञाने (ज्ञान) रूपसामान्यसत्तीत्यादयस्ति विज्ञाने ? यथाऽविद्यमानाणि सा तैरापीयते
अर्थपरिच्छेदज्ञाति किञ्चादधीरन् ?” तत्त्वसं० पं० ५० ७५३ । सम्प्रति० टी० ५० ९ ।

स्तत्राविद्यमानत्वेप्युत्पत्त्युपगमेऽर्थग्रहणशक्त्या कोपराधः कृतो
येनास्यास्ततः समुत्पादो नैर्ज्यते? न चेमाः शक्यः स्वाधा-
रेभ्यः समासादितव्यतिरेकाः येन स्वाधाराभिमतविज्ञानवत्
कारणेभ्यो नोदयमासादयेयुः । पाश्चात्यसंवादप्रत्ययेन प्रामाण्य-
स्याजन्यत्वात्स्वतो भावेऽप्रामाण्यस्यापि सोस्तु । न खलूत्पन्ने
विज्ञाने तदप्युत्तरकालमाविविसंवादप्रत्ययाद्भवति ।

यञ्चोक्तम्—‘लब्धात्मनां स्वकार्येषु प्रवृत्तिः स्वयमेव तु’ तद-
प्युक्तिमात्रम् । यथावस्थितार्थव्यवसायरूपं हि संवेदनं प्रमाणम्,
तस्यात्मलाने कारणापेक्षार्या कीऽन्या खैकीर्ये प्रवृत्तिर्या स्वयमेव
१० स्यात्? घटस्य तु जलोद्बहनव्यापारात्पूर्वं रूपान्तरेणापि स्वहे-
तोरुत्पत्त्येयुंका सृदादिकारणनिरपेक्षस्य तैश्च प्रवृत्तिः प्रतीतिनि-
बन्धनत्वाद्भवत्यवस्थायाः । विज्ञानस्य तूत्पत्त्यनन्तरमेव विना-
शोपगमात्कुतो लब्धात्मनो वृत्तिः स्वयमेव स्यात्? तदुक्तम्—

“न हि तत्क्षणमप्यास्ते जीयते वाऽप्रमात्मिकम् ।

१५ येनैर्थाग्रहणे पञ्चीद्याप्रियेतेन्द्रियादिवैत् ॥ १ ॥

तेन जन्मैव दुःखेर्विषये व्यापार उच्यते ।

१ परेण । २ कर्तृभूतया । ३ सापि ज्ञानेऽविद्यमाना शक्तिर्यैर्जन्यताम् । ४ परेण ।
५ ज्ञानेभ्यः । ६ प्राप्तमेवाः । ७ आक्षेपे । ८ यथा शक्त्या जागरीभूतविज्ञानं
कारणेभ्यो न तथेया इत्यर्थः । ९ परेणाङ्गीकृते । १० परेण । ११ प्रामाण्यं कथ्यते ।
१२ आक्षेपोक्तिः । १३ प्रामाण्यम् । १४ अर्थपरिच्छिन्निरूपे प्रवृत्तिरूपे च ।
१५ न कापि । १६ रिक्तप्राकरेण । १७ जलादहरणकक्षणे स्वकार्ये । १८ परमते ।
१९ न हि । २० अप्रमिति । २१ आक्षेपे । २२ ज्ञानस्य कक्षणावतरे अव-
स्थानप्रकारेण अप्रमात्मकमवतनप्रकारेण । २३ उत्पत्त्यनन्तरम् । २४ आत्मनः ।
२५ क्षणमपि नास्ते अप्रमात्मकं वा न जायते येन प्रकारेण । २६ व्यापृतिः ।

१ “अप्रामाण्यमपि चैवं स्वतः स्यात्, नहि तदपि उत्पन्ने ज्ञाने विसंवादप्रत्य-
यादुत्तरकालमाविशः तत्रोत्पद्यते इति कस्यचिदुत्पत्त्युपगमः ।”

सन्मति० दी० पृ० १० ।

२ “ततश्च स्वाधारेणोक्तव्यवसायरूपप्रामाण्यात्मकाने चैव कारणापेक्षा कान्या स्वकार्ये
प्रवृत्तिर्या स्वयमेव स्यात्—घटस्य जलोद्बहनव्यापारात्पूर्वं रूपान्तरेण स्वहेतोरुत्पत्ते-
र्युक्तं सृदादिकारणनिरपेक्षस्य स्वकार्ये प्रवृत्तिरिति विसदृशमुदाहरणम् ।”

सन्मति० दी० पृ० १० ।

३ “यत्तु ज्ञानं त्वयापीठं जन्मानन्तरमस्तिरम् ।

लब्धात्मनोऽस्ततः पञ्चाद्व्यापारलक्ष्यं कीदृशः ॥ २९२२ ॥

तत्सर्वं० पृ० ७७० ।

तदेवै च प्रैमारूपं तद्वती करणं च धीः ॥ २ ॥”

[मी० सू० सू० २ सू० ५५-५६] इति ।

किञ्च, प्रमाणस्य किं कार्यं यत्रास्य प्रवृत्तिः स्वयमेवोच्यते-
यथार्थपरिच्छेदः, प्रमाणमिदमित्यवसायो वा ? तत्राद्यविकल्पे
‘आत्मानमेव करोति’ इत्यायातम्, तच्चायुक्तम्; स्वात्मनि^५
क्रियाविरोधात् । नापि प्रमाणमिदमित्यवसायः; आन्तिकारण-
सङ्गात्वेन कैचिच्चदभावात्, कचिद्विपर्ययदर्शनाच्च ।

अनुमानोत्पादकहेतोस्तु सार्ध्याविनाभावित्वमेव गुणो यथा
तद्वैकल्प्यं दोषः । साध्याविनाभावस्य हेतुस्वरूपत्वाद्गुणरूपत्वाभावे
तद्वैकल्प्यस्यापि हेतोः स्वरूपविकलत्वाद्दोषता मा भूत् ।^{१०}

औगमस्य तु गुणैर्वत्पुरुषप्रणीतत्वेन प्रामाण्यं सुप्रसिद्धम्,
अपौरुषेयैत्यस्यासिद्धेः, नीलोत्पलादिषु दहनादीनां वितर्कप्रतीति-
जनकत्वोपलम्भेनानैकान्तितात्, परस्परविद्वद्भावनाभियोगोर्ध्वोपुं

१ यत् चेदिद्वानस्य कारणरूपता क्रियारूपता न सादित्युक्ते जाह । २ जन्मेव ।
३ परिच्छिन्ति । ४ सन्नति । ५ तयोर्मध्ये । ६ सत्स्वरूपम् । ७ तत्र प्रवर्तना-
द्यस्य । ८ उत्पत्तिरूपताया । ९ सदोषनयन । १० सत्यबलवाने प्रमाणस्यभावे ।
११ भ्रान्तवाने प्रमाणमित्यवसायदर्शनात् । १२ शब्दस्य । १३ पुनः ।
१४ “पूर्वाभायो हि धात्वर्थं वेदे नष्टस्तु भावनान् । प्रामाकरो निवोर्गं तु शङ्करो
विपिनप्रवीट्” । १५ आगमो धर्मी प्रामाण्यं भवतीति साध्यम् । १६ सगं ।
१७ यदपौरुषेयं तत्प्रमाणमित्युक्तं नेकान्तात् । १८ विधि । १९ बोधे ।

१ “नच ज्ञानस्य किञ्चित्कार्यमस्ति यत्र व्याप्तिरेत । स्वार्थपरिच्छेदात्मकमस्तीति चेन्न;
ज्ञानपर्यायत्वादस्य आत्मानमेव करोतीति ह्यव्याहृतमेतत् । प्रमाणमेतत् इति निश्चय-
जननं सकार्यमिति चेन्न; कचिदनिश्चयादिपर्ययदर्शनाच्च ।” उत्तरसं० पृ०
५० ७७० । सन्मति० टी० पृ० ११ ।

२ “अविनामाननिश्चयस्यैव गुणत्वात् तदनिश्चयस्य विपरीतनिश्चयस्य च दोष-
त्वात् ।” सन्मति० टी० पृ० ११ ।

३ “पुनरप्यपौरुषेयस्यानैकान्तिकता प्रतिपादयन्नाह—

न नराकृतमित्येव यथार्थज्ञानकारि तु ।

द्रष्टुं हि दावबह्यादिर्मिव्याधानेऽपि हेतुता ॥ २४०३ ॥

नहि पुरुषदोषोपपन्नानादिषु ज्ञानविभ्रमः, तद्विहितानामपि दावबह्यादीनां
नीलोत्पलादिषु वितथज्ञानजननात् । दावो वनगतो बहिः, स पुनर्यः स्वयमेव वेण्वा-
दीनां सङ्घर्षसमुद्भूतः स इह व्यभिचारविषयत्वेन द्रष्टव्यः । यत्स्वरणिनिर्मेयनादि-
पुरुषैर्निर्दिष्टं सत्तापौरुषेयत्वासंभवात् सतो न हेतोर्व्यभिचार इति भावः । आदिश-
ब्देन भरीत्यादिपरिग्रहः । तायेन मिथ्याज्ञानहेतुतां दर्शयन्नाह—

प्रामाण्यप्रसङ्गाच्च । निखिलवचनानां लोके गुणवर्तुरूपप्रणीतत्वेन
प्रामाण्यप्रसिद्धेः, अत्रान्यथापि तत्परिकल्पने प्रतीतिविरोधाच्च ।

अपि च अपौरुषेयत्वेऽप्यागमस्य न स्वतोऽर्थे प्रतीतिजनकत्वम्
सर्वदा तत्प्रसङ्गात् । नापि पुरुषप्रत्यक्षाभिर्व्यक्तस्य; तेषां रागा-
५ दिदोषदुष्टत्वेनोपगमात् तत्कृताभिव्यक्त्यर्थार्थतानुपपत्तेः । तथैव
अप्रामाण्यप्रसङ्गभयादपौरुषेयत्वाभ्युपगमो गजज्ञानमनुकरोति ।
तदुक्तम्—

“असंस्कार्यतया पुंभिः सर्वथा स्यान्निरर्थता ।

संस्कारोपगमे व्यक्तं गजज्ञानमिदं भवेत् ॥ १ ॥”

१०

[प्रमाणवा० १।२३२]

तत्र प्रामाण्यस्योत्पत्तौ परैरनपेक्षा ।

नैपि ह्यतौ । साहि निर्निमित्ता, सन्निसन्निमित्ता वा ? न ताव-
न्ननिमित्ताः, प्रतिनियतदेशकालस्वभावाभावप्रसङ्गात् । सन्निमि-
त्तत्वे किं सन्निमित्ता, अन्यनिमित्ता वा ? न तावत्सन्निमित्ता,
१५ सैवसंविदितत्वानभ्युपगमात् । अन्यनिमित्तत्वे तर्हि प्रत्यक्षम्,
उत्तानुमानम् ? न तावत्प्रत्यक्षम्; तस्य तत्र व्यापारभावात् ।
तद्धीन्द्रियसंयुक्ते विषये तद्व्यापारदुर्दयमासाद्यत्प्रत्यक्षव्यपदेश-
लभते । न च प्रामाण्येनेन्द्रियाणां सैम्प्रयोगो येन तद्व्यापारज-
नितप्रत्यक्षेण तैप्रतीयेत । नापि मनोव्यापारजैप्रत्यक्षेण, एवं-
२० विधौनुभवार्भावात् ।

१ वेदे । २ अपौरुषेयत्वेन । ३ अन्यथा । ४ सातस्य । ५ अपौरुषेयत्वस्य ।
६ अपौरुषेयस्य वेदस्य । ७ वेदस्य पुरुषकृताभिव्यक्तितोऽर्थे प्रतीतिजनकत्वे च । ८ तत्र
परस्य । ९ वेदस्य । १० निश्चिता । ११ पुंभिः । १२ गुण । १३ गीर्वाणकमत-
प्रक्षेपं करोति । १४ अन्यथा । १५ प्रामाण्यमात्मानं सैनैव जानाति । १६ जलन्त-
प्ररोक्षत्वाद्विज्ञानस्य । १७ गीर्वासकैः । १८ प्रामाण्यवृत्तौ । १९ जायमानस्य ।
२० सन्निकर्षः । २१ अपि तु न । २२ तद्वतीयेत । २३ प्रामाण्यवृत्तिरूपः ।
२४ प्रामाण्यवृत्तेः ।

रक्तं नीलसरोजं हि बहुधा लोके स हीन्यते ।

बहुधादिः कृतकत्वाच्च हेतुवपपद्यते ॥ २४०४ ॥

तत्पदं ० पं० पृ० ६५६ ।

१ “यतो निश्चयस्तत्र यवन् किं निनिमित्तः उत सन्निमित्तः इति कल्पनादयम् ।
तत्र न तावन्ननिमित्तः; प्रतिनियतदेशकालस्वभावाभावप्रसङ्गात् । सन्निमित्तत्वेऽपि किं
सन्निमित्तं उत स्वयतिरिक्तनिमित्तः ?”

सम्पत्ति० टी० पृ० १३ ।

नाप्यनुमानतः, लिङ्गमावात् । अथार्थप्राकृत्यं लिङ्गम्; तर्कित्यर्थत्वविशेषणविशिष्टम्, निर्विशेषणं वा ? प्रथमपक्षे तस्य यथार्थत्वविशेषणग्रहणं प्रथमप्रमाणात्, अन्यस्माद्वा ? आद्यपक्षे परस्परपक्षयोः दोषः । द्वितीयेऽनवस्था । निर्विशेषणात्प्रतिपत्तौ चातिप्रसङ्गः । अतएवानुमानाभ्यां तत्रैव प्रामाण्यनिश्चये स्वतः प्रामा-
ण्यव्याघातश्च ।

यैर्ह संवादात्पूर्वस्य प्रामाण्ये चक्रकदूषणम्; तदप्यसङ्गतम्; न खलु संवादात्पूर्वस्य प्रामाण्यं निश्चित्य प्रवर्तते, किन्तु बहिरूपदर्शने सत्येकदा शीतपीडितोऽन्यार्थं तद्देशमुपसर्पन् कृपालुना वा केनचित्चदेशं बहिरानयने तत्स्पर्शविशेषमनुभूय तद्रूपस्पर्शयोः सम्बन्ध-
मवगम्यमानस्यासदृशायां 'ममायं रूपप्रतिभासोऽभिर्मैतार्थ-
क्रियासाधनः एवंविधप्रतिभासत्वात्पूर्वोत्पन्नैवंविधप्रतिभासवत्' इत्यनुमानैस्तावन्निर्मासिद्धानस्य प्रामाण्यं निश्चित्य प्रवर्तते । कृषीवलादयोपि ज्ञानभ्यस्तबीजादिनिषये प्रथमतः तावच्छरावा-

- १ प्राकृत्यं प्रामाण्याविनाशायि भवति तत्र च न शान्तिस्तत्र प्रामाण्यमिति ।
२ प्रमाणप्रामाण्यमस्ति यथार्थप्राकृत्यात् । ३ प्राकृत्यमात्रम् । ४ लिङ्गम् । ५ प्रथम-
वच्छानात् । ६ प्रमाणात् । ७ प्रमाणभूतप्रथमज्ञानात्साधनस्य न्यायैतत्प्रतिषेधग्रहणं
गृहीतविशेषणविशिष्टत्वात्साधनात्मकमज्ञानस्य प्रामाण्यनिश्चय इति । ८ लिङ्गात् ।
९ प्रामाण्यकृत् । १० निष्प्रमाणेऽपि प्रामाण्यं स्यादित्यर्थः । ११ पूर्वज्ञानमाहि द्वितीयं
प्रसङ्गम् । १२ पूर्वज्ञानम् । १३ किञ्च । १४ अव्यक्तिवारूपात् । १५ परोक्षम् ।
१६ जलादिज्ञानम् । १७ नरः । १८ नरः । १९ पुण्याय । २० गच्छन् ।
२१ छण्डस्पर्शम् । २२ जमिनाम्बुम् । २३ नास्ति । २४ शीतापहरणकक्षणम् ।
२५ विज्ञानमात्ररूपम् । २६ शीतापनोदस्य साधनमग्निः । २७ जलम् ।

१ "तदि फलं निर्विशेषं वा स्वकारणस्य सादृश्यापारस्य प्रामाण्यमनुयाययेद्,
यथार्थत्वविशिष्टं वा ?" न्यायमं० पृ० १६८ । न्यायकुमु० पृ० २०१ । सन्मति०
टी० पृ० १४ । सा० रत्ना० पृ० २५६ ।

२ "यच्च संवादज्ञानात् साधनज्ञानप्रामाण्यनिश्चये चक्रकदूषणमभ्युपगम्यते; तद-
सङ्गतम्; यदि हि प्रथमेव संवादज्ञानात् साधनज्ञानस्य प्रामाण्यं निश्चित्य प्रवर्तते
तदा सादृश्यम्, यदा तु बहिरूपदर्शने सत्येकदा शीतपीडितोऽन्यार्थं तद्देशमुपसर्प-
न्नास्पर्शमनुभवति कृपालुना वा केनचित्चदेशं बहिरानयने; तदाऽसौ बहिरूपदर्शन-
ज्ञानयोः सम्बन्धमवगच्छति एवं सङ्गो नास्ति; एवंभूतप्रयोगननिवर्तकः इति--- ।"
सन्मति० टी० पृ० १६ । सा० रत्ना० पृ० २५५ ।

३ "कृषीवलादयोऽपि हि जनस्वस्ते बीजादिगोचरे प्रथमम् विहितवस्तुनरीवा-
सिक्तसुक्रमारुद्वि शरावादौ कतिपयस्यात्मादिवीजनकगणानापनादिना बीजाबीजे

दावल्पतरवीजवपनादिना बीजाबीजनिर्धारणाय प्रवर्तन्ते, पञ्चा-
दुष्टसाधर्म्यात्परिशिष्टस्य बीजाबीजतया निश्चितस्योपयोगाय परि-
हाराय च अभ्यस्तबीजादिविषये तु निःसंशयं प्रवर्तन्ते ।

यच्चाभ्यघाति-संवादप्रत्ययात्पूर्वस्य प्रामाण्यविवरणेऽनवस्था
५ तस्याप्यपरसंवादापेक्षाऽविशेषात्; तदप्यभिधानमात्रम्; तस्य
संवादरूपत्वेनापरसंवादापेक्षाभावात् । प्रथमस्यापि संवादापेक्षा
मा भूदित्यसमीचीनम्; तस्यासंवादरूपत्वात्, अतः संवादक-
द्वारेणैवास्य प्रामाण्यं निश्चीर्यते ।

अर्थक्रियाज्ञानं तु साक्षादविसंवाद्यैर्धर्मक्रियालम्बेनत्वाच्च तैश्चा
१० प्रामाण्यनिश्चयमार्कं । तेन 'कस्यचित्तु यदीष्येत' इत्यादि प्रलाप-
मात्रम् । न चार्थक्रियाज्ञानस्याप्यवस्तुवृत्तिशङ्कायामन्यप्रमाणा-
पेक्षयानवस्थावतारः, । अस्यार्थभावेऽदृष्टत्वेन निरारेकत्वात् ।
यथैव हि-किं 'गुणव्यतिरिक्तेन गुणिनाऽर्थक्रिया सम्पादिता

१ परेण । २ ज्ञानस्य । ३ जनैः । ४ संवादप्रत्ययो धर्मी अपरसंवादापेक्षो
भवतीति साध्यं प्रत्ययत्वात् । ५ प्रत्ययत्वेन । ६ जलाद्विज्ञानस्य । ७ पूर्वज्ञानविषये
उत्तरज्ञानस्य वृत्तिः संवादः । ८ असंवादरूपत्वं यतः । ९ प्रेक्षावर्तिः । १० संवादः ।
११ ज्ञानपानावगाहनादि । १२ पुनः । १३ यतः (कर्मधारयसमासः) । १४ यतः ।
१५ अविसंवादापेक्षाप्रकारेण । १६ भवति । १७ कारणेन । १८ स्वतः एव
प्रमाणता । प्रथमस्य तत्राभावे प्रेक्ष्यः केन हेतुना । १९ अपिज्ञानात्साधनज्ञानस्य
ग्रहणम् । २० विषयमानेति ज्ञानादिके अविद्यमानज्ञानादिकृष्णणाऽवस्तुवृत्तिशङ्कायात् ।
२१ निःसंशयत्वात् । २२ रूपस्पर्शादि । २३ योगः ।

निर्धार्य पञ्चादुष्टसाधर्म्येणानुमानात् परिशिष्टस्य बीजाबीजतया निश्चितस्योपादानाय
ज्ञानाय च यतन्ते । तदमन्तरं पुनरभ्यस्तौ बीजादिगोचरे परिदृष्टसाधर्म्यादिलिङ्गनिरपेक्षा
एव निःशङ्कं कीनाशाः केदारेषु बीजवपनाय प्रवर्तन्ते ।" स्वा० रत्ना० पृ० २५५ ।

१ "उच्यते वस्तुसंवादः प्रामाण्यमभिधीयते ।

तस्य चार्थक्रियाभ्यासज्ञानादन्यत्र लक्षणम् ॥ २९५९ ॥

अर्थक्रियावभासं च ज्ञानं संवेद्यते स्फुटम् ।

निश्चीयते च तन्मात्रमाभ्यामर्शनचेतसा ॥ २९६० ॥

अतस्तस्य स्वतः सन्तु प्रामाण्यस्य निनिश्चयात् ।

नोत्तरार्थक्रियाप्राप्तिप्रत्ययः समपेक्ष्यते ॥ २९६१ ॥

ज्ञानप्रमाणभावे च तस्मिन् कार्यावभ्यसिनि ।

प्रत्यये प्रथमेप्यसाक्षेतोः प्रामाण्यनिश्चयः ॥ २९६२ ॥

तत्त्वसं० पृ० ७७८ । सन्मति० ते० पृ० १४ ।

२ "यथा अर्थक्रिया किमवयवव्यतिरिक्तेन अवयविनाऽर्थेन निष्पादिता, उदाभ्य-
तिरिक्तेन, आदौस्तिदुमयरूपेण, अत्रानुभवरूपेण, किंवा त्रिगुणात्मकेन, परमाणुसमू-

उताऽव्यतिरिक्तनोभयरूपेणानुभयरूपेण, त्रिगुणात्मना वार्थेन, परमाणुसमूहलक्षणेन वा' इत्याद्यर्थक्रियार्थिनां चिन्ताऽनुपयोगिनी- निष्पन्नत्वाद्वाच्छित्तफलस्य, तथेयमपि 'किं वस्तुभूतायामवस्तु- भूतायां वार्थक्रियायां तत्संवेदनम्' इति । वृद्धिच्छेदादिकं हि फलमभिलषितम्, तच्चेन्निष्पन्नं वृद्धि(वृद्धि)योगिज्ञानानुभवे किं तच्चिन्तासाध्यम् ?

न च स्वमार्थक्रियाज्ञानस्यार्थमात्रेपि दृष्टत्वाज्ज्ञाप्रदर्थक्रिया- ज्ञानेपि तथा शङ्काः तस्यैतद्विपरीतत्वात् । स्वमार्थक्रियाज्ञानं हि सबाधम्, तद्वद्वेवोत्तरकालमन्यथाप्रतीतेः न जाग्रदंशमधीति ।

१ साङ्ख्यवार्ताकौ । २ न्यतिरिक्ताव्यतिरिक्त । ३ जैनमीमांसकौ । ४ बौद्ध- विभेदः । ५ सस्वरजस्तमोलक्षणा गुणाः । ६ साङ्ख्य । ७ प्रबानेन । ८ बौद्धः । ९ अवयवी । १० योगः । ११ नृणाम् । १२ ज्ञानपानानावगाहनादेः । १३ अर्थ- क्रियाज्ञानचिन्ता । १४ अङ्गमण्यपहार । १५ पुरुषस्य । १६ पुरुषेण । १७ का । १८ अर्थक्रियाज्ञानम् । १९ न सबाधम् ।

हात्प्रत्येन वा, अथ ज्ञानरूपेण, आहोसिद् सद्रुतिरूपेण इत्यादिचिन्ता अर्थक्रियामात्रा- धिना निष्प्रयोजनता निष्पन्नत्वाद्वाच्छित्तफलस्य, तथेयमपि किं वस्तुतत्त्वासमर्थक्रियायां तत्संवेदनज्ञानमुपजायते आहोसिदवस्तुतत्त्वात् इति । वृद्धाद्विच्छेदादिकं हि फलम- भिलाषितम्, तच्चाभिलषितम्, तद्वियोगिज्ञानस्य स्वसंविदितलोदये इति तच्चिन्तायाः निष्फलत्वम् ।”

सम्पत्ति० टी० पृ० १४ ।

१ “तथाहि लोके सद्रुति (वृद्धि) च्छेदादिकं फलमभिलाषितम् तच्चाह्लादपरि- दापदिरूपज्ञानातिर्यवादेन निर्वृत्तमित्येतावत्तथाहितसन्तोषा निवर्तन्ते जना इति स्वत- एव सिद्धिरूप्यते ।”

तत्सं० पं० पृ० ७७८ ।

२ “ननु वार्थक्रियामाप्ति ज्ञानं स्वप्नेऽपि विधत्ते ।

न च तस्य प्रमाणत्वं तदेतौः प्रथमस्य च ॥ २९८० ॥

नैव श्रान्ता हि सावसा सर्वा बाह्यानिवन्धना ।

न बाह्यवस्तुसवादस्तात्त्वसाधु विधत्ते ॥ २९८१ ॥

यवमर्थक्रियाज्ञानस्य प्रमाणत्वमिनिश्चये ।

ज्ञानवसा पराकाङ्खाविनिवृत्तेरिति स्थितम् ॥ २९८६ ॥

किञ्च, प्रमाणमविसंवादिज्ञानमित्यनेन अर्थक्रियाभिगमलक्षणफलप्रापकहेतुज्ञानस्यैवं लक्षणमुच्यते, तत्तत्र फलज्ञाने लक्षणानवतारात् कर्तुं तस्यापि ग्रामाण्यमवसीयते इत्यस्य चोपस्थापकाच्चः कथं भवेत् ? तथाहि-अङ्कुरस्य हेतुबीजम् इति लक्षणे सति अङ्कुरस्यापि कथं बीजत्वमिति किं विदुषां प्रश्नो जायते ? यथा च बीजस्य तज्जावोऽङ्कुरदर्श- नादवगम्यते तथा प्रमाणस्यापि तज्जावोऽर्थक्रियालक्षणफलदर्शनात् ।”

तत्सं० पं० पृ० ७८४ । न्यायकुसु० पृ० २०२ । सम्पत्ति० टी० पृ० १५ ।

प्र० क० भा० १५

यदि चात्रार्थक्रियाज्ञानमर्थमन्तरेण स्यात् किमन्यज्ज्ञानमर्थाव्यभिचारि यद्वलेनार्थव्यवस्था ?

अपि च, 'अर्थक्रियाहेतुज्ञानं प्रमाणम्' इति प्रमाणलक्षणं तर्कैर्ध्रुवफलेष्वप्याशङ्क्यते ? यथा 'अङ्कुरहेतुबीजम्' इति बीजलक्षणस्याऽङ्कुरेऽभावात् नैवं प्रश्नः 'कथमङ्कुरे बीजरूपता निश्चीयते' इति, एवमत्रापि ।

यच्चेदमुक्तम् "ओत्रधीश्चाप्रमाणं स्यादितरेरामिरसकृतिः (तिः) ।"

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७७]

इति, तदप्ययुक्तम् ; बीणादिरूपविशेषोपलम्भतस्तच्छब्दविशेषे १० शङ्काव्यावृत्तिप्रतीतेः कथमितरेरामिरसकृतिः ? ओत्रधुद्धेरर्थक्रियालुभवरूपत्वेन स्वतः प्रामाण्यसिद्धेर्ध्रुवगन्धादिबुद्धिबत् । संशयाद्यभावाच्चान्येन संकृत्यपेक्षा । यत्रैव हि संशयादिरसैव साऽपेक्षते नान्यत्र अतिप्रसङ्गात् ।

अथोच्यते अर्थक्रियाऽविसर्वादात्पूर्वस्य प्रामाण्यनिश्चये मणिः १५ प्रभायां मणिवुद्धेरपि प्रामाण्यनिश्चयः स्यात्, तदप्यपर्यालोचिताभिज्ञानम्, एवंभूतार्थक्रियाज्ञानान्मणिवुद्धेरप्रामाण्यस्यैव निश्च-

१ किञ्च । २ जाग्रदृश्याण्यर्थक्रियायात् । ३ स्थितिः । ४ किन्तु तेन शङ्का नीयम् । ५ परेण । ६ अर्थक्रियाज्ञाने प्रमाणलक्षणाशङ्का कर्षं स्यात् । अर्थक्रियाज्ञानरूपे फले अर्थक्रियाहेतुतया प्रमाणात्ता निश्चीयते कथमिति प्रश्नः स्यात् । ७ सप्रत्यये । ८ चक्षुरादिजनितबीभिः । ९ रूपादिज्ञानैः । १० अर्थस्य शब्दस्य क्रिया, उत्पद्यमानत्वं तस्यालुभवरूपत्वेन । ११ किञ्च । १२ स्पर्शरस । १३ अपरेण सजातीयेनार्थक्रियाज्ञानेन । १४ संवादः । १५ ज्ञाने । १६ स्यात् । १७ अन्यथा । १८ प्रतीयमानेपि स्वकीये सुखे अन्त्यापेक्षा स्यात् । १९ ध्यानस्य । २० अतीक्रियमाणे । २१ ता । २२ भिन्नदेशार्थसम्बन्धः ।

1 "....तस्माच्छ्रोत्रधीः प्रमाणं भवत्येव तदन्यामिच्छाश्रुतादिमतिभिर्मनोक्तसम्बन्धसंज्ञायात्, तथाहि—दूराद् बीणादिशब्दभ्रमणात् तदर्थिनो वेण्वादिशब्दसाधर्म्यादुपजातसंशयस्य पुंसः प्रवृत्तौ बीणारूपदर्शनायः प्रागुपजातः संशयः किमर्थं बीणाप्यनिः उत वेणुगीतादिशब्द इति स व्यावर्तते । यत्र च देशे युद्धादिप्रतिशब्दभ्रमणात् प्रवृत्तस्य तदर्थभिगतिर्न भवति तत्र विसर्वादादप्रामाण्यं प्रत्येति ।" तत्त्वसं० पं० पृ० ८०३ ।

2 "यच्च शङ्के पीतज्ञानं मणिप्रभायां मणिज्ञानं तदप्यप्रमाणमेव, तत्र यथाप्रतिभासावसाययोरभावात् । प्रतिभासवशादि प्रसक्तस्य ग्रहणाग्रहणे नत्पर्थोविसर्वादर्शनात् नचात्र यथा स्वभावदेशकालव्यतिरिक्तवस्तुप्रतिभासोऽस्ति नरा (वा ?) देशकालः स एव भवति । देशकालयोरपि वस्तुसमाप्तमेदकत्वात् ।" तत्त्वसं० पं० पृ० ७८२ । न्यायकुसु० पृ० २०२ ।

यात्तेन संवादाभावात् । कुञ्चिकाविवरस्थायां हि मणिप्रभायां मणिज्ञानमे अपर(अपवर)कान्तदेशसम्बन्धे तु मणावर्थक्रियाज्ञान-
मिति भिन्नदेशार्थग्राहकत्वेन भिन्नविषययोः पूर्वोत्तरज्ञानयोः
कथमविसंवादस्तिमिराद्याहितविभ्रमज्ञानैवत् ?

यश्चान्यदुक्तम्—कचित्कूटेपि जयतुङ्गे ज्ञानं प्रमाणं स्यात्कति-
पयार्थक्रियादर्शनात्, तत्र कूटे कूटज्ञानं प्रमाणमेवाऽकूटज्ञानं तु
न प्रमाणं तत्संवादाभावात् । सम्पूर्णचेतनालामो हि तस्यार्थक्रिया
न कतिपयचेतनालाम इति ।

यच्चैकविषयं भिन्नविषयं वा संवादात्मिकमुक्तम्; तत्रैकाधार-
वृत्तिरूपादीनां सादात्म्यप्रतिबन्धेनान्योन्यं व्यभिचाराभावात् । १०
लोभद्वेषादिसादिज्ञानं रूपाद्यविनाभावो रसादिविषयत्वात् । भिन्न-
विषयत्वेष्वर्थैर्वास्तुतविषयाभावेऽस्य रूपज्ञानस्य प्रामाण्यनिश्चयात्म-
कम् । इदंयते हि विभिन्नदेशाकारस्यापि वीणादे रूपविशेषदर्शने
शब्दविशेषे शब्दाव्यावृत्तिः किं पुनर्नामै ? अविनाभावो हि संवाद्य-
संवादात्मिकावनिमित्तं नोन्यत् । १५

१ पूर्वज्ञानस्य । २ जन्तुः । ३ नवित । ४ विभ्रमज्ञानस्य यथा भिन्नदेश-
सम्बन्धार्थक्रियाज्ञानरूपसंवादात् प्रामाण्यम् । ५ शुक्तिशरीरे रजसादिज्ञानं विभ्रमः ।
६ परेण । ७ द्वे । ८ दूषणमुच्यते । ९ अकूटजयतुङ्गस्य । १० जयः । ११ पूर्व-
ज्ञानस्य । १२ परेण । १३ मातुलिङ्गादि । १४ सन्त्यन्तेन । १५ द्वितीयम् ।
१६ कपरसंज्ञानयोः । १७ नामद्वयाभावि । १८ नापस्य नामद्वयाभाविनः ।
१९ नापस्य । २० रूपज्ञानं । २१ विभिन्नविषययोः कपरसंज्ञानयोः शब्दाव्यावृत्तिः
कुत इत्युक्ते आह । २२ एकविषयत्वं भिन्नविषयत्वं वा ।

१ “एकसन्तापवर्तिनो विषयद्वयस्याविनाभावादन्त्यालम्बनमसि ज्ञानमन्यविषयस्य
ज्ञानस्य प्रामाण्यं साधयिष्यति, नहि तौ रूपस्यर्था विनिर्भागेन वर्तेते एकसामग्र्य-
धीवत्त्वात् ।”

तत्सर्ग. पं० १० ८०२ ।

२ “कस्मिंश्चिद् समानवातीयं संवादकज्ञानं भवति, यथा देवदत्तस्य प्रथमं वदज्ञाने
प्रवृत्ते वददत्तस्यैव तसिज्ञेव वटे वदज्ञानम् ।...कस्मिंश्चिद् भिन्नवातीयमपि, संवादकज्ञानं
भवति । यथा प्रथमस्य प्रवर्तकजलज्ञानस्य उत्तरकालमाविसिज्ञानपानावागारनाशव्यक्रिया-
ज्ञानम् ।...भवति हि एकसन्तापप्रमथम् अन्धकारकुपितालोकप्रमथस्य कुम्भज्ञानस्य
उत्तरकालमाविसिज्ञानमिरालोकप्रमथं तसिज्ञेव कुम्भे कुम्भज्ञानम् । भिन्नविषयं तु
एकसन्तापप्रमथं संवादकं यथा रथाङ्गमिश्रुनादैकतरदसैवस्य अन्धतरदर्शनम् ।...न
खलु निश्चितं भिन्नविषयं संवेदनं संवादकमिति नूनम् । किं तर्हि ? यत्र पूर्वोत्तरज्ञान-
गोचरयोः अविनाभावस्तत्रैव भिन्नविषयत्वेऽपि ज्ञानयोः संवाद्यसंवादकभाव इति ।...
अविनाभावो हि संवाद्यसंवादकभावनिमित्तं नान्यत् ।” सभा० रत्ना० पृ० २५३ ।

संवादज्ञानं किं पूर्वज्ञानविषयं तदविषयं वा; इत्याद्यप्यसमीक्षित-
ताभिधानम्; न खलु संवादज्ञानं तद्भाहित्वेनास्य प्रामाण्यं व्यवस्था-
पयति । किं तर्हि ? तत्कार्यविशेषत्वेनाश्यादिकमिव धूमादिकम् ।

सर्वप्राणभूतां प्रामाण्ये सन्देहविपर्ययासिद्धेश्च; इत्यप्ययुक्तम्;
५ प्रेक्षापूर्वकारिणो हि प्रमाणाप्रमाणचिन्तायामधिक्रियन्ते नेतरे । ते
च कासाञ्जिदक्षा(ञ्जिज्ञा)नव्यक्तीनां विसंवाददर्शनात्ताताशङ्काः
कथं ज्ञानमात्रात् 'अयमित्थमेवार्थः' इति निश्चिन्वन्ति प्रामाण्यं
वास्य ? अन्यथैषां प्रेक्षावच्चैव हीयेत ।

प्रमाणे बाधककारणदोषज्ञानाभावात्प्रामाण्यावसायः; इत्यप्य-
१० मिधानमात्रम्; तदभावाच्चो हि बाधकाग्रहणे, तदभावनिश्चये वा
स्यात् ? प्रथमपक्षे भ्रान्तज्ञाने तद्भावेऽपि तदग्रहणं कञ्चित्कालं
दृष्टम्, एवमत्रापि स्यात् । 'भ्रान्तज्ञाने कञ्चित्कालमग्रहेऽपि
कालान्तरे बाधकग्रहणं, सम्यग्ज्ञाने तु कालान्तरेऽपि तदग्रहणम्'
इत्ययं विमर्गः सर्वविदां नास्मादशाम् । बाधकाभावनिश्चयोऽपि
१५ सम्यग्ज्ञाने प्रवृत्तेः प्राक्, उत्तरकालं वा ? आद्यविकल्पे भ्रान्त-
ज्ञानेऽपि प्रमाणत्वप्रसङ्गः । द्वितीयविकल्पे तन्निश्चयस्याकिञ्चित्क-
रत्वं तमन्तरेणैव प्रवृत्तेरुत्पन्नत्वात् । न च बाधकाभावनिश्चये
किञ्चिन्निमित्तमस्ति । अनुपलब्धिर्ह्यस्तीति चेत्किं प्राक्काला,
उत्तरकाला वा ? न तावत्प्राक्काला; तस्याः प्रवृत्त्युत्तरकाल-
२० भाविबाधकाभावनिश्चयनिमित्तत्वासम्भवात् । न ह्यन्यकालानु-

१ पूर्वज्ञानं विषयो यस्य । २ अव्यक्रियाज्ञानं । ३ कर्तुं । ४ अश्यादिकं कर्मसामा-
पन्नं यथा व्यवस्थापयति धूमादिकं कर्तुं, कुतस्तत्कार्यत्वाच्च न तद्भाहित्वादित्यर्थः ।
५ कर्तुं । ६ बाधक । ७ अप्रेक्षाकारिणो नराः । ८ मरीचिकादौ । ९ किन्तु नैव ।
१० बाधकाभावः । ११ उभयोः । १२ सत्यजलज्ञाने । १३ उभयोः (कोट्योः) ।
१४ देशकालपेक्षया । १५ ज्ञानपानादिलक्षणायाः । १६ किञ्च । १७ कारणम् ।
१८ विवादापन्ने प्रमाणे बाधकं नास्ति अनुपलब्धेरिति । १९ नेदं अलमिति ।

१ "नहि संवादज्ञानं तद्भाहित्वेन तस्य प्रामाण्यं व्यवस्थापयति, किन्तु तत्कार्य-
विशेषत्वेन यथा धूमोऽग्निर् इति पराभ्युपगमः ।" सम्प्रति० टी० पृ० १६ ।

२ "तदभावाच्चो हि बाधकाग्रहणे, तदभावनिश्चये वा ?" तत्त्वोप० लि० पृ० ३ ।
सम्प्रति० टी० पृ० १७ ।

३ "बाधकानुपलब्धिः किं प्रवृत्तेः प्राग्भाविनी—बाधकाभावनिश्चयस्य प्रवृत्त्युत्तर-
कालभाविनी निमित्तम्, अथ प्रवृत्त्युत्तरकालभाविनी इति विकल्पद्वयम् ?"
सम्प्रति० टी० पृ० १७ ।

पलब्धिरन्यकालमभावनिश्चयं च विदधात्यतिप्रसङ्गात् । नाप्युत्तरकाला, प्राक् प्रवृत्तेः 'उत्तरकालं बाधकोर्पलब्धिर्न भविष्यति' इत्यसर्वविदा निश्चेतुमशक्यत्वेनासिद्धत्वात् । प्रवृत्त्युत्तरकाल-भाविनिश्चयमात्रनिमित्तत्वे न किञ्चित्फलम् तस्याकिञ्चित्कारत्वात् ।

किञ्च, असौ सर्वसम्बन्धिनी, आत्मसम्बन्धिनी वा? प्रथम-^५यक्षे असिद्धा, न खलु 'सर्वे प्रमातारो बाधकं नोपलभन्ते' इत्यवगर्धैर्दिना निश्चेतुं शक्यम् । नाप्यात्मसम्बन्धिनी, तस्याः परचेतोवृत्तिविशेषैरनैकान्तिकत्वात् । तन्नानुपलब्धिर्निमित्तम् ।

नापि सर्वोदोर्नैवस्थोऽप्रसङ्गात् । कारणदोषाभावेऽप्ययमेव न्यायः ।

एवं 'त्रिचैतुरङ्गान्' इत्याद्यपि स्वगृहमान्यम्; 'कस्यचिद्विज्ञानस्य ^{१०}प्रामाण्यं पुनर्प्रामाण्यं पुनः प्रमाणता' इत्यवस्थात्रयदर्शनाद्वाधके तद्वाधकादौ चावस्थात्रयमाशङ्कमानस्य परीक्षकस्य कथं नापरा-
पेक्षा येनानवस्था न स्यात्?

'आशङ्केत हि यो मोहात्' इत्याद्यपि विभीषिकामात्रम्, यतो नामिशापमात्रात्प्रेक्षावतां प्रमाणमन्तरेण बाधकोऽशङ्का व्यावर्त्तते । ^{१५}न चास्या व्यावर्त्तकं प्रमाणं भवन्मतेऽस्तीत्युक्तम् । कारणदोषेक्ष-
नेपि पूर्वैण जाताशङ्कस्य तत्कारणदोषान्तरापेक्षायां कथमनवस्था न स्यात्? तस्य तत्कारणदोषग्राहकज्ञानाभावमात्रतः प्रमाण-
त्वाज्ञानवस्था, यदाह—

“यदा स्वतः प्रमाणत्वं तदान्यैव संशयते ।

२०

१ पूर्वैण जाताशङ्कस्य । २ बाधकस्य । ३ सम्प्रत्यक्षं यदानुपलब्धिः कालान्तरेऽप्यत्र यदामर्शं कुर्वीदित्यतिप्रसङ्गात् । ४ जलादिज्ञाने । ५ बाधकानाम् । ६ अनुपल-
म्बस्य । ७ प्रवृत्त्यर्थी हि निश्चयोऽवलोक्यते प्रवृत्तेश्च जातत्वाभिज्ञयस्याकिञ्चित्कारत्वम् ।
८ अनुपलब्धिः । ९ किञ्चिन्वेन । १० अनुपलम्बेः । ११ लब्धुमशक्येः ।
१२ बाधकामावनिश्चयं निमित्तम् । १३ अन्यथा । १४ पूर्वैण जाताशङ्कस्य संवादे
संवादान्तरापेक्षणात् । १५ इदं जलं पुनरिदं जलं पुनरिदं जलम् । १६ विवक्षि-
तस्य । १७ बाधकात् । १८ पञ्चमज्ञानलक्षणसंवादप्रमाणम् । १९ चतुर्थज्ञानस्य ।
२० प्रत्यक्षादिना प्रामाण्यग्रहणामावे प्रामाण्ये बाधकशङ्काव्यावर्त्तनस्य कर्तुमशक्य-
त्वात् । २१ द्वितीयविकल्पः । २२ विज्ञानकारणवैजादिकम् । २३ काचकामलादि ।
२४ ज्ञानेन । २५ इन्द्रियाणामतीन्द्रियत्वादभावेन । २६ संवादकज्ञानम् । २७ कृतः ।

१ “किञ्च, बाधकानुपलब्धिः सर्वसम्बन्धिनी किं तद्विशेषहेतुः उत आत्मसम्-
बन्धिनी इति पुनरपि पक्षद्वयम् ।”

सम्प्रति० टी० पृ० १७ ।

निवर्त्तते हि मिथ्यात्वे दोषाज्ञानादर्थज्ञतः” ॥

[ग्री० श्लो० सू० २ श्लो० ५२]

प्रागेव विहितोर्त्तरम् । न च दोषाज्ञानात्तदुर्भावः, सत्सपि तेषु
तदज्ञानसम्भवात् । सम्यग्ज्ञानोत्पादनशक्तिवैपरीत्येन मिथ्याप्रत्य-
५ योत्पादनयोग्यं हि रूपं तिमिरादिनिमित्तमिन्द्रियदोषः, स चाती-
न्द्रियत्वात्सन्नपि नोपलक्ष्यते । न च दोषाः ज्ञानेन व्याप्ता येन
तन्निवृत्त्या निवर्त्तेरन् । ततोऽयुक्तमिदम्—

- “तैस्मात्सतः प्रमाणत्वं सर्वत्रौत्सर्गिकं स्थितम् ।
बोधकरणदुष्टत्वज्ञानाभ्यां तदपोचते ॥
१० परीधीनेपि वै तैस्मिन्नानवस्था प्रसज्यते ।
प्रमाणाधीनमेतन्नि स्वतस्तच्च प्रतिष्ठितम् ॥
प्रमाणं हि प्रमाणेन यथा नान्येन साध्यते ।
न सिध्यत्यप्रमाणत्वमप्रमाणाच्चयैव हि ॥
बोधकप्रत्ययस्तावदर्थान्यत्वाऽवधारणम् ।
१५ सोऽनपेक्षः प्रमाणत्वात्पूर्वज्ञानमपेक्षते ॥
यैत्रौपि त्वपवौदस्य स्यादपेक्षा कंचित्पुनः ।
जाताशङ्कस्य पूर्वैण सार्थान्येन निवर्त्तते ॥

१ शङ्कया यदापादितमप्रामाण्यम् । २ स्वच्छनीत्यादि । ३ संवादमन्तरेण ।
४ कारणदोषाभावेऽप्ययमेव न्याय इति । ५ किञ्च । ६ दोषाभावः । ७ किञ्च ।
८ अनवस्था समर्पिता यतः । ९ अत्रे वक्ष्यमाणलक्षणम् । १० भीमांसकमन्त्रे ।
प्रमेयज्ञानप्रामाण्ये संवादज्ञानापेक्षाया अनवस्थाचक्रकेतरेतराभवा यतः । ११ एवं
नैस्तत्त्वज्ञानस्य ज्ञानस्य ज्ञानादेः प्रमाण्या स्यादित्युक्ते सत्याह । १२ यथाऽप्रामाण्यं
बाधककारणदोषज्ञानापेक्षं तथा बाधकादिनाऽपरमपेक्षणीयमपरेणाप्यपरमपेक्षणीयमित्यन-
वस्था कृतो न स्यादित्युक्त आह । १३ ज्ञानादेरप्रामाण्ये । १४ अप्रामाण्यं ।
१५ प्रमाणाधीनं स्यादिति अप्रामाण्यं तदाऽनवस्था न स्यादेव किं तदि अप्रामाण्यस्य
प्रमाणमन्तरेणैव सिद्धिः स्यात्तत्प्राप्रामाण्यं स्वतः स्यादित्युक्ते आह । १६ प्रमाण-
मन्तरेण । १७ बाधकप्रत्ययः पुनः क इत्युक्ते आह । १८ ज्ञानं । १९ परानपेक्षः ।
२० स्वतः । २१ मरीचिकायां जलज्ञानम् । २२ बाधते । २३ विषये । २४ यदा
बाधकप्रत्ययोऽपरमपेक्षेत तदा किम् । २५ बाधकज्ञानस्य । २६ अप्रमादन्तरस्य ।
२७ अर्थे । २८ नरस्य । २९ पूर्वैण ज्ञानेन । ३० अपरेण बाधकप्रत्ययेन पूर्व-
सञ्जातीयेन संवादकेन ।

१ “न च दोषा ज्ञानेन येन व्याप्ता येन तन्निवृत्त्या निवर्त्तेरन्” सम्प्रति० टी० पृ० १८ ।

२ तस्मात्सतः इत्यादयो नवश्लोकाः तत्त्वसंग्रहे किञ्चिद् पाठभेदेन पूर्वपक्षरूपेण
उपलभ्यन्ते (पृ० ७५८-६०) । सम्प्रति० टी० पृ० १८-१९ ।

बाधकान्तरमुत्पन्नं यद्यस्यान्विच्छतोऽपरम् ।

ततो मध्यमवाधेन पूर्वस्येव प्रमाणता ॥

अथान्यैदप्रयत्नेन सम्यगन्वेषणे कृते ।

मूलाभावाच्च विज्ञानं भवेद्बाधकवाधनम् ॥

ततो निरपवादत्वात्तेनैवाद्यं बलीयसा ।

बाध्यते तेन तस्यैव प्रमाणत्वमपोद्यते ॥

एवं परीक्षकज्ञानं तृतीयं नातिवर्त्तते ।

तेनैवाजातबाधेन नाशङ्क्यं बाधकं पुनः ॥”

कथं वै चोदनाप्रभवचेतसो निःशङ्कं प्रामाण्यं गुणवतो वक्रर-
भावेनाऽपवादकदोषाभावासिद्धेः ? ननु वक्रगुणैरेवापवादकदो- १०
षाभावो नैवेत्येतत्तदभावेऽप्यनाश्रयाणां तेषामनुपपत्तेः । तदुक्तम्—

“शब्दे दोषोद्भवस्तावद्वक्रधीन इति स्थितम् ।

तदभावः केचित्तावद्गुणवद्वक्रकृत्वतः ॥

तद्गुणैरेपेक्ष्यमानां शब्दे सङ्क्रान्त्यसम्भवात् ।

यद्वा वक्ररभावेन न स्युर्दोषा निरौश्रयाः ॥”

[मी० खो० सू० २ खो० ६२-६३]

इत्यपि प्रलापमात्रमपौरुषेयत्वस्यासिद्धेः । ततश्चेदमयुक्तम्—

“तत्रापवादनिर्मुक्तिर्वैक्रमबाधोऽप्येव ।

वेदे तेनैव प्रमाणत्वं नाशङ्कामपि गच्छति ॥ १ ॥”

[मी० खो० सू० २ खो० ६८] २०

स्थितं चैतच्चोदनाजनिता बुद्धिर्न प्रमाणमनिराकृतदोषकारण-
प्रभवत्वात् द्विषन्नादिबुद्धिर्वैत् । न चैतदसिद्धम्, गुणवतो वक्रर-
भावे तत्र दोषाभावासिद्धेः । नाप्यनैकान्तिकं विरुद्धं वा; कुष्ट-

१ बाधकप्रलयस्य सनादीयसंवादरूपापरवाक्योत्पत्त्यभावेन विनातीर्थं बाधकान्तर-
मुत्पद्यते यदा उदा क्रि० २ ता । ३ तृतीयज्ञानस्य बाधकं चतुर्वर्तनं । ४ इच्छा-
मन्तरेण । ५ उत्पद्यते । ६ प्रामाण्यं । ७ तृतीयस्य । ८ तृतीयस्यानवधिं ज्ञानम् ।
९ बाधकस्य द्वितीयज्ञानस्य । १० बाधकज्ञानं न भवेत्ततः । ११ द्वितीयज्ञानेन ।
१२ ज्ञानं । १३ कारणेन । १४ निराक्रियते । १५ द्वितीयज्ञानेन । १६ एवं
चेदनवस्था कुतो न स्यादित्युक्ते सत्याह । १७ तृतीयं ज्ञानं नातिवर्त्तते यतः ।
१८ नरेण । १९ सतः प्रामाण्ये दूषणान्तरम् । २० किञ्च । २१ ज्ञानस्य ।
२२ परेण यथा । २३ दोषाणां । २४ नान्ये । २५ निराकृतानां दोषाणाञ्च ।
२६ शब्दे । २७ पुनः । २८ वेदे । २९ अप्रामाण्यं । ३० अनायासात्साध्या ।
३१ स्थानम् । ३२ कारणेन । ३३ ज्ञानं । ३४ वेदे ।

कारणप्रभवत्वाप्रामाण्ययोरविनाभावस्य मिथ्याज्ञाने सुप्रसिद्धि-
(द्व)त्वादिति ॥

सिद्धं सर्वजनप्रबोधजननं सैद्योऽकलङ्काश्रयम्,
विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतो नित्यं मनोनन्दनम् ।
निर्दोषं परमागमार्थविषयं प्रोक्तं प्रमालक्षणम् ।
युक्त्या चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्द्धमानं जिनम् ॥१॥

परिच्छेदावसाने आशिपमाह । चिन्तयन्तु । कम् ? श्रीवर्द्धमानं
तीर्थकरपरमदेवम् । भूयः कथम्भूतम् ? जिनम् । के ? सुधियः ।
के ? चेतसि । कया ? युक्त्या ज्ञानप्रधानतया । भूयोपि कथम्भू-
१० तम् ? सिद्धं जीवन्मुक्तम् । भूयोपि कीदृशम् ? सर्वजनप्रबोधजन-
नम् सर्वे च ते जनाश्च तेषां प्रबोधस्तं जनयतीति सर्वजनप्रबोध-
जननस्तम् । कथम् ? सद्यः ह्यदिति । भूयोपि कीदृशम् ? अकलङ्का-
श्रयम्-कलङ्कानां द्रव्यकर्मणामभावः अकलङ्कस्तस्याश्रयस्तम् ।
भूयोपि कथम्भूतम् ? मनोनन्दनम् । कथम् ? नित्यं सर्वदा ।
१५ कुतः ? विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतः-विद्या केवलज्ञानमानन्दः सुखं
समन्ततो भद्राणि कल्याणानि समन्तभद्राणि विद्या चानन्दश्च
समन्तभद्राणि च तान्येव गुणास्तेभ्यः ततः । भूयोपि कीदृशम् ?
निर्दोषं रागादिभावकर्मरहितम् । भूयोपि कथम्भूतम् ? परमाग-
मार्थविषयम्-परमागमार्थो विषयो यस्य स तथोक्तस्तम् । भूयोपि
२० कीदृशम् ? प्रोक्तं प्रकृष्टमुक्तं वचनं यस्यासौ प्रोक्तस्तम् । भूयोपि
कथम्भूतम् ? प्रमालक्षणम् ॥ श्रीः ॥

इति श्रीप्रमानन्दविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षाशु-

खालहारे प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ॥ श्रीः ॥

१ न सम्मग्नाने । २ कुतः कुतश्च । ३ ह्यदिति । ४ उत्पन्नान्तरम् । ५ जलि-
न्यदे सिद्धप्रमाणलक्षणवर्द्धमानस्तामिसम्पत्तित्वेनावर्धनं बोद्धव्यम् । ६ द्रव्यभाषकसै-
यामभावस्तस्याश्रयम् । ७ प्रमाणलक्षणस्य सम्मग्नज्ञानरूपत्वात् । ८ सर्वदा ।
९ रागादिभावकर्मरहितम् । १० वसः (बहुजीविसमाससंज्ञेयमुपनिषदा जेनेन्द्रव्याकरणे) ।
११ प्रमाणलक्षणस्य सम्मग्नज्ञानरूपत्वात् । १२ नाज्ञानप्रधानतया ।

। श्रीः ।

२ अथ प्रत्यक्षोद्देशः

अथ प्रमाणसामान्यलक्षणं व्युत्पाद्येदानीं तद्विशेषलक्षणं व्युत्पादयितुमुपक्रमते । प्रमाणलक्षणविशेषव्युत्पादनस्य च प्रतिनियतप्रमाणव्यक्तिनिष्ठत्वात्तदभिप्रायवांस्तद्व्यक्तिसंख्याप्रतिपादनपूर्वकं तल्लक्षणविशेषमाह—

तद्वेधेति ॥ १ ॥

५

तत्सापूर्वेत्यादिलक्षणलक्षितं प्रमाणं द्वेधा द्विप्रकारम्, सकल-प्रमाणमेवैवमेदानामत्रान्तर्भावविभावनात् । 'परंपरिकल्पितैक-द्विज्यादिप्रमाणसंख्यानियमे तदघटनात्' इत्याचार्यः स्वयमेवाग्रे प्रतिपादयिष्येति । 'ये हि प्रत्यक्षमेकमेव प्रमाणमित्याचक्षते न तेषामनुमानादिप्रमाणान्तरस्यात्रान्तर्भावः सम्भवति तद्विलक्षण-१० त्वाद्विभिन्नसामग्रीप्रभवत्वाच्च ।

ननु चास्याऽप्रामाण्यान्तर्भावविभावनया किञ्चित्प्रयोजनम् । प्रत्यक्षमेकमेव हि प्रमाणम्, अगौणत्वात्प्रमाणस्य । अर्थनिश्चायकं हि ज्ञानं प्रमाणम्, न चानुमानादर्थनिश्चयो घटते-सामान्ये सिद्धसाधनाद्विशेषेऽनुगमाभावात् । तदुक्तम्— १५

विशेषेऽनुगमाभावः सामान्ये सिद्धसाधनम् [] इति ।

किञ्च, व्याप्तिग्रहणे पक्षधर्मतावगमे च सत्यनुमानं प्रवर्तते । न च व्याप्तिग्रहणमव्यक्षतः, अस्य सचिहितमात्रार्थग्राहित्वेनाखिल-पदैर्योक्षेपेर्न व्याप्तिग्रहणेऽसौमर्यात् । नाप्यनुमानैतः, अस्य व्याप्ति-

१ अनन्तरम् । २ कथयित्वा । ३ विशदीकर्तुम् । ४ प्रारभते । ५ परिच्छेद-
वतारः । ६ मेद । ७ अर्थं त्रिविधमर्थं पञ्चविधमित्यादिलक्षण । ८ व्यक्तियोगे
लक्षणैकत्वमन्तर्भावः । ९ निश्चयनात् । १० कृतं घटत् । ११ तदघटनं कथमाचार्यः
प्रतिपादयिष्यतीत्युक्ते आह । १२ त्वार्थकः । १३ वैशवाक्येन । १४ इन्द्रियस्त्रि ।
१५ अनुमानादेः । १६ किञ्च । १७ साध्ये । १८ न हि अत्रिमात्रे कसचिद्वि-
प्रतिपत्तिरस्ति सामान्या च प्रवर्तमानः कथं नियतमभिमुखमेवावश्यं प्रवर्तते ।
१९ यो यो ब्रूयात् स स ताण्ड्याग्निमानिस्त्वयामावः । २० नानुमानं प्रमाणं
व्याप्तिश्चयमावधत्तः । २१ हेतोः । २२ उपपत्तेः । २३ अत्राचार्यमाचार्यमाह-
चसादि । २४ स्वीकरणेन । २५ प्रलङ्घनम् । २६ सर्वत्र भूयोऽयिना व्याप्तः
तदन्यव्यतिरेकानुविधानात् । २७ व्याप्तिग्रहणम् ।

ग्रहणपुरस्सरत्वात् । तत्राप्यनुमानतो व्याप्तिग्रहणेऽनवस्थेतरतरा-
श्रयदोषप्रसङ्गः । न चान्यत्रमाणं तद्वाहकमस्ति । तत्कुतोनुमानस्य
प्रामाण्यम् ? इत्यसमीक्षितामिधानम्, अनुमानदेरप्यध्यक्षवत्प्र-
तिनियतस्वविषयव्यवस्थायामविसंवादकत्वेन प्रामाण्यप्रसिद्धेः ।
५ प्रत्यक्षेऽपि हि प्रामाण्यमविसंवादकत्वादेव प्रसिद्धम्, तच्चान्यत्रापि
समानम् अनुमानादिनाप्यध्यवसितेऽर्थे विसंवादाभावात् ।

यच्च-अगौणत्वात्प्रमाणस्येत्युक्तम्, तत्रानुमानस्य कृतो [गौण-
त्वम्,] गौणार्थविषयत्वात्, प्रत्यक्षपूर्वकत्वाद्वा ? न तावदाद्यो
विकल्पः, अनुमानस्याप्यध्यक्षवद्वास्तवसामान्यविशेषात्मकार्थवि-
१० षयत्वाभ्युपगमात् । न खलु कल्पितसौमान्यार्थविषयमनुमानं
सौगतवज्जनैरिष्टम्, तद्विषयत्वस्यानुमाने निराकरिष्यमाणत्वात् ।
प्रत्यक्षपूर्वकत्वाच्चानुमानस्य गौणत्वे प्रत्यक्षस्यापि कस्याचिदनुमा-
नपूर्वकत्वाद्गौणत्वप्रसङ्गः, अनुमानात्साध्यार्थं निश्चित्य प्रवर्त्त-
मानस्याध्यक्षप्रवृत्तिप्रतीतेः । ऊहाख्यप्रमाणपूर्वकत्वाच्चास्याध्यक्ष-
१५ पूर्वकैत्वमसिद्धम् ।

यद्योक्तम् 'न च व्याप्तिग्रहणमध्यक्षतः' इत्यादि, तदप्युक्तिमा-
त्रम्, व्यक्तेः प्रत्यक्षानुपलम्भबलोद्भूतोहाख्यप्रमाणात्प्रसिद्धेः । न
च व्यक्तीनामानैतत्वं देशादिव्यभिचारो वा तत्प्रसिद्धेर्वाचकः,
सामान्यद्वारेण-प्रतिर्वन्धावधारणात्तस्य चानुगताऽबाधितप्रत्यक्ष-
२० विषयत्वादस्तित्वम् । प्रसाधयिष्यते च "सामान्यविशेषात्मा
तदर्थः" [परीक्षासुख ४-१] इत्यत्र वस्तुभूतसामान्यसद्भावः ।

न "क्षोदप्रमाणमन्तरेण" प्रत्यक्षमेव प्रमाणमगौणत्वात् इत्याद्य-
मिधानं शक्यम् । तथैहि—अगौणत्वमविसंवादित्वं वा लिङ्गं नाम-

१ आध्यानुमानेऽपरानुमानेन व्याप्तिप्रतिपत्तौ जनकत्वा । आध्यानुमानेन द्वितीयानु-
माने व्याप्तिप्रतिपत्तौ हतरेतराश्रयः । २ पक्षपर्यन्तावगमे च सत्यनुमानं प्रवर्त्तत इत्युक्तिं
तत्र पक्षप्रतिपत्तिश्च प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा । न तावत्प्रत्यक्षतः पक्षप्रतिपत्तिरनुमाना-
नर्थक्यप्रसङ्गात् । ३ नाप्यनुमानतः पक्षप्रतिपत्तिरनुमानेऽपि पक्षप्रतिपत्तिः प्रत्यक्षतोऽनु-
मानतो वा । न तावत्प्रत्यक्षतः सक्रमोपानुवद्वा । नाप्यनुमानतोऽनवस्थाप्रसङ्गात् ।
कथमनुमानेऽप्यनुमानात्पक्षप्रतिपत्तिरिति । ४ व्याप्तिग्रहणमात्रे सति । ५ ग्रन्थे ।
५ उपचरित । ६ परमार्थरूप । ७ अन्यापोहरूप । ८ व्याप्तिकानं प्रत्यक्षम् ।
९ तुः । १० ता । ११ किञ्च । १२ साधनम् । १३ अक्षिभूमव्यक्तयोऽनन्ता अतः
सम्बन्धोऽवधारयितुं न शक्यः, यो ब्रूयात् सोऽक्षिमात् पर्वत इति देशादिव्यभिचारो
वा सम्बन्धोऽवधारकः । १४ कालः । १५ ज्ञेयः । १६ भूतत्वेनाशित्वेन । १७ साध्य-
साधनयोर्विनाभाव । १८ गौणोऽपि साधनस्य । १९ प्रमाणार्थः । २० किञ्च ।
२१ सर्वमनुमानमप्रमाणं गौणत्वमित्यादि च । २२ सक्रमेव समर्थयन्ते आध्यायाः ।

सिद्धप्रतिबन्धं सत् प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यमनुमोपयेदतिप्रसङ्गात् ।
प्रतिबन्धप्रसिद्धिश्चान्वयवेनाभ्युपगन्तव्या, अन्यथा यस्यामेव
प्रत्यक्षैव्यक्तौ प्रामाण्येर्नागौणत्वादेरसौ सिद्धस्तस्यामेवागौणत्वादे-
स्तत्सिध्येत्, न व्यक्त्यन्तरे तत्र तस्यासिद्धत्वात् । न चासौ साक-
ल्येनाध्यक्षात्सिध्येत्तस्य सन्निहितमात्रविषयकत्वात् । अथैकत्र^५
व्यक्तौ प्रत्यक्षेणान्योः सैव्यन्धं प्रतिपद्यार्थं त्रायैवैविधं प्रत्यक्षं
प्रमाणमित्यगौणत्वादिप्रामाण्ययोः सर्वोपसंहारेण प्रतिबन्धप्रै-
सिद्धिरित्यभिधीयते; न अविषये सर्वोपसंहारेण प्रतिपत्तेरयो-
गोत् । सर्वोपसंहारेण प्रतिपत्तिर्नानामान्तरेणोद्भवोक्तः स्यात् ।
अग्निधूमादीनां वैर्वैभविनाभावप्रतिपत्तिः किञ्च स्यात्? येन १०
'अनुमानमप्रमाणमविनाभावस्याखिलपदार्थाक्षेपेर्ण प्रतिपत्तुमश-
क्यत्वात्' इत्युक्तं शोभेत ।

किञ्चानुमानमात्रस्याप्रामाण्यं प्रतिपादयितुमभिप्रेतम्, अती-
न्द्रियार्थानुमानस्य वा ? प्रथमपक्षे प्रतीतिसिद्धसकलव्यवहारो-
क्तेर्वै । प्रतीयेन्ते हि कुतश्चिदविनाभाविनोऽर्थोदर्थान्तरं प्रति-^{१५}
नियतं प्रतियन्तो लौकिकाः, न तु सर्वसात्त्वैम् । द्वितीयपक्षे
तु कथमतीन्द्रियप्रत्यक्षेतरप्रमाणानामगौणत्वादिनां प्रामाण्येतर-
व्यवस्था ? कथं वै परचेतसोऽतीन्द्रियस्य व्यापारव्याहारादिका-
र्यविशेषात् प्रतिपत्तिः?, सैर्गोप्यैवैवेतावेस्तथाविधस्य प्रतिषेधो-

१ साध्येनाकाशविनाभावः । २ आपवेत् । ३ भूचवनवर्कितोत्पिपसाणि भू-
लिङ्गात्साध्यप्रतिपत्तिः सादृश्यावसम्भन्तत्वाविशेषात् । ४ साकल्येन । ५ परेण ।
६ साकल्येन प्रतिबन्धसिद्धेरनभ्युपगमे । ७ अग्निप्रत्यक्षविशेषे महानसाग्निशाने ।
८ सप्त । ९ अविसर्वादित् । १० जविनाभावः । ११ प्रत्यक्षप्रामाण्यम् । १२ प्रकृत-
व्यक्तेरन्यव्यक्तौ । १३ षट्प्रत्यक्षविशेषे । १४ अविनाभावस्य । १५ अग्निप्रत्यक्ष-
विशेषे । १६ अगौणत्वादिप्रामाण्ययोः साध्यसाधनयोः । १७ जविनाभावम् ।
१८ षटादिसकलप्रत्यक्षे व्यक्त्यन्तरे । १९ अगौणसमिसवावकम् । २० वायव्यप्रत्यक्षं
वायव्यसर्वभूगौणमविसर्वादकमिति । २१ जविनाभावस्यतिः । २२ परेण । २३ इति चेन्न ।
२४ स्वीकारेण । २५ जविनाभावस्य । २६ किञ्च । २७ प्रत्यक्षप्रमाणप्रकारेण ।
२८ स्वीकारेण । २९ मन्त्रा । - ३० तवेष्टम् । - ३१ नाशः । - ३२ आपन्ते ।
३३ भूचवनवर्कितम् । ३४ अग्निप्रत्यक्षम् । ३५ आनन्दः । - ३६ प्रत्यक्षानि चैतराणि
आनुयावादीनि प्रत्यक्षेतराणि - अतीन्द्रियाणि च तानि प्रत्यक्षेतराणि चातीन्द्रियप्रत्यक्षे-
तराणि । तानि च तानि प्रामाण्यमिति च । सन्तानाम्तरवर्तित्वेन प्रत्यक्षानुमाननोपरी-
न्द्रियत्वम् । ३७ अविसर्वादिप्रत्यक्षविस्वादिस्त्वेन । ३८ किञ्च । ३९ शिष्यादिकानस्य ।
४०, कथं वा - ४१ अदृष्टम् । - ४२ सर्वम् । - ४३ अतीन्द्रियस्य ।

ऽनुपलब्धेः स्यात् ? सौम्यं चार्वाकः “प्रमाणस्यागौणत्वावनुमाना-
दर्शननिश्चयो दुर्लभः” [] इत्याचक्षेणः कथमत एवाच्यक्षादेः
प्रामाण्यादिकं प्रसाधयेत् ? प्रसाधयन्वा कथमतीन्द्रियेतरार्थविष-
यमनुमानं न प्रमाणयेत् ? उक्तं च—

५ “प्रमाणेतरसामान्यैस्त्रितेरन्यधियो गतेः ।

प्रमाणान्तरसद्भावः प्रतिषेधाच्च कस्यचित् ॥” [] इति ।
तच्चानुमानस्याप्रामाण्यम् ।

अस्तु नाम प्रत्यक्षानुमानभेदात्प्रमाणद्वैविध्यमित्यारेकापनोदा-
र्यम्—

१० प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥ २ ॥

इत्याह । न खलु प्रत्यक्षानुमानयोर्व्याख्येयागमादिप्रमाणभेदा-
नामन्तर्भावः सम्भवति यतः सौगतोपकल्पितः प्रमाणसंख्या-
नियमो व्यवतिष्ठेत् ।

प्रमेयद्वैविध्यात् प्रमाणस्य द्वैविध्यमेवेत्यप्यसम्भाव्यम्, तद्वै-
१५ विध्यासिद्धेः, ‘एक एव हि सामान्यविशेषात्प्रार्थः प्रमेयः प्रमाणस्य’
इत्येवैव वक्ष्यते । किञ्चानुमानस्य सामान्यमात्रगोचरत्वे ततो
विशेषेष्वप्रवृत्तिप्रसङ्गः । न खल्वन्यविषयं ज्ञानमन्यत्र प्रवर्तकम्
अतिप्रसङ्गात् । अथ लिङ्गानुमितात्सामान्याद्विशेषप्रतिपत्तेरित्यत्र
प्रवृत्तिः, नन्वेवं लिङ्गादेव तत्प्रतिपत्तिरस्तु किं परम्परया ?
२० ननु विशेषेषु लिङ्गस्य प्रतिबन्धप्रतिपत्तेरभावात्कथमतस्तेषां प्रति-
पत्तिः ? तदैतत्सामान्येऽपि समौनम् । अथाप्रतिपन्नप्रतिबन्धमपि
सामान्यं तेषां शमकम्, लिङ्गमप्येवविधं तद्वमकं किञ्च स्यात् ?

२ प्रत्यक्षं प्रमाणमगौणत्वात्, अनुमानमप्रमाणं गौणत्वादित्याचक्षेणः । ३ आदि-
पदेनानुमानस्याप्रामाण्यम् । ४ इन्द्रियाण्यतिशान्ताः स्वर्गादयः । ते च इतरे च
प्रत्यक्षप्राप्ता अस्यादयः । अतीन्द्रियेतरे ते च ते अर्थाश्च ते विषया यस्यानुमानस्य तत् ।
५ अप्रमाण । ६ त्व । ७ का । ८ परिधानात् । ९ परोक्ष । १० स्वर्गादिः । १० आह
सौगतः । ११ परोक्ष । १२ अपि तु न कुत्रोपि स्थितिं कुर्वत् । १३ चतुर्धाध्याये ।
१४ (ततोऽनुमानादित्यर्थः) अग्निपरमाणुलक्षणस्तल्लक्षणेषु । १५ षटविषयं ज्ञानं पटे
प्रवर्तकं स्यात् । १६ घृम । १७ अक्षिमत्त्वात् । १८ विशेषेषु पुत्रवत्त्वम् । १९ यथा
लिङ्गात्सामान्यस्य प्रतिपत्तिरेवं तेषां विशेषाणां । २० प्रयोजनम् । २१ लिङ्गा-
त्सामान्यप्रतिपत्तिः सामान्याद्विशेषप्रतिपत्तिरिति । २२ विशेषेषु सामान्यस्य प्रतिबन्ध-
प्रतिपत्तेरभावात्कथं ततस्तेषां प्रतिपत्तिरिति । २३ अप्रतिपन्नप्रतिबन्धत्वाविशेषात् ।

सामान्यस्यापि सामान्येनैव विशेषेषु प्रतिबन्धप्रतिपत्तावनवस्था-
सामान्यादि सामान्यप्रतिपत्तौ विशेषेष्वप्रवृत्तौ पुनस्ततोऽप्यप-
रसामान्यप्रतिपत्तौ सं एव दोषः । अतः सामान्यतदनुमानाना-
मनवस्थानादप्रवृत्तिविशेषेषु स्यात् ।

किञ्च व्यापकमेव गम्यम् अव्यभिचारस्य तत्रैव भावात् । १
व्यापकं च कारणं कार्यस्य, समावो भावस्य । तच्च स्वलक्षण-
मेव, अतस्तदेव गम्यं स्यात् न सामान्यमव्यापकत्वात् । अथ
तदपि व्यापकम्, स्वलक्षणवद्वस्त्वम्, अन्यथा तस्मिन्निमित्तेपि
प्रयोजनभावात्तत्रानुमानमप्रमाणमेव स्यात् ।

किञ्च, तत्प्रमेयद्वित्वं प्रमाणद्वित्वस्य ज्ञातम्, अज्ञातं वा ज्ञापकं १०
भवेत् ? यद्यज्ञातमेव तत्तस्य ज्ञापकम्, तर्हि तस्य सर्वत्राविशे-
षात्सर्वेषामविशेषेण तत्प्रतिपत्तिप्रसङ्गतो विवादो न स्यात् । ज्ञातं
चेत्कुतस्तज्ज्ञातिः ? प्रत्यक्षात्, अनुमानाद्वा ? न तावत्प्रत्यक्षात्,
तेन सामान्याग्रहणात् । ग्रहणे वा तस्य सविकल्पकत्वप्रसङ्गो विषय-
सङ्करश्च प्रमाणद्वित्वविरोधी भवेतोऽनुषज्येत । नाप्यनुमानतः, १५
अत एव । स्वलक्षणपरावृत्ततया हि भवेतानुमानमभ्युपगतम्—

“अतन्नेवपरावृत्तवस्तुर्मात्रप्रवेदनात् ।

सामान्यविषयं प्रोक्तं लिङ्गं मेदप्रतिष्ठितेः ॥” []
इत्यभिधानात् । द्वौभ्यां तु प्रमेयद्वित्वस्य द्वौने(ऽ)स्य प्रमाणद्वित्व-
ज्ञापकत्वायोगः, अन्यथा देवदत्तयज्ञदत्ताभ्यां प्रतिपन्नाद्भेद- २०
त्वात् तदन्यतरस्यासिद्धित्वप्रतिपत्तिः स्यात् । द्वैविध्यमिति हि
द्विष्टो धर्मः । स च द्वयोर्द्वौने ज्ञायते नान्यथा । न ह्यज्ञातसदृश-

१ विशेषेष्वप्रवृत्तिरूपः । २ अनिनामानस्य । ३ व्यापके । ४ बहिः । ५ भूमस्य ।
६ वृक्षत्वम् । ७ शिक्षणत्वम् । ८ साम्यम् । ९ लिङ्गम् । १० सामान्यम् ।
११ अनस्तुत्वे । १२ विशेषेषु प्रवृत्तिरक्षणम् । १३ सामान्यविशेषेभेदेन । १४ अज्ञा-
तप्रमेयद्वित्वम् । १५ देखे । १६ नृणां । १७ द्रव्या वा । १८ अनुभावस्या-
भाव इत्यर्थः । १९ सौगतस्य । २० अत एवेत्यस्य हेतोरसिद्धत्वं परिहरति ।
२१ स्वलक्षणगोचरत्वेन । २२ सौघतेन । २३ अनसिरूपः । २४ अस्मिन्नात्र ।
२५ अन्यापेक्ष । २६ अन्यापेक्ष । २७ स्वलक्षणस्य । २८ अव्यवस्थितेः । कुतोऽ-
व्यवस्थितिः ? भेदानामानन्त्येन ग्रहणासम्भवात् । २९ प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् । अतो
शरीरो विकल्पः । ३० परिज्ञाने सति अस्य प्रमेयद्वित्वम् । ३१ प्रमेयद्वित्वस्य प्रमा-
णद्वित्वज्ञापकत्वं चेत् । ३२ भिन्नदेहे । ३३ देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य वा । ३४ प्रमेय-
द्वित्वस्य प्रमाणद्वित्वज्ञापकत्वायोगो दर्शयति । ३५ स्वलक्षणसामान्ययोः प्रमेययोः ।
३६ सति । ३७ पुरुषेण ।

विन्ध्यस्य तद्वद्वित्वप्रतिपत्तिरस्ति । परस्परश्रयानुषङ्गश्च-सिद्धे
हि प्रमाणद्वित्वेऽतः प्रमेयद्वित्वसिद्धिः, तस्याश्च प्रमाणद्वित्वसिद्धि-
रिति । अथान्यतः प्रमाणद्वित्वस्य सिद्धिः, व्यर्थस्तर्हि प्रमेयद्वित्वोप-
न्यासः । तद्व्यन्यदेकं वा स्यात्, अनेकं वा ? एकं चेद्विषयसङ्करः ।
५ प्रत्यक्षं हि स्वलक्षणाकारमनुमानं तु सामान्याकारम्, तद्व्यस्यै-
कज्ञानवेद्यत्वे सुप्रसिद्धो विषयसङ्करः । अथानेकज्ञानवेद्यम्;
तद्व्यपरेणानेकज्ञानेन वेद्यं तद्व्यपरेणेत्यनवस्था ।

ननु स्वलक्षणाकारिता प्रत्यक्षेणात्मभूतैव वेद्यते सामान्याकारिता
त्वनुमीनेन, तयोश्च स्वसंवेदनप्रत्यक्षसिद्धत्वात् प्रत्यक्षसिद्धमेव
१० प्रमाणद्वित्वं प्रमेयद्वित्वं च, केवलं यैस्तयोः प्रतिपद्यमानोऽपि न
व्यवहरति स प्रसिद्धेन प्रमेयद्वैविध्येन प्रमाणद्वैविध्यव्यवहारे
प्रवर्त्यते; तद्व्यसारम्; ज्ञानादर्थान्तरस्यानर्थान्तरस्यै वा केवलस्य
सामान्यस्य विशेषस्य वा क्वचिज्ज्ञाने प्रतिभासामावात्, उभयै-
त्भन एवान्तर्बहिर्वा वस्तुनोऽध्यक्षादिप्रत्यये प्रतिभासमानत्वात् ।
१५ प्रयोगः-असति बाधके यद्यथा प्रतिभासते तत्तथैवाभ्युपगन्त-
व्यम् यथा नीलं नीलतया, प्रतिभासते चाध्यक्षादि प्रमाणं
सामान्यविशेषात्मार्यविषयतयेति ।

ननु मा भूत्प्रमेयभेदः, तथाप्यागमादीनां नानुमानादर्थान्तर-
त्वम् । शब्दादिकं^१ हि परोक्षार्थं सम्बद्धम्, असम्बद्धं वा गैम-
२० येत् ? न तावदसम्बद्धम्; गवादेरप्यश्वादिप्रतिभासप्रसङ्गात् ।
सम्बद्धं चेत्, तल्लिङ्गमेव, तज्जनितं च ज्ञानमनुमानमेव । इत्यप्य-
साम्प्रतम्; प्रत्यक्षस्याप्येवमनुमानत्वप्रसङ्गात्-तदपि हि स्वविषये

१ नरस । २ सद्यस्मिन्वपर्वतगत । ३ इतरेतराभ्यपरिहारार्थं परः माह ।
४ ज्ञानात् । ५ किञ्च । ६ तयोः । ७ ज्ञानम् । ८ युगपद्भयोः प्रतिपत्तिविषय-
सङ्करः । ९ विषयसङ्करः कथमित्युक्ते सलाह । १० तर्हीति शेषः । ११ अनवस्था
परिहरति परः । १२ प्रत्यक्षस्य । १३ स्वरूपगतैः । १४ अनुमानस्य । १५ वेद्यते ।
१६ सामान्यं विशेषं वा । १७ इति । १८ नरुः (शिष्यः) । १९ स्वसंवेदनप्रत्यक्षेण
प्रमेयद्वित्वं प्रमाणद्वित्वं च । २० प्रमाणं द्विविधं प्रमेयद्वैविष्यादित्यनुमानं प्रदर्शयति ।
२१ आचार्येण । २२ अर्थगतस्य । २३ ज्ञानगतस्य । २४ सामान्यविशेषात्मानः ।
२५ प्रत्यक्षादि प्रमाणं धर्मि सामान्यविशेषार्थविषयत्वेनाभ्युपगन्तव्यं भवतीति साध्यो
धर्मः । असति बाधके तथा प्रतिभासमानत्वादिति हेतुः । २६ सम्बन्धार्थविषयत्वात् ।
२७ आदिष्वण्डेन साहचर्यार्थापस्त्युत्पापकार्णादि । २८ कर्तुं । २९ परोक्षार्थं ।
३० परोक्षार्थम् । ३१ यनादिशब्दात् । ३२ असम्बद्धत्वाविशेषात् । ३३ ज्ञान-
मादीनामनुमानत्वप्रकारेण ।

सम्बद्धं सत्तस्य गमकम् नान्यथा, सर्वस्य प्रमातुः सर्वार्थप्रत्यक्ष-
त्वप्रसङ्गात् । अथ विषयसम्बद्धत्वाविशेषेपि प्रत्यक्षानुमानयोः
सामग्रीमेदात्प्रमाणान्तरत्वम्; शाब्दादीनामप्येवं प्रमाणान्तरत्वं
किञ्च स्यात् ? तथाहि-शाब्दं तावच्छब्दसामग्रीतः प्रभवति—

“शाब्दादुदेति यज्ज्ञानमप्रत्यक्षेपि वस्तुनि ।

५

शाब्दं तदिति मन्यन्ते प्रमाणान्तरवोदितः ॥” []

इत्यभिधानात् । न चास्य प्रत्यक्षता, सविकल्पकास्पष्टसमाव-
त्वात् । नाप्यनुमानता, त्रिरूपलिङ्गाप्रभवत्वादनुमानगोचरार्था-
विषयत्वाच्च । तदुक्तम्—

“तस्मादनुमानत्वं शाब्दे प्रत्यक्षवद्भवेत् ।

१०

त्रैरूप्यरहितत्वेन तादृग्विषयवर्जनात् ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० १८]

यादृशो हि धूमादिलिङ्गजस्यानुमानस्य विषयो धर्मविलिष्टो
धर्मो तौदृशा विषयेण रहितं शाब्दं सुप्रसिद्धं त्रैरूप्यरहितं च ।
तथा हि-न शब्दस्य पक्षधर्मत्वम्; धर्मिणोऽयोगात् । न चार्थस्य
धर्मित्वम्; तेन तस्य सम्बन्धोत्पत्तिः । न चाप्रतीतेर्यं तद्धर्मतयार्थं
शब्दस्य प्रतीतिः सम्भविनी । प्रतीते चार्थे न तद्धर्मतया प्रति-
पक्षिः शब्दस्योपयोगिनी, तामन्तरेणाप्यर्थस्य प्रागेव प्रतीतेः ।
अथ शब्दो धर्मो, अर्थवानिति साध्यो धर्मः, शब्द एव च
हेतुः, न; प्रतिक्षीर्यैकदेशत्वभासेः । अथ शब्दत्वं हेतुरिति न प्रति-
क्षीर्यैकदेशत्वम्; नै; शब्दत्वस्यागमैकत्वात्, गोशब्दत्वस्यैक-
निषेत्स्यमानत्वनासिद्धत्वात् । उक्तं च—

“सामान्यविषयत्वं हि पैदैस्य स्थापयिष्यते ।

१ अन्यथा चेत् । २ शब्दादीनि प्रमाणान्तराणि-सामग्रीमेदात् प्रत्यक्षादिवत् ।
३ सामग्रीमेदप्रकारेण । ४ नेरुस्तीति ज्ञानम् । आगमज्ञानमिलनः (हेतुन्तरमिदम्) ।
५ जेनादपः । ६ पक्षधर्मत्वादि । ७ शब्दादुत्पन्नत्वात् । ८ ईप् । ९ अनुमेय ।
१० च । ११ अभिप्रसव । १२ पूर्वतः । १३ आ । १४ गोल्लक्षणस्य ।
१५ अविनाभाव । १६ अर्थधर्मत्वेन । १७ फलवती । १८ इति चेत् । १९ पक्ष-
वचनं प्रतिष्ठा तस्मा अर्थः पक्षस्यैकदेश्यो धर्मो धर्मश्च । २० गोशब्दो जगति
नित्यो व्यापकत्वेनैक इवेति गोशब्दत्वसामान्याभावः हेतोः । २१ इति चेत्तैल्लयः ।
२२ गोशब्दवदशब्देपि शब्दत्वस्य भावादगमकत्वम् । २३ तस्मिन्निषेधोपि गोशब्द-
स्यादीनारेरेकत्वात्, नैकमन्तरी सामान्यमिति व्यापकत्वेनैकत्वात् गोशब्दत्वसामान्या-
भावः । २४ अर्थस्य । २५ अर्थस्य साम्यस्य आपकत्वम् । २६ गोत्वं । २७ गवा-
देरागमस्य । २८ सामान्यपक्षमाद्ये ।

धर्मो धर्मविशिष्टश्च लिङ्गीत्येतच्च सौचितम् ॥

नै तावदनुमानं हि यावत्तद्विषयं न तैत् ।”

[मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ५५-५६]

“अथ शब्दोऽर्थवत्त्वेन पक्षः कस्मान्न कल्प्यते ॥

५ प्रतिशार्थैकदेशो हि हेतुस्तत्र प्रसज्यते ।”

[मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६२-६३]

“शब्दत्वं गमकं नात्र गोशब्दत्वं निषेत्स्यते ॥

व्यक्तिरेव विशेष्यतो हेतुश्चैका प्रसज्यते ।”

[मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६४]

१० न चार्थान्वयोर्योस्तस्मिन् व्योपारेण हि सङ्गावेन सत्तयेति यावत् ।

विद्यमानस्य ह्यन्वेतृत्वं, नाविद्यमानस्य । ‘यत्र हि धूमस्तत्रावश्यं

वह्निरस्ति’ इत्यस्तित्वेन प्रसिद्धोऽन्वेतो भवति धूमस्य । न त्वैवं

शब्दस्यार्थेनान्वयोस्ति, न हि तत्र शब्दाक्रान्ते देशेऽर्थस्य

सङ्गावः । न खलु यत्र पिण्डखर्जुरादिशब्दः श्रूयते तत्र पिण्ड-

१५ खर्जुराद्यर्थोऽप्यस्ति । नापि शब्दकालेऽर्थोऽवश्यं सम्भवति, राव-

णशङ्खचक्रवर्त्यादिशब्दा हि वर्तमानास्तदर्थस्तु भूतो भविष्यश्च,

इति कुतोऽर्थैः शब्दस्यान्वेतृत्वम् ? नित्यविभुत्वाभ्याम् तत्त्वे

वैतिप्रसङ्गः । तदुक्तम्—

“अन्वयो न च शब्दस्य प्रमेयेण निरूप्यते ।

२० व्योपारेण हि सर्वेषामन्वेतृत्वं प्रतीयते ॥ १ ॥

यत्र धूमोस्ति तत्राग्निरस्तित्वेनान्वयः स्फुटः ।

न त्वैवं यत्र शब्दोस्ति तत्रार्थोस्तीति निश्चयः ॥ २ ॥

१ अनुमानविषयः । २ सप्रत्ययपेक्षया । ३ उभयस्य (शब्दानुमानयोः) उभय-
(सामान्यविशेष)विषयत्वं यद्यपि तथापि शब्दस्यानुमानरूपता भविष्यतीत्युक्ते सत्याह ।

४ धर्मविशिष्टधर्मविषयम् । ५ शब्दस्य । ६ वौद्धेन न समर्थ्यते । ७ गोशब्दस्य

नित्यविभुत्वाविशेषाभावात् । ८ सप्रत्ययपेक्षया । ९ शब्दस्यलक्षणा । १० धर्मिणी ।

११ शब्दत्वं न गमकं गोशब्दत्वस्य प्रतिषेधो वा यतः । १२ तदथ प्रतिशार्थैकदेशासिद्धो

हेतुरित्यभिप्रायः । १३ अर्थेन सहाविनाभावः । १४ शब्दस्य । १५ शब्दस्य ।

१६ व्यापारेणेति पदस्य सङ्गावेनेति सत्तयेति वा पर्यायशब्दो । १७ व्यापकत्वय-

न्वयश्च । १८ व्यापकः । १९ धूमाग्निप्रकारेण । २० इति देशान्वयाभावः ।

२१ कालान्वयाभावः । २२ अन्वयो व्यापकत्वं वा । २३ गोशब्दादभ्यासप्रतीतिः

स्यात् । २४ शब्दस्य सर्वेष्वर्थेष्वनुगमो यतः । २५ सम्बन्धः । २६ विद्वद्भिः ।

२७ कुतस्तथाहि । २८ सङ्गावेन सत्तया वा । २९ अर्थानात् । ३० धूमाग्निप्रकारेण ।

न तावच्च न देशेऽसौ न तत्काले च गम्यते ।
 भवेन्नित्यविभुत्वाच्चेत्सर्वार्थेष्वपि तैत्समम् ॥ ३ ॥
 तेनैव सर्वत्र दृष्टत्वाद्वातिरेकस्य चार्णतिः ।
 सर्वशब्दैरशेषार्थप्रतिपत्तिः प्रसज्यते ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८५-८८] ५

अन्वयाभावे च व्यतिरेकस्याप्यभावः—

“अन्वयेन विना तर्साद्वात्यतिरेकः कथं भवेत् ।” []

इत्यभिधानात् । ततः शाब्दं प्रमाणात्तरमेव ।

उपमानं च । अस्य हि लक्षणम्—

“दृश्यमौनाद्यदन्यत्र विज्ञानमुपजायते । १०

सादृश्योपाधितस्तज्ज्ञैरुपमानमिति स्मृतम् ॥ ११” []

येन हि प्रतिपन्ना गौरुपलब्धो न गवयो, न चातिदेशवाक्यं
 ‘गौरिव गवयः’ इति श्रुतं तस्यारण्ये पर्यटतो गवयदर्शने प्रथमे
 उपजाते परोक्षे गवि सादृश्यज्ञानं यदुत्पद्यते ‘अनेन सादृश्यो गौः’
 इति, तस्य विषयः सादृश्यविशिष्टः परोक्षो गौस्तद्विशिष्टं वा १५.
 सादृश्यम्, तच्च वस्तुभूतमेव । यैदाह—

“सादृश्यस्य च वस्तुत्वं न शक्यमपवादितुम् ।

भूयोवयवसामान्ययोगो जात्यन्तरस्य तत् ॥”

[मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० १८] इति ।

अस्य ज्ञानधिगतार्थाधिगन्तव्या प्रामाण्यम् । गवयविषयेण २०
 हि प्रत्यक्षेण गवयो विषयीकृतो, न त्वसन्नहितोपि सादृश्य-
 विशिष्टो गौस्तद्विशिष्टं वा सादृश्यम् । यच्च पूर्वं ‘गौः’ इति
 प्रत्यक्षमभूत्सस्यापि गवयोत्यन्तमप्रत्यक्ष एव । इति कथं गवि
 तैदंपेक्षं तैसादृश्यज्ञानम् ? उक्तं च—

१ तत्र प्रवेष्टव्योऽस्तीति निश्चयो नास्तीत्यर्थः । २ अर्थः । ३ अनेनत्वम् ।
 ४ कारणेन । ५ अर्थेण । ६ शब्दस्य । ७ अप्रतिपत्तेः । ८ अन्वयाविनाभावित्वं
 व्यतिरेकस्य यतः । ९ शब्दार्थयोरन्वयव्यतिरेकौ न सौ यतः । १० अनुमानात् ।
 ११ भाट्टो प्रवीतिः । १२ गवयात् । १३ गवि । १४ उपाधिविशेषणम् । १५ कारिकं
 भावयति । १६ आमादौ । १७ अन्वयं प्रसिद्धस्यान्वयारोपणमतिदेशः । १८ योप-
 नययोः । १९ तदुपमानम् । २० गवयस्य । २१ सर्वमात्रो । २२ सर्वमात्रयो-
 र्विशिष्टम् । २३ वसात्कारणात् । २४ निराकर्तव्यम् । २५ सूयसां बहूनामवयवानां
 समानतां सामान्यं तेन योगः । २६ यकस्या गवयनापेरेत्या गोजातिर्नालन्तरम् ।
 यकस्या गोजातेरेत्या गवयजातिर्नालन्तरम्, तस्य । २७ उपमानस्य । २८ गवयस्य ।
 २९ गोप्रसङ्गापेक्षम् । ३० ता । ३१ प्रसङ्गात् ।

“तत्साधैत्सर्यते तत्सात्सादृश्येन विशेषितम् ।

प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितम् ॥ १ ॥

प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि सादृश्ये गवि च स्मृते ।

विशिष्टस्यान्यतोऽसिद्धेरुपमानप्रमाणता ॥ २ ॥

५ प्रत्यक्षेऽपि यथा देशे सूर्यमाणे च पावके ।

विशिष्टविषयत्वेन नानुमानाप्रमाणता ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ३७-३९] इति ।

न चेदं प्रत्यक्षम्, परोक्षविषयत्वात्सविकल्पकत्वाच्च । नाप्यनुमानम्, हेत्वभावात् । तथा हि-गोगतम्, गवयगतं वा सादृश्य-
१० मंत्र हेतुः स्यात् ? तत्र न गोगतम्, तस्य पक्षधर्मत्वेनाग्रहणात् । यदा हि सादृश्यमात्रं धर्मि, ‘सूर्यमाणेन गवा विशिष्टम्’ इति साध्यम्, यदा च तौदृशो गौः, तदा न तौदर्मतया ग्रहणमस्ति । अत एव न गौवयगतम् । गौर्गौतसादृश्यस्य ‘गौर्वा हेतुत्वे प्रतिज्ञार्थक-
देशत्वप्रसङ्गश्च । न च सादृश्यमत्रै प्रोक्तप्रमेयेण प्रतिषेधं प्रतिषे-
१५ षम् । न चान्वयप्रतिपत्तिमन्तरेण हेतोः साध्यप्रतिपादकत्वमुपल-
ब्धम् । ततो गौवार्थदर्शने गवयं पश्यतः सादृश्येन विशिष्टे गवि पक्षधर्मत्वग्रहणं सैवन्धानुसरणं चान्तरेण प्रतिपत्तिरुत्पद्य-
माना नानुमानेऽन्तर्मवतीति प्रमाणान्तरमुपमानम् । उक्तं च—

१ गववाद । २ गोलक्षणं वस्तु । ३ सूर्यमाणगवाम्बितम् । ४ उपमानं गृहीत-
व्यादिवाच्यप्रमाणं स्मृतिरुक्ते आह । ५ गवयगते । ६ सादृश्यविशिष्टस्य । ७ सादृश्य-
विशिष्टो गौस्तद्विशिष्टं वा सादृश्यमिति विशिष्टविषयः । ८ सादृश्यविशिष्टस्य गोल-
द्विशिष्टस्य वा सादृश्यस्य । ९ कः प्रत्यक्षान्तरम् । १० असिद्धये दृष्टान्तमाह ।
११ पर्वतादी । १२ देशादिनिवृत्तत्वेन । १३ उपमानम् । १४ उपमानस्यानुमानत्वे
साध्ये । १५ कः पक्षधर्मत्वेनाग्रहणं वा कथं सादृश्यसेत्वेत्याह । १६ सामान्यम् ।
१७ गोगतसदृशत्वादिति हेतुः । १८ गवयसदृशो गौरिति वा पक्षः । १९ गवयगत-
सदृशत्वादिति हेतुः । २० गोगतसादृश्यस्य । २१ पक्षः । २२ हेतुपन्यासात्पूर्वं
सादृश्यस्याप्रसिद्धत्वात् । २३ पक्षधर्मत्वेनाग्रहणादेव । २४ हेतुः । २५ सादृश्यम् ।
२६ यद्यपि पक्षधर्मत्वेनाग्रहणं गोगतसादृश्यस्य तथापि हेतुत्वेनोपन्यासः क्रियते
इत्युक्ते आह । २७ गौर्गवयेन सदृशः गोगतसादृश्यत्वात् । गौर्गवयेन सदृशः गौर्गतः ।
२८ उक्तयुक्त्या पक्षधर्मत्वं नास्ति चेन्मा भूदन्वयो भविष्यतीत्युक्ते आह । २९ हेतुः ।
३० उपमानस्यानुमानत्वे साध्ये । ३१ हेतुपन्यासात्पूर्वम् । ३२ सादृश्यविशिष्टो
गौस्तद्विशिष्टं वा सादृश्यमिति विशिष्टविषयेण । ३३ अविनाशितम् । ३४ तथा
प्रतीतेरभावात् । ३५ सपक्षे सत्यम् । ३६ सादृश्यस्य पक्षधर्मत्वेनाग्रहणमन्यप्रतिपत्त्य-
भावाद् वा यतः । ३७ वसः । ३८ सति । ३९ अन्यम् ।

“न चैतस्यानुमानत्वं पक्षधर्माद्यसम्भवात् ।
प्रोक्षप्रमेयस्य सादृश्यं धर्मित्वेन न गृह्यते ॥ १ ॥

गवये गुह्यमाणं च न गवार्थानुमापकम् ।
प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वाद्वोगतस्य न लिङ्गता ॥ २ ॥

गवयश्चाप्यसम्बन्धान्न गोर्लिङ्गत्वमृच्छति । ५

सादृश्यं न च सर्वेण पूर्वं दृष्टं तदन्वयि ॥ ३ ॥

यैकस्मिन्नपि दृष्टेयं द्वितीयं पश्यतो वने ।

सादृश्येन सहैवास्मिन्सदैवोत्पद्यते मतिः ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४३-४६] इति ।

तैथार्थापत्तिरपि प्रमाणान्तरम् । तल्लक्षणं हि—“अर्थापत्तिरपि १०
दृष्टः श्रुतो चार्थोन्यथा नोपपद्यते इत्यदृष्टार्थैकल्पना” । [शावरभा०
१।१।५] कुमारिलोप्येतदेव भाष्यकारवचो व्याचष्टे ।

“प्रमाणवद्भविष्यातो यैत्रार्थोऽनन्यथा भवन् ।

अदृष्टं कल्पयेदैन्य सार्थापत्तिरुदाहृता ॥”

[मी० श्लो० अर्था० परि० श्लो० १] १५

प्रत्यक्षादिभिः शङ्खिः प्रमाणैः प्रसिद्धो योर्थः स येन विना नोप-
पद्यते तस्यार्थस्य कल्पनमर्थापत्तिः । तत्र प्रत्यक्षपूर्विकार्थापत्तिर्य-
थाशेः प्रत्यक्षेण प्रतिपन्नार्थोदाहृतनशक्तियोगोऽर्थापत्त्या प्रकल्प्यते ।
न हि शक्तिः प्रत्यक्षेण परिच्छेद्या, अतीन्द्रियत्वात् । नैष्यनुमानेन;
अस्य प्रत्यक्षोपगतप्रतिबन्धलिङ्गप्रभवत्वेनाभ्युपगमात्, अर्थाप- २०
त्तिगोचरस्य चार्थस्यै कदाचिदप्यव्यक्षागोचरत्वात् । अनुमानपूर्-
विका त्वर्थापत्तिर्यथा सूर्ये गमनासंभक्तियोगिता । अत्र हि

१ आदिशब्देन सपक्षे सत्यम् । २ अनुमानकालपूर्वम् । ३ हेतुः । ४ पक्ष-
धर्मित्वेन सादृश्यम् । ५ तर्हि गवयो हेतुर्गोविष्यतीत्युक्ते आह । ६ गवामेव ।
७ पक्षधर्मत्वं नास्ति चेन्मा भूदन्वयो भविष्यतीत्युक्ते आह । ८ पुंसा । ९ हेतुपत्त्यासा-
त्पूर्वम् । १० प्रमेयेण । ११ उक्तार्थोपसहारमाह । १२ गोलक्षणे । १३ गवयम् ।
१४ पक्षधर्मत्वग्रहणं विना साध्यसाधनसम्बन्धसंशयं च विना कोर्गो गवयदर्शन-
काल एव । १५ शब्दोपमाने यथा प्रमाणान्तरे अवसतः । १६ सामर्थ्याध्यासा ।
१७ उच्यते । १८ पुनः । १९ प्रत्यक्षादिप्रमाणमात्रगम्यः । २० आगमे ।
२१ अदृष्टार्थं विना । २२ उपरि दृष्टिलक्षणम् । २३ आपादनम् । २४ बुद्धौ ।
२५ नदीपूरारिः । २६ अदृष्टार्थे सत्त्वेव भवति । २७ उपरि दृष्टिलक्षणम् ।
२८ पूरावन्त्यम् । २९ कारिकां भाषयति । ३० शृष्टेः । ३१ अवर्थापत्तिषु मध्ये ।
३२ स्फोटाय । ३३ अग्निर्दहनशक्तियुक्तः दाहान्यवानुपपत्तेरिति । ३४ आत्मादि-
वत् । ३५ सा । ३६ शक्तिरक्षणम् ।

देशादेशान्तरप्राप्त्या सूर्ये गमनमनुमीयते तैतस्तच्छक्तिसम्बन्ध इति। श्रुतार्थापत्तिर्यथा—‘पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्के’ इति वाक्य-
श्रवणाद्वात्रिभोजनप्रतिपत्तिः। उपमानार्थापत्तिर्यथा—गवयोपमि-
ताया गोस्तज्ज्ञानप्राप्त्यशक्तिः। अर्थापत्तिपूर्विकाऽर्थापत्तिर्यथा—
५ शब्देऽर्थापत्तिप्रबोधितावाचकसामर्थ्यादभिधानसिद्ध्यर्थं तद्विस्त-
त्त्वज्ञानम् । शब्दाच्चार्थः प्रतीयते, तैतो वाचकसामर्थ्यं, ततोपि
तन्नित्यत्वमिति । अभावपूर्विकाऽर्थापत्तिर्यथा—प्रमाणाभावप्र-
मितचैत्रार्भावंविशेषितैद्देहाच्चैत्रवह्निर्भावंसिद्धिः, ‘जीवंश्चैत्रोऽन्य-
जास्ति गृहे अभावात्’ इति । तदुक्तम्—

१० “तैत्र प्रत्यक्षतो ज्ञाताद्वाहाद्हनशकता ।

वहेरनुमितात्सूर्ये यानास्तच्छक्तियोगिता ॥ १ ॥”

[मी० स्तो० अर्था० स्तो० ३]

“पीनो दिवा न भुङ्के चेत्येवमादिवचःश्रुतौ ।

रात्रिभोजनविज्ञानं श्रुतार्थापत्तिरुच्यते ॥ २ ॥”

१५

[मी० स्तो० अर्था० स्तो० ५१]

“गवयोपमिताया गोस्तज्ज्ञानप्राप्त्यशकता ।

अभिधानप्रसिद्ध्यर्थमर्थापत्त्यावबोधितात् ॥ १ ॥

शब्दे वाचकसामर्थ्यात्तद्विस्तृत्वप्रमेयता ।

अभिधानार्थ्याऽसिद्धेरिति वाचकशकता ॥ २ ॥

२०

अर्थापत्त्यावर्गस्यैव तैदन्यत्वर्गतेः पुनः ।

अर्थापत्त्यन्तरेणैव शब्दनित्यत्वनिश्चयः ॥ ३ ॥

१ आदित्यो गमनशक्तियुक्तो गतिमत्त्वान्यथानुपपत्तेः । गतिमानादित्यो देशान्तरप्राप्तेः, नागादिवत् । २ सूर्यो गमनशक्तियुक्तो गतिमत्त्वान्यथानुपपत्तेः । ३ आयम । ४ देवदत्तो रात्रौ भुङ्के पीनत्वे सति दिवाभोजनभावश्रवणान्यथानुपपत्तेः । ५ गौश्रवणान्नानप्राप्त्यशक्तियुक्ता उपमेयत्वान्यथानुपपत्तेः । ६ उच्चारण । ७ शब्दे नित्यो वाचकसामर्थ्यान्वया (नित्यत्वं विना)ऽनुपपत्तेः । अस्मादपत्तिपूर्वकर्त्तृ निरूप्यते । शब्दे वाचकशक्तियुक्तः ततोऽर्थप्रतीत्यन्यथा (वाचकशक्तिं विना)ऽनुपपत्तेः । ८ शब्द । ९ अभावप्रमाण । १० ता । ११ आ । १२ विशेषण । १३ अर्थापत्तिषु मध्ये । १४ सत्यात् । १५ उपमाव । १६ यतः । १७ अभिधानसिद्ध्यर्थं तद्विस्तृत्वप्रमेयता स्यात् । १८ नित्यत्वं विना । १९ वाचकशकता । अर्थापत्त्यवगम्या न मलिन्यति अतश्चार्थापत्तिपूर्विकापत्तिः कर्त्तृ स्यादित्युक्ते आह । २० अतीन्द्रियत्वात् । २१ शकतायाः सकाशादन्यत्वं विज्ञत्वं नित्यत्वंस । २२ परिज्ञानात् । २३ यथैवार्थापत्त्या वाचकशक्त्यावगम्यते तथैव शब्दनित्यत्वं प्रतीयते इति कृतार्थापत्तिपूर्विकार्थापत्तेर्वैयर्थ्यमित्युक्ते आह ।

दर्शनस्य परार्थत्वादित्यस्मिन्निमित्तमिवावस्यते ।
 प्रमाणाभावनिर्णीतचैत्राभावविशेषितात् ॥ ४ ॥
 गेहाद्यैश्चहिर्भावसिद्धिर्या त्विह दर्शिता ।
 तामभावोत्थितामन्यामर्थोपत्तिमुद्देशरेत् ॥ ५ ॥”
 [मी० श्लो० अर्थो० श्लो० ४-९] इत्यादि । ५

तथाऽभावप्रमाणमपि प्रमाणान्तरम् । तद्वि निर्वेध्याधारवस्तु-
 ग्रहणादिसामंभ्रीतस्मिन्प्रकारमुत्पन्नं सत् क्वचित्प्रदेशादौ घटादीना-
 मभावं विभावयति । उक्तं च—

“गृहीत्वा वस्तुसङ्गावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनम् ।
 मानसं नास्तितात्त्विकं जायतेऽक्षानपेक्षया ॥ १०
 [मी० श्लो० अभाव० श्लो० २७]

“प्रत्यक्षादेरुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते ।
 सात्मनोऽपरिणामो वा विज्ञानं वान्यैवस्तुनि ॥”
 [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ११]

“प्रमाणपञ्चकं यत्र वैस्तुरूपे न जायते । १५
 वैस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणता ॥”
 [मी० श्लो० अभाव० श्लो० १] इति ।

न चाप्यक्षेणाभावोऽवसीयते, तस्याभावविषयत्वविरोधात्,
 भावांशेनैवेन्द्रियाणां सम्बन्धात् । तदुक्तम्—

“न तौवदिन्द्रियेणैवा नास्तीत्युत्पाद्यते मतिः । २०
 भावांशेनैव सम्बन्धो योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि ॥”
 [मी० श्लो० अभाव० १८] इति ।

नाप्यनुमानेनौसौ साध्यते, हेतोरभावात् । न च विषयैर्भूतस्या-

१ अभिधानान्तरासिद्धेरिति यदुक्तं तत्तत्समर्पणीयमित्युक्ते जाह । २ उच्चारणस्य ।
 ३ स्तिष्यावर्णात् । ४ स्वग्रन्थापेक्षयागे वदन्मागमन्ये । ५ अर्थोपत्तिरूपान-
 प्रस्तावे । ६ प्रमाणपञ्चकादिभ्याम् । ७ भाष्यकारः । ८ घटादि । ९ शुद्धमूलक ।
 १० निर्वेध्याधारवस्तुपक्षेणैवविज्ञानप्राप्तस्य घटादेरनुपपत्त्यस्य । ११ अभावप्रमाणताम-
 भ्रीतः । १२ त्रिप्रकारमित्येतत्तदं प्रमाणेसादिनाऽऽह । १३ मूलके । १४ आदि-
 पदेन काठे । १५ वाद्येन्द्रियानपेक्षया । १६ स्वरूपम् । १७ प्रमाणपञ्चकरूप-
 स्वेवाभावप्रमाणस्य । १८ प्रत्यक्षप्रतिषेधोत्र । १९ जीवस्य प्रमाणपञ्चकरूपतया ।
 २० स्वरूपम् । २१ पशुवासोत्र । २२ गुणि । घटाञ्चक्षणम् । २३ कदाचित्सास्ति-
 त्वावबोधार्थम् । २४ अनुमानापेक्षया । २५ कारणान्तेः प्रागभावादिना विभागः
 कृतः । अभाव इति वा । २६ पदार्थस्य ।

भावस्याभावादभाषप्रमाणवैयर्थ्यम्; कारणौदिविभागतो व्यवहारस्य लोकप्रतीतस्याभावप्रसङ्गात् । उक्तं च—

“न च स्याद्व्यवहारोऽयं कारणादिविभागतः ।
प्रागभावादिभेदेन नाभावो यदि भिद्यते ॥ १ ॥”
[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ७]

प्रागभावादिभेदान्तर्यानुपपत्तेः स्यात्प्रमाणपत्त्या वस्तुरूपतावसी-
यते । उक्तं च—

“न चावस्तुन णेति स्युर्मेंदास्तेर्नास्य वस्तुता ।
कार्यादीनामभावः को भावो यः कारणादिनः(ना) ॥ १ ॥”
[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ८]

अनुमानावसेया चास्य वस्तुता । यदाह—

“यद्वाऽनुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिग्राह्यो यतस्त्वर्थम् ।
तस्माद्भावादिवद्वस्तु प्रमेयत्वाच्च गृह्यताम् ॥ १ ॥”
[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९]

१५ चतुःप्रकारश्चाभावो व्यवस्थितः—प्राक्प्रध्वंसेतरेतराऽत्यन्ता-
भावभेदात् । उक्तं च—

“वस्त्वऽसङ्करसिद्धिश्च तत्प्रामाण्यं समाश्रिता ।
क्षीरे दध्यादि यन्नास्ति प्रागभावः स उच्यते ॥ १ ॥
नास्तिता पयसो दध्नि प्रध्वंसाभावलक्षणम् ।
गवि योऽभ्याद्यभावस्तु सोऽन्योन्याभाव उच्यते ॥ २ ॥
शिरसोऽवयवा निम्ना वृद्धिकाठिन्यवर्जिताः ।
शशशृङ्गादिरूपेण सोऽत्यन्ताभाव उच्यते ॥ ३ ॥”
[मी० श्लो० अभाव० श्लो० २-४]

यदि चैतेषां व्यवस्थापकमभावाख्यं प्रमाणं न स्यात्तदा प्रति-
२५ नित्यतवस्तुव्यवस्थाविलोपः स्यात् । तदुक्तम्—

“क्षीरे दधि भवेदेवं दध्नि क्षीरं घटे पटः ।
शशे शृङ्गं पृथिव्यादौ चैतन्यं मूर्तितात्मनि ॥

१ अन्यथा । २ क्षीर । ३ कार्यं दधि । ४ प्रागभावादिकृतः कारणादि-
विभागः । ५ लोकप्रतीतः । ६ [अ]भावप्रमाणमन्तरेण । ७ प्रागभावादयः । ८ कार-
णेन । ९ स्वरूपादीनां च । १० अवयवाऽर्थापत्त्यपेक्षया । ११ अभावो वस्तुरूपो
भवति अनुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिग्राह्यत्वाद्भावादिवत्प्रमेयत्वाच्च तद्वत् । १२ शशस्य ।
१३ कालत्रये ।

अप्सु गन्धो रसश्चाग्नौ वायौ रूपेण तौ सह ।

व्योम्नि संस्पर्शता ते च न चेदस्य प्रमाणता ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ५-६] इति ।

न च निर्दशत्वाद्धस्तुनस्तत्स्वरूपग्राहिणाध्यक्षेणार्थं सर्वात्मना
ग्रहणादगृहीतस्य चापरस्यादंशस्य तत्राभावात् कथं तद्व्यवस्थाप-
नाय प्रवर्त्तमानमभावाख्यं प्रमाणं ग्रामाण्यमभ्युते ? इत्यभिधात-
व्यम् ; यतः सदसदात्मके वस्तुनि प्रत्यक्षादिना तत्र सदंशग्रहणे-
प्यगृहीतस्यासदंशस्य व्यवस्थापनाय प्रमाणाभावस्य प्रवर्त्तमानस्य
न ग्रामाण्यव्याहृतिः । उक्तं च—

“स्वरूपपररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके ।

१०

वस्तुनि ज्ञायते किञ्चिद्रूपं कैश्चित्कदाचन ॥ १ ॥

यस्य येन यदोद्भूतिर्जिघृक्षा चोपजायते ।

वेद्यतेतुमुभवस्तस्य तेन च व्यपदिश्यते ॥ २ ॥

संश्लोपकारकत्वेन वर्त्ततेऽशस्तैर्देतैरः ।

उभयोरपि संविज्ञेया उभयालुगमोस्ति तु ॥ ३ ॥”

१५

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० १२-१४]

प्रत्यक्षाद्यवतारार्थं भावांशो गृह्यते यदा ।

व्यापारस्तदनुत्पत्तेरभावांशे जिघृक्षिते ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० १७]

न च धर्मिणोऽभिज्ञत्वाद्भावांशवदभावांशस्याप्यध्यक्षेणैव ग्रहः । २०
सदसदंशयोर्धर्म(न्य)भेदेऽन्योन्यं भेदान्नायमरश्मिरूपादिवद-
भावस्यालुप्तत्वत्वात् । न चाभावस्य भावरूपेण प्रमाणेन परिच्छिन्ति-

१ गन्धादयः । २ सद्रूपस्य वस्तुनः । ३ समयवैनाय । ४ व्याप्नोति ।
५ सौगतेन । ६ सदंशः । ७ प्रमाणैः । ८ किञ्चिद्रूपमित्येतत्पदं वस्तुत्वादिना
विश्रुतेति । सदंशस्यासदंशस्य वा । ९ उभयात्मके वस्तुनि । १० सदंशग्रहणकाले ।
११ अभिव्यक्तिः । १२ पुरुषाणाम् । १३ नरैः । १४ परिच्छिन्तिः । १५ सदंश-
स्यासदंशस्य वा । १६ अभिव्यक्तेन सदंशेन असदंशेन वा । १७ पुंभिर्वस्तु । १८ य
पदांशो गृह्यते स पवाशोक्तिः स तद्वितीय इत्युक्ते आह । १९ गृह्यमाणसदंशस्य ।
२० सदंशग्रहणकाले । २१ असदंशः । २२ सदसदंशयोः । २३ संवेद-
नात् । २४ उभयात्मके वस्तुनि । २५ कैश्चिदित्येतत्पदं प्रत्यक्षाद्यवतार इत्यादिना
आह । २६ तदा भवेत् । २७ स्यात् । २८ अभावस्य । २९ ग्राहीतुमिष्टे वस्तुनि ।
३० तदनुत्पत्तेरित्यसदपराधर्मं भिषट्यति । ३१ वस्तुनः । ३२ यत्कदापि ।
३३ भेदेऽन्योन्यधर्मयोः प्रत्यक्षेण ग्रहणं कुतो न स्यादित्युक्ते आह । अन्योन्यमिति ।
३४ सदंशस्योद्भूतत्वात् ॥

युक्ता । प्रयोगः—यो यथाविधो विषयः स तथाविधेनैव प्रमाणेन परिच्छिद्यते, यथा रूपादिभावो भावरूपेण चक्षुरादिना, विवादो रूपदीभूतश्चाभावस्तस्मादभावः (वभावैन) परिच्छेद्यत इति ।
उक्तं च—

५ “न तु (ननु) भौवादिभिर्मेत्वात्सर्ग्ययोगोक्ति तेनैव च ।

न ह्यत्यन्तमभेदोस्ति रूपादिर्वदिहापि नः ॥ १ ॥

धर्मयोगेदं ह्यो हि धर्म्यमेदपि नः स्थितेः ।

उद्धृत्वाभिभवार्त्मेत्वाद्भ्रष्टं चैवतिष्ठते ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० १९-२०]

१० “मेयो यद्वदभावो हि मानमप्येवमिर्धतम् ।

भौवात्मके यथा मेये नाभावस्य प्रमाणता ॥

तथैवाभावमेयेपि न भावस्य प्रमाणता ।”

[मी० श्लो० अभाव० ४५-४६] इति ।

ततः शाब्दादीनां प्रमाणान्तरत्वप्रसिद्धेः कथं प्रत्यक्षानुमानभेदा-

१५ त्प्रमाणद्वैविध्यं परेषां व्यवतिष्ठेत् ?

नन्वेवं प्रत्यक्षेतरभेदात्कथं भवतोपि प्रमाणद्वैविध्यव्यवस्था—
तेषां प्रमाणान्तरत्वप्रसिद्धेरविशेषादिति चेत्? तेषां ‘परोक्षेऽन्त-
र्भावात्’ इति त्रैमः । तथाहि—यदेकलक्षणलक्षितं तद्व्यक्तिभेदेभ्यो-
कमेव यथा वैशद्यैकलक्षणलक्षितं चक्षुरादिप्रत्यक्षम्, अवैशद्यै-
२० कलक्षणलक्षितं च शाब्दादीति । चक्षुरादिसामग्रीभेदेपि हि
तज्ज्ञानानां वैशद्यैकलक्षणलक्षितत्वेनैवाभेदः प्रसिद्धः प्रत्यक्षरूप-
तानतिक्रमात्, तद्वत् शब्दादिसामग्रीभेदेप्यवैशद्यैकलक्षितत्वेनै-
वाभेदः शाब्दादीनाम् परोक्षरूपत्वाविशेषात् । ननु परोक्षस्य
स्मृत्यादिभेदेन परिगणितत्वात् उपमानादीनां प्रमाणान्तरत्वमेवै-

१ अभावो अभावप्रमाणपरिच्छेदः—तथाविधविषयात् । २ भावेन परिच्छेदोऽभावैन
वेति । ३ तथाविधविषयत्वात् । ४ पदार्थात् । ५ अभावस्य । ६ इन्द्रियाणां ।
७ असद्वत्त्वेन । ८ रहिम । ९ यथा रूपादेरत्यन्तमभेदोस्ति, एवं भावाभावधर्मयोरत्य-
न्तमभेदो नास्ति । १० धर्मस्यात्यन्तमभेदो नास्तीति कुतः ? । ११ स्वकीयप्रमाणा-
भ्यामुभयधर्मयोरपि ग्रहणं कक्षाज्ज्ञादित्युक्ते जाह । १२ सदसद्वशयोः ।
१३ प्रत्यक्षादिप्रमाणैः । १४ अग्रहणं च । १५ अभावरूपस्य । १६ सीगतेन ।
१७ वृद्धान्तमाह । १८ बौद्धान्यात् । १९ सीगतमत्प्रसिद्धप्रमाणद्वैविध्यव्यवस्थिति-
प्रकारेण । २० जैनस्य । २१ वयं जैवाः । २२ शब्दादि धर्मि व्यक्तिसंभेदेभ्यो
अत्येकलक्षणलक्षितत्वात् । २३ स्पर्शनादि ।

त्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; ते- (मत्रैवान्तर्भावात् । उपमानस्य हि प्रत्यभिज्ञानेन्तर्भावो वक्ष्यते ।

अर्थापत्तेस्त्वनुमानेऽन्तर्भावः; तथा हि—अर्थापत्त्युत्थापकःऽर्थान्यथानुपपद्यमानत्वेनानवगतः, अवगतो वाऽद्वैद्यार्थपरिकल्पना-
निमित्तं स्यात् ? न तावदनवगतः अतिप्रसङ्गात् । येन हि विनो-
पपद्यमानत्वेनावगतस्तमपि परिकल्पयेत्, येन विना नोपपद्यते
तमपि वा न कल्पयेत्, अन्यथानुपपद्यमानत्वेनानवगतस्यार्थाप-
त्त्युत्थापकार्थस्यान्यथानुपपद्यमानत्वे सत्यप्यद्वैद्यार्थपरिकल्पकत्वा-
सम्भवात् । सम्भवे वा लिङ्गस्याप्यनिश्चिताविनाभावस्य परोक्षा-
र्थानुमापकत्वं स्यात् । ततश्चेदं नार्थापत्त्युत्थापकार्थाद् मिथेत् । १०
नाप्यवगतः, अर्थापत्त्यनुमानयोर्मेधाभावप्रसङ्गादेव, अविनाभावि-
त्वेन प्रतिपन्नादेकस्यात्सम्बन्धिर्नो द्वितीयप्रतीतेरुभयत्राविशेषात् ।

किञ्च, अर्थान्यथानुपपद्यमानत्वावगमोऽर्थापत्तेरेव, प्रमाणान्त-
राह्या ? प्रथमपक्षेऽन्योन्याश्रयः; तथाहि—अन्यथानुपपद्यमानत्वेन
प्रतिपन्नादर्थोदर्थोपपत्तिर्भवति, तत्प्रवृत्तेऽस्यान्यथानुपपद्यमान- १५
त्वप्रतिपत्तिरिति । ततो निराकृतमेतत्—

“अविनाभाविता चात्र तदैव परिगृह्यते ।

न प्रीगवगतेत्येवं सैत्यन्येषा न कौतर्कम् ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३०]

“तेन सम्बन्धवैलोक्यां सम्बन्ध्यन्येतरो ध्रुवम् ।

२०

अर्थापत्यैव गन्तव्यः पञ्चोदस्त्वनुमानता ॥”

[मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३३] इति ।

१ अथःपूरादिः । २ उपरि वृद्धिं विना । ३ उपरि वृद्ध्यादिलक्षण । ४ कारणम् ।
५ रासभागमनादिना । ६ भूमादेः । ७ मालिकेन्द्रीपायार्तं नरं प्रति । ८ लिङ्गम् ।
९ अन्यथा । १० भूमादिहेतोरथःपूरादिकल्पकाद्वा । ११ अस्वादिसाध्यस्योपरिवृद्ध्या-
दिकल्पस्य वा । १२ अथःपूरादेः । १३ उपरि वृद्ध्यादिकं विना । १४ अवः-
पूरात् । १५ अर्थापत्त्युत्थापकावगमः । १६ अर्थस्य । १७ अन्योन्याश्रयो यतः ।
१८ वक्ष्यमाणम् । १९ अर्थापत्त्यनुमानयोरभेदः—निश्चिताविनाभाविलिङ्गप्रवृत्त्या-
निशेषादित्युक्ते आह परः । २० अर्थापत्तिकल्पितेऽवःपूरादौ । २१ अर्थापत्त्युत्पत्तेः
पूर्वनविनाभाविता नावसिता । २२ सती । २३ अर्थापत्तिं प्रति । २४ अतोऽनु-
मानादर्थोपपत्तेर्भेदः । २५ सम्बन्धे गृहीतेष्वर्थापत्तेरनुमानरूपता अभिव्यचीत्युक्ते आह ।
२६ येन कारणेनाविनाभाविताऽर्थापत्तिप्रभये एव गृह्यते तेन कारणेन सम्बन्धे ।
२७ ग्रहणम् । २८ अनुमानस्य । २९ सम्बन्धिनोर्द्विपूरयोर्मेधे अन्यतरो वृद्धिः ।
३० पूर्वमर्थापत्तिरेवैतरीः । ३१ उत्तरार्द्धं चैव तदा ।

अथ प्रमाणान्तरात्तदवगमः, तर्कि भूयोदर्शनम्, विपक्षेऽनु-
पलम्भो वा? आद्यविकल्पे काले भूयोदर्शनम्-साध्यधर्मिणि,
दृष्टान्तधर्मिणि वा? न तावदाद्यः पक्षः, शक्तेरतीन्द्रियतया साध्य-
धर्मिण्यस्य तदविनाभावित्वेन भूयोदर्शनासम्भवात् । द्वितीयपक्षो-
५ प्यत एवायुक्तः । किञ्च, दृष्टान्तधर्मिणि प्रवृत्तं भूयोदर्शनं साध्य-
धर्मिण्यव्यस्यैवान्यर्थानुपपन्नत्वं निश्चाययति, दृष्टान्तधर्मिण्येव वा?
तत्रोत्तरः पक्षोऽयुक्तः, न खलु दृष्टान्तधर्मिणि निश्चितार्थेथानुप-
पद्यमानत्वोर्थोऽन्यत्र साध्यधर्मिणि तथात्वेनानिश्चितः सैसाध्यं
प्रसाधयति अतिप्रसङ्गात् । प्रथमपक्षे तु लिङ्गार्थापस्त्युत्थापकार्य-
१० योर्मेदाभावः स्यात् ।

ननु लिङ्गस्य दृष्टान्तधर्मिणि प्रवृत्तप्रमाणैवशात्सर्वोपसंहारेण
स्वसाध्यनियतत्वंनिश्चयः, अर्थापस्त्युत्थापकार्यस्य तु साध्यधर्मि-
ण्येव प्रवृत्तप्रमाणैवात्सर्वोपसंहारेणादृष्टार्थान्यथानुपपद्यमानत्वनि-
श्चय इत्यनयोर्मेदः, नैतद्युक्तम्, न हि लिङ्गं सैपक्षानुगममात्रेण
२५ गमकम् वैषम्यस्य लोहलेख्यत्वे पार्थिवत्ववत्, इयामत्वे तत्पुत्रत्व-
वत्त्वा । किं तर्हि? 'अन्तर्व्याप्तिवलेन' इति प्रतिर्पादयिष्यते, तत्र च
किं सपक्षानुगमेनेति चे? तदभावे गमकत्वमेवास्य कथमिति
चेत्? यथार्थापस्त्युत्थापकार्यस्य । तथैवापत्तिरेवाखिलमनु-
मानमिति बट्प्रमाणसंख्याव्याघातः । भवतु वा सैपक्षानुगमान-
२० नुगममेदः, तथापि नैतावता तैयोर्मेदः, अन्यथा पक्षधर्मत्वसहि-

१ अर्थापस्त्युत्थापकार्याविनाभाववगमः । २ यत्र इष्टिर्नास्ति स विपक्षस्तस्मिन् ।
३ अर्थापस्त्युत्थापकार्यस्य कल्याविनाभूतकल्पकस्य । ४ साध्यधर्मो दहनशक्तिरङ्गणो-
न्माधेरत्सीति साध्यधर्मो तस्मिन् । ५ दृष्टान्त एव यमी । ६ अग्नौ । ७ दाहस्य
साधनस्य । ८ शक्त्या । ९ दृष्टान्ते धर्मिणि शक्त्याविनाभूतस्तोदकक्षणकल्पकाऽ-
वर्तनादेव । १० दाहस्य । ११ शक्ति विना । १२ शक्ति विना । १३ दाहः ।
१४ दाहस्य शक्तिः । १५ मैत्रप्रवृत्त्यादेरपि स्वसाध्यं प्रति गमकत्वप्रसङ्गात् ।
१६ महाजसौ । १७ प्रत्यक्ष । १८ यो नो दूयवान्स्य सोऽग्निमिति । १९ अग्नि-
मायाव । २० पक्षे । २१ अर्थापत्तिरुपात् । २२ यो यः स्फोटः स सर्वोऽपि
शक्तियुक्ताधिकार्यः । २३ स्फोटस्य । २४ पाषाणकाष्ठादि । २५ मन्त्रय । २६ वर्जं
लोहलेख्यं पार्थिवत्वाभाषणवत्लोहलेख्यं न तत्पार्थिवं न, यथाक्रोशय । २७ अन्त-
र्व्याप्तिवलेनेति क्रोधः पक्षे एव साध्यसाधनबोध्योऽग्निरन्तर्व्याप्तिः । २८ पक्षधर्मैवानुगम-
मात्रं नोदाहरणमित्यादिविचारानसरे । २९ अन्तर्व्याप्तिवलेनैव गमकत्वे च । ३० प्रति-
पादयिष्यते । ३१ अर्थापस्त्युत्थापकस्यान्तर्व्याप्तिवलेन गमकत्वं तथा लिङ्गसाधनं ।
३२ दाहस्य । ३३ दृष्टान्ताभावे हेतोरगमकत्वं च । ३४ दृष्टान्ते । ३५ अर्थापत्तेः ।
३६ अर्थापस्त्युत्थापनयोः । ३७ प्रतापना नैवमेव ।

ताया अर्थापत्तेस्तद्ग्रहितार्थापत्तिः प्रमाणान्तरं स्यादिति प्रमाण-
संख्याव्याघातः । अस्ति चार्थापत्तिः पक्षधर्मत्वरहिता—

“नदीपूरोऽप्यधोदेशे दृष्टः सन्नपरि स्थिताम् ।

निर्यम्यो गमयत्येव वृत्तां वृष्टिं निर्यामिकाम् ॥ १ ॥

पित्रोर्ब्रह्माक्षणत्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमां ।

सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥ २ ॥

एवं यत्पक्षधर्मत्वं ज्येष्ठं हेत्वङ्गमिष्यते ।

तत्पूर्वोक्तान्यधर्मस्य दर्शनाद्व्यभिचार्यते ॥ ३ ॥” []

इत्यभिधानात् ।

नियमवर्ततेऽर्थान्तरप्रतिपत्तेरविशेषार्त्तयोरमेदे स्वसाध्याविना-१०
भाविनोर्थादर्थान्तरप्रतिपत्तेरत्राप्यविशेषात्कथमनुमानादर्थपत्ते-
र्मेदः स्यात् ? अथ विपक्षेऽनुपलम्भात्तस्योन्यथानुपपद्यमानत्वाव-
गमः, न, पार्थिवत्वादेरप्येवं स्वसाध्याविनाभावित्वावगमप्रसङ्गात्
विपक्षेऽनुपलम्भस्याविशेषात्, सर्वात्मसम्बन्धिनोऽनुपलम्भस्या-
सिद्धात्तैकान्तिकत्वाच्च । नन्वेवं सकलानुमानोच्छेदः, अस्तु नाम १५
तस्यायम् यो योदर्शनाद्विपक्षेऽनुपलम्भाद्व्याप्तिं प्रसाधयति
नास्तीति, प्रमाणान्तरात्तत्प्रसिद्धम्युपगमाद् । मेवतोपि ततस्त-
दभ्युपगमे प्रमाणसंख्याव्याघातः ।

मैत्रु बह्विस्वरूपस्याध्यक्षत एव प्रसिद्धेस्तेदतिरिक्तातीन्द्रियश-
क्तिसङ्गावे प्रमाणाभावात्कथं तत्रार्थापत्तेः प्रामाण्यम् ? निज्जा हि २०

१ हेतोर्भाष्यवृत्तित्वं पक्षधर्मत्वम् । २ उपरि दृष्टे देशे नदीपूरदर्शनान्वाधानुप-
पत्तेरित्येतस्य अपक्षधर्मत्वं निबन्धेनान्वादात् । यत्र देशे दृष्टिस्तत्र नदीपूरो न । यत्र
नदीपूरस्तत्र दृष्टिर्न । अत्र पक्षः उपरिदेशः । ३ पुनः । ४ व्याप्यः । ५ व्यापिकात् ।
६ पुत्रो ब्राह्मणः—पित्रोर्ब्राह्मणान्यथानुपपत्तेः । ७ अनुमा अर्थापत्तिः । अप्रसङ्गा नो
उक्तिरित्याशयिधानात् । ८ उक्तप्रकारेण । ९ अन्यस्य पक्षाद्व्यतिरिक्तस्य यमो नदीपूरः
पितृमाक्षयं च । पूर्वोक्ते नदीपूरादिः स चासाधन्यधर्मस्य तस्य । १० यो यो हेतुः
स स पक्षधर्मत्वसहित इत्यस्य व्यभिचारः । पक्षधर्मरहितोपि हेतुर्विचये वतः ।
११ स्कोट्यात्पूराच्च । १२ पक्षधर्मसहितासहितायोपपत्तौ । १३ सिद्धत्वात्पूराच्च ।
१४ अभिवृद्धयोः । १५ अनुमानेऽर्थापत्तौ च । १६ आकाशे ओहेलेखितसामावादात् ।
१७ दाहस्य । १८ इति चैव । १९ साधनस्य । २० अजोहेलेख्ये आकाशच्छब्दे
मिषधे पार्थिवत्वस्यानुपलम्भप्रकारेण । २१ वज्रस्य ओहेलेखित । २२ वपवे ।
२३ विपक्षेऽनुपलम्भः सर्वसम्बन्धीलादिप्रकारेण । २४ परः । २५ दृष्टान्ते ।
२६ जैनानाम् । २७ जहात् । २८ नीमांसफलस्य । २९ नैययिकः । ३० बहि-
तस्य । ३१ सत्प्रातिरिक्त ।

शक्तिः पृथिव्यादीनां पृथिवीत्वादिकमेव तदभिसम्बन्धादेव तेषां कार्यकारित्वात् । अन्यथा तु चैरमसहकारिरूपा, तत्सद्भावे कार्य-
करणादभावे चाकरणात् । तथाहि-सन्तोषि तन्तवो न कार्यमार-
भन्ते अन्यतन्तुसंयोगं विनैति सैव शक्तिस्तेषाम् । ननु कथमर्थ-
५ न्तरमर्थान्तरस्य शक्तिः ? अर्थान्तरत्वेऽपि समानमेतत्-‘स एव
तस्यैव न शक्तिः’ इति । अथ यदि पूर्वेषां सहकार्येव शक्तिस्तर्हि
तस्याप्यशक्तस्याकारणत्वादप्या शक्तिर्वाच्येत्यनवस्था; तदयुक्तम् ।
चरमस्य हि सहकारिणः पूर्वसहकारिण एव शक्तिः इतरेतर-
भिसम्बन्धेन कार्यकरणात् । स एव सैमग्राणां भावः सामग्रीति
१० भावप्रत्ययेनोच्यते, तेन सैता सैमग्रव्यपदेशात् ।

किञ्च, असौ शक्तिर्नित्या, अनित्या वा स्यात् ? नित्या चेत्स-
र्वदा कार्योत्पत्तिप्रसङ्गः । तथा च सहकारिकारणापेक्षा व्यर्थार्था-
नाम् तल्लभात्प्रागेव कार्यस्योत्पन्नत्वात् । अथानित्यासौ, कुतो
जायते ? शक्तिमतश्चेत्, किं शक्तात्, अशक्ताद्वा ? शक्ताच्चेच्छक्त्य-
१५ न्तरपरिकल्पनातोऽनवस्था स्यात् । अशक्तात्तदुत्पत्तौ कार्यमेव
तथाविधात्ततः किञ्चोत्पद्येत ? अलमतीन्द्रियशक्तिकल्पनया ।

तथा, शक्तिः शक्तिमतो भिन्ना, अभिन्ना वा स्यात् ? अभिन्ना
चेत्, शक्तिमात्रं शक्तिमन्मात्रं वा स्यात् ? भिन्ना चेत्, ‘तस्यैयम्’
इति व्यपदेशाभावः अनुपकारात् । उपकारे वा तया तस्योपकारः,
२० तेन वाऽस्याः ? प्रथमपक्षे शक्तिमतः शक्त्योपकारोऽर्थान्तरभूतः,
अनर्थान्तरभूतो वा विधीयते ? अर्थान्तरभूतश्चेदनवस्था, तस्यापि

१ पृथिवीत्वादिसरूप । २ शक्तिः । ३ अन्य । ४ कैनादिः । ५ जीवस्य ।
६ नैयायिकः । ७ बहिः । ८ बहेः । ९ अपरसहकारिशक्त्यभावादशक्तः ।
१० अतीन्द्रियया शक्त्या शक्तिमतः उपकारः कियते इत्यसिद्धपक्षे शक्त्या कियमाण
उपकारः शक्तिमतो भिन्नश्चेत्तदानवस्था । कथम् ? उपकारोपि शक्तिमतो भिन्नो यदि
तदा शक्तिमतोऽयमुपकार इति सम्बन्धो न स्यात् भिन्नत्वात् । उपकारेणापि स्वसम्बन्ध-
स्तिष्वर्थमुपकारान्तरं कियते चेत्तदा शक्तेनाऽशक्तेन दोषकारिणोपकारान्तरं कियते ? न
प्रावदशक्तेन-अशक्तस्योपकारकरणे गक्षमत्वात् । शक्तेन चेदुपकारेण स्वसम्बन्धस्तिष्वर्थ-
मुपकारान्तरं विधीयते तर्हि यथा शक्त्या स्वयं शक्तः उपकारः सापि भिन्नाऽभिन्ना वा ?
भिन्ना चेत्तदोपकारस्यैव शक्तिरिति न-तस्याद्विधत्वात् । शक्त्यापि स्वसम्बन्धस्तिष्वर्थ-
मुपकारान्तरं कियते इत्यादिप्रकारेणानवस्था । ११ कारणान्तरम् । १२ विधमानेन ।
१३ तन्प्राप्तम् । १४ इत्यनवस्था परिहृता । १५ यथा शक्त्या शक्तिमान् शक्तः सापि
नित्याऽनित्या वा ? न तावन्नित्या-सर्वदा कार्योत्पत्तिप्रसङ्गात् । अथानित्या, सापि कुतो
जायते ? शक्तिमतश्चेच्छक्तादशक्तदेलादिप्रकारेण । १६ स्फोटोद्दि । १७ शक्तिः ।
१८ शक्तिमतः सकाशात् । १९ पूर्ववत् । २० न केवलं शक्तेः ।

व्यपदेशार्थमुपकारान्तरपरिकल्पनया शक्त्यन्तरपरिकल्पनात् । अनर्थान्तरभूतोपकारकरणे तु स एव कृतः स्यात् । तथा च न शक्तिमानसौ तत्कार्यत्वाप्रसिद्धतत्कार्यत्वात् । शक्तिमतापि-शक्त्यन्तरान्वितेन, तद्रहितेन वा शकेरुपकारः क्रियते? आद्यपक्षे शक्त्यन्तराणां ततो मेदः, अमेदो वा? उभयत्रानन्तरोक्तोभयदोषानुपपन्नोऽनवस्था च । तद्रहितेनानेन शकेरुपकारे तु प्राच्यशक्ति-^५ कल्पनाप्यपार्थिका तद्व्यतिरेकेणैव कार्यस्याप्युत्पत्तेरुपकारवत् । शक्तिशक्तिमतोर्मेदामेदपरिकल्पनायां विरोधादिदोषानुपपन्नः ।

तथा, असौ किमेका, अनेका वा? तत्रैकत्वे शक्तेर्युगपदनेककार्योत्पत्तिर्न स्यात् । अनेकत्वेऽपि अनेकशक्तिमात्मन्यर्थेनैकशक्तिमिर्विश्रुयादित्यनवस्थाप्रसङ्ग इति । ^{१०}

अत्र प्रतिविधीयते । किं ग्राहकप्रमाणाभावाच्छंकेरभाधः, अतीन्द्रियत्वाद्वा? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; कार्योत्पत्त्यन्यथानुपपत्तिजनितानुमौनस्यैव तद्ग्राहकत्वात् । ननु सामर्थ्यधीनोत्पत्तिकत्वात्कार्याणां कथं तदन्यथानुपपत्तिर्यतोऽनुमानात्तत्सिद्धिः स्यात्; इत्यप्यसमीचीनम्, यतो नास्माभिः सामर्थ्याः कार्यकारित्वं प्रतिपिध्यते, ^{१५} किन्तु प्रतिनियतायास्तस्याः प्रतिनियतकार्यकारित्वम् अतीन्द्रियशक्तिसङ्भावमन्तरेणासम्भाव्यमित्यसावप्यभ्युपगन्तव्या । कथमन्यथा प्रतिबन्धकमणिमन्त्रादिसन्निधानेऽप्यग्निः स्फोटोदिकार्यं न कुर्यात् सामर्थ्यास्तत्रापि सङ्भावत्? तेन ह्यग्नेः स्वरूपं प्रतिहन्यते, सहकारिणो वा? न तावदाद्यः पक्षः क्षेमद्वारः, ^{२०} अग्निस्वरूपस्य तदवस्थतयाव्यक्षेणैवाध्यवसायात् । नापि द्वितीयः; सहकारिस्वरूपस्याप्यङ्गव्यग्निसंयोगलक्षणस्याविकलतयोपलक्षणात् । अतः शक्तेरेवानेन प्रतिबन्धोभ्युपगन्तव्यः ।

१ शक्तिमतोऽयमुपकार इति सम्बन्धन्यपदेशार्थम् । २ उपकारस्य । ३ शक्तिमात् । ४ बहिः । ५ उपकारवत् । ६ द्वितीयपक्षे । ७ निष्कषा । ८ स्तोतादेः । ९ शक्तिरहितेन शक्तिमताऽग्निना उपकारलोत्पत्तिर्यथा । १० अन्धकारनाश, अर्थ-प्रकाश, वसिष्ठादादयः, तैत्तिरीयोपनिषद् । ११ अर्थोऽनेकशक्तेरुपकाराविमर्शे चेत्तदनेकशक्तीनामेकत्वप्रसङ्गः—एकशक्त्या व्याप्यमानत्वात्तदन्वयमशक्तिवत् । १२ अतीन्द्रियायाः । १३ बहिरुक्तगोचरो दहनशक्तियुक्तस्तव । स्फोटोदिकादीनामन्यथातुल्यपक्षेति । १४ समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणानां परस्परसम्बन्धप्रमाणं सामग्री । १५ जैनेः । १६ अतीन्द्रियशक्त्यभावेति सामर्थ्याः कार्यवन्निवे । १७ सामर्थ्याः प्रविष्टकमग्निधाने सङ्भावो नान्दीत्युक्ते ऋह । १८ अनिदम्बफेन । १९ प्रतिबन्धकमणिमन्त्रादिना । २० एतः अन्धकारः ।

ननु चानेन नाग्नेः सहकारिणो वा स्वरूपं प्रतिहन्यते, किन्तु स्वभाव एव निवर्त्यते, अतः स्फोटादिकार्यस्यानुत्पत्तिः प्रतिबन्धकमणिमन्त्राद्यभावस्यापि तदुत्पत्तौ सहकारित्वात् तदभावे तदनुत्पत्तेः; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; उत्तममकमणिसन्निधाने कार्यस्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न खलु तदा प्रतिबन्धकमण्याद्यभावोऽस्ति प्रत्यक्षविरोधात् । ननु यथाग्निः प्रतिबन्धकमण्याद्यभावसहकारी स्फोटादिकार्यं करोति, एवं प्रतिबन्धकमण्यादिः उत्तममकमण्याद्यभावसहकारी तत्प्रतिबन्धं करोति, अतो न तत्सन्निधाने कार्यस्यानुत्पत्तिरिति । अस्तु नामैतत्; तथापि-प्रतिबन्ध-
१० कोत्तममकमणिमन्त्रयोरभावेऽग्निः स्वकार्यं करोति, न वा ? न तावदुत्तरः पक्षः; प्रत्यक्षविरोधात् । प्रथमपक्षे तु कस्याभावः अग्नेः सहकारी-तयोरन्यतरस्य, उभयस्य वा ? न तावदुभयस्य; अन्यतरभावे कार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । अन्यतरस्य चेत्किं प्रतिबन्धकस्य, उत्तमकस्य वा ? प्रतिबन्धकस्य चेत्, स एवोत्तममकमण्यादिस-
१५ न्निधाने कार्यानुत्पादप्रसङ्गः तदा तस्याभावाप्रसिद्धेः । उत्तमकस्य चेत्, अत्राप्ययमेव दोषः । न चाभावस्य कार्यकारित्वं बध्नेते भावरूपतानुषङ्गात्, अर्थक्रियाकारित्वलक्षणत्वात्परमार्थसतो लक्षणांतराभावात् ।

कश्चास्याभावः कार्योत्पत्तौ सहकारी स्यात्-किमितरेतराभावः;
२० प्रागभावो वा स्यात्, प्रध्वंसो वा, अभावमात्रं वा ? न तावदितरेतराभावः; प्रतिबन्धकमणिमन्त्रादिसन्निधानेऽप्यस्य सम्भवात् । नापि प्रागभावः; तत्प्रध्वंसोत्तरकालं कार्योत्पत्त्यभावप्रसङ्गात् । नापि प्रध्वंसः प्रतिबन्धकमण्यादिप्रागभावावस्थायाम् कार्यस्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न च भावादर्थान्तरस्याभावस्य सङ्गावोक्तिः, तस्यानन्तर-
२५ मेव निराकरिष्यमाणत्वात् । अतो निराकृतमेतत्-‘अस्यान्वयव्यतिरेकौ कार्येणानुक्रियेते सोऽभावस्तत्र सहकारी सहकारिणाम-निर्णयमात्’ इति ।

१ प्रतिबन्धकेव । २ स्वस्य प्रतिबन्धकस्य भावः । ३ अभावरूपकारणभावे । ४ कार्योत्पादक । ५ प्रतिबन्धकमण्याद्यभावस्य सहकारिणोऽभावात् । ६ उत्तममकमणि-सन्निधानकाले । ७ प्रतिबन्धकाभावे उत्तमकसङ्गावे चोभयसङ्गावे च । ८ उत्तमक-कस्याभावः सहकारी चेदित्यर्थः । ९ उत्तमकसङ्गावे कार्यानुत्पादप्रसङ्गलक्षणः । १० अभावः कार्यकारी चेत्तर्हीति शेषः । ११ तदोत्तमकस्याभावाविशेषाभावादुत्त-
मकसङ्गावे कार्यं न स्यात् । १२ सत्तासम्बन्धः प्रमाणसम्बन्धो वेलादि । १३ प्रति-
बन्धकस्य । १४ प्रतिबन्धक उत्तमको वेति । १५ दुष्प्रमाणस्य । १६ सहकारिणे
भावा अभावा एव वा भवन्तीति निवृत्त्यो नास्ति ।

कथं चैवंवादिनो मन्त्रादिना कश्चित्प्रति प्रतिबन्धोप्यग्निः स एवान्यस्य स्फोटोदिकार्यं कुर्यात् ? प्रतिबन्धकामावस्य सहकारिणः कैस्यचिदप्यभावात् । न चास्मैत्यक्षेप्येतच्चोद्यं समानम्, वस्तुनोऽनेकशक्त्यात्मकत्वात्कस्याधिकेनैचित्कश्चित् [प्रति] प्रतिबन्धेप्यन्यस्याः प्रतिबन्धकामावात् । नाप्यभावमात्रं सहकारिः, वस्तुनोर्थान्तरस्याभावस्याभावे तद्वत्सामान्यस्याप्यसम्भवात् । न चाभावस्य सामान्यं सम्भवति, द्रव्यगुणकर्मान्यतरूपतानुपपन्नात् । ततः प्रतिबन्धकमप्यादिप्रतिहतशक्तिर्वह्निः स्फोटोदिकार्यस्यानुत्पादकस्तद्विपरीतस्तत्पादक इत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

ततो निराकृतमेतत् 'कार्यं स्रोतपत्तौ प्रतिबन्धकामावोपप्लवो- १०
भयघाद्यविवादास्पदकारकव्यतिरेकानपेक्षम्, तन्मात्रादुत्पत्ता-
वनुपपद्यमानबाधकत्वात्, यैसु यैतो व्यतिरेकमपेक्षते न तर्हि-
न्मात्रजत्वेऽनुपपद्यमानबाधकम् यथा तन्तुमात्रापेक्षया पटः,
न च तथैवम्, तस्याध्ययोकसाध्यम्' इति; हेतोरसिद्धेः; तन्मा-
त्रादुत्पत्तौ कार्यस्य प्रागुक्तन्यायेनानेकबाधकोपपत्तेः । १५

स्वरूपसहकारिव्यतिरेकेण शक्तेः प्रतीत्यभावादसत्त्वे वा स-
म्भवितादिदृष्टकारणकलापव्यतिरेकेणादृष्टस्यैवप्रतीतितोऽसत्त्वं
स्यात्, तथा चासाधारणनिमित्तकारणाय दर्शो जलाज्जलिः ।
कथं चैवंवादिनो जगतो महेश्वरनिमित्तत्वं सिध्येत् ? विचित्र-
क्षित्वादिदृष्टकारणकलापादेवाङ्कुरादिविचित्रकार्योत्पत्तिप्रतीतेः । २०
अनुमानात्तस्य तन्निमित्तत्वसाधने शकेरप्यत एव सिद्धिरस्तु ।
तथाहि-यत्कार्यम् तदसाधारणधर्मोद्ध्यासितादेव कारणदावि-
र्भवति सहकारीतैरकारणमात्राद्वा न भवति यथा सुखोऽङ्कुरादि,
कार्यं चेदं निखिलमाविर्भावश्चस्त्विति । एतेनैवातीन्द्रियैवा-
सर्दभावोऽपास्तः । २५

यदप्युक्तम्-'पृथिव्यादीनां पृथिवीत्वादिकैर्मेव निजा शक्तिः'
इत्यादि; तदप्यपेशलम्; मृत्पिण्डादिभ्योपि पटोत्पत्तिप्रसङ्गात्

१ कार्योत्पत्ति प्रत्यभावः सहकारीत्वेन वादिनः । २ प्रागभावादिरूपस्य ।
३ नैव । ४ मन्त्रादिना । ५ नर प्रति । ६ अभावः सहकारी विचार्यमाणो व पटो
यतः । ७ स्फोटोदिकार्यं भस्मि । ८ वह्निः । ९ अतीन्द्रियशक्तेः । १० कारक-
मात्रात् । ११ पटादिकार्यम् । १२ तन्तुस्यः । १३ नेमादिकम् । १४ तन्तुमात्रं ।
१५ पुण्यस्य । १६ पुण्यसाऽसत्त्वे सति । १७ विशेषः । १८ परेण भवता ।
१९ स्वरूपसहकारिव्यतिरेकेण शक्तेः प्रतीत्यभावः इत्येवंवादिनः । २० शक्तिः ।
२१ पुण्यमहेश्वरादेः । २२ स्वपक्षसिद्धौ साध्यम् । २३ उपादानं । २४ परपक्ष-
प्रतिक्षेपे साध्यमिदम् । २५ मुखेऽदृष्टमसाधारणकारणम् । २६ अङ्कुरेऽसाधारणमी-
श्वरः । २७ द्वितीयविकल्पोप्यम् । २८ अस्तव्यभावः । २९ साध्यम् ।

विभाव्यते, तद्रहितेन वा? प्रथमपक्षेऽनवस्था । द्वितीयपक्षे तु मुक्तात्मवत्तस्यै तज्जनकत्वासम्भेदः ।

किञ्च, कथं वा महेश्वरस्याखिलकार्यकारित्वम्? सहकारिरहितस्य तत्कारित्वे सकलकार्याणामेकदैवोत्पत्तिप्रसङ्गात् । तत्सहितस्य तत्कारित्वे तु तेषां सहकारिणोऽन्यसहकारिसहितैर्न कर्तव्या ५ इत्यनवस्था । पूर्वपूर्वादिप्रसहकारिसमन्वितयोरुत्पत्तेश्वरयोः उत्तरोत्तरादप्राखिलकार्यकारित्वे निखिलभावानां पूर्वपूर्वशक्तिसमन्वितानामुत्तरोत्तरशक्त्युत्पादकत्वमस्तु, अलं मिथ्यामिनिवेशेन ।

यच्चान्यदुक्तम्-शक्तिः शक्तिमतो भिन्नाऽभिन्ना वेत्यादि; तदप्युक्तम्; तस्यास्तद्वतः कथञ्चिद्वेदाभ्युपगमात् । शक्तिमतो हि १० शक्तिर्भिन्ना तत्प्रत्यक्षत्वेऽप्यस्याः प्रत्यक्षत्वाभावात्, कार्यान्यथातु-पपत्त्या तु प्रतीयमानासौ । तद्वतो विवेकैर्न प्रत्येतुमशक्यत्वादभि-भेति । न चात्र विरोधाद्यवतारः; तदात्मकवस्तुनो जीत्यन्तरत्वात् मेचकज्ञानवत्सामान्यविशेषवत् ।

यत्पुनरुक्तमेकानेका वेत्यादि, तत्रार्थानामनेकैव शक्तिः । १५ तथाहि-अनेकशक्तियुक्तानि कारणानि विचित्रकार्यत्वाच्चाथैवत् । विचित्रकार्याणि वा कारणशक्तिभेदनिमित्तकानि तत्तैर्वादिभिन्नाथै-कार्यवत् । न हि कारणशक्तिभेदमन्तरेण कार्यनानात्वं शुक्तं रूपादिज्ञानवत्, यथैव हि कर्कटिकादौ रूपादिज्ञानानि रूपादि-स्वभावभेदनिबन्धनानि तथा क्षणस्थितेरेकस्यादपि प्रदीपादेर्भा- २० वाद् घटिकादादितैलशोषादिविचित्रकार्याणि तैच्छक्तिभेदनिमि-त्तकानि व्यवतिष्ठन्ते, अन्यथा रूपादेर्नानात्वं न स्यात् । वैश्वरादि-सामग्रीभेदादेव हि तज्ज्ञानप्रतिभासभेदः स्यात्, कर्कटिकादि-द्रव्यं तु रूपादिस्वभावरहितमेकमनंशमेव स्यात् । वैश्वरादिवुद्धौ

१ अदृष्टान्तरपरिकल्पनया आत्मन इति पक्षे । २ संसारोत्पन्नः । ३ अदृष्टर-हितत्वात् । ४ अदृष्टविशेष । ५ महेश्वरेण । ६ जननसाधापादनेन । ७ जैनेः । ८ भासि विना धूमवत् । ९ प्रदीपात् । १० भेदेन । ११ शक्तेः कथञ्चिद्वेदा-भेदपक्षे । १२ भेदाभेद । १३ भेदाभेदस्या नालन्तरत्वात् । १४ दहनो दाह-शक्तियुक्तो दाहान्नपानुपपत्तेः [१] । १५ सन्न्यक्तिसन्तुल्यतत्त्वात्सामान्यरूपता गोलस्य । अथत्वादित्यो व्यावर्तमानत्वादिशेषरूपता यथा तथा सर्वत्र प्रतिपत्तयत् । सामान्यमेव विशेषस्यैव तद्वत् । १६ विचित्राणि कर्माणि देवां तानि विचित्रकर्माणि तेषां भावसत्त्वं दृष्टान्तेति । १७ विचित्रकार्यत्वात् । १८ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्यात् । १९ तैलशोषादिशक्तिभेदं विनापि-तैलशोषादिकर्माणि स्युरिति चेत् । २० तैल-शोषादि । २१ तैलशोषादिशक्तिं विनापि शक्तिभेदनिमित्तकानि यदि तैलशोषादि-कार्याणि स्युः । २२ किन्तु । २३ रूपादिसामान्यसमर्थात्, प्रादः प्रादः ।

प्रतिभासमानत्वादूपादेः कथं कर्कटिकादिद्रव्यस्य तद्द्रहितत्वमिति चेत् ? तर्हि तैलशोषादिविचित्रकार्यानुमानबुद्धौ शक्तिनानात्वस्याप्यर्थानां प्रतीतेः कथं तद्द्रहितत्वं स्यात् ? प्रत्यक्षबुद्धौ प्रतिभासमाना रूपादय एव परमार्थसन्तो न त्वनुमानबुद्धौ प्रतिभासमानाः ५ शक्यैः, इत्यपसु (प्यसु)न्दरम्; अदृष्टेश्वरादेरपरमार्थसत्त्वप्रसङ्गात् । प्रदीपादिद्रव्यस्यैकस्य वर्तिकादिसहकारिसामग्रीभेदात्तद्वादादिकार्यनानात्वं न पुनस्तच्छक्तिसमावभेदात्; इत्यप्यविचारितरमणीयम्; रूपादेरप्यभावप्रसङ्गात् । शक्यं हि वक्तुं कर्कटिकादिद्रव्ये चक्षुरादिसामग्रीभेदाद्रूपादिप्रत्ययप्रतिभासभेदो, न पुना १० रूपौघनेकस्वभावभेदादिति । तन्न प्रमाणप्रतिपन्नत्वादूपादिवच्छक्तीनामपलापो युक्त इति ।

यत्पुनरर्थापत्त्यर्थापत्तेरुदाहरणं वाचकसामर्थ्यात्तन्नित्यत्वज्ञानमुक्तम्; तदप्ययुक्तम्; वाचकसामर्थ्यस्य तत्प्रत्यनन्यथाभर्वनासिद्धेः । निराकरिष्यते चाग्रे नित्यत्वं शब्दस्येत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

१५ याप्यमावार्थापत्तिः-जीवश्चैत्रोऽन्यत्रास्ति गृहेऽभावादिति; तत्रापि किं गृहे यत्तस्य जीवनं तदेव गृहे चैत्राभावस्य विशेषणम्, उतार्थैत्र ? प्रथमपक्षे तत्राभावस्य विशेष्यस्यासिद्धिः, यदा हि चैत्रो गृहे जीवति कथं तदा तत्र तदभावो येनौसौ तेन विशेष्येत ? यदा च तत्र तदभावो, न तदा तत्र तज्जीवनमिति । द्वितीयपक्षे २० तु विशेषणस्यासिद्धिः, नैव खलु चैत्रस्यान्यैत्र यज्जीवनं तदार्थापत्त्यदयकाले तथाविधप्रदेशविशेषणत्वेन कुतश्चित्प्रतीयते अर्थापत्तेरन्यर्थप्रसङ्गात् । येनैव हि प्रमाणेन तज्जीवनं प्रतीयते तेनैव तत्सद्भावोपि । न ह्यप्रतिपक्षे देवदत्ते तद्धर्मो जीवनं प्रत्येतुं शक्यम् अतिप्रसङ्गात् । न चाप्रतीतस्य विशेषणत्वमर्त एव । अर्थापत्यैव

१ प्रदीपो नानाशक्तियुक्तः तैलशोषादिनानाकार्यान्वयानुपपत्तेरिति । २ दूषणमीलैव वचः । ३ ज्ञाने । ४ निरस्तत्वप्रतिपादनाव । ५ शब्द । ६ शब्दनित्यत्वं प्रति । ७ अन्यथा नित्यत्वं विना न भवन् तस्य । ८ अविनाभावस्यासिद्धेः । ९ जीवतः । १० बहिर्जीवनम् । ११ विशेष्यस्यासिद्धिमुद्गावयन्ति । १२ चैत्राभावः । १३ गृहजीवनेन । १४ चैत्रस्य बहिर्जीवनं चैत्राभावविशेषणमित्यसिद्धेः । १५ जीवनस्य । १६ अस्तिक्रमेव प्रदर्शयन्ति । १७ बहिः । १८ अन्यप्रदेशः । १९ प्रमाणम् । २० विद्वद्भिः । २१ अन्यथा । २२ अर्थापत्तेर्वैयर्थ्यप्रसङ्गमेव सूचयन्ति । २३ अतोर्थापत्त्या चैत्रसद्भानपरिकल्पनं व्यर्थम् । २४ जीवनमेव प्रतीयते न तत्सद्भाव इति परेणोक्ते जैनः प्राह । २५ येरुपरीलभावेति द्रूपादिप्रतिपत्तिप्रसङ्गात् । २६ जीवनस्य । २७ दण्डाज्ञाने दण्डिज्ञानप्रसङ्गात् ।

तत्सिद्धावितरेतराश्रयः-सिद्धे हि तथा तस्यान्यत्र जीवने तद्विशेष-
वितात्तत्प्रदेशामावादर्थोपपत्त्युदयः, ततश्च तत्सिद्धिरिति ।

अथ न निश्चितं सज्जीवनं तद्ग्रहाभावविशेषणं येनोपयं दोषः,
किन्तु 'यदि गृहेऽसन् जीवति तदान्यत्रास्ति' इत्यभिधीयते;
तर्हि संशयरूपत्वात्तस्याः कथं प्रामाण्यम् ? या तु प्रमाणं सानु-५
मानमेव । पञ्चोर्वेयवत्वमप्यत्र सम्भवत्येव । तथाहि-जीवतो
देवदत्तस्य गृहेऽभावो बहिस्तत्सद्भावपूर्वकः जीवतो गृहेऽभा-
वत्वात् प्राङ्गणे स्थितस्य गृहे जीवद्भाववत् । यद्वा, देवदत्तो
बहिरस्ति गृहासंसृष्टजीवनाधारत्वात्सौत्वमवत् । कथं पुनर्देवद-
त्तस्यानुपलभ्यमानस्य जीवनं सिद्धं येन तद्वेतुविशेषणमित्यसत् । १०
प्रसङ्गसाधनोपन्यासात् ।

यच्च निषेधोपाधारवस्तुग्रहणादिसामग्रीत इत्याद्युक्तम् ; तत्र
निषेधोपाधारो वस्तुवन्तरं प्रयोगिसंसृष्टं प्रतीयते, असंसृष्टं वा ?
तत्राद्यपक्षोऽयुक्तः ; प्रतियोगिसंसृष्टवस्तुवन्तरस्याप्यक्षेण प्रतीतौ
तत्र तदभावप्रादुर्भावनाभावप्रमाणप्रवृत्तिविरोधात् । प्रवृत्तौ वा १५
न प्रामाण्यम् ; प्रतियोगिनः सत्त्वेऽपि तत्प्रवृत्तेः । द्वितीयपक्षे तु
अभावप्रमाणवैयर्थ्यम्, प्रत्यक्षेणैव प्रतियोगिनोऽभावप्रतिपत्तेः ।
अथ प्रतियोग्यसंसृष्टतावगमो वस्तुवन्तरस्याभावप्रमाणसम्पाद्यः ;
तर्हि तदप्यभावप्रमाणं प्रतियोग्यसंसृष्टवस्तुवन्तरग्रहणे सति प्रव-
र्त्तते, तदसंसृष्टतावगमश्च पुनरप्यभावप्रमाणसम्पाद्य इत्यन- २०
वस्था । प्रथमाभावप्रमाणात्तदसंसृष्टतावगमे चान्योन्याश्रयः ।

१ बहिर्जीवन । २ बहिर्जीवन । ३ गृह । ४ इतरेतराश्रयः । ५ यदि जीवति
तदा बहिरस्ति यदि न जीवति-तदा नास्तीत्यर्थः । ६ जीवनस्य संशयितत्वात् ।
७ अन्यत्र जीवनानिश्चयात् । ८ यथार्थापत्तिर्यथाऽप्रमाणं तथा सर्वान्वयप्रमाणं सादित्या-
रेकाग्रमाह । ९ पञ्चावयववत्त्वाभावे कथमर्थापत्तेरनुमानत्वमिति परेयोक्ते सत्याह ।
१० प्रतिज्ञाहेतुत्वाहरणोपनयनिगमनान्यवयवः । ११ ह्युतेन व्यभिचारपरिहाराय-
नेतत् । १२ प्रमाणरूपवत् । १३ अभावरूपहेतोः । १४ तात्त्वसाधनयोर्न्याय्य-
व्यापकभावसिद्धौ न्याय्याभ्युपगमो व्यापकान्भ्युपगमनान्तरीयको वञ्च (अर्थे) प्रदवर्धते
तत्प्रसङ्गापनयः । १५ घट । १६ भूतक । १७ आदिपदेन प्रतिषेधसरणमुप-
लब्धिक्षणप्राप्तस्य घटादेरुपलम्भश्च । १८ भूतकम् । १९ घटेन । २० रहितम् ।
२१ घटाभाव । २२ अभावप्रमाणस्य । २३ अभावान्वयः । २४ भूतकस्य ।
२५ आशयः । २६ उत्पद्येत् । २७ प्रथमाभावप्रमाणात्प्रतियोग्यसंसृष्टतावगमः तदव-
गमश्च प्रथमाभावप्रमाणोदये इति ।

प्रतियोगिनोपि स्मरणं वस्त्वन्तरसंसृष्टस्य, असंसृष्टस्य वा । यदि संसृष्टस्य, तदाऽभावप्रमाणप्रावृत्तिः । अथासंसृष्टस्य, ननु प्रत्यक्षेण वस्त्वन्तरासंसृष्टस्य प्रतियोगिनो ग्रहणे तथाभूतस्यास्य स्मरणं स्यान्नान्यथा । तथाभ्युपगमे च तदेवाभावप्रमाणवैयर्थ्यं ५ 'वस्त्वसङ्करसिद्धिश्च तत्प्रामाण्यं समाश्रिता' इत्यादिग्रन्थविरोधश्च । वस्तुमात्रस्याध्यक्षेण ग्रहणाभ्युपगमे प्रतियोगीतरव्यवहारोभावः ।

यदि चानुभूतेपि भवे प्रतियोगिस्मरणमन्तरेण भवप्रतिपत्तिर्न स्यात्, नहि प्रतियोग्यप्यनुभूत एव स्मर्यो नान्यथा अति- १० प्रसङ्गात् । तदनुभवश्चान्यौसंसृष्टतयाऽभ्युपगन्तव्यः, तस्याप्यन्यौसंसृष्टताप्रतिपत्तिस्ततोऽन्यत्र प्रतियोगिस्मरणात् तत्राप्ययमेव न्याय इत्यनवस्था । अथ प्रतियोगिनो भूतलस्य स्मरणाद् घटस्यान्यौसंसृष्टता प्रतीयते, तत्स्मरणाच्च भूतलस्य तदेतरेतरार्थः, तथा- १५ हि—न यावद्धटासंसृष्टभूभागप्रतियोगिस्मरणाद् घटस्य भूतलासंसृष्टताप्रतिपत्तिर्न तावत्तत्स्मरणोद्भूतलस्य घटासंसृष्टताप्रतिपत्तिः, यावच्च भूतलस्य घटासंसृष्टता न प्रतीयते न तावत्तत्स्मरणेन घट- २० स्येति । ततोऽन्यप्रतियोगिस्मरणमन्तरेणैवाभौवांशो भावांशवत्प्रत्यक्षोऽभ्युपगन्तव्यः । भूतलासंसृष्टघटदर्शनाहितसंस्कौरस्य च पुनर्घटासंसृष्टभूभागदर्शनानन्तरं तथाविधघटस्मरणे सति 'अस्या- २० भौभावः' इति प्रतिपत्तिः प्रत्यभिज्ञानमेव । यदा तु स्वदुरीगमाहि-

१ स्मृत्वा च प्रतियोगिनमित्येतद्विचारयति । २ भूतल । ३ भूतलसम्बद्धप्रतियोगि-सङ्गावभाहकत्वेनैव प्रत्यक्षस्य प्रवृत्तेः । ४ पूर्वोक्तमेव । ५ आयातम् । ६ प्रत्यक्षेणैवाभावस्य प्रतीतिश्चात् । ७ अनवस्थादिदूषणपरिहारं करोति । ८ भूतलमात्रस्य । ९ अनवस्थादिदोषमवात्परेण । १० घट । ११ भूतल । १२ भूतलस्य । १३ प्रत्यक्षप्रतिपत्तेः । १४ भूतललक्षणे । १५ घटस्य । १६ परेण । १७ अन्येन पटेन । १८ परेण । १९ घटस्य । २० पटेन । २१ घटात् । २२ पटे । २३ ग्रन्थानवस्था साद । २४ अनवस्थापरिहारार्थं परः आह । २५ भूभागेन । २६ अन्यासंसृष्टता प्रतीयते । २७ घटासंसृष्टभूभागप्रतियोगिस्मरणात् घटस्य भूतलासंसृष्टताप्रतिपत्तिस्तस्यां सत्त्वां भूभागासंसृष्टघटप्रतियोगिस्मरणाद्भूतलस्य घटसंसृष्टताप्रतिपत्तिस्तस्यां सत्त्वां घटासंसृष्ट-भूभागस्मरणाद् घटस्य भूतलासंसृष्टताप्रतिपत्तिरित्यान्वयमुक्तेनेतरेतराशयः । २८ भूभागासंसृष्टघटप्रतियोगि । २९ वृष्टश्रुतानुभूतेर्न स्मरणं चोपनायते । ३० घटासंसृष्ट-भूभाग । ३१ असंसृष्टताप्रतीतिः । ३२ इतरेतराशयो यतः । ३३ सर्वमाणघटस्य । ३४ प्रतियोगिस्मरणं विना जायमानं ज्ञानं प्रत्यक्षं प्रतियोगिस्मरणानन्तरमुपजायमानमभावप्रमाणं भविष्यतीत्युक्ते आह । ३५ नरस्य । ३६ सर्वमाणघटस्य । ३७ भूभागे । ३८ दर्शनेस्मरणकारणकत्वाविशेषात् । ३९ आनिर्भावतिरोमानास्तर्कं सर्वत्र विधत्ते इति ।

तत्संस्कारः साङ्ख्यस्तथाऽप्रतिपद्यमानः तत्प्रसिद्धसत्स्वरजस्त-
मोलक्षणविषयनिर्दर्शनोपदर्शनेन अनुपलब्धिविशेषतः प्रतियोग्यते
तदाप्यनुमानमेवेति कौभावप्रमाणस्यावकाशः ? ततोऽयुक्तमु-
क्तम्—‘न चाध्यक्षेणाभावोऽवसीयते तस्याभावविषयत्वविरोधात्,
नाप्यनुमानेन हेतोरभावात्’ इति । ५

किञ्च, अभावप्रमाणेनाभावग्रहणं तस्यैव प्रतिपत्तिः स्यान्न
प्रतियोगिनिवृत्तेः । अभावप्रतिपत्तेस्तन्निवृत्तिप्रतिपत्तिश्चेत्, सौ
किं प्रतियोगिस्वरूपसम्बद्धा, असम्बद्धा वा ? न तावत्सम्बद्धा,
भावभावयोस्तादात्म्यादिसम्बन्धासंभवस्य वक्ष्यमाणत्वात् ।
अथासम्बद्धा, तर्हि तत्प्रतिपत्तावपि कथं प्रतियोगिनिवृत्ति- १०
सिद्धिः अतिप्रसङ्गात् ? तन्निवृत्तेरप्यपरतन्निवृत्तिप्रतिपत्त्यभ्यु-
पगमे चानवस्था ।

यच्च ‘प्रमाणपञ्चकाभावः, तदर्थ्यज्ञानम्, आत्मा वा ज्ञाननिर्मु-
क्तोऽभावप्रमाणम्’ इति त्रिप्रकारतास्येत्युक्तम्, तदप्ययुक्तम्,
यतः प्रमाणपञ्चकाभावो निरुपार्थ्यत्वोक्तं प्रमेयाभावं परिच्छि- १५
न्धात् ‘परिच्छिन्नेर्ज्ञानधर्मत्वात्’ अथ प्रमाणपञ्चकाभावः प्रमेया-
भावविषयं ज्ञानं जनयत्युपचाराद्भावप्रमाणमुच्यते, न, अभाव-
स्यावस्तुतया तज्ज्ञानजनकत्वायोगात् । वस्तुनैव हि कार्यमुत्पादय-
ति नावस्तु, तस्य सैकलसामर्थ्यविकलत्वात्स्वरविषाणवत् ।
सामर्थ्यं वा तस्य भावरूपताप्रसक्तिः, तल्लक्षणत्वात्परमार्थसतो २०
लक्षणान्तराभावात्, सत्तासम्बन्धादेस्तल्लक्षणस्य निषेत्स्यमान-

१ अभावं प्रलक्षतः । २ दृष्टान्तः । ३ अभावश्च । ४ इदं श्रुते ब्रह्मे नास्ति
दृश्यत्वे सत्यनुपलब्धेः । यत्र यस्य दृश्यत्वे सत्यनुपलब्धिसात्र तस्याभावो यथा तमसि
सत्त्वस्य । ५ विषये । ६ प्रलक्षप्रलम्बिज्ञानानुमानैरभावः प्रतीयते यतः । ७ सति ।
८ वटाभावस्य । ९ प्रतिपत्तिः सादा । १० निवृत्तिः । ११ अनन्तरमेव प्रध्वंसा-
भावनिराकरणे । १२ निवृत्त्याऽसम्बद्धस्य प्रतियोगिनो वदस्य यथाऽभावः स्यात्तथा
यदस्यापि निवृत्त्याऽसम्बद्धस्याभावप्रसङ्गः—सम्बन्नासम्बद्धत्वाविवेचात् । १३ सा चातो
निवृत्तिश्च तन्निवृत्तिस्तस्याः सकाशात् । १४ परेण । १५ प्रतिपत्तिर्वैदेन सम्बद्धाऽ-
सम्बद्धेलादिप्रकारेण । १६ निषेध्यादटादन्यस्य श्रुतस्य परित्यागः । १७ परेण ।
१८ निःसंभावत्वात् । १९ गगनाम्भोजवत् । २० निरुपाख्यः स्यादप्येयमाभावपति-
च्छेदकस्य सादित्युक्ते सत्याह । २१ मिश्रितेऽयमुपचारः प्रमाणभूतज्ञानजनकत्वेन
प्रमाणं प्रमाणपञ्चकाभावो न साक्षात्प्रमाणमिति । २२ तत्र । २३ ग्रहशब्दवत् ।
२४ समुत्प्लावः श्रुतिशब्दवत् । २५ देशकालसमावृत्त्या । २६ आदिशब्देन प्रमाण-
विषयत्वम् । २७ सम्भावनिराकरणमवष्टुके ।

त्वात् । न च यत्र प्रमाणपञ्चकाभावस्तत्रावश्यं प्रमेयाभावज्ञान-
मुत्पद्यते; परचेतोवृत्तिविशेषैरनैकान्तिकत्वात् ।

किञ्च, प्रमाणपञ्चकाभावो ज्ञातः, अज्ञातो वा तज्ज्ञानहेतुः
स्यात् ? ज्ञातश्चेत्कुतो ज्ञप्तिः ? तद्विषयप्रमाणपञ्चकाभावाच्चेत्,
५ अनवस्था । प्रमेयाभावाच्चेदन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि प्रमेयाभावे
प्रमाणपञ्चकाभावसिद्धिः, तत्सिद्धेश्च प्रमेयाभावसिद्धिरिति ।
अज्ञातस्य च ज्ञापकत्वायोगः “नाज्ञातं ज्ञापकं नाम” [१५]
इति प्रेक्षावद्विरभ्युपगमात्, अन्यथातिप्रसङ्गः । अज्ञादेस्तु
कारकत्वादज्ञातस्यापि ज्ञानहेतुत्वाविरोधः । न चास्यापि कार-
१० कत्वात्तैवेतुत्वाविरोधः, निखिलसामर्थ्यशून्यत्वेनास्य कारक-
त्वासम्भवादित्युक्तत्वात् । ततोऽयुक्तमुक्तम्-

“प्रत्यक्षाद्यवतारश्चै भावांशो गृह्यते यदा ।

व्यापारस्तदनुत्पत्तेरभावांशे जिघृक्षिते ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९७] इति ।

१५ द्वितीयपक्षे तु यत्सर्वद्वन्द्वज्ञानं तत्प्रत्यक्षमेव, पर्युर्दोषवृत्त्या हि
निषेध्याद् घटादेरन्यस्य भूतलादेर्ज्ञानमभावप्रमाणाभ्यां प्रतिपद्य-
मानं तदन्या(न्य)भावलक्षणाभावपरिच्छेदकमिष्टमेव । तृतीयपक्षे
तु किमसौ सर्वथा ज्ञाननिर्मुक्तः, कथञ्चिद्वा ? तत्राद्यविकल्पे
‘माता मे वन्द्या’ इत्यादिवत्स्ववचनविरोधः । सर्वथा हि यद्यात्मा
२० ज्ञाननिर्मुक्तः कथमभावपरिच्छेदकः ? परिच्छेदस्य ज्ञानधर्मत्वात् ।
परिच्छेदकत्वे वा कथमसौ सर्वथा ज्ञाननिर्मुक्तः स्यात् ? अथ
कथञ्चित् ; तथाहि-‘अभावविषयं ज्ञानमस्यास्ति निषेध्यविषयं तु
नास्ति’ इति; तर्हि तज्ज्ञानमेवाभावप्रमाणं स्यात्तत्त्वात्मा । तच्च भावा-

१ अन्यथा । २ प्रमाणपञ्चकाभावेऽपि प्रमेयाभावज्ञानं न परचेतोवृत्तिविशेषेभ्यस्ति
अतीन्द्रियत्वात् । ३ पुरुषेण । ४ प्रमेयाभावः । ५ वस्तुः । ६ प्रमाणपञ्चकाभावलक्षणा-
भावप्रमाणादित्यर्थः । ७ ग्रन्थानवस्था । ८ अभावस्य । ९ ज्ञानैवाज्ञातस्य धूमसा-
मिज्ञापकत्वप्रसङ्गात् । १० अज्ञादेरज्ञातस्य कथं ज्ञापकत्वमित्युक्ते नाह । ११ नादि-
पदेन अष्टष्टम् । १२ ज्ञानं प्रति कारणत्वं कारकत्वम् । १३ प्रमेयाभावज्ञानं । १४
प्रमाणपञ्चकाभावोऽभावज्ञानहेतुर्न भवति वस्तुः । १५ तदा भवति । १६ निषेध्यघटात् ।
१७ भूतलस्य । १८ घटाभावः भूतलसङ्गात् इति । १९ (तस्माद् घटादन्वभूतलस्य ।
सञ्जातो भावश्च (अर्थः) स तदन्वभावो लक्षणं यस्याभावस्य) । २० समयोरपि सम्भ-
वतोऽर्थः (भावान्तरस्वभावलक्षणः) विकल्पः । २१ आत्मा । २२ प्रमेयाभावस्य ।
२३ अभावः । २४ घटादन्वभूतलं तदेव स्वभावो यस्याभावस्य ।

न्तरस्वभावाभावग्राहकतयेन्द्रियैर्जनितत्वात्प्रत्यक्षमेव । ततो निराकृतमेतत्-“न तावदिन्द्रियेणैषा” इत्यादि, “वस्त्वसङ्करसिद्धिश्च तत्राप्रामाण्यं समाश्रिता” इत्यादि च; तस्याः प्रत्यक्षादिप्रमाणत एव प्रसिद्धेः । कथं ततोऽभावपरिच्छित्तिरिति चेत्; कथं भावस्य? प्रतिभासाच्चेदितरत्र समानम् । न खलु प्रत्यक्षेणान्यसंसृष्टः प्रथमतोऽर्थोऽनुभूयते, पश्चादभावप्रमाणादन्यासंसृष्ट इति क्रमप्रतीतिरस्ति, प्रथममेवान्यासंसृष्टस्यार्थस्याध्यक्षे प्रतिभासनात् । न चान्यासंसृष्टार्थवेदनादन्यत्तदभाववेदनं नाम ।

एतेनैतदपि प्रत्युक्तम् “स्वरूपपररूपाभ्याम्” इत्यादि; सर्वैः सर्वदोभयैकैरप्यैवान्तर्वेदित्वोऽर्थस्य प्रतिसंवेदनात्, अन्यथा तद-भावप्रसङ्गात् ।

यदप्युक्तम्-“यस्य यत्र यदोद्भूतिः” इत्यादि; तदप्युक्तम्; न ह्यनुभूतमनुभूतं नाम । नापि जिघृक्षाप्रभवं सर्वज्ञानम्; इन्द्रियमनोमात्रभावे भावात्तदभावे चाभावात्तस्य ।

यच्चान्यदुक्तम्-“मेयो यद्वदभावो हि” इत्यादि; तत्र ‘भावरू-येण प्रत्यक्षेण नाभावो वेद्यते’ इति प्रतिज्ञौ अन्यासंसृष्टभूतलगादिना प्रत्यक्षेण निराक्रियते अनुष्णाग्निप्रतिष्ठावत् । ‘भावात्मके यथा मेये’ इत्याद्यप्युक्तम्; अभावादिपि भावप्रतीतेः, यथा गगनतले पद्मादीनामधःपाताभावाद्योरिति । भावाच्चाख्यादेः शीताभावस्य प्रतीतिः सकलजनप्रसिद्धा । ‘यो यथाविधः स तथाविधेनैव गृह्यते’ इत्यभ्युपगमे चाभावस्य मुद्रादिहेतुत्वा-

१ अभावस्य प्रत्यक्षतो ग्राह्यं सिद्धं यतः । २ नास्तीत्युत्पाद्यते मतिः । भावाच्चेनैव सम्बन्धो योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि । ३ अभावग्राहकनायाः । ४ प्रत्यक्षादिप्रमाणात्मक मते परिच्छित्तिः । ५ षटेन । ६ भूतलक्षणः । ७ अन्यसंसृष्टज्ञानानन्तरम् । ८ षटेन । ९ पक्षद्वयोभयरूपानेविषयतया अनुभूयमानं ज्ञानं कथमितरावेऽनुभूतमिति भावः । १० भूतलक्षणस्य । ११ भूतलक्षण । १२ नित्यं सदसदात्मके । वस्तुनि जायते किञ्चिद्रूपं कैश्चित्कदाचनेत्यन्तम् । १३ प्रमाणैः । १४ सदसदात्मकस्य । १५ ज्ञानस्य । १६ षटादेः । १७ उभयरूपानेवेदनं न चेत् । १८ उभयरूपत्वादर्थस्य । १९ सदंशस्यासदंशस्य वा । २० वस्तुनि । २१ शिक्षा चोपजायते । वेद्यतेऽनुभवस्तस्य तेन च व्यपदिश्यते इत्यन्तम् । २२ प्रत्यक्षप्रतिपक्षम् । २३ अभाव-रूपम् । २४ मानस (अभावरूप) ज्येष्ठमित्याम् । भावात्मके यथा मेये नाऽभावस्य प्रमाणात् । तथैवाभावमेयेषि न भावस्य प्रमाणादिति च । २५ अभावोऽभावपरिच्छेदः तथाविधवत्वादिति वा प्रतिज्ञा । २६ गगनतले नादुरस्ति पद्मादीनामधःपाताम्यवा-न्यथान्यथानुपपत्तेः । २७ प्रतीतिः । २८ भावरूप ।

भावः स्यात् । शक्यं हि वक्तुम्-यो यथाविधः स तथाविधेनैव क्रियते यथा भावो भावेन, अभावश्चाभावः, तस्मादभावेनैव क्रियते । प्रत्यक्षबाधो चान्यत्रापि समाना ।

यदप्यभिहितम्-‘प्रागभावादिभेदाच्चतुर्विधश्चाभावः’ इत्यादि;
 ५ तदप्यभिधानमार्तम्; यतः स्वकारणकलापात्स्वभावव्यवस्थि-
 तयो भावाः समुत्पन्ना नात्मानं परेण मिश्रयन्ति तस्य परत्वं प्रस-
 सङ्गात् । न चान्यतोऽप्या (तो व्या)वृत्तस्वरूपाणां तेषां भिन्नोऽ-
 भाऽवांशः सम्भवति । भावे वा तस्यापि पररूपत्वाद्भावेन
 ततोपि व्यावर्तितव्यमित्यपरापराभावपरिकल्पनयानवस्था । अतो
 १० न कुर्वन्निर्द्वावेन व्यावर्तितव्यमित्येकैव भावं विभक्तं भवेत्, पर-
 भावाभावाच्च व्यावर्तमानस्यार्थस्य पररूपताप्रसङ्गः ।

यदि चेत्तरेतरभाववशाद् घटः पटादिभ्यो व्यावर्तत, तर्हीत-
 रेतरभावोपि भावादभावान्तराच्च प्रागभावादेः किं स्वतो व्याव-
 र्तत, अन्यतो वा ? स्वतश्चेत्; तथैव घटोप्यन्येभ्यः किञ्च व्याव-
 १५ र्तत ? अन्यतश्चेत्; किमसौ धारणधर्मात्, इतरेतरभावान्तराद्वा ?
 असाधारणधर्माभ्युपगमे स एव पटादिष्वपि युक्तः । इतरेतरा-
 भावान्तराच्चेत्; बहुत्वमितरेतरभावस्यानवस्थाकौरि स्मत् ।

किञ्च, इतरेतरभावोप्यसाधारणधर्मेणाव्यावृत्तस्य, व्यावृत्तस्यै-
 वा भेदकः ? यद्यव्यावृत्तस्य; किं नैकैव्यक्तेर्भेदकः ? अथ व्यावृ-
 २० त्तस्य; तर्ही घटादिष्वपि स एवास्तु भेदकः किमितरेतरभाव-
 कल्पनया ?

१ सृष्टिपण्डादिना । २ घटप्रभंसाभावः । ३ घटाभावं प्रति मुञ्जरादीना-
 म्पापारोपकत्वात् । ४ अभावप्रमाणेनाभावो गृह्यते इत्यत्रापि । कथम् ? प्रत्यक्षेणै-
 वाभावप्रतीतिरिति । ५ नक्तवीरकुलाणादि । ६ घटादयः । ७ पटादिभावेन ।
 ८ अन्यथा । ९ तस्य परस्य पटादेः । १० घटप्रसङ्गात् । ११ पटादिभ्यः ।
 १२ घटादिभावानात् । १३ यतोऽभावात् तेषां (घटादीनां) व्यावृत्तिः (पटादिभ्यः)
 शुक्ता । १४ सम्भवति चेत् कस्य ? घटस्य । पटादयः पटरूपा घटादिभ्यः
 सकाशवशा तथा अभावाच्चोपि । १५ अभावात्सल । १६ घटादिभ्यः । १७ घटादि-
 पटादेर्न । १८ भावादभावाद्वा । १९ अनवसादोपमयात् । २० इति हेतोः ।
 २१ घटादिसंभावम् । २२ व्यावर्तकत्वेतरेतराभावसामाभात् । २३ तस्य किं
 भवेत् । २४ घटस्य । २५ मित्रत्वात् । २६ पटादिभ्यः । २७ प्रमुञ्जोदरदेः ।
 २८ व्यावर्तकः । २९ इतरेतरभावान्तरं किं स्वतो व्यावर्तते अन्यतो वेलादिप्रकारेण ।
 ३० पटादेः सकाशादव्यावृत्तस्य घटादेः । ३१ घटस्य ।

किञ्च, अनेन घटे पटः प्रतिविध्यते, पटत्वसामान्यं वा, उभयं वा ? प्रथमपक्षे किं पटविशिष्टे घटे पटः प्रतिविध्यते, पटविविके वा ? न तावदाद्यः पक्षो युक्तः, प्रत्यक्षविरोधात् । नापि द्वितीयः, तथाहि-किमितरेतराभावाद्या घटस्य पटविविकर्ता, स एव वा विविकताशब्दाभिधेयः ? मेदैः तथैव घटे पटाभावव्यवहारसिद्धेः ५ किमितरेतराभावेन ? अथ स एव तच्छब्दाभिधेयः, तर्हि यस्माद्भावात्पटविविके घटे पटाभावव्यवहारः सोऽन्योऽभावः, विविकताशब्दाभिधेयश्चान्यं इत्येकस्मिन्वस्तुनीतरेतराभावद्वयमायातम् ।

किञ्च, 'घटे पटो नास्ति' इति पटरूपताप्रतिषेधः, सा किं प्राप्ता प्रतिविध्यते, अप्राप्ता वा ? प्राप्तायाः प्रतिषेधे पटेऽपि पटरूप-१७ प्रताप्रतिषेधः स्यात् प्राप्तेरविशेषात् । अप्राप्तायास्तु प्रतिषेधानुपपत्तिः, प्राप्तिपूर्वकत्वात्तस्य । न ह्यनुपलब्धोर्दकस्य 'अनुदकः कमण्डलुः' इति प्रतिषेधो घटते । अथान्यत्र प्राप्तमेव पटरूपमन्यत्र प्रतिविध्यते, तत्रापि समवायप्रतिषेधः, संयोगप्रतिषेधो वा ? न तावत्समवायप्रतिषेधः, रूपादेरेकत्र समवायेन सम्बद्ध-१५ स्यान्मैत्र वस्तुवन्तरेऽन्योन्याभावतोऽभावव्यवहारानुपलम्भात् । संयोगप्रतिषेधोऽप्यनुपपन्नः, घटपटयोः कदाचित्संयोगस्यापि सम्भवात् । अथ पटेन संयोगरहिते घटे पटप्रतिषेधो न तत्संयोगवति । नन्वेवं पटसंयोगरहितत्वमेवाभावोस्तु, न त्वन्यस्यादौभावात्पटसंयोगरहिते घटे पटाभाव इति युक्तम् । तत्र घटे १७ पटप्रतिषेधो युक्तः ।

नापि पटत्वप्रतिषेधः, तस्याप्येकत्र सम्बद्धस्यान्यत्र सम्बन्धाभावादेव प्रतिषेधानुपपत्तेः । नैप्युभयप्रतिषेधः, प्रागुक्ताशेषदोषानुपपन्नात् ।

किञ्च, इतरेतराभावप्रतिपत्तिपूर्विका घटप्रतिपत्तिः, घटग्रहण-२५ पूर्वकत्वं इतरेतराभावग्रहणस्य ? आद्यपक्षेऽन्योन्याश्रयत्वम्, तथाहि-इतरेतराभावो घटसंबन्धित्वेनोपलभ्यमानो घटस्य विशेषणं न पदार्थान्तरसम्बन्धित्वेन, अन्यथा सर्वे सर्वस्य विशेषणं

-
- १ उभयं, पटः पटत्वं चेत्तर्था । तृतीयपक्षोक्तम् । २ असाधारणस्वरूपता । ३ इतरेतराभावविविकतयोः । ४ इतरेतराभावः । ५ पटरूपत्वम् । ६ एवं परस्परनिष्ठापादनं भवति । ७ उभयत्र । ८ पुरुषस्य । ९ आत्मानवितानीभूतरूपादेः । १० पटादौ । ११ पटादौ । १२ इतरेतराभावात् । १३ द्वितीयपक्षः । १४ घटे । १५ तृतीयपक्षः । १६ पटपटत्वयोः । १७ वदस्तेष्वेतरेतराभावोपपत्तिः ।

स्यात् । घटसम्बन्धित्वप्रतिपत्तिश्च घटग्रहणे सत्युपपद्यते । सोपि
व्यावृत्त एव पटादिभ्यः प्रतिपत्तव्यः । ततो यावत्पूर्वं घट-
सम्बन्धित्वेन व्यावृत्तेरुपलम्भो न स्यान्न तावद्यावृत्तिविशिष्टतया
घटः प्रत्येतुं शक्यः, यावच्च पटादिव्यावृत्तत्वेन न प्रतिपन्नो घटो
५ न तावत्सम्बन्धित्वेन व्यावृत्तिं विशेषयति इति ।

अथ घटग्रहणपूर्वकत्वमितरेतराभावग्रहणस्य; अत्राप्यभावो
विशेष्यो घटो विशेषणम् । तद्ग्रहणं च पूर्वमन्वेषणीयम् “नागृहीत-
विशेषणा विशेष्ये बुद्धिः” [] इत्यभिधानात् । तत्रापि घटो
गृह्यमाणः पटादिभ्यो व्यावृत्तो गृह्यते, अव्यावृत्तो वा ? तत्र न
२० तावत्पटादिभ्योऽव्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपता घटते, अन्यथा
पटादेरपि तथैव पटादिरूपताप्रसङ्गादभावकल्पनावैयर्थ्यम् ।
अथ तेभ्यो व्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपताप्रतिपत्तिः प्रार्थ्यते;
तत्रापि किं कतिपयपटादिव्यक्तिभ्योऽसौ व्यावर्त्तते, सकल-
पटादिव्यक्तिभ्यो वा ? प्रथमपक्षे कुतश्चिदेवासौ व्यावर्त्तते, न
१५ सकलपटादिव्यक्तिभ्यः । द्वितीयपक्षेपि न निखिलपटादिभ्योऽस्य
व्यावृत्तिर्घटते, तासामानन्त्येन ग्रहणासम्भवात् । इतरेतराभ्युत्पत्त्यं
च, तथाहि—“यावत्पटादिभ्यो व्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपता न
स्यान्न तावद् घटात्पटादयो व्यावर्त्तन्ते, यावच्च घटाद्व्यावृत्तानां
पटादीनां पटादिरूपता न स्यान्न तावत्पटादिभ्यो घटो व्याव-
२० र्त्तते इति ।

अस्तु वा यथाकथञ्चित्पटादिभ्यो घटस्य व्यावृत्तिः, घटान्त-
रास्तु कथमसौ व्यावर्त्तते इति सम्प्रधार्यम्—किं घटरूपतया,
अन्यथा वा ? यदि घटरूपतया, तर्हि सकलघटव्यक्तिभ्यो व्याव-
र्त्तमानो घटो घटरूपतामादाय व्यावर्त्तत इत्यायातम् अघटत्वम्-
२५ न्यासां घटव्यक्तीनाम् । अथाघटरूपतया, तत्किमघटरूपता
पटादिबद् घटेऽप्यस्ति ? तथा चेत्, तर्हि यो व्यावर्त्तते घटान्तरा-
दघटत्वेन घटस्तस्याघटत्वं स्यात् । तच्च विप्रतिषिद्धम्—यद्यघटो
घटः, कथं घटः ? तस्मात्तार्थादर्थान्तरमभावः ।

१ इतरेतराभावस्य । २ इतरेतराभावप्रतिपत्तेर्वैतप्रतिपत्तिपूर्वकत्वं मतः । ३ इतरे-
तराभावस्य । ४ घटसम्बन्धित्वमितरेतराभावस्य । ५ द्वितीयपक्षः । ६ प्रवर्त्तते ।
७ घटस्य पूर्वं ग्रहणेपि । ८ पक्षद्वये । ९ जैनमते स्वगतासाधारणधर्मेण घटः पटादिभ्यो
व्यावृत्तो भवति, न तु इतरेतराभावादिति । १० पटादिभ्योऽव्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपता
यदि । ११ सम्प्रार्थ्यते परेण । १२ ग्रहणे वा सर्ववत्त्वादिप्रसङ्गः । १३ इतरेतरा-
भावः । १४ विचार्यम् । १५ अघटरूपतया । १६ तर्हि । १७ विरुद्धम् ।

ननु चाभावस्यार्थान्तरत्वानभ्युपगमे कथं तन्निमित्तको व्य-
हारः ? तैसाहि-किं घटावष्टब्धं भूतलं घटाभावो व्यपदिश्यते,
तद्वहितं वा ? प्रथमपक्षे प्रत्यक्षविरोधः । द्वितीयपक्षे तु नाममात्रं
भिद्येत-घटोऽहित्वम्, घटाभावविशिष्टत्वमिति; तदप्यसम्भ-
वम्; यतः किं घटाकारं भूतलं येन 'घटो न भवति' इत्युच्यमाने ५
प्रत्यक्षविरोधः स्यात्, यद्भूतलं तद्वटाकाररहितत्वाद्घटो न भव-
त्येव । ननु यद्यपि भूतलाद्यर्थान्तरं घटाभावः, तर्हि घटसम्ब-
द्धेऽपि भूतले 'घटो नास्ति' इति प्रत्ययः स्यात्, न चैवम्, ततो
यथा भूतलादर्थान्तरं घटस्तथा तदभावोपीति; तदप्यसारम्,
घटासम्भविभूतलगतासाधारणधर्मोपलक्षितं हि भूतलं घटाभावो १०
व्यपदिश्यते । घटावष्टब्धं तु घटभूतलगतसंयोगलक्षणसाधारण-
धर्मविशिष्टत्वेन तैथोत्पन्नमिति न 'अघटं भूतलम्' इति व्यपदेशं
लभते । तत्रेतरेतराभावो विचारक्षमः ।

नापि प्रागभावः; तस्याप्यर्थार्थान्तरस्य प्रमाणतोऽप्रतिपत्तेः ।
ननु 'स्रोत्पत्तेः प्राप्तासीद् घटः' इति प्रत्ययोऽसद्विषयः, सत्प्रत्य- १५
यविलक्षणत्वात्, यस्तु सद्विषयः स न सत्प्रत्ययविलक्षणो यथा
'सद्रूप्यम्' इत्यादिप्रत्ययः, सत्प्रत्ययविलक्षणत्वात् तस्मादसद्वि-
षयः' इत्यनुमानात्ततोऽर्थान्तरस्य प्रागभावस्य प्रतीतिरित्यपि
मिथ्या; 'प्रागभावादौ नास्ति प्रध्वंसादिः' इति प्रत्ययेनानैका-
न्तात् । तस्याप्यसद्विषयत्वेऽभावार्थवस्था । अथ 'भावे भूभा- २०
गादौ नास्ति घटादिः' इति प्रत्ययो मुख्याभावविषयः, 'प्रागभा-
वादौ नास्ति प्रध्वंसादिः' इति प्रत्ययस्तु परैरिताभावविषयः, ततो
नानवस्थेति; तदप्ययुक्तम्; परमार्थतः प्रागभावादीनां साद्वैर्यप्र-
सङ्गात् । न खलूपचरितेनाभावेनान्योन्यमभावानां व्यतिरेकः
सिद्ध्येत्, सर्वत्र मुख्याभावकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात् । २५

१ नास्तीति निकटो नास्तीत्यभिधानं च । २ अर्थार्थान्तरमभावं समर्थयन्ति
परे । ३ जनैर्नैवङ्गिः । ४ नाभेदः । ५ भूतलम् । ६ जैनमते । ७ परमते ।
८ घटभूतलयोः किं तादाल्पं प्रतिपिप्यते आचाराभेदभावो वा ? तत्रार्थं पूर्व विवेचयति ।
९ भूतलगतं विविकर्तं मित्रं घटगतं विविकर्तं मित्रम् । १० उभयगतत्वात् ।
११ घटावष्टब्धत्वेन । १२ घटस्य प्रागभावो वृत्तिगच्छन्धर्मेणैव । १३ प्राग-
भावः । १४ अर्थात् । १५ अर्थं सत्प्रत्ययविलक्षणम् भवति, न त्वसद्विषयः ।
१६ अभावे अभावोऽस्ति वतः । १७ प्रागभावादौ नास्ति प्रध्वंसादिति व्य-
हारः प्रयोजनमभावानामसङ्करो निमित्तमित्युपचारप्रवृत्तिः-निमित्तप्रयोजनवशादुपचार-
प्रवृत्तिः । १८ भेदः । १९ अन्यथा ।

यदप्युक्तम्—‘न भावस्वभावः प्रागभावादिः सर्वदा भावविशेषणत्वात्’ इति; तदप्युक्तिमात्रम्; हेतोः पक्षाव्यापकत्वात्, ‘न प्रागभावः प्रध्वंसादौ’ इत्यादेरभावविशेषणस्याप्यभावस्य प्रसिद्धेः। गुणादिनानेकान्ताच्च; अस्य सर्वदा भावविशेषणत्वेऽपि भावस्वभावात्। ‘रूपं पश्यामि’ इत्यादिव्यवहारे गुणस्य स्वतन्त्रस्यापि प्रतीतेः सर्वदा भावविशेषणत्वाभावे ‘अभावस्तत्त्वम्’ इत्यभावस्यापि स्वतन्त्रस्य प्रतीतेः शश्वद्भावविशेषणत्वं न स्यात्। सामर्थ्यात्तद्विशेष्यस्य द्रव्यादेः सम्प्रत्ययात्सदास्य भावविशेषणत्वे गुणादेरपि सर्वदा भावविशेषणत्वमस्तु, तद्विशेष्यस्य द्रव्यस्य १० सामर्थ्यतो गम्यमानत्वात्।

किञ्च, प्रागभावः सादिः सान्तः परिकल्प्यते, सादिरनन्तः, अनादिरनन्तः अनादिः सान्तो वा? प्रथमपक्षे प्रागभावात्पूर्वं घटस्योपलब्धिप्रसङ्गः, तद्विरोधिनः प्रागभावस्याभावात्। द्वितीयेऽपि तदुत्पत्तेः पूर्वमुपलब्धिप्रसङ्गस्तत एव। उत्पन्ने तु प्रागभावे १५ सर्वदानुपलब्धिः स्यात्तस्यानन्तत्वात्। तृतीये तु सदाऽनुपलब्धिः। चतुर्थे पुनः घटोत्पत्तौ प्रागभावस्याभावे घटोपलब्धिचदशेषकार्योपलब्धिः स्यात्, सकलकार्याणामुत्पत्त्यमानानां प्रागभावस्यैकत्वात्।

ननु यावन्ति कार्याणि तावन्तस्तत्प्रागभावाः, तत्रैकस्य प्रागभावस्य विनाशोऽपि शेषोत्पत्त्यमानकार्यप्रागभावानामविनाशाच्च घटोत्पत्तौ सकलकार्योपलब्धिरिति; तर्ह्यनन्ताः प्रागभावास्ते किं स्वतन्त्राः, भावतन्त्रा वा? स्वतन्त्राश्चेत्कथं न भावस्वभावाः कालादिषु? भावतन्त्राश्चेत्किमुत्पन्नभावतन्त्राः, उत्पत्त्यमानभावतन्त्रा वा? न तावदादिविकल्पः; समुत्पन्नभावकाले २५ तत्प्रागभावविनाशात्। द्वितीयविकल्पोऽपि न श्रेयान्; प्रागभावकाले स्वयमसतामुत्पत्त्यमानभावानां तदौश्रयत्वायोगात्, अन्यथा

१ दण्डेन रूपेण च व्यभिचारः स्यात्तत्परिहारार्थं सर्वदेति विशेषणं दण्डस्य कदाचिद्विशेष्यरूपतयापि भावात्। कथम्? दण्डं पश्यामीति। २ घटोऽभावोऽप्यभावस्य विशेषणं भवेत् भावोऽभावस्यापि। ३ प्रागभावो विशेषणमत्र। ४ अतोऽभावोऽभावस्य विशेषणमपि भवेद्भावोऽभावस्यापि। ५ घटस्य। ६ विशेष्यत्वेन। ७ अभावस्तत्त्वम्। कस्य? घटस्येति। ८ यथा अभावः कस्येत्युच्यमाने पटस्येति, तथा गुणः कस्य? द्रव्यस्येति। ९ विनाशोपेतः। १० घटस्य। ११ घटस्य। १२ तद्विरोधिनः प्रागभावस्य सर्वदा भावादेव। १३ घटादिकार्यस्य। १४ घटोत्पत्तौ घटोपलब्धिचदशेषकार्योपलब्धि परिहरति परः। १५ तथा प्रागभावानाम्।

प्रध्वंसाभावस्यापि प्रध्वस्तपदार्थाश्रयत्वप्रसङ्गः । न चानुत्पन्नः प्रध्वस्तो वार्थः कस्यचिदाश्रयो नाम अतिप्रसङ्गात् ।

अथैक एव प्रागभावो विशेषणभेदाद्भिन्न उपचर्यते 'घटस्य प्रागभावः पटादेर्वा' इति, तथोत्पन्नार्थविशेषणतया तस्य विनाशोऽप्युत्पत्त्यमानार्थविशेषणत्वेनाविनाशादित्यत्वमपीति । नन्वेवं ५ प्रागभावादित्यनुष्ठयकल्पनानर्थक्यम् सर्वत्रैकस्यैवाभावस्य विशेषणभेदात्तर्था भेदव्यवहारोपपत्तेः । कार्यस्य हि पूर्वेण कालेन विशिष्टोर्थः प्रागभावः, परेण विशिष्टः प्रध्वंसाभावः, नानार्थविशिष्टः स एवेतरेतराभावः, कालत्रयेऽप्यत्यन्तनानासभावभावविशेषणोऽत्यन्ताभावः स्यात्, प्रत्ययभेदस्यापि तथोपपत्तेः, सत्तै-१० कत्वेपि द्रव्यादिविशेषणभेदात्प्रत्ययभेदवत् । यथैव हि सत्प्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकैकं सत्तायाः तथैवासत्प्रत्ययाविशेषलिङ्गाभावाच्चाभावस्यैवापि । अथ 'प्राग्भासीत्' इत्यादिप्रत्ययविशेषाच्चतुर्विधोऽभावः, तर्हि प्राग्भासीत्पञ्चाङ्गविभ्यति सम्प्रत्यस्तीति कालभेदेन, पाटलिपुत्रेस्ति चित्रकूटेस्तीति देशभेदेन, द्रव्यं १५ गुणः कर्म चास्तीति द्रव्यादिभेदेन च प्रत्ययभेदसङ्गात्प्राक्सत्तादयः सत्ताभेदाः किञ्चेत्यन्ते ? प्रत्ययविशेषात्तद्विशेषणान्येव भिद्यन्ते तस्यै तन्निमित्तकत्वाच्च तु सत्तै, ततः सैकैवेत्यभ्युपगमे अभावभेदोपि ना भूत्सर्वथा विशेषाभावात् ।

अथामिधीयते—अभावस्य सर्वथैकत्वे विवक्षितकार्योत्पत्तौ २० प्रागभावस्याभावे सर्वत्राभावस्याभावानुपपत्तात्सर्वे कार्यमनौघनन्तं सर्वात्मकं च स्यात्, तदप्यभिधानमात्रम्, सत्तैकत्वेपि समानत्वात् । विवक्षितकार्यप्रध्वंसे हि सत्ताया अभावे सर्वत्राभावप्रसङ्गः तस्या एकत्वात्, तथा च सकलशून्यता । अथ तत्प्रध्वंसेपि नास्याः

१ प्रागभावस्य प्रध्वंसाभावस्य वा । २ अनुत्पन्नः प्रध्वस्तो वा स्तम्भः प्रासादस्याश्रयो भवेत् । ३ वटावर्धः । ४ प्रागभावस्य । ५ वटादि । ६ प्रागभावादिक्रारेण । ७ पटलक्षणस्योत्पत्तेः सकाशात् । ८ गर्वः । ९ घटपटशकटादि । १० अभावकल्पणोर्थः । ११ अत्यन्तं सर्वथा नाना (भिन्नाः) स्वभावा येषां तेऽल्लनानास्वभावा गगनाम्नोऽनखरमिषाणादयस्तै च ते आवाक्ष्य ते विशेषणं यस्याभावस्य । १२ प्रत्ययो ज्ञानम् । १३ विशेषणभेदादेव । प्रागभावस्यैकत्वकल्पनाप्रकारेण । १४ द्रव्यं सद्रूपः सत्कर्म सत् । १५ परमते । १६ जैनमते एकत्वम् । १७ घटः । १८ नारण । १९ नादिपदेन पश्चात्सत्ता सम्प्रतिसत्ता च आद्या । २० परेण अभावात् । २१ वटावर्धः । २२ प्रत्ययविशेषणम् । २३ (सत्तायाः विशेषणनिमित्तकत्वाभावादित्यर्थः) । २४ प्रागभावाभावादनादि प्रध्वंसाभावाभावादनन्तरम् । २५ इतरेतराभावाभावात् ।

प्रध्वंसो नित्यत्वात्, अन्यथार्थान्तरेषु सत्प्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात्; तदन्यत्रापि समानम्, समुत्पन्नैककार्यविशेषणतया ह्यभावस्याभावेषि न सर्वथाऽभावः भावान्तरेष्वभावप्रतीत्यभावप्रसङ्गात् । यथा चाभावस्य नित्यैकरूपत्वे कार्यस्योत्पत्तिर्न स्यात् तस्य तत्प्र-
 ५ तिवन्धकत्वात्, तथा सत्ताया नित्यत्वे कार्यप्रध्वंसो न स्यात् तस्यास्तत्प्रतिबन्धकत्वात् । प्रसिद्धं हि प्रध्वंसात्प्राक्प्रध्वंसप्रतिबन्धकत्वं सत्तायाः, अन्यथा सर्वदा प्रध्वंसप्रसङ्गात् कार्यस्य स्थितिरेव न स्यात् । यदि पुनर्बलवत्प्रध्वंसकारणोपनिपाते कार्यस्य सत्ता न ध्वंसं प्रतिबध्नाति, ततः पूर्वं तु बलवद्विनाशकारणोप-
 १० निपाताभावात् प्रतिबध्नात्येवातो न प्रागपि प्रध्वंसप्रसङ्गः इत्येतदन्यत्रापि न काकैर्मक्षितम्, अभावोपि हि बलवदुत्पादककारणोपनिपाते कार्यस्योत्पादं सन्नपि न प्रतिरुणद्धि, कार्योत्पादात्पूर्वं तत्पादकारणाभावात् प्रतिरुणद्धेव, अतो न प्रागपि कार्योत्पत्तिप्रसङ्गो येन कार्यस्यानादित्वं स्यात् ।

१५ तत्र प्रागभावोपि तुच्छसभावो घटते किन्तु भावान्तरस्वभावः । यद्भावे हि नियमतः कार्योत्पत्तिः स प्रागभावः, प्रागन्तरपरिणामविशिष्टं सूक्ष्मम् । तुच्छसभावत्वे चास्य सन्त्येतरगोविषाणादीनां सद्योत्पत्तिनियमवतामुपादानसङ्करप्रसङ्गः प्रागभावाविशेषात् । यत्र यदा यस्य प्रागभावभावस्तत्र तदा
 २० तस्योत्पत्तिरित्यप्ययुक्तम्, तस्यैवानियमात् । स्वोपादानेतरनियमात्त्रेनियमेन्यन्योन्याश्रयः ।

प्रध्वंसाभावोपि भौवस्वभाव एव, यद्भावे हि नियता कार्यस्यै

१ अभावे । २ प्रागभावस्य । ३ प्रध्वंसात्पूर्वं सत्तायाः प्रध्वंसप्रतिबन्धकत्वं न ह्यभावः । ४ सर्वदा प्रध्वंसप्रसङ्गात्कार्यस्य स्थितिरेव न स्यादेतत्परिहरति परः । ५ कार्यकालादुत्तरेण कालेन । ६ सुदृढादि । ७ विनाशकारणसन्निधानात्पूर्वम् । ८ अभावे । ९ सृष्टिपण्डादि । १० प्रागभावः कः भावान्तरं च किमित्युक्ते भावः । ११ यस्य सृष्टिपण्डस्य । १२ स्वस्य विनाशेन घटरूपेण परिणमते सृष्टिपण्डः । १३ सृष्टिपण्डलक्षणः । १४ घटोत्पत्तेः । १५ सासादि । १६ असोपादानमेतदस्यैतदिति विवेचयितुमशक्यत्वात् । १७ तुच्छाभावस्य प्रागभावस्यैकत्वात् । १८ उपादानकारणे । १९ कार्यस्य । २० सव्यगोविषाणस्यार्थं प्रागभावः असव्यस्यार्थं प्रागभाव इति प्रागभावस्येन नियमाभावात् । २१ सव्यविषाणकार्यं । २२ त्वाजुपादानं । २३ प्रागभावनियमे । २४ सव्यविषाणस्योपादाननियमे सिद्धे सव्यस्य प्रागभावनियमः सिध्येत् । प्रागभावनियमसिद्धौ च सव्यस्योपादाननियमसिद्धिरिति । २५ उत्तरक्षणवर्तिकपाललक्षणः । २६ वल कपालस्य । २७ घटस्य ।

विपत्तिः स प्रध्वंसः, सुद्रव्यानन्तरोत्तरपरिणामः । तस्य हि तुच्छत्वभावत्वे मुद्गरादिव्यापारवैयर्थ्यं स्यात् । स हि तद्व्यापारेण घटादेर्मिन्नः, अभिन्नो वा विधीयते ? प्रथमपक्षे घटादेस्तदवस्थत्वप्रसङ्गात् 'विनष्टः' इति प्रत्ययो न स्यात् । विनाशसम्बन्धाद् 'विनष्टः' इति प्रत्ययोत्पत्तौ विनाशतद्गतोः कश्चित्सम्बन्धो वक्तव्यः-स हि तादात्म्यलक्षणः, तदुत्पत्तिस्वरूपो वा स्यात्, तद्विशेषणविशेष्यभावलक्षणो वा ? तत्र न तावत्तादात्म्यलक्षणोसौ घटते; तयोर्भेदाभ्युपगमात् । नापि तदुत्पत्तिलक्षणः, घटादेर्स्तदकारणत्वात्, तस्य मुद्गरादिनिमित्तकत्वात् । तदुभयनिमित्तत्वाददोषः, इत्यप्यसुन्दरम्; मुद्गरादिवद्विनाशोऽन्तरकालमपि घटादेरुपलम्भप्रसङ्गात् । तस्य स्वविनाशं प्रत्युपादानकारणत्वाच्च तत्काले उपलम्भः, इत्यप्यसमीचीनम्; अभावस्य भावान्तरस्वभावताप्रसङ्गात् तं प्रत्येवास्योपादानकारणत्वप्रसिद्धेः । तयोर्विशेषणविशेष्यभावः सम्बन्धः, इत्यप्यसत्; परस्परमसम्बन्धयोस्तदसम्भवात् । सम्बन्धान्तरेण सम्बन्धयोरेव हि विशेषणविशेष्यभावो दृष्टो दण्डपुरुषादिवत् । न च विनाशतद्गतोः सम्बन्धान्तरेण सम्बन्धत्वमस्तीत्युक्तम् । तत्र तद्व्यापारेण भिन्नो विनाशो विधीयते । अभिन्नविनाशविधाने तु 'घटादिरेव तेन विधीयते' इत्यायातम्; तच्चायुक्तम्; तस्य भोगोत्पन्नत्वात् ।

२०

ननु प्रध्वंसस्योत्तरपरिणामरूपत्वे कपालोत्तरक्षणेपु घटप्रध्वंसस्याभावात्तस्य पुनरुज्जीवनप्रसङ्गः; तदप्यनुपपन्नम्; कारणस्य कार्योपमर्दनात्मकत्वाभावात् । कार्यमेव हि कारणोपमर्दनात्मकत्वधर्माधारतया प्रसिद्धम् ।

यच्च कपालेभ्योऽभावस्यार्थान्तरत्वं विभिन्नकारणप्रभवतयो-
क्यते; तथाहि-'उपादानघटविनाशो बलवत्पुरुषप्रेरितमुद्गराद्य-
भिघातादावयवक्रियोत्पत्तेरवयवविभागतः संयोगविनाशादेवोत्प-

१ सुद्रव्यं कुशलरूपं तस्मानन्तरपरिणामो घटः । तस्योत्तरपरिणामस्तु कपाल-
लक्षणः । २ कर्मा । ३ प्रध्वंसमाववसिष्टो घट इति । ४ परेण । ५ घटादुत्पत्तिः
प्रध्वंसस्येति । ६ तं विनाशं प्रति । ७ यथा घटस्य कपालादि भावान्तरम् । ८ कपाल-
लक्षणं भावान्तरस्वभावम् । ९ तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणेन । १० मुद्गरादिव्यापारेण
कर्मा । ११ घटाद्य । १२ द्वितीयपक्षे । १३ मुद्गरादिव्यापारात् । १४ कपाल ।
१५ घटस्य । १६ कपाल । १७ हेतोर्निमित्तकारणत्वं समर्थवति परः । १८ चलन-
लक्षणायाः ।

द्यते, उपादेयकपालोत्पादस्तु स्वारम्मकार्वयवकर्मसंयोगविशेषादे-
वाविर्भवति' इति; तदप्यसमीक्षिताभिधानम्, अस्य विनाशो-
त्पादकारणप्रक्रियोद्धोषणस्याप्रातीतिकत्वात् । केवलमन्यप्रता-
रितेन भवेता परः प्रतार्यते । तस्मादन्धपरम्परापरित्यागेन बल-
५ वत्पुरुषप्रेरितमुद्रादिव्यापाराद् घटाकारविकलकपालाकारमुद्र-
व्योत्पत्तिरभ्युपगन्तव्या अलं प्रतीत्यपलापेन ।

‘क्षीरे दध्यादि यन्नास्ति’ इत्याद्यप्यभावस्य भावस्वभावत्वे
सत्येव घटते, दध्यादिविविक्तस्य क्षीरादेरेव प्रागभावादितया-
ध्यक्षादिप्रमाणतोष्यवसायात् । ततोऽभाचस्योत्पत्तिसामान्याः
१० विषयस्य चोक्तप्रकारेणासम्भवान्न पृथक्प्रमाणता । इति स्थित-
मेतत्प्रत्यक्षेतरभेदादेव द्वेवैव च प्रमाणमिति ।

तत्राद्यप्रकारं विशदमित्यादिना व्याचष्टे—

विशदं प्रत्यक्षम् ॥ ३ ॥

विशदं स्पष्टं यद्विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् । तथा च प्रयोगः—विश-
१५ दज्ञानात्मकं प्रत्यक्षं प्रत्यक्षत्वात्, यत्तु न विशदज्ञानात्मकं
तन्न प्रत्यक्षम् यथाऽनुमानादि, प्रत्यक्षं च विवादाध्यासितम्,
तस्माद्विशदज्ञानात्मकमिति ।

अनेनाऽर्कसाद्भूमदर्शनात् ‘बहिरव’ इति ज्ञानम्, ‘यावान्
कश्चिद् भावः कृतको वा स सर्वः क्षणिकः, यावान् कश्चिद्भूम-
२० वान्प्रदेशः सोऽग्निमान्’ इत्यादि व्याप्तिज्ञानं चास्पष्टमपि प्रत्यक्ष-
माचक्षाणः प्रत्याख्यातः, अनुमानस्यापि प्रत्यक्षताप्रसङ्गात् प्रत्यक्ष-
मेवैकं प्रमाणं स्यात् ।

किञ्च, अकसाद्भूमदर्शनाद्बहिरवेत्यादिज्ञाने सामान्यं वा प्रति-
भासेत, विशेषो वा? यदि सामान्यम्, न तच्छिं प्रत्यक्षम्,
२५ तस्य तद्विषयत्वानभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा ‘प्रमाणद्वैविध्यं
प्रमेयद्वैविध्यात्’ इत्यस्य व्याघातः, सैविकल्पकत्वप्रसङ्गश्च ।
विशेषविषयत्वे ततः प्रवर्त्तमानस्यैव सन्देहो न स्यात् ‘तार्णो

१ परमाणु । २ ततः संयोगविशेषः । ३ ताद्विः । ४ योगेन । ५ प्रवृत्ताभाव-
रूपा । ६ भिन्नस्य । ७ अभावप्रमाणस्य । ८ इष्टान्तसारणमन्त्रेण । ९ बौद्धः ।
१० सम्यग्प्रास्पष्टत्वाविशेषात् । ११ प्रत्यक्षं सामान्यविषयं यदि । स्वल्पाकारपरि-
गतम् । १२ सीगतेन । १३ प्रत्यक्षं विशेषं गृह्णाति अनुमानं सामान्यं गृह्णाति इति
बौद्धमतं न घटेत्—प्रत्यक्षेणैव सामान्यग्रहणादिति । १४ ग्रन्थस्य । १५ प्रत्यक्षस्य ।
१६ सामान्यविषयत्वात् । १७ नुः ।

चात्राग्निः पाणो वा' इति सन्निहितवत् । न खलु सन्निहितं पावकं पश्यतस्तत्र सन्देहोस्ति । सन्देहे वा शब्दाल्लिङ्गाद्वा प्रति(ती)येतो-
प्यसौ स्यात् । तथा चेदमसङ्गतम्—“शब्दाल्लिङ्गाद्वा विशेषप्रतिपत्तौ
न तत्र सन्देहः” [] इति । तत्रेदं प्रत्यक्षम् । किं तर्हि ?
लिङ्गदर्शनप्रभवत्वादनुमानम् । ‘दृष्टान्तमन्तरेणाप्यनुमानं भवति’ ५
इत्येतच्चाग्रे वक्ष्यते ।

व्याप्तिज्ञानं चास्पष्टत्वेनाप्रत्यक्षं व्यवहारिणां सुप्रसिद्धम् । व्यव-
हारानुकूल्येन च प्रमाणचिन्ता प्रतन्यते “प्रामाण्यं व्यवहारेण”
[प्रमाणवा० ३।५] इत्यादिवचनात् । न च तेषां सर्वे क्षणिका
भावाः कृतका वाऽन्यादयो धूमादयो वा स्पष्टज्ञानविषया इत्य-१०
भ्युपगमोऽस्ति, अनुमानानर्थक्यप्रसङ्गात् । सर्वे हि व्याप्यं
व्यापकं च स्पष्टतया युगपन्निश्चिन्वतो न किञ्चिदनुमानसाध्यम्,
अन्यथा योगिनोप्यनुमानप्रसङ्गः । निश्चितं समारोपस्याप्यस-
म्भवो विरोधात् । कालान्तरभावि समारोपनिषेधकत्वेनानुमानस्य
प्रामाण्ये कश्चिदुपलब्धदेवदत्तस्य पुनः कालान्तरेऽनुपलभ्यमान- १५
रोपे सति यदेनन्तरं तैत्सरणादिकं तदपि प्रमाणं भवेत् । तत्र
व्याप्तिज्ञानमप्यस्पष्टत्वात् प्रत्यक्षं युक्तम् ।

ननु चास्पष्टत्वं ज्ञानधर्मः, अर्थधर्मो वा ? यदि ज्ञानधर्मः,
कथमर्थस्यास्पष्टत्वम् ? अन्यस्यास्पष्टत्वादन्यस्यास्पष्टत्वेऽतिप्रस-
ङ्गात् । अर्थधर्मत्वे कथमतो व्याप्तिज्ञानस्याप्रत्यक्षताप्रसिद्धिः ? २०
अधिकरणोद्धेतोः साध्यसिद्धौ ‘काकस्य काण्वर्याद्वलः प्रासादः’
इत्यादेरपि गमकत्वप्रसङ्गः, इत्यप्यसमीक्षितमिधानम् । स्पष्ट-
त्वेपि समानत्वात् । तदपि हि यदि ज्ञानधर्मस्तर्हि कथमर्थे
स्पष्टता अतिप्रसङ्गात् ? विषये विषयिधर्मस्योपचाराददोषेऽत
एव ‘सोन्यत्रोपि मौ भूत् । संवेदनस्यैव ह्यस्पष्टता धर्मः स्पष्ट- २५

१ जानतः । २ सन्देहे सति । ३ केन प्रति यदुक्तम् । ४ परीक्षा । ५ पुनः ।
६ समारोपव्यवच्छेदाधर्मनुमानमिति चेन्नेत्याह । ७ अर्थे । ८ निश्चयश्चेत्समारोपः
कथमिति । ९ सर्वे क्षणिकं सत्त्वाकृतकावादेति । १० नाहमद्रासमिति । ११ वसः ।
१२ यत्सोपलभ्यमानम् । १३ तस्य पूर्वोपलभ्यमानस्य देवदत्तस्य । १४ वादिप्रदेन प्रत्य-
क्षज्ञानम् । १५ साधनं विचारयति । १६ दूरपादपास्पष्टत्वे पुरोवर्तिप्रदार्थस्यास्पष्टत्वं
स्यात् । १७ भिन्नापिकरणात् । १८ अस्पष्टत्वं हेतुरर्थे, अप्रत्यक्षत्वं साध्यं ज्ञाने
इति । १९ सन्निहिते पादपादौ स्पष्टत्वमनुमेयेति स्यात् । २० अतिप्रसंगलक्षणी
दोषः । २१ ज्ञानास्पष्टत्वसामर्थ्यमेवेति । २२ ज्ञानसैवास्पष्टलक्षणी यमोऽयं उपवर्ध-
तेऽतश्चातिप्रसङ्गाभावात्कार्यं व्यधिकरणसिद्धौ हेतुः ।

तावत् । तस्याः विषयधर्मत्वे सर्वदा तथा प्रतिभासप्रसङ्गा-
त्कुतः प्रतिभासपरावृत्तिः ? न चास्पष्टसंवेदनं निर्विषयमेव,
संवादकैत्वात्स्पष्टसंवेदनवत् । क्वचिद्विस्वादात्सर्वत्रास्य विस्-
वादे स्पष्टसंवेदनेपि तत्प्रसङ्गः । ततो नैतत्साधु—

५ “बुद्धिरेवातर्वाकारा सैव उत्पद्यते यदा ।

तदाऽस्पष्टप्रतीभासव्यवहारो जगन्मतः ॥”

[प्रमाणवार्त्तिकालं० प्रथमपरि०]

द्विचन्द्रादिप्रतिर्भासेपि तद्व्यवहारानुषङ्गाच्च । स्पष्टप्रतिभासेन
बाध्यमानत्वादस्य निर्विषयत्वमन्यत्रापि समानम् । यथैव हि
१० दूरादस्पष्टप्रतिभासविषयत्वमर्थस्यारोत्स्पष्टप्रतिभासेन बाध्यते
तथा सन्निहितार्थस्य स्पष्टप्रतिभासविषयत्वं दूरादस्पष्टप्रति-
भासेन, अविशेषात् ।

ननु विषयधर्मस्य विषयेषूपचारात्तत्र स्पष्टास्पष्टत्वव्यवहारे
त्रिषयिणोपि ज्ञानस्य तद्धर्मतासिद्धिः कुतः ? सैज्ञानस्पष्टत्वास्प-
१५ ष्टत्वाभ्याम्, स्वतो वा ? प्रथमपक्षेऽनवस्था । द्वितीयपक्षे त्वविशे-
षेणाखिलज्ञानानां तद्धर्मताप्रसङ्गः, इत्यप्यसमीचीनम् ; तत्रान्य-
थैव तद्धर्मताप्रसिद्धेः । स्पष्टज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमवि-
शेषाद्धि कचिद्विज्ञाने स्पष्टता प्रसिद्धा, अस्पष्टज्ञानावरणादिक्ष-
योपशमविशेषात्त्वस्पष्टतेति । प्रसिद्धश्च प्रतिर्वन्धकापायो ज्ञाने
-२० स्पष्टताहेत् रजोनीहाराद्यावृत्ता(ता)र्थप्रकाशस्येव तद्वियोगः ।

अक्षात्स्पष्टता इत्यन्यै, तेषां दविष्टैर्पादपादिज्ञानस्य दिवोत्का-
दिवेदनस्य च तत्प्रसङ्गः । तदुत्पादकाक्षस्यातिदूरदेशादिनकर-
करनिकरोपहतत्वाददोषोयमिति ; अत्रौप्यक्षस्योपधातः, शक्तेर्वा ?

१ अस्पष्टतया । २ गृहीतार्थव्यभिचारित्वात् । ३ अस्पष्टसंवेदन साध्मनं सिद्धं
यतः । ४ ज्ञानम् । ५ एवकारोत्र मिश्रप्रक्रमे । तेनातदाकारेणैवानन्तर द्रष्टव्यः ।
बुद्धिर्विषयादुत्पद्यते चेत् तदा अतदाकारा कथमिति चेदुच्यते । एकत्वेन व्यवसित-
चन्द्रकक्षणादर्थोदुत्पद्यमाना बुद्धिर्यदा हित्वमवधायति एकत्वं नावभासयति तदा
अतदाकारा सती अस्पष्टव्यपदेशमर्हति । ६ अविषयाकारा । ७ विषयात् । ८ एतस्य
तु स्पष्टत्वमन्युपगतं बौद्धेन । ९ अतदाकारत्वं यतो बुद्धेः । १० स्पष्टसंवेदनेपि ।
११ समीपे । १२ बाधाऽनापत्त्वस्योभयत्रापि । १३ स्वयोः स्पष्टास्पष्टज्ञानयोर्भावे
च ज्ञे ज्ञाने च तयोः स्पष्टत्वास्पष्टत्वाभ्याम् । १४ प्रत्यक्षानुमानानाम् । १५ उक्त-
विपर्ययेणैव । स्वज्ञानस्य स्पष्टत्वास्पष्टत्वेणैव । १६ नीर्व शक्तिः । ज्ञानस्य नीर्वस्य
चावरणमवरोधकं कर्त्तुं । १७ अज्ञातः क्षयोपशमो भवति न सर्वतः । १८ प्रति-
बन्धकोत्रावरणम् । १९ संवेदनस्य विशदत्वम् । २० गीमासकाः । २१ अतिदूर ।
२२ परिहारे ।

प्रथमपक्षोऽयुक्तः, तत्स्वरूपस्याविकलस्यानुभवात् । द्वितीयपक्षे तु योग्यतासिद्धिः, भावेन्द्रियाख्यक्षयोपशमलक्षणयोग्यताव्यतिरेकेणाक्षशेकेरव्यवस्थितेः । तल्लक्षणाच्चाक्षात्स्पष्टत्वाभ्युपगमेऽसं-
न्मतप्रसिद्धिः ।

आलोकोप्येतेन तद्धेतुः प्रत्याख्यातः । ततः स्थितमेतद्विश-५
दज्ञानस्वभावं प्रत्यक्षमिति ।

ननु किमिदं ज्ञानस्य वैशद्यं नामेत्याह अव्यवधानेनेत्यादि ।

प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम् ॥ ४ ॥

तुल्यजातीयापेक्षया च व्यवधानमव्यवधानं वा प्रतिपत्तव्यं न १०
पुनर्वैशद्यकालापेक्षया । यथा 'उपर्युपरि स्वर्गपटलानि' इत्यत्रा-
न्यान्यं तेषां देशादिव्यवधानेपि तुल्यजातीयानामपेक्षाकृता प्रत्या-
सत्तिः सामीप्यमित्युक्तम्, एवमत्राप्यव्यवधानेन प्रमाणान्तरनि-
रपेक्षतया प्रतिभासनं वस्तुनोऽनुभवो वैशद्यं विज्ञानस्येति ।

नन्वेवमीहादिज्ञानस्यावग्रहाद्यपेक्षत्वादव्यवधानेन प्रतिभासन-१५
लक्षणवैशद्याभावात्प्रत्यक्षता न स्यात्, तदुत्सारम्; अपरापरेन्द्रि-
यव्यापारादेवावग्रहादीनामुत्पत्तेस्तत्र तदपेक्षत्वासिद्धेः । एकमेव
चैवं विज्ञानमवग्रहाद्यतिशयवदपरापरचक्षुरादिव्यापारादुत्पन्नं
सत्त्वतन्त्रतया स्वविषये प्रवर्तते इति प्रमाणान्तराव्यवधानमत्रापि
प्रसिद्धमेव । अनुमानादिप्रतीतिस्तु लिङ्गादिप्रतीत्यैवं अनिता सती २०
स्वविषये प्रवर्तते इत्यव्यवधानेन प्रतिभासनाभावोत्र प्रत्यक्षेति ।
ततो निरवग्रहमेवंविधं वैशद्यं प्रत्यक्षलक्षणम्, साकल्येनाखिला-
ख्यक्षव्यक्तिषु सम्भवेनाव्याप्त्यसम्भवदोषाभावात् । अतिव्या-
प्तिस्तु दूरोत्सारितैव अध्यक्षत्वानभिमतं किञ्चिदप्येतल्लक्षणस्या-
सम्भवात् ।

२५

१ (कण्युपयोगी भावेन्द्रियमिति सूत्रकारवचनम् । लब्धिर्हि इन्द्रियस्थान-
मात्रात्मप्रदेशानां तदावरणकर्मक्षयोपशमरूपा) । २ ज्ञानस्य । ३ जैनमतसिद्धिः ।
४ अक्षस्य स्पष्टताहेतुनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । ५ समर्थितम् । ६ उदाहरणे ।
७ ज्ञाने । ८ अनुमानं प्रमाणान्तरेण लिङ्गज्ञानेन जायते इति तद्व्युदासादितत्पदम् ।
९ प्रतिज्ञानम् । १० अवग्रहादिरूपस्य । ११ ईहादिप्रतीतिज्ञाने । १२ न प्रत्यक्ष-
प्रतीत्या । १३ लिङ्गादिप्रतीत्या व्यवधानात् । १४ अव्यवधानेन प्रतिभासनलक्षणम् ।
१५ अनुभावाद्वा ।

समन्धकारादौ ध्यामलितवृक्षादिवेदनमप्यध्यक्षप्रमाणस्वरूप-
मेव, संस्थानमात्रे वैशद्योविसंवादित्वसम्भवात् । विशेषांशाध्य-
वसायस्त्वनुमानरूपः, लिङ्गप्रतीत्या व्यवहितत्वान्नाध्यक्षरूपतां
प्रतिपद्यते । अतिदूरदेशे हि पूर्वं संस्थानमात्रं प्रतिपद्य 'अयमेवंवि-
५ धसंस्थानविशिष्टोर्थो वृक्षो इस्ती पलालकूटादिर्वा एवंविधसंस्था-
नविशिष्टत्वान्यथानुपपत्तेः' इत्युत्तरकालं विशेषं विवेचयति ।
तरतमभावेन तत्प्रदेशसन्निधाने तु संस्थानविशेषविशिष्टमेवार्थं
वैशद्यतरतमभावेनाध्यक्षत एव प्रतिपद्यते, विशदक्षानावरणस्य
तरतमभावेनैवापगमात् ।

१० ननु च परोक्षेऽपि स्मृतिप्रत्यभिज्ञादिस्वरूपसंवेदनेऽस्याध्यक्ष-
लक्षणस्य सम्भवादतिव्याप्तिरेव, इत्यप्यपरीक्षिताभिधानम् । तस्य
परोक्षत्वासम्भवात्, क्षायोपशमिकसंवेदनानां स्वरूपसंवेदनस्या-
निन्द्रियप्रधानतयोत्पत्तेरनिन्द्रियाध्यक्षव्यपदेशसिद्धेः सुखादि-
स्वरूपसंवेदनवत् । बहिरर्थग्रहणापेक्षया हि विज्ञानानां प्रत्यक्षेतर-
१५ व्यपदेशः, तत्र प्रमाणान्तरव्यवधानाव्यवधानसङ्गात्वेन वैशद्येतर-
सम्भवात्, न तु स्वरूपग्रहणापेक्षया, तत्र तदर्थेवात् ।

ततो निर्दोषत्वक्षेत्राद्यं प्रत्यक्षलक्षणं परीक्षादक्षैरभ्युपगन्तव्यं न
'इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नम्' [न्यायसू० १।४] इत्यादिकं तस्याव्याप-
कत्वादीनिन्द्रियप्रत्यक्षे सर्वज्ञविज्ञानेऽस्यासत्त्वात् । न च 'तन्नास्ति'

२० इत्यभिधातव्यम् ; प्रमाणतोऽनन्तरमेवास्य प्रसाधयिष्यमाणत्वात् ।
तथा सुखादिसंवेदनेऽप्यस्योत्पत्तिः । न हीन्द्रियसुखादिसन्निकर्षो-
त्पन्नज्ञानमुत्पद्यते ; सुखादेरेव स्वग्रहणात्मकत्वेनोदयादित्युक्तम् ।
चाक्षुषसंवेदने चास्योत्पत्तिः ; चक्षुषोर्धन सन्निकर्षाभावात् ।

अथोच्यते—स्पर्शनेन्द्रियादिवच्चक्षुषोऽपि प्राप्यकारित्वं प्रमाणा-
२५ त्प्रसाध्यते । तथा हि—प्राप्तार्थप्रकाशकं चक्षुः वैद्वेन्द्रियत्वात्स्पर्श-

१ अस्पष्ट । २ आकारमात्रे । ३ इन्द्रः । ४ उक्तमेव समर्थयन्ति । ५ कर्मणः ।
६ अन्यवशनेन प्रतिभासनत्वलक्षणस्य । ७ स्थूलादीनाम् । ८ अनिन्द्रियं । (ईप-
दिन्द्रियं) मनः । ९ मानसप्रत्यक्षत्वादित्यर्थः । १० एवं चेत्स्थूलादीनां परोक्ष-
व्यपदेशो न स्यादित्युक्ते ग्राह्य । ११ बहिरर्थग्रहणे । १२ अनुमानलक्षणप्रमाणा-
लिङ्गप्रत्यक्षं प्रमाणान्तरम् । १३ स्वसंवेदन । १४ प्रमाणान्तरव्यवधानाभावात् ।
१५ अव्याख्यादिदोषत्रयासम्भवो यतः । १६ परोक्षं प्रत्यक्षलक्षणम् । १७ परेण
भवता । १८ इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमिलादिकस्य । १९ मनः । २० जेनेः
प्रथमपरिच्छेदे । २१ प्रत्यक्षलक्षणस्य । २२ प्राप्यकारि प्राप्य कार्य जानातीत्यर्थः ।
२३ नैयायिकेन । २४ इन्द्रियत्वादित्युक्ते मनसा व्यवधिचारस्तत्परिहारार्थं ग्राह्य-
ग्रहणम् । २५ बहिरर्थग्रहणमिच्छत्वात् ।

नेन्द्रियादिवत् । ननु किमिदं बाह्येन्द्रियत्वं नाम-बहिरर्थमि-
मुख्यम्, बहिर्देशावस्थायित्वं वा ? प्रथमपक्षे मनसानेकान्तः,
तस्याप्राप्यकारित्वेपि बहिरर्थग्रहणमिमुख्येन बाह्येन्द्रियत्वसिद्धेः ।
द्वितीयपक्षे त्वसिद्धौ हेतुः, रश्मिरूपस्य चक्षुषो बहिर्देशावस्थायि-
त्वस्य भवतानभ्युपगमात् । गोलकान्तर्गततेजोद्रव्याश्रया हि^५
रश्मयस्त्वन्मते प्रसिद्धाः । गोलकरूपस्य तु चक्षुषो बहिर्देशा-
वस्थायिनो हेतुत्वे पक्षस्य प्रत्यक्षवाधनात्कालात्ययापदिष्टत्वम् ।

न च बाह्यविशेषणेन मनो व्यवच्छेद्यम्, न हि तत् सुखादौ
संयुक्तसंमवायादिसम्बन्धं व्याप्नोति च सैम्यन्धसम्बन्धमन्तरेण
ज्ञानं जनयति रूपादौ नेत्रादिवत् । अथासौ सम्बन्ध एव न^{१०}
भवति, तर्हि नेत्रादीनां रूपादिभिरप्यसौ न स्यात्, तस्यापि
सम्बन्धसम्बन्धत्वात् । तथा चेन्द्रियत्वाविशेषेपि मनोऽप्राप्तार्थ-
प्रकाशकं तथा बाह्येन्द्रियत्वाविशेषेपि चक्षुः किं नेष्यते ? अथात्र
हेतुमावाप्तमेव्यते, अन्यत्रापि 'इन्द्रियत्वात्' इति हेतुः केन
वार्येत ? ततो मनसि तत्साधने प्रमाणवाधनमन्यत्रापि संमानम् ।^{१५}

चक्षुश्चात्र धर्मित्वेनोपात्तं गोलकत्वभावम्, रश्मिरूपं वा ?
तत्राद्यविकल्पे प्रत्यक्षवाधा, अर्थदेशपरिहारेण शरीरप्रदेशे एवा-
स्योपलम्भात्, अन्यथा तद्गहितत्वेन नयनपक्षमप्रदेशस्योपलम्भः
स्यात् । अथ रश्मिरूपं चक्षुः, तर्हि धर्मिणोऽसिद्धिः । न खलु
रश्मयः प्रत्यक्षतः प्रतीयन्ते, अर्थवैतत्र तत्त्वरूपाप्रतिभासनात्,^{२०}
अन्यथा विप्रतिपत्त्यभावः स्यात् । न खलु नीले नीलतया नुभूयमाने
कश्चिद्विप्रतिपद्यते ।

किञ्च, इन्द्रियार्थसन्निकर्षजं प्रत्यक्षं भवन्मते । न चार्थदेशे

१ नैयायिकेन । २ चक्षुःप्राप्तार्थप्रकाशकं बहिर्देशावस्थायित्वादित्यस्य । ३ प्रल-
क्षादिप्रमाणवाधिते पक्षे प्रवर्तमानो हेतुः कालात्ययापदिष्टः । ४ कर्तुं । ५ मनसा
संयुक्ते आत्मनि सुखादेस्तत्तमभाव इति । ६ मन आत्मनात्मा चाद्येषपदार्थैः साध्य-
साधनरूपैस्तत्सम्बन्धते इति । ७ इति सिद्धं प्रत्यक्षादिप्रमाणवाधनम् । ८ नेत्रादीनां संयुक्ते
षटादौ रूपादेस्तत्सम्बन्धसम्बन्धो यथा । ९ रूपादिषु नेत्रादीनां सम्बन्धसम्बन्धत्वम् ।
१० भवन्मताङ्गीकारेण । ११ मनसि । १२ मनः प्राप्तार्थप्रकाशकमिन्द्रियत्वात्प्र-
त्यादिवदिति । १३ प्राप्तार्थप्रकाशकत्वस्य । १४ आगमप्रमाणवाधा । १५ चक्षुषि ।
१६ प्रत्यक्षप्रमाणवाधनम् । १७ अनुमाने । १८ चक्षुः प्राप्तार्थप्रकाशकं बाह्येन्द्रि-
यत्वात् । १९ गोलकः । २० अवयव यथा प्रतिभासनम् । २१ रश्मिरूपं प्रति-
भासते चेत् । २२ रश्मिरूपं चक्षुर्गोलकरूपं वेत्ति । २३ रश्मिरूपं चक्षुरित्यसिद्धौ
दुष्प्रमाणत्वात् । २४ नैयायिकः ।

विद्यमानैस्तैरपरेन्द्रियस्य सन्निकर्षोस्ति यतस्तत्र प्रत्यक्षमुत्पद्येत,
अभवत्स्याप्रसङ्गात् ।

अथानुमानात्तेषां सिद्धिः, किमेत एव, अनुमानान्तराद्वा ? प्रथ-
मपक्षेऽन्योन्याश्रयः—अनुमानोत्थाने ह्यतस्तत्सिद्धिः, अस्याश्चा-
५ अनुमानोत्थानमिति । अथानुमानान्तरात्तत्सिद्धिस्तदानवस्था, तत्रा-
प्यनुमानान्तरात्तत्सिद्धिप्रसङ्गात् ।

यदि च गोलकान्तर्भूतात्तेजोद्रव्याद्वहिर्भूता रश्मयश्चक्षुःशब्द-
वाच्यः पदार्थप्रकाशकाः, तर्हि गोलकस्योन्मीलनमञ्जनादिना
संस्कारश्च व्यर्थः स्यात् । अथ गोलकाद्याश्रयपिधाने तेषां विषयं
१० प्रति गमनासम्भवात्तदर्थं तदुन्मीलनम्, घृतादिना च पादयोः
संस्कारे तत्संस्कारो भवति सौश्रयगोलकसंस्कारे तु नितरां
स्यात् इत्यस्यापि न वैयर्थ्यम्, तदापि गोलकादिलभ्यस्य काम-
लादेः प्रकाशकत्वं तेषां स्यात् । न खलु प्रदीपकलिकाश्रयास्तद्र-
श्मयस्तत्कलिकावलम्बं शलाकादिकं न प्रकाशयन्तीति युक्तम् ।

१५ न चात्र चक्षुषः सम्बन्धो नास्तीत्यभिधातव्यम्, यतो व्यैक्ति-
रूपं चक्षुस्तत्रासम्बद्धम्, शक्तिस्वभावं वा, रश्मिरूपं वा ? प्रथ-
मपक्षे प्रत्यक्षविरोधः, व्यक्तिरूपचक्षुषः काचकामलादौ सम्ब-
न्धप्रतीतेः । द्वितीयपक्षेपि तच्छक्तिकरूपं चक्षुर्व्यैक्तिरूपचक्षुषो
भिन्नदेशम्, अभिन्नदेशं वा ? न तावद्भिन्नदेशम्, तच्छक्तिकरू-
२० पताव्याघातानुपपन्नान्निर्येधारत्वप्रसङ्गाच्च । न ह्यन्यशक्तिरन्या-
धारा युक्ता । तद्देशद्वारेणैवाथोपलब्धिप्रसङ्गश्च । ततोऽभिन्नदेशं
चेत्, तत्तत्रैव सम्बद्धम्, असम्बद्धं वा ? सम्बद्धं चेत्, बहिरर्थव-
त्सौश्रयं तत्सम्बद्धं चाञ्जनादिकमपि प्रकाशयेत् । असम्बद्धं
चेत्कथमावेयं नाम अतिप्रसङ्गात् ?

२५ अथ रश्मिरूपं चक्षुः, तस्यापि काचकामलादिना सम्बन्धो-
स्त्येव । न खलु स्फटिकोदिकूपिकामध्यगतप्रदीपोदिरश्मयस्ततो

- १ अपरलोकानां लोचनस्य । २ अन्यथा—उत्पद्यते चेत्तर्हि । ३ ग्रन्थानवस्था ।
४ प्रथमानुमानात् । ५ अनुमानात् । ६ रश्मिरूपं चक्षुस्त्रैयसत्वात्प्रदीपवदित्यस्य ।
७ ग्रन्थानवस्था । ८ अवलम्बक्रियामात्रेण । ९ वसः । १० गोलकान्तर्भूततेजोद्रव्यस्य ।
११ स्वस्य रश्मिरूपचक्षुषः । १२ रश्मिरूपचक्षुषः संस्कारः । १३ गोलकसा-
जनादिना संस्कारस्य । १४ गोलकरूपस्य । १५ शक्तेः । १६ व्यक्तिरूपचक्षुषः ।
१७ शक्तिस्वभावस्य । १८ व्यक्तिरूपे चक्षुषि । १९ शक्तिरूपेन्द्रियसामर्थ्यं गोलकस्य ।
२० सम्यक् सम्बन्धाविशेषात् । २१ शक्तिरूपस्य । २२ सक्षलं विन्ध्यमेवशा
स्यादिसम्बन्धव्याविशेषात् । २३ तृतीयपक्षे । २४ काचादि । २५ अदिपदेन रसादि ।
२६ स्फटिकादिकूपिकायाः सक्षलत्वात् ।

निर्गच्छन्तस्तत्संयोगिनौ न सम्बद्धास्तत्प्रकाशका वा न भवन्तीति प्रतीतम् । तथैवाञ्जनादेः प्रत्यक्षत एव प्रसिद्धेः परोपदेशस्य दर्पणादेश्च तदर्थस्योपादानमनर्थकमेव स्यात् ।

किञ्च, यदि गोलकान्निःसृत्यार्थेनाभिसम्बद्धान्यर्थे तैः प्रकाशयन्ति; तर्ह्यर्थं प्रति गच्छतां तैजसानां रूपस्पर्शविशेषवतां तेषामु-५ पलम्भः स्यात्, न चैवम्, अतो दृश्यानामनुपलम्भात्तेषामभावः । अथादृश्यास्तेऽनुद्भूतरूपस्पर्शवत्त्वात्; न; अनुद्भूतरूपस्पर्शस्य तेजोद्वयस्याप्रतीतेः । जलहेम्नोर्मांसुरूपोष्णस्पर्शयोरनुद्भूतिप्रतीतिरस्तीत्यसम्यक्; उभयानुद्भूतेस्तत्रैवाप्यप्रतिपत्तेः । इष्टानुसारेण चादृष्टार्थकल्पना, अन्यैथातिप्रसङ्गात् । तथाहि—रात्रौ १० दिनकरकराः सन्तोपि नोपलभ्यन्तेऽनुद्भूतरूपस्पर्शत्वाच्चक्षुरभिमवत् । प्रयोगश्च—मार्जारादीनां चक्षुषा रूपदर्शनं बाह्यालोकपूर्वकम् तत्त्वादिवाऽसदादीनां तद्दर्शनवत् । ननु मार्जारादीनां चाक्षुषं तेजोस्ति, तत एव तत्सिद्धेः किं बाह्यालोककल्पनयेत्यन्यत्रापि स्मरामः । ननु यथैवं यदृश्यते तथा तत्कल्प्यते, दिवाऽसदादीनां १५ चाक्षुषं सौर्यं च तेजो विज्ञानकारणं दृश्यते तत्तथैवं कल्प्यते, रात्रौ तु चाक्षुषमेव, अतस्तदेव तत्कारणं कल्प्यते । ननु किं मनुष्येषु नायनरश्मीनां दर्शनमस्ति ? अथानुमेयास्ते; तर्हि रात्रौ सौर्यरश्मयोप्यनुमेयाः सन्तु । न च रात्रौ तत्सद्भावे नक्तञ्चरणामिव मनुष्याणामपि रूपदर्शनमस्ति; विचित्रैशक्तिस्त्वाद्भावो-२० नाम् । कथमन्यथोलूकादयो दिवा न पश्यन्ति ? यथैवात्रैलोकैः

१ नदिः । २ श्रीलण्डेन । ३ सम्बन्धे सति । ४ अञ्जनादिपरिधानार्थम् । ५ रश्मयः । ६ मासुर । ७ उष्ण । ८ रश्मीनाम् । ९ इति चैत्रेत्थर्षः । १० अप्रतीतिं परिहरति परः । ११ एकसिन्धुष्णोदकलक्षणे हेमलक्षणे वा तेजसद्रव्ये । १२ यदैकक्षितेजोद्रव्ये उभयानुद्भूतिर्न दृष्टा तत्रापि चक्षुरभिमपूषयानुद्भूतिः कल्प्यते इत्युक्तं बाह । १३ अदृष्टानुसारेणादृष्टार्थकल्पना यदि स्यात् । १४ रात्रौ । १५ नरनेत्रे । १६ मनुष्याणां चाक्षुषं तेजोस्ति तत एव तत्सिद्धेः किं बाह्यालोककल्पनया । १७ कारणत्वेन । १८ तेजः । १९ कारणत्वेन । २० मार्जारादीनाम् । २१ रूपदर्शनकारणम् । २२ प्रतीतिः । २३ येनैवं परिहारः परोक्ष्यते । न सतीत्यर्थः । २४ परः । २५ सौर्यरश्मिसद्भावात् । २६ कथं विचित्रशक्तिवत् ? रात्रौ विद्यमानाः सौर्यरश्मयो नक्तञ्चरणां रूपज्ञानहेतवो न मनुष्याणामिति । २७ सौर्यरश्मीनाम् । २८ शवानां विचित्रशक्तिर्वै न स्यादिति । २९ परमते । ३० दिवसे । ३१ भूकानाम् ।

प्रतिबन्धकः, तैथान्यैत्र तैमः । ततो यथानुपलम्भाच्च सन्ति रात्रौ भास्करकरास्तथान्यैदा नायनकरा इति ।

एतैर्न 'दूरस्थितकुड्यादिप्रतिफलितानां प्रदीपरश्मीनामन्तराले सतामप्यनुपलम्भसम्भवात् तैरनुपलम्भो व्यभिचारी, इत्यपि ५ निरस्तम्; आदित्यरश्मीनामपि रात्रावभावासिद्धिप्रसङ्गात् ।

अथोच्यते—चक्षुः स्वरश्मिसम्बन्धार्थप्रकाशकम् तैजसत्वात् प्रदीपवत् । ननु किमनैनं चक्षुषो रश्मयः साध्यन्ते, अन्यतैः सिद्धानां तेषां ग्राह्यार्थसम्बन्धो वा ? प्रथमपक्षे पक्षस्य प्रत्यक्ष-वाधा, नरनारीनयनानां प्रभासुररश्मिरहितानां प्रत्यक्षतः प्रतीतेः । १० हेतोश्च कालात्ययापदिष्टत्वम् । अथादृश्यत्वात्तेषां न प्रत्यक्षवाधा पक्षस्य । नन्वेवं पृथिव्यादेरपि तत्सत्त्वप्रसङ्गः; तथा हि—पृथिव्या-दयो रश्मिवन्तः सत्त्वादिभ्यः प्रदीपवत् । यथैव हि तैजसत्वं रश्मिवत्तया व्याप्तं प्रदीपे प्रतिपन्नं तथा सत्त्वादिकमपि । अथ तेषां तत्साधने प्रत्यक्षविरोधः; सोन्यत्रापि समान इत्युक्तम् ।

१५ ननु मार्जारादिचक्षुषोः प्रत्यक्षतः प्रतीयन्ते रश्मयः तत्कथं तद्विरोधः ? यदि नाम तत्र प्रतीयन्तेऽन्यैत्र किमायातम् ? अर्थेया हेन्नि पीतत्वप्रतीतौ पटादौ सुवर्णत्वसिद्धिप्रसङ्गः । प्रत्यक्षवाध-ननुमर्थेनापि ।

किञ्च, मार्जारादिचक्षुषोर्भासुररूपदर्शनादन्यत्रापि चक्षुषि २० तैजसत्वं प्रसाधने गवादिलोचनयोः कृष्णत्वस्य नरनारीनिरीक्षण-योर्धावल्यस्य च प्रतीतेरविशेषेण पार्थिवत्वमाप्यत्वं वा साध्य-ताम् । कथं च प्रभासुरप्रभारहितनयनानां तैजसत्वं सिद्धं यतः सिद्धो हेतुः ? किमर्तं एवानुमानात्, तदन्तराह्ना ? आद्यविक-ल्पेऽन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि तेषां रश्मिवत्त्वे तैजसत्वसिद्धिः, ततश्च २५ तत्सिद्धिरिति ।

१ जैनमते । २ रात्रौ । ३ नराणां प्रतिबन्धकम् । ४ दिवा । ५ अपि न सन्ति । ६ रात्रौ दिनकरकराणामवावसाधनपरेण ग्रन्थेन । ७ प्रतिविम्बितानाम् । ८ प्रदीपकुड्याधोः । ९ जैनैः । १० अन्यथा । ११ न सत्यनुपलम्भमानत्वादिति । १२ अनुमानेन । १३ प्रमाणात् । १४ मार्जारादिनयनेषु । १५ नरनारीनयनेषु । १६ अन्यत्र प्रतीतस्यान्यत्र विधिवदि । १७ हेन्नि पीतत्वात्पटे सुवर्णत्वसाधने प्रत्यक्षवाधनं यथा तथा तैजसत्वाच्चक्षुषि रश्मिवत्त्वसाधने च प्रत्यक्षवाधनम् । १८ नरनयनं रश्मिवत् तैजसत्वान्मार्जारादिचक्षुषैरिति । १९ अशेषनेत्राणां । २० तैजसत्वादिलक्षणात् ।

अथ 'चक्षुस्तैजसं रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात् प्रदीपवत्' इत्यनुमानान्तरात्तत्सिद्धिः; न; अत्रापि गोलकस्य भासुरूपोष्णस्पर्शरहितस्य तैजसत्वसाधने पक्षस्य प्रत्यक्षबाधा, 'न तैजसं चक्षुः तमःप्रकाशकत्वात्, यत्पुनस्तैजसं तत्र तमःप्रकाशकं यथालोकः' इत्यनुमानबाधा च । प्रसाधयिष्यते च ५ 'तमोवत्' इत्यत्र तमसः सत्त्वम् । प्रदीपवत्तैजसत्वे चास्योलोकापेक्षा न स्यादुष्णस्पर्शरहितयोपलम्भश्च स्यात्, न चैवम्, तदपेक्षतया मनुष्यपारावतवलीवर्दादीनां धवललोहितकालरूपतया उष्णस्पर्शस्वभावतया चास्योपलम्भात् । तत्र गोलकं चक्षुः ।

नाप्यन्यत्; तद्भाह्वकप्रमाणाभावेनाश्रयासिद्धत्वप्रसङ्गाद्धेतोः । १० 'रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात्' इति हेतुश्च जलोजनचन्द्रमाणिभ्योदिभिरनैकान्तिकः । तेषामपि पक्षीकरणे पक्षस्य प्रत्यक्षबाधा, सर्वो हेतुरव्यभिचारी च स्यात् । न च जलाद्यन्तर्गतं तैजोद्रव्यमेव रूपप्रकाशकमित्यभिधातव्यम्; सैवत्र दृष्टहेतुवैफल्यपत्तेः । तथा च दृष्टान्तासिद्धिः, प्रदीपादावप्यन्यैस्यैव तैजप्रकाश १५ कस्य कल्पनाप्रसङ्गात् । प्रत्यक्षबाधनमुर्भेयत्र । निराकरिष्यते च "नार्थालोकौ कारणम्" [परी० २।६] इत्यत्रालोकस्य रूपप्रकाशकत्वम् ।

किञ्च, रूपप्रकाशकत्वं तत्र ज्ञानजनकत्वम् । तच्च कारणविषयबादिनो घटादिरूपस्याप्यस्तीत्यनेन हेतोर्व्यभिचारः । 'करणैस्त्वे २०

१ रूपस्येत्युच्यमाने आत्ममनोभ्या व्यभिचारस्तत्परिहारार्थं रूपस्यैवेत्युक्तम् । रूपस्यैव प्रकाशकत्वादित्युच्यमाने असिद्धत्वम् । कुतः १ द्रव्यद्रव्यत्वयोरपि चक्षुषा प्रकाशनात् । तत्परिहारार्थं रूपादीना मध्ये इत्युक्तम् । अनेन द्रव्यद्रव्यत्वयोः परिहारः—रूपादीनां गुणानामेव निर्धारितत्वात् । २ इति बहुक्तं तत्रेत्यर्थः । ३ नार्थालोकौ कारणं परिच्छेदत्वाद्यमोवदित्यस्य शून्यस्य व्याख्यानसरे । ४ चक्षुषः । ५ आदिपदेन स्फोभति । ६ कुण्ड । ७ घर्षि । ८ रश्मिरूपम् । ९ रश्मिरूपचक्षुषः । १० रूपस्याप्येव प्रकाशकाः । ११ आदिपदेन काचादिभिरपि । १२ यद्रूपादीना मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकं तत्तैजसमित्युक्ते जलाजनादिभिर्हेतुर्व्यभिचारी स्यादित्यर्थः । १३ कार्ये । १४ कारणम् । १५ निशाचादेः । १६ रूपम् । १७ जलादेरेव रूपप्रकाशकत्वोपलम्भादन्यस्य । रूपप्रकाशकत्वकल्पनेति । १८ साधनविकलो दृष्टान्त इति निरूपितमनेन । १९ यत्कारणं ज्ञानं जनयति तदेव ज्ञानस्य विषयो भवतीति । २० ज्ञानम् । २१ नैयायिकम् । २२ घटादिरूपं रूपज्ञानजनकं न तु तैजसम् । २३ प्रकाशकत्वादित्यस्य । तैजसत्वसाध्यत्वाभावो(वे)पि साधनमस्ति यतः । २४ चक्षुःसौम्यं कारणत्वे सति रूपादीना मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वादित्युक्तेपीत्यर्थः ।

सति' इति विशेषणेष्वालोकार्थसन्निकर्षेण चक्षुरूपयोः संयुक्त-
समवायसम्बन्धेन ध्यानेकान्तः । 'द्रव्यत्वे कर्णेणत्वे च सति तैत्प्र-
काशकत्वात्' इति विशेषणेषु चन्द्रादिनानेकान्तः ।

- किञ्च, द्रव्यं रूपप्रकाशकं भासुरूपम्, अभासुरूपं वा ?
५ प्रथमपक्षे उष्णोदकसंसृष्टमपि तत् तत्प्रकाशकं स्यात् । अनुद्भूत-
रूपत्वाच्चेति चेत्, नायनरश्मीनामप्यत एव तन्माभूत् । तथा
दृष्टत्वादित्यप्यनुत्तरम् ; संशयात्, न हि तत्र निश्चयोस्ति ते
तत्प्रकाशका न गोलकमिति । अनुद्भूतरूपस्य तेजोद्रव्यस्य दृष्टा-
न्तेऽपि रूपप्रकाशकत्वाप्रतीतिः । तथाच, न चक्षु रूपप्रकाशकम्-
१० अनुद्भूतरूपत्वाज्जलसंयुक्तानलवत् । द्वितीयपक्षेऽपि उष्णोदकतेजो-
रूपं तत्प्रकाशकं स्यात् । न हि तत्तत्र नष्टम्, 'अनुद्भूतम्' इत्य-
भ्युपगमात् । उद्भूतं तत्तत्प्रकाशकमित्यभ्युपगमे रूपप्रकाशकस्यैव
न्वयव्यतिरेकानुविधायी तस्यैव कार्यो न द्रव्यस्य । न खलु देव-
दत्तं प्रति पश्वादीनामागमनं तदुष्णान्वयव्यतिरेकानुविधायि देव-
१५ दत्तस्य कार्यम् । ततो 'द्रव्यत्वे सति' इति विशेषणासिद्धिः ।

किञ्च, सम्बन्धादेरिवाऽतैजसस्यापि द्रव्यरूपकरणस्य कस्यचि-
द्वृत्तज्ञानजनकत्वं किञ्च स्यात्, विप्रेक्षव्यावृत्तेः सन्दिग्धत्वादतैज-
सत्वे रूपज्ञानजनकत्वंस्याविरोधात् ? तदेवं तैजसत्वासिद्धेर्नातै-
श्चक्षुषोरधिभवत्वसिद्धिः ।

- २० अथान्यतः सिद्धानां रश्मीनां ग्राह्यार्थसम्बन्धोनेन साध्यते;
नै; अन्यतः कुतश्चित्तेषामसिद्धेः, प्रत्यक्षादेस्तत्साधकत्वेन प्राक्प्र-

१ सन्निकर्षाः संयुक्तसमवायादयः कर्णं भवन्ति न तु तैजसम् । २ चक्षुषा
संयुक्ते षटे रूपस्य समवायसम्बन्ध इत्यतः सन्निकर्षोऽपि संयुक्तसमवायं पृथग्न ।
३ तेजोद्रव्ये सन्निकर्षादयो गुणास्तदवयवच्छेदार्थं द्रव्यत्वे सतीति विशेषणम् । ४ चक्षु-
स्तेजसं द्रव्यत्वे करणत्वे च सति रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात् । ५ रूपं ।
६ चन्द्रे तैजसत्वाभावात् । ७ तेजोद्रव्यम् । ८ भासुरूपम् । ९ रूपप्रकाशकत्वम् ।
१० अनुद्भूतरूपस्यापि तेजोद्रव्यस्य रूपप्रकाशकत्वेन । ११ तेजोद्रव्ये । १२ रूपं ।
१३ भासुर । १४ उष्णोदकगततेजोरूपम् । १५ रूपं । १६ परम् । १७ रूपं ।
१८ उद्भूततेजोरूपम् । १९ गोलकगतोद्भूततेजोरूपम् । २० तेजोद्रव्यम् ।
२१ मन्त्रतन्त्रादि । २२ किन्तु देवदत्तगुणस्यैव कार्यम् । २३ सन्निकर्षादि ।
२४ आदिपदेन संयोगस्य चन्द्रादेश्च । २५ गोलकरूपम् । २६ विप्रेक्षादतैजसा-
ज्जलादेः । २७ रूपज्ञानजनकत्वहेतोः । २८ यत्रैतत् न भवति तत्र रूपप्रकाशक-
मिति । २९ जलादीनाम् । ३० तैजसत्वादिति हेतोः । ३१ द्वितीयपक्षः ।
३२ इति चेन्न । ३३ प्रमाणात् ।

तिषिद्धत्वात् । तथा चेदमयुक्तम्—“वचुरकपुष्पवदौ सूक्ष्मा-
णामप्यन्ते महत्त्वं तद्रश्मीनां महापर्वतादिप्रकाशकत्वान्यथानुप-
पत्तेः ।” [] इति; स्वरूपतोऽसिद्धानां तेषां महत्त्वादिधर्मस्य
अद्धामात्रगम्यत्वात् । ततो रश्मिरूपचक्षुषोऽप्रसिद्धेर्गोलकस्य च
प्राप्यकारित्वे प्रत्यक्षवाचितत्वात्कस्य प्राप्तार्थप्रकाशकत्वं साध्येत ? ५
यदि च स्पर्शनादौ प्राप्यकारित्वोपलम्भाच्चक्षुषि तत्साध्येत; तर्हि
हस्तादीनां प्राप्तानामेवान्याकर्षकत्वोपलम्भादयस्कान्तौदीनां तथा
लोहाकर्षकत्वं किञ्च साध्येत ? प्रमाणवाधान्यत्रापि ।

अथार्थेन चक्षुषोऽसम्बन्धे कथं तत्र ज्ञानोदयः ? क एवमाह—
‘तत्र ज्ञानोदयः’ इति ? आत्मनि ज्ञानोदयाम्युपगमात् । न चाप्रा- १०
प्यकारित्वे चक्षुषः सकृत्सर्वार्थप्रकाशकत्वप्रसङ्गः; प्रतिनियत-
शक्तित्वाद्भावीनाम् । ‘यै एव सर्व योग्यः स एव तत्करोति’
इत्यनन्तरमेव वक्ष्यते । कार्यकारणयोरत्यन्तमेवेऽर्थान्तरत्वावि-
शेषात् ‘सर्वमेकैसात्कुतो न जायेत’ इति, ‘रश्मयो वा लोकान्तं
कुतो न गच्छन्ति’ इति चोद्ये^१ भवतोपि योग्यतैव शरणम् । १५

किञ्च, चक्षु रूपं प्रकाशयति संयुक्तसमवायसम्बन्धात्, स
चास्य गन्धादावपि समान इति तमपि प्रकाशयेत् । तथा चेन्द्रि-
यान्तरवैयर्थ्यम् । योग्यताऽभावात्तदप्रकाशने सर्वत्र सैवास्तु,
किमन्तर्गडुना सम्बन्धेर्न ? यदि चायमेकान्तश्चक्षुषा सम्बद्धस्यैव
ग्रहणमिति; कथं तर्हि स्फटिकाद्यन्तरितार्थग्रहणम् ? तद्रश्मीनां २०
तं प्रति गच्छतां स्फटिकाद्यवयविना प्रतिबन्धात् । तैस्तस्य
नाशितत्वादोपे तद्व्यवहितार्थोपलम्भसमये स्फटिकादेरुपलम्भो
न स्यात् । तस्योपरि स्थितद्रव्यस्य च पातप्रसक्तिः आधारभूत-
स्यावयविनो नाशात् । न हि परमाणवो दृश्याः कस्यचिदाधारा
वा, अवयविकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात् । अवय्वन्तरस्योत्पत्तेरदोषे २५
तदा तद्व्यवहितार्थानुपलम्भप्रसङ्गः । न चैवम्, युगपत्सैयोरि-
न्तरमुपलम्भात् । अथाशु व्यूहान्तरोत्पत्तेर्निरन्तरस्फटिकादिवि-

१ अप्राप्ताकर्षकाणाम् । २ प्राप्तत्वप्रकारेण । ३ प्रत्यक्षवाधा । ४ चक्षुष्यपि ।
५ जैनैः । ६ चक्षुरादीनाम् । ७ कुत एतदित्याह । ८ कार्ये । ९ कार्यकारणभाव-
नियमे न योग्यता कारणं किन्त्वन्यदेव कारणमित्युक्ते आह । १० कार्यम् । ११ कार-
णात् । १२ भिन्नत्वाविशेषात् । १३ जैनैः । १४ नैयायिकस्य । १५ कार्यनियमे ।
१६ सन्निकर्षेण । १७ नियमः । १८ तस्य चक्षुषः । १९ नष्टत्वात् । २० कठ-
सादेः । २१ मन्यथा । २२ एकस्य नाशेऽपरस्योत्पत्तेः । २३ स्फटिकस्फटिका-
न्तरितार्थयोः । २४ स्फटिकान्तरस्य ।

भ्रमः; तदभावस्याप्याशु प्रवृत्तेरभावविभ्रमः किञ्च स्यात्? भाव-
पक्षस्य बलीयस्त्वमित्युक्तम्; भावभावयोः परस्परं स्वकार्य-
करणं प्रत्यविशेषात् ।

कथं च समलजलान्तरितार्थस्योपलम्भो न स्यात्? ये हि तद्र-
५ ष्मयः कठिनमतितीक्ष्णलोहाऽमेघं स्फटिकादिकं भिन्दन्ति तेषां
जलेऽतिद्रवस्वभावे काऽक्षमा? अथ नीरेण नाशितत्वाच्च ते
तद्भिन्दन्ति; तर्हि स्वच्छजलव्यवस्थितस्याप्यनुपलम्भप्रसङ्गः ।
योग्यताङ्गीकरणे सर्वं सुस्थम् । ततः प्रोक्तदोषपरिहारमिच्छेता
प्रतीतिसिद्धमप्राप्यकारित्वं चक्षुषोऽभ्युपगन्तव्यम् ।

- १० तथाहि—‘चक्षुरप्राप्तार्थप्रकाशकमत्यासन्नार्थाप्रकाशकत्वात्, य-
त्पुनः प्राप्तार्थप्रकाशकं तदत्यासन्नार्थप्रकाशकं दृष्टं यथा
ओष्वादि, अत्यासन्नार्थाप्रकाशकं च चक्षुस्तस्मादप्राप्तार्थप्रकाश-
कम्’ इति । न चायमसिद्धो हेतुः; कान्चकामलार्थत्यासन्नार्था-
प्रकाशकत्वस्य चक्षुषि प्रागेव प्रसाधितत्वात् । ननु साध्याविशि-
१५ ष्टेयं हेतुः, ‘पर्युदासप्रतिषेधे हि यदेवस्याप्राप्यकारित्वं तदेवात्या-
सन्नार्थाप्रकाशकत्वम्’ इति । प्रसज्यप्रतिषेधस्तु जैनैर्नाभ्युपगम्यते
अपसिद्धान्तप्रसङ्गात्; इत्यप्यनुपपन्नम्; प्रसङ्गसाधनत्वादेतस्य ।
ओष्वादौ हि प्राप्यकारित्वात्यासन्नार्थप्रकाशकत्वयोर्व्याप्यव्यापक-
भावसिद्धौ सत्यां परस्य व्यापकभावविधेर्वाऽत्यासन्नार्थाप्रकाशकत्व-
२० लक्षणयाऽनिष्टस्य प्राप्यकारित्वलक्षणव्याप्याभावस्यापादानमात्र-
मेवानेन विधीयते, इत्युक्तदोषाप्रसङ्गः । नाप्यनैकान्तिको विरुद्धो
वा; विपक्षस्यैकदेशे तत्रैव वाऽसौऽप्रवृत्तेः ।

न च स्पर्शनेन प्राप्यकारिणाप्यत्यासन्नस्याभ्यन्तरशरीरावय-
वस्पर्शस्याप्रकाशनादनेकान्तः; अस्य तैत्तिकारणत्वेन तदविषय-
२५ त्वात् । स्वकारणव्यतिरिक्तो हि स्पर्शादिः स्पर्शनादीन्द्रियाणां

१ बलीयस्त्वादित्यर्थः । २ बलीयस्त्वस्य । ३ समलजले शक्तिर्नास्ति सच्छ-
जलेति तर्हि योग्यतैव कारणम् । ४ अप्राप्तार्थप्रकाशकत्वेन न सकलार्थग्राहकं चक्षुः ।
यत्र योग्यता तं प्रकाशयति यत्र योग्यता नास्ति तं न प्रकाशयतीति । ५ नैयायिकेन ।
६ कामलादि । ७ शब्दादिकं प्रकाशयत् । ८ जादिपदेनाजनादि । ९ साध्यसम
इत्यर्थः । १० हेतुसित्तनभो विचारः । ११ अत्यासन्नार्थं न प्रकाशयतीति ।
१२ सर्वथा दुष्कृताभावः । १३ अन्यथा । १४ (जैनो वक्ति) परेष्ट्याऽनिष्टापादनं
प्रसङ्गसाधनम् । १५ अनुमानस्य । १६ नैयायिकस्य । १७ चक्षुषीलम्बादिष्वप्येते ।
१८ चक्षुषा । १९ अनुमानेन । २० प्राप्यकारित्वस्य । २१ हेतोः । २२ तस्य
उपादानकारणत्वेन, न तु निमित्तकारणत्वेन ।

विषयः, तत्रैवाभिमुख्यसम्भवनामीषां प्रकाशनयोग्यतोपपत्तेः । कथमन्यथैकशरीरप्रदेशान्तरगतस्पर्शनेन तत्प्रदेशान्तरगतः स्पर्शः प्रकाश्येत ? न च कामलादयोऽक्षनादयो वा चक्षुषः कारणेन तेषामप्यनेन न्यायेन प्रकाशनं न स्यात्, स्वसामग्रीतस्तत्सन्निधानात्प्रागेवास्योत्पन्नत्वात् । नापि कालात्ययापदिष्टोयम्; प्रत्यक्षस्य पक्षावाधकत्वेन प्रागेव समर्थनात्, आगमस्य च तद्वाधकस्यासम्भवात् । नापि सत्प्रतिपक्षः, विपरीतार्थोपस्थापकानुमानानां प्रागेव प्रतिष्वस्तत्वादिति । तथा, 'चक्षुर्गत्वा नाऽर्थेनाभिसम्बध्यते इन्द्रियत्वात्स्पर्शनादीन्द्रियवत्' इत्यनुमानाच्चास्याप्राप्यकारित्वसिद्धिः । अर्थस्य च तद्देशागमने प्रत्यक्षविरोध इति । १०

तच्चोक्तप्रकारं प्रत्यक्षं मुख्यसांव्यवहारिकप्रत्यक्षप्रकारेण द्विप्रकारम् । तत्र सांव्यवहारिकप्रत्यक्षप्रकारस्योत्पत्तिकारणस्वरूपे प्रकाशयति—

इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः

सांव्यवहारिकम् ॥ ५ ॥

१५

विशदं प्रत्यक्षमित्यनुवर्त्तते । तत्र समीचीनोऽबाधितः प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणो व्यवहारः सांव्यवहारः, स प्रयोजनमस्येति सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षम् । नन्वेवंभूतमनुमानमप्यत्र सम्भवतीति तदपि सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षं प्राप्नोतीत्याशङ्कापनोदार्थम्—'इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः' इत्याह । देशतो विशदं यत्तत्प्रयोजनं ज्ञानं २० तत्सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षमित्युच्यते नान्येदित्यनेन तत्स्वरूपम्, इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमित्यनेन पुनस्तदुत्पत्तिकारणं प्रकाशयति ।

तत्रैन्द्रियं द्रव्यभावेन्द्रियभेदाद्भेदा । तत्र द्रव्येन्द्रियं गोलकादिपरिणामविशेषपरिणतरूपरसगन्धस्पर्शवत्पुद्गलात्मकम्, पृथिवी-२५ व्यादीनामत्यन्तभिन्नजातीयत्वेन द्रव्यान्तरत्वासिद्धितस्तस्य प्रत्येकं तदारब्धत्वासिद्धेः । द्रव्यान्तरत्वासिद्धिश्च तेषां विषयपरिच्छेदे प्रसाधयिष्यते । भावेन्द्रियं तु लब्धुपयोगात्मकम् । तत्राऽऽवरणक्षयोपशमप्राप्तिकार्यग्रहणशक्तिर्लब्धिः, तदभावे सतोप्यर्थ-

१ स्कारणव्यतिरिक्ते स्पर्शदायामिच्छुष्यं नास्ति यदि । २ पूर्वाजुमानप्रकारेण । ३ लेष्टानिष्टयोरर्थयोः । ४ लोके । ५ अनुमानादि । ६ आचार्यः । ७ इन्द्रियानिन्द्रिययोर्मध्ये । ८ सर्वाङ्गगतत्वं, विद्या, नासा, गोलकपद्मप्रदं, कर्णशङ्कलीति पञ्चसंस्थात्मकम् । ९ सर्वथा । १० चक्षुर्गत्वा ।

प्र० क० मा० २०

स्याप्रकाशनात्, अन्यथातिप्रसङ्गः । उपयोगस्तु रूपादिविषय-
ग्रहणव्यापारः, विषयान्तरासक्ते चेतसि सन्निहितस्यापि विषय-
स्याग्रहणात्तत्सिद्धिः । एवं मनोपि द्वेधा द्रष्टव्यम् ।

ततः “पृथिव्यतेजोवायुभ्यो घ्राणरसनचक्षुःस्पर्शनेन्द्रिय-
५ भावः” [] इति प्रत्याख्यातम्; पृथिव्यादीनामन्योन्यमेका-
न्तेन द्रव्यान्तरत्वासिद्धेः, अन्यथा जलादेर्मुक्ताफलादिपरिणामा-
भावप्रसक्तिरात्मादिवत् । न चैवम्, प्रत्यक्षादिविरोधात् ।

अथ मतम्—पार्थिवं घ्राणं रूपादिषु सन्निहितेषु गन्धस्यैवाभिव्य-
ञ्जकत्वान्नागकर्णिकाविमर्दककरतलवत्; तदप्यसङ्गतम्; हेतोः
१० सूर्यरश्मिभिरुदकसेकेन चानेकान्तात् । इदमेतद् द्वि तैलाभ्यक्तस्यै-
दित्यमरीचिकाभिर्गन्धाभिव्यक्तिर्भूमेस्तदुदकसेकेनेति । ‘अप्यरसनं
रूपादिषु सन्निहितेषु रसस्यैवाभिव्यञ्जकत्वाल्लावत्’ इत्यत्रापि
हेतोर्लवणेन व्यभिचारः, तस्यानाप्यत्वेपि रसाभिव्यञ्जकत्वप्र-
सिद्धेः । ‘चक्षुस्तैजसं रूपादिषु सन्निहितेषु रूपस्यैवाभिव्यञ्जक-
१५ त्वात्प्रदीपवत्’ इत्यत्रापि हेतोर्माणिक्याद्युद्घोतितेनानेकान्तः ।
‘वायव्यं स्पर्शनं रूपादिषु सन्निहितेषु स्पर्शस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्तो-
यंशीतस्पर्शव्यञ्जकवार्यवयविवत्’ इत्यत्रापि कर्पूरादीनां सलिलै-
शीतस्पर्शव्यञ्जकेनानेकान्तः ।

पृथिव्यतेजःस्पर्शाभिव्यञ्जकत्वाच्चास्यै पृथिव्यादिकार्यत्वानु-
२० पङ्को वायुस्पर्शाभिव्यञ्जकत्वाद्वायुकार्यत्ववत् । चक्षुषश्च तेजोरू-
पाभिव्यञ्जकत्वात्तेजःकार्यत्ववत् पृथिव्यप्समवाधिरूपव्यञ्जकत्वा-
त्पृथिव्यप्कार्यत्वप्रसङ्गः । रसनस्य चाप्यरसाभिव्यञ्जकत्वाद्-
प्कार्यत्ववत् पृथिवीरसाभिव्यञ्जकत्वात्पृथिवीकार्यत्वप्रसङ्गः ।

‘नामसं श्रोत्रं रूपादिषु सन्निहितेषु शब्दस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्’
२५ इति चाऽसाम्प्रतम्; शब्दे नभोगुणत्वस्याग्रे प्रतिषेधात् । तत-
श्चेदमप्ययुक्तम्—“शब्दः स्वसमानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण

१ तदभावेऽप्यर्थप्रकटनं चेत् । २ विशाचपरमाण्वादेरपि ग्रहणप्रसङ्गः । ३ विषयं
प्रलभिमुञ्चता । ४ नैवाधिकमतम् । ५ सर्वथा । ६ बादिपदेन चन्द्रकान्तादेव ।
७ पार्थिवत्वाभावात् । ८ नुः । ९ तैजसत्वाभावात् । १० तोयगत । ११ यतः ।
१२ पार्थिवेन । १३ सलिलगत । १४ वायव्याभावात् । १५ स्पर्शनेन्द्रियत्वात् ।
१६ शब्दो विशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते इत्युक्तवान्ने सिद्धसाभ्यन्तरे भविष्यति । न हि
जैनेनापि रूपलक्षणगुणवता ओत्रेण शब्दो न गृह्यते इत्युक्तमन्यते । तद्वयवच्छेदार्थं
समानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते इत्युक्तम् । तथापि स्वसमगतरूपेण समान-
जातीयरूपलक्षणविशेषगुणवतेन्द्रियेण शब्दो गृह्यत इत्युक्तमप्युपमासिद्धसाभ्यन्तरे ।

गृह्यते सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्येकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्, बाह्ये-
केन्द्रियप्रत्यक्षत्वे सत्यनात्मविशेषगुणत्वाद्वा रूपादिवत्” []
इति । ततो नेन्द्रियाणां प्रतिनियतभूतकार्यत्वं व्यवतिष्ठते प्रमा-
णाभावात् । प्रतिनियतेन्द्रिययोग्यपुद्गलारब्धत्वं तु द्रव्येन्द्रि-
याणां प्रतिनियतभावेन्द्रियोपकरणभूतत्वान्यथानुपपत्तेर्घटते इति ५
प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् ।

ननु चेन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तदित्यसाम्प्रतम्, आत्मार्थालो-
कादेरपि तत्कारणतयात्राभिधानार्हत्वात् ; तन्न ; आत्मनः र्समन-
न्तरप्रत्ययस्य वा प्रत्ययान्तरेप्यविशेषात् अत्रानभिधानम् असा-
धारणकारणस्यैव निरूपयितुमभिप्रेतत्वात् । सन्निकर्षस्य चाऽ-१०
व्यापकत्वादसाधकतमत्वाच्चानभिधानम् । अर्थालोकयोस्तदसाधा-
रणकारणत्वादत्राभिधानं तर्हि कर्त्तव्यम् ; इत्यप्यसदः तयोर्ज्ञान-
कारणत्वस्यैवासिद्धेः । तदाह—

नार्थाऽऽलोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ॥ ६ ॥

प्रसिद्धं हि तमसो विज्ञानप्रतिबन्धकत्वेनातत्कारणस्यापि परि-१५
च्छेद्यत्वं । ननु ज्ञानानुत्पत्तिव्यतिरेकेणान्यस्य तमसोऽभावा-

तद्वदुदात्तार्थं स्वेन शब्दलक्षणेन समानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यत इत्युक्तम् ।
साध्याविशेषणसाफल्यनन्तर हेतुविशेषणसाफल्यमुच्यते । इन्द्रियग्राह्यादित्युच्यमाने
घटेनानेकान्तः । घटो हि इन्द्रियग्राह्यो भवति न च स्वसमानजातीयविशेषगुणवते-
न्द्रियेण गृह्यते—घटस्य द्रव्यत्वेन तत्समानजातीयस्य गुणस्याभावात् । तेनानेकान्त-
व्युदासारं नेकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्युक्तम् । न हि घटस्यैकेन्द्रियग्राह्यत्वं स्वर्शनावीन्द्रिये-
णापि ग्रहणाय । एकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्युच्यमाने आत्मनानेकान्तः । आत्मा हि मनो-
लक्षणेकेन्द्रियग्राह्यो भवति, न च समानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते—आत्मनो
द्रव्यत्वेन तत्समानजातीयस्य गुणस्य मनस्यभावात् । तत्परिहारार्थं बाह्येकेन्द्रियग्राह्य-
त्वादित्युक्तम् । तथा च रूपत्वादिनानेकान्तः । रूपत्वादिकं बाह्येकेन्द्रियग्राह्यं भवति, न
च स्वसमानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते—रूपत्वस्य सामान्यभावेन तत्समानजातीय-
गुणस्यैवावसम्भवात् । तत्परिहारार्थं सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्येकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्यु-
क्तम् । न च रूपत्वसामान्यं सामान्यबद्धवति—निस्सामान्यानि सामान्यानीति वचनात् ।

१ न चैकपुद्गलजन्यत्वेनैकादृशत्वं योग्यपुद्गलारब्धत्वात् । २ सहाय । ३ साध्य-
बह्वारिकम् । ४ नादिपदेन सन्निकर्षादेः । ५ प्रत्यक्ष । ६ सूत्रे । ७ कारणरूपस्य ।
८ पूर्वम् । ९ उपादानत्वेनात्मनासदृश । १० परोक्षज्ञाने । ११ सूत्रे । १२ विशेष ।
१३ चक्षुषः प्राप्यकारित्वनिराकरणात् । १४ साध्यबह्वारिकस्य । १५ सूत्रे ।
१६ जेनेः । १७ ज्ञानस्य । १८ कैवल्यम् ।

त्कस्य दृष्टान्ता? इत्यप्यसङ्गतम्; तस्यार्थान्तरभूतस्यालोकसेवात्रै-
वानन्तरं समर्थयिष्यमाणत्वात् । ननु परिच्छेद्यत्वं च स्यात्स-
योस्तत्कारणत्वं च अविरोधात्; इत्यप्यपेशलम्; तत्कारणत्वे
तयोश्चक्षुरादिवत्परिच्छेद्यत्वविरोधात् ।

५ किञ्च, अर्थकार्यतया ज्ञानं प्रत्यक्षतः प्रतीयते, प्रमाणान्तराद्वा?
प्रत्यक्षतश्चेत्किं तैव एव, प्रत्यक्षान्तराद्वा? न तावत्तत एव, अने-
नार्थमात्रस्यैवानुमत्तात् । तदेतत्त्वविशिष्टार्थानुमत्ते वा विवादो
न स्याद्वीलत्वादिवत् । न खलु प्रमाणप्रतिपक्षे वस्तुरूपेऽसौ दृष्टो
विरोधात् । न हि कुम्भकारादेर्घटादिहेतुत्वेनानुमत्ते सोस्ति । तन्न
१० तदेवार्थानुमतेऽर्थकार्यतां प्रतिपद्यते । नापि प्रत्यक्षान्तरम्; तेनाप्य-
र्थमात्रस्यैवानुमत्तात्, अन्यथोक्तदोषानुपपन्नं, ज्ञानान्तरस्यानेना-
दृष्टत्वाच्च । एकैकसमवेतानन्तरं ज्ञानग्राह्यमर्थज्ञानमित्यभ्युपगमेपि
अनेनार्थाग्रहणम् । न चोभयविषयं ज्ञानमस्ति यतस्तत्प्रतिपत्तिः ।

अथ प्रमाणान्तरात्सर्वार्थकार्यता प्रतीयते; तर्हि ज्ञानविषयम्,
१५ अर्थविषयम्, उभयविषयं वा स्यात्? तत्राद्यविकल्पद्वये तयोः
कार्यकारणभावाप्रतीतिः एकैकविषयज्ञानग्राह्यत्वात्, कुम्भकार-
घटयोरन्यतरविषयज्ञानग्राह्यत्वे तद्भावाप्रतीतिवत् । नाप्युभय-
विषयज्ञानात्तत्प्रतीतिः; तद्विषयज्ञानस्यास्मादृशं भवतीत्यभ्युपग-
मात् । न खलु 'ज्ञाने प्रवृत्तं ज्ञानमर्थेपि प्रवर्तते' इत्येव प्रवृत्तं
२० ज्ञाने' इत्यभ्युपगमो भवतः । अर्थभ्युपगमे वा प्रमाणान्तरत्वप्रस-
किरिति व्याप्तिज्ञानविचारे विचारविष्यते ।

अथानुमानात्तत्कार्यतावसार्यः; तथाहि-अर्थालोककार्यं विज्ञानं
तदन्वयव्यतिरेकानुविधानात्, यद्यस्यान्वयव्यतिरेकावर्तुविधत्ते
तत्तस्य कार्यम् यथाग्नेर्धूमः, अन्वयव्यतिरेकावर्तुविधत्ते चार्था-
२५ लोकयोर्ज्ञानम् इति । न चात्रासिद्धो हेतुस्तत्सद्भावे सत्येवास्म-
भावादभावे चाभावात् । इत्याशङ्क्याह—

१ अन्वे । २ तत्र ज्ञाने । ३ घटं विषयीकरोति यत्प्रत्यक्षम् । ४ ज्ञानं ।
५ आद्यप्रत्यक्षम् । ६ सत्यम् । ७ जानाति । ८ विचारलक्षणम् । ९ अर्थज्ञानवर्तु-
मवशेषप्रत्यक्षान्तरेण । १० प्रथमप्रत्यक्षज्ञानस्य । ११ द्वितीयज्ञानापेक्षया । १२ द्वितीय-
ज्ञानेन । १३ आत्मलक्षणम् । १४ द्वितीयम् । १५ परेण । १६ अर्थकार्यतया ज्ञानस्य ।
१७ अपि तु न कुतोपि । १८ ज्ञानस्य । १९ वस्तुः । २० अर्थज्ञानयोः ।
२१ प्रमाणान्तरात् । २२ ज्ञानस्यार्थकार्यतायाः । २३ किञ्चिज्ज्ञानम् । २४ नैयायि-
केन । २५ उभयविषयज्ञानस्य । २६ उभयविषयज्ञानस्य पञ्चमस्य । २७ निश्चयः ।
२८ अनुकरोति ।

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुक- ज्ञानवन्नक्तञ्चरज्ञानवच्च ॥ ७ ॥

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च, न केवलं परिच्छेद्यत्वा-
च्चयोस्तदकारणताऽपि तु ज्ञानस्य तदन्वयव्यतिरेकानुविधाना-
भावाच्च । नियमेन हि यद्यस्यान्वयव्यतिरेकावनुकरोति तत्तस्य ५
कार्यम् यथाग्नेर्धूमः । न चानयोरन्वयव्यतिरेकौ ज्ञानेनानु-
क्रियेते ।

अत्रोभयप्रसिद्धदृष्टान्तमाह-केशोण्डुकैज्ञानवन्नक्तञ्चरज्ञानवच्च ।
कामलाद्युपहतचक्षुषो हि न केशोण्डुकज्ञानेयः कारणत्वेन
व्याप्नियते । तत्र हि केशोण्डुकस्य व्यापारः, नयनपद्मादेर्वा, तत्के- १०
शानां वा, कामलादेर्वा गत्यन्तराभावात् ? न तावदाद्यविकल्पः,
न खलु तज्ज्ञानं केशोण्डुकलक्षणैः सत्येव भवति अमाभार्वप्र-
सङ्गात् । नयनपद्मादेस्तत्कारणत्वे तस्यैव प्रतिभासप्रसङ्गात्,
गगनतलावलम्बितया पुरःस्थतया केशोण्डुकाकारतया च प्रति-
भासो न स्यात् । न ह्यन्यदन्यत्रान्यथा प्रत्येतुं शक्यम् । अथ नय- १५
नकेशा एव तत्र तथाऽसन्तोपि प्रतिभासन्ते, तर्हि तद्रहितस्य
कामलिनोपि तत्प्रतिभासामावः स्यात् ।

किञ्च, असौ तद्देशे एव प्रतिभासो भवेन्न पुनर्देशान्तरे । न
खलु स्थाणुनिवन्धना पुरुषभ्रान्तिस्तद्देशादन्यत्र दृष्टा । कथं च
तद्देशतो तदाकारता चाऽसती तज्ज्ञानं जनयेद्यतो ग्राह्या स्यात् । २०
अथ भ्रान्तिचशार्त्तकेशाएव तत्र तर्था तज्ज्ञानं जनयन्ति; अस्मा-
कमपि तर्हि 'चक्षुर्मनसी रूपज्ञानमुत्पादयेते' इति समानम् ।
यथैव ह्यन्यविषयजनितं ज्ञानमन्यविषयस्य ग्राहकं तथान्यैकारण-
जनितमपि स्यात् ।

अथ कामलाद्य एव तज्ज्ञानस्य हेतवः, तेभ्यश्चोत्पन्नं तदसदेव २५
केशादिकं प्रतिपद्यते; तर्हि निर्मललोचनमनोमात्रकारणादुत्पद्य-

१ अर्थालोक । २ अर्थालोकयोर्ज्ञानं प्रत्यकारणत्वे साध्ये । ३ अर्थाभावे (कोपेष्-
डुकशब्द एव श्रूयते) । ४ आलोकभावे । ५ भवति चेच्छर्हि । ६ केशोण्डुकज्ञानस्य ।
७ नरस्य । ८ केशोण्डुक । ९ नयनदेशे । १० नयनकेशानां । ११ गगनतले ।
१२ गगनतले । १३ नयनकेशेषु । १४ केशोण्डुक । १५ केशोण्डुक । १६ नयन ।
१७ गगनतले । १८ केशोण्डुकतया । १९ केशोण्डुक । २० नयनकेशेभ्यस्तत्कारण-
तदन्यकेशोण्डुकस्य ग्राहकं चेत् । २१ केशोण्डुकादभ्ये नयनकेशाः । २२ नयनकेशे-
भ्यस्तत्कारणतदन्यकेशोण्डुकं तस्य । २३ अर्थादभ्ये शक्तिव्यवसयी । २४ केशोण्डुक ।

मानं ज्ञानं सदेव वस्तु विषयीकरोतीति किञ्चेष्ट्यते? तत्कथमर्थ-
कार्यता ज्ञानस्य अनेन व्यभिचारात् संशयज्ञानेन च?

न हि तदर्थे सत्येव भवति; अध्रान्तत्वानुपपत्तात्, तद्विष-
यभूतस्य स्थाणुपुरुषलक्षणार्थद्वयस्यैकत्र सद्भावासम्भवाच्च ।
५ सद्भावे चारेको न स्यात् । अथोच्यते—“सामान्यप्रत्यक्षादिशेषा-
प्रत्यक्षादुभयविशेषस्मृतेश्च संशयः” [वैशे० सू० २।२।१७]
विपर्ययः पुनस्तद्विपरीतविशेषस्मृतेः इत्यर्थो देवानयोर्भावः, तद-
प्युक्तिमात्रम्; तयोः खलु सामान्यं वा हेतुः स्यात्, विशेषो
वा, द्वयं वा? न तावत्सामान्यम्; तत्र संशयाद्यभावात्
१० ‘सामान्यप्रत्यक्षात्’ इत्यभिधानात्, प्रत्यक्षे च संशयादि-
विरोधात् । विशेषविषयं च संशयादिज्ञानम् । न चास्य सामान्यं
जनकं शुज्यते । न ह्यन्यविषयं ज्ञानमन्येन जन्यते, रूप-
ज्ञानस्य रसादुत्पत्तिप्रसङ्गात् । यथा च सामान्यादुपजायमानं
तैदसतो विशेषस्य वेदकं तथेन्द्रियमनोभ्यां जायमानं सतः
१५ सामान्यादेरपीति व्यर्थार्थस्य तद्वेतुत्वकल्पना । सामान्यार्थजत्वे
चास्यै अर्थानैर्धजत्वप्रतिज्ञाविरोधः, कामलिनश्च केशोण्डुकादि-
ज्ञानानुत्पत्तिः, न खलु तत्र केशोण्डुकादिसमानधर्मा धर्मा विद्यते
यद्दर्शनात्तस्यात् । तस्मात्स्य सामान्यं हेतुः ।

नापि विशेषस्तत्र तदभावात् । न खलु पुरोदेशे स्थाणुपुरुष-
२० लक्षणो विशेषोस्ति तैज्ज्ञानस्याध्रान्तत्वप्रसङ्गात् । स्थाणुरस्तीति
चेत्; कथं ततः किं पुरुषः पुरुष एवेति पुरुषांशावसायः?
अन्यथान्यैत्रापि ज्ञानैर्यस्य कारणत्वकल्पना व्यर्था । तत्र विशे-
षोपि तैद्वेतुः । नाप्युभयम्; उभयपक्षोक्तदोषानुपपत्तात् । ततः
संशयादिज्ञानस्यार्थाभावेऽप्युपलम्भात्कथं तदभावे ज्ञानाभावसि-
२५ द्धिर्यतोर्थकार्यतास्य स्यात्?

- १ मभता नैयायिकेन । २ केशोण्डुकज्ञानेन । ३ अन्यथा । ४ संशयज्ञानस्य ।
५ संशयः । ६ परेण । ७ कर्षतासामान्यस्य ग्राहकं प्रत्यक्षमुपलम्भस्तत्साद ।
८ स्थाणुपुरुषत्वलक्षणो विशेषस्तत्सादप्रत्यक्षमनुपलम्भस्तत्साद । ९ विद्यमानविशे-
षात् । १० तस्माद्विद्यमानविशेषात्सामान्यादिलक्षणात् । ११ ज्ञानम् । १२ सामान्य-
प्रत्यक्षादिशेषाप्रत्यक्षादिति सामग्रीतः सञ्चतोत्पत्तौ दूषणान्तरमाह । १३ संशयस्य ।
१४ स्थाणुपुरुषलक्षणयोरश्रयोरेन्यतर एकस्तु विद्यमानोर्धोऽपरोऽविद्यमानोऽनर्कः ।
१५ स्थाणुस्थानीयः । १६ आकाशे । १७ शुक्तिकास्थानीयः । १८ संशयादिः ।
१९ पुरोदेशे । २० अन्यथा । २१ स्थाणवविद्यमानस्य पुरुषांशस्य व्यवसायो यदि ।
२२ इन्द्रियमनोभ्यामुत्पद्ये सलज्ञानेति । २३ संशयादिहेतुः ।

ननु भ्रान्तं तत्तेनापलभ्यते, न चान्यस्य व्यभिचारेण्यस्य व्यभिचारोऽतिप्रसङ्गात्; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; स्वपरग्रहणलक्षणं हि ज्ञानम्, तत्र च यथा सत्याभिमतज्ञानं स्वपरग्राहकं तथा केशोण्डुकादिज्ञानमपि। एतावन्तु विशेषः—किञ्चित्सत्परं गृह्णाति संवादसङ्गावात्किञ्चिदसद्विसंवादात्, न चैतावता ज्ञानान्तर-^५ त्वेनानर्थोऽन्यत्वं तार्थ्या व्यभिचाराभावो वा। अन्यथा 'प्रयत्नान्तरीयकः शब्दः कृतकत्वाद् घटादिवत्' इत्यादेरप्यप्रयत्नान्तरीयकैर्विबुद्धनकुसुमादिभिर्न व्यभिचारः, तात्वादिदण्डादिजनिताच्छब्दघटादेस्तद्विपरीतस्य विबुद्धारेण्यत्वात्। न चान्यस्य व्यभिचारेऽन्यस्यापि व्यभिचारोऽतिप्रसङ्गात्। तथाप्यत्र व्यभि-^{१०} चारे प्रकृतेरपि सोऽस्तु विशेषोभावात्।

किञ्च, 'कारणमेव परिच्छेद्यम्' इत्यभ्युपगमे योगिज्ञानात्प्राज्ञालभाविन एवार्थस्यानेन परिच्छिन्तिः स्यात् तस्यैव तत्कारणत्वात्; न पुनस्तत्कालभाविनोऽर्भाविनो वा, तस्यास्तत्कारणत्वात्। लब्धात्मलभं हि किञ्चित्कस्यचित्कारणं नान्यथातिप्रस-^{१५} ङ्गात्। तर्थाप्यनेन तत्परिच्छेदेऽन्यज्ञानेनाप्यतत्कारणस्याप्यर्थस्य परिच्छेदः स्यात्। तथा चेदमयुक्तम्—“अर्थसहकारितयार्थवत्प्रमाणम्” [] इति। तदपरिच्छेदे चार्थसर्वज्ञतालुपङ्गः। ज्ञानान्तरेण परिच्छेदे तस्यापि ज्ञानान्तरस्य समसमयभाविनोर्थस्यापरिच्छेदकत्वात्कथं सर्वज्ञतेति चिन्त्यम्। ^{२०}

क्षणिकत्वे चार्थस्य ज्ञानकालेऽसत्त्वात्कथं तेन ग्रहणम्? तदाकारता चास्य प्रौढप्रत्युक्ता। सत्या वा तस्या एव ग्रहणात्परमार्थतोर्थस्याग्रहणात्तदेवाऽसर्वज्ञत्वम्। न खलु चैत्रसदृशे मैत्रे दृष्टे परमार्थतश्चैत्रो दृष्टो भवत्यन्यत्रोपचारात्। साध्वी चोपचारेण सर्वज्ञत्वकल्पना सुगतस्य सर्वस्य तथाप्राप्तेः,^{२५} एकस्य कस्यचित्सतो वेदने तत्सदृशस्य सत्त्वेन सर्वस्य वेद-

१ कारणेन। २ गोपालवटिकाभूमस्य पावकव्यभिचारे भूषादिभूमस्यापि तद्व्यभिचारः स्यात्। ३ भ्रान्ताभ्रान्तज्ञानयोः। ४ संशयविपर्ययाभ्याम्। ५ ज्ञानसाध्याभावे आनो व्यभिचारस्यसाभावो न च। ६ एतावतात्वत्वं व्यभिचाराभावो वा स्यादपि तर्हि। ७ अपेक्षितपरव्यापारो हि भावः कृतक उच्यते। ८ तात्वाद्यनित्यस्य, मेधाधिकरणकस्य। ९ भिन्नजातीयत्वात्। १० प्रयत्नान्तरीयकत्वं विना भावे। ११ अन्यत्वेऽपि। १२ कृतकत्वादिलस्य हेतोः। १३ ज्ञाने। १४ अन्यत्वस्य। १५ ईश्वरज्ञानाद्वा। १६ भविष्यतोर्वस्य। १७ स्वरविषाणमपि कस्यचित्कारणं स्यादित्यतिप्रसङ्गः। १८ वर्तमानस्य भाविनो दार्ढ्यस्य ज्ञानाकारणत्वेऽपि। १९ योगिनः। २० भाविनोर्वस्य। २१ प्रथमपरिच्छेदे। २२ प्राणिमात्रस्य। २३ सक्षितस्य।

नसम्भवात् । सत्त्वेन सर्वस्य सर्वेण वेदनमन्यैस्तु धर्मैरवेदन-
मिति चेत्, तर्हि [“ये”] कस्यार्थस्वभावस्य” [प्रमाणवा० १।४४]
इत्यादिग्रन्थविरोधः । सत्त्वेनापि तदग्रहणे न सादृश्यं ग्रहण-
कारणमिति कथं सुगतस्योपचारेणापि बहिः प्रमेयग्रहणम्?

५ कथं चैवंवादिनो भावस्योत्पद्यमानता प्रतीयते-सा ह्युत्पद्यमाना-
र्थसमसमयभाविना ज्ञानेन प्रतीयते, पूर्वकालभाविना, उत्तरका-
लभाविना वा? न तावत्समसमयभाविना, तस्याऽतत्कार्यत्वात् ।
नापि पूर्वकालभाविना, तत्काले तस्याः सत्त्वाभावात् । न चासती
प्रत्येतुं शक्या, अकारणत्वात् । तदा खलुत्पत्त्यमानतार्थस्य न
१० तत्पद्यमानता । नाप्युत्तरकालभाविना, तदा विनष्टत्वात्तस्याः ।
न हि तदोत्पद्यमानतार्थस्य किं तत्पद्यता ।

नित् एतान्नपक्षे सिद्धमकारणस्याप्यर्थस्थानेन परिच्छेद्यत्वम् ।
५ दन्येनापि स्यात् । अथार्थाकार्यत्वे तद्वन्नित्यत्वाच्चिखिलाय-
ग्राहित्वानुपपन्नैः, न; चक्षुरादिकार्यत्वेनानित्यत्वात् । प्रतिनियत-
१५ शक्तित्वाच्च प्रतिनियतार्थग्राहित्वम् । न खलु यैकस्य शक्तिः
सान्ध्यस्यापि, अन्यथा सर्वस्य सर्वैककर्तृत्वानुपपन्नो महेश्वरवत् ।
यथैव हीश्वरः कार्यग्रामेणानुपक्रियमाणोऽप्यविशेषेण तं करोति
तथा कुम्भकारादिरपि कुर्यात् । न हि सोऽपि तेनोपक्रियते येन
‘उपकारकमेव कुर्यान्नान्यम्’ इति नियमः स्यात् । शक्तिप्रतिनि-
२० यमासैदविशेषेपि कश्चित्कर्तृत्वचित्कर्तृत्वम्युपगमो ग्राहकत्वपक्षेपि
समानैः ।

ननु यद्यर्थाभावेपि ज्ञानोत्पत्तिः कुतो न नीलाद्यर्थरहिते प्रदेशे
तद्भवति? भवत्येव नयनमनसोः प्रणिधाने । कथं न नीलाद्यर्थग्र-
हणम्? तत्र तदभावात् । कथं ‘तदुत्पन्नम्’ इत्यवगमः? न हि

१ पुरुषेण । २ नीलगीतादिलक्षणैः । ३ नीललक्षणसार्वस्य प्रत्यक्षतः प्रतीतिः
कोन्यो भावो यः प्रमाणान्तरेणैषते इति ग्रन्थस्य विरोधः । ४ प्रतिनिमित्तस्य सादृश्यस्य
ग्रहणं स्यात् त्वर्थस्य । ५ कारणमेव परिच्छेद्यमिति वादिनः । ६ असदादिज्ञानेन ।
७ असदादिज्ञानस्य । न-इति चेन्नैतत्त्वर्थः । ८ असदादिज्ञानस्य । ९ ईश्वरज्ञानस्य ।
१० असदादिज्ञानस्य । ११ एकस्य वा शक्तिः सान्ध्यस्य यदि । १२ चरस्य ।
१३ सर्वकार्याणाम् । १४ ग्रामः समूहः । १५ अनुपकारकार्यकारणत्वस्याविशेषेपि ।
१६ षट्पदादिषु मध्ये । १७ सर्वकार्यताऽभावेपि शान्तं कल्पनिर्गोचरस्य ग्राहकं
स्यादिति समानता । १८ पुरोदेशे ।

१ ‘यत्प्रसाधैस्त्वभावस्य प्रत्यक्षस्य सतः स्वयम् ।

कोऽन्यो न जागो दृष्टः साधः प्रमाणैः परीक्ष्यते ॥’ [प्रमाणवा० १।४४]

विषयमपरिच्छिन्दत् ज्ञानम् 'अस्ति' इति युक्तम्, अन्यथा सर्वत्र सर्वदा सर्वस्य तदनिवार्यं भवेदित्यप्यसारम्; तत्रोपनीतस्य नीलादेस्तैव ग्रहणोपलम्भात्। तदैव तदन्यज्ज्ञात(न)मिति चेत्किमिदानीं प्रतिविषयं प्रकाशकस्य भेदः? तथाभ्युपगमे प्रदीपादेरपि प्रतिविषयमन्यत्वप्रसङ्गः। प्रत्यभिज्ञानमुर्भयत्र समानम्। ५

नन्वर्थाभावेऽपि ज्ञानसङ्गादेऽतीतानागते व्यवहिते च तत्स्यात्सन्निहितवत्। ननु (ननु) तत्र तत्स्यादिति कोर्यः? किं तत्रोत्पद्येत, तद्गाहकं वा भवेदिति? न तावत्तत्रोत्पद्येत; आत्मनि तदुत्पत्त्यभ्युपगमात्। नापि तद्गाहकं भवेत्; अयोग्यत्वात्। न खलु तदुत्पन्नमपि सर्वं वेत्ति; योग्यस्यैव वेदनात्। कारणेऽपि चैतच्छब्दोऽत्र समानम्। तत्रापि हि कारणं कार्येणानुपक्रियमाणं यावत्प्रतिनियतं कार्यमुत्पादयति तावत्सर्वं कस्मान्नोत्पादयतीति शब्दे योग्यतैव शरणम्। ततो ज्ञानस्यार्थान्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात्कार्यं तत्कार्यता यतः "अर्थवत्प्रमाणम्" [न्यायमा० पृ० १] इत्यत्र भाष्ये "प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरमव्यपदेश्याऽव्यभिचारिव्यवसायात्मके ज्ञाने कर्तव्येऽर्थसहकारितयार्थवत्प्रमाणम्" [] इति व्याख्या शोभेत? तच्चार्थकार्यता विज्ञानस्य।

नाप्यालोककार्यता; अज्ञानादिसंस्कृतचक्षुषां नक्तञ्चराणां चालोकामावेऽपि ज्ञानोत्पत्तिप्रतीतिः। अथालोकस्याकारणत्वेऽन्धकारावस्थायामप्यसदादीनां ज्ञानोत्पत्तिः स्यात्। न चैवम्; तत- २० स्तद्भावे भावात्तदभावे चाभावात्तत्कार्यताऽस्य। अन्यथा धूमो-

१ अर्थे। २ पुरोदेशे। ३ पूर्वज्ञानेनैव। ४ अन्यज्ज्ञानामीलसिन्नवसरे। ५ ज्ञानस्य। ६ य एवार्थं प्रदीपो घटस्य प्रकाशकः स एवार्थं घटस्य प्रकाशको यथा तथा य एव नीलज्ञानपरिणत आत्मा स एवान्यज्ञानपरिणतः। ७ कारणचोद्यपक्षेति। ८ कुलकादिरक्षणम्। ९ घटादिरक्षणेन। १० प्रमाणं भवति। कीदृशम्? अर्थवदर्थो विद्यते यस्य तत्। अर्थवत्प्रमाणमित्युक्ते ज्ञानमपि प्रमाणं सात्त्विकद्वाराधर्मवत्सहकारितयेति। न च ज्ञानमर्थसहकारितयाऽर्थवत् किन्तु अर्थविषयतयाऽऽत्मवत् अर्थसहकारितयाऽर्थवत्प्रमाणमित्युच्यमाने मनोऽपि प्रमाणं स्यात्। कथम्? सुखोत्पत्तौ स्रग्मिसादिसहकारितयाऽर्थवत्प्रमाणमिति मनः। इति तद्व्यवच्छेदार्थमव्यपदेश्यादिविशेषणविशिष्टे ज्ञाने कर्तव्ये इत्युक्तम्। एवं चैवप्रमाता प्रमेयं च प्रमाणं स्यात्। कथम्? प्राशक्तविशेषणे ज्ञाने कर्तव्ये स्वप्नाधर्मसहकारितया अर्थवान्प्रमाता भवति। इति प्राशक्तविशेषणे ज्ञाने कर्तव्ये खण्डमुण्डादिव्यक्तिलक्षणाधर्मसहकारितया अर्थवदिति प्रमेयं गोत्यादि सामान्यरूपम्। इति तत्परिहारार्थं प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरमित्युक्तम्। ११ अन्यव्यतिरेकस्तद्भावेऽपि आलोकज्ञानयोः कार्यकारणभावो नास्ति यदि।

प्यभिज्ञान्यो न स्यात्, तद्व्यतिरेकेणान्यस्य तद्व्यवस्थापकस्याभा-
वादिति चेत्, किं पुनरन्धकारवस्थायां ज्ञानं नास्ति? तथा चेत्;
कथमन्धकारप्रतीतिः? तदन्तरेणापि प्रतीतावन्यत्रापि ज्ञानकल्प-
नानर्थक्यम् । 'प्रतीयते, ज्ञानं नास्ति' इति च स्ववचनविरोधः,
५ प्रतीतेरेव ज्ञानत्वात् ।

अथान्धकाराख्यो विषय एव नास्ति यो ज्ञानेन परिच्छिद्येत,
अन्धकारव्यवहारस्तु लोके ज्ञानानुत्पत्तिमात्र इत्युच्यते; यद्येव-
मालोकस्याप्यभावः स्याद्विशदज्ञानव्यतिरेकेणान्यस्यास्याप्यप्र-
तीतिः । तद्व्यवहारस्तु लोके विशदज्ञानोत्पत्तिमात्रः । ननु ज्ञानस्य
१० वैशद्यमेव तदभावे कथम्? इत्यप्यहोचोदम्, नक्तञ्चरादीनां
रूपेऽसदादीनां रसादौ च तदभावेपि तस्य वैशद्योपलब्धेः ।

आलोकविषयस्य च ज्ञानस्यार्त एवालोकाद्वैशद्यम्, तदन्तराद्वा,
अन्यतो वा कुतश्चित्? यद्यन्यतः, न तर्ह्यालोककृतं वैशद्यम् । न हि
यद्यदभावेपि भवति तत्तत्कृतमतिप्रसङ्गात् । अथालोकान्तरात्;
१५ तद्विषयस्यापि तस्यालोकान्तरार्तदित्यनवस्था । न चालोकान्तर-
मस्ति । अथास्मादेवालोकात्; स्वविषयादेव तर्हि वैशद्यम्, तथा
घटादिरूपादप्यस्तु । तस्याभासुरत्वाच्चातस्तत्; इत्यप्ययुक्तम्; व-
हलान्धकारनिशीथिन्यां नक्तञ्चरादीनां तत्र वैशद्याभावप्रसङ्गात् ।
'विशदं प्रत्यक्षम्' इत्यत्र चोक्तं वैशद्यकारणम् । यद्येवं प्रदीपाद्यु-
२० पादानमनर्थकं तदन्तरेणापि ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्गात्, नाऽनर्थकम्,
आवरणोपनयनद्वारेण विषये ग्राह्यतालक्षणस्य विशेषस्य इन्द्रिय-
मनसोर्वा तज्ज्ञानजनकलक्षणस्यातोऽज्ञानादेरिवोत्पत्तेः । न चैतौ-
वता तस्य तत्कारणता; काण्डपटाद्यावरणापनेतुर्हस्तादेरपि
तत्त्वप्रसङ्गात् । ततो यथा ज्ञानानुत्पत्तिव्यतिरेकेण नान्यत्तमः
२५ तर्ह्यो विशदज्ञानोत्पत्तिव्यतिरेकेणालोकोप्यन्यो न स्यात् ।

ननु 'अत्र प्रदेशे बहल आलोकोऽत्र च मन्दः' इति लोकव्य-
वहारादन्यैः सोस्तीति चेत्, तर्हि 'गुहागङ्गरादौ बहलं तमोन्यत्र

- १ जन्मव्यतिरेकव्यतिरेकेण । २ कार्यकारणभावव्यवस्थापकस्य । ३ अन्धकारस्य ।
४ घटादिविषये । ५ अर्जः । ६ परेण भवता । ७ ज्ञानानुत्पत्तिमात्रान्धकारप्रकारेण ।
८ प्रकृतज्ञानविषयात् । ९ खरागावेपि नायमानो भूमः खरहेतुकोन्यथा स्यात् ।
१० वैशद्यम् । ११ प्रथमालोकादेव । १२ विशानस्य । १३ यदादिज्ञानवैशद्यम्,
तत्तत् किमालोकपरिकल्पनेन । १४ आवरणप्रसङ्गः । १५ तमः । १६ सप्तमीभिः ।
१७ प्रदीपादिना मनोलोचनस्यावैश्वर्यं च स्वविशेषजननेति । १८ वैशद्यकारणत्वं ।
१९ जैनमते । २० विशदज्ञानोत्पत्तेः सकाशात् ।

मन्दम्' इति लोकव्यवहारः किं काकैर्मक्षितः ? अत्रास्याऽप्रमाण-
त्वेऽन्यत्र कः समाश्वासः ? ननु बहिर्देशादागत्य गृहान्तःप्रविष्टस्य
सत्यप्यालोके तमःप्रतीतेर्न पारमार्थिकं तत्, न चालोकतमसो-
र्विद्वद्योरैकत्रावस्थानम्, ततो ज्ञानानुत्पत्तिमात्रमेव तदिति
चेत्, तर्हि नक्तञ्चरादीनामेव (वं) विचरादौ प्रदीपाद्यालोकाभावेऽपि
तत्प्रतीतेः सोऽपि पारमार्थिको न स्यात् । न चैकत्र तमोऽभावेऽपि
तत्प्रतीतेः सर्वत्र तदभावो युक्तः, अन्यथाऽर्थाभावेऽपि क्वचित्प्र-
तीतेः सर्वत्र तदभावः स्यात् । तस्मादालोकवत्तमोऽपि प्रतीतिसि-
द्धम् । तत्र चालोकाभावेऽपि ज्ञानोत्पत्तिप्रतीतेः । न च तत्प्रति-
तर्क्य कारणता । तच्चार्थालोकयोर्ज्ञानं प्रति कारणत्वम् । १०

एवं तर्हि तत्तयोः प्रकाशकमपि न स्यादित्याह—

अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकम् ॥ ८ ॥

ताभ्यामर्थालोकाभ्यामजन्यमपि तयोः प्रकाशकम् ।

अत्रैवार्थं प्रदीपवदित्युभयप्रसिद्धं दृष्टान्तमाह—

प्रदीपवत् ॥ ९ ॥

१५

न खलु प्रकाश्यो घटादिः स्वप्रकाशकं प्रदीपं जनयति, स्वका-
रणकलापादेवास्त्युत्पत्तेः । 'प्रकाश्याभावे प्रकाशकस्य प्रकाशक-
त्वायोगात्स तस्य जनक एव' इत्यभ्युपगमे प्रकाशकस्याभावे
प्रकाश्यस्यापि प्रकाश्यत्वाघटनात् सोऽपि तस्य जनकोऽस्तु ।
तथा चेतरेतराभ्यः—प्रकाश्यानुत्पत्तौ प्रकाशकानुत्पत्तेः, तदनु-
त्पत्तौ च प्रकाश्यानुत्पत्तेरिति । स्वकारणकलापादुत्पन्नयोः प्रदी-
पघटयोरन्योन्यापेक्षया प्रकाश्यप्रकाशकत्वधर्मव्यवस्थाया एव
प्रसिद्धेनेतरेतराश्रयावकाश इत्यभ्युपगमे ज्ञानार्थयोरपि स्वसाम-
ग्रीविशेषवशादुत्पन्नयोः परस्परापेक्षया ग्राह्यग्राहकत्वधर्मव्यव-
स्थाऽऽस्थीयताम् । कृतं प्रतीत्यपलापेन । २५

ननु चाजनकस्याप्यर्थस्य ज्ञानेनावगतौ निखिलार्थावगतिप्रस-
ङ्गात्प्रतिकर्मव्यवस्था न स्यात् । 'यद्धि यतो ज्ञानमुत्पद्यते तत्तस्यैव
ग्राहकं नान्यस्य' इत्यस्यार्थजन्यत्वे सत्येव सा स्यादिति वदन्तं
प्रत्याह—

१ नमसि । २ नरस्य । ३ तमसोऽभावेऽपि तमःप्रतीतिप्रकारेण । ४ एकत्राभावे
मन्त्राभावो यदि । ५ तमसि । ६ तमसः । ७ अर्थालोकयोर्ज्ञानं प्रत्यकारणत्व-
प्रकारेण । ८ स्वरूप । ९ अभ्युपगम्यताम् । १० अलमिलार्थः । ११ प्रतिनियत-
विषयव्यवस्था । १२ अर्थात् ।

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रति-
नियतमर्थं व्यवस्थापयति ॥ १० ॥

तथा हि-यदर्थप्रकाशकं तत्स्वात्मन्यपेतप्रतिबन्धम् यथा प्रदी-
पादि, अर्थप्रकाशकं च ज्ञानमिति । प्रतिनियतस्वावरणक्षयो-
पशमश्च ज्ञानस्य प्रतिनियतार्थोपलब्धेरेव प्रसिद्धः । न चान्यो-
न्याश्रयः, अस्याः प्रतीतिसिद्धत्वात् । तल्लक्षणयोग्यता च शक्ति-
रेव । सैव ज्ञानस्य प्रतिनियतार्थव्यवस्थायामङ्गं नार्थोत्पत्त्यादिः,
तस्य निषिद्धत्वादन्त्यग्रादर्शनाच्च । न खलु प्रदीपः प्रकाशयार्थैर्जन्य-
स्तेषां प्रकाशको दृष्टः ।

१० किञ्च, प्रदीपोपि प्रकाशयार्थाऽजन्यो यावत्काण्डपटाद्यनावृत-
मेवार्थं प्रकाशयति तावत्तदावृतमपि किञ्च प्रकाशयेदिति बोधे
भवतोप्यतो योग्यतातो न किञ्चिदुत्तरम् ।

कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिनां व्यभि-
चारः ॥ ११ ॥

- १५ नहीन्द्रियमदृष्टादिकं वा विज्ञानकारणमप्यनेन परिच्छेद्यते । न
ब्रूमः-कारणं परिच्छेद्यमेव किन्तु 'कारणमेव परिच्छेद्यम्' इत्य-
वधारयामः; तन्न; योगिविज्ञानस्य व्याप्तिज्ञानस्य चाशेषार्थग्राहिणो-
ऽभावप्रसङ्गात् । न हि विनष्टानुत्पन्नाः समसमयभाविनो वार्था-
स्तस्य कारणमित्युक्तम् । केशोण्डुकादिज्ञानस्य चाजनकार्यग्राहि-
२० त्वाभावप्रसङ्गः । कथं च कारणत्वाविशेषेपीन्द्रियादेरग्रहणम् ?
अयोग्यत्वाच्चेत्, योग्यतैव तर्हि प्रतिकर्मव्यवस्थाकारिणी, अल-
मन्यैकरूपनया । स्वाकारार्पकत्वाभावाच्चेन्न; ज्ञाने स्वाकारार्पकत्व-
स्याप्यपास्तत्वात् । कथं च कारणत्वाविशेषेपि किञ्चित्स्वाकारार्पकं
किञ्चित्तेति प्रतिनियमो योग्यतां विना सिध्येत् ? कथं च सकलं
२५ विज्ञानं सकलार्थकार्यं न स्यात् ? 'प्रतिनियतशक्तित्वाद्भावानाम्'
इत्युत्तरं ग्राह्यग्राहकभेदेपि समानम् ।

१ ज्ञानं कर्तुं । २ ज्ञानस्यापेतप्रतिबन्धत्वं कारणमर्थप्रकाशे चेत्तर्हि सकलार्थप्रकाशकं
किमिति न स्यादित्युक्ते आह । ३ जादिपदेन तादृश्यादिः । ४ प्रकाशके प्रदीपादौ ।
५ तदुत्पत्त्यादेः । ६ यमी हेतुश्च । ७ साम्यम् । ८ षटादिवदिति दृष्टान्तः ।
९ इन्द्रियादिना । १० ज्ञानेन । ११ कथं युगताः । १२ यत्सत्तत्त्वं क्षणिकमिति ।
१३ उत्पत्त्यादि । १४ इन्द्रियादेः । १५ सप्त षटादिवस्तुनः । १६ साम्यलक्ष-
णादर्थानुत्पत्त्यमानं ज्ञानं सम्मस्य ग्राहकं यथा तथा निश्चेषार्थग्राहकं कुतो न
स्यादित्युत्तरं प्रतिनियतशक्तित्वाद्भावानामित्यत्रापि समानम् । १७ सामस्येन ।

अथेदानीं मुख्यप्रत्यक्षप्ररूपणस्यावसरप्राप्तत्वात् तदुत्पत्तिका-
रणस्वरूपप्ररूपणायाह—

सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमऽतीन्द्रि- यमशेषतो मुख्यम् ॥ १२ ॥

‘विशदं प्रत्यक्षम्’ इत्यनुवर्त्तते । तत्राशेषतो विशदमतीन्द्रियं ५
यद्विज्ञानं तन्मुख्यं प्रत्यक्षम् । किंविशिष्टं तत् ? सामग्रीविशेषवि-
श्लेषिताखिलावरणम् । ज्ञानावरणादिप्रतिपक्षभूता हीहै सम्यग्द-
र्शनादिलक्षणान्तरङ्गा बहिरङ्गानुभवौदिलक्षणा सामग्री गृह्यते,
तस्या विशेषोऽविकलत्वम्, तेन विश्लेषितं क्षयोपशमक्षयरूप-
तया विघटितमखिलमवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानसम्बन्ध्यावरणम् १०
अखिलं निश्शेषं वाऽऽवरणं यस्यावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानत्रयस्य
तत्तथोक्तम् ।

अत्र च प्रयोगैः—यद्यत्र स्पष्टत्वे सत्यवितर्कं ज्ञानं तत्तत्रापगता-
खिलावरणम् यथा रजोनीहाराद्यन्तरितवृक्षादौ तदपगमप्रभवं
ज्ञानम्, स्पष्टत्वे सत्यवितर्कं च कैचिदुक्तप्रकारं ज्ञानमिति । तथा-१५
ऽतीन्द्रियं तत् मनोऽज्ञानपेक्षत्वात् । तदनपेक्षं तत् सकलकल-
ङ्कविकलत्वात् । तद्विकलत्वं चास्यात्रैवं प्रसाधयिष्यते । अत एव
चाशेषतो विशदं तत् । यत्तु नातीन्द्रियादिस्वभावं न तत्तदन-
पेक्षत्वादिविशेषणविशिष्टम् यथास्मदादिप्रत्यक्षम्, तद्विशेषणवि-
शिष्टञ्चेदम्, तस्मात्तथेति । तथा मुख्यं तत्प्रत्यक्षम् अतीन्द्रिय-२०
त्वात् स्वविषयेऽशेषतो विशदत्वाद्वा, यत्तु नेत्यं तत्रैवम्, यथा-
स्मदादिप्रत्यक्षम्, तथा चेदम्, तस्मान्मुख्यमिति ।

ननु चावरणप्रसिद्धौ तदपगमाज्ज्ञानस्योत्पत्तिर्युक्ता, न च
तत्प्रसिद्धम् । तद्धि शरीरम्, रागादयो, देशकालादिकं वा
भवेत् ? न तावच्छरीरं रागादयो वा, तद्भावेऽप्यर्थोपलम्भसम्भ-२५
वात् । तदुपलम्भप्रतिबन्धकमेव हि काण्डपटादिकं लोके प्रसि-

१ सत्ते । २ आदिपदेन देशकालादिग्रहणम् । ३ समग्रत्वम् । ४ आवरणापाये ।
५ अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानं स्वविषयेऽपगताखिलावरणं तत्र स्पष्टत्वे सत्यवितर्कज्ञान-
त्वात् । ६ ज्ञानम् । ७ अर्थे । ८ अनुमानादिना व्यभिचारपरिहारार्थम् । ९ संशया-
दिना व्यभिचारपरिहारार्थम् । १० रूपिषु, परमनोगतार्थेषु, मूर्तामूर्तसकलवस्तुषु
च । ११ क्रमेणावधिमनःपर्ययकेवलत्वम् । १२ अक्षिप्यतिच्छेदे । १३ सकल-
कलङ्कविकलत्वादेव । १४ अवध्यादिष्वयम् । १५ मुख्यम् । १६ बौद्धः प्राह ।
१७ आदिपदेन स्वभावो वा ।

द्धमावरणम् । ननु मेर्वादेर्दूरदेशता रावणादेस्तत्कालता परमाण्वादेः सूक्ष्मस्वभावता मूलकीलोदकादेश्च भूम्यादिः आवरणं प्रसिद्धमेवेति चेत्तदसारम् ; तदभावस्य कर्तुमशक्यत्वात् । न खलु सातिशयिर्द्विमतापि योगिनः देशाद्यभावो विधातुं शक्यः । ५ न चान्यत् किञ्चिदावरणं प्रतीयते । ततः सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमित्ययुक्तम् ;

अत्रोच्यते-न शरीराद्यावरणम् । किं तर्हि ? तद्व्यतिरिक्तं कर्म । तच्चानुमानतः प्रसिद्धम् ; तथाहि-स्वपरप्रमेयवोचैकस्वभावस्यात्मनो हीनैर्गर्मस्थानशरीरविषयेषु विशिष्टाऽभिरतिः आत्मतद्व्य-
१० तिरिक्तकारणपूर्विका तत्त्वात् कुत्सितपरपुरुषे कमनीयकुलकामिन्यास्तत्राद्युपयोगजनितविशिष्टाभिरतिवत् । तथा, भवभृता मोहोदयः शरीरादिव्यतिरिक्तसम्बन्ध्यन्तरपूर्वको मोहोदयत्वात् भविराद्युपयोगमत्तस्यात्मगृहादौ मोहोदयवत् ।

ननु चार्तः कर्ममात्रमेव प्रसिद्धं नावरणम् ; ततस्तत्सिद्धावेष
१५ प्रमाणमुच्यतां तत्रैव विवादादिति चेदुच्यते यज्ज्ञानं स्वविषयेऽप्रवृत्तिमत् तत्सावरणम् यथा कामलिनो लोचनविज्ञानमेकचन्द्रमसि, स्वविषये अशेषार्थलक्षणेऽप्रवृत्तिमच्च ज्ञानमिति ।

ननु विज्ञानस्याशेषविषयत्वं कुतः सिद्धम् ? आवरणापाये तत्प्रकाशकत्वाच्चेदन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि सकलविषयत्वे तस्य आव-
२० रणापाये तत्प्रकाशनं सिद्ध्यति, अतश्च सकलविषयत्वमिति, तदप्यसमीक्षितामिधानम् ; यतोऽनुमानमिच्छता भवताप्यवश्यं सकलावरणवैकल्यात्प्रागेव सकलस्य प्राणिमात्रस्याशेषविषयं व्याप्त्यो-
दिज्ञानमभ्युपगतमेव । तथा, यत्स्वविषयेऽस्पष्टं ज्ञानं तत्सावरणम् यथा रजोनीहाराद्यन्तरिततरुनिकरादिज्ञानम्, अस्पष्टं च
२५ 'सर्वं सद्नेकान्तात्मकम्' इत्यादि व्याप्तिज्ञानम् । मिथ्यादृशां सर्वत्रानेकान्तात्मकै भावे विपरीतज्ञानं सावरणं मिथ्याज्ञानत्वात् धत्तूरकाद्युपयोगिनो मृच्छकले काञ्चनज्ञानवदिति । अतः सिद्धमावरणं पौद्गलिकं कर्मेति ।

१ ज्ञानस्य । २ गीमासकीयपूर्वपक्षे सति जेनेः । ३ हीनशब्दे ग्रन्थादिशब्देः प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयः । ४ विषयज्ञानविज्ञानात्रन्दनाद्विधु । ५ विशिष्टाभिरतित्वात् । ६ आदिपदेनौषधमादि । ७ अनुभव । ८ चक्रानुमानद्वयात् । ९ सप्तारिज्ञानमन्त्रोपसर्गलक्षणे स्वविषये सावरणं भवति 'तत्राप्रवृत्तिमत्त्वादिति प्रतिज्ञाहेतु उपरिष्टाभेयो । १० सावरणम् । ११ अमानात् । १२ आदिपदेनागमजम् । १३ अस्पष्टज्ञानत्वा-
द्विदुष्यमाने स्वसिन्नस्पष्टत्वं स्यात्तद्व्यवच्छेदार्थं स्वविषये इत्युक्तम् । १४ यन्तारु-
विपरीतम् । १५ अनुमानत्रयात् ।

ननु चाविद्यैवावैरणं न पौद्गलिकं कर्म, मूर्त्तेनानेनामूर्त्तस्य ज्ञानादेरावरणायोगात्, अन्यथा शरीरादेरप्याव(वा)रकत्वानुपपत्तात्; इत्यप्यसमीचीनम्; मदिरादिना मूर्त्तेनाप्यमूर्त्तस्य ज्ञानादेरावरणदर्शनात् । अमूर्त्तस्य चाव(वा)रकत्वे गगनादेशान्तरस्य च तैत्प्रसङ्गः । तद्विरुद्धत्वात्तस्य तच्चेति चेत्; तर्हि शरी-^५रादेरप्यत एव तन्मा भुत्तद्विरुद्धस्यैवावरकत्वप्रसिद्धेः । प्रवाहेण प्रवर्त्तमानस्य ज्ञानादेरविद्योदये निरोधात्तस्यास्तद्विरोधगतौ मदि-रादिवत्पौद्गलिककर्मणोपि सास्तु विशेषाभावात् । तथाहि-आत्मनो मिथ्याज्ञानादिः पुद्गलविशेषसम्बन्धनिबन्धनः तत्स्वरूपान्यथाभावैस्त्वभावात् उन्मत्तकादिजनितोन्मादादिवत् । न च मिथ्या-^{१०}ज्ञानजनितापरमिथ्याज्ञानेनानेकान्तः, तस्यापरापरपौद्गलिककर्मोदये सत्येव भावात् अपरापरोन्मत्तकादिरससङ्गावे तत्कृतोन्मादादिसन्तानवत् ।

ननु चात्मगुणत्वात्कर्मणां कथं पौद्गलिकत्वमित्यन्ये; तेप्यपरीक्षकाः; तेषामात्मगुणत्वे तत्पारतन्त्र्यनिमित्तत्वविरोधात् सर्वै-^{१५}दात्मनो बन्धानुपपत्तेः सदैव मुक्तिप्रसङ्गात् । नै खलु यो यस्य गुणः स तस्य पारतन्त्र्यनिमित्तम् यथा पृथिव्यादे रूपादिः, आत्मगुणश्च धर्माधर्मसंज्ञकं कर्म परैरभ्युपगम्यते इति न तदात्मनः पारतन्त्र्यनिमित्तं स्यात् । न चैवम्, आत्मनः परतन्त्रतया प्रमाणतः प्रतीतेः । तथाहि-परतन्त्रोऽसौ हीनस्थानपरिग्रहवत्त्वात्-^{२०}मद्योद्रेकपरतन्त्राशुचिस्थानपरिग्रहवद्विशिष्टपुरुषवत् । हीनस्थानं हि शरीरम्, आत्मनो दुःखहेतुत्वात्कारागारवत् । तत्परिग्रह-वाञ्छ संसारी प्रसिद्ध एव । न च देवशरीरे तदभावात्पक्षार्थमिति; तस्यापि मरणे दुःखहेतुत्वप्रसिद्धेः । यत्परतन्त्रश्चासौ तत्कर्म इति सिद्धं तस्य पौद्गलिकत्वम् । तथा हि-पौद्गलिकं कर्म आत्मनः पर-^{२५}तन्त्र्यनिमित्तत्वाभिर्गलादिवत् । न च क्रोधादिभिर्व्यभिचारः;

१ प्रवृत्तानादित्वादिनौ वदतः । २ आत्मनः । ३ आदिप्रवेनात्मनः । ४ अवि-
यास्वरूपस्य । ५ गगनादिकं ज्ञानान्तरं च ज्ञानादेरावरणं भवति अमूर्त्तत्वादविद्यावत् ।
६ तेन ज्ञानेन । ७ मिथ्याज्ञानमविद्या । ८ प्रवाहेण प्रवर्त्तमानस्य ज्ञानादेः पौद्-
लिककर्मोदये निरोधस्याविशेषात् । ९ कर्मेतापन्न । १० सम्यग्ज्ञानादि । ११ मिथ्या-
ज्ञानादि । १२ योगाः । १३ धर्माधर्मसंज्ञकं कर्म आत्मनः पारतन्त्र्यनिमित्तं न भवति
आत्मगुणत्वादित्यप्याहारः । १४ कर्मणा । १५ शरीरादिलक्षण । १६ भागातिद्वयं
दुःखहेतुत्वलक्षणस्य हेतोः । १७ सुखदुःखरागद्वेषादिकृत् पारतन्त्र्यम् । १८ निगलं
गलबन्धनम् (शृङ्गलादि) ।

तेषां जीवपरिणामानां पारतन्त्र्यसमावत्वात्, क्रोधादिपरिणामो हि जीवस्य पारतन्त्र्यं न पुनः पारतन्त्र्यनिमित्तम् ।

- सत्यम् ; नात्मशुणोऽदृष्टं प्रधानपरिणामत्वात्तस्य “प्रधानपरिणामः शुक्लं कृष्णं च कर्म” [] इत्यभिधानात् ; इत्यपि मनो-
 ५ रथमात्रम् ; प्रधानस्यासत्त्वेन तत्परिणामत्वस्य केचिदप्यसम्भ-
 वात् । तदसत्त्वं चात्रैवानन्तरं वैक्ष्यामः । तत्परिणामत्वेऽपि वा
 तस्यात्मपारतन्त्र्यनिमित्तत्वाभावे कर्मत्वायोगात्, अन्यथाति-
 प्रसङ्गः । प्रधानपारतन्त्र्यनिमित्तत्वात्तस्य कर्मत्वमिति चेन्न ;
 प्रधानस्य तेन बन्धोपगमे मोक्षोपगमे चात्मकल्पनावैयर्थ्यप्रस-
 १० ङ्गात् । बन्धमोक्षफलानुभवनस्यात्मनि प्रतिष्ठानात् तत्कल्पनावै-
 यर्थ्यमित्यसत् ; प्रधानस्य तत्कर्तृत्ववत् तत्फलानुभोक्तृत्वस्यापि
 प्रमाणसामर्थ्यप्राप्तत्वात्, अन्यथा कृतनाशकृताभ्यागमदोषानु-
 षङ्गः । अथात्मनश्चेतनत्वाच्चेत्फलानुभवनं न तु प्रधानस्याऽचेत-
 नत्वात् ; तदप्ययुक्तम् ; मुक्तात्मनोऽपि तत्फलानुभवनानुषङ्गात् ।
 १५ तस्य प्रधानसंसर्गाभावात् तत्फलानुभवनमिति चेत् । तर्हि
 संसारिणः प्रधानसंसर्गाद्वन्धफलानुभवनम् । तथा चात्मन एव
 बन्धः सिद्धः, तत्संसर्गस्य बन्धफलानुभवननिमित्तस्य बन्धरूप-
 त्वात्, बन्धस्यैव ‘संसर्गः’ इति पुत्रलस्य च ‘प्रधानम्’ इति
 नामान्तरकरणात् ।

- २० ननु प्रसिद्धस्यापि यथोक्तप्रकारस्य कर्मणः कार्यकारणप्रवाहेण
 प्रवर्तमानस्यानादित्वादिनाशहेतुभूतसामग्रीविशेषस्य चाभावा-
 त्कथं तेन विच्छेपिताखिलावरणत्वं ज्ञानस्य, इत्यप्यपेक्षलम् ;
 सम्यग्दर्शनादित्रयलक्षणस्य तद्विनाशहेतुभूतसामग्रीविशेषस्य
 सुप्रतीतत्वात् । सञ्चितं हि कर्म निर्जरातश्चारित्र्यविशेषरूपायाः
 २५ प्रलीयते । सा च निर्जरा द्विविधा-उपक्रमेतरमेवात् । तत्रौपक-
 मिकी तपसा द्वादशविधेन साध्या । अनुपक्रमा तु यथाकालं
 संसारिणः स्यात् ।

कुतः पुनः साकल्येन पूर्वोपात्तकर्मणां निर्जरा निश्चीयते इति
 वैदनुमानात् ; तथाहि-साकल्येन कचिदात्मनि कर्माणि निर्जी-

१ साङ्ख्यः । २ पुण्यम् । ३ पापम् । ४ शुष्णादौ विकारे । ५ कथं चेनाः ।
 ६ यदादेरपि कर्तृत्वं स्यात् । ७ प्रधानं बन्धफलानुभोक्तृ भवति बन्धाधिकरणत्वाभि-
 गच्छन्तदेवदत्तवत् । ८ तत्फलत्वेऽपि तत्फलानुभोक्तृत्वं न स्यादिति तर्हि । ९ कृतस्य
 कर्मणः प्रधानसम्पत्तिन्येन नाशः । १० अकृतस्य फलत्वात्मनि आगमः । ११ तस्य
 कर्मणः फलं बन्धमोक्षौ । १२ तस्य कर्मणः । १३ पौल्लिकस्य ।

र्यन्ते विपाकान्तत्वात्, यानि तु न निर्जीर्यन्ते न तानि विपाका-
न्तानि यथा कौलादीनि, विपाकान्तानि च कर्माणि, तस्मात्साक-
ल्येन क्वचिर्निर्जीर्यन्ते । न चेदमसिद्धं साधनम्; तथाहि-विपाका-
न्तानि कर्माणि फलावसानत्वाद्भीत्यादिवत् । न चेदमप्यसिद्धम्;
तेषां नित्यत्वानुषङ्गात् । न च नित्यानि कर्माणि नित्यं तत्फलाजु-^५
भवनप्रसङ्गात् ।

भावि पुनः कर्म संवराभिरुच्येत—“अपूर्वकर्मणामासन्ननिरोधः
संवराः” [तत्त्वार्थसू० ९।१] इत्यभिधानात् । आसन्नो हि मिथ्या-
दर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगविकल्पात्पञ्चविधः, तस्मिन्सति
कर्मणामासन्नघणात् । स च संवरो गुतिसमितिधर्मानुपेक्षा-^{१०}
परीषद्भज्यचारित्रैर्विधीयते इत्यागमे विस्तरतः प्ररूपितं द्रष्ट-
व्यम् । निर्जरासंवरोऽत्र सम्यग्दर्शनाद्यात्मकत्वात्तत्प्रकर्षं कर्मणां
सन्तानरूपतयाऽनादित्वेऽपि प्रक्षयः प्रसिध्यत्येव । न ह्यनादिस-
न्ततिरपि शीतस्पर्शो विपक्षस्योष्णस्पर्शस्य प्रकर्षं निर्मूलतलं
प्रलयमुपब्रज्योपलब्धः, कार्यकारणरूपतया बीजाङ्कुरसन्तानो-^{१५}
षाऽनादिः प्रतिपक्षभूतदहनेन निर्दग्धबीजो निर्दग्धाङ्कुरो वा न
प्रतीयते इति वक्तुं शक्यम् ।

ननु तत्प्रकर्षमात्रात्कर्मप्रक्षयमात्रमेव सिध्येन्न पुनः साकल्येन
तत्प्रक्षयः, सम्यग्दर्शनादेः परमप्रकर्षसम्भवामावात्, इत्यप्य-
सङ्गतम्; तत्प्रकर्षस्य क्वचिदात्मनि प्रसिद्धेः । तथाहि—यस्य ^{२०}
तारतम्यप्रकर्षस्तस्य क्वचित्परमप्रकर्षः यथोष्णस्पर्शस्य, तारत-
म्यप्रकर्षश्चासंयतसम्यग्दर्शनादौ सम्यग्दर्शनादेरिति । न च दुःख-
प्रकर्षेण व्यभिचारः, सप्तमनरकभूमौ नारकाणां तत्परमप्रकर्षप्र-
सिद्धेः सर्वार्थसिद्धौ देवानां सांसारिकसुखपरमप्रकर्षवत्,
मिथ्यादृष्टिष्वनन्तानुबन्धिक्रोधादिपरमप्रकर्षवद्वा । नापि ज्ञानहा-^{२५}
निप्रकर्षेणानेकान्तः, तस्यापि क्षायोपशमिकस्य हीयमानतया
प्ररूप्यमाणस्य केवलिनि परमापकर्षप्रसिद्धेः । र्क्षाधिकस्य तु हाने-
षासम्भवात्कुतस्तत्प्रकर्षो यतोऽनेकान्तः ।

इत्थं र्वा साकल्येन कर्मप्रक्षये प्रयोगः कर्तव्यः—“यस्यातिशये

१ फलदानपरीणतिर्विपाकः । २ परमतापेक्षया । ३ सम्यग्दर्शनादेः कर्मविनाश-
हेतुत्वमुक्तमिदानीमन्यदेवोक्तमिति कर्षं न पूर्वापरविरोधः ? इत्युक्ते बाह । ४ सति ।
५ सम्यग्दर्शनादि क्वचिदात्मनि परमप्रकर्षं प्राप्नोति तारतम्यप्रकर्षवत्त्वादित्युपरिष्टा-
दभ्याहियते । ६ केवलज्ञानस्य । ७ तारतम्यप्रकर्षः । ८ विपाकान्तत्वादित्यनुमाना-
पेक्षया वाशब्दोऽत्र । ९ क्वचित्कर्मणामसन्तानान्यतिशयो र्वा सम्यग्दर्शनादेरसन्ता-
नसिद्धये भवति तस्यातिशये तद्वान्यतिशयदर्शनादित्युपरिष्टादभ्याहियते ।

यद्धान्यतिशयस्तस्यात्यन्तातिशयेऽन्यस्यात्यन्तहाविः यथोक्तेरत्यन्तातिशये शीतस्य, अस्ति च सम्यग्दर्शनादेरत्यन्तातिशयः क्वचिदात्मनि" इति । यद्वा, आवरणहानिः क्वचित्पुरुषविशेषे परमप्रकर्षमाप्ता प्रकृत्यमाणत्वात् परिमाणवत् । न चात्रासिद्धं साधनम्; ५ तथाहि-प्रकृत्यमाणावरणहानिः आवरणहानित्वात् माणिक्याद्यावरणहानिवत् । तद्धानिपरमप्रकर्षे च ज्ञानस्य परमः प्रकर्षः सिद्धः । यद्धि प्रकाशात्मकं तत्त्वावरणहानिप्रकर्षे 'प्रकृत्यमाणं दृष्टम् यथा नयनप्रदीपादि, प्रकाशात्मकं च ज्ञानमिति । तदेवमावरण-प्रसिद्धिवत्तदभावोप्यनवैयवेन प्रमाणतः प्रसिद्धः । तैत्प्रभवमेव १० चाशेषार्थगोचरं ज्ञानमभ्युपगन्तव्यम्, लेशतोप्यावरणसद्भावे तस्याशेषार्थगोचरत्वासम्भवात्, यत्रैवावरणसद्भावस्तत्रैवाव्यतिबन्धसम्भवात् ।

आगमद्वारेणाशेषार्थगोचरं ज्ञानम्; इत्यप्यसुन्दरम्; विशदज्ञानस्य प्रस्तुतत्वात् । न चागमज्ञानं विशदम् । न चागमोप्यशेषार्थ- १५ गोचरः; अर्थपर्यायेषु तस्याप्रवृत्तेः । तै चार्थस्य प्रतिक्षणम् 'अर्थ-क्रियाकारित्वात्सत्त्वाद्वा सन्ति' इत्यवसीयन्ते । अन्यथास्याऽवस्तुत्वप्रसङ्गः । करणजन्यत्वे चाशेषज्ञानस्यातीन्द्रियार्थेषु प्रतिबन्धः प्रसिद्ध एव, इन्द्रियाणां रूपादिमत्त्वव्यवहितेऽनेकावयव-प्रचयात्मकेऽर्थे प्रवृत्तिप्रतीतेः ।

२० ननु योगजधर्मानुगृहीतानामिन्द्रियाणां गगनाद्यशेषातीन्द्रियार्थसाक्षात्कारिज्ञानजनकत्वसम्भवात् कथं तत्राशेषज्ञानस्येन्द्रियजत्वेपि प्रतिबन्धसम्भवः; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; योगजधर्मानुग्रहस्येन्द्रियाणां प्रथमपरिच्छेदे प्रतिविहितत्वात् ।

भावनाप्रकर्षपर्यन्तजत्वाद्योगिविज्ञानस्य नोक्तदोषानुषङ्गः । २५ भावना हि द्विविधा-श्रुतमयी, चिन्तामयी च । तत्र श्रुतमयी श्रूयमाणेभ्यः परार्थानुमानवाक्येभ्यः समुत्पद्यमानज्ञानेन श्रुतशब्दाच्यतामास्कन्देता निवृत्ता परमप्रकर्षे प्रतिपद्यमाना स्वार्थानुमानज्ञानलक्षणया चिन्तया निवृत्ता चिन्तामयी भावनामारमैते । सा च प्रकृत्यमाणा परं प्रकर्षपर्यन्तं सम्प्राप्ता योगिप्रत्यक्षं जन-

१ कर्त्रेणः । २ साकल्येन । ३ आवरणाभावाप्रवृत्त्यै । ४ परेण । ५ अर्थे । ६ प्रकृतत्वात् । ७ भावैपमोयाः । ८ अर्थोऽवस्तु असत्त्वात् । असत्त्वार्थोऽर्थक्रिया-शून्यत्वात् । अर्थक्रियाशून्योर्थः-अर्थपर्यायरहितत्वात् खपुष्पवत् । ९ सीगतो वक्त्रि । १० आचार्यात् । ११ सर्वं कृणिकं सत्त्वादिति । १२ आमुच्यते । १३ श्रुतमयी भावना कर्त्री ।

यतीति तत्कथमस्योवरणापायप्रभवत्वम्? इत्यप्यसारम्; क्षणिकनैरात्म्यादिभावनायाश्चिन्तामय्याः श्रुतमय्याश्च मिथ्यारूपत्वात् । न च मिथ्याज्ञानस्य परमार्थविषययोगिज्ञानजनकत्वमतिप्रसङ्गात् । यथा च न क्षणिकत्वं नैरात्म्यं शून्यत्वं वा वस्तुनस्तथा वक्ष्यते । ५

किञ्च, अखिलप्राणिनां भावनावतां तथाविधज्ञानोत्पत्तिः किञ्च स्यात् सुगतवत्? तेषां तथाभूतभावनाऽभावाच्चेत्; न; प्रतिपन्नतत्त्वानां भावनाप्रवृत्तमनसां सर्वेषां समाना भावनैव कुतो न स्यात्? प्रतिबन्धककर्मसङ्गावाच्चेत्; तर्हि भावनाप्रतिबन्धककर्मापाये भावनावत् योगिज्ञानप्रतिबन्धककर्मापाये तज्ज्ञानोत्पत्तिर- १० भ्युपगन्तव्या । इति सिद्धं साकल्येनावरणापाये एवातीन्द्रियमशेषार्थविर्ययं विशदं प्रत्यक्षम् ।

ननु चाशेषार्थज्ञातुस्त(ज्ञानस्यत)ज्ज्ञानवतः कस्यचित्पुरुषविशेषस्यैवासम्भवात्कथं तज्ज्ञानसम्भवः? तथाहि-न कश्चित्पुरुषविशेषः सर्वज्ञोस्ति सद्रूपलम्भकप्रमाणपञ्चकागोचरधारित्वा- १५ इन्ध्यास्तनन्धयवत् । न चायमसिद्धो हेतुः; तथाहि-सकलपदार्थवेदी पुरुषविशेषः प्रत्यक्षेण प्रतीयते, अनुमानादिप्रमाणेन वा? न तावत्प्रत्यक्षेण; प्रतिनियतासन्नरूपादिविषयत्वेन अन्यसन्तानस्यसंवेदनमात्रेण्यस्य सामर्थ्यं नास्ति, किमेकं पुनरनाद्यनन्तातीतानागतवर्त्तमानसूक्ष्मादिस्वभावसकलपदार्थसाक्षात्कारी- २० संवेदनविशेषे तदर्थ्यासिते पुरुषविशेषे वा तत्स्यात्? न चातीतादिसंभावनिखिलपदार्थग्रहणमन्तरेण प्रत्यक्षेण तत्साक्षात्करणप्रवृत्तज्ञानग्रहणम्, ग्राह्याग्रहणे तच्चिद्राहकत्वस्याप्यग्रहणात् ।

नाप्यनुमानेनैतौ प्रतीयते; तद्धि निश्चितस्वसाध्यप्रतिबन्धाद्धेतोरुदयमासादयत्प्रमाणतां प्रतिपद्यते । प्रतिबन्धश्चाखिलपदार्थ- २५ ज्ञप्तत्वेन स्वसाध्येन हेतोः किं प्रत्यक्षेण गृह्येत, अनुमानेन वा? न, तावत्प्रत्यक्षेण; अस्याऽत्यक्षज्ञानवत्सत्त्वसाक्षात्करणाक्षमत्वेन तत्प्रतिपत्तिनिमित्तहेतुप्रतिबन्धग्रहणेप्यक्षमत्वात् । न ह्यप्रतिपन्नसम्बन्धिनस्तद्गतसम्बन्धावगमो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । नाप्य-

१. १ मुख्यप्रत्यक्षस्य । २. दिवन्द्वादिज्ञानस्यापि योगिज्ञानजनकत्वप्रसङ्गात् । ३ अशेषविषय । ४ सर्वज्ञ । ५ परेण त्वया । ६ मुख्यम् । ७ भीमासकः । ८ अन्यस्य पुनरावृत्तस्य । ९ अहो । १० उत्सहिते । ११ कश्चित्पुरुषः सकलपदार्थसाक्षात्कारी चद्रहणसमाप्त्यै ऋति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वादित्यनेन । १२ परमागोरप्रतिपत्तादयि, घटस्य परमाणुना सम्बन्धप्रतिपत्तिप्रसङ्गात् ।

नुमानेन; अनवस्थेतरैतराश्रयदोषानुषङ्गात् । न चात्र धर्मी प्रत्यक्षेण प्रतिपन्नः; अनक्षज्ञानवत्यैक्षेऽप्यक्षस्याप्रवृत्तेः । प्रवृत्तौ वाध्यक्षेणैवास्य प्रतिपन्नत्वान्न किञ्चिदनुमानेन । नाप्यनुमानेन; हेतोः पक्षधर्मतावगममन्तरेणानुमानस्यैवाप्रवृत्तेः । न चाप्रतिपक्षे ५ धर्मिणि हेतोस्तत्सम्बन्धावगमः । नाप्यप्रतिपक्षपक्षधर्मत्वो हेतुः प्रतिनियतसाध्यप्रतिपत्त्यङ्गम् ।

किञ्च, सत्तासाधने सर्वो हेतुरसिद्धविरुद्धानैकान्तिकत्वलक्षणां त्रयीं दोषजार्तिं नातिवर्त्तते । तथाहि-सर्वज्ञसत्त्वे साध्ये भावधर्मो हेतुः, अभावधर्मो वा स्यात्, उत उभयधर्मो वा? प्रथमपक्षेऽसिद्धः; १० भावेऽसिद्धे तद्धर्मस्य सिद्धिविरोधात् । द्वितीयपक्षे तु विरुद्धः; भावे साध्येऽभावधर्मस्याभावाव्यभिचारित्वेन विरुद्धत्वात् । उभयधर्मोप्यनैकान्तिकः सत्तासाधने; तदुभयव्यभिचारित्वात् ।

अपि चाविशेषेण सर्वज्ञः कश्चित्सार्ध्यते, विशेषेण वा? तत्राद्यपक्षे विशेषतोऽर्हत्प्रणीतागमाश्रयणमनुपपन्नम् । द्वितीय- १५ पक्षे तु हेतोरपरसर्वज्ञस्याभेदेन दृष्टान्तानुवृत्त्यसम्भवादसाधारणानैकान्तिकत्वम् ।

किञ्च, यतो हेतोः प्रतिनियतोऽर्हत् सर्वज्ञः साध्यते ततो बुद्धोपि साध्यतां विशेषोभावात्, न चार्थं सर्वज्ञत्वसाधने हेतुरस्ति ।

२० यदप्युच्यते-सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः कस्यचित्प्रत्यक्षाः प्रमेयत्वात्पावकादिवत्; तदप्युक्तिमात्रम्; यतोऽत्रैकज्ञानप्रत्यक्षत्वं सूक्ष्माद्यर्थानां साध्यत्वेनाभिप्रेतम्, प्रतिनियतविषयानेकज्ञानप्रत्यक्षत्वं वा? तत्राद्यकल्पनायां विरुद्धो हेतुः, प्रतिनियतरूपादिविषयग्राहकानेकप्रत्ययप्रत्यक्षत्वेन व्याप्तस्याश्यादिदृष्टान्तधर्मिणि प्रमेय- २५ त्वस्योपलम्भात् साध्यविकलता च दृष्टान्तस्य । द्वितीयकल्पनायां सिद्धसाध्यता अनेकप्रत्यक्षैरनुमानादिभिश्च तत्परिज्ञानाभ्युपगमात् ।

१ निमित्ताभिनाभावपूर्वकत्वादननुमानस्य । २ साध्यसाधकानुमाने । ३ पक्षे । ४ धर्मी प्रतिपन्नः । ५ सर्वज्ञलक्षणे । ६ सर्वज्ञस्य । ७ प्रयोऽप्यवा यस्याः । ८ भाव-
स्वरूपः । ९ सर्वज्ञसत्त्वे । १० सर्वज्ञस्य । ११ भावामानोनय । १२ जैने । १३ दृष्टान्तमवर्तनाभावात् । १४ विपक्षसपक्षस्या व्यावर्त्तमानो हेतुरसाधारणानैका-
न्तिकः । असौदाहरणमनिलः शब्दः आगत्यादिति । १५ हेतोः । १६ जगति । १७ अनुमाने । १८ सूक्ष्मान्तरितदूरार्थे ।

“यदि बद्धिः प्रमाणैः स्यात्सर्वज्ञः केन वार्यते ।

एकेन तु प्रमाणेन सर्वज्ञो येन कल्प्यते ॥

नूनं स चक्षुषा सर्वान् रसादीन्प्रतिपद्यते ।” [मी० श्लो० चोद-
नासू० श्लो० १११-१२] इत्यभिधानात् ।

किञ्च, प्रमेयत्वं किमशेषज्ञेयव्यापिप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिलक्षण-
मभ्युपगम्यते, असदादिप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिस्वरूपं वा स्यात्,
उभयव्यक्तिसाधारणसामान्यस्वभावं वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः,
विवादाध्यासितपदार्थेषु तथाभूतप्रमाणप्रमेयत्वस्यासिद्धत्वात्,
अन्यथा साध्यस्यापि सिद्धेर्हेतुपादानमपार्थक्यम् । सन्दिग्धान्वय-
र्थाय हेतुः स्यात् ; तथाभूतप्रमाणप्रमेयत्वस्य दृष्टान्तेऽसिद्धत्वात् । १०
द्वितीयपक्षेऽसिद्धो हेतुः, असदादिप्रमाणप्रमेयत्वस्य विवादगो-
चरार्थेष्वसम्भवात् । सम्भवे वा ततस्तथाभूतप्रत्यक्षत्वसिद्धिरेव
स्यात् । तत्र चाविवादाच्च हेतुपन्यासः फलवान् । नाप्युभय-
प्रमेयत्वव्यक्तिसाधारणं प्रमेयत्वसामान्यं हेतुः, असन्तविलक्ष-
णीतीन्द्रियेन्द्रियविषयप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिद्वयसाधारणसामान्य- १५
स्यैवासम्भवात् । तन्नानुमानाच्चैत्तिद्धिः ।

नाप्यनैमात् ; सोपि हि नित्यः, अनित्यो वा तत्प्रतिपादकः
स्यात् ? न तावन्नित्यः, तत्प्रतिपादकस्य तस्याभावात्, भावेपि
प्रामाण्यासम्भवात् कैर्येऽर्थे तत्प्रामाण्यप्रसिद्धेः । अनित्योऽपि किं
तत्प्रणीतः, पुरुषान्तरप्रणीतो वा ? प्रथमपक्षेऽन्योन्याश्रयः— २०
सर्वज्ञप्रणीतत्वे तस्य प्रामाण्यम्, ततस्तत्प्रतिपादकत्वमिति ।
नापि पुरुषान्तरप्रणीतः, तस्योन्मत्तवाक्यवदप्रामाण्यात् । तन्ना-
गमादप्यस्य सिद्धिः ।

नाप्युपमानात् ; तत्खलूपमानोपमेययोर्नैवयवेनाध्यक्षत्वे सति
सादृश्यावलम्बनमुदयमासादयति ; नान्यथातिप्रसङ्गात् । न चोप- २५
मानभूतः कश्चित्सर्वज्ञत्वेनाध्यक्षतः सिद्धो येन तत्सादृश्यादन्यस्य
सर्वज्ञत्वमुपमानात्साध्येत ।

१ जेनादिभिः । २ प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वेन कारणेन विवादाध्यासितत्वम् । ३ सङ्गमा-
दिषु । ४ विवादाध्यासितपदार्थेषु अशेषज्ञेयव्यापिप्रमाणप्रमेयत्वं सिद्धं चेत् । ५ असा-
धारणनैकान्तिकः । ६ अशेषज्ञेयप्रमाणप्रमेयत्वादित्यवम् । ७ पावसादौ । ८ अस-
दादिप्रमाणप्रमेयत्वादिति हेतुः । ९ सङ्गमादिषु । १० असदादिप्रमाणभूतः ।
११ अतीन्द्रियश्रेन्द्रियविषयश्च तेषां ग्राहकप्रमाणम् । १२ सर्वज्ञः । १३ हिरण्य-
गर्भं प्रकृत्य सर्वज्ञ इति । १४ अक्षिप्तोमेन गलेत सर्वकाम इति क्रियमाणेऽर्थे ।
१५ सर्वज्ञः । १६ साकत्येन । १७ श्रुतवचनवदितोऽपि तत्सोपमानज्ञानप्रसङ्गात् ।
१८ तत्सोपमानभूतसर्वज्ञस्य । १९ नुः ।

नाप्यर्थापसितस्तत्सिद्धिः; सर्वज्ञसद्भावमन्तरेणानुपपद्यमानस्य प्रमाणषड्विज्ञातार्थस्य कस्यचिद्भावात् । धर्माद्युपदेशस्य बहुजनपरिगृहीतस्यान्यथापि भावात् । तथा चोक्तम्—

“सर्वज्ञो दृश्यते तावच्चेदानीमसदादिभिः ।

५ [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११७]

दृष्टो न चैकदेशोस्ति लिङ्गं वा योर्नुमापयेत् ॥ १ ॥ []

न चागमैर्विधिः कश्चिन्नित्यः सर्वज्ञयोधकः ।

न च मन्त्रार्थवादानां तात्पर्यमवकर्षते ॥ २ ॥ []

न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्वं विधीयते ।

१० न चानुवदितुं शक्यः पूर्वमेन्यैरवोचितैः ॥ ३ ॥ []

अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान् ।

कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥ ४ ॥ []

अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽर्थः प्रतीयते ।

प्रकल्पेत कथं सिद्धिरन्योन्याश्रययोस्तयोः ? ॥ ५ ॥ []

१५ सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता ।

कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धमूलान्तैराहते ॥ ६ ॥ []

असर्वज्ञप्रणीतास्तु वचनान्मूर्खैर्वर्जितात् ।

सर्वज्ञमवगच्छन्तः स्ववाक्यात्किञ्च जानते ? ॥ ७ ॥ []

सर्वज्ञसदृशं कश्चिद्यदि पश्येयम् सम्प्रति ।

२० उपमानेन सर्वज्ञं जानीयाम ततो पयम् ॥ ८ ॥ []

उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्माऽध्यर्मादिगोचरः ।

अन्यथा नोपपद्येत सर्वज्ञं यदि नाऽभवत् ॥ ९ ॥ []

बुद्धादयो ह्यवेदशास्त्रेषां वेदादसम्भेदः ।

उपदेशः कृतोऽतस्तैर्व्यामोहैर्देव केवलात् ॥ १० ॥ []

१ सर्वज्ञभावेति । २ सम्बन्धान्तर हेतुः । ३ लिङ्गं भूत्वेति शेषः । ४ सवक्ष्य ।

५ प्रशंसामत्रभावननादिः । ६ घटते । ७ वागमैः । ८ आगमैः । ९ आगमात् ।

१० अनुभाषणात् । ११ प्रमाणान्तरेः । १२ सर्वज्ञः । १३ असदादिभिः ।

१४ सर्वज्ञागमसत्यार्थयोः । १५ कथमन्योन्याभाव इत्युक्ते सत्याह । १६ वसः ।

१७ आगमप्रामाण्यलक्षणत्वात् मूलान्यत् सर्वज्ञप्रामाण्यलक्षणं मूलान्तरं वा प्रष्टव्यम् ।

१८ मूर्खं प्रामाण्यम् । १९ सर्वज्ञसदृशदर्शनात् । २० भूत्वा । २१ न विद्यते

संभव उत्पत्तिर्वत्युपदेशस्य । २२ कथनानात् ।

१ ‘न च मन्त्रार्थवादानां न चानुवदितुं शक्यः’ इति श्लोकद्वयं विना सर्वेऽपि श्लोकाः तत्त्वसंग्रहे (५० ८२०, ८२१, ८२२, ८२८, ८३९, ८४०) पूर्वपक्षे कुल-
रिक्तकृतैकत्वेनोपलभ्यन्ते ।

ये तु मन्वादयः सिद्धाः प्राधान्येन त्रयीविदाम् ।
त्रयीविदाधितग्रन्थास्ते वेदप्रभवोक्तयः ॥ ११ ॥” []
इति ।

न च प्रमाणान्तरं सदुपलम्भकं सर्वज्ञस्य साधकमस्ति ।

मा भूद्यत्वेदानीन्तनास्तदादिजनानां (नां) सर्वज्ञस्य साधकं ५
प्रत्यक्षाद्यन्यतमं देशान्तरकालान्तरवर्तिनां केपाश्चिद्भविष्यतीति
चाऽयुक्तम् :

“यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनम् ।

दृष्टं सम्प्रति लोकस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत् ॥”

[मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११३] १०

इत्यभिधानात् । तथा हि—विवादाध्यासिते देशे काले च प्रत्यक्षा-
दिप्रमाणम् अत्रत्येदानीन्तनप्रत्यक्षादिग्राह्यसजातीयार्थग्राहकं
तद्विजातीयसर्वेषां चार्थग्राहकं वा न भवति प्रत्यक्षादिप्रमाणत्वात्
अत्रत्येदानीन्तनप्रत्यक्षादिप्रमाणवत् ।

ननु च यथाभूतमिन्द्रियादिजनितं प्रत्यक्षादि सर्वेषां चार्थासा- १५
धकं दृष्टं तथाभूतमेव देशान्तरे कालान्तरे च तथा साध्यते,
अन्यथाभूतं वा? तथाभूतं चेत्सिद्धसाधनम् । अन्यथाभूतं
चेदप्रयोजको हेतुः; जगती बुद्धिमत्कारणत्वे साध्ये सैत्त्रिवेश-
विशिष्ट्यादियत् : तदसाम्प्रतम् ; तथाभूतस्यैव तथा साधनात् ।
न च सिद्धसाधनमन्यादृशेऽप्रत्यक्षाद्यभावात् । तथा हि—विवादा- २०
पक्षं प्रत्यक्षादिप्रमाणमिन्द्रियादिसामग्रीविशेषानपेक्षं न भवति
प्रत्यक्षादिप्रमाणान्व्याप्तिर्हेतुप्रत्यक्षादिप्रमाणवत् । न शृङ्गवरा-
हपिपालिकादिप्रत्यक्षेण मन्त्रिहिनदेशविशेषानपेक्षिणा नक्तञ्चरप्र-
त्यक्षेण घालोकानपेक्षिणान् क्रान्तः, कौल्यायनाद्यनुमानातिशयेन,
जैमिन्याद्यागमोक्तिशयेन वा; तस्यापीन्द्रियादिप्रणिधानसामग्री २५
विशेषमन्तरेणासम्भवात्, अनीन्द्रियाननुमेवाद्यार्थाविषयत्वेन
सार्थातिलक्षणाभावात् । तथा चोक्तम्—

१ मन्वा. प्रतिष्ठाः । २ मध्ये । ३ त्रयीमिन्द्रियाधितो ग्रन्थो येषां ते ।
४ वेदाप्रभव उपसिद्धागामुक्तिनां ना वेदप्रभवा., वेदप्रभवा उक्तयो येषां मन्वादीनां
ते । ५ रूपादिमदलान्नादि । ६ असदादिप्रमाणसदृशप्रमाणप्रकारेण । ७ सर्वज्ञ-
वादी मते । ८ अनीन्द्रियप्रत्यक्षम् । ९ सपक्षान्पापकपक्षव्यावृत्तः प्रतिनियतार्थ-
ग्राहिते सतीति विशेषजन्योपपत्त्यादिनमन्मन्थो हेतुप्रयोजकः । १० अक्रियादक्षि-
नोपि ऋगुदुष्पादकर्तृ मति । ११ अतीन्द्रिय । १२ देशान्तरकालान्तरवर्ति ।
१३ अत्रत्येदानीन्तन प्रतिदन् । १४ वररुचि । १५ अक्षुतवेदार्थलक्षण । १६ एका-
ग्रता । १७ स्वस्य प्रत्यक्षादेः ।

“येनाप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलङ्घनात् ।

दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तितः (ता) ॥ १ ॥

[मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११४]

येषां सातिशयो दृष्टाः प्रेक्षाभेदादिभिर्नराः ।

५ स्तोक्तस्तोक्तान्तरत्वेन न त्वतीन्द्रियदर्शनात् ॥ २ ॥ []

प्राज्ञोपि हि नरः सूक्ष्मार्थान्दृष्टुं क्षमोपि सन् ।

सजातीरनतिक्रामन्नतिशेते पराक्षरान् ॥ ३ ॥ []

एकशास्त्रविचारेषु दृश्यतेऽतिशयो महान् ।

न तु शास्त्रान्तरज्ञानं तन्मात्रेणैव लभ्यते ॥ ४ ॥ []

१० ज्ञात्वा व्याकरणं दूरं बुद्धिः शब्दापशब्दयोः ।

प्रेक्ष्यते न नक्षत्रतिथिग्रहणनिर्णये ॥ ५ ॥ []

येतिविभिन्ने प्रकृष्टोपि चन्द्रार्कग्रहणादिषु ।

न भवत्यादिशब्दानां साधुत्वं ज्ञातुमर्हति ॥ ६ ॥ []

तथा वेदेतिहासादिज्ञानातिशयवानपि ।

१५ न स्वर्गदेवताऽपूर्वप्रत्यक्षीकरणे क्षमः ॥ ७ ॥ []

देशदृष्टान्तरं व्योम्नि यो नामोत्प्लुत्य गच्छति ।

न योजनमसौ गन्तुं शक्नोऽभ्यासशतैरपि ॥ ८ ॥ []

इति ।

प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां चास्यैशेषार्थविषयत्वं बाध्यते, तथाहि—
२० सर्वज्ञस्य ज्ञानं प्रत्यक्षं यद्यभ्युपगम्यते तदा तद्वैर्मादिग्राहकं न
स्याद्विद्यमानोपलम्भनत्वात् । विद्यमानोपलम्भनं तत् सत्सम्प्र-
योगजत्वात् । सत्सम्प्रयोगजं तत्, प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वात्सदा-
दिप्रत्यक्षवत् । तद्वैर्मादिग्राहकं चेत् न विद्यमानोपलम्भनं धर्मादे-
रविद्यमानत्वात् । तत्त्वे चासत्सम्प्रयोगजत्वे चाऽप्रत्यक्षशब्देवा-
२५ क्यत्वम् ।

१ गृहादीन्द्रिये । २ क्रियमाणायाम् । ३ इन्द्रियाणामतिशयो नास्ति चेन्मा
भूतुरूपणा भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । ४ अर्धग्रहणशक्तिः प्रज्ञा । ५ नेषा पाठग्रहण-
शक्तिः । ६ पूर्वोक्तं भावयति । ७ तत्र दृष्टान्तमाह । ८ दृष्टान्तं भावयति । ९ न्यास-
पर्यन्तम् । १० प्रकृष्टा भवति । ११ पुनरपि दृष्टान्तं भावयति । १२ अकारो दृष्टान्त-
समुच्चये । १३ अदृष्ट । १४ लोकप्रसिद्धं दृष्टान्तमाह । १५ प्रसङ्गविपर्यययोर्लक्षणसूच-
रपक्षे वदिष्यति । १६ सर्वज्ञज्ञानस्य । १७ जैनादिभिः सर्वज्ञवादिभिः । १८ पुण्य-
पापादि । १९ इति प्रसङ्गेन तस्याशेषार्थविषयत्वं बाध्यते । २० तस्य परोक्षत्वमित्यर्थः ।
२१ इति विपर्ययेण तस्याशेषार्थविषयत्वं बाध्यते । २२ अविद्यमानोपलम्भनत्वे ।

१ इमा अशेषाः कारिकाः सप्तसप्तदशे (५० ८२५-२६) पूर्वपक्षतया उपलभ्यन्ते ।

धर्मज्ञत्वनिवेधे चान्याशेषार्थप्रत्यक्षत्वेऽपि न प्रेरणाप्रामाण्य-
प्रतिबन्धो धर्मे तस्या एव प्रामाण्यात् । तदुक्तम्—

“सर्वप्रमातृसम्बन्धिप्रत्यक्षादिनिवारणात् ।

केवलागमगम्यत्वं लप्स्यते पुण्यपापयोः ॥ १ ॥” []

धर्मज्ञत्वनिवेधस्तु केवलोत्रोपयुज्यते ।

सर्वमन्यद्विज्ञानस्तु पुरुषः केनैव वार्यते ॥ २ ॥” []

किञ्च, अस्य ज्ञानं चक्षुरादिजनितं धर्मादिग्राहकम्, अभ्यास-
जनितं वा स्यात्, शब्दप्रमवं वा, अनुमानाविर्भूतं वा ? प्रथमपक्षे
धर्मादिग्राहकत्वायोगश्चक्षुरादीनां प्रतिनियतरूपादिविषयत्वेन
तत्प्रभवज्ञानस्याप्यत्रैव प्रवृत्तेः । अथाभ्यासजनितम्, ज्ञानाभ्या-१०
सादिप्रकर्षतरतमादिक्रमेण तत्प्रकर्षसम्भवे सकलस्वभावातिरिच्य-
पर्यन्तं संवेदनमवाप्यते, इत्यपि मनोरथमात्रम्, अभ्यासो हि
कस्यचित्प्रतिनियतशिल्पकलादौ तदुपदेशाद् ज्ञानाच्च दृष्टः । न
चाशेषार्थोपदेशो ज्ञानं वा सम्भवति । तत्सम्भवे किमभ्यासप्रया-
सेनाशेषार्थज्ञानस्य सिद्धत्वात् । अन्योन्याश्रयश्च-अभ्यासात्तज्ज्ञा-१५
नम्, ततोऽभ्यास इति । शब्दप्रमवं तदित्यप्ययुक्तम्, परस्पर-
श्रयणानुषङ्गात्-सर्वज्ञप्रणीतत्वेन हि तत्प्रामाण्येऽशेषार्थविषय-
ज्ञानसम्भवः, तत्सम्भवे चाशेषज्ञस्य तथामृतशब्दप्रणेतृत्वमिति ।
अभ्युपगम्यते च प्रेरणाप्रभवज्ञानैवतो धर्मज्ञत्वम्,

“चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमि-२०
त्येवंजातीयकमर्थमवगमयितुमलं नान्यत् किञ्चनेन्द्रियादिकम्”
[शाबरभा० १।१२] इत्यभिधानात् ।

अनुमानाविर्भूतमित्यप्यसङ्गतम्, धर्मादेरतीन्द्रियत्वेन तज्ज्ञा-
पकलिङ्गस्य तेन सह सम्बन्धासिद्धेरसिद्धसम्बन्धस्य चाक्षाप-
कत्वात् ।

२५

किञ्च, अनुमानेनाशेषज्ञत्वेऽसदादीनामपि तत्प्रसङ्गः, ‘भावा-
भावोभयरूपं जगत्प्रमेयत्वात्’ इत्याद्यनुमानस्यासदादीनामपि
भावात् । अनुमानागमज्ञानस्य चास्पष्टत्वात्तज्जनितस्याप्यवैशद्य-
सम्भवाच्च तज्ज्ञानैवान्सर्वज्ञो युक्तः ।

१ वैदिकी । २ प्रेरणाप्रामाण्ये । ३ धर्माधर्मान्यामन्यत् । ४ न केनापि ।
५ सर्वज्ञस्य । ६ सकलार्थग्राहणलक्षणातिशयः । ७ आगमः । ८ धर्मादिग्राहकं सर्वज्ञ-
ज्ञानम् । ९ अशेषार्थविषयः । १० मन्वादेः । ११ कालेन । १२ देशेन ।
१३ अनुमानादिज्ञानजनिततास्पष्टज्ञानवात् ।

१ श्रे कालिके तत्त्वसंग्रहे (पृ० ८१६, ८२०) पूर्वपक्षतया निवेधे ।

प्र० क० भा० २२

न च वक्तव्यम्—‘पुनःपुनर्भाव्यमानं भावनाप्रकर्षपर्यन्ते योगि-
ज्ञानरूपतामासादयत्तद्वैशद्यमाय भविष्यति । इदंयत्ते चाभ्यास-
बलात्कामशोकाद्युपहृतज्ञानस्य वैशद्यम्’ इति; तद्वदस्यैष्युपहृत-
त्वप्रसङ्गात् ।

- ५ किञ्च, अस्याखिलार्थग्रहणं सकलज्ञत्वम्, प्रधानभूतकतिप-
यार्थग्रहणं वा ? तत्राद्यपक्षे क्रमेण तद्ग्रहणम्, युगपद्वा ? न ताव-
त्क्रमेण; अतीतानागतवर्त्तमानार्थानां परिसमाप्त्यभावात्तज्ज्ञान-
स्याप्यपरिसमाप्तेः सर्वज्ञत्वायोगात् । नापि युगपत्; परस्परविरु-
द्धशीतोष्णाद्यर्थानामेकत्र ज्ञाने प्रतिभासासम्भवात् । सम्भवे वा
१० प्रतिनियतार्थस्वरूपप्रतीतिविरोधः ।

किञ्च, एकक्षण एवाशेषार्थग्रहणाद् द्वितीयक्षणेऽकिञ्चिज्ज्ञः
स्यात् । तथा परस्पररागादिसाक्षात्करणाद्रागादिमान्, अन्यथा
सकलार्थसाक्षात्करणविरोधः ।

- नापि प्रधानभूतकतिपयार्थग्रहणम्; इतरार्थव्यवच्छेदेन ‘पते-
१५ पामेव प्रयोजननिष्पादकत्वात्प्राधान्यम्’ इति निश्चयो हि सक-
लार्थज्ञाने सत्येव घटते, नान्यथा । तच्च प्रागेव कृतोत्तरम् ।

कथं चातीतानागतग्रहणं तत्स्वरूपासम्भवाद् ? असतो ग्रहणे
तैमिरिकज्ञानवत्प्राप्त्याभावात् । सत्त्वेन ग्रहणेऽतीतादेवर्त्तमान-
त्वम् । तथा चान्यकालस्यान्यकालतया वस्तुनो ग्रहणात्तज्ज्ञान-
२० स्यात्प्राप्त्याप्यम् ।

कथं चोसौ तद्भाष्याखिलार्थाज्ञाने तत्कालेऽप्यसर्वज्ञैर्ज्ञातुं श-
क्यते ? तदुक्तम्—

“सर्वज्ञोयमिति ह्येतत्तत्कालेऽपि बुभुक्षुभिः ।

तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानरहितैर्गम्यते कथम् ॥ १ ॥

- २५ कैल्पनीयाश्च सर्वज्ञा भवेयुर्वद्वस्तव ।

य एव स्यादसर्वज्ञः स सर्वज्ञं न बुद्धयते ॥ २ ॥

सर्वज्ञो नावबुद्धश्च येनैव स्याच्च तं प्रति ।

तद्भाष्यानां प्रमाणत्वं मूलाज्ञानेऽन्यैवाक्यवत् ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १३४-३६] इति ।

१ आगमानुमानजनितस्पर्शं ज्ञानम् । २ ज्ञाहृत । ३ सर्वज्ञानस्य । ४ मोक्ष-
लक्षणम् । ५ सर्वज्ञः । ६ तेन सर्वज्ञज्ञानेन । ७ तद्धि सर्वज्ञेनैव सर्वज्ञो ज्ञायते इत्युक्ते
सत्याह । ८ यतः । ९ मूलस्य ज्ञानकारणस्य सर्वज्ञलक्षणस्य । १० अन्यस्य
रज्यापुत्रस्य ।

अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्-सदुपलम्भकप्रमाणपञ्चका-
विषयत्वं साधनम्; तदसिद्धम्; तत्सद्भावावेदकस्यानुमानादेः
सद्भावात् । तथाहि-कश्चिदात्मा सकलपदार्थसाक्षात्कारी तद्ग्रहण-
स्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वात्, यद्यद्ग्रहणस्वभावत्वे
सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययं तत्तत्साक्षात्कारि यथापगततिमि-^५
रादिप्रतिबन्धं लोचनविज्ञानं रूपसाक्षात्कारि, तद्ग्रहणस्वभावत्वे
सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययश्च कश्चिदात्मेति । न तावत्सकलार्थ-
ग्रहणस्वभावत्वमात्मनोऽसिद्धम्; चोदनावलाघ्रिखिलार्थज्ञानोत्प-
त्यन्यानुपपत्तेस्तस्य तत्सिद्धेः, 'सैकलमनेकान्तात्मकं सत्त्वात्'
इत्यादिव्याप्तिज्ञानोत्पत्तेर्वा । यैद्वि यद्विषयं तत्तद्ग्रहणस्वभावम्^{१०}
यथा रूपादिपरिहारेण रसविषयं रासनविज्ञानं रसग्रहणस्वभा-
वम्, सकलार्थविषयश्चात्मा व्याप्त्यागमज्ञानाभ्यामिति । सौयं
“चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयक-
मर्थमवगमयितुमलं पुरुषान्” [शावरभा० १।१।२] इति स्वयं
ब्रुवाणो विधिप्रतिषेधविचारणानिवन्धनं साकल्येन व्याप्तिज्ञानं^{१५}
च प्रतिपद्यमानः सकलार्थग्रहणस्वभावतामात्मनो निराकरोतीति
कथं स्वस्यः ? प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वं च प्रागेव प्रसाधित-
त्वाभासिद्धम् ।

साध्यसाधनयोश्च प्रतिबन्धो न प्रत्यक्षानुमानाभ्यां प्रतिज्ञा-
यते येनोक्तदोषानुपपन्नः स्यात्, तर्काव्यग्रमाणान्तरात्तत्सिद्धेः । ^{२०}

यन्नाप्रतिपक्षपक्षधर्मत्वो हेतुर्न प्रतिनियतसाध्यप्रतिपत्त्यङ्गमि-
त्युक्तम्; तदप्यपेक्षलम्; न हि सर्वज्ञोर्ध्वं धर्मित्वेनोपात्तो येना-
स्यासिद्धरयं दोषः । किं तर्हि ? कश्चिदात्मा । तत्र चाविप्रतिपत्तेः ।
न चापक्षधर्मस्य हेतोरगमकत्वम्;

“पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमा ।

सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥” [

२५

इति स्वयमभिधानात् ।

यद्युक्तम्-सत्तासाधने सर्वो हेतुकार्यो दोषजार्ति नातिवर्चत
इति; तत्सर्वानुमानोऽलेदकारित्वादयुक्तम्; शक्यं हि वक्तुं धूम-

१ जैनैः । २ प्रक्षीणः प्रतिबन्धलक्षणः प्रलयः कारणं यस्य । ३ वस्तु । ४ आत्मा
सकलार्थग्रहणस्वभावो भवति सकलार्थविषयत्वादित्युपरिग्रहोन्वयम् । ५ मीमांसकः ।
६ इन्द्रिमान् । ७ विशेषणम् । ८ जनवसेतरेतरानुपपन्नः । ९ अर्थसाक्षात्कारित्वे
सत्वेन प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वं लोचने सिद्धं स्वभावादौ न दृष्टम् । अतः साध्यधर्मिणि
साध्यसाधनयोः सम्बन्धसिद्धिर्भवत्येव । १० परेण । ११ अनुमाने । १२ धर्मिणः ।

त्वादिर्यद्यग्निमत्पर्वतधर्मस्तदाऽसिद्धः, को हि नामाग्निमत्पर्वत-
धर्मं हेतुमिच्छन्नग्निमत्त्वमेव नैच्छेत् । तद्विपरीतधर्मश्चेद्विरुद्धः,
साध्यविरुद्धसाधनात् । उभयधर्मश्चेद्व्यभिचारी सपक्षेतरयोर्वर्त्त-
नात् । विमत्स्यधिकरणभावापन्नधर्मिधर्मत्वे धूमवत्त्वादेः सर्वं
५ सुस्थम् । यथा चाचलस्याचलत्वादिना प्रसिद्धसत्ताकस्य सन्दि-
ग्धाग्निमत्त्वादिसाध्यधर्मस्य धर्मो हेतुर्न विरुध्यते, तथा प्रसिद्धा-
त्मत्वादिविशेषणसत्ताकस्याप्रसिद्धसर्वज्ञत्वोपाधिसत्ताकस्य च
धर्मिणो धर्मः प्रकृतो हेतुः कथं विरुध्येत ?

यदपि अविशेषेण सर्वज्ञः कश्चित्साध्यते विशेषेण वेत्याद्यभि-
१० हितम्, तदप्यभिधानमात्रम्, सामान्यतस्तत्साधानात्तत्रैव विवा-
दात् । विशेषविप्रतिपत्तौ पुनर्दृष्ट्याविरुद्धवाक्त्वादहृत एवाशेषा-
र्थज्ञत्वं सेतस्यति । कथं वा तत्प्रतिषेधः अत्राप्यस्य दोषस्य समान-
त्वात् ? अहृतो हि तत्प्रतिषेधसाधनेऽप्रसिद्धविशेषणः पक्षो
व्याप्तिश्च न सिध्येत्, दृष्टान्तस्य साध्यशून्यतानुपपत्तात् । अनर्हत्-
१५ श्चेत्, स एव दोषो बुद्धादेः परित्यासिद्धेः, अनिष्टानुपपन्नज्ञाहृतस्तद-
प्रतिषेधात् । सामान्यतस्तत्प्रतिषेधे सर्वं सुस्थम् ।

यद्योक्तम्-एकज्ञानप्रत्यक्षत्वं सूक्ष्माद्यर्थानां साध्यत्वेनाभिप्रेतं
प्रतिनियतविषयानेकज्ञानप्रत्यक्षत्वं वेत्यादि, तदप्युक्तिमात्रम्,
प्रत्यक्षसामान्येन कस्यचित्सूक्ष्माद्यर्थानां प्रत्यक्षत्वसाधनात् १
२० प्रसिद्धे च तेषां सामान्यतः कस्यचित्प्रत्यक्षत्वे तत्प्रत्यक्षस्यैकत्वं-
मिन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षत्वात्सिध्येत्, तदपेक्षस्यैवास्यानेकत्वप्र-
सिद्धेः । तदनपेक्षत्वं च प्रमाणान्तरात्सिध्येत्, तथाहि-योगिप्रत्य-
क्षमिन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षं सूक्ष्माद्यर्थविषयत्वात्, यत्पुनरिन्द्रि-
यानिन्द्रियापेक्षं तच्च सूक्ष्माद्यर्थविषयम् यथासादादिप्रत्यक्षम्,
२५ तथा च योगिनः प्रत्यक्षम्, तस्मात्तथेति ।

किञ्च, एवं साध्यविकल्पनेनानुमानोच्छेदः । शक्यते हि
वक्तुम्-साध्यधर्मिधर्मोऽग्निः साध्यत्वेनाभिप्रेतः, दृष्टान्तधर्मिधर्मः,
उभयधर्मो वा ? प्रथमपक्षे विरुद्धो हेतुः, तद्विरुद्धेन दृष्टान्तध-

१ ज्ञानवान् । २ अतश्च हेतूपन्यासो व्यर्थः । ३ अनग्निमत्पर्वतधर्मः । ४ आदि-
पदेन व्यूहत्वादिना । ५ आदिपदेन अमूर्तत्वम् । ६ सर्वज्ञसाधने । ७ नीतो न
सर्वज्ञः पुरुषत्वाद्व्यापुरुषवदिति । ८ यो यः पुरुषः स सोऽहं सन् सर्वज्ञो न
भवतीति । ९ अन्यथा । १० रथ्यापुरुषस्य । ११ सर्वज्ञभाव । १२ भुगतादेः ।
१३ नीमासकस्य । १४ तस्य सर्वज्ञत्वस्य । १५ असत्पक्षेपि समान इत्यर्थः ।
कथम् ? सामान्यतः सर्वज्ञसाधने अप्रसिद्धविशेषणः पक्ष इत्यादिदूषणानि विशेषणक्षो-
ब्धानि नोपवीकृन्ते इति । १६ प्रत्यक्षस्य ।

मिणि तद्धर्मणाग्निना धूमस्य व्याप्तिप्रतीतेः । साध्यविकलञ्च
इष्टान्तः स्यात् । द्वितीयपक्षे तु प्रत्यक्षादिविरोधः । अयोमयग-
ताशिसामान्यं साध्यते तर्हि सिद्धसाध्यता ।

यथाव्यवृत्तम्-प्रमेयत्वं किमशेषहेयव्यापिप्रमाणप्रमेयत्वव्य-
क्तिलक्षणमसदादिप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिसङ्गं वेत्तादि । तद्धमादि-
सकलसाधनोन्मूलनहेतुत्वाच्च वक्तव्यम् । तथाहि-साध्यधर्मिधर्मो
धूमो हेतुत्वेनोपात्तः, इष्टान्तधर्मिधर्मो वा स्यात्, उभयगतसा-
मान्यरूपो वा ? साध्यधर्मिधर्मत्वे इष्टान्ते तस्याभावादन्वयो हेतु-
दोषः । इष्टान्तधर्मिधर्मत्वे साध्यधर्मिधर्मत्वादसिद्धता । उभय-
गतसामान्यरूपत्वेऽप्यसिद्धतैव, प्रत्यक्षत्वप्रत्यक्षत्वेनात्यन्तविक-
लक्षणमहानसाधनप्रदेशव्यक्तिद्वयाश्रितसामान्यस्यैवासम्भवात् ।
अथ कण्ठाक्षिविशेषादिलक्षणधर्मकलापसाधर्म्यान् महानसाधन-
प्रदेशाश्रितधूमव्यक्त्योरत्यन्तवैलक्षण्यं येनोभयगतसामान्यासिद्धे-
रसिद्धता स्यात् । तर्हि सापूर्वार्थव्यवसायात्मकत्वादधिधर्मकला-
पसाधर्म्यस्यातीन्द्रियेन्द्रियविषयप्रमाणव्यक्तिद्वयेऽत्यन्तवैलक्षण्य-
निवर्त्तकस्य सम्भवादुभयसाधारणसामान्यसिद्धेः कथं प्रमेयत्व-
साधनस्यासिद्धिः ?

यथावृत्तम्-प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां चार्थदोषार्थविषयत्वं चाध्यत
इत्यादि, तन्मनोरथमात्रम्, साध्यसाधनयोर्व्याप्यव्यापकभाव-
सिद्धौ हि व्याप्याभ्युपगमो व्यापकान्युपगमनान्तरीयको यैत्र २०
प्रदर्श्यते तत्प्रसङ्गसाधनम् । व्यापकनिवृत्तौ चावश्यं भाविनी
व्याप्यनिवृत्तिः स विपर्यया । न च प्रत्यक्षत्वसत्समीयोगजत्व-
विधैमानोपलम्भनत्वधर्माद्यनिमित्तत्वानां व्याप्यव्यापकभावः
कश्चित् प्रतिपन्नः । स्वात्मन्येवाश्रयं प्रतिपन्न इत्यप्यसङ्गतम् । चक्षु-
रादिकरणग्रामप्रभवप्रत्यक्षस्याव्यवहितदेशकालसमावाविमर्कहे- २५
प्रतिनियतरूपादिविषयत्वाभ्युपगमात्, विधैमस्य चामावादिम-

१ महान्तरे वृत्तान्तेत्याह । २ लोके । ३ सिद्धं नः (वैनाना) स्वीकृ-
तिं प्राप्नुमः । ४ सर्ववृत्तान्तादिलुके । ५ महान्ते । ६ यो वा सर्ववृत्त-
मात्रं स सोक्षिमानित्यन्यो न । ७ महान्तसर्ववृत्तान्तादिलुके । ८ अतीन्द्रियविषय-
लोकेन्द्रियविषयकं तयोर्ग्रहकं प्रमाणम् । ९ सङ्कलनप्रसङ्गोत्तरः । १० सर्वज्ञः ।
११ अनुभावे । १२ व्याप्य । १३ व्यापक । १४ व्याप्य । १५ व्यापक ।
१६ इष्टान्ते । १७ स्वीकृतिं । १८ कसः । १९ क्वापि प्रसङ्गे व्याप्यव्यापक-
भावः साध्यसाधनानां प्रतिपन्नस्याभिप्रेत्येऽसौ सात्र सर्वज्ञत्वप्रसङ्गे एव व्याप्यव्यापक-
भावस्य प्रतिपत्त्यादित्यर्थः । २० यत्प्रसङ्गस्यार्थं तद्व्यवहितदेशकालाव्यापक-
मिति नियमः ।

रुष्टार्थग्राहकेपि प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वदर्शनात् । तथाहि—अनेक-
योजनशतव्यवहितार्थग्राहि वैनतेयप्रत्यक्षं रामायणादौ प्रसिद्धम्,
लोके चातिदूरार्थग्राहि गृध्रवराहौदिप्रत्यक्षम्, स्मरणसव्यपेक्षे-
न्द्रियौदिजन्यप्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षं च कालविप्रकृष्टस्यातीतकाल-
५ सम्बन्धित्वस्यातीतदर्शनसम्बन्धित्वस्य च ग्राहि पुरोवर्त्तितायै
भवतैवाभ्युपगम्यते । अन्यथा—

“देशकालादिभेदेन तत्रास्त्यवसरो मितेः ।

इदानीन्तनमस्तित्वं न हि पूर्वधिया गतम् ॥”

[मी० श्लो० प्रत्यक्षसू० श्लो० २३३-३४]

१० इत्यादिना तस्यागृहीतार्थाधिगन्तृत्वं पूर्वापरकालसम्बन्धित्वलक्ष-
णनित्यत्वग्राहकत्वं च प्रतिपाद्यमानं विरुध्येत । प्रातिमं च ज्ञानं
शब्दलिङ्गाक्षव्यापारानपेक्षं ‘श्वो मे आता आगन्ता’ इत्याद्याकार-
मनागतातीन्द्रियकालविशेषणार्थप्रतिभासं जाग्रदृश्यां स्फुटतर-
मनुभूयते ।

१५ किञ्च, धर्मादेरतीन्द्रियत्वाच्चक्षुरादिनानुपलम्भः, अविद्यमान-
त्वाद्वा स्यात्, अविशेषणत्वाद्वा ? न तावदाद्यः पक्षः, अतीन्द्रि-
यस्याप्यतीतकालादेरुपलम्भाभ्युपगमात् । नाप्यविद्यमानत्वात्,
भाविर्धर्मादेरतीतकालादेरिवाविद्यमानत्वेऽप्युपलम्भसम्भवात् ।
अविशेषणत्वं तु तस्यासिद्धं सकललोकोपभोग्यार्थजनकत्वेन

२० द्रव्यगुणकर्मजन्यत्वेन चास्याखिलार्थविशेषणत्वसम्भवात् । अती-
तार्थेतीन्द्रियकालादेरिवास्यापि विशेषणग्रहणप्रवृत्तचक्षुरादिना
ग्रहणोपपत्तेः कथं धर्मं प्रत्यस्यैनिमित्तत्वसाधने प्रसङ्गविपर्य-
यसम्भवः ? प्रज्ञादिमन्त्रादिना च संस्कृतं चक्षुर्यथा कालविप्रकृष्टा-
र्थस्य द्रव्यविशेषसंस्कृतं च निर्जीविकादिचक्षुर्जलाद्यन्तरितार्थस्य

२५ ग्राहकं दृष्टम्, तथा पुण्यविशेषसंस्कृतं सूक्ष्माद्यशेषार्थग्राहि
अविष्यतीति न कश्चिदृष्टस्वभावातिक्रमः । ‘स्वात्मनि च यावज्जि-
कारणैर्जनितं यथाभूतार्थग्राहि प्रत्यक्षं प्रतिपन्नं तथा सर्वत्र
सर्वदा प्राण्यन्तरेपि’ इति नियमे न कञ्चराणामनालोकान्ध-

१ ज्ञाने । २ वराहः पिपीलिका । ३ अनिन्द्रियमादिपदेन । ४ धर्मस्य ।
५ देवदत्तलक्षणे । ६ मीमांसकेन । ७ स्वभावादिरादिपदेन । ८ पूर्वप्रमाणगृहीतेष्वे
देवदत्तलक्षणे । ९ प्रत्यभिज्ञायाः । १० परिश्रुतम् । ११ प्रत्यभिज्ञानस्य । १२ भवता ।
१३ योगजधर्मकारणधर्मोपलम्भे । १४ जनागतमादिपदेन । १५ सर्वज्ञानस्य ।
१६ अग्राहकत्वसाधने । १७ आदिपदेन संज्ञा । १८ तत्रमादिपदेन । १९ कर्म-
धार । २० योगिचक्षुः ।

कारव्यवहितरूपाद्युपलम्भो न स्यात्स्वात्मनि तथाऽनुपलम्भात् ।
प्राप्यन्तरे स्वात्मन्यनुपलब्धस्यानालोकान्धकारव्यवहितरूपाद्युप-
लम्भलक्षणातिशयस्य सम्भवे सूक्ष्माद्युपलम्भलक्षणातिशयोपि
स्यात् । जात्यन्तरत्वं चोभेयत्र समानम् । अभ्युपगम्य चाक्ष-
जत्वं सर्वज्ञज्ञानस्यातीन्द्रियार्थसाक्षात्कारित्वं समर्थितं नार्थतः, ५
तज्ज्ञानस्य घातिकर्मचतुष्टयक्षयोद्भूतत्वात् ।

यच्चास्य ज्ञानं चक्षुरादिजनितं वेत्याद्यमिहितम्; तदप्यचारु;
चक्षुरादिजन्यत्वेऽप्यनन्तरं धर्मादिग्राहकत्वाविरोधस्योक्तत्वात् ।
यच्चाभ्यासजनितत्वेऽभ्यासो हीत्याद्युक्तम्; तदप्ययुक्तम्;
“उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्” [तत्त्वार्थसू० ५।३०] इत्यखिलार्थ-१०
विषयोपदेशस्याविसंवादिनो ज्ञानस्य च सामान्यतः सम्भवात् ।
न च तज्ज्ञानवत् एवाशेषज्ञत्वाद्व्यर्थोभ्यासः; तस्य सामान्यतोऽ-
स्पष्टरूपस्यैवाविर्भावात्, अभ्यासस्य तत्प्रतिबन्धकापायसहा-
यस्याशेषविशेषविषयस्पष्टज्ञानोत्पत्तौ व्यापारात् । नाप्यन्योन्या-
श्रयः; अभ्यासादेर्वाखिलार्थविषयस्पष्टज्ञानोत्पत्तेरनभ्युपगमात् । १५

शब्दप्रभवपक्षेप्यन्योन्याश्रयानुषङ्गोऽसङ्गतः; कारकपक्षे तद-
सम्भवात् । पूर्वसर्वज्ञप्रणीतागमप्रभवं ह्येतस्याशेषार्थज्ञानम्,
तस्याप्यन्यसर्वज्ञागमप्रभवम् । न चैवमनवस्थादोषानुक्तः; बीजा-
ङ्कुरवदनादित्वेनाभ्युपगमादागमसर्वज्ञपरम्परयाः ।

यच्चानुमानाविर्भावितत्वपक्षे सम्बन्धासिद्धेरित्युक्तम्; तदस-२०
मीचनम्; प्रमाणान्तरात्सम्बन्धसिद्धेरभ्युपगमात् । न खलु कश्चि-
त्तस्यागोचरोस्ति सर्वत्रेन्द्रियातीन्द्रियविषये प्रवृत्तेरन्यथा तत्रा-
नुमानाप्रवृत्तिप्रसङ्गात्, तस्य तन्निबन्धनत्वात् ।

यच्चानुमानागमज्ञानस्य चास्पष्टत्वादित्यमिहितम्; तदप्यसमी-
क्षितामिधानम्; न हि सर्वथा कारणसदृशमेव कार्यं विलक्षण-२५
स्याप्यङ्कुरादेर्बीजादेरुत्पत्तिदर्शनात् । सर्वत्र हि सामग्रीमेवात्का-
र्यमेव; । अत्राप्यागमादिज्ञानेनाभ्यासप्रतिबन्धकापायादिसामग्री-
सहायेनासादिताशेषविशेषवैशद्यं विज्ञानमाविर्भाव्यते ।

भावनावलङ्घ्रिशये कामाद्युपलुप्तज्ञानवत्सर्वोप्युपलुप्तत्वप्रसङ्गः;

१ नक्तञ्चरादौ सर्वलक्षणने प्राप्यन्तरे च । २ परमार्थतः । ३ सर्वज्ञस्य ।
४ पुरुषस्य । ५ अशेषविशेषविषयस्पष्टज्ञान । ६ केवलम् । ७ जैनेः । ८ उच्यते ।
९ तर्कलक्षणात् । १० इन्द्रियतीन्द्रियाविषये प्रवृत्तिर्न स्यादिति । ११ सर्वत्र ।
१२ आदिपदेनानुमानम् । १३ आदिपदेन देशकाजति । १४ अशेषज्ञानस्य ।

इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतो 'भावनावलाद् ज्ञानं वैशद्यमनुभवति'
इत्येतावन्भावेण तज्ज्ञानस्य दृष्टान्तोपपत्तेः । न चाशेषदृष्टान्त-
धर्माणां साध्यधर्मिण्यापादनं युक्तं सकलानुमानोच्छेदप्रसङ्गात् ।
न चाशेषज्ञानं क्रमेणाशेषार्थग्राहीभ्यते येन तत्पक्षनिक्षिप्तदोषोप-
५ निपातः; सकलावरणपरिक्षये सहस्रकिरणवद्युगपन्निखिलायौद्-
द्योतनस्वभावत्वात्तस्य कारणक्रमव्यवधानातिवर्त्तित्वाच्च ।

यच्चोक्तम्-युगपत्परस्परविरुद्धशीतोष्णाद्यर्थानामेकत्र ज्ञाने
प्रतिभासासम्भवः; तदप्यसारम्; तत्र हि तेषामभावादप्रतिभासः;
ज्ञानस्यासामर्थ्याद्वा ? न तावदभावात्; शीतोष्णाद्यर्थानां सकृ-
१० त्सम्भवात् । ज्ञानस्यासामर्थ्यादित्यसत्; परस्परविरुद्धानाम-
अन्धकारोद्घोतादीनामेकत्र ज्ञाने युगपत्प्रतिभाससंवेदनात् ।
सकृदेकत्र विरुद्धार्थानां प्रतिभासासम्भवे 'यत्कृतकं तदन्त्यम्'
इत्यादिव्याप्तिश्च न स्यात्, साध्यसाधनरूपतया तयोर्विरुद्धत्व-
सम्भवात् । नाप्येकत्र तेषां प्रतिभासे तज्ज्ञानस्य प्रतिनियतार्थ-
१५ ग्राहकत्वविरोधः; अन्धकारोद्घोतादिविरुद्धार्थग्राहिणोऽपि
प्रतिनियतार्थग्राहकत्वप्रतीतेः ।

यथान्यदुक्तम्-एकक्षणं यदाशेषार्थग्राहणाद्वितीयक्षणेऽहः
स्यात्; तदप्यसम्यग्भ्रमः; यदि हि द्वितीयक्षणेऽर्थानां तज्ज्ञानस्य
चामाशस्तदाऽयं दोषः । न चैवम्, अनन्तत्वात्तद्वयस्य । पूर्वं हि
२० भाविनोऽर्था भावित्वेनोत्पत्त्यमानतया प्रतिपन्ना न वर्त्तमानत्वेनो-
त्पन्नतया वा । साप्युत्पन्नता तेषां भवितव्यतया प्रतिपन्ना न
भूततया । उत्तरकालं तु तद्विपरीतत्वेन ते प्रतिपन्नाः । यदा हि
यद्धर्मविशिष्टं वस्तु तदा तज्ज्ञाने तथैव प्रतिभासते नान्यथा
विभ्रमप्रसङ्गात् इति कथं गृहीतग्राहित्वेनाप्यस्यैव प्रामाण्यम् ?

२५ यच्चेदं परस्परगमादिसाक्षात्करणाद्रागादिमानित्युक्तम्; तद-
प्ययुक्तम्; तैद्यापरिणामो हि 'तैत्त्वकारणं न संवेदनमात्रम्,
अन्यथा 'मद्यादिकमेवंविधरसम्' इत्यादिवाक्यात्तच्छ्रोत्रियो
यदा प्रतिपद्यते तदाऽस्यापि तद्रसास्वादनदोषः स्यात् । अरस-
नेन्द्रियजत्वात्तस्यादोषोयम्; इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि सर्व-

१ प्राप्नोति । २ सर्वज्ञाने । ३ चैनेः । ४ द्रुपदइनाथवयविनि । ५ आदि-
पदेनाहिनकुलादीना च । ६ कृतकत्वानित्यत्वयोः । ७ अन्धत्वलक्षणः । ८ भावि-
नोऽर्थाः । ९ सर्वज्ञाने । १० सत्पत्त्यमानतादितिरूपणप्रकारेण । ११ सर्वज्ञ-
ज्ञानस्य । १२ रागादिरूपतया । १३ तत्त्वस्य रागादिमत्त्वस्य । १४ जानाति ।
१५ मथादिज्ञानस्य । १६ सर्वज्ञज्ञानेति ।

ज्ञानमिन्द्रियप्रभवं प्रतिपाद्यते । किञ्चाङ्गनालिङ्गनसेवनाद्यमि-
लाषस्येन्द्रियोद्रेकहेतोराविर्भावाद्वागादिमत्त्वं प्रसिद्धम् । न चासौ
प्रक्षीणमोहे भगवत्यस्तीति कथं रागादिमत्त्वस्याशङ्कापि ।

यदप्यमिहितम्-कथं चातीतादेर्ग्रहणं तत्स्वरूपासम्भवादि-
त्यादि; तदप्यसारम्, यतोऽतीतादेरतीतादिकालसम्बन्धित्वेना-
सत्त्वम्, तज्ज्ञानकालसम्बन्धित्वेन वा ? नाद्यः पक्षो युक्तः; वर्त्त-
मानकालसम्बन्धित्वेन वर्त्तमानस्येव स्वकालसम्बन्धित्वेनातीता-
देरपि सत्त्वसम्भवात् । वर्त्तमानकालसम्बन्धित्वेन त्वतीतादेर-
सत्त्वमभिमतमेव, तत्कालसम्बन्धित्वेन तत्सत्त्वयोः परस्परं मेदात् ।
न चैतत्कालसम्बन्धित्वेनासत्त्वे स्वकालसम्बन्धित्वेनाप्यतीतादेर-
सत्त्वम्; वर्त्तमानकालसम्बन्धिनोप्यतीतादिकालसम्बन्धित्वेना-
सत्त्वात् तस्याप्यसत्त्वप्रसङ्गात् सकलशून्यतानुषङ्गः । न चाती-
तादेः सत्त्वेन ग्रहणे वर्त्तमानत्वानुषङ्गः; स्वकालनियतसत्त्वरूप-
तयैव तस्य ग्रहणात् । ननु चातीतादेस्तज्ज्ञानैकाले असन्निधाना-
त्कथं प्रतिभासः, सन्निधाने वा वर्त्तमानत्वप्रसङ्गः प्रसिद्धवर्त्त-
मानवत्; इत्यपि मन्त्रादिसंस्कृतलोचनादिज्ञानेन व्याप्तिज्ञानेन
च प्रागेव कृतोत्तरम् ।

अथोच्यते—‘पूर्वं पश्चाद्वा यदि केचित्कदाचिन्निखिलदर्शिनो
विज्ञानं विश्रान्तं तर्हि तावन्मात्रत्वात्संसारस्य कुतोऽनाद्यन-
न्तता ? अथ न विश्रान्तं तर्हि नानेकयुगसहस्रेणापि सकलसंसा-
रसाक्षात्करणम्’ इति; तदप्युक्तिमात्रम्; यतः किमिदं विश्रा-
न्तत्वं नाम ? किं किञ्चित्परिच्छेद्याऽपरस्यापरिच्छेदः, सकल-
विषयदेशकालगमनासामर्थ्यादधीन्तरेऽवस्थानं वा, कचिद्विषये
उत्पद्य विनाशो वा ? न तावदाद्यविकल्पो युक्तः; अर्नभ्युपगमात् ।
न खलु सर्वज्ञज्ञानं क्रमेणार्थपरिच्छेदकम्, युगपदशेषार्थोद्घोत-
कत्वात्तस्येत्युक्तम् । द्वितीयविकल्पोप्यनभ्युपगमादेवायुक्तः । न
हि विषयस्य देशं कालं वा गत्वा ज्ञानं तत्परिच्छेदकमिति केना-
प्यभ्युपगतम्, अप्राप्यकारिणस्तस्य कचिद्वमनाभावात् । केवलं
यथाऽनाद्यनन्तरूपतया स्थितोर्यस्तयैव तत्प्रतिपद्यते । तृतीय-
विकल्पोप्ययुक्तः; कचिद्विषये तस्योर्त्येवस्यात्मस्वभावतया विना-
शासम्भवात् । न हि स्वभावो र्भावस्य विनश्यति स्फटिकस्य

१ नसः । २ अर्थस्य । ३ जैनानाम् । ४ तत्सातीतादेः । ५ अन्यथा ।
६ अतीतकाल । ७ वर्त्तमानज्ञानकाले । ८ उत्तरम् । ९ अर्थे । १० समाप्तम् ।
११ ता । १२ कस्मिंश्चिदस्तुति । १३ जैनानाम् । १४ जैनानाम् । १५ ज्ञानस्य ।
१६ पदार्थस्य ।

स्वच्छतादिवत्, अन्यथा तस्याप्यभावः स्यात् । औपाधिकमेव हि रूपं नश्यति यथा तस्यैव रक्तिमादि । कथं चैवंवादिनो वेदस्यानाद्यनन्तताप्रतिपत्तिस्तत्राप्युक्तविकल्पानामवतारात् ? कथं वा साध्यसाधनयोः साकल्येन व्याप्तिप्रतिपत्तिः, सामान्येन व्याप्ति-
५ प्रतिपत्तावप्यनाद्यनन्तसामान्यप्रतिपत्तार्थकदोषानुषङ्ग एव ।

यच्चोक्तम्—‘कथं चासौ तत्कालेऽसर्ववैज्ञातुं शक्यते ? तदपि फल्गुप्रायम् ; विवर्थापरिज्ञाने विषयिणोऽप्यपरिज्ञानाभ्युपगमे कथं जैमिन्यादेः सकलवेदार्थपरिज्ञाननिश्चयोऽसकलवेदार्थविदोम् ? तदनिश्चये च कथं तद्व्याख्यातार्थाश्रयणाद्विज्ञोत्रादावनुष्ठाने
१० प्रवृत्तिः ? कथं वा व्याकरणादिसकलशास्त्रार्थापरिज्ञाने तदर्थज्ञतानिश्चयो व्यवहारिणाम् ? यतो व्यवहारप्रवृत्तिः स्यात् ।

सुनिश्चितासम्भवद्वाधकप्रमाणत्वाच्चाशेषार्थवेदिनो भगवतः सत्त्वसिद्धिः । न चेदमसिद्धम् ; तथाहि—सर्वविदोऽभावः प्रत्यक्षेणाधिगम्यः, प्रमाणान्तरेण वा ? न तावत्प्रत्यक्षेण ; तद्धि सर्वत्र
१५ सर्वदा सर्वैः सर्वज्ञो न भवतीत्येवं प्रवर्त्तते, क्वचित्कदाचित्कश्चिद्वा ? प्रथमपक्षे न सर्वज्ञाभावस्तज्ज्ञानवत् एवाशेषज्ञत्वात् । न हि सकलदेशकालाश्रितपुरुषपरिषत्साक्षात्करणमन्तरेण प्रत्यक्षतत्तदाधारमसर्वज्ञत्वं प्रत्येतुं शक्यम् । द्वितीयपक्षे तु न सर्वथा सर्वज्ञाभावसिद्धिः ।

२० अथ न प्रवर्त्तमानं प्रत्यक्षं सर्वज्ञाभावसाधकं किन्तु निवर्तमानम् । ननु कौरणस्य व्यापकस्य वा निवृत्तौ कार्यस्य व्याप्यस्य वा निवृत्तिः प्रसिद्धा नान्यनिवृत्तावेन्यनिवृत्तिरतिप्रसङ्गात् । न चाशेषज्ञस्य प्रत्यक्षं कौरणं व्यापकं वा येन तन्निवृत्तौ सर्वज्ञस्यापि निवृत्तिः । न चैवं घटाद्यभावासिद्धिः एकज्ञानसंसर्गिपदार्था-

१ जपाकुसुमादिजनितम् । २ सर्वज्ञानस्य क्वचिद्विभ्रान्तत्वाच्च सर्वज्ञत्वमिलेर्न वादिनः । ३ वेदस्यानाद्यनन्तताग्राहकं जैमिन्यादिज्ञानं क्वचिद्विभ्रान्तमित्यादि । ४ किञ्च । ५ व्याप्तिविशेषतः प्रत्येतुं नायाति व्यक्तीनामानन्त्यात् । अतः सामान्येनेत्युक्तम् । ६ सामान्यमनाद्यनन्तमीदृक्षसामान्यस्य ग्राहकं व्याप्तिज्ञानं क्वचिद्विभ्रान्तं न वेत्यादि । ७ सर्वज्ञः । ८ सर्वज्ञः । ९ अर्थः । १० ज्ञानस्य । ११ अवाद्वाद्यात् । १२ स्वात्मनि मुखादिवत् । १३ असदादेः । १४ जगत्यादेः । १५ वृक्षत्वस्य । १६ भूमादेः । १७ शिक्षापात्रस्य । १८ अकारणस्याऽव्यापकस्य वा । १९ अकार्यत्वाऽव्याप्यस्य वा । २० घटनिवृत्तौ घटनिवृत्तिप्रसङ्गात् । २१ असदादेः । २२ सर्वज्ञाभावासिद्धि-प्रकारेण । कथम् ? न प्रवर्त्तमानं प्रत्यक्षं घटाभावसाधकं किन्तु निवर्त्तमानमित्युक्ते ननु कारणसेत्यादिग्रन्थो निवृत्तिपर्यन्तः । किन्तु सर्वज्ञपदस्थाने घटपदं पठनीयम् ।

न्तरोपलम्भात् क्वचित्तिच्छेदः । न चात्राप्ययं न्यायः समानस्त-
त्संसर्गिण एव कस्यचिद्भावत्, अन्यथा सर्वत्र तदभावविरोधो
घटादिवत् । तत्र प्रत्यक्षेणाधिगम्यस्तदभावः ।

नाप्यनुमानेन; विवादाध्यासितः पुरुषः सर्वज्ञो न भवति
वक्तृत्वाद्ग्रथ्यापुरुषवदित्यनुमाने हि प्रमाणान्तरसंवादिनोऽर्थस्य ५
वक्तृत्वं हेतुः, तद्विपरीतस्य वा स्यात्, वक्तृत्वमात्रं वा? प्रथम-
पक्षे विरुद्धो हेतुः, प्रमाणान्तरसंवादिसूक्ष्माध्यर्थवक्तृत्वस्याशे-
षक्षे एव भावात् । द्वितीयपक्षे तु सिद्धसाधनम्; तथाभूतस्य
वक्तृत्वसर्वज्ञत्वेनास्माभिरभ्युपगमात् । वक्तृत्वमात्रस्य तु हेतोः
साध्यविपर्ययेण सर्वज्ञत्वेनानुपलब्धेन सह सहानवस्थानपरस्प- १०
रपरिहारस्थितिलक्षणविरोधासिद्धेस्ततो व्यावृत्त्यभावाच्च स्वसा-
ध्यनिर्यतत्वं यतो गमकत्वं स्यात् । सर्वज्ञे वक्तृत्वस्यानुपलब्धे-
स्ततो व्यावृत्तिरित्यप्यसम्यक्; सर्वसम्बन्धिनोऽनुपलम्भस्या-
सिद्धेः, तेनैव सर्वज्ञान्तरेण वा तत्र तस्योपलम्भसम्भवात् । सर्व-
ज्ञस्य कस्यचिद्भावात्सर्वसम्बन्धिनोऽनुपलम्भस्य सिद्धिरित्यस- १५
ङ्गतम्, प्रमाणान्तरात्तत्सिद्धावस्यै वैयर्थ्यात् । अतः सिद्धौ वैक-
कानुषङ्गः । नापि स्वसम्बन्धिनोऽनुपलम्भात्तद्व्यतिरेकनिश्चयः,
अस्य परचेतोवृत्तिविशेषैरनैकान्तिकत्वात् ।

न चाखिलसाधनेषु दोषस्यासौ समानत्वाभिखिलानुमानो-
च्छेदः, तत्र विपक्षव्यावृत्तिनिमित्तस्यानुपलम्भव्यतिरेकेण प्रमा- २०
णान्तरस्य भावात् । न चात्र कार्यकारणभावः प्रसिद्धः, असर्व-
ज्ञत्ववैमानुविधानाभावाच्चनस्य । यच्च यत्कार्यं तत्तद्वैमानुवि-
धायि प्रसिद्धं वैज्ञानादिसामग्रीगतसुरभिगन्धार्यनुविधायिधूम-

१ भूतल । २ घटादभाव । ३ सर्वज्ञेति । ४ एकज्ञानसंसर्गिपदाद्यन्तरोप-
लम्भात् क्वचिद् घटाभावप्रतिपत्तिलक्षणः । ५ प्रवेशस्य । ६ एकज्ञानसंसर्गिकोपि
कश्चित्प्रदेशो भवेद्यदि । ७ आदिपदेनान्तरितं दूरम् । ८ जैनैः । ९ सर्वज्ञायाव ।
१० अतश्च सन्दिग्धविपक्षव्यावृत्तिको हेतुः । ११ वक्तृत्वमात्रस्य । १२ अविनाभूत-
त्वम् । १३ वक्तृत्वस्य । १४ प्रकृतसर्वज्ञेन । १५ प्रकृतानुमानस्य । १६ वक्तृत्वानु-
मानस्य । १७ वक्तृत्वानुमानात्सर्वज्ञाभावसिद्धिसिद्धौ च सर्वज्ञसाधनस्य व्यावृत्ति-
सिद्धिरतस्यानुमानमिति । १८ वक्तृत्वस्य । १९ सर्वज्ञलक्षणादिपक्षाद् व्यावृत्ति-
निश्चयः । २० अभावसाध्यसाधकानां निखिलसाधनानां पक्षेनुपलम्भः सर्वसम्बन्धी
आत्मसम्बन्धीवेत्याद्युक्ते असिद्धानैकान्तिकत्वलक्षणस्य । २१ यत्राग्निर्नास्ति तत्र धूमोपि
नास्ति । २२ ऊहस्य । २३ वक्तृत्वासर्वज्ञत्वयोः । २४ यसः । २५ वचनम-
सर्वशकार्यं न भवति तद्वैमानुविधानाभावात् । २६ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सतीदमाह ।
२७ यसः । २८ आदिपदेन अगम्य ।

वत् । तथाहि असर्वज्ञत्वं सर्वज्ञत्वादन्यत्पर्युदासधृत्या किञ्चिज्ज्ञत्वमभिधीयते । न च तत्तरतमभावाद्बचनस्य तथाभावो दृश्यते तद्विप्रकृष्टमत्यल्पज्ञानेषु कृम्यादिषु, न च तत्र वचनप्रवृत्तेः प्रकर्षो दृश्यते । अथ प्रसज्यप्रतिषेधवृत्त्या सर्वज्ञत्वामावोऽसर्वज्ञत्वं ५ तत्कार्यं वचनम्, तर्हि ज्ञानरहिते मृतशरीरादौ तस्योपलम्भप्रसङ्गो ज्ञानातिशयवस्तु चाखिलशास्त्रव्याख्यातृषु वचनातिशयोपलम्भो न स्यात् । न चैवम्, ततो ज्ञानप्रकर्षतरतमाद्यनुविधानदर्शनात्तस्य तत्कार्यता सातिशयतद्वादिर्कारणधर्मानुविधायिप्रासादादिकार्यविशेषवत् । तच्चानुमानात्तदभावसिद्धिः ।

१० नाप्यागमात्, स हि तत्प्रणीतः, अन्यप्रणीतः, अपौरुषेयो वा तदभावसाधकः स्यात् ? तत्र यद्यागमप्रणेता सकलं सकलज्ञविकलं साक्षात्प्रतिपद्यते युक्तोसौ तत्र प्रमाणम्, किन्तु विद्यमानोपि न प्रकृतार्थोपयोगी, तथा प्रतिपद्यमानस्य तस्यैवाशेषज्ञत्वात् । न प्रतिपद्यते चेत्, तर्हि रथ्यापुरुषप्रणीतागमवन्नसौ १५ तत्र प्रमाणम् । न ह्यविदितार्थस्वरूपस्य प्रणेतुः प्रमाणभूतागमप्रणयनं नामातिप्रसङ्गात् । द्वितीयविकल्पेऽप्येतदेव वक्तव्यम् ।

अपौरुषेयोप्यागमो जैमिन्यादिभ्यो यदि सर्वत्र सर्वदा सर्वज्ञाभावं प्रतिपादयेत्तर्हि सर्वस्य प्रतिपादयेत् केनचित् सह प्रत्यासत्तिविप्रकर्षविरहात् । तथा च—

२० “विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुस्त विश्वतः पादौ ।” [श्वेताश्वत० ३।३]

सं वेत्ति विश्वं न हि तस्य वेत्ता तमाहुरभ्यं पुरुषं महास्तम् ।” [श्वेताश्वत० ३।१९] “हिरण्यगर्भे” [ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १० सू० १२१] प्रकृत्य “सर्वज्ञः” इत्यादौ न न कस्यचिद्धिः २५ प्रतिपत्तिः स्यात्—“किमनेन” सर्वज्ञः प्रतिपाद्यते कैर्मविशेषो वा स्तूयते” इति । न खलु प्रदीपप्रकाशिते घटादौ कस्यचिद्धिः प्रतिपत्तिः—“किमयं घटः पटो वा” इति । न च स्वरू-

१ यदि । २ सर्वथा ज्ञानाभावः । ३ ज्ञानातिशय । ४ वसः । ५ सातिशयत्व । ६ सर्वसकलज्ञविकल्पे । ७ सर्वज्ञाभावकल्पेऽप्ये । ८ सर्वज्ञाभावे । ९ रथ्यापुरुषस्य प्रमाणभूतागमप्रणेतृत्वं स्यात् । १० भीमासकेन नैवायिकादिना च । ११ प्रस्तुतम् । १२ वेदवाक्येन । १३ यागरुक्षणः ।

१ ‘सम्बाहुभ्यां भवति सम्पतत्रैः बावाभूमी जनयन् देव एकः’ इत्युत्तरार्द्धम् ।

२ ‘अपाणिपादो जननो ग्रहीता पदयलचक्षुः स सृणोत्यकर्णः’ इति पूर्वार्द्धम् ।

येऽस्याप्रामाण्यम् । अविर्सवादो हि प्रमाणलक्षणं कार्यं स्वरूपे
कार्ये, नोन्यत् । यत्र सोस्ति तत्प्रमाणम् । न चाशेषज्ञाभावावेदकं
किञ्चिद्वेदवाक्यमस्ति, तत्सद्भावावेदकस्यैव श्रुतेः । तन्नागमा-
दप्यस्याभावसिद्धिः ।

नाप्युपमानात्, तत्खलूपमानोपमेययोरध्यक्षत्वे सति साह- ५
इयावलम्बनमुदयमासादयति नान्यथा । न चात्रत्येदानीन्तनोप-
मानभूताशेषपुरुषप्रत्यक्षत्वम् उपमेयभूताशेषान्यदेशकालपुरुष-
प्रत्यक्षत्वं चाभ्युपगम्यते; सर्वज्ञसिद्धिप्रसङ्गात्, निखिलार्थप्रत्य-
क्षत्वमन्तरेणाशेषपुरुषपरिषत्साक्षात्कारित्वासम्भवात् ।

नाप्यर्थोपपत्तेस्तदभावावगमः, सर्वज्ञाभावमन्तरेणानुपजायमा- १०
नस्य प्रमाणषड्विज्ञातस्य कस्यचिदर्थस्यासम्भवात् । वेदप्रामा-
ण्यस्य शुणवत्पुरुषप्रणीतत्वे सत्येव भावात् । अपौरुषेयत्वस्याग्रे
विस्तरतो निषेधात् । न चार्थापत्तिरनुमानात्प्रमाणान्तरमित्यग्रे
वक्ष्यते । तद्वदत्रापि व्योत्यादिचिन्तायां दोषान्तरं चापादनीयम् ।

नाप्यभावप्रमाणात्तदभावसिद्धिः, तस्यासिद्धेः, तदसिद्धिश्चा- १५
भावप्रमाणलक्षणस्य

“प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते ।

सात्मनोऽपरिणामो वा विज्ञानं वान्यवस्तुनि ॥”

[मी० श्लो० अभावप० श्लो० ११]

इत्यादेः प्रागेव विस्तरतो निराकरणात्सिद्धा । इत्यलमतिप्रसङ्गेन । २०
न चानुमाने तत्सद्भावावेदके सत्येतत्प्रवर्त्तते—

“प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपे न जायते ।

वस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणता ॥”

[मी० श्लो० अभावप० श्लो० १]

इत्यभिधानात् । किञ्च, अभावप्रमाणं

२५

“गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगि- ॥

मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽज्ञानपेक्षया ॥”

[मी० श्लो० अभावप० श्लो० २७]

इति सामग्रीतः प्राबुर्भवति । न चाशेषज्ञानास्तिताधिकरणाखिल-
देशकालप्रत्यक्षता कस्यचिदस्त्यतीन्द्रियार्थदर्शित्वप्रसङ्गात् । ३०

१ छतिवाक्यस्य । २ प्रवर्त्तकम् । ३ प्रमाणत्वेनाद्गीकृतवचनादौ । ४ अभ्युप-
गम्यते चेत्तर्हि सर्वज्ञो वेदप्रामाण्यवानुपपत्तेः । ५ सपक्षेऽन्यथादि । ६ विचारणा-
याम् । ७ आभवातिष्ठिलक्षणोपादन्यत्सम्भवाप्रतिपत्त्यनवसेतरेतराभयलक्षणं दोषा-
न्तरम् । ८ अभावप्रमाणरूपणविवारेण । ९ षटासदशलक्षणे ।

प्र० क० मा० २३

नाप्यशेषज्ञः क्वचित्कदाचित्केनचित्प्रतिपन्नो येनासौ स्मृत्वा निवे-
ध्येत, सर्वत्र सर्वदा तन्निषेधविरोधात् । न च निषेध्यनिषेध्याधार-
योरप्रतिपत्तौ निषेधो नामातिप्रसङ्गात् । न ह्यप्रतिपन्ने भूतले घटे
च घटनिषेधो घटते । यथा चाभावप्रमाणस्योत्पत्तिः स्वरूपं विषयो
५ वा न सम्भवति तथा प्राक्प्रपञ्चेनोक्तमिति कृतमतिप्रसङ्गेन ।

तन्नाभावप्रमाणादप्यशेषज्ञाभावसिद्धिः । तदेवं सिद्धं सुनिश्चि-
तासम्भवद्वाधकप्रमाणत्वमप्यशेषज्ञस्य प्रसाधकम् इत्यलमतिप्र-
सङ्गेन ।

ननु चावरणविच्छेपादशेषवेदिनो विज्ञानं प्रभवतीत्यसाम्प्रतम् ।
१० तस्यानादिमुक्तत्वेनावरणस्यैवासम्भवादिति चेत्, तदयुक्तम् ।
अनादिमुक्तत्वस्यासिद्धेः । तथाहि—नेश्वरोऽनादिमुक्तो मुक्तत्वा-
त्तदन्यमुक्तवत् । बन्धापेक्षया च मुक्तव्यपदेशः, तद्रहिते
चास्याप्यभावेः स्यादाकाशवत् ।

ननु चानादिमुक्तत्वं तस्यानादेः क्षित्यादिकार्यपरम्परायाः कर्तृ-
१५ त्वात्सिद्धम् । न चास्य तत्कर्तृत्वमसिद्धम् ; तथाहि—क्षित्यादिकं
बुद्धिमद्भेतुकं कार्यत्वात्, यत्कार्यं तद्बुद्धिमद्भेतुकं दृष्टम् यथा
घटादि, कार्यं चेदं क्षित्यादिकम्, तस्माद्बुद्धिमद्भेतुकम् । न चात्र
कार्यत्वमसिद्धम् ; तथाहि—कार्यं क्षित्यादिकं सावयवत्वात् ।
यत्सावयवं तत्कार्यं प्रतिपन्नम् यथा प्रासादादि, सावयवं चेदम्,
२० तस्मात्कार्यम् ।

ननु क्षित्यादिगतात्कार्यत्वात्सावयवत्वाच्चान्यदेव प्रासादादौ
कार्यत्वं सावयवत्वं च यदक्रियादर्शिनोपि कृतबुद्ध्युत्पादकम्,
ततो दृष्टान्तदृष्टस्य हेतौर्धर्मिण्यभावादसिद्धत्वम् ; इत्यसमीक्षिता-
भिधानम् ; यतोऽर्ज्युत्पन्नान्प्रतिपन्नधिकृत्यैवमुच्यते, व्युत्प-
२५ न्नात्वा ? प्रथमपक्षे धूमादावप्यसिद्धत्वप्रसङ्गात्सकलानुमानो-
च्छेदः । द्वितीयपक्षे तु नासिद्धत्वम् ; कार्यत्वादेर्बुद्धिमत्कारण-
पूर्वकत्वेन प्रतिपन्नाविनाभावस्य क्षित्यादौ प्रसिद्धेः पर्वतादौ

१ सर्वज्ञसङ्गत्वे प्रमाणोपन्यासविस्तरेण । २ अशेषवेदी सावरणो न भवति
अनादिमुक्तत्वाद् । यः सावरणः सोनादिमुक्तो न भवति यथा स्तम्भादिः । ३ मुक्तो
भवति अनादिमुक्तो भवतीति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सतीदं वक्ष्यमाह । ४ ईश्वरो
मुक्तव्यपदेशभाग् न भवति बन्धरहितत्वादाकाशवत् । ५ पुरुषस्य । ६ कार्यत्वस्य
सावयवत्वस्य च । ७ प्रासादादौ यदक्रियादर्शिनः कृतबुद्ध्युत्पादकं दृष्टं कार्यत्वं
सावयवत्वं वा साधनं तत् क्षित्यादौ नास्तीत्यसिद्धत्वमिति । ८ साध्यासाधनप्रतिपत्तिरहि-
तान् । ९ यथाविधौ धूमो दृष्टान्ते प्रतिपन्नस्त्रयाविषयस्य दार्ष्टान्तिकेऽभावाद् । १० नुः ।

धूमादिवत् । दृष्टान्तोपलब्धकार्यत्वादेस्ततो मेदः पर्वतादिधूमा-
म्बहानसधूमस्यापि मेदः स्यात् ।

ननु कार्यत्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेनाविनाभावोऽसिद्धः,
अर्हेष्टप्रभवैः स्थावरादिभिर्व्यभिचारात्; तन्न; साध्याभावेपि
प्रवर्तमानो हेतुर्व्यभिचारीत्युच्यते, न च तत्र कर्त्रभावो निश्चितः ५
किन्त्वग्रहणम् । उपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वे हि ततः कर्तुरभाव-
निश्चयः, न च तत्तस्येष्यते ।

अथ क्षित्याद्यन्वयव्यतिरेकानुविधानोपलम्भात्तेषां नातिरि-
क्तस्य कारणत्वकल्पना अतिप्रसङ्गात्; तर्हि धर्माधर्मयोरपि तत्र
कारणता न भवेत् । न च तयोरकारणतैव; तरुणादीनां सुख-१०
दुःखसाधनत्वाभावप्रसङ्गात्, धर्माधर्मनिरपेक्षोत्पत्तीनां तद-
साधनत्वात् । न चैवम्, न हि किञ्चिज्जगत्स्यस्ति वस्तु यत्साक्षा-
त्परम्परया वा कस्यचित्सुखदुःखसाधनं न स्यात् ।

ननु क्षित्यादिसामग्रीप्रभवेषु स्थावरादिषु 'बुद्धिमतोऽभावा-
दग्रहणं भावेप्यनुपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वाद्वा' इति सन्दिग्धो व्यति-१५
रेकः कार्यत्वस्य; इत्यप्यपेशलम्; सकलानुमानोच्छेदप्रसङ्गात् ।
यत्र हि बह्वेददर्शने धूमो दृश्यते तत्र—'किं बह्वेददर्शनमभावादनु-
पलब्धिलक्षणप्राप्तत्वाद्वा' इत्यस्योपि सन्दिग्धव्यतिरेकत्वात् न गम-
कत्वम् । यथा सामग्र्या धूमो जन्यमानो दृष्टतां नातिवर्त्तते
इत्यन्यत्रापि समानम्—कार्यं कर्तृकरणादिपूर्वकं कथं तदतिक्रम्य २०
वर्त्ततातिप्रसङ्गात् ?

अनुपलम्भस्तु शरीराद्यभावात् त्वसत्त्वात्, यत्र हि सशरीरस्य
कुलालादेः कर्तृता तत्र प्रत्यक्षेणोपलम्भो युक्तोऽत्रैव तु चैतर्न्यभा-
त्रेणोपादानाद्यधिष्ठानात् प्रत्यक्षप्रवृत्तिः । न च शरीराद्यभावे
कर्तृत्वाभावस्तस्य शरीरेणाविनाभावाभावात् । शरीरान्तररहि-२५
तोपि हि सर्वश्चेतनः स्वशरीरप्रवृत्तिनिवृत्ती करोतीति, प्रयत्ने-
च्छावशात्तत्प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणकार्याविरोधे प्रैक्येति सोस्तु ।
ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारता हि कर्तृत्वम् न सशरीरेतरता, घटादि-

१ ता । २ क्षितादिगतकार्यत्वादेः (पञ्चमी) । ३ असिद्धत्वे लब्धाविते सकलानु-
मानोच्छेदः प्रत्युत्तरमित्यर्थः । ४ बृहदादिभिः । ५ ईश्वरस्य । ६ ईश्वरस्य ।
७ कुम्भकारान्वयव्यतिरेकानुविधायिनि वदे तन्नुवायस्य हेतुत्वं स्यात् । ८ कर्तुः ।
९ विपक्षन्यायुक्तिः । १० पर्वते । ११ साधनस्य । १२ महानसप्रदेहे । १३ कार्यत्वे ।
१४ दृष्टम् । १५ यदपि कुम्भकारहेतुको न स्यात् । १६ ईश्वरस्य । १७ साव-
रादिकार्ये । १८ ज्ञानमात्रेण । १९ कर्तुः । २० प्रेरणात् । २१ स्थावरादी ।

कार्यं कर्तुमजानतः सशरीरस्यापि तत्कर्तृत्वादर्शनात्, जानतो-
पीच्छापाये तदनुपलम्भात्, इच्छतोपि प्रयत्नाभावे तदसम्भ-
वात्, तद्वयमेव कारकप्रयुक्तिं प्रत्यङ्गं न शरीरेतरता ।

न च दृष्टान्तेऽनीश्वरासर्वज्ञरूपमिहानवता कार्यत्वं व्याप्तं
५ प्रतिपन्नमित्यत्रापि तथाविधमेवाधिष्ठातारं साधयतीति विशेष-
विद्वद्धता हेतोः इत्यभिधातव्यम्, बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वमात्रस्य
साध्यत्वात् । धूमाद्यनुमानेपि चैतत्समानम्—धूमो हि महानसादिदे-
शासम्बन्धिताणेषाणादिविशेषाधारेणाग्निना व्याप्तः पर्वतेपि तथा-
विधमेवाग्निं साधयेदिति विशेषविद्वद्धः । देशादिविशेषत्यागेना-
१० मिमात्रेणास्य व्याप्तेर्न दोषः इत्यन्यत्रापि समानम् ।

सर्वज्ञता चास्याशेषकार्यकरणात्सिद्धा । यो हि यत्करोति स
तस्योपादानादिकारणकलापं प्रयोजनं चावश्यं जानाति, अन्यथा
तत्क्रियाऽयोगात्कुम्भकारादिवत् । तथा “विश्वतश्चक्षुः” [श्वेता-
श्वतरोप० ३।३] इत्यागमादप्यसौ सिद्धः

१५ “द्राविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कुंटस्योऽक्षर उच्यते ॥ १ ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमविश्य विमर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ २ ॥”

[भगवद्गी० १५।१६-१७]

२० इति व्यासवचनसद्भावाच्च ।

न च स्वरूपप्रतिपादकानामप्राप्यम्, प्रमाजनकत्वस्य सद्भा-
वात् । प्रमाजनकत्वेन हि प्रमाणस्य प्रामाण्यं न प्रवृत्तिजनकत्वेन,
तच्चेष्टास्त्येव । प्रवृत्तिनिवृत्ती तु पुरुषस्य सुखदुःखसाधनत्वा-
ध्यवर्त्तये समर्थस्यार्थित्वाद्भवतः । विधेरेकैत्वादर्शनीयां प्रामाण्यं
२५ न स्वरूपार्थत्वात्, इत्यसत्, स्वार्थप्रतिपादकत्वेन विध्यङ्गत्वात् ।
तथाहि—स्तुतेः स्वार्थप्रतिपादकत्वेन प्रवर्तकत्वं निन्द्यास्तु
निवर्तकत्वम्, अन्यथा हि तैर्दर्शापरिह्वाने विहितैर्प्रतिषेधैर्वै-

१ अनिलः । २ क्षिलादौ । ३ निलहानेच्छाप्रयत्नवान्विशेषणेन । ४ द्रुमः ।
५ ईश्वरः । ६ ईश्वरः । ७ अनिलः संसारी जावसमूहः । ८ निल ईश्वरः ।
९ देहसम्बन्धीनि पृथिव्यादीनि । १० निलः । ११ प्रविश्य । १२ विदधाति ।
१३ वेदवाक्यानाम् । १४ यथार्थानुभवः प्रमा । १५ वेदवाक्ये । १६ सति ।
१७ प्रवृत्तैः । १८ वेदवाक्यानाम् । १९ वेदवाक्यानाम् । २० वेदवाक्यानां
स्वार्थप्रतिपादकत्वेन प्रवर्तकत्वं निवर्तकत्वं वा नास्ति यदि । २१ वेदवाक्यम् ।
२२ उपादेयः । २३ निमित्तम् ।

विशेषेण प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्चा स्यात् । तथा विधिर्वाक्यस्यापि स्वार्थ-
प्रतिपादनद्वारेणैव पुरुषप्रेरकत्वं दृष्टमेवं स्वरूपप्ररेष्वपि वाक्येषु
स्यात्, वाक्यरूपतया अविशेषाद्विशेषहेतोश्चाभावात् । तथा
स्वरूपार्थानामप्रामाण्ये “मेध्या आपो दर्मः पवित्रममेध्यमशुचि”
इत्येवंस्वरूपापरिज्ञाने विध्यङ्गतायामविशेषेण प्रवृत्तिर्निवृत्ति-^५
प्रसङ्गः । न चैतदस्ति, मेध्येष्वेव प्रवर्तते अमेध्येषु च निव-
र्तते इत्युपलम्भात् ।

एवं प्रमाणप्रसिद्धो भगवान् कारुण्याच्छरीरादिसर्गे प्राणिनां
प्रवर्तते । न चैवं सुखसाधन एव प्राणिसर्गोऽनुषज्यते, अदृष्ट-
हकारिणः कर्तृत्वात् । यस्य यथाविधोऽदृष्टः पुण्यरूपोऽपुण्यरूपो ^{१०}
चा तस्य तथाविधफलोपभोगाय तत्सापेक्षैस्तथाविधैशरीरादीन्सृ-
जतीति । अदृष्टप्रक्षयो हि फलोपभोगं विना न शक्यो विधातुम् ।

न चादृष्टादेर्वीखिलोत्पत्तिरस्तु किं कर्तृकल्पनयेति वाच्यम्,
तस्याप्यचेतनतयाधिष्ठात्रपेक्षोपपत्तेः । तथाहि-अदृष्टं चेतनाधि-
ष्ठितं कार्यं प्रवर्ततेऽचेतनत्वात्तन्वादिवत् । न चासदाद्यात्मैवा-^{१५}
धिष्ठायकः, तस्यादृष्टपरमाण्वादिविषयविज्ञानाभावात् । न च
(चा) चेतनस्याकर्त्तृत्वात्प्रवृत्तिरुपलब्धा, प्रवृत्तौ वा निष्पत्तेरपि
कार्यं प्रवर्तते विवेकशून्यत्वात् ।

तथा वार्तिककारेणापि प्रमाणद्वयं संतिसिद्धयेऽभ्यधायि—
“महाभूतादि व्यैकं चेतनाधिष्ठितं प्राणिनां सुखदुःखनिमित्तं ^{२०}
रूपादिमत्त्वानुर्यादिवत् । तथा पृथिव्यादीनि महाभूतानि बुद्धि-
मत्कारणाधिष्ठितानि स्वासु धारणाद्यासु क्रियासु प्रवर्तन्ते-
ऽनित्यत्वाद्वास्यादिवत् ।” [न्यायवा० पृ० ४६७]

तथोऽविच्छकर्णेन च—“तनुकरणमुवनोपादानौनि चेतनाधि-
ष्ठितानि स्वकार्यमारभन्ते रूपादिमत्त्वात्तन्वादिवत् ।” तथा, ^{२५}
“दीन्द्रियग्राह्याग्राह्यं विमतिर्भौवापन्नं बुद्धिमत्कारणपूर्वकं स्वार-

- १ किञ्च । २ प्रवृत्तिप्रतिपादकस्य । ३ विधिवाक्यप्रकारेण । ४ शब्दादेर् ।
५ स्वार्थप्रतिपादकद्वारेण विध्यङ्गता । ६ वेदवाक्यानाम् । ७ कारुण्यात्प्रवर्तनेन ।
८ सुखजनकः । ९ प्राणिसम्बन्धी शरीरादिसर्गः । १० प्राणिनः । ११ सुखदुःखादि-
जनकः । १२ भगवान् । १३ सुखदुःखादिजनकान् । १४ अपि तु न भगवतः ।
१५ जैनादिभिः । १६ प्रेरितम् । १७ प्रेरकः । १८ कारणं विना । १९ ईश ।
२० परमाणुव्यवच्छेदार्थं महदिति पदम् । २१ पृथिव्यादि । २२ कार्यम् ।
२३ यथा वार्तिककारेणान्यथासीति पूर्वेषु सम्बन्धः । २४ परमाण्वादिकारणानि ।
२५ शिलादिकम् ।

म्मेकावयवसन्निवेशे विशिष्टत्वाद् घटादिवत् । वैधर्म्येण परमाणवो यथा” [] आभ्यां दर्शनस्पर्शनेन्द्रियाभ्यां ग्राह्यं पृथिव्यसे-
जोलक्षणं त्रिविधं द्रव्यमग्राह्यं वाय्वादिकम् । वायौ हि रूप-
संस्काराभावादनुपलब्धिः रूपसंस्कारो रूपसमवायः । द्र्यणुका-
५ दीनां त्वऽमहत्त्वात् । उक्तं च—“महत्तयेकद्रव्यत्वाद्रूपविशेषार्थं
रूपोपलब्धिः” [वैशे० सू० ४।१।६]

प्रशस्तमतिना च; “सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारोऽन्योपदेश-
पूर्वकः उत्तरकालं प्रबुद्धानां प्रत्यर्थनियतत्वादप्रसिद्धाव्यव-
हाराणां कुमाराणां गवादिषु प्रत्यर्थनियतो वाग्व्यवहारो यथा
१० मात्रार्थुपदेशपूर्वकः” [] इति ।

उद्योतकरेण च; “भुवनहेतवः प्रधानपरमाण्वदृष्टाः स्वका-
योत्पत्तावतिशयबहुद्धिमन्तमधिष्ठितारमपेक्षन्ते स्थित्वा प्रवृत्ते-
स्तन्तुतुर्यादिवत् । तथा, बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितं महाभूतादि व्यक्तं
सुखदुःखनिमित्तं भवत्यचेतनत्वात्कार्यत्वाद्भिनाशित्वाद्व्यापिम-
१५ त्वाद्वा वास्यादिवत् ।” [न्यायवा० पृ० ४५७] इत्यनवद्यं भगवतः
प्रलयकालेऽप्यलुप्तज्ञानाद्यतिशयस्य साधनम् ।

अत्र प्रतिविधीयते—सावयवत्वात्कार्यत्वं क्षित्यादेः प्रसाध्यते ।
तत्र किमिदं सावयवत्वं नाम ? सहावयवैर्वैर्त्तमानत्वम्, तैर्जन्य-
मानत्वं वा, सावयवमिति बुद्धिविषयत्वं वा ? प्रथमपक्षे सामा-
२० न्यादिनानेकान्तः; गोत्वादि सामान्यं हि सहावयवैर्वैर्त्तते, न च
कौर्यम् । द्वितीयपक्षेप्यसिद्धो हेतुः; परमाण्वाद्यवयवानां प्रत्यक्षतो-
ऽसिद्धौ क्षित्यादेस्तज्जन्यमानत्वस्याप्यसिद्धेः । प्रत्यक्षानुपलम्भसा-
धनश्च कार्यकारणभावः । द्र्यणुकादिकं स्वपरिमाणादल्पपरिमाणो-
पेतकारणारब्धं कौर्यत्वात्पटादिवदित्यनुमानात्तेषां प्रसिद्धिः;
३० इत्यप्यसमीचीनम्; चैककप्रसङ्गात्—परमाणुप्रसिद्धौ हि क्षित्यादे-

१ परमाणु । २ रचनाविशेष । ३ व्यतिरेकेण । ४ आदिपदेन द्र्यणुकादिकम् ।
५ अनेकद्रव्यत्वाद्रूपविशेषाच्चेत्युच्यमाने द्र्यणुकादौ रूपोपलब्धिः सात्तद्रव्य-
महतीति पदम् । ६ महत्तयेकद्रव्यत्वादित्युच्यमाने वायवमि रूपोपलब्धिः सात्तद्रव्य-
च्छेदार्थं रूपविशेषादित्युच्यते । ७ सृष्टिप्रारम्भे । ८ आदिपदेन मित्रादि । ९ साङ्ख्यो-
द्देशेनास्य प्रयोगः । १० भीमासकानुद्देशेनास्य पदस्य प्रयोगः । ११ छण्डमुण्ड-
शाकलेयत्वादिसंख्यकिमिः सह वर्त्तते । १२ निलत्वात्तस्य । १३ द्र्यणुकादि ।
१४ घटसृष्टिपञ्चादौ कार्यकारणभावः प्रत्यक्षतः सिद्धो द्र्यणुकपरमाण्वादौ तु कार्यकारण-
भावोऽनुमावादिति भावः । १५ बुद्ध्या (व्यापकत्वान्माहपरिमाणोपेतारमनः कार्यत्व-
बुद्ध्यादेः) व्यभिचारपरिहारार्थं द्रव्यत्वे सतीति विशेषणं द्रष्टव्यम् । १६ परमाण्वादी-
नाम् । १७ त्रिविधवर्त्तनं चक्रकद्रव्यम् ।

स्वैर्जन्यमानत्वलक्षणसावयवत्वसिद्धिः, तत्सिद्धौ च कार्यत्व-
सिद्धिः, ततश्च परमाणुप्रसिद्धिरिति । महापरिमाणोपेतप्रक्षि-
प्तावयवकर्पासपिण्डोपादानेन अतिनिविष्टावयवाल्पपरिमाणोपेत-
कर्पासपिण्डेन अनेकान्तश्च । बलवत्पुरुषप्रयत्नप्रेरितहस्ताद्यभि-
घातादवयवक्रियोत्पत्तेः अवयवविभागात् संयोगविनाशात् महा-^५
कर्पासपिण्डविनाशाः, अल्पकर्पासपिण्डोत्पादस्तु स्वारम्भकाव-
यवकर्मसंयोगविशेषवशादेव भवति; इत्यपि विनाशोत्पादप्रक्षि-
योद्धोषणमात्रम्, प्रमाणतोऽप्रतीतिः । कर्पासद्रव्यं हि महापरि-
माणपिण्डाकारपरित्यागेनाल्पपरिमाणपिण्डाकाकारतयोत्पद्यमानं
प्रमाणतः प्रतीयते । आशूत्पत्तेर्मेदानवधारणास्तथा प्रतीतिरित्य-^{१०}
प्यसङ्गतम्; सकलभावानां क्षणिकत्वानुषङ्गात् । अमेदाध्यवसा-
यस्तु सहशापरापरोत्पत्तिविग्रहलम्भादित्यनिष्ठसिद्धिर्प्रसङ्गात् ।
नाप्यागमात्परमाण्वादिप्रसिद्धिस्तत्प्राप्याप्याप्रसिद्धेः ।

सावयवमिति बुद्धिविषयत्वमपि, आत्मादिनानैकान्तिकं तस्या-
कार्यत्वेपि तत्प्रसिद्धेः । सार्वयवार्थसंयोगान्निरवयवत्वेऽप्यस्य तद्व-^{१५}
द्विविषयत्वमित्यौपचारिकम्; तदप्यसङ्गतम्; तस्य निरवयवत्वे
व्यापित्वविरोधात् परमाणुवत् । तदपि द्यौपचारिकमेव स्यात् ।
तदेवं सावयवत्वासिद्धेः कथं ततः क्षित्यादेः कार्यत्वसिद्धिः ?

प्रागसतः स्वकारणसमवायात्, सत्तासमवायाद्वा तत्सिद्धि-
श्चेत्; कुतः प्राक् ? कारणसमवायाच्चेत्; तत्समवायसमये प्रागि-^{२०}
वास्य स्वरूपसत्त्वस्याभावः, न वा ? अभावे 'प्राक्' इति विशे-
षणमनर्थकम् । कार्यस्य हि कारणसमवायसमये स्वरूपेण सत्त्व-
सम्भवे तद्वत्प्रागपि सत्त्वे कार्यता न स्यात् । ततः प्रागित्यर्थवै-
त्थ्यात् । प्रागिव तत्समवायसमयेऽप्यस्य स्वरूपसत्त्वाभावे तु
'असतः' इत्येवमभिधातव्यम् । न चासतः कारणसमवायः, खर-^{२५}
विपणादेरपि तत्प्रसङ्गात् । न चास्य कारणाभावान्न तत्प्रसङ्गः;
इत्यभिधार्तव्यम्; क्षित्यादेरपि तदभावप्रसङ्गादसत्त्वाविशेषात् ।
क्षित्यादेः कारणोपलम्भाज्ज दोषः; इत्यप्यसारम्; कार्यकारणयोरु-
पलम्भे हीदमस्य कारणं कार्यं चेदमिति प्रति(वि)भागः स्यात् ।
न च प्रत्यक्षतः क्षित्यादेरुपलम्भोऽसतस्तस्य तज्जनकत्वविरोधात् ^{३०}

१ क्षिया । २ कथनमात्रम् । ३ पूर्वपिण्डविनाश यवोत्तरपिण्डोत्पत्तिरित्येवमतया ।
४ आशुद्रव्यैः । ५ विसंवादात् । ६ क्षित्यादिकं कार्यं सावयवत्वादित्यस्य । ७ आदि-
पदेनाकाशादिना । ८ क्षीरादिशून्यमिन्द्रिः । ९ परमाणु । १० इह तन्मुप पटस-
मवायो यथा । ११ क्षित्यादिकार्यत्वस्य । १२ क्षित्यादिकार्यत्वस्य । १३ नासतः
इति विशेषणम् । १४ कारण । १५ न प्रागिति । १६ परेण त्वया ।

खरविषाणवत् । न चाजनैकं विषयः, संपलम्भकारणमुपलम्भ-
विषय इत्यभ्युपगमात् ।

प्रागसतः सत्तासम्बन्धेऽप्येतत्सर्वं समानम् । न समानम्; खर-
शृङ्गादेः क्षित्यादिकार्यस्य, विशेषसम्भवात् । तच्चाल्यन्ताऽसत्,
५ क्षित्यादिकं न सत्ताऽप्यसत्सत्तासम्बन्धात् सत्; इत्यपि मनोर-
थमात्रम्; सत्तासत्त्वयोरेकत्रैकदा प्रतिषेधविरोधात् । 'न सत्'
इत्यभिधानात्तस्य सत्तासम्बन्धात्प्रागभावः स्यात्सत्प्रतिषेधलक्षण-
त्वादेस्य, 'नाप्यसत्' इत्यभिधानात्तु भावः, असत्त्वप्रतिषेधरूप-
त्वात्तस्य रूपान्तराभावात् । ततोऽसदेव तदभ्युपगन्तव्यम् ।
१० तत्रास्य खरशृङ्गादेर्विशेषः ।

किञ्च, सत्ता सती, असती वा ? यद्यऽसती, कथं तथा वक्ष्या-
स्तुतयेव सम्बन्धादर्शयेषां सत्त्वम् ? सती चेत्स्वतः, अन्यसत्तातो
वा ? यद्यन्यसत्तातोऽनवस्था । स्वतश्चेत् पदार्थानामपि स्वत एव
सत्त्वं स्यादिति व्यर्थं तत्परिकल्पनम् ।

१५ एतेन द्वितीयविकल्पोपपत्तिः । कार्यस्य हि स्वतः सत्त्वोपगमे
किं तत्कल्पनया साध्यम् ? अनवस्थाप्रसङ्गात् । तदेवं कार्यत्वा-
सिद्धेरसिद्धो हेतुः ।

किञ्च, कथञ्चित्कार्यत्वं क्षित्यादेः, सर्वथा वा ? सर्वथा चेत्पु-
नरप्यसिद्धत्वं ब्रूयतोऽशेषार्थानामकार्यत्वात् । कथञ्चित् चेद्वि-
२० कृत्वम्; सर्वथा बुद्धिमन्त्रिमित्त्वात्साध्याद्विपरीतस्य कथञ्चि-
द्बुद्धिमन्त्रिमित्त्वस्य साधनात् ।

अनैकान्तिकं च आत्मादिभिः, तेषां बुद्धिमन्त्रिमित्त्वाभावेपि
तैस्तत्सम्भवात् । कथञ्चिदप्यकार्यत्वे चैतेषां कार्यकारित्वस्याभावा-
स्तस्याऽकर्तृरूपत्यागेन कर्तृरूपोपादानाविनाभावित्वात् । तस्या-
२५ गोपादानयोश्चैकर्तृपे वस्तुन्यसम्भवात्सिद्धं कथञ्चित् कार्यत्वं
तेषाम् । कर्तृत्वाकर्तृत्वरूपयोरत्मादिभ्योऽर्थान्तरत्वाच्च तद्विना-
शोत्पादाभ्यां तेषामपि तेषाभावो यतः कार्यत्वं स्यात्; इत्यपि

१ प्रत्यक्षसाजनकक्षित्यादिकम् । २ असत्त्वादेवाजनकम् । ३ प्रत्यक्षस्य ।
४ प्रत्यक्षकारणं प्रत्यक्षजनकमित्यर्थः । ५ प्रत्यक्षविषयः । ६ प्राप्तितादि । ७ सत्ता-
सम्बन्धवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । ८ खरविषाणादेरपि सत्तासम्बन्धप्रसङ्गात् । ९ न सदित्यस्य ।
१० सत्त्वावः । ११ परेषां । १२ क्षित्यादीनाम् । १३ न वेत्यस्य । १४ कारण-
समवायसत्तासमवायकल्पनवा । १५ ब्रह्मपदोक्त्याम् । १६ कार्यत्वम् । १७ कृत्वम्-
निलसेव । १८ निले । १९ विनाशोत्पादः ।

अद्धामात्रम्; तयोस्ततोऽर्थान्तरत्वे सम्बन्धासिद्धिप्रसङ्गात् ।
समवायादेश्च कृतोत्तरत्वादित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

बुद्धिमत्कारणमित्यत्र त्रै मत्वर्थस्य साध्यविशेषणस्यानुप-
पत्तिः । बुद्धिमतो हि बुद्धिर्व्यतिरिक्ता वा, अव्यतिरिक्ता वा ? तत्र
तस्यास्ततो व्यतिरेकैकान्ते तस्येति सम्बन्धस्याभावः । सा हि ५
तस्य तद्गुणत्वात्, तत्समवायाद्वा, तत्कार्यत्वाद्वा, तदाधेयत्वाद्वा
स्यात् ? न तावत्तद्गुणत्वात्सा तस्येत्यभिघातव्यम्; ततो व्यतिरेकै-
कान्ते सा तस्यैव गुणो नाकाशादेरिति व्यवस्थापयितुमशक्येः ।
नापि तत्समवायात्; तस्यैवासम्भवात् । सम्भवे वा तस्य ताभ्यां
भेदैकान्ते व्यवस्थापकत्वायोगात्सर्वत्राविशेषाच्च । तत्कार्यत्वात्सा १०
तस्येति चेत्, कुतस्तत्कार्यत्वम् ? तस्मिन्सति भावात्; आकाशादौ
प्रसङ्गः । तदभावेऽभावाच्चेन्न, नित्यव्यापित्वाभ्यां तस्य तदयो-
गात् । तदाधेयत्वात्सा तस्येति चेत्, किमिदं तदाधेयत्वं नाम ?
समवायेन तत्र वर्त्तनं चेत्तत्कृतोत्तरम् । तादात्म्येन वर्त्तनं चेन्न,
अनभ्युपगमात् । सम्बन्धमात्रेण वर्त्तनं चेत्; तर्हि घटादेर्भूत-१५
छादिगुणत्वप्रसङ्गः, सम्बन्धमात्रेण वर्त्तमानस्य तस्य तदाधेयत्व-
सम्भवात् ।

किञ्च, व्याप्त्या तेनास्यास्तत्र वर्त्तनम्, अव्याप्त्या वा ? न
तावद्भ्याप्त्या; आत्मविशेषगुणत्वादस्य दादिवुद्ध्यादिवत् । परमम-
हापरिमाणेन व्यभिचारः; इत्युक्तम्; तत्र विशेषगुणैत्वाभावात् । २०
नन्वेवमस्य दादिवुद्ध्यादौ सकलार्थग्राहित्वाभावो दृष्टः सोपि तत्र
स्यादिति चेत्, अस्तु नाम, दृष्टान्ते व्याप्तिदर्शनमात्रात्सर्वत्र
साध्यसिद्धेर्मैव ताभ्युपगमात् । कथमन्यथा प्रकृतसिद्धिः ? यथा
चास्य दादिवुद्धिर्वैलक्षण्यं तद्बुद्धेरदृष्टं परिकल्प्यते तथा घटादौ कर्म-
कैर्तृकरेण निर्वर्त्यकार्यत्वं दृष्टं वने वनस्पत्यादिषु चेतनकर्तृ-२५
हितमपि स्यादित्येतैर्व्यभिचारो हेतोः । अथाऽव्याप्त्या; तर्हि
वेशान्तरोत्पत्तिमत्कार्येषु कथं तस्या व्यापारः असन्निधानात् ?

१ समवायादिसम्बन्धनिराकरणविसरिण । २ किञ्च । ३ साध्य कारणं तस्य विशेषणं
बुद्धिमत् । ४ परेण यौगेन । ५ बुद्धिबुद्धिमद्भ्याम् । ६ बुद्धिमत् इयं बुद्धिरिति ।
७ गगनादौ समवायस्य व्यापकत्वात् । ८ चेत्तर्हि । ९ खमपि सर्वदाऽस्ति-यतः ।
१० सामल्लेन । ११ आत्मविशेषगुणेन । १२ आकाशगुणत्वात्परममहापरिमाणस्य
नैवानाम् । आत्मा तु तेषां देहपरिमाण-इति । १३ व्याप्त्या वर्त्तमानत्वप्रतिषेधे ।
१४ ईश्वरलक्षणे बुद्धिमति । १५ नैयायिकेन । १६ बुद्धिमत्कारणत्वस्य । १७ का ।
१८ परेण । १९ घट । २० कुम्भकार । २१ चक्रादि ।

तथापि व्यापारेऽदृष्टस्याप्यश्रयादिवेशेऽसन्निरहितस्योर्ध्वज्वलनादि-
हेतुता स्यादिति—“अशेरूर्ध्वज्वलनम्” [प्रश्न० व्यो० पृ० ४११]
इत्याद्यात्मसर्वगतत्वसाधनमयुक्तम् । अव्यतिरेकैकान्ते चात्ममार्त-
बुद्धिमार्तं वा स्यात्, तत्कथं मत्वर्थः ? न हि तदेव तेनैव
५ तद्वद्भवति ।

किञ्च, असौ तद्बुद्धिः क्षणिका, अक्षणिका वा ? यदि क्षणिका;
तदा तस्याः कथं द्वितीयक्षणे प्रादुर्भावः कारणत्रयाधीनत्वा-
त्तस्य ? न चेश्वरेऽसमवायिकारणमात्ममनःसंयोगस्तच्छरीरादिकं
च निमित्तं कारणमस्ति । कारणत्रयाभावेऽप्यसदादिवुद्धिवैलक्ष-
१० ण्यात्तस्याः प्रादुर्भावे क्षित्यादिकार्यस्य घटादिकार्यवैलक्षण्याद्बुद्धि-
मत्कारणमन्तरेणाप्युत्पत्तिः किञ्च स्यात् ? महेश्वरबुद्धिवच्च
सुखात्मनामप्यानन्दादिकं शरीरादिनिमित्तकारणमन्तरेणाप्युत्प-
त्त्यत इति कथं बुद्ध्यादिविकलं जडात्मस्वरूपं मुक्तिः स्यात् ?

अथाऽक्षणिका तद्बुद्धिः । नन्वत्रापि ‘क्षणिकदशब्दोऽसर्वादि-
१५ प्रत्यक्षत्वे सति विभुद्रव्यविशेषगुणत्वात् सुखादिवत्’ इत्यत्रानु-
मानेऽनयैव हेतोरनेकान्तोऽस्या इव विभुद्रव्यविशेषगुणत्वेऽन्य-
स्यासदादिप्रत्यक्षत्वेऽपि नित्यत्वसम्भवात् । तथा ‘क्षणिका
महेश्वरबुद्धिर्बुद्धित्वादसदादिवुद्धिवत्’ इत्यनुमानविरोचश्च ।
अथ बुद्धित्वाविशेषेऽपि ईशासदादिवुद्धोरक्षणिकत्वेतरलक्षणो
२० विशेषः परिकल्प्यते तथा घटादिक्षित्यादिकार्ययोरप्यकर्तृकर्तृ-
पूर्वकत्वलक्षणो विशेषः किञ्चेत्यते ? तथा च कार्यत्वादिहेतोर-
नेकान्तः । तदेवं बुद्धिमत्त्वासिद्धेः कथं तत्कारणत्वेन कार्यत्वं
व्याप्येत ?

अस्तु वाऽविचारितरमणीयं बुद्धिमत्कारणत्वव्याप्तं कार्यत्वम् ;
२५ तथाप्यत्र यादृग्भूतं बुद्धिमत्कारणत्वेनाऽभिनवकूपप्रासादादौ
व्याप्तं कार्यत्वं प्रमाणतः प्रसिद्धं यदक्रियादर्शिनोऽपि जीर्णकूपप्रा-
सादादौ लौकिकैतरयोः कृतबुद्धिजनकं तादृग्भूतस्य क्षित्यादाव-
सिद्धेरसिद्धो हेतुः । सिद्धौ वा जीर्णकूपप्रासादादाविवाऽ-

-
- १ मुक्तस्य । २ अशेरूर्ध्वस्थितमहादि, तस्य शुभपचनं भोज्यदेवदत्तादृष्टेनेति ।
३ नैयायिकमते आत्मनः सर्वगतत्वाच्छृणोऽदृष्टमपि सर्वगतमेवातो देशान्तरे कालान्तरे
चाक्षपाकपटमुकाफलादीन् तद्भोज्यदेवदत्तादृष्टं तत्र गत्वा सहकारिभूतोरप्राप्तयति ।
४ समवाय्यसमवायिनिमित्तेति । ५ समवायिकारणं स्वात्मास्ति । ६ नैयायिकमते ।
७ अक्षणिकबुद्धिपक्षेति । ८ परममहापरिमाणेन व्यभिचारपरिहारायमेतत् । ९ पटः ।
१० इतरः परीक्षकः ।

क्रियादर्शिनोपि कृतबुद्धिप्रसङ्गः । न च प्रकृत्याऽत्यन्तभिन्नोपि धर्मः शब्दमात्रेणाभेदी हेतुत्वेनोपादीयमानोऽभिमतसाध्यसिद्ध्ये समर्थो भवत्यन्यत्राप्यस्याविरोधेनाशङ्काऽनिवृत्तेः । यथा बलीके धर्मिणि कुम्भकारकृतत्वसिद्ध्ये मृद्विकारत्वमात्रं हेतुत्वेनोपादीयमानम् । ५

नन्वेतत्कार्यसमं नाम जात्युत्तरम् । तदुक्तम्—“कार्येत्थान्यत्व-
लेशेन येत्साध्यासिद्धिदर्शनं तत्कार्यसमम्” [] इति ।
अस्य चासदुत्तरत्वाच्चातैः प्रकृतसाध्यसिद्धिप्रतिबन्धोऽन्यथा
सकलानुमानोच्छेदः । शब्दानित्यत्वे हि साध्ये किं घटादिगतं
कृतकत्वं हेतुत्वेनोपादीयते, किं वा शब्दगतम्, उभयगतं वा ? १०
प्रथमपक्षे हेतोरसिद्धिः, न ह्यन्यगतो धर्मोऽन्यत्र वर्तते । द्वितीये
तु साधनविकलो दृष्टान्तः । तृतीयेप्युभयदोषानुपपन्नः, इत्यप्य-
सारम् । कारणमात्रजन्यतालक्षणस्य कृतकत्वस्य विपक्षे बाधकप्र-
माणबलादित्यत्वमात्रव्याप्तत्वेनाऽवधारितस्य शब्देऽप्युपलम्भात्
तत्रोक्तदूषणस्यासदुत्तरत्वाच्चात्युत्तरत्वम् । न चैवं कार्यसामान्यं १५
बुद्धिमत्कारणत्वमात्रव्याप्तं क्षित्यादावुपलभ्यते, विपक्षे बाधक-
प्रमाणमात्रेण सन्निग्नानैकान्तिकत्वात्तस्य, अन्यथाऽक्रियादर्शि-
नोपि कृतबुद्धिप्रसङ्गः । यदि च घटादिलक्षणं विशिष्टकार्यं
तन्मात्रव्याप्तं प्रतिपद्याऽविशिष्टकार्यस्यापि क्षित्यादेस्तत्पूर्वकत्वं
सोध्यते, तर्हि पृथ्वीलक्षणभूतस्य रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वं प्रतिपद्य २०
भूतत्वादेव चायोरपि तत्साध्यताम् । अथाऽत्र प्रत्यक्षादिप्रमाण-
बाधः, सोर्नैत्रापि समानः ।

१ क्षित्यादौ । २ लभायेन । ३ कार्यत्वमुन्नेन । ४ बुद्धिमत्हेतुकत्व । ५ विप-
क्षेऽबुद्धिमत्हेतुकत्वादौ । ६ कृतबुद्ध्युत्पादकरूपस्य कार्यस्य । ७ क्षित्यादिकं घटादिवत्
बुद्धिमत्हेतुकं तर्वादिवदबुद्धिमत्हेतुकं वेलाशङ्कः । ८ बलीकः कुम्भकारकृतो भवति
मृद्विकारवाद् वेदादिवत् । ९ पूर्वोक्तम् । १० भेदलेशः स कीदृशः कृतबुद्धमनुत्पा-
दकः । ११ बुद्धिमत्हेतुकत्व । १२ कार्यसमजात्युत्तरात् । १३ घटादिगतकृतकत्वस्य
शब्देऽभावात् । १४ शब्दगतकृतकत्वस्य घटादावभावात् । १५ नित्ये । १६ यक्षित्यं
तत्र कृतकं यथाकाशमिति ज्ञानवज्ज्वा । १७ बुद्धिमत्कारणरहिते तर्वादौ । १८ बुद्धि-
मत्कारणरहिते तर्वादौ कार्यसामान्यं वर्तते बुद्धिमत्कारणरहिते घटादौ च कार्यसामान्यं
वर्तते । तर्हि बुद्धिमत्हेतुकमबुद्धिमत्हेतुकं वेति सन्निग्नानैकान्तिकत्वम् । १९ कार्य-
त्वस्य । २० विपक्षे बाधकं प्रमाणं यदि स्यात् । २१ क्षित्यादौ । २२ दृष्टान्ते इव ।
२३ अक्रियादर्शिनोपि कृतबुद्ध्युत्पादकत्वमात्रव्याप्तम् । २४ अक्रियादर्शिनः कृत-
बुद्ध्यनुत्पादकस्य । २५ परेण । २६ क्षित्यादौ बुद्धिमत्हेतुपूर्वकत्वेपि ।

यदप्युक्तम्-व्युत्पन्नप्रतिपत्तृणां नासिद्धत्वं कार्यत्वादेः; तदप्युक्तम्; यतः प्रतिबन्धप्रतिपत्तिलक्षणा व्युत्पत्तिस्तेषाम्, तद्व्यतिरिक्ता वा स्यात्? प्रथमपक्षे क्षित्यादिगतकार्यत्वौदौ प्रकृतसाध्यसाधनाभिप्रेते व्युत्पत्त्यसम्भवः, यथोक्तसाध्यव्याप्तस्य तत्र तस्या-
५ भावात् । भावे वा सशरीरस्यासदादीन्द्रियग्राह्यस्यानित्यबुद्ध्यादिधर्मकलापोपेतस्य घटादौ तद्व्यापकत्वेन प्रतिपन्नस्यात्र ततः सिद्धिः । न खलु हेतुव्यापकं विहायाव्यापकस्यार्थान्तविलक्षणसाध्यधर्मस्य धर्मिणि प्रतिपत्तौ हेतोः सामर्थ्यम् । कारणमात्रप्रतिपत्तौ तु सिद्धसाध्यता ।

- १० ननु बुद्धिमत्कारणमात्रं ततस्तत्र सिध्यत्पक्षधर्मतावलाद्विशिष्टविशेषाधारमेव सेत्स्यति, निर्विशेषस्य सामान्यस्यासम्भवात्, घटादौ प्रतिपन्नस्य चासदादेस्तन्निर्माणासामर्थ्यात् । नन्वेवं क्षित्यादौ बुद्धिमत्कारणत्वासिद्धिरेव स्यादसदादेस्तन्निर्माणासामर्थ्यादेन्यस्य च हेतुव्यापकत्वेन कदाचनान्यप्रतिपत्तेः शरवि-
१५ षाणवत्, निराधारस्य च सामान्यस्यासम्भवात् । न हि गोत्वधारस्य कण्ठादिव्यक्तिविशेषस्यासम्भवे तद्विलक्षणमद्विष्याद्याभितं गोत्वं कुतश्चित्प्रसिध्यति ।

- अस्मादृशान्यादृशविशेषपरित्यागेन कर्तृत्वमात्रानुमाने च चेतनेतरविशेषत्यागेन कारणमात्रानुमानं किञ्चानुमन्यते? धूम-
२० मात्रात्पावकमात्रानुमानवत् । यादृशमेव हि पावकमात्रं पैक्षल्यादिधर्मोपेतं कण्ठाक्षैर्विक्षेपकादित्वापाण्डुरत्वादिधर्मोपेतधूममात्रस्य प्रत्यक्षानुपलम्भप्रमाणजनितोद्भाष्यप्रमाणात्सर्वोपसंहारेण व्यापकत्वेन महानसादौ प्रतिपन्नं तादृशस्यैवान्यत्रोप्यतोनुमानं नात्यन्तविलक्षणस्य, व्यक्तिसम्बन्धित्वमात्रस्यैव मेदात् । न च
२५ व्यक्तीनामप्यात्यन्तिको मेदो महानसादिवदर्थ्यासामपि दृश्यतैयोपगमात् । न च कार्यविशेषस्यै कर्तृविशेषमन्तरेणानुपलम्भात् तन्मात्रमपि कर्तृविशेषानुमापकं युक्तम्; तस्य कारणत्वमात्रेणैवाविनाभावनिश्चयात्, धूममात्रस्याग्निमात्रेणाविनाभावनिश्चयवत् ।

१ प्रतिबन्धोऽविनाभावः । २ अक्रियादर्शिनोपि कृतबुद्ध्युत्पादकत्वलक्षणे । ३ क्षित्यादौ । ४ कार्यत्व । ५ क्षित्यादौ । ६ अशरीरसर्ववन्नित्यज्ञानत्वाल्लक्षण । ७ प्रोक्तक्षित्यादिके । ८ वसः । ९ क्षित्यादि । १० सर्ववत्त्वादिधर्मकलापोपेतस्येतरस्य । ११ कार्यत्वेति । १२ नेत्रादि । १३ परोक्ष । १४ स्वीकारेण । १५ पर्वतादौ । १६ जलस्य । १७ महानसाख्य । १८ पर्वतादिरूपव्यक्तीनाम् । १९ वनपत्र । २० अक्रियादर्शिनः कृतबुद्ध्युत्पादकलक्षणस्य । २१ बुद्धिबन्धलक्षण । २२ कार्यमात्रम् । २३ कार्यमात्रस्य ।

घटादिलक्षणकार्यविशेषस्य तु कारणविशेषेणाविनाभावावगमः चान्दनादिधूमविशेषस्याग्निविशेषेणाविनाभावावगमवत् । तथापि कार्यमात्रस्य कारणविशेषानुमापकत्वे धूमादिकार्यविशेषस्य महान-सादौ तत्कालवन्हानुमापकं स्यात् । अथ तत्र तत्कालवन्हानुमाने प्रत्य-५ क्षविरोधः; सोऽरुहजाते मूरुहादौ कर्त्रनुमानेपि समानः । तत्कर्तुंतीन्द्रियत्वात्तदविरोधे धूमघटिकादौ बह्वेरेत्यतीन्द्रिय-त्वात्सोस्तु । भास्वरूपसम्बन्धवयविद्व्यत्वात्तातीन्द्रियत्वं तस्येति चेत्; एतदेव कुतोऽवसितम् ? महानसादौ तथाभूतस्या-स्योपलम्भाच्चेत्; तर्हि क्षित्यादिकर्तुः शरीरसम्बन्धिनाऽतीन्द्रि-१० यत्वं मा भूत्कुम्भकारादौ तस्यानुपलम्भात् ।

ननु वृक्षशाखाभङ्गादौ पिशाचादिः, स्वशरीरावयवप्रेरणे चात्माऽशरीरोऽपि कर्त्ताऽपलम्बः; इत्यप्यसुन्दरम्; पिशाचादेः शरीरसम्बन्धरहितस्य कार्यकारित्वानुपपत्तेर्मुक्तात्मवत् । तत्सम्बन्धेनैव हि कुम्भकारादौ कार्यकारित्वं दृष्टं नान्यथा । तत्सम्ब-१५ न्धोपगमे चास्य दृश्यत्वप्रसङ्गः कुम्भकारादिवत् । तच्छरीरस्य दृश्यत्वाद्दृश्योसौ न पिशाचादिविपर्ययादिति चेत्; ननु शरीर-त्वाविशेषेपि यथासादादिशरीरविलक्षणं तच्छरीरमभ्युपगम्यते तथा घटादिकार्यविलक्षणं मूरुहादिकार्यं कार्यत्वाविशेषेप्यभ्युप-गम्यताम् । तथा चानेन प्रकृतो हेतुर्व्यभिचारी । तथासादादेः २० शरीरसम्बन्धमात्रेणैव तदवयवानां प्रेरकत्वोपपत्तेर्नापरशरीर-सम्बन्धस्तत्रोपयोगी 'तत्सम्बन्धमन्तरेण हि चेतनस्य स्वशरीरा-वयवेष्वन्यत्र वा कार्यकारित्वं नास्त्यनुपलम्भात्' इत्येतावन्मात्र-मेव नियम्यत इति महेश्वरस्यापि शरीरसम्बन्धेनैव कर्तृत्वमभ्यु-पगन्तव्यम् । २५

तच्छरीरं च तत्कृतं यद्यभ्युपगम्यते; तर्हि शरीरान्तरं तस्याभ्युपगन्तव्यमित्यनवस्थातः प्रकृतकार्ये तस्याऽव्यापारोऽपरापर-शरीरनिर्वर्त्तने एवोपक्षीणशक्तिकत्वात् । तदनिष्पाद्यं चेत्; तत्किं कार्यम्, नित्यं वा ? प्रथमपक्षे तेनैव हेतोर्व्यभिचारस्तस्य कार्य-त्वेप्यबुद्धिमत्पूर्वकत्वात् । बुद्धिमत्कारणान्तरपूर्वकत्वे चानवस्था, ३० तच्छरीरस्याप्यपरबुद्धिमत्कारणान्तरपूर्वकत्वात् । नित्यं चेत्;

- १ कार्यविशेषैव कारणविशेषेण न्यासिसिद्धान्तिः । २ गोपालवटिकादौ । ३ गोपालवटिकादौ । ४ जसदावात्मा । ५ परेण । ६ ईश्वरस्य । ७ मूरुहादिना । ८ जगद्व्यप्रेरणे । ९ अवयवप्रेरणे । १० तर्हि । ११ परेण । १२ हि । १३ परेण । १४ क्षित्यादिकार्ये ।

तर्हि तच्छरीरस्य शरीरत्वाविशेषेपि नित्यत्वलक्षणः स्वभावाति-
क्रमो यथाभ्युपगम्यते, तथा भूरुहादेः कार्यत्वे सत्यप्यकर्तृपूर्वक-
त्वलक्षणोप्यभ्युपगम्यताम् इति स एव तैर्व्यभिचारः कार्य-
त्वादेः । तन्न प्रतिर्वन्धप्रतिपत्तिलक्षणा व्युत्पत्तिस्तेषाम् ।

५ अथ तद्व्यतिरिक्ता व्युत्पत्तिः, सा खंदुरागमाहितवासनावतां
भवतु, न पुनस्तावन्मात्रेण कार्यत्वादेः साध्यं प्रति गमकत्वम् ।
अन्यथा वेदे मीमांसकस्य वेदाध्ययनवाच्यत्वादेरपौरुषेयत्वं प्रति
गमकत्वं स्यात् ।

यञ्चोक्तम्—‘साध्याभावेपि प्रवर्त्तमानो हेतुर्व्यभिचारीत्युच्यते ।

१० न च तत्र कर्त्रभावो निश्चितः किन्त्वग्रहणम्’ इति, तदुक्तिमात्रम्,
प्रमाणाविषयत्वेपि स्थावरादौ कर्त्रभावाविशेषे गगनादौ रूपाद्य-
भावानिश्चयः स्यात् । तत्र रूपादीनां बाधकप्रमाणसङ्गावेनाभाव-
निश्चये अत्रापि तथा कर्त्रभावनियमोऽस्तु । न चोत्थानुपलब्धि-
लक्षणप्राप्तत्वादभावानिश्चयः, शरीरसम्बन्धेन हि कर्तृत्वं नान्यथा
१५ मुक्तात्मवत्, तत्सम्बन्धे चोपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वप्रसङ्गः कुम्भ-
कारादिवत् । तस्य हि शरीरसम्बन्ध एव दृश्यत्वं नान्यत्,
स्वरूपेणात्मनोऽदृश्यत्वात् पिशाचादिशरीरवत् । तच्छरीरस्या-
दृश्यत्वोपगमे च किञ्चित्कार्यमप्यनुद्धिपूर्वकं स्यादित्युक्तम् ।

यत्तुक्तम्—क्षित्याद्यन्वयव्यतिरेकानुविधानात्तेषामेव कारणत्वे
२० धर्माधर्मयोरपि तन्न स्यात्, तन्न सूक्ष्मम्, जगद्वैचित्र्यानु-
पपत्त्या तयोस्तत्कारणत्वप्रसिद्धेः । भूम्यादेः सल्लु सकलकार्ये
प्रति साधारणत्वात् अदृष्टाख्यविचित्रकारणमन्तरेण तद्वैचित्र्या-
नुपपत्तिः सिद्धा ।

यदप्युक्तम्—तत्र बुद्धिमतोऽभावादग्रहणं भावेप्यनुपलब्धिल-
२५ क्षणप्राप्तत्वादेति सन्दिग्धव्यतिरेकित्वे सकलानुमानोच्छेदः ।
यथा सामग्र्या धूमादिर्जन्यमानो दृष्टां नातिवर्त्तत इत्यन्यत्रापि
समानम्, तदप्युक्तम्, यौहग्भूतं हि घटादिकार्यं याहग्भूतसा-
मग्रीप्रभवं दृष्टं यौहग्भूतस्यैव तदतिक्रमामाचो नान्याद्विषयस्य
धूमादिबदेवेत्युक्तं प्राक् ।

१ अनित्यत्वरूपत्वभावस्य । २ पूर्वोक्त एव । ३ स्थावरादिभिः । ४ भूरुहादीनाम् ।

५ व्युत्पन्नानाम् । ६ यौग । ७ परेण । ८ कर्तुः । ९ कर्तुः । १० ईश्वरस्य ।

११ अशरीरत्वाच्च । १२ ईश्वर । १३ अक्रियादिनिः कृतबुद्ध्यादकम् ।

१४ चक्रादिरूप । १५ कार्यस्य ।

यश्चेदमुक्तम्-ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारता हि कर्तृता न सशरी-
रेतरता; इत्यप्यसङ्गतम्; शरीरामावे तदाधारत्वस्याप्यसम्भवा-
न्मुक्तात्मवत् । तेषां स्रष्टृत्पत्तौ आत्मा समवायिकारणम्, आत्म-
मनःसंयोगोऽसमवायिकारणम्, शरीरादिकं निमित्तकारणम् ।
न च कारणत्रयामावे कार्योन्पत्तिरनभ्युपगमात् । अन्यथा मुक्ता-^५
त्मनोपि ज्ञानादिगुणोत्पत्तिप्रसङ्गात् “नवानां गुणनामत्यन्तो-
च्छेदो मुक्तिः” [] इत्यस्य व्याघातः । निमि-
त्तकारणमन्तरेणाप्येवामुत्पत्तौ च बुद्धिमत्कारणमन्तरेणाप्यङ्क-
रादेः किं नोत्पत्तिः स्यात् ? नित्यत्वाभ्युपगमात्तेषामदोषोयमित्य-
युक्तम्; प्रमाणविरोधात् । तथाहि-नेश्वरज्ञानादयो नित्यास्तत्त्वा-^{१०}
वसदादिज्ञानादिवत् । तज्ज्ञानादीनां दृष्टस्वभावातिक्रमे भूरुहादी-
नामपि च स्यात् ।

न चाऽचेतनस्य चेतनानधिष्ठितस्य वास्यादिवत्प्रवृत्त्यसम्भ-
वात्, सम्भवे वा निरभिप्रायाणां देशादिनियमाभावप्रसङ्गात्
तदधिष्ठातेश्वरः सकलजगदुपादानादिज्ञाताभ्युपगन्तव्यः इत्य-^{१५}
भिधौतव्यम् । तज्ज्ञत्वेनास्याद्याप्यसिद्धेः । न चास्य तत्कर्तृत्वादेव
तज्ज्ञत्वम्; इतरेतराध्यानुपज्ञात्-सिद्धे हि सकलजगदुपादा-
नाद्यभिज्ञत्वे तत्कर्तृत्वसिद्धिः, तत्सिद्धौ च तदभिज्ञत्वसिद्धिः ।
अचेतनवच्चेतनस्यापि चेतनान्तराधिष्ठितस्य विष्टिकर्मकरादिवत्
प्रवृत्त्युपलम्भात्, महेश्वरेऽप्यधिष्ठात् चेतनान्तरं परिकल्पनीयम् ।^{२०}
स्वामिनोऽनधिष्ठितस्यापि प्रवृत्त्युपलम्भोऽर्कृष्टोत्पन्नाङ्कुराद्युपादाने
समानः । घटाद्युपादानस्यानधिष्ठितस्याप्रवृत्त्युपलम्भात् तथाङ्कुरा-
द्युपादानस्यापि कल्पने विष्टिकर्मकरादेः स्वाम्यनधिष्ठितस्याप्रवृ-
त्तेर्महेश्वरेऽपि तथा स्यात्, तथा चानवस्था । चेतनस्याप्यपर-
चेतनाधिष्ठितस्य प्रवृत्त्यभ्युपगमे च ‘अचेतनं चेतनाधिष्ठितम्’^{२५}
इत्यत्र प्रयोगोऽचेतनमिति धर्मिविशेषणस्याचेतनत्वादिति हेतो-
ऽप्यपार्थक्यम्, व्यैवच्छेद्याभावात् । स्वेहेतुप्रतिनियेमाद्य अचेत-
नस्यापि देशादिनियमो ज्यायान्, तस्य भवताप्यवस्थाभ्युपग-
मनीयत्वात्, अन्यथा सर्वत्र सर्वदा सर्वकार्याणामुत्पत्तिः स्यात्,
चेतनस्याधिष्ठातुर्नित्यव्यापित्वाभ्यां सर्वत्र सर्वदा सन्निधानात् ।^{३०}

१ ग्रन्थस्य । २ अमेरितस्य । ३ ज्ञानवृत्त्यानाम् (कारणानां) । ४ परेण ।
५ पालकि डोली इति वा लोके स्थाता संस्कृते च श्लिषिकेति । ६ तर्हि । ७ चेतनस्य ।
८ फलाभावात् । ९ स्वस्य कार्यस्य । १० उपादानकारणम् । ११ अदृष्टादेः ।
१२ शुक्त इत्यर्थः । १३ योगेन ।

- न च कारकशक्तिपरिज्ञानाविनाभावि तत्प्रयोक्तृत्वम्, तस्या-
नेकधोपलम्भात् । किञ्चित्खलुपादानाद्यपरिज्ञानेऽपि प्रयोक्तृत्वं
दृष्टम्, यथा स्वापमदमूर्च्छाद्यवस्थायां शरीरावयवानाम् । किञ्चि-
त्पुनः कतिपयकारकपरिज्ञाने, यथा कुम्भकारादेः करादिव्या-
५ पारेण दण्डादिप्रयोक्तृत्वम् । न खलु तस्याखिलकारकोपल-
म्भोस्ति; धर्माधर्मयोस्तद्वेतुभूतयोरनुपलम्भात् । उपलम्भे वा
तयोर्देशादिनियतेषु कार्येष्विच्छाव्याघातो न स्यात्, सर्वथाऽ-
तीन्द्रियार्थदर्शी स्यात् । न हि कश्चित्तादृशो बुद्धिमानस्ति यो न
किञ्चित्करोति कार्यं वा तादृशं विचिन्ते यत्राऽदृष्टं नोपयुज्यते ।
१० कारणशक्तेऽतीन्द्रियत्वाच्चदपरिज्ञानं सर्वप्राणिनां सुप्रसिद्धम् ।
यथास्थानं चास्याः सद्भावो निवेदितः । अन्यत्तु शरीराऽनायासतो
वाग्व्यापारमात्रेण; यथा स्वामिनः कर्मकरादिप्रयोक्तृत्वम् । अस्तु
वा कारकप्रयोक्तृत्वस्य परिज्ञानेनाविनाभावः, तथाप्यशरीरेश्वरे
तस्यासम्भवः, सर्वत्र शरीरसम्बन्धे सत्येवास्योपलम्भात् ।
१५ यदप्यभ्यधाति-बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वमात्रस्य साध्यत्वाच्च
विशेषविरुद्धता कार्यत्वस्य, अन्यथा धूमाद्यनुमानोच्छेदः; तदप्य-
भिधानमात्रम्; कार्यमात्राद्धि कारणमात्रानुमाने विशेषविरुद्ध-
ताऽसम्भवस्तस्य तेन व्याप्तिप्रसिद्धेः, न पुनर्बुद्धिमत्कारणानुमाने
तस्य तेनोपपत्तेः प्रतिपादितत्वात् । व्याप्तौ वा अनीश्वरसर्वज्ञत्वा-
२० दिधर्मकलापोपेत एव कर्त्ता सिध्येत्, तथाभूतेनैव घटादौ
व्याप्तिप्रसिद्धेः, न पुनरीश्वरत्वादिविरुद्धधर्मोपेतैः, तस्यै तद्व्याप-
कत्वेन स्वप्नेत्यप्रतिपत्तेः । तथाप्यस्यै तं प्रति गमकत्वे महानस-
प्रदेशे बन्धिव्याप्तौ धूमः प्रतिपन्नो गिरिशिखरादौ प्रतीयमानो
बन्धिविरुद्धधर्मोपेतोदकं प्रति गमकः स्यात् । धूमाद्यनुमानोच्छे-
२५ दासम्भवश्च प्राक्प्रवर्त्तनेन प्रतिपादितः ।

यथान्यदुक्तम्—‘सर्वज्ञता चाशेषकार्यकारणात्’ इत्यादि; तदप्य-
युक्तम्; कार्यकारित्वस्य कारणपरिज्ञानाविनाभावासम्भवस्योक्त-
त्वात् । एकस्याशेषकार्यकारिणो व्यवस्थापकप्रमाणाभावात्,
कार्यत्वादेश्च कृतोत्तरत्वात्कथमतः सर्वज्ञतासिद्धिः ?

१ प्रेरकत्वम् । २ प्रेरकत्वम् । ३ प्रेरकत्वम् । ४ तस्य घटादिकार्यस्य । ५ अस्या-
दृष्टेर्द कार्यं भवत्येवेदं न भवत्येवेतीच्छा । ६ न च तथा । ७ नैति संभवः ।
८ प्रयोक्तृत्वम् । ९ विशेषविरुद्धताया असम्भवो न च । १० कार्यत्वम् । ११ बुद्धि-
मत्कारणपूर्वकत्वेन । १२ शिलादौ । १३ कर्त्ता । १४ ईश्वरसर्वज्ञत्वादियमैकलोपो-
पेतसाध्यत्वम् । १५ कार्यत्वम् । १६ कार्यत्वम् । १७ ईश्वरसर्वज्ञत्वादियमैकलोपोपेत-
साध्यं प्रति । १८ सिद्धयेन ।

यद्योक्तम्-‘तथा विश्वतश्चक्षुः’ इत्यागमादप्यसौ सिद्धः, तद-
प्युक्तिमात्रम्; अन्योन्याश्रयानुषङ्गात्-प्रसिद्धप्रामाण्यो ह्यागमस्तौ-
त्यसाधको नान्यथातिप्रसङ्गात् ततस्तत्प्रामाण्यप्रसिद्धौ महेश्वर-
सिद्धिः, तत्सिद्धौ च तत्प्रणीतागमात्तत्सिद्धौ तस्याप्यन्येश्वरप्रणीतागमात्सिद्धावी-
श्वरागमानवस्था । पूर्वेश्वरप्रणीतागमात्तत्सिद्धौ परस्परश्रयः ।
सप्रणीतागमात्तत्सिद्धौ चान्योन्यलंश्रयः । नित्यस्य त्वागमस्य
परैः प्रामाण्यं नेष्यते महेश्वरकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात्, प्रामाण्य-
स्योत्पत्तौ ह्यसौ चेश्वरसङ्गावस्याकिञ्चित्करत्वात् ।

यदप्युक्तम्-कारुण्याच्छरीरादिसर्गे प्राणिनां प्रवर्तते; तद-१०
प्युक्तम्; सुखोत्पादकस्यैव शरीरादिसर्गस्योत्पादकस्य प्रस-
ङ्गात् । न हि करुणावतां यातनाशरीरोत्पादकत्वेन प्राणिनां
सुखोत्पादकत्वं युक्तम् । धर्माधर्मसद्व्यवहारिणः कर्तृत्वात्सुखव-
दुःखस्याप्युत्पादकोऽसौ, फलोपभोगेन हि तयोः प्रक्षयादपवर्गः
प्राणिनां स्यात् इति करुणयापि तद्विधाने प्रवृत्त्यविरोधः, इत्य-१५
प्यसङ्गतम् । तयोरीश्वरानायत्तत्वे कार्यत्वे च अभ्यामेव कार्यत्वा-
देरनैकान्तिकत्वप्रसङ्गात्, तदुत्पत्तौ तस्याव्यापारे च विनाशेप्य-
व्यापारोस्तु, कारणान्तरोत्पन्नसुखदुःखलक्षणफलोपभोगेनानयोः
प्रक्षयसम्भवात् । न हीश्वरस्यापि तत्फलोत्पादनादन्यत्तयोः क्षय-
कर्तृत्वम् । २०

किञ्च, धर्माधर्मौ निष्पाद्य पुनस्तयोः क्षयकरणे किमुत्पत्ति-
करणप्रयासेन ? न हि प्रेक्षाकारी ज्ञातव्यौ पुनः समीकरणन्यायेना-
त्मानमायासयति “प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्”
[] इति प्रसिद्धेऽप्य । अन्यथा प्रक्षालिताशुचिमोदकपरित्या-
गन्यायानुसरणप्रसङ्गः । २५

अपवर्गविधानार्थं चास्य प्रवृत्तौ कथमपूर्वकर्मसञ्चयकर्तृत्वम् ?
तत्सद्व्यवहारिणश्चास्य सुखदुःखोत्पादकशरीरोत्पादकत्वे वरं तत्फ-
लोपभोगेन प्राणिगणस्यैव तत्सव्यपेक्षस्य तदुत्पादकत्वमस्तु किम-
हेश्वरपरिकल्पनया ? सर्वत्र कार्येऽदृष्टस्य व्यापारात् । तर्थाहि-

१ ईशः । २ ईश्वर । ३ अप्रसिद्धप्रामाण्यादगमादन्वेषणीश्वराभावः साधयि ।
४ यतः प्रसिद्धप्रामाण्यागमः ईश्वरप्रतिपादकः । ५ नैवाधिकैः । ६ अन्यथा ।
७ लीमवेदनाजनक । ८ सुखदुःख । ९ महेश्वरस्य । १० ईशकारणरहितत्वे ।
११ भूमिं खनित्वा । १२ तयोर्धर्माधर्मयोः । १३ अप्रसिद्धस्य । १४ निश्चितं कार्यं
यमि प्राण्यदृष्टपूर्वकं भवतीति साधनो धर्मः तदुपभोग्यत्वात् ।

यद्यदुपभोग्यं तत्तद्वद्वपूर्वकम् यथा सुखादि, उपभोग्यं च प्राणिनां निखिलं कार्यमिति ।

ननु यथा प्रभुः सेवामेदांनुरोधात्फलप्रदो नाप्रभुस्तथेश्वरोपि कर्मापेक्षः फलप्रदो नान्यः, इत्यपि मनोरथमात्रम्, राक्षो हि ५ सेवायत्तफलप्रदस्य यथा रागादियोगो नैर्घृण्यं सेवायत्तता च प्रतीता तथेशस्याप्येतत्सर्वं स्यात्, अन्यथाभूतस्य अन्यपरिहारेण कचिदेव सेवके सुखादिप्रदत्वानुपपत्तेः ।

अथ यथा स्वपत्यादीनामेकसूत्रधारनियमितानां महाप्रासा-
दादिकार्यकरणे प्रवृत्तिः, तथाप्राप्येकेश्वरनियमितानां सुखा-
१० दानेककार्यकरणे प्राणिनां प्रवृत्तिः, इत्यप्यसाम्प्रतम्, नियमा-
भावात् । न ह्ययं नियम-निखिलं कार्यमेकेनैव कर्तव्यम्,
नाप्येकनियतैर्बहुभिरिति, अनेकधा कार्यकर्तृत्वोपलम्भात् ।
तथाहि-कचिदेक एवैककार्यस्य कर्त्तापलभ्यते यथा कुविन्दः
पटस्य । कचिदेकोप्यनेककार्याणाम् यथा घटघटीशरावोदञ्चना-
१५ दीनां कुलालः । कचिदनेकोप्यनेककार्याणाम् यथा घटपटम-
कुटशकटादीनां कुलालादिः । कचिदनेकोप्येककार्यस्य यथा
शिविकोद्वहनादिकार्यस्यानेकपुरुषसंघातः । न चानेकस्थपत्यादि-
निष्पाद्ये प्रासादादिकार्येऽवश्यतयैकसूत्रधारनियमितानां तेषां
तत्र व्यापारः, प्रतिनियताभिप्रायाणामप्येकसूत्रधारऽनियमि-
२० तानां तत्करणाविरोधात् ।

किञ्च, अदृष्टापेक्षस्यार्थं कार्यकर्तृत्वे तत्कृतोपकारोऽवश्यंभावी
अनुपकारकस्यापेक्षायोगात् । तस्य चार्तो मेदे सम्बन्धासम्भवः ।
सम्बन्धकल्पनार्था ज्ञानवस्था । अमेदे तत्करणे महेश्वर एव
कृत इत्यदृष्टकार्यतास्य । नाऽस्यादृष्टेन किञ्चित्क्रियते सम्भूयै
२५ कार्यमेव विधीयते सहकारित्वस्यैककार्यकारित्वलक्षणत्वात् ।
इत्यप्यसाम्प्रतम्, सहकारिसव्यपेक्षो हि कार्यजननस्वभावः तस्या-
दृष्टादिसहकारिसन्निधानाद्यदि प्रागप्यस्ति तदोत्तरकालमावि-
सकलकार्योत्पत्तिस्तदैव स्यात् । तथाहि-यद्येदा यजननसमर्थे
तत्तदा तज्जनयत्येव यथान्यावस्थामाप्तं बीजमङ्कुरम्, प्रागप्युत्तर-

१ वस्तु । २ यस्य पुरुषस्य । ३ स्त्री । ४ विशेष । ५ अनुसरणम् ।
६ निष्कृपत्वम् । ७ प्रक्षमादीनाम् । ८ ईश्वरस्य । ९ ईश्वरात् । १० तत्तद्वद्वत्स्य
नित्यत्वं विलीयते । ११ ईश्वरादृष्टान्यामेकीयुषः । १२ फलसमाप्तताभ्युपगमो
महेश्वरो धर्मा उत्तरकालमात्रे सकलं कर्तव्यमदृष्टादिसन्निधानात्प्राप्य जनयतीति साध्यो
धर्मः तदा तस्य तज्जननसामर्थ्यादिति शेषः । १३ नववदवसाप्राप्तम् ।

कालभावि सकलकार्यजननसमर्थश्चैकस्वभावतयाभ्युपगतो महे-
श्वर इति । तदा तदजनने वा तज्जननसामर्थ्याभावः, यद्धि यदा
यन्न जनयति न तत्तदा तज्जननसमर्थस्वभावम् यथा कुसुलस्य
बीजमङ्कुरमजनयन्न तज्जननसमर्थस्वभावम्, न जनयति चोत्तर-
कालभावि सकलं कार्यं पूर्वकार्योत्पत्तिसमये महेश्वर इति । ५

तज्जननसमर्थस्वभावोप्यसौ सहकार्यऽभावात्तथा तन्न जन-
यति; इत्यपि चार्त्तम्; समर्थस्वभावस्यापरापेक्षाऽयोगात् ।
'समर्थस्वभावस्यापरापेक्षश्च' इति विरुद्धमेतत्, अनीधेयाऽप्र-
हेयातिशयत्वात्तस्य ।

किञ्च, एते सहकारिणः किं तदायत्तोत्पत्तयः, अतदायत्तोत्प- १०
त्तयो वा ? प्रथमपक्षे किं नैकदैवोत्पद्यन्ते ? तदुत्पादकान्यसहका-
रिवैकल्याच्चेदन्वयः । तथा चास्यापरापरसहकारिजनने एवो-
पक्षीणशक्तित्वान्न प्रकृतकार्ये व्यापारः । बीजाङ्कुरादिवदनादि-
त्वात्तत्प्रबाहस्य नान्वयस्या दोषायेत्यभ्युपगमे महेश्वरकल्पना-
वैयर्थ्यम्, स्वसामर्थ्यधीनोत्पत्तितया पूर्वपूर्वसामग्रीविशेषवशा- १५
दुपरापराखिलकार्योत्पत्तिप्रसिद्धेः । अथातदायत्तोत्पत्तयः; तर्हि
तैरेव कार्यत्वादिहेतवोऽनैकान्तिकाः इति ।

एतेन 'महाभूतादि व्यक्तं चेतनाधिष्ठितं प्राणिनां सुखदुःख-
निमित्तं रूपादिमत्त्वासुर्यादिवत्' इत्यादीनि चार्त्तिककारादिभि-
रुपन्यस्तप्रमाणानि निरस्तानि; यादृशं हि रूपादिमत्त्वमनित्यत्वं २०
च चेतनाधिष्ठितं वास्यादौ प्रसिद्धं तादृशस्य क्षित्यादावसिद्धेः ।
रूपादिमत्त्वमात्रस्य च चेतनाधिष्ठितत्वेन प्रतिर्वन्धासिद्धेः आश-
ङ्कितविपक्षवृत्तितयाऽनैकान्तिकत्वम् । प्रतिवन्धाभ्युपगमे चेष्ट-
विपरीतसाधनाद्विरुद्धमित्यादि पूर्वोक्तं सर्वमत्रापि योजनीयम् ।

किञ्च, ईश्वरबुद्धेरनित्यत्वप्रसाधनात्तदभिन्नस्येश्वरस्यानित्य- २५
त्वप्रसिद्धेस्तस्याप्यपरबुद्धिमदधिष्ठितत्वप्रसङ्गः स्यादित्यन्वयः ।
तदनधिष्ठितत्वे वा तेनैवानेकान्तो हेतोः ।

यद्योक्तम्—'सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारः' इत्यादि; तत्रोत्तरकालं
प्रबुद्धानामित्येतद्विशेषणमसिद्धम् । न खलु प्रलयकाले प्रलुप्त-

१ आरोपयिष्यमद्यन्योऽतिशयोऽनाधेयः । २ अन्यैः स्फोटयिष्यमद्यन्योऽतिशयोऽ-
प्रहेयः । ३ ईश्वरानपेक्षोत्पत्तयः ४ सहकारिणिः । ५ सामयवकार्यत्वहेतुनिराकरण-
परेण ग्रन्थेन । ६ अनिनामाभासिद्धेः । ७ भूतहादिवचेतनानधिष्ठिते महाभूतादिव्यक्ते
रूपादिमत्त्वं तत्रैव वास्यादिवचेतनाधिष्ठिते वा इति । ८ सर्ववत्त्वादिधर्मोपेक्षादिपरी-
तस्यासर्ववत्त्वादिधर्मोपेतस्य ।

ज्ञानस्मृतयो वित्तुकरणाः पुरुषाः सन्ति, तस्यैव सप्रैयाऽ-
प्रसिद्धेः । सिद्धौ वा सकृत्कर्म्मवशादिशिष्टज्ञानान्तरेषु (नरो)त्य-
चेत्तेषां कथं वित्तुकरणत्वं प्रवृत्तज्ञानस्मृतित्वं वा ? सन्दिग्धवि-
पक्षव्यावृत्तिकत्वादनैकान्तिकञ्च हेतुः ।

५ किञ्च, अन्योपदेशपूर्वकत्वमात्रे साध्ये सिद्धसाध्यता, अना-
देव्यवहारस्याशेषपुरुषाणामन्योपदेशपूर्वकत्वेनेष्टत्वात् । ईश्वरो-
पदेशपूर्वकत्वे तु साध्येऽनैकान्तिकता, अन्यथापि तत्सम्भवात् ।
साध्यविकर्तृता च दृष्टान्तस्य । न चास्योपदेशवृत्त्वसम्भवो विमु-
क्तत्वान्मुक्तात्मवत् । तच्च वित्तुकरणतयोपगमात्प्रसिद्धम् ।

१० 'स्थित्वा प्रवृत्तेः' इति चेश्वरेणैवानैकान्तिकम्, स हि क्रमव-
त्कार्येषु स्थित्वा प्रवर्तते न च चेतनान्तराधिष्ठितोऽनवस्था-
प्रसङ्गात् इति ।

अनयैव दिशा 'सप्तभुवनान्येकबुद्धिमन्निर्मितानि एकवस्त्वन्त-
र्गतत्वादेकावसंथान्तर्गतापवरकवत्' इत्यादिपरकीयप्रयोगोऽ-
१५ भ्यूहः । न ह्येकावसथान्तर्गतानामपवरकादीनामेकसूत्रधार-
निर्मितत्वनियमः येनेश्वरः सकलभुवनैकसूत्रधारः सिद्ध्येत्,
अनेकसूत्रधारनिर्मितत्वस्याप्युपलम्भात् ।

एकाधिष्ठाना ब्रह्मादयः पिशाचान्ताः परस्परातिशयवृत्ति-
त्वात्, इह येषां परस्परातिशयवृत्तित्वं तेषामेकायत्तता दृष्टा
२० यथेह लोके गृहग्रामनगरदेशाधिपतीनामेकस्मिन्सार्वभौमनर-
पती, तथा भुजगरक्षोयक्षप्रभृतीनां परस्परातिशयवृत्तित्वं च, तेन
मन्यामहे तेषामेकस्मिन् ईश्वरे पारतन्त्र्यम्, इत्यसम्यक्; अत्र हि
'ईश्वराख्येनाधिष्ठायकेनैकाधिष्ठानाः' इति साध्येऽनैकान्तिकता
हेतोर्विपर्यये बाधकप्रमाणाभावात् प्रतिवन्धोसिद्धेः । दृष्टान्तस्य च
२५ साध्यविकलता । 'अधिष्ठायकमात्रेण साधिष्ठानाः' इति साध्ये
सिद्धसाध्यता, स्वर्निकायस्वामिनः शक्रादेर्मवान्तरोपासाऽदृष्टस्य
चाधिष्ठायकतयाभ्युपगमात् ।

१ प्रलयकालसमये एव न तु पश्चात् । २ परोपदेशरहिते मेधुनादिष्ववधारयति
उंक्तिः । ३ (हेतोः) । ४ ईश्वरोपदेशं विनापि । ५ व्यवहारे प्रत्यक्षनियतत्वस्य ।
६ पुत्रादीनां आश्रयुपदेशपूर्वकत्वेनेश्वरोपदेशपूर्वकत्वमागमात् । ७ निगद्युक्तत्वात् ।
८ साधनम् । ९ आकाशः । १० यन्त्रिः । ११ ईश्वराभिप्ताः कार्यकारणे । १२ सन्दि-
ग्धानैकान्तिकता । १३ विपक्षे—इदञ्चित्तत्वेषु गृहग्रामनगरदेशाधिपतिषु ।
१४ ईश्वराख्येनैकाधिष्ठायकेन परस्परातिशयवृत्तित्वसाविनागानासिद्धेः । १५ सार्व-
भौमनरपती ईश्वरमेवत्वमसिद्धेः ।

ततो अहम्भरस्याशेषजगत्कर्तृत्वप्रसाधकस्यानवयप्रमाणस्या-
सम्भवात् कुतोऽनादिमुक्तत्वसिद्धिर्यतोऽनाद्यशेषकत्वमस्य स्यात् ?
प्रयोगः-शिलादिकं नैकैकसमावभावपूर्वकं विभिन्नदेशकाला-
कारत्वात् । यदित्यं तदित्यम् यथा घटपटमकुटशकटादि,
विभिन्नदेशकालाकारं चेदम्, तस्मान्नैकसमावभावपूर्वक-^५
मिति । न चेदमसिद्धं साधनम् । सर्वोपपत्तितर्वादौ धर्मिणि विभि-
न्नदेशकालाकारत्वस्य सुप्रसिद्धत्वात् । नाप्यनैकान्तिकं विरुद्धं
वा विपक्षस्यैकदेशे तत्रैव वा वृत्तेरभावात् ।

नन्वेकस्याप्यनैककार्यकरणकुशलस्य कर्तुर्विचित्रसहकारिसा-
क्षिभ्यो विचित्रकार्यकारित्वं दृश्यते, यतोऽनेकान्तः । इत्यप्यनुपप-^{१०}
न्नम् । तत्राप्येकसमावत्वस्यासिद्धेः, स्वरूपमभेदयतां सहकारित्व-
स्यासम्भवाप्रतिपादनात् । नापि कालाख्यापदिष्टम्, प्रत्यक्षाग-
माभ्यां पक्षस्याबाध्यमानत्वात् । न हि शिलादौ विचित्रकार्ये
प्रत्यक्षेनैकसमावः कर्त्तृत्वं लभ्यते, तस्यासीन्द्रियतया प्रत्यक्षागो-
चरत्वस्य प्रागेव प्रतिपादनात्, आगमस्यापि तत्प्रतिपादकस्य^{१५}
प्रागेव प्रतिषेधात् । नापि सत्प्रतिपक्षम्, विपरीतार्थोपस्थाप-
कानुमानान्तरस्याभावात्, कार्यत्वादिहेतूनां चात्रैवानेकदोषबु-
द्धत्वाप्रतिपादनादिति ।

ननु साधूक्तमावरणापाये सर्वैकत्वमिति । तसु प्रकृतेरेव भवै-
वावरणसम्भवात्, नात्मनस्तस्यावरणाभावात् "प्रधानपरिणामः^{२०}
शुद्धं कृष्णं च कर्म" [] इत्यभिधानात् । निखिलजग-
त्कर्तृत्वाभास्या एवाशेषकत्वमस्तु, तदेतदप्यसमीक्षितमिधा-
नम् । कर्मणः प्रधानपरिणामताप्रतिषेधात् सकलजगत्कर्तृत्वस्य
वासिद्धेः । ननु प्रकृतिप्रभवैवेयं जगतः सृष्टिप्रक्रिया, तत्कथं
तस्यास्तत्कर्तृत्वासिद्धिः ? तथा हि—

२५

"प्रकृतेर्महान्तोऽहङ्कारस्तस्माद्गन्ध बोद्धशकः ।

तस्मादग्नि बोद्धशकात्पञ्चम्यः पञ्च भूतानि ॥"

[सांख्यका० २१]

अथमं हि प्रकृतेर्महान्=विषयाद्यवसायलक्षणा बुद्धिदत्तपद्यते ।
बुद्धेर्माहङ्कारोऽहं भ्रमणोऽहं दर्शनीय इत्याद्यभिमानलक्षणः ।^{२५}
अहङ्कारात्पञ्च तन्मात्राणि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मकानि, इन्द्रि-
याणि चैकादश पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाग्राणल-
क्षणानि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपसंस्रानि,

मनश्च सङ्कल्पलक्षणम्—‘भोजनार्थं हि तत्र गृहे यास्यामि किं दधि भविष्यति गुडो वा भविष्यति’ इत्येवं सङ्कल्पवृत्तिर्मनः । पञ्चभ्यश्च तन्मात्रेभ्यः पञ्च भूतानि—शब्दादाकाशं, स्पर्शाद्वायुं, रूपास्तेजः, रसादापः, गन्धात्पृथ्वीति । पुरुषश्चेति । पञ्चविंशतितत्त्वानि ।

५ प्रकृत्यात्मकाश्चैते महदादयो मेदाः न त्वऽतोऽत्यन्तमेदिनो लक्षणमेदाभावात् । तथाहि—

“त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि ।
व्यक्तं तथा प्रधानं तैद्विपरीतस्तथा च पुमान् ॥”

[सांख्यका० ११]

१० लोके हि यदात्मकं कारणं तदात्मकमेव कार्यमुपलभ्यते यथा कृष्णैस्तन्तुभिरारब्धः पटः कृष्णः । एवं प्रधानमपि त्रिगुणात्मकम्, तथा बुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रेन्द्रियभूतात्मकं व्यक्तमपि । तथाऽविवेकि—‘इमे सत्त्वादय इदं च महदादि व्यक्तम्’ इति पृथक्कुर्वन् न शक्यते । किन्तु ‘ये गुणास्तद्व्यक्तं यद्व्यक्तं ते गुणाः’ इति । तथा

१५ व्यक्ताव्यक्तद्वयमपि विषयो भोग्यस्वभावत्वात् । सामान्यं च सर्व-पुरुषाणां भोग्यत्वात्पण्यस्वीवत् । अचेतनात्मकं च सुखदुःखभोग्यावेदकत्वात् प्रसवधर्मिवत् । तथाहि—प्रधानं बुद्धिं जनयति, बुद्धिरप्यहङ्कारम्, अहङ्कारोपि तन्मात्राणीन्द्रियाणि चैकादश, तन्मात्राणि च महामूतानीति ।

२० प्रकृतिविकृतिभावेन परिणामविशेषाल्लक्षणमेदोऽप्यविरुद्धः । यथोक्तम्—

“हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम् ।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ॥”

[सांख्यका० १०]

२५ व्यक्तमेव हि कारणवत् । तथाहि—प्रधानेन हेतुमती बुद्धिः, बुद्ध्या चाहङ्कारः, अहङ्कारेण पञ्च तन्मात्राण्येकादश चेन्द्रियाणि, भूतानि तन्मात्रैः । न त्वेवमव्यक्तम्—तस्य कुतश्चिदनुत्पत्तेः । तथा व्यक्तमनित्यम् उत्पत्तिधर्मकत्वात्, नाव्यक्तम् तस्यानु-

१ महदादिकार्यं त्रिगुणादिरूपेण व्यक्तम् । २ व्यक्ताऽव्यक्ताभ्याम् । ३ प्रधानमेव त्रिगुणात्मकम् । महदादिकार्यं कर्म त्रिगुणात्मकं सादित्युक्ते सत्याह । ४ आदिपदेन रजस्तमसी । ५ पुरुषेण । ६ स्वरूपावसानम् । ७ लक्षणमेदाभावात्कर्म कार्यकारणभावः सादित्युक्ते आह । ८ महदादि । ९ प्रधानम् । १० हेतुमान् । ११ महदादि कार्यम् । १२ कारणम् ।

त्वत्तिमत्त्वात् । यथा च प्रधानपुरुषौ दिवि चान्तरिक्षेऽत्र सर्वत्र व्यापितया वर्तते न तथा व्यक्तम् । यथा च संसारकाले त्रयोदशविधेन बुद्ध्यहङ्कारेन्द्रियलक्षणेन संयुक्तं सूक्ष्मशरीरादिकं व्यक्तं संसरति, नैवमव्यक्तं तस्य विस्तृत्वेन सक्रियत्वायोगात् । बुद्ध्यहङ्कारादिभेदेन चानेकविधं व्यक्तम्, नाव्यक्तम् तस्यैकस्यैव सतो लोकत्रयकारणत्वात् । आश्रितं च व्यक्तम्, यद्यस्मादुत्पद्यते तस्य तदाश्रितत्वात् । न त्वैवमव्यक्तम् तस्याकार्यत्वात् । लिङ्गं च 'ल्यं गच्छति' इति कृत्वा, प्रलयकाले हि भूतानि तन्मात्रेषु लीयन्ते, तन्मात्राणीन्द्रियाणि चाहङ्कारे, अहङ्कारो बुद्धौ, बुद्धिश्च प्रधाने । न चाव्यक्तं क्वचिदपि ल्यं गच्छतीति तस्याविद्यमान-१० कारणत्वात् । सावयवं च व्यक्तम् शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मकैरवयवैर्युक्तत्वात् । न त्वैवमव्यक्तम् प्रधानात्मनि शब्दादीनामनुपलब्धेः । यथा च पितरि जीवति पुत्रो न स्वतन्त्रो भवति तथा व्यक्तं सर्वदा कारणात्तत्त्वात्परतन्त्रम् । न त्वैवमव्यक्तं तस्य नित्यमकारणाधीनत्वत् । १५

ननु प्रधानात्मनि कुतो महदादीनां सद्भावसिद्धिर्यतः प्रागुत्पत्तेः सदेव कार्यमिति चेत् ।

“असद्वकरणादुपादानग्रहणात्सर्वसम्भवाभावात् ।

शक्यस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥”

[सांख्यका० ९.] २०

इति हेतुपञ्चकात् । यदि हि कारणात्मनि प्रागुत्पत्तेः कार्यं नाभविष्यत्तदा तन्न केनचिदकरिष्यत । यदसत्तन्न केनचित्क्रियते यथा गगनाम्भोरुहम्, असच्च प्रागुत्पत्तेः परमते कार्यमिति । क्रियते च तिलादिभिस्तैलादिकार्यम्, तस्मात्तच्छक्तितः प्रागपि सत्, व्यक्तिरूपेण तु कापिलैरपि प्राक् सत्त्वस्थानिष्ठ-२५ त्वात् ।

यदि चासद्भवेत्कार्यं तर्हि पुरुषाणां प्रतिनियतोपादानग्रहणं न स्यात् । यथाहि-शालिबीजादिषु शाल्यादीनामसत्त्वं तथा कोद्रचवीजादिष्वपि । तथा च कोद्रचवीजादयोपि शालिफलार्थमिरुपादीयेरन् । न चैवम्, तस्मात्तत्र तत्कार्यमस्तीति गम्यते । ३०

१ प्रवर्तते । २ गच्छति । ३ व्यापकत्वेन । ४ तिरोभावम् । ५ परमते प्रागुत्पत्तेः कार्यं धर्मः, न केनचित्क्रियते इति साध्वो धर्मः-असत्त्वात् । ६ जैनादिमते । ७ वृत्तिपण्डे षटो नास्ति षटोपि नास्ति तदा वृत्तिपण्डो षट्सोपादानं षटस्य न, तस्य तु तन्मय एवेति नियतोपादानम् । ८ शास्त्रादि ।

यदि चासदेव कार्यं सर्वस्मात्तृणपांशुलोष्ठादिकात्सर्वं सुवर्ण-
रजतादि कार्यं स्यात्, तादात्म्यविगमस्य सर्वैर्लिङ्गविशिष्टत्वात् ।
न च सर्वं सर्वतो भवति तस्मात्तत्रैव तस्य सद्भावसिद्धिः ।

ननु कारणानां प्रतिनिर्यतेष्वेव कार्येषु प्रतिनियताः शक्यः ।
५ तेन कार्यस्यासत्त्वाविशेषेपि किञ्चिदेव कार्यं कुर्वन्ति, इत्यप्यनु-
त्तरम् ; शक्ता अपि हि हेतवः शक्यक्रियमेव कार्यं कुर्वन्ति
नाशक्यक्रियम् । यच्चासत्तत्र शक्यक्रियं यथा गगनाम्बोदहम्,
असच्च परमते कार्यमिति ।

वीजादेः कारणभावाच्च सत्कार्यं कार्यासत्त्वे तदयोगात् ।
१० तथाहि-न कारणभावो वीजादेः अविद्यमानकार्यत्वात्स्वरविषा-
णवत् । तत्सिद्धमुत्पत्तेः प्राकारणे कार्यम् ।

तच्च कारणं प्रधानमेवेत्यावेदयति हेतुपञ्चकात्—

“मेदानां परिमाणात्समन्वयान्छक्तितः प्रवृत्तेश्च ।

कारणकार्यविभानादविभागाद्वैश्वरूप्यस्य ॥”

१५

[सांख्यका० १५]

लोके हि यंस्य कर्त्ता भवति तस्य परिमाणं दृष्टम् यथा कुलालः
परिमितान्मृत्पिण्डात्परिमितं ग्रन्थग्राहिणमाढकग्राहिणं च घटं
करोति । इदं च महदादि व्यक्तं परिमितं दृष्टम्-एका बुद्धिः,
एकोऽहङ्कारः, पञ्च तन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चभूता-
२० नीति । अतो यत्परिमितं व्यक्तमुत्पादयति तत्प्रधानमित्यवगमः ।

इतश्चास्ति प्रधानं मेदानां समन्वयदर्शनात् । यज्जातिसम-
न्वितं हि यदुपलभ्यते तत्तन्मयकारणसम्भूतम् यथा घट-
शरावादयो मेदा मृज्जातिसमन्विता मृदात्मककारणसम्भूताः,
सत्त्वरजस्तमोजातिसमन्वितं चेदं व्यक्तमुपलभ्यते । सत्त्वस्य हि
१५ प्रसादबलाद्योर्द्ध्वग्रीत्यादयः कार्यम् । रजसस्तु तापशोषोद्देगा-
दयः । तमसश्च दैन्यबीभत्सगौरवादयः । अतो महदादीनां
प्रसाददैन्यतापादिकार्योपलम्भात्प्रधानान्वितत्वं सिद्धिः ।

१ तर्हि । २ अभावस्य । ३ उपादानेऽनुपादाने च । ४ कारणे । ५ तदुपादाने ।
६ शक्यक्रियेषु । ७ परमते कार्यं यमि अव्यक्तित्वं न भवति अस्तत्वादिति शेषः ।
८ महदादि । ९ महदादीनाम् । १० कार्यम् । ११ महदादिन्यक्तमेककारणपूर्वकं
परिमितत्वाद् घटादिभ्यः । १२ महदादिन्यक्तमेककारणसम्भूतमेकस्वरूपान्वितत्वाद्
घटपटीशरावोदञ्चनादिभ्यः । १३ उत्सव । १४ महदादिन्यक्तम् ।

इतश्चास्ति प्रधानं शक्तिः प्रवृत्तेः । लोके हि यो यैस्मिन्नर्थे प्रवर्त्तते स तत्र शक्तः यथा तन्तुवायः पटकरणे, प्रधानस्य चास्ति शक्तिर्यथा व्यक्तमुत्पादयति, सा च निराधारा न सम्भवतीति प्रधानास्तित्वसिद्धिः ।

कार्यकारणविभागाच्च, दृष्टो हि कार्यकारणयोर्विभागः, यथा ५ मृत्पिण्डः कारणं घटः कार्यम् । स च मृत्पिण्डाद्विभक्तस्वभावो घटो मद्योदकादिधारणाद्वरणसमर्थो न तु मृत्पिण्डः । एवं महदादि कार्यं दृष्ट्वा साधयामः—‘अस्ति प्रधानं यतो महदादिकार्यमुत्पन्नम्’ इति ।

इतश्चास्ति प्रधानं वैश्वरूप्यस्याविभागात् । वैश्वरूप्यं हि लोक-१० त्रयमभिधीयते । तच्च प्रलयकाले कचिद्विभागं गच्छति । उक्तं च प्राक्—‘पञ्चभूतानि पञ्चसु तन्मात्रेष्वविभागं गच्छन्ति’ इत्यादि । अविभागो हि नामाविवेकः । यथा क्षीरावस्थायाम् ‘अन्यत्क्षीरमन्यद्घि’ इति विवेको न शक्यते कर्तुं तद्वत्प्रलयकाले व्यक्तमिदमव्यक्तं चेदमिति । अतो मन्यामहेऽस्ति प्रधानं यत्र १५ महदाद्यविभागं गच्छतीति ।

अत्र प्रतिविधीर्यते—प्रकृत्यात्मकत्वे महदादिभेदानां कार्यतया ततैः प्रवृत्तिविरोधः । न खलु यद्यस्मात्सर्वथाऽव्यतिरिक्तं तत्तस्य कार्यं कारणं वा युक्तं मित्रलक्षणत्वात्तयोः । अन्यथा तद्व्यवस्था सङ्कीर्येत । तथा च यद्भवद्भिर्मूलप्रकृतेः कारणत्वमेव, भूतेन्द्रिय-२० लक्षणषोडशकगणस्य कार्यत्वमेव, बुद्ध्यहङ्कारतन्मात्राणां पूर्वोत्तरापेक्षया कार्यत्वं कारणत्वं चेति प्रतिष्ठातं तन्न स्यात् । तथा चेदमसङ्गतम्—

“मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।

षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥” २५

[सांख्यका० ३] इति ।

सर्वेषामेव हि परस्परमव्यतिरेके कार्यत्वं कारणत्वं वा प्रस-

१ महदादिभेदानाम् । २ कार्यप्रवृत्तिः शक्तिपूर्विका प्रवृत्तित्वात्तन्तुवायमवृत्तिवत् । ३ महदादिव्यक्तमेककारणपूर्वकं कार्यरूपत्वाद् घटादिवत् । ४ महदाद्यविभागः कचिदाश्रितः अविभागत्वात्क्षीरे दृष्ट्याद्यविभागवत् । ५ एकत्वम् । ६ जैनेः । ७ प्रकृतेः । ८ प्रधानं महदादेः कारणं न अवति तस्मात्सर्वथाऽव्यतिरिक्तत्वात् । महदादि प्रधानकार्यं न अवति तस्मात्सर्वथाऽव्यतिरिक्तत्वात् । ९ मित्रलक्षणाभावे । १० प्रकृत्यादि कार्यरूपं कार्यरूपान्महदादेरव्यतिरेकात् ।

ज्येत । आपेक्षिकत्वाद्वा तद्भावस्यै, रूपान्तरस्य चापेक्षणीयस्या-
भावात्सर्वेषां पुरुषवत्प्रकृतिविकृतित्वाभावः । अन्यथा पुरुष-
स्यापि प्रकृतिविकृतित्व्यपदेशः स्यात् ।

यच्चैदम्-हेतुमत्त्वादिधर्मयोगि व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ; तदपि
५ बालप्रलापमाधम् ; न हि यद्येसादभिन्नस्वभावं तत्तद्विपरीतं युक्तं
भिन्नस्वभावलक्षणत्वाद्विपरीतत्वस्य । अन्यथा भेदव्यवहारोच्छे-
द्यः(दः) स्यात् । सत्त्वरजस्तमसां चान्योन्यं भिन्नस्वभावनिब-
न्धनो भेदो न स्यादिति विश्वमेकरूपमेव स्यात् । ततो व्यक्त्-
रूपाव्यतिरेकादव्यक्तमपि हेतुमत्त्वादिधर्मयोगि स्यात् व्यक्तस्वरूप-
१० वत् । व्यक्तं चाऽहेतुमत्त्वादिधर्मयोगि स्यादव्यक्तस्वरूपाव्यति-
रेकात्तत्स्वरूपवदित्येकान्तः ।

किञ्च, अन्वयव्यतिरेकनिश्चयसमधिगम्यो लोके कार्यकारण-
भावः प्रसिद्धः । न च प्रधानादिभ्यो महदाद्युत्पत्तिनिश्चयेऽन्वयो
व्यतिरेको वा प्रतीतोस्ति येन प्रधानान्महान्महतोऽहङ्कार इत्यादि
१५ सिद्ध्येत् ।

न च नित्यस्य कारणभावोस्ति, क्रमाऽक्रमाभ्यां तस्यार्थक्रिया-
विरोधात् । ननु नित्यमपि प्रधानं कुण्डलादौ सर्पवन्महदादिरू-
पेण परिणामं गच्छत्तेषां कारणमित्युच्यते, ते च तत्परिणामरू-
पत्वात्तत्कार्यतया व्यपदिश्यन्ते । परिणामश्चैकवस्त्वऽधिष्ठान-
२० त्वादभेदेपि न विरुध्यते; इत्यप्यनेकान्तावलम्बने प्रमाणोपपन्नं
नित्यैकान्ते परिणामस्यैवासिद्धेः । स हि तत्र भवन् पूर्वरूपत्या-
गाद्वा भवेत्, अत्यागाद्वा ? यद्यत्यागात् ; तदाऽवस्थासङ्घर्षं दृष्ट्वा
द्यवस्थायामपि युवाद्यवस्थोपलब्धिप्रसङ्गात् । अथ त्यागात् ;
तदा स्वभावहानिप्रसङ्गः ।

२५ किञ्च, सर्वथा तस्यागः, कथञ्चिद्वा ? सर्वथा चेत् ; कस्य
परिणामः ? पूर्वरूपस्य सर्वथा त्यागादपूर्वस्य चोत्पादात् । कथ-
ञ्चित् चेत् ; न किञ्चिद्विरुद्धम्, तस्यैवार्थस्य प्राच्यरूपत्यागेना-

१ अपेक्षणीयमानेपि प्रकृतिविकृतित्वावो भविष्यतीत्युक्ते जाह । २ भिन्नलक्षणवा-
त्कार्यकारणभावयोरित्यपेक्षया बाधम् । ३ कार्यकारणभावस्य । ४ अपेक्षणीयसा-
मानेपि कस्यचित्प्रकृतित्वं ना घटते चेत् । ५ अन्वयकं धर्मि व्यक्ताद्विपरीतं न भवति
तसादभिन्नस्वभावत्वात् । ६ विपरीतत्वं भिन्नस्वभावनिबन्धनं न भवतीति चेत् ।
७ सर्वं व्यक्तरूपमेवाऽव्यक्तरूपमेव वा सादिति । ८ कञ्चुः सर्वो यथा कुण्डलाकारेण
जायते स एव ऋज्वाकारेण जायते । कुण्डलादौ सर्गवदिति पाठान्तरम् । ९ इत्यतया
पर्यायतया च । १० प्रधानत्वेन । मनुष्यलक्षणस्य वा । ११ बालमत्स्यायाः ।

न्यथाभावलक्षणपरिणामोपपत्तेः । नित्यैकान्तता तु तस्य व्याह-
न्येत । अत्र हि नैकदेशेन तैत्त्यागो निरंशस्यैकदेशाभावात् ।
नापि सर्वात्मना; नित्यत्वव्याघातात् ।

किंच, प्रवर्त्तमानो निवर्त्तमानश्च धर्मो धर्मिणोऽर्थान्तरभूतो वा
स्यात्, अनर्थान्तरभूतो वा ? यद्यर्थान्तरभूतः, तर्हि धर्मो तद्-^५
वैश्य एवेति कथमसौ परिणतो नाम ? न ह्यर्थान्तरभूतयोरर्थयो-
रुत्पादविनाशे सत्यविचलितात्मनो वस्तुनः परिणामो भवति,
अन्यथाऽऽत्मापि परिणामी स्यात् । तत्सम्बन्धयोर्धर्मयोरुत्पाद-
विनाशात्तस्य परिणामः, इत्यप्यसुन्दरम्, धर्मिणा सदसतोः
सम्बन्धाभावात् । सम्बन्धो हि धर्मस्य सतो भवेत्, असतो वा ? ^{१०}
न तावत्सतः, स्वातन्त्र्येण प्रसिद्धाशेषस्वभावसम्पत्तेरनपेक्षतया
कचित्पारतन्त्र्यासम्भवात् । नाप्यसतः, तस्य सर्वोपाख्याविरह-
लक्षणतया क्वचिदप्याश्रितत्वानुपपत्तेः । न खलु शरविपणादिः
क्वचिदाश्रितो युक्तः । न च प्रवर्त्तमानाप्रवर्त्तमानधर्मद्वयव्यतिरिक्तो
धर्मो उपलब्धिलक्षणप्राप्तो दर्शनपथप्रस्थायी कस्यचिदिति । अतः ^{१५}
स तादृशोऽसद्व्यवहारविषय एव विदुषाम् । अथानर्थान्तरभूतः,
तथाप्येकस्याधर्मिस्वरूपादव्यतिरिक्तत्वात्तयोरेकत्वमेवेति कथं
परिणामो धर्मिणः, धर्मयोर्वा विनाशप्रादुर्भावौ धर्मिस्वरूपवत् ?
धर्माभ्यां च धर्मिणोऽनन्यत्वाद्धर्मस्वरूपवदपूर्वस्योत्पादः पूर्वस्य
विनाश इति नैव कस्यचित्परिणामः सिध्यति । तस्मान्न परिणाम-^{२०}
वशादपि भवतां कार्यकारणव्यवहारो युक्तः ।

यच्चेदमुत्पत्तेः प्राक्कार्यस्य सत्त्वसमर्थनार्थमसदकरणादिहेतुप-
ञ्चकमुक्तम्, तद् असत्कार्यवादपक्षेपि तुल्यम् । शक्यते ह्येवम-
प्यभिधातुम्-‘न सदकरणादुपादानग्रहणार्त्सर्वसम्भवाभावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ।’ न सत्कार्यमिति ^{२५}
सम्बन्धः ।

किञ्च, सर्वथा सत्कार्यम्, कथञ्चिद्वा ? प्रथमपक्षोऽसम्भाव्यः,
यदि हि क्षीरौदौ दध्यादिकार्याणि सर्वथा विशिष्टरसवीर्यविपाका-

१ शुभावसायाः । २ प्रधानस्य । ३ पूर्वरूपलागः । ४ उत्तरपरिणामलक्षणः ।
५ पूर्वपरिणामलक्षणः । ६ पुरुषादेः । ७ सा अनसा यस्य । पूर्वानसास्यः ।
८ नित्यस्य । ९ प्रधानस्य । १० अभिन्नत्वात् । ११ पारतन्त्र्यं हि सम्बन्ध इति
वचनात् । १२ उपाख्या स्वभावः । १३ धर्मिधर्मयोः । १४ धर्मयोर्विनाशप्रादुर्भावौ
धर्मिणो न भवत इति साध्यो धर्मिणोऽनर्थान्तरत्वात् । १५ धर्मो उत्पादविनाशवान्
उत्पादविनाशरूपमाभ्यामभिधत्वाद्धर्मस्वरूपवत् । १६ सकाशात् । १७ सर्वेभ्यः
कारणेभ्यः । १८ कारणे । १९ आदिना नवनीतवृत्तादि ।

दिना विभक्तरूपेण मध्यावस्थावत्सन्ति, तर्हि तेषां किमुत्पाद्यमस्ति येन तानि कारणैः क्षीरादिभिर्जन्यानि स्युः ? तथा च प्रयोगः—यैस्सर्वाकारेण सत्तत्र केनचिज्जन्यम् यथा प्रधानमात्मा वा, सच्च

सर्वात्मना परमते दध्यादीति न महदादेः कार्यता । नापि प्रधानस्य ५ कारणता; अविद्यमानकार्यत्वात् । यदविद्यमानकार्यं तत्र कारणम् यथात्मा, अविद्यमानकार्यं च प्रधानमिति । क्षीराद्यवस्थायामपि दध्यादीनां पश्चादिवोपलम्भप्रसङ्गश्च । अथ कथाञ्चिच्छक्तिरूपेण सत्कार्यम्; ननु शक्तिर्द्रव्यमेव, तद्रूपतया सतः पर्यायरूपतया चासतो घटादेरुत्पत्त्यभ्युपगमे जिनपतिमतानुसरणप्रसङ्गः ।

- १० किञ्च, तच्छक्तिरूपं दध्यादेर्मिञ्जम्, अमिञ्जं वा ? मिञ्जं चेत्; कथं कारणे कार्यसङ्गावसिद्धिः ? कार्यव्यतिरिक्तस्य शक्त्याख्यपदार्थान्तरस्यैव सङ्गावाम्युपगमात् । आविर्भूतविशिष्टरसादिगुणोपेतं हि वस्तु दध्यादि कार्यमुच्यते । तच्च क्षीराद्यवस्थायामुपलब्धलक्षणप्राप्तानुपलब्धेर्नास्ति । यच्चास्ति शक्तिरूपं तत्कार्यमेव न भवति । १५ न चान्यस्य भावेऽन्यदस्यतिप्रसङ्गात् । अथाभिजम्; तर्हि दध्यादेर्नित्यत्वात्कारणव्यापारवैयर्थ्यम् ।

अभिव्यक्तौ कारणानां व्यापाराच्च वैयर्थ्यम्; इत्यप्यसत्; यतोऽभिव्यक्तिः पूर्वं सती, असती वा ? सती चेत्; कथं क्रियेत ? अन्यथा कारकव्यापारानुपरेमः स्यात् । अथासती; तथाप्याकाश- २० कुशेशयवत्कथं क्रियेत ? असदकरणादित्यभ्युपगमाच्च ।

सर्वस्य सर्वथा सत्त्वेन च कार्यत्वासम्भवाद्युपादानपरिग्रहोपि न प्राप्नोति । सर्वसम्भवाभावोपि प्रतिनियतादेव क्षीरादेर्दध्यादीनां जन्मोर्च्यते । तच्च सत्कार्यवादपक्षे दुरोत्सारितम् । शक्तस्य शक्यकरणादिति चात्रासम्भाव्यम्; यदि हि केनचित् किञ्चि- २५ निष्पाद्येत तदा निष्पौदकस्य शक्तिर्व्यवस्थाप्येत निष्पौद्यस्य च करणं नान्यर्थो । कारणभावोप्यर्थानां न घटते कार्यत्वाभावादेव ।

१ दध्यवस्थावत् । २ दध्यादि घमि केनचिज्जन्यं न भवति पूर्वमेव सर्वाकारेण सत्त्वावित्युपनिषदोक्तम् । ३ इति=अनुमानात् । ४ प्रधानं कस्यचित्कारणं न भवति । ५ दध्यादिकार्यं घमि शक्तिरूपे कारणे नास्ति ततो मित्रत्वात् । ६ ततो मित्रत्वं स्वात्कारणे विद्यमानत्वं च सादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्यात् । ७ शक्तिरूपस्य । ८ व्यक्तिरूपं दध्यादिकार्यम् । ९ घटस्य भावे पटस्य भावप्रसङ्गात् । १० विषयानापि क्रियमाणा चेत् । ११ अभिव्यक्तिः । १२ परमेव । १३ पदार्थस्य । १४ जैनैः । १५ कारणस्य । १६ कार्यस्य । १७ निष्पाद्यनिष्पादक्रमभावभावे शक्तिः करणोपा न व्यवस्थान्यते । १८ कार्यस्य सर्वथा सत्त्वात् । १९ कारणापेक्षया ।

किञ्च, एते हेतवो भवत्पक्षे प्रवृत्ताः किं कुर्वन्ति? स्वविषये हि प्रवृत्तं साधनं द्वयं करोति-प्रमेयार्थविषये प्रवृत्तौ संशयविपर्यासौ निवर्त्तयति, निश्चयं चोत्पादयति । तच्च सत्कार्यवादे न सम्भवति । संशयविपर्यासौ हि भवतां मते चैतन्यात्मकौ, बुद्धि-मनःस्वभावौ वा? पक्षद्वयेऽपि न तयोर्निवृत्तिः सम्भवति; चैतन्य-^५ बुद्धिमनसां नित्यत्वेनानयोरपि नित्यत्वात् । नापि निश्चयस्योत्पत्तिः; तस्यापि सदा सत्त्वात्, इति साधनोपन्यासवैयर्थ्यम् । तस्मात्साधनोपन्यासस्यार्थवत्त्वमिच्छता निश्चयोऽसन्नेव साधने-नोत्पाद्यत इत्यङ्गीकर्त्तव्यम् । तथा चासदकरणादेर्हेतुगणस्यानेनै-धानैकान्तिकता । यथा चासतोपि निश्चयस्य करणम्, तद्विषय-^{१०} तये च यथा विशिष्टसाधनपरिग्रहः, यथा चास्य न सर्वसात्साधनाभासादेः सम्भवः, यथा चासावसन्नपि शक्यैर्हेतुभिः क्रियते, तत्र च हेतूनां कारणभावोक्तिं तथान्यत्रापि भविष्यति ।

अथ यद्यपि साधनप्रयोगात्प्राक्सन्नेव निश्चयः, तथापि न तत्प्रयोगवैयर्थ्यं तदमिव्यक्तौ तस्य व्यापारात् । तत्र कैयमभि-^{१५} व्यक्तिः-किं स्वभावातिशयोत्पत्तिः, तद्विषयज्ञानं वा, तदुपल-म्भावरणापगमो वा? न तावत्स्वभावातिशयः, स हि निश्चयस्वरूपादभिन्नः, भिन्नो वा? यद्यभिन्नः, तर्हि निश्चयस्वरूपवत् सर्वदा सत्त्वान्नोत्पत्तिर्युक्ता । अथ भिन्नः; तस्याप्ताविति सम्बन्धा-भावः । स ह्याधाराधेयभावलक्षणो वा, जन्यजनकभावलक्षणो^{२०} वा? तत्राद्यपक्षोऽयुक्तः; परस्परमनुपकार्योपकारकयोस्तदसम्भवात् । उपकारे वा तस्याप्यर्थान्तरत्वे सम्बन्धासिद्धिरनवस्था च । अर्थान्तरत्वे साधनप्रयोगवैयर्थ्यं निश्चयादेवोपकाराऽनर्थान्तर-स्यातिशयस्योत्पत्तेः । अमूर्त्तत्वाच्चातिशयस्याधोगमनाभावाच्च तस्य कश्चिदाधारो युक्तः, अधोगतिप्रतिबन्धकत्वेनाधारस्याव-^{२५} स्थितेः । नापि जन्यजनकभावलक्षणः; सर्वदैव निश्चयाख्यकारणस्य सन्निहितत्वेन नित्यमतिशयोत्पत्तिप्रसङ्गात् । न च साधन-प्रयोगापेक्षया निश्चयस्यातिशयोत्पादकत्वं युक्तम्; अनुपकारिण्यपेक्षाऽयोगात् । उपकारित्वे वा पूर्ववद्दोषोऽनवस्था च ।

अपि चायमतिशयः सन्, असन्वा क्रियेत? असत्त्वे पूर्व-^{३०} वत्साधनानामनैकान्तिकतापत्तिः । सत्त्वे च साधनवैयर्थ्यम् ।

१ भवदादावपि । २ निश्चयस्वभावातिशययोः । ३ निश्चयेनातिशयस्य । ४ अति-शयात् । ५ ग्रन्थस्य । ६ निश्चयेनातिशयस्य क्रियमाण उपकारः अतिशयादनर्थान्तर-मिलसिद्धिं दूषणमाह । ७ उपकाराय । ८ न उपकारकस्योत्पत्तिः ।

तत्राप्यभिव्यक्तावनवस्था । तत्र स्वभावातिशयोत्पत्तिरभिव्यक्तिः ।

नापि तद्विषयज्ञानम्, सत्कार्यवादिनो मते तस्यापि नित्यत्वात्, द्वितीयज्ञानस्यासम्भवाच्च । एकमेव हि भवतां मते विज्ञानम्—“आसर्गप्रलयादेका बुद्धिः” [] इति सिद्धान्त-
५ स्वीकारात् ।

तदुपलम्भावरणापगमोप्यभिव्यक्तिर्न युक्ता, तदावरणस्य नित्यत्वेनापगमासम्भवात् । तिरोभावलक्षणोप्यपगमो न युक्तः, अत्यन्तपूर्वरूपस्य तिरोभावासम्भवात् । द्वितीयोपलम्भस्य चासम्भवात्कथं तदावरणसम्भवो येनास्यापगमोभिव्यक्तिः स्यात् ? न
१० ह्यावरणमसतो युक्तं सद्भस्तुविषयत्वात्तस्य ।

बन्धमोक्षाभावश्च सत्कार्यवादिनोऽनुषज्यते । बन्धो हि मिथ्या-
ज्ञानात्, तस्य च सर्वदावस्थितत्वेन सर्वदा सर्वेषां बद्धत्वात्कुतो
मोक्षः ? प्रकृतिपुरुषयोः कैर्बन्धोपलम्भलक्षणतत्त्वज्ञानाच्च मोक्षः,
तस्य च सदावस्थितत्वेन सर्वदा सर्वेषां मुक्तत्वात्कुतो बन्धः ?
१५ सकलव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गश्च, लोकः खलु हिताहितप्रातिपत्ति-
हारार्थं प्रवर्तते । सत्कार्यवादपक्षे तु न किञ्चिदप्राप्यमद्वेयं
चास्तीति निरीहमेव जगत्स्यात् ।

यदसत्तत्र केनचित्क्रियते इति चासङ्गतम्, हेतोर्विपक्षे बाध-
कप्रमाणाभावेनानेकान्तात् । कारणशक्तिप्रतिनियमादि किञ्चि-
२० देवासत्क्रियते यस्योत्पादकं कारणमस्ति । यस्य तु गगनाम्बोद-
हादेर्नास्ति कारणं तत्र क्रियते । न हि सर्वं सर्वस्य कारणमिष्टम् ।
नापि ‘यद्यदसत्तत्क्रियते एव’ इति व्यातिरिष्टा । किं तर्हि ?
‘यत्क्रियते तत्प्रागुत्पत्तेः कथञ्चिदसदेव’ इति । ननु तुल्येभ्यस-
त्कारित्वे कारणानां किमिति सर्वं सर्वस्यासत्तः कारणं न स्यादि-
२५ त्यन्यत्रापि समानम् । समाने हि सत्कारित्वे किमिति सर्वं सर्वस्य
सत्तः कारणं न स्यात् ? कारणशक्तिप्रतिनियमात् ‘सदप्यात्मादि
न क्रियते’ इत्यन्यत्रापि समानम् । प्रतिपादितप्रकारेण सर्वथा

१ स्वभावातिशयेति । २ साधनेन । ३ प्रायुक्तप्रकारेण ग्रन्थानवस्था । ४ त्रि-
श्वयम् । ५ निश्चयलक्षणज्ञानापेक्षया निश्चयव्यवसायकज्ञानस्य (तद्विषयज्ञानस्य)
द्वितीयत्वम् । ६ साध्यानाम् । ७ निश्चयस्य । ८ निश्चयज्ञानस्य । ९ भावरणस्य
अप्युक्तत्वं न संभवति-नित्यत्वात् । १० प्राणिनाम् । ११ विवेकव्याप्तिरूपपादेः ।
१२ बन्धमोक्षलक्षणस्य । १३ पर्यते दृष्ट्यादिकार्यं यमि न केनचित्क्रियते ।
१४ असत्तत्रापि क्रियत इत्यसिम् । १५ खरविभाषादेः । १६ आत्मादेः । १७ अस-
त्कार्यवादपक्षेति ।

सतः कार्यत्वासम्भवात्कार्यञ्चिदसत्कार्यवादे एव चोपादानग्रह-
णादित्यादेर्हेतुचतुष्टयस्य विरुद्धता साध्यविपर्ययसाधनात् । तन्नो-
त्पत्तेः प्राकारण(णे)कार्यसद्भावसिद्धिः ।

यच्चोक्तम्—मेदानां परिमाणादित्यादिहेतोः कारणं च प्रधान-
मेवैकं सिद्ध्यति; तदप्युक्तिमात्रम्; 'मेदानां परिमाणात्' इत्यस्यै-
ककारणपूर्वकत्वेनाविनाभावासिद्धेः, अनेककारणपूर्वकत्वेऽप्यस्या-
विरोधात् । कारणमात्रपूर्वकत्वेनैव हि तस्याविनाभावः, तत्सा-
धने च सिद्धसाधनम् ।

'मेदानां समन्वयदर्शनात्' इति चासिद्धम्; न खलु सुख-
दुःखमोहसमन्वितं प्रमाणतः प्रसिद्धम्, शब्दादिव्यक्तस्याचेतन-^{१०}
तथा चेतनसुखादिसमन्वयविरोधात् । प्रयोगः—ये चैतन्यरहिता
न ते सुखादिसमन्वयाः यथा गगनाम्भोजादयः, चैतन्यरहिताश्च
शब्दादय इति ।

ननु चैतन्येन सुखादिसमन्वयस्य यदि व्याप्तिः प्रसिद्धा, तर्हि
तन्निवर्त्तमानं शब्दादिषु सुखादिसमन्वयत्वं निवर्त्तयेत् । न^{१५}
चासौ सिद्धा, पुरुषस्य चेतनत्वेऽपि सुखादिसमन्वयासिद्धेः;
इत्यप्यपेशलम्; स्वसंवेदनसिद्धिप्रस्तावे सुखादिस्वभावतयात्मनः
प्रसाधनात् ।

यच्चान्यदुक्तम्—प्रसादतापवैत्यादिकार्योपलम्भात्प्रधानान्वित-
त्वसिद्धिः; तदप्युक्तम्; अनेकान्तात्, कापिलयोगिनां हि पुरुषं^{२०}
प्रकृतिविभक्तं भावयतां पुरुषमालम्ब्य स्वभ्यस्तयोगानां प्रसादो
भवति प्रीतिश्च, अनभ्यस्तयोगानां क्षिप्रतरप्तात्मानमपश्यता-
मुद्वेगः, प्रकृत्या जडमतीनां मोहो जायते, न चासौ पुरुषः प्रधा-
नान्वितः परैरिष्टः । सङ्कल्पेऽप्यातीत्याद्युत्पत्तिर्न पुरुषादिति शब्दा-
दिष्वपि समार्षम् । सङ्कल्पमात्रभावित्वे च प्रीत्यादीनामात्मरूप-^{२५}
ताप्रसिद्धिः, सङ्कल्पस्य ज्ञानरूपत्वात्, ज्ञानस्य चात्मधर्मतया
स्वसंवेदनसिद्धिप्रस्तावे प्रतिपादितत्वात् इत्यलमिति प्रसङ्गेन ।

अस्तु वा प्रीत्यादिसमन्वयो व्यक्ते, तथापि न प्रधानप्रसिद्धिः,
साधनस्यार्थव्याप्तिः । न खलु यथाभूतं त्रिगुणात्मकमेकं नित्यं
व्यापि चास्य कारणं साधयितुमिष्टं तथाभूतेन क्वचिद्हेतोः प्रति-^{३०}

१ पर्वयकृतया । २ परमते सर्वथा सत्कार्यं साध्यम् । ३ कथञ्चिदसत्कार्यस्य ।
४ शब्दादिव्यक्तम् । ५ तथा इति मूलपुस्तके पाठः । ६ निश्चयः । ७ मनसः ।
८ सङ्कल्पात्प्रीत्यादिहेतुः शब्दादिरिति । ९ ज्ञानस्यात्मधर्मत्वसमर्थनवित्तरेण ।
१० समन्वयदर्शनादित्यस्य । ११ व्याप्त्यसिद्धेः । १२ वृष्टान्ते ।

बन्धः सिद्धः । नापि यदात्मकं कार्यमुपलभ्यते कारणेनाप्यवश्यं तदात्मना भाव्यम्, अन्यथा बहुदादौ हेतुमत्त्वानित्यत्वाव्यापित्वादिधर्मोपलम्भात् प्रधानेपि तादृष्यप्रसिद्धिप्रसङ्गाद्वैतोर्विच्छेदानुषङ्गः ।

- ५ यच्चैवं निदर्शनमुक्तम्—‘यथा घटशरावादयो मृज्जातिसमन्विताः’ इति; तदप्यसङ्गतम्; साध्यसाधनविकलत्वादस्य । न हि मृत्त्वसुवर्णत्वादिजातिर्नित्यनिरञ्ज्याप्येकरूपा प्रमाणतः प्रसिद्धा येन तदात्मककारणसम्भूतत्वं तत्समन्वितत्वं च प्रसिद्धयेत्, प्रतिव्यक्ति तस्याः प्रतिभासमेवाद्भेदसिद्धेः । विस्तरेण १० चास्याः सिद्धिमात्रं सामान्यविचारप्रस्तावे प्रतिपादयिष्याम इत्यलमतिविस्तरेण ।

तथा ‘समन्वयात्’ इत्यस्यानेकान्तः; चेतनत्वभोक्तृत्वादिधर्मैः पुरुषाणाम्, प्रधानपुरुषाणां च नित्यत्वादिधर्मैः समन्वितत्वेपि तथाविधैककारणपूर्वकत्वानभ्युपगमात् ।

- १५ हेतुन शक्तितः प्रवृत्तेरित्याद्येप्यनैकान्तिकत्वादिदोषदुष्टत्वादेककारणपूर्वकत्वासाधनमित्यवसातव्यम् । तथा हि—प्रेक्षावत्कारणमेतद्व्यतिरिक्तं; प्रसाध्यते, कारणमात्रं वा ? प्रथमविकल्पे अनेकान्तः, विनापि हि प्रेक्षावता कर्त्रा स्वहेतुसामर्थ्यप्रतिनियमाप्रतिनियतकार्यस्योत्पत्त्यविरोधात् । न च प्रधानं प्रेक्षावद्युक्तं तस्याचेतनत्वात् प्रेक्षायाश्च चेतनापर्यायत्वात् । अथ कारणमोक्षं साध्यते, तर्हि सिद्धसाध्यता । न ह्यसौकार्यं कारणमन्तरेण कार्यस्योत्पादोऽमीष्टः । कारणमात्रस्य च ‘प्रधानम्’ इति संज्ञाकरणे न किञ्चिद्विद्वध्यतेऽर्थमेवाभावात् ।

- २० किञ्च, शक्तितः प्रवृत्तेरित्यनेन यदि कथञ्चिदव्यतिरिक्तशक्तिर्योनिकारणमात्रं साध्यते; तदा सिद्धसाध्यता । अथ व्यतिरिक्त-

१ सत्त्वादि । २ समन्वयादिति हेतुनित्यत्वादिधर्मोपेते प्रधाने साध्ये प्रयुक्तोऽनित्यत्वादिधर्मोपेतप्रधानप्रसाधनादिरुद्धः । ३ सा नित्यनिरञ्ज्याप्येकरूपजातिः । ४ तथा नित्यनिरञ्ज्याप्येकरूपमाला । ५ नित्यनिरञ्ज्याप्येकरूपजातिनिराकरणविस्तरेण । ६ नित्यनिरञ्ज्याप्येकरूपमाला । ७ हेतोः । ८ निरुद्धत्वादिभिन्न । ९ परेण । १० हेतुद्वयनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । ११ हेतुवचनम् । १२ नित्यत्वमेव यतः । १३ हेतुमत्तः । १४ अक्रुष्यभूहादिकं, प्रेक्षावत्कारणमन्तरेणापि वृषपतेऽतः सर्वं प्रेक्षावत्कारणपूर्वकं वा नेति सन्दिग्धानेकान्तः । १५ कारणसामान्यम् । १६ जैनाचार्यः । १७ अस्यापिः कारणमार्तं अवशिष्टः प्रधानं प्रतिपादते इत्यत्र । १८ ग्रन्थसमाप्तेन । १९ कार्यनित्यादौ ।

विचित्रशक्तियुक्तमेकं नित्यं कारणम्; तदानैकान्तिकता हेतोः । तथाभूतेन कचिदन्वयासिद्धेरसिद्धता च, न खलु व्यतिरिक्तशक्ति-
वशात् कस्यचित्कारणस्य कचित्कार्यं प्रवृत्तिः प्रसिद्धा, शक्तीनां
स्वात्मभूतत्वात् ।

यथेदमुक्तम्-अविभागाद्वैश्वरूप्यस्य; तदप्यसाम्प्रतम्; प्रल-५
यकालस्यैवाप्रसिद्धेः । सिद्धौ वा तदासौ महदादीनां लयो भवन्
पूर्वस्वभावप्रच्युतौ भवेत्, अप्रच्युतौ वा ? यदि प्रच्युतौ;
तर्हि तेषां तदा विनाशसिद्धिः स्वभावप्रच्युतेर्विनाशरूपत्वात् ।
अथाप्रच्युतौ; तर्हि लयानुपपत्तिः, नहि अविकलमात्मनस्तत्त्व-
मनुभवतः कस्यचिद्व्यो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । परस्परविरुद्धं १०
चेदम् 'अविभागो वैश्वरूप्यम्' इति च । वैश्वरूप्यं च प्रधान-
पूर्वत्वे नोपपद्यत एव, तन्मयत्वेन सर्वस्य जगतस्तत्स्वरूपवदेक-
त्वप्रसङ्गात्, इति कस्याऽविभागः स्यादिति ? तन्न प्रधानस्य
सकलजगत्कर्तृत्वं सिद्धम्, यतस्तत्सिद्धौ प्रधानस्य सर्वज्ञता,
कर्तृत्वस्य कारणशक्तिपरिहानाविनाभावासिद्धेरित्युक्तं प्रागीश्वर- १५
निराकरणे, तद्वलमतिप्रसङ्गेन ।

यैतेन सेश्वरसाङ्ख्यैर्यदुक्तम्-'न प्रधानादेव केवलादमी
कार्यमेदाः प्रवर्तन्ते तस्याचेतनत्वात् । न ह्यचेतनोऽधिष्ठायैक-
मन्तरेण कार्यमारभमाणो ह्यष्टः । न चान्यार्त्माऽधिष्ठायको युक्तः;
सृष्टिकाले तस्याहत्वात् । तथा हि-बुद्ध्यव्यवसितमेवार्थं पुरुष- २०
श्चेतयते । बुद्धिसंसर्गाच्च पूर्वमसावन्न एव, न जातु कश्चिदर्थं
विजानाति । न चाज्ञातमर्थं कश्चित्कर्तुं शक्तः । अतो नासौ कर्त्ता ।
तस्मादीश्वर एव प्रधानापेक्षः कार्यमेदानां कर्त्ता, न केवलः । न
खलु देवदत्तादिः केवलः पुत्रम्, कुम्भकारो वा घटं जनयति'
इति- तदपि प्रतिव्यूढम् । प्रत्येकं तयोः कर्तृत्वस्यासम्भवे सहि- २५
तयोरप्यसम्भवात्, अर्थेया प्रत्येकपक्षनिक्षिप्तदोषादुपपन्नः ।

अथोच्यते-यदि नाम प्रत्येकं तयोः कर्तृत्वासम्भवस्तथापि
सहितयोः कथं तदभावः ? न हि केवलानां चक्षुरादीनां रूपादि-

१ धर्मलभावे भेदः । २ साध्यते इति शेषः । ३ सन्दिग्धरूपा । ४ स्वस्य ।
५ स्वरूपम् । ६ वस्तुनः । ७ प्रधानात्मनोरपि लयप्रसङ्गात् । ८ अविभागाद्वै-
श्वरूप्यमिति । ९ एकत्वम् । १० अनेकत्वम् । ११ लोके भादौ विभागोक्तिरिति यदि
तदा पश्चादविभागानामविभागः स्यात् । १२ कर्तृत्वं कारणशक्तिज्ञानाविनामामि न
भवतीति समर्थनेन । १३ प्रकृतीश्वरनिराकरणपरेण अन्वयेन । १४ सहसादयः ।
१५ ईश्वर भेदकम् । १६ सत्पार्यात्मा । १७ कार्यम् । १८ सहितयोस्तयोः कर्तृत्व-
सम्भवश्चेत् । १९ आलोकादीनां च ।

ज्ञानोत्पत्तिसामर्थ्याभावे सहितानामप्यसौ युक्तः, तदप्युक्ति-
मात्रम्; यतः साहित्यं नामानयोरन्योन्यं सहकारित्वम् । तन्ना-
न्योन्यातिशयाधानाद्वा स्यात्, एकार्थकारित्वाद्वा ? न तावदाद्य-
कल्पना युक्ता, नित्यत्वेनानयोर्विकाराभावात् । नापि द्वितीय-
५ कल्पना युक्ता; कार्याणां यौगपद्यप्रसङ्गात् । अप्रतिहतसामर्थ्यस्ये-
श्वरप्रधानाख्यकारणस्य सदा सन्निहितत्वेनाविकलकारणत्वासे-
षाम् । तथाहि—यद्यदाऽविकलकारणं तत्तदा भवत्येव यथाऽन्य-
क्षणप्राप्तायाः सामग्रीतोऽङ्कुरः, अविकलकारणं चाशेषं कार्यमिति ।

ननु यद्यपि कारणद्वयमेतन्नित्यं सन्निहितं तथापि क्रमेणैवासी
१० कार्यमेदाः प्रवर्त्तिष्यन्ते । महेश्वरस्य हि प्रधानगताः सत्त्वादय-
स्त्रयो गुणाः सहकारिणः, तेषां च क्रमवृत्तित्वात्कार्याणामपि
क्रमः । तथाहि—यदोद्भूतवृत्तिना रजसा युक्तो भवत्यसौ तदा
सर्गहेतुः प्रजानां भवति प्रसंभकार्यत्वाद्भ्रजसः, यदा तु सत्त्व-
मुद्भूतवृत्ति संश्रयते तदा लोकानां स्थितिकारणं भवति सत्त्वस्य
१५ स्थितिहेतुत्वात्, यदा तमसोद्भूतशक्तिना समायुक्तो भवति तदा
प्रलयं सर्वजगतः करोति तमसः प्रलयहेतुत्वात् । तदुक्तम्—

“रजोऽप्ये जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे ।

अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः

॥ १ ॥” [कादम्बरी पृ० १]

२० इत्यन्यसाम्प्रतम्; यतः प्रकृतीश्वरयोः सर्गस्थितिप्रलयानां
मध्येऽन्यतमस्य क्रियाकाले तदपरकार्यद्वयोत्पादने सामर्थ्यमस्ति,
न वा । यद्यस्ति, तर्हि सृष्टिकालेपि स्थितिप्रलयप्रसङ्गोऽविकल-
कारणत्वादुत्पादवत् । एवं स्थितिकालेप्युत्पादविनाशयोः, विनाश-
काले च स्थित्युत्पादयोः प्रसङ्गः, न चैतद्युक्तम् । न खलु पर-

२५ स्परपरिद्वारेणावस्थितानामुत्पादादिधर्माणामेकत्र धर्मिण्येकदा
सङ्भावो युक्तः । अथ नास्ति सामर्थ्यम्; तदैकमेव स्थित्यादीनां
मध्ये कार्यं सदा स्यात् यदुत्पादने तयोः सामर्थ्यमस्ति, नापरं
कदाचनापि तदुत्पादने तयोः सदा सामर्थ्याभावात् । अविकारि-
णोश्च प्रकृतीश्वरयोः पुनः सामर्थ्योत्पत्तिविरोधात्, अन्यथा
३० नित्यैकस्वभावतान्याघातः ।

अथ तत्स्वभावेपि प्रधाने सत्त्वादीनां मध्ये यदेवोद्भूतवृत्ति
तदेव कारणतां प्रतिपद्यते नान्यत्, तत्कथं स्थित्यादीनां यौगपद्य-

१ प्रसव उत्पत्तिः । २ ईश्वरः कर्ता । ३ न जायते इत्यनो रक्षससौ । ४ त्रयी
वेदात्मनी । ५ सत्त्वरजस्तमोरुपाय । ६ स्थितिप्रकृतौ धर्मिणौ सृष्टिकाले भवतः तदा
अविकलकारणत्वात् । ७ प्रनाशक्षणे । ८ सामर्थ्यमुत्पद्यते नैव ।

प्रसङ्ग इति ? अत्रोच्यते-तेषामुद्भूतवृत्तित्वं नित्यम्, अनित्यं वा ? न तावन्नित्यम्; कादाचित्कत्वात्, स्थित्यादीनां यौगपद्यप्रसङ्गाच्च । अथानित्यम्; कुतोऽस्य प्रादुर्भावः ? प्रकृतीश्वरादेव, अन्यतो वा हेतोः, स्वतन्त्रो वा ? प्रथमपक्षे सदास्य सद्भावप्रसङ्गः, प्रकृतीश्वराख्यस्य हेतोर्नित्यरूपतया सदा सन्निहितत्वात् । नन्वान्यतस्त-^५त्प्रादुर्भावो युक्तः; प्रकृतीश्वरव्यतिरेकेणापरकारणसमन्वयुपगमात् । तृतीयपक्षे तु कादाचित्कत्वविरोधोऽस्य स्वातन्त्र्येण भवतौ देशकालनियमायोगात् । स्वभावान्तरायचवृत्तयो हि भावाः कादाचित्काः स्युः तद्भावाभावप्रतिबद्धत्वात्तत्सत्वासत्त्वयोः, नान्ये तेषामपेक्षणीयस्य कस्यचिदभावात् । १०

किञ्च, आत्मानं जनयति भौवो निष्पन्नः, अनिष्पन्नो वा ? न तावन्निष्पन्नः; तस्यामवस्थायामात्मनोपि निष्पन्नरूपाव्यतिरेकितया निष्पन्नत्वाभिष्पन्नस्वरूपवत् । नाप्यनिष्पन्नः, अनिष्पन्नस्वरूपत्वादेव शगनाम्भोजवत् । तस्मात्प्रकारान्तरेणाशेषकृत्वासिद्धे-^५रावरणापाये एवाशेषविषयं विज्ञानम् । तज्ज्ञात्मन एवेति परीक्षा-^{१५}दक्षैः प्रतिपत्तव्यम् । तच्च विज्ञानमनन्तदर्शनसुखवीर्याविनाभावि-^{२०}त्वादनन्तचतुष्टयस्वभावत्वमात्मनः प्रसाधयतीति सिद्धो मोक्षो जीवस्यानन्तचतुष्टयस्वरूपलामलक्षणः, तस्यापेतप्रतिबन्धकस्या-^{२५}त्मैस्वरूपतया जीवन्मुक्तिवत्परममुक्तावस्थमावासिद्धेः ॥

ये^१ त्वात्मनो जीवन्मुक्तौ कवलाहारमिच्छन्ति तेषां तत्रास्यान-^{२०}न्तचतुष्टयस्वभावभावोऽनन्तसुखविरहात् । तद्विरहश्च बुभुक्षा-^{२५}प्रमथपीडाक्रान्तत्वात् । तत्पीडाप्रतीकारार्थो हि निखिलजनानां कवलाहारग्रहणप्रयासः प्रसिद्धः । ननु भोजनादेः सुखाद्यनुकूल-^{३०}त्वात्कथं भगवतोऽतोऽनन्तसुखाद्यभावः ? इदमयं ह्यसदादौ श्रुत्पीडिते निश्शक्तिके च भोजनसद्भावे सुखं वीर्यं चोत्प-^{३५}द्यमानम्; इत्यप्युक्तम्; असदादिसुखादेः कादाचित्कतया विष-^{४०}येभ्य एवोत्पत्तिसम्भवात् । भगवत्सुखादेश्च तत्सम्भवेऽनन्तता-^{४५}व्याघातः । तथाहि-श्रुत्क्षामकुक्षिर्निश्शक्तिकश्चासौ यदा कवला-^{५०}हारग्रहणे प्रवृत्तस्तदैव तैर्दीयसुखवीर्ययोर्नष्टत्वात्कुतोऽनन्तता ? वीतरागद्वेषत्वाच्चास्य तद्ग्रहणप्रयासायोगः । प्रयोगः-केवली न ३०

१ कारणस्य । २ वायमानस्य । ३ कार्यलक्षणाज्ञायादपरः कारणलक्षणो भावः
समाधानतरम् । ४ कारणावीनवृत्तय इत्यर्थः । ५ तस्य कार्यस्य । ६ स्वरूपस्य ।
७ कार्यलक्षणः । ८ निष्पन्नायात् । ९ अगम्यत्वादिलक्षणेन । १० जीवमयत्वेन ।
११ शेषपदाः । १२ भगवदीय ।

भुङ्क्ते रागद्वेषाभावानन्तवीर्यसद्भावाभ्यानुपपत्तयः । ननु समसिद्ध-
शश्रूणां साधूनां भोजनादिकं कुर्वतामपि वीतरागद्वेषत्वसम्भ-
वादनैकान्तिको हेतुः; इत्यप्यसाम्प्रतम्; मोहनीयकर्मणः सद्भावे
भोजनादिकं कुर्वतां प्रमत्तगुणस्थानप्रवृत्तीनां साधूनां परमार्थतो
५ वीतरागत्वासम्भवात् । तन्नानैकान्तिकीयं हेतुः । नापि विरुद्धो
विपक्षे वृत्तेरभावात् ।

कवलाहारित्वे चास्य सरागत्वप्रसङ्गः । प्रयोगः—यो यः कवलं
भुङ्क्ते स स न वीतरागः यथा रथ्यापुरुषः, भुङ्क्ते च कवलं
भवन्मतः केवलीति । कवलाहारो हि स्मरणमिलाषाभ्यां भुज्यते,
१० मुक्तवता च कण्ठोष्ठप्रमाणतस्तप्तेनाऽरुचितस्त्यज्यते । तथा
चाभिलाषाऽरुचिभ्यामाहारे प्रवृत्तिनिवृत्तिमत्त्वात्कथं वीतराग-
त्वम्? तदभावाभासता । अयाभिलाषाद्यभावेप्याहारं शृङ्खल्यसौ
तथाभूतातिशयत्वात्, ननु आहाराभावलक्षणोप्यतिशयोऽस्या-
भ्युपगन्तव्योऽनन्तगुणत्वाद्गगनगमनाद्यतिशयवत् ।

१५ अयाहाराभावे देहस्थितिरेवास्य न स्यात्; तथाहि—भगवतो
देहस्थितिः आहारपूर्विका देहस्थितित्वादसदादिदेहस्थितिवत् ।
नन्वेनेनानुमानेनास्याहाराभासम्, कवलाहारो वा साध्येत?
प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता, 'आसयोगकेवलिनो जीवा आहारिणः'
इत्यभ्युपगमात्, तत्र च कवलाहाराभावेप्यन्यस्य कर्मनोकर्मा-
२० दानलक्षणस्याविरोधात् । पद्धिधो ह्याहारः—

“जोर्कम्म कम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो ।

ओज मणो पि य कमसो आहारो छविहो जेयो ॥” []

इत्यभिधानात् । न खलु कवलाहारेणैवाहारित्वं जीवानाम्;
एकेन्द्रियाण्डजत्रिविशानामभुञ्जानतिर्यग्मनुष्याणां चानाहारित्व-
२५ प्रसङ्गात् । न चैवम्—

“विग्गहगइमावण्णा केवलिणी समुहदो अजोगी य ।

सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिणो जीवा ॥”

[जीवकाण्ड गा० ६६५, आवकप्रश्न० गा० ६८]

१ कवलाहाराभावमन्तरेणानुपपत्तेस्तयोः । २ हेतोरिकाश्च गृहीत्वा दूषयति ।
३ कवलाहारिणि । ४ अभिलाषाद्यभावेप्याहारमहलक्षण । ५ कैनेः । ६ जोर्कम्
(१), कर्माहारः (२), कवलाहारः (३), लेप्पः आहारः (४) ओजः
(५), मानसिकः (६) अपि च क्रमशः आहारः पद्धिधो ज्ञेयः । ७ विग्रहगति-
मापन्नाः केवलिनः समुद्रघात (दण्डकपाटेति समुद्रघातद्वय) गताः अदो गिनम् ।
सिद्धार्थ अनाहाराः येषां आहारिणो जीवाः । ८ दण्डकनादावप्यायात् । ९ अर्हदप-
त्त्यातः अन्ये सिद्धावप्यात आदौ वा अवस्था सा जनोभावसा ।

इत्यभिधानात् । द्वितीयपक्षे तु त्रिदशादिभिर्व्यभिचारः, तेषां कवलाहारभावेपि देहस्थितिसम्भवात् । अथ 'औदारिकशरीर-स्थितित्वात्' इति विशेष्योक्त्यते । तथाहि-या या औदारिक-शरीरस्थितिः सा सा कवलाहारपूर्विका यथासदादीनाम्, औदारिकशरीरस्थितिश्च भगवतः, इति न त्रिदशशरीरस्थित्या ५ व्यभिचारः, इत्यप्यसारम्; तदीयौदारिकशरीरस्थितेः परमौ-दारिकशरीरस्थितिरूपतयाऽसदाद्यौदारिकशरीरस्थितिविलक्षण-त्वात् । तस्याश्च कैवलावस्थायां केशादिवृक्षभावबहुचयभाषोप्य-विरुद्ध एव ।

कथं चैवं बोदिनो भगवत्प्रत्यक्षमतीन्द्रियं स्यात् ? शक्यं हि १० वक्तुम्-तत्प्रत्यक्षमिन्द्रियजं प्रत्यक्षत्वादसदादिप्रत्यक्षवत् । तथा सरागोऽसौ वक्तृत्वात्तद्वदेव । न ह्यसदादौ दृष्टो धर्मः कैश्चित्तत्र साध्यः कैश्चित्तेति वक्तुं युक्तम्, स्वेच्छाकारित्वानुपपन्नात् । तथा च न कश्चित्केवली वीतरागो वा, इति कस्य भुक्तिः प्रसाध्यते ? यदि वैकत्रं तच्छरीरस्थितेः कवलाहारपूर्वकत्वोपलम्भात्सर्वत्र १५ तथाभावः साध्यते; तर्हि घटादौ सन्निवेशादेर्बुद्धिमत्पूर्वकत्वोप-लम्भात्तन्वादीनामप्यतो बुद्धिमत्पूर्वकत्वसिद्धिः स्यात् । द्विचन्द्रा-दिप्रत्ययस्य निरालम्बनत्वोपलम्भाच्चाखिलप्रत्ययानां निरालम्ब-नत्वप्रसङ्गः स्यात् । अथ यार्हशं बुद्धिमत्कारणव्याप्तं सन्निवेशादि घटादौ दृष्टं तादृशस्य तन्वादिष्वभावाच्चातस्तेषां तत्पूर्वकत्व- २० सिद्धिः; तर्हि यौदृशमौदारिकशरीरस्थितित्वमसदादौ तद्भुक्ति-पूर्वकं दृष्टं तादृशस्य भगवत्परमौदारिकशरीरस्थितावभावाच्चा-तस्तस्यास्तद्भुक्तिपूर्वकत्वसिद्धिः । यथा च प्रत्ययत्वाविशेषेपि कस्यैचिन्निरालम्बनत्वमन्यैस्यान्यैत्वम्, तथा च तच्छरीरस्थिते-स्तत्त्वाविशेषेपि निराहारत्वमितैरन्वेष्यतामविशेषात् । २५

अथ 'अयौदृशमौदारिकशरीरस्थितित्वमन्यौदृशाश्च पुरुषा न सन्ति' इत्युच्यते तर्हि भीमांसकमतानुप्रवेशैः । अतो यथान्या-

१ औदारिकशरीरस्थितित्वात्कवलाहारित्वमेवेति । २ कवलाहारलक्षणः । ३ सरा-गतत्वेन्द्रियत्वलक्षणः । ४ भगवतः सरागत्वे तत्प्रत्यक्षस्येन्द्रियत्वमेव । ५ अस-दादौ । ६ अक्रियादिभिनः कृत्यभुत्पादकत्वम् । ७ सप्तपातुमलोपेतम् । ८ तस्य=कवलस्य । ९ औदारिकशरीरस्थितित्वादिति हेतोः । १० कवलस्य । ११ द्विचन्द्रादि-प्रत्ययस्य । १२ घटादिप्रत्ययस्य । १३ सालम्बनत्वम् । १४ आहारपूर्वकत्वम् । १५ परमौदारिकम् । १६ जनाहारिणः । १७ भीमांसकमतेपि सर्वलक्षणोऽन्या-दृशः पुरुषो नास्ति ।

दृशाः सन्ति पुनश्चास्तथा तत्स्थितित्वमपि । कथमन्यथा सप्तधातु-
मलापेतत्वं तच्छरीरस्य स्यात् ? तत्सम्भवे तत्स्थितेरतत्त्वकिपूर्व-
कत्वमपि स्यात् ।

तपोमाहात्म्याच्चतुरास्यत्वादिवच्चाभुक्तिपूर्वकत्वे तस्याः को
५ विरोधः ? दृश्यते च पञ्चकृत्यो भुञ्जानस्य यादृशी तच्छरीर-
स्थितिस्तादृश्येव प्रतिपक्षभावनोपेतस्य चतुस्त्रिंशेकमोजनस्यापि ।
तथा प्रतिदिनं भुञ्जानस्य यादृशी सा तादृश्येवैकद्वयादिदिनान्तरि-
तभोजिनोपि । श्रूयते च बाहुबलिप्रसूतीनां संवत्सरप्रमिताहार-
वैकल्येपि विशिष्टा शरीरस्थितिः । आयुःकर्मैव हि प्रधानं तत्स्थिते-
१० निमित्तम्, भुक्त्यादिस्तु सहायमात्रम् । तच्छरीरोपर्वयोपि
छाभान्तरायविनाशाद्यतिसमयं तदुपचयनिमित्तभूतानां दिव्य-
परमाणूनां लाभाद् घटते । एवं छद्मस्थावस्थावच्च केवल्यवस्थाया-
मप्यस्य भुक्त्यऽभ्युपगमे अक्षिपक्षमनिमेषो नखकेशवृद्ध्यादिश्चा-
भ्युपगम्यताम् । तदभावातिशयाभ्युपगमे वा भुक्त्यभावातिशयो-
१५ प्यभ्युपगन्तव्यो विशेषाभावात् ।

ननु मासं वर्षं वा तदभावे तत्स्थितावपि नाऽऽकालं तत्स्थितिः
पुनस्तदाहारे प्रवृत्त्युपलम्भादिति चेत्, कुत एतत् ? आकालं
तत्स्थितेरनुपलम्भाच्चेत्, सर्ववर्षांतरागस्याप्यत एवासिद्धेर्जर्म-
सिच्छतो मूलोच्छेदः स्यात् । दोषावरणयोर्हान्यतिशयोपलम्भेन
२० केचिदात्यन्तिकप्रक्षयसिद्धेस्तत्सिद्धौ कचिच्छरीरिण्यात्यन्तिको
भुक्तिप्रक्षयोपि प्रसिध्यैत् तदुपलम्भस्यात्राप्यविशेषात् । तन्न
शरीरस्थितेरगवतो भुक्तिसिद्धिः ।

अथोच्यते-वेदनीयकर्मणः सद्भावात्तत्सिद्धिः, तथाहि-भग-
वति वेदनीयं स्वर्फलदायि कर्मत्वादायुःकर्मवत्, तदप्युक्ति-
२५ मात्रम्, यतोऽतोप्यनुमानात्तत्फलमात्रं सिद्ध्यन्न पुनर्भुक्तिप्रक्ष-
यम् । अथ क्षुदादिनिमित्तवेदनीयसद्भावाद्भुक्तिसिद्धिः, ननु
तन्निमित्तं तत्तत्रास्तीति कुतः ? क्षुदादिफलाभेदन्योन्याश्रय-
सिद्धे हि भगवति तन्निमित्तकर्मसद्भावे तत्फलसिद्धिः, तस्यान्न
तन्निमित्तकर्मसद्भावासिद्धिरिति ।

१ अन्यादृशौदारिकशरीरस्थितेः । २ जकबल । ३ भोचने विरक्तभावनोपेतस्य ।
४ प्रुष्टिः । ५ वीतरागस्य । ६ जतिवने । ७ कालमभिव्याप्य । मरणपर्यन्तमित्यर्थः ।
८ कदाहाहारमन्त्रेण । ९ तस्य कलसः । १० सर्ववर्षसद्भावम् । (कदाहाहारस्य)
११ सर्ववर्षसद्भावोच्छेदः । १२ दोषा रागादिभावकर्म । १३ भावरयं द्रव्यकर्म ।
१४ दृष्टान्ते । १५ आत्मनि । १६ स्वफलं क्षुदादिदुःखम् ।

अथाऽसातवेदनीयोदयात्तत्र तत्त्विर्भिः; न; सामर्थ्यवैकल्यात् तस्य । अविकलसामर्थ्यं ह्यसातादिवेदनीयं स्वकार्यकारि, सामर्थ्य-वैकल्यं च मोहनीयकर्मणो विनाशात्सुप्रसिद्धम् । यथैव हि पतिते सैन्यनायकेऽसामर्थ्यं सैन्यस्य तथा मोहनीयकर्मणि नष्टे भगवत्य-सामर्थ्यमवातिकर्मणाम् । यथा च मन्त्रेण निर्विषीकरणे कृते मन्त्रि-^५ णोपभुज्यमानमपि विषं न दाहमूर्च्छादिकं कर्तुं समर्थम्, तथा असातादिवेदनीयं विद्यमानोदयमप्यसति मोहनीये निःसामर्थ्य-त्वाच्च क्षुद्रः स्वकरणे प्रभु सामग्रीतः कार्योत्पत्तिप्रसिद्धेः ।

मोहनीयाभावश्च प्रसिद्धो भगवतः, तीव्रतरशुक्लघ्नानानलनिर्व-^{१०} ष्धघनघातिकर्मन्धनत्वात् । यदि च तदभावेऽपि तदुदयः स्वकार्य-^{१०} कारी स्यात्; तर्हि परघातकर्मोदयात्परान् यद्ध्यादिभिस्ताडयेत् स एव वा परैस्ताडयेत् । परघातोदयोऽपि हि संयतानामर्हदव-^{१५} सानानामस्ति । अथ परमकारुणिकत्वाच्चतुदयेऽपि न परास्ताडयति उपसर्गाभावाच्च न च तैस्ताड्यते; तर्ह्यनन्तसुखवीर्यत्वाद्वाधाविर-^{१५} द्वाभासातादिवेदनीयोदये सत्यपि भोजनादिकं न कुर्यात् । मोह-^{१५} कार्यत्वाच्च करुणायाः कथं तत्क्षये परमकारुणिकत्वं तस्य स्यात् ?

किञ्च, कर्मणां यद्युदयो निरपेक्षः कार्यमुत्पादयति; तर्हि त्रिवेदानां कथायाणां वा प्रमत्तादिषूदयोस्तीति मैथुनं भ्रुकृत्था-^{२०} दिकं च स्यात् । ततश्च मनसः संक्षोभात्कथं शुक्लघ्नानास्ति; क्षप-^{२०} कक्षेण्यारोहणं वा ? तदभावाच्च कथं कर्मक्षपणादि घटेत् ? ^{२०}

नन्वेवं नामाद्युदयोऽपि तत्र स्वकार्यकारी न स्यात्; इत्यप्यसङ्ग-^{२५} तम्; शुभप्रकृतीनां तत्राप्रतिबद्धत्वेन स्वकार्यकारित्वसम्भवात् । यथा हि थलवता राज्ञा स्वमैर्गानुसारिणा लब्धे देशे दुष्टा जीव-^{२५} न्तोऽपि न स्वदुष्टाचरणस्य विघातारः सुजनास्त्वप्रतिहततया स्वका-^{२५} र्यस्य विघातारस्तथा प्रकृतमपि । कथं पुनरशुभप्रकृतीनामेवाहति ^{२५} प्रतिबद्धं सामर्थ्यम् न पुनः शुभप्रकृतीनामिति चेत्; उच्यते-^{२५} अशुभप्रकृतीनामर्हन्नऽर्जुमागं घातयति न तु शुभानाम्, यतो शुणघातिनां दण्डो नाऽदोषाणाम् । यदि च प्रतिबद्धसामर्थ्यमप्य-^{३०} सातादिवेदनीयं स्वकार्यकारि स्यात्; तर्हि दण्डकवाटप्रतरादिवि-^{३०} धानं भगवतो व्यर्थम् । तद्धि यदा न्यूनमायुर्बेदनीयादिकर्मधिक-^{३०} स्थितिकं भवति तदाऽनेन कर्मणां समस्थित्यर्थं विधीयते । न चाधिकस्थितिकत्वेन फलदानसमर्थं कर्म उपायशतेनाप्यन्यथा

१ इति चेन्न । २ केनलिशुणक्षानान्त्वानाम् । ३ उदितस्य कर्मणः स्वकार्यकारि-
त्वाभावप्रकरणे । ४ दुष्टनिग्रहतिष्ठपालनकारिणा । ५ शुभाशुभकर्म । ६ उक्तिम् ।

कर्तुं शक्यमिति न कश्चिन्मुक्तः स्यात् । अथ तपोमाहात्म्या-
भिर्जीर्णमधिकस्थितिकत्वेन फलदानासमर्थम् आयुःकर्मसमानं
क्रियते; तथा वेद्यैर्मपि क्रियतामविशेषात् ।

एतेनैदमप्यपास्तम्-यदि वेदनीयमफलम् तत्र तज्ज्ञास्येव
५ ज्ञानावरणादिवत्, तथा च कर्मपञ्चकस्याभावस्तत्र प्राप्नोतीति ।
कथम् ? यथायुरधिकानि वेद्यादीनि स्वफलदानसमर्थानि; तर्हि
मुत्थभावः । नो चेन्न तेषां कर्मत्वमिति तदपनयनाय योगिनो
लोकपूरणादिप्रयासो व्यर्थः । अनुष्ठानविशेषेणापहृतसामर्थ्याना-
मवस्थानं वेद्येपि समानम् । न च कारणमस्तीत्येतावतैव कार्यो-
०त्पत्तिः, अन्यथेन्द्रियादिकार्यस्याप्यनुपपन्नाद्भगवतो मतिज्ञानस्य
रगादीनां च प्रसङ्गः । अथावरणक्षयोपशमस्य मोहनीयकर्मणश्च
सहकारिणो विरहाग्नेन्द्रियादि स्वकार्ये व्याप्रियते; अत एव वेद-
नीयमपि न व्याप्रियेत । न ह्यत्यन्तमात्मनि परत्र वा विरतव्यामो-
हस्तदर्थं किञ्चिदादातुं हातुं वा प्रवर्तते । प्रयोगः-यो यत्रात्यन्तं
५ व्यावृत्तव्यामोहः स तदर्थं किञ्चिदादातुं हातुं वा न प्रवर्तते यथा
व्यावृत्तव्यामोहा माता पुत्रे, व्यावृत्तात्यन्तव्यामोहश्च भगवान्,
ततः सोपि भोजनमादातुं क्षुदादिकं वा हातुं न प्रवर्तते । प्रवृत्तौ
वा मोहवत्त्वप्रसङ्गः; तथाहि-यस्तदादातुं हातुं वा प्रवर्तते स
मोहवान् यथाऽसदादिः, तथा चायं श्वेतपटामिमतो जिन इति ।
२० तथा च कुतोऽस्यासता रथ्यापुरुषवत् ?

न चेयं बुभुक्षा मोहनीयानपेक्षस्य वेदनीयस्यैव कार्यम्, येना-
त्यन्तव्यावृत्तव्यामोहेऽप्यस्याः सम्भवः । भोक्तुमिच्छा हि बुभुक्षा,
सा कथं वेदनीयस्यैव कार्यम् ? इतरथा योन्यादिषु रन्तुमिच्छा
रिरंसा तत्कार्यं स्यात् । तथा च कबलाहारवत् रुयादावपि तत्प्र-
२५ वृत्तिप्रसङ्गाग्नेश्वरादस्य विशेषः । यथा च रिरंसा प्रतिपक्षभाव-
नातो निवर्तते तथा बुभुक्षापि । प्रयोगः-भोजनाकाङ्क्षा प्रतिपक्ष-
भावनातो निवर्तते आकाङ्क्षात्वात् रुयाद्याकाङ्क्षावत् । नन्वस्तु
तद्भावनाकाले तन्निवृत्तिः, पुनस्तदभावे प्रवृत्तिरित्येतत् रुयाद्या-
काङ्क्षायामपि समानम् । यथा चास्याश्चेतसः प्रतिपक्षभावनाम-
० यत्त्वादत्यन्तनिवृत्तिस्तथा प्रकृताकाङ्क्षाया अपि ।

१ शृङ्खलान्तपोमाहात्म्येन भगवता । २ फलदानासमर्थम् । ३ अजातिकर्म-
त्वस्य । ४ फलदानासमर्थम् । ५ कथमपास्तमित्युच्यते । ६ फलदानसमर्थानि च
भवन्तीति चेत् । ७ तर्हीलव्याहियते । ८ इति सन्नायगभावेन परस्मानिष्टापादनम् ।
९ नारमयोविशेषाणाम् । १० कर्मत्वेन । ११ आदिना भिवेदम् । १२ मतिज्ञानस्य
रगादिभ्यः । १३ इच्छा हि क्रोधभेदत्वेन मोहनीयस्य कार्यम् । १४ नरस्य ।

अथाकाङ्क्षारूपा शुभ्र भवति, तेन वीतमोहेऽप्यस्याः सम्भवः, तदप्ययुक्तम्, अनाकाङ्क्षारूपत्वेऽप्यस्या दुःखरूपतयाऽनन्तसुखे भगवत्सम्भवात् । तथाहि—यत्र यद्विरोधि बलवदस्ति न तत्राभ्युदितकारणमपि तद्भवति यथाऽत्युष्णप्रदेशे शीतम्, अस्ति च शुद्धः खविरोधि बलवत् केवलिन्यनन्तसुखम् । तथा यत्कार्य-^५ विरोध्यनिर्वर्त्य यत्रास्ति तत्र तदविकलमपि स्वकार्यं न करोति यथा श्लेष्मादिविरुद्धानिर्वर्त्यपि च विकाराकान्ते न ईर्ष्यादि श्लेष्मादि करोति, वेद्यफलविरुद्धाऽनिर्वर्त्यसुखं च भगवतीति ।

अस्तु वा चेद्यं तत्र बुभुक्षाफलप्रदायि, तथापि—बुभुक्षातः सम-
वसरणस्थित एवासौ भुङ्क्ते, चर्यामार्गेण वा गत्वा? प्रथमपक्षे ^{१०}
मार्गस्तेन नाशितः स्यात् । कथं च बुभुक्षोदयानन्तरमाहारास-
म्पत्तौ ग्लानस्य यथाबद्धोघहीनस्य मार्गोपदेशो घटेत? अथ तदु-
दयानन्तरं वैवास्तवाहारं सम्पादयन्ति, न; अत्र प्रमाणाभावात् ।
'आगमः' इति चेन्न, उभयप्रसिद्धस्यास्याप्यभावात् । स्वप्रसिद्धस्य
भावेऽपि नातस्तत्सिद्धिः, 'भुक्त्युपसर्गाभावः' इत्यादेरपि प्रमाणम्-^{१५}
तागमस्य भावात् । अथ चर्यामार्गेण गत्वासौ भुङ्क्ते; तत्रापि किं
गृहं गृहं गच्छति, एकस्मिन्नेव वा गृहे भिक्षालाभं ज्ञात्वा प्रव-
र्त्तते? तत्राप्यपक्षे भिक्षार्थं गृहं गृहं पर्यटतो जिनस्याज्ञानित्व-
प्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे तु भिक्षाशुद्धिस्तस्य न स्यात् । कथं चासौ
भत्स्यादीन् व्याधलुब्धकप्रभृतिभिः सर्वत्र सर्वदा व्याहन्यमाना-^{२०}
न्प्राणिनस्तेषां पिशितानि च तथाऽशुच्यादींश्चार्थान् साक्षात्कुर्व-
न्नाहारं गृहीयात्? अन्यथा निष्करणः स्यात् । जीवानां हि वचं
विष्टादिकं च साक्षात्कुर्वन्तो व्रतशीलविहीना अपि न भुञ्जते,
भगवांस्तु व्रतादिसम्पन्नस्तत्साक्षात्कुर्वन् कथं भुञ्जीत? अन्यथा
तेभ्योऽप्यसौ हीनसत्त्वः स्यात् । २५

यदप्युच्यते—यत्किञ्चिद्गृहं शुद्धमशुद्धं तत्सरन्तो यथासदादयो
भोजनं कुर्वन्ति तथा केवली साक्षात्कुर्वन्ति; तदप्युक्तिमात्रम्;
न ह्यसदादीनां परमचारित्र्यपदप्राप्तेनाशेषेन भगवता साम्यमस्ति ।
असदादयोऽपि हि यथा(यदा)कथञ्चित्किञ्चिदशुद्धं वस्तु दृष्टं

- १ शुद्धादिदुःखं परि । २ यस्य वेदनीयस्य । ३ कार्यं शुद्ध । ४ अनन्तसुखम् ।
५ न केनापि निराकर्तुं शक्यम् । ६ वेदनीयम् । ७ (नरे) । ८ श्लेष्मादिलक्षणस्य
कार्यस्य करणे अविकलमपि । ९ अनन्तसुखम् । १० वेदनीयम् । ११ नेतपटस्य ।
१२ भगवतः । १३ अर्थे । १४ नेतपटपदे प्रसिद्धसागमस्य । १५ जैनतागमस्य ।
१६ केनचित्प्रकारेण मार्गादिगमनलक्षणेन ।

स्मरन्तो भोजनपरित्यागेऽसमर्थास्तद्भुञ्जते तदा तद्दोषविशुद्ध्यर्थं
गुरुवचनादात्मानं निन्दन्तः प्रायश्चित्तं कुर्वन्ति । ये तु तत्त्यागे
समर्थाः पिण्डविशुद्धाबुद्धतमनसो निर्वेदस्य परां काष्ठामापन्ना-
स्त्यक्तशरीरापेक्षा जितजिह्वा अन्तरायविषये निपुणमतर्थस्ते
५ स्मरन्तोऽपि न भुञ्जते ।

किञ्च, असौ भोजनं कुर्वाणः किमेकाकी करोति, शिष्यैर्वा
परिवृतः ? यदि एकाकी, पञ्चाल्लभान् शिष्यान्विनिवार्य भ्रावकानां
गृहे गत्वा भुङ्क्ते तर्हि दीनः स्यात् । अथ तैः परिवृतः, तर्हि सावध-
प्रसङ्गः ।

- १० किञ्च, असौ भुक्त्वा प्रतिक्रमणादिकं करोति वा, न वा ?
करोति चेत्, अवश्यं दोषवान् सम्भाव्यते, तत्करणाव्याधात्-
पपत्तेः । न करोति चेत्, तर्हि भुजिक्रियातः समुत्पन्नं दोषं कथं
निराकुर्यात् ? औदारकथामात्रेणापि ह्यप्रमत्तोऽपि सन् साधुः
प्रमत्तो भवति, नार्हन्भुञ्जानोपीति अज्ञानमात्रम् । प्रमत्तत्वे चास्य
१५ भ्रेणितः पतितत्वाच्च केवलमाप्तत्वम् ।

- किमर्थं चासौ भुङ्क्ते-शरीरोपचयार्थम्, ज्ञानध्यानसंयमसंशि-
द्ध्यर्थं वा, क्षुब्धेदनाप्रतीकारार्थं वा, प्राणत्राणार्थं वा ? न तावच्छ-
रीरोपचयार्थम्, लाभान्तरायप्रक्षयात्प्रतिसमं विशिष्टपरमाणु-
लाभतस्तत्सिद्धेः । तदर्थं तद्गृहणे चासौ कथं निर्ग्रन्थः स्यात्
२० प्राकृतपुरुषवत् ? नापि ज्ञानादिसिद्ध्यर्थम्, यतो ज्ञानं तस्याशि-
कार्यविषयमक्षयस्वरूपम्, संयमश्च यथाख्यातः सर्वदा विद्यते ।
ध्यानं तु परमार्थतो नास्ति निर्मलस्कत्वात्, योगनिरोधत्वेनोप-
चारतस्तत्रास्य सम्भवात् । नापि प्राणत्राणार्थम्, अपमृत्युरहि-
तत्वात् । नापि क्षुब्धेदनाप्रतीकारार्थम्, अनन्तसुखवीर्यं भगव-
२५ त्तस्याः सम्भवामावस्योक्तत्वात् ।

- ननु भगवतो भोजनामात्रे कथम् 'एकादश जिने परीषदाः'
इत्यागमविरोधो न स्यात् ? तदसत्, तेषां तत्रोपचारेणैव प्रति-
पादनात्, उपचारनिमित्तं च वेदनीयसंज्ञावमात्रम् । परमार्थ-
तस्तु तत्र तेषां सङ्गावे क्षुदादिपरीषदसङ्गावाद्भुक्षावद् रोगवज-
३० लृणस्पर्शपरीषदसङ्गावान्महदुःखं स्यात्, तथा च दुःखितत्वा-
न्नासौ जिनोऽसदादिवत् । तथा भोजनं रसनेन शीतादिकं च

१ यतयः । २ शृङ्गे । ३ भगवतो भुजिक्रियातो दोष एव न सम्भवते इत्युक्ते
आह । ४ प्रमत्तो न भवतीति यावत् । ५ प्राकृतो नीचः । ६ आधुनोऽपनवरहित-
त्वात् । ७ जिने । ८ इन्द्रियरूपेण । ९ भोजनं रसनेनात्रुभवेदा केवलज्ञानेन वेति
विकल्प्य क्रमेण दृश्यन्नाह ।

स्पर्शनादिनेन्द्रियेण यद्यसावनुभवत्; तर्हि भगवतो मतिज्ञानानु-
षङ्गः । अथ केवलज्ञानेन; तत्रापि सर्वे भोजनादिकं परशरीरस्थ-
मप्यस्यानुषज्यते । न चात्मशरीरस्थमेवास्य तन्नाम्यदित्यभिधा-
तव्यम्; भगवतो वीतमोहस्य स्वपरशरीरमतिविभागाभावात् ।

यद्यप्यचारतोप्यस्यैकादश परीषदा न सम्भाव्यन्ते तत्र तन्नि-^५
वेद्यपरत्वात् सूत्रस्य, 'एकेनाधिका न दश परीषदा जिने एकादश
जिने' इति व्युत्पत्तेः । प्रयोगः-भगवान् शुद्धादिपरीषदरहितो-
ऽनन्तसुखत्वात्सिद्धवत् ।

किञ्च, भोजनं कुर्वाणो भगवान् किल लोकैर्नावलोक्यते चक्षु-
बेत्यभिधीयते भवता । तत्रादर्शनेऽयुक्तसेवित्वादेकान्तमाश्रित्य^{१०}
शुद्ध इति कारणम्, बह्वलान्धकारस्थितभोजनं वा, विद्याविशेषेण
स्वस्य तिरोधानं वा ? तत्राद्यपक्षे पारदारिकवहीनंधडा दोष-
सम्भावनाप्रसङ्गः । अन्धकारस्तु न सम्भाव्यते, तद्देहदीप्त्या तस्य
निवृत्तत्वात् । विद्याविशेषोर्पयोगे चास्य निर्ग्रन्थत्वाभावः । कथं
चाद्दृश्याय तस्यै दानं दातुमिदीयते ? अथातिशयविशेषः कश्चि-^{१५}
त्तस्य, येन भुञ्जानो नावलोक्यते; तर्हि भोजनाभावलक्षण एवा-
स्यातिशयोस्तु किं मिथ्याभिनिवेशेन ? ततो जीवन्मुक्तस्यात्म-
नोऽनन्तचतुष्टयसमावत्त्वमिच्छता कवलाहाररहितत्वमेवैष्टव्य-
मित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

ननु च 'अनन्तचतुष्टयस्वरूपलामो मोक्षः' इत्ययुक्तम्; बुद्ध्या-^{२०}
दिविशेषगुणोच्छेदरूपत्वात्तस्य । तदुच्छेदे च प्रमाणम्-नवा-
नामात्मविशेषगुणानां सन्तानोऽत्यन्तमुच्छिद्यते सन्तानत्वात्
प्रदीपसन्तानवत् । न चायमसिद्धो हेतुः; पक्षे प्रवर्त्तमानत्वात् ।
नापि विरुद्धः; सपक्षे प्रदीपादौ सत्त्वात् । नाप्यनैकान्तिकः; पक्ष-
सपक्षवद्विपक्षे परमाण्वादावप्रवृत्तेः । नापि कालात्ययापदिष्टः;^{२५}
विपरीतार्थोपस्थापकयोः प्रत्यक्षागमयोरसम्भवात् । नापि सैत्प्रति-
पक्षः; प्रतिपक्षसाधनाभावात् ।

१ तर्हि । २ केवलज्ञानेन तन्नाम्यनुभवोस्तीति भावः । ३ (एकादश जिने इति
सूत्रस्य विनित्तैकादशपरीषदाणां निवेद्यपरत्वात्) । ४ अन्ये । ५ मां बुद्ध्या कश्चि-
ज्ज्ञानं याचिष्यत इति दीनचित्तत्वं दोषो दीनचित्तस्य । ६ व्यापारे । ७ प्रपञ्चेन ।
८ बुद्धिसुखदुःखेच्छादेशप्रयत्नवर्मावर्गसत्कारलक्षणात्वात् । ९ वर्मावर्माभ्यां बुद्धि-
रत्ययते इन्द्रेः संस्कारः सत्कारादिच्छादेशौ इच्छादेशाभ्यां प्रयत्नसत्तासुखदुःखे भवत
इति नवानां गुणानां सन्तानः । १० सर्वथा । ११ तिले । १२ प्रतिपक्षसाधको
हेतुः सप्रतिपक्षः ।

ननु सन्तानोच्छेदरूपेण मोक्षे हेतुर्वाच्यो निर्हेतुकविनाशान-
भ्युपगमात्; इत्यप्यचोद्यम्; तत्त्वज्ञानस्य विपर्ययज्ञानव्यवच्छेद-
क्रमेण निःश्रेयसहेतुत्वोपपत्तेः । इदं च सम्यग्ज्ञानस्य मिथ्या-
ज्ञानोच्छेदे शुक्तिकादौ सामर्थ्यम् । ननु चैतत्त्वज्ञानस्यापि
५ तत्त्वज्ञानोच्छेदे सामर्थ्यं दृश्यते, ज्ञानस्य ज्ञानान्तरविरोधित्वेन
मिथ्याज्ञानोत्पत्तौ सम्यग्ज्ञानोच्छेदप्रतीतिः; इत्यप्ययुक्तम्; यतो
नानयोरुच्छेदमात्रमभिप्रेतम् । किं तर्हि ? सन्तानोच्छेदः । यथा
च सम्यग्ज्ञानान्मिथ्याज्ञानसन्तानोच्छेदो नैवं मिथ्याज्ञानात्सम्य-
ग्ज्ञानसन्तानस्य, अस्य सत्यार्थत्वेन बलीयस्त्वात् । निवृत्ते च
१० मिथ्याज्ञाने तन्मूला रागादयो न सम्भवन्ति कारणभावे कार्या-
नुत्पादात् । रागाद्यभावे तत्कार्या मनोवाकायप्रवृत्तिर्व्यवर्तते ।
तदभावे च धर्माधर्मयोरनुत्पत्तिः । आरब्धशरीरेन्द्रियविषय-
कार्ययोस्तु सुखदुःखफलोपभोगात्प्रक्षयः । अनारब्धतत्कार्ययोर-
प्यवस्थितयोस्तत्फलोपभोगादेव प्रक्षयः । तथा चागमः—

१५ “नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि” [] इति ।

अनुमानं च, पूर्वैकर्मण्युपभोगादेव क्षीयन्ते कर्मत्वात् प्रारब्ध-
शरीरकर्मवत् । न चोपभोगात्प्रक्षये कर्मान्तरस्यावश्यं भावा-
त्संसारानुच्छेदः; समीचिवलादुत्पद्यतत्त्वज्ञानस्यावगतकर्मसा-
मर्थ्योत्पादितयुगपदशेषशरीरद्वारावाप्ताशेषभोगस्योपात्तकर्मप्रक्ष-
२० यात्, भाविकर्मोत्पत्तिनिमित्तमिथ्याज्ञानजनितानुसन्धानविकल-
त्वाच्च संसारोच्छेदोपपत्तेः । अनुसन्धानं हि रागद्वेषौ ‘अनु-
सन्धीयते गतं चित्तमाभ्याम्’ इति व्युत्पत्तेः । न च मिथ्या-
ज्ञानाभावेऽमिलापस्यैवासम्भवाद्भोर्गानुपपत्तिः; तदुपभोगं विना
हि कर्मणां प्रक्षयानुपपत्तेः तत्त्वज्ञानिनोपि कर्मक्षयार्थेतया प्रवृत्ते-
२५ वैद्योपदेशेनातुरवदौषधाचरणे । यथैव ह्यातुरस्यानमिलषितेप्यौ-
षधाचरणे व्याधिप्रक्षयार्थं प्रवृत्तिः, तद्व्यतिरेकेण तत्प्रक्षयानुप-
पत्तेस्तथात्रापि ।

१ मिथ्या । २ सम्यग्ज्ञानान्मिथ्याज्ञानाभावस्तदभावाद्वाप्यभावस्तदभावाच्च मनो-
वाकायप्रवृत्तिरुपभोगस्याभावस्तदभावान्मनोवाकायप्रवृत्तिरिति । ३ द्विचन्द्रादिशिवस्य ।
४ पक्षवद्भ्रमणस्य । ५ आमूलतः सन्ततिच्छेदे पदमिमात्रात् । ६ सन्ततिनादिकं सुख-
हेतुरिति गहिकण्टकादिकं दुःखहेतुरिति च सम्यग्ज्ञानात् । ७ सन्ततिनादिकं दुःखहेतु-
रिति ज्ञानात् । ८ वर्माधर्मयोः । (नतः) । ९ प्रारब्धं शरीरं येन तत्र तत्कर्म च ।
१० ध्यान । ११ नुः । १२ पूर्वोपात्त । १३ सम्भवते । १४ अनेन पूर्वं मरेदुग्विषं
दुःखादिकं दत्तमिति । १५ बुद्धिः । १६ तत्त्वज्ञानिनः पुरुषस्य । १७ कर्मफलस्य ।
१८ कर्मफलोपभोगे । १९ उक्तमेव समर्थयति । २० कर्मफलोपभोगे तत्त्वज्ञानिनः ।

ननु तत्त्वज्ञानिनां तत्त्वज्ञानादेव सञ्चितकर्मप्रक्षय इत्यप्या-
गमोस्ति—

“यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्मस्रसात्कुरुते क्षणात् ।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा”

[भगवद्गी० ४।३७] इति । ५

तथा च विरुद्धार्थत्वादुभययोरेकत्रार्थे कथं प्रामाण्यम् ? इत्ययुक्तम् ।
तत्त्वज्ञानस्य साक्षाच्चक्षिनाशे व्यापाराभावात् । तद्धि कर्मसा-
मर्थ्यावगमतोऽशेषशरीरोत्पत्तिद्वारेणोपभोगात्कर्मणां विनाशे
व्याप्रियते इत्यग्निरिवोपचर्यते ज्ञानमित्यागमव्याख्यानाविरोधः ।
न चैतद्व्याच्यम्—‘तत्त्वज्ञानिनां कर्मविनाशस्तत्त्वज्ञानादितरेषां १०
तूपभोगात्’ इति; ज्ञानेन कर्मविनाशे प्रसिद्धोदाहरणमाधात्,
फलोपभोगात् तत्प्रक्षये तत्सर्ज्जावार्त् ।

अन्ये तु मिथ्याज्ञानजनितसंस्कारस्य सहकारिणोऽभावादि-
द्यमानान्यपि कर्माणि न जन्मान्तरे शरीराद्योरम्भकाणीति
मन्यन्ते; तेषामनुत्पादितकार्यस्याहङ्गस्याप्रक्षयः सित्यत्वसङ्गः । १५
अनागतयोर्धर्माधर्मयोस्तत्पत्तिप्रतिषेधे तत्त्वज्ञानिनो नित्यनैमित्ति-
कानुष्ठानं किमर्थमिति चेत् ? प्रत्यवायपरिहारार्थम् । न च
मिथ्याज्ञानाभावे दुष्कर्मणोऽभावात् कस्य परिहारार्थं तदित्यभि-
धातव्यम्; यतो मिथ्याज्ञानाभावे निषिद्धोच्चरणनिमित्तस्यैव
प्रत्यवायस्याभावो न विहितानुष्ठाननिमित्तस्य, २०

“अकुर्यन्विहितं कर्म प्रत्यवायेन लिप्यते” [] इत्या-
गमात् । ततस्तदनुष्ठानं तत्परिहारार्थं युक्तम् । तदुक्तम्—

“नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया ।

मोक्षार्थी न प्रवर्त्तत तत्र कर्म्यनिषिद्धयोः ॥ १ ॥

[मी० श्लो० सम्बन्धा० श्लो० ११०] २५

१ दीप्तः । २ तत्प्राप्त्यागमसङ्गावे च । ३ आगमयोः । ४ मोक्षोपायलक्षणे ।
५ अग्ने वक्ष्यमाणम् । ६ अतत्त्वज्ञानिनाम् । ७ कुतः ? । ८ आरब्धशरीरकर्म-
वदिति । ९ तत्त्वज्ञाने समुत्पत्ते सतीति शेषः । १० यावत्कारुण्यम् । ११ इन्द्रिय-
विषयादेश्च । १२ नैयायिकविशेषाः । १३ धर्माधर्मस्य । १४ ततोऽनुभवनप्रकारेणैव
मोक्षोऽभ्युपगन्तव्यः । १५ सति । प्रायुक्तत्वादेव । १६ नरस्य । १७ दुष्कर्म ।
१८ ज्ञानादिना । १९ विप्रवृत्तिः । २० नित्यनैमित्तिकादेः । २१ कर्मणी । २२ कान्त्य-
यागः । २३ निषिद्ध विप्रवृत्तिः । २४ कर्मणोः ।

नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् ।

ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन तु पाचयेत् ॥ २ ॥

अभ्यासार्पकविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः ।

कास्ये निषिद्धे च परं प्रवृत्तिप्रतिषेधतः ॥ ३ ॥" []

- ५ 'स्वर्गकामः' इत्याद्यागमजनितकामेन यागाभिलाषेण निर्वर्त्य हि कास्यमग्निष्टोमादि । कैवल्यं तु सकलविशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूपं निर्वाणम् । न च विपर्ययज्ञानप्रध्वंसादिकमेण तद्विशिष्टात्मस्वरूपनिर्वाणस्य तत्त्वज्ञानकार्यत्वादित्यत्वं वाच्यम् । यतो विशेषगुणोच्छेदस्यानित्यत्वमापाद्यते, तद्विशिष्टात्मनो वा ?
- १० न तावद्विशेषगुणोच्छेदस्य, अस्य प्रध्वंसाभावरूपत्वात् । कार्यवस्तुनो ह्यनित्यत्वं प्रसिद्धम् । तद्विशिष्टात्मनश्च वस्तुत्वेऽपि कार्यत्वाभावाज्जनित्यत्वम् । न च बुद्ध्यादिविनाशे गुणिनस्तथाभावो युक्तः; तथोरत्यन्तमेदात् । तत्तादात्म्ये त्वैवं दोषः स्यादेव ।

अथ मोक्षावस्थायां चैतन्यस्याप्युच्छेदोऽत्र कृतबुद्धयस्तत्र प्रव-
१५ र्तन्ते इत्यानन्दरूपो मोक्षोऽभ्युपगन्तव्यः—

- "आनन्दं ब्रह्मणो रूपं नञ्च मोक्षेऽभिव्यर्ज्यते" []
इत्यागमात् । 'आत्मा सुखस्वभावोऽत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वात्, अनन्यैपरैतयोपौदीयमानत्वाच्च । यद्यदेवंविधं तत्तत्सुखस्वभावम् यथा वैषयिकं सुखम्, तथैवात्मा एवंविधः, तस्मात्सुखस्व-
२० भावः' इत्यनुमानाच्चास्यानन्दस्वभावताप्रतीतिः; इत्यप्यसाम्प्रतम् । यतस्तत्सुखं नित्यम्, अनित्यं वा ? न तावदनित्यम्, तत्त्वभावतायात्मनोऽप्यनित्यत्वप्रसङ्गात् । नित्यं चेत्, तत्संवेदनमपि नित्यम्,

१ अनुष्ठानैः । २ मनुष्यः । ३ विस्तारयेत् । ४ उत्कृष्टविज्ञानः । ५ मोक्षम् ।
६ (मूलपाठस्त्वत्र 'केवलं' इति । अनेन त्रिसात्रिकाक्षरेण छन्दोमङ्गः स्यादिति 'पर' शब्दो नियोजितः । केवलशब्दस्य परशब्दोऽर्थः दिव्यण्यां लिखितश्च) । ७ निष्पाद्य-
मनुष्ठानम् । ८ मिथ्याज्ञान । ९ निस्स्वरूपत्वात् । १० गुणगुणिनोः । ११ गुण-
गुणिनोः । १२ गुणविनाशे गुणविनाशकक्षणः । १३ वेदान्दी आत्कीर्यः ।
१४ बुद्धेः । १५ विनाशात् । १६ प्रेक्षावन्तः । १७ वैशेषिकेण । १८ आत्मनः ।
१९ व्यक्तीक्रियते । २० संसारियुक्तात्मनोः साधारणमनुमानम् । २१ पुत्रादिशरीरेण
व्यभिचारपरिहाराद्यमनन्यपरतयेत्सुखम् । २२ आत्मनः । २३ बलिताशरीरेण व्यभि-
चारपरिहाराद्यमनन्यपरतयेत्सुखम् । २४ स्वप्रधानत्वेनेत्यर्थः । २५ अनन्यपरतयो-
पादीयमानत्वादिति श्लोकेः ? आत्मन आत्मनि लीनतया स्वस्वरूपसोपादीयमानत्वं
ग्राह्यमाणत्वं यस्यात्मन इति । २६ वैषयिकसुखप्रकारेण । २७ संसारावस्थायां शुका-
वस्थायां च ।

अनित्यं वा ? यदि नित्यम् ; मुकेतरावस्थयोरविशेषप्रसङ्गः तत्सु-
खसंवेदनयोर्नित्यत्वेनोभयत्र सत्त्वाविशेषात् । स्मरणानुपपत्तिश्च ;
अनुभवस्यैवावस्थानात् । संस्कारानुपपत्तिश्च ; अनुभवस्य निरति-
शयत्वात् । करणजन्यसुखेन चास्य संसारावस्थायां साहचर्यग्र-
हणप्रसङ्गात् सुखद्वयोपलम्भः संदा स्यात् । ५

अथ धर्माधर्मफलेन सुखादिना शरीरादिना वा नित्यसुख-
संवेदनस्य प्रतिबन्धत्वेनानुभवामावात्र मुकेतरावस्थयोरविशेषः
सदा सुखद्वयोपलम्भो वा ; तदयुक्तम् ; शरीरादेः सुखार्थत्वेन
तत्प्रतिबन्धकत्वायोगात् । न हि यद्यर्थं तत्तस्यैव प्रतिबन्धकं
युक्तम् । नापि वैषयिकसुखाद्यनुभवेन तत्प्रतिबन्धः । तेन हि १०
नित्यसुखस्य तदनुभवस्य वा प्रतिबन्धोऽनुत्पत्तिलक्षणो विनाश-
लक्षणो वा न युक्तः ; द्वयोरपि नित्यत्वाम्युपगमात् । न च
संसारावस्थायां बाह्यविषयव्यासङ्गाद्विद्यमानस्याप्यनुभवस्यासंवे-
दनम्, तदभावात्तु मोक्षावस्थायां संवेदनमित्यभिधौतव्यम् ;
तदनुभवस्य नित्यत्वेन व्यासङ्गानुपपत्तेः । आत्मनो हि व्यासङ्गो १५
रूपादौ विषये ज्ञानोत्पत्तौ विषयान्तरे ज्ञानानुत्पत्तिः, इन्द्रिय-
स्यान्येकस्मिन्विषये ज्ञानजनकत्वेन प्रवृत्तस्य विषयान्तरे ज्ञानाजन-
कत्वम् । स चात्रानुपपन्नः ; सुखवत्तज्ज्ञानस्यापि सदा सत्त्वात् ।
शरीरादेस्तु प्रतिबन्धकत्वे तदपहर्तृत्वं हि साफलं न स्यात्, प्रति-
बन्धकविघातकारकस्योपकारकत्वेन लोके प्रतीतेः । २०

अथानित्यं तत्संवेदनम् ; तदोत्पत्तिकारणं वाच्यम् । अथ
योगजधर्मापेक्षः पुरुषान्तैःकरणसंयोगोऽसमवायिकारणम् । ननु
योगजधर्मस्य मुक्तावसम्मवात् कथमसौ तत्संयोगोनापेक्ष्येत

१ संसारावस्थायां मुक्तावस्थायां च । २ अस्ति च संसारावस्थायां सुखस्मरणम् ।
३ प्रत्यक्षम् । ४ प्रत्यक्षविशेषो स्मरणान्नं संस्कारः । ५ अस्ति च संस्कारस्योत्पत्तिः
संसारावस्थायां । ६ भावरूपस्य । ७ नित्यसुखस्य । ८ नित्यानित्यसुखद्वयस्य ।
९ यदा यदा वैषयिकं सुखमुत्पद्यते तदा तदा इदोरुपलम्भ इत्यर्थः । १० कार्येण ।
११ सुखादिना च । १२ इन्द्रियादिना च । १३ प्रतिबन्धत्वेन । १४ अत्रार्थः
प्रयोजनम् । १५ योगाद्यतनं शरीरमिति वचनात् । १६ प्रतिपक्षम् । १७ धनित्वा-
दिवत् । १८ नित्यसुखसंवेदनयोः । १९ वेदान्तिना । २० नित्यसुखानुभवस्य ।
२१ वेदान्तिना । २२ आत्मन इन्द्रियस्य वा । २३ तत्समये । २४ व्यासङ्गः ।
२५ रूपे । २६ रसे । २७ नित्यसुखे । २८ सुखतत्संवेदनयोः । २९ नरस्य ।
३० वेदान्तिना । ३१ मनः । ३२ आत्मा तु समवायिकारणम् । ३३ नित्यसुख-
संवेदनस्य । ३४ वैशेषिका ।

यतस्तत्र ततस्तदुत्पत्तिः स्यात् ? अथाद्यं योगजधर्मापेक्षान्तःकरणसंयोगो विज्ञानं जनयति तच्चापेक्ष्योत्तरोत्तरं ज्ञानम् ; तदप्ययुक्तम् ; न हि शरीरसम्बन्धानपेक्षं विज्ञानमेवान्तःकरणसंयोगस्य ज्ञानोत्पत्तौ सहकारिकारणं दृष्टम् । न च दृष्टविपरीतं ५ शक्यं कल्पयितुमिति प्रसङ्गात् । आकस्मिकं तु कार्यं न भवत्येव, अहेतोः सर्वत्र सर्वदा भावप्रसङ्गात् ।

किञ्च, यथा मुक्तावस्थायामनित्यसुखमतिक्रम्य नित्यं परिकल्प्यते, तथा नित्यत्वधर्माधिकरणं शरीरादिकमपि परिकल्पनीयम् । कार्यत्वात् तस्य कथं नित्यत्वधर्माधिकरणत्वम् दृष्टविरो-
१० धादप्रमाणकत्वाच्च ? इत्यन्यत्रापि समानम् । न खलु नित्यसुखसाधकत्वेन प्रत्यक्षानुमानागमानां मध्ये किञ्चित्प्रवर्तते, असदादीन्द्रियजप्रत्यक्षस्यात्र व्यापारानुपलम्भात् । 'योगिप्रत्यक्षं त्वेवं प्रवर्ततेऽन्यथा वा' इत्याद्यापि विवादपदापन्नम् ।

यच्चात्मा सुखस्वभाव इत्यनुमानं तदपि न नित्यसुखस्वभावता-
१५ साधकम् ; सुखस्वभावतामात्रस्यैवातः प्रसिद्धेः ।

किञ्च, सुखस्वभावत्वं सुखत्वजातिसम्बन्धित्वम् ; अस्मात्मानि सम्भाव्यन्ते शुण्णे एवास्योपलम्भात् । न ह्येका काचित्जातिर्द्रव्यशुण्योः साधारणोपलभ्यते । अथ सुखाधिकरणत्वम् ; तत्र, अन्य नित्यानित्यविकल्पानुपपत्तेः । तर्था सुखत्वस्य सुखस्य बाधिकरणे-
२० तायां तज्ज्ञानस्यापि नित्यानित्यविकल्पः समानः ।

साधनं च अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वमनन्यपरतयोपादीयमानत्वं चानैकान्तिकत्वादसाधनम् ; दुःखार्थैवेपि भावात् । अनन्यपरतयोपादीयमानत्वं चासिद्धम् ; न ह्यात्माऽन्यार्थं नोपादीयते ; सुखार्थ-

१ नित्यसुख । २ नित्यसुखसंवेदनम् । ३ आत्मान्तःकरणसंयोगो जनयति । ४ किन्तु शरीरसम्बन्धापेक्षं सद्विज्ञानं सहकारिकारणं दृष्टम् । ५ सीगतादेरपि संवेदनस्य क्षणिकत्वादिति द्विप्रसङ्गात् । ६ वैदान्तिकानां अवता । ७ इन्द्रियं च । ८ नित्यसुखे । ९ नित्यसुखभाहकत्वेन । १० नित्यासुखाभाहकत्वेन । ११ जातिः सामान्यम् । १२ निक्षीयते । १३ सुखलक्षणे । १४ सुखाधिकरणत्वस्य सुखलभावत्वस्य । १५ अन्यलीनतया । १६ वैशेषिकः । १७ नित्यं चेन्मुक्तेतरावस्थायामविशेषप्रसङ्ग इत्यादि दूषणम् । अनित्यं चेदुत्पत्तिकारणं बान्धवमिलादि दूषणम् । १८ तथा दूषणान्तरसमुच्चये । १९ आत्मनः । २० दुःखभावो हि त्यक्तभरसालन्तप्रियबुद्धिविषयः अनन्यपरतयोपादीयमानश्च । न त्वसौ सुखलमानं तस्य मुञ्छरूपत्वात् । २१ अभावस्य निःस्वरूपत्वादिभौतिकमिति । २२ सुखलीनतयाऽर्द्धसुखीत्युच्छेदेन ।

मस्योपादानात् । अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वमप्यसिद्धम् । दुःखि-
तार्यामप्रियबुद्धेरपि भावात् ।

‘आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्’ इत्याद्यागमो नित्यसुखसद्भावावेदकः;
इत्यप्यसमीचीनम्; तस्यैतदर्थत्वासिद्धेः । आनन्दशब्दो ह्यात्य-
न्तिकदुःखाभावे प्रयुक्तत्वाद्गौणः । इष्टञ्च दुःखाभावे सुखशब्द-
प्रयोगः, यथा भाराक्रान्तस्य ज्वरादिसन्तप्तस्य वा तदपाये ।

किञ्च, आत्मस्वरूपात्तन्नित्यसुखमव्यतिरिक्तम्, तद्व्यतिरिक्तं
वा ? प्रथमपक्षे आत्मस्वरूपवत् सर्वदा सुखसंवित्तिप्रसङ्गाद्ब्रह्म-
मुक्तयोरविशेषप्रसङ्गः ।

अनाद्यविद्याच्छादितत्वान्न स्वप्रकाशानन्दसंविद्धिः संसारिणः, १०
इत्यप्यपेशलम्; आच्छाद्यते ह्यप्रकाशस्वरूपं वस्तु, यत्तु प्रकाश-
स्वरूपं तत्कथमन्येनाच्छाद्येत ? मेधादिना त्वादित्यादेराच्छादनं
युक्तम् तस्यातोऽर्थान्तरत्वात्, मूर्त्तस्य मूर्त्तेनाच्छादनापत्तेः
(वनोपपत्तेः) । अविद्यायास्तु सत्त्वान्वत्त्वाभ्यामनिर्वचनीयतया
तुच्छस्वभावत्वात् न स्वप्रकाशानन्दाच्छादकत्वम् । तत्राद्यः १५
पक्षो युक्तः ।

द्वितीयपक्षोप्ययुक्तः; नित्यसुखस्यात्मनोऽर्थान्तरस्य प्रत्यक्षादेः
प्रतिपादकस्य प्रतिषिद्धत्वाद्वाचकस्य च प्रदर्शितत्वात् । तन्न
परमानन्दमिव्यकिर्मोक्षः ।

नैपि विशुद्धज्ञानोत्पत्तिः; रागादिमतो विज्ञानात्तद्ग्रहितस्या-२०
स्योत्पत्तेरयोगात् । यथैव हि बोधाद्बोधरूपता ज्ञानान्तरे तथा
रागादेरपि स्यात्तादात्म्यार्तं, अन्यथा तादात्म्याभावः स्यात् । न
च ‘बोधादेव बोधरूपता’ इति प्रमाणमस्ति; विलक्षणतादपि कार-
णाद्विलक्षणकार्यस्योत्पत्तिवर्शनात् । बोधस्य च बोधान्तरहेतुत्वे
पूर्वकालभावित्वं समानजातीयत्वमेकसन्तानत्वं वा न हेतुः; २५
व्यभिचारात्; तथाहि-पूर्वकालभावित्वं तैत्समानक्षणे, समान-
जातीयत्वं च सन्तानान्तरक्षणेनैव्यभिचारि, तेषां हि पूर्वकाल-
भावित्वे तैत्समानजातीयत्वे च सत्यपि न विचक्षितैकानहेतुत्वम् ।

१ जनसाधाम् । २ जगमे । ३ नदः ससारी । ४ ब्रह्मणः सकाशात् ।
५ विद्यमानत्वमिद्यमानत्वान्नाम् । ६ सौगतमाशङ्क्य । ७ मोक्षः । ८ पूर्वज्ञानात् ।
९ उत्तरज्ञाने । १० बोधस्य रागादिना । ११ रागादिवदि न स्यात् । १२ बीजादेः ।
१३ अङ्गुरादेः । १४ प्रकमस्य । १५ पक्षात्पत्यम् । १६ उत्तरज्ञानजनकप्राप्त-
बोधस्य । १७ पुरुषान्तरबोधैः पूर्वकाङ्क्षाभिधिः । १८ ज्ञानत्वेन समानजातीय-
स्य । १९ पुरुषान्तरबोधैः पूर्वकाङ्क्षाभिधिः । २० पूर्वज्ञानस्य । २१ विनक्षित-
शुचरत् ।

एकसन्तानत्वं च अन्यज्ञानेन व्यभिचारि । अथ नेष्येत एवा-
न्यज्ञानं सर्वदाऽऽरम्भात्; तथाहि-मरणशरीरज्ञानमपि ज्ञानान्त-
रहेतुर्जाग्रदवस्थाज्ञानं च सुषुप्तावस्थाज्ञानस्येति । नन्वेवं मरणश-
रीरज्ञानस्यान्तराभवशरीरज्ञानहेतुत्वे गर्भशरीरज्ञानहेतुत्वे वा
५ सन्तानान्तरेपि ज्ञानजनकत्वं किञ्च स्यान्नियतहेतोरभावात् ?
अथेष्टं एव उपाध्यायज्ञानं शिष्यज्ञानस्य हेतुः । अन्यस्य कस्मात्
भवति ? कर्मवासना निर्यामिका चेत्; तस्या ज्ञानव्यतिरेकेणास-
म्भवात् । तत्तादात्म्ये हि विज्ञानं बोधरूपतया अवशिष्टं बोधाच्च
बोधरूपतेत्यविशेषेण ज्ञानं विदध्यात् ।

१० सुषुप्तावस्थाज्ञानस्य जाग्रदवस्थाज्ञानं कारणम्; इत्यप्यसम्भा-
व्यम्; सुषुप्तावस्थायां च ज्ञानाभ्युपगमे जाग्रदवस्थातो विशेषो न
स्यादुभयत्रापि स्वसंविदितज्ञानसद्भावाविशेषात् । मिद्वेनैभिभू-
तत्वं विशेषः; इत्यप्यसत्; तस्यापि तद्वर्तमानतया तादात्म्येनाभि-
भावकत्वायोगात् । तद्व्यतिरेके तु रूपवेदनौदित्वाद्यस्य रूपव्यति-
१५ रिक्तं तत्स्वरूपं निरूप्यताम् । अभिभवश्च यदि विनाशः; कथं
तत्र ज्ञानस्य सत्त्वं विनाशस्य वा निर्हेतुकत्वम् ? अथ तिरो-
भावः; न; विज्ञानसत्त्वं संवेदनमित्यभ्युपगमे तस्यानुपपत्तेः ।
अतः सुषुप्तावस्थायां विज्ञानासत्त्वेनान्यज्ञानसद्भावादेकसन्ता-
नत्वं व्यभिचारीति ।

२० यच्चोच्यते-विशिष्टभावनाभ्यासवशाद्वाग्नादिविनाशः; तदप्य-
सङ्गतम्; निर्हेतुकत्वाद्भिनाशस्य अभ्यासानुपपत्तेर्ध्वं । अभ्यासो

१ बौद्धानां मते योगिनां मरणे चत्मचित्तमुत्तरचित्तं नोत्पादयतीति भावः ।
२ योगिचरमचित्तेन । ३ मया । ४ पूर्वविज्ञानेन विज्ञानान्तरस्य । ५ जननात् ।
६ गर्भशरीरज्ञानस्य । ७ (जाग्रदवस्थाज्ञानवदिति सुषुप्तरस्य) (१) । ८ जैनमतमज्ञौक्य
योगं प्रति लीगतेनोक्तम् । ९ मध्यभवशरीरस्य कालमणस्य । १० बौद्धेन । ११ वैशे-
षिकः । १२ शिष्यात् । १३ बौद्धः । १४ वासना ज्ञानरूपैव । १५ अदृष्टं क्रिया
च । १६ कथं नियामिका ? मरणशरीरज्ञानान्तराभवशरीरज्ञानं गर्भशरीरज्ञानं
चोत्पद्यते उपाध्यायज्ञानाच्छिष्यज्ञानं चेति । १७ वैशेषिकः । १८ विज्ञानस्य ।
१९ साधारणम् । २० विशेषरहितम् । २१ हेतोः । २२ सन्तानान्तरेपि । २३ उत्त-
रम् । २४ पूर्वज्ञानं कर्तुं । २५ बौद्धेन लया । २६ सुषुप्तावस्थाजाग्रदवस्थयोः ।
२७ सुषुप्तावस्थानाग्रदवस्थयोः । २८ जतिनाल्लेनातिनिर्गता वा । २९ पराभवः ।
३० बौद्धानां मते यथा नैमिष्यादिगुणो ज्ञानस्य तथा मिद्धादिदोषोपि ज्ञानस्य वर्ग
इति । ३१ ज्ञानात् । ३२ मिद्धात् । ३३ आदिशब्देन विज्ञानसंज्ञासंस्कारा युक्तानि ।
३४ सुषुप्तावस्थायात् । ३५ विज्ञानस्य (तिरोभावस्य) । ३६ बौद्धेन । ३७ किञ्च ।

ह्यवस्थिते ध्यातर्यतिशयाधायकत्वेन स्यान्न क्षणिकज्ञानमात्रे । न च सन्तानापेक्षयाऽतिशयो युक्तः; तस्यैवासत्त्वात्, अविशिष्टा द्विशिष्टोत्पत्तेरयोगाच्च । अविशिष्टादि पूर्वज्ञानादुत्तरोत्तरं साति शयं कथमुत्पद्येत ? तत्कथं योगिनां सकलकल्पनाविकलज्ञान-सम्भव इति ? ५

यच्च 'सन्तानोच्छित्तिर्निःश्रेयसम्' इति मतम्; तत्र निर्हेतुक-तथा विनाशस्योर्पायवैयर्थ्यमयत्नसिद्धत्वादिति ।

अन्ये त्वनेकान्तभावनातो विशिष्टप्रदेशेऽक्षयशंतीरादिल्लभो निःश्रेयसमिति मन्यन्ते । तथाहि-नित्यत्वभावनायां ग्रहोऽनित्यत्वे च द्वेष इत्युभयपरिहारार्थमनेकान्तभावना; इत्यप्यपरीक्षिताभि- १० ज्ञानम्; मिथ्याज्ञानस्य निःश्रेयसकारणत्वायोगात् । अनेकान्त-ज्ञानं मिथ्यैव विरोधवैयधिकरण्याद्यनेकबाधकोपनिपातात् । स्वदेशादिषु सत्त्वं प्रदेशादिषु चासत्त्वम् इतरेतराभावादिर्यते एव । स्वकार्येषु कर्तृत्वं कार्यान्तरेषु चाकर्तृत्वं न प्रतिषिध्यते, यैद्यस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यामुत्पत्तौ व्याप्रियमाणमुपलब्धं तत्तस्य १५ कारणं नान्यस्येत्यभ्युपगमात् । तथा मुक्तावप्यनेकान्तो न व्याव-र्तत इति 'स एव मुक्तः संसारी च' इति प्रसक्तम् । तथाऽनेका-न्तेप्यनेकान्तप्रसङ्गात् सदसन्नित्यानित्यादिरूपव्यतिरिक्तं रूप-न्तरमपि प्रसज्येतेति ।

अन्ये त्वात्मैकत्वज्ञानात्परमात्मनि लैयः सम्पद्यते इति हुंवते । २० तथाहि-आत्मैव परमार्थसंस्ततोऽन्यत्र भेदे प्रमाणाभावात् । प्रत्यक्षं हि पदार्थानां सङ्गावस्यैव ग्राहकं न भेदस्यैत्यविद्यौसर्मा-पितो भेदः; तेप्यतत्त्वज्ञाः; आत्मैकत्वज्ञानस्य मिथ्यारूपतया निःश्रेयसाऽसाधकत्वात् । तन्मिथ्यात्वं चार्थानां प्रमाणतो वास्त- २५ वभेदप्रसिद्धेः ।

- १ रागादिसहितत्वेन । २ विशुद्धज्ञानोत्पत्तेः । ३ किञ्च । ४ निर्विशेषस्य । ५ योगाचारस्य । ६ ध्यानादेः । ७ विनाशस्य । ८ ज्ञेयाः । ९ मोक्षशिक्षोपति । १० स्वरूपदेहो वा । ११ आदिशब्देन ज्ञानादि । १२ केहः । १३ युक्ता । १४ वैशेषिकेणापि भया । १५ कारणम् । १६ कार्यस्य । १७ दूषणान्तरम् । १८ सर्वे सत्त्वमसत्त्वं बलनेन प्रसारेण । १९ ग्राह्यादेतवादिनः । २० प्रवेशः । २१ मोक्षम् । २२ निर्विकल्पकम् । २३ षट्पदयादीनाम् । २४ हेतोः । २५ मिथ्याज्ञानेन । २६ कल्पितः । २७ षट्पदयादीनाम् । २८ प्रत्यक्षादेः । २९ परमार्थे ।

एवं शब्दाद्वैतज्ञानमपि मिथ्यारूपतया निःश्रेयसाप्रसाधकं द्रष्टव्यम् । निरस्तं चात्माद्वैतं शब्दाद्वैतं च प्राक्प्रबन्धेनेत्यलमिति-
प्रसङ्गेन ।

प्रकृतिपुरुषविवेकोपलम्भः स्वरूपे चैतन्यमात्रेऽवस्थानलक्षण-
५ निःश्रेयसस्य साधनमित्यन्ये । तथाहि-पुरुषार्थसम्पादनाय प्रधानं
प्रवर्तते । पुरुषार्थश्च द्वेषा-शब्दादिविषयोपलब्धिः, प्रकृतिपु-
रुषविवेकोपलम्भश्च । सम्पन्ने हि पुरुषार्थे चरितार्थत्वात्प्रधानं
न शरीरादिभावेन परिणमते, विज्ञानं(तं) वा दुष्टतया कुष्ठिनीली-
घद्भोगसम्पादनाय पुरुषं नोपसर्पति; इत्यप्यसाम्प्रतम् । प्रधाना-
१० सत्त्वस्य प्रागेवोक्तत्वात् । सति हि प्रधाने पुरुषस्य तद्विवेको-
पलम्भः स्यात् । अस्तु वा तत् । तथापि पुरुषस्य निमित्तमनपेक्ष्य
तत्प्रवर्तते, अपेक्ष्य वा ? न तावदनपेक्ष्य, मुक्तात्मन्यपि शरीरा-
दिसम्पादनाय तत्प्रवृत्तिप्रसङ्गात् । अथापेक्ष्य प्रवर्तते; किं तद-
पेक्ष्यम् ? विवेकानुपलम्भः, अदृष्टं वा ? न तावद्विवेकानुप-
१५ लम्भः, तस्य विवेकोपलम्भविनष्टत्वेन मुक्तात्मन्यपि सम्भवात् ।
न चानुत्पत्तिविनाशयोरसत्त्वेन विशेषं पश्यामः । द्वितीयविक-
ल्पोप्ययुक्तः, अदृष्टस्यापि प्रधाने शक्तिरूपतया व्यवस्थितस्यो-
भयत्राविशेषात् ।

दुष्टतया च विज्ञातं प्रधानं पुरुषं नोपसर्पतीति चायुक्तम्;
२० तस्याचेतनतया 'अहमनेन' दुष्टतया विज्ञातम्' इति ज्ञानासम्भ-
वात् । ततः पूर्ववत्प्रवृत्तिरविशेषेणैव स्यात् इत्यलमितिप्रसङ्गेन ।

'तदा' द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं मोक्षः' इति चार्थ्युपगतमेवं,
विशेषगुणरहितात्मस्वरूपे तस्यावस्थानाभ्युपगमात् । 'चिद्रू-
पेऽवस्थानम्' इत्येतत् न घटते; अनित्यत्वेन चिद्रूपताया
२५ विनाशात् । न चाक्षायान्वयव्यतिरेकानुविधायिन्यास्तस्या नित्यत्वे

१ वास्तवमेदसिद्विप्रकरणे । २ अद्वैतनिराकरणस्य । ३ का । ४ मेदभाषना-
ज्ञानम् । ५ प्रति प्रधानं । ६ मेदभाषनाभावः । ७ मेदभाषनाया योग्यवस्थायाम्
सम्भवात् । मुख्यवस्थायाम् तु तस्या विनाशात्प्रबोचनाभावात् । ८ किञ्च । ९ विवे-
कानुपलम्भो नाम विवेकोपलम्भभाषः । कथम् ? विवेकोपलम्भस्यानुत्पत्तिः संसार्य-
तमसि विवेकोपलम्भस्य विनाशो मुक्तात्मनि । १० संसारिमुक्तात्मनोः । ११ पुरुषेण ।
१२ सादृश्यपरिकल्पितमुत्तुपायनिराकरणेन । १३ क्वरीत्या मोक्षोपायसंस्कृतं
मित्रावैमार्थं नास्ति चेन्मा भूम्नोक्षलक्षणं तु सादित्युक्ते जायते । १४ मुख्यवस्थायाम् ।
१५ आत्मनः । १६ (आत्मनः) । १७ योगेन । १८ स्वरूपे निर्दिष्टमेतत् ।
१९ योगमते त्रिद्रूपं शुक्तिः ।

अमाणमस्ति । आत्मस्वरूपतास्तीति चेत्; ननु चिद्रूपतात्म-
नोऽभिज्ञा, मिज्ञा वा स्यात्? अमेदे पर्यायमात्रम् 'आत्मा, चिद्रू-
पता च' इति, तस्य च नित्यत्वाम्युपगमात् सिद्धसाध्यता । मेदे
तु संयोगादिभिरनैकान्तिकत्वम्; तेषामात्मधर्मत्वेऽपि नित्यत्वामा-
घात् । गुणगुणिनोश्च तादात्म्यविरोधादित्युपरम्यते । ततो^५
बुद्ध्यादिविशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूप एव मोक्षस्तत्त्वज्ञा-
नादिति स्थितम् ।

अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्-नवानामात्मविशेषगुणानां
सन्तानोत्यन्तमुच्छिद्यते; तत्रात्मनो मित्रानां बुद्ध्यादिविशेषगु-
णानामात्मन्येव समचार्यादिना वृत्त्यसिद्धेः प्रागेवोक्तत्वात् कथ-^{१०}
मात्मविशेषगुणानां सन्तानः सिद्धो यतः हेतोरश्रयासिद्धिर्न
स्यात्? तथा तेषां परेणौखसंविदितत्वेनाभ्युपगमात् । ईशानन्तर-
प्राप्तत्वे चानवस्थादिवोषप्रसक्तेः, अज्ञानस्य च सत्त्वाप्रसिद्धेः पुन-
रप्याश्रयासिद्धत्वम् । आत्मनोऽभिज्ञानां तत्साधने तु तस्याप्यत्य-
न्तोच्छेदप्रसङ्गात् कस्यासौ मोक्षः? कथञ्चिदमेदस्तु नाभ्युपग-^{१५}
म्यते । अभ्युपगमे वा नात्यन्तोच्छेदसिद्धिः इत्यनन्तरं वक्ष्यामः ।

सन्तानत्वं च हेतुः सामान्यरूपम्, विशेषरूपं वा? सामान्य-
रूपं चेत्; परसामान्यरूपम्, अपरसामान्यरूपं वा? प्रथमपक्षे
गगनादिनानैकान्तः, अत्यन्तोच्छेदोभाविष्यत्र हेतोर्वर्तनात् । सत्ता-
सामान्यरूपत्वे च सन्तानत्वस्य 'सत् सत्' इति प्रत्ययहेतुत्वमेव^{२०}
स्यात् न पुनः सन्तानप्रत्ययहेतुत्वम् । अथ विशेषगुणाधिता
र्जोतिः सन्तानत्वम्; तर्हि द्रव्यविशेषे प्रदीपदृष्टान्ते तस्याऽख-
म्भवात्साधनविकलो दृष्टान्तः । न च सन्तानत्वं परमपरं वा
सामान्यं सर्वथा भिन्नं बुद्ध्यादिषु घृत्तिमत्प्रसिद्धम्; तद्वृत्तेः सम-
चायस्य प्रतिषिद्धत्वात् इति स्वरूपासिद्धत्वम् ।^{२५}

अथ विशेषरूपम्; तत्राप्युपादानोपादेयभूतबुद्ध्यादिलक्षणक्ष-
णविशेषरूपम्, पूर्वापरसमानजातीयक्षणप्रवाहमात्ररूपं वा?
प्रथमपक्षे सन्तानत्वस्यासाधारणानैकान्तिकत्वं तथाभूतस्यास्या-

१ नाममात्रम् । २ पराभ्युपगममोक्षनिराकरणे । ३ अथा । ४ प्रदायेयत्वं
तदुपत्तादि । ५ बुद्ध्यादीनाम् । ६ उच्छेद इत्यन्वयः । ७ वैभाविकेय । ८ बुद्धय-
न्तर । ९ आदिनेष्वेतदग्रयः । १० सन्तानस्य । ११ परेण । १२ अक्षिप्रेष
वादे । १३ सत्ताख्यम् । १४ साध्याभावे । १५ किञ्च । १६ द्वितीयविकल्पः ।
१७ सामान्यम् । १८ किञ्च । १९ सन्तानत्वम् । २० सत् । २१ रूपत्वेन
सेवादीवत्त्वम् ।

न्यत्राननुवृत्तेः । अभ्युपगमविरोधश्च; न खलु परेण बुद्ध्यादिक्ष-
णोपादानोऽपरोऽखिलो बुद्ध्यादिक्षणोऽभ्युपगम्यते । अन्यथा
मुक्त्यऽवस्थायामपि पूर्वपूर्वबुद्ध्याद्युपादानक्षणादुत्तरोत्तरोपादे-
यबुद्ध्यादिक्षणोत्पत्तिप्रसङ्गाच्च बुद्ध्यादिसन्तानस्यात्यन्तोच्छेदः
५ स्यात् । द्वितीयपक्षे तु पाकजपरमाणुरूपादिनानेकान्तः; तथा-
विधसन्तानत्वस्यात्र सङ्गावेप्यत्यन्तोच्छेदामावात् ।

विरुद्धश्चायं हेतुः; कार्यकारणभूतक्षणप्रवाहलक्षणसन्तानत्वस्य
प्रकान्तनित्यवदनित्येप्यसम्भवात्, अर्थक्रियाकारित्वस्यानेकान्ते
एव प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् ।

१० शब्दविद्युत्प्रदीपादीनामप्यत्यन्तोच्छेदासम्भवात् साध्यवि-
कलो दृष्टान्तः । न च च्वस्तस्यापि प्रदीपादेः परिणौमान्तरेण स्थित्य-
भ्युपगमे प्रत्यक्षबाधा; वारि स्थिते तेजसि भासुररूपाभ्युपगमेपि
तत्प्रसङ्गात् । अथोष्णस्पर्शस्य भासुररूपाधिकरणतेजोद्रव्याभावे-
ऽसम्भवात् तत्रानुद्भूतस्यास्य परिकल्पनमनुमानतः; तर्हि 'प्रदीपादे-
१५ रम्यनुपादानोत्पत्तेरिव अन्यावस्थातोऽपरापरपरिणामाधारत्वम-
न्तरेण सत्त्वकृतकत्वादिकं न सम्भवति' इत्यनुमानतस्तत्सन्त-
नुच्छेदः किञ्च कल्प्यते ? तथाहि-पूर्वापरस्वभावपरिहारावातिस्ति-
तिलक्षणपरिणामवान् प्रदीपादिः सत्त्वात् कृतकत्वाद्वा घटादिवत् ।

सत्प्रतिपक्षश्च; तथाहि-बुद्ध्यादिसन्तानो नात्यन्तोच्छेदवान्,
२० अखिलप्रमाणानुपलभ्यमानतथोच्छेदत्वात्, य एवं स न
तत्त्वेनोपेयो यथा पाकजपरमाणुरूपादिसन्तानः, तथा चायम्,
तस्मान्नात्यन्तोच्छेदवानिति । न च प्रस्तुतानुमानत एव सन्ता-
नोच्छेदप्रतीतिः सर्वप्रमाणानुपलभ्यमानतथोच्छेदत्वमसिद्धम्;
सन्तानत्वसाधनस्यासत्प्रतिपक्षत्वासिद्धेः, तत्सिद्धौ हि हेतोर्गम-
२५ कत्वम् । कालात्ययापदिष्टत्वं च; अनेनैवानुमानेन बाधितपक्षनि-
र्देशानन्तरं प्रयुक्तत्वात् ।

यश्च तत्त्वज्ञानस्य विपर्ययज्ञानव्यवच्छेदक्रमेण निःश्रेयसहेतु-
त्वमित्युक्तम्; तदप्युक्तिमात्रम्; ततो विपर्ययज्ञानव्यवच्छेदक्रमेण
धर्माधर्मयोस्तत्कार्यस्य च शरीरादेरभावेपि अनन्तातीन्द्रियासि-
३० छपदार्थविषयसम्यग्ज्ञानसुखादिसन्तानस्याभावासिद्धेः । इन्द्रि-
यजज्ञानादिसन्तानोच्छेदसाधने च सिद्धसाधनम् । इन्द्रियाद्य-

१ दृष्टान्ते प्रदीपे । २ उपादेयः । ३ आदिना गन्धरसादि । ४ कवचिचिला-
निले । ५ तमोरूपेण । ६ उष्णे । ७ जडौ । ८ ईप्सू । ९ सन्तानत्वं हेतुः ।
१० अभ्युपगम्यः । ११ सन्तानत्वादित्यतः ।

याये ज्ञानादिसन्तानसङ्गावशेषज्ञासिद्धिप्रस्तावे प्रतिपादितः ।
कथं चात्तीन्द्रियज्ञानाद्यनभ्युपगमे महेश्वरे तत्सङ्गावः स्यात् ?
नित्यत्वं चेश्वरज्ञानस्येश्वरविराकरणे प्रतिबिम्बम् । शरीराद्यपा-
येष्वस्य ज्ञानाद्यभ्युपगमेऽन्यात्मनोपि सोऽस्तु तत्त्वभावत्वात् । न
च स्वभावापाये तद्वतोऽवस्थानमिति प्रसङ्गात् । ५

यत्तुक्तम्—आरब्धकार्ययोश्चोपभोगात्प्रक्षयः, तदपि न सूक्तम्;
उपभोगात्कर्मणः प्रक्षये तदुपभोगसमये अपरकर्मनिमित्तस्याभि-
लाषपूर्वकमनोवाक्कायव्यापारादेः सम्भवात् अविकलकारणस्य
प्रचुरतरकर्मणो भवतः कथमात्यन्तिकः प्रक्षयः ? सम्यग्ज्ञानस्य
तु मिथ्याज्ञानोच्छेदकमेव बाह्याभ्यन्तरक्रियानिवृत्तिलक्षणचा- १०
रित्रोपद्विहितस्यागामिकर्मानुत्पत्तिसामर्थ्यवत् सञ्चितकर्मक्षयेपि
सामर्थ्यं सम्भाव्यत एव । यथोष्णस्पर्शस्य भाविनीतस्पर्शा-
नुत्पत्तौ सामर्थ्यवत् प्रवृत्ततत्स्पर्शादिष्वंसेपि सामर्थ्यं प्रती-
यते । किन्तु परिणामिजीवाजीवादिबस्तुविषयमेव सम्यग्ज्ञानम्,
न पुनरेकान्तनित्यानित्यात्मादिविषयम्; तस्य विपरीतार्थप्राहक- १५
त्वेन मिथ्यात्वोपपत्तेरित्येवं निवेदयिष्यते । अतो यदुक्तम्—‘यथै-
धांसि’ इत्यादि; तत्सर्वं संवररूपचारित्र्योपद्विहितसम्यग्ज्ञानाद्वे-
शेषकर्मक्षये सामर्थ्याभ्युपगमात्सिद्धसाधनम् ।

यथाभ्यघाति-समाधियलादुत्पन्नतत्त्वज्ञानस्येत्यादि; तदप्यभि-
धानमात्रम्; अभिलाषरूपरागाद्यभावेऽङ्गनाद्युपभोगासम्भवात् । २०
तत्सम्भवे चावश्यंभावी गृह्णितो भवदभिप्रायेण योगिनोपि प्रचु-
रतरघर्माद्यसम्भवो नृपत्यादेरिवातिभोगिनः । वैद्योपदेशादा-
र्तुतोप्यौषधाद्याचरणे नीरुग्भावमिलाषेणैव प्रवर्तते, न पुनर्ज्ञान-
मात्रात् । तन्नाशेषशरीरद्वारावासाशेषभोगस्य कर्मान्तरानुत्पत्तिः ।
किं तर्हि ? परिपूर्णसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यस्य, इत्यलं विवादेनै, २५
जीवन्मुक्तैरेपि त्रितयात्मकादेव हेतोः सिद्धेः । संसारकारणं हि

१ किञ्च । २ तद्विज्ञानम् । ३ पञ्चभूतोदराणाकाराभावे षट्पञ्चानप्रसङ्गात् ।
४ तस्य कर्मफलम् । ५ उत्पन्नमानसम् । ६ सम्यग्ज्ञानान्धिम्याज्ञानाभावः, मिथ्या-
ज्ञानाभावाद्वागवसावः, रागाद्यभावाद्वाह्या (मन्त्रादि) न्यन्तर (चिन्तन) क्रिया-
निवृत्तिरिति । ७ सचित्तम् । ८ अङ्गकल्पउद्भवगादेः । ९ असदीयमपि तत्त्वज्ञानं
सञ्चितकर्मरूपनिबन्धनमागामिकर्मानुत्पत्तिकारणं सादित्युक्ते आह । नित्यादिवस्तुविषय-
ज्ञानस्य सम्यग्ज्ञानता न प्रतीयते किन्तु इत्यादि । १० नित्यात्मादिविषयज्ञानस्य ।
११ अनेकावसिद्धौ । १२ आकाङ्क्षावत्तः । १३ न केवलं योगी । १४ सम्यग्दर्श-
नादिवयमोक्षकारणविप्रविवादेन । १५ न केवलं परमशुक्तः । १६ कारणम् ।

मिथ्यादर्शनादिभ्रयात्मकं न पुनर्मिथ्याज्ञानमात्रात्मकम्, तच्चैक-
सात्सम्यग्ज्ञानमात्रात्कथं व्यावर्तत इत्युक्तं सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे ।

यश्चान्यदुक्तम्-नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं केवलज्ञानोत्पत्तेः प्राक्
कास्यनिषिद्धानुष्ठानपरिहारेण ज्ञानावरणादिदुरितक्षयनिमित्त-
५ त्वेन केवलज्ञानप्राप्तिहेतुः, तदिष्टमेवास्माकम् ।

आनन्दरूपता तु मोक्षस्याभीष्टैव । एकान्तनित्यता तु तस्याः
प्रतिषिध्यते । चिद्रूपतावदानन्दरूपताप्येकान्तनित्याः, इत्यप्य-
शुक्तम्, चिद्रूपताया अप्येकान्तनित्यत्वासिद्धेः, सकलवस्तुसमा-
धानां परिणामिनित्यत्वेनाग्रे समर्थयिष्यमाणत्वात् ।

१० अथानित्यत्वे तस्याः तत्संवेदनस्य चोत्पत्तिकारणं वक्तव्यम्;
ननूक्तमेव प्रतिबन्धापायलक्षणं तत्कारणं सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे ।
आत्मेव हि प्रतिबन्धकापायोपेतो मोक्षावस्थायां तथामृतज्ञान-
सुखादिकारणम्, घटाद्यावरणापायोपेतप्रदीपक्षणवत् स्वपर-
प्रकाशकापैरप्रदीपक्षणोत्पत्तौ, तदुत्पादन[स्व]भावस्यान्यौपेक्षा-

१५ योगात् । रथि यदुत्पादनस्वभावं न तत्तदुत्पादनेऽन्यौपेक्षम्
यथान्या कारणसामग्री स्वकार्योत्पादने, तदुत्पादनस्वभावश्चाती-
न्द्रियज्ञानसुखाद्युत्पत्तौ प्रतिबन्धकापायोपेत आत्मेति । संसारा-
वस्थायामन्युपलभ्यते-वीसीचन्दनकर्लपानां सर्वत्र समवृत्तीनां
विशिष्टध्यानादिव्यवस्थितानां सेन्द्रियशरीरव्यापाराऽजन्यः पर-

२० माच्छादरूपोऽनुभवः । अस्यैव भावनावशादुत्तरोत्तरावस्थामासा-
व्यतः परमकाष्ठा गतिः संभाव्यत एव ।

आनन्दरूपतामिव्यक्तिश्चानाद्यऽविद्याविलयात्, इत्यभीष्टमेव,
अष्टप्रकारपारमार्थिककर्मप्रवाहरूपाऽनाद्यविद्याविलयाद् अनन्त-
सुखसंज्ञानादिस्वरूपप्रतिपेत्तिलक्षणमोक्षावाप्तेरभीष्टत्वात् ।

२५ विशुद्धज्ञानसन्तानोत्पत्तिलक्षणेऽप्यसौ मोक्षोऽभ्युपगम्यते ।
स तु चित्सन्तानः सौन्वयो युक्तः । बद्धो हि मुच्यते नाबद्धः ।

१ चतुर्वर्गपरिच्छेदे । २ अतीन्द्रिय । ३ एव । ४ घटस्यप्रदीपवत् । ५ उत्तर ।
६ आत्मनः । ७ इन्द्रियवनितादेः । ८ प्रतिबन्धकापायोपेत आत्मा यवी अतीन्द्रिय-
ज्ञानसुखानुत्पत्तौ अन्यं नापेक्षते इति साध्यं, तदुत्पादनस्वभावत्वादिति शेषः ।
९ अन्यतन्मुसंयोगः । १० पटलक्षणस्य । ११ स प्रसिद्ध उरपादनसमाधौ वस-
त्सनः । १२ इतिब्रुत्वे हेतोर्भूतमिते परिहारमाह । १३ कुठारः । १४ पुत्पानाद्यः ।
१५ अशुभित्रयोः । १६ आदिना दानम् । १७ जेदः । १८ निमीयते ।
१९ प्राप्ति । २० बीदविशेषैरभ्युपगतः । २१ ज्ञानस्य । २२ सद्रव्यः ।

न च निरन्वये चित्तसन्ताने बद्धस्य मुक्तिः । तत्र हेन्यो बद्धोऽन्यैश्च मुच्यते ।

सन्तानैक्याद्वद्बद्धस्यैव मुक्तिरपीति चेत्, ननु यदि सन्तानार्थः परमार्थसन्, तदात्मैव सन्तानशब्देनोक्तः स्यात् । अथ संवृत्तिसन्, तदैकस्य परमार्थसतोऽसत्त्वात् 'अन्यो बद्धोऽन्यश्च ५ मुच्यते' इति मुच्यर्थे प्रवृत्तिर्न स्यात् । अथात्यन्तनानात्वेऽपि दृढतरैकत्वाध्यवसायाद् 'बद्धमात्मानं मोचयिष्यामि' इत्यभिसन्धानवतः प्रवृत्तेर्नायं दोषः, न तर्हि नैरात्म्यदर्शनम्, इति कुतस्तन्निबन्धना मुक्तिः ? अथास्ति तद्दर्शनं शास्त्रसंस्कारजम्, न तर्ह्येकत्वाध्यवसायोऽस्त्वलद्रूप इति कुतो बद्धस्य मुच्यर्थे प्रवृत्तिः १० स्यात् ? तेषां च—

“मिथ्याप्यारोपहानार्थं यैर्ज्ञोऽसत्यपि भोक्ति” [प्रमाणवा० २।११२] इति ह्यवते । तस्मात्साम्येन चित्तसन्ततिरभ्युपगन्तव्या, सकलविज्ञानक्षणत्वेऽपि जीवाभावे बन्धमोक्षयोस्तदर्थे वा प्रवृत्तेरनुपपत्तेः । न चान्योन्यविलक्षणाऽपरापरचित्तक्ष- १५ णानामनुयायिजीवार्भावो विरोधात्, इत्यभिधीतव्यम्, स्वसंवेदनप्रत्यक्षेण ब्रह्मजुष्टाधिकप्रतया तस्य प्रतीतेः । प्रतीयमानस्य च कथं विरोधो नाम अनुपलम्भसाध्यत्वास्य ?

तद्व्यापारो वासति आत्मनि प्रत्यभिज्ञानप्रत्ययस्य प्रादुर्भावो न स्यात् । अथात्मन्यप्यारोपितैकत्वविषयत्वादस्य प्रादुर्भावः, न; २० अस्यारोपितैकत्वविषयत्वे स्यात्मानुमानात्क्षणिकैकत्वं निश्चिन्वतो निवृत्तिप्रसङ्गात्, निश्चयैरारोपमनसोर्विरोधात् । निर्वर्तत एवेति

१ पूर्वक्षणः । २ उत्तरक्षणः । ३ अपिशब्दादन्वोपि । ४ बौद्धानां नवे पूर्वोत्तरक्षणानामेक आधारमूलः सन्तानः स अपरमार्थः सन्नेकबलः पूर्वक्षणः उत्तरक्षणः सन्तानी स तु परमार्थसन् । ५ कल्पनासन् । ६ आत्मनः । ७ क्षणानाम् । ८ अभिप्रायवतः । ९ निर्विकल्पकस्य । १० भावना । ११ बद्धस्य मुच्यर्थे प्रवृत्त्यभावे च । १२ नैरात्म्यभावेनालक्षणः । १३ विनश्यति । १४ अन्यभावेन ह्यन्यो मोक्षो वा न धत्ते यतः । १५ सद्रव्या । १६ अन्यथा । १७ परेण । १८ पूर्वक्षणे अहमेव दुःखी उत्तरक्षणेऽहमेव दुःखीति । १९ त्वसिन् । २० न केनचिदर्थः । २१ संवृत्ता । २२ वेदिति शेषः । २३ स्वरूपे । २४ यत्सत्त्वगुणिकमित्यादि । २५ आरोपितैकत्वविषयस्य प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययस्य । २६ अनुमानेन । २७ सोऽहं प्रत्यभिज्ञानरूपो निर्वक्तव्यः । २८ मनः—ज्ञानम् । २९ यकत्र । ३० अनुमानमनित्यत्वसाधने यक-भिन्वच्छति प्रवृत्तं प्रत्यभिज्ञानं त्वैकत्वसाधने इति विरोधः । ३१ क्षणिकत्वनिश्चय-समये यकत्वविषयं प्रत्यभिज्ञानम् ।

चेत्; तर्हि संहजस्याभिसंस्कारिकस्य च सत्त्वदर्शनस्याभावाच्चतदैव
तन्मूलरागादिनिवृत्तेर्मुक्तिः स्यात् । भ्रान्तत्वे चास्य प्रत्यक्षस्याशेष-
स्यापि भ्रान्तत्वप्रसङ्गः, बाह्याध्यात्मिकभावेष्वेकत्वग्राहकत्वेनैवा-
शेषप्रत्यक्षाणां प्रवृत्तिप्रतीतिः । तथा च प्रत्यक्षस्याभ्रान्तत्वविशे-
५ षैवमसम्भाव्यमेव स्यात् । समर्थयिष्यते च प्रत्यभिज्ञानप्रत्यय-
स्यानारोपितार्थग्राहकत्वमभ्रान्तत्वं च । तन्नैकत्वाभावः । अनु-
भूयमानस्यापि चैकत्वस्यानेकत्वेन विरोधे ग्राह्यग्राहकसंनिधि-
लक्षणविरुद्धरूपत्रयाध्यासितज्ञानस्य, अर्थसैलक्षणस्य चैकदा
स्वपरकार्यकर्तृत्वाकर्तृत्वलक्षणविरुद्धधर्मद्वयाध्यासितस्य एकत्व-
१० विरोधः स्यात् ।

यच्चान्यत्-रागादिमतो विज्ञानाच्च तद्रहितस्यास्योत्पत्तिरित्याद्यु-
क्तम् । तदप्यसाम्प्रतम् । रागादिरहितस्याखिलपदार्थविषयविज्ञा-
नस्याशेषज्ञसाधनप्रस्तावे प्रतिपादितत्वात् । न च बोधाद्बोध-
रूपतेति प्रमाणमस्ति; इत्यप्ययुक्तम्; निरक्षणैकारणाद्विलक्षण-
१५ कार्यस्योत्पत्त्यभ्युपगमे अचेतनाच्छरीरादेश्चेतन्योत्पत्तिप्रसङ्गाच्च-
र्वाकमतानुपपन्नः । प्रसौचित्यश्च परलोकी प्रागित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

यच्चान्यथायि-सुषुप्तावस्थायां विज्ञानसङ्गावे जाग्रदवस्थातो
न विशेषः स्यात्; तदप्यभिधानमात्रम्; यतस्तदा विज्ञानसैक्येऽपि
अतिनिद्रयाभिभूतत्वाच्च जाग्रदवस्थातोऽविशेषः, मत्तमूर्च्छिता-
२० ष्ववस्थायां मदिराद्युत्पादितमर्देर्वैर्नाथैर्भिभूतविज्ञानवत् ।

ननु कोऽयं सिद्धेनाभिभवः? ज्ञानस्य नाशश्चेत्; कथं तस्य सत्त्वम्?
तिरोभावश्चेत्; न; स्वपरप्रकाशरूपज्ञानाभ्युपगमे तस्याप्यसम्भ-
वात्; इत्यप्यचर्चिताभिधानम्; मणिमन्त्रादिनाऽद्यादिप्रतिबन्धे
शरावादिना प्रदीपादिप्रतिबन्धे च समानत्वात् । न हि तत्राप्यङ्ग्या-
२५ देर्नाशः प्रतिबन्धः; प्रत्यक्षविरोधात् । नापि तिरोभावः; स्वपरप्र-
काशसम्भावस्य स्फोटादिकार्यजननसमर्थस्य तिरोभावस्याप्यस-

१ आत्मजनसम्बन्धिनः । २ पण्डितजनसम्बन्धिनः । ३ जीव । ४ प्रलभि-
ज्ञानस्य । ५ क्षणिकत्वनिश्चयसमये एव । ६ सौगतस्य । ७ प्रसङ्गं कल्पनापोदम-
भ्रान्तमित्यत्र सूत्रे । ८ किञ्च । ९ सुखदुःखानालक्षणोपलम्भेन । १० नील-
स्वलक्षणस्य । ११ उत्तरीनीलदिक्षणस्य । १२ अर्थान्तरपीतादेः । १३ अचेतनादा-
श्मनः । १४ ज्ञानलक्षणस्य । १५ दूरस्थितेन भावाकेणोक्तमसदीयमतयेवास्तु ।
तत्राह । १६ सुषुप्तावस्था ज्ञानवती आत्मनः अवस्थात्वान्मत्तमूर्च्छितावस्थावत् ।
१७ मत्तता । १८ पीता । १९ विषयपीता । २० सुषुप्तावस्थायाम् । २१ मणि-
मन्त्रशरावादिना अभिप्रदीपप्रतिबन्धे :

म्भवात् । प्रतीत्यनतिक्रमेणात्र स्वरूपसामर्थ्यप्रतिबन्धाभ्युपगमो-
ऽन्यत्रापि समानः । मिद्धादिसामग्रीविशेषवशाद्धि वाह्याध्या-
त्मिकार्थविचारविधुरं गच्छन्तृणस्पर्शज्ञानसमानं सुपुस्तावस्थायी
ज्ञानमास्ते ।

न हि स्वपरप्रकाशस्वभावत्वमात्रेणैवास्तं तन्निरूपणं ताम-
र्थ्यम्; सर्वज्ञानभिभूतस्यैवार्थस्य स्वकार्यकारित्वप्रतीतिः, अन्यथा
वह्नादिस्वभावस्याग्नेः सदा दाहकत्वप्रकाशकत्वप्रसङ्गः, गच्छ-
न्तृणस्पर्शसंवेदनस्य वा तदर्थनिरूपकत्वानुपङ्गः । अथात्र मनो-
ध्यातृसंज्ञोऽस्मरणकारणम्, अन्यत्र मिद्धादिकमित्यविशेषः । अस्ति
चात्र स्वापलक्षणार्थनिरूपणम्-‘एतावत्कालं निरन्तरसुप्तोहमेता-
वत्कालं सान्तरंम्’ इत्यनुस्मरणप्रतीतिः । न च स्वापलक्षणार्थान-
नुमवेपि सुप्तोत्थानानन्तरं ‘गाढोहं तदा सुप्तः’ इत्यनुस्मरणं
घटते, तस्यानुभूतवस्तुविषयत्वेनानुभवविनाभावित्वात्, अन्यथा
घटाद्यर्थाननुमवेपि तत्रानुस्मरणसम्भवात्कुतस्तदनुभवोपि
सिद्ध्येत् ? न च मत्तमूर्च्छिताद्यवस्थायामपि विज्ञानाभावाद् इष्टा-
न्तस्य साध्यविकलता; इत्याशङ्कनीयम्; तदवस्थातः प्रच्युतस्योत्त-
रकालं ‘मया न किञ्चिदप्यनुभूतम्’ इत्यनुभवाभावप्रसङ्गात्,
स्मृतेरनुभवपूर्वकत्वात् । अतो येनानुभवेन सतात्मा निखिला-
नुभवविकलोऽनुभूयते तस्यामवस्थायां सोऽवस्थाभ्युपगन्तव्यः ।

किञ्च, सुप्ताद्यवस्थायां विज्ञानाभावं स एवात्मा प्रतिपद्यते, २०
पार्थस्यैवा ? स एव चेत्, तत एव ज्ञानात्, तदभावाद्वा, ज्ञानान्त-
राद्वा ? न तावत्तत एव; अस्यासत्त्वात्, ‘तदेव नास्ति तत्र, तत एव
चाभावगतिः’ इत्यन्योन्यं विरोधात् । ज्ञानाभावात्तत्र तदभावपरि-
च्छिन्तिः, इत्ययुक्तम्; परिच्छेदस्य ज्ञानधर्मतयाऽर्भावेऽसम्भ-
वात्, अन्यथा ज्ञानस्यैव ‘अभावः’ इति नामकृतं स्यात् । २५

अथ ज्ञानान्तरात्तत्र तदभावगतिः; किं तत्कालभाविनः, जाग्र-
त्प्रबोधकालभाविनो वा ? प्रथमपक्षे कथं सुपुस्ताद्यवस्थायां सर्वथा
ज्ञानाभावः ? अथ जाग्रत्प्रबोधकालेभाविज्ञानाभ्यामन्तराले ज्ञाना-

- १ ज्ञानस्य स्वपरप्रकाशरूपं तिरोहितमतिरोहितं चैतन्यम् । २ चैतन्यस्य ।
३ देशे । ४ अभिभूतस्य स्वकार्यकारित्वं यदि स्यात् । ५ प्रतिबन्धसमयेपि ।
६ कार्यान्तरे प्रवृत्तिः । ७ अज्ञावधानत्वं वा । ८ किञ्च । ९ सुप्तोहमिति शेषः ।
१० प्रसङ्गेन । ११ अनुभवविनाभावित्वं स्मरणस्य यदि न स्यात् । १२ स्मृतिः ।
१३ अन्यः । १४ सुपुस्तावस्थायां यस्य ज्ञानसाभावस्तस्यादेव ज्ञानात् । १५ ज्ञानस्य ।
१६ ज्ञानाभावे परिच्छेदो यदि स्यात् । १७ ज्ञानमन्तरेण परिच्छेदानुपपत्तिर्यतः ।
१८ सन्न्यासकालमातःकालः, तत्र भावि ।

भावोऽवसीयते; मनु तद्दशाभाविज्ञानयोः सुषुप्ताद्यवस्थाभाविज्ञानं नोपलब्धिलक्षणप्राप्तम्, तत्कथं ताभ्यां तदभावोऽवसीयेत? अन्यथाऽदृष्टस्यापि परलोकादेरभावोऽध्यक्षत एव स्यात् । तथा च “प्रमाणेतरसामान्यस्थितेः” [] इत्याद्येऽसङ्गतम् ।

- ५ नापि पार्श्वस्थोन्यस्तत्र तदभावं प्रतिपद्यते; कारणस्वभावव्यापकानुपलब्धेर्विरुद्धविधेर्वा तदभावाविनाभाविनो लिङ्गस्यात्रानुपलब्धेः । न तत्र विज्ञानसङ्गाधेयि लिङ्गाभावः समान इत्यभिधातव्यम्; स्वात्मनि स्वसंविदितज्ञानाविनाभावित्वेनाऽवधारितस्य प्राणापानशरीरोष्णताकारविशेषादेस्तत्सङ्गाधावेदिनो लिङ्गस्याऽप्युपलब्धेः, जाग्रदशायामप्यन्यचेतोवृत्तेस्तद्व्यतिरेकेणान्यतोऽप्रतीतेः ।

- ननु द्विविधोऽत्र प्राणादिः चैतन्यप्रभवो जाग्रदशायाम्, प्राणादिप्रभवश्च सुषुप्ताद्यवस्थायामिति । तत्र चैतन्यप्रभवप्राणादेर्जाग्रदशायाम् चैतन्यानुमानं युक्तम्, न पुनः प्राणादिर्माणादेः । न खलु गोपालघटादौ धूमप्रभवधूमादप्यनुमानं दृष्टम्, अग्निप्रभवधूमादेव तद्दर्शनात्, इत्यप्यसङ्गतम्; सुषुप्तेतरावस्थयोः प्राणादेर्विशेषाऽप्रतीतेः । यथैव हि सुषुप्तः प्राणिति तथैतरोपि, अन्यथा ‘किमयं सुषुप्तः किं वा जागर्ति’ इति सन्देहो न स्यात् । यदि चैते सुषुप्तस्य चैतन्यप्रभवा न स्युः किन्तु प्राणादिप्रभवाः, तर्हि जाग्रतः परवञ्चनाभिप्रायेण सुषुप्तव्याजेनावस्थितस्य तादृशमेव तेषां भावो न स्यात् । न ह्यग्नेर्जायमानो धूमः प्रयत्नशतैरपि धूमादन्यतो वा जायते धूमप्रभवो वेगैरेति । दृश्यन्ते च ते यादृशा एव सुषुप्तस्य तादृशा एवास्यापि । तन्नैते भिन्नकारणप्रभवाः । चैतन्येतेऽप्रभवांश्च प्राणादीन् विवेचयन्वीतः ३० रागेतरप्रभवव्यापारादीनपि विवेचयतु । तथा च

“सरागा अपि वीतरागवच्छेदन्ते वीतरागाश्च सरागवदिति वीतरागेतरविभागो निश्चेतुमशक्यः ।” [] इति प्लवते ।

१ तादिः । २ यथा घट उपलब्धिलक्षणप्राप्तो भवति तदा पश्चादन्यत्र घटाभावोऽवसीयते । ३ अनुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य प्रलक्षावस्थावः स्वाधदि । ४ प्रतिषेधाच्च कस्यचिदिति पर्यन्तरम् । ५ अन्यपुरुषैः । ६ आत्मावस्थानाम् । ७ उभयोर्मध्ये । ८ प्रभव । ९ पुरुषः । १० आलोच्छासं गृह्णाति । ११ जीवति । १२ जाग्रत । १३ उभयोः आसे विशेषश्चेत् । १४ अतः सादृश्ये एव सन्देहः । अत्रि च सन्देहः । १५ किञ्च । १६ सुषुप्तस्य यादृशः प्राणः । १७ वयदेः । १८ धूमः । १९ न जायते । २० प्राण ।

धूमश्चाग्नेर्धूमाश्चोत्पद्यमानो यथा प्रतिपन्नस्तथा प्राणादिश्चैत-
न्यात्तदभावाच्चोत्पद्यमानः स्वात्मनि परत्र चानेन प्रत्येतुं न
शक्यते क्वचित्तदभावस्य निश्चेतुमशक्यत्वादित्युक्तम् । धूमे च
'किमयं धूमोऽग्नेः, धूमान्तराद्वा' इति सन्देहः प्रवृत्तस्याग्निद-
र्शनेतराभ्यां निवर्त्तते । प्राणादौ तु 'किमयमनन्तरचैतन्य-
प्रभवः, किं वा भूतमाविजन्मान्तरचैतन्यप्रभवः' इति सन्देहः
कुतो निवर्त्तते परचैतन्यस्य द्रष्टुमशक्यत्वात्? ततोऽयं न
निश्चिह्नं परप्रतिपादनार्थं शास्त्रप्रणयनं युक्तम् । सन्देहास्तु
तत्प्रणयनं धार्वाकस्याप्यविरुद्धम्, इत्ययुक्तमुक्तम्—“अन्यधियो
गतेः” [] इति । १०

सुषुप्तादौ चाद्यः प्राणादिः कुतो जायताम्? जाग्रद्विज्ञानसह-
कारिणो जाग्रत्प्राणादेरिति चेत्; न; एकस्माज्जाग्रद्विज्ञानादनन्त-
रभावीप्राणादिः कालान्तरभावि च प्रबोधज्ञानमित्यस्यासम्भा-
व्यमानत्वात् । न ह्येकस्मात्सामग्रीविशेषात् क्रमभावि कार्यद्वय-
सम्भवो नाम, अन्यथा नित्यादप्यक्रममात्मवत्कार्योत्पत्तिप्रसङ्गः । १५
तथाच “नाऽक्रममात्मनिषो भावाः” [प्रमाणवा० १।४५] इत्यस्य
विरोधः । तस्मात्तत्कालभाविन एव ज्ञानात् प्राणादिप्रभवोऽभ्यु-
पगन्तव्यः । तत्कर्तृ तत्र ज्ञानाभावसिद्धिः ?

स्वापसुखसंवेदनं चात्रै सुप्रतीतम्—‘सुखमहमस्वापम्’ इत्युत्तर-
कालं तत्प्रतीत्यन्यथानुपपत्तेः । न ह्यननुभूते वस्तुनि स्मरणं प्रत्यभि- २०
ज्ञानं चोपपद्यते । न च तदा स्वापसुखनिरूपणाभावात्तत्संवेदना-
भावः; तदहर्जातवालकस्य सुखप्रक्षिप्तस्तेन्यजनितसुखसंवेदनेन
व्यभिचारात् । न खलु तत्तेन ‘इदमित्थम्’ इति निरूप्यते ।

न च दुःखाभावात्सुखशब्दप्रयोगोऽत्र गौणः; अर्मावस्य प्रति- २५
योगिभावान्तरस्वभावतया व्यवस्थितेः इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

यद्युक्तम्—अनेकान्तज्ञानस्य बाधकसद्भावेन मिथ्यात्वोपप-
त्तेर्न निःश्रेयससाधकत्वम्; तदप्युक्तिमात्रम्; तज्ज्ञानस्यैवावाधित-

१ सोपवेन । २ इतरदम्बदर्शनम् । ३ जाग्रदज्ञानम् । ४ तथागतस्य ।
५ किञ्च । ६ मतस्य । ७ एकस्मात्कार्यद्वयसम्भवश्चेत् । ८ एकरूपात् । ९ स्वाप-
दशा । १० सुषुप्तावस्थायाम् । ११ किञ्च । १२ सुषुप्तावस्थायाम् । १३ सुख-
संवेदनं विना । १४ सुषुप्तावस्थायाम् । १५ दुःखम् । १६ दुःखाभावे सुखशब्दो
न पारमार्थिकसुखस्य वाचक इति हेतोः । १७ सुखपदस्य स्वापमित्यस्मिन्वाक्ये ।
१८ औपचारिकः । १९ दुःखस्य । २० दुःखलक्षणाद्भावादपरं सुखलक्षणं भावा-
न्तरम् । २१ स्वापावस्थया ज्ञानसद्भावसाधनविरुद्धेण ।

तथा सम्यक्त्वेन वक्ष्यमाणत्वात् । नित्यानित्यत्वयोर्विधिप्रतिषेध-
रूपत्वादभिन्ने धर्मिण्यभावः; इत्याद्यप्ययुक्तम्; प्रतीयमाने वस्तुनि
विरोधासिद्धेः । न च येन रूपेण नित्यत्वविधिस्तेनैवानित्यत्व-
विधिः, येनैकत्र विरोधः स्यात्; अनुवृत्त-व्यावृत्ताकारतया नित्या-
५ नित्यत्वविधेरभ्युपगमात् । विभिन्नधर्मनिमित्तयोश्च विधिप्रति-
षेधयोनैकत्र प्रतिषेधः अतिप्रसङ्गात् । न चानुवृत्तव्यावृत्ताका-
रयोः सामान्यविशेषरूपतयाऽऽत्यन्तिको भेदः; पूर्वोत्तरकालमा-
विश्वपर्यायतादात्म्येनावस्थितस्यानुगताकारस्य बाह्याध्यात्मिका-
र्थेषु प्रत्यक्षप्रतीतौ प्रतिभासनादित्यग्रे प्रपञ्चयिष्यते ।

१० स्वदेशादिषु सत्त्वं परदेशादिष्वसत्त्वं च वस्तुनोऽभ्युपगम्यते
एवेतरेतराभावात्; इत्याप्यसमीक्षिताभिधानम्; इतरेतराभावं
घटादभेदे तद्विनाशे पटोत्पत्तिप्रसङ्गात् पटाभावस्य विनष्टत्वात् ।
अथ घटाद्विघ्नोऽसौ; तर्हि घटादीनामन्योन्यं भेदो न स्यात् ।
यथैव हि घटस्य घटाभावाद्भिन्नत्वाद् घटरूपता तथा पेटादेरपि
१५ स्यात् । नाप्येषां परस्परभिन्नानामभावेन भेदः कर्तुं शक्यः;
भिन्नाभिन्नभेदकैरणे तस्याकिञ्चित्करत्वप्रसङ्गात् । नापि भेद-
व्यवहारः; स्वहेतुभ्योऽसाधारणतयोत्पन्नानां सकलभावानां प्रत्यक्षे
प्रतिभासनादेव भेदव्यवहारस्यापि प्रसिद्धेः । प्रतिक्षिप्त्येतरेतरा-
भावः प्रागेवेति कृतं प्रयासेन ।

२० कार्यान्तरेषु चाऽकर्तृत्वं न प्रतिषिध्यते; इत्याद्यप्यसारम्;
एकान्तपक्षे कार्यकारित्वस्यैवासम्भवात् ।

यच्च मुक्तावप्यनेकान्तो न व्यावर्त्तते; तदिष्यते एव । अने-
कान्तो हि द्वेधा-क्रमानेकान्तः, अक्रमानेकान्तश्च । तत्र क्रमाने-
कान्तापेक्षया य एव प्रागमुक्तः स एवेदानीं मुक्तः संसारी
२५ चेत्यविरोधः । अनेकान्तेऽनेकान्ताभ्युपगमोप्यदूषणमेव; प्रमाण-

१ अनेकान्तसिद्धौ । २ एकस्मिन् । ३ नित्यानित्यात्मकतया । ४ वसः ।
५ अन्यथा । ६ कर्तृत्वाकर्तृत्वधर्मयोरैकत्र धर्मिणि प्रतिषेधप्रसङ्गात् । ७ अनेकान्त-
सिद्धौ । ८ घटे पटाभावः पटे घटाभाव इतीतरेतराभावः । ९ कपाळेऽपि । १० घटे ।
११ घटाभावाद्भिन्नरूपत्वाद् घटरूपता । १२ वसः । १३ णभिन्नभेदकरणे पदार्थ
एव कृतो भवेत् । भिन्नभेदकरणे पदार्थसाक्ष्यम् । १४ अभावकृतः । १५ इतरेतरा-
भावसिराकरणप्रयासेनालम् । १६ अनेकान्त एवेति बोधावेकान्तः (सर्वथा) सोऽने-
कान्ते प्रतिषिध्यते । केन ? द्वितीयानेकान्तपदेन । कथम् ? न विद्यते अनेकान्त
एवेति एकान्तो यस्यानेकान्तस्य तस्याभ्युपगमः । १७ अनवसादिकम् ।

परिच्छेद्यस्यानेकधर्माध्यासितवस्तुस्वरूपानेकान्तस्य नयपरिच्छेद्यै-
कान्ताविनाभावित्वात् ।

‘आत्मैकत्वज्ञानात्’ इत्यादिग्रन्थस्तु सिद्धसाध्यतया न समा-
धानमर्हति ।

न च गुणपुरुषान्तरविवेकदर्शनं निःश्रेयससाधनं घटते; प्रकर्ष-^५
पर्यन्तावस्थायामप्यात्मनि शरीरेण सहावस्थानान्मिध्याज्ञानवत् ।

अथ फलोपभोगकृतोपात्तकर्मक्षयापेक्षं तत्त्वज्ञानं परनिःश्रेय-
सस्य साधनम्, त्वनपेक्षं चाऽपरनिःश्रेयसस्येत्युच्यते; तदप्युक्ति-
मात्रम्; फलोपभोगस्यौपक्रमिकानौपक्रमिकविकल्पानतिक्रमात् ।
तस्यौपक्रमिकत्वे कुतस्तदुपक्रमोऽन्यत्र तपोतिशयात्, इति १०
तत्त्वज्ञानं तपोतिशयसहायमन्तर्भूततत्त्वार्थश्रद्धानं परनिःश्रेयस-
कारणमित्यनिच्छतोप्यायातम् । तस्यानौपक्रमिकत्वे तु सदा
सङ्गावानुषङ्गः ।

यच्च स्वरूपे चैतन्यमात्रेऽवस्थानं मोक्ष इत्युक्तम्; तदयुक्तम्;
चैतन्यविशेषेऽनन्तज्ञानादिस्वरूपेऽवस्थानस्य मोक्षत्वसाधनात् । १५
न ह्यनन्तज्ञानादिकमात्मनोऽस्वरूपं सर्वज्ञत्वादिविरोधात् । प्रधा-
नस्य सर्वज्ञत्वादित्स्वरूपं नात्मन इत्यसत्; तस्याचेतनत्वेनाकाशा-
दिवत्तद्विरोधात् । ज्ञानादेरप्यचेतनत्वात् प्रधानस्वभ(मा)वत्त्वा-
विरोधश्चेत् । कुतस्तदचेतनत्वसिद्धिः ? ‘अचेतना ज्ञानादय उत्प-
त्तिमत्त्वाद् घटादिवत्’ इत्यनुमानश्चेत्; न; हेतोरनुभवेनानेका- २०
न्तात्, तस्य चेतनत्वेऽप्युत्पत्तिमत्त्वात् । न चोत्पत्तिमत्त्वमसिद्धम्;
परापेक्षत्वाद्ब्रह्मादिवत् । परापेक्षोसौ बुद्ध्यध्यवर्त्तयापेक्षत्वात्
“बुद्ध्यध्यवर्त्तितमर्थं पुरुषश्चेतयते” [] इत्यभिधानात् ।

कालात्ययापदिष्टश्चायं हेतुः; ज्ञानादीनां स्वसंवेदनप्रत्यक्षाच्चेतन-
त्वप्रसिद्धेरप्यक्षबाधितपक्षानन्तरं प्रयुक्तत्वात् । चेतनसंसर्गात्सेषां २५
चेतनत्वप्रसिद्धिः; इत्यप्यचर्चिताभिधानम् । शरीरादेरपि तत्प्रसि-
द्धिप्रसङ्गात् चेतनप्र(त्व)संसर्गाविशेषात् । शरीराद्यसम्भवी तेषां

१ यतः । कथम् ? स चाप्ताननेकान्तश्च तस्य । २ प्रकृतिसत्त्वादिगुणयोरनेदाहुण
इत्युक्ते प्रकृतेर्गोष्ठा । ३ पुरुषविशेष । ४ जेदभावनाज्ञानम् । ५ विवेकदर्शनस्य ।
६ असम्भवे तु सन्त्यदर्शनादिकं परमप्रकर्षप्राप्तं शरीरेण सहावस्थानं न भवति
अयोगिचरमसमये एव शरीराभावलक्षणे तत्सङ्गात्वात् । ७ यौग्यमुक्तिः । ८ सक्र-
मनिर्जरा अकामनिर्जरा चेति । ९ जेद । १० वर्जने । ११ यौग्यम् । १२ फलोप-
भोगश्चेति कृत्वा । १३ सदा युक्तिप्रसङ्गः । १४ दर्शनेन । १५ अनुभवस्य ।
१६ अर्थप्रतिनिम्बन । १७ निश्चितम् । १८ आत्मा । १९ अनुभवति ।

संसर्गविशेषोस्तीति चेत्, स कोन्योऽन्यत्र कथञ्चित्तादात्म्यात् ? तददृष्टकृतकत्वैदेः शरीरादावपि भावात् । ततो नचेतना ज्ञान-
दयः स्वसंवेद्यत्वादनुभववत् । स्वसंवेद्यास्ते परसंवेदनान्यैथानुप-
पत्तरिति स्वसंवेदनसिद्धिप्रस्तावे प्रतिपादितम् । तथा चात्म-
५ स्वभावास्ते चेतनत्वादनुभववत् । सुखमप्यात्मस्वभाव एव मोक्षेऽ-
भिव्यज्यमानत्वाद् ज्ञानवत् । अनात्मस्वभावत्वे तत्र तदभिव्यक्तिर्न
स्याद्दुःखवत् ।

तथा सुखात्मको मोक्षश्चेतनार्तमकत्वे सत्यखिलदुःखविवेकात्म-
कत्वात् संहृतसकलविकल्पभ्यानावस्थावत् । तथानन्तं तत्
१० आत्मस्वभावत्वे सत्यपेक्षप्रतिबन्धत्वात् ज्ञानवदेव । अपेतप्रति-
बन्धत्वं तु मोहनीयादेः प्रतिबन्धकस्य कर्मणोऽपायात्मसिद्धमेव ।
इति सिद्धमनन्तज्ञानादिचैतन्यविशेषेऽवस्थानं पुंसो मोक्ष इति ।

नैतु पुंस एवानन्तज्ञानादिस्वरूपलामलक्षणो मोक्ष इत्ययुक्तम् ;
स्त्रीणामप्यस्योपपत्तेः । तथाहि-अस्ति स्त्रीणां मोक्षोऽविकलकारण-
१५ त्वात् पुरुषवत्, तदसत्, हेतोरसिद्धेः, तथाहि-मोक्षहेतुर्ज्ञानादि-
परमप्रकर्षः स्त्रीषु नास्ति परमप्रकर्षत्वात् सप्तमपृथ्वीगमनकार-
णापुण्यपरमप्रकर्षवत् । यदि नाम तत्र तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षो-
भावो मोक्षहेतोः परमप्रकर्षाभावे किमायातम् ? कार्यकारणव्या-
प्यव्यापकभावाभावे हि तैर्योः कथमन्यस्याभावेऽन्यस्याभावाऽतिप्र-
२० संज्ञात् इति चेत्, सत्यम् ; अयं हि तावन्निर्धर्मोस्ति-यद्वेदस्य मोक्ष-
हेतुपरमप्रकर्षस्तद्वेदस्य तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षोऽप्यस्त्येव, यथा
पुंवेदस्य । न च चरमशरीरेणैव व्यभिचारः, पुंवेदसामान्यापेक्षयोक्तेः ।

१ विना । २ पुरुषादृष्टकृतः अन्यः संसर्गविशेषो ज्ञानादिभिरात्मनोऽस्तीत्युक्ते
जाह । ३ संसर्गस्य । ४ षटादिः परः । ५ ज्ञानस्य स्वसंवेदितत्वाभावे । ६ चेत-
नत्वसिद्धितया । ७ सुखस्य । ८ अखिलदुःखविवेकात्मकत्वादित्युक्ते षटेन व्यभिचार-
स्वत्परिहाराय चेतनात्मकत्वे सतीत्युक्तम् । ९ चेतनात्मकत्वादित्युच्यमाने खण्ड्य-
माननरेण व्यभिचारस्वत्परिहारायैव खिलदुःखविवेकात्मकत्वादित्युक्तम् । १० आत्म-
स्वभावत्वादित्युच्यमाने दुःखेन व्यभिचारस्वत्परिहारायैवपेतप्रतिबन्धत्वादित्युक्तम् ।
११ अपेतप्रतिबन्धत्वादित्युच्यमाने प्रदीपेन व्यभिचारस्वत्परिहारायैवात्मसम्भावत्वे
सतीत्युक्तम् । १२ लक्षणम् । १३ येषपटः । १४ मोक्षहेतुज्ञानादिपरमप्रकर्षतत्का-
रणापुण्यपरमप्रकर्षयोः । १५ अकारणस्वान्यापकस्य वा । १६ अकार्यस्याप्यापकस्य
वा । १७ षट्मात्रे त्रैलोक्याभावो भवेत् । १८ अनिनाभावः । १९ पुंति सप्तम-
पृथ्वीगमनकारणापुण्यप्रकर्षोस्ति मोक्षहेतुज्ञानादिपरमप्रकर्षत्वात् । २० न्याप्तो हेतुः ।
२१ साध्यो व्यापकः । २२ इति पुंति अनयोर्व्याप्यव्यापकभावः सिद्धः सन् स्त्रीषु
व्यापकभावे व्याप्याभावं साधयत्येवेति श्रवः । २३ आत्मना ।

विपरीतस्तु नियमो न सम्भवत्येव; नपुंसकवेदे तत्कारणापुण्य-
परमप्रकर्षे सत्यन्यस्यानभ्युपगमात् पुंस्यभ्युपगमाच्च, अनित्य-
त्वस्य प्रयत्नान्तरीयकत्वेतरत्ववत् । ततश्च स्त्रीवेदस्यापि यदि
मोक्षहेतुः परमप्रकर्षः स्यात्, तदा तदभ्युपगमादेवापरोप्यनि-
ष्टोऽवश्यमापद्यते, अन्यथा पुंस्यपि न स्यात् । सिद्धे च प्रतिबन्धार्ह-^५
यामावेपि कृतिकोद्यादिचद्रुकप्रकर्षयोरविनाभावे स्त्रीणां तत्का-
रणापुण्यपरमप्रकर्षप्रतिषेधेन मोक्षहेतुपरमप्रकर्षो निविध्यते ।

न च 'नपुंसकस्य मोक्षहेतुपरमप्रकर्षोऽस्ति तत्कारणापुण्य-
परमप्रकर्षसद्भावात् पुंसवत् । पुंसो वा नार्ह्यत एव नपुंसकवत् ।
तत्कारणाऽपुण्यपरमप्रकर्षो वा नपुंसके - नास्ति परमप्रकर्ष-^{१०}
त्वात् स्त्रीवादित्यप्यनिष्टापत्तिः उभयप्रसिद्धाद्धेतोरुभयप्रसिद्धत्वं
निषेधेनोर्भयोस्तुल्यत्वात्' इत्यभिघातव्यम्; उभयाभिप्रेतागमेन
वाधनीत् । स्त्रीणां तु तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षे परमभ्युपगमेनैव
मोक्षहेतुपरमप्रकर्षेणापाद्य तत्प्रतिषेधेन तद्धेतुरेव प्रतिविध्यत
इत्यस्ति विशेषः ।^{१५}

यद्वा नोक्तानुमाने तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षाभावाद्धेतोर्मोक्ष-
हेतुपरमप्रकर्षः स्त्रीषु निविध्यते, अपि तु परमप्रकर्षत्वात् दृष्टान्ते
दृष्टसाध्यव्यासिकात् । न चार्हं केनचिद्व्यभिचारः; स्त्रीसम्बन्धिनः
कस्यचित्परमप्रकर्षस्यासम्भवात् । मायापरमप्रकर्षोऽस्तीति चेत्, न;
स्त्रीणां मायावैदुष्यमात्रस्यैवागमे प्रसिद्धेः । अन्यथा पुंवत्सप्तम-^{२०}
पृथिवीगमनानुपपन्नः । 'मायापरमप्रकर्षोऽन्यत्वे सति' इति विशेष-
वर्णोद्वा न दोषः । तस्य ज्ञानादिपरमप्रकर्षो मोक्षहेतुस्तथास्तीत्यै-

१ मोक्षहेतुपरमप्रकर्षो व्यापकः साध्यं तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षो व्याप्यो
हेतुरिति । २ अविनाभावः । ३ शब्दः प्रयत्नान्तरीयकः अनित्यत्वादित्यत्रानित्यत्वस्य
व्याप्यरूपस्य हेतोर्यथा प्रयत्नान्तरीयकत्वम् । ४ निवमः सिद्धो वस्तुः । ५ मोक्ष-
हेतुपरमप्रकर्षसद्भावादेपि अपरोऽनिष्टो नोपपद्यते चेत् । ६ सादात्म्यतदुत्पत्तिरक्षण-
हे । ७ मोक्षहेतुपरमप्रकर्षसप्तमपृथ्वीगमनकारणापुण्यपरमप्रकर्षलक्षणयोः । ८ मोक्ष-
हेतुपरमप्रकर्षः । ९ साध्यत्वम् । १० वादिप्रतिवादिनोः । ११ सितपटप्रसिद्धस्य
स्त्रीनिर्वाणस्यासाभिः प्रतिषेधादस्यप्रसिद्धस्य सितपटेन प्रतिषेधाद् इति तुल्यत्वम् ।
१२ सितपटप्रसिद्धस्य । १३ परः सितपटः । १४ इति कर्म तुल्यत्वमुभयोः । १५
प्राद्युक्तस्य परिहारान्तरे वद्वाशब्दः । १६ व्यापकभावाद् व्याप्यभावं न कुर्म
इत्यर्थः । १७ यो यः परमप्रकर्षः स स स्त्रीषु नास्तीति । १८ स्त्रीषु मोक्षप्रतिषेधे ।
१९ प्राचुर्यमात्रं न तु परमप्रकर्षः । २० मायापरमप्रकर्षः स्त्रीष्वस्ति यदि ।
२१ परमप्रकर्षत्वे । २२ व्यभिचारलक्षणः । २३ परमप्रकर्षत्वादित्यत्रानुमाने ।

सिद्धो हेतुः । न खलु ज्ञानादयो यथा पुरुषे प्रकृष्यमाणाः प्रमाणतः प्रतीयन्ते तथा स्त्रीष्वपि, अन्यथा नपुंसके ते तथा स्युः, तथा चास्याप्यपवर्गप्रसङ्गः ।

संयमस्तुं तद्धेतुस्तत्रासम्भाव्य एव; तथाहि-स्त्रीणां संयमो न मोक्षहेतुः नियमेन द्विविशेषाहेतुत्वान्यथानुपपत्तेः । यत्र हि संयमः सांसारिकलब्धीर्नामप्यहेतुः तत्रासौ कथं निःशेषकर्मवि-प्रमोक्षलक्षणमोक्षहेतुः स्यात् ? नियमेन च स्त्रीणामेव ऋद्धिविशेषहेतुः संयमो नैष्यते, न तु पुरुषाणाम् । यदि हि नियमेन लब्धिविशेषस्याजनकः संयमः कचिदन्यत्राविवादास्पदीभूते मोक्षहेतुः १० प्रसिद्धोत् तदा तद्गृहान्तावष्टम्भेनात्राप्यसौ तथा प्रत्येतुं शक्येत, नान्यथैति प्रसङ्गात् । संयममात्रं तु सदप्यासां न तद्धेतुः तिर्यग्गृहस्थादिसंयमवत् ।

सचेतुसंयमत्वाच्च नासौ तद्धेतुर्गृहस्थसंयमवत् । न चायमसिद्धो हेतुः, न हि स्त्रीणां निर्वेद्यः संयमो दृष्टः प्रवचनप्रति- १५ पादितो वा । न च प्रवचनाभावेपि मोक्षसुखाकाङ्क्षया तासां वक्षत्यागो युक्तः, अर्हत्पणीतागमोलङ्घनेन मिथ्यात्वावधारणा-प्राप्तेः । यदि पुनर्नृणामचेतोसौ तद्धेतुः स्त्रीणां तु सचेतुः, तर्हि कारणभेदान्मुकेरप्यनुषज्येत भेदः स्वर्गादिष्वत् । देशसंयमिर्नैव मुक्तिः प्रसज्यते । तथा च लिङ्गग्रहणमनर्थकम् । सचेतुसंयमश्च २० मुक्तिहेतुरिति कुतोऽवगतम् ? स्वागमाद्येत्, न; अत्यासान् प्रत्यागमाभासत्वाद् भवेत्तो यश्चालुष्ठानागमवत् ।

स्त्रियो न मोक्षहेतुसंयमवत्यः साधूनामवन्धत्वाद् गृहस्थवत् । न चात्रौसिद्धो हेतुः;

“वरिर्लस्यदिविस्त्रयाए अज्जाए अज्ज दिविसिद्धो साह ।
२५ अमिग्गैमणवर्द्धणंभंसणविणएण सो पुज्जो ॥” [इत्यभिधानात् ।]

बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहवत्त्वाच्च न तास्तद्वत्यस्तद्वत् । न चायमसिद्धो हेतुः; प्रत्यक्षेणावगतो हि वस्तुग्रहणादिबाह्यपरिग्रहोऽभ्य-

१ अविकलकारणत्वादिति । २ स्त्रीषु ज्ञानादयः प्रकृष्यमाणाश्चेत्तर्हि । ३ स्त्रीणां मोक्षहेतुसंयमो विवर्ते चेत् । ४ न पुनः । ५ स्त्रीणां मोक्षहेतुसंयमो विवर्ते चेत्तर्हि । ६ ऋद्धीनाम् । ७ दृष्टान्तत्वमन्तरेण । ८ गृहस्थस्यापि मोक्षः स्यात् स्वसंयमात् । ९ निर्वैयर्थ्यसंयमः । १० अदृष्टलक्षणकारणभेदावस्था स्वर्गादेः प्रथमद्वितीयादिप्रकारेण भेदः । ११ सचेतुसंयमवत्सौमुक्तिप्रकारेण । १२ विग्रन्वतालक्षणवत् । १३ सित-पटस्य । १४ भदेभ्यराव । १५ अनुमाने । १६ वनैश्वर्यदीक्षितायाः आर्यिकायाः जय दीक्षिताः साधुः । अभिगमवन्दनानामस्कारेण विनयेन स पूज्यः । १७ सम्युत्पन्नम् । १८ शुभमकिपूर्वकम् । १९ नमस्कारः ।

न्तरं स्वशरीरानुरागादिपरिग्रहमनुमापयति । न च शरीरोष्मणा वातकायिकादिजन्तूपघातनिवारणार्थं स्वशरीरानुरागाद्यभावेऽप्यसावुपादीयते इत्यभिधेयम् ; पुंसांमाचेलक्यव्रतस्य हिंसात्वावृष-
कात् । तथा चाहंदादयो भुक्तिभाजस्तदुपदेशारो वा न स्युः, किन्तु सवत्सा एव गृहस्था भुक्तिभाजो भवेयुः । न चाचेलक्यं नेप्यते ५

“आचेलकुहेसिय सेज्जाहररायपिंडकिदिकम्म” [जीतकल्प-
भा० गा० १९७२] इत्यादेः पुरुषं प्रति वैशविधस्य स्थिति-
कल्पस्य मध्ये तदुपदेशात् ।

किञ्च, गृहीतेपि वस्त्रे जन्तूपघातस्तदवस्थः, तेनानावृतपाणि-
पादादिप्रदेशोष्मणा तदुपघातस्य परिहर्तुमशक्तेः । वस्त्रस्य १०
यूकालिक्षाद्यनेकजन्तुसम्पृच्छनाधिकरणत्वाच्च । तथाविधस्यापि
स्वीकरणे मूर्द्धजानां लुञ्चनादिक्रिया न स्यात् । वस्त्राकुञ्चनोद्देर्जात-
वातेनाकाशप्रदेशावस्थितजन्तूपपीडनाच्च व्यजनादिवातवत् ।

किञ्च, एवमनेकप्राण्युपघातनिवारणार्थमविहारीप्यनुष्ठेयो वस्त्र-
ग्रहणवदविशेषात् । प्रयत्नेन गच्छतो जन्तूपघातेऽप्यहिंसा निश्चे- १५
लेपि समा । यथा च यज्ञानुष्ठानं पशुहिंसाङ्गत्वेनाऽश्रेयस्करत्वात्
त्याज्यं तथा वस्त्रग्रहणमप्यविशेषात् ।

एतेन संयमोपकरणार्थं तदित्यपि निरस्तम् ।

किञ्च, बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहपरित्यागः संयमः । स च याचन-
सीवनप्रक्षालनशोषणनिक्षेपादानचौरहरणादिमनःसंक्षोभकारिणि २०
वस्त्रे गृहीते कथं स्यात् ? प्रेत्युत संयमोपघातकमेव तत् स्याद्वा-
ह्याभ्यन्तरनैर्ग्रन्थ्यप्रतिपन्थित्वात् ।

पृथ्वीशीतार्तिनिवृत्त्यर्थं वस्त्रादि यदि गृह्यते ।

कामिन्ध्यादिसैथा किंर्षं कामपीडादिशान्तये ? ॥ १ ॥

येन येन विना पीडा पुंसां समुपजायते ।

२५

तत्तत्सर्वमुपादेयं लावर्कादिपर्लादिकम् ॥ २ ॥

- १ परेण । २ आचेलक्यैरेक्षिकमुप्यापररात्रकीयपिण्डोक्षाकृतिकर्मेवतरोपपयोग्यत्वं
न्येषसा प्रतिकर्मणं मासिकवासिना स्थितिकल्पो योग्यश्च वार्षिको दक्षमः । ३ अनु-
श्रेक्षासंयमस्य । ४ यूकाद्यनेकजन्तुसम्पृच्छनाधिकरणत्वाविशेषात् एषां निवारणार्थम् ।
५ प्रसारणाच्च । ६ व्यजकः । ७ जन्तूपघातपरिहारार्थं वस्त्रसोपादानप्रकारेण ।
८ अयमनम् । ९ वस्त्रस्य जन्तूपघातसमर्पणपरेण ग्रन्थेन । १० निक्षेपतः ।
११ विरोधित्वात् । १२ ताम्बूलमिदम् । १३ वस्त्रग्रहणप्रकारेण । १४ गृह्यते ।
१५ यदि तर्हीति शेषः । १६ लावर्कः पथिविशेषः । पर्लं मांसम् । १७ उपादेयम् ।

- वस्त्रखण्डे गृहीतेपि विरक्तो यदि तत्त्वतः ।
 स्त्रीमात्रेपि तथा किञ्च तुल्याक्षेपसमाधितः ॥ ३ ॥
 नापि तन्वीमनःक्षोभनिवृत्त्यर्थं तदादृतम् ।
 तद्वाञ्छाऽहेतुकत्वेन तन्निषेधस्य सम्भवात् ॥ ४ ॥
- ५ चक्षुःसत्पाटनं पट्टबन्धनं च प्रसज्यते ।
 लोचनौदेस्तदुत्पत्तौ निमित्तत्वाविशेषतः ॥ ५ ॥
 चलचित्ताङ्गना काचित्संयतं च तपस्विनम् ।
 यदीच्छति आतृवर्त्तिकं दोषस्तस्य मतो नृणाम् ॥ ६ ॥
 बीमत्सं मलिनं साधुं दृष्ट्वा शवशरीरवत् ।
 अङ्गना नैव रज्यन्ते विरज्यन्ते तु तत्त्वतः ॥ ७ ॥
 स्त्रीपरीषदमग्नैश्च बद्धरागैश्च विग्रहे ।
 वस्त्रमादीयते यस्मात्सिद्धं ग्रन्थद्वयं ततः ॥ ८ ॥

न चैवं जन्तुरक्षागण्डादिप्रतीकारार्थं पिच्छौषधादौ गृह्यमाणे-
 प्ययं दोषः समानः; त्रिचतुरपिच्छग्रहणस्य जन्तुरक्षार्थत्वात्,
 १५ शरीरे ममेदंभावाऽसूचकत्वाच्च, औषधस्यापि प्रतिपन्नसाम-
 र्थ्यस्य गण्डादेर्व्यावृत्तिहेतुत्वात् नाश्रयौविरोधित्वाच्च, वस्त्रे तु
 विपर्ययात्, परमनैर्ग्रन्थसिद्धये पिच्छस्याप्यग्रहणाद्यौषधवर्त्त-
 पिण्डौषध्यादयो हि सिद्धान्तानुसारेणोद्गमाविदोपरहिता रज-
 जयाराधनहेतवो गृह्यमाणा न कस्यापि मोक्षहेतोः हन्तारः । न हि
 २० तद्ग्रहणे रागादयोऽन्तरङ्गा बहिरङ्गा वा सैर्भूषणविषादैर्यो ग्रन्था
 जायन्ते, अतस्ते मोक्षहेतोरुपकर्तार एव । पिण्डग्रहणमन्तरेण
 ह्यपूर्णकालेपि विषत्तेरापत्तेरात्मघातित्वं स्यात्, न तु वैल्ले ।
 षष्ठाष्टमादिक्रमेण च मुमुक्षुभिः पिण्डोपि त्यज्यते, न तु स्त्रीभिः
 कदाचिद्वस्त्रम् ।

१ रागादिसङ्गावे सत्येव स्त्रीपरिग्रह इत्याक्षेपो वक्ष्ये समान इति समाधानम् ।
 ध्वं यदि वस्त्रमात्रे गृहीते न रागस्तहि स्त्रीमात्रपरिग्रहेति न रागः । २ स्वस्य ।
 ३ ओत्रादेशः । ४ यथा प्राप्तमानसत्वं वनित्रयात् । कृत एतत्तस्य ? इच्छारहित-
 त्वात्तस्य तपस्विनः । ५ शरीरे । ६ क्लृप्तात् । ७ वस्त्ररागलक्षणवाद्यान्तरपरि-
 ग्रहः । ८ तत् इत्यर्थं शब्दः श्लोकादौ द्रष्टव्यस्तेनाद्यर्थः वस्त्रस्त्रीकरणे अपर प्रयोजनं
 नास्ति यत्तत्ततः । ९ वस्त्रप्रकारेण । १० गण्डो रोगनिषेधः । ११ मूर्च्छा-
 १२ नैर्ग्रन्थ- १३ जन्तुरक्षार्थमावात्मममेदम्भावसूचकत्वाच्च गण्डाद्यव्यावृत्तिहेतुत्वाच्च
 नाश्रयविरोधित्वाच्च । १४ किञ्च । १५ औषधादेर्यथाऽग्रहणम् । १६ सम्बन्ध-
 नादेः । १७ अलङ्कार- १८ मण्डन- १९ देहनेत्येतेन वस्त्रपरिधानादिलक्षणे
 वेधः । २० अगृह्यमाणे आत्मघातित्वं स्यादिति ज्ञेयः ।

अथ ब्रह्मादन्यस्याखिलस्य त्यागात्साकल्येनासां बाह्यं नैर्ग्रन्थ्यम्; तर्हि लोभादन्यकषायत्यागादेवाबाह्यमपि स्यात् । न च गृहीतेपि वस्त्रे ममेदम्मावस्यामावात्तदवतिष्ठते; विरोधात्- 'बुद्धिपूर्वकं हि हस्तेन पतितवस्त्रमादाय परिदधानोपि तन्मूच्छीरहितः' इति कश्चेतनः श्रद्दधीत ? तन्वीमात्रिष्ठयतोपि तद्द्रवित-^५त्वप्रसङ्गात् । ततो ब्रह्मग्रहणे बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहप्राप्तेर्नैर्ग्रन्थ्यद्वयासम्भवाच्च स्त्रीणां मोक्षः । स हि बाह्याभ्यन्तरकारणजन्यः कार्यत्वान्माषपाकादिवत् । तच्च बाह्यमभ्यन्तरं च कारणमाकिञ्चन्यम्, तदभावे कथं स स्यात् ? इति परहेतोरसिद्धेर्नानुमानात् श्रीमुक्तिसिद्धिः । १०

नाप्यागमात्; तन्मुक्तिप्रतिपादकस्यास्याभावात् ।

"पुंवेदं वेदंतां जे पुरिसा खवगसेढिमारुढा ।

सेसोदयेणं वि तहा झाणुर्वजुत्ता य ते दु सिज्जंति ॥"

[]

इत्यादेरप्यागमस्य श्रीमुक्तिप्रतिपादकत्वाभावः । स हि पुंवे-^{१५}दोदयवत् शेषवेदोदयेनापि पुंसामेवापवर्गावेदक उभयत्रापि 'पुरुषाः' इत्यभिसम्बन्धात् । उदयश्च भावस्यैव न द्रव्यस्य ।

स्त्रीत्वानर्थथानुपपत्तेश्चासां न मुक्तिः । आगमे हि जघन्येन सत्ताष्टभिर्मवैः उत्कर्षेण द्विवैर्जीवस्य रत्नत्रयाराधकस्य मुक्तिरुक्ता । यदा चास्य सम्यग्दर्शनाराधकत्वम् तत्प्रसृति सर्वासु स्त्रीभूत्पत्ति-^{२०}रेव न सम्भवतीति कथं श्रीमुक्तिसिद्धिः ।

ननु चानादिमिथ्यादृष्टिरपि जीवः पूर्वभवनिर्जीर्णाशुभकर्मा प्रथमतः रत्नत्रयमाराध्य भरतपुत्रादिवन्मुक्तिमाप्तादयत्यतः स्त्रीत्वेनोत्पन्नस्यापि मुक्तिरविरुद्धेति; तदप्ययुक्तम्; पूर्वं निर्जीर्णाशुभकर्मणः स्त्रीवेदेनोत्पत्तेरसम्भवात्, तस्याप्यशुभकर्मत्वेन ^{२५}निर्जीर्णत्वात् । कथं पुनः स्त्रीवेदस्याशुभकर्मत्वमिति चेत्; सम्यग्दर्शनोपेतस्य तत्त्वेनोत्पत्तेरयोगात् ।

ततो नास्ति स्त्रीणां मोक्षः पुरुषादन्यत्वात् नपुंसकवत् । अन्यथाऽस्याप्यसौ स्यात् । न चैतद्वाच्यम्-नास्ति पुंसो मोक्षः स्त्रीतो-

१ तद-प्यादि । २ नाष्टमग्यादिकमन्तरा कृत्तिरेव वया न हेतुः । ३ सितपद-प्रयुक्तस्य अविकलकारणत्वादित्यस्य । ४ अनुमनन्तः । ५ नपुंसकस्त्रीवेदोदयेनापि । ६ ध्यानोपयुक्तः । ७ पुरुषाः । ८ मुक्तिसंज्ञाये सति । ९ दिव्यरूपादिषु । १० अन्यथानुपपत्तिः सिद्धा यतः । ११ स्त्रीणां मोक्षश्चेत् ।

न्यत्वात् नपुंसकवत्, उभयवादिसम्भतागमेन बाधितत्वात्,
भेददागमस्य चास्यान्प्रति अप्रमाणत्वात् ।

तथा स्त्रीणां मोक्षो नास्ति उत्कृष्टध्यानफलत्वात् सप्तमपृथ्वी-
गमनवत् । अतोपि न तासां मुक्तिसिद्धिः । ततोऽनन्तचतुष्टय-
५ स्वरूपलभलक्षणो मोक्षः पुरुषस्यैवेति प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् ॥

मुख्यं सांव्यवहारिकं च गदितं भानुप्रदीपोपमम्,

प्रत्यक्षं विशदस्वरूपनियतं साकल्यवैकल्यतः ।

निर्बाधं निर्यतस्वहेतुजनितं मिथ्येतैरैः कल्पितम्,

तल्लक्ष्मेति विचारचारुधिषणैश्चेतस्यलं चिन्त्यताम् ॥ १ ॥

१० इति श्रीप्रभावन्द्रविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे
द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

१ पुरुषादन्यत्वादित्यनुपानं न वक्तव्यमसदागमेन बाधितत्वादिति सितपटेनोक्तं तं
प्रत्याह हरिः । २ जनेन पदेन परिच्छेदार्थमुपसंहरन्नाह । ३ सामग्रीविशेषेणैलादिक-
मिन्द्रियानिन्द्रियं च । ४ नैयायिकादिभिः । ५ कृतम् ।

। श्रीः ।

॥ अथ तृतीयः परोक्षपरिच्छेदः ॥

अथेदानीं परोक्षप्रमाणस्वरूपनिरूपणाय—

परोक्षमितरत् ॥ १ ॥

इत्याह । प्रतिपादितविशदस्वरूपविज्ञानाद्यदन्यद्ऽविशदस्वरूपं विज्ञानं तत्परोक्षम् । तथा च प्रयोगः—अविशदज्ञानात्मकं परोक्षं परोक्षत्वात् । यच्चाऽविशदज्ञानात्मकं तच्च परोक्षम् यथा मुख्ये-५ तरप्रत्यक्षम्, परोक्षं चेदं वक्ष्यमाणं विज्ञानम्, तस्मादविशदज्ञानात्मकमिति ।

तन्निमित्तप्रकारप्रकाशनाय प्रत्यक्षेत्याद्याह—

प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञान-

तर्कानुमानागमभेदम् ॥ २ ॥

१०

प्रत्यक्षादिनिमित्तं यस्य, स्मृत्यादयो भेदा यस्य तथोक्तम् ।

तत्र स्मृतेस्तावत्संस्कारेत्यादिना कारणस्वरूपे निरूपयति—

संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः ॥ ३ ॥

संस्कारः सांख्यव्याहारिकप्रत्यक्षभेदो धारणा । तस्योद्बोधः प्रयोधः । स निबन्धनं यस्याः तदित्याकारो यस्याः सा तथोक्ता १५ स्मृतिः ।

विनेयानां सुखावबोधार्थं दृष्टान्तद्वारेण तत्स्वरूपं निरूपयति—

यथा स देवदत्त इति ॥ ४ ॥

यथेत्युवाहरणप्रदर्शने । स देवदत्त इति । एवंप्रकारं तच्छब्द-परासृष्टं यद्विज्ञानं तत्स्वर्षं स्मृतिरित्यवगन्तव्यम् । न चासावप्रमाणं २०

१ स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमविशेषाः स्वभाविनो षड्विधः प्रतिष्ठाः । तत्र परोक्षत्वं सामान्यरूपं वादिप्रतिवादिनोः प्रसिद्धस्वभावः—तेन वस्तुनोऽनेकवर्मात्मकत्वात् । तत्र स्थितौ द्वितीयोऽविशदज्ञानात्मकोऽप्रसिद्धः साध्यते इति विशेषं स्वभाविनं (स्वभावसमाविनोर्भेदात्) सामान्यस्वभावं नृपता बोधमावात् । २ कारण । ३ भेद । ४ स्मृतिः प्रत्यक्षपूर्विका । प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षसरणपूर्वकम् । तर्कः प्रत्यक्षसरणप्रत्यभिज्ञानपूर्वकः । अनुमानं प्रत्यक्षसरणप्रत्यभिज्ञानतर्कपूर्वकम् । आगमस्तु भाषणाध्यक्षसङ्केतस्मृतिपूर्वकः । ५ संस्कारस्य कारणमात्रं देवदत्तदर्शनम् । उद्बोधस्य कारणं पाश्चात् तत्सदृशतत्कार्यादिवर्जनम् । ६ प्राक्तन्यम् ।

संवादकत्वात् । यत्संवादकं तत्प्रमाणं यथा प्रत्यक्षादि, संवादिका च स्मृतिः, तस्मात्प्रमाणम् ।

ननु कोयं स्मृतिशब्दवाच्योर्थः-ज्ञानमात्रम्, अनुभूतार्थविषयं वा विज्ञानम्? प्रथमपक्षे प्रत्यक्षादेरपि स्मृतिशब्दवाच्यत्वानु-
 ५ पङ्क्तः । तथा च कस्य दृष्टान्तता? न खलु तदेव तस्यैव दृष्टान्तो भवति । द्वितीयपक्षेपि देवदत्तानुभूतार्थं यद्देवदत्तादिज्ञानस्य स्मृति-
 रूपताप्रसङ्गः । अथ 'येनैव यदेव पूर्वमनुभूतं वस्तु पुनः काला-
 न्तरे तस्यैव तत्रैवोपजायमानं ज्ञानं स्मृतिः' इत्युच्यते ननु
 'अनुभूते जायमानम्' इत्येतत् केन प्रतीयताम्? न तावदनुभवेन;
 १० तत्काले स्मृतेरेवासत्त्वात् । न चासती विषयीकर्तुं शक्या । न चाविषयीकृता 'तत्रोपजायते' इत्यधिगतिः । न चानुभवकालेऽर्थ-
 स्यानुभूततास्ति, तदा तस्यानुभूयमानत्वात्, तेषां च 'अनुभूयमाने
 स्मृतिः' इति स्यात् । अथ 'अनुभूते स्मृतिः' इत्येतत्स्मृतिरेव प्रति-
 पद्यते; न, अनयाऽतीतानुभवार्थयोरविषयीकरणे तथा प्रतीययो-
 १५ गात् । तद्विषयीकरणे वा निखिलातीतविषयीकरणप्रसङ्गोऽवि-
 शेषात् । यदि चानुभूतता प्रत्यक्षगम्या स्यात्, तदा स्मृतिरपि जानी-
 यात् 'अहमनुभूते समुत्पन्ना' इति अनुभवानुसारित्वात्तस्याः ।
 न चासौ प्रत्यक्षगम्येत्युक्तम्; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; स्मृति-
 शब्दवाच्यार्थस्य प्रागेव प्ररूपितत्वात् । 'तदित्याकारानुभूतार्थ-
 २० विषया हि प्रतीतिः स्मृतिः' इत्युच्यते ।

ननु चोक्तमनुभूते स्मृतिरित्येतन्न स्मृतिप्रत्यक्षाभ्यां प्रतीयते;
 तदप्यपेशलम्; मतिज्ञानापेक्षेणात्मना अनुभूयमानाऽनुभूतार्थवि-
 २५ षयतायाः स्मृतिप्रत्यक्षाकारयोश्चानुभवसम्भवात् चित्राकारप्रती-
 तिवत् चित्रज्ञानेन । यथा चाशक्यविवेचनत्वाद् युगपच्चित्राका-
 रैकस्याविरुद्धा, तथा क्रमेणापि अवग्रहेहावायधारणास्मृत्या-
 दिचित्रस्वभावता । न च प्रत्यक्षेणानुभूयमानतानुभवे तदैवार्थेऽ-
 नुभूतताया अप्यनुभवोऽनुषज्यते; स्मृतिविशेषणापेक्षत्वाच्च
 तत्प्रतीतिः, नीलाद्याकारविशेषणापेक्षया ज्ञाने चित्रप्रतिपत्तिवत् ।

न चानुभूतार्थविषयत्वे स्मृतेर्गृहीतग्राहित्वेनाऽप्रामाण्यम्;
 ३० [प]रिच्छित्तिविशेषसम्भवात् । न खलु यथा प्रत्यक्षे निशदाकार-

१ सांगमो वक्ति । २ अनुत्पन्नत्वेन । ३ अनुभूतेऽर्थे । ४ अनुभवकालेऽर्थस्या-
 नुभूयमानत्वे च । ५ अनुभवश्चार्थश्च अनुभवार्थो । अतीतो च तावदनुभवार्थो च ।
 ६ अतीतत्वस्य । ७ कर्त्ता । ८ प्रत्यक्षस्मरणयोः । ९ विज्ञानस्य । १० आदिना
 प्रत्यक्षज्ञानादि । ११ एकस्यात्मनोऽविरुद्धा । १२ उत्तरकालमात्मनः । १३ तमेव
 दर्शयति ।

तथा वस्तुप्रतिभासः तथैव स्मृतौ तत्र तस्या (तस्य) वैशद्याऽ-
प्रतीतेः । पुनः पुनर्भावयितो वैशद्यप्रतीतिस्तु भावनाज्ञानम्, तच्च
तदूपतया भ्रान्तमेव स्वप्नादिज्ञानवत् । तथाप्यनुभूतार्थविषयत्व-
मात्रेणास्याः प्रामाण्यानभ्युपगमे अनुमानेनाधिगतेऽग्नौ यत्प्रत्यक्षं
तदप्यप्रमाणं स्यात् । असत्यतीतेर्धे प्रवर्त्तमानत्वात्तदप्रामाण्ये
प्रत्यक्षस्यापि तत्प्रसङ्गः, तदर्थस्यापि तत्कालेऽसत्त्वात् । तज्जन्मा-
दैस्तत्रास्य प्रामाण्ये स्मरणेऽपि तदस्तु । निराकृतं चार्थजन्मादि
ज्ञानस्य प्रागेवेति कृतं प्रयासेन ।

न चाविसंवादकत्वं स्मृतेरसिद्धम्; स्वयं स्थापितनिक्षेपादौ
तद्वृद्ध्यर्थे प्राप्तिप्रमाणान्तरप्रवृत्तिलक्षणाविसंवादप्रतीतेः । यत्र १०
तु विसंवादः सा स्मृत्याभासा प्रत्यक्षाभासवत् । विसंवादकत्वे
चास्याः कथमनुमानप्रवृत्तिः सम्बन्धस्यातोऽप्रसिद्धेः ? न च
सम्बन्धस्मृतिमन्तरेणानुमानमुदेत्यतिप्रसङ्गात् ।

किञ्च, सम्बन्धार्मावात्तस्याः विसंवादकत्वम्, कल्पितसम्ब-
न्धविषयत्वाद्वा, सतोप्यस्याऽनया विषयीकर्तुमशक्यत्वाद्वा ? १५
प्रथमपक्षे कुतोऽनुमानप्रवृत्तिः ? अन्यथा यतः कुतश्चित्सम्बन्ध-
रहितोद्यत्र कचिदनुमानं स्यात् । कल्पितसम्बन्धविषयत्वेनास्याः
विसंवादित्वे हर्षेयप्राप्यैकत्वे प्राप्यविकल्प्यैकत्वे च प्रत्यक्षानुमान-
योरविसंवादो न स्यात् । तैस्सम्बन्धस्य कल्पितत्वे च अनुमान-
मप्येवंविधमेव स्यात् । तथा च कथमतोऽभीष्टतत्त्वसिद्धिः ? अथ २०
सन्नपि सर्व्वेन्द्रोऽनया विषयीकर्तुं न शक्यते, यत्तु विषयीक्रियते
सामान्यं तस्याऽसत्त्वात् स्मृतेर्विसंवादित्वम्; तदेतदनुमानेपि
समानम् । अर्च्यैर्वसितैस्त्वलक्षैणाव्यभिचारित्वं स्मृतावैपि ।

१ वैशद्यमेव नास्ति कुतः परिच्छिन्नमित्येषः इत्यभिप्रायं वक्ति वीरः । २ अव-
शादिभेदेनानुभवतो नरस्य । ३ क्षणिकत्वात् । ४ आदिना तादृश्यम् । ५ अर्थ-
जन्मादिनिराकरणप्रयासेन । ६ प्रत्यक्ष । ७ निस्तुतसम्बन्धस्यापि अनुमानोत्पत्ति-
प्रसङ्गात् । ८ इष्टान्तसाध्यसाधनयोः । ९ सम्बन्धार्मावे अनुमानप्रवृत्तिर्यदि स्यात् ।
१० अर्थास्त्रिज्ञानीयात् । ११ यदेव वृष्टं जलस्रवक्ष्णं तदेव प्राप्तमिति । १२ अनु-
मानलक्षणो विकल्पः । विकल्पस्य विषयो विकल्प्यो यो जलादिः । पूर्वं विकल्प्यः
पक्षाध्याप्य इति । कथम् ? विवादापन्नो देशः प्रवृत्तस्य ज्ञानादिमान् जलत्वात्सम्प्रतिपक्ष-
देशवत् । इति यदेवानुमितं ज्ञानादिकं तदेव प्राप्तमिति । १३ स्मृतिगुह्यमाण । १४ सर्व
क्षणिकं सत्त्वादिति क्षणिकत्वसिद्धिः । १५ तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणः । १६ अन्या-
पोहः । १७ न्यायकृपमनुमानेन स्वलक्षणं विद्यमानं न विषयीक्रियते (यद्विषयीक्रि-
यते) सामान्यं तद्विद्यमानं न भवतीति । १८ प्रत्यक्षेण । १९ यतः । २० स्वलक्षणं
न व्यभिचरतीति न स्मृतेर्भेदेति । २१ समानम् ।

किञ्च, लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धः सत्तामात्रेणानुमानप्रवृत्तिहेतुः, तद्दर्शनात्, तत्स्मरणाद्वा? तत्राद्यविकल्पे नालिकेरद्वीपायातस्या-
प्रतिपक्षाग्निधूमसम्बन्धस्यापि धूमदर्शनादग्निप्रतिपत्तिः स्यात् ।
न चाविज्ञातः सम्बन्धोस्ति उपलब्धनिबन्धनत्वात्सङ्ख्यवहारस्य,
५ अन्यथातिप्रसङ्गात् । तद्दर्शनमात्रेण तत्प्रवृत्तौ बालाघस्थायां प्रति-
पक्षाग्निधूमसम्बन्धस्य पुनर्वृद्धदेशायां धूमदर्शनादग्निप्रतिपत्ति-
प्रसङ्गः, न चैवम् । तत्स्मृतावस्थेवेति चेत्, कथं नासौ प्रमाणम्?
को हि स्मृतिपूर्वकमनुमानमभ्युपगम्य पुनस्तां निराकुर्यात्? अनु-
मानस्यापि निराकरणानुषङ्गात् । न खलु कारणाभावे कार्योत्पत्ति-
१० नर्माऽतिप्रसङ्गात् ।

समारोपव्यवच्छेदकत्वाच्चास्याः प्रामाण्यमनुमानवत् । न च
स्मृतिविषयभूते सम्बन्धादौ समारोपस्यैवासम्भवात् कस्य व्यव-
च्छेद इत्यभिधातव्यम्, साधर्म्यदृष्टान्ताभिधानानर्थक्यप्रसङ्गात् ।
तत्र स्मृतिहेतुभूतं हि तत्, अन्यथा हेतुरेव केवलोभिधीयेत ।
१५ ततस्तदभिधानान्यथानुपपत्तेस्तद्विषयभूते सम्बन्धादौ विस्मरण-
संशयविपर्यासलक्षणः समारोपोस्तीत्यवगम्यते । तन्निराकरणा-
च्चास्याः प्रामाण्यमिति ।

अथेदानीं प्रत्यभिज्ञानस्य कारणस्वरूपप्रकरणार्थं दर्शनेत्या-
द्याह—

२० दर्शन-स्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानम् ।

तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि ॥५

दर्शनस्मरणे कारणं यस्य तत्तथोक्तम् । सङ्कलनं विवक्षित-
धर्मयुक्तत्वेन प्रत्यैवमर्शनं प्रत्यभिज्ञानम् । ननु प्रत्यभिज्ञायाः प्रत्य-
क्षप्रमाणस्वरूपत्वात् परोक्षरूपतयात्राभिधानमयुक्तम्, तथाहि—
२५ प्रत्यक्षं प्रत्यभिज्ञा अक्षान्वयव्यतिरेकानुविधानात् तदन्यप्रत्यक्ष-
वत् । न च स्मरणपूर्वकत्वात्तस्याः प्रत्यक्षत्वाभावः, सत्सम्प्रयोगज-
त्वेन स्मरणपश्चाद्भावित्वेऽप्यस्याः प्रत्यक्षत्वाविरोधात् । उक्तं च—

१ परपक्षप्रतिक्षेपं करोति दूरिः । २ ग्रहण । ३ अक्षात्सापि सत्त्वसिद्धिरेव ।
४ ईश्वरादेरपि सत्त्वसिद्धिप्रसङ्गात् । ५ विस्मृतसम्बन्धस्य । ६ अनुमानप्रवृत्तिः ।
७ वृत्तिपण्ड्याभावे षटोत्पत्तिप्रसङ्गात् । ८ साध्यसाधनविवक्षे । ९ समारोपाभावे प्रति-
क्षेपः । १० यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकं यथा जलधरः । ११ सम्बन्धस्मृतिहेतुभूतो दृष्टान्तो
यदि न स्यात् । १२ एतत्पसादृश्यादिलक्षण । १३ पुनर्ग्रहणम् । १४ मीमांसकः ।
१५ परोक्षप्रमाणे । १६ सतो विद्यमानसाधर्म्येऽभिज्ञेण सह संयोगः सन्निकर्षलक्ष-
णात्तः सत्सम्प्रयोगजस्तस्य भावस्तत्त्वं तेन ।

“न हि सरणतो र्यत्प्राक् तत् प्रत्यक्षमितीदृशम् ।
वचनं राजकीयं वा लौकिकं वापि विद्यते ॥ १ ॥
न चापि सरणात्पश्चादिन्द्रियस्य प्रवर्त्तनम् ।
वार्यते केनचिन्नापि तत्तदौर्नी प्रदुष्यति ॥ २ ॥
तेनैन्द्रियार्थसम्बन्धात्प्रागूर्ध्वं चापि यत्स्मृतेः ।
विज्ञानं जायते सर्वं प्रत्यक्षमिति गम्यताम् ॥ ३ ॥”
[मी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३४-२३७]

५

अनेकदेशकालाद्यस्यासमन्वितं सामान्यं द्रव्यादिकं च वस्त्वस्याः
प्रमेयमित्यपूर्वप्रमेयसङ्गावः । तदुक्तम्—

“गृहीतमपि गोत्वादि स्मृतिस्पृष्टं च यद्यपि ।
तथापि व्यतिरेकेण पूर्वबोधात्प्रतीयते ॥ १ ॥
देशकालौदिभेदेन तत्रास्त्यवसरो मितेः ।
यः पूर्वमंबगतोर्शः स न नाम प्रतीयते ॥ २ ॥
इदौर्नीन्तनमस्तित्वं न हि पूर्वधिया गतम् ।”
[मी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३२-२३४]

१०

१५

तदप्यसमीचीनम्; प्रत्यभिज्ञानेऽक्षान्वयव्यतिरेकानुविधानस्या-
सिद्धेः, अन्यथा प्रथमव्यक्तिदर्शनकालेऽप्यस्योत्पत्तिः स्यात् ।
पुनर्दर्शने पूर्वदर्शनेर्हिते संस्कारेऽबोधोत्पत्तिस्तद्वैतिहास्येऽभिन्द्रियं
तज्जनयति, इत्यप्यसाम्प्रतम्; प्रत्यक्षस्य स्मृतिनिरपेक्षत्वात् ।
तत्सापेक्षत्वेऽपूर्वार्थसाक्षात्कारित्वाभावं स्यात् ।

२०

देशकालेत्याद्यप्युक्तमुक्तम्; यतो देशादिभेदेनाप्यध्यक्षं चक्षुः-
सम्बन्धमेवार्थं प्रकाशयत्प्रतीयते । न च प्रत्यभिज्ञा तं प्रकाशयति
पूर्वोत्तरविवर्त्तवत्येकत्वविषयत्वात्तस्याः । वैर्त्तमानश्चायं चक्षुः-
सम्बन्धः प्रसिद्धः ।

१ ज्ञानम् । २ सरणान्तरमिन्द्रियमर्थग्रहणाय न प्रवर्त्तते इत्युक्ते आह ।
३ सरणोत्तरकालम् । ४ दुष्टं भवति । ५ राजकीयं लौकिकं वचनं न विद्यते येन ।
सरणादिन्द्रियस्य प्रवर्त्तनं वा केनचिद्वा न विचार्यते येन । इन्द्रियं वा दुष्टं न भवति येन
कारणेन । ६ प्रत्यक्षसरणगृहीतप्राप्तित्वात्प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षमप्रमाणं स्यादित्यारेक्या-
माह । ७ तिर्यक्सामान्यम् । ८ आदिना गुणः । ९ भेदेन । १० सरणप्रत्यक्षरूपात् ।
११ कर्म पूर्वबोधोद्भवेन प्रतीयते इत्युक्ते आह । १२ जगत्सापेक्षेन । १३ प्रत्यभि-
ज्ञानलक्षणप्रत्यक्षमप्रमाणम् । १४ प्रत्यभिज्ञानलक्षणप्रत्यक्षम् । १५ पूर्वोदितपर्यायः ।
१६ आद्यः । १७ यतः । १८ अतः । १९ यतः । २० ततः । २१ कारितः ।
२२ यतः । २३ यतः । २४ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे उद्भाविते इव वाक्यं परिहारः ।

यदप्युच्यते-संरतः पूर्वदृष्टार्थानुसन्धानादुत्पद्यमाना मतिश्चक्षुः-
सम्बद्धत्वे प्रत्यक्षमिति; तदप्यसारम्; न हीन्द्रियमतिः स्मृति-
विषयपूर्वरूपग्राहिणी, तत्कथं सा तत्सन्धानमात्मसात्कुर्यात् ?
पूर्वदृष्टसन्धानं हि तत्प्रतिभासनम्, तत्सम्भवे चेन्द्रियमतेः
५ परोक्षार्थग्राहित्वात् परिस्फुटप्रतिभासता न स्यात् । यदि च
स्मृतिविषयस्वभावतया दृश्यमानोर्थः प्रत्यक्षप्रत्ययैरवगम्येत
तर्हि स्मृतिविषयः पूर्वस्वभावो वर्त्तमानतया प्रतिभातीति विप-
रीतस्यातिः सर्वं प्रत्यक्षं स्यात् । अव्यवधानेन प्रतिभासनलक्षण-
वैशद्याभावाच्च न प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षम् इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

१० तच्च तद्वेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादिप्रकारं
प्रतिपत्तव्यम् । तदेवोक्तप्रकारं प्रत्यभिज्ञानमुदाहरणद्वारेणाखिल-
जनावबोधार्थं स्पष्टयति—

यथा स एवायं देवदत्तः ॥ ६ ॥

गोसदृशो गवयः ॥ ७ ॥

१५ गोविलक्षणो महिषः ॥ ८ ॥

इदमस्मादूरम् ॥ ९ ॥

वृक्षोयमित्यादि ॥ १० ॥

ननु स एवायमित्यादि प्रत्यभिज्ञानं नैकं विज्ञानम्-‘सः’ इत्यु-
ल्लेखस्य स्मरणत्वात् ‘अयम्’ इत्युल्लेखस्य चाध्यक्षत्वात् । न चाभ्या-
२० व्यतिरिक्तं ज्ञानमस्ति यत्प्रत्यभिज्ञानशब्दाभिषेयं ज्ञात् । नाप्यन-
योरेक्यं प्रत्यक्षानुमानयोरपि तत्प्रसङ्गात् । स्पष्टेतरूपतया तयो-
र्मैदेऽत्रापि सोऽस्तु; तदसाम्प्रतम् । स्मरणप्रत्यक्षजन्यस्य पूर्वोक्त-
रविवर्तवर्त्येकद्रव्यविषयस्य सङ्कलनज्ञानस्यैकस्य प्रत्यभिज्ञानत्वेन
सुप्रतीतत्वात् । न खलु स्मरणमेवातीतवर्त्तमानविवर्त्तवर्तिद्रव्यं
२५ सङ्कलयितुमलं तस्यातीतविवर्त्तमात्रगोचरत्वात् । नापि दर्शनम्;

१ पुरुषस्य । २ प्रतिभासात् । ३ तर्कस्य प्रत्यक्षत्वापरिहारार्थमाह । ४ इन्द्रिय-
मतिः स्मृतिविषयरूपग्राहिणी न भवति इन्द्रियमतित्वादित्यसिद्धानुमाने सन्दिग्धानैक-
नित्यत्वे परिहारे इदं नाकप्यम् । ५ दृश्यमानार्थादिपरीतस्मृतिविषयो विपरीतस्यातिः ।
६ इत्यापयदे । ७ पूर्वस्मरणमुत्तरदर्शनं च व्यवधानकं प्रत्यभिज्ञानस्य । ८ प्रत्यभि-
ज्ञानभेदलक्षणप्रत्यक्षप्रमाणस्य निराकरणविशेषेण । ९ प्रत्यभिज्ञानभेदं दर्शयति ।
१० प्रागुक्तलक्षणलक्षितमेव । ११ तेन सदृश इत्यादि च । १२ ज्ञातृ सौयतः ।

तस्य वर्तमानमात्रपर्यायविषयत्वात् । तदुभयसंस्कारजनितं कल्पमा-
ज्ञानं तत्सङ्कलयतीति कल्पने तदेव प्रत्यभिज्ञानं सिद्धम् ।

प्रत्यभिज्ञानानभ्युपगमे च 'यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकम्' इत्याद्यनु-
मानवैयर्थ्यम् । तद्व्येकत्वप्रतीतिनिरासार्थम् न पुनः क्षणक्षयप्रसि-
द्ध्यर्थं तस्याध्यक्षसिद्धत्वेनाभ्युपगमात् । समारोपनिषेधार्थं तत् ५
इत्यप्यपेशलम् ; सोयमित्येकत्वप्रतीतिमन्तरेण समारोपस्याप्यस-
म्भवात् । तदभ्युपगमे च 'अयं सः इत्यध्यक्षस्मरणव्यतिरेकेण
नापरमेकत्वज्ञानम्' इत्यस्य विरोधः । न चाध्यक्षस्मरणे एव समा-
रोपः ; तेनानयोर्व्यवच्छेदेऽनुमानस्यानुत्पत्तिरेव स्यात् तत्पूर्वक-
त्वात्तस्य । कथं चास्याः प्रतिक्रियेऽभ्यासेतरावस्थार्थां प्रत्यक्षानुमा-१०
नयोः प्रामाण्यप्रसिद्धिः ? प्रत्यभिज्ञाया अभावे हि 'यदृष्टं यश्चानु-
मितं तदेव प्राप्तम्' इत्येकत्वाध्यवसायाभावेनानयोरविसंवादास-
म्भवात् । तथा च "प्रमाणमविसंवादि ज्ञानम्" [प्रमाणवा० २।१]
इति प्रमाणलक्षणप्रणयनमयुक्तम् । अन्यद् दृष्टमनुमितं वा प्राप्तं
चान्यदित्येकत्वाध्यवसायाभावेऽप्यविसंवादे प्रामाण्ये चानयोरभ्यु-१५
पगम्यमाने मरीचिकाचक्रे जलज्ञानस्यापि तत्प्रसङ्गः ।

न चैवंवादिनो नैरात्म्यभावनान्यासो युक्तः फलमावात् । न
चात्मदृष्टिनिर्बृत्तिः फलम् ; तस्या एवासम्भवात् । 'सोहम्' इत्य-
स्तीति चेत्, न ; स्मरणप्रत्यक्षोल्लेखव्यतिरेकेण तदनभ्युपगमात् ।
तथा च कुतस्तन्निमित्ता रागादयो यतः संसारः स्यात् ? २०

ननु पूर्वापरपर्याययोरेकत्वग्राहिणी प्रत्यभिज्ञा, तस्य चासम्भ-
वात् कथमियमविसंवादिनी यतः प्रमाणं स्यात् ? प्रत्यक्षेण हि
चुद्यद्रूपयोः प्रतीतिः स्वकालनियतार्थविषयत्वात्तस्य ; इत्यपि मनोर-
थमात्रम् ; सर्वथा क्षणिकत्वस्याग्रे निराकरीष्यमाणत्वात् । प्रत्यक्षे-
णाऽचुद्यद्रूपतयार्थप्रतीतिश्चानुभवत् कथं विसंवादकत्वं तस्याः ? २५
ततः प्रमाणं प्रत्यभिज्ञा स्वगृहीतार्थाविसंवादित्वात् प्रत्यक्षादिषत् ।
नीलाद्यनेकाकाराक्रान्तं चैकैज्ञानमभ्युपगच्छतः 'स एवायम्'
इत्याकारद्वयाक्रान्तैकज्ञाने को विद्वेषः ?

१ उदुभयस्य कार्यः संस्कारः सौगताभिप्रायेण वा सत्ता तेन चनितम् । २ प्रथम-
मेव विशदयतः (क्षणक्षयिनः) परमाणवः प्रत्यक्षेण निक्षीयन्ते इति वचनात् ।
३ अग्नयस्य । ४ सिद्धम् । ५ अर्थाव्यभिचारित्वमविसंवादः । ६ प्रमाणे अविसंवादि-
त्वादिति प्रसिद्धेऽनुमत्यर्थेण प्रामाण्यमप्रसिद्धयर्थैः साधयते इति प्रामाण्याविसंवाद-
योर्भेदः । ७ जलम् । ८ अन्यजलशिलार्थः । ९ प्रत्यभिज्ञानाभावादिलेखनानि ।
१० पक्षादात्मदर्शनाभावः । ११ कुतः । १२ नद्वयद्रूपयोः । १३ चतुर्धूपति-
च्छेदे । १४ अन्ययरूपतया । १५ परस्परतावात्म्येन ।

ननु स एवायमित्याकारद्वयं किं परस्परानुप्रवेशेन प्रतिभासते, अननुप्रवेशेन वा ? प्रथमपक्षेऽन्यतराकारस्यैव प्रतिभासः स्यात् । द्वितीयपक्षे तु परस्परविविकेप्रतिभासद्वयप्रसङ्गः । अथ प्रतिभासद्वयमेकाधिकरणमित्युच्यते; न, एकाधिकरणत्वासिद्धेः । न खलु ५ परोक्षापरोक्षरूपौ प्रतिभासावेकमधिकरणं विभ्राते सर्वैसंविदामेकाधिकरणत्वप्रसङ्गात् । इत्यप्यसारम्, तदाकारयोः कथञ्चित्परस्परानुप्रवेशेनात्माधिकरणतयात्मन्येवानुभवात् । कथं चैवंवादिनश्चित्रज्ञानसिद्धिः ? नीलादिप्रतिभासानां परस्परानुप्रवेशे सर्वेषामेकरूपतानुषङ्गात् कुतश्चित्रतैकनीलाकारज्ञानवत् ? तेषां तदननुप्रवेशे भिन्नसन्ताननीलादिप्रतिभासानामिवात्यन्तमेदसिद्धेर्नितरां चित्रताऽसम्भवः । एकज्ञानाधिकरणतया तेषां प्रत्यक्षतः प्रतीतेः प्रतिपादितदोषाभावे प्रकृतेऽप्यसौ मा भूतते एव ।

अथोच्यते-‘पूर्वमुत्तरं वा दर्शनमेकत्वेऽप्रवृत्तं कथं स्मरणसहायमपि प्रत्यभिज्ञानमेकैवे जनयेत् ? न खलु परिमलस्मरण- १५ सहायमपि चक्षुर्गन्धे ज्ञानमुत्पादयति’ इति, तदप्युक्तिमात्रम्, तथा च तज्जनकैत्वस्यात्र प्रमाणप्रतिपन्नत्वात् । न च प्रमाणप्रतिपन्नं वस्तुस्वरूपं व्यलीकविचारसहस्रेणाप्यन्यथाकर्तुं शक्यं सहकारिणा चाचिन्त्यशक्तित्वात् । कैथमन्यथाऽसर्वज्ञज्ञानमभ्यासविशेषसहायं सर्वज्ञज्ञानं जनयेत् ? एकत्वविषयत्वं च दर्शन- २० स्यापि, अन्यथा निर्विषयकत्वमेवास्य स्यादेकान्ताऽनित्यत्वस्य कदाचनाप्यप्रतीतेः । केवलं तेनैकत्वं प्रतिनियतवर्त्तमानपर्यायाधारतयार्थस्य प्रतीयते, स्मरणसहायप्रत्यक्षजनितप्रत्यभिज्ञानेन तु स्मर्यमाणानुभूयमानपर्यायाधारतयेति विशेषः ।

न च लूनपुनर्जातनखकेशादिवत्सर्वत्र निर्विषया प्रत्यभिज्ञाः २५ क्षणक्षयैकान्तस्यानुपलम्भात् । तदुपलम्भे हि सा निर्विषया स्यात् एकचन्द्रोपलम्भे द्विचन्द्रप्रतीतिवत् । लूनपुनर्जातनखकेशादौ च ‘स एवायं नखकेशादिः’ इत्येकत्वपरामर्शेप्रत्यभिज्ञानं ‘लूननखकेशादिसहशोयं पुनर्जातनखकेशादिः’ इति साहस्यनिबन्धनप्रत्यभिज्ञानान्तरेण बाध्यमानत्वादप्रमाणं प्रसिद्धम्, ३० न पुनः साहस्यप्रत्यवमर्शे तत्रास्याऽबाध्यमानतया प्रमाणत्व-

१ उभयोर्मध्ये । २ एकज्ञानस्य । ३ विषयः । ४ एकत्वद्वयः स्वादिति दूषणम् । ५ एकज्ञान । ६ जनेः । ७ देवदत्तपदवादि । ८ द्व्यपेक्षया । ९ एकाधिकरणप्रतीतेः । १० प्रत्यक्षम् । ११ पूर्वोत्तरविषयवर्त्तकत्वे । १२ दर्शनस्य । १३ प्रत्यक्षम् । १४ अभावरूपत्वेन । १५ सहकारिणामचिन्त्यशक्तिर्न यदि न स्यात् । १६ न केवलं प्रत्यभिज्ञानस्य । १७ दर्शनमेकत्वनिर्णयं यदि न स्यात् ।

प्रसिद्धेः । न चैकत्रैकत्वपरामर्शिप्रत्यभिज्ञानस्य मिथ्यात्वदर्शना-
त्सर्वत्रास्य मिथ्यात्वम्; प्रत्यक्षस्यापि सर्वत्र भ्रान्तत्वानुपपन्ना
किञ्चित्कुतश्चित्कस्यचित्प्रसिद्धेत् । ततो यथा शुक्ले शङ्के पीता-
भासं प्रत्यक्षं तत्रैव शुक्लाभासप्रत्यक्षान्तरेण बाध्यमानत्वादप्रमा-
णम्, न पुनः पीते कनकादौ तथा प्रकृतमपीति । ५

कथं च प्रत्यभिज्ञानविलोपेऽनुमानप्रवृत्तिः ? येनैवं हि पूर्वधू-
मोऽनेष्टव्यस्तस्यैव पुनः पूर्वधूमसदृशधूमदर्शनादग्निप्रतिपत्तिर्युक्ता
नान्यस्यान्यदर्शनात् । न च प्रत्यभिज्ञानमन्तरेण 'तेनेदं सदृशम्'
इति प्रतिपत्तिरस्ति; पूर्वप्रत्यक्षेणोत्तरस्य तत्प्रत्यक्षेण च
पूर्वस्याग्रहणात्, द्वयप्रतिपत्तिनिवन्धनत्वादुभयसादृश्यप्रतिपत्तेः १०
सम्बन्धप्रतिपत्तिवत् । ततः प्रत्यभिज्ञा प्रमाणमभ्युपगन्तव्या ।

तदप्रामाण्यं हि गृहीतग्राहित्वात्, स्मरणानन्तरभावित्वात्,
शब्दाकारधारित्वाद्वा, बाध्यमानत्वाद्वा स्यात् ? न तावदाद्य-
विकल्पो युक्तः; न हि तद्विषयभूतमेकं द्रव्यं स्मृतिप्रत्यक्षग्राह्य-
मित्युक्तम् । तद्गृहीतातीतवर्त्तमानविवर्त्ततादात्म्येनावस्थितद्रव्यस्य १५
कैश्चित्पूर्वार्थत्वेपि तद्विषयप्रत्यभिज्ञानस्य नामप्रामाण्यम्, कैश्चि-
कौदेरप्यप्रामाण्यप्रसङ्गात् तस्यापि सर्वथैवापूर्वार्थत्वासिद्धेः, स-
म्बन्धग्राहिविज्ञानविषयसार्ध्यादिसामान्यात् कथञ्चिदभिज्ञस्यानु-
मेर्यस्य देशकालविशिष्टस्य तद्विषयत्वात् कथञ्चित्पूर्वार्थत्वसिद्धेः ।
तत्र गृहीतग्राहित्वात्तत्राप्रामाण्यम् । २०

नापि स्मरणानन्तरभावित्वात्, रूपस्मरणानन्तरे रससञ्चिर्षते
समुत्पन्नरसज्ञानस्याप्यप्रामाण्यप्रसङ्गात् । तत्र हि रूपस्मृतेः
पूर्वकालभावित्वात् समनन्तरकारणत्वं "बोधोद्बोधरूपता" []
इत्यभ्युपगमात् । न चात्र बोधरूपतया समनन्तरकारणत्वमन्यत्र
स्मृतिरूपतयेत्यभिधातव्यम्, स्मृतिरूप-बोधरूपयोस्तादात्म्ये २५
कचिद्बोधरूपतया तत्तस्य कचित्तु स्मृतिरूपतयेति व्यवस्थापयि-
तुमशक्तेः । कथं चैवंवैदिनोऽनुमानं प्रमाणम् ? तद्वि लिङ्गलिङ्गि-

१ देवदत्तादावपि । २ किञ्चिद्वस्तु । ३ प्रमाणात् । ४ प्रतिपत्तुः । ५ नम-
तिशेषतः । ६ प्रकृतमिन्नस्य सादृश्यमिन्नमस्य च । ७ देवदत्तेव । ८ यद्वा-
दत्तस्य । ९ विपक्षलक्षणप्रसरदर्शनात् । १० वृत्त्यादिपर्यायस्य । ११ युवादि-
पर्यायस्य । १२ संयोगादि । १३ द्रव्यापेक्षया । १४ भादिना शब्दस्य ।
१५ तर्कः । १६ भादिना साधनम् । १७ नद्वयादेः । १८ साभिप्ये । १९ स्मृति-
रूपता बोधरूपता चास्ति स्मरणज्ञानस्य । २० स्मृती । २१ स्मरणानन्तरभावित्वात्
प्रमाणं प्रत्यभिज्ञा इत्येवम् ।

सम्बन्धस्वरणानन्तरमेवोपजायते, अन्यथा साधर्म्यदृष्टान्तोप-
न्यासो व्यर्थः स्यात् ।

शब्दाकारधारित्वं च प्रागेव प्रतिषिद्धम् ।

बाध्यमानत्वं चासिद्धम्; न खलु प्रत्यक्षं तद्बाधकम्; तस्य
५ तद्विषयप्रवृत्त्यऽसम्भवात् । यद्धि यद्विषये न प्रवर्तते न तत्र तस्य
साधकं बाधकं वा यथा रूपज्ञानस्य रसज्ञानम्, न प्रवर्तते च
प्रत्यभिज्ञानस्य विषये प्रत्यक्षमिति । नाप्यनुमानं तद्बाधकम्;
प्रत्यभिज्ञानविषये तस्याप्यप्रवृत्तेः, क्वचिदनुमेयमात्रे प्रवृत्ति-
प्रसिद्धेः । तस्य तद्विषये प्रवृत्तौ वा सर्वथा बाधकत्वविरोधः ।
१० ततः प्रमाणं प्रत्यभिज्ञा सकलबाधकरहितत्वात्प्रत्यक्षादिवत् ।

एतेनैव 'गोसदृशो गवयः' इत्यादि सादृश्यनिबन्धनं प्रत्यभि-
ज्ञानं प्रमाणभावेदितं प्रतिपत्तव्यम्, तस्यापि स्वविषये बाधवि-
धुरत्वस्य संवादकत्वस्य च प्रसिद्धेः ।

ननु सादृश्यस्यार्थेभ्यो मिश्रामिर्मादिविकल्पैर्विचार्यमाणस्यायो-
१५ गात्तद्विषयप्रत्यभिज्ञानस्य बाधविधुरत्वमविसंवादकत्वं चासि-
द्धम्; इत्यप्यास्तां तावत्, प्रत्यक्षादिप्रमाणविषयभूतत्वेनाबाधि-
ततत्वरूपस्य सामान्यसिद्धिप्रक्रमे प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् । न
च तस्मिन्नेव स्वपुत्रादौ 'तादृशोयम्' इति प्रत्यभिज्ञानं सादृश्य-
निबन्धनं 'स एवायम्' इत्येकत्वनिबन्धनप्रत्यभिज्ञानेन बाध्य-
२० मानमप्रमाणं प्रतिपाद्य स्वपुत्रादिना सदृशे पुरुषे 'तादृशोयम्'
इत्यपि प्रत्यभिज्ञानमप्रमाणं प्रतिपादयितुं युक्तम्; तस्याबाध्य-
मानत्वेन प्रमाणत्वात् ।

स्यान्मतम्-प्रत्यभिज्ञानमनुमानत्वेन प्रमाणमिष्यत एवं;
तथाहि-पूर्वोक्तैरार्थेक्षणयोरनर्थान्तरभूतं सादृश्यं तत्प्रत्यक्षाभ्यां
२५ प्रतीयत एव । यस्तु तथा प्रतिपद्यमानोपि सादृश्यव्यवहारं न
करोति घटविविक्तभूतलप्रतिपत्तावपि घटाभावव्यवहारं वैत,
स 'प्रागुपलब्धार्थसमनोयं तत्सदृशाकारोपलब्धोत्' इत्युभय-

१ ज्ञाने । २ शब्दाद्वैतनिराकरणे । ३ अभ्यासौ । ४ एकत्वनिबन्धनप्रत्यभिज्ञान-
प्रमाणसमर्थनग्रन्थेन । ५ देवदत्तेन सदृशो वरुदत्त इत्यादि च । ६ आदिना
उभयग्रहणम् । ७ पुनः । ८ आदिनानुमानादि । ९ एकसिद्धिः । १० वीर-
सिद्धान्तोपपत्तिः । ११ योगव्यवस्थायौ पूर्वोक्तकालमाविप्रलक्षसम्बन्धित्वेन पूर्वोक्तार्थ-
क्षणी । १२ यथा घटमाने व्यवहारं न करोति साक्षात् इत्यर्थः । १३ पूर्वदृष्टेन
वचनसादिना । १४ इत्यमानो देवदत्तादिः । १५ अयं इत्यमानो गवयो गोसदृशः
गोसदृशाकारत्वाद्गवयप्रलक्षत्वे सति सादृश्यव्यवहारात् । १६ व्यसिद्धयगत् ।

गतसदृशाकारदर्शनेन तथा व्यवहारं कार्यते, इदयानुपलम्भोप-
दर्शनेन घटाभावव्यवहारवत्; तदप्यसङ्गतम्; 'प्राकृप्रतिपन्नधूम-
सदृशोयं धूमः' इत्यादिलिङ्गप्रत्यभिज्ञाज्ञानैस्य लैङ्गिकत्वे तल्लिङ्ग-
प्रत्यभिज्ञाज्ञानस्यापि लैङ्गिकत्वमित्यनवस्थाप्रसङ्गात् ।

किञ्च, अर्थे सादृश्यव्यवहारस्य सदृशाकारनिवन्धनत्वे सदृ-
शाकारेपि कुतस्तद्व्यवहारसिद्धिः ? अपरतद्गतसदृशधर्मदर्शना-
च्चेत्, अनवस्था । धर्मिसादृश्यव्यवहारे चान्योन्याश्रयः । तन्नेयं
सादृश्यप्रत्यभिज्ञा लिङ्गजाभ्युपगन्तव्या ।

ननु गोदर्शनाहितसंस्कारस्य पुनर्गवयदर्शनाद्वि सरणे सति
'अनेन समानः सः' इत्येवमाकारस्य ज्ञानस्योपमानरूपत्वात् प्रत्य-
भिज्ञानता । सादृश्यविशिष्टो हि विशेषो विशेषविशिष्टं वा
सादृश्यमुपमानस्यैव प्रमेयम् । उक्तं च—

“तस्मादर्थैर्त्सर्यते तत्स्यात्सादृश्येन विशेषितम् ।

प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्विर्तम् ॥ १ ॥

प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि सादृश्ये गवि च स्मृते ।

विशिष्टस्योन्यतैः सिद्धेरुपमानप्रमाणता ॥ २ ॥”

१५

[मी० सू०० उपमान० सू०० ३७-३८] इति ।

तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; एकत्वसादृश्यप्रतीत्योः सङ्कल-
ना(न)ज्ञानरूपतया प्रत्यभिज्ञानतानतिक्रमात् । 'स एवायम्'
इति हि यथोत्तरपर्यायस्य पूर्वपर्यायेणैकताप्रतीतिः प्रत्यभिज्ञा, २०
तथा सादृश्यप्रतीतिरपि 'अनेन सदृशः' इत्यविशेषात् । पूर्वोत्तर-

१ अत्र घटो नास्ति इत्यतः सलनुपलम्भेति । २ इयं शिक्षया पूर्वदृष्टशिक्षयास-
माना इति च । ३ लिङ्गरूपस्य । ४ अनुमानरूपत्वे अङ्गीक्रियमाणे । ५ तद्वत्तत्त्वस्य ।
६ पर्वतधूमः पूर्वदृष्टधूमसदृशस्तत्सदृशाकारत्वात्सम्प्रतिपन्नधूमवत् । तत्सदृशाकारत्वेन
समानं सदृशाकारत्वात् सम्प्रतिपन्नसदृशाकारवत् । ७ गोगवयलक्षणे । ८ गोगवयौ
सदृशौ सदृशाकारत्वादिबदत्तवत्तवत् । गोगवयाकारौ सदृशौ सादृशाकारत्वात् तद्वत् ।
द्वितीयौ आकारौ सादृशौ सदृशाकारत्वादित्यादि । ९ त्वादिति । १० नीमासकः ।
११ पश्चात् । १२ गोलक्षणे । १३ धर्मः । १४ इष्टव्यमानात् । १५ गव-
यात् । १६ सर्वमाणम् । १७ वस्तु । १८ सर्वमाणगवान्वितम् । १९ उपमान-
स्येवैतन्न यः पदकारस्तस्य सवादं दर्शयति । २० गवयगते । २१ सादृश्यविशिष्टस्य
गोलाद्विशिष्टस्य वा साक्षादेः । २२ सरणप्रत्यक्षान्मात् । २३ सरणप्रत्यक्षान्मात्
सकाशव्यनुपमानं ततः । २४ प्रत्यभिज्ञा । २५ सङ्कलनरूपवायाः ।

प्रत्ययवेद्यैकत्वगोचरत्वात्तस्याः प्रत्यभिज्ञानत्वे सादृश्यप्रतीतावपि
तत्स्यात् । न हि तत्ताभ्यां न परिच्छिद्यते—

“वस्तुत्वे सति चास्यैवं सम्बद्धस्य च चक्षुषा ।

द्वयोरेकैत्र वा दृष्टौ प्रत्यक्षत्वं न वार्यते ॥ १ ॥

सामान्यवच्च सादृश्यमेकैकत्र समाप्यते ।

प्रतियोगिन्यदृष्टेऽपि तत्तत्सादुपलभ्यते ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० उपमान० श्लो० ३४-३५]

इत्यस्य विरोधानुषङ्गात् । यथा च पूर्वोत्तरप्रत्ययाभ्यां गवयग-
वादिविशिष्टमप्रतिपक्षं सादृश्यमनेन प्रतीयते तथा पूर्वोत्तरपर्या-
१० यविशिष्टमेकत्वं प्रत्यभिज्ञानेन ।

यदि च ‘एकत्वज्ञानमेव प्रत्यभिज्ञा सादृश्यज्ञानं तूपमानम्’
इत्यभ्युपगमः, तर्हि वैलक्षण्यज्ञानं किञ्चाम प्रमाणं स्यात् ? ययैव
हि गोदर्शनाहितसंस्कारस्य गवयदर्शिनः ‘अनेन समानः सः’
इति प्रतिपत्तिस्तथा महिष्यादिदर्शिनः ‘अनेन विलक्षणः सः’
१५ इति वैलक्षण्यप्रतीतिरप्यस्ति । सा च न प्रत्यभिज्ञोपमानयोरन्य-
तरा तदेकत्वसादृश्याविषयत्वात्, अतः प्रमाणान्तरं प्रमाण-
संख्यानियमविधातकृद्भवेत्परस्यै ।

ननु सादृश्याभावो वैलक्षण्यम्, तस्याभावप्रमाणविषयत्वाच्च
प्रमाणसंख्यानियमविधातः; तर्हि वैलक्षण्यभावाच्च सादृश्यमिति
२० स एव दोषः । नन्वेकस्यैव समानधर्मयोगः सादृश्यम्, तत्कार्यं
वैलक्षण्यभावावर्धनं स्यादिति चेत्, तर्हि वैलक्षण्यमपि विसदृश-
धर्मयोगः, तत्कार्यं सादृश्याभावमात्रं स्यादिति समानम् ?

एतेन ‘गौरिव गवयः’ इत्युपमानवाक्याहितसंस्कारस्य पुनर्वने
गवयदर्शनात् ‘अयं गवयशब्दवाच्यः’ इति संज्ञासंज्ञिसम्बन्धप्रति-

१ पूर्वोत्तरप्रत्ययवेद्यत्वाविशेषात् । २ अन्यथा । ३ उक्तप्रकारेण मीमांसकप्रमाण-
पेक्षया सादृशस्य वस्तुत्वं कमिति प्रत्ये अवयवसामान्ययोगप्रकारेण वस्तुत्वम् ।
४ गोगवयलक्षणयोर्विशेषयोः । ५ गवये वा । ६ प्रत्यक्षे सति । ७ एकत्र प्रत्यक्षत्वं
कार्यं न वार्यते इत्युक्ते आह । ८ अन्यस्य । ९ पक्षावता प्रत्येन एकत्व-
प्रतीतिवत्सादृश्यप्रत्यभिज्ञानस्यापि पूर्वोत्तरप्रत्ययवेद्यसादृश्यगोचरत्वमस्तीति समर्थितम् ।
१० अप्रतिपक्षं प्रतीयते । ११ प्रत्यभिज्ञानस्य उपमानस्य च । १२ वैलक्षण्यज्ञानं ।
१३ मीमांसकस्य । १४ वैलक्षण्यभावावर्धनं सादृश्यस्याभावप्रमाणवेद्यत्वात् उपमान-
प्रमाणभावे सति । १५ गोगवयलक्षणार्थस्य । १६ गवयः । १७ तुल्यभावरूपम् ।
१८ अवयव । १९ मीमांसकं प्रत्युपमानस्य प्रत्यभिज्ञानत्वसमर्थनपरेण प्रत्येन ।
२० उपमानस्य । २१ गवयशब्दस्य । २२ गवयपिण्डस्य ।

पक्षिरूपमानमिति नैयायिकमतमपि प्रत्युक्तम् । यथैव ह्येकदा घट-
मुपलब्धवतः पुनस्तस्यैव दर्शने 'स एवायं घटः' इति प्रतिपत्तिः
प्रत्यभिज्ञा, तथा 'गोसदृशो गवयः' इति सङ्केतकाले गोसदृश-
गवयाभिधानयोर्वाच्यवाचकसम्बन्धं प्रतिपद्य पुनर्गवयदर्शनात्त-
त्प्रतिपत्तिः प्रत्यभिज्ञा किञ्चेत्येते? न खलु पूर्वमप्रतिपत्तेःऽपूर्व- ५
दर्शनात्स्मृतिर्युक्ता, यतस्तथा प्रतिपत्तिः स्यात् ।

गोविलक्षणमहिष्यादिदर्शनाच्च 'अयं गवयो न भवति' इति
तैत्तिर्यसंज्ञिसम्बन्धप्रतिषेधप्रतिपत्तिश्च यद्युपमानम्—“प्रसिद्ध-
साधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्” [न्यायसू० १।१।६] इति व्याह-
न्येत । अथ प्रसिद्धार्थवैधर्म्यादपीर्यते, तर्हि 'प्रसिद्धार्थवैधर्म्याच्च १०
साध्यसाधनमुपमानम्' इत्युपस्थानं सङ्गे कर्तव्यम् ।

किञ्च, प्रसिद्धार्थैकत्वात्साध्यसाधनमुपमानमित्यप्यभ्युपगम्य-
ताम् । तथा च प्रत्यभिज्ञानस्य प्रत्यक्षेन्तर्भावोऽयुक्तः ।

तथा स्वसमीपवर्तिप्रासादादिदर्शनोपजनितसंस्कारस्य तत्प्र-
तियोगिभूधराद्युपलम्भात् 'इदमस्मादहरम्' इति प्रतिपत्तिः, १५
आमलकदर्शनाद्वितसंस्कारस्य विल्वादिदर्शनात् 'अतस्तत्सूक्ष्मम्'
इति, द्वैतदर्शनाविर्भूतसंस्कारस्य तद्विपरीतार्थोपलम्भात् 'अतोयं
प्राशुः' इति च प्रतिपत्तिः किं नाम मौनं स्यात् ?

तथा वृक्षाद्यनभिज्ञो यदा कश्चित्कञ्चित्पृच्छति कीदृशो
वृक्षादिरिति ? स तं प्रत्याह—'शाखादिमान्बृक्ष एकशृङ्गो गण्ड- २०
कोऽष्टपादः शरभः चादसटान्वितः सिंहः' इत्यादि । तैर्वाक्याद्वित-
संस्कारः प्रप्रा यदा शाखादिमतोर्थान् प्रतिपद्य 'अयं स वृक्षश-
ब्दवाच्यः' इत्यादिरूपतया तैत्तिर्यसंज्ञिसम्बन्धं प्रतिपद्यते तदा
किं नाम तैत्तिर्यमाणं स्यात् ? उपमानम्, इत्यसम्भाव्यम् ; सर्वत्रो-
क्तप्रकारप्रतिपत्तौ प्रसिद्धार्थसाधर्म्यासम्भवात् । ततः प्रति- २५

- १ ज्ञानवतः । २ आटनिकाद् ज्ञात्वा । ३ वाच्यवाचकसम्बन्धे । ४ गवयः ।
५ गोः । ६ ज्ञातार्थसम्बन्धसाधर्म्यात् । ७ गवयस्य । ८ साध्यस्य अयं गवयशब्द-
वाच्य इति सङ्गासङ्घिसम्बन्धस्य । ९ यवा । १० महिषस्य । ११ साध्यसाधनमुप-
मानस्य । १२ गोगवयलक्षणस्य । १३ महिषस्य । १४ साध्यस्य अयं गवयशब्दवाच्य
इति सङ्गासङ्घिसम्बन्धस्य । १५ गणना । १६ तन्नास्तेव भवदीये स्ये । १७ पूर्व-
पर्यायेण । १८ उत्तरपर्यायस्य । १९ स एवावमित्यादि । २० दूषणान्तरसमुच्चये ।
२१ कुञ्च । २२ प्रमाणम् । २३ पृच्छमानपुरुषस्य । २४ ते न ते सङ्गासङ्घिनश्च,
शृङ्ग इति सङ्गा, शाखादिभ्यान् पदार्थः सङ्गी । २५ अयं वृक्षशब्दवाच्य इत्यादिकम् ।
२६ इदमसादूमिलादौ च ।

नियतप्रमाणव्यवस्थामभ्युपगच्छता प्रतिपादितप्रकारा प्रतीतिः
प्रत्यभिज्ञैवेत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

अथेदानीमूहस्योपलम्भेत्यादिना कारणस्वरूपे निरूपयति—

उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः ॥११॥

- ५ उपलम्भानुपलम्भौ साध्यसाधनयोर्यथाक्षयोपशमं सङ्कृतं पुनः-
पुनर्वा दृढतरं निश्चयानिश्चयौ न भूयोदर्शनादर्शने । तेनातीन्द्रि-
यसाध्यसाधनयोरगमानुमाननिश्चयानिश्चयहेतुकसम्बन्धबोध-
स्यापि सङ्गहात्त्राव्याप्तिः । यथा ‘अस्त्यस्य प्राणिनो धर्मविशेषो
विशिष्टसुखादिसद्भावाभ्यानुपपत्तेः’ इत्यादौ, ‘आदित्यस्य गम-
१० नशक्तिसम्बन्धोऽस्ति गतिमत्त्वान्यथानुपपत्तेः’ इत्यादौ च । न
खलु धर्मविशेषः प्रवचनादन्यतः प्रतिपत्तुं शक्यः, नाप्यतोनुमा-
नादन्यतः कुतश्चित्प्रमाणादादित्यस्य गमनशक्तिसम्बन्धः साध्य-
त्वाभिमतः, साधनं वा गतिमत्त्वं देशादेशान्तरप्राप्तिमत्त्वानुमा-
नादन्यत इति । तौ निमित्तं यस्य व्याप्तिज्ञानस्य तत्तथोक्तम् ।
१५ व्याप्तिः साध्यसाधनयोरविनाभावः, तस्य ज्ञानमूहः ।

- न च बालावस्थायां निश्चयानिश्चयाभ्यां प्रतिपन्नसाध्यसाधन-
स्वरूपस्य पुनर्वृद्धावस्थायां तद्विस्मृतौ तत्स्वरूपोपलम्भेऽप्यविना-
भावप्रतिपत्तेरभावात्तयोस्तदहेतुत्वम्; स्मरणोदेरपि तदहेतुत्वात् ।
भूयो निश्चयानिश्चयौ हि स्मर्यमाणप्रत्यभिज्ञायमानौ तत्कारण-
२० मिति स्मरणादेरपि तन्निमित्तत्वप्रसिद्धिः । मूलकारणत्वेन
तूपलम्भादेरर्जोपदेशः, स्मरणादेस्तु प्रकृतत्वादेव तत्कारणत्व-
प्रसिद्धेरनुपदेश इत्यभिप्रायो गुरुणाम् ।

तच्च व्याप्तिज्ञानं तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिभ्यां प्रवर्तत इत्युप-
दर्शयति—इदमस्मिन्नित्यादि ।

- १ प्रसिद्धायेन पूर्वप्रतिपन्नेन प्राप्तादादिना ज्ञात्वादियानृक्ष इत्यादिवाक्येन ।
२ उत्सङ्गं तद्विलक्षणमित्यादिरूपा । ३ एकवारम् । ४ अक्षरानुपलम्भो भावान्तरो-
पलम्भोऽनिश्चयः । ५ प्रलक्षणे साध्यसाधनयोः । ६ उपलम्भानुपलम्भौ निश्चया-
निश्चयौ येन कारणेन । ७ तौ हेतू यस्य सम्बन्धबोधस्य । ८ प्रत्यक्षपूर्वकविश्या-
निश्चययोः सङ्ग्रहः जगिज्ञानात् । ९ निश्चयानिश्चयहेतुकसम्बन्धबोधस्य सङ्ग्रहः क
इत्युक्ते आह । १० अस्य प्राणिनोऽधर्मविशेषोऽस्ति दुःखादिसद्भावादित्यादौ च ।
११ चन्द्रो गमनशक्तियुक्तो गतिमत्त्वादित्यादौ च । १२ केवलमुपलम्भानुपलम्भयोः ।
१३ साध्यसाधनयोः । १४ आदिना प्रत्यभिज्ञानम् । १५ अनुपलम्भस्य च ।
१६ सत्ते । १७ प्रस्तुतात्मा ।

इदमस्मिन् सत्येव भवति असति तु
न भवत्येवेति ॥ १२ ॥

इदं साधनत्वेनाभिप्रेतं वस्तु, अस्मिन्साध्यत्वेनाभिप्रेते वस्तुनि सत्येव सम्भवतीति तथोपपत्तिः । अन्यथा साध्यमन्तरेण न भवत्येवेत्यन्यथानुपपत्तिः । वाशब्द उभयप्रकारसूचकः । ५

तैवैवोभयप्रकारौ सुप्रसिद्धव्यक्तिनिष्ठतया सुखावबोधार्थं प्रदर्शयति-

यथाग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च ॥१३॥

ननु चास्याऽप्रमाणत्वार्थिक कारणस्वरूपनिरूपणप्रयासेन, इत्यध्यसाम्प्रतम्; यतोस्याप्रामाण्यं गृहीतग्राहित्वात्, विसंवादि-१० त्वाद्वा स्यात्, प्रमाणविवर्धयपरिशोधकत्वाद्वा ? प्रथमपक्षे साध्यसाधनयोः साकल्येन व्याप्तिः प्रत्यक्षात् प्रतीयते, अनुमानाद्वा ? न तावत्प्रत्यक्षात्; तस्य सन्निहितमात्रगोचरतया देशादिवि-प्रकृष्टादेशोपायालम्बनत्वानुपपत्तेः, तत्रास्य वैशद्यासम्भवाच्च । न खलु सत्त्वानित्यैत्वाद्योऽग्निधूमाद्यो वा सर्वे भावाः सन्निधान-१५ वत् प्रत्यक्षे विशदतया प्रतिमान्ति, प्राणिमात्रस्य सर्वज्ञतापत्तेरनुमानानर्थक्यप्रसङ्गाच्च । अविचारकतया चाध्यक्षं 'यावान् कश्चिद्धूमः स सर्वोपि देशान्तरे कालान्तरे वाशिजन्माऽन्यजन्मा वा न भवति' इत्येतावतो व्यापारान् कर्तुमसमर्थम् । पुरोव्यवस्थितार्थेषु प्रत्यक्षतो व्याप्तिं प्रतिपद्यमानः सर्वोपसंहारेण प्रति-२० पद्यते; इत्यप्यसुन्दरम्; अविषये सर्वोपसंहारायोगात् ।

प्रत्यक्षपृष्ठभाविनो विकल्पस्यापि तद्विषयमात्राध्यवसायत्वात् सर्वोपसंहारेण व्याप्तिग्राहकत्वाभावः, तथा चानिश्चितप्रतिबन्धकत्वाद्देशान्तरादौ साधनं साध्यं न गमयेत् ।

ननु कार्यं धूमो हुतैर्भुजः कार्यधर्मानुवृत्तितो विशिष्टप्रत्यक्षा-२५ नुपलम्भाभ्यां निश्चितः, स देशान्तरादौ तदभावेपि भवस्तत्कार्य-

१ वृद्धेक्षोयम् । २ तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिरुचौ । ३ अनुमानः । ४ अनिर्णय-रूपत्वात्तर्कस्यप्रामाण्यमिलमिष्ये सत्याह । ५ क्षणिकत्व । ६ अन्यथेति शेषः । ७ निर्विकल्पकस्य परामर्शश्चेत्यत्र । ८ न विषये विचारः यावान्कश्चिद्धूमः स सर्वोपपक्षेरेव कार्यं नार्थान्तरत्वेति । ९ जनः । १० प्रत्यक्षस्य । ११ प्रत्यक्षतः सर्वोपसंहारे व्याप्तिग्रहणमात्रे च । १२ कर्तुं । १३ ज्ञेयः । १४ कार्यस्य धर्मः कारणे सति भवनलक्षणस्तदभावे भववनलक्षणः ।

तामेवातिवर्त्तत, इत्यार्कसिकोऽग्निनिवृत्तौ न कंचिदपि निवर्त्तत, नाप्यवश्यंतया तत्सद्भावे एव स्यादिति, अहेतोः खरविषाणवत्तस्यासत्त्वात् कंचिदप्युपलम्भो न स्यात्, सर्वत्र सर्वदा सर्वाकारेण चोपलम्भः स्यात् । स्वभावश्च तद्वैतोर्यस्याभावेऽपि । यदि स्यात्तदार्थस्य निःस्वभावत्वं स्वभावस्य वाऽसत्त्वं स्यात्, तत्स्वभावतया चास्य कदाचिदप्युपलम्भो न स्यात् । उक्तञ्च—

“कार्यं धूमो हुतमुजः कार्यधर्मानुवृत्तितः ।

सम्भवंस्तदभावेऽपि हेतुमत्तां विलङ्घयेत् ॥”

[प्रमाणवा० १।३५]

१०

“स्वभावेऽप्यविनाभावो भावमात्रानुवर्त्तितः ।

तदभावे स्वयं भावस्याभावः स्यादमेदतेः ॥”

[प्रमाणवा० १।४०] इति ।

व्याप्तिप्रतिपत्तावपि तन्निश्चयकालोपलब्धेनैव व्यापकेन व्याप्यस्य व्याप्तिः स्यात् तस्यैव तथा निश्चयात्, न तद्वशात् । १५ तद्वशास्यापि साध्यव्याप्तत्वग्रहणे तद्वाहिणो विकल्पस्यार्गुहीत-
ग्राहित्वं कथं न स्यात् ? यद्यु प्रत्यक्षेण कंचित्प्रदेशे साध्यव्याप्त-
त्वेन प्रतिपन्नं ततस्तस्यैवानुमाने विशेषतो दृष्टानुमानं स्यात्,
अन्यदेशादिस्यसाध्येनास्याव्याप्तेः ।

पारिशेष्यात्तद्वशेन व्यापकेनान्यत्र तादृशस्य व्याप्तिसिद्धिश्चेत्,
२० ननु किमिदं पारिशेष्यम्—प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा ? न तावत्प्रत्यक्ष-
क्षम्, देशान्तरस्थस्यानुमेयस्य प्रत्यक्षेणाप्रतिपत्तेः, अन्यथानु-
मानानर्थक्यानुषङ्गः । नाप्यनुमानम्, तत्राप्यनुमानान्तरेण व्याप्ति-
प्रतिपत्तावनवस्थाप्रसङ्गात्, तेनैव तत्प्रतिपत्तावन्योन्याश्रयः ।

१ अतिकमेत् । २ अकारणकः । ३ भूवरप्रदेशे । ४ सत्त्वलक्षणहेतुव्याप्यः ।
५ स्वलक्षणो हेतुव्याप्यः । ६ अनित्यत्वलक्षणस्य साध्यस्य व्यापकस्य । ७ अनुवा-
यिनि । ८ इति स्थितिः । ९ स्वभावस्य भावस्य वा । १० स्वभावस्य अर्थस्य वा ।
११ साध्यसाधनयोः । १२ सातन्त्र्येणानवस्थानाभावात्स्वभावस्य । १३ अविवेकादि-
स्वर्थः । १४ व्याप्तिसिद्धयकालोपलब्धस्य व्याप्यस्य साधनस्य । १५ साधनेन व्याप्त-
प्रकारेण । १६ पूर्वदृष्टधूमसदृशस्य धूमस्य न तथा निश्चयः । १७ पूर्वदृष्टसदृशस्यापि
धूमस्य । १८ सादृश्यमगृहीतम् । १९ महानसे । २० साधनम् । २१ साध्यस्य ।
२२ विशेषतः खदिरादिरूपतया दृष्टस्य महानसादौ वादृशाग्निः प्रतिपन्नस्य भूपरादौ
अनुमानस्य । २३ महानसस्याग्निसदृशेन । २४ भूपरानिवादादौ २५ अथ धूमोऽग्निना
व्याप्तौ धूमत्वान्महानसधूमवदिति ।

एतेन साध्यसाधनयोः साकल्येनानुमानाद्यासिप्रतिपत्तेस्तर्कस्याप्रामाण्यमिति प्रत्युक्तम् । तन्न प्रत्यक्षानुमानयोः साकल्येन व्यासिप्रतिपत्तौ सामर्थ्यम् ।

अथासदादिप्रत्यक्षस्य व्यासिप्रतिपत्तावसामर्थ्येऽपि योगिप्रत्यक्षस्य तत् स्यात्; इत्यप्यसत्; तस्याप्यविचारकतया तावतो^५ व्यापारान् कर्तुमसमर्थत्वाविशेषात् । कुतश्चास्योत्पत्तिः-विकल्प-मात्राभ्यासात्, अनुमानाभ्यासाद्वा? प्रथमपक्षे कामशोकादिज्ञान-वत्तस्याप्रामाण्यप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षेऽप्यन्योन्याश्रयः-व्यासिविषये हि योगिप्रत्यक्षे सत्यनुमानम्, तस्मिंश्च सति तदभ्यासाद्योगि-प्रत्यक्षमिति । अस्तु वा योगिप्रत्यक्षम्; तथापि-तत्प्रतिपन्नार्थेष्व-^{१०}नुमानवैयर्थ्यम् । साध्यसाधनविशेषेषु स्पष्टं प्रतिभातेष्वपि अनुमाने सर्वत्रानुमानानुषङ्गात् स्वरूपस्याप्यध्यक्षतोऽप्रसिद्धिः ।

परार्थं तस्यानुमानमिति चेत्; तर्हि योगी परार्थानुमानेन गृहीतव्यासिकम्, अगृहीतव्यासिकं वा परं प्रतिपादयेत्? गृहीत-व्यासिकं चेत्, कुतस्तेन गृहीता व्यासिः? न तावत्स्वसंवेदनेन्द्रिय-^{१५}मनोबिज्ञानैः; तेषां तदविषयत्वात् । योगिप्रत्यक्षेण व्यासिप्रति-पत्तावनुमानवैयर्थ्यमित्युक्तम् । अगृहीतव्यासिकस्य च प्रतिपाद-नानुपपत्तिरतिप्रसङ्गात् ।

मानसप्रत्यक्षाद्यासिप्रतिपत्तिरित्यन्ये; तेऽप्यतत्त्वज्ञाः; प्रत्यक्षस्येन्द्रियार्थसन्निकर्षप्रभवत्वाभ्युपगमात् । अणुस्वभावमनसो युग-^{२०}पदशेषार्थस्तत्सम्बन्धस्य च प्रागेव प्रतिविहितत्वात् कथं तत्प्रत्य-येनापि व्यासिप्रतिपत्तिः?

ननु साध्यसाधनैर्धर्मयोः क्वचिद्व्यक्तिविशेषे प्रत्यक्षत एव सम्बन्धप्रतिपत्तिः; इत्यप्युक्तम्; साकल्येन तत्प्रतिपत्त्यभावा-^{२५}नुषङ्गात् । साध्यं च किमग्निसामान्यम्, अग्निविशेषैः, अग्निसामान्य-विशेषो वा? न तावदग्निसामान्यम्; तदनुमाने सिद्धे साध्यर्था-पत्तेः, विशेषतोऽसिद्धेर्ध्वं? नाप्यग्निविशेषः; तस्यानन्वयत्वात् ।

१ अनुमानेन व्यासिप्रक्षणेऽनवस्थेः परेतराश्रयत्वमिच्छायाः परेण ग्रन्थेन । २ तद्वा-
हिलादस्याप्रामाण्यमित्यत्रासौ यो विकल्पः । ३ निर्विकल्पकत्वेन । ४ विकल्पस्या-
प्रमाणत्वेनाऽङ्गीकरणात् । ५ उत्पत्तेः । ६ स्वस्वरूपादौ । ७ मूलवत्तद्वैतित्यवगति-
नर प्रतिपादयेत् । ८ योगाः । ९ तेरेव । १० अणुपरिमार्गं मनः । ११ ते एक-
धर्मौ । १२ अक्षितवसायान्वयः । १३ यत्र यत्र मूलस्य तत्र खदिराग्निरिति ।
१४ अक्षितस्य । १५ साधनवैयर्थ्यमिति भावः । १६ तत्राविवादाद्व्यासिप्रक्षणेऽङ्ग-
पमास्य प्रसिद्धेः । कथमन्यथा साध्यसाधनयोर्व्यासिनिर्वातिः स्यात् । १७ देशदिना ।
१८ अक्षितस्य ।

अग्निसामान्यविशेषस्य साध्यत्वे तेन धूमस्य सम्बन्धः कथं सकल-
देशकालव्याप्त्याभ्यक्षतः सिध्येत्? तथा तत्सम्बन्धासिद्धौ च
यत्र यत्र यदा यदा धूमोपलम्भस्तत्र तत्र तदा तदाग्निसामान्य-
विशेषविषयमनुमानं नोदयमासादयेत् । न ह्यन्यथा सम्बन्ध-
५ ग्रहणमन्यैथानुमानोत्थानं नाम, अतिप्रसङ्गात् । ततः सर्वोक्षेणै
व्यासिग्राही तर्कः प्रमाणयितव्यः ।

ननु 'यावान्कश्चिद्धूमः स सर्वोप्यग्निजन्माऽनग्निजन्मा वा न
भवति' इत्युद्घोषोद्भविकल्पज्ञानस्य सम्बन्धग्राहिप्रत्यक्षफलत्वात्
प्रामाण्यम्; इत्यप्यसमीचीनम्; प्रत्यक्षस्य सम्बन्धग्राहित्वप्रतिषे-
१० धात् । तत्फलत्वेन चास्याऽप्रामाण्ये विशेषणार्हानफलत्वाद्दिशेर्ण्य-
ज्ञानस्याप्यप्रामाण्यानुषङ्गः । हानोपादानोपेक्षानुद्धिफलत्वास्य
प्रामाण्ये च ऊहापोहज्ञानस्यापि प्रमाणत्वमस्तु सर्वथा विशेषै-
मावात् । तन्नास्यै गृहीतग्राहित्वादप्रामाण्यम् ।

नापि विसंवादित्वात्; स्वविषयेस्य संवादप्रसिद्धेः । साध्य-
१५ साधनयोरविनाभावो हि तर्कस्य विषयः, तत्र चाविसंवादकत्वं
सुप्रसिद्धमेव । कथमन्यैथानुमानस्याविसंवादकत्वम्? न खलु
तर्कस्यानुमाननिबन्धनसम्बन्धे संवादाभावेऽनुमानस्यासौ घटते ।

ननु चास्य निश्चितः संवादो नास्ति विप्रकृष्टार्थविषयत्वात्;
तदसत्; तर्कस्य संवादसन्देहे हि कथं निस्सन्देहानुमानोत्था-
२० नम्? तदभावे च कथं सामस्येन प्रत्यक्षस्याप्रामाण्यव्यवच्छेदेन
प्रामाण्यप्रसिद्धिः? ततो निस्सन्देहमनुमानमिच्छता साध्यसा-
धनसम्बन्धग्राहि प्रमाणमसन्दिग्धमेवाभ्युपगन्तव्यम् ।

समारोपव्यवच्छेदकत्वाच्चास्य प्रामाण्यमनुमानवत् ।

प्रमाणविषयपरिशोधकत्वाज्जोहः प्रमाणम्; इत्यपि वार्तम्;
२५ प्रमाणविषयस्याप्रमाणेन परिशोधनविरोधात् मिथ्याज्ञानवत्प्र-
मेयार्थवञ्च । प्रयोगः-प्रमाणं तर्कः प्रमाणविषयपरिशोधकत्वा-
दनुमानैदिवत् । यस्तु न प्रमाणं स न प्रमाणविषयपरिशोधकः

१ अग्निसामान्यविशेषेण । २ देशान्तरकालान्तरसम्बन्धित्वेन । ३ अग्न्यविना-
भूतधूमज्जलानुमानोपपत्तिप्रसङ्गात् । ४ स्वीकारेण । ५ अन्यथा । ६ व्यतिरेक ।
७ साकल्येन । ८ दण्डज्ञान । ९ दण्डि । १० अनुमानलक्षणफलसङ्गात्वात् ।
११ तर्कस्य । १२ साकल्येन । १३ तर्कस्य अविसंवादकत्वं सुप्रसिद्धं यदि न स्यात् ।
१४ विषये । १५ प्रत्यक्षं प्रमाणमविसंवादकत्वादिति । १६ तर्कस्य संवादसन्देहे
निस्सन्देहानुमानोत्थानं न स्यात्ततः । १७ तर्कः । ८ अनुमान । ९ तर्कः ।
२० दूरस्थितसाधनस्य प्रत्यक्षविषयस्य यथानुमान परिशोधकम् ।

यथा मिथ्याज्ञानं प्रमेयो वार्थः, प्रमाणविषयपरिशोधकश्चायम्, तस्मात्प्रमाणम् ।

तथा, प्रमाणं तर्कः प्रमाणानामनुग्राहकत्वात्, यत्प्रमाणानामनुग्राहकं तत्प्रमाणम् यथा प्रवचनानुग्राहकं प्रत्यक्षमनुमानं वा, प्रमाणानामनुग्राहकश्चायमिति । न चायमसिद्धो हेतुः, ५ प्रमाणानुग्रहो हि प्रथमप्रमाणप्रतिपन्नार्थस्य प्रमाणान्तरेण तथैवावसायः, प्रतिपत्तिदार्ढ्यविधानात् । स चात्रास्ति प्रत्यक्षादिप्रमाणेनावगतस्य देशतः साध्यसाधनसम्बन्धस्य दृढतरमनेनावगमात् । ततः साध्यसाधनयोरविनाभावावबोधनिबन्धनमूहज्ञानं परीक्षादक्षैः प्रमाणमभ्युपगन्तव्यम् । १०

न चोहः सम्बन्धज्ञानजन्मा यतोऽपरापरोहानुसरणादनवस्था स्यात्, प्रत्यक्षानुपलम्भजन्मत्वात्तस्य । स्वयोग्यताविशेषवशाच्च प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं प्रत्यक्षवत् । प्रत्यक्षे हि प्रतिनियतार्थपरिच्छेदो योग्यतात एव न पुनर्स्तदुत्पत्त्यादेः, ततस्तत्परिच्छेदकत्वस्य प्राक्प्रतिषिद्धत्वात् । योग्यताविशेषः पुनः प्रत्यक्षस्येवास्य १५ स्वविषयज्ञानावरणबीर्यान्तरायक्षयोपशमविशेषः प्रतिपत्तव्यः ।

ननु यथा तर्कस्य स्वविषये सम्बन्धग्रहणनिरपेक्षा प्रवृत्तिस्तथानुमानस्याप्यस्तु सर्वत्र ज्ञाने स्वावरणक्षयोपशमस्य स्वार्थप्रकाशनहेतोरविशेषात्, तथा चानर्थकं सम्बन्धग्रहणार्थं तर्कपरिकल्पनम्; तदप्यसमीचीनम्; यतोऽनुमानस्याभ्युपगम्यत एव २० स्वयोग्यताग्रहणनिरपेक्षमनुमेयार्थप्रकाशनम्, उत्पत्तिस्तु लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धग्रहणनिरपेक्षा नास्ति, अगृहीततत्सम्बन्धस्य प्रतिपत्तुः कचित्कदाचित्तदुत्पत्त्यप्रतीतिः । न च प्रत्यक्षस्याप्युत्पत्तिः कैरणार्थसम्बन्धग्रहणापेक्षा प्रतिपत्ता; स्वयमगृहीततत्सम्बन्धस्यापि प्रतिपत्तुस्तदुत्पत्तिप्रतीतिः । तद्वदूहस्यापि स्वार्थसम्बन्ध- २५ ग्रहणानपेक्षस्योत्पत्तिप्रतिपत्तेर्नोत्पत्तौ सम्बन्धग्रहणापेक्षा शुक्तिमतीत्यनर्थकम् ।

अथेदानीमनुमानलक्षणं व्याख्यातुकामः साधनादित्याद्याह—

१ प्रत्यक्ष । २ दूरसमलक्षणात् । ३ द्वितीयप्रत्यक्षेण । ४ एकदेशतः । ५ निश्चयात् । ६ यथानुमानं साध्यसाधनसम्बन्धमाहितकपूर्वकमूहोपि तथा स्यात्, तथा चानवसा इत्युक्ते आह । ७ भूमभूमजविषय एक एवोहः सकलानुमानमवस्थापकः कुतो न स्यादित्युक्ते आह । ८ तस्य अर्थस्य । ९ स्वस्यानुमानस्य कारणभूता योग्यता । १० अपिज्ञानेनानुमानस्य सङ्ग्रहः । ११ इन्द्रिय । १२ घटादि । १३ स्वमात्मीयं तत्किमुपलम्भानुपलम्भौ अर्थ इति सम्बन्धः, अथवा उपलम्भानुपलम्भयोश्च सम्बन्धः । १४ न्यासिज्ञानस्य कारणस्वरूपनिरूपणम् । १५ स्वरूपम् ।

साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् ॥ १४ ॥

साध्याऽभावाऽसम्भवनियमनिश्चयलक्षणात् साधनादेव हि शक्याऽभिप्रेतौप्रसिद्धत्वैलक्षणस्य साध्यस्यैव यद्विज्ञानं तदनुमानम् । प्रोक्तविशेषणयोरन्यतरस्याप्यपाये ज्ञानस्यानुमानत्वा-
५ सम्भवात् ।

ननु चास्तु साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् । तत्तु साधनं निश्चितपक्षधर्मत्वादिरूपत्रययुक्तम् । पक्षधर्मत्वं हि तस्यासिद्ध-
त्वव्यवच्छेदार्थं लक्षणं निश्चीयते । सपक्ष एव सत्त्वं तु विरुद्धत्व-
व्यवच्छेदार्थम् । विपर्यये चासत्त्वमेव अनैकान्तिकत्वव्यवच्छि-
१० त्तये । तदनिश्चये साधनस्यासिद्धत्वादिदोषत्रयपरिहारासम्भ-
वात् । उक्तञ्च—

“हेतोस्त्रिष्वपि रूपेषु निर्णयस्तेर्न वर्णितः ।

असिद्धविपरीतार्थव्यभिचारिविपक्षतः ॥” [प्रमाणवा०

१।१६] इत्याशङ्क्याह—

१५ साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ॥ १५ ॥

असाधारणो हि स्वभावो भावस्य लक्षणमव्यभिचारद्वेष्टै-
रूप्यवत् । न च त्रैरूप्यस्यासाधारणता; हेतौ तदाभासे च
तत्सम्भवात्पञ्चरूपत्वादिवत् । असिद्धत्वादिदोषपरिहाराख्या
अन्यथानुपपत्तिनियमनिश्चयलक्षणत्वादेव प्रसिद्धः, स्वयमसिद्ध-
२० स्यान्न्यथानुपपत्तिनियमनिश्चयासम्भवाद् विरुद्धानैकान्तिकत्वे ।

किञ्च, त्रैरूप्यमात्रं हेतोरलक्षणम्, विशिष्टं वा त्रैरूप्यम् ।
तत्राद्यविकल्पे धूमवत्त्वादिवच्चकृत्वादावप्यस्य सम्भवात्कथं तल्ल-
क्षणत्वम् ? न खलु ‘कुतोऽसर्वज्ञो वक्तृत्वादे रथ्यापुरुषवत्’ इत्यत्र
हेतोः पक्षधर्मत्वादिरूपत्रयसद्भावे परैर्गमकत्वमिष्यतेऽन्यथानुप-
२५ पक्षत्वविरहात् । द्वितीयविकल्पे तु कुतो वैशिष्ट्यं त्रैरूप्यस्या-
न्यत्रान्यथानुपपत्तिनियमनिश्चयात्, इति स एवास्य लक्षण-
मर्ह्यं परीक्षादक्षैरुपलक्ष्यते । तद्भावे पक्षधर्मत्वाद्यभावेपि ‘उदे-

१ शब्दार्थः=प्रत्यक्षावभाषितम् । २ अभिमतम्=इहम् । ३ अप्रसिद्धत्वम्=असिद्धम् ।

४ यतः । ५ साध्यसाधनयोः । ६ साध्यस्य साधनस्य वा । ७ सपक्षे यत्र सत्त्वं
मित्युच्यमाने विपक्षे यकदेवेन सत्त्वनिवृत्तिः साध । तत्रव्यवच्छेदार्थं साधयेन विपक्षे
हेतोरसत्त्वं यथा सादिति विपक्षे चासत्त्वं चेत्पुनश्च । ८ दिग्भागेन । ९ पक्षे यत्र
विपक्षात्तेभ्यस्ततः । १० सारूप्येण । ११ यतः । १२ तादृशः । १३ अनुमाने ।
१४ नीडेः । १५ वर्जने । १६ परिपूर्णम् ।

व्यति शकटं कृत्तिकोदयात्' इत्यादेर्गमकत्वेन वक्ष्यमाणत्वात्, सपक्षे सत्त्वरहितस्य च आवर्णत्वादेः शब्दानित्यत्वे साध्ये गमकत्वप्रतीतिः ।

ननु नित्यादाकाशादेर्विपक्षादिव सपक्षादप्यनित्याद् घटादेः सतो व्यावृत्तत्वेन आवर्णत्वादेरसाधारणत्वादनेकान्तिकता; तद-^५ सत्यम्; असाधारणत्वस्यानैकान्तिकत्वेन व्यस्यऽसिद्धेः । सप्रक्ष-विपक्षयोर्हि हेतुरसत्त्वेन निश्चितोऽसाधारणः, संशयितो वा ? निश्चितश्चेत्, कथमनैकान्तिकः ? पक्षे साध्याभावेन उपपद्यमानतया निश्चितत्वेन संशयहेतुत्वाभावात् ।

आवर्ण्यत्वं हि अवर्णनान्प्राप्त्यत्वम्, तज्ज्ञानं च शब्दादात्मानं^{१०} लभमानं तस्य ग्राहकम् नान्यथा, "नाकारणं विषयः" [] इत्यभ्युपगमात् । शब्दश्च नित्यस्तज्जननैकस्वभावो यदि; तर्हि अवर्णप्रणिधानात्पूर्वं पश्चाच्च तज्ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्गः । न ह्यविकले कारणे कार्यस्यानुत्पत्तिर्युक्ता अतर्कार्यत्वप्रसङ्गात् । प्रयोगः-यस्मिन्नविकले सत्यपि यन्न भवति न तत्तत्कार्यम् यथा सत्यप्य-^{१५} विकले कुलाले अभवन्पटो न तत्कार्यः, सत्यपि शब्दे पूर्वं पश्चाच्चाविकले न भवति च तज्ज्ञानमिति । ननु च श्रोत्रप्रणिधानात्पूर्वं पश्चाच्च तज्ज्ञानजननैकस्वभावोपि शब्दस्तज्जनयत्यावृत्तत्वात्; तदप्यसङ्गतम्; आवरणं हि द्रष्टृदृश्ययोरेतराले वर्तमानं वस्तु लोके प्रसिद्धम्, यथा काण्डोपेटादिकम् । श्रोत्र-^{२०} शब्दयोश्च व्यापकत्वे सर्वत्र सर्वदा तत्करणैकस्वभावयोरत्यन्त-संनिष्ठयोः किं नामान्तराले वर्तते ? वृत्तौ वा तयोर्ध्यापकत्व-व्याघातः, तदवष्टब्धदेशपरिहारेणानयोर्वर्तनादिति 'आतवच-नादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः' (परीक्षामु० ३।१००) इत्यत्र विस्तरैर्ण विचारयिष्यामः । तज्ज्ञानोऽऽवृत्तत्वात्तज्ज्ञानाजनकत्वं^{२५} किन्त्वसत्त्वादेव, इति आवर्णत्वादेः सपक्षविपक्षाभ्यां व्यावृ-त्तत्वेपि पक्षे साध्याविनाभावित्वेन निश्चितत्वाद्गमकत्वमेव । न च सपक्षविपक्षयोरसत्त्वेन निश्चितः पक्षे साध्याविनाभावित्वेन निश्चेतुमशक्यः; सर्वानित्यत्वे साध्ये सत्त्वादेरहेतुत्वप्रसङ्गात् ।

१ शब्दत्वादेः । २ विद्यमाना । ३ वक्ष्यमाणत्वादेः तत्तदनैकान्तिकमिति । ४ शब्दे । ५ अनित्यत्वस्य । ६ आवर्ण्यत्वे हेतोः । ७ साध्याभावे अनुपपद्यमानतया निश्चितत्वं हेतोः कथमित्युक्ते आह । ८ पक्षाग्रतायाः । ९ शब्दप्रकरणे । १० अवर्ण-ज्ञानस्य । ११ अवर्णनान् शब्दकार्यं न भवति शब्देऽविकले सति पूर्वं पश्चाच्चाविव-मानत्वात् । १२ आवरणकानुमितिः । १३ द्रष्टृदृश्ययोः । १४ मध्ये । १५ वस्तुविशेषः । १६ आवरणभावं । १७ शब्दस्य । १८ हेतुः । १९ सर्वमनित्यं सत्त्वादिति ।

न खलु सत्त्वादिर्विपक्ष एवासत्त्वेन निश्चितः, सपक्षेपि तदसत्त्व-
निश्चयात् ।

सपक्षस्याभावात्तत्र सत्त्वादेरसत्त्वनिश्चयाच्चिश्चयहेतुत्वम्, न
पुनः श्रावणत्वादेः सङ्गावेपीति चेत्, ननु श्रावणत्वादिरपि यदि
५ सपक्षे स्यात्तदा तं व्याप्नुयादेवेति समानान्तर्व्याप्तिः । सति विपक्षे
धूमादिश्चासत्त्वेन निश्चितो निश्चयहेतुर्मा भूत् । विपक्षे सत्यसति
चासत्त्वेन निश्चितः साध्याविनाभावित्वाद्धेतुरेवेति चेत्, तर्हि
सपक्षे सत्यसति चासत्त्वेन निश्चितो हेतुरस्तु तत एव । नन्वेवं
सपक्षे तदेकदेशे वा सन्कथं हेतुः ? 'सपक्षेऽसत्त्वेव हेतुः' इत्यनव-
१० धारणात् । विपक्षेपि तदसत्त्वानवधारणमस्तु, इत्ययुक्तम् ; साध्या-
विनाभावित्वव्याधातानुपपन्नात् ।

यदि पुनः सपक्षविपक्षयोरसत्त्वेन संशयितोऽसाधारण इत्यु-
च्यते; तदा पक्षत्रयवृत्तितया निश्चितया संशयितया वाऽनै-
कान्तिकत्वं हेतोरित्यायातम् । न च श्रावणत्वादौ सास्तीति
१५ गमकत्वमेव । विरुद्धताप्येतेन प्रत्युक्ता । यो हि विपक्षैकदेशेपि
न वर्तते, स कथं तत्रैव वर्तते ? असिद्धता तु दूरोत्सारितैव,
श्रावणत्वस्य शब्दे सत्त्वनिश्चयात् । तत्र पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं
वा हेतोर्लक्षणम् ।

विपक्षे पुनरसत्त्वमेव निश्चितं साध्याविनाभावनियमनिश्चय-
२० स्वरूपमेव । इति तदेव हेतोः प्रधानं लक्षणमस्तु किमत्र लक्षणा-
न्तरेण ? न च सपक्षे सत्त्वाभावे हेतोरनन्वयत्वानुपपन्नः । अन्त-
र्व्याप्तिलक्षणस्य तथोपपत्तिरूपस्यान्वयस्य सङ्गावादन्वयानुप-
पत्तिरूपव्यतिरेकवत् । न खलु दृष्टान्तधर्मिण्येव साधर्म्यं वैधर्म्यं
वा हेतोः प्रतिपत्तव्यमिति नियमो युक्तः ; सर्वस्य क्षणिकत्वादि-
२५ साधने सत्त्वादेरहेतुत्वप्रसङ्गात् ।

१ नित्ये । २ निश्चयहेतुत्वम् । ३ सपक्षस्य । ४ सपक्षेऽसत्त्वनिश्चयादिति शेषः ।
५ सपक्षे (पक्षे) । ६ श्रावणत्वादेः सति विपक्षे तत्रासत्त्वेन निश्चितस्य स्वसाध्यसाधकत्वे
अङ्गीक्रियमाणे । ७ पक्षे । ८ स्वसाध्यत्वम् । ९ सति विपक्षे असत्त्वाविशेषात् ।
१० हेतुः । ११ सपक्षे असत्त्वेन निश्चितस्य हेतुत्वप्रकारेण । १२ चेतनास्तर-
स्वापादिमत्त्वात् सत्त्वादिति हेतुः सिद्धेपु न प्रवर्तते अन्यत्र प्रवर्तते । १३ नित्ये ।
१४ न केवलं सपक्षे । १५ अनैकान्तिकत्वनिराकरणपरेण अन्येन । १६ पक्ष-
धर्मत्वसपक्षेसत्त्वलक्षणेन । १७ पक्षे एव । १८ अन्यतः । १९ व्यतिरेकः ।
२० दृष्टान्तस्यासत्त्वात् ।

नेनु त्रैरूप्यं हेतोर्लक्षणं मा भूत् 'पक्षान्येतानि फलान्येकशाखा-
प्रभवत्वादुपयुक्तफलवत्' इत्यादौ 'भूख्यं देवदत्तस्तत्पुत्रत्वादि-
तरतत्पुत्रवत्' इत्यादौ च तदामासेपि तत्सम्भवात् । पञ्चरूपत्वं
तु तल्लक्षणं युक्तमेवानवद्यत्वात्, एकशाखाप्रभवत्वस्याबाधित-
विषयत्वासम्भवाद् आत्मताग्राहिप्रत्यक्षेणैव तद्विषयस्य बाधित-
त्वात्, तत्पुत्रत्वादेश्चासत्प्रतिपक्षत्वार्भावात् तत्प्रतिपक्षस्य शास्त्र-
व्याख्यानादिलिङ्गस्य सम्भवात् ।

प्रकरणसमस्याप्यसत्प्रतिपक्षत्वाभावादहेतुत्वम् । तस्य हि
लक्षणम् "यस्मात् प्रकरणचिन्ता स प्रकरणसमः" । [न्यायसू०
१।२।७] इति । प्रक्रियेते साध्यत्वेनाधिक्रियेते अनिश्चितौ पक्ष-
प्रतिपक्षौ यौ तौ प्रकरणम् । तस्य चिन्ता संशयात्प्रभृत्याऽऽनिश्च-
यात्पर्यालोचना र्येते भवति स एव, तन्निश्चयार्थं प्रयुक्तः प्रकरण-
समः । पक्षद्वयेष्वर्थं समानत्वाद्धर्मयत्राप्यन्वयादिसङ्गात्वात् ।
तर्था-अनित्यः शब्दो नित्यधर्मानुपलब्धेर्घटादिवत्, यत्पुन-
र्नित्यं तन्नानुपलब्धमाननित्यधर्मकम् यथात्मादि एवमेकेनान्य-
तरानुपलब्धेरनित्यत्वसिद्धौ साधकत्वेनोपन्यासे सति द्वितीयः
ग्राह-यद्यनेन प्रकारेणानित्यत्वं प्रसाध्यते तर्हि नित्यतासिद्धि-
रप्यस्त्वऽन्यतरानुपलब्धेस्तत्रापि सङ्गात्वात् । तथा हि-नित्यः
शब्दोऽनित्यधर्मानुपलब्धेरत्मादिवत्, यत्पुनर्न नित्यं तन्नानुप-
लब्धमानाऽनित्यधर्मकम् यथा घटादिः

२०

इत्यप्यविचारितरमणीयम्; साध्याविनाभावित्वव्यतिरेकेणाप-
रस्याबाधितविषयत्वादेरसम्भवात् तदेव प्रधानं हेतोर्लक्षणमस्तु
किं पञ्चरूपप्रकल्पनया ? नै च प्रमाणप्रसिद्धत्रैरूप्यस्य हेतोर्विषये
वाधा सम्भवति; अनयोर्विरोधात् । साध्यसङ्गावे एव हि हेतो-

१ यौगः । २ अक्षितः । ३ स इवामस्तत्पुत्रत्वादित्यादौ च । ४ अनुगोक्षि-
द्रूपत्वाजलवत् इति च । ५ साध्यस्य । ६ तत्पुत्रो विद्वान् शास्त्रव्याख्यानसङ्गा-
वात् । ७ तत्पुत्रत्वादिति हेतोः । ८ हेतोः । ९ लोक्रियेव । १० बादिना यः
पक्षो निश्चितः स प्रतिवादिना अनिश्चितः । यः प्रतिवादिना निश्चितः स बादिना न
निश्चितः । ११ बादिप्रतिवादिभ्याम् । १२ वापकादिष्वप्ये । १३ आ मर्णादायम् ।
१४ हेतोः । १५ हेतुः । १६ हेतोः । १७ पक्षधर्मत्वादि । १८ सपक्षधर्मत्वादि ।
१९ तथा हि । २० नित्यत्व । २१ यौगेन । २२ अनित्यधर्मस्य । २३ गीर्मांसकः ।
२४ असत्प्रतिपक्षत्वस्य च । २५ यौगमतमालम्ब्य सूरिभिरुच्यते । २६ वतः ।
२७ किं त्रैरूप्यं का च बाधा कथं च तयोर्विरोध इत्युक्ते आह ।

धर्मिणि सद्भावस्त्रैरूप्यम्, तदभावे एव च तत्र तत्सम्भवो बाधा,
मौवाभावयोश्चैकत्रैकस्य विरोधः ।

किञ्च, आध्यक्षागमयोः कुतो हेतुविषयबाधकत्वम्? स्वार्थ-
(र्था)व्यभिचारित्वाच्चेत्; हेतौवपि सति त्रैरूप्ये तत्समानमित्यसा-
५ वप्यनयोर्विषये बाधकः स्यात् । इदंयते हि चन्द्रार्कादिस्थैर्यग्राह्यऽ-
ध्यक्षं देशान्तरप्राप्तिलिङ्गप्रभवानुमानेन बाध्यमानम् । अथैक-
शाखाप्रभवत्वाद्यनुमानस्य भ्रान्तत्वाद्वाध्यत्वम् । कुतस्तद्भ्रान्त-
त्वम्-अध्यक्षवाध्यत्वात्, त्रैरूप्यवैकल्याद्वा? प्रथमपक्षेऽन्योन्या-
श्रयः-भ्रान्तत्वेऽध्यक्षवाध्यत्वम्, ततश्च भ्रान्तत्वमिति । द्वितीय-
१० पक्षस्त्वयुक्तः; त्रैरूप्यसद्भावस्यात्र परेणाभ्युपगमात् । अनभ्युप-
गमे वाऽत एवास्याऽगमकत्वोपपत्तेः किमध्यक्षवाधासाध्यम्?

किञ्च, अबाधितविषयत्वं निश्चितम्, अनिश्चितं वा हेतोर्लक्षणं
स्यात्? न तावदनिश्चितम्; अतिप्रसङ्गात् । नापि निश्चितम्-
तन्निश्चयासम्भवात् । स हि स्वसम्बन्धी, सर्वसम्बन्धी वा?
१५ स्वसम्बन्धी चेत्, तत्कालीनः, सर्वकालीनो वा? न तावत्तत्का-
लीनः; तस्यासम्यगनुमानेपि सम्भवात् । नापि सर्वकालीनः;
तस्यासिद्धत्वात्, 'कालान्तरेऽप्यत्र बाधकं न भविष्यति' इत्यसर्व-
विदा निश्चेतुमशक्यत्वात् ।

सर्वसम्बन्धिनोपि तत्कालस्योत्तरकालस्य वा तन्निश्चयस्या-
२० सिद्धत्वम्; अर्वाग्रदृशा 'सर्वत्र सर्वदा सर्वेषामत्रै बाधकस्याभावः'
इति निश्चेतुमशक्येस्तन्निश्चयनिबन्धनस्याभावात् । तन्निबन्धनं
ह्यनुपलम्भः, संवादो वा स्यात्? न तावदनुपलम्भः; सर्वात्मिसम्ब-
न्धिनोऽस्याऽसिद्धानैकान्तिकत्वात् । नापि संवादः; प्रागनुमान-
प्रवृत्तेस्तस्यासिद्धेः । अनुमानोत्तरकालं तत्सिद्ध्यभ्युपगमे पर-
२५ स्पराश्रयः-अनुमानात्प्रवृत्तौ संवादनिश्चयः, ततश्चाबाधितविषय-
त्वावगमेऽनुमानप्रवृत्तिरिति । न चाविनाभावनिश्चयादेवाबाधित-
विषयत्वनिश्चयः; हेतौ पञ्चरूपयोगिन्यऽविनाभावपरिसमाप्ति-

१ पूर्वते । २ यदा हेतोर्धर्मिणि सद्भावस्तदा पक्षधर्मत्वम् । यदा च साध्यसद्भावे
हेतोर्धर्मिणि सद्भावस्तदागमः । यदा च साध्यसद्भावे एव हेतोर्धर्मिणि सद्भावस्तदा
विपक्षेऽसत्त्वम् । कथं साध्यसद्भाव एव इत्येवकारेण विपक्षेऽसत्त्वं गम्यम् । ३ साध्यस्य ।
४ साध्यः । ५ एकशाखाप्रभवत्वलक्षणे । ६ यौगेन । ७ पक्षधर्मत्वादेरप्यनिश्चितस्य
हेत्वङ्गत्वप्रसङ्गात् । ८ अनुमानकालीनः । ९ एकशाखाप्रभवत्वलक्षणे । १० सम्म-
गनुमाने । ११ अनुमान । १२ नृणाम् । १३ अनुमानविषये । १४ भावुकस्य ।
१५ आत्मनः स्वस्य ।

वादिनामबाधितविषयत्वाऽनिश्चये अविनाभावनिश्चयस्यैवासम्भ-
वात् । तन्नैकशास्त्राप्रभवत्वादेर्बाधितविषयत्वाद्धेतुत्वाभासत्वम् ।

नापि तत्पुत्रत्वादेः सत्प्रतिपक्षत्वात् । यतः प्रतिपक्षस्तुल्य-
बलः, अनुल्यबलो वा सन् स्यात् ? न तावदाद्यः पक्षः, द्वयो-
स्तुल्यबलत्वे 'एकस्य बाधकत्वमपरस्य च बाध्यत्वम्' इति ५
विशेषानुपपत्तेः । न च पक्षधर्मत्वाद्यभाव एकस्य विशेषः, तस्या-
नभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा अत एवैकस्य दुष्टत्वसिद्धेर्न
किञ्चिदनुमानवाधया ? द्वितीयपक्षेप्यनुल्यबलत्वं तैयोः पक्षधर्म-
त्वादिभावाभावरूपकृतम्, अनुमानवाधाजनितं वा स्यात् ? प्रथम-
पक्षोनभ्युपगमादेवायुक्तः, पक्षधर्मत्वादेरुभयोरप्यभ्युपगमात् । १०
द्वितीयोप्यसम्भाव्यः, तस्याद्यापि विवादपदापन्नत्वात् । न खलु
द्वयोस्तैरुप्याविशेषतस्तुल्यत्वे सति 'एकस्य बाध्यत्वमपरस्य च
बाधकत्वम्' इति व्यवस्थापयितुं शक्यमविशेषेणैव तत्प्रसङ्गात् ।
इतरेतराश्रयश्च-अनुल्यबलत्वे सत्यनुमानवाधा, तस्यां चातुल्य-
बलत्वमिति ।

१५

यच्च प्रकरणसमस्यानित्यः शब्दोऽनुपलभ्यमाननित्यधर्मकत्वा-
दित्युदाहरणम्, तत्रानुपलभ्यमाननित्यधर्मकत्वं शब्दे तत्त्वतोऽ-
प्रसिद्धम्, न वा ? प्रथमपक्षे पक्षवृत्तितयाऽस्याऽसिद्धेरसिद्धत्वम् ।
द्वितीयपक्षे तु साध्यधर्मोन्विते धर्मिणि तत्प्रसिद्धम्, तद्रहिते वा ?
आद्यविकल्पे साध्यवत्येव धर्मिण्यस्य सद्भावसिद्धिः, कथमगम- २०
कत्वम् ? न हि साध्यधर्ममन्तरेण धर्मिण्यऽभवनं विहायापरं
हेतोरविनाभावित्वम् । तच्चेत्समस्ति, कथं न गमकत्वम् अवि-
नाभावनियन्धनत्वात्स्य ? द्वितीयपक्षे तु विरुद्धत्वम्, साध्यधर्म-
रहिते धर्मिणि प्रवर्त्तमानस्य विपक्षवृत्तितया विरुद्धत्वोपपत्तेः ।
अथ सन्दिग्धसाध्यधर्मवति तत्तत्र प्रवर्त्तते; तर्हि सन्दिग्ध- २५
विपक्षव्यावृत्तिकत्वादस्याऽनैकान्तिकत्वम् ।

नन्वेवं सर्वो हेतुरनैकान्तिकः स्यात्, साध्यसिद्धेः प्राक्साध्य-
धर्मिणः साध्यधर्मसदसत्त्वाश्रयत्वेन सन्दिग्धत्वात्, ततोऽनुमेय-
व्यतिरिक्ते साध्यधर्मवति धर्म्यन्तरे साध्याभावे च प्रवर्त्तमानो

१ यांगादीनाम् । २ उक्त्यायेन । ३ तत्पुत्रत्वव्याख्यानवत्त्वहेतोः । ४ तत्पुत्र-
त्वादित्येतस्य । ५ यौगेन । ६ तत्पुत्रत्वादित्येतस्य । ७ तत्पुत्रत्वव्याख्यानवत्त्वहेतोः ।
८ तत्पुत्रत्वस्य पक्षधर्माद्यभावः व्याख्यानवत्त्वस्य च पक्षधर्मादिनद्भावः । ९ तत्पुत्र-
त्वव्याख्यानवत्त्वहेतोः । १० सन्दिग्धसाध्यधर्मवति प्रवर्त्तमानस्यानैकान्तिकत्वप्रका-
रेण । ११ पूर्वतस्य शब्दस्य वा । १२ अनित्यतयाऽनुमेयाच्छब्दात् । १३ षटे ।
१४ आकाशादी । १५ सपक्षविपक्षयोरिति यावत् ।

हेतुरनैकान्तिकः, साध्याभाववत्त्वेव तु पक्षधर्मत्वे सति विरुद्धः, यस्तु विपक्षाद्भावाच्चः सपक्षे चानुगतः पक्षधर्मो निश्चितः स्वसाध्यं गमयत्येवेत्यभ्युपगन्तव्यम्; इत्यप्यसुन्दरम्; यतो यदि साध्यधर्मिव्यतिरिक्ते धर्म्यन्तरे हेतोः स्वसाध्येन प्रतिबन्धोऽभ्युपगम्यते; तर्हि साध्यधर्मिण्युपादीयमानो हेतुः कथं साध्यं साधयेत्, तत्र साध्यमन्तरेणाप्यस्य सद्भावाभ्युपगमात्? तद्व्यतिरिक्ते एव धर्म्यन्तरे साध्येनास्य प्रतिबन्धग्रहणात् । न चान्यत्र साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुरन्यत्र साध्यं गमयत्यतिप्रसङ्गात् । ततः साध्यधर्मिण्येव हेतोर्व्याप्तिः प्रतिपत्तव्या ।

- १० ननु यदि साध्यधर्मोऽन्वितत्वेन साध्यधर्मिण्यसौ पूर्वमेव प्रतिपन्नः, तर्हि साध्यधर्मस्यापि पूर्वमेव प्रतिपन्नत्वाद्धेतोः पक्षधर्मताग्रहणस्य वैयर्थ्यम्; तदप्यसङ्गतम्; यतः प्रतिबन्धसाधकप्रमाणेन सर्वोपसंहारेण 'साधनधर्मः साध्यधर्माभावे क्वचिदपि न भवति' इति सामान्येन प्रतिबन्धः प्रतिपन्नः । पक्षधर्मताग्रहणकाले १५ तु 'यत्रैव धर्मिण्युपलभ्यते हेतुस्तत्रैव साध्यं साधयति' इति पक्षधर्मताग्रहणस्य विशेषविषयप्रतिपत्तिनिबन्धनत्वान्नानुमानस्य वैयर्थ्यम् । न खलु विशिष्टधर्मिण्युपलभ्यमानो हेतुस्तद्वत्साध्यमन्तरेणोपपत्तिर्भावः, तस्य तेन व्यासत्वाभावप्रसङ्गात् । अत एव प्रतिपन्नप्रतिबन्धैकहेतुसद्भावे धर्मिणि न विपर्यीतसाध्योपस्थापकहेत्वन्तरस्य सद्भावः, अन्यथा द्वयोरप्यनयोः स्वसाध्याविनाभावित्वात्, नित्यत्वानित्यत्वयोश्चैकैकैकद्वैकान्तवादिमते विरोधतोऽसम्भवात्, तद्व्यवस्थापकहेत्वोरप्यसम्भवः । सम्भवे वा तयोः स्वसाध्याविनाभूतत्वान्नित्यत्वानित्यत्वधर्मसिद्धिर्धर्मिणः स्यादिति कुतः प्रकरणसमस्यागमकता एकान्तत्वसिद्धिर्वा?

१ शब्दो नित्यः कृतकत्वादटवत् । साध्याभाववत्त्वेव षटे कृतकत्वस्य शब्दलक्षण-पक्षधर्मत्वे सति प्रवर्तमानस्य विरुद्धत्वम् । २ शब्दात् पर्वतात् वा । ३ षटे महानसादौ वा । ४ शब्दे पर्वते वा । ५ षटे महानसे वा । ६ षटे महानसे वा । ७ शब्दे पर्वते वा । ८ काष्ठे कोहलेख्यत्वोपलम्भाद्धेतुः तथाप्रसङ्गात् । ९ शब्दे । १० पक्षधर्मताग्रहणात् । ११ ऊहेन । १२ हेतुः । १३ ननु यथासाकं साध्यधर्मव्यतिरिक्ते एव धर्म्यन्तरे स्वसाध्येन हेतोः प्रतिबन्धग्रहणाभ्युपगमे साध्यधर्मिणि साध्यधर्ममन्तरेणाप्यस्य सद्भावादगमकत्वम् । तथा यवतामपि प्रतिबन्धप्रसाधकप्रमाणेन सामान्येनैवाविनाभावप्रतिपत्तेर्विशिष्टधर्मिणि उपलभ्यमानस्य हेतोस्तद्वत्साध्यमन्तरेणाप्युपपत्तिसम्भवादित्युक्ते वक्ति न खल्विति । १४ अन्यथा । १५ सर्वत्र । १६ अनुपलभ्यमाननित्यधर्मत्व-लक्षणस्य । १७ शब्दे । १८ नित्यत्वलक्षणम् । १९ अनुपलभ्यमाननित्यधर्मकत्व-लक्षणस्य । २० हेतोः । २१ शब्दे धर्मिणि । २२ अनित्यत्वमेव शब्दस्येति ।

अथान्यतरस्यात्र स्वसाध्याविनाभाववैकल्यम्; तथाप्यत एवास्या-
गमकतेति किं तत्प्रतिपादनप्रयासेन ?

किञ्च, नित्यधर्मानुपलब्धिः प्रसज्यप्रतिषेधरूपा, पर्युदासरूपा
वा शब्दानित्यत्वे हेतुः स्यात् ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; तुच्छाभावस्य
साध्यासाधकत्वाभिषिद्धत्वाच्च । द्वितीयपक्षे तु अनित्यधर्मोप-
लब्धिरेव हेतुः, सा च शब्दे यदि सिद्धा कथं नानित्यतासिद्धिः ?
अथ तच्चिन्तासम्बन्धिपुरुषेणैसायै प्रयुज्यत इति तत्रासिद्धा; तर्हि
कथं न सन्दिग्धो हेतुर्वादिनं प्रति ? प्रतिवादिनस्तृप्तौ स्वरूपा-
सिद्ध एव; नित्यधर्मोपलब्धेस्तत्रास्यै सिद्धेः । तत्र पाञ्चरूपत्वम-
प्यस्य लक्षणं घटते अवाधितविषयत्वादेर्विचार्यमाणस्यायोगात्पक्ष- १०
धर्मत्वादिवत् ।

यदि चैकस्य हेतोः पक्षधर्मत्वाद्यनेकधर्मात्मकत्वमिष्यते,
तदाऽनेकान्तः समाश्रितः स्यात् । न च यदेव पक्षधर्मस्य सपक्षे
एव सत्त्वम् तदेव विपक्षात्सर्वतोऽसत्त्वमित्यभिधातव्यम्; अन्यथ-
व्यतिरेकेयोर्भावाभावरूपयोः सर्वथा तादात्म्यायोगात्, तत्त्वे वा १५
केवलान्वयी केवलव्यतिरेकी वा सर्वो हेतुः स्यात्, न त्रिरूपवान् ।

व्यतिरेकेस्य चाभावरूपत्वात्तद्वैतोस्तद्रूपत्वेऽभावरूपो हेतुः स्यात् ।
न चाभावस्य तुच्छरूपत्वात्स्वसाध्येन धर्मिणा सम्बन्धः । यदि च
सपक्ष एव सत्त्वं विपक्षात्सत्त्वम् न ततो भिन्नम्; तर्हि तदेवास्या-
साधारणं कथं स्यात् ? वस्तुभूतान्याभावेमन्तरेण प्रतिनियतस्या- २०
स्याप्यत्रासम्भवात् । अथ ततस्तदन्यधर्मान्तरम्; तर्ह्येकस्यानेक-
धर्मात्मकस्य हेतोस्तथाभूतसाध्याविनाभाववित्वेन निश्चितस्य अने-
कान्तात्मकार्थप्रसाधकत्वात् कथं न पर्योपन्यस्तहेतूनां विरुद्धता ?
एकान्तविरुद्धेनानेकान्तेन व्यासत्वात् ।

किञ्च, परैः सामान्यरूपो हेतुरुपादीयते, विशेषरूपो वा, उभ- २५
यम्, अनुभयं वा ? सामान्यरूपश्चेत्; तर्हि व्यक्तिभ्यो भिन्नम्,
अभिन्नं वा ? भिन्नं चेत्; न; व्यक्तिभ्यो भिन्नस्य सामान्यस्याऽप्रति-

१ इयोन्ये एकसाधस्य । २ प्रकरण । ३ नित्यधर्मानुपलब्धेरनित्यत्वं प्रतिपाद-
नामः । अनित्यधर्मानुपलब्धेरनित्यत्वं साधयाम् । इति । ४ शब्दे धर्मिणि । ५ शब्दे ।
६ असत्प्रतिपक्षत्वस्य च । ७ हेतोः । ८ सपक्षे सत्त्वम् । ९ विपक्षेऽसत्त्वम् ।
१० अस्मिन्पक्षे व्यतिरेकस्यान्वयरूपत्वे तादात्म्यम् । ११ अत्र पक्षे अन्यस्य
व्यतिरेकरूपित्वे तादात्म्यम् । १२ केवलव्यतिरेकीत्यस्मिन्पक्षे । १३ हेतुरास्य ।
१४ अभावपक्षे हेतोः । १५ यसः । १६ भिन्न । १७ यसः । १८ विपक्षात्सत्त्व-
लक्षणम् । १९ वैशेषिक ।

भासमानतयाऽलिङ्गत्वात् । तथाभूतस्यास्य सामान्यविचारे निरा-
करिष्यमाणत्वाच्च । अथामिहम्, कथञ्चित्, सर्वथा वा ? सर्वथा
चेत्, न; सर्वथा व्यक्त्यव्यतिरिक्तस्यास्य व्यक्तिसरूपवद्व्यक्त्यन्तरा-
ननुगमतः सामान्यरूपतानुपपत्तेः । कथञ्चित्पक्षस्त्वनभ्युपगमा-
५ देवायुक्तः । नापि व्यक्तिरूपो हेतुः, तस्यासाधारणत्वेन गमकत्वा
योगात् । नाप्युभयं परस्पराननुविद्धम्; उभयदोषप्रसङ्गात् ।
नाप्यनुभयम्, अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणामेकाभावे द्वितीयविधाना
दनुभयस्यासत्त्वेन हेतुत्वायोगात् । ततः पदार्थान्तरानुवृत्तैवावृ-
त्तारूपमात्मानं विभ्रदेकमेवार्थस्वरूपं प्रतिपल्लुमैदामेदंप्रत्ययप्रस-
१० त्तिनिबन्धनं हेतुत्वेनोपादीयमानं तथाभूतसाध्यसिद्धिनिबन्धन-
मभ्युपगन्तव्यम् ।

किञ्च, एकान्तवाद्युपन्यस्तहेतोः किं सामान्यं साध्यम्, विशेषो
वा, उभयं वा, अनुभयं वा ? न तावत्सामान्यम्; केवलस्यास्या-
सम्भवादर्थक्रियाकारित्वविकलत्वाच्च । नापि विशेषः, तस्या-
१५ नैतुयायितया हेत्वऽव्यापकस्य साधयितुमशक्तेः । नाप्युभयम्,
उभयदोषानतिवृत्तेः । नाप्यनुभयम्; तस्यासतो हेत्वव्यापकत्वेन
साध्यत्वायोगात् ।

यच्चान्यदुक्तम्—“प्रत्यक्षपूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेपेवत्सा-
मान्यतो दृष्टं च ।” [न्यायसू० १।१।५] इति । तत्र पूर्ववच्छेपेव-
२० त्केवलान्वयि, यथा सैद्धन्तैर्द्वर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनमनेकत्वात्
पञ्चाङ्गुलवत् । पञ्चाङ्गुलव्यतिरिक्तस्य सदसद्वर्गस्य पक्षीकरणाद-
न्यस्याभावाद्विपक्षाभावः, अत एव व्यतिरेकाभावः । पूर्ववत्सामा-
न्यतोऽदृष्टम् केवलव्यतिरेकि, यथा सात्मकं जीवच्छरीरं प्राणा-
दिमत्त्वादिति । पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोऽदृष्टमन्वयव्यतिरेकि,

१ पराभ्युपगतसामान्यं धर्मि सामान्यरूपता न भवति व्यक्त्यन्तराननुगमात्
व्यक्तिरूपवत् । सामान्यं व्यक्त्यन्तरं नानुगच्छति व्यक्तिस्योऽभिन्नत्वात् व्यक्ति-
स्वरूपवत् । २ परेण । ३ दृष्टान्तेऽस्तरेण । ४ परस्परानुविद्धं तु परैर्नाभ्युपगम्यते ।
५ निरोपेक्षम् । ६ व्यक्त्यन्तरेषु । ७ सदृशपरिणामेन । ८ व्यक्तिभेदेषु । ९ देश-
कालादिभेदेन भेदप्रत्ययः । १० धूमो धूम इत्यभेदप्रत्ययः । ११ व्यक्तिरहितस्य ।
१२ पाकादि । १३ अन्यत्र व्यक्तिनिषेधेषु । १४ लिङ्गप्रत्यक्षं यतः । १५ समाप्त-
रहितानि पदान्यत्र । १६ सर्वावयवापेक्षाऽऽदौ प्रयुज्यमानत्वात्पक्षः पूर्वः पूर्वगस्य
हेतोरस्तीति पूर्ववत्पक्षधर्म इत्यर्थः । १७ ज्ञेयो दृष्टान्तः सोऽस्य हेतोरस्तीति ज्ञेयवत्स-
पक्षे सन्नित्यर्थः । १८ सपक्षे सत्साध्यम् । १९ द्रव्यगुणादि । २० प्रागभावादि ।
२१ पक्षीभूताद् दृष्टान्तभूतादन्यस्य व्यतिरिक्तस्य विपक्षस्य । २२ साधनसामान्यस्य
साध्यसामान्येन व्याप्तिः सामान्यं सतोऽदृष्टं व्यतिरेकिदृष्टान्ते ।

यथा विवादास्पदं तनुकरणभुवनादि बुद्धिमत्कारणं कार्यत्व।
दिभ्यो घटादिवत् । यत्पुनर्बुद्धिमत्कारणं न भवति न तत्कार्यत्वा-
दिधर्माधारो यथात्मैदिः' इति ।

तदप्येतैन प्रत्याख्यातम्; सर्वत्रान्यथानुपपन्नत्वस्यैव हेतु-
लक्षणतोपपत्तेः, तस्मिन्सत्येव हेतोर्गमकत्वप्रतीतिः । ५

केवलान्वयिनो हि यद्यन्यथानुपपन्नत्वं प्रमाणनिश्चितमस्ति,
किमन्वयाभिधानेन ? अथान्वयाभावे तदभावस्तदनिश्चयो वेति
तदभिधानम्; स्यादेतत् यद्यविनाभावस्तेन व्याप्तः स्यात्, अन्व्या-
पकनिवृत्तेर्वाप्यनिवृत्तावतिप्रसङ्गात् । व्याप्तश्चेत्; तर्हि प्राणादौ
तन्निवृत्तावविनाभावनिवृत्तेरगमकत्वं स्यात् । न खलु यद्यस्यै १०
व्यापकं तत्तदभावे भवति वृक्षत्वाभावे शिशपात्ववत् । गमकत्वे
वास्य नान्वयेर्नास्तौ व्याप्तः स्यात् । यदभावे हि यद्भवति न तत्तेन
व्याप्तम् यथा रासभाभावे भवन्धूमादिर्न तेन व्याप्तः, भवति
चान्वयाभावेपि तदविनाभाव इति ।

'सदसद्दर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनमनेकत्वात्' इत्ययं च हेतुः १५
कुतः केवलान्वयी ? व्यतिरेकाभावाच्चेद्; अयमपि कुतः ? तद्विष-
यस्य विपक्षस्याभावाच्चेद्; अथ कोयं विपक्षाभावः—पक्षसपक्षावेव,
निवृत्तिर्मात्रं वा ? प्रथमपक्षे परैर्मतप्रसङ्गः अभावस्य भावान्तर-
सभावतास्वीकृतात् । द्वितीयपक्षे तु स तथाविधः प्रतिपक्षः, न
वा ? न प्रतिपक्षश्चेत्; तर्हि विपक्षाभावसन्देहाद्व्यतिरेकाभावोपि २०
सन्दिग्ध इति केवलान्वयोपि तादृगेव । अथ प्रतिपक्षः; स
यदि साध्यनिवृत्त्या साधननिवृत्त्याधारः प्रतिपक्षः; तर्हि स एव
विपक्षः, कथं विपक्षाभावो यतो व्यतिरेकाभावः ? साध्यसाधना-
भावाधारतया निश्चितस्य विपक्षत्वात् । तच्च भाववदभावस्यापि
न विरुध्यते, कैथमन्यथा 'सदसद्दर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनम्' २५
इत्यत्रासन् पक्षः स्यात् ? असन् पक्षो भवति न विपक्ष इति वि.कृतो

१ व्यतिरेकिदृष्टान्तः । २ गगनं च । ३ अन्यथानुपपन्नत्वमेव हेतुलक्षणमिति
समर्थनपरेण ग्रन्थेन । ४ अनुमाने । ५ तर्कलक्षण । ६ दृष्टान्ते हेतोः सत्यमन्वयः ।
७ अन्वयस्य । ८ अविनाभावस्य । ९ सत्यात् । १० घटनिवृत्तौ पटनिवृत्तिप्रसङ्गात् ।
११ अविनाभावोऽन्वयेन । १२ अविनाभावस्य । १३ अन्वयः । १४ अविनाभावः ।
१५ प्रसङ्गः । १६ केनमत । १७ केनेन । १८ विपक्षाभावो विपक्षो भवति साध्य-
निवृत्त्या साधननिवृत्त्याधारः स्यात्सन्प्रतिपक्षविपक्षवत् । १९ भाव एव महान्दलक्षणः
आकाशलक्षणो वा विपक्षः स्यात् न त्वभाव इत्युक्ते आह । २० अभावस्य विपक्षत्वे
विरोधश्चेत् । २१ असन् । २२ केन ।

विभागः ? अथाऽसद्गणशब्देन सामान्यसमवायान्त्यविशेषा एवो-
च्यन्ते, नाभावः; तर्हि तद्विषयं ज्ञानं न कस्यचिदनेन प्रसाधित-
मिति सुव्यवस्थितम् ईश्वरस्याखिलकार्यकारणग्रामपरिज्ञानम् !
प्रागभावाद्यज्ञाने कार्यत्वादेरप्यज्ञानात् ।

- ५ किञ्च, रय्यभावोऽत्र पक्षसपक्षाभ्यां बहिर्भूतः; तद्वनेनानेकत्वा-
दित्यनैकान्तिको हेतुः, तदनेकत्वेऽपि कस्यचिदेकज्ञानावलम्बन-
त्वानभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा कथमभावो न पक्षः ? तथा
विपक्षोऽप्यस्तु । नन्वेवं विपक्षाभावोऽपि तदालम्बनमिति पक्ष एव
स्यात्, तथा च पुनरपि विपक्षाभावेऽपि एव इति चेत्, तर्हि पुनरपि
१० तदेव बोध्यम्—‘कोऽयं विपक्षाभाव इति ? यदि पक्षसंपक्षावेव,
भावाद्भिन्नस्याभाषस्याभावः ।

- अथ तुच्छ विपक्षनिवृत्तिस्तदभावः; सोऽपि यद्यप्रतिपक्षस्तर्हि
सन्दिग्धः । तत्सन्देहे च व्यतिरेकाभावोऽपि तादृगेवेति न निश्चितः
केवलान्वयः’ इत्यादि तदेवस्थं पुनः पुनरावर्तते इति चैक-
१५ प्रसङ्गः । ततः केवलान्वयित्वेनाभ्युपगतस्य विपक्षाभाव एव
तुच्छो विपक्षः । ततः साध्यनिवृत्त्या साधननिवृत्तिश्चेति कथं न
व्यतिरेकः ? अत एवाविनाभावस्य तत्परिज्ञानस्य च प्राणादिमरं-
वद्भावात्मिकमन्वेयेन ?

- अथ विपक्षाभावस्योपादानत्वायोगात् ततः साध्यसाधनयो-
२० र्वावृत्तिः; तत्र, ‘भावः प्रागभावादिभ्यो भिन्नस्ते वा परस्पर-
तो भिन्नाः’ इत्यादावप्यभावस्यापादानत्वाभावप्रसङ्गात् सर्वेषां
साङ्कर्यं स्यात् ।

- किञ्च, अन्वयो व्याप्तिरभिधीयते । सा च त्रिधा—बहिर्व्याप्तिः,
साकल्यव्याप्तिः, अन्तर्व्याप्तिश्चेति । तत्र प्रथमव्याप्तौ भग्नघटव्यति-
२५ रिक्तं सर्वे क्षणिकं सत्त्वात्कृतकत्वाद्वा तद्वत्, विवादापत्त्याः प्रत्यया

१ ये सत्तासम्बन्धात्सन्देहो सद्गणशब्दाः । ये तु स्वतः सन्देहो असद्गणशब्द-
शब्दा इत्यर्थः । २ अनेकत्वादित्यनेन अनुमानेन । ३ उपहासः । ४ प्रागसत्कार्य
यसिन् कपाले उत्पन्नं यस्य वस्तुनो घटलक्षणस्य विषयेन अभ्युपगमात्कारणम् ।
५ कारणत्वम् । ६ प्रागभावादिरूपः । ७ अनुमानेन । ८ अभावस्यैकभावावलम्बन-
त्वम् । ९ तुच्छरूपोऽभावः । १० अभावस्य विपक्षतासद्भावप्रकारेण । ११ विपक्ष-
व्याप्ताभावश्चेति । १२ यकज्ञानरूपः । १३ पूर्वोक्तेन । १४ विपक्षाभावस्तर्हि ।
१५ सा प्राक्कनी अवस्था यस्य । १६ अन्वयचक्रः । १७ हेतोः । १८ व्यतिरेक-
सद्भावादेन । १९ ईदृशे वद । २० अनेकत्वादिगतेन । २१ तुच्छरूपत्वादापादा-
नत्यायोगः । २२ भावाभावाणां प्रागभावादीनां भावाभावादीनाम् ।

निरालम्बनाः प्रत्ययत्वात्त्वप्रत्ययवत्, ईश्वरः किञ्चिज्ज्ञो रागादिमान्वा वक्तृत्वादिभ्यो रथ्यापुरुषवत्^१ इत्यादेर्गमकत्वं स्यात् केवलान्वयस्यात्र सुलभत्वात् । ननु सर्वं न सत्त्वादिकं क्षणिकत्वादिना व्याप्तम् आत्मादौ क्षणिकत्वाद्यसत्त्वात् । तन्न, तदसत्त्वे तत्रार्थक्रियाऽसत्त्वात् सत्त्वं न स्यात् ।

किञ्च, घटादिदृष्टान्ते सत्त्वादिकं क्षणक्षयादौ सति दृष्टमपि यदि क्वचित्तदभावेपि स्यान्न तर्हि बहिर्व्याप्तिरन्वयः, लक्षणयुक्ते बाधासम्भवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात् ।

अथ सकलव्याप्तिरन्वयः, ननु केयं सकलव्याप्तिः ? 'दृष्टान्तधर्मिणीव साध्यधर्मिण्यन्यत्र च साध्येन साधनस्य व्याप्तिः सा'^{१०} इति चेत्, सा कुतः प्रतीयताम् ? प्रत्यक्षतः, अनुमानाद्वा ? प्रत्यक्षतश्चेत्, किमिन्द्रियात्, मानसाद्वा ? न तावदिन्द्रियात्, चक्षुरादेरिन्द्रियस्य सकलसाध्यसाधनार्थसन्निकर्षवैधुर्यं तदनुपपत्तेः । न हि तद्वैधुर्यं तदुक्तम् "इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमव्यपदेश्यमऽव्यभिचारि व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्" [न्यायसू० १।१।४]^{१५} इत्यभिधानात् । तस्य तत्सन्निकर्षे वा प्राणिमात्रस्याशेषहत्वप्रसङ्गात् कश्चिदीश्वरादिशेष्येत ।

ननु साध्यसाधनयोः साकल्येन ग्रहणं सकलव्याप्तिग्रहणम् । साध्यं चाग्निसामान्यं साधनं च धूमसामान्यम्, तयोश्चान्वयवयोरेकत्रापि साकल्येन ग्रहणमस्ति, विशेषप्रतिपत्तिस्तु सर्वत्र^{२०} पक्षधर्मताबलादेवेति चेत्, तर्हि क्षणिकत्वादि साध्यम्, सत्त्वादि साधनम्, तयोश्चान्वयवयोः प्रदीपादौ संहदर्शनादेव सकलव्याप्तिग्रहः किन्न स्यात् ? मानसप्रत्यक्षादपि व्याप्तिप्रतिपत्तावयमेव दोषः । तन्न प्रत्यक्षतः सकलव्याप्तिग्रहः । नाप्यनुमानतोऽनर्थक्याप्रसङ्गात् ।

सामान्यस्य च साध्यत्वे साधनवैफल्यम् तत्राविवादात्, व्याप्तिग्रहणकाले वैवाक्यं प्रसिद्धेः । कथमन्यथा सामान्यधर्मयोः साकल्येन व्याप्तिर्निर्णीता स्यात् ?

१ योगं प्रति । २ लक्षणम् । ३ कथम् । ४ सत्त्वादिलक्षणे हेतोः । ५ बहिर्व्याप्तिरूपसान्वयस्य कथं बाधासम्भवः ? आत्मादौ क्षणिकत्वभावेपि सत्त्वमस्ति यतः । ६ सकलेषु साध्यसाधनेषु । ७ व्यक्त्यन्तरेषु । ८ अवयववत् । ९ सकलयोः । १० अनुमाने । ११ अनुमाने । १२ हेतोः । १३ निरस्योः । १४ युगपत् । १५ पूर्वतोऽग्निसामान्यवत्त्वादिति सत्त्वानुमाने भूगोक्षिकार्थं तदन्वयव्याप्तिरेकानुविधायित्वादिलक्षणेनानुमानेन व्याप्तिः प्रतीयते इत्यादिप्रकारेण । १६ साध्यसामान्यस्य । १७ व्याप्तिग्रहणकाले सामान्यसामान्यस्य सिद्धिर्नास्ति चेत् । १८ साध्यसाधनयोः ।

साध्यत्वं चास्यासतः कैरणम्, सतो ज्ञापनं वा? प्रथमपक्षे सामान्यस्यानित्यत्वाऽऽसर्वगतत्वप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षेऽप्यस्य दृश्यत्वे धर्मिवत्प्रत्यक्षत्वमिति किं केन ज्ञाप्यते? अन्यथा धूमसामान्यमप्यशिसामान्येन ज्ञाप्येत । अथ व्यक्तिसहायत्वाद्भूमसामान्यमेव प्रत्यक्षं नान्यत् ततोऽयमदोषः, न, अस्य सामान्यविचारे सहायापेक्षाप्रतिक्षेपात् ।

यच्चोक्तम्-विशेषप्रतिपत्तिस्तु पक्षधर्मताबलादेवेति, तत्र पक्षधर्मता धूमस्य, तत्सामान्यस्य वा? तत्राद्यः पक्षोऽसङ्गतः, विशेषेण व्यतिरेकप्रतिपत्तितस्तद्भूमकत्वायोगात् ।

- १० द्वितीयपक्षेऽप्यशिसामान्यस्यैव धूमसामान्यात्सिद्धिः स्यात् तेनैव तस्य व्याप्तेः, नाग्निविशेषस्य अनेनाव्याप्तेः । अथ साधनसामान्यात् साध्यसामान्यप्रतिपत्तेरेवैष्टविशेषप्रतिपत्तिः सामान्यस्य विशेषनिष्ठत्वात् । ननु तत्सामान्यमपि विशेषमात्रेण व्याप्तं सत्तदेव गमयेन्नान्यत् । अथ विशिष्टविशेषाधारं लिङ्गसामान्यं १५ प्रतीयमानं विशिष्टविशेषाधिर्करणं साध्यसामान्यं गमयतीत्युच्यते; तदप्युक्तिमात्रम्; तथा व्यतिरेकभावात् । अथ विपक्षे सद्भावबाधकप्रमाणवशात्तत्सिद्धिरिष्यते; तर्हि तावतैव पर्याप्तत्वात् किमन्वयेन परस्य ?

पर्यतेनान्तर्व्याप्तिरपि चिन्तिता । न खलु प्रत्यक्षादितः सापि २० प्रसिद्ध्यति । तत्र पूर्ववच्छेषवदिति सूक्तम् ।

यच्चान्यदुक्तम्-‘पूर्ववत्सामान्यतोदृष्टं चेति चशब्दो भिन्नप्रक्रमः ‘सामान्यतः’ इत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः । ततोयमर्थः-पूर्ववत्पक्षवत्सामान्यतोपि न केवलं विशेषतो दृष्टं विपक्षे । अनेन केवलव्यतिरेकी हेतुर्वर्जितः-‘सात्मकं जीवच्छरीरं प्राणादिमत्त्वात्’ २५ इत्यादिः; तदप्युक्तम्; यतः प्राणादेरन्यथाभावे कुतोऽविनाभाववगतिः? व्यतिरेकाच्चेत्; तथाहि-यस्माद् घटादेः सात्मकत्व-

१ निष्पादनम् । २ हेतुना । ३ साध्यसामान्यस्य । ४ हेतुना । ५ प्रत्यक्षमपि ज्ञाप्यते चेत् । ६ धूमविशेष । ७ अशिसामान्यम् । ८ साध्यसाधनसामान्यस्य । ९ ग्रन्थे । १० साध्यसाधनयोः । ११ यत्र यत्र पुरो भवति पर्वतस्य धूमस्तत्राग्निरिति । १२ सिद्धिः । १३ धूमसामान्यस्य । १४ यतः । १५ अग्निविशेष । १६ प्रेष्टविशेषम् । १७ पर्वतस्य धूमः । १८ पर्वतस्याग्निः । १९ वसः । २० यो यः पुरोवर्त्तिपर्वतस्य धूमः स पुरोवर्त्तिपर्वतस्याग्निमानिति । २१ हेतोः । २२ अनुपलम्भः । २३ व्याप्तिः । २४ व्याप्तेः । २५ योगस्य । २६ साकल्यव्याप्तिशोधनपरेण ग्रन्थेन । २७ निराकृता । २८ अन्वयवृष्टान्तस्य । २९ कारणम् ।

निवृत्तौ प्राणाद्यो नियमेन निवर्त्तन्ते तस्मात्सात्मकत्वाभावः प्राणाद्यभावेन व्याप्तो धूमाभावेनैव पावकाभावः । जीवच्छरीरे च प्राणाद्यभावविरुद्धः प्राणादिसद्भावः प्रतीयमानस्तदभावं निवर्त्तयति । स च निवर्त्तमानः स्वव्याप्यं सात्मकत्वाभावमादाय निवर्त्तते इति सात्मकत्वसिद्धिस्तत्र; इत्यप्यसारम्; यतोनुमा-५ नान्तरेष्वेवमविनाभावप्रसिद्धेः केवलव्यतिरेक्येव सर्वमनुमानं स्यात्, अन्वयमात्रेण तत्सिद्धावतिप्रसङ्गस्योक्तत्वात् ।

किञ्च, साध्यनिवृत्त्या साधननिवृत्तिर्व्यतिरेकः, स च कंचित् कदाचित्, सर्वत्र सर्वदा वा स्यात्? न तावदाद्यः पक्षः, तथा व्यतिरेकस्य साधनाभासेपि सम्भवात् । द्वितीयपक्षोप्ययुक्तः; १० साकल्येन व्यतिरेकप्रतिपत्तेः प्रत्यक्षादिप्रमाणतः परेषामन्वय-प्रतिपत्तेरिवासम्भवात् ।

एतैर्न पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोऽदृष्टमन्वयव्यतिरेक्यनुमानं प्रत्याख्यातम्; पक्षद्वयोपक्षितदोषानुषङ्गात् ।

यच्च तदुदाहरणम्-विवादापन्नं तनुकरणभुवनादिकं बुद्धिमद्धे-१५ तुर्कं कार्यत्वादित्यो घटादिवदित्युक्तम्; तदपीश्वरनिराकरण-प्रकरणे विशेषतो दूषितमिति पुनर्न दूष्यते ।

अथ “पूर्ववत्-कारणात्कार्यानुमानम्, शेषवत्-कार्यात्कारणानुमानम्, सामान्यतोऽदृष्टम्-अकार्यकारणादकार्यकारणानुमानम् सामान्यतोऽविनाभावमात्रात्” [न्यायमा०, वार्त्ति० १।१।५] इति २० व्याख्यायते; तदप्यविनाभावनियमनिश्चायकप्रमाणाभावादेवायुक्तं परेषाम् । स्याद्वादिनां तु तद्व्युक्तं तत्सद्भावात् इत्याचार्यः स्वयमेव कार्यकारणेत्यादिना हेतुप्रपञ्चे प्रपञ्चयिष्यति ।

१ कारणात् । २ व्यापकेन । ३ धूमाभावः पावकाभावे सत्यसति च भवति धूमाभावस्य व्यापकत्वेन तदतन्निष्ठत्वात् । ४ देशे । ५ स इयामस्तत्पुत्रत्वादितर-तत्पुत्रविद्यादौ । ६ केवलान्वयिकेवलमव्यतिरेकिकक्षणपक्षद्वयनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । ७ पूर्वं कारणं तद्विज्ञमस्यानुमानस्यास्तीति पूर्ववत् । कारणलिङ्गजनितमनुमानमित्यर्थः । ८ असौ पुमान् रूपादिज्ञानवाग् चक्षुरादिमन्वान्महदित्युदाहरणम् । शेषवदिति शेषः कार्यं तद्विज्ञमस्यानुमानस्यास्तीति शेषवत् । कार्यलिङ्गजनितमनुमानमित्यर्थः । सात्मकं जीवच्छरीर प्राणादिमत्त्वादित्युदाहरणम् । ९ वृष्टान्ते । १० कार्यं यो हेतुर्न भवति कारणं वा यो हेतुर्न भवति तस्मादेतोः कार्यं यन्न भवति साध्यं कारणं वा यन्न भवति साध्यं तस्यानुमानम् । मातुलिङ्गं रूपवद्रसवत्तात्सम्यतिपक्षमातुलिङ्गवदित्युदाहरणम् । ११ सङ्गम् । १२ व्याख्यानम् । १३ कः । १४ जटाधराणाम् । १५ अनुमान-नितयम् ।

यदपि-पूर्ववत्पूर्वं लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धस्य कैचिद्विश्वयादन्यत्र प्रवर्त्तमानमनुमानम् । शेषवत्परिशेषानुमानम्, प्रसक्तप्रतिषेधे परिशिष्टस्य प्रतिपत्तेः । सामान्यतो दृष्टं विशिष्टव्यक्तौ सम्बन्धाग्रहणार्त्तसामान्येन दृष्टम्, यथा गतिमानादित्यो देशादेशान्तर-
५ प्राप्तेर्देवदत्तवदिति । तदप्येतेन प्रत्याख्यातम्; उक्तप्रकाराणां प्रमाणतः प्रसिद्धाविनाभावानां प्रतिपादयिष्यमाणहेतुप्रपञ्चत्वेन स्याद्वादिनामेव सम्भवात् ।

न चायं मेदो घटते । सर्वं हि लिङ्गं पूर्ववदेव; परिशेषानुमान-
स्यापि पूर्ववत्त्वप्रसिद्धेः-प्रसक्तप्रतिषेधस्य परिशिष्टप्रतिपत्त्यविना-
१० भूतस्य पूर्वं कैचिद्विश्वितस्य विवादाध्यासितपरिशिष्टप्रतिपत्तौ साधनस्य प्रयोगात् । सामान्यतो दृष्टस्याऽपि पूर्ववत्त्वप्रतीतिः; कचिदेशान्तरप्राप्तेर्गतिमत्त्वाविनाभावविन्या एव देवदत्तादौ प्रति-
पत्तेः, अन्यथा तदनुमानाप्रवृत्तेः । परिशेषानुमानमेव वा सर्वम्; पूर्ववतोपि धूमात्पावकानुमानस्य प्रसक्ताऽपावकप्रतिषेधात्प्रवृ-
१५ त्तिघटनात्, तदप्रसक्तौ विवादानुपपत्तेरनुमानवैयर्थ्यं स्यात् । सामान्यतो दृष्टस्यापि देशान्तरप्राप्तेरादित्यगत्यनुमानस्य तदगति-
मत्त्वस्य प्रसक्तस्य प्रतिषेधादेवोपपत्तेः । सैकलं सामान्यतो दृष्टमेव वा, सर्वत्र सामान्येनैव लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धस्य प्रतिपत्तेः, विशेषतस्तत्सम्बन्धस्य प्रतिपत्तुमशक्येः । ततोनुमानं तत्प्रमेदं
२० चेच्छताऽविनाभाव एवैकं हेतोः प्रधानं लक्षणं प्रतिपत्तव्यम् ।

ननु चास्तु प्रधानं लक्षणमविनाभावो हेतोः । तत्स्वरूपं तु निरूप्यतामप्रसिद्धस्वरूपस्य लक्षणत्वायोगादित्याशङ्क्य सहकर्म-
स्यादिना तत्स्वरूपं निरूपयति—

१ लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धः पूर्व निधीयमानत्वात् पूर्वः सोऽनुमानस्यास्तीति पूर्ववत् ।
अग्निमान्पूर्वतो भूमवत्त्वान्महानसवदित्युदाहरणम् । २ महानसे । ३ पर्वते । ४ शेषः
परिशिष्यमाणोर्धः सोऽस्यास्तीति शेषवत् । अत्रोदाहरणं शब्दः कचिदाभितो गुणत्वा-
द्रूपवदिति । ५ उद्धरितार्थस्याकाशादेः । ६ अनुमानम् । ७ साध्यसाधनं नास्तीति
चेत् । ८ हेतुमात्रम् । ९ देवदत्ते गतिमत्त्वदेशादेशान्तरप्राप्त्योः साध्यसाधनयोर्धर्मयोः
सामान्येन प्रतिपत्तिः । १० पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टलक्षणानाम् । ११ कद-
लक्षणम् । १२ कचिदनाभितत्त्वम् । १३ घटस्य । १४ कचिदाभितत्त्वम् ।
१५ आकाशस्य । १६ कचिदाभितत्त्वम् । १७ रूपादौ । १८ शब्दे कचिदा-
भितत्त्वम् । १९ गुणवत्त्वम् । २० देशादेशान्तरप्राप्तेर्गतिमत्त्वाविनाभावविन्या देवदत्ते
प्रतिपत्तिर्नास्तीति चेत् । २१ आदित्यगतिमत्त्वम् । २२ पूर्ववच्छेषवदित्यनुमान-
द्वयम् । २३ अनुमाने । २४ यौगेन यवता ।

सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः ॥ १६ ॥

सहभावनियमः क्रमभावनियमश्चाविनाभावः प्रतिपत्तव्यः ।

कयोः पुनः सहभावः कयोश्च क्रमभावो यन्नियमोऽविनाभावः
स्यादित्याह—

सहचारिणोः व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः ॥ १७ ॥ ५

पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः ॥ १८ ॥

सहचारिणो रूपरसादिलक्षणयोर्व्याप्यव्यापकयोश्च शिंशपा-
त्वबुक्षत्वादिसहभावयोः सहभावः प्रतिपत्तव्यः । पूर्वोत्तरचारिणोः
कृतिकाशकटोदयादिसवरूपयोः कार्यकारणयोश्चाग्निधूमादिसवरू-
पयोः क्रमभाव इति ।

१०

कृतोसौ प्रोक्तप्रकारोऽविनाभावो निर्णयते इत्याह—

तर्कान्निर्णयः ॥ १९ ॥

न पुनः प्रत्यक्षादेरित्युक्तं तर्कप्रामाण्यप्रसाधनप्रस्तावे ।

ननु साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानमित्युक्तम् । तत्र किं साध्य-
मित्याह—

१५

द्वैष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ॥ २० ॥

संशयादिव्यवच्छेदेन हि प्रतिपन्नमर्थस्वरूपं सिद्धमुच्यते,
तद्विपरीतमसिद्धम् । तच्च—

सन्दिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा

स्यादित्यसिद्धपदम् ॥ २१ ॥

२०

किमयं स्थाणुः पुरुषो वेति चलितप्रतिपत्तिविषयभूतो ह्यर्थः
सन्दिग्धोभिधीयते । शुक्रिकाशकले रजताध्यवसायलक्षणवि-
पर्यसगोचरस्तु विपर्यस्तः । गृहीतोऽगृहीतोपि वार्थो यथावद-
निश्चितस्वरूपोऽव्युत्पन्नः । तथाभूतस्यैवार्थस्य साधने साधन-
सामर्थ्यात्, न पुनस्तद्विपरीतस्य तत्र तद्वैफल्यात् ।

२५

इष्टाऽबाधितविशेषणद्वयस्यानिष्टेत्यादिनां फलं दर्शयति—

१ ताद्विः (१४१ दिवचनमित्यर्थः) । कयोः । २ तस्य अविनाभावस्य । ३ साध्य-
त्वेनाभिहितम् । ४ अर्थानाम् । ५ पूर्वम् । ६ सिद्धौ । ७ सूत्रेण ।

अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं माभूदितिष्टावाधितवचनम् ॥ २२ ॥

अनिष्टं हि सर्वथा नित्यत्वं शब्दे जैनस्य । अर्थावणत्वं तु प्रत्यक्षबाधितम् । आदिशब्देनानुमानादिबाधितपक्षपरिग्रहः । ५ तत्रानुमानबाधितः यथा-नित्यः शब्द इति । आगमबाधितः यथा-प्रेत्याऽसुखप्रदो धर्म इति । स्ववचनबाधितः यथा-माता मे वन्ध्येति । लोकबाधितः यथा-शुचि नरशिरः कपार्लमिति । तैयोरनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं मा भूदितिष्टावाधितवचनम् ।

१० ननु यथा शब्दे कथञ्चिदनित्यत्वं जैनस्येष्टं तथा सर्वथाऽनित्यत्वमाकाशगुणत्वं चार्ण्यस्येति तदपि साध्यमनुपप्यते । न च बादिनो यदिष्टं तदेव साध्यमित्यभिधातव्यम् ; सामान्याभिधाधित्वेनेष्टस्यान्यत्राप्यविशेषात् । इत्याशङ्क्यपनोदार्थमाह—

न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ॥ २३ ॥

१५ विशेषणम् । न हि सर्वं सर्वापेक्षया विशेषणं प्रतिनियतत्वाद् विशेषणविशेष्यभावस्य । तत्रासिद्धमिति साध्यविशेषणं प्रतिवाद्यपेक्षया न पुनर्बाधपेक्षया, तस्यार्थस्वरूपप्रतिपादकत्वात् । न चाविज्ञातार्थस्वरूपः प्रतिपादको नामातिप्रसङ्गात् । प्रतिवादिनस्तु प्रतिपाद्यत्वात्तस्य चाविज्ञातार्थस्वरूपत्वाविरोधात् तदपेक्षयैवेदं २० विशेषणम् । इष्टमिति तु साध्यविशेषणं बाधपेक्षया, बादिनो हि यदिष्टं तदेव साध्यं न सर्वस्य । तदिष्टमप्यध्यक्षाद्यबाधितं साध्यं भवतीति प्रतिपत्तव्यं तत्रैव साधनसामर्थ्यात् ।

तदेव समर्थयमानः प्रत्यायनाय हीत्याद्याह—

प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ॥ २४ ॥

२५ इच्छया सल्लु विपयीकृतमिष्टमुच्यते । स्वाभिप्रेतार्थप्रतिपादनाय चेच्छा वक्तुरेव ।

तस्य चोक्तप्रकारस्य साध्यस्य हेतौर्व्याप्तिप्रयोगकालापेक्षया साध्यमित्यादिना भेदं दर्शयति—

१ शब्दः अर्थावण शब्दुक्ते । २ प्रत्यभिज्ञायमानत्वादिति हेतुः । ३ कृतकत्वादिति हेतुना बाध्यः पक्षोऽत्र । ४ पुरुषाभिज्ञत्वादपेक्षैवत् । ५ पुरुषसयोगेति अगर्भत्वादप्रसिद्धवन्भावत् । ६ प्राप्यज्ञत्वाच्छङ्कशुक्तिवत् । ७ साध्ययोः । ८ वैशेषिकस्य । ९ जैनस्य । १० प्रतिवादिनपि । ११ इष्टाऽसिद्धयोर्मध्ये । १२ सम्प्रतिपन्नः ।

साध्यं धर्मः कचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी ॥ २५ ॥

कचिद्व्याप्तिकाले साध्यं धर्मो नित्यत्वादिस्तेनैव हेतोर्व्याप्ति-
सम्भवात् । प्रयोगकाले तु तेन साध्यधर्मेण विशिष्टो धर्मी साध्य-
मभिधीयते, प्रतिनियतसाध्यधर्मविशेषणविशिष्टतया हि धर्मेणः
साधयितुमिष्टत्वात् साध्यव्यपदेशाविरोधः । ५

अन्यैव पर्यायमाह—

पक्ष इति यावत् ॥ २६ ॥

ननु च कथं धर्मी पक्षो धर्मधर्मिसमुदायस्य तत्त्वात् । तन्न;
साध्यधर्मविशेषणविशिष्टतया हि धर्मेणः साधयितुमिष्टस्य
प्रेमाभिधाने दोषाभावात् । १०

स च पक्षत्वेनाभिप्रेतः—

प्रसिद्धो धर्मी ॥ २७ ॥

तन्प्रसिद्धिश्च कंचिद्विकल्पतः कचित्प्रत्यक्षादितः कचिन्नोभयत
इति प्रदर्शनार्थम्—‘प्रत्यक्षसिद्धस्यैव धर्मित्वम्’ इत्येकान्तनिरा-
करणार्थं च विकल्पसिद्ध इत्याद्याह— १५

विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये ॥ २८ ॥

अस्ति सर्वज्ञः नास्ति खरविषाणमिति ॥ २९ ॥

विकल्पेन सिद्धे तस्मिन्धर्मेणि सत्तेतरे साध्ये हेतुसामर्थ्यतः ।
यथा अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासम्भवद्वाचकप्रमाणत्वात्, नास्ति
खरविषाणं तद्विपर्ययादिति । न खलु सर्वज्ञखरविषाणयोः सद- २०
सत्तायां साध्यायां विकल्पादन्यतः सिद्धिरस्ति; तत्रेन्द्रियव्यापा-
राभावात् ।

ननु चेन्द्रियप्रतिपन्न एवार्थं मनोविकल्पस्य प्रवृत्तिप्रतीतेः कथं
तत्रेन्द्रियव्यापाराभावे विकल्पस्यापि प्रवृत्तिः; इत्यप्यपेशलम्;
धर्माधर्मादौ तत्प्रवृत्त्यभावानुपैक्षात् । आगमसामर्थ्यप्रभवत्वेना- २५
स्यात्र प्रवृत्तौ प्रकृतेऽप्यतस्तत्प्रवृत्तिरस्तु विशेषाभावात् ।

१ शब्दस्य । २ इति । ३ पक्ष इति । ४ अनुमाने । ५ निश्चितसंवादः संवादः
(निश्चितसंवादसंवादः) शब्दप्रत्ययो विकल्पत्वेन । ६ असत्ता । ७ इन्द्रिय-
व्यापाराभावात् । ८ शब्दगम्यत्वाविशेषात् ।

प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ॥ ३० ॥

अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा ३१

प्रमाणं प्रत्यक्षादिकम्, उभयं प्रमाणविकल्पौ, ताभ्यां सिद्धे पुनर्धर्मिणि साध्यधर्मेण विशिष्टता साध्या । यथाग्निमानयं देशः, ५ परिणामी शब्द इति । देशो हि धर्मित्वेनोपात्तोऽध्यक्षप्रमाणत एव प्रसिद्धः, शब्दस्तु भौम्याम् । न खलु देशकालान्तरिते ध्वनौ प्रत्यक्षं प्रवर्त्तते, श्रूयमाणमात्र एवास्य प्रवृत्तिप्रतीतेः । विकल्पस्य त्वऽनियतविषयतया तत्र प्रवृत्तिरविरुद्धैव ।

ननु चैवं देशस्याप्यग्निमत्त्वे साध्ये कथं प्रत्यक्षसिद्धता ? तत्र १० हि दृश्यमानभागस्याग्निमत्त्वसाधने प्रत्यक्षवाचनं साधनवैफल्यं वा, तत्र साध्योपलब्धेः । अदृश्यमानभागस्य तु तत्साधने कुतस्तत्प्रत्यक्षतेति ? तदप्यसमीचीनम्, अवयविद्व्यापेक्षया पर्वतादेः सांख्यैवहारिकप्रत्यक्षप्रसिद्धतामिधानात् । अतिसूक्ष्मेक्षिकापर्यालोचने न किञ्चित्प्रत्यक्षं स्यात्, बहिरन्तर्वाऽस्मदादिप्रत्यक्षस्या- १५ शेषविशेषतोऽर्थसाक्षात्करणेऽसमर्थत्वात्, योगिप्रत्यक्षस्यैव तत्र सामर्थ्यात् ।

ननु प्रयोगकालवद्भासिकालेपि तद्विशिष्टस्य धर्मिण एव साध्यव्यपदेशः कुतो न स्यादित्याशङ्क्याह—

व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव ॥ ३२ ॥

२० न पुनस्तद्वान् ।

अन्यथा तदघटनात् ॥ ३३ ॥

अनेन हेतोरन्वयासिद्धेः । न खलु यत्र यत्र कृतकत्वादिकं प्रतीयते तत्र तत्रानित्यत्वादिविशिष्टशब्दाद्यन्वयोस्ति ।

‘ननु प्रसिद्धो धर्मोत्यादिपक्षलक्षणप्रणयनमयुक्तम्; अस्ति सर्वज्ञ २१ इत्याद्यनुमानप्रयोगे पक्षप्रयोगस्यैवासम्भवात् अर्थादापन्नत्वात्तस्य । अर्थादापन्नस्याप्यभिधाने पुनरुक्तत्वप्रसङ्गः—“अर्थादापन्नस्य स्वशब्देनाभिधानं पुनरुक्तम्” [न्यायिसू० ५।२।१५] इत्यभिधानात् । तत्प्रयोगेपि च हेत्वादिवचनमन्तरेण साध्याप्रसिद्धे-

१ प्रसिद्धः । २ शब्दस्य केवलप्रत्यक्षतः सिद्धभावप्रकारेण । ३ स्यात् । ४ नाऽ-
वयव (प्रदेश) प्रत्यापेक्षया । ५ असर्वज्ञप्रत्यक्ष । ६ विचार । ७ साध्यवदे ।
८ वीरः । ९ अर्थादापन्नस्य ।

स्तद्वचनादेव च तत्प्रसिद्धेर्व्यर्थः पक्षप्रयोगः' इत्याशङ्क्य साध्य-
धर्माधारेत्यादिना प्रतिविधत्ते—

साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि

पक्षस्य वचनम् ॥ ३४ ॥

साध्यधर्मोऽस्तित्वादिः, तस्याधार आश्रयः यत्रासौ साध्यधर्मो ५
वर्तते, तत्र सन्देहः—किमसौ साध्यधर्मोऽस्तित्वादिः सर्वत्र वर्तते
सुखादौ वेति, तस्यापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ।

साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय

पक्षधर्मोपसंहारवत् ॥ ३५ ॥

तस्याऽवचनं साध्यसिद्धिप्रतिबन्धकत्वात्, प्रयोजनाभावाद्वा ? १०
तत्र प्रथमपक्षोऽयुक्तः; वादिना साध्याविनाभावनियमैकलक्षणेन
हेतुना स्वपक्षसिद्धौ साधयितुं प्रस्तुतायां प्रतिज्ञाप्रयोगस्य
तत्प्रतिबन्धकत्वाभावात् ततः प्रतिपक्षासिद्धेः । द्वितीयपक्षोऽप्य-
युक्तः; तत्प्रयोगे प्रतिपाद्यप्रतिपत्तिविशेषस्य प्रयोजनस्य सङ्गा-
त्वात्, पक्षाऽप्रयोगे तु केषाञ्चिन्मन्दमतीनां प्रकृतार्थाप्रतिपत्तेः । १५
ये तु तत्प्रयोगमन्तरेणापि प्रकृतार्थं प्रतिपद्यन्ते तान्प्रति तदप्रयो-
गोऽभीष्ट एव । “प्रयोगपरिपाटी तु प्रतिपाद्यानुरोधतः” []
इत्यभिधानात् । ततो युक्तो गम्यमानस्याप्यस्य प्रयोगः, कथ-
मर्थेया शास्त्रादावपि प्रतिज्ञाप्रयोगः स्यात् ? न हि शास्त्रे नियत-
कथायां प्रतिज्ञा नाभिधीयते—‘अग्निरत्र धूमात्, वृक्षोऽयं शिंशपा- २०
त्वात्’ इत्याद्यभिधानानां तत्रोपलम्भात् । परानुग्रहप्रवृत्तानां
शास्त्रकाराणां प्रतिपाद्यावबोधनाधीनधियां शास्त्रादौ प्रतिज्ञा-
प्रयोगो युक्तिमानेवोपयोगित्वात्तस्येत्यभिधाने वादेपि सोऽस्तु
तत्रापि तेषां तादृशत्वात् ।

अमुमेवार्थं को नेत्यादिना परोपहसनव्याजेन समर्थयते— २५

को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न

पक्षयति ? ॥ ३६ ॥

को वा प्रामाणिकः कार्यस्वभावानुपलम्भभेदेन पक्षधर्मत्वादि-

१ न्यासिप्रदर्शनद्वारेण । २ सुनिश्चिताऽसन्मवद्वापकप्रमाणत्वादिति साधनस्य
पक्षधर्मत्वेन प्रदर्शनमुपसंहारस्तद्वत् । ३ अस्ति सर्वत्र इति । ४ गम्यमानस्य पक्षस्य
प्रयोगो न स्यादिति । ५ सुगोप्यात् । ६ धर्मक्रीत्यादीनाम् । ७ सीगतेन । ८ निरेण ।

रूपत्रयमेवेन वा त्रिधा हेतुमुक्त्वाऽसिद्धत्वादिविषयपरिहारद्वारेण
समर्थयमानो न पक्षयति ? अपि तु पक्षं करोत्येव । न चाऽस-
मर्थितो हेतुः साध्यसिद्ध्यङ्गमतिप्रसङ्गात् । ततः पक्षप्रयोगम-
निच्छता हेतुमनुक्तैव तत्समर्थनं कर्तव्यम् । हेतोरवचने कस्य
५ समर्थनमिति चेत् ? पक्षस्याप्यनभिधाने क हेत्वादिः प्रवर्त्तताम् ?
गम्यमाने प्रतिष्ठाविषये एवेति चेत् ; गम्यमानस्य हेत्वादेरपि
समर्थनमस्तु । गम्यमानस्यापि हेत्वादेर्मन्दमतिप्रतिपत्त्यर्थं
वचने तदर्थमेव प्रतिष्ठावचनमप्यस्तु विशेषाभावात् । ततः
साध्यप्रतिपत्तिमिच्छता हेतुप्रयोगवत्पक्षप्रयोगोप्यभ्युपगन्तव्यः ।
१० तद्व्यस्यैवानुमानाङ्गत्वात्, इत्याह—

एतद्व्यमेवानुमानाङ्गम्, नोदाहरणम् ॥ ३७ ॥

ननु “पक्षहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनान्यवयवाः” [न्यायसू०
१।१।३२ (?)] इत्यभिधानाद् दृष्टान्तादेरप्यनुमानाङ्गत्वसम्भवा-
देतद्व्यमेवाङ्गमित्युक्तमुक्तम् । प्रतिष्ठा ह्यागमः । हेतुरनुमानम्,
१५ प्रतिष्ठातार्थस्य तेनानुमीयमानत्वात् । उदाहरणं प्रत्यक्षम्, “वादि-
प्रतिवादिनोर्यत्र बुद्धिसाम्यं तदुदाहरणम्” [] इति वच-
नात् । उपनय उपमानम्, दृष्टान्तधर्मिसाध्यधर्मिणोः सादृश्यात्,
“प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्” [न्यायसू० १।१।६]
इत्यभिधानात् । सर्वेषामेकविषयत्वप्रदर्शनफलं निगमनमित्या-
२० शङ्कोदाहरणस्य तावत्तदङ्गत्वं निराकुर्वन्नाह—नोदाहरणम् । अनु-
मानाङ्गमिति सम्यग्धः ।

तद्धि किं साक्षात्साध्यप्रतिपत्त्यर्थमुपादीयते, हेतोः साध्यावि-
नाभावनिर्धेयार्थं वा, व्याप्तिस्वरणार्थं वा प्रकारान्तरासम्भवात् ?
तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः—

२५ न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव
व्यापारात् ॥ ३८ ॥

१ हेत्वाभासस्यापि साध्यसिद्ध्यङ्गताप्रसङ्गात् । २ न केवलं हेतोः । ३ साध्यं च ।
४ साध्यसाधनस्यैव परिहारेण दृष्टान्तस्य समर्थनमादिशब्देन ग्राह्यम् । ५ एतत् ।
६ कारणे युद् । ७ महानसादि । ८ भूमवस्त्वेन । ९ प्रसिद्धं महानसं तेन साधर्म्यं
पर्वतस्य भूमवस्त्वेन । १० भूमवाम्नायम् । ११ भूमवत्त्वस्यैवाप्यर्थं पर्वतस्य साध्यं
तस्य साधनं, ज्ञानम् । १२ प्रमाणात् । १३ अप्रति । १४ अक्रमपरम्परया
साध्यप्रतिपत्तिः कथमेवंविधाहेतोः साध्यसिद्धिरिति ।

न हि तत् साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव साध्याविना-
भावनियमैकलक्षणस्य व्यापारात् । द्वितीयविकल्पोप्यसम्भाव्यः—

तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव
तत्सिद्धेः ॥ ३९ ॥

न हि हेतोस्तैन साध्येनाविनाभावस्य निश्चयार्थं वा तदुपादानं^५
युक्तम् । विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः । न हि सपक्षे सत्त्वमात्रा-
द्धेतोर्व्याप्तिः सिद्ध्यति, 'स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरन्तपुत्रवत्' इत्यत्र
तदाभासेऽपि तत्सम्भवात् । ननु साकल्येन साध्यनिवृत्तौ साधन
निवृत्तेरत्रासम्भवात्परत्र गौरपि तत्पुत्रे तत्पुत्रत्वस्य भावान्न
व्याप्तिः । तर्हि साकल्येन साध्यनिवृत्तौ साधननिवृत्तिनिश्चयरूपा-^{१०}
द्वार्थकादेव व्याप्तिप्रसिद्धेरलं दृष्टान्तकल्पनया ।

व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिः
तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्यात्
दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् ॥ ४० ॥

किञ्च, वादिप्रतिवादिनोर्यत्र बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तो भवति^{१५}
प्रतिनियतव्यक्तिरूपः, यथाऽग्नौ साध्ये महानसादिः । व्यक्तिरूपं
च निदर्शनं कथं तदविनाभावनिश्चयार्थं स्यात् ? प्रतिनियतव्यक्तौ
तन्निश्चयस्य कर्तुमशक्तेः । अनियतदेशकालाकाराधारतया सामा-
न्येन तु व्याप्तिः । कथमन्यथान्यत्र साधनं साध्यं साधयेत् ?
तत्रापि दृष्टान्तेऽपि तस्यां व्याप्तौ विप्रतिपत्तौ सत्यां दृष्टान्तान्तरा-^{२०}
न्वेपणेऽनवस्थानं स्यात् ।

नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयो-
गादेव तत्स्मृतेः ॥ ४१ ॥

नापि व्याप्तिस्मरणार्थं दृष्टान्तोपादानं तथाविधस्य प्रतिपत्ता-
विनाभावस्य हेतोः प्रयोगादेव तत्स्मृतेः । एवं चाप्रयोजनं^{२५}
तदुदाहरणम् ।

१ ऊहात् । २ अविनाभावः । ३ ऊहात् । ४ पर्वते । ५ साम्यसाधनयोः ।
६ प्रतिनियतव्यक्तौ तन्निश्चयस्य कर्तुमशक्तेरित्येव उक्तावयति । ७ सामान्येन व्याप्तिर्न
स्यादि । ८ दृष्टान्तादन्यत्र ।

तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्य-

साधने सन्देहयति ॥ ४२ ॥

कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ? ॥ ४३ ॥

परं केवलमभिधीयमानं साध्यसाधने साध्यधर्मिणि सन्देह-
यति सन्देहवती करोति । कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ?

मा यूहृष्टान्तस्यानुमानं प्रत्यङ्गत्वमुपनयनिगमनयोस्तु सादि-
त्याशङ्कापनोदार्थमाह—

न च ते तदङ्गे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययो-

र्वचनादेवाऽसंशयात् ॥ ४४ ॥

१० न च ते तदङ्गे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेव हेतु-
साध्यप्रतिपत्तौ संशयाभावात् । तथापि दृष्टान्तोद्देरनुमानाव-
यवत्वे हेतुरूपत्वे वा—

समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो-

वास्तु साध्ये तदुपयोगात् ॥ ४५ ॥

१५ समर्थनमेव वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तस्यो-
पयोगात् । समर्थनं हि नाम हेतोरसिद्धत्वादिदोषं निराकृत्य
स्वसाध्येनाऽविनाभावसाधनम् । साध्यं प्रति हेतोरगमकत्वे च
तस्यैवोपयोगो नान्यस्येति ।

ननु व्युत्पन्नप्रज्ञानां साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवा-
२० संशयादर्थप्रतिपत्तेर्दृष्टान्तादिवचनमनर्थकमस्तु । बालानां त्वव्यु-
त्पन्नप्रज्ञानां व्युत्पत्त्यर्थं तन्नानर्थकमित्याह—

बालव्युत्पत्त्यर्थं तन्नयोपगमे शास्त्र एवासौ

न वादेऽनुपयोगात् ॥ ४६ ॥

बालव्युत्पत्त्यर्थं तन्नयोपगमे दृष्टान्तोपनयनिगमनत्रयाभ्युप-

१ यदि सन्देहवती न करोति । २ उपनयनिगमनादेव । ३ सपक्षे दृष्टान्ते
सत्त्वमुपनयनस्य हेतुरूपस्य । कुतः ? त्रिरूपो हेतुर्बत इति सौगतः । ४ हेतुरूपं
कीदृशम् ? दृष्टान्तोपनयनिगमनलक्षणत्रिरूपत्वप्रदर्शनस्वरूपस्य । ५ हेतुरूपोऽस्तु ।
कथम् ? हेतोः समर्थनं हेतुरेवत्वेन प्रकारेण । ६ विपक्षे साफल्येन बाधकप्रमाण-
प्रदर्शनं हेतुसमर्थनम् । ७ पतदेव ।

गमे, शास्त्र एवासौ तदभ्युपगमः कर्तव्यः न वादेऽनुपयोगात् । न खलु वादकाले शिष्या व्युत्पाद्यन्ते व्युत्पन्नप्रज्ञानामेव वादे-
ऽधिकारात् । शास्त्रे चोदाहरणादौ व्युत्पन्नप्रज्ञा वादिनो वादकाले
ये प्रतिवादिनो यथा प्रतिपद्यन्ते तान् तथैव प्रतिपादयितुं समर्था
भवन्ति, प्रयोगपरिपाट्याः प्रतिपाद्यानुरोधतो जिनपतिमतानु-^५
सारिभिरभ्युपगमात् ।

तत्र तद्व्युत्पादनार्थं दृष्टान्तस्य स्वरूपं प्रकारं चोपदर्शयति—

दृष्टान्तो द्वेधाऽन्वयव्यतिरेकभेदात् ॥ ४७ ॥

दृष्टो हि विधिनिषेधरूपतया वादिप्रतिवादिभ्यामविप्रतिपत्त्या
प्रतिपन्नोऽन्तः साध्यसाधनधर्मो यत्रासौ दृष्टान्त इति व्युत्पत्तेः । १०

अथ कोऽन्वयदृष्टान्तः कश्च व्यतिरेकदृष्टान्त इति चेत्—

साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोन्वय-

दृष्टान्तः ॥ ४८ ॥

यथाग्नौ साध्ये महानसादिः ।

साध्याभावे साधनव्यतिरेको यत्र कथ्यते स १५

व्यतिरेकदृष्टान्तः ॥ ४९ ॥

यथा तस्मिन्नेव साध्ये महाह्रदादिः ।

अथ को नाम उपनयो निगमनं वा किमित्याह—

हेतोरुपसंहार उपनयः ॥ ५० ॥

प्रतिज्ञायास्तु निगमनम् ॥ ५१ ॥

२०

प्रतिज्ञायास्तूपसंहारो निगमनम् । उपनयो हि साध्याविना-
भावित्वेन विशिष्टे साध्यधर्मिण्युपनीयते येनोपदर्श्यते हेतुः
सोमिधीयते । निगमनं तु प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयाः साध्य-
लक्षणैर्कार्यतया निगम्यन्ते सम्बद्ध्यन्ते येन तदिति ।

तच्चानुमानं र्थावयवं व्यर्थवयवं पञ्चावयवं वा द्विप्रकारं भवतीति २५
दर्शयन्—

१ शास्त्रे यदुदाहरणादि तस्मिन् । २ वा । ३ एवं च सति । ४ सामान्यतः
स्वरूपं दृष्टान्तोक्तं ज्ञेयतत्त्वस्वरूपं तु साध्यव्याप्तमित्यादिना दर्शयति । ५ वसः ।
६ वेनस । ७ नीसासकस । ८ योगस ।

तदनुमानं द्वेधा ॥ ५२ ॥

इत्याह ।

कुतस्तद् द्वेवेति चेत् ?

स्वार्थपरार्थभेदात् ॥ ५३ ॥

५ तत्र—

स्वार्थमुक्तलक्षणम् ॥ ५४ ॥

स्वार्थमनुमानं साधनात्साध्यविज्ञानमित्युक्तलक्षणम् ।

किं पुनः परार्थानुमानमित्याह परार्थमित्यादि—

परार्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातम् ॥ ५५ ॥

१० तस्य स्वार्थानुमानस्यार्थः साध्यसाधने तत्परामर्शिवचनाज्जातं यत्साध्यविज्ञानं तत्परार्थानुमानम् ।

ननु वचनात्मकं परार्थानुमानं प्रसिद्धम्, तच्चोक्तप्रकारं साध्य-
विज्ञानं परार्थानुमानमिति वर्णयता कथं सङ्गृहीतमित्याह—

तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात् ॥ ५६ ॥

१५ तद्वचनमपि तदर्थपरामर्शिवचनमपि तद्धेतुत्वात् ज्ञानलक्षण-
मुख्यानुमानहेतुत्वादुपचारेण परार्थानुमानमुच्यते । उपचार-
निमित्तं चास्य प्रतिपादकप्रतिपाद्यापेक्षयानुमानकार्यकारणत्वम् ।
तत्प्रतिपादकज्ञानलक्षणानुमान(नं)हेतुः कारणं यस्य तद्वचनस्य,
तस्य वा प्रतिपाद्यज्ञानलक्षणानुमानस्य हेतुः कारणम्, तद्भावा-
द् २० तद्धेतुत्वम्, तस्मादिति । मुख्यरूपतया तु ज्ञानमेव प्रमाणं
परनिरपेक्षतयाऽर्थप्रकाशकत्वादिति प्राक्प्रतिपादितम् ।

यथा चानुमानं द्विप्रकारं तथा हेतुरपि द्विप्रकारो भवतीति
दर्शनार्थं स हेतुर्द्वैतेत्याह—

स हेतुर्द्वेधा उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् इति ॥ ५७ ॥

२५ योऽविनाभावलक्षणलक्षितो हेतुः प्राक्प्रतिपादितः स द्वेधा
भवति उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् ।

तत्रोपलब्धिर्विधिसाधिकैवानुपलब्धिश्च प्रतिषेधसाधिकैवेत्य-
नयोर्विषयनियममुपलब्धिरित्यादिना विघटयति—

१ अनेन प्रकारेण । २ तद्वदिति । ३ परार्थानुमानमुच्यते इति सम्बन्धः ।

४ हेतोः । ५ अनेन प्रकारेण ।

उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च ॥ ५८ ॥

अविनाभावनिमित्तो हि साध्यसाधनयोग्यगमकभावः । यथा चोपलब्धेर्विधौ साध्येऽविनाभावाद्गमकत्वं तथा प्रतिषेधेऽपि । अनुपलब्धेश्च यथा प्रतिषेधे ततो गमकत्वं तथा विधौ वैपीत्यग्रे स्वयमेवाचार्यो वक्ष्यति ।

सा चोपलब्धिर्द्विप्रकारा भवत्यविरुद्धोपलब्धिर्विरुद्धोपलब्धिश्चेति—

अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा व्याप्यकार्यकारण- पूर्वोत्तरसहचरभेदात् ॥ ५९ ॥

तत्र साध्येनाविरुद्धस्य व्याप्यादेरुपलब्धिर्विधौ साध्ये षोढा १० भवति व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात् ।

ननु कार्यकारणभावस्य कुतश्चित्प्रमाणादप्रसिद्धेः कथं कार्यकारणस्य तद्वा कार्यस्य गमकं स्यादित्यप्यास्तां तावद्विषयपरिच्छेदे सम्बन्धपरीक्षायां कार्यकारणतादिसम्बन्धस्य प्रसाधयिष्यमाणत्वात् ।

ननु प्रसिद्धेऽपि कार्यकारणभावे कार्यमेव कारणस्य गमकं तस्यैव तेनाविनाभावात्, न पुनः कारणं कार्यस्य तदभावात् । इत्यसङ्गतम् ; कार्यविनाभावितयाऽवधारितस्यानुमानकालप्राप्तस्य ऊर्ध्वादेर्विशिष्टकारणस्य कार्योदिकार्यानुमापकत्वेन सुप्रसिद्धत्वात् । न हानुकूलमात्रमन्तर्लक्षणप्राप्तं वा कारणं लिङ्गमुच्यते, येन प्रतिबन्ध-
वैकल्यसम्भवाद्भ्रममिचारि स्यात्, द्वितीयक्षणे कार्यस्य प्रत्यक्षीकरणादनुमानानर्थक्यं वा । तदेव समर्थयमानो रसादेकसामर्थ्यनुमानेनेत्याद्याह—

रसादेकसामर्थ्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरि-

ष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्या-

प्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये ॥ ६० ॥

१ साध्ये । अविनाभावाद्गमकत्वमुपलब्धेः । २ साध्ये । ३ साध्ये । ततो गमकत्वमुपलब्धेः । ४ स्वभावहेतुरयम् । ५ ज्ञानादेववादी शून्यवादी वा बौद्ध-विशेषः प्राह । ६ न केवलमग्रे प्राक्तनं वक्ष्यतीत्यसि । ७ आदिना सयोगादिग्रहणम् । ८ चन्द्रशेखरी । ९ आदिना समुद्रवृद्धिः । १० तन्नुसंयोगरूपम् । ११ मन्त्रोपधादिना प्रतिबन्धः । १२ इन्द्रः । १३ सहस्ररिणा क्षिप्तादीना वैकल्यम् ।

आस्थाद्यमानाद्दि रसाचञ्जनिका सामग्र्यनुमीयते । पश्चात्तदनुमानेन रूपानुमानम् । सजातीयं हि रूपक्षणान्तरं जनयन्नेव प्राक्तनो रूपक्षणे विजातीयरसादिक्षणान्तरोत्पत्तौ प्रभुर्मेवेष्टान्यथा । तथा चैकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव ५ किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरावैकस्यैव भवतः ।

अथ पूर्वोत्तरचरिणोः प्रतिपादितहेतुभ्योर्थान्तरत्वसमर्थनार्थमाह—

न च पूर्वोत्तरकालवर्त्तिनोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा
१० कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः ॥ ६१ ॥

प्रयोगः—र्यद्यत्काले अनन्तरं वा नास्ति न तस्य तेन तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा यथा भविष्यच्छङ्खचक्रवर्त्तिकाले असतो रावणादेः, नास्ति च शकटोदयादिकाले अनन्तरं वा कृत्तिकोदयादिकमिति । तादात्म्यं हि समसमयस्यैव कृतकत्वानित्यत्वादेः प्रतिपन्नम् । १५ अग्निधूमादेभ्योन्योन्यमव्यवहितस्यैव तदुत्पत्तिः, न पुनव्यवहितकालस्य अतिप्रसङ्गात् ।

ननु प्रज्ञाकरमिमात्रेण भाविरोहिण्युदयकार्यतया कृत्तिकोदयस्य गमकत्वात्कथं कार्यहेतौ नास्यान्तर्भाव इति चेत्? कथमेवैवमभूद्भरण्युदयः कृत्तिकोदयादित्यनुमानम्? अथ भरण्युदयोपि कृत्तिकोदयस्य कारणं तेनायमदोषः, ननु येन स्वभावेन भरण्युदयात्कृत्तिकोदयस्तेनैव यदि शकटोदयात्, तदा भरण्युदयादिवाऽतोपि पश्चादसौ स्यात् । यथा च शकटोदयात्प्रोक्तस्यैव भरण्युदयादपि । यदि चातीतानागतयोरेकत्र कार्यं व्यापारः, तर्ह्यआस्थाद्यमानरसस्यातीतो रसो भावि च रूपं हेतुः स्यात् । ततो

१ तस्य सहाकारिकारणस्य । २ समर्थः । ३ किञ्चित् नानुक्तगदिरूप कारणम् । ४ मणिमन्त्रादिना । ५ कित्युदकादिकस्य । ६ हेतोः । ७ साध्यसाधनयोः । ८ तादात्म्यतदुत्पत्तौ भूमिर्नो कृत्तिकोदयशकटोदययोर्न भवतः शकटोदयकालेऽनन्तरं वा कृत्तिकोदयस्यानुपलब्धेः । ९ तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा । १० समिधधानैकान्तिकत्वे सतीर्दं नावयम् । ११ रावणशङ्खचक्रवर्त्तिनो रतीतानागतयोस्तादात्म्यतदुत्पत्तिप्रसङ्गात् । १२ बौद्धाना मध्ये प्रज्ञाकरबौद्धो नाम भाविभरणवादी कश्चिद्व्यवहारः । १३ पूर्वचरस्य । १४ पूर्वचरस्य कार्यहेतुत्वान्तर्भावप्रकारेण । १५ भूतकारणवादिमतमाभिलोभ्यते । १६ अनुमानाभावलक्षणः । १७ कृत्तिकोदयः । १८ रोहिणी । १९ कृत्तिकोदयः । २० प्राक् कृत्तिकोदयः स्यात् ।

न वर्धमानस्य रूपस्य वातीतस्य वा प्रतीतिः । इत्ययुक्तमुक्तम्—“अ-
तीतैककालोनां गतिर्नाऽनागतानाम्” [प्रमाणवा० खण्ड० १।१३]
इति । अथान्यतरकार्यमसौ; तर्ह्यऽन्यतरस्यैवातः प्रतीतिर्भवेत् ।

ननु स्वसत्तासमवायात्पूर्वमसन्तोपि मरणोदयोऽरिष्टादिकार्य-
कारिणो दृष्टास्ततोऽनेकान्तो हेतोरित्याशङ्क्य भाव्यतीतयोरित्या-५
दिना प्रतिविधत्ते—

भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्वोधयोरपि
नारिष्टोद्वोधौ प्रति हेतुत्वम् ॥ ६२ ॥

तद्वापाराश्रितं हि तद्भावाभावित्वम् ॥ ६३ ॥

न च पूर्वमेवोत्पन्नमरिष्टं करतलरेखादिकं वा भाविनो मरणस्य १०
राज्यादेर्व्यापारमपेक्षते, स्वयमुत्पन्नस्यापरापेक्षायोगात् । अथा-
स्योत्पत्तिर्मरणादिनैव क्रियते; न, अस्मैतः स्वरविषाणवत्कर्तृत्वा-
योगात् । कार्यकालेऽसत्त्वेपि स्वकाले सत्त्वादवोषश्चेत्; ननु
किं भाविनो मरणादेः स्वकाले पूर्वं सत्त्वम्, अरिष्टादेर्वा । भाविनः
पूर्वं सत्त्वे ततः पञ्चादरिष्टादिकमुपजायमानं पाञ्चात्यं न पूर्वम् । १५
इत्ययुक्तमुक्तम्—“पूर्वमसन्तोपि मरणादयोऽरिष्टादिकार्यकारिणः”
इति । अथान्यभाविमरणाद्यपेक्षयारिष्टादिकं पूर्वमुच्यते; ननु तदपि
सत् स्वकाले यदि ततः प्रागेव स्यात्; तर्हि पाञ्चात्यमरिष्टादिकं
कथं ततः पूर्वमुच्यते ? अन्यभाविमरणाद्यपेक्षया चेदनवस्था ।

अथ पूर्वमरिष्टादिकं स्वकाले पञ्चाद्भाविमरणादिकं स्वकाल-२०
नियतं भवेत्; तर्हि निष्पन्नस्य निराकाङ्क्षस्यास्य पञ्चादुपजाय-
मानेन मरणादिना कथं करणं कृतस्य करणायोगात् ? अन्यथा न
कचित्कार्यं कस्यचित्कारणस्य कदाचिदुपरमः स्यात्, पुनःपुनस्त-
स्यैव करणात् । अथ निष्पन्नस्याप्यनिष्पन्नं किञ्चिद्रूपमस्ति तत्क-
रणात्तत्तत्करणं कैलप्यते, तत्ततो यद्यभिन्नम्; तदेव तत्तस्य च २५
न करणमित्युक्तम् । भिन्नं चेत्; तदेव तेन क्रियते नारिष्टादिक-
मित्यायातम् । तत्सम्बन्धिनस्तस्य करणात्तदपि कृतमिति चेत्;

१ अतीतश्चक्षुः अतीतैकौ कालौ वेदा रूपादीनाम् । २ साध्यार्थानाम् । ३ शक-
योदयभरण्युदययोर्मध्ये । ४ कारणस्य । ५ आदिना राज्यादयश्च । ६ उपपात-
दसरेखादि । ७ अरिष्टादिना । ८ कारणस्य । ९ कारणस्य । १० इति चेत् ।
११ अरिष्टादिकाले । १२ मरणादेः सकाशात्पूर्वं सत्त्वम् । १३ सकाशात् ।
१४ द्वितीयविकल्पोऽयम् । १५ अरिष्टादेः । १६ परेण ।

मिर्झयोः कार्यकारणभावाच्चान्यैः सम्बन्धः, स्वयं सौगतैस्तथाऽभ्युपगमात् । तत्र चारिष्टादिना तत्क्रियेत, तेन चारिष्टादिकम् । प्रथमपक्षेऽरिष्टादेरेव तन्निष्पत्तेर्मरणादिकमकिञ्चित्करमेव क्वचिदप्यनुपयोगात् । तेनारिष्टादिकरणे पूर्वनिष्पन्नस्य पश्चादुपजायमानेन तेन किं क्रियत इत्युक्तम् । अथाऽनिष्पन्नं किञ्चिदस्ति, तत्रापि पूर्ववच्चर्चानवस्था च ।

ननु यद्यत्र कार्यकारणभावो न स्यात्कथं तर्हि एकदर्शनादन्यानुमानमिति चेत्, 'अविनाभावात्' इति ब्रूमः । तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणप्रतिबन्धेऽप्यविनाभावादेव गमकत्वम् । तदभावे १० वक्तृत्वतत्पुत्रत्वादेस्तादात्म्यतदुत्पत्तिप्रतिबन्धे सत्यपि असर्वज्ञत्वे श्यामतत्वे च साध्ये गमकत्वाप्रतीतेः । तदभावेपि चाविनाभावप्रसादात् कृत्तिकोदय-चन्द्रोदय-उद्गृहीताण्डकपिपीलिकोर्त्सर्पण-एकाग्रफलोपलभ्यमानमधुररसस्वरूपाणां हेतूनां यथाक्रमं शक-टोदय-समानसमयसमुद्बृद्धि-भाविष्टुष्टि-समसमयसिन्दूरारुण- १५ रूपस्वभावेषु साध्येषु गमकत्वप्रतीतेश्च । तदुक्तम्—

“कार्यकारणभावादिसम्बन्धानां द्वयी गतिः ।

नियमानियमाभ्यां स्यादनिर्यमादनङ्गता ॥ १ ॥

सर्वेऽप्यनिर्यमा भूते नानुमोत्पत्तिकारणम् ।

निर्यमात्कैवल्यादेव न किञ्चिन्नानुमीयते ॥ २ ॥” []

२० ततः शरीरनिर्यत्तकाऽदृष्टादिकारणकलापादिरिष्टकरतलरेखादयो निष्पन्नाः भाविनो मरणराज्यादेरनुमापका इति प्रतिपत्तव्यम् ।

जाग्रद्वोधस्तु प्रबोधबोधस्य हेतुरित्येतत्प्रोगेव प्रतिबिहितम्, स्वापाद्यवस्थायामपि ज्ञानस्य प्रसाधितत्वात् । ततो भाव्यतीत-

१ निष्पन्नानिष्पन्नयोः । २ सयोगादिः । ३ अन्यसम्बन्धाभावप्रकारेण । ४ अनिष्पन्नम् । ५ अनिष्पन्नरूपेण । ६ कार्ये । ७ अरिष्टादि । ८ चटन । ९ अन्यकारावस्थायामास्त्रावमानमाग्रफलं सिन्दूरारुणरूपद्रुकं भवति मधुररसोपेतत्वादुपसृक्ता-अफलवत् । १० आदिना तादात्म्यसंयोगादि । ११ प्रकारः । १२ अविनाभावाभावात् । १३ अनुमानं प्रति । १४ अनिर्यमादनङ्गतेत्येतदेवाचष्टे सर्वे इत्यादिना । १५ कार्यकारणतादात्म्यादयः । १६ वक्तृत्वतत्पुत्रत्वादीनां हेत्वाभासाना येऽविनाभावरहिताः कार्यकारणादिसम्बन्धास्तैः सर्वे अनुमानोत्पत्तिकारणं न भवन्ति । १७ तर्ह्यनुमानोत्पत्तिं प्रति किं कारणमित्युक्ते सत्याह । १८ अविनाभावात् । १९ साध्यम् । २० आदिनात्मादि । २१ यौगेन । २२ भोक्षविचारानसरे ।

योर्मरणजाग्रदबोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वम्, येनाभ्याम-
नैकान्तिको हेतुः स्यादिति स्थितम् ।

यथा च पूर्वोत्तरचरिणोर्न तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा तथा—

**सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थाना-
त्सहोत्पादाच्च ॥ ६४ ॥**

५

यैयोः परस्परपरिहारेणावस्थानं न तयोस्तादात्म्यम् यथा घट-
पटयोः, परस्परपरिहारेणावस्थानं च सहचारिणोरिति । एक-
कालत्वाच्चानयोर्न तदुत्पत्तिः । ययोरेककालत्वं न तयोस्तदुत्पत्तिः
यथा सव्येतरगोविषाणयोः, एककालत्वं च सहचारिणोरिति ।

न चास्वाद्यमानाद्रसात्सामग्र्यनुमानं ततो रूपानुमानं मनुमिता-१०
नुमानौदित्यभिधार्तव्यम्, तथा व्यवहाराभावात् । न हि आस्वाद्य-
मानाद्रसाद् व्यवहारी सामग्रीमनुमिनोति, रससमसमयस्य रूप-
स्थानेनानुमानात् । व्यवहारेण च प्रमाणचिन्ता भवता प्रतन्यते ।
“प्रामाण्यं व्यवहारेण” [प्रमाणवा० २।५] इत्यभिधानात् ।
सामग्रीतो रूपानुमाने च कारणात्कार्यानुमानप्रसङ्गाद्विज्ञसंख्या-१५
व्याघातः स्यात् ।

तनेव व्याप्यादिहेतून् बालव्युत्पत्त्यर्थमुदाहरणद्वारेण स्फुट-
यति । तत्र व्याप्यो हेतुर्यथा—

**परिणामी शब्दः, कृतकत्वात्, य एवं स एवं
दृष्टः यथा घटः, कृतकश्चायम्, तस्मात्परिणामीति । २०
यस्तु न परिणामी स न कृतकः यथा वन्ध्यास्त-
नन्धयः, कृतकश्चायम्, तस्मात् परिणामीति ॥ ६५ ॥**

‘दृष्टान्तो द्वेधा अन्वयव्यतिरेकमेदात्’ इत्युक्तम् । तत्रान्वय-
दृष्टान्तं प्रतिपाद्य व्यतिरेकदृष्टान्तं प्रतिपादयन्नाह—यस्तु न
परिणामी स न कृतको दृष्टः यथा वन्ध्यास्तनन्धयः, कृतकश्चा-२५
यम्, तस्मात्परिणामीति । कृतकत्वं हि परिणामित्वेन व्याप्तम् ।

१ साम्यसाधनयोः । २ तादात्म्यतदुत्पत्त्योरभावः । ३ तादात्म्यं सहचारिणो-
र्नास्ति परस्परपरिहारेणावस्थानात् । ४ कृतम् । ५ अनुमितायाः सामग्र्याः सव्य-
शाद्यनुमानं रूपम् । ६ परेण भवता । ७ लौगत्वेन । ८ त्रि । ९ जदिद्यत्वेन ।
१० अपेक्षितपरम्परापरः कृतकः सन्धये ।

पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामशून्यस्य सर्वथा
नित्यत्वे क्षणिकत्वे वा शब्दस्य कृतकत्वानुपपत्तेर्वैक्यमाणात्वाद् ।

किं पुनः कार्यलिङ्गस्योदाहरणमित्याह—

अस्त्यत्र शरीरे बुद्धिर्व्याहारादेः ॥ ६६ ॥

- ५ व्याहारो वचनम् । आदिशब्दाद्व्यापाराकारविशेषपरिग्रहः ।
ननु तात्त्वाद्यन्वयव्यतिरेकानुविधायितया शब्दस्योपलम्भात्कथ-
मात्मकार्यत्वं येनातस्तदस्तित्वसिद्धिः स्यात् ? न खल्व्वात्मनि
विद्यमानेषु विवक्षावैद्वर्परिकरे कफादिदोषकण्ठादिव्यापाराभावे
वचनं प्रवर्तते, तदप्यसारम्, शब्दोत्पत्तौ तात्त्वादिसहायस्यै-
१० वात्मनो व्यापाराभ्युपगमात् । घटाद्युत्पत्तौ चक्रादिसहायस्य
कुम्भकारादेर्व्यापारवत्, कथमन्यथा घटादेरप्यात्मकार्यता ?
कार्यकार्योद्देश्य कार्यहेतुवैवान्तर्भावः ।

कारणलिङ्गं यथा—

अस्त्यत्र छाया छात्रात् ॥ ६७ ॥

- १५ कारणकारणादेरवैवानुप्रवेशाच्चार्थान्तरत्वम् ।
पूर्वचरलिङ्गं यथा—

उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् ॥ ६८ ॥

पूर्वपूर्वचराद्यनेनैव सङ्गृहीतम् ।

उत्तरचरं लिङ्गं यथा—

- २० उदगान्नरणिस्तत एव ॥ ६९ ॥

कृत्तिकोदयादेव । उत्तरोत्तरचरमेतेनैव सङ्गृह्यते ।

सहचरं लिङ्गं यथा—

अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात् ॥ ७० ॥

संयोगिर्न एकार्थसमैवार्यिर्नैव साध्यसमकालस्यावैवान्तर्भावो

- २५ द्रष्टव्यः ।

१ आत्मा । २ सुखप्रसादि । ३ सहित । ४ सहाय । ५ कण्ठादिष्वन्वहार-
भाव एव कारणम् । ६ जैनैः । ७ तात्त्वाद्यन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वेन तात्त्वादेरेव
कार्यं शब्द इत्येवं यदि । ८ अभूदत्र शिवकः स्यात्सात् । ९ महोऽत्रस्थानां कण्ठा-
क्षेपविक्षेपकारी धूमवदग्निमत्त्वात् । कण्ठादिविक्षेपस्य कारणं धूमस्तस्य च कारणं वह्नि-
रिति । १० उदाह्रियते । ११ आत्मनोऽत्राऽस्तित्वं विस्मिद्वशरीरात् । अत्रापि नैयामिक-
मतानुसरणे कार्यहेतोरेव धूमादेरिव संज्ञा । १२ नैयामिकमतानुसरणे सहचरहेतोरेव
संज्ञा । १३ हेतोः ।

अथाविरुद्धोपलब्धिमुदाहृत्येदानीं विरुद्धोपलब्धिमुदाहर्तुं
विरुद्धेत्याद्याह—

विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथेति ॥ ७१ ॥

प्रतिषेधेन यद्विरुद्धं तत्सम्बन्धिनां तेषां व्याप्यादीनामुप-
लब्धिः प्रतिषेधे साध्ये तथाऽविरुद्धोपलब्धिवत् षट्प्रकारा । ५
तानेव षट् प्रकारान् यथेत्यादिना प्रदर्शयति—

(यथा) नास्त्यत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ॥ ७२ ॥

यथेत्युदाहरणप्रदर्शने । औष्ण्यं हि व्याप्यमग्नेः । स च विरुद्धः
शीतस्पर्शेन प्रतिषेध्येनेति ।

विरुद्धकार्यं लिङ्गं यथा—

१०

नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ॥ ७३ ॥

विरुद्धकारणं लिङ्गं यथा—

नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ॥ ७४ ॥

सुखेन हि प्रतिषेध्येन विरुद्धं दुःखम् । तस्य कारणं हृदय-
शल्यम् । तत्कुतश्चित्तदुपदेशादेः सिद्धात्सुखं प्रतिषेधतीति । १५

विरुद्धपूर्वचरं यथा—

नोदेष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं

रेवत्युदयात् ॥ ७५ ॥

शकटोदयविरुद्धो ह्यश्विन्युदयस्तत्पूर्वचरो रेवत्युदय इति ।

विरुद्धोत्तरचरं यथा—

२०

नोदगाद्भरणिर्मुहूर्त्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ॥ ७६ ॥

भरण्युदयविरुद्धो हि पुनर्वसूदयस्तदुत्तरचरः पुष्योदय इति ।

विरुद्धसहचरं यथा—

नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागात् ॥ ७७ ॥

परभागाभावेन हि विरुद्धस्तत्सद्भावस्तत्सहचरोऽर्वाग्भाग इति । २५

अथोपलब्धिं व्याख्यायेदानीमनुपलब्धिं व्याचष्टे । सा चानुप-
लब्धिरुपलब्धिष्वद्विप्रकारा भवति । अविरोधानुपलब्धिर्विरोधानु-
पलब्धिश्चेति । तत्राद्यप्रकारं व्याख्यातुकामोऽविरुद्धेत्याद्याह—

अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सतथा स्वभाव-

५ व्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसह-

चरानुपलम्भभेदादिति ॥ ७८ ॥

प्रतिपेक्षेनाविरुद्धस्यानुपलब्धिः प्रतिपेक्षे साध्ये सप्तधा
भवति । स्वमौख्यापकर्तृकारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलब्धि-
भेदात् ।

१० तत्र स्वभावानुपलब्धिर्यथा—

नास्त्यत्र भूतले घटं उपलब्धिलक्षण-

प्राप्तस्यानुपलब्धेः ॥ ७९ ॥

पिशाचादिभिर्व्यभिचारो मा भूदित्युपलब्धिलक्षणप्राप्तस्येति
विशेषणम् । कथं पुनर्यो नास्ति स उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्तत्प्राप्तत्वे
१५ वा कथमसत्त्वमिति चेदुच्यते-आरोप्यैतद्रूपं निविध्यते सर्वैर्वा-
रोपितरूपविषयत्वान्निवेद्यस्य । यथा 'नायं गौरः' इति । न ह्यत्रै-
तच्छब्दं वक्तुम्-सति गौरत्वे न निषेधो निषेधे वा न गौरत्व-
मिति । नन्वेवैमदृश्यमपि पिशाचादिकं दृश्यरूपतयाऽऽरोप्य
प्रतिषेध्यतामिति चेन्न; आरोपयोग्यत्वं हि यस्यास्ति तस्यैवा-
रोपः । यश्चायं विद्यमानो नियमेनोपलभ्येत स एवारोपयोग्यः,
२० न तु पिशाचादिः । उपलम्भकारणसार्कल्ये हि विद्यमानो घटो
नियमेनोपलम्भयोग्यो गम्यते, न पुनः पिशाचादिः । घटस्यो-
पलम्भकारणसार्कल्यं चैकज्ञानसंसर्गिणि प्रदेशादावुपलम्भमाने
निश्चीयते । घटप्रदेशयोः खलूपलम्भकारणान्यविशिष्टानीति ।

१ व्याप्य । २ प्रतिषेधेन घटेनाविरुद्धः कः तत्त्वभावो घटत्वभाव इत्यर्थः ।
३ कुनर् । ४ प्रकल्प्य घटसम्बन्धित्वेन मूलम् । ५ कश्चिदपि न निषेध्यस्यारोपित-
रूपविवयत्वमित्युक्ते आह । ६ नस्तुलि । ७ आरोपितस्य प्रतिषेधत्वे । ८ विक-
मानत्वे विज्ञाचादिरप्पुषलम्भेवेत्युक्ते आह । ९ विज्ञाचादिरप्यारोपयोग्यः कुतो न
स्यादित्युक्ते आह । १० प्रलङ्घ । ११ इन्द्रियाल्लोकादिना । १२ निषेध्यस्य घटस्य
कर्ममुपलम्भकारणसाकल्यं निश्चीयत इत्युक्ते आह । १३ इन्द्रिय । १४ घटेन ।
१५ घटस्योपलम्भकारणसाकल्यं च न स्यात् एकज्ञानसंसर्गिपदार्थान्तरुपलम्भस्य भवि-
ष्यदीत्युक्ते आह । १६ समानानि ।

यञ्च यदेशाद्येतया कल्पितो घटः स एव तेनैकज्ञानसंसर्गा, न देशान्तरस्थः । तैतच्चैकज्ञानसंसर्गिपदार्थान्तरोपलम्भे योग्यतया सम्भावितस्य घटस्योपलब्धिलक्षणप्राप्तानुपलम्भः सिद्धः ।

ननु चैकज्ञानसंसर्गिण्युपलम्भमने सत्यपीर्तरेविषयज्ञानोत्पादनशक्तिः सामग्र्याः समस्तीत्यवसातुं न शक्यते, प्रभाववतो ५ योगिनः पिशाचादेर्वा प्रतिबन्धात्सतोपि घटस्यैकज्ञानसंसर्गिणि प्रदेशादावुपलम्भमानेष्वनुपलम्भसम्भवात् ; तदयुक्तम् । यतः प्रदेशादिनैकज्ञानसंसर्गिण एव घटस्याभावो नान्यस्य । यस्तु पिशाचादिनाऽन्यत्वमापादितः स नैव निषेध्यते । ईह वैकज्ञानसंसर्गिभासमनोर्यस्तज्ज्ञानं च पर्युदासवृत्त्या घटस्याऽसत्तानुप- १० लब्धिस्रोत्येते ।

ननु चैवं केवलभूतलस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्तद्रूपो घटाभावोपि सिद्ध एवेति किमनुपलम्भसाध्यम् ? सत्यमेवैतत्, तथापि प्रत्यक्ष-
प्रतिपन्नेष्वभावे यो व्यामुह्यति साहचर्यादिः सोऽनुपलम्भं निमिची-
कृत्य प्रतिपाद्यते । अत्रानुपलम्भनिमित्तो हि सत्त्वरजस्तमःप्रभृति- १५
ष्वसङ्ख्यवर्धोरः । स चात्राप्यस्तीति निमित्तप्रदर्शनैव व्यवहारः
प्रसाध्यते । दृश्यतेहि विशाले गवि साक्षादिमत्त्वात्प्रवर्तितगो-
व्यवहारो मूढमतिर्विशङ्कते साहचर्यमुत्प्रेक्षमाणोपि न गोव्यवहारं
प्रवर्त्तयतीति विशङ्कते वा प्रवर्त्तितो गोव्यवहारो न विशाले, स
निमित्तप्रदर्शनैव गोव्यवहारे प्रवर्त्त्यते । साक्षादिमन्मात्रनिमि- २०
त्तको हि गोव्यवहारस्त्वया प्रवर्त्तितपूर्वो न विशालत्वविशङ्कट-
त्वनिमित्तक इति । तैथा मद्व्यां शिशपायां प्रवर्त्तितवृक्षव्यवहारो
मूढमतिः स्वल्पायां तस्यां तद्व्यवहारप्रवर्त्तयन्निमित्तोपदर्शनेन
प्रवर्त्त्यते वृक्षोयं शिशपात्वादिति ।

व्यापकानुपलब्धिर्यथा—

२५

१ घटप्रदेशयोर्मिश्रज्ञानप्राप्तादेकज्ञानसंसर्गित्वाभावो भूतसेत्युक्ते आह ।
२ कल्पितस्य घटस्यैकज्ञानसंसर्गित्वं सिद्धं यतः । ३ भूतल । ४ दृश्यत्वेन ।
५ प्रदेशे । ६ घट । ७ अतिशयवतो मायाविनः कुण्डलिव । ८ मिश्रज्ञानसंसर्गिणः ।
९ अदृश्यत्वम् । १० कुतो न प्रतिषेध्येतेत्युक्ते आह । ११ भूतललक्षणः ।
१२ जनैः । १३ भूतलसङ्गाव एव घटाभाव इत्येवम् । १४ अनेन हेतुना ।
१५ प्रतिषेधोच्यते । १६ प्रत्यक्षसिद्धेऽभावे व्यवहारः स्वयमेव साक्षान्प्राप्त्या, ततोऽ-
नुपलम्भो व्यर्थ इत्युक्ते आह । १७ सत्त्वे रजो नास्त्यनुपलम्भेति । १८ कथं
निमित्तप्रदर्शनमिलाह स चात्राप्यस्तीति । १९ अस्मिन् । २० इत्ये । २१ साक्षादि-
मत्त्वादि निमित्तम् । २२ कथम् । २३ साक्षादित्येवमस्तीत्येकस्याभावतः ।

नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षाऽनुपलब्धेः ॥ ८० ॥

कार्यानुपलब्धिर्यथा—

नास्त्यत्राऽप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्निर्धूमानुपलब्धेः ८१

नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ॥ ८२ ॥

५ इति कारणानुपलब्धिः ।

न भविष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं कृत्तिकोदया-
नुपलब्धेः ॥ ८३ ॥

इति पूर्वचरानुपलब्धिः ।

नोदगाद्गरणिर्मुहूर्त्तात्प्राक् तत एव ॥ ८४ ॥

१० कृत्तिकोदयानुपलब्धेरेव । इत्युत्तरचरानुपलब्धिः ।

नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नानामानुपलब्धेः ८५

इति सहचरानुपलब्धिः ।

अथानुपलब्धिः प्रतिषेधसाधिकैवेति नियमप्रतिषेधार्थं विरुद्धे-
त्याद्याह—

१५ विरुद्धानुपलब्धिः विधौ त्रेधा विरुद्धकार्य-
कारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ॥ ८६ ॥

विधेयेन विरुद्धस्य कार्यादेरनुपलब्धिर्विधौ साध्ये सम्भवन्ती
त्रिधा भवति—विरुद्धकार्यकारणस्वभावाऽनुपलब्धिभेदात् ।

तत्र विरुद्धकार्यानुपलब्धिर्यथा—

२० अस्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोस्ति निरामय-
चेष्टानुपलब्धेः ॥ ८७ ॥

आमयो हि व्याधिः, तेन विरुद्धस्तदभावः, तत्कार्या विशिष्ट-
चेष्टा तस्या अनुपलब्धिव्याधिविशेषास्तित्वानुमानम् ।

विरुद्धकारणानुपलब्धिर्यथा—

२५ अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ॥ ८८ ॥

दुःखेन हि विरुद्धं सुखम्, तस्य कारणममीष्टार्थेन संयोगः,
तदभावस्तदनुपलब्धिर्दुःखास्तित्वं गमयतीति ।

विरुद्धस्वभावानुपलब्धिर्यथा—

अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तानुपलब्धेः ॥ ८९ ॥

अनेकान्तेन हि विरुद्धो नित्यैकान्तः क्षणिकैकान्तो वा । तस्य ५
चानुपलब्धिः प्रत्यक्षादिप्रमाणेनाऽस्य ग्रहणाभावात्सुप्रसिद्धा ।
यथा च प्रत्यक्षादेस्तद्ग्राहकत्वाभावस्तथा विषयविचारप्रस्तावे
विचारयिष्यते ।

ननु चैतत्साक्षाद्विधौ निषेधे वा परिसङ्ख्यातं साधनमस्तु ।
यत्तु परम्परया विधेर्निषेधस्य वा साधकं तदुक्तसाधनप्रकारे-१०
भ्योऽन्यत्वादुक्तसाधनसङ्ख्याव्याघातकारि छलसाधनान्तरमनु-
बध्यते । इत्याशङ्क्य परम्परयेत्यादिना प्रतिविधत्ते—

परम्परया संभवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम् ॥ ९०

यतः परम्परया सम्भवत्कार्यकार्यादि साधनमत्रैव अन्तर्भाव-
नीयं ततो नोक्तसाधनसङ्ख्याव्याघातः । १५

तत्र विधौ कार्यकार्यं कार्याविरुद्धोपलब्धौ अन्तर्भावनीयम्
यथा—

अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ।

कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ॥ ९१-९२ ॥

शिवकस्य हि साक्षाच्छिवकः कार्यं स्थासस्तु परम्परयेति । २०
निषेधे तु कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथाऽन्तर्भा-
व्यते तद्यथा—

नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं मृगारिशब्दनात्

कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ

यथेति ॥ ९३ ॥

२५

मृगक्रीडनस्य हि कारणं मृगः । तेन च विरुद्धो मृगारिः ।
तत्कार्यं च तच्छब्दनमिति ।

१ एकान्तस्वरूपानुपलब्धेरिति पाठान्तरम् । २ निघमानम् । ३ कार्यादिभ्येव ।
४ साध्ये । ५ ता । ६ तथा कार्यकार्यं कार्याविरुद्धोपलब्ध्यावन्तर्भावनीयमिति
सम्बन्धः ।

ननु यद्यव्युत्पन्नानां व्युत्पत्त्यर्थं दृष्टान्तादियुक्तो हेतुप्रयोगस्तर्हि
व्युत्पन्नानां कथं तत्प्रयोग इत्याह—

व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथाऽ-
नुपपत्त्यैव वा ॥ ९४ ॥

५ एतदेवोदाहरणद्वारेण दर्शयति—

अग्निमानयं देशस्तथा धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूम-
वत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा ॥ ९५ ॥

कुतो व्युत्पन्नानां तथोपपत्त्यन्यथाऽनुपपत्तिभ्यां प्रयोगनियम
इत्याशङ्क्य हेतुप्रयोगो ह्येत्याद्याह—

१० हेतुप्रयोगो हि यथाव्याप्तिग्रहणं विधीयते,
सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नै-
रवधार्यते इति ॥ ९६ ॥

यतो हेतोः प्रयोगो व्याप्तिग्रहणानतिक्रमेण विधीयते । सा च
व्याप्तिस्तावन्मात्रेण तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिप्रयोगमात्रेण व्युत्प-
१५ न्नैर्निर्णीयते इति न दृष्टान्तादिप्रयोगेण व्याप्त्यवधारणार्थेन किञ्चि-
त्प्रयोजनम् ।

नापि साध्यसिद्ध्यर्थं तत्प्रयोगः फलवाद्—

तावतैव च साध्यसिद्धिः ॥ ९७ ॥

यतस्तावतैव चकार एवकारार्थं निश्चितविपक्षासम्भवहेतु-
२० प्रयोगमात्रेणैव साध्यसिद्धिः ।

तेन पक्षः तदाधारसूचनाय उक्तः ॥ ९८ ॥

तेन पक्षो गम्यमानोपि व्युत्पन्नप्रयोगे तदाधारसूचनाय
साध्याधारसूचनायोक्तः । यथा च गम्यमानस्यापि पक्षस्य प्रयोगो
नियमेन कर्तव्यस्तथा प्रागेव प्रतिपादितम् ।

२५ अथैवानीमचसरप्राप्तस्यागमप्रमाणस्य कारणस्वरूपे प्ररूपयक्षा-
त्तेत्याद्याह—

आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ॥ ९९ ॥

आप्तेन प्रणीतं वचनमाप्तवचनम् । आदिशब्देन ईदृक्संज्ञादिपरिग्रहः । तैन्निबन्धनं यस्य तत्तथोक्तम् । अनेनोक्षरश्रुतमनक्षरश्रुतं च सङ्गृहीतं भवति । अर्थज्ञानमित्यनेन चान्यापोहज्ञानस्य शब्दसन्दर्भस्य चागमप्रमाणव्यपदेशाभावः । शब्दो हि प्रमाण-५ कारणैकैयत्वादुपचारत एव प्रमाणव्यपदेशमर्हति ।

ननु चातीन्द्रियार्थस्य ब्रह्मः कस्यचिदाप्तस्याभावात् तत्रापौरुषेयस्यागमस्यैव प्रामाण्यात् कथमाप्तवचननिबन्धनं तद् ? इत्यपि मनोरथमात्रम्, अतीन्द्रियार्थब्रह्मवैयर्थ्यात् प्राक्प्रसाधितत्वात्, अगमस्य चापौरुषेयत्वासिद्धेः । तद्धि पदस्य, वाक्यस्य, वर्णानां १० चाऽन्युपगमेयेत प्रकारान्तराऽसम्भवात् ? तत्र न तावत्प्रथमद्वितीयविकल्पौ घटेते, तथाहि-वेदपदवाक्यानि पौरुषेयाणि पदवाक्यत्वाद्भारतादिपदवाक्यवत् ।

अपौरुषेयत्वप्रसाधकप्रमाणाभावाच्च कथमपौरुषेयत्वं वेदस्योपपन्नम् ? न च तत्प्रसाधकप्रमाणाभावोऽसिद्धः, तथाहि-तत्र-१५ साधकं प्रमाणं प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, अर्थापत्त्यादि वा स्यात् ? न तावत्प्रत्यक्षम्, तस्य शब्दस्वरूपमात्रग्रहणे चरितार्थत्वेन पौरुषेयत्वापौरुषेयत्वधर्मग्राहकत्वाभावात् । अनादिसर्ववैकृत्यं चापौरुषेयत्वं कथमक्षप्रभवप्रत्यक्षपरिच्छेद्यम् ? अक्षाणां प्रतिनियतरूपादिविषयतया अनादिकालसम्बन्धाऽभावतस्तत्सम्बन्ध-२०

१ मुखेन संज्ञा । २ अर्थज्ञानमित्येतावत्पुण्यमाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिरत उक्तं वाक्यनिबन्धनमिति । वाक्यनिबन्धनमर्थज्ञानमित्युच्यमानेति बाह्यच्छिन्नसंवादिषु विप्रकृतमवाक्यजन्येषु सुप्तोन्मत्तादिवाक्यजन्येषु वा नदीवीरफल्संसर्गादिज्ञानेष्वतिव्याप्तिः अत उक्तमाप्तेति । आप्तवाक्यनिबन्धनज्ञानमित्युच्यमानेप्याप्तवाक्यकर्तृके (कारणे) आवणप्रलक्षितेतिव्याप्तिरत उक्तमयेति । अर्थज्ञानपर्यवृद्धः प्रयोगनारुह इति यावत् । तात्पर्यमेव वचसीलमित्युक्तवचनात् वचसा प्रयोगनस्य प्रतिपादकत्वात् । ३ आप्तवचनादि । ४ अर्थज्ञानस्य । ५ आदिपदेन । ६ आप्तशब्दोपादानादपौरुषेयत्ववच्छेदः । ७ अन्यसात्त्विकार्थोद्वेगस्य पदार्थोत्पादोद्दे निराकरणं तस्य व्यावृत्तिरूपापोहविषय एव शब्दो न स्वयंविषय इति नोक्तः । ८ अगमोः व्यावृत्तिर्गोः । व्यावृत्तिस्तुल्यं अर्थरूपा न भवति । ९ शब्द एवार्थो न वाक्यार्थः । १० ज्ञान । ११ वा । १२ गणपरादि-प्रतिपादकज्ञानापेक्षया कारणत्वं शब्दस्य (दिव्यध्वनेः) । १३ प्रतिपादकज्ञानस्य (सर्वज्ञानस्य) हि कार्यं शब्दः । १४ अर्थज्ञानम् । १५ परेण भीमांसकेन । १६ आवणप्रलक्षम् । १७ वचसः । १८ वा ।

सत्त्वेनाप्यसम्बन्धात् । सम्बन्धे वा तद्वदऽनौगतकालसम्बद्ध-
धर्मादिस्वरूपेणापि सम्बन्धसम्भवाच्च धर्मज्ञप्रतिषेधः स्यात् ।

नाप्यनुमानं तत्प्रसाधकम्; तद्धि कर्त्रऽस्मरणहेतुप्रभवम्,
वेदाध्ययनशब्दवाच्यत्वलिङ्गजनितं वा स्यात्, कालत्वसाधनस-
५ मुत्थं वा? तत्राद्यपक्षे किमिदं कर्तुरस्मरणं नाम-कर्तृस्मरणाभावः,
अस्मर्यमाणकर्तृकत्वं वा? प्रथमपक्षे व्यधिकरणाऽसिद्धो हेतुः,
कर्तृस्मरणाभावो ह्यात्मन्यपौरुषेयत्वं वेदे वर्तते इति ।

द्वितीयपक्षे तु दृष्टान्ताभावः; नित्यं हि वस्तु न स्मर्यमाणकर्तृकं
नाप्यस्मर्यमाणकर्तृकं प्रतिपन्नम्, किन्त्वकर्तृकमेव । हेतुश्च व्यर्थ-
१० विशेषणः; सैति हि कर्तरि स्मरणमस्मरणं वा स्यान्नासति स्मर-
विषाणवैत् । अथाऽकर्तृकत्वमेवैत्र विवक्षितम्; तर्हि स्मर्यमाण-
ग्रहणं व्यर्थम्, जीर्णकूपप्रासादादिभिर्यभिचारश्च । अथ सम्प्र-
दायौऽविच्छेदे सत्यऽस्मर्यमाणकर्तृकत्वं हेतुः; तथाप्यनेकान्तः ।
सन्ति हि प्रयोजनाभावादस्मर्यमाणकर्तृकाणि “वटे वटे वैश्रवणः”
१५ [] इत्याद्यनेकपदवाक्यान्यविच्छिन्नसम्प्रदायाणि ।
न च तेषामपौरुषेयत्वं भवतापीष्यते । असिद्धध्यायं हेतुः, पौरा-
णिका हि ब्रह्मकर्तृकत्वं स्मरन्ति “वंकत्रेभ्यो वेदास्तस्य विनि-
सृताः” [] इति । “प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरैतै-
विधीयते” [] इति चाभिधानात् । “यो वेदांश्च
२० प्रहिणोति” [] इत्यादिवेदवाक्येभ्यश्च तत्कर्त्ता स्मर्यते ।

स्मृतिपुराणादिवच्च ऋषिनामाङ्किताः काण्वमाध्यन्दिनतैत्तिरी-
यादर्थः शार्ङ्गमेदाः कथमस्मर्यमाणकर्तृकाः? तथाहि-यतास्तत्कृत-

१ न केवलमनादिकालेन । २ अनुष्ठेयत्वेन । ३ पुण्य । ४ आदिना पापम् ।
५ इति । ६ कर्तृविषयं यत्स्मरणं ज्ञानं तस्याभावः । ७ स्मर्यमाणकर्तृप्रतिषेधः ।
८ आकाशवदिति दृष्टान्तः । ९ भिन्नाधिकरणः सन् । १० दृष्टान्ते । ११ व्यर्थ-
विशेषणः कथमित्युक्ते आह । १२ स्मरविषाणे यथा स्मरणमस्मरणं वा नास्ति कर्त्रऽ-
भावात् । १३ अनुमाने । १४ वेदे वर्णक्रमः पाठक्रमः उदात्तादिक्रमश्च सम्प्र-
दायः । १५ चत्सरे चत्सरे ईश्वरः पर्वते पर्वते रामः सर्वत्र यदुपपन्नः । सा ते
अवन्तु क्षुभीता देवी गिरिनिवासिनी । विचारममं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ।
१६ कथम् । १७ चतुर्व्ययः । १८ ब्रह्मणः । १९ अस्मर्यमाणकर्तृकस्य हेतोरने-
कान्तिकत्वासिद्धत्वे ते उद्भाव्य पुनरप्यसिद्धत्वमुद्भावयन्ति । २० पक्षान्मनोः सका-
शादपरो मनुः मन्वन्तरम् । तत्तत्प्रति प्रतिमन्वन्तरम् । २१ वेदः । २२ स्मृतिः ।
२३ भिन्ना । २४ करोति । २५ प्रसक्तो भवतु इत्यादिभ्यश्च । २६ सन्तानः ।
२७ गोत्रमेदाः ।

कत्वात्तन्नामभिरङ्किताः, तद्वृष्टत्वात्, तैत्प्रकाशितत्वाद्वा ? प्रथम-
पक्षे कथमासामपौरुषेयत्वमस्यमाणकर्तृकत्वं वा ? उत्तरपक्ष-
द्वयेपि यदि तावदुत्सन्ना शास्त्रा कण्वादिना दृष्टा प्रकाशिता वा
तदा कथं सम्प्रदायाऽविच्छेदोऽतीन्द्रियार्थदर्शिनः प्रतिक्षेपश्च
स्यात् ? अथानवच्छिन्नैव सा सम्प्रदायेन दृष्टा प्रकाशिता वा, ५
तर्हि यावद्भिरुपाध्यायैः सा दृष्टा प्रकाशिता वा तावतां नाम-
भिस्तस्याः किन्नाङ्कितत्वं स्याद्विशेषाभावात् ?

एतेन 'छिन्नमूलं वेदे कर्तृस्वरणं तस्य ह्यनुभवो मूलम् । न
चासौ तत्र तद्विषयत्वेन विद्यते' इत्यपि प्रत्युक्तम् । यतोऽध्यक्षेण
तदनुभवमाभावात् तत्र तच्छिन्नमूलम्, प्रमाणान्तरेण वा ? अध्य- १०
क्षेण चेत्, किं भवत्सम्बन्धिना, सर्वसम्बन्धिना वा ? यदि भव-
त्सम्बन्धिना, तर्ह्यगमान्तरेपि कर्तृग्राहकत्वेन भवत्प्रत्यक्षस्या-
प्रवृत्तेस्तत्कर्तृस्वरणस्य छिन्नमूलत्वेनास्यमाणकर्तृकत्वस्य भावाद्
व्यभिचारी हेतुः ; अथागमान्तरे कर्तृग्राहकत्वेनास्तत्प्रत्यक्षस्या-
प्रवृत्तावपि कर्तृसङ्गावाभ्युपगमात् ततो व्यावृत्तमस्यमाण- १५
कर्तृकत्वमपौरुषेयत्वेनैव व्याप्यते इति अव्यभिचारः, न; परकी-
याभ्युपगमस्याप्रमाणत्वात्, अन्यथा वेदेषु परैः कर्तृसङ्गावाभ्यु-
पगमतोऽस्यमाणकर्तृकत्वादित्यसिद्धो हेतुः स्यात् ।

अथ वेदे सर्वविज्ञानकर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेः कर्तृस्वरणमऽतोऽ-
प्रमाणम्-तत्र हि केचिद्विरण्यगर्भम्, अपरे अष्टकादीन् कर्तृन् २०
स्वरन्तीति । नन्वेवं कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेस्तद्विशेषस्वरणमेवा-
प्रमाणं स्यात् न कर्तृमात्रस्वरणम्, अन्यथा कादम्बर्यादीनामपि
कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेः कर्तृमात्रस्वरणत्वेनास्यमाणकर्तृकत्वस्य
भावात्पुनरप्यनेकान्तः । अथ वेदे कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तिवत्कर्तृ-
मात्रेपि विप्रतिपत्तेस्तत्स्वरणमप्यप्रमाणम्, कादम्बर्यादीनां तु २५
कर्तृविशेषे एव विप्रतिपत्तेस्तत्प्रमाणमित्यनेकान्तिकत्वाभावोऽ-
स्यमाणकर्तृकत्वस्य विपक्षे प्रवृत्त्यभावात् । ननु वेदे सौगतादयः
कर्तारं स्वरन्ति न मीमांसका इत्येवं कर्तृमात्रे विप्रतिपत्तेर्यदि
तदप्रमाणम्, तर्हि तद्वत्स्वरणमप्यऽप्रमाणं किञ्च स्याद्विप्रति-
पत्तेरविशेषात् ? तथा चासिद्धो हेतुः । ३०

१ कण्वादि । २ कण्वादि । ३ नष्ट । ४ कर्तृस्वरणमूलस्य वेदपदवाक्यानीत्याह-
नुमानेऽस्य पुराणस्थितिरेदवावयवस्य च प्रवर्तनपरेण ग्रन्थेन । ५ कारणम् । ६ कथम् ।
७ शानादिपिटकत्रये । ८ सौगतेः । ९ व्याघ्रटितम् । १० सर्वविप्रतिपत्तिक ।
११ यदि कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तिः कर्तृमात्रस्वरणस्याऽप्रामाण्यम् । १२ बाणः सङ्करो
वेति । १३ कादम्बर्यादी ।

अथ यद्यनुपलम्भपूर्वकमस्यमाणकर्तृकत्वं हेतुत्वेनोच्येत; तदोक्तप्रकारेणाऽसिद्धिनैकान्तिकत्वे स्याताम्, तदभावंपूर्वके तु तस्मिंस्तयोरनवकाशः, न; अत्र कर्त्रेऽभावग्राहकस्य प्रमाणान्तरस्यैवाऽसम्भवात् । अस्मादेवानुमानात्तदभावसिद्धावन्योन्या-
५ अयः—अतो ह्यऽनुमानात्तदभावसिद्धौ तत्पूर्वकमस्यमाणकर्तृकत्वं सिद्ध्यति, तत्सिद्धौ चातोऽनुमानात्तदभावसिद्धिरिति ।

ननु वेदे कर्तृसङ्गावाम्युपगमे तत्कर्तुः पुरुषस्यावश्यं तदनुष्ठान-
समये अनुष्ठातृणामनिश्चितप्रामाण्यानां तत्प्रामाण्यप्रसिद्धये स्मरणं
स्यात् । ते ह्यदृष्टफलेषु कर्मस्त्वेवं निःसंशयाः प्रवर्तन्ते । यदि
१० तेषां तद्विषयः सत्यत्वनिश्चयः, सोपि तदुपदेष्टुः स्मरणात्स्यात् ।
यथा पित्रादिप्रामाण्यवशात्स्वयमदृष्टफलेष्वपि कर्मसु तदुपदेशा-
त्प्रवर्तन्ते 'पित्रादिभिरेतैरुपदिष्टं तेनानुष्ठीयते', एवं वैदिकेष्वपि
कर्मस्वनुष्ठीयमानेषु कर्तुः स्मरणं स्यात् । न चाभियुक्तानामपि
वेदार्थानुष्ठातृणां त्रैवर्णिकानां तत्स्मरणमस्ति । तथा चैवं प्रयोगः—
१५ 'कर्तुः स्मरणयोग्यत्वे सत्यस्यमाणकर्तृकत्वादपौरुषेयो वेदः' ।
तदप्यसम्बद्धम्; आगमान्तरेऽप्यस्य हेतोः सङ्गाववाधकप्रमा-
णाऽसम्भवेन सङ्गावसम्भवतः सन्दिग्धविषयव्यावृत्तिकत्वेना-
नैकान्तिकत्वात् ।

किञ्च, विपक्षविरुद्धं विशेषणं विपक्षाद्व्यावर्तमानं सविशेष्य-
२० मादाय निवर्तत । न च पौरुषेयत्वेन सह कर्तुःस्मरणयोग्यत्वस्य
सद्धानवस्थानलक्षणः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणो वा विरोधः
सिद्धः । सिद्धौ चैवं तत एव सौख्यप्रसिद्धेः 'अस्यमाणकर्तृकत्वात्'
इति विशेष्योपादानं व्यर्थम् ।

१ उक्तप्रकारेण हेतोरसिद्धत्वे प्रतिपादितेऽनुमानवलेन हेतुसिद्धिं करोति परः ।

२ अनुपलम्भेन हेतुना साधितं तदस्यमाणकर्तृकत्वं साधनं तत् । ३ अनुपलम्भः

स्वसम्बन्धी सर्वसम्बन्धी वा स्यात् । पौरुषत्वपक्षेऽसिद्धत्वम् । पाश्चात्यपक्षेऽनैकान्तिकत्वम् ।

४ वेदः अस्यमाणकर्तृकः अनुपलम्भमानकर्तृकत्वात् आकाशवत् इत्यनेनानुमानेन

हेतुसिद्धिं विदधाति । ५ अनुपलम्भलक्षणस्य हेतोरभयदोषदुष्टत्वादेत्यन्तरेण प्रकृतहेतुं

साधयति । ६ वेदः अस्यमाणकर्तृकः कर्त्रेऽभावग्राह्योऽयम् इत्यनेनानुमानेन साधितः ।

७ अस्यमाणकर्तृकत्वादेव । ८ अस्यमाणकर्तृकत्वात् । ९ अस्यमाणकर्तृकत्वात् ।

१० कृतं यतद्विज्ञाह । ११ अनिरीक्षितफलेषु । १२ बाणेषु । १३ वक्ष्यमाणप्रकारेण ।

१४ कर्म निःसंशयाः प्रवर्तन्ते । १५ कर्म । १६ कारणेन । १७ व्यावृत्तानाम् ।

१८ उक्तप्रकारेण । १९ वक्ष्यमाणरीत्या । २० भिदके । २१ पौरुषेयभिदके ।

२२ पौरुषेयत्वं विपक्षः । २३ विरोधः । २४ अपौरुषेयत्वमिति ।

यच्चोक्तम्—तदनुष्ठानसमय इत्यादि; तदाद्यमान्तरेपि समानम् ।
 ‘न च’ इति चिन्त्यताम्—न चायं नियमः—‘अनुष्ठानातारोऽभिप्रेताथो-
 नुष्ठानसमये तत्कर्त्तारमनुस्मृत्यैव प्रवर्त्तन्ते’ । न खलु पाणिन्यादि-
 प्रणीतव्याकरणप्रतिपादितशब्दव्यवहारानुष्ठानसमये तदर्थानुष्ठा-
 नारोऽवश्यन्तया व्याकरणप्रणेतारं पाणिन्यादिकमनुस्मृत्यैव प्रव-
 र्त्तन्ते इति प्रतीतम् । निश्चिततत्समयानां कर्त्तृस्मरणव्यतिरेकेणा-
 प्याश्रुतरं भवत्यादिसाधुशब्दोपलम्भात् । तत्र भवत्सम्बन्धि-
 प्रत्यक्षेणानुभवाभावात् तत्र तच्छिन्नमूलम् ।

नापि सर्वसम्बन्धिप्रत्यक्षेण; तेन ह्यनुभवाभावोऽसिद्धः । न
 ह्यर्वाङ्देशां ‘सर्वेषां तत्र कर्त्तृग्राहकत्वेन प्रत्यक्षं न प्रवर्त्तते’ इत्यव- १०
 सातुं शक्यमिति तत्र तत्स्मरणस्य छिन्नमूलत्वासिद्धेरसम्यग्माण-
 कर्त्तृकत्वादित्यसिद्धो हेतुः ।

अथ प्रमाणान्तरेणानुभवाभावः; तत्र; अनुमानस्य आगमस्य च
 प्रमाणान्तरस्य तत्र कर्त्तृसङ्गावावेदकस्य प्राक्प्रतिपादितत्वात् ।

किञ्च, असम्यग्माणकर्त्तृकत्वं वादिनः, प्रतिवादिनः, सर्वस्य वा १५
 स्यात्? वादिनश्चेत्; तदनैकान्तिकं “सा ते भवतु सुप्रीता”
 [] इत्यादौ विद्यमानकर्त्तृकेष्वस्य सम्भवात् । प्रतिवादिन-
 श्चेत्; तदसिद्धम्; तत्र हि प्रतिवादी स्मृत्यैव कर्त्तारम् । एतेन
 सर्वस्यास्मरणं प्रत्याख्यातम् । सर्वात्मज्ञानविज्ञानरहितो वा कथं
 सर्वस्य तत्र कर्त्तृऽस्मरणमवैति? २०

किञ्च, अतः स्वातन्त्र्येणापौरुषेयत्वं साध्येत, पौरुषेयत्वसाधन-
 मनुमानं वा वाध्येत? प्राच्यविकल्पे स्वातन्त्र्येणापौरुषेयत्वस्यार्हः
 साधनम्, प्रसङ्गो वा? स्वातन्त्र्यपक्षे नाऽतोऽपौरुषेयत्वसिद्धिः
 पदवाक्यत्वतः पौरुषेयत्वप्रसिद्धेः । अतो न ज्ञायते किमसम्य-
 ग्माणकर्त्तृत्वादपौरुषेयो वेदः पदवाक्यात्मकत्वात्पौरुषेयो वा? न २५
 च सन्देहहेतोः प्रामाण्यम् ।

ननु न प्रकृतौ हेतोः सन्देहोत्पत्तिर्येनास्याऽप्रामाण्यम् किन्तु
 प्रतिहेतुतः, तस्य चैतस्मिन्सत्यऽप्रवृत्तेः कथं संशयोत्पत्तिः?

१ अभिप्रेतार्थप्रतिपादकत्वम् । २ भवतीत्यादि । ३ उच्चारण । ४ अस्य शब्द-
 स्थापनार्थे इति । ५ सङ्केतानाम् । ६ तस्यात् । ७ असर्वज्ञत्वम् । ८ वेदे । ९ वेदे ।
 १० प्रसङ्गा । ११ वेदे । १२ वेदे । १३ असम्यग्माणकर्त्तृकत्वात् । १४ असम्य-
 ग्माणकर्त्तृकत्वादिति । १५ साधनम् । १६ असम्यग्माणकर्त्तृकत्वात् । १७ कारणम् ।
 १८ असम्यग्माणकर्त्तृकत्वम् । १९ अपौरुषेयत्वकल्पणस्य साध्यसाधकत्वम् । २० असम्य-
 ग्माणकर्त्तृत्वादिति । २१ निप्रतिक्कहेतुता ।

तदयुक्तम्; यथैव हि प्रकृतहेतोः सङ्गावे पौरुषेयत्वसाधकहेतोः-
प्रवृत्तिरभिधीयते तथा पदवाक्यत्वलक्षणहेतुसङ्गावे सत्यसर्व-
माणकर्तृकत्वस्याप्यप्रवृत्तिरस्तु विशेषाभावात् । तन्न स्वतन्त्र-
साधनमिदम् ।

- ५ नापि प्रसङ्गसाधनम्; तत्त्वञ्च 'पौरुषेयत्वाम्युपगमे वेदस्य-
तत्कर्तुः पुरुषस्य स्मरणप्रसङ्गः स्यात्' । इत्यनिष्टापादनसमावन् ।
न च कर्तृस्मरणं परस्यानिष्टम्; स हि पदवाक्यत्वेन हेतुना
तत्कर्तुः स्मरणं प्रतीयन् कथं तत्स्मरणस्याऽनिष्टतां ब्रूयात् ?

पौरुषेयत्वसाधनानुमानबाधापक्षेऽपि किमनेनास्य स्वरूपं वाच्यते,
१० विषयो वा ? न तावत्स्वरूपम्; अपौरुषेयत्वानुमानस्याप्यनेन
स्वरूपबाधनानुषङ्गात्, तयोस्तुल्यबलत्वेनान्योन्यं विशेषाभावात् ।
अतुल्यबलत्वे वा किमनुमानबाधया ? येनैव दोषेणास्याऽतुल्य-
बलत्वं तत एवाप्रामाण्यप्रसिद्धेः । विषयबाधाप्यनुपपन्ना; तुल्य-
बलत्वेन हेत्वोः परस्परविषयप्रतिषन्धे वेदस्योभयधर्मशून्यत्वा-
१५ नुषङ्गात् । एकस्य वा स्वविषयसाधकत्वेऽन्यस्यापि तत्प्रसङ्गाद्
धर्मद्वयात्मकत्वं स्यात् । अतुल्यबलत्वे तु यत एवातुल्यबलत्वं
तत एवाऽप्रामाण्यप्रसिद्धेः किमनुमानबाधयेत्युक्तम् ।

एतेन

“वेदस्याध्ययनं सर्वं शुर्वध्ययनपूर्वकम् ।

- २० “वेदाध्ययनवाच्यत्वादधुनाध्ययनं यथा” [मी० श्रु० अ० ७
श्रु० ३५५] इत्यनेनानुमानेन पौरुषेयत्वप्रसाधकानुमानस्य बाधा;
इत्यपि प्रत्याख्यातम्; प्रकृतदोषाणामत्राप्यविशेषात् ।

किञ्च, अत्र निर्विशेषणमध्ययनशब्दवाच्यत्वमपौरुषेयत्वं प्रति-
पादयेत्, कर्त्रऽस्मरणविशिष्टं वा ? निर्विशेषणस्य हेतुत्वे निश्चित-
२५ कर्तृकेषु भारतादिष्वपि भावादनेकान्तिकत्वम् ।

१ प्रकृतहेतोः सति पदवाक्यत्वं-हेत्वन्तरं न प्रवर्तते । पदवाक्यत्वे तु सत्यस्य
प्रकृतो हेतुः वर्तते इति नोऽत्रो विशेषस्तस्याभावात् । २ वेदः सत्यमाणकर्तृकः
पौरुषेयत्वाद्भारतवत् । हेतुरूपन्याय्याभ्युपगमेनानिष्टस्य साम्यरूपन्यापकाभ्युपगमस्या-
पादनं प्रसङ्गः । ३ जैनस्य । ४ जानम् । ५ पदवाक्यत्वलक्षण । ६ पौरुषेयत्वाऽ-
पौरुषेयत्वानुमानयोः । ७ पौरुषेयत्वलक्षणस्य विषयस्य । ८ पदवाक्यत्वाऽसत्यमाण-
कर्तृकत्वलक्षणयोः । ९ अपौरुषेयत्वपौरुषेयत्वलक्षण । १० पौरुषेयत्वाऽपौरुषेयत्व-
लक्षण । ११ वेदस्य । १२ असत्यमाणकर्तृकत्वानुमानस्यापौरुषेयत्वप्रसाधनानुमानं
प्रति बाधकत्वानिराकरणपरेण अन्येन । १३ विशेषणमेतत् ।

किञ्च, यथाभूतानां पुरुषाणामध्ययनपूर्वकं इष्टं तथाभूतानामे-
वाध्ययनशब्दवाच्यत्वमध्ययनपूर्वकत्वं साधयति, अन्यथाभूतानां
वा ? यदि तथाभूतानां तदा सिद्धसाधनम् । अथान्यथाभूतानां
तर्हि सन्निवेशादिवद्ऽप्रयोजको हेतुः । अथ तथाभूतानामेव
तत्तथा ततः साध्यते, न च सिद्धसाधनं सर्वपुरुषाणामतीन्द्रियार्थ-^५
दर्शनशक्तिवैकल्येनातीन्द्रियार्थप्रतिपादकप्रेरणाप्रणेतृत्वासामर्थ्ये-
नेदृशत्वात् । तदप्यसाम्प्रतम्, यतो यदि प्रेरणायास्तथाभूतार्थ-
प्रतिपादने अप्रामाण्याभावः सिद्धः स्यात् स्यादेतत्-यौवता गुण-
वद्वक्तृभावे तद्वृणैरनिराकृतैर्वावैरपोहितत्वात् तत्र सापेक्षं
प्रामाण्यम्, तथाभूतां प्रेरणामतीन्द्रियार्थदर्शनशक्तिविरहिणोपि ^{१०}
कर्तुं समर्था इति कुतस्तथाभूतप्रेरणाप्रणेतृत्वासामर्थ्येनाऽशेष-
पुरुषाणामीदृशत्वसिद्धिर्यतः सिद्धसाधनं न स्यात् ?

अथ न गुणवद्वक्तृत्वेनैव शब्देऽप्रामाण्यनिवृत्तिरपौरुषेयत्वे-
नाप्यस्याः सम्भवात् तेनायमदोषः । तदुक्तम्—

“शब्दे दोषोऽङ्गवस्तावद्वक्तृधीन इति स्थितम् ।

१५

तदभावः कंचिच्चावद्वृणवद्वक्तृकर्तृत्वतः ॥ १ ॥

तद्वृणैरपेक्ष्यतां शब्दे सङ्गान्त्यऽसम्भवात् ।

यद्वा वक्तृभावेन न स्युर्दोषो निर्गन्धः ॥ २ ॥”

[मी० खो० सू० २ खो० ६२-६३]

इति । तदप्यसमीचीनम्, यतोऽपौरुषेयत्वमस्याः किमन्यतः ^{२०}
प्रमाणात्प्रतिपक्षम्, अत एव वा ? यद्यन्यतः, तदाऽस्यै वैयर्थ्यम् ।
अत एव चेत्, नन्वेतोऽनुमानादपौरुषेयत्वसिद्धौ प्रेरणायामप्रा-

१ अनुनासनसङ्गशानाम् । २ अस्माभिरपि तत्राभूतानां श्रुतमध्ययनपूर्वकत्वं प्रति-
पाद्यते । ३ अतीन्द्रियार्थदर्शनाम् । ४ आदिना कार्यत्वादिवत् । ५ अकिञ्चित्करो
हेतुलोपां श्रुतमध्ययनपूर्वकत्वं नास्ति यतः । ६ सपक्षम्यापक्षम्यावृत्तौ क्षुपाध्याहित-
सम्बन्धो हेतुप्रयोजकः । ७ जैनानां तु मते सर्वपुरुषाणामतीन्द्रियार्थदर्शने शक्तिवैकल्यं
नास्ति केषाञ्चिदतीन्द्रियार्थदर्शनशक्तिरस्तीति भावः । ८ अक्षिप्तोमेन दत्तेति लिङ्गति-
मनगानन्तरं शब्दो मां प्रेरयतीति दर्शनात् प्रेरणान्विततया कृतिः (यागः) प्रदीयते ।
सा च प्रेरणा वेद इत्यर्थः । ९ तर्हि । १० न कुतोपि । ११ येन कारणेन ।
१२ प्रामाण्यनिराकृतत्वात् । १३ सदोषम् । १४ अप्रामाण्यभूतात् । १५ सङ्गमः ।
१६ न तु स्वभावतः । १७ अपौरुषेयवेदवाक्यानन्तरोत्पत्तेषु स्थितिवान्येषु । १८ यत्-
वेद समर्थयत्प्रे । १९ अपौरुषेयवेदे । २० निराकृतानाम् । २१ असंबन्धादयः ।
२२ आश्रयः पुरुषः । २३ वेदाध्ययनवाच्यत्वादिति । २४ वेदाध्ययनवाच्यत्वस्य ।
२५ वेदाध्ययनवाच्यत्वात् । २६ वेदाध्ययनवाच्यत्वात् ।

माण्याभावः स्यात्, तदभावाच्च तथाभूतप्रेरणाप्रणेत्तत्वासामर्थ्येन सर्वपुरुषाणामीदृशत्वसिद्धिरित् (रितीत्) रेतराश्रयः । तन्न निर्विशेषणोऽयं हेतुः प्रकृतसाध्यसाधनः ।

अथ सविशेषणः; तदा विशेषणस्यैव केवलस्य गमकत्वाद्विशेषोपादानमनर्थकम् । भवतु विशेषणस्यैव गमकत्वम् का नो हानिः, सर्वथाऽपौरुषेयत्वसिद्ध्या प्रयोजनात्; तदप्ययुक्तम्; यतः कर्त्रऽस्सरणं विशेषणं किमभावाख्यं प्रमाणम्, अर्थापत्तिः, अनुमानं वा? तत्राद्यः पक्षो न युक्तः; अभावप्रमाणस्य स्वरूपसामग्रीविषयाऽनुपपत्तिः प्रामाण्यस्यैव प्रतिषिद्धत्वात् ।

१० किञ्च, सदुपलम्भकप्रमाणपञ्चकनिवृत्तिनिवन्धनास्य प्रवृत्तिः “प्रमाणपञ्चकं यत्र” [मी० श्लो० अभाव० श्लो० १] इत्याद्यभिधानात् । न च प्रमाणपञ्चकस्य वेदे पुरुषसङ्गावावेदकस्य निवृत्तिः, पदवाक्यत्वलक्षणस्य पौरुषेयत्वप्रसाधकत्वेनानुमानस्य प्रतिपादनात् । न चास्याऽप्रामाण्यमभिधातुं शक्यम्; यतोऽस्याऽप्रामाण्यम्—किमनेन वैधितत्वात्, साध्याविनाभावित्वाभावाद्वा स्यात्? तत्राद्यपक्षे चक्रकप्रसङ्गः, तथाहि—न यावदभावप्रमाणप्रवृत्तिर्न तावत्प्रस्तुतानुमानवाधा, यावच्च न तस्य वाधा न तावत्सदुपलम्भकप्रमाणनिवृत्तिः, यावच्च न तस्य निवृत्तिर्न तावत्तन्निवन्धनाऽभावाख्यप्रमाणप्रवृत्तिः, तदप्रवृत्तौ च नानुमानवाधेति । द्वितीयपक्षस्तथयुक्तः; स्वसाध्याविनाभावित्वस्यात्र सम्भवात् । न खलु पदवाक्यात्मकत्वं पौरुषेयत्वमन्तरेण कश्चिद्दृष्टं येनास्य स्वसाध्याविनाभावाभावः स्यात् ।

एतेन कर्तुरस्सरणमन्यर्थानुपपद्यमानं कर्त्रऽभावनिश्चायकमर्थोपपत्तिगम्यमपौरुषेयत्वं वेदानामित्यपास्तम्, अन्यथानुपपद्यमानत्वासम्भवस्यार्थं प्रागेव प्रतिपादितत्वात् । कर्त्रऽस्सरणमनुमानरूपमपौरुषेयत्वं प्रसाधयतीत्यप्यनुपपन्नम्, प्रागेव कृतोत्तरत्वात् ।

एतेन—

“अतीतानागतौ कालौ वेदकारविवर्जितौ ।

कालत्वाच्चर्चया कालो वर्त्तमानः समीक्ष्यते ॥ १ ॥” []

१ अप्रामाण्याभावात् । २ अनुमानवाधेति । ३ कथम्? । ४ यत्र । ५ अभावप्रमाणप्रवृत्तौ प्रस्तुतानुमानवाधा तस्या सदुपलम्भकप्रमाणनिवृत्तिस्तस्या च पदवाक्यत्वस्य स्वसाध्याविनाभावित्वमिति समर्थनपरेण प्रपञ्चेन । ६ अपौरुषेयत्वं विना । ७ वेदोऽपौरुषेयः कर्त्रऽस्सरणान्यथानुपपत्तेः । ८ कर्तुरस्सरणादित्यत्र । ९ पिटकादौ । १० गटे गटे वैमवण इत्यादिनाऽनेकान्तिकसमर्थनेन ।

इत्यपि प्रत्युक्तम्; प्राक्तनानुमानद्वयोक्ताशेषदोषाणामत्राप्य-
विशेषात् । आगमान्तरेष्यस्य तुल्यत्वाच्च ।

किञ्च, इदानीं यथाभूतो वेदाकरणसमर्थपुरुषयुक्तस्तत्कैर्द-
पुरुषरहितो वा कालः प्रतीतोऽतीतोऽनागतो वा तथाभूतः
कालत्वात्साध्येत, अन्यथाभूतो वा ? यदि तथाभूतः, तदा सिद्ध-
साध्यता । अथान्यथाभूतः, तदा सन्निवेशादिवद्ऽप्रयोजको हेतुः ।
अथ तथाभूतस्यैवातीतस्यानागतस्य वा कालस्य तद्द्रवित्वं
साध्यते, न च सिद्धसाध्यताऽन्यथाभूतस्य कालस्यासम्भवात् ।
नन्वन्यथाभूतः कालो नास्तीत्येतत्कुतः प्रमाणात्प्रतिषेधम् ? यद्य-
न्यतः, तर्हि तत् एवापौरुषेयत्वसिद्धेः किमनेन ? अत एवेति १०
षेत्, ननु 'अन्यथाभूतकालाभावसिद्धावतोऽनुमानाच्चद्रवित्व-
सिद्धिः, तत्सिद्धेच्चान्यथाभूतकालाभावसिद्धिः' इत्यन्योन्याश्रयः ।

नाप्यागमतोऽपौरुषेयत्वसिद्धिः; इतरेतराश्रयानुपपन्नात् । तथा-
हि-आगमस्याऽपौरुषेयत्वसिद्धावप्रामाण्याभावसिद्धिः, तत्सिद्धे-
श्चातोऽपौरुषेयत्वसिद्धिरिति । न चाऽपौरुषेयत्वसिद्धिरिति । न १५
चाऽपौरुषेयत्वप्रतिपादकं वेदवाक्यमस्ति । नैपि विधिवाक्यादऽ-
परस्य परैः प्रामाण्यमिष्यते, अन्यथा पौरुषेयत्वमेव स्यात्तत्प्रति-
पादकानां "हिरण्यगर्भः समवर्त्तते" [ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १०
सू० १२१] इत्यादिप्रचुरतरवेदवाक्यानां श्रवणात् ।

अपौरुषेयत्वधर्माधारतया प्रमाणप्रसिद्धस्य कस्यचित्पदवाक्या-२०
देरसम्भवाच्च तत्सादृश्येनोपमानादप्यपौरुषेयत्वसिद्धिः ।

नाप्यर्थापत्तेः; अपौरुषेयत्वव्यतिरेकेणानुपपद्यमानस्यार्थस्य
कस्यचिदप्यभावात् । स ह्यप्रामाण्याभावलक्षणो वा स्यात्, अती-
न्द्रियार्थप्रतिपादनस्वभावो वा, परार्थशब्दोच्चारणरूपो वा ? न
तावदाद्यः पक्षः; अप्रामाण्याभावस्यागमान्तरेपि तुल्यत्वात् । न २५
चासौ तत्र मिथ्या, वेदेपि तन्मिथ्यात्वप्रसङ्गात् । अथागमान्तरे
पुरुषस्य कर्तुरभ्युपगमात्, पुरुषाणां तु रागादिदोषदृष्टत्वेन तज्ज्ञ-
नितस्याऽप्रामाण्यस्यात्र सम्भवात्तत्रासौ मिथ्या, न वेदे तत्रा-
प्रामाण्योत्पादकदोषाश्रयस्य कर्तुरभावात् । नन्वत्र कुतः कर्तुर-
भावो निश्चितः ? अन्यैतः, अत एव वा ? यद्यन्यतः, तदेवोच्यताम्, ३०

१ कालत्वादित्यनेनानुमानेन पौरुषेयत्वसाधकानुमानस्य स्वरूपं बाध्येत विषयो-
नेत्यादिप्रकरणे । २ वेद । ३ साधनात् । ४ तेन वेदकर्ता । ५ वेदकर्ता । ६ अस्तु
वा वेदवाक्यमपौरुषेयत्वप्रतिपादकं तथापि । ७ प्रतिषेधवाक्यादेः । ८ शीमांशकैः ।
९ अपरस्य प्रामाण्यं वदीष्यते । १० जातः । ११ अदो । १२ प्रमाणात् ।

किमर्थापत्त्या ? अर्थापत्तेश्चेत् ; न ; इतरेतराश्रयानुपपत्तात्-अर्थाप-
त्तितो हि पुरुषाभावसिद्धावप्रामाण्याभावसिद्धिः, तत्सिद्धौ चार्था-
पत्तितः पुरुषाभावसिद्धिरिति ।

द्वितीयपक्षोप्ययुक्तः, अतीन्द्रियार्थप्रतिपादनलक्षणार्थस्यागमा-
५ न्तरेपि सम्भवात् ।

परार्थशब्दोच्चारणान्यथानुपपत्तेर्नित्यो वेदः, इत्यप्यसमीची-
नम् ; धूमादिवत्सादृश्यादप्यर्थप्रतिपत्तेः प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् ।

किञ्च, अपौरुषेयत्वं प्रसज्यप्रतिषेधरूपं वेदस्याभ्युपगम्यते,
पर्युदासस्वभावं वा ? प्रथमपक्षे तर्हि सदुपलम्भकप्रमाणग्राह्यम्,
१० उताऽभावप्रमाणपरिच्छेद्यम् ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः, सदुपलम्भक-
प्रमाणपञ्चकस्यापौरुषेयग्राहकत्वप्रतिषेधात् । तद्ग्राह्यस्य तुच्छ-
स्वभावाभावरूपत्वानुपपत्तेश्च । प्रतिक्षिप्तश्च तुच्छस्वभावाभावः
प्राक्प्रवन्धेन । द्वितीयपक्षस्तु श्रद्धामात्रगम्यः, अभावप्रमाण-
स्याऽसम्भवतस्तेन तद्ग्राहणानुपपत्तेः । तदसम्भवश्च तत्सामग्री-
१५ स्वरूपयोः प्राक्प्रवन्धेन प्रतिषिद्धत्वात्सिद्धः ।

अथ पर्युदासरूपं तदभ्युपगम्यते । नन्वप्रापि किं पौरुषेयत्वाद-
न्यत्पर्युदासवृत्त्याऽपौरुषेयत्वशब्दामिधेयं स्यात् ? तत्सत्त्वमिति
चेत् ; तर्हि निर्विशेषणम्, अनादिविशेषणविशिष्टं वा ? प्रथमपक्षे
सिद्धसाध्यताः, ततोऽन्यस्य वेदसत्त्वमात्रस्याध्यक्षादिप्रमाणप्रति-
२० ष्ठ्यासंभारभ्युपगमात् । पौरुषेयत्वं हि कृतकत्वम्, ततश्चान्य-
त्सत्त्वमित्यत्र को वै विप्रतिपद्यते ? द्वितीयपक्षः पुनरविचारित-
मणीयः, वेदानादिसत्त्वे प्रत्यक्षादिप्रमाणतः प्रसिद्धसम्भवस्याऽ-
नन्तरमेव प्रतिपादितत्वात् ।

अस्तु वाऽपौरुषेयो वेदः, तथाप्यसौ व्याख्यातः, अव्याख्यातो
२५ वा स्वार्थे प्रतीतिं कुर्यात् ? न तावदव्याख्यातः, अतिप्रसङ्गादे ।
व्याख्यातश्चेत् ; कुतस्तद्व्याख्यानम्-स्वतः, पुरुषाद्वा ? न ताव-
त्स्वतः, 'अयमेव मदीयपदवाक्यानामर्थो नायम्' इति स्वयं
वेदेनाऽप्रतिर्पादनात्, अन्यथा व्याख्यामेदो न स्यात् । पुरुषाच्चेत् ;
कथं तद्व्याख्यानात्पौरुषेयादर्थप्रतिपत्तौ दोषाशङ्का न स्यात् ?
३० पुरुषा हि विपरीतमप्यर्थं व्याचक्षाणा दृश्यन्ते । संवादेन प्रामा-

१ इति । २ निजत्वादपौरुषेयत्वम् । ३ वेदे । ४ जनेः । ५ द्विजवत्सीगता-
शायिवैप्रतीतिं कुर्यात् । ६ वेदस्य जडत्वेन क्तुमशक्यत्वात् । ७ यदि वेदेः
प्रतिपादयति । ८ जवनविधिलियोगादिः । ९ व्याख्यानामान् । १० व्याख्या-
नाम् ।

ण्याभ्युपगमे च अपौरुषेयत्वकल्पनाऽनर्थिका तद्वद्भेदस्यापि प्रमाणान्तरसंवादादेव प्रामाण्योपपत्तेः । न च व्याख्यानानां संवादोऽस्ति; परस्परविरुद्धभावनानियोगादिव्याख्यानानामन्योन्यं विस्वादादोपलम्भात् ।

किञ्च, असौ तद्व्याख्याताऽतीन्द्रियार्थद्रष्टा, तद्विपरीतो वा? प्रथमपक्षे अतीन्द्रियार्थदर्शिनः प्रतिषेधविरोधो धर्मादौ चास्य प्रामाण्योपपत्तेः “धर्मे चोदनैव प्रमाणम्” [] इत्य-
चधारणानुपपत्तिश्च ।

अथ तद्विपरीतः; कथं तर्हि तद्व्याख्यानाद्यथार्थप्रतिपत्तिः अय-
थार्थाभिधानाशङ्कया तदनुपपत्तेः? न च मन्वादीनां सातिशय-१०
प्रकृत्वात्तद्व्याख्यानाद्यथार्थप्रतिपत्तिः; तेषां सातिशयप्रकृत्वा-
सिद्धिः । तेषां हि प्रकृतिशयः स्वतः, वेदार्थाभ्यासात्, अदृष्टात्,
ब्रह्मणो वा स्यात्? स्वतश्चेत्, सर्वस्य स्याद्विशेषाभावात् । वेदार्था-
भ्यासाच्चेत् किं ज्ञातस्य, अज्ञातस्य वा तदर्थस्याभ्यासः स्यात्? न तावदज्ञातस्याऽतिप्रसङ्गोत् । ज्ञातस्य चेत्, कुतस्तज्ज्ञप्तिः-स्वतः, ५१
अन्यतो वा? स्वतश्चेत्, अन्योन्याश्रयः-सति हि वेदार्थाभ्यासे
स्वतस्तत्परिज्ञानम्, तस्मिन् तदर्थ्याभ्यास इति । अन्यतश्चेत्,
तस्यापि तत्परिज्ञानमन्यत इत्यतीन्द्रियार्थदर्शिनोऽनभ्युपगमेऽ-
न्यपरम्परतो यथार्थनिर्णयानुपपत्तिः ।

अदृष्टोपि प्रकृतिशयाऽसाधकः; तस्यात्मान्तरेपि सम्भवात् । २०
न तन्धाविधोऽदृष्टोऽन्यत्र मन्वादावेवांस्य सम्भवादिति चेत्,
कुतोऽत्रैवांस्य सम्भवः? वेदार्थानुष्ठानविशेषाच्चेत्, स तर्हि
वेदार्थस्य ज्ञातस्य, अज्ञातस्य वाऽनुष्ठानात् स्यात्? अज्ञातस्य चेत्,
अतिप्रसङ्गः । ज्ञातस्य चेत्, परस्पराश्रयः-सिद्धे हि वेदार्थ-
ज्ञानातिशये तदर्थानुष्ठानविशेषसिद्धिः, तत्सिद्धौ च तज्ज्ञानाति-२५
शयसिद्धिरिति ।

ब्रह्मणोपि वेदार्थज्ञाने सिद्धे सत्यऽतो मन्वादेस्तदर्थपरिज्ञानाति-
शयः स्यात् । तज्ज्ञानस्य कुतः सिद्धम्? धर्मविशेषाच्चेत्, स

१ प्रत्यक्षप्राप्तये प्रत्यक्ष संवादकमनुमेयेयं अनुमानमेव संवादकं परोक्षेयं पूर्वा-
परविरोधः संवादः । २ मीमांसकप्रते । ३ तस्मादतीन्द्रियार्थद्रष्टुः । ४ अतीन्द्रि-
यार्थद्रष्टुर्विपरीतस्य किञ्चिन्नव । ५ गोपालादीनामपि वेदार्थसम्प्राप्तप्रसङ्गात् ।
६ पुरुषात् । ७ परस्य त्व । ८ मवेत् । ९ प्रकृतिज्ञवसापकः । १० प्रकृति-
ज्ञवसापकादृष्टस्य । ११ प्रकृतिज्ञवसापकादृष्टस्य । १२ गोपालादीनामपि वेदार्थ-
नुष्ठानप्रसङ्गः ।

एवेतरेतराश्रयः—वेदार्थपरिज्ञानाभावे हि तत्पूर्वकानुष्ठानजनित-
धर्मविशेषानुत्पत्तिः, तदनुत्पत्तौ च वेदार्थपरिज्ञानाभाव इति ।
तस्मात्तीन्द्रियार्थदर्शिनोऽनभ्युपगमे वेदार्थप्रतिपत्तिर्घटते ।

ननु व्याकरणाद्यभ्यासाल्लौकिकपदवाक्यार्थप्रतिपत्तौ तद्वि-
५ शिष्टवैदिकपदवाक्यार्थप्रतिपत्तिरपि प्रसिद्धेरश्रुतकाव्यादिवत्,
तैश्च वेदार्थप्रतिपत्तावऽतीन्द्रियार्थदर्शना किञ्चित्प्रयोजनम्;
इत्यप्यसारम्; लौकिकवैदिकपदानामेकत्वेऽप्यनेकार्थत्वव्यवस्थितेः
अन्यपरिहारेण व्याचिख्यासितार्थस्य नियमयितुशक्तेः । न च
प्रकरणादिभ्यस्तन्निमित्तम्; तेषामप्यनेकप्रवृत्तेर्द्विसन्धानादिवत् ।
१० यदि च लौकिकेनाभ्यादिशब्देनाविशिष्टत्वाद्द्वैदिकस्याभ्यादिशब्द-
स्यार्थप्रतिपत्तिः; तर्हि पौरुषेयेणाविशिष्टत्वात्पौरुषेयोसौ कथं न
स्यात्? लौकिकस्य ह्यभ्यादिशब्दस्यार्थवत्त्वं पौरुषेयत्वेन व्याप्तम् ।
तत्रार्थं वैदिकोऽभ्यादिशब्दः कथं पौरुषेयत्वं परित्यज्य तदर्थमेव
ग्रहीतुं शक्नोति? उभयमपि हि गृहीयाज्जह्याह ।

१५ न च लौकिकवैदिकशब्दयोः शब्दस्वरूपविशेषे सङ्केतग्रहणस-
व्यपेक्षत्वेनाऽर्थप्रतिपादकत्वे अनुच्चार्यमाणयोश्च पुरुषेणाऽभ्रवणे
समाने अन्यो विशेषो विद्यते यतो वैदिका अपौरुषेयाः शब्दा
लौकिकास्तु पौरुषेया स्युः । सङ्केते(त)नतिक्रमेणार्थप्रत्यायनं
चोभयोरपि ।

२० न चापौरुषेयत्वे पुरुषेच्छावशादर्थप्रतिपादकत्वं युक्तम्, उप-
लभ्यन्ते च यत्र पुरुषैः सङ्केतिताः शब्दास्तं तमर्थमविगानेन
प्रतिपादयन्तः, अन्यथा तत्सङ्केतमेदपरिकल्पनानर्थक्यं स्यात् ।
ततो ये नररचितवचनरचनाऽविशिष्टास्ते पौरुषेयाः यथाऽमिनव-
कूपप्रासादादिरचनाऽविशिष्टा जीर्णकूपप्रासादादयः, नररचित-
२५ वचनाऽविशिष्टं च वैदिकं वचनमिति ।

न चात्राश्रयासिद्धो हेतुः; वैदिकीनां वचनरचनानां प्रत्यक्षतः
प्रतीतेः । नाप्यप्रसिद्धविशेषणैः पक्षः; अमिनवकूपप्रासादादौ

१ आदिना निषण्डः । २ तस्मात्कारणात् । ३ सदृशत्वे । ४ अन्याप्यं ।
५ द्विसन्धानकाव्यवत् । ६ सदृशत्वात् । ७ शब्देन । ८ अह्यादिशब्दस्यार्थवत्त्वे
पौरुषेयत्वेन व्याप्ते सति । ९ अपौरुषेयत्वपौरुषेयत्वद्वयम् । १० वैदिकानां शब्दानां
कश्चन विशेषोक्तिं ततोऽमीषामपौरुषेयत्वमित्याशङ्क्याह । ११ समानत्वे । १२ अस्त
शब्दस्यायमर्थ इति । १३ समाने । १४ समानम् । १५ वेदे । १६ अर्थे ।
१७ वैदिकं वचनं यमि पौरुषेयं भवति नररचितवचनरचनाऽविशिष्टत्वात् । १८ अनु-
माने । १९ अवगणेन । २० समतापेक्षया । २१ साम्यं पौरुषेयत्वम् । २२ सपक्षे ।

पुरुषपूर्वकत्वेनास्य साध्यविशेषणस्य सुप्रसिद्धत्वात् । न च हेतोः स्वरूपासिद्धत्वम्; तद्वचनरचनासु विशेषग्राहकप्रमाणाभावेनास्याऽभावात् ।

न चाप्रामाण्याभावलक्षणो विशेषस्तत्रेत्यभिधातव्यम्; तस्य विद्यमानस्यापि तन्निराकारकत्वाभावात् । यादृशो हि विशेषः ५ प्रतीयमानः पौरुषेयत्वं निराकरोति तादृशस्यास्याऽभावादऽविशिष्टत्वम् न पुनः सर्वथा विशेषाभावात्, एकान्तेनैवाविशिष्टस्य कस्यचिद्वस्तुनोऽभावात् । अप्रामाण्याभावलक्षणश्च विशेषो दोषवन्तमप्रामाण्यकारणं पुरुषं निराकरोति न गुणवन्तमप्रामाण्यनिवर्त्तकम् । न च गुणवतः पुरुषस्याभावादन्वयस्य चानेन १० विशेषेण निराकृतत्वात्सिद्धमेवापौरुषेयत्वं तत्रेत्यभ्युपगन्तव्यम्; तत्सङ्गावस्य प्रोक्तप्रतिपादितत्वात् । तदभावेऽप्रामाण्याभावलक्षणविशेषाभावप्रसङ्गाच्च ।

पौरुषेये प्रासादादौ हेतोर्दर्शनादपौरुषेये चाकाशादावऽदर्शनाजानैकान्तिकत्वम् । अत एव न विरुद्धत्वम्; पक्षधर्मत्वे हि सति १५ विपक्षे वृत्तिर्यस्य स विरुद्धः, न चास्य विपक्षे वृत्तिः । नापि कालात्ययापदिष्टत्वम्; तद्धि हेतोः प्रत्यक्षागमवार्धितैर्कर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्तं भवतेत्यते । न च यत्र स्वसाध्याविनाभूतो हेतुर्धर्मिणि प्रवर्त्तमानः स्वसाध्यं प्रसाधयति तत्रैव प्रमाणान्तरे प्रवृत्तिमासाद्यतमेव धर्मं व्यावर्त्तयति; एकस्यैकदैकत्र विधिप्रतिषेधयोः २० विरोधात् । प्रकरणसमत्वमपि प्रतिहेतोर्विपरीतधर्मप्रसाधकस्य प्रकरणचिन्ताप्रवर्त्तकस्य तत्रैव धर्मिणि सङ्गावोऽभिधीयते । न च स्वसाध्याविनाभूतहेतुप्रसाधितधर्मिणो विपरीतधर्मोपेतत्वं सम्भवतीति न विपरीतधर्मोपायिनो हेत्वन्तरस्य तत्र प्रवृत्तिरिति । तत्र वेदपदवाक्यैर्योनित्यत्वं घटते ।

२५

१ पौरुषेयत्वम् । २ लौकिकं नररचितरचनाऽविशिष्टं वैदिकं नेति शब्दः । ३ पौरुषेयत्वम् । ४ वैदिकलौकिकशब्दयोरभिन्नत्वम् । ५ अविशिष्टत्वम् । ६ सर्वथा वैदिकलौकिकशब्दयोरविशेषादपेक्षो अभिप्रेतस्तु क्वे आह । ७ सर्वप्रकारेण । ८ जमेदरूपस्य । ९ वैदिकलौकिकशब्दयोरतिन्द्रियार्थेन्द्रियार्थप्रतिपादकत्वाद्देवो जतः । १० वेदे । ११ सर्वप्रसिद्धिप्रसाधे । १२ यथा शब्दो नित्यः कृतकत्वादिति कृतकत्वस्य शब्दधर्मत्वेन नित्यात्साध्याद्विपरीतेऽनित्ये विपक्षे वृत्तिमत्ताद्विरुद्धः । १३ हेतोः । १४ यद्ध । १५ वृत्तिक्रियाविषयत्वात्कर्मत्वमभिधानम् । १६ प्रत्यक्षागमलक्षणम् । १७ धर्मस्य । १८ प्रतिपक्षसाधकम् । १९ संशयात्प्रश्लान्निध्यात्यर्थालोचना । २० सत्यविपक्षो हेतुः प्रकरणसम इति वचनात् । २१ प्रसाधकम् । २२ विधिप्रतिषेधरूपयोः ।

नापि वर्णानां कृतकत्वतः शब्दमात्रस्यानित्यत्वसिद्धौ तेषामप्य-
नित्यत्वसिद्धौ तेषामप्यनित्यत्वोपपत्तेः । तथाहि-अनित्यः शब्दः
कृतकत्वाद् घटवत् । न च कृतकत्वमसिद्धम् ; तथाहि-कृतकः
शब्दः कारणान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्तद्वदेव । न चेदमप्य-
५ सिद्धम् ; तात्त्वादिकारणव्यापारे सत्येव शब्दस्यात्मलाभप्रतीते-
स्तदभावे वाऽप्रतीतेः, चक्रादिव्यापारसङ्गावासाङ्गावयोर्घटस्या-
त्मलाभालाभप्रतीतिवत् ।

ननु शब्दस्याऽनित्यत्वोपगमे ततोर्थप्रतीतिर्न स्यात्, अस्ति
चासौ । ततो 'नित्यः शब्दः स्वार्थप्रतिपादकत्वान्यथानुपपत्तेः' इत्य-
१० भ्युपगन्तव्यम् । स्वार्थेनावगतसम्बन्धो हि शब्दः स्वार्थे प्रतिपाद-
यति, अन्यथाऽगृहीतसङ्केतस्यापि प्रतिपत्तुस्ततोऽर्थप्रतीतिप्रसङ्गः ।

सम्बन्धावगमश्च प्रमाणत्रयसम्पाद्यः, तथाहि-यैदौ कृद्वोऽ-
न्येस्यै प्रतिपन्नसङ्केताय प्रतिपादयति-‘देवदत्त गामभ्याज शुक्लां
वृणुतेन’ इति, तदा पार्श्वस्थान्योऽभ्युत्पन्नसङ्केतः शब्दार्थो प्रत्य-
१५ क्षेप्तः प्रतिपद्यते, श्रोतुंश्च तद्विषयक्षेपणादिचेष्टोपलम्भानुमीनतो
गवादिविषयां प्रतिपत्तिं प्रतिपद्यते, तत्प्रतिपत्त्यन्यथानुपपत्त्या
च तच्छब्दस्यैव तत्र वाचिकां शक्तिं परिकल्पयति पुनः पुनस्तै-
च्छब्दोच्चारणादेव तदर्थस्य प्रतिपत्तेः । सोऽयं प्रमाणत्रयसम्पाद्यः
२० पुनः पुनरुच्चारणं घटते, तदभावे नान्वयव्यतिरेकाभ्यां वाचक-
शक्त्यवगमः, तदसत्त्वाच्च प्रेक्षावद्भिः परावचोघाय वाक्यमुच्चा-
र्येत । न चैवम् । ततः परार्थवाक्योच्चारणान्यथानुपपत्त्या निश्ची-
यते नित्योसौ ।

तदुक्तम्-“दर्शनस्य परार्थत्वाच्चित्यः शब्दः” [जैमिनि सू० १।१८]

२५ अथ मतम्-पुनः पुनरुच्चार्यमाणः शब्दः सादृश्यादेकत्वेन
निश्चीयमानोऽर्थप्रतिपत्तिं विदधाति न पुनर्नित्यत्वात्, तदसमी-

१ नित्यत्वमन्तरेण । २ जैनेन त्वया । ३ गृहीत । ४ प्रलङ्घानुमानार्थापत्तिः ।
५ पूर्वं श्रोतोः सकाशात् । ६ ना । ७ बालकाय । ८ सुवीर्यः । ९ गुरुसन्निधौ
गमानयनसमये । १० गोशब्दं भावणप्रत्यक्षेण, गोलक्षणमर्थं जायनप्रत्यक्षेण । ११ यं
देवदत्तं प्रति वाक्यं प्रोक्तं तस्य । १२ आदिवा ताडनप्रेरणादि । १३ सुवीर्यः ।
१४ स्त्रियो गोलक्षणाथं ज्ञानवाच् तद्विषयचेष्टावत्त्वान्मद्वत् । १५ गोशब्दो गोलक्ष-
णार्थवाचकशक्तियुक्तो गोप्रतीलम्भानुपपत्तेरिति । १६ गो इति । १७ अनित्यस्य
शब्दस्य । १८ गोशब्दे उच्चारिते गोलक्षणाथप्रतिपत्तिर्येवति, अनुच्चारिते गोलक्षणाथ-
प्रतिपत्तिर्न भवतीति । १९ वाचकशक्त्यवगमेस्य । २० शब्दः । २१ उच्चारणस्य ।
२२ यदर्थं पुनर्देशकान्तरं घटोपमिति ।

चीनम्, सादृश्येन ततोर्थोऽप्रतिपत्तेः । न हि सदृशतया शब्दः प्रतीयमानो वाचकत्वेनाव्यवसीयते किन्त्वेकैवेन । य एव हि सम्बन्धग्रहणसमये मया प्रतिपन्नः शब्दः स एवायमिति प्रतीतेः ।

किञ्च, सादृश्यादर्थप्रतीतौ भ्रान्तः शाब्दः प्रत्ययः स्यात् । न ह्यन्यसिद्धगृहीतसङ्केतेऽन्यस्मादर्थप्रत्ययोऽभ्रान्तः, गोशब्दे ५ गृहीतसङ्केतेऽन्वशब्दाद्वचार्थप्रत्ययेऽभ्रान्तत्वप्रसङ्गात् । न च भूयोऽव्यवसाम्ययोगैस्वरूपं सादृश्यं शब्दे सम्भवति, विशिष्टै-
वर्णात्मकत्वाच्छब्दानां वर्णानां च निर्वयवत्वात् । न च गौवादि-
विशिष्टानां गौदीनां वाचकत्वं युक्तम्, गत्वादिसामान्यस्याऽमा-
वात्, तदभावश्च गादीनां नानात्वायोगात्, सोपि प्रत्यभिज्ञया १०
तेषामेकैवनिश्चयात् । न चात्र प्रत्यभिज्ञा सामान्यनिबन्धना,
भेदनिष्ठस्य सामान्यस्यैव गौदिव्यसम्भवौत् ।

किञ्च, गौवादीनां वैयक्त्यम्, गादिव्यक्तीनां वा ? न तावद्गत्वा-
दीनाम्, नित्यस्य वाचकैत्वेऽसंभ्रमताश्रयणप्रसङ्गात् । नापि गादि-
व्यक्तीनाम्, तथा हि—गादिव्यक्तिविशेषो वाचकः, व्यक्तिमात्रं वा ? १५
न तावद्गादिव्यक्तिविशेषः, तस्यानन्वयात् । नापि व्यक्तिमात्रम्,
तद्धि सामान्यान्तःपाति, व्यक्त्यन्तर्भूतं वा ? सामान्यान्तःपातित्वे
स एवास्मत्प्रवेशः । व्यक्त्यन्तर्भूतत्वे तद्वत्सोऽनन्वयदोष
इति । ततोऽर्थप्रतिपादकत्वान्यथानुपपत्तेर्नित्यः शब्दः । तदुक्तम्—

“अर्थापत्तिरियं चोक्ता पक्षवर्मादिवैर्जितौ ।

२०

१ उच्यते । २ एकत्वान्नित्यत्वम् । ३ ज्ञानम् । ४ शब्दे । ५ शब्दात् ।
६ अन्वयाद्विशेषात् । ७ अन्यथा । ८ नष्टे सति । ९ गृहीतसङ्केतशब्दस्य नष्टत्वात् ।
१० बहु । ११ सम्बन्ध । १२ सामान्यम् । १३ सादृश्यवर्णरहितैकत्ववर्तनः, स एव
विशेषत्वेनोपलक्षितो वर्णः, स आत्मा स्वरूपं यस्य शब्दस्य । १४ वर्णानां पुद्गल-
त्मकत्वात् शब्दस्य च वर्णात्मकत्वाच्छब्दे तथाविधं सादृश्यं अभिव्यक्तीत्येकाग्रमाह ।
१५ निरवस्थात्वात् । अर्थाभावे किं केन सादृश्यं स्यात् । १६ अत्वादिना च ।
१७ शकारादीनां च । १८ अनेकसमवेतत्वात्सामान्यत्वम् । १९ स एवार्थं शकार
इति । २० गत्वादि । २१ विशेष । २२ अनेकरूपेषु । २३ गकार एक एवेति
गौवाद्यावात् । २४ सामान्यरूपाणाम् । २५ अवयवानुपपत्तिरसिद्धेऽप्युक्ते आह ।
२६ गोपिण्डस्य । २७ भीमासक । २८ सङ्केतकाले गृहीतस्य शब्दस्य व्यवहारकाले
आगमनाभावात् सङ्केतव्यवहारशब्दयोर्भेदो यतः । २९ सामान्यस्य नित्यत्वात् ।
३० विपक्षेऽनित्यत्वे शब्दस्यार्थप्रतिपादकत्वं न वदते यतः । ३१ वाचकसामर्थ्य-
मित्यर्थः ३२ आदिना सपक्षे सत्यम् । ३३ अर्थापत्तौ पक्षवर्मादीनां प्रयोजनं
नास्ति यतः ।

- यदि नाशिनिनित्ये वा विनाशिन्येव वा भवेत् ॥ १ ॥
 शब्दे वाचकसामर्थ्यं ततो दूषणमुच्यताम् ।
 फलवद्वयहाराङ्गभूतार्थप्रत्ययाङ्गता ॥ २ ॥
 निष्फलत्वेन शब्दस्य योग्यत्वादवगम्यते ।
 ५ परीक्षमाणस्तेनैस्य युक्त्या नित्यविनाशयोः ॥ ३ ॥
 स धर्मोऽभ्युपगन्तव्यो यः प्रधीनं न वाधते ।
 न ह्यङ्गीकृत्यऽनुरोधेन प्रधानफलवाधनम् ॥ ४ ॥
 युज्यते नाशिपक्षे च तदेकान्तात्प्रसज्यते ।
 न ह्यदृष्टार्थसम्बन्धः शब्दो भवति वाचकः ॥ ५ ॥
 १० तथा च स्यादपूर्वोपि सर्वः सर्वं प्रकाशयेत् ।
 सम्बन्धदर्शनं चैस्य नाऽनित्यस्योपपद्यते ॥ ६ ॥
 सम्बन्धवानसिद्धिश्चेद्भूवं कालान्तरस्थितिः ।
 अन्यस्मिन् ज्ञातसम्बन्धे न चान्यो वाचको भवेत् ॥ ७ ॥
 गोशब्दे ज्ञातसम्बन्धे नाऽश्वशब्दो हि वाचकः ।
 १५ [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २३७-२४४] इति ।
 अथ विभिन्नदेशादितैयोपलभ्यमानत्वाङ्गकारादीनां नानात्वा-
 ऽनित्यत्वे सार्धिते, तन्न; अनेकप्रतिपत्तृभिर्विभिन्नदेशादितयो-
 पलभ्यमानेनादित्येनानेकान्तात् । विभिन्नदेशादितयोपलम्भैर्वा
 व्यञ्जकध्वन्यधीनो, न स्वरूपमेदनिबन्धनः । तदुक्तम्—
 २० “नित्यत्वं व्यापकत्वं च सर्ववर्णेषु संस्थितम् ।
 प्रत्यभिज्ञानतो मीनाद्वाधसैक्यमवर्जितात् ॥ १ ॥” []

१ अर्थापत्तिरेवास्तां तथाप्यन्यथासिद्धत्वमन्वयव सिद्धत्वं वा सादित्युक्ते आह ।
 २ वनयात्मके । ३ केवलेऽनित्ये । ४ नित्यानित्यात्मके केवलेऽनित्ये शब्दे वाचक-
 सामर्थ्यस्य वर्तमानात् । ५ न चैवमिति भावः । ६ फलवाङ्मतात् प्रवृत्तिनिवृत्ति-
 लक्षणव्यवहारस्य तस्याङ्गभूतं कारणभूतं च तदर्थप्रत्ययस्य, तस्याङ्गता कारणता
 शब्दस्य । ७ अन्यथा । ८ हेतुना । ९ अवैप्रतीतिलक्षणफलराहित्ये । १० अवै-
 प्रतिपत्तिः । ११ उक्तप्रकारेण सफलत्वभावात् शब्दत्वेति फलं भवतु को दोष
 इत्युक्ते आह परीक्षेलादि । १२ फलवत्त्वं सिद्धं शब्दस्य येन कारणेन । १३ द्वयो-
 र्धर्मयोर्नित्ये । १४ नित्यफललक्षणः । १५ विलयवर्तमान फलम् । १६ नित्यत्वं
 वाचकं भविष्यति प्रधानफलस्येत्युक्ते आह न हीलादि । १७ कारण । १८ भावेन ।
 १९ लक्षणता । २० अवैप्रतीतिलक्षणमुत्पन्नफलस्य । २१ नित्यपक्षवप्राप्तिपक्षे
 प्रधानफलवापनं वास्तीत्युक्ते आह । २२ नियमेन । २३ अज्ञातार्थः । २४ शब्दस्य ।
 २५ गृहीतसम्बन्ध एव प्रवृत्तौ स्थितलाह । २६ अवयवम् । २७ शब्दस्य काल-
 न्तरस्थितिपक्षे । २८ आदिना कालः । २९ गादयो वर्मिणो नाना ज्विलाश्च भवन्ति
 विभिन्नदेशकाकवादित्यनुमानेन । ३० प्रमाणात् । ३१ संगमः=संघनः ।

“यो यो गृहीतः सर्वस्मिन्देशे शब्दो हि विद्यते ।
 न चास्याऽवयवाः सन्ति येन वर्त्तत भागशः ॥ २ ॥
 शब्दो वर्त्तत इत्येव तत्र सर्वात्मकश्च सः ।
 व्यञ्जकध्वन्यऽधीनत्वात्तद्देशे स च गृह्यते ॥ ३ ॥
 न च ध्वनीनां सामर्थ्यं व्याप्तुं व्योम निरन्तरम् ।
 तेनाऽविच्छिन्नरूपेण नासौ सर्वत्र गृह्यते ॥ ४ ॥
 ध्वनीनां भिन्नदेशत्वं श्रुतिस्तत्रानुरुध्यते ।
 अपरितान्तरालत्वादिच्छेदश्चावसीयते ॥ ५ ॥
 तेषां चाल्पकदेशत्वाच्छब्देभ्यऽविमुतामतिः ।
 गतिमद्वेगवत्त्वाभ्यां ते चायान्ति यतो यतः ॥ ६ ॥
 ओता ततस्ततः शब्दमायान्तमिव मन्यते ।”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७२-१७५]

अथैकेन भिन्नदेशोपलम्भाद् घटादिवज्जानात्वम्; न; आदित्ये-
 नानेकान्तात् । दृश्यते ह्येकेनादित्यो भिन्नदेशः, न चाैतावतासौ
 नाना । अथ ‘युगपदेकेन भिन्नदेशोपलब्धेः’ इति विशेष्योच्यते, १५
 तथाप्येनेनैवानेकान्तः । जलपात्रेषु हि भिन्नदेशेषु सवितैकोन्ये-
 केन युगपद्भिन्नदेशो गृह्यते । उक्तं च—

“सूर्यस्य देशभिन्नत्वं न त्वेकेन न गृह्यते ।
 न नाम सर्वथा तावद्दृश्यमानैकदेशता ॥ १ ॥
 सविशेषैर्षी हेतुश्चेत्तथापि व्यभिचारिता ।
 दृश्यते भिन्नदेशोयमित्येकोपि हि बुध्यते ॥ २ ॥
 जलपात्रेषु चैकेन नानैकः सवितेक्ष्यते ।
 युगपर्षं च भेदेस्य प्रमाणं तुल्यवेदर्नात् ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७६-१७८]

१ प्रत्यभिज्ञानाच्छब्दस्य व्यापकत्वं कमित्युक्ते आह । २ अवयवसङ्क्रावाद्
 खण्डशो वर्त्तते इत्युक्ते आह । ३ भागशो न वर्त्तते तर्हि कथं वर्त्तते इत्युक्ते आह ।
 ४ सर्वत्र विद्यते चेत्तर्हि सर्वत्रैवोपलम्भः स्यादित्युक्ते आह । १५ ध्वनयोपि सकलदेशं
 कथं न व्याप्नुवन्तीत्युक्ते आह । ६ नानादेशेषूपलब्धमानत्वम् । ७ शब्दअवगणम् ।
 ८ शब्दव्यञ्जकवामुनाम् । ९ अत एव अवगणनमिचारे दृश्यते । १० गतिः=
 क्रियारूपा । वेगः=सत्कारविशेषः । ११ भिन्नदेशश्चेदुपलभ्यते तदा भिन्नदेशो
 भविष्यतीत्युक्ते आह नेति । १२ सूर्यस्य । १३ युगपदिति । १४ कथं व्यभिचारे
 दृश्यते इत्यारोपयामाह । १५ एकः सूर्यो भिन्नदेशतया कथं बुध्यते इत्युक्ते आह ।
 १६ एवं चेत्तर्हि सूर्यो नानारूपो भविष्यतीत्युक्ते आह । १७ आदित्य आदित्य इति
 समानरूपत्वादेवनास्तेरेक एवायमित्युक्तमीयते । न चास्य भेदे प्रमाणं किञ्चिदित्यर्थः ।

कश्चिदाह—न तत्र सवितेक्ष्यते तस्य नभसि व्यवस्थानात्,
तन्निमित्तानि तु तेषु प्रतिबिम्बानि प्रतीयन्ते, ततो नानेकान्तः।

“आहैकेन निमित्तेन प्रतिपात्रं पृथक् पृथक्।

भिन्नानि प्रतिबिम्बानि गृह्यन्ते युगपन्मया ॥ १ ॥”

५

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७९]

एतत्कुमारिलः परिहरन्नाह—

“अत्र ब्रूमो यदा यावज्जले सौर्येण तेजसा।

स्फुरता चाक्षुषं तेजः प्रतिस्त्रोतः प्रवर्त्तितम् ॥ १ ॥

स्वेदेशमेव गृह्णाति सवितारमनेकधा।

१० भिन्नमूर्त्तिं यथापात्रं तैदास्यानेकता कुतः ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८०-१८१]

यथा च प्रदीपः।

“ईपेत्सम्मिलितेऽहल्या यथा चक्षुषि दृश्यते।

पुंथगेकोपि भिन्नत्वाच्चक्षुर्वृत्तेस्तथैव नः ॥ १ ॥

१५

अन्ये तु चोदयन्त्यत्र प्रतिबिम्बोदयैषिणः।

स एव चैत्प्रतीयत कस्मान्नोपरि दृश्यते ॥ २ ॥

कूपादिषु कुतोऽधस्तात्प्रतिबिम्बाद्भिनेक्षणम्।

प्राक्तुस्रो दर्पणं पश्यन् स्याच्च प्रत्यक्षुषः कथम् ॥ ३ ॥

तत्रैव बोधयेदर्थं बहिर्यातं यदीन्द्रियम्।

२० तत एतद्भवेदेवं शरीरे तत्तु बोधकम् ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८२-१८५]

अत्राह—

“अप्सूर्यदर्शिनां नित्यं द्वेधा चक्षुः प्रवर्त्तते।

एकमूर्द्धमधस्ताच्च तत्रोर्द्धांशप्रकाशितम् ॥ १ ॥

२५

अधिष्ठानानृजुत्वाच्च नात्मा सूर्यं प्रपद्यते।

पारम्पर्यार्पितं स तमर्चागृह्यता तु बुध्यते ॥ २ ॥

१ जेनादिः। २ स स्रोत्रं निमित्तं येषां तानि। ३ सूर्येण। ४ नानात्वेन।
५ क्रियाविशेषणमेतत्। ६ पात्राण्यनतिक्रम्य। ७ यदा दृश्यते। ८ अमेयकमल-
मार्तण्डाशब्दः केन सह सवन्वनीय इत्यन्वयार्थो ‘यथा च प्रदीपः’ शब्द उक्तः।
९ एक एव सविता नाना कर्म दृश्यते इत्याह ईपदिति। १० नानारूपेण।
११ चक्षुःप्रवृत्तिर्नानारूपास्ति अत इत्यर्थः। १२ नः=असाकमपि, तत्रैव=प्रदीप-
प्रकारेणैव। एकोप्यादिलो नानात्वेन दृश्यते चक्षुषः प्रवृत्तेर्मिलत्वात्। १३ कूपादिषु
कुत इत्यस्य समाधानमिदमभ्येतनम्।

ऊर्ध्ववृत्ति तदेकत्वादवागिव च मन्यते ।

अंधस्तादेव तेनार्कः सान्तरालः प्रतीयते ॥ ३ ॥

एवं प्राग्वर्तया वृत्त्या प्रत्यवृत्तिसमर्पितम् ।

बुध्यमानो मुक्तं भ्रान्तेः प्रेत्यगित्यवगच्छति ॥ ४ ॥

अनेकदेशवृत्तौ च सत्यपि प्रतिविम्बके ।

समानबुद्धिगम्यत्वान्नानात्वं नैव विद्यते ॥ ५ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८६-१९०]

किञ्च,

“विशमेदेन भिन्नत्वं मतं तद्वानुमानिकम् ।

प्रत्यक्षस्तु स एवेति प्रत्ययस्तेन बाधकः ॥ ६ ॥

पर्यायेण यथा चैको भिन्नदेशान् व्रजन्नपि ।

देवदत्तो न भिद्येत तथा शब्दो न भिद्यते ॥ ७ ॥

कृतैकत्वो यथा चासौ दृश्यमानः पुनः पुनः ।

न भिन्नः कालमेदेन तथा शब्दो न देशतः ॥ ८ ॥

पर्यायादविरोधंश्चेद्व्यापित्वादपि दृश्यताम् ।

दृष्टसिद्धो हि यो धर्मः सर्वथा सोऽभ्युपेयताम् ॥ ९ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९७-२००] इति ।

अत्र प्रतिविधीयते । नित्यः शब्दोऽर्थप्रतिपादकत्वान्यथानुपप-
त्तेरित्युक्तम् । धूमादिवदनित्यस्यापि शब्दस्यावगतसम्बन्धस्य
सादृश्यतोऽर्थप्रतिपादकत्वसम्भवात् । न चक्षुः य एव सङ्केतकाले १०
दृष्टस्तेनैवार्थप्रतीतिः कर्त्तव्येति नियमोस्ति, महानसदृष्टधूमस-
दृशादपि पर्वतधूमादग्निप्रतिपत्त्युपलम्भात् । न हि महानसप्रदे-
शोपलब्धैव धूमव्यक्तिरन्यत्राप्यग्निं गमयति; सदृशपरिणामा-
क्रान्तव्यक्त्यन्तरस्य तद्गमकत्वप्रतीतिः, अन्यथा सर्वस्य सर्वगत-
त्वानुषङ्गः । सदृशपरिणामप्रधानतया च साध्यसाधनयोः २५
सम्बन्धावधारणम् । न ह्यनाश्रितसमानपरिणतीनां निखिलधूमा-
दिव्यक्तीनां स्वसाध्येनाऽर्वागदेशा सम्बन्धः शक्यो गृहीतुम्;

१ वच्छला । २ संयुक्तम् । ३ पूर्वसोपलम्भद्वारेण । ४ इत्यस्यापि प्रतिनिम्बके
पूर्वसोपलम्भद्वारेणानेकदेशवृत्तिकं तत्त्वानैकान्तिकत्वं प्रकृतसाधनस्यानेनेति चेन्न
उक्त्यापि ज्ञानावर्धनभावाद् इति बहन्ति प्रति । ५ परमनेकान्तदूषणमुद्रान्य काल-
ज्ञायापदिहत्वमुद्रावपति । भिन्नदेशसौकर्यं नास्तीति प्रसङ्गं कथमनुमानवापकमित्युक्ते
चाह । ६ गन्धरासीनाम् । ७ आरगेन । ८ कालक्रमेण । ९ व्यवहारकाले ।
१० समानुपमित्यर्थः । ११ अग्निधूमयोः शब्दार्थयोश्च । १२ शब्दप्रकारेण
शब्दव्यक्तिर्नैवति पक्षे शब्दत्वादिति वक्तव्यम् । १३ असर्वदेव ।

अ० क० मा० ३५

असाधारणरूपेण तस्य तात्साम्यप्रतिभासनात्, अथ धूमसामान्य-
मेवाग्निप्रतिपत्तिकारणम्; न, व्यक्तिसादृश्यव्यतिरेकेण तद्-
सम्भवात् । न च 'धूमेत्वान्मया प्रतिपन्नोऽग्निः' इति प्रतिपत्तिः,
किन्तु, धूमात् । सा च सामान्यविशिष्टव्यक्तिमात्रयोः सम्बन्ध-
५ ग्रहणे घटते । न तु धूमाग्निसामान्ययोरवश्यं चालुमेयानुमाप-
कयोः सामान्यविशिष्टविशेषरूपतोपगन्तव्या, अन्यथा सामान्य-
मात्रस्य दाहाद्यर्थक्रियासाधकत्वाऽभावात् ज्ञानाद्यर्थक्रियायाञ्च
तत्साध्यात्यास्तदैवोत्पत्तेः, दाहाद्यर्थिनामनुमेयार्थप्रतिभासात्
प्रवृत्त्यभावतोऽस्याप्रामाण्यप्रसङ्गः । सामान्यविशिष्टविशेषरूपता
१० चात्र वाच्यवाचकयोरपि समाना न्यायस्य समानत्वात् ।

यदप्युक्तम्—

“सदृशत्वात्प्रतीतिश्चेत्तद्गारेणाप्यवाचकः ।

कस्य चैकस्य सादृश्यात्कल्प्यतां वाचकोऽपरः ॥ १ ॥

अदृष्टसङ्गतत्वेन सैवेषां तुल्यता यदा ।

१५ अर्थवोन्पूर्वदृष्टश्चेत्तस्य तावान्क्षणः कृतः ॥ ३ ॥

द्विस्तावानुपलब्धो हि अर्थवान्सम्प्रतीयते ।”

[मी० खो० शब्दनि० खो० २४८-२५०]

इत्यादिः तदप्यसारम्; अनुमानवात्तोच्छेदप्रसङ्गात् । धूमादि-
लिङ्गात्पूर्वोपलब्धधूमादिसादृश्यतोऽग्न्यादिसाध्यप्रतिपत्तावप्यस्य
२० सर्वस्य समानत्वात् ।

एतेनैवमपि प्रत्युक्तम्—

“शब्दं तावदनुच्चार्य सम्बन्धैर्करणं कृतः ।

न चोच्चारितनष्टस्य सम्बन्धेन प्रयोजनम् ॥”

[मी० खो० शब्दनि० खो० २५६] इत्यादि ।

२५ यतोऽदृष्टे धूमे सैम्बन्धो न शक्यते कर्तुम् । नापि दृष्टनष्टस्यास्य
सम्बन्धेन प्रयोजनं किञ्चित् ।

१ शब्दपक्षे शब्दसामान्यमेवार्थप्रतिपत्तिकारणमिति वाच्यम् । २ धूमसामान्यात् ।

३ सादृश्यपरिणामविशिष्टा व्यक्तिरेव ज्ञाना स्वरूपं ययोः साध्यसाधनयोरुक्तयोः ।

४ साध्यसाधनयोः । ५ शब्दसोच्चारणसमये, जग्याधनुमानसमये च । ६ विधेने

पर्वणादी । ७ सामान्यस्य । ८ नदीत्यादिपूर्वोक्तस्य । ९ संकेतकालोपलब्धशब्देन

व्यवहारकालोपलब्धशब्दस्य । १० तदेति शेषः । कथमवाचक इत्युक्ते कसेनाह ।

कस्य=संकेतकालोपलब्धस्य । ११ व्यवहारकालोपलब्धः शब्दः । १२ अदृष्ट-
संबन्धेन । १३ शब्दानाम् । १४ वाच्यवाचकसंयन्त्रवान् शब्दः । १५ दिवादि ।

१६ वाच्येन सह । १७ साध्याभिज्ञा सह ।

यच्च सादृश्ये दूषणमुक्तम्—

“तथा भिन्नमभिन्नं वा सादृश्यं व्यक्तिो भवेत् ।

एवमेकमनेकं वा नित्यं वानित्यमेव वा ॥ १ ॥

भिन्ने चैकत्वनित्यत्वे जातिरेव प्रकल्पिता ।

व्यक्त्यऽनन्यदर्थैकं च सादृश्यं नित्यमिष्यते ॥ २ ॥ ५

व्यकिनित्यत्वमापन्नं तथा सत्यसिद्धीहितम् ।”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७१-२७३] इत्यादिः

तदप्युक्तम्; स्वहेतोरेकस्य हि यादृशः परिणामस्तादृश एवा-
परस्य सादृश्यम्, न तु स एव । सै च व्यक्तिभ्यो भिन्नोऽभि-
न्नश्च, तथाप्रतीतेः । न च जातिस्तथाभूता; नित्यव्यापित्वेनाभ्यु-१०
पगमात् । तथाभूताश्चास्याः सामान्यनिराकरणे निराकरिष्यमाण-
त्वात् । ततः प्रवृत्तिमिच्छता लिङ्गाच्छब्दाद्वा न सामान्यमात्रस्य
प्रतिपत्तिरभ्युपगन्तव्या ।

ननु सामान्यस्य विशेषमन्तरेणानुपपत्तितो लक्षितलक्षणया
विशेषप्रतिपत्तेर्न प्रवृत्त्याद्यभावानुपपन्नः, इत्यप्रातीतिकम्; कमप्र-१५
तीतेरभावात् । न हि बाधकोऽभूतवाच्यप्रतिभासे प्राक् सामान्या-
वभासः पश्चाद्विशेषप्रतिभास इत्यनुभवोस्ति ।

किञ्च, सामान्याद्विशेषः प्रतिनियतेन रूपेण लक्ष्येत, साधा-
रणेन वा ? न तावदाद्यः पक्षः; प्रतिनियतरूपतयाऽस्याऽप्रतीतेः ।
न हि शब्दोच्चारणवेलायां जातिपरिमितो विशेषोऽसाधारण-२०
रूपतयाऽनुभूयते प्रत्यक्षप्रतिभासाऽविशेषप्रसङ्गात् । प्रतिनिय-
तरूपेण जातेरविनाभावाभावाच्च कुतस्तथा तस्य लक्षणम् ? नापि
द्वितीयः; साधारणरूपतया प्रतिपन्नस्यापि विशेषस्यार्थक्रिया-
कारित्वाऽसामर्थ्येन प्रवृत्त्यहेतुत्वात्, प्रतिनियतस्यैव रूपस्य
तत्र सामर्थ्योपलब्धेः । पुनरपि साधारणरूपतातो विशेष-२५
प्रतिपत्तावनवस्था स्यात् । साधारणरूपतया चातो विशेष-

१ तथाशब्दः सप्रत्यापेक्षया दूषणान्तरसमुच्चये । २ अनेकं सादृश्यं चेत्कति
नित्यमनित्यं वा ? अनित्यं चेन्न संवत्प्रतिपत्तिः । नित्यं चेत्तदकैमेव सादृश्ये-
नार्थप्रतिपत्तिपत्तेरनेकलिङ्गसादृश्यपरिकल्पनं व्यर्थम् । ३ परोक्षी परिहारमाह ।
४ जलमभिन्नैः । ५ घृणादेः । ६ घृमादेः । ७ सादृश्यपरिणामः ।
८ भिन्नाभिन्नत्वप्रकारेण । ९ भिन्नाभिन्नरूपा । १० परेण त्वया । ११ सामान्य-
साधुनेयरूपत्वे प्रवृत्तिर्न घटते अतः । १२ सामान्यस्य विशेषनिष्ठत्वात् । १३ सामा-
न्यजनितप्रतिपत्त्या । १४ सामान्यस्य नित्यसर्वगतत्वात् । १५ पूर्वोक्तस्य समर्थन-
मेतत् । १६ अन्यथेति शेषः । १७ ज्ञानम् ।

प्रतिपत्तौ सामान्यात्सामान्यप्रतिपत्तौ सामान्यप्रतिपत्तिरेव खाद्य-
विशेषप्रतिपत्तिः, साधारणरूपतायाः सामान्य गवत्वात् ।

किञ्च, यदि नाम शब्दाज्जातिः प्रतिपन्ना : किमायातम्,
येनासौ तां गमयति ? तयोः सम्बन्धाच्चेत्, सम्बन्धस्तयोस्तदा
५ प्रतीयते, पूर्वं वा ? न तावत्तदा व्यक्तेरनधिगतेः 'जातिरेव
हि केवला तदा प्रतिभासते' इत्यभ्युपगमात्, अन्यथा किं
लक्षितलक्षणया ? न च व्यक्त्यनधिगमे तत्सम्बन्धध्वनिगमः
द्विष्टत्वाच्चेत् । अथ पूर्वमसौ प्रतीयः, तथापि तदेवासौ भवतु ।
न होक्वा तत्सम्बन्धेऽन्यदाप्यसौ भवत्यतिप्रसङ्गात् । न च जाते-
१० विशेषनिष्ठतैव स्वरूपम्, व्यक्त्यन्तराले तत्स्वरूपाऽसत्त्वप्रसङ्गात् ।
तत्कथं व्यक्त्यऽविनाभावोऽस्याः ?

किञ्च, सर्वदा जातिर्व्यक्तिनिष्ठेति प्रत्यक्षेण प्रतीयते, अनुमा-
नेन वा ? प्रत्यक्षेण चेत्किं युगपत्, क्रमेण वा ? तत्राद्यपक्षोऽ-
युक्तः, सर्वव्यक्तीनां युगपदप्रतिभासनात् । न च तासामप्रति-
१५ भासे तथा सम्बन्धावसायोऽतिप्रसङ्गात् । नापि द्वितीयः,
क्रमेण निरवधेः सकलव्यक्तिपरम्परयाः परिच्छेत्तुमशक्तेः ।
कादाचित्के तु जातेर्व्यक्तिनिष्ठताधिगमे सर्वत्र सर्वदा न
तन्निष्ठताधिगमः स्यात् । तन्न प्रत्यक्षेण जातेस्तन्निष्ठताधिगमः ।
नाप्यनुमानेन, अस्याऽध्यक्षपूर्वकत्वेनाभ्युपगमात् । तस्य चात्राऽ-
२० प्रवृत्तावनुमानस्याप्यप्रवृत्तिः । तन्न लक्षितलक्षणया विशेषप्रति-
पत्तिः सम्भवति, इति वाच्यवाचकयोः सामान्यविशिष्टविशेष-
रूपतोपगन्तव्या धूमादिवत् ।

ननु धूमादेः सामान्यसद्भावाच्चद्विशिष्टस्योक्तन्यायेन गमकत्व-
मस्तु, शब्दे तु तस्याभावः, त्कथं तद्विशिष्टस्य गमकत्वंम् ? तद-
२५ भावश्च वर्णान्तरग्रहणे वर्णान्तरानुसन्धानामावात् । यत्र हि सामा-
न्यमस्ति तत्रैकग्रहणेऽपरस्यानुसन्धानं दृष्टं यथा शाबलेयग्रहणे
बाहुलेयस्य । वर्णान्तरे च गादौ गृह्यमाणे न कादीनामनुसन्धी-
नम्, तदसाम्प्रतम्, गादौ हि वर्णान्तरे गृह्यमाणे यदि 'अयमपि
वर्णः' इत्यनुसन्धानामावः 'सोऽसिद्धः, तथानुभू(तथाभू-)

१ व्यक्त्यु । २ शब्दाज्जातिप्रतिपत्तिरूपे । ३ शब्दोच्चारणसमये व्यक्तित्व-
प्रतिभासते चेत्किं । ४ लक्षितेन जातेन सामान्येन लक्षणा-विशेषप्रतिपत्तिसत्ता ।
५ संबन्धस्य । ६ षट्पदयोरेकदा संबन्धे सर्वदा संबन्धप्रसङ्गात् । ७ संबन्धो
वाक्षि यतः । ८ कदाचिद्वैलप्यत्र द्रष्टव्यम् । ९ पिशाचाप्रतिभासे पिशाचेन कूटस्य
संबन्धप्रसङ्गप्रसङ्गात् । १० विशेषस्य । ११ अर्थवाचकत्वम् । १२ अनुसन्धानं-मल-
विधानम् । १३ व्यक्त्यु । १४ गत्वामावात् आदिषु । १५ अनुसन्धानामावः ।

शानुसन्धानस्यानुभूयमानत्वेनाऽभावासिद्धेः । अथ गादौ वर्णान्तरे
गृह्यमाणे 'अयमपि कादिः' इत्यनुसन्धानाभावाच्च सामान्यस-
ङ्कावः; तर्हि शाबलेयादावपि व्यक्त्यन्तरे गृह्यमाणे 'अयमपि बाहु-
लेयः' इत्यनुसन्धानाभावाद्भोत्वस्याप्यभावः । अथ 'गौर्गौः' इत्यनु-
गताकारप्रत्ययसङ्कावाच्च गोत्वाऽसत्त्वम्; तदन्यत्रापि समानम्-
५ तत्रापि हि 'वर्णो वर्णः' इत्यनुगताकारप्रत्ययोस्तु, तत्कथं वर्णेषु
वर्णत्वस्य गादिषु गत्वादेः शब्दे शब्दत्वस्याभावः निमित्ताऽ-
विशेषात् ? तथाहि-समानासमानरूपास्तु व्यक्तियु क्वचित्
'समानाः' इति प्रत्ययोऽन्वेत्यन्यत्र व्यावर्तते । यत्र च प्रत्ययानु-
वृत्तिस्तत्र सामान्यव्यवस्था, नान्यत्र । सा च प्रत्ययानुवृत्तिर्गादि-१०
व्यपि समानेति कथं न तत्र सामान्यव्यवस्था ? तथाप्यत्र सामा-
न्यानभ्युपगमे शाबलेयादावपि सोस्तु । न हि तत्रापि तथा-
भूतप्रत्ययानुवृत्तिमन्तरेण सामान्याभ्युपगमेऽस्यन्निमित्तमुत्प-
श्यामः । यदि चात्राऽनुगताऽवाधिताऽक्षजप्रत्ययविषयत्वे
सत्यपि गत्वादेरभावः; तर्हि गादेरपि व्यावृत्तप्रत्ययविषयस्या-१५
भावः स्यात् । तथा च कैस्य दर्शनेस्य परार्थत्वाच्चित्यत्वं साध्येत ?

यच्चोक्तम्-'सादृश्येन ततोऽर्थाप्रतिपत्तेः' इति; तत्सदृशप-
रिणामलक्षणसामान्यविशिष्टव्यक्तेरर्थप्रतिपादकत्वसमर्थनात्प्रत्यु-
क्तम् ।

यदप्यभिहितम्-सादृश्यादर्थप्रतीतौ भ्रान्तः शब्दः प्रत्ययः २०
स्यात्; तद्गमादेऽप्यादिप्रतिपत्तौ समानम् ।

यदप्युक्तम्-'गत्वादीनां वाचकत्वं गादिव्यक्तीनां वा' इत्यादि;
तत्सामान्यविशिष्टव्यक्तेर्वाचकत्वसमर्थनादेव प्रत्युक्तम् ।

यच्चोक्तम्-'यो यो गृहीतः' इत्यादि; तदप्युक्तिमात्रम्; पक्ष-
स्यानुमानवाधितत्वात् । तथाहि-अनेको गोशब्द एकेनैकदा २५
मिश्रदेशस्वभावतयोपलभ्यमानत्वाद् घटादिवत् । न चानेक-
प्रतिपत्तुभिर्मिश्रदेशतयोपलभ्यमानेनादित्यादिना, कालमेदेन
मिश्रदेशादितयोपलभ्यमानेन देवदत्तेन वा व्यभिचारः; 'एके-
नैकदा' इति विशेषणद्वयोपादानात् । एकेनैकदा दर्शनस्पर्शानभ्यां
मिश्रस्वभावतयोपलभ्यमानेन घटादिना वा; 'मिश्रदेशतया' इति ३०
विशेषणात् । जलपात्रसङ्क्रान्तादित्यादिप्रतिविम्बैस्तद्व्यभिचारः;

१ गत्वलक्षणं सामान्यं नास्ति तथापि वर्णलक्षणं सदृशसामान्यं कादिवत्स्वेवेति
वैनामिप्रायः । २ अमाने सति । ३ गादेः । ४ उच्चारणस्य । ५ हेतोः ।
६ न चेति पूर्वेषु संक्षेपेन हेतुः ।

तेषामग्रेऽनेकत्वप्रसाधनात् । तथाप्यत्र सर्वगतत्वादिधर्मसम्भवे
घटादावपि सोऽस्तु-

‘न चास्याऽवयवाः सन्ति येन वर्त्तत भागशः ।

घटो वर्त्तत इत्येव तत्र सर्वात्मकश्च सः ॥’

५ इत्यादेरत्राप्यभिधानुं शक्यत्वात् । यथा च—

कचिद्रक्तः कचित्पीतः कचित्कृष्णश्च गृह्यते ।

प्रतिदेशं घटस्तेन विभिन्नो मम युक्तिमान् ॥

तथा—

उदात्तः कुञ्जचिच्छन्दोऽनुदात्तश्च तथा कचित् ।

१० अकारो मि(कारमि)श्रितोऽन्यत्र विभिन्नः स्याद् घटादिवत् ॥

ननु ‘व्यञ्जकध्वनिधर्मा एवोदात्तादयो नाऽकारादिधर्माः, ते तु
तत्रारोपात्तद्धर्मा इवावभासन्ते’ जपाकुसुमरक्तत्वे स्फटिकादा-
विति । उक्तञ्च—

“बुद्धितीव्रत्वमन्दत्वे महत्त्वाल्यत्वकल्पना ।

१५ सा च पट्टी भवत्येव महातेजःप्रकाशिते ॥ १ ॥

मन्दप्रकाशिते मन्दा घटादावपि सर्वदा ।

एवं दीर्घादयः सर्वे ध्वनिधर्मा इति स्थितम् ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१९-२२०]

तदप्यसारम्; यतो यद्युदात्तादिधर्मरहितोऽकारादिस्तत्स-
२० हितश्च ध्वनिः रक्तेतरस्वभावजपाकुसुमस्फटिकवत् कचिदुप-
लब्धः स्यात् तदा स्यादेतत् ‘अन्यधर्मस्तदारोपात्तद्धर्मतयेवा-
वभाति’ इति । न चासौ स्वप्नेपि तथोपलभ्यते । शब्दधर्मतया
वैते प्रतीयमाना यद्यन्यस्येप्यन्तेऽन्यत्र कः समाश्वसहेतुः ?
बाधकाभावश्चेत्सोत्रापि समानः । विपरीतदर्शनं हि बाधकम्,
२५ यथा द्विचन्द्रदर्शनस्यैकचन्द्रदर्शनम् । न चात्र तदस्ति-उदात्ता-
दिधर्मात्मकस्यैवाकारादेः सर्वदा प्रतीतेः । तथापि तत्कल्पने
रक्तादिधर्मरहितस्य घटादेर्दर्शनं तथैव कल्प्यताम् । तथाविध-
स्यानुपलम्भादसत्त्वम्; शब्देपि समानम् ।

किञ्चेदं बुद्धेस्तीव्रत्वं नाम ? किं महत्त्वरहितस्यार्थस्य महत्त्वेनो-
३० पलम्भः, यथाऽवस्थितस्याऽत्यन्तस्पर्शतया वा ? प्रथमे विकल्पे
आन्तताऽस्याः स्यात् । ‘सा च पट्टी भवत्येव महातेजःप्रकाशिते
घटादौ सर्वदा’ इति च निदर्शनमयुक्तम्; न हि महातेजःसाम-
र्थ्यादल्पोपि घटो ‘महान्’ इत्यवभासते, किन्त्ववस्थितस्पर्शतया ।
द्वितीयविकल्पे तु महत्त्वादिधर्मरहितस्यास्याऽत्यन्तस्पर्शतया
३५ ग्रहणं स्यात् । तथा च न व्यञ्जकध्वनिधर्मानुविधायित्वं स्यात् ।

एतेन बुद्धिमन्दत्वेऽल्पता निरस्ता । न खलु मन्दतेजसः प्रकाशिते घटादौ महति बुद्धिमन्दत्वेनाल्पत्वप्रतीतिरस्ति । ततो 'महातात्वादिव्यापारे महत्त्वादिधर्मोपेतोऽल्पे चाल्पत्वादिधर्मोपेतः शब्द एवोत्पद्यते' इत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

यदि च तात्त्वादयो ध्वनयो वास्य व्यञ्जकाः, तर्हि तद्व्यापारे ५ तद्धर्मोपेतस्यास्य नियमेनोपलब्धिर्न स्यात् । कारकव्यापारो ह्येषः— स्वसन्निधाने नियमेन कार्यसन्निधापनं नाम, न व्यञ्जकव्यापारः । न खलु यत्र यत्र व्यञ्जकः प्रदीपादिस्तत्र तत्र व्यङ्ग्यघटादिसन्निधापनमुपलब्धिर्वा नियमतोस्ति, अन्यथा तयोरविशेषप्रसङ्गात्, अक्रादिव्यापारवैयर्थ्यानुषङ्गाच्च । अथ घटादेरसर्वगतत्वाच्च १० तद्व्यञ्जनसन्निधाने सर्वत्रोपलम्भः, शब्दस्य तु सम्भवति विपर्ययात्, इत्यप्यनिरूपिताभिधानम्, तस्य सर्वगतत्वाऽसिद्धेः । तथाहि—न सर्वगतः शब्दः सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकैन्द्रियप्रत्यक्षत्वाद् घटादिवत् । ततो घटादिभ्यः शब्दस्य विशेषाभावाद्बुभयोः कार्यत्वं व्यङ्ग्यत्वं चाभ्युपगन्तव्यम् । १५

किञ्च, एते ध्वनया ओजग्राह्याः, न वा ? ओजग्राह्यान्ते अत एव शब्दाः तल्लक्षणत्वाच्चेष्टाम् । तत्र च तात्त्विका एवोदात्तादयो धर्माः । तथा चापरशब्दकल्पनानर्थक्यम् । अथ न ओजग्राह्याः, कथं तर्हि तद्धर्मा उदात्तादयस्तग्राह्याः ? न हि रूपादीनां धर्मा भासुरत्वादयो रूपादेरग्रहणे ओज्रेण गृह्यन्ते । २० अथ न भावतस्तेन ते गृह्यन्ते, किन्त्वारोपात् । ननु चाऽगृहीतस्यारोपोपि कथम् ? अन्यथा भासुरत्वादेरपि तत्रारोपः स्यात् । अथ व्यञ्जकत्वाद् ध्वनीनां तद्धर्मा एव तत्रारोप्यन्ते, न रूपादीनां विपर्ययात्, ननु ज्ञानजनकत्वाभावरं व्यञ्जकत्वम् । तथा सत्यरूपेण चक्षुषा व्यज्यमानः पर्वतो महानपि २५ तद्धर्मोरोपात्तपरिमाणतया प्रतीयेत सर्वपञ्च बृहत्परिमाणतया, न चैवम् । तन्नैते ध्वनिधर्मा उदात्तादयोऽपि तु शब्दधर्माः । तथाप्यस्यैकव्यक्तिकत्वे घटादेरपि तद्वस्तु विशेषाभावात् ।

ननु चास्यैकत्वे नभोवत्कारणानायत्तत्वाच्च तदुत्कर्षापकर्षाभ्यामुत्कर्षापकर्षौ स्याताम्, तच्छब्देपि समानम्—तस्यापि हि ३० प्रत्येकमेकव्यक्तिकत्वे तात्त्वोत्कर्षाऽपकर्षाभ्यामुत्कर्षापकर्षयोगो न स्यात्, किन्तु सर्वत्र तुल्यप्रतीतिविषयता स्यात् । ननु चासिद्धं तात्त्वादिर्महत्त्वादेः शब्दस्य महत्त्वादिकम्, तथाहि—

“कारणानुविधायित्वं यथाल्पत्वमहत्त्वयोः ।

तदसिद्धं न वर्णो हि वर्द्धते न पदं क्वचित् ॥

वर्णान्तरजनौ तावत्तत्पदत्वं विहन्यते ।

अपदं हि भवेदेतद्यदि वा स्यात्पदान्तरम् ॥

वर्णोऽनवयवत्वात्तु वृद्धिहासौ न गच्छति ।

व्योमादिवदतोऽसिद्धा वृद्धिरस्य स्वभावतः ॥”

५

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१०-२१३]

अत्रोच्यते-किं कारणानुविधायित्वमल्पत्वमहत्त्वयोः स्वभाव-
सिद्धत्वादसिद्धम्, आहोस्वित्कारणाल्पत्वमहत्त्वाभ्यां शब्दस्या-
ल्पत्वमहत्त्वे एव न विद्येते स्वभावतस्तद्ब्रहितत्वात् इति ?
तत्राद्यपक्षे स्वभावे एव वास्याऽल्पत्वमहत्त्वे विद्येते, न तु ते
१० तस्य कारणाल्पत्वमहत्त्वाभ्यां कृते इत्यायातम्, तथा च घटा-
देरपि तथा तत्सत्त्वप्रसङ्गः । निर्हेतुकत्वेन सर्वदा भावानुप-
पन्नोभयत्र समानः । द्वितीयस्तु पक्षोऽसङ्गतः, तयोस्तत्र प्रतीय-
मानत्वेन स्वभावतस्तद्ब्रहितत्वासिद्धेः । न खलु महति तात्त्वाद्वा
महानऽल्पे चाल्पः शब्दो न प्रतीयते, सर्वत्र तयोरनाम्नास-
१५ प्रसङ्गात् ।

यदप्युक्तम्-‘न हि वर्णो वर्द्धते’ इत्यादि; तत्र यदि तावत्
‘अल्पतात्त्वादजनिता वर्णादिरूपो महतस्तात्त्वादिव्यापाराच्च
वर्द्धते’ इत्युच्यते; तदा सिद्धसाधनम् । न हि घटोऽल्पान्ध-
त्पिण्डात्तथाविधो जातोऽन्यतः स एव वर्द्धते अघटत्वप्रसङ्गात्,
२० घटान्तरमेव वा स्यात् । अथान्योपि वृद्धिमात्रं जायते; तत्र;
तथाविधस्य दृष्टत्वात् । दृष्टस्य चाऽपह्नुवाऽयोगात् ।

यतेनैतन्निरस्तम्—

“अथ तान्नृप्यविज्ञानं हेतुरित्यभिधीयते ।

तथापि व्यभिचारित्वं शब्दत्वेपि हि तन्मतिः ॥ १ ॥

२५

व्यक्त्यल्पत्वमहत्त्वे हि तद्यथानुविधीयते ।

तथैवानुविधातायं ध्वन्यल्पत्वमहत्त्वयोः ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१३-२१४] इति ।

सहशपरिणामो हि सामान्यम् । तस्य च वर्षवदऽल्पत्वमह-
त्त्वसम्भवात् कथं तेनानेकान्तः ? भवत्कल्पितं तु सामान्यमग्रे
३० निषिद्धत्वात्स्वरविषाणप्रत्ययमिति कथं तेन व्यभिचारोद्भावनम् ?

यदप्युच्यते—

व्यङ्ग्यानां चैतदस्तीति लोकेष्वैकान्तिकं न तत् ।

दर्पणाल्पमहत्त्वे हि दृश्यतेऽनुपतन्मुखम् ॥ १ ॥

न स्यादव्यङ्गता तस्मिन्स्तत्क्रियाजन्यतापि वा ।

३५

न चास्योच्चारणादन्या विद्यते जनिका क्रिया ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१५-२१७]

तदप्यचारः; भ्रान्तेनाऽभ्रान्तस्य व्यभिचाराऽयोगात् । शब्दे हि महत्त्वादिप्रत्ययोऽभ्रान्तो बाधवर्जितत्वादित्युक्तम् । मुखे तु भ्रान्तो विपर्ययात् । न चान्यस्य भ्रान्तत्वेऽन्यस्यापि तत्, अन्यथा सकलशून्यतातुषङ्गः—स्वभादिप्रत्ययवत्सकलप्रत्ययानां भ्रान्ततापत्तेः । न च खड्गे प्रतिविम्बितदीर्घतया मुखमेवाऽऽ-
भाति दर्पणे तु वर्तुलतया गौरनीले काचे नीलतया; किन्तु तदा-
कारस्तात्र प्रतिविम्बितस्तद्धर्मानुकारी प्रतिभाति । न च शब्दस्या-
प्याकारो ध्वनौ, ध्वनेर्वा शब्दे प्रतिविम्बितस्तद्धर्मानुकारी भवती-
त्यभिधातव्यम् । शब्दस्याऽमूर्तत्वेन मूर्ते ध्वनौ तत्प्रतिविम्बना-
ऽसम्भवात् । मूर्तानामेव हि मुखादीनां मूर्ते दर्पणादौ तत्प्रति-१०
विम्बनं दृष्टं नाऽमूर्तानामात्मादीनाम् । न चाऽभ्रोत्रग्राह्यत्वे ध्वनेः
प्रतिविम्बितोऽप्याकारः भ्रोत्रेण ग्रहीतुं शक्योऽतिप्रसङ्गात् । तद्ग्रा-
ह्यत्वे वा अपरशब्दकल्पना व्यर्थेत्युक्तम् ।

यच्चाप्युक्तम्—

“यथा महत्यां खातायां मृदि व्योम्नि महत्त्वधीः । १५

अल्पायामल्पधीरेवमत्यन्ताऽकृतके मतिः ॥

तेनात्रैवं परोपाधिः शब्दवृद्धौ मतिर्भ्रमः (मतिभ्रमः) ।

न च स्थूलत्वसूक्ष्मत्वे लक्ष्येते शब्दवर्तिनी ॥”

[मी० खो० शब्दनि० खो० २१७-२१९]

तदप्यसमीचीनम्; व्योम्नोऽतीन्द्रियत्वेन महत्त्वादिप्रत्ययवि-२०
षयत्वायोगात् । तद्योगे चाल्पया खातयाऽवष्टुब्धो व्योमप्रवे-
शोऽल्पो महत्या च महानिति नाऽनेनाऽनेकान्तः । निरवयवत्वे
हि तस्याणुवद्व्यापित्वासम्भवः, अत्यन्ताकृतकत्वेन च क्रमयौ-
गपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोध इति वक्ष्यते । तथा शब्दस्यापि
सावयवत्वाम्युपगमे— २५

“पृथग् न चोपलभ्यन्ते वर्णस्यावयवाः क्वचित् ।

न च वर्णेष्वनुस्यूता दृश्यन्ते तन्नुवत्पटे ॥ १ ॥

तेषामनुपलब्धेश्च न जाता लिङ्गतो गतिः ।

नागमस्तत्परश्चास्मिन्नाऽदृश्ये चोपमा क्वचित् ॥ २ ॥

न चास्यानुपपत्तिः स्याद्वर्णस्यावयवैर्विना । ३०

यथान्यावयवानां हि विनाप्यवयवान्तरैः ॥ ३ ॥

प्रत्यक्षेणावबुद्धश्च वर्णोऽवयववर्जितः ।

किञ्च स्याद्योमवच्छात्र लिङ्गं तद्गहिता मतिः ॥ ४ ॥”

[मी० खो० स्तोत्रवा० खो० ११-१४]

इति वचो विदधेत । ३५

यत्पुनरुक्तम्—‘व्यञ्जकध्वन्यधीनत्वात्तद्देशे स च गृह्यते’
इत्यादि; तत्र कुतो ध्वनयः प्रतिपन्ना येन तदधीना शब्दश्रुतिः
स्यात्? प्रत्यक्षेण, अनुमानेन, अर्थापत्त्या वा? प्रत्यक्षेण
चोक्तिं श्रोत्रेण, स्पर्शनेन वा? न तावच्छ्रोत्रेण; तथा प्रतीत्यमा-
५ यात् । न खलु शब्दवत्तत्र ध्वनयः प्रतिभासन्ते विप्रतिपत्त्यभाव-
प्रसङ्गात् । तत्र ध्वनिप्रतिभासे चापरशब्दकल्पनावैयर्थ्यमि-
त्युक्तम् । अथ स्पर्शनप्रत्यक्षेण ते प्रतीयन्ते—स्वकरपिहितवदनौ
हि वदन् स्वकरसंस्पर्शनेन तान्प्रतिपद्यते, वदतो मुखाग्रे स्थित-
तूलादेः प्रेरणोपलम्भादनुमानेनेति; तदप्यसाम्प्रतम्; वायुवत्ता-
१० त्वादिद्व्यापारानन्तरं कर्माशानामप्युपलम्भेन शब्दाभिव्यञ्जकत्व-
प्रसङ्गात् । चक्रवक्त्रप्रदेश एवैषां प्रक्षयेण श्रोतृश्रोत्रप्रदेशे गम-
नाभावात् तत्; इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि वायवोपि तत्र
गच्छन्तः समुपलभ्यन्ते । शब्दप्रतिपत्त्यन्यथानुपपत्त्या प्रतिपत्ति-
रूपभयत्रसमाना । यथा च स्तिमितभाविणो न कर्माशोपलम्भ-
१५ स्तथा वायूपलम्भोपि नास्ति । स्तिमितस्य कल्पनमुभयत्र समा-
नम् । तत्र प्रत्यक्षेणानुमानेन वा तत्प्रतिपत्तिः ।

अथार्थापत्त्या तेषां प्रतिपत्तिः; तथाहि—शब्दस्तावन्नित्यत्वा-
ज्जोत्पद्यते संस्कृतिरेव तु क्रियते । सा च विशिष्टा नोपपद्येत
यदि ध्वनयो न स्युः । तदुक्तम्—

- २० “शब्दोत्पत्तेर्निषिद्धत्वादन्यथानुपपत्तितः ।
विशिष्टसंस्कृतेर्जन्म ध्वनिभ्यो व्यवसीर्यते ॥ १ ॥
तद्भावमाविता चात्र शक्त्यस्तित्वावबोधिनी ।
श्रोत्रशक्तिवदेवेष्टा बुद्धिस्तत्र हि संहृता ॥ २ ॥
कुण्ठादिप्रतिबन्धोपि युज्यते मार्तरिध्वनः ।
२५ श्रोत्रादेरभिधातोपि युज्यते तीव्रवर्त्तिना ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२६-१२९]

इति, तत्र केयं विशिष्टा संस्कृतिर्नाम—शब्दसंस्कारः, श्रोत्र-
संस्कारः, उभयसंस्करो, वा? परेण हि त्रेधा संस्कारोऽभ्युप-
गम्यते । स च—

१ शब्दस्य अभिव्यक्तिः । २ निधीयते । ध्वनयः सन्ति शब्दसंस्कारान्य-
थानुपपत्तेरिति । ३ तद्भावमानित्वमसिद्धमित्युक्ते जाह बुद्धिरिति । बुद्धिः—अलक्ष-
बुद्धिः । ४ नियता । ५ शब्दसामूर्तत्वे कुण्ठादिप्रतिबन्धो न स्वाच्छ्रोत्राभिधातो वा
न स्वादित्युक्ते जाह । ६ शब्दव्यञ्जकवायोः । ७ शब्दव्यञ्जकवायुना । ८ ध्वनेः
सकृदाप । ९ मीमांसकेन ।

“स्याच्छब्दस्य हि संस्कारादिन्द्रियस्योभयस्य वा ।”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ५२]

“स्थिरवाच्यपनीत्या च संस्कारोऽयं भवन्मवेत् ।”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६२]

इत्यभिधानात् ।

५

तत्राद्ये पक्षे कोऽयं शब्दसंस्कारः-शब्दस्योपलब्धिः, तस्यात्म-
भूतः कश्चिदतिशयः, अनतिशयव्यावृत्तिर्वा, स्वरूपपरिपोषो वा,
व्यक्तिसमवायो वा, तद्ग्रहणापेक्षग्रहणता वा, व्यञ्जकसन्निधान-
मात्रं वा, आवरणविगमो वा स्यात् ? यदि शब्दोपलब्धिः, कथ-
मसौ ध्वनीनां गमिका शब्दे भोजमात्रभावेत्वात्तस्याः ? तथाप्य-१०
न्यनिमित्तकल्पने हेतूनामनवस्थितिः स्यात् ।

तस्यात्मभूतः कश्चिदतिशयोऽनतिशयव्यावृत्तिर्वा इत्यत्रापि
अतिशयो दृश्यस्वभाव एव, अनतिशयव्यावृत्तिस्त्वदृश्यस्वभावस्व-
ण्डनमेव । ते चेत्ततोऽन्ये, तत्करणेऽपि शब्दस्य न किञ्चित्कृतमिति
तदवस्थाऽस्याऽश्रुतिः । अथाऽन्ये, तदा शब्दस्यापि कार्यतया १५
अनित्यत्वानुषङ्गः । यो हि यस्मादसमर्थस्वभावपरित्यागेन समर्थ-
स्वभावं लभते स चेन्न तस्य जन्यः, केदानीं जन्यताव्यवहारः ?
न च समर्थस्वभाव एव जन्यो न शब्दः इत्यभिधातव्यम् ;
तस्याऽतो विरुद्धधर्माभ्यासतो भेदानुषङ्गात् । तत्र चोक्तो दोषः ।

भोजप्रदेशे एव चास्य संस्कारे तावन्मात्रक एव शब्दः, २०
न सर्वगतः स्यात् । तस्यैवान्येन तद्विपर्ययेणैवस्थाने दृश्याऽऽ-
दृश्यत्वप्रसङ्गात् निर्देशैत्वव्याघातो विप्रतिपत्त्यभावश्चास्यै परि-
णामित्वप्रसिद्धेः । यदसौभिः ‘आवणस्वभावविनाशोत्पत्तिर्म-
त्पुद्गलैर्द्रव्यम्’ इत्यभिधीयते तद्युष्माभिः ‘वैर्णः’ इत्याख्यायते ।
यौ च आवणस्वभावोत्पादविनाशौ शब्दोत्पादविनाशा- २५
वसौभिरिष्टौ तौ युष्माभिः शब्दाभिव्यक्तिरोभावाविति नास्त्रैव

१ शब्दस्य । २ नियमाभावः । ३ शब्दस्य । ४ तस्य=अतिशयस्य अनति-
शयव्यावृत्तेर्वा । ५ शब्दस्य । ६ शब्दात् । ७ ध्वनेः । ८ असमर्थस्वभावः=
पूर्वगतः (शब्दाप्राकव्यम्) । ९ अति तु न कापीत्यर्थः । १० शब्दस्य ।
११ भोजप्रदेशादन्यत्र । १२ स्वभावस्य जन्मता शब्दस्य त्वजन्यतेति भेदे ।
१३ सर्वगतत्वे च शब्दस्य । १४ शब्दस्य । १५ जैनेः । १६ पुद्गले यत्र आवण-
स्वभावोत्पत्तये वक्ष्यति च । १७ तदेव शब्दः । १८ मीमांसकैः । १९ शब्द-
रूपः । २० जैनेः । २१ मीमांसकैः ।

विवादो नार्थे । इदयेतररूपता चैकस्य ब्रह्मत्वात् समर्थयते तद्वेषेतनेतररूपतयान्येकस्याऽवस्थित्यविरोधात् । घटादेरपि चैवं 'सर्वगतत्वानुपपन्नः'—'सोपि हि दृष्टप्रदेशे दृश्योऽन्यत्र चादृश्यः' इति वदतो न वषट्त्रं वक्रीभवत् । सर्वत्र चास्य संस्कारे सर्व-
५ दोषलब्धिः स्यात्, न वा कचित्कदाचित् विशेषोभावात् ।

स्वरूपपरिपोषः संस्कारोस्य, इत्यप्यऽचर्वितामिधानम्; नित्यस्य स्वभावान्यथाकरणाऽसम्भवात् । करणे वा स्वभावाति-
शयपक्षभावी दोषोऽनुपपद्यते ।

नापि व्यक्तिमवायः, वर्णस्य व्यक्त्यऽसम्भवात्, अन्यथा
१० सामान्यात्कोस्य विशेषः ? अत एव न तद्ब्रह्मणापेक्षग्रहणता ।

नापि व्यञ्जकसन्निधानमात्रम्; सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रति-
पचुभिः सर्ववर्णानां ग्रहणप्रसङ्गात् । ननु प्रतिनियतेन ध्वनिना
प्रतिनियतो वर्णः संस्कृतः प्रतिनियतेनैव प्रतिपन्ना प्रतीयते
तथैव सामर्थ्यात् । उक्तं च—

१५ “विषयस्यापि संस्कारे तेनैकस्यैव संस्कृतिः ।

नरैः सामर्थ्यमेवाद्य न सर्वैरवगम्यते ॥ १ ॥

यथैवोत्पद्यमानोयं न सर्वैरवगम्यते ।

दिग्देशाद्यविभागेन सर्वान्प्रति भवन्नपि ॥ २ ॥

तथैव यत्समीपस्थैर्नादैः स्याद्यस्य संस्कृतिः ।

२० तैरेव श्रूयते शब्दो न दूरस्थैः कथञ्चन ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८३-८६] इति ।

तदप्यपेशलम्; तेषां तदुपलम्भाऽसामर्थ्ये सर्वदाऽनुपलम्भ-
प्रसङ्गाद्विपरिवत् । यदा तत्समीपस्थैर्व्यञ्जकैर्व्यज्यतेऽसौ तदा
तैरेवोपलभ्यते इत्यप्यसुन्दरम्; यतस्तेषां व्यञ्जकैः किं क्रियते
२५ येन ते तैर्नियमेनापेक्षन्तेऽकिञ्चित्करेऽपेक्षाऽसम्भवात् ? तद्ब्रह्मे
योग्यतेति चेत्; किमात्मनः, शब्दस्य, इन्द्रियस्य वा ! आद्यविक-
ल्पद्वये सर्ववोपलम्भोऽनुपलम्भो वा स्यात् । इन्द्रियसंस्कारस्तु
निराकरिष्यते ।

१ (एकस्यैव शब्दस्य इत्यत्रादृश्यत्वरूपतास्वीकारादद्वैतं तिष्ठतीत्यर्थः) ।

२ ब्रह्मवादसमर्थने हेतुमाह । ३ द्वितीयपक्षोपपत्त्यर्थम् । ४ संस्कृतत्वेन । ५ ध्वनिभिः ।

६ स स्वभावज्ञातो भिन्नोऽभिन्नो वा ? भिन्नमेव तैर्ध्वनिभिः शब्दस्य कारण-
इत्यादिः । ७ अन्यथा=शब्दस्य व्यक्तिरूपे सामान्यत्वादिरूपवाप्रसङ्गोपि सादित्वार्थः ।

८ तस्य=शब्दसंस्कारस्य । ९ शब्दस्य ।

यदप्युक्तम्—यथैवोत्पद्यमानोऽयमित्यादि। तदप्यसङ्गतम्; न हि दिगीद्यपेक्षयाऽसौभिस्तद्ग्रहणमिष्यतेऽपि तु श्रवणान्तर्गतत्वेन । अतो यस्यैव श्रवणान्तर्गतो यः शब्दः स तेनैव गृह्यते । सर्वगतवर्णपक्षे तु नायं परिहारो निखिलवर्णानां सकलप्रतिपक्षश्रवणान्तर्गतत्वेन तथैवोपलम्भप्रसङ्गात् । ५

आवरणविगमः शब्दसंस्कारः; इत्यप्यसत्यम्; यतः प्रमाणा-
न्तरेण शब्दसङ्गावे सिद्धे तस्यावरणं सिद्ध्येत् स्पर्शनप्रत्यक्ष-
प्रतिपक्षे घटेऽन्धकारादिवत् । न चासौ सिद्धः । तत्कथमस्या-
वरणम् ? नित्यस्याऽस्याऽनाघेयाऽग्रहेयाऽतिशयात्मतयाऽस्या-
किञ्चित्करत्वाच्च । न चाऽकिञ्चित्करः कस्यचिदावरणमतिप्रस- १०
ङ्गात् । उपलब्धिप्रतिषन्धकारणात्तच्चेत्; न, तज्जननैकस्वभावस्य
तदयोगात् । न हि कारणाऽक्षये कार्यक्षयो युक्तस्तस्याऽतत्कार्य-
त्वप्रसङ्गात् । कथमेवं कुल्यादयो घटादीनामाधारका इति चेत्;
तज्जनकस्वभावखण्डनात् । कथमन्यस्योपलब्धिं जनयन्तीति
चेत् ? तं प्रति तत्स्वभावत्वात् । कथमेकस्योभयरूपता ? इत्यप्य- १५
चोद्यम्; तथा दृष्टत्वात् । शब्दस्यापि स्वभावखण्डनेऽनित्यते-
त्युक्तम् ।

सर्वगतत्वे चास्याभियमाणत्वायोगः । आचार्या हि येना-
भियते तदाधारकम्, यथा पटो घटस्य । शब्दस्त्वाधारक-
मध्ये तद्देशे तत्पार्श्वे च सर्वत्र विद्यमानत्वात्कथं केनचिदा- २०
भियेत ? प्रत्युत स एवाधारकः स्यात् । तद्वत्तदाधारकमपि सर्व-
गतमिति चेत्; न तर्ह्यधारकम् । न ह्याकाशमात्मादीनामा-
धारकम् । मूर्त्तत्वात्तदिति चेत्; न तर्हि सर्वगतं घटादिवत् ।

अथ यावज्ज्योमव्यापिनो बहव एवास्याधारकाः ते; किं सान्तराः;
निरन्तरा वा ? यदि सान्तराः; न तर्हि तस्यावरणम्, तन्मध्ये २५
तद्देशे तत्पार्श्वे च विद्यमानत्वात् । अथ स्वमाहात्म्यात्तथापि
स्वदेशे तदाधारकाः; तर्ह्यन्तराले तदुपलम्भप्रसङ्गः । तथा च
सान्तरा प्रतिपत्तिः प्रतिवर्णं खण्डशः प्रतिपत्तिश्च स्यात् । सर्वत्र
सर्वदा सर्वात्मना विद्यमानत्वान्न दोषश्चेत्; नैवम्; प्रतिप्रदेशमका-
रादिवद्भुत्वस्य भवत्यादिवैफल्यस्य चालुषङ्गात्, तदभावेऽप्यन्तराले ३०
उपलम्भप्रसम्भवात् । अथान्तरालेऽसन्तोष्याधारकाः; तर्ह्येकमेवा-
धारकं प्रदेशनियतं कल्पनीयं किं तद्वद्भुत्वेन ? अन्यत्राविद्यमानं

१ आदिना देशकालादिग्राहः । २ जनेः । ३ कल्पकादिर्थावाऽऽवरणं घटस्य ।
४ आचारकेण । ५ मूलपुस्तके 'अन्धका-' इति ।
प्र० क० मा० १९

कथमावारकमिति चेत्? अन्तरालवदिति ब्रूमः । तन्मते
सान्तराः । निरन्तरत्वे चैषाम् तद्वच्छब्दस्यापि निरन्तरत्वादा-
वार्यावारकभावः समान एवोभयत्र । अथ वस्तुस्वाभाव्यात्
स्तिमिता वायव एव तदावारकाः ननु दृष्टे वस्तुन्येतद्वक्तुं
५ शक्यम्, यथा दृष्टेऽग्नौ दाहकत्वेन 'वस्तुस्वाभाव्यादग्निर्दाहति न
जलम्' इत्युच्यते । न च तथाविधा वायवो दह्याः । नापि सन्
शब्दस्तैरावियमाणो येनैवं स्यात् । अहद्वकल्पनमुभयत्र समानम् ।
तत्र किञ्चित्तस्यावारकम् ।

अस्तु वा तत्, तथाप्यस्य कुतो विगमः? ध्वनिभ्यश्चेत्, न;
१० तत्सङ्गावावेदकप्रमाणप्रतिषेधतस्तेषामसत्त्वात् । सत्त्वे वा कुत-
स्तेषामुत्पत्तिः? तात्वादिव्यापाराच्चेत्, न; तद्वच्छब्दस्यापि
तद्व्यापारे सत्युपलम्भतस्तत्कार्यतानुषङ्गात् । ननु खननाद्यनन्तरं
व्योमोपलभ्यते, न च तत्कार्यमतोऽनैकान्तिकत्वम् । तदुक्तम्—

“अनैकान्तिकता तावद्धेतुनामिह कथ्यते ।

१५ प्रयत्नानन्तरं दृष्टिर्नित्येपि न विरुध्यते ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९]

“आकाशमपि नित्यं सद्यदा भूमिजलावृतम् ।

व्यज्यते तदपोहेन खननोत्सेचनादिभिः ॥ २ ॥

प्रयत्नानन्तरं ज्ञानं तदा तत्रापि दृश्यते ।

२० तेनानैकान्तिको हेतुर्यदुक्तं तत्र दर्शनम् ॥ ३ ॥

अथ स्थितिमन्येतदस्त्येवेत्यनुमीयते ।

शब्दोपि प्रत्यभिज्ञानात्प्रागस्तीत्यवगम्यताम् ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३०-३३]

तदप्यसङ्गतम्, ध्वनीनामप्येवं तात्वादिव्यापारकार्यत्वाभाव-
२५ प्रसङ्गात् । एकरूपता चाकाशस्याप्यसिद्धा; स्वविज्ञानजननैक-
स्वभावत्वे हि तस्य न खननाद्यनन्तरमेवोपलब्धिः किन्तु पूर्वमपि
स्यात् । तदस्वभावत्वे वा न कदाचनाप्युपलब्धिः स्याद्विशेषा-
भावात् । विशेषे वा एकरूपताव्याघातः । प्रत्यभिज्ञानाच्छब्दे
प्राक् सत्त्वसिद्धिश्च ध्वनावपि समाना 'य एव पूर्वमकारस्य
३० व्यञ्जको ध्वनिः स एव पश्चादपि' इति प्रतीतेः । तथा च व्यञ्जन-
स्यापि सर्वत्र सर्वदा सङ्गावे तात्वादिव्यापारवैफल्यं सर्वत्र सर्वदा
व्यङ्ग्यप्रतीतिश्च स्यात् । तत्र तात्वादिव्यापारकार्यता ध्वनीना-
मेव । अतः कथं तेषां सत्त्वमुत्पादकमाभावात् ?

१ जैनः । २ शब्दो वायोपवारकः कुतो न सादिति जैनेनोक्तं परः माह-
अद्वैतकल्पना सादिति । तस्योपरि जैनेनोच्यते ।

सन्तु वा ते, तथाप्यतः कचिदावरणविगमे विवक्षितवर्णवक्षि-
ल्लिवर्णोपलब्धिप्रसङ्गः, व्यापकत्वेन सर्वेषां तत्र सद्भावात्,
तथा च ध्वन्यन्तरस्य वैफल्यम् । ननु चाचार्याणामिवाचारकाणां
तद्वच्च तदपनेतृणां मेदस्तेनायमदोषः । उक्तञ्च—

“व्यञ्जकानां हि वायूनां मित्रावयवदेशता ।

५

जातिमेदश्च तेनैवं संस्कारो व्यतिष्ठते ॥ १ ॥

अन्यार्थं प्रेरितो वायुर्यथान्यं न करोति वः ।

तथान्यवर्णसंस्कारशक्तो नान्यं करिष्यति ॥ २ ॥

अन्यैस्तात्वादिसंयोगैर्वर्णो नान्यो यथैव हि ।

तथा ध्वन्यन्तराक्षेपो न ध्वन्यन्तरसारिभिः ॥ ३ ॥

१०

तस्मादुत्पत्त्यभिव्यक्तयोः कार्यार्थापत्तिः समः ।

सामर्थ्यमेदः सर्वत्र स्यात्प्रयत्नविवक्षयोः ॥ ४ ॥”

[मी० ग्लो० शब्दनि० ग्लो० ७९-८२]

तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; अमिन्नदेशेऽमिन्नेन्द्रियग्राह्ये चा-
चार्ये आवरणमेदस्याभिव्यञ्जकमेदस्य चाऽप्रतीतिः । न खलु १५
घटाशराबोदञ्चनादीनां तथाविधानामावरणव्यञ्जकमेदो दृष्टः,
काण्डपटादेरेकस्यैवावरणत्वस्य प्रदीपादेश्यैकस्यैवाभिव्यञ्जकत्वस्य
प्रसिद्धेः । तथा च प्रयोगः-शब्दाः प्रतिनियतावरणाचार्याः
प्रतिनियतव्यञ्जकव्यङ्ग्या वा न भवन्ति, समानदेशैकेन्द्रियग्राह्य-
त्वाद्, घटादिवत् । न चाऽऽचार्यवर्णानां देशमेदो युक्तः; व्यापक- २०
त्वाभावप्रसङ्गात् । देशमेदो हि परस्परदेशपरिहारेणावस्थाना-
त्यसिद्धो गोकुक्षरवत् । तथा चावरणमेदस्याऽसतः कथं जाति-
मेदप्रकल्पनं तदपनेतृजातिमेदप्रकल्पनं च भ्रयो यतो ‘जाति-
मेदश्च’ इत्यादि शोभेत् ।

नन्वेकेन्द्रियग्राह्यस्यापि व्यङ्ग्यस्य व्यञ्जकमेदो दृष्टः, यथा २५
भूमिगन्धस्य जलसेकः न शरीरगन्धस्य । अस्यापि भरीचिचक्र-
सहायसैलाभ्यङ्गो न भूमिगन्धस्येति । सत्यं दृष्टः; स तु विषय-
संस्कारकस्य व्यञ्जकस्य, न त्वावरणविगमहेतोः । नैव वा गन्ध-
स्याभिव्यञ्जका जलसेकादयोऽपि तु कारकाः, तत्सहकारिणः
पृथिव्यादेर्विशिष्टस्य गन्धस्योत्पत्तेः पूर्वं तत्र तत्सद्भावावेदक- ३०
प्रमाणाभावात् । कारकाणां चैकेन्द्रियग्राह्ये समानदेशे च कार्यं
नियमो दृष्टः । यद्येकत्र स्थिता अपि यवबीजादयो न सर्वे
शाल्यङ्कुरं यवाङ्कुरं चोत्पादयन्ति, किन्तु शालिबीजमेव शाल्यङ्कुरं
यवबीजं च यवाङ्कुरम् इति ।

एतेन 'अन्यैस्तात्वादिसंयोगैः' इत्यादि निरस्तम्; कथम्? ध्वन्यन्तरसारिभिस्तात्वादिर्येद्यपि ध्वन्यन्तराक्षेपो नास्ति तथापि य एव तैराक्षिप्यते तत एव सर्ववर्णश्रुतेर्ध्वन्यन्तराक्षे-
पपक्षदोषस्तदवस्थः । तन्न शब्दसंस्कारोभिव्यक्तिर्घटते ।

५ अथेन्द्रियसंस्कारोसौ । तदुक्तम्—

“अथापीन्द्रियसंस्कारः सोप्यधिष्ठानदेशतः ।

शब्दं न ओष्यति ओत्रं तेनाऽसंस्कृतशङ्कुलि ॥ १ ॥

अप्राप्तकर्णदेशत्वाद्भूनेर्न ओत्रसंस्किया ।

अतोऽधिष्ठानमेदेन संस्कारनियमस्थितिः ॥ २ ॥”

१० [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६९-७०]

“यद्यपि व्यापि चैकं च तथापि ध्वनिसंस्कृतिः ।

अधिष्ठानेषु सा यस्य तच्छब्दं प्रतिपत्स्यते ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६८] इति ।

अत्रापि संस्कृतसंस्कृतं ओत्रं युगपत्सर्ववर्णान् शृणुयात् ।
१५ न ह्यञ्जनादिना संस्कृतं चक्षुः सन्निहितं नीलधवलदिकं कञ्चि-
त्पश्यति कञ्चिन्नेति । बलतैलादिना संस्कृतं ओत्रं वा काञ्चिदेव
गकारादीन् शृणोति काञ्चिन्नेतीति नियमो दृष्टो येनात्रापि तथा
कल्पना स्यात् ।

ततो निराकृतमेतत्—

२० “तथा(यथा)घटादेर्दीपादिरभिव्यञ्जक इष्यते ।

चक्षुषोऽनुग्रहादेवं ध्वनिः स्याच्छ्रोत्रसंस्कृतेः ॥ १ ॥

न चा(च)पर्यनुयोगोत्र केनाकारेण संस्कृतिः ।

उत्पत्तावपि तुल्यत्वाच्छक्तिस्तत्राप्यतीन्द्रिया ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ४२-४३] इति ।

२५ प्रदीपादिनानुगृहीतचक्षुषा घटाद्यनेकार्थग्रहणवत् ध्वन्यनु-
गृहीतश्रोत्रेणाप्येकदानेकशब्दग्रहणप्रसङ्गात् । प्रयोगः-श्रोत्र-
मेकेन्द्रियग्राह्याभिचक्षेदेवावस्थितार्थग्रहणाय प्रतिनियतसंस्कारक-
संस्कार्यं न भवति इन्द्रियत्वाच्चक्षुर्वत् । तन्न श्रोत्रसंस्कारोप्यभि-
व्यक्तिर्घटते ।

३० अस्तु तर्ह्युभयसंस्कारः । न चात्रोक्तदोषालुषङ्गः । तदुक्तम्—

“द्वयसंस्कारपक्षे तु वृथा दोषद्वये वचः ।

येनान्यतरवैकल्यात्सर्वैः सर्वो न गृह्यते ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८६]

उदप्ययुक्तम्; उक्तदोषादेव, तथाहि-यदैकवर्णग्राहकत्वेन संस्कृतं श्रोत्रं संस्कृतं वर्णं प्रतिपद्यते तदा तत्रत्यसर्ववर्णान्प्रतिपद्येत संस्कृतं च वर्णं सर्वत्र सर्वदाऽवस्थितत्वेन, अन्यथा तत्प्रतीतिरेव न भवेत्तदात्मकत्वात्तस्य । अतो व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावस्य विचार्यमाणस्याऽयोगान्न व्यञ्जकध्वन्यधीनो विभिन्नदेशकालस-^५ भावतया शब्दस्योपलम्भोऽपि तु तत्त्वभावसेदनिवन्धनः ।

यञ्चोक्तम्-‘जलपात्रेषु च’ इत्यादि; तदप्यसाम्प्रतम्; तत्रोपलभ्यमानस्यादित्यप्रतिविम्बस्यानेकत्वात् । ‘गगनतलावलम्बी हि सविता तत्रोपलभ्यते’ इत्यत्र न प्रत्यक्षं प्रमाणं तत्स्वरूपाप्रतिभासनात् । तस्य हि स्वरूपं गगनतलावलम्बि चैकं च, तन्नाव-^{१०} भासते । यञ्चावभासि जलपात्रावलम्बि चानेकं च, तद्वृक्षच्छायादिवद्वस्त्वन्तरमेव । न चान्यप्रतिभासेऽन्यप्रतिभासो नामाऽतिप्रसङ्गात् । न च जलभानोर्गगनभानुना सादृश्यादेकत्वम्; कमनीयकामिनीनयनयोरपि तत्प्रसङ्गात् । नापि तद्विकारे जलभानुविकारादेकत्वम्; वृक्षच्छाययोरपि तत्प्रसङ्गात् । ^{१५}

ननु तत्र तत्प्रतिविम्बानां वस्त्वन्तरत्वे कुतः प्रादुर्भावः स्यादिति चेत्? जलादित्यादिलक्षणस्वसामग्रीविशेषात् । तर्हि स्वच्छताविशेषसद्भावाज्जलादर्शादयो मुख्यादित्यादिप्रतिविम्बाकारविकारधारिणः कस्माच्च सर्वदोषलभ्यन्ते इति चेत्? स्वसामग्र्यऽभावतोऽभावाच्छब्दसुखादिवत् । कश्चिद्दि विकारः सहकारिनि-^{२०} वृत्तावप्यनिवर्त्तमानो हैष्टो यथा घटादिः, कश्चित्तु निवर्त्तमानो यथा शब्दादिः, अचिन्त्यशक्तित्वाद्भावानाम् । तैत्त्व्यादिव्यापारसहकारिनिवृत्तौ हि पुद्गलस्य श्रावणस्वभावव्यावृत्तिः । जग्वनितानिवृत्तौ चाल्हादनाकारव्यावृत्तिरात्मनः सकलजनप्रसिद्धा, एवमादित्यादिसहकारिनिवृत्तौ जलादेस्तत्प्रतिविम्बाकारनिवृ-^{२५} त्तिरविरुद्धा ।

ततो निराकृतमेतत्-‘अत्र ब्रूयो यदा तावज्जले सौर्येण’ इत्यादि; स्वप्रदेशस्थतया सवितुर्ग्रहणासिद्धेः । ‘चाक्षुषं तेजः प्रतिस्रोतः प्रवर्त्तितम्’ इति चातीवाऽसङ्गतम्; प्रमाणाभावात् । न हि चक्षुस्तेजांसि जलेनाभिसम्बन्ध्य पुनः सवितारं प्रति प्रवर्त्तितानि ^{३०} प्रत्यक्षादिप्रमाणतः प्रतीयन्ते । यथा च चक्षुरङ्गीनां विषयं प्रति

१ मुख्यादिप्रतिविम्बाकारस्य । २ चक्षुषीवरदि । ३ उत्पत्तेरुत्तरकाळे । ४ नादिना सुखम् । ५ कथम् । ६ शब्दरूपस्य । ७ व्यापुष्टयम् । ८ यस्याद्वस्त्वन्तरत्वं सिद्धं प्रतिविम्बानाम् । ९ पुनः । १० सौर्येण तेजसा । ११ घटादिपदार्थम् ।

प्रवृत्तिर्नास्ति तथा चक्षुरप्राप्यकारित्वप्रघट्टके प्रतिपादितम् ।
इत्यलमतिविस्तरेण ।

यश्चान्यदुक्तम्—‘देशभेदेन भिन्नत्वम्’ इत्यादि; तदप्यसारम्;
यतो यदि प्रत्यक्षमेवानुमानस्य बाधकं नानुमानं प्रत्यक्षस्य; तर्हि
५ चन्द्रार्कादौ स्वैर्याध्यक्षं देशादेशान्तरप्राप्तिलिङ्गजनितगत्यनुमानेन
बाध्यं न स्यात् । अथास्य प्रत्यक्षरूपतैव नास्ति बाधितविषयत्वात्;
तत्प्रकृतेऽपि समानम्, लूनपुनर्जातनखकेशादिवत्सादृश्यप्रतीत्या
तैन्नानात्वप्रसाधकानुमानेन चाऽप्राप्येकत्वप्रतीतेर्बाधितविषय-
त्वाऽविशेषात् । अतोऽयुक्तमेतत्—

१० “स एवेति मतिर्नापि सादृश्यं न च तत्कंचित् ।

विनावयवसामान्यैर्वर्णैर्वैवयवैर् न च ॥”

[मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० १८] इति ।

अवयवसामान्यस्याप्यत्रात एव प्रसिद्धेः । तैनायुक्तमुक्तम्—
‘पर्यायेण’ इत्यादि; देवदत्ते हि ‘स एवायम्’ इति प्रत्ययः, अत्र
१५ तु ‘तेर्नानेन चायं सदृशः’ इति । न च सदृशप्रत्ययादेकत्वम् ।
गोर्गवययोरपि तत्प्रसङ्गात् । यद्यप्युच्यते—

“जैनर्कापिलनिर्विष्टं शब्दश्रोत्रादिसर्पणम् ।

साधीयोऽस्मात्तदप्यत्रै युक्त्या नैवावतिष्ठते ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०६]

२० जैनेन हि निर्विष्टं श्रोतारं प्रति शब्दस्य सर्पणं कापिलेन तु
वक्तारम् । श्रोत्रैर्देयत्तदेव साधीयोऽस्मान्नेयाधिकोपकल्पितात् ।
वीचीतैरङ्गन्यायेन शब्दस्यामूर्त्तस्यागमनात् । तदप्यत्र युक्त्या
नैवावतिष्ठते । यस्मात्—

“शब्दस्यागमनं तावदैवदृष्टं परिकल्पितम् ।

२५ मूर्त्तिरूपशोदिमत्त्वं च तेषामभिमतवः सताम् ॥ १ ॥

१ चक्षुरग्नीना विषयं प्रति गमननिराकरणेन । २ नापकम् । ३ प्राहि ।
४ स्वैर्यलक्षणम् । ५ गकारे । ६ कथम् । ७ गकार । ८ गकारे । ९ सादृश्य-
प्रतीत्येकत्वप्रतीतेर्बाधितविषयत्वं यतः । १० स यवत्वं गकारादिः । ११ गकारादौ ।
१२ वर्णानां निरंशत्वात् । १३ अन्धाः । १४ तेन सदृशोर्गं गकारः । १५ वर्णेन ।
१६ वर्णः । १७ अन्यथा । १८ मीमांसकेन । १९ साङ्ख्य । २० ज्ञेयः ।
२१ अत्रे वक्ष्यमाणात् । २२ जगति वर्णेषु वा । २३ मीमांसकस्य । २४ गमनम् ।
२५ छहरी । २६ कुतः । २७ प्रत्यक्षादिप्रमाणेनाप्राप्तीतिकम् । २८ कुत्वादिना
तिरोभावः ।

त्वगग्राह्यत्वमन्ये च भागाः सूक्ष्माः प्रकल्पिताः ।
 तेषामदृश्यमानानां कथं च रचनार्कर्मः ॥ २ ॥
 क्रीडशास्त्रचनानामेदाद्वर्णमेदश्च जायताम् ।
 द्रवित्वेन विना चैषां संश्लेषः (संश्लेषः) कल्प्यते कथम् ॥ ३ ॥
 आगच्छतां च विश्लेषो न भवेद्वायुना कथम् । ५
 लघवोऽर्चयवा ह्येते निबन्धा न च केनचित् ॥ ४ ॥
 वृक्षाद्यभिहतानां च विश्लेषो लोष्टवद्भवेत् ।
 एकश्चोत्रप्रवेशे च नान्येषां स्यात्पुनः श्रुतिः ॥ ५ ॥
 न चावार्तरवर्णानां नानात्वस्यास्ति कारणम् ।
 न चैकैस्यैव सर्वास्तु गमनं दिक्षु योज्यते ॥ ६ ॥ १०
 [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०७-११२]

इत्यादि । तद्व्यञ्जकवैयव्यागमनेपि समानम् । शक्यते हि शब्द-
 स्थाने वायुं पठित्वा 'वायोरागमनं तावददृष्टं परिकल्पितम्'
 इत्याद्यभिधातुम् ।

किञ्च, अदृष्टकल्पनागौरवदोषो भवित्पक्ष एवानुवज्यते, १५
 तथाहि-शब्दस्य पूर्वापरकोट्योः सर्वत्र च देशेऽनुपलभ्यमानस्य
 सत्त्वम्, तस्य चावारकाः स्तिमिता वायवः प्रमाणतोऽनुपलभ्य-
 मानाः कल्पनीयाः, तदपनोदकार्क्ष्ण्ये, तेषां शक्तिनानात्वं कल्प-
 नीयम्, नासौत्पक्षे । पौद्गलिकत्वं च यथावसरं गुणनिषेधप्रक्रमे
 प्रसाधयिष्यामः । तत्सिद्धं घटस्य चक्रादिव्यापारकार्यत्ववच्छब्दस्य २०
 तात्त्वादिव्यापारकार्यत्वमिति साधूक्तम्—'आप्तवचनम्' इत्यादि ।

नैव शब्दार्थयोः सम्बन्धासिद्धेः कथमाप्तप्रणीतोपि शब्दोऽर्थे
 ज्ञानं कुर्याद्यत आप्तवचननिबन्धनमित्यादि वचः शोभेतेत्याशङ्का-
 पनोदार्थम् 'सहजयोग्यता' इत्याद्याह—

सहजयोग्यतासङ्केतवशाद्धि शब्दादयः वस्तु- २५
 प्रतिपत्तिहेतवः ॥ १०० ॥

१ अवयवाः । २ अदृष्टाः । ३ रचना-नन्यः । ४ अदृष्टः । ५ भेदः ।
 ६ वर्णोत्पत्तौ । ७ शब्दानां पुद्गलरूपाणाम् । ८ जैनानाम् । ९ शब्दानां वायुर्ना
 च । १० जैनोक्ताः । ११ सम्बन्धाः । १२ कारणेन । १३ वर्णवायुत्पत्तौ ।
 १४ पुद्गलरूपार्णां वर्णानाम् । १५ एकस्य नरस्य । १६ मृणालम् । १७ अम्बापकः
 शब्दो जैनमते यतः । १८ मण्योत्पन्नानाम् । १९ नैयायिकस्य । २० गस्य ।
 २१ जैनस्य । २२ तात्त्वादिनवितशब्दाधिव्यञ्जकत्वेनः । २३ मीमांसकपक्षे ।
 २४ व्यञ्जकाः । २५ जैन । २६ सौगतः । २७ निराकरणार्थम् ।

सहजा स्वाभाविकी योग्यता शब्दार्थयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादक-
शक्तिः ज्ञानक्षेययोर्ज्ञाप्यज्ञापकशक्तिवत् । न हि तत्राप्यतो योग्य-
तातोऽप्यः कार्यकारणभावादिः सम्बन्धोस्तीत्युक्तम् । तस्यां सत्यां
सङ्केतः । तद्वशाद्धि स्फुटं शब्दादौ यो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ।

५ यथा मेवादयः सन्ति ॥ १०१ ॥

इति ।

ननु चासौ सहजयोग्यताऽनित्या, नित्या वा ? न तावदनित्या,
अनवस्थाप्रसङ्गादे-येन हि प्रसिद्धसम्बन्धेन 'अयम्' इत्यादिना
शब्देनाप्रसिद्धसम्बन्धस्य घटादेः शब्दस्य सम्बन्धः क्रियते
१० तस्याप्यन्येन प्रसिद्धसम्बन्धेन सम्बन्धस्तस्याप्यन्येनेति । नित्यत्वे
चास्याः सिद्धं नित्यसम्बन्धाच्छब्दानां वस्तुप्रतिपत्तिहेतुत्वमिति
मीमांसकोः, तेष्वतत्त्वज्ञाः, हस्तसंज्ञादिसम्बन्धवच्छब्दार्थसम्ब-
न्धस्यानित्यत्वेऽप्यर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वसम्भवात् । न खलु हस्तसंज्ञा-
दीनां स्वार्थेन सम्बन्धो नित्यः, तेषामनित्यत्वे तदाश्रितसम्बन्धस्य
१५ नित्यत्वविरोधात् । न हि भित्तिर्व्यपाये तदाश्रितं चित्रं न व्यैष-
तीत्यभिधीतुं शक्यम् ।

न चानित्यत्वेऽस्यार्थप्रतिपत्तिहेतुत्वं न दृष्टम्, प्रेक्षकविरो-
धात् । एवं शब्दार्थसम्बन्धेऽप्येतद्व्याच्यम्-स हि न तावदना-
श्रितः, नैवोपदर्शनाश्रितस्य सम्बन्धत्वाऽसम्भवात् । आश्रितश्रुतिक
२० तदाश्रयो नित्यः, अनित्यो वा ? नित्यश्चेत्, कोऽयं नित्यत्वे-
नाभिप्रेतस्तदाश्रयो नाम ? ज्ञातिः, व्यक्तीर्षी ? न तावज्ज्ञातिः,
तस्याः शब्दार्थत्वे प्रवृत्त्यर्थभावप्रतिपादनात्, निराकारिभ्यः-

३ न स्वाभाविकी । २ वाच्यवाचकसामर्थ्यम् । ३ अपरः । ४ पूर्व प्रथम-
परिच्छेदे । ५ अस्य शब्दस्यायमर्थः, अस्य गोशब्दस्य साक्षादिनामर्थ इति च ।
६ प्रायुक्तः । ७ आदिना हस्ताङ्गुलीसंज्ञाः । ८ उदाहरणे । ९ अन्यथा ।
१० कथम् ? तथा हि । ११ अर्थेन सह । १२ इदमित्यादिना च । १३ यथा
प्रसिद्धसम्बन्धेन घटशब्देन घट एव वाच्यस्तथाऽप्रसिद्धसम्बन्धेनापि घटशब्देन घट एव
वाच्य इति । १४ शब्देन । १५ वदन्ति । १६ आदिना नयनाङ्गुल्यादिसंज्ञाः ।
१७ विनाशे । १८ विनश्यति । १९ वक्तुम् । २० अन्यथा । २१ मलक्षणे सिद्धा
हस्तसंज्ञादयोऽनित्या यतः । २२ अनित्यहस्तसंज्ञादिसम्बन्धस्यार्थप्रतिपत्तिप्रतिपाद-
कत्वप्रकारेण । २३ तादिः । २४ वद्वमाणम् । २५ अन्यथा । २६ अमूर्तन-
भोवत् । २७ गगनस्य त्वमेव सम्बन्ध उपचारत एव, न तु साक्षात्तत्वाऽमूर्तत्वात् ।
२८ दृष्टः । २९ सामान्यम् । ३० विशेषः । ३१ यदा सामान्यरूपो शब्दार्थो
सम्बन्धस्य वाच्यवाचकरूपसाधारण्यतौ तदा तावेन विषयीकुर्याच्छब्द इति भावः ।
३२ आदिना निवृत्तिः । ३३ पूर्वम् ।

माणत्वाच्च । व्यक्तेस्तु तदाश्रयत्वे कथं नित्यत्वमनभ्युपगमा-
त्तथाप्रतीत्यभावाच्च । अनित्यत्वे च तदाश्रयत्वस्य सिद्धे तद्व्य-
पाये सम्बन्धस्यानित्यत्वं मित्तिव्यपाये चित्रवत् । ततोऽयुक्त-
मुक्तम्—

“नित्याः शब्दार्थसम्बन्धास्तत्रोद्घातो महर्षिभिः ।

५

सूत्राणां सानुतन्त्राणामाभ्यानां च प्रणेतृभिः ॥”

[वाक्यपदी० १।२३] इति;

सहशपरिणामविशिष्टस्यार्थस्य शब्दस्य तदाश्रितसम्बन्धस्य
वैकान्ततो नित्यत्वासम्भवात् । सर्वथा नित्यस्य वस्तुनः क्रम-
योगपद्याभ्यामर्थक्रियासम्भवतोऽसत्त्वं चाऽभ्यविषाणवत् । अन-१०
वस्थादूषणं चायुक्तमेव, ‘अयम्’ इत्यादेः शब्दस्यानादिपरम्पर्यो-
तोऽर्थमौत्रे प्रसिद्धसम्बन्धत्वात्, तेनावर्गतसम्बन्धस्य घटादि-
शब्दस्य सङ्केतकरणात् ।

नित्यसम्बन्धवादिनोपि चानवस्थादोषस्तुल्य एव—अनमित्य-
कसम्बन्धस्य हि शब्दस्याभिव्यक्तसम्बन्धेन शब्देन सम्यन्धा-१५
भिव्यक्तिः कर्तव्या, तस्याप्यन्येनाभिव्यक्तसम्बन्धेनेति । यदि
पुनः कस्यचित्सत् एव सम्बन्धाभिव्यक्तिः, अपरस्यापि सा
तथैवास्तीति सङ्केतक्रिया व्यर्था । शब्दविभेदाभ्युपगमे चात्र
सम्बन्धस्य नित्यत्वकल्पनया । कल्पने चाऽगृहीतसङ्केत-
स्याप्यतोऽर्थप्रतिपत्तिः स्यात् । सङ्केतस्य व्यञ्जकः, इत्यप्य-२०
युक्तम्, नित्यस्य व्यञ्ज्यत्वायोगात् । नित्यं हि वस्तु यदि व्यक्तं
व्यक्तमेव, अथाव्यक्तमप्यव्यक्तमेव, अभिन्नसंभावत्वात्तस्य ।
शब्दाभिव्यक्तिपक्षनिक्षिप्तदोषानुपपन्नश्चात्रापि तुल्य एव ।

१ चतुर्थपरिच्छेदे । २ नित्यवातेः । ३ सम्बन्धस्य । ४ परेण । ५ व्यक्तेर्नित्य-
त्वस्य । ६ व्यक्तिरूपस्य । ७ अनित्यः सम्बन्धो यतः । ८ सामान्य । ९ वाच्य-
वाचकलक्षणः । १० भीमासाया अन्ये । ११ अयमुपगताः । १२ विषमपदव्याख्या-
नमनुत्तरं तेन सह वर्तन्ते इति । तेषां सूत्राणाम् । १३ सर्वथा । १४ प्रवाहः ।
१५ पुरोगच्छिन्ननिर्धारितायै । १६ अर्थेन सह । १७ भीमासकस्य । १८ कथम् ।
१९ अर्थेन सह । २० अनवस्थापरिहारार्थम् । २१ नापरेण । २२ हेतोः ।
२३ पुरुषेण क्रियमाणा । २४ अयमित्यादिशब्दस्य सत् एव सम्बन्धः । घटादि-
शब्दस्य तु अयमित्यादिना शब्देनापरेण सम्बन्ध इति । २५ नित्यत्वस्य । २६ नुः ।
२७ सम्बन्धस्य नित्यत्वात् । २८ नित्यशब्दस्य । २९ सङ्केतेन । ३० एकसंभाव-
त्वात् । ३१ नित्यसम्बन्धानिव्यक्तौ अष्टविकल्पप्रकारेण ।

किञ्च, सङ्केतः पुरुषाश्रयः, स चातीन्द्रियार्थज्ञानविकलतया-
न्यथापि वेदे सङ्केतं कुर्यादिति कथं न मिथ्यात्वलक्षणमस्या-
प्रामाण्यम् ?

किञ्च, असौ नित्यसम्बन्धवशादेकार्थनियतः, अनेकार्थ-
नियतो वा स्यात् ? एकार्थनियतश्चेत्किमेकदेशेन, सर्वात्मना
वा ? सर्वात्मनैकार्थनियमे अर्थान्तरे वेदात्प्रतिपत्तिर्न स्यात्,
तैत्तिर्यास्याज्ञानलक्षणमप्रामाण्यम् । एकदेशेन चेत्, स किमे-
कदेशोऽभिमतैकार्थनियतः, अनभिमतैकार्थनियतो वा ? अनभि-
मतैकार्थनियतश्चेत्, कथं न मिथ्यात्वलक्षणमप्रामाण्यम् ? अभि-
मतैकार्थनियतश्चेत्किं पुरुषात्, स्वभावाद्वा ? प्रथमपक्षे अपौरुषे-
यत्वसमर्थनप्रयासो व्यर्थः । पुरुषो हि रागाद्यन्धत्वात्प्रति-
क्षिप्यते, तस्माच्चेद्वेदैकदेशोऽर्थनियमं प्रतिपद्यते, किमपौरुषेय-
त्वेन ? अनेकार्थनियमे च विरुद्धोप्यर्थः सम्भवेत्, तथा चार्थ-
मिथ्यात्वम् ।

१५ किञ्च, असौ सम्यन्ध ऐन्द्रियः, अतीन्द्रियः, अनुमानगम्यो वा
स्यात् ? न तावदैन्द्रियः, सेन्द्रिये स्वेन रूपेणाप्रतिभासमानत्वात् ।
अतीन्द्रियश्चेत्, कथं प्रतिपत्त्यङ्गं ज्ञापकस्य निश्चयापेक्षार्थं ?
संनिधिमात्रेण ज्ञापनेऽतिप्रसङ्गात् ।

अनुमानगम्यश्चेत्, न; लिङ्गभावात् । तस्य हि लिङ्गं ज्ञानम्,
२० अर्थः, शब्दो वा ? न तावज्ज्ञानम्, सम्बन्धासिद्धौ तत्कार्यत्वे-
नास्याऽनिश्चयात् । नार्थैर्थः, तस्य तेन सम्बन्धासिद्धेः । न हि
सम्बन्धार्थयोस्तादात्म्यम्, सम्बन्धस्यैतत्त्वानुषङ्गात् । नापि
तैदुत्पत्तिः, अनभ्युपगमात् । असम्बद्धश्चार्थः कथं सम्बन्धं ज्ञाप-
यत्यतिप्रसङ्गात् ? ज्ञापने वा शब्दा एवं सम्बन्धविकलाः किमर्थं
२५ न ज्ञापयन्त्यलं सिद्धोपस्थाधिना नित्यसम्बन्धेन ? तन्नार्थोपि

१ सर्वस्वरूपेण । २ पुरुषाणां । ३ वेदेनार्थान्तरप्रतिपत्त्यभावात् । ४ भीमास-
कस्य । ५ भीमासकैः । ६ वेदस्य । ७ द्वितीयपक्षे । ८ वेदस्य । ९ ऐन्द्रियविषयः ।
१० ओष्ठलोचनलक्षणे । ११ अज्ञाधारणरूपेण । १२ वाच्यवाचककसामर्थ्यात्ती-
न्द्रियत्वात् । १३ सम्बन्धस्य । १४ नाज्ञात् ज्ञापकं नाम । १५ शब्दार्थयोः सारूप्येण
सम्बन्धस्यार्थज्ञापने । १६ सम्बन्धमात्रेण । १७ भीमासकनित्योपगमादि बोधयेदिति ।
१८ सम्बन्धेन सहाविनाभाविलिङ्गस्य । १९ सम्बन्धोक्ति ज्ञानात् । २० सम्बन्धासिद्धे-
रिति खपुस्तकीयः पाठः । २१ सम्बन्धोक्ति अर्थात् । २२ कथम् । २३ अन्यथा ।
२४ कथं । २५ सम्बन्धाहुणरूपादर्थोत्पत्तिः । २६ सम्बन्धेन सह । २७ तथा
च स्वरविषाणं सम्बन्धं ज्ञापयतु । २८ असम्बन्धार्थेन । २९ सम्बन्धस्य ।

लिङ्गम् । नापि शब्दः, अर्थपक्षोक्तदोषानुपपन्नात् । ततो नित्यस-
म्बन्धस्य प्रमाणतोऽप्रसिद्धेर्न तद्वशादेदोऽर्थप्रतिपादकः ।

अथ स्वभावादेवासौ तत्प्रतिपादकः, तच्च, 'अयमेवास्माकमर्थो
नायम्' इति वैदेनानुक्तेः । तदुक्तम्—

“अयमर्थो नायमर्थ इति शब्दा वदन्ति न ।

५

कल्प्योयमर्थः पुरुषैस्ते च रागादिविमुक्ताः ॥ १ ॥”

[प्रमाणवा० ३।३१२]

इति । ततो लौकिको वैदिको वा शब्दः सहजयोग्यतासङ्केत-
वशादेवार्थप्रतिपादकोऽभ्युपगन्तव्यः प्रकारान्तरासम्भवात् ।

नेनु चार्थप्रतिपादकत्वमेवामसम्भाव्यम्, य एव हि शब्दाः १०
संत्यये दृष्टास्ते एवातीतानागतौ तदभावेपि दृश्यन्ते । यदभावे
च दृश्यते न तत्तत्प्रतिबद्धम् यथाऽश्वाऽभावेपि दृश्यमानो
गौर्न तत्प्रतिबद्धः, अर्थाभावेपि दृश्यन्ते च शब्दाः, तन्नैतेऽर्थप्रति-
पादकाः, किन्त्वन्योपोहमात्राभिधायकाः । तदप्यविचारितरमणी-
यम्, अर्थवतः शब्दात्तद्वहितस्यास्यान्यत्वात् । न चान्यस्य व्यभि- १५
चारेऽन्यस्याप्यसौ युक्तः, अन्यथा गोपालघटिकादिधूमस्याग्नि-
व्यभिचारोपलम्भात्पर्वतादिप्रदेशवर्तिनोपि स स्यात्, तथा च
कार्यहेतवे दृष्टो जलाञ्जलिः । सकलान्यता च, स्वप्नादिप्रत्ययानां
कैश्चिद्विज्रमोपलम्भतो निखिलप्रत्ययानां तत्प्रसङ्गात् । 'यत्नतः
परीक्षितं कौर्यं कौर्यं नातिवर्त्तते' इत्यन्यत्रापि समानम्—'यत्नतो २०
हि शब्दोर्थवत्त्वेतरस्वभावतया परीक्षितोर्थं न व्यभिचरति' इति ।
तथा चान्यापोहमात्राभिधायित्वं शब्दानां भ्रष्टामात्रगम्यम् ।

किञ्च, अन्यापोहमात्राभिधायित्वे प्रतीतिविरोधः—गैवादि-
शब्देभ्यो विधिकर्पोवसायेन प्रत्ययप्रतीतेः । अन्यनिषेधमौत्राभि-
धायित्वे च तत्रैव चरितार्थत्वात्साक्षादिमतोर्थस्यातोऽप्रतीतेः २५
तद्विषयाया गवादिबुद्धेर्जमकोन्यो नैरन्वेषणीयः । अयैकेनैव
गोशब्देन बुद्धिद्वयस्योत्पादान्न परो ध्वनिर्मुग्यः, न; ऐक्यस्य
विधेिकारिणो निषेधकारिणो वा ध्वनेर्युगपद्विज्ञानद्वयलक्षणफला-

१ सौगतः । २ विषयाने । ३ काले । ४ ना । ५ अपोहवत्त्वे व्यावर्त्यतेनेवा-
भावेनेति । ६ यव । ७ भिन्नत्वात् । ८ वृत्तात् । ९ परेण । १० कथम् ।
११ गर्भे । १२ वृत्तादि । १३ अन्यादि । १४ शब्दे । १५ कथम् । तथा हि ।
१६ व्यभिचारामावे च । १७ कुतः । १८ अस्तित्वरूपनिवृत्त्येव । १९ ज्ञानादि-
मदर्थस्य । २० जगवादिन्यादृष्टिः । २१ यव । २२ द्वितीयः । २३ शब्दः ।
२४ ध्वनेः । २५ गवाक्षिल । २६ जगवादिन्यादृष्टिः ।

नुपलम्भात् । विधिनिषेधज्ञानयोश्चान्योन्यं विरोधात् कथमेकस्या-
त्सम्भेदः ?

यदि च गोशब्देनागोशब्दनिवृत्तिर्मुख्यतः प्रतिपद्यते; तर्हि
गोशब्दश्रवणानन्तरं प्रथमतः 'अगौः' इत्येषा श्रोतुः प्रतिपत्ति-
५ भवेत् । न चैवम्, अतो गोबुद्धयनुत्पत्तिप्रसङ्गात् । तदुक्तम्—

“नन्वन्यापोर्द्वैक्यच्छब्दो युष्मत्पक्षेऽनुवर्णितः ।

निषेधमात्रं नैवेह प्रतिभासेऽवगम्यते ॥ १ ॥

किन्तु गौर्गवयो हस्ती वृक्ष इत्यादिशब्दतः ।

विधिरूपावसायेन मतिः शाब्दी प्रवर्तते ॥ २ ॥”

१०

[तत्त्वर्स० का० ९१०-११ पूर्वपक्षे]

“यदि गौरित्ययं शब्दः समर्थोऽर्थनिवर्तने ।

जनको गवि गोबुद्धि(द्वे)र्मुख्यतामपरो ध्वनिः ॥ ३ ॥

नैतु क्षीनफलाः शब्दा न चैकैस्य फलद्वयम् ।

अपवैवविधिज्ञानं फलमेकैस्य ध्वः कथम् ॥ ४ ॥

१५

प्रौर्गौरिति विज्ञानं गोशब्दध्वनिगो भवेत् ।

येनोऽगोः प्रतिषेधाय प्रवृत्तो गौरिति ध्वनिः ॥ ५ ॥”

[भामह्यालं० ६।७-१९]

किञ्च, अपोहलक्षणं सामान्यं वाच्यत्वेनोभिधीयमानं पर्युदास-
लक्षणं चाभिधीयेत, प्रसज्यलक्षणं वा ? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता-
२० यदेव ह्यगोनिवृत्तिलक्षणं सामान्यं गोशब्देनोच्यते भवेता-
तदेवास्मैभिर्गोत्वाख्यं भविलक्षणं सामान्यं गोशब्दवाच्यमित्य-
भिधीयेत, अभावस्य भावान्तरात्मकत्वेन व्यवस्थितत्वात् ।

कश्चायं भवतामश्वादिनिवृत्तिस्त्वभावो भावोऽभिप्रेतः ? न ता-
वदसाधारणो गवादिस्वलक्षणात्मा; तस्य सकलविकल्पगोचराति-

१ परस्परविरुद्धार्थप्रतिपादनविरोधात् । २ यत्र विधिविज्ञानं तत्र निषेधविज्ञानं
जाति । यत्र निषेधज्ञानं न तत्र विधिविज्ञानमिति । ३ बुद्धिद्वयस्य । ४ परेण सत्ता ।
५ अगोः निवृत्तेः पूर्वम् । ६ यत्र । ७ अस्यादिः । ८ अन्यथा । ९ गौरिति
बुद्धिस्तस्या अनुत्पत्तिः । १० तं करोतीति । ११ बौद्ध । १२ प्रतिपादितः ।
१३ गौरयमित्यसिद्धम् । १४ तर्हि कथं प्रतिभासः । १५ अर्थस्य । १६ अस्यादि ।
१७ तर्हि । १८ अवन्तु । १९ विधिनियेयज्ञान । २० शब्दस्य । २१ विधिनियेय-
लक्षणम् । २२ निषेध । २३ शब्दस्य । २४ बौद्धानाम् । २५ अगोनिवृत्तेः पूर्वम् ।
२६ अश्वः । २७ जनस्य । २८ कुतः । २९ गोशब्दस्वार्थत्वेन । ३० बौद्धमते ।
३१ कथम् । ३२ सौगतेन । ३३ जनैः । ३४ सत्ता । ३५ अगोनिवृत्तिलक्षणोऽ-
भावो भावान्तरेण गोत्वेन व्यवस्थिते । ३६ क्षणिकतिरंशनिवन्धनरूपः ।

क्रान्तत्वात् । नापि शाबलेयादिव्यक्तिविशेषः, असामान्यप्रसङ्गतः । यदि गोशब्दः शाबलेयादिवाचकः स्यात्तर्हि तस्यानन्वयोन स सामान्यविषयः स्यात् । तस्मात्सर्वेषु सजातीयेषु शाबलेयादिपिण्डेषु यत्प्रत्येकं परिसमाप्तं तन्निवचना गोबुद्धिः, तच्च गोत्वात्प्रमेव सामान्यम् । तस्याऽगोऽपोहशब्देनाभिधानाज्ञासमार्थं भिद्येत । उक्तञ्च—

“अगोनिवृत्तिः सामान्यं वाच्यं यैः परिकल्पितम् ।

गोत्वं वस्त्वेव तैरुक्तमगोपोहगिरा स्फुटम् ॥ १ ॥

भावान्तरात्मकोऽभावो येन सर्वो व्यवस्थितः ।

तैर्भावादिनिवृत्त्यात्मा भावः क इति कथ्यताम् ॥ २ ॥ १०

नेष्टोऽसाधारणस्तावद्विशेषो निर्विकल्पनात् ।

तथा च शाबलेयादिरसामान्यप्रसङ्गतः ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० १-३]

“तस्मात्सर्वेषु यद्वपुं प्रत्येकं परिनिष्ठितम् ।

गोबुद्धिस्तन्निमित्ता स्याद्गोत्वादप्यत्र नास्ति तत् ॥” १५

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० १०]

द्वितीयपक्षे तु न किञ्चिद्वस्तु वाच्यं शब्दानामिति अतोऽप्रवृत्तिनिवृत्तिप्रसङ्गः । तुच्छरूपाभावस्य चानभ्युपगमाच्च प्रसज्यप्रतिषेधाभ्युपगमो युक्तैः, परमतप्रवेशालुपज्ञात् ।

अपि च ये विभिन्नसामान्यशब्दैः गवाद्यो ये च विशेषशब्दाः २० शाबलेयादयस्ते भेदमिप्रायेण पर्यायाः प्रामुख्यन्तर्यभेदाभावाद्दक्षपादपादिशब्दवत् । न खलु तुच्छरूपाभावस्य भेदो युक्तः;

१ अन्यथा । २ सामान्यसापोहस्याभावोऽसामान्यं तस्य प्रसङ्गात् । ३ विशेष । ४ शाबलेयादिना । ५ गो शः शब्दः स स शाबलेयावर्षवाचक इति । ६ साक्षादि-
न्यम् । ७ अगोत्यावृत्तिः । ८ नावृत्तः । ९ गोशब्दस्य । १० सौगतेः । ११ गोत्वं
वस्त्वेनागोपोहगिरा उक्तम् । कुतस्तथा हि । १२ कारणेन । १३ पशुंदासपक्षे ।
१४ नेष्ट इति शेषः । १५ अन्यथा । १६ असाधारणशाबलेयवर्षं न वदते यस्मात् ।
१७ सकलगोम्यक्तिषु । १८ वर्तते । १९ सामान्यम् । २० प्रसज्यपक्षे ।
२१ प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च प्रवृत्तिनिवृत्तौ तयोरभावोऽप्रवृत्तिनिवृत्तौ तयोः प्रसङ्गः ।
२२ सौगतेः । २३ अन्यथा युक्तमेव । २४ नैयायिकादि । २५ सौगतस्य ।
२६ यतः । २७ अश्वशब्दगोशब्दादि । २८ सामान्यसामिधायकः । २९ नोदः ।
३० भवन्ति । ३१ सर्वेषां पदार्थानां तुच्छस्वरूपत्वं यतः । ३२ निःस्तभावस्य ।
३३ अपोहस्य ।

प्र० क० भा० ३७

वस्तुन्येव संस्पृष्टं (संसृष्टं) घृत्वैकत्वानानात्वादिविकल्पानां प्रतीतेः ।
मेदाभ्युपगमे वा अर्थावस्य वस्तुरूपतापत्तिः, तथाहि-ये परस्परं
मिथ्यन्ते ते वस्तुरूपा यथा खलक्षणानि, परस्परं मिथ्यन्ते
चाऽपोहो इति ।

- ५ न चापोहोऽलक्षणसम्बन्धिमेदादपोहोनां भेदः, प्रमेयाभिधेया-
दिशब्दानामप्रवृत्तिप्रसङ्गात्, तदभिधेयापोहानामपोहोऽलक्षणस-
म्बन्धिमेदाभावेतो भेदासम्भवात् । अत्र हि भेदकिञ्चिद्व्यवच्छेद्य-
त्वेन कल्प्यते तत्सर्वं व्यवच्छेद्योकारेणालम्ब्यमौनं प्रमेयादिसमा-
वमेवावतिष्ठते । न ह्यविषयीकृतं व्यवच्छेद्यं शक्यमतिप्रसङ्गात् ।
१० न च सम्बन्धिमेदो भेदः, अन्यथा बहुषु शावलेयादिव्यक्तिष्वे-
कस्याऽगोपोहस्याऽर्थावप्रसङ्गः । यस्य वान्तरङ्गाः शावलेयादि-
व्यक्तिविशेषा न भेदकाः 'तस्याऽश्वादयो भेदकाः' इत्यतिसाह-
सम् ! सम्बन्धिमेदाच्च वस्तुन्यपि मेदो नोपलभ्यते किमुता-
ऽवैस्तुनिः, तथाहि-देवदत्तादिकमेकमेव वस्तु युगपत्कमेव धाने-
१५ कैराभरणोदिमिरमित्सम्बन्ध्यमानमनासादितमेवमेवोपलभ्यते ।

भवतु वा सम्बन्धिमेदोऽद्वैदः, तथापि-वस्तुभूतसौमान्यानभ्युप-
गमे भवतां स एवापोहाभेदः सम्बन्धी न सिद्धिमासादयति यस्य
मेदात्तद्वैदः स्यात् । तथाहि-गर्वादीनां यदि वस्तुभूतं सौमन्यं
प्रसिद्धं भवेत्तदाश्वाद्यपोहाभयत्वमविशेषेणैषां प्रसिद्धेभ्योऽप्य-
२० भेदोऽपोहविषयत्वमेवामिच्छताऽवैद्यं सारूप्यमङ्गीकर्तव्यम् ।
तदेव च सामान्यं वस्तुभूतं भविष्यतीत्यपोहकल्पना वृथैव ।

१ न वृच्छरूपमावे । २ अन्ये सम्बन्धे । ३ आदिना प्रमेयत्वादि । ४ भेदा-
नाम् । ५ सीगतेः । ६ अपोहस्य । ७ तल्लक्षणत्वादस्तुत्वस्य । ८ कथम् ।
९ अभादिनिवृत्तयः । १० अपोहो व्यावर्त्ता अभादयः । ११ अभावानाम् ।
१२ अन्यथा । १३ अप्रमेयादि । १४ स्वरूप । १५ स्वरूपेय नास्ति यता ।
१६ प्रमेयादिशब्देभ्यः । १७ अप्रमेयादि । १८ व्यावर्त्तत्वेन । १९ व्यावर्त्ताकारेण ।
२० विषयीक्रियमाणम् । २१ कर्तृते । २२ व्यवच्छेद्यमप्रमेयादि । २३ परिच्छेद्यम् ।
२४ गगनकुसुममपि परिच्छेद्यं शक्यं स्यात् । २५ अपोहानाम् । २६ किञ्च
प्रतिव्यक्ति मिथ्य एव स्यात् । २७ अन्यभिन्नानि प्रतिनियतमन्तरङ्गम् । २८ अपोहे ।
२९ कटकुण्डलादिभिः । ३० सम्बन्धिभिः । ३१ अपोहस्य । ३२ परमार्थस्य ।
३३ गोत्वादिति । ३४ निवृत्तिः । ३५ सत् । ३६ सम्बन्धिनः । ३७ अपोहस्य ।
३८ अर्थानाम् । ३९ सद्रूपम् । ४० शावलेयादिषु । ४१ सावाम्भ्यम् ।
४२ गोत्वादिति । ४३ साधारणेन । ४४ सारूप्याभावे । ४५ सामान्यानभ्युपगमे
निषिद्धोऽपोहामयः सम्बन्धी न सिध्यति यता । ४६ सीगतेन । ४७ निषेधेन ।

यदि वाऽसत्यपि सारूप्ये शाबलेयादिष्वगोपोर्हकल्पना तदा
गवाश्वयोरपि कस्माच्च कल्प्येताऽसौ विशेषाभावात् ? तदुक्तम्—

“अथाऽसत्यपि सारूप्ये स्यादपोर्हस्य कल्पना ।

गवाश्वयोरयं कैसाद्गोपोहो न कल्प्यते ॥ १ ॥

शार्बलेयाश्च भिन्नत्वं बाहुलेयाश्वयोः संमम् ।

सार्भान्यं नान्यदिष्टं चेत्कागोपोहः प्रवर्त्तताम् ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० ७६-७७]

यथा च खलुर्क्षणादिषु^१ संमयासम्भवाच्च शब्दार्थत्वं^२ तथाऽपो-
हेपि । निश्चितार्थो हि संमयरुत्समयं करोति । न चापोहः केन-
चिदिन्द्रियैर्व्यवसीयते । तस्यावस्तुत्वादिन्द्रियाणां च वस्तुविषय-^३
त्वात् । नाप्यनुमानेन ; वस्तुभूतसामान्यमन्तरेणानुमानस्यैवाऽ-
प्रवृत्तेः ।

अस्तु वा संमयः, तथोपि—कथमश्वदीनां गोशब्दानभि-
वेयैत्वम् ? ‘संस्वन्धोनुभवक्षेणेऽश्वोदेस्ताद्विषयत्वेनादृष्टिः’ इत्य-
नुत्तरम् ; यतो यदि यद्गोशब्दसङ्केतकाले दृष्टं ततोऽन्यत्र गोशब्द-^४
प्रवृत्तिर्नश्यते, तदैकस्मात्सङ्केतेन विषयीकृताच्छाबलेयादिगोपि-
ण्डाद् अन्यद्बाहुलेयोदि गोशब्देनापोहं न भवेत् ।

इतिरेतराश्वयज्ञ-अगोव्यवच्छेदेन हि गोः प्रतिपत्तिः, स
चाऽगौर्गोनिषेधात्मा, ततश्च अगौः इत्यत्रोत्तरपदार्थो वैकल्यो यो
‘न गौः’ इत्यत्र नञा प्रतिषेध्येत । न ह्यनिर्ज्ञातसैरूपस्य निषेधो^५

१ अभाषमाण । २ पक्षः । ३ सारूप्यासम्भवाविशेषात् । ४ यदि । ५ शाबलेयादौ ।
६ पक्षोः । ७ कारणात् । ८ गवाश्वयोर्भिन्नत्वादेकगोपोहाभयत्वं नेत्युक्ते आह ।
९ समानम् । १० परमार्थभूतम् । ११ भिन्नम् । १२ विशेषेषु क्षणिकनिराशादिषु ।
१३ शाबलेयादिषु । १४ सङ्केतः । १५ पटते इति शेषः । १६ अस्मिन् शब्दस्यायमर्थः
इति । १७ ना । १८ नरेण । १९ निश्चीयते । २० खलक्षण । २१ अपोहे ।
२२ अपोहे समयसङ्गावेति । २३ स्यात् । २४ अनुमानमप्यन्यापोर्हं नावबोधयति ।
२५ गोशब्देन साक्षादिभदर्थस्य अनुमानस्य कार्यसम्भवासम्भावत्वात् । अन्यापोर्हस्य
निरुपास्यत्वेनानर्थक्रियाकारित्वेन च स्वभावकार्ययोरसम्भवात् । २६ काले । २७ ता ।
२८ दर्शनाभावात् । २९ दृष्टं वर्जयित्वा । ३० अथे । ३१ परेण । ३२ खण्ड-
शुष्कादिनाम्ना । ३३ गोशब्दस्यार्थं वाच्य इति । ३४ सौगतेन । ३५ गोपिण्डम् ।
३६ अथादि व्यावर्त्यम् । ३७ सङ्केतकाले सङ्केतेनाविषयीकृतत्वाद्बाहुलेयादेः ।
३८ दूषणान्तरमाह । ३९ कथम् । ४० योशब्दार्थः । ४१ परेण त्वायाः
४२ समासारात्मे वाक्ये । ४३ पदार्थस्य ।

विधातुं शक्यः । अथाऽगोनिवृत्त्यात्मा गौरैव, नन्वेवमगोनिवृत्ति-
स्वभावत्वाद्गौरगोप्रतिपत्तिद्वारेणैव प्रतीतिः, अगोश्च गोप्रति-
षेधात्मकत्वाद्गोप्रतिपत्तिद्वारेणेति स्फुटमितरेतराश्रयत्वम् ।

अथाऽगोशब्देन यो गौर्निषिध्यते स विधिरूप एवागोव्य-
५ वच्छेदलक्षणापोहसिद्ध्यर्थम् तेनेतरेतराश्रयत्वं न भविष्यति;
यथैवम्—‘सर्वस्य शब्दस्यापोहोऽर्थः’ इत्येवमपोहकल्पना वृथा
विधिरूपस्यापि शब्दार्थस्य भावात्, अन्यथेतरेतराश्रयो दुर्नि-
वारः । तदुक्तम्—

“सिद्धेश्चागौरपोहोर्गौर्निषेधात्मकश्च सः ।

१० तैश्च गौरैव वक्तव्यो नञा यः प्रतिषिध्यते ॥ १ ॥

स चेदगोनिवृत्त्यात्मा भवेदन्योन्यसंश्रयः ।

सिद्धेश्चैद्गौरपोहार्थं वृथापोहप्रकल्पनम् ॥ २ ॥

गव्यंसिद्धे त्वगौर्नास्ति तदभावेऽप्य(पि)गौः कुतः ।

नौचाराधेयवृत्त्यौदिसम्बन्धश्चाप्यभावेयोः ॥ ३ ॥”

१५ [मी० खो० अपोह० खो० ८३-८५]

दिग्गोनेन विशेषणविशेष्यभावसमर्थनार्थम् “नीलोत्पलादि-
शब्दा अर्थान्तरनिवृत्तिविशिष्टानर्थानाहुः” [] इत्युक्तम्;
तदयुक्तम्; यस्यै हि येन कश्चिद्वास्तवः सम्बन्धः सिद्धस्तत्तेन
विशिष्टमिति वक्तुं युक्तम्, न च नीलोत्पलयोरनीलानुत्पल-
२० व्यवच्छेदरूपत्वेनाभावरूपयोराचाराधेयत्वादिः सम्बन्धः सम्भ-
वति; नीरूपत्वात् । आदिग्रहणेन संयोगसमवायैर्कार्यसमवाया-
दिसम्बन्धग्रहणम् । न चासति वास्तवे सम्बन्धे तद्विशिष्टस्यै
प्रतिपत्तिर्युक्ताऽतिप्रसङ्गात् ।

१ पुरुषेण । २ अथापमावात्मा । ३ उत्तरपदार्थः । ४ गो सौगत । ५ ता ।
६ उत्तरपदार्थस्य । ७ अभावेः । ८ ता । ९ यव । १० प्रतीतिः । ११ पूर्वोक्त-
प्रकारेण । १२ साक्षादिमात्रभावरूप इति भावः । १३ नागोनिवृत्त्यात्मा ।
१४ स्वरूप । १५ तर्हि । १६ ज्ञातः । १७ गोशब्देन । १८ पर्वं सति । १९ उच्यते
यव गौरिस्तुक्ते आह । २० विधिरूपेण । २१ अभावे । २२ अनेनोच्यते ।
२३ विशेष्यपदामिषेयोऽभावो विशेष्य आधारस्य विशेषणपदामिषेयोऽभावो विशेषण-
भावेयश्वेलनिर्मायः परस्य (सौगतस्य) नीलो बट इत्यादिवात् । २४ न केवलं संकेतः ।
२५ कारिकोत्तरार्थं व्याचष्टे । २६ अनील अनुत्पलकक्षण । २७ अभावसहितान् ।
२८ कथम् । २९ विशेष्यस्य । ३० विशेषणेन । ३१ अर्थरूपयोः । ३२ प्रकार्य-
समवायः भातुलिकक्षणं रूपवद्भावेः । ३३ आदिना तादात्म्यम् । ३४ नील ।
३५ उत्पलस्य । ३६ विशेषणविशेष्यतया सङ्गविन्वयोरपि प्रतिपत्तिः सादिति ।

नासांकमनीलौदिव्यावृत्त्या विशिष्टोऽनुत्पलौदिव्यवच्छेदोऽ-
भिमतो यतोयं दोषः स्यात् । किं तर्हि ? अनीलानुत्पलाभ्यां
व्यावृत्तं वस्त्वेव तस्या व्यवस्थितम् । तस्यार्थान्तरव्यावृत्त्या
विशिष्टं शब्देनोच्यते; इत्यप्यपेशलम्; सैलक्षणस्याऽवैयर्थ्यात् ।
न च सलक्षणस्य व्यावृत्त्या विशिष्टत्वं सिध्यति; यतो न वस्त्व-
पोहोऽसाधारणं तु वस्तु, न च वस्त्वऽवस्तुनोः सम्बन्धो
युक्तः, वस्तुद्वयाधारत्वात्तस्य ।

अस्तु वा सम्बन्धः, तथापि विशेषणत्वमपोहस्याऽयुक्तम्, न
हि सैत्तमात्रेण किञ्चिद्विशेषणम् । किं तर्हि ? ज्ञातं सद्यत्सा-
कारानुरक्तया बुद्ध्या विशेष्यं रक्षयति तद्विशेषणम् । न चापो-१०
होऽयं प्रकारः सम्भवति । न ह्यश्वादिबुद्ध्यापोहोऽप्यवसीयते ।
किं तर्हि ? वस्त्वेव । अपोहज्ञानासम्भवश्चोक्तः प्राक् । न चासा-
तोप्यपोहो विशेषणं भवति । “नागृहीतविशेषणा विशेष्ये
बुद्धिः” [] इत्यभिधानात् ।

अस्तु वाऽपोहप्रापनम्, (ज्ञानम्;) तथापि-अर्थे तैदाकारबु-१५
द्ध्याभावात्तस्याऽविशेषणत्वम् । सर्वे हि विशेषणं साकारानुरक्त्या
विशेष्ये बुद्धिं जनयद्बुद्धम्, न त्वन्यादृशं विशेषणमन्यादृशी बुद्धिं
विशेष्ये जनयति । न खलु नीलमुत्पले ‘रक्तम्’ इति प्रत्यय-
मुत्पादयति, वैष्णो वा ‘कुण्डली’ इति । न चाश्वादिर्बैभावीनु-
रक्ता शौन्दी बुद्धिरुपजायते । किन्तर्हि ? भौवाकाराप्यवसा-२०
यिनी । तैथापि विशेषणत्वे सर्वे सर्वस्य विशेषणं स्यात् । अनु-

१ भवतामयं प्रसङ्ग इत्युक्ते सलाह । २ जैनानाम् । ३ रक्षादि । ४ विशेषणेन ।
५ अपवादि । ६ विशेष्यः । ७ न कुतोपि । ८ नीलोत्पलरूपेण । ९ इति जैनः ।
१० जयः सलक्षणरूपः । ११ अनीलाऽनुत्पलरूपः । १२ इति सौगताः । १३ ज्ञातः ।
१४ बह्वस्तु तत्सलक्षणमेवेति शब्देन । १५ सौगतामते । १६ अन्यव्यावृत्तिर्यु-
क्तमात्रमेव । १७ अपोहोस्तीत्यसिद्धमात्रेण । १८ लोके । १९ उत्पलम् ।
२० साध । २१ अभावात्तदपोहस्य । २२ न तावत्प्रत्यक्षेणापोहमहमितिवादिः ।
२३ सलक्षणरूपे । २४ सिरस्युत्पादः सलक्षणोस्तीति ज्ञापते न त्वभावरूपापोहा-
कारः । २५ सतीं सद्बुद्धीम् । २६ ज्ञानरूपम् । २७ भावरूपात् । २८ कर्मम् ।
२९ पुत्रपत्न्यः । ३० सलक्षणरूपेण । ३१ अपोहासत्ता । ३२ शब्दजनितया
सविश्लेषलभः । बौद्धानां भवे निर्विकल्पकज्ञानानन्तरतोत्पन्नसर्वव्यपकज्ञानेन सलक्षणस्य
निश्चयो भवः । ३३ सिरस्युत्पादः पदार्थाकारः । ३४ साकारानुरूपबुद्ध्यवबनकत्वेति ।
३५ अपोहस्य । ३६ साकारानुरूपबुद्ध्यवबनकत्वाविशेषात् ।

रंगे वा अभावरूपेण वस्तुनः प्रतीतेर्वस्तुत्वमेव न स्यात्, भावाभावयोर्विरोधात् । शब्देनाऽगम्यमानत्वाच्चाऽसाधारणवस्तुनो न व्यावृत्त्या विशिष्टत्वं प्रत्येतुं शक्यम् । उक्तञ्च—

“न चासाधारणं वस्तु गम्यतेपोहवत्तया ।

५ कथं वा परिकल्प्येत सम्बन्धो वस्त्ववस्तुनोः ॥ १ ॥

स्वरूपसत्त्वमात्रेण न स्यात्किञ्चिद्विशेषणम् ।

स्वबुद्ध्या रज्यते येन विशेष्यं तद्विशेषणम् ॥ २ ॥

न चाप्यध्वादिशब्देभ्यो जायतेपोहभौसनम् ।

विशेष्ये बुद्धिरिष्टे^२ न चाक्षातविशेषणा ॥ ३ ॥

१० न चान्यैरूपमन्यादृक्^३ कुर्याज्ज्ञानं विशेषणम् ।

कथं वाऽन्यादृशे^४ ज्ञाने तदुच्येत विशेषणम् ॥ ४ ॥

अथान्यथा विशेष्येपि स्याद्विशेषणकल्पना ।

तथा सति हि यैत्किञ्चित्प्रसज्येत विशेषणम् ॥ ५ ॥

अभावगम्यरूपे च न विशेष्येति वस्तुता ।

१५ विशेषितमपोहेन^५ वस्तु वैच्यं न तेऽस्त्यतः ॥ ६ ॥”

[मी० न्हो० अपोह० न्हो० ८६-९१]

“शब्देनागम्यमानं च विशेष्यमिति साहसम् ।

तेन सामान्यमेष्टव्यं विषयो बुद्धिशब्दयोः ॥”

[मी० न्हो० अपोह० न्हो० ९४]

२० इतश्च सामान्यं वस्तुभूतं शब्दविषयः, यतो व्यक्तीनामसाधारणवस्तुरूपाणामशब्दवैच्यत्वाच्च व्यक्तीनामपोहेत, अनुक्तस्य

१ अभादिषु शब्दजनद्वेराभावेन सहानुरागे सति । २ यदा भावाकारो वृत्त-
दाऽभावरूपमेव स्वरक्षणं निश्चिनुयादिति भावः । ३ स्वरक्षणस्य । ४ कुतः ।
५ स्वरक्षणस्य । ६ अपोहेन । ७ अर्थान्तरन्यावृत्त्या विशिष्टं स्वरक्षणरूपं वस्तु
शब्देनोच्यत इति वदन्तं वादिनं प्रति समर्थनमुक्तमिति ज्ञेयम् । ८ अपोहस्य ।
९ कथं तर्हि विशेषणं सादित्युक्ते जाह । १० स्वस्य-विशेषणस्य । ११ प्रतीतिः ।
१२ जगति । १३ अभावरूपम् । १४ भावरूपम् । १५ विशेष्ये । १६ ज्ञानाभिर्द-
क्षुषणं न जायते तेषां सर्वं वस्तु भावाभावात्मकं यतः । १७ भावरूपे । १८ अभाव-
रूपे । १९ परेण । २० यदि । २१ भावरूपे । २२ अपोहस्य । २३ अनिवच-
नीयम् । २४ स्वरक्षणरूपे । २५ विशेषणेन । २६ स्वरक्षणरूपम् । २७ शब्देन ।
२८ सौगतस्य । २९ अपोहस्य विशेषणस्य । ३० स्वरक्षणम् । ३१ येन करणे-
नापोहशब्दयोर्वैच्यवाचकमानो नास्ति तेन । ३२ शब्दजनितद्रुष्या गम्यः शब्देन
गम्यश्च । ३३ गोत्वादि । ३४ स्वरक्षणस्वाभाव्यत्वं कुतः । ३५ शब्देनाभाव्यस्य ।

निरोकर्तुमशक्यत्वात्, अपोहोत सामान्यं तस्य वाच्यत्वात् ।
अपोहानां त्वभावरूपतयाऽपोहोत्वासम्भवात्, अभावानामभावा-
भावात्, वस्तुविषयत्वात्प्रतिषेधस्य । अपोहोत्वेऽपोहानां वस्तु-
त्वमेव स्यात् । तस्मादध्वादौ गवादेरपोहो भवेन् सामान्यभूत-
स्यैव भवेदित्येवमपोहत्वाद्वास्तुत्वं सामान्यस्य । तदुक्तम्— ५

“यदा चाऽशब्दवाच्यत्वाच्च व्यक्तीनामपोहता ।

तदापोहोत सामान्यं तस्यापोहत्वाच्च वस्तुता ॥ १ ॥

नाऽपोहत्वमभावानामभावाऽभावर्येज्जनात् ।

व्यक्तोऽपोहोन्तरेऽपोहोत्तस्यैवामान्यवस्तुनः ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९५-९६] १०

किञ्च, अपोहानां परस्परतो वैलक्षण्यं वा स्यात्, अवैलक्षण्यं
चा ? तत्राद्यपक्षे [अ]भावस्यागोशब्दाभिधेयैस्याभावो गोशब्दाभि-
धेयः, स चेत्पूर्वोक्तादभौवाद्विलक्षणः; तदा भाष एव भवेदभाव-
निवृत्तिरूपत्वाद्भाषस्य । न चेद्विलक्षणः; तदा गौरैष्यगौः प्रस-
ज्येत तदैवैलक्ष्येण (तद्वैलक्षण्येन) तादात्म्यप्रतिपत्तेः । तत्र १५
वाच्यामिमतापोहानां भेदसिद्धिः ।

नापि वैचकामिमतानाम् । तथाहि-शब्दानां भिन्नसामान्य-
वाचिनां विशेषवाचिनां च परस्परतोऽपोहभेदो वासनाभेद-
निमित्तो वा स्यात्, वाच्योपोहभेदनिमित्तो वा ? प्रथम-
पक्षोऽयुक्तः; अवैस्तुनि वासनाया एवासम्भवात् । तदसम्भवाच्च २०

१ अपोहित्वम् । २ जन्देन । ३ जन्मव्यावृत्तीनाम् (सर्वेषां पदार्थानामपोह-
रूपत्वात्सर्वे भावा अपोहाः) । ४ व्यावर्त्यत्वं । ५ अत्र खरविषाणवदुष्टान्तः ।
६ अपोहानाम् व्यावर्तीनाम् । ७ व्यावर्त्यत्वे । ८ अग्नीक्रियमाणे परेण । ९ अभावा-
भावात् । १० वर्तमानः । ११ हेतोः । १२ स्वरूपानाम् । १३ वस्तुविषयो
निवेनो वतः । १४ निषेधस्य निषेधासम्भवात् । १५ अपोहा(रा)न्तरेऽध्वादौ ।
१६ गोः । १७ व्यक्तीनामपोहानां चापोहता नास्ति वसात् । १८ एव । १९ ताः ।
२० गोशब्दाद्यशब्दवाच्यानामन्यव्यावृत्तीनाम् । २१ विसृष्टता । २२ अथ ।
२३ वाच्यस्य । २४ गोशब्दाभिधेयोऽभावो वतः । २५ अपोहशब्दाभिधेयात् ।
२६ द्वितीयपक्षे दूषणमुद्गाहयन्ति । २७ पुरुषरूपः । २८ मनेन । २९ भिन्नपदार्थः ।
३० तस्मादगोशब्दवाच्यादपोहादेवैलक्षण्यं गोशब्दवाच्यापोहस्य । ३१ पुरुषत्वात् ।
३२ गोशब्दाऽगोशब्दवाच्यापोहयोः । ३३ अर्थः । ३४ शब्दः । ३५ अपोहानाम् ।
३६ गोरूपानामलक्षणम् । ३७ लक्षणमुष्ठादि । ३८ शब्दापोहभेदः । ३९ पूर्वविकल्प-
ज्ञानं शब्दभिवत् वासना । ४० एव । ४१ वतः । ४२ अर्थः । ४३ वाच्योपोहे ।

तद्धेतोर्निर्विषयप्रत्ययस्यायोगात् । नापि वाच्यापोहमेदनिमित्तः,
तद्भेदस्य प्रागेव कृतोत्तरत्वात् ।

ननु प्रत्यक्षेणैव शब्दानां कारणमेवाद्विद्वद्धर्माध्यासाच्च भेदः
प्रसिद्ध एव; इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतो वाचकं शब्दमङ्गीकृत्यै-
५ वमुच्यते । न च श्रोत्रज्ञानप्रतिमासिखलक्षणात्मा शब्दो वा-
चकः; सङ्केतकालानुभूतस्य व्यवहारकालेऽचिरनिर्द्वन्द्वत्वात् इति
न खलक्षणस्य वाचकत्वं भवदभिप्रायेण । तदुक्तम्—

“नार्थशब्दविशेषेण वाच्यवाचकतेष्व्येते ।

तस्य पूर्वमदृष्टवैतात्सीमान्यं तृपदिर्येते ॥ १ ॥” []

१०

“तत्र शब्दान्तरापोहे सामान्ये परिकल्पिते ।

तथैवावस्तुरूपत्वाच्छब्दभेदो न कल्प्येते ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० १०४]

ततो ये अवस्तुनी न तयोर्गम्यगमकभावो यथा खपुष्प-खर-
विषाणयोः । अवस्तुनी च वाच्यवाचकापोहौ भवतामिति । भव-
१५ मेघाभावाद्दृश्यभावप्रतिपत्तेरनैकान्तिकता हेतोः; इत्यप्युक्तम्;
तद्विविक्तौकाशालोकात्मकं हि वस्तु मर्त्यक्षेऽत्रापि प्रयोगेऽस्येव,
अभावस्य भावान्तरसमावत्त्वप्रतिपादनात् । भवत्पक्षे तु न केव-
लमपोहयोर्विवादास्पदीभूतयोर्गम्यगमकत्वाभावोऽपि तु वृष्टि-
मेघाद्यभौतयोरपि ।

२० किञ्च, अपोहो वाक्यैः, अर्थवाक्यौ वा? वाच्यश्रौतिकं विधि-
रूपेण, अन्यव्यावृत्त्या वा? यदि विधिरूपेण, कथमपोहः सर्व-

१ वासनाकारणस्य । २ शुक्लरूपत्वाभिर्विषयत्वमपोहस्य सविकल्पकज्ञानस्य ।
३ गवादीनाम् । ४ तात्कादि । ५ भिन्न । ६ अभ्यासो ग्रहणम् । ७ पारमार्थिक-
शेषः । ८ परेण सौगतेन । ९ खलक्षणरूपशब्दस्य । १० निनदृष्टत्वात् । ११ हेतोः ।
१२ शब्दसमावस्य । १३ नील । १४ असलक्षणरूपैः शब्दैस्तलक्षणरूपाभि-
प्रादने न किञ्चित्साध्यसिद्धिर्नोद्भवते इत्यभिप्रायः । १५ परेण । १६ सङ्केतकालात् ।
१७ जहातत्वात् । १८ उत्तरकाले । १९ अर्थशब्दयोः । २० तर्हि सामान्याकारेण
वाच्यवाचकतास्तिवसानुक्त्यामाह । सामान्यस्य वाच्यवाचकतयोपदेशे च ।
२१ गोशब्दादभशब्दः शब्दान्तरं तेन वाच्योऽपोहस्तत्र । २२ अभास्तत्वे । परि-
कल्पितप्रकारेण । २३ शब्दानाम् । २४ समर्थ्यते । २५ सौगतानाम् ।
२६ अभावरूपयोरपि गम्यगमकभावोऽस्तीति वक्ति नीलः । २७ गम्यगमकभावसङ्का-
शात् । २८ अवस्तुत्वादिति । २९ मेवादिभिन्न । ३० जैनः । ३१ सौगठ ।
३२ वाच्यवाचकयोः । ३३ शुक्लरूपत्वात् । ३४ अन्यथा । ३५ शब्देन ।
३६ जपना । ३७ शब्देन । ३८ अस्तित्वसङ्कापेन । ३९ एव ।

शब्दार्थः ? अथान्यव्यावृत्त्या; तर्हि नापोहोऽपि शब्दाधिगम्यो मुख्यः । अनवस्था चै-तद्व्यावृत्तेरपि व्यावृत्त्यन्तरेणामिधानात् । अथाऽर्थीचयः; तर्हि “अन्यशब्दार्थाऽपोहं शब्दः प्रतिपादयति” इत्यस्य व्याधीतः ।

किञ्च, ‘नैन्यापोहः अनन्यापोहः’ इत्यादौ विधिरूपादन्यै-
द्वाच्यं नोपलभ्यते प्रतिषेधद्वयेन विधेरेवाध्यवसायात् ।

कञ्चायमन्यापोहशब्दवाच्योर्थो यत्रान्यापोहसंज्ञो स्यात् ? अथ विज्ञातीयव्यावृत्तानैर्धानाभित्यानुभवदिक्रमेण यदुत्पन्नं विकल्प-
ज्ञानं तत्र यत्प्रतिभाति ज्ञानात्मभूतं विज्ञातीयव्यावृत्तार्थाकार-
तयाध्यवसितमर्थप्रतिविम्बकं तत्रान्यापोह इति संज्ञा । ननु १०
विज्ञातीयव्यावृत्तपदार्थानुभवद्वारेण शब्दं विज्ञानं तथाभूतार्था-
ध्यवसाय्युत्पत्तये इत्यत्राविर्भाव एव । किन्तु तत्तथाभूतपार-
मार्थिकार्थग्राह्यमुपगन्तव्यमध्यवसायस्य ग्रहणरूपत्वात् । विज्ञा-
तीयव्यावृत्तेऽपि समनैपरिणामरूपवस्तुधर्मत्वेन व्यवस्थापित-
त्वाच्चमिमात्रमेव सिध्येत ।

१५

यद्योक्तम्-“तैत्प्रतिविम्बकं च शब्देन जन्यमानत्वात्तस्य कार्य-
मेवेति कार्यकारणभाव एव वाच्यवाचकभावः” []

१ अपोहस्य विधिरूपेण वाच्यत्वात्सर्वशब्दार्थोऽपोह एव न भवतीत्यर्थः । २ अपोहः ।
३ न केनैकं सलक्षणम् । ४ अन्यव्यावृत्तिरपि वाच्याऽवाच्या वा स्यात् । अवाच्या
तदाऽवाच्यान्यव्यावृत्त्या कथमपोहो वाच्योतिप्रसङ्गात् । अथ वाच्या किं विधिरूपेणा-
न्यव्यावृत्त्या वा ? न तावद्विधिरूपेणोक्तदोषानुपपन्नात् । अथान्यव्यावृत्त्या अन्यव्या-
वृत्तिर्वाच्या चेत्तत्राप्यन्यव्यावृत्तिर्यथा वाच्या सापि वाच्याऽवाच्या वेत्यादिप्रका-
रेणानवस्था । ५ कुतः । ६ शब्देन । ७ अथ । ८ यतः । ९ अथलक्षण ।
१० गौरिति । ११ नतस्य । १२ अपोहस्याऽवाच्यत्वात् । १३ सर्वेषां परस्परं
व्यावृत्तिस्त्वानो यतः । १४ अविधिरूपम् । वस्तु । १५ आदौ यो नन् स
पक्षोपोहो द्वितीयेन तस्याप्यपोहः । द्वौ नवौ प्रकृतमर्थं गमयतः । १६ इति ।
१७ सङ्केतः । १८ कश्चिद्वैदविशेषः प्राह । १९ अथादिभ्यः । २० खण्डमुण्डा-
दिसलक्षणात् । २१ प्रथमं खण्डमुण्डाद्यनुभवो नाम निर्विकल्पकं दर्शनं, तदनु
विकल्पवानुद्भवस्तदनु सङ्केतकालगृहीतवाच्यवाचकस्वरूपं तदन्वितं वाच्यवाचकमिति
योजनं, तदनु विकल्पोऽयं गौरिति । २२ अथादिभ्यः । २३ ज्ञानादयेदरूपम् ।
२४ जैनबौद्धयोः । २५ ज्ञाने ज्ञानस्वरूपार्थाकारोऽपोह इति बौद्धविशेषस्याऽभिप्रायः ।
२६ भावणप्रसङ्गम् । २७ निश्चयस्य । ८ सौमतेन । ९ पदार्थानां ज्ञानस्य ।
१० बौद्धमते । ११ खण्डमुण्डादिसलक्ष्यत्वपेक्षया । १२ विज्ञातीयव्यावृत्तिः समान-
परिग्रगरूपसामान्यं चेति । १३ सङ्ग्रन्थे । १४ अर्थः । ज्ञाने ।

तदप्ययुक्तम्; शब्दाद्विशिष्टसङ्केतसव्यपेक्षाद्वाह्यार्थे प्रतिपत्तिप्र-
वृत्तिप्राप्तिप्रतीतेः स एवास्मार्थो युक्तः, न तु विकल्पप्रतिबिम्बक-
मात्रं शब्दास्य वाच्यतयाऽप्रतीतेः ।

- अतोऽयुक्तम्—“प्रतिबिम्बस्य मुख्यमन्यापोहत्वं विजातीयव्या-
५ वृत्तस्वलक्षणस्यान्यव्यावृत्तेऽप्यौपचारिकम्” []
इति । अन्यापोहस्य हि बौध्यत्वे मुख्योपचारकल्पना युक्तिमती,
तच्चास्य नास्तीत्युक्तम् । ततः प्रतिनियताच्छब्दात्प्रतिनियतेऽर्थे
प्राणिनां प्रवृत्तिदर्शनात्सिद्धं शब्दप्रत्ययानां वस्तुभूतार्थविषय-
त्वम् । प्रयोगः—ये परस्परसंज्ञीर्णप्रवृत्तयस्ते वस्तुभूतार्थविषयाः
१० यथा श्रोत्रादिप्रत्ययाः, परस्परऽसंज्ञीर्णप्रवृत्तयश्च दण्डीत्या-
दिशब्दप्रत्यया इति । न चायमसिद्धो हेतुः, ‘दण्डी विषाणी’
इत्यादिधीर्ध्वनी हि लोके द्रव्योर्पौधिकौ प्रसिद्धौ, ‘शुक्लः
कृष्णो भ्रमति चलति’ इत्यादिकौ तु गुणक्रियानिमित्तौ, ‘गौरभः’
इत्यादी सौमान्यविशेषोर्पौधी, ‘इहात्मनि ज्ञानम्’ इत्यादिकौ
१५ सम्बन्धोर्पौधिकावेवेति प्रतीतेः ।

नैतु चाहृतसमया च्चनयोर्याभिधायकाः, कृतसमया वा ?
प्रथमपक्षेतिप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे तु क तेषां सङ्केतः—स्वलक्षणे,
जैतौ वा, तद्योगे वा, जातिमत्यर्थे वा, बुद्ध्याकारे वा प्रकारान्त-
रासम्भवात् ? न तावत्स्वलक्षणे; समयो हि व्यवहारार्थं क्रियमाणः
२० सङ्केतव्यवहारकालव्यापके वस्तुनि युक्तो नान्यथैव । न च स्वल-
क्षणस्य सङ्केतव्यवहारकालव्यापकत्वम्; शाबलेयौदिव्यक्तिविशे-
षाणां देशादिभेदेन परस्परतोऽत्यन्तव्यावृत्ततयाऽनैव्याभिधात् ।

१ षट्पटाविलक्षणे । २ जयंतया । ३ सम्बन्धिन्याः । ४ तथा हि । ५ जग्देन ।
६ किञ्चापोहाव्योयेलादिना । ७ शब्दार्थोऽपोहो विचार्यमाणो न वदते यतः ।
८ परमार्थः । ९ वसः । १० असङ्कलित । ११ लोचनादिमानानि । १२ दण्डः ।
१३ ध्वनिः शब्दः । १४ उपाधिः—विशेषणं कारणमित्यर्थः । १५ धीध्वनी ।
१६ धीध्वनी । १७ गोत्यादि । १८ अन्धादेर्व्यावर्तमानत्वात्तदेव विशेषः ।
१९ धीध्वनी । २० संबन्धः—समवायः । २१ अत्र प्रतिविधीयते । इत्येतावतः
प्राक् सौगतः पूर्वपक्षयति । २२ षट्पटादिवाचकः । २३ षट्पट्टः पटाभिभाषको
अवस्तु सङ्केताभावात् । २४ सङ्कल्पप्रतिपादकक्षणे संकेतोक्तिः । २५ बुद्ध्यावर्तकारे ।
२६ प्रतिबिम्बके । २७ क्षणिकादिकुरे । २८ प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप । २९ स्थानिनि ।
३० अभ्यापके क्षणिके । ३१ आदिना खण्डमुण्डस्रवलादीनाम् । ३२ आदिना
कालरूपसमायाः । ३३ खण्डो मुण्डादत्यन्तव्यावृत्त इति सम्बन्धमाभावात् ।
३४ यो यत्रैव स तत्रैव नो यदेव तत्रैव सः । न देशकालयोर्व्याप्तिर्भावानामिह विधत्ते ।

तत्रानत्येन सङ्केतासम्भवाच्च । विकल्पवृद्धावर्थाहृत्य तेषु सङ्के-
ताभ्युपेक्षमे विकल्पसमारोपितार्थविषय एव शब्दसङ्केतः, न
परमार्थवस्तुविषयः स्यात् । स्थिरैकरूपत्वाद्विमाचलादिभार्वानां
सङ्केतव्यवहारकालव्यापकत्वेन समयसम्भवोप्यसम्भाव्यः, तेषा-
मप्यनेकाणुप्रचयस्वभावानां प्रादुर्भावानन्तरमेवापवर्गितया तद-
सम्भवात् ।

किञ्च, एतेषु समयः क्रियमाणोऽनुत्पन्नेषु क्रियेत, उत्प-
न्नेषु वा ? न तावदनुत्पन्नेषु परमार्थतः समयो युक्तः, असतः
सर्वापीक्यारहितस्योधारत्वानुपपत्तेः । नाप्युत्पन्नेषु, तस्यार्थानुभ-
वशब्दस्मरणपूर्वकत्वात्, शब्दस्मरणकाले चार्थस्य प्रध्वंसात् । १०
सर्वेषां स्वलक्षणक्षणानां सादृश्यमैक्येनाध्यारोप्य सङ्केतविधाने
लिङ्गं स्वलक्षणस्याऽवाच्यत्वम् बुद्ध्यारोपितसादृश्यस्यैवाभिधाने-
रभिधानात् । औचित्ये वा शब्दबुद्धेः स्पष्टप्रतिभासप्रसङ्गः, न
चैवम् । न खलु यथेन्द्रियबुद्धिः स्पष्टप्रतिभासा प्रतिभासते तथा
शब्दबुद्धिः । प्रयोगश्च-यौ यत्कृते प्रत्यये न प्रतिभासते न स १५
तस्यार्थः यथा रूपशब्दप्रभवप्रत्यये रसाप्रतिभासने नैसौ तदर्थः,
न प्रतिभासते च शब्दप्रत्यये स्वलक्षणमिति । उक्तञ्च—

“अन्यैवाग्निर्लेम्बन्वाहीहं दग्धो हि मन्यते ।

अन्यथा दाहशब्देन दाहार्थः सम्प्रतीयते ॥ १ ॥”

[वाक्यप० २।४२५] २०

न चैकस्य वस्तुनो रूपद्वयमस्ति, येनास्पष्टं वस्तुर्गतमेव रूपं
शब्दैरभिधीयेत एकस्य द्वित्वविरोधात् । तन्न स्वलक्षणे सङ्केतैः ।

१ यो यो गोशब्दः स स गुणवाचक इति । २ व्यक्तिषु । ३ गोशब्दस्य ।
४ सर्वव्यक्तयो गोशब्देन वाच्या इति आरोप्य । ५ जेनादिना । ६ वसः ।
७ वसः । ८ पदार्थानाम् । ९ सङ्केत । १० विनाशितया । ११ ज्ञानलेपादि-
विशेषेषु । १२ अनतेषु । १३ उपास्या स्नानः । १४ समयस्य । १५ अवयवस्य
शब्दस्य गन्त्य इति । १६ त्रिकालत्रिलोकोदरवर्तिनाम् । १७ सङ्घाशपापरोत्यपथा
यत्सादृश्यम् । १८ अमेदेन । १९ अङ्गीक्रियमाणे जेनादिना । २० शब्देन ।
२१ आरोपितसामान्यस्यैव गान्धर्वं शब्देन यतः । २२ शब्दैः जातायाः ।
२३ स्वलक्षणस्य । २४ उपर्युक्तसमर्पणम् । २५ जेनादि । २६ स्वलक्षणरूपार्थः ।
२७ स्पष्टत्वेन । २८ वसः । २९ स्पष्टनेन्द्रियेण । ३० साक्षात् । ३१ (नहि)
दाहमित्युक्ते मुख्यं दग्धते । ३२ पुमान् । ३३ अस्पष्टत्वेन । ३४ स्पष्टत्वास्पष्टत्वे ।
३५ शुक्तितिरम् । ३६ स्पष्टास्पष्टत्वलक्षणम् । ३७ रूपस्य । ३८ परमार्थयुतः ।

नापि जातौ; तस्याः क्षणिकत्वे खलक्षणस्यैवान्वयाभावात् सङ्केतः फलवान् । अक्षणिकत्वे तु क्रमेण ज्ञानोत्पादकर्त्तृभावः । नित्यैक-
स्वभावस्य परापेक्षायसम्भाव्या । प्रतिषिद्धा चैवं यथास्थानम्
इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

५ नापि तद्योगे सङ्केतः; तस्यापि समवायादिलक्षणस्य निरा-
कृतत्वात् । जातितद्योगयोश्चासम्भवे तद्वतोऽप्यर्थस्यासम्भवा-
त्कथं तत्रापि सङ्केतः ? बुद्ध्योकारे वा, स हि बुद्धिता-
दात्म्येन स्थितत्वात्तु बुद्ध्यन्तरं प्रतिपाद्यमर्थं वाचुं गच्छति ।

किञ्च, 'इतः शब्दादर्थक्रियार्थं पुरुषोऽर्थक्रियाक्षमानर्थान्वि-
१० ज्ञाय प्रवर्तिष्यते' इति मन्यमानैर्व्यवहर्तुभिरभिधायकं नियु-
ज्यन्ते न व्यसनितंया । न चासौ विकल्पबुद्ध्यकारोऽर्थानो-
मिप्रेतं शीतापनोदादिकार्यं सम्पादयितुं समर्थः ।

किञ्च, बुद्ध्यकारे शब्दसङ्केताभ्युपगमेऽपोहवैदियक्ष एवा-
भ्युपगतो भवेत्; तथाहि-अपोहवैदिनापि बुद्ध्यकारो बाह्यरूप-
१५ तयाध्यवसितः शब्दार्थोभीष्ट एव, अर्थविवक्षां च कार्यतया
शब्दो गमयति यथा धूमोमिमिति ।

अत्र प्रतिविधीयते । कृतसमया एव ज्ञेययोऽर्थभिधायकाः ।
समयश्च सामान्यविशेषात्मकेर्योऽभिधीयते न जात्यादिभिरेव ।

१ कृतः । २ जातेः । ३ गोत्वादिसामान्ये । ४ भवेत् । ५ अनुस्यूतत्वे ।
६ तस्मा जातेः । ७ परं=निमित्तम् । ८ जातिः । ९ जातौ सङ्केतनिराकरणप्रसङ्गेन ।
१० पक्षान्तरम् । ११ तयोः खलक्षणजालोऽसम्भवे । १२ आदिना संयोगता-
दात्म्यादेश्च । १३ शब्देन । १४ अर्थस्य । १५ जान्तेति । १६ अतः केन साकं
सङ्केतः स्यात् । १७ विवक्षितत्वात् । १८ जैनमताभिप्रायं वक्ति सौगतः । १९ अर्थः=
प्रयोजनम् । २० शब्दाः । २१ कार्यं विना प्रवृत्तिर्न्यसनम् । २२ अर्थस्य ।
२३ पुरुषस्य । २४ अर्थप्रतिबिम्बरूपे । २५ ज्ञेयेन । २६ सौगत । २७ जैनस्य ।
२८ सौगतेन । २९ ज्ञानात्मा बुद्ध्यकार एव बाह्यार्थो नापरः कश्चिदित्यभिप्रायो
बौद्धविशेषस्य । ३० ज्ञान्त्यर्थस्य वक्तुमिच्छां ज्ञानस्वभावां शब्दस्य कारणभूताम् ।
३१ कार्यरूपः । ३२ ज्ञापयति । ३३ ज्ञानस्वभावा विवक्षा एव बाह्यार्थः शब्दमित्यो
नापरः कश्चिदित्यभिप्रायो बौद्धविशेषाभिप्रायः । अन्वापोहरूपो बुद्ध्यकाररूपो विवक्षारूप
एवं त्रिविधः शब्दविषयो बौद्धमते इति चेन्न । ३४ कार्यम् । ३५ कारणम् ।
३६ परकृतपक्षे । ३७ शब्दाः । ३८ बाधकाः । ३९ तादात्म्यस्वरूपे । ४० परार्थे ।
४१ क्रियते । ४२ केवलायां जातौ केवले विशेषे वा नाभिधीयते ।

तथाभूतव्याप्यो वास्तवः सङ्केतव्यवहारकालव्यापकत्वेन प्रमाण-
सिद्धः 'सामान्यविशेषात्मा तदर्थः' [परीक्षासू० ४।१] इत्यत्राति-
विस्तरेण वर्णयिष्यते । सामान्यविशेषयोर्वस्तुभूतयोस्तत्सम्य-
न्धस्य चात्र प्रमाणतः प्रसाधयिष्यमाणत्वात् । न चाप्या-
नन्त्याद्वयकीनां परस्पराननुगमाच्च सङ्केताऽसम्भवः; समाने-
परिणामापेक्षया क्षयोपशमविशेषाविर्भूतोद्भाव्यप्रमाणेन तासां
प्रतिभासमानतया सङ्केतविषयतोपपत्तेः, कथमन्यथानुमानप्र-
वृत्तिः तत्राप्यानन्त्याननुगमरूपतया साध्यसाधनव्यक्तीनां सम्य-
न्धग्रहणासम्भवात् ?

अन्ये व्यावृत्त्या सम्बन्धिग्रहणम्; इत्यप्यसत्; तस्या एव संहशप-१०
रिणामसामान्यासम्भवे असम्भाव्यमौनत्वात् । न चाऽसदशेषव्य-
थेषु सामान्यविकल्पजनकेषु तद्दर्शनद्वारेण सदशव्यवहारे हेतुत्व-
म्; नीलादिविशेषाणामप्यभावानुपपत्तात् । यथा हि परमार्थतोऽस-
दृशा अपि तथाभूतविकल्पोत्पादकदर्शनहेतवः सदशव्यवहारमौ-
जोभावाः तथा स्वयमनीलादिस्वभावा अपि नीलादिविकल्पोत्पाद-१५
कदर्शननिमित्ततया नीलादिव्यवहारभाक्त्वं प्रतिपत्स्यन्ते । संह-
शपरिणामभावे च अर्थानां सजातीयैतरेव्यवस्थाऽसम्भावात्कृतः
कस्य व्यावृत्तिः ? अन्यव्यावृत्त्या सम्यन्धोवगमेपि चैतत्सर्वं
समौनम्-तत्रानन्त्याननुगमरूपत्वस्याऽविशेषात् । ततो 'ये यत्र
मौनतः कृतसमया न भवन्ति न ते तस्याभिधायकाः यथा २०

१ सङ्केतितार्थो नास्तीत्युक्ते जाह । २ सूत्रे । ३ जेनाचार्यैः । ४ प्रलङ्घादितः ।
५ व्यवहारकाले । ६ अस्य शब्दसाधनार्थे इत्येवरीत्या । ७ सङ्घट्ट । ८ नै दे
मिक्कलमिलोकोदरवर्तिनः सालादिमन्तले वे गोशब्देन बाध्या इत्येवम् । ९ कुपः ।
१० अनुमानव्यवहारकाले । ११ परस्पर । १२ असाध्यासाधनरूपेण । १३ अवि-
नाभावलक्षण । १४ या गोम्यक्तयस्त्रा गोशब्देन बाध्या इति । १५ पूर्वं निराहृत-
त्वात् । १६ खण्डादिषु । १७ सामान्यरूपस्यासौ विकल्परश्च । १८ अयमनेन सङ्घट्ट
इति विकल्पोऽयं गौरवं गौर्वेति विकल्पः । १९ विसङ्घट्टार्थः । २० प्रतीतिः । २१ सुप्तेन ।
२२ कथम् ? यथा हि । २३ खण्डमुष्णद्वयः पदार्थाः । २४ सन्तः । २५ रुजः ।
२६ लक्षणेन । २७ नीललक्षणभावाः । २८ विकल्पः=दानम् । २९ सामान्य ।
३० सालादिमत्स्यादिना । ३१ गोघटपट्टादीनाम् । ३२ विजातीय । ३३ बन्धात् ।
३४ साध्यसाधनव्यक्तीनाम् । ३५ किञ्च । ३६ सङ्घट्टपट्टे वस्तुनोपपत्तेः ।
३७ अन्यव्यावृत्तिविषयकम् । ३८ अन्यव्यावृत्तयोऽनन्त्या इत्येवम् । ३९ व्यङ्ग्यमितर-
णकाले । ४० साध्यसाधनव्यक्तीनां सन्वन्धावगमो यदा वस्तुनि द्रव्यस्य दृष्टेः पर-
िणामनि तथा साधतः । ४१ वस्तुनि । ४२ परमार्थतः ।

साक्षादिमत्यर्थेऽकृतसमयोऽवशब्दः, न भवन्ति च भावतः
कृतसमयाः सर्वस्मिन्वस्तुनि सर्वे ध्वनयः' इत्यत्र प्रयोगोऽसिद्धो
हेतुः; उक्तप्रकारेणार्थे ध्वनीनां समयसम्भवात् ।

यच्च हिमाचलादिभावानामप्यनेकपरमाणुप्रचयात्मनां क्षणिक-
५ त्वेन समयासम्भव इत्युक्तम्; तदप्युक्तिमात्रम्; सर्वथा क्षणिक-
त्वस्य बाह्याध्यात्मिकार्थे प्रतिषेत्स्यमानत्वात् । तथा चोत्पन्नेष्वप्य-
र्थेषु सङ्केतसम्भवात्, अयुक्तमुक्तम्—'उत्पन्नेष्वनुत्पन्नेषु वा सङ्केता-
सम्भवः' इत्यादि ।

ननु शब्देनार्थस्याभिधेयत्वे साक्षादेवातोर्थप्रतिपत्तेरिन्द्रिय-
१० संहतेर्वैफल्यप्रसङ्गः; तत्र; अतोऽर्थस्याऽस्पष्टाकारतया प्रतिपत्तेः,
स्पष्टाकारतया तत्प्रतिपत्त्यर्थमिन्द्रियसंहतिरप्युपैष्यते एवेति
कथं तस्या वैफल्यम्? स्पष्टाऽस्पष्टाकारतयार्थप्रतिभासमेवैव
सामग्रीमेदाज्ञ विरुध्यते, दूषसर्जाधीननिबद्धेन्द्रियप्रतिभासवत् ।

अथाऽसत्यप्यर्थेऽतीतानागतादौ शब्दस्य प्रवृत्ति(त्ते)र्नास्त्यार्थ-
१५ मिधायकत्वम्; तदसत्, तस्येदानीमभावेऽपि सकाले भावात्,
अन्यथैव प्रत्यक्षस्याप्यर्थविषयत्वाभावः स्यात् तद्विषयस्यापि
तत्कालेऽभावात् । अविसंवादस्तु प्रमाणान्तरप्रवृत्तिलक्षणेऽप्य-
क्षर्वैच्छान्वेष्यनुभूयत एव । 'औसीर्द्धिः' इत्याद्यतीतविषये वाक्ये
विशिष्टमस्मादिकार्यदर्शनोद्भूतानुमानेन संवादोपलब्धेः, चन्द्रार्क-
२० ग्रहणाद्यनैर्गतार्थविषये तु प्रत्यक्षप्रमाणेनैव । किंचिद्विसंवादा-
त्सर्वत्र शब्दस्याऽप्रामाण्ये प्रत्यक्षस्यापि कचिद्विसंवादात्सर्वत्रा-
प्रामाण्यप्रसङ्गः । ततो निराकृतमेतत्—

“अन्यदेवेन्द्रियग्राह्यमन्यैच्छब्दस्य गोचरः ।

१ साक्षादिमदर्थमिधायको न भवति वतः । २ परकृते । ३ भावतोऽकृतसमय-
त्वादिति । ४ समानपरिणामापेक्षयेलादिना । ५ परेण । ६ यदादौ । ७ नानादौ ।
८ परेण । ९ प्रतिपाद्यत्वे । १० अव्यवधानेन । ११ भूयमाणाच्छब्दात् ।
१२ चक्षुरादिसमूहस्य । १३ सङ्गम् । १४ निवक्षिताच्छब्दात् । १५ यदते ।
१६ यकार्थं । १७ यकार्थस्य । १८ स्पष्टाऽस्पष्टतया । १९ यकार्थस्य । २० शब्दो-
च्चारणसमये । २१ अवस्थानमिधायकत्वे । २२ क्षणिकत्वात् । २३ मलस्रोतपि-
काले इव । २४ जाने । २५ कर्मम् । २६ इह प्रदेष्टे । २७ किञ्चिदुष्णताकाङ्क्षा-
वाक्स्वरभारित्वविशिष्ट । २८ मविष्यत् । २९ गच्छेत् । ३० शब्दप्रतिपाद्ये । ३१ जने ।
३२ अङ्गीक्रियमाणे परेण । ३३ अमिधायकत्वेति शब्दमलक्षणेः प्रतिभासमेवो-
दक्षितो वतः । ३४ लक्षणेन । ३५ सामान्यम् ।

शब्दात्मत्येति मित्राक्षो न तु प्रत्यक्षंमीक्षते ॥ १ ॥ []

“अन्यथैवाग्निसर्व्वन्वादाहं दग्धोभिमन्यते ।

अन्यथा दाहशब्देन दाहार्थः सम्प्रतीयते ॥”

[वाक्यप० २।४।२५] इत्यादि ।

सामग्रीभेदाद्विशदेतरप्रतिभासभेदो न पुनर्विषयभेदात्, सामा-५
न्यविशेषात्मकार्यविषयतया सकलप्रमाणानां तद्वेदाभावादित्यत्र
वक्ष्यमाणत्वात् । ततो ‘यो यत्कृते प्रत्यये न प्रतिभासते’ इत्यादि-
प्रयोगो हेतुसिद्धेः, सामान्यविशेषात्माथलक्षणस्वलक्षणस्य शाब्द-
प्रत्यये प्रतिभासनात् ।

प्रयोगः-यद्यत्र व्यवहृतिमुपजनयति तत्तद्विषयम् यथा सामान्य-१०
विशेषात्मके वस्तुनि व्यवहृतिमुपजनयत्येत्यक्षं तद्विषयम्, तत्र
व्यवहृतिमुपजनयति च शब्द इति । न चासिद्धो हेतुः, धिहरन्तश्च
शाब्दव्यवहारस्य तथाभूते वस्तुन्युपलम्भात् । भवेत्कल्पित-
स्वलक्षणस्य तु प्रत्यक्षेऽन्यत्र वा स्वप्नेयप्रतिभासनात् ।

प्रतिष्ठापदयोश्च व्याघातः, तथाहि-‘अन्यदेवेन्द्रियग्राह्यम्’ १५
इत्यनेन शब्देन कश्चिदर्थोभिधीयते वा, न वा ? नामिधीयते
चेत्, कयमिन्द्रियग्राह्यस्यान्यत्वंमतः प्रतीयते ? अथामिधीयतेर्थः,
तर्हि तस्यैव तद्विषयत्वप्रसिद्धेः कथञ्च शब्दस्यार्थगोचैरत्वप्रति-
ष्ठाऽतो व्याहन्येत ? सौक्ष्मादिन्द्रियग्राह्यागोचैरोऽसाविति चेत्,
पारम्पर्येणासौ तद्विषयचरो भवति, न वा ? यदि न भवति, तर्हि २०
‘साक्षात्’ इति विशेषणं व्यर्थम् । अथ भवति, तर्हि तज्ज्ञा(तज्ज्ञा)

१ कृतः । २ अर्थम् । ३ जानाति । ४ उत्पादितार्थः अन्य इत्यर्थः । ५ क्रिया-
विशेषणमेव । ६ परोक्षं ज्ञातातीत्यर्थः । ७ अर्थम् । ८ स्पर्शनेन्द्रियग्राह्यतया ।
९ स्पष्टत्वेन । १० जानाति । ११ अस्पष्टत्वेन । १२ आसन्नदूरत्वादि ।
१३ सामान्यविशेषात्मकार्यो विषयो भवतीति साध्यः, शब्दो यथा । १४ वसः ।
१५ विषयः । १६ चतुर्थाध्याये । १७ शब्दप्रत्ययेऽप्यप्रतिभासः सिद्धो यतः ।
१८ अनुमाने । १९ शब्दकृते प्रत्ययेऽप्रतिभासमानत्वात्स्वलक्षणस्येति । २० कृतः ।
२१ वसः । २२ शब्दज्ञाननित्तज्ञाने । २३ विकल्पमानम् । २४ विकल्पम् ।
२५ ज्ञापनादि । २६ तत्र व्यवहृतिजनकत्वात् । २७ यथादौ । २८ आत्मादौ ।
२९ सौम्य । ३० अनुमानादौ । ३१ खरविषाणवत् । ३२ व्याघातमेव दर्शयति ।
३३ नोदमते शब्दः कश्चिदप्यर्थं न वक्ति तर्हि । ३४ अर्थस्य । ३५ भिन्नत्वम् ।
३६ अर्थोऽगोचरो यस्य । ३७ अन्यवधानेन । ३८ वसः । ३९ स्वलक्षणं प्रत्यक्षं
शुद्धम् । प्रत्यक्षञ्च विकल्पः (नीलमिदं पीतमिदमिति) । विकल्पाच्च शब्द उत्पद्यते ।
विकल्पयोनयः शब्दः प्रत्यक्षमिति । ४० उ गोचरो यस्य शब्दस्य । ४१ दाह-
व्ययेन्द्रियग्राह्यागोचरो भवति शब्दः ।

प्रतीतिः किमिन्द्रियजप्रतीतितुल्या, तद्विलक्षणा वा? यदि तत्तुल्या; तदा 'शब्दात्वंत्येति विनैष्टाक्षो न तु प्रत्यक्षमीक्षते' इत्यनेन विरोधः । तद्विलक्षणा चेत्; न तर्हि प्रतीतिवैलक्षण्यं विषयमेदसाधनम्, एकत्रापि विषये तदभ्युपगमात् ।

५ दाहशब्देन चात्र कोऽर्थोभिप्रेतः-किमग्निः, उष्णस्पर्शः, रूप-विशेषः, स्फोटः, तदुःखं वा? अस्तु यः कश्चित्, किमेभिर्विकल्पै-र्भवतां सिद्धमिति चेत्? एतेषां मध्ये योऽर्थोभिप्रेतो भवतां तेनार्थ-नार्थवत्त्वैप्रसिद्धेः तस्यानर्थविषयत्वाभावः सिद्ध इति ।

नैवेवं दहनसम्बन्धाद्यथा स्फोटो दुःखं वा तथा दाहशब्दादपि
१० किञ्च स्यादर्थप्रतीतिरविशेषात्? तन्न; अन्यकार्यत्वात्तस्य, न खलु दहनप्रतीतिकार्यं स्फोटादि । किं तर्हि? दहनदेहसम्बन्धविशेष-कार्यम्, सुषुप्तस्यवस्थायामप्रतीतावपि अश्वेस्तत्सम्बन्धविशेषात् स्फोटादेर्दर्शनात्, दूरस्थस्य चक्षुषा प्रतीतावप्यदर्शनात्, मन्त्रादि-चलेन त्वग्निन्द्रियेणापि प्रतीतीवप्यदर्शनात् । तस्मादभिप्रेति
१५ विषये सामग्रीमेदाद्विशदेतरप्रतिभासमेदोऽभ्युपगन्तव्यः ।

तैथा चेदमप्ययुक्तम्-'न चैकस्य वस्तुनो रूपद्वयमस्त्येकस्य द्वित्वविरोधात्' इति ।

अदि चैवाभावोभिधीयते शब्दैर्भावो नाभिधीयते इति किंथा-
प्रतिषेधौन्न किञ्चित्कृतं स्यात् । तथा च कथं नदीदेशद्वीपपर्वत-
२० खर्गापवर्गादिभ्यासप्रणीतवाक्यात्प्रतिपत्तिः श्रेयःसाधनानुष्ठाने प्रवृत्तिर्वा? अन्यथा सर्वस्यादपि वाक्यात्सर्वत्रार्थे प्रतिपत्ति-
प्रवृत्त्यादिर्भसङ्गः ।

१ सामान्यार्थं जानाति । २ अन्वो ना । ३ क्रियाविशेषणम् । चक्षुःप्रलक्षणे
आहशमीक्षते न तावदशमिति भावः । ४ अर्थम् । ५ शब्दजेन्द्रियजप्रतीतयोः समान-
त्वात् । ६ दूरनिकटैकपादपादौ लक्षणे । ७ परेण । ८ कोके । ९ सौगतस्य तथ ।
१० जैलानात् । ११ पदार्थानात् । १२ सौगतानात् । १३ शब्दस्य । १४ तेषा-
नैवार्थवत्त्वसिद्धिप्रकारेण । १५ बहिर्दहनसम्बन्धादर्थप्रतीतिनिमित्ते शब्दादप्यर्थप्रतीति-
रिति । १६ दहनस्य । १७ स्फोटादिकस्य । १८ दूरपादपादौ । १९ दूरनिकटादि ।
२० परेण । अनेन कथनेन नौकस्य यथा लक्षणेणस्य प्रलक्षणे स्पष्टतया प्रतिभासत्वं
तथा शब्देनाप्यस्पष्टतया प्रतिभासत्वं नावमिति । २१ सामग्रीमेदात्प्रतिभासमेदो च ।
२२ नैष्ठिकवैशेषिकम् । २३ अपोहः । २४ भावस्य । २५ तर्हिंति श्रेयः ।
२६ शब्दैः । २७ शब्दैर्न किञ्चित् वार्त्तं स्यात् । २८ शब्देन कस्याप्यकारण्यवै-
प्रतीतिरनुष्ठाने प्रवृत्तिश्च यदि । २९ नञ्प्रत्ययविशेषात् ।

सत्येतरव्यवस्थाभावश्च तत्त्वेतरप्रतिपत्तेरभावात् । तेषां च 'यत्सत्तत्सर्वमक्षणिकं क्षणिके क्रमयोगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात्' इत्यादेरिव 'यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकं नित्ये क्रमयोगपद्याभ्यामर्थक्रियानुपपत्तेः' इत्यादेरप्यसत्त्वानुषङ्गः । विपर्ययप्रसङ्गो वा, सर्वथार्थासंस्पृशित्वाविशेषात् । कस्यचिदनुमानवाक्यस्य कैथ-५ त्रिदर्थसंस्पृशित्वे सर्वथार्थस्यानभिधेयत्वविरोधः । स्वपक्षविपक्षयोश्च सत्यासत्यत्वप्रदर्शनाय शास्त्रं प्रैणयन् वस्तु सर्वथाऽनभिधेयं प्रतिजानाति इत्युपेक्षणीयप्रश्नः, सर्वथाभिधेयरहितेन तेन तस्य प्रणेतुमशक्तेः ।

“शोकस्य सूचकं हेतुवचोऽशर्कमपि खैयम्” [प्रमाणवा० १० अ।१७] इत्यभिधानात् । तत्कृतां तत्त्वसिद्धिमुपैजीवति, नार्थस्य तद्वाच्यतामिति किमपि महद्भूतम् । वस्तुदर्शनवंशप्रभवत्वाच्चेतुवचो वस्तुसूचकम्; इत्यक्षणिकैवादिनोपि समानम् । मङ्गचनमेवार्थदर्शनवंशप्रभवं न पुनः परवचनम्; इत्यन्यत्रापि समानम् । १५

सकलवचसां विवक्षामात्रविषयत्वाभ्युपगमाच्च, तावन्मात्रसूचकत्वेन च शब्दस्य प्रामाण्ये सर्वे शाब्दविज्ञानं प्रमाणं स्यात्, प्रत्यागमैस्यापि प्रतिबोधमिप्रायप्रतिपादकत्वाविशेषात् ।

किञ्च, अर्थव्यभिचारवच्छब्दानां विवक्षाव्यभिचारस्यापि दर्शनात्कथं ते तामपि प्रतिपादयेयुः ? गोत्रैस्त्वलनादौ ह्यन्यविषक्षाया-२० मप्यन्यैशब्दप्रयोगो दृश्यते एव । 'सुविदेचितं कौर्यं कौरणं न व्यभिचरति' इति नियमोऽर्थविशेषप्रतिपादकत्वेऽप्यस्याऽस्तु ।

न चास्य विवक्षायास्तदधिकृढार्थस्य वा प्रतिपादकत्वं युक्तम्; ततो वैहिरर्थे प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिप्रतीतेः प्रत्यक्षवत् । यथैव हि

१ सत्येतरव्यवस्थाऽभावे च । २ पूर्वोक्तस्य सत्यत्वप्रचरोक्तस्यासत्त्वमित्यर्थः । ३ अभिषयत्वं शब्दानां यतः । ४ सौगतोक्तस्य । ५ कथञ्चित्पारम्पर्येण । कथम् ? प्रथममक्षिरूपवृत्तादिसकलक्षणलिङ्गदर्शनं, तदनु सन्मन्वसरणं, तदनु शब्दप्रयोग इति । ६ सौगतेनाङ्गीक्रियमाणे । ७ द्विप्रागादिः । ८ सकलक्षणम् । ९ शब्देन । १० शास्त्रान्तरेषु सकलक्षणसूचकं बचोसीति वदति शक्यस्य समर्थस्य हेतोर्बुद्धादिसकलक्षणस्य वाच्यस्य । ११ साध्येऽसक्यमपि । १२ स्वरूपेण । १३ सौगतेन । १४ वचनम् । १५ अङ्गीकरोति । १६ विरूपवृत्तादिसकलक्षणलिङ्गम् । १७ वचनम् = अन्वयः । १८ नैनस्य । १९ ज्ञानस्य । २० परवचनस्य । २१ नैनादिः । २२ गोत्रेण नाम । २३ देवदत्त । २४ विनदत्त । २५ शब्दकलक्षणम् । २६ विवक्षाकलक्षणम् । २७ पटपदादौ ।

प्रत्यक्षात्प्रतिपत्तृप्रणिधानं सामग्रीसापेक्षात्प्रत्यक्षार्थप्रतिपत्तिस्तथा
सङ्केतसामग्रीसापेक्षादेव शब्दाच्छब्दार्थप्रतिपत्तिः सकलजन-
प्रसिद्धा, अन्यथाऽतो बहिरर्थे प्रतिपत्त्यादिविरोधः । न चार्थेऽर्थि-
नोऽर्थित्वादेव प्रवृत्तेः शब्दोऽप्रवर्तकः, अन्यक्षादेरप्येवमप्रवर्त-
५ कत्वप्रसङ्गात् तदर्थेऽप्यभिलाषादेव प्रवृत्तिप्रसिद्धेः । परम्परया
प्रवर्तकत्वं शब्देऽप्यस्तु विशेषाभावात् ।

का चेयं विवक्षा नाम-किं शब्दोच्चारणेच्छामात्रम्, 'अनेन
शब्देनामुमर्थे प्रतिपादयामि' इत्यभिप्रायो वा ? प्रथमपक्षे वक्तु-
ओभोः शास्त्रादौ प्रवृत्तिर्न स्यात् । न खलु कश्चिदनुमत्तः शब्द-
१० निमित्तेच्छामात्रप्रतिपत्त्यर्थं शास्त्रं वाक्यान्तरं वा प्रणेतुं श्रोतुं
प्रवर्तते । दशदादिमादिवाक्यैः सह सर्ववाक्यानामविशेष-
प्रसङ्गश्च, सर्वेषां स्वप्रभवेच्छामात्रानुमार्पकत्वाविशेषात् । अथ
'अनेन शब्देनामुमर्थे प्रतिपादयामि' इत्यभिप्रायो विवक्षा,
तत्त्ववक्तृत्वेन शब्दानामनुमानत्वम्, तदप्ययुक्तम्, व्यभिचारात् ।
१५ न हि शुक्रशारिकोन्मत्तादयस्तथाभिप्रायेण वाक्यमुच्चारयन्ति ।

किञ्च, सैमयानपेक्षं वाक्यं तादृशमभिप्रायं गमयेत्, तत्सापेक्षं
वा ? आद्यविकल्पे सर्वेषामर्थप्रतिपत्तिप्रसङ्गाच्च केचिद्भाषीनभिधः
स्यात् । सैमयापेक्षस्तु शब्दोऽर्थमेव किं न गमयति ? न ह्यय-
मर्थाद्विमेति येन तत्र साक्षात् न चर्तत । यैश्चाशक्यसमयत्वादिकैर्यै
२० शब्दाप्रवृत्तौ न्यायः, सोऽभिप्रायेऽपि समान इत्यभिप्रायावगमोऽपि
शब्दाच्च स्यात् । तत्र स्वलक्षणस्यैभिधानेनैर्निर्देयत्वम् ।

किञ्च, तच्छब्देनैऽप्रतिपाद्याऽनिर्देयत्वमस्योच्येत, प्रतिपाद्य
वा ? न तावदप्रतिपाद्यः अतिप्रसङ्गात् । प्रतिपाद्य चेत्, न;

१ प्रणिधानेन सामग्री । २ शब्दात् । ३ पुरुषस्य । ४ पुरुषस्य । ५ अभिलाषादेव ।
६ प्रत्यक्षमभिलाषमुत्पादयति, अभिलाषाच्चायं प्रवृत्तिरिति । ७ प्रत्यक्षस्य । ८ शब्दोऽप्य-
भिलाषमुत्पादयति, अभिलाषात्प्रवृत्तिरिति । ९ परम्परया प्रवर्तकत्वस्य । १० धीमात् ।
११ शब्दस्य निमित्तं कारणं वा सा, सा चासाविच्छा च सैवेच्छा यन्मूला यतः शब्दो-
च्चारः पुरुषस्य । १२ लेखं नाख्यानां प्रमथ उत्पत्तिर्देसा इच्छायाः सा चासाविच्छा
चेति । १३ विवक्षा धर्मिणी अस्वास्तीति साम्यं शब्दोच्चारणान्यथानुपपत्तेरिति ।
१४ अस्वेदवियोगाभ्यामिति तदभिवाक्यशब्दोच्चारणादिति । १५ समयः-सर्पकैः ।
१६ सर्वतया । १७ अविवेचनः । १८ कविदेशादौ । १९ सकलभाषात्मकशब्दमय-
भाषा । २० द्वितीयविकल्पः । २१ अर्थानामानन्त्यात् । २२ अभिप्रायाणामानन्त्यात् ।
२३ शब्दभोक्तृणां । २४ अशक्यसमयत्वाविशेषात् । २५ सामान्यविशेषात्मकसा-
मेयस्य । २६ शब्देन । २७ सकलज्ञेयः शब्देन । २८ यदादेरप्यनिर्देयत्वमप्रसङ्गात् ।

स्ववचनविरोधात् । शब्देन हि स्वलक्षणं प्रतिपादयता निर्देश्य-
त्वमस्याभ्युपगतं स्यात्, पुनश्च तवेव प्रतिषिद्धमिति । कथं चानि-
र्देश्यशब्देनाप्यस्यानभिधाने अनिर्देश्यत्वसिद्धिः ? भ्रान्तिमात्रात्
ततस्तत्सिद्धौ न परमार्थतस्तदनिर्देश्यमसाधारणं वा सिध्येत् ।
प्रत्यक्षात्तथाभूतस्यास्य प्रसिद्धिः, इत्यपि मनोरथमात्रम्, निर्देश ५
योग्यस्य साधारणासाधारणरूपस्य वस्तुनस्तेन साक्षात्करणात् ।
'वस्तुव्यतिरेकेण नापरा निर्देश्यता साधारणता वा प्रतिभाति'
इत्यसाधारणतायामपि समानम् । 'वस्तुस्वरूपमेव सा' इत्यन्यत्रापि
समानम् ।

किञ्च, विकल्पप्रतिभास्यऽन्यापोहगता वीच्यता वस्तुनि प्रति-१०
पिध्यते, वस्तुगता वा ? आद्यविकल्पे सिद्धे साध्यता । न ह्यन्या-
पोहवाच्यतैव वस्तुवाच्यता, तर्हि प्रतिषेधविरोधात् । द्वितीयपक्षे
तु स्ववचनविरोध इत्युक्तम् । ततः प्रामाणिकत्वमात्मनोऽभ्युप-
गच्छता प्रतीतिसिद्धा वीच्यतार्थस्याभ्युपगन्तव्या ।

सैतम्, वीच्य एवार्थः । तद्वाचकस्तु पदादिस्फोट एव, न १५
पुनर्वर्णाः । तं हि किं सैमस्ताः, व्यस्ता वा तद्वाचकाः ? यदि व्यस्ताः,
तदैकैव वर्णेन गवाद्यर्थप्रतिपक्षित्वादितेति द्वितीयोदिवर्णोच्चा-
रणमनर्थकम् । अथ समुदिताः, तत्र क्रमोत्पन्नानामन्तरे विनष्टत्वेन
समुदायस्यैवासम्भवात् । न च युगपदुत्पन्नानां तेषां समुदाय-
कल्पना, एकपुरुषापेक्षया युगपदुत्पत्त्यसम्भवात्, प्रतिनियते-२०
स्थानकैरणप्रयत्नप्रभवत्वात्तेषाम् । न च भिन्नपुरुषप्रयुक्तगकारौ-
कारनिसर्जनीयानां समुदायेऽप्यर्थप्रतिपादकं प्रतिपन्नम्, प्रति-
नियतवर्णक्रमप्रतिपत्त्युत्तरकालभावित्वेन शब्दप्रतिपत्तेः प्रति-
भासनात् ।

१ इति । २ इदं स्वलक्षणमनिर्देश्यमिति नक्षपने । ३ स्वलक्षणस्य । ४ निर्दि-
क्यमात्रम् । ५ शब्देन । ६ स्वलक्षणव्यतिरेकेण साधारणत्वापि पृथक् नो भातीति ।
७ निर्देश्यत्वात् साधारणत्वात् च । ८ वस्तुस्वरूपत्वम् । ९ बुद्धिः । १० शब्देन ।
११ स्वलक्षणे । १२ स्वलक्षणमनिर्देश्यमित्यनेनोक्तेन । १३ बुद्धिप्रतिबिम्बरूप-
स्यान्यापोहवाच्यता विषये चेन्न तर्हि प्रतिषेधः । कथमिति विरोधः । १५ शब्देन
हीलादि । १६ शब्देन । १७ लम्बावसरो भीमांसकोऽवतिष्ठते । १८ शब्देन ।
१९ वर्णोदिवर्णमभ्युपगमनो नित्यो व्यापकः पदादीनामर्थः पदादिस्फोटः । २० एवेन
आवयति । २१ गौरिल्लव गकारौकारनिसर्जनीयाः गकारादिना । २२ हेतोः ।
२३ ओकारादि । २४ उत्पत्तेः । २५ तात्प्रादि । २६ क्रिया ।

न चान्त्यो वर्णः पूर्ववर्णानुगृहीतो वर्णानां क्रमोत्पादे सत्यर्थ-
प्रतिपादकः, पूर्ववर्णानामन्त्यवर्णं प्रत्यनुग्राहकत्वायोगात् । तद्धि
अन्त्यवर्णं प्रति जनकत्वं तेषां स्यात्, अर्थज्ञानोत्पत्तौ सह-
कारित्वं वा ? न तावज्जनकत्वम्, वर्णाद्वर्णोत्पत्तेरभावात्, प्रति-
५ नियतस्थानकरणादिप्रभवत्वाच्चस्य, वर्णाभावेऽप्याद्यवर्णोत्पत्त्युपल-
म्भाच्च । नाप्यर्थज्ञानोत्पत्तौ सहकारित्वं तेषामन्त्यवर्णानुग्राह-
कत्वम्, अविद्यमानानां सहकारित्वस्यैवासम्भवात् । यथा
चान्त्यवर्णं प्रति पूर्ववर्णाः सहकारित्वं न प्रतिपद्यन्ते तथा तज्ज-
नितसंवेदनान्यपि, तत्प्रभवसंस्कारार्थम् ।

- १० किञ्च, संवेदनप्रभवसंस्काराः स्रोत्पादकविश्वानविषयस्मृति-
हेतवो नार्थान्तेरे ज्ञानमुत्पादयितुं समर्थाः । न खलु घटज्ञान-
प्रभवः संस्कारः पटे स्मृतिं विदधद्दृष्टः । न च तत्संस्कारप्रभव-
स्मृतीनां तत्सहायता, तासां युगपदुत्पत्त्यभावात् । अयुगपदुत्प-
न्नानां आवस्थित्यसंभवात् । न चाखिलसंस्कारप्रभवैका स्मृतिः
१५ सम्भवति, अन्योन्यविरुद्धानेकार्थानुभवप्रभवसंस्काराणामप्येक-
स्मृतिजनकत्वप्रसङ्गात् । न चैव्यवर्णाऽनपेक्ष एव 'गौः' इत्यन्ता-
न्त्यो वर्णोऽर्थः प्रतिपादकः, पूर्ववर्णां चारणवैयर्थ्यानुपपत्त्यात् । घट-
शब्दान्त्यव्यवस्थितस्यापि ककुदादिर्भेदार्थप्रतिपादकत्वप्रसङ्गाच्च ।
तच्च वर्णाः समस्ता व्यस्ता वार्थप्रतिपादकाः सम्भवन्ति । भेदसि
२० च गद्यादिशब्देभ्योऽर्थप्रतीतिः, तैर्द्वयथानुपपत्त्या वर्णव्यति-
रिक्तोऽर्थप्रतीतिहेतुः स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः ।

ओत्रविज्ञाने चासौ निरवैयवोऽक्रमः प्रतिभासते, अवण-
व्यापारानन्तरैर्मभिन्नोऽर्थविभासिन्याः संविदोऽनुभवात् । न चासौ
वर्णविषया, वर्णानां परस्परव्यावृत्तकृपतयैकप्रतिभासजनकत्व-
२५ विरोधात् । न चैयं सामान्यविषया, वर्णैर्वैयव्यतिरेकेणापरसामा-

- १ विसर्जनीयलक्षणः । २ गकारोकाराभ्याम् । ३ वत्स्य विनष्टत्वात्पूर्ववर्णाच्चात् ।
४ जायो गकारः । ५ असता पूर्ववर्णानात् । ६ उत्पत्त्यनन्तरं विनष्टत्वात् ।
७ (-पूर्ववर्णानां) चारणारूपाः । ८ अन्त्यवर्णप्रवणकाले प्राक्तनवर्णसंवेदनसंस्कारा-
भावात् । ९ पूर्ववर्णानात् । १० पूर्णवर्णज्ञान । ११ पूर्ववर्णलक्षण । १२ बहिरर्थे
गवादी । १३ पूर्ववर्णस्मृतीनात् । १४ प्राप्तनप्राक्तनानां विनष्टत्वात् । १५ सर्व-
नामेका स्मृतिर्भविष्यतीत्युक्ते जाह । १६ अन्त्यवर्णसहाया । १७ घटपटलकुट-
शकटादि । १८ अन्त्यवर्णापेक्षया अन्त्यवर्णोऽङ्गकारोकारौ । १९ विसर्जनीयस्य ।
२० गोरूप । २१ या भवन्तिवत्युक्ते जाह । २२ स्फोटं विना । २३ निरवयः ।
२४ अभिन्नः-पदः । २५ अर्थः स्फोटः तेव । २६ पदार्थैर्भावभासिन्याः ।
२७ अभिन्नरूप । २८ पदज्ञानध्वजक ।

न्यस्य गकारौकारविसर्जनीयेष्वसम्भवात्, वर्णत्वस्य च प्रति-
नियतार्थप्रत्यायकत्वायोगात् । न चेयं भ्रान्ता, अबाध्यमानत्वात् ।
न चाबाध्यमानप्रत्ययगोचरस्यापि स्फोटस्यासत्त्वम्, अवयविर्द्र-
व्यादेरप्यसत्त्वप्रसङ्गात् । नित्यश्चासौ स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः ।
अनित्यत्वे सङ्केतकालानुभूतस्य तदैव ध्वस्तत्वात्कालान्तरे देशा-
न्तरे च गोशब्दश्रवणात्कुदादिमदर्थप्रतीतिर्न स्यात्, असङ्केति-
तान्छब्दादर्थप्रतिपत्तेरसम्भवात् । सम्भवे वा द्वीपान्तरादागतस्य
गोशब्दाद्वचार्थप्रतिपत्तिः स्यात्, सङ्केतकरणवैयर्थ्यं चासज्येत ।

अत्र प्रतिविधीयते । प्रतीयमानात्पूर्ववर्णेष्वसविशिष्टादन्यवर्णा-
दर्थप्रतीतेरभ्युपगमादुक्तदोषोभावः । न चाभावस्य सहकारित्वं १०
विरुद्धम्, वृत्तफलसंयोगाभावस्य अप्रतिबद्धैरुक्तफलप्रपातक्रि-
याजनने तद्दर्शनात्, इष्टं चोत्तरसंयोगं कुर्वन्प्राक्तनसंयोगाभाव-
विशिष्टं कैर्म, परमाण्वग्निसंयोगश्च परमाणौ तद्वत्पूर्वरूपेणैव
सविशिष्टो रक्तामुत्पादयन्प्रतीतिः ।

यद्वा, पूर्ववर्णविज्ञानाभावविशिष्टः तज्ज्ञानजनितसंस्कारसव्य- १५
पेक्षो वाऽन्यो वर्णोऽर्थप्रतीत्युत्पादकः । ननु संस्कारस्य कथं
विषेयान्तरे विज्ञानजनकत्वम्, इत्यप्यचोद्यम्, तद्भावमावितयार्थ-
प्रतीतेरुपलब्धेः ।

पूर्ववर्णविज्ञानप्रभवसंस्कारश्च प्रैणालिकयाऽन्यवर्णसहायता
प्रतिपद्यते, तथाहि-प्रथमैवर्णे तावद्विज्ञानमै, तेन च संस्कारो २०
जन्यते । ततो द्वितीयवर्णविज्ञानम्, तेन च पूर्वज्ञानाहितसंस्कार-
सहितेन विशिष्टः संस्कारो जन्यते । एवं तृतीयादावपि योजनीयं
यावदन्यः संस्कारोऽर्थप्रतिपत्तिजनकान्यवर्णसँहायः ।

अथवा, शब्दार्थोपलब्धिनिमित्तक्षयोपशमप्रतिनियमादविनष्टौ
एव पूर्ववर्णसंविदस्तत्संस्कारौश्चाऽन्यवर्णसंस्कारं विदधति । २५

१ गवादेः । २ स्फोट एव प्रतिनियतार्थप्रत्यायको वतः । ३ अर्थः-गीठक्षणः,
तल्ल, कुन्दादिभूतोर्थस्य च । ४ (घटवाचकघटशब्दे)घकारादावपि वर्णत्वस्य सत्त्वात् ।
५ भोजप्रलक्षणानेन । ६ प्रलक्षणगोचरस्य घटादेः । ७ स्फोटस्य । ८ स्फोटात् ।
९ गोरहितात् । १० तथा च । ११ भ्रममाणात् । १२ वाक्यपक्षे वर्णस्थाने पदं
ग्राह्यम् । १३ जैनैः । १४ पूर्ववर्णोच्चारणदिवैयर्थ्यलक्षण उक्तदोषः । १५ शाखादिना ।
१६ वसः । १७ तल्ल कारणत्वस्य । १८ ज्वेनादेः । १९ गमनक्रिया । २० कृष्ण-
दिरूप । २१ घटादी । २२ पक्षेऽन्यपदम् । २३ पूर्ववर्णानाम् । २४ गोपिण्डे ।
२५ प्रवाहेण । २६ पक्षे प्रथमपदे । २७ समुत्पद्यते । २८ उभयविषयः, चारणाऽ-
परनामकः । २९ भवति । ३० द्रव्यत्वसंज्ञापेक्षया । ३१ ये अविनष्टाः ।

तथाभूतसंस्कारप्रभवस्मृतिसव्यपेक्षो बान्त्यो वर्णः पदार्थप्रति-
पत्तिहेतुः । वाक्यार्थप्रतिपत्तावब्ययमेव न्यायोऽङ्गीकर्तव्यः ।
वर्णाद्वर्णोत्पत्त्यभावप्रतिपादनं च सिद्धसौघनमेव । तदेवं यथोक्त-
सहकारिकारणसव्यपेक्षादन्यवर्णादर्थप्रतिपत्तेरन्वयव्यतिरेकाभ्यां
५ निश्चयात् स्फोटपरिकल्पनाऽसम्भव एव; तदभावेऽप्यर्थप्रतिपत्ते-
रुक्तप्रकारेण सम्भवेऽन्यथानुपपत्तेः प्रक्षयात् । न खलु दृष्टादेव
कारणात्कार्योत्पत्तावद्वष्टकारणान्तरपरिकल्पना युक्तिः स(किस)-
ङ्गता अतिप्रसङ्गात् ।

न चैवंवादिनो वर्णोभ्यः स्फोटाभिव्यक्तिर्घटते; तथाहि-न सम-
१० स्तास्ते स्फोटमभिव्यज्जयन्ति; उक्तप्रकारेण तेषां सामस्यासम्भ-
वात् । नापि प्रत्येकम्; वर्णान्तरोच्चारणार्थक्यप्रसङ्गात्, एकैनैव
वर्णेन सर्वात्मनाऽस्याभिव्यक्तत्वात् । पदार्थान्तरप्रतिपत्तिव्यवच्छे-
दार्थं तदुच्चारणमिति चेत्; न; तदुच्चारणेपि तत्प्रतिपत्तेरेवानुष-
ङ्गात् । यथाहि 'गौः' इति पदस्यार्थो गौकारोच्चारणात्प्रतीयते तथौ-
१५ पदोच्चारणात् 'औशनसेः' इति पदार्थोपि, तथा च 'गौः' इति
पदादेव 'गौः, औशनसः' इत्यर्थद्वयं प्रतीयेत । संशयो वा स्यात्-
'किमेकपदस्फोटाभिव्यक्तये गाद्यनेकवर्णोच्चारणं पदान्तरस्फोट-
व्यवच्छेदेन, किं वानेकपदस्फोटाभिव्यक्तयेऽनेकाद्यवर्णोच्चारणम्'
इति ।

२० न च पूर्ववर्णः स्फोटस्य संस्कारेऽन्त्यो वर्णस्तस्याभिव्यञ्जकः
'इति न वर्णान्तरोच्चारणवैयर्थ्यम्; अभिव्यक्तिव्यतिरिक्तसंस्कार-
स्वरूपानवधारणात् । न खलु तत्र तैर्वैगाभ्यः संस्कारो निर्वैत्यते;
तस्य भूत्तैवैव भावात् । नापि वासनारूपः; अचेतनत्वात् ।
स्फोटस्य तच्चैतन्याभ्युपगमे वा स्वशैल्यविरोधः । नापि स्थित-

१ ततः संस्कारस्य सव्यपेक्षोऽन्त्यवर्णोऽर्थप्रतीतिजनक इति । २ परेण । ३ केना-
नाम् । ४ उक्तप्रकारेण । ५ तात्त्वादि । ६ अन्त्यवर्णसङ्गावेऽर्थप्रतिपत्तिस्तदभावेऽर्थ-
प्रतिपत्त्यभाव इत्येवम् । ७ स्फोटसङ्गावेऽर्थप्रतिपत्तिः स्फोटाभावे च तदभाव इति
स्फोटानुपपत्तिकायाः । ८ दृष्टादिकारणादूच्यो नञ्कार्यं स्यात् । ९ समस्तोभ्यो व्यतिरेक-
वा वर्णोभ्योऽर्थप्रतीतिर्नास्तीत्येवं वादिनः । १० गौरित्यत्र गामिभ्यक्तस्फोटप्रतिपत्ताय-
होत्पत्त्यादन्यपदाभिव्यक्तस्फोटप्रतिपत्तायोऽर्थान्तरम्, प्रकृत्यपदार्थादन्यः पदार्थः
पदार्थान्तरम् । ११ घटादिपदस्फोटः । १२ पदार्थप्रतिपत्तिं दर्शयन्त्याचार्याः ।
१३ यकस्य गकारस्य । १४ औशनसि शब्दे अत्र औशनसः श्लोक इत्यर्थः ।
१५ कृत्वा । १६ हेतोः । १७ उत्तरवर्णः । १८ कथम् । तथा हि । १९ वर्णः ।
२० पदार्थेऽपि । २१ वासनाभावेतनत्वात् । २२ भीमासक ।

स्वापकः, अस्यापि मूर्च्छद्रव्यवृत्तित्वात्, स्फोटस्य चाऽमूर्च्छत्वाभ्युपगमात् ।

किञ्च, असौ संस्कारः स्फोटस्वरूपः, तद्धर्मो वा ? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; स्फोटस्य वर्णोत्पाद्यत्वानुपपन्नात् । द्वितीयविकल्पोऽसम्भाव्यः, व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तविकल्पानुपपत्तेः । स्फोटासस्या-^५ व्यतिरेके तत्करणे स्फोट एव कृतो भवेत्, तथा चास्याऽनित्यत्वानुपपत्तात् स्वाभ्युपगमविरोधः । ततस्तद्धर्मस्य व्यतिरेके संभ्वन्वानुपपत्तिः तदनुपकारकत्वात् । तस्योपकाराभ्युपगमे व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पानुपपत्तिः, तत्रापि पूर्वोक्त एव दोषोऽनवस्थाकारी । न च व्यतिरिक्तैर्धर्मसङ्गादेषु स्फोटस्यानभिव्यक्तस्वरूपापरित्यागे ^{१०} पूर्ववदर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वम् । तस्यागे चाऽनित्यत्वप्रसक्तिः ।

किञ्च, पूर्ववर्णैः संस्कारः स्फोटस्य क्रियमाणः किमेकदेशेन क्रियते, सर्वात्मना वा ? यद्येकदेशेन; तदा तद्देशानामप्यतोर्थान्तरानर्थान्तरपक्षयोः पूर्वोक्तदोषानुपपत्तिः । सर्वात्मना तु संस्कारे सर्वत्र सर्वेषां ततोऽर्थप्रतिपत्तिः स्यात् । ^{१५}

किञ्च, स्फोटसंस्कारः स्फोटविषयसंवेदनोत्पादनम्, आवरणपनयनं वा ? यथावरणापनयनम्, तदैकैकैकवर्णावरणापगमे सर्वदेशावस्थितैः सर्वदा व्यापिनित्यतयोपलभ्येत, नित्यव्यापित्वाभ्यामपगतावरणस्यास्य सर्वत्र सर्वदोषलभ्यस्वभावत्वात् । अनुपलभ्यस्वभावत्वे वा न कचित्कदाचित्कैर्नचिदप्युपलभ्येत । अथैक-^{२०} देशेनैववरणापगमः क्रियते, नन्वेवमावृतानावृतत्वेन सावयवत्वमस्यानुपपद्येत । अथाऽविनिर्मागत्वैर्देकज्ञानावृतः सर्वज्ञानावृतोऽभ्युपगम्यते, तर्हि तदैवस्योऽशेषदेशैर्विस्थितैरुपलब्धिप्रसङ्गः । यथा च निरस्यत्वादेकज्ञानावृतः सर्वज्ञानावृतः तथैकज्ञानावृतः सर्वज्ञाप्यावृत इति मैत्राणां नोपलभ्येत । ^{२५}

१ शिवस्वापकरूपकम् । २ भीमासकेन । ३ तथा च स्फोटनित्यत्वव्याधातः । ४ स्फोटेन सह । ५ स्फोटधर्मलक्षणसंस्कारेण स्फोटस्वोपकारः क्रियते । ६ परेण । ७ स्फोटात् । ८ धर्मः=संस्कारः । ९ संस्कारापूर्वं यथाऽकृतसंस्कारस्य स्फोटस्वार्थप्रतिपत्तिहेतुत्वं नास्ति । १० षट्ते । ११ अन्यथा । १२ स्फोटोऽनित्यः पूर्वाकारपरित्यागाद् वदाकारपरिणामवृत्तिषण्डवत् । १३ स्फोटस्य । १४ माणिनाम् । १५ व्यापकत्वमित्यत्वात् । १६ प्रतिपत्तुणात् । १७ एकस्यानेक । १८ स्फोटकाळे । १९ नरेण । २० नित्यव्यापिनः सदैकस्वभावत्वात् । २१ न सर्वात्मना । २२ ततश्च निरस्यत्वव्याधातः । स्फोटो न निरस्य आवृतोऽनावृतदेशत्वात् । २३ निरस्यत्वात् । २४ भीमासकेन । २५ पूर्ववत् । २६ नृभिः । २७ ईषत् । २८ स्फोटः ।

अथ स्फोटविषयसंवेदनोत्पादस्तात्संस्कारः, सोप्ययुक्तः, वर्णा-
नामर्थप्रतिपत्तिजननवत् स्फोटप्रतिपत्तिजननेपि सामर्थ्यासम्भ-
वात्, न्यायस्य समानत्वात् ।

अथ मत्तम्-पूर्ववर्णश्रवणज्ञानाहितैसंस्कारस्यात्मनोऽन्त्यवर्ण-
५ श्रवणज्ञानानन्तरं पदादिस्फोटस्याभिव्यक्तरयमदोषः, तदप्यसङ्ग-
तम्, पदार्थप्रतिपत्तेरप्येवं प्रसिद्धेः स्फोटपरिकल्पनार्थनक्यात् ।
चिदात्मव्यतिरेकेण तत्त्वान्तरस्यास्यार्थप्रकाशनसामर्थ्यासम्भवाच्च
स एव हि चिदात्मा विशिष्टशक्तिः स्फोटोऽस्तु । 'स्फुटति प्रकटी-
भवत्यर्थोऽसिन्' इति स्फोटश्चिदात्मा । पदार्थज्ञानावरणवीर्यान्त-
१० रायक्षयोपशमविशिष्टः पदस्फोटः । वीर्यार्थज्ञानावरणवीर्यान्त-
रायक्षयोपशमविशिष्टस्तु चाक्षयस्फोटः इति । भावश्रुतज्ञानपरि-
णतस्यात्मनस्तथाभिधानाऽविरोधात् ।

वार्यवैः स्फोटाभिव्यक्तकाः, इत्यप्ययुक्तम् शब्दाभिव्यक्तिव-
त्स्फोटाभिव्यक्तेस्तस्योऽनुपपत्तेः । तेषां च व्यक्तकत्वे वर्णकल्पना-
१५ वैफल्यम्, स्फोटाभिव्यक्तावर्थप्रतिपत्तौ चामीषामनुपयोगात् ।
स्थिते च स्फोटस्य वर्णवायूत्पादात्पूर्वं सङ्गावे वर्णानां वायूनां वा
व्यक्तकत्वं परिकल्प्येत । न चास्य सङ्गावः कुतश्चित्प्रमाणात्प्रति-
पत्तः । यच्चोक्तम्—

“नैवेनाऽहितवीजायामन्ये (न्ये) न ध्वनिना सह ।

२० औघृत्तिपरिर्पेकायां धुँदौ शब्दोऽवभासते ॥”

[चाक्षयप० १।८५] इति;

तदप्येतेर्नापाकृतम्, नित्यत्वमन्तरेणामपि चार्थप्रतिपत्तिर्यथा
भवति तथा प्रतिपादितमेव ।

१ प्रथमपक्षः । २ पुरुषं प्रति । ३ समस्ता व्यस्ता वा वर्णाः स्फोटप्रतिपत्तिं
जनयन्तीत्यादिप्रकारेण । ४ मीमांसकस्य तत्र । ५ अनित्य । ६ प्रवचसं । ७ तथा
च । ८ ज्ञान । ९ कथम् । तथा हि । १० हेतोः । ११ आत्मा । १२ भवति ।
१३ कथमिदानीं द्वैविध्यमस्य सादित्वात्सङ्गावामाह । १४ वीर्यं शक्तिः । १५ आत्मा ।
१६ तथाभिधाने विरोधो भविष्यतीत्यत्राह । १७ वर्णां या भवन्तु किन्तु । १८ कुतः ।
१९ स्फोटस्य । २० उपकाराभावात् । २१ सति । २२ पूर्ववर्णेन वायुना वा ।
२३ वीजः संस्कारः । २४ अन्त्यवर्णेन वायुना वा । २५ आहृतिः सामर्थ्येनो-
पकरणम् । २६ पूर्णायाम् । २७ ज्ञाने । २८ स्फोटः । २९ वायुमयः स्फोटाभि-
व्यक्तिनिराकरणेन । ३० अनिलेभ्यो वर्णैः यः कथं सादर्व्यप्रतिपत्तिरित्युक्ते सत्याह ।
३१ पूर्व वर्णविचारे ।

यच्च श्रवणव्यापारानन्तरमित्याद्युक्तम्, तदप्यसारम्; घटा-
विशब्देषु परस्परव्यावृत्तकालप्रत्यासत्तिविशिष्टवर्णव्यतिरेकेण
स्फोटोत्पन्नोऽर्थप्रकाशकस्यैकस्याव्यक्षप्रतिपत्तिविषयत्वेनाप्रति-
भासनात् । न चाभिज्ञप्रतिभासमात्रादभिज्ञार्थव्यवस्था, अन्यथा
दूरदद्विरलानेकतरुषु एकप्रतिभासादेकत्वव्यवस्था स्यात् । न ५
चास्य बाध्यमानैतत्वाज्ञैकत्वव्यवस्थापकत्वम्; स्फोटप्रतिभासेपि
बाध्यमानत्वस्य प्रदर्शितत्वात् । न खलु निरवयवोऽङ्गमो नित्य-
त्वादिधर्मोपेतोऽस्ती कचिदपि प्रत्ययेऽवभासते ।

कथं चैवं शब्दस्फोटवद्गन्धादिस्फोटोप्यर्थप्रतीतिनिमित्तं न
स्यात् ? यथैव हि शब्दः कृतसङ्केतस्य कचिदर्थे प्रतिपत्तिहेतुस्तथा १०
गन्धादिरप्यविशेषात् । 'ध्वंविधमेकं गन्धं समाधाय स्पर्शं च
संस्पृश्य रसं चास्वाद्य रूपं चालोक्य त्वयैवंविधोर्थः प्रतिपत्तव्यः'
इति समयग्राहिणां पुनः क्वचित्तादृशगन्धाद्युपलम्भात् तथैव
विधार्थनिर्णयप्रसिद्धो गन्धादिविशेषाभिव्यङ्ग्यो गन्धादिस्फोटो-
ऽस्तु [वर्ण] विशेषाभिव्यङ्ग्यपदादिस्फोटवत् । १५

ध्वतेन हस्तपादकरणमात्रिकाङ्गद्वारादिस्फोटोप्यापादितो द्र-
ष्टव्यः । पदादिस्फोट एव, न तु सौख्यैवंक्षिकयाविशेषाभिव्यङ्ग्यो
हंसपक्षमादिहस्तस्फोटः, विकुट्टितादिलक्षणः पादस्फोटः, हस्त-
पादसंयोगलक्षणः करणस्फोटः, करणद्वयरूपो मात्रिकास्फोटः,
मात्रिकासमूहलक्षणोऽङ्गद्वारस्फोटो वेति मनोरथमात्रम् । तस्यापि २०
स्वस्वावयवाभिव्यङ्ग्यस्य स्वाभिनेयैर्यथप्रतिपत्तिहेतोरशक्यनिराक-
रणत्वात् । तन्निराकरणे वा शब्दस्फोटमिनिवेशो दूरतः परि-

१ परेण । २ वकारात् ढकारो व्यावृत्त इत्यादिप्रकरणेन । ३ पूर्वक्षणे वकारो-
च्चारणमुत्तरक्षणे ढकारोच्चारणमिति । ४ यथेति घटादिशब्देषु परस्परव्यावृत्तकाल-
प्रत्यासत्तिविशिष्टवर्णन्यतिरेकेण स्फोटः प्रत्यक्षविषयत्वेन नावभासते तथापि अभिज्ञ-
प्रतिभासोक्तिः । ननु ततः स्फोटव्यवस्था भविष्यतीत्याशङ्क्यामाह । ५ शब्देषु
स्फोटस्य । ६ समीपं गते सति । ७ अनेकतरुप्रतीत्या । ८ स्फोटः । ९ अवयवेन्द्रिय-
विषयसूत्रे शब्दे शब्दस्मार्थप्रतिपादकत्वाभावादर्थप्रतिपत्त्यर्थं स्फोटकल्पने प्राणेश्चिदादि-
विषयेषु गन्धादिषु तदर्थं चत्वारः स्फोटाः कल्पनीयास्तेषामपि तदभावादिति भावः ।
१० गन्धादिस्फोटनिराकरणद्वारेण शब्दादिस्फोटं निराकुर्वन्तीति भावः । ११ अस्य
शब्दस्मादयमर्थ इति । १२ जातिकुसुमादीनामगन्धादीनामवफलादीनां क्रमिन्त्यादीनां
च प्रतिपत्तिहेतुः । १३ अर्थे कृतसंकेतस्य । १४ गन्धादिस्फोटस्य कथं सङ्केत इत्या-
शङ्क्यामाह । १५ यथाविधः पूर्वं कृतः । १६ गन्धादिस्फोटापादनपरिणामेन ।
१७ नर्तनसमये नृत्यकारस्य । १८ अवयवाः=हस्तपादादयोऽङ्गस्यावयवम् । १९ विकु-
ट्टितं अमण्यम् । २० शुगपद्व्यापारः समायोगः । २१ अभिनेयः=अनुकरणम् ।

त्याज्यः आक्षेपसमाधानानामुभयत्र समानत्वात् । ततः शब्द-
स्फोटस्वरूपस्य विचार्यमाणस्यायोगान्नासौ पदार्थप्रतिपत्तिनि-
बन्धनं प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् । किन्तु पदं वाक्यं वा तन्नि-
बन्धनत्वेन प्रतिपत्तव्यम् ।

- ५ किं पुनः पदं वाक्यं वा यन्निबन्धनाऽर्थप्रतिपत्तिरित्यभिधीयते ?
वर्णानां परस्परापेक्षाणां निरपेक्षः समुदायः पदम् । पदानां तु
तदपेक्षाणां निरपेक्षैः समुदायो वाक्यमिति । नन्वेवं कथमिदं
साधनवाक्यं घटते—‘यत्सत्तत्सर्वं परिणामि यथा घटः, संश्च शब्दः’
इति ? ‘तस्मात्परिणामी’ इत्याकाङ्क्षणोत्साकाङ्क्षस्य वाक्यत्वोन्निष्टे;
१० इत्यप्यचोद्यम्, कैस्यचित्प्रतिपत्तुस्तदनाकाङ्क्षत्वोपपत्तेः । निराका-
ङ्क्षत्वं हि प्रतिपत्तुधर्मो वाक्येष्वभ्यारोप्यते, न पुनः शब्दधर्म-
स्तस्याचेतनत्वात् । स चेत्प्रतिपत्ता तौवर्तार्थं प्रत्येति, किमित्यप-
रमाकाङ्क्षेत् ? पक्षधर्मोपसंहारपर्यन्तसाधनवाक्यादर्थप्रतिपत्ता-
वपि निगमनवचनापेक्षायाम् निगमनान्तपञ्चावयववाक्यादप्यर्थ-
१५ प्रतिपत्तौ परापेक्षाप्रसङ्गात् कैचिन्निराकाङ्क्षत्वसिद्धिः । तेषां च
वाक्याभावात् वाक्यार्थप्रतिपत्तिः कस्यचित्स्यात् । तैतो यस्यै
प्रतिपत्तुर्यावत्सु परस्परापेक्षेषु पदेषु समुदितेषु निराकाङ्क्षत्वं
तस्य तावत्सु वाक्यत्वसिद्धिरिति प्रतिपत्तव्यम् ।

यतेन प्रकरणोदिगम्यैपदान्तरसापेक्षश्रूयमाणसमुदायस्य नि-

१ (जैनमतानुसारेण) अवयवक्रियाभिनेयार्थमित्येकेगान्वार्यस्य इत्यपादादिस्फोट-
लक्षणस्याप्रतिभासनलक्षण आक्षेपस्तद्धि वर्णार्थमित्येकेगान्वार्यस्य स्फोटलक्षणार्थस्याप्रति-
भासनमिति समाधानम् । ननु वर्णानामनित्यत्वेनार्थप्रतिपत्तकत्वायोगात्स्फोट एवार्थ-
प्रतिपत्तिहेतुरित्यभ्युपगन्तव्यम् । तत्र क्रियाया अप्यनित्यत्वेनाभिनेयार्थप्रतिपादकत्वा-
योगादस्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः (मीमांसकेन) इति । २ पदादिस्फोटइत्यादि-
स्फोटयोः । ३ अत्रे सति । ४ जैनैः । ५ पदान्तरगतवर्णनिरपेक्षः । ६ परस्पर ।
७ वाक्यान्तरपदात् । ८ निरपेक्षस्य पदसमुदायस्य वाक्यत्वप्रकारेण । ९ साध्वसिद्धौ ।
१० जैनस्य तव । ११ सर्वं परिणामि सत्त्वादिति योजवम् । १२ आकाङ्क्षणे सामर्थ्यं
कुतो न स्यादित्युक्ते सत्याह साकाङ्क्षेति । १३ जैनस्य । १४ भ्युत्पन्नस्य यस्य हि
प्रतिपत्तुस्तस्मात्परिणामीत्यत्राकाङ्क्षयस्तदपेक्षया तद्वार्यं भवत्युक्तवाक्यलक्षणसङ्गात्,
नान्यापेक्षया । १५ चेतन । १६ शब्दोऽचेतन इति वचनात् । १७ साधनवाक्य-
मात्रेण । १८ साध्वार्थम् । १९ तर्हीति शेषः । २० वाक्ये । २१ निराकाङ्क्ष-
सिद्धमात्रे च । २२ कवित्व । २३ वाक्याभावाद्वाक्यार्थप्रतिपत्तिर्नास्ति यतः ।
२४ अर्थप्रतिपत्तिमिच्छतः पुरुषस्य । २५ वाक्यव्यक्तिप्रकारेण । २६ आदिना
सामर्थ्यम् । २७ तिष्ठतिमनतोत्यादि ।

राकाङ्क्षस्य सत्यभामादिपदेवद्वाक्यत्वं प्रतिपादितं प्रतिपत्तव्यम् ।

यच्चोच्यते—

“आख्यातेशब्दः संज्ञातो जातिः संघातवर्तिनी ।

एकोऽनवयवः शब्दः क्रमो बुद्ध्यऽनुसंहती ॥ १ ॥

पदमाद्यं पदं चान्त्यं पदं सापेक्षमित्यपि ।

वाक्यं प्रति मतिर्मिथा बहुधा न्यायवेदिनाम् ॥ २ ॥”

[वाक्यप० २।१-२]

इति, तदप्युक्तिमात्रम्, यस्मादाख्यातशब्दः पदान्तरनिरपेक्षः, सापेक्षो वा वाक्यं स्यात् ? न तावदाद्यः पक्षः, पदान्तरनिरपेक्ष-
स्यास्य पदत्वात् । अन्यथा आख्यातपदमाद्यः स्यात् । द्वितीयपक्षेऽपि १०
केचिन्निरपेक्षोऽसौ, न वा ? प्रथमपक्षेऽस्मिन्मत्तप्रसङ्गः । द्वितीयपक्ष-
स्त्वयुक्तः, पदान्तरसापेक्षस्याप्यस्य केचिन्निरपेक्षत्वामावे प्रकृ-
तार्थापरिसमाप्त्या वाक्यत्वाऽयोगादेर्द्वैवाक्यवत् ।

संघातो वाक्यमित्यत्रापि देशकृतः, कालकृतो वा वर्णानां
संघातः स्यात् ? न तावदाद्यविकल्पो युक्तः, क्रमोत्पन्नप्रभञ्चसिनां १५
तेषामेकस्मिन्देशेऽवस्थित्या संघातत्वासम्भवात् । द्वितीयविकल्पे
तु पदरूपतामापन्नेभ्यो वर्णैभ्योऽसौ भिन्नः, अभिन्नो वा ? न
तावद्विज्ञानेनैव, तथाविधस्यास्याऽप्रतीतेः, संघातत्वविरोधाच्च
वर्णान्तरैवत् । अथ तेभ्योऽभिन्नोऽसौ, किं सर्वथा, कथञ्चिद्वा ?
सर्वथा चेत्, कथमसौ संघातः संघातित्वरूपवत् ? अन्यथा २०
प्रतिवर्णं संघातप्रसङ्गः । न चैको वर्णः संघातो नैमातिप्रसङ्गात् ।
कथञ्चिच्चेत्, जैनमतप्रसङ्गः—परस्परापेक्षाऽनौकाङ्क्षपदरूपतापन्न-

१ प्रकरणादिगम्यपदान्तरादपरवाक्यान्तरपदस्य । २ पदसमुदायस्य प्रकरणादि-
गम्यतिष्ठतीलादिपदान्तरसापेक्षस्य वाक्यत्वं यथा तद्वदत्रापि विचारणीयम् । ३ वाक्यस्य
लक्षणान्तरम् । ४ भवतिगच्छतीलादिः । ५ वाक्यम् । ६ वर्णानाम् । ७ वर्णत्व-
लक्षणा । ८ स्तोत्रः । ९ वर्णानाम् । १० अनुसंहतिः—परामर्शः । ११ आख्यात-
शब्दस्य वाक्यत्वे । १२ वाक्यान्तरे । १३ जैन । १४ असङ्ख्यकत्वेव वाक्यलक्षणस्ये-
च्छान्श्रुपगमात् । १५ निरपेक्षत्वात् । १६ पदान्तरे । १७ देवदत्त गामिलादिवत् ।
१८ पक्षे । १९ पदानां वा । २० वाक्यम् । २१ सकृत् । २२ खपुसके ‘नंश’
इति पाठो जास्त्वैव । पदेभ्यो भिन्न इत्यर्थः । २३ एकस्य वर्णस्य संघातत्वं विरुद्धं
यथा । २४ वर्णः । २५ संघातः सर्वथा संघातिभ्यो वर्णैभ्योऽभिन्नोपि यदि स्याच्चर्हि ।
२६ अस्तु इत्युक्ते सलाह । २७ पदार्थम्यक्तेरपि जातित्वप्रसङ्गात् । २८ पक्षसिन्धवे
निवर्तमाने (वर्णसमूहाद्वै सति) संघातो न निवर्तते इति भिन्नः । वर्णैभ्यो (पक्षे
पदेभ्यः) जेदेनानुपलभ्यमानत्वादभिन्नः (संघातः) इति । २९ वाक्यान्तरपदेभ्यः ।

वर्णानां कालप्रत्यासत्तिरूपसंघातस्य कथञ्चिद्वर्णैर्मन्योऽभिन्नस्य
जैनोक्तवाक्यलक्षणानतिक्रमात् । साकाङ्क्षान्योन्यानपेक्षाणां तु तेषां
वाक्यत्वे प्राक्प्रतिपादितदोषानुषङ्गः ।

यत्तेन जातिः संघातवर्तिनी वाक्यम्, इत्यपि नोत्सृष्टम्, नि-
५ राकाङ्क्षान्योन्यापेक्षपदसंघातवर्तिन्याः सदृशपरिणामलक्षणायाः
कथञ्चिच्चित्तोऽभिज्ञाया जातेर्वाक्यत्वघटनात्, अन्यथा संघातप-
क्षोक्तशेषदोषानुषङ्गः ।

एकोनवर्षयवः शब्दो वाक्यम्, इत्येतसु मनोरथमाश्रम्, तस्या-
प्रामाणिकत्वात्, स्फोटस्यार्थप्रतिपादकत्वेन प्रागेव प्रतिविहि-
१० तत्वात् ।

क्रमो वाक्यमित्येतसु संघातवाक्यपक्षाभातिशेते इति तद्दो-
षेणैव तदुष्टं द्रष्टव्यम् ।

बुद्धिर्वाक्यमित्यत्रापि भाववाक्यम्, द्रव्यवाक्यं वा सा स्यात् ।
प्रथमप्रकल्पनार्या लिङ्गज्ञाच्यता, पूर्वपूर्ववर्णज्ञानाहितसंस्कारस्या-
१५ त्मनो वाक्यार्थग्रहणपरिणतस्यान्यवर्णश्रवणाऽनन्तरं वाक्यार्थाव-
बोधहेतोर्बुद्ध्यात्मनो भाववाक्यस्याऽसौभिरभीष्टत्वात् । द्रव्यवा-
क्यरूपतां तु बुद्धेः कञ्चेतनः श्रद्धधीत प्रतीतिविरोधात् ?

यतेनानुसंहतिर्वाक्यम्, इत्यपि चिन्तितम्, यथोक्तपदानुसं-
हितिरूपस्य चेतसि परस्फुरतो भाववाक्यस्य परामर्शात्मनोऽ-
२० भीष्टत्वात् ।

‘अर्थं पदमन्त्यमन्यद्वा पदान्तरापेक्षं वाक्यम्’ इत्यपि नोक्तवै-
क्याद्विद्यते, परस्परापेक्षपदसमुदायस्य निराकाङ्क्षस्य वाक्यत्व-
प्रसिद्धेः, अन्यथो पदातिक्षेरमावानुषङ्गः स्यात् ।

- १ पदानां परस्परापेक्षाणां निरपेक्षः समुदायो वाक्यमिति । २ वाक्यान्तरपदेभ्यः ।
३ संघातो भावमित्येतन्निराकरणपरेण अन्येन । ४ सर्वेषु वर्णेषु वर्णत्वलक्षणा ।
५ ओष्ठग्राह्यत्वेन तात्वादिभ्यापारगमितत्वेन वा, न सर्वथा । ६ पदेभ्यो वर्णैर्मन्यम् ।
७ प्रतिवर्णं वाक्यत्वंप्रसङ्गरूपः । ८ निरयः । ९ स्फोटः । १० एको वर्णः सम-
त्पद्यते पञ्चाश्रितीयः तत्तत्तृतीय इत्यादिप्रकारेण वर्णानां क्रमः । ११ वर्णानाम् ।
१२ पक्षे । १३ जेनेः । १४ जचेतनत्वाद्वाक्यानां चेतनत्वादुद्देशः । १५ बुद्धि-
र्वाक्यमित्येतन्निराकरणपरेण अन्येन । १६ पदरूपतामापन्नानां वर्णानां परामर्शानु-
संहतिः । १७ प्रतिभासमानस्य । १८ ‘देवदत्तः’ इति । १९ ‘गच्छति’ इति ।
२० परस्परापेक्षादि इत्यस्यात् । २१ परस्परापेक्षार्हितं पदं यदि वाक्यम् ।
२२ सर्वस्य पदस्य वाक्यत्वात् ।

अन्ये मन्यन्ते—‘पदान्येष पदार्थप्रतिपादनपूर्वकं वाक्यार्थावबोधं विदधानानि वाक्यव्यपदेशं प्रतिपद्यन्ते ।

“पदार्थानां तु मूलत्वमिदं तद्भाषनावर्तः ।”

[मी० श्लो० वाक्या० श्लो० १११]

“पदार्थपूर्वकस्तस्माद्वाक्यार्थोयमवस्थितः ।”

[मी० श्लो० वाक्या० श्लो० ३३६]

इत्यमिधानात्, तेप्यन्धसंप्रविष्टप्रवेशन्यायेनोक्तं वाक्यलक्षणमे-
वानुसरन्ति, स्यून्यापेक्षानाकाङ्क्षाक्षरपदसमुदायस्य वाक्यत्वेन
तैरप्यभ्युपगमात् ।

यदि च पदान्तराद्यैरन्वितानामेवार्थानां पदैरमिधानात्पदार्थ-१०
प्रतिपत्तेर्वाक्यार्थप्रतिपत्तिः स्यात्, तदा देवदत्तपदेनैव देवदत्ता-
र्थस्य गामभ्याजेत्यादिपदवाक्यार्थैरन्वितस्यामिधानाच्छेषपदो-
च्चारणवैयर्थ्यम् । प्रथमपदेस्यैव च वाक्यरूपताप्रसङ्गः । यावन्ति
वा पदानि तावतां वाक्यत्वं यावन्तश्च पदार्थास्तावतां वाक्या-
र्थत्वं स्यात् । अविचक्षितपदार्थव्यवच्छेदार्थत्वाच्च ‘गाम्’ इत्यादि-१५
पदोच्चारणवैयर्थ्यम्, इत्यत्राप्याहुंस्या वाक्यार्थप्रतिपत्तिः स्यात्-
प्रथमपदेनामिहितस्य द्वितीयादिपदाभिधेयैरन्वितस्यार्थस्य द्विती-
यादिपदैः पुनः पुनः प्रतिपादनैत् ।

अथ द्वितीयादिपदैः स्वार्थस्य प्रधानभावेन पूर्वोत्तरपदाभिधे-
यार्थैरन्वितस्यामिधानं नौचपदेन नैतोयमदोषः, तर्हि यावन्ति २०
पदानि तावन्तस्तदर्थः पदान्तराभिधेयार्थान्विताः प्राधान्येन
प्रतिपत्तव्या इति तावत्यो वाक्यार्थप्रतिपत्तयः कथं न स्युः ?

१ मद्राभाकरः । २ अवयवार्थप्रतिपत्तिपूर्वकत्वाद्वाक्यार्थप्रतिपत्तेः । ३ कारणत्वं
वान्यार्थं प्रति । ४ वाक्यार्थस्य । ५ पिपीलिक्वाणुपद्ममयाद्विरूपरित्वागे अमिता पुनरपि
समैव प्रवेशो यथा तथा निच्छया स्त्रीकारोन्वसर्पविक्रमवेशस्यायः । ६ वैतेक्त ।
७ वाक्यविचारानन्तरं वान्यार्थं विचारयन्नाह । ८ गामित्यादिपदान्तरार्थः ।
९ सम्प्रदानाम् । १० देवदत्तलक्षणो गामित्यादिपदार्थैरन्वितो गामित्यादिपदार्थाच्च
पूर्वोत्तरपदार्थैरन्विता भवति । ११ सर्वथा । १२ केवलैर्देवदत्तादिकैः । १३ एकेन ।
१४ गामभ्याजं श्रुत्वा दण्डेनेति । १५ पूर्वपदार्थस्योत्तरपदार्थैः सर्वथान्वितत्वात् ।
१६ तथा च । १७ देवदत्तेति । १८ विवक्षितम् देवदत्त इत्युक्ते गामभ्याजं श्रुत्वा
दण्डेनेत्यादिपदार्थादिविक्षितो देवदत्तेत्युक्ते षष्ठं यच्छाहि भिन्वेत्यादि पदार्थः तस्य
अवच्छेदार्थत्वात् । १९ पुनः पुनः प्रवृत्तिराशुचिः । २० यत्सर्वैवावस्य । २१ देव-
दत्तपदपेक्षया गामभ्याजं श्रुत्वा दण्डेनेति पदैः । २२ द्वितीयादिपदार्थस्यामिधानं
प्रधानभावेन । २३ न द्वितीयादिपदार्थस्यामिधानं प्रधानभावेन यतः ।

न ह्यन्त्यपदोच्चारणात्तदर्थस्याशेषपूर्वपदामिधेयैरन्वितस्य प्रति-
पत्तेर्वाक्यार्थावबोधो भवति, न पुनः प्रथमपदोच्चारणात् तदर्थ-
स्यावान्तरपदामिधेयैरन्वितस्य, द्वितीयादिपदोच्चारणाच्चाऽशेषप-
दामिधेयैरन्वितस्य तदर्थस्य प्रतिपत्तेरित्यत्र निमित्तमुत्पत्त्यामः ।

- ५ अथ 'गम्यमानैस्तैस्तस्यान्वितत्वम् न पुनरभिधीयमानैः तेना-
यमदोषः, किमिदानीमभिधीयमान एव पदस्यार्थः? तथोपगमे
कथमन्विताभिधानम्-विवक्षितपदस्य गम्यमानपदान्तराभिधेया-
र्थानामविषयत्वात्?

अथ पदानां द्वौ व्यापारौ—स्वार्थाभिधानव्यापारः, पदान्तरार्थ-

- १० गमकत्वव्यापारश्च । कथमेवं पदार्थप्रतिपत्तिरावृत्त्यौ न स्यात्?
पदव्यापारात्प्रतीयमानस्यैव गम्यमानस्यापि पदार्थत्वात् । न च
पदव्यापारात्प्रतीयमानत्वाविशेषेपि कश्चिदभिधीयमानः कश्चि-
द्गम्यमान इति विभागो युक्तः ।

ननु पदप्रयोगः प्रेक्षावता पदार्थप्रतिपत्त्यर्थः, वाक्यार्थप्रति-

- १५ पत्त्यर्थो वाभिधीयेत? न तावत्पदार्थप्रतिपत्त्यर्थः, अस्य प्रवृत्त्य-
हेतुत्वात् । अथ वाक्यार्थप्रतिपत्त्यर्थः, तदा पदप्रयोगानन्तरं
पदार्थं प्रतिपत्तिः साक्षाद्भवतीति तत्र पदस्याभिधानव्यापारः
पदार्थान्तरे तु गमकत्वव्यापारः, तदप्यसाम्प्रतम्, 'बृहत्' इति
पदप्रयोगे शाखादिमदर्थस्यैव प्रतिपत्तेः । तदर्थान् प्रतिपन्नात्

- २० 'तिष्ठति' इत्यादिपदवाच्यस्य स्थानाद्यर्थस्य सामर्थ्यतः प्रतीतेः,
तत्र पदस्य साक्षाद्वापाराऽभावतो गमकत्वायोगात् तदर्थस्यैव

१ उक्तमेव समर्थयन्ति । सर्वेभ्यः पदेष्वपि वाक्यार्थावबोधो, भवतीति परसामि-
प्रायं मनसि ब्रूया वक्ति जैनः । २ दण्डेनेति । ३ प्रकृतादुच्चार्यमाणास्पदादन्त्यपदं
पदान्तरम् । ४ प्रतिपत्तेर्वाक्यार्थावबोधो, न पुनरिति । भाक्तनं न पुनरिति पदप्र-
सम्बन्धनीयम् । ५ वाक्यार्थावबोधो, न पुनरिति सम्बन्धः । ६ एवं जैनाः ।
७ पदान्तराभिधेयार्थैरन्वितत्वे आहृत्या वाक्यार्थप्रतिपत्तिरुपपन्नदोषो जायते तन्निरासार्थं
पदान्तरार्थानां गम्यमानाभिधेयमानौ द्वावर्थानिति परो वदति । ८ पदान्तरेष्वपिमा-
नैर्गोचरीकृतैरित्यर्थः । ९ उच्चार्यमाणपदार्थस्य । १० उच्यमानैर्द्वितीयादिपदार्थैः ।
११ आक्षेपः । १२ एवं प्रतिपादनसमये । १३ ज्ञायमानो न भवति । १४ परमाज्ञी-
कृते सति । १५ पूर्वपदार्थ उत्तरपदार्थैरन्वित इति । १६ देवदत्तादेः । १७ गामि-
त्वादि । १८ द्वितीयादि । १९ सति । २० पुनः पुनः । २१ केवलं देवदत्तपदार्थस्य
केवलमभ्यासेति पदार्थस्य चेति । २२ प्रयोजनार्थिनां पुंसां प्रवृत्तिहेतुर्न भवति ।
नहि गौरिति शब्दभवनस्याप्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा भवते । २३ पदप्रयोगः । २४ गम्ये ।
२५ तत्तद्व्यान्वितत्वमेव शब्दार्थः । २६ बृहत् इत्यादेः । २७ बृहत्पदार्थस्य ।

तद्वमेकत्वात् । परम्परया तत्रास्य व्यापारे लिङ्गवचनस्य लिङ्गि-
प्रतिपत्तौ व्यापारोऽस्तु, तथा च शाब्दमेवानुमानज्ञानं स्यात् ।
लिङ्गवाचकाच्छब्दाल्लिङ्गस्य प्रतिपत्तेः सैव शाब्दी, न पुनस्तत्प्रति-
पत्तिलिङ्गाल्लिङ्गिप्रतिपत्तिरतिप्रसङ्गात्, तर्हि वृक्षशब्दात्स्थानाद्यर्थ-
प्रतिपत्तिर्मवन्ती शाब्दी मा भूत्तत एव, अस्य सैवार्थप्रतिपत्तावेव^१
पर्यवसितत्वाल्लिङ्गशब्दवत् ।

किञ्च, विशेष्यपदं विशेष्यं विशेषणसामान्येनान्वितम्,
विशेषणविशेषेण वाऽभिघत्ते, तदुभयेन वा । प्रथमपक्षे विशिष्ट-
वाक्यार्थप्रतिपत्तिविरोधः । द्वितीयपक्षे तु निश्चयासम्भवा-
प्रतिनियतविशेषणस्य शब्देनानिर्दिष्टस्य स्वोक्तविशेष्येऽन्यसं-^{१०}
शक्तिः, विशेषणान्तराणामपि सम्भवात् । वक्तुरभिप्रायात्प्रति-
नियतविशेषणस्य तत्रान्वयश्चेत्, न, यं प्रति शब्दोच्चारणं तस्य
वक्तुभिप्रायाऽप्रत्यक्षतस्तदनिर्णयप्रसङ्गात्, आत्मानमेव प्रति वक्तुः
शब्दोच्चारणार्थक्यात् । तृतीयपक्षे तु उभयदोषानुपपन्नः ।

एतेन क्रियासामान्येन क्रियाविशेषेण तदुभयेन वान्वितस्य^{१५}
साधनस्य, साधनसामान्येन साधनविशेषेण तदुभयेन वान्वि-
तार्थः प्रतिपादनमाख्यातेन प्रत्याख्यातम् ।

यदि च पदात्पदार्थे उत्पन्नं ज्ञानं वाक्यार्थाध्यवसायि स्यात्,
तर्हि चक्षुरादिप्रभवं रूपादिज्ञानं गन्धाध्यवसायि किन्न स्यात् ?
अथास्य गन्धादिसाक्षात्कारित्वाभावाच्चायं दोषः, तर्हि पदोत्थ-^{२०}
पदार्थज्ञानस्यापि वाक्यार्थावभासित्वाभावात्कथं तदध्यवसायित्वं

- १ सामर्थ्यात् । २ वृक्षशब्दाच्छाखादिमदर्थप्रतिपत्तिस्तस्याः सक्ताशात्स्थानाद्यर्थ-
प्रतिपत्तिरिति परम्परः । ३ वृक्षपदस्य । ४ परेणास्तीकृते सति । ५ धूमवचनस्य ।
६ लिङ्गी-जसि । ७ किन्तु न लिङ्गप्रभवम् । ८ शाब्दी । ९ प्रत्यक्षप्रतीतिरिन्द्रिया-
दुत्पद्यमाना शाब्दी स्यात् । १० वृक्षशब्दस्य शाखादिमदर्थे साक्षाद्वापारः स्थानाद्यर्थे तु
परम्परयेति । ११ शाखादिमदर्थः । १२ यथा लिङ्गवाचकः शब्दो धूमप्रतिपत्तौ
पर्यवसितः सन्नभिगमको न भवति, धूमस्यैव गमकत्वात् वृक्षशब्दः शाखादिमदर्थस्य
वाचको भवति, न पदार्थान्तरगमकः । १३ अन्विताभिधानपक्षे दूषणमाह ।
१४ गामिति कर्तुं । १५ गोलक्षणम् । १६ शुक्रेति । १७ प्रतिनियतविशेषणविशिष्टः ।
१८ शुक्रेति शब्देन । १९ गामिति शब्देन । २० साक्षादिमदर्थे गोपिण्डे ।
२१ वा गौः स्य किं शुक्रेण विशिष्टं कृष्णेन नेति । २२ कृष्णादीनाम् । २३ शब्दे-
नानिर्दिष्टत्वाविशेषणम् । २४ गामिसादिकारकपदस्य क्रियाकाङ्क्षित्वे विकल्पप्रत्ययः ।
२५ अन्यत्रेत्यादिक्रियापदस्य कारकपदाकाङ्क्षित्वे विकल्पप्रत्ययः ।

स्यात्? चक्षुरादेर्गन्धादाविव पदस्य वाक्यार्थसम्बन्धानवधारणतः सामर्थ्यानुपपत्तेः । तन्नाम्बिताभिधानं श्रेयः ।

नाप्यभिहितान्वयैः, यतोऽभिहिताः यदैरर्थाः शब्दान्तरादन्वीयन्ते, बुद्ध्या वा? न तावदाद्यः पक्षः, शब्दान्तरस्याशेषपदार्थ-
५ विषयस्याभिहितान्वयनिबन्धनस्याभावात् । द्वितीयपक्षे तु बुद्धि-
रेव वाक्यं ततो वाक्यार्थप्रतिपत्तेः, न पुनः पदान्येवं । ननु पदा-
र्थेभ्योऽपेक्षाबुद्धिसन्निधानात्परस्परमन्वितेभ्यो वाक्यार्थप्रति-
पत्तेः परस्परस्यापदेभ्य एव भावाभातो व्यतिरिक्तं वाक्यम्; तर्हि
प्रकृत्यादिव्यतिरिक्तं पदमपि मा भूत्, प्रकृत्यादीनामन्वितानामि-
१० भिधाने अभिहितानां वान्वये पदार्थप्रतिपत्तिप्रसिद्धेः ।

ननु 'पदमेव लोके वेदे वार्थप्रतिपत्तये प्रयोगार्हम् न तु केवला
प्रकृतिः प्रत्ययो वा, पदादपोद्धृत्य तद्भ्युत्पादनार्थं यथाकथञ्चि-
त्तदभिधानात् । तदुक्तम्—“अर्थे गौरित्यत्र कः शब्दः? गकारौ-
कारविसर्जनीया इति भगवानुपैवर्षः” [शाबरभा० १।१।५]
१५ इति । यथैव हि वर्णोऽनंशः प्रकल्पितमात्रांमेवेत्यथा 'गौः' इति
पदमप्यनंशमपोद्धृताकारादिमेवं स्वार्थप्रतिपत्तिनिमित्तमवसी-
यते । इत्यप्यनालोचिताभिधानम्; वाक्यस्यैवं तात्त्विकत्वप्रसिद्धेः,
तद्भ्युत्पादनार्थं ततोऽपोद्धृत्य पदानामुपदेशाद्वाक्यस्यैव लोके
शास्त्रे वार्थप्रतिपत्तये प्रयोगार्हत्वात् । तदुक्तम्—

२० “द्विधा कैश्चित्पदं भिन्नं चतुर्धा पञ्चैधामि वा ।
अपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः प्रकृतिप्रत्ययादिवत् ॥”

[

] इति ।

१ वाक्यवाचकलक्षणः । २ पदागोचरेरन्विता अर्था इति । ३ इति शानाकरसर्व
निरस आहृतनिरासार्थमाह । ४ वाक्यार्थः । ५ देवदत्तादिकैः । ६ एकेन
शब्दान्दारेण । ७ परस्परं सम्बन्धन्ते । ८ एकेन पदान्तरेण सर्वेषां पदार्थो ज्ञातो
अवेत्तदा तेन कृत्वा सम्बन्धप्रतिपत्तिर्यतः । ९ पदपरिचयः । १० वाक्यम् ।
११ वसः । १२ आदिपदेन प्रत्ययवात्तादिग्रहणम् । १३ परस्परं सम्बन्धानात् ।
१४ क्रियाकारकरूपे विज्ञेयविज्ञेयरूपे च । १५ पुण्यकृतः । १६ पदनिष्पत्त्यर्थम् ।
१७ अहो । १८ पदसंज्ञकः । १९ (उपवर्त्तनाभा कृतिः) आह । २० नामाः
पदादादयः । २१ वसः । २२ कल्पितः । २३ साक्षादिमदर्थः । २४ उक्तप्रकारेण ।
२५ पदानि । २६ अर्थःप्रतिपत्तिनिवृत्तिलक्षणः । २७ न तु यामिति पदेन कस्य
चित्प्रतिपत्तिनिवृत्तिर्वा चटते यतः । २८ सुवर्त्तं तिरुन्तं पदमित्यादि । २९ पुण्यकृतम् ।
३० नामाःऽऽख्यापयित्वातकमेवमवचनीयमेवेति । ३१ उपसर्गाधिकम् । ३२ पदानि ।
३३ तच्च पदादपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः पदान्वपोद्धृत्यैव इति शब्दः ।

ततः प्रकृत्याद्यवयवेभ्यः कथञ्चिद्विज्ञमैभिर्न च पदं प्रातीति-
कमभ्युपगन्तव्यम्, न तु सर्वथाऽनंशं वर्णवैतन्नाहकाभावात् ।
तद्वत्पदेभ्यः कथञ्चिद्विज्ञमैभिर्न च वाक्यं द्रव्यभाववाक्यमेदमिदं
प्रोक्तलक्षणलक्षितं प्रातीतिपदमारूढमभ्युपगन्तव्यम् अलं प्राती-
त्यपलापेनेति । ५

प्रामाण्यं सुधियो धियो यदि मतं संवादतो निश्चितात्,
स्युत्यादेरपि किञ्च तैन्मतमिदं तैस्याऽविशेषात्स्फुटम् ।
तैर्तैस्यथा परिकल्पितेयमधुना सन्तिष्ठतेऽतः कथम्-
तस्याज्ज्ञैनमते मतिर्मतिमतां स्थेयाच्चिरं निर्मले ॥ १ ॥

इति श्रीप्रमानन्ददेवविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे १०
तृतीयः परिच्छेदः ॥ श्रीः ॥

१ पदं प्रकृतिर्न भवति, पदं च प्रकृतिर्नेति व्यावृष्टिरूपेण । २ समुदायरूपेण ।
३ निरशस्य वर्णस्य यथा आहकं प्रमाणं नास्ति तथाऽनंशपदस्य च । ४ पदं वाक्यं
न भवति, वाक्यं च पदं न भवतीति व्यावृष्टिरूपेण । ५ समुदायरूपेण । ६ कच-
नात्मकं द्रव्यवाक्यं, नोपात्मकं तु मानवाक्यम् । ७ पदानां परस्परपेक्षायां निरपेक्षः
समुदायो वाक्यमिति । ८ सकलं परिच्छेदाद्यैमुपसंहरन्नाह । ९ पुंसः । १० प्रामा-
ण्यम् । ११ संवादस्य । १२ तत्सम्प्रमाणस्य । १३ स्युत्यादीनां प्रामाण्यप्रति-
पादनसमये ।

श्रीः ।

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ॥

अथोक्तप्रकारं प्रमाणं किं निर्विषयम्, सविषयं वा? यदि निर्विषयम्; कथं प्रमाणं केशोण्डुकादिज्ञानवत्? अथ सविषयम्; कोस्य विषयः? इत्याशङ्क्य विषयविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थं 'सामान्यविशेषात्मा' इत्याद्याह—

५ सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ॥ १ ॥

तस्य प्रतिपादितप्रकारप्रमाणस्यार्थो विषयः । किंविशिष्टः? सामान्यविशेषात्मा । कुत ऐतत्?

पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणप-
रिणामेन अर्थक्रियोपपत्तेश्च ॥ २ ॥

१० अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात्, यो हि यदाकारोऽहेर्निप्रत्य-
यगोचरः स तदात्मको दृष्टः यथा नीलाकारोऽहेर्निप्रत्ययगोचरो
नीलत्वमाधोर्थः, सामान्यविशेषाकारोऽहेर्न्यनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्यय-
गोचरश्चाखिलो बाह्याध्यात्मिकप्रमेयोर्थः, तस्मात्सामान्यविशे-
षात्मेति । न केवलमतो हेतोः स तदात्मा, अपि तु पूर्वो-
१५ त्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेनाऽर्थक्रियोपपत्तेश्च ।
'सामान्यविशेषात्मा तदर्थः' इत्यभिसम्बन्धः ।

कतिप्रकारं सामान्यमित्याह—

सामान्यं द्वेधा ॥ ३ ॥

कथमिति चेत्—

२० तिर्यगूर्द्ध्वताभेदात् ॥ ४ ॥

तत्र तिर्यक्सामान्यस्वरूपं व्यक्तिनिष्ठतया सोदाहरणं
प्रदर्शयति—

१ स्थापूर्वत्वादि । २ ज्ञानं धर्मि प्रमाणं न भवतीति साध्यो धर्मो निर्विषयत्वात्के-
शोण्डुकज्ञानवत् । ३ सामान्यं च विशेषश्च सामान्यविशेषौ तादात्वानी यस्य स
सबोक्तः । ४ सिद्धम् । ५ योगौरेलादिप्रत्ययः अनुवृत्तः । इत्यामः सबलो न
भवतीत्यादिप्रत्ययो व्यावृत्तरूपः । ६ चलेखः=प्रतिपासः । ७ पूर्वोत्तराकारौ पर्यायी-
विशेषः । ८ स्थितिलक्षणं त्रयमूर्द्धतासामान्यम् । त्रयमित्यर्थः । ९ विशेषो व्यक्तिः ।

संहशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत् ॥ ५ ॥

ननु खण्डमुण्डादिव्यक्तितरेकेणापरस्य भवत्कल्पितसामान्यस्याप्रतीतिर्गगनाम्भोरुहवदसंस्थादसाम्प्रतमेवेदं तल्लक्षण-
प्रणयनम्, इत्यप्यसमीचीनम्, 'गौर्गौ' इत्याद्यबाधितप्रत्ययविष-
यस्य सामान्यस्याऽभावासिद्धेः । तथाविधस्याप्यस्यासत्त्वे विशेष-
स्याप्यसत्त्वप्रसङ्गः, तथाभूतप्रत्ययत्वव्यतिरेकेणापरस्य तद्व्य-
वस्थानिवन्धनस्यार्थाप्यसत्त्वात् । अबाधितप्रत्ययस्य च विषय-
व्यतिरेकेणापि सङ्गावाभ्युपगमे ततो व्यवस्थाऽभावप्रसङ्गः । न
चानुगताकारैर्त्वं बुद्धेर्बाध्यते, सर्वत्र देशोदावनुगतप्रतिभासस्याऽ-
स्त्वलङ्घ्यस्य तथाभूतव्यवहारहेतोरुपलम्भात् । अतौ व्यावृत्ता-
कारानुमेषानधिगतमनुगताकारमवभासस्यऽबाधितरूपा बुद्धिः
अनुभूयमानानुगताकारं वस्तुभूतं सामान्यं व्यवस्थापयति ।

ननु विशेषव्यतिरेकेण नापरं सामान्यं बुद्धिर्मेदोभावात् । न च
बुद्धिर्मेदमन्तरेण पदार्थमेदव्यवस्थाऽतिप्रसङ्गात् । तदुक्तम्— १५

“न मेदोद्भिन्नमस्त्यैत्यसामान्यं बुद्धिर्मेदेतैः ।

बुद्ध्याकारस्य मेदेन पदार्थस्य विभिन्नता ॥”

[] इति;

तदप्यपेशलम्, सामान्यविशेषयोरुद्भिर्मेदस्य प्रतीतिसिद्ध-
त्वात् । ऊपरसादेस्तुल्यकालस्याभिज्ञाश्रयवर्तिनोप्येत एव मेद-
प्रसिद्धेः । एकैन्द्रियाध्यवसेयत्वाज्जातिव्यक्त्योरमेदे वातातपा-
दावप्यमेदप्रसङ्गः । तत्रापि हि प्रतिभासमेदोभान्यो मेदव्यव-
स्थाहेतुः । स च सामान्यविशेषयोरप्यस्ति । सामान्यप्रतिभासो
हानुगताकारः, विशेषप्रतिभासस्तु व्यावृत्ताकारोऽनुभूयते ।

१ साक्षादिमत्त्वेन । २ सौगतः । ३ जैन । ४ परेणहीनक्रियमाणे सति ।
५ अबाधितप्रत्ययविषयत्वाविशेषादिति । ६ प्रमाणांतरस्य । ७ विशिष्टसत्त्विकारणं
व्यवस्था । ८ विशेषसत्त्वेति । ९ परेण । १० गौर्गौरिति । ११ विशेषणम् ।
१२ आदिना कालादी । १३ अनुगताकारत्वं बुद्धेर्न बाध्यते यतः । १४ इदं
सामान्यमयं विशेष इति । १५ विशेषात् । १६ सततम् । १७ अनेदे हेतुरयम् ।
१८ यतः । १९ चीनपूरादि । २० अयं रस इदं रूपमिति बुद्धिर्मेदात् । २१ एकै-
न्द्रिया (स्पृशेनेन्द्रिय) ध्यवसायस्याभिज्ञेयात् । २२ अयं वातोऽयमातप इति ।
२३ गौर्गौरित्ययम् । २४ अयमसाक्षिण इति ।

दूरादूर्ध्वतासामान्यमेव च प्रतिभासते न स्थाणुपुरुषविशेषौ तत्र सन्देहात् । तत्परिहारेण प्रतिभासनमेव च सामान्यस्य ततो व्यतिरेकस्तल्लक्षणत्वाद्भेदस्य ।

यदप्युक्तम्—

- ५ “ताभ्यां तद्व्यतिरेकश्च किञ्चाऽदूरेऽवभासनम् ।
दूरेऽवभासमानस्य सन्निधानेऽतिभासनम् ॥”

[प्रमाणवार्तिकालं०]

तदप्यसुन्दरम्, विशेषेपि समानत्वात्, सोपि हि यदि सामान्याद्व्यतिरेकः, तर्हि दूरे वस्तुनः स्वरूपे सामान्ये प्रतिभासमाने
१० किञ्चावभासते ? न हीन्द्रधनुषि नीले रूपे प्रतिभासमाने पीतादिरूपं दूरान्न प्रतिभासते । अथ निकटदेशसामग्री विशेषप्रतिभासस्य जनिका, दूरदेशवर्तिनां च प्रतिपत्तूणां सा नास्तीति न विशेषप्रतिभासः, तर्हि सामान्यप्रतिभासस्य जनिका दूरदेशसामग्री निकटदेशवर्तिनां चासौ नास्तीति न निकटे तत्प्रति-
१५ भासनमिति समः समाधिः । अस्ति च निकटे सामान्यस्य प्रतिभासनं स्पष्टं विशेषस्य प्रतिभासवत्, यादृशं तु दूरे तस्यास्पष्टं प्रतिभासनं तादृशं न निकटे स्वीसामग्र्यभावात् तद्वदेव ।

न चानुगतप्रतिभासो बहिःसाधारणनिमित्तनिरपेक्षो घटते; प्रतिनियतदेशकालाकारतया तस्य प्रतिभासाभावप्रसङ्गात् । न
२० चाऽसाधारणा व्यक्तय एव तन्निमित्तम्, तासां भेदरूपतयाऽऽविष्टत्वात् । तथापि तन्निमित्तत्वे कर्कादिव्यक्तीनामपि गौर्गौरिति बुद्धिनिमित्तत्वानुषङ्गः ।

न चाऽतर्त्कार्यकारणव्यावृत्तिः एवैकप्रत्ययमशीयेकैर्कार्यसाधन-

१ शुच्यन्तरेण सामान्यं व्यवसाययति जैनः । २ कर्ष्वताकारसदृशसामान्यम् ।
३ कर्ष्वताकारसामान्यस्य । ४ विशेषः । ५ इन्द्रधनुषि विवक्षितम् । ६ दूरदेशतादि ।
७ समानाकारलक्षणसामान्यपदार्थः । ८ न बहिः साधारणनिमित्तं सामान्यं तन्निमित्तम् । ९ व्यापकत्वात् । १० परेणास्तीकृते । ११ कर्कः—येताम्बः । १२ व्यक्तीनां तन्निमित्तत्वाविशेषात् । १३ या या व्यक्तयस्तासां भेदरूपाः । १४ कार्यं च कारणं च कार्यकारणे तस्य खण्डादेः कार्यकारणे न विधेते ते अकार्यकारणे यस्माऽसाधन-
स्कार्यकारणः कर्कादिस्तस्यावृत्तिः । दृष्टान्ते समासश्रुतिं दर्शयति । दृष्टान्ते त्वेकेन्द्रियादिरूपे तच्छब्देन विवक्षितेन्द्रियादिरन्यत्र समुदितेतरशुद्ध्यादिर्ग्राहः । बहुमीक्षि-
समासकरणानन्तरं कर्कादिवद्व्या विवक्षितेन्द्रियादिरन्या विवक्षितप्रयोगश्च ग्राह्यः ।
तस्याव्यावृत्तिरित्यवसातव्यः । १५ कर्कादीनामुत्तरलक्षणाः कारणानि, तैस्यो व्यावृत्तिः ।
१६ गौर्गौरित्यादि । १७ आदिशब्देनैकम्यपदारादिर्ग्राहः ।

हेतुः अत्यन्तमेवेपीन्द्रियादिवत् समुदितेर्त्तरगुह्य्यादिवैवेत्य-
भिधातव्यम्; सर्वथा समानपरिणामानाधारे वस्तुन्यतत्कार्य-
कारणव्यावृत्तेरेवासम्भवात् । अनुगतप्रत्ययावृत्तुनि प्रवृत्त्य-
ऽभावप्रसङ्गाच्च । गुह्य्यादिदृष्टान्तोपि साध्यविकलः; न खलु
ज्वरोपशमनशक्तिसमानपरिणामाभावे 'गुह्य्यादयो ज्वरोपश-
मनहेतवः न पुनर्वर्धिन्नपुसादयोपि' इति शक्यव्यवस्थाम्,
'चक्षुरादयो वा रूपज्ञानहेतवस्तज्जननशक्तिसमानपरिणामविर-
हिणोपि न पुना रसादयोपि' इति निर्निवन्धना व्यवस्थितिः ।

किञ्च, अनुगतप्रत्ययस्य सामान्यमन्तरेणैव देशादिनियमेनो-
त्पत्तौ व्यावृत्तप्रत्ययस्यापि विशेषमन्तरेणैवोत्पत्तिः स्यात् । शक्यं १,
हि वक्तुम्-अमेवाविशेष्येकमेव ब्रह्मादिरूपं प्रतिनियतानेकनीला-
द्याभासनिवन्धनं भविष्यतीति किमपररूपादिखलक्षणपरिकल्पे-
नया । ततो रूपादिप्रतिभासस्येवानुगतप्रतिभासस्याप्यालम्ब्यनं
वस्तुभूतं परिकल्पनीयम् इत्यस्ति वस्तुभूतं सामान्यम् ।

एककार्यतासाहचर्येनैकत्वाध्यवसायो व्यक्तीनाम्, इत्यप्यचारः, १८
कार्याणामभेदासिद्धेः, बाह्यदोहादिकार्यस्य प्रतिव्यक्तिभेदात् । तत्रा-
र्थपरैककार्यतासाहचर्येनैकत्वाध्यवसायेऽनवस्था । ज्ञानलक्षणमपि
कार्यं प्रतिव्यक्तिभिन्नमेव ।

अनुभवानामेकपरामर्शप्रत्ययहेतुत्वादेकत्वम्, तद्धेतुत्वाच्च व्य-
क्तीनामित्युपचरितोर्पंचारोपि श्रद्धामात्रगम्यः, अनुभवानामप्य- २८
त्यन्तवैलक्षण्येनैकपरामर्शप्रत्ययहेतुत्वायोगात्, अन्यथा कर्का-
दिव्यक्त्यनुभवेभ्योपि खण्डमुण्डादिव्यक्तौ एकपरामर्शप्रत्ययस्यो-
त्पत्तिः स्यात् । अथ प्रत्यासत्तिविशेषात्खण्डमुण्डाद्यनुभवेभ्य
एवास्योत्पत्तिर्नान्यतः । ननु प्रत्यासत्तिविशेषः कोन्योऽन्यत्र

१ खण्डादयो विशेषा धर्मिणः समानपरिणामरहिता एव एकप्रत्ययमर्शधिकार्य-
साधनहेतवः अतत्कार्यकारणकर्कादिव्यावृत्तिर्यादिन्द्रियादिवत् । २ व्यक्तीनाम् ।
३ आदिना-अर्थात्केचनोक्त्यादिग्रहणम् । ४ समुदितेर्त्तरगुह्य्यादयो विशेषाः समान-
परिणामरहिता एव एकप्रत्ययमर्शधिकार्यहेतवोऽतत्कार्यकारणविवक्षितेन्द्रियादिव्यावृत्ति-
त्वावशात् । ५ झुण्डादि । ६ खण्डादिव्यक्तौ । ७ अभावरूपाया व्यावृत्तेर्भावत्वादन-
ुगतप्रत्ययस्य । ८ तथा हि । ९ कर्कटी । १० निर्विकल्पस्य । ११ बाह्यनीलादि-
खलक्षणम् । १२ बाह्यनीलादिविशेषमन्तरेणैव । १३ सौगतेन त्वया । १४ व्यक्ती-
नामेकत्ववैलक्षण्यसमर्थनार्थम् । १५ निर्विकल्पकप्रत्ययज्ञानानाम् । १६ गौरीरिति ।
१७ एकत्वम् । १८ विकल्पगतमेकत्वमनुभवेऽनुभवगतं चैकत्वं व्यक्तिष्विति ।
१९ निर्विकल्पकेभ्यः ।

समानाकारानुभवात्, एकप्रत्यवमर्शहेतुत्वेनाभिमतानां निर्विकल्पकबुद्धीनामप्रसिद्धेऽथ । अतोऽयुक्तमेतत्—

“एकप्रत्यवमर्शस्य हेतुत्वाद्दीर्घमिदानीं ।

एकधीहेतुभावेन व्यक्तीनामप्यभिज्ञता ॥”

५

[प्रमाणवा० १।११०] इति ।

ततोऽवाधबोधाधिरूढत्वात्सिद्धं सदृशपरिणामरूपं वस्तुभूतं सामान्यम् । तस्याऽनभ्युपगमे—

“नो चेद्भ्रान्तिनिमित्तेन संयोज्येत गुणान्तरम् ।

शुक्लो वी रजिताकारो रूपसौधर्म्यदर्शनात् ॥”

१०

[प्रमाणवा० १।४५] इत्यस्य,

“अयं धर्त्येत्येनां न हि मुक्त्वार्थरूपताम् ।

तस्मात्प्रमेयो(या)ऽधिगतेः प्रमाणं मेर्यैरूपता ॥”

[प्रमाणवा० ३।३०५]

इत्यस्य च विरोधानुपपन्नः ।

१५ तच्चाऽनित्यासर्वगतस्वभावमभ्युपगन्तव्यम्, नित्यसर्वगतस्वभावेति धर्माधिकाकारित्वायोगात् । न खलु गोत्वं बाहदोद्वादादुपयुज्यते, तत्र व्यक्तीनामेव व्यापाराभ्युपगमात् ।

स्वविषयज्ञानजनकत्वेऽपि व्यापारोऽस्य केवलस्य, व्यक्तिसहितस्य वा ? केवलस्य चेत्, व्यक्त्यन्तरालेषु पलम्भप्रसङ्गः । व्यक्तिसहितस्य चेत्, किं प्रतिपन्नाखिलव्यक्तिसहितस्य, अप्रतिपन्नाखिलव्यक्तिसहितस्य वा ? तत्राद्यपक्षोऽयुक्तः, असर्वविदोऽखिलव्यक्तिप्रतिपत्तेरसम्भवात् । द्वितीयपक्षे पुनः एकव्यक्तेरप्यग्रहणे

१ सौगतेन । २ उपचरितोपचारोऽपि अदामात्रगम्यो वतः । ३ निर्विकल्पिकाशुद्धिः । ४ धर्मा । ५ परेण । ६ चैत्यस्मान्तरसूत्रकम् । इति हेतोः स्वलक्षणे भ्रान्तिनिमित्तेनाक्षणीकृतं नो संयोज्येत चेदपि स्वलक्षणस्य परमावभूतमक्षणीकृतं स्यात् स्वलक्षणस्य क्षणीकृतसिद्ध्यर्थं सर्वं क्षणिकं सत्त्वादित्यनुमानं च व्यर्थं सादिति भावः । ७ परमार्थभूतसदृशपरापरोक्षचित्तलक्षणेन । ८ पुरुषेण । ९ क्षणिके स्वलक्षणे वस्तुनि । १० अक्षणीकृतलक्षणम् । ११ वायवार्थकः । १२ जपरमार्थभूतः । १३ परमार्थभूतरूपसादृश्यदर्शनात् । १४ अन्यस्य । १५ विषयविषयिभावं न कारयतीत्यर्थः । १६ निर्विकल्पकशुद्धिः । १७ अन्तर्लक्षणीकर्मणि कर्तुं । १८ पदार्थसादृश्याकारित्वस्य । १९ उभयानां लोकाभ्यां परस्व सादृश्याङ्गीकारो विधत् इति सूचितम् । २० सामान्यस्य । २१ व्यक्तिसहितं केवलम् । २२ पुरुषं प्रति । २३ सामान्यस्य । न च तथा ।

सामान्यज्ञानानुषङ्गः । प्रतिपन्नकतिपयव्यक्तिसहितस्य जनकत्वे तु तस्य सामिरूपकारः क्रियते, न वा ? प्रथमपक्षे सामान्यस्य व्यक्तिकार्यता, तदभिन्नोपकारकरणात् । ततो भिन्नस्यास्य करणे 'तस्य' इतिव्यपदेशासिद्धिः । तत्कृतोपकारेणाप्युपकारान्तरै-
करणेऽनवस्था । द्वितीयपक्षे तु व्यक्तिसहभाववैयर्थ्यम् सामा-
न्यस्य, अकिञ्चित्करस्य सहकारित्वासम्भवात् ।

सामान्येन सहैकज्ञानजनने व्यापाराद्व्यक्तीनां तत्सहकारित्वेपि किमालम्बनभावेन तत्र तासां व्यापारः, अधिपतित्वेन वा ? प्राच्यकल्पनायाम् एकमेनेकाकारं सामान्यविशेषज्ञानं सर्वदा स्यात्, खालम्बनानुरूपत्वात्सकलविज्ञानानाम् । १०

द्वितीयविकल्पे तु व्यक्तीनामनधिगमेपि सामान्यज्ञानप्रसङ्गः । न खलु रूपज्ञाने चक्षुषोधिगतस्याधिपतित्वेन व्यापारो दृष्टः अदृष्टस्य वा, सर्वथा नित्यवस्तुनः क्रमाऽक्रमाभ्यामर्थक्रियाविरो-
धाभास्य न कस्याञ्चिदर्थक्रियायां व्यापारः । व्यापारे वा सह-
कारिनिरपेक्षितया सदा कार्यकारित्वानुषङ्गः, तदवस्थाभाविनैः १५
कार्यजननस्वभावस्य सदा सम्भवात्, अभावे च अनित्यत्वं
स्वभावमेदलक्षणत्वात्तस्य । कार्याजननस्वभावत्वे वा अस्य सर्वदा
कार्याजनकत्वप्रसङ्गः । यो हि यदऽजनकस्वभावः सोऽर्थसहितोपि
न तज्जनयति यथा शालिबीजं क्षित्याद्यविकलसामग्रीयुक्तं कोद्र-
भाङ्कुरम्, अजनकस्वभावं च सामान्यं कार्यस्य, इत्यवस्तुत्वापत्ति- २०
नित्यैकस्वभावसामान्यस्य, अर्थक्रियाकारित्वलक्षणत्वाद्बस्तुनः ।

तथा तत्सर्वसर्वगतम्, सर्वव्यक्तिसर्वगतं वा ? न तावत्सर्व-
सर्वगतम्, व्यस्यन्तरालेऽनुपलभ्यमानत्वाद्व्यक्तिसत्त्वात्मवत् ।
तत्रानुपलम्भो हि तस्याऽव्यक्तत्वात्, व्यवहितत्वात्, दूरस्थित-

१ न विशेषज्ञानानुषङ्गः, न च तथा-विशेषमन्तरेण सामान्याप्रतीतिः ।
२ अयमुपकारः सामान्यसेति । ३ सम्बन्धसिद्ध्यर्थम् । ४ गौरीरिलादि । ५ सामा-
न्यसैकत्वादेकं सामान्यज्ञानम् । ६ व्यक्तीनामनेकत्वादेकाकारम् । ७ अपरिधावा
न्यक्तयः सामान्यज्ञानं कथं जनयन्तीत्युक्ते सत्याहाचार्यः । ८ चक्षुर्धर्मस्य ।
९ सामान्यलक्षणम् । १० स्वविषयज्ञानलक्षणम् । ११ तदवस्था-सहकारिरहि-
तत्वम् । १२ कूटस्थनित्यसामान्यम् । १३ सामान्यं कार्यजनकं न भवति तदजन-
कत्वादित्यप्याह्वयम् । १४ सहकारिकारणम् । १५ अर्थो यदादिः तस्य क्रिया कार्यत्वं
जन्यत्वमिति यावत्, तां करोति यः पदार्थो द्रुतिपण्डलक्षणः सोऽर्थक्रियाकारी, तस्य
भावस्तत्त्वम्, तस्यात् । १६ सर्वांस्तु सत्सम्बन्धिलक्षणमुष्णहृदिन्यक्तिषु । १७ सन्धौ
निवर्तितैकव्यक्तौ ।

त्वात्, अदृश्यत्वात्, स्वाश्रयेन्द्रियसम्बन्धविरहात्, आश्रयसम-
वेतरूपामावाद्वा स्याद्व्यन्तराऽभावात्? न तावदव्यक्तत्वात्,
एकत्र व्यक्तौ सर्वत्र व्यक्तेरभिमतत्वात् । अव्यक्तत्वाच्चान्तराले
तस्यानुपलम्भे व्यक्तिसात्मनोऽप्यनुपलम्भोऽत एवास्तु । तत्रास्य
५ सद्भावावेदकप्रमाणाभावाद्सत्त्वादेवाऽनुपलम्भे सामान्यस्यापि
सोऽसत्त्वादेवास्तु विशेषाभावात् । न खलु प्रत्यक्षतस्तत्तत्रोपल-
भ्यते विशेषरहितत्वात् खरविषाणवत् ।

किञ्च, प्रथमव्यक्तिग्रहणवेलायां तदभिव्यक्तस्यास्य ग्रहणे
अमेदात्तस्य सर्वत्र सर्वदोषलभ्यप्रसङ्गः सर्वात्मनाभिव्यक्त-
१० त्वात्, अन्यथा व्यक्ताव्यक्तसमावसेदेनानेकत्वानुपपन्नादसामान्य-
रूपतापत्तिः । तस्यानुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलम्भाद्व्यत्यन्तराले
सामान्यस्यासत्त्वं व्यक्तिसात्मवत् ।

‘व्यत्यन्तरालेऽस्ति सामान्यं युगपद्विभज्यदेशस्वाधारवृत्तित्वे
सत्येकत्वाद्देशादिवत्’ इत्यनुमानात्तत्र तद्भावासिद्धिः, इत्यप्यसङ्ग-
१५ तम्, हेतोः प्रतिवाच्यऽसिद्धत्वात् । न हि भिन्नदेशास्तु व्यक्तियु-
सामान्यमेकं प्रत्यक्षतः स्थूणादौ वंशादिवत्प्रतीयते, यतो युग-
पद्विभज्यदेशस्वाधारवृत्तित्वे सत्येकत्वं तस्य सिध्यत्स्वाधारान्तरा-
लेऽस्तित्वं साधयेत् । तन्नाव्यक्तत्वात्तत्राऽनुपलम्भः ।

नापि व्यवहितत्वाद्भिन्नत्वादेव । नापि दूरस्थितत्वात्तत्रैव ।
२० नाप्यदृश्यात्मत्वात्, स्वाश्रयेन्द्रियसम्बन्धविरहात्, आश्रय-
समवेतरूपामावाद्वा, अमेदादेव । तत्र सर्वसर्वगतं सामान्यम् ।

नापि स्वव्यक्तिसर्वगतम्, प्रतिव्यक्ति परिसमाप्तत्वेनास्याऽनेकै-
त्वानुपपन्नाद् व्यक्तिसवरूपवत् । कात्स्न्यैकदेशाभ्यां वृत्त्यनुपपत्ते-
र्भ्याऽसत्त्वम् ।

२५ किञ्च, एकत्र व्यक्तौ सर्वात्मना वर्तमानस्यास्यान्यत्र वृत्तिर्न
स्यात् । तत्र हि वृत्तिस्तद्देशे गमनात्, पिण्डेन सहोत्पादात्,

१ एकस्यां व्यक्तौ । २ प्राक्त्ये सति । ३ व्यक्तियु । ४ सामान्यस्याभिव्यक्तेः ।
५ प्रकटरूपसामान्यसैकत्वात् । ६ व्यत्यन्तराले । ७ नाऽभावात् । ८ तत्रस्य सामान्य-
वद्व्यक्तेरपि व्यापकत्वाधिलत्वप्रसङ्गः । ९ सद्भावावेदकप्रमाणाभावस्य । १० व्यापकत्व-
नित्यत्वात् । ११ विशेषरूपताप्रतिपत्तिरिति भावस्तस्याऽनेकरूपत्वात् । १२ देवदत्तेन
व्यभिचारपरिहारार्थं विशेषणद्वयम् । १३ साम्नादौ । १४ जेनादि । १५ व्यक्त्याव-
भिव्यक्तस्य सामान्यस्य । १६ एकत्वभावत्वात् (व्यक्त्या सह) । १७ व्यापित्वात् ।
१८ सामान्यस्याभ्याः खण्ड्यदयः । १९ इन्द्रियसम्बन्धत्वादिबिभ्रिष्टव्यक्तिरूपत्वात् ।
२० व्यक्तीनामानन्त्यात् । २१ अनेकत्वसाक्ष्यलक्षणं दूषणमुदेव्यतीति भावः ।

तद्देशे सद्भावात्, अंशवत्तया वा स्यात्? न तावद्गमनादन्यत्र पिण्डे तस्य वृत्तिः; निष्क्रियत्वोपगमात् ।

किञ्च, पूर्वपिण्डपरित्यागेन तत्तत्र गच्छेत्, अपरित्यागेन वा? न तावत्परित्यागेन; प्राक्तनपिण्डस्य गोत्वपरित्यक्तस्यागोरूपता-प्रसङ्गात् । नाप्यपरित्यागेन; अपरित्यक्तप्राक्तनपिण्डस्यास्यानंशस्य^५ रूपादेरिव गमनासम्भवात् । न ह्यपरित्यक्तपूर्वाधारणां रूपादी-नामाधारान्तरसङ्क्रान्तिर्दृष्टा ।

नापि पिण्डेन सहोत्पादात्, तस्याऽनित्यतानुपङ्गात् । नापि तद्देशे सत्त्वात्; पिण्डोत्पत्तेः प्राक् तत्र निराधारस्यास्यावस्थाना-भावात् । भावे वा स्वाश्रयमात्रवृत्तित्वविरोधः । १०

नाप्यंशवत्तया; निरंशत्वप्रतिज्ञानात् । ततो व्यक्त्यन्तरे सामा-न्यस्याभावानुपङ्गः । परेषां प्रयोगः 'ये यत्र नोत्पन्ना नापि प्राग-वस्थायिनो नापि पश्चादन्यतो देशादागतिमन्तस्ते तत्राऽसन्तः यथा खरोक्षमाक्षे तद्विषाणम्, तथा च सामान्यं तच्छून्यदेशो-त्पादवति घटादिके वस्तुनि' इति । उक्तञ्च— १५

“न यैति न च तत्रास्तीदस्ति पञ्चाक्ष षोडशवत् ।
जहाति पूर्वमाधारमहो व्यसैनसन्ततिः* ॥ १ ॥”

[प्रमाणवा० १।१५३]

‘ये तु व्यक्तिस्वभावं सामान्यमभ्युपगच्छन्ति
“तौदात्म्यमस्य कसाञ्चेत्स्वभावादिति गम्यताम् ।” [] २०

इत्यभिधानात्; तेषां व्यक्तिवत्तस्यासाधारणरूपत्वानुपङ्गाद् व्यक्त्युत्पादविनाशयोर्ध्वंस्यापि तद्योगिर्त्वप्रसङ्गाच्च सामान्यरू-पता । अथाऽसाधारणरूपत्वमुत्पादविनाशयोगित्वं चास्य नाभ्यु-पगम्यते, तर्हि विरुद्धधर्माध्यासतो व्यक्तिभ्योऽस्य भेदः स्यात् ।

१ सामान्यं निष्क्रियमिति वचनात् । २ परेण । ३ व्यक्तिदेशे । ४ जटिल-नाम् । ५ सामान्यमसत् अनुत्पद्यमानादित्यादित्युपरिधबोध्यम् । ६ तच्छून्यौ च तद्देशोत्पादौ चेति । ७ व्यक्त्यन्तरम् । ८ व्यक्तिदेशे । ९ व्यक्तौ गद्यार्थं सत्याम् । १० सामान्यस्य निषेधणम् । ११ वृथा सितिः । * लोकोपं मुद्रितपुस्तके ‘व्यक्ति-भ्योऽस्य भेदः स्यात्’ इत्यनन्तरं मुद्रितः । प्रकरणानुरोधात् स्थानभ्रष्टो भावि-सम्पा० । १२ भीमासक्ताः । १३ व्यक्तिरेव स्वभावो यस्य तयोर्भेदात् । १४ व्यक्त्या सह । १५ भीमासक्तानाम् । १६ ससाधारणरूपतया व्यक्तेरभिज्ञत्वात् । १७ सामान्यम् । १८ व्यक्तिसामान्यबोरोभेदात् । १९ परेण । २० घटपटयोरिव ।

- “तादात्म्यं चेन्मतं जातेर्व्यक्तिजन्मन्यजातता ।
 नाशेऽनाशश्च केनेष्टस्तद्विज्ञानन्वयो न किम् ? ॥ २ ॥
 व्यक्तिजन्मन्यजाता चेदागता नाश्रयान्तरात् ।
 प्रागासीन्न च तद्देशे सा तथा सङ्गता कथम् ? ॥ ३ ॥
 व्यक्तिनाशे न चेन्नष्टा गता व्यक्त्यन्तरं न च ।
 तच्छून्ये न स्थिता देशे सा जातिः केति कथ्यताम् ? ॥ ४ ॥
 व्यक्तेर्जात्यादियोगेपि यदि जातेः सै नैर्धयेते ।
 तादात्म्यं कथमिष्टं स्यादनुपप्लव्यतेतसाम् ? ॥ ५ ॥” []
 ततो यदुक्तं कुमारिलेन—

- १० “विषयेण हि बुद्धीर्ना विना नोत्पत्तिरिष्यते ।
 विशेषादन्यदिच्छन्ति सामान्यं तेन तद्विवक्षम् ॥ १ ॥
 तौ हि तेन विनोत्पन्ना मिथ्याः स्युर्विपर्ययादते ।
 न त्वन्येन विना वृत्तिः सामान्यस्यैह दुष्यति ॥ २ ॥”
 [मी० श्लो० आकृति० श्लो० ३७-३८]

- १५ इति, तन्निरस्तम्, नित्यसर्वगतसामान्यस्याश्रयादेकास्ततो
 भिन्नस्याभिन्नस्य वाऽनेकदोषैर्दुष्टत्वेन प्रतिपादितत्वाद् । अनुगत-
 प्रत्ययस्य च सैदृशपरिणामनिबन्धनत्वप्रसिद्धेः । स चानित्योऽ-
 सर्वगतोऽनेकव्यक्त्वात्मकतयाऽनेकरूपश्च रूपादिवत्प्रत्यक्षत एव
 प्रसिद्धः । ततो भट्टेनायुक्तमुक्तम्—

- “पिण्डमेवेष्टु गौबुद्धिरेकगोत्वनिबन्धना ।
 गवामासैर्करूपाभ्यामेकगोपिण्डबुद्धिदत् ॥ १ ॥”
 [मी० श्लो० वनवाद् श्लो० ४४]

यच्चेदमुक्तम्—

“न शाबलेयाद्गोबुद्धिस्ततोऽन्यालम्बनापि वै ।

१ व्यक्त्या सह । २ तदा इति शेषः । ३ जातेः । ४ व्यक्तेः । ५ जातेः ।
 ६ व्यक्तिवत् । ७ असाधारणता । ८ किन्तु स्यादेव । ९ सति । १० व्यस-
 न्तरात् । ११ जातिः=जन्म । १२ आदिना विनाशप्रवणम् । १३ जालादियोगः ।
 १४ तद्दीप्तिशेषः । १५ जातिव्यक्तयोः । १६ अत्रान्तचेतसात् । १७ सामान्येन ।
 १८ अनुगताकारणम् । १९ वैर्वादिभिः । २० ते । २१ नित्यमवच्छेदम् । २२ वि-
 येण विनोत्पत्तिः कथमित्युक्ते आह । २३ यतः । २४ समवायेन । २५ तादा-
 त्म्येन स्वभावादसैत इत्यर्थः । २६ व्यक्तेः सकाशात् । २७ एकत्वापत्तिव्यप-
 देशाभावादयोनेके । २८ साक्षादियत्वेनात्मनेन सदृश इति । २९ गौरीति ।
 ३० गवामासैर्करूपं च साम्यात् । एक (गौरीत्याध्यात्मिककारण) ज्ञानत्वादेकरूप-
 (गोरूपपिण्ड भावकारण)त्वात्सैवैव । ३१ सामान्यनिबन्धनेति । ३२ ततोऽन्यत्वं
 खण्डादि । ३३ नेति संबन्धः ।

तदभावेऽपि सैद्धावाद् घटे पार्थिवबुद्धिबत् ॥”

[मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४]

तत्सिद्धसाधनम्, व्यक्तिव्यतिरिक्तसदृशपरिणामालम्बनत्वा-
त्तस्याः ।

यथा सामान्यस्य सर्वगतत्वसाधनमुक्तम्—

५

“प्रत्येकसमवेतार्थविषया बाध गोमतिः ।

प्रत्येकं कृत्स्नरूपत्वात्प्रत्येकं व्यक्तिबुद्धिबत् ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४६]

प्रयोगः—येयं गोबुद्धिः सा प्रत्येकसमवेतार्थविषया प्रतिपिण्डं
कृत्स्नरूपपदार्थाकारत्वात् प्रत्येकव्यक्तिविषयबुद्धिबत् । एकत्वम्-१०
व्यस्य प्रसिद्धमेव, तथाहि—यद्यपि सामान्यं प्रत्येकं सर्वात्मना
परिसमाप्तं तथापि तदेकमेवैकाकारबुद्धिग्राह्यत्वात्, यथा नञ्यु-
क्तवाक्येषु ब्राह्मणादिनिवर्त्तनम् । न चेयं मिथ्या, कारणदोषवा-
धकप्रत्ययाभावात् । उक्तञ्च—

“प्रत्येकसमवेतापि जातिरेकैर्बुद्धितः ।

१५

नञ्युक्तेष्विव वाक्येषु ब्राह्मणादिनिवर्त्तनम् ॥ १ ॥

नैकरूपा मतिर्गोत्वे मिथ्या वक्तुं च शक्यते ।

नात्र कारणदोषोस्ति बाधकप्रत्ययोपि वा ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४७-४९]

तदप्युक्तिमात्रम्, प्रतिपिण्डं कृत्स्नरूपपदार्थाकारत्वस्य सदृश-२०
परिणीमाविनाभावित्वेन सौम्यविपरीतार्थं साधनस्य विरुद्धत्वात् ।
नित्यैकरूपप्रत्येकपरिसमाप्तसामान्यसाधने दृष्टान्तस्य सौम्यविक-
लता । तैथामभूतस्य चास्य सर्वात्मना वैदुष्यं परिसमाप्तत्वे सर्वेषां
व्यक्तिभेदानां परस्परभेकरूपतापत्तिः एकव्यक्तिपरिनिष्ठितस्वभाव-
सामान्यपदार्थसंसृष्टत्वात् एकव्यक्तिस्वरूपवत् । सामान्यस्य २५

१ शालकेयामावेति खण्डादिगोबुद्धिसङ्गनात् तदभावेऽपि शालकेयादेस्तत्सङ्गनादि-
सर्गः । २ गोबुद्धेः । ३ जेतपीतादिविशेषमन्तरेण यथा घटे पृथिवीत्वसामान्येन
पार्थिवबुद्धिः । ४ न केवलमेकगोत्वनिवन्धना । ५ यस्मादेकं व्यक्तिं प्रति । ६ गोमतेः ।
७ गौरीरिति प्रत्ययः । ८ अर्थोऽगोत्वलक्षणसामान्यम् । ९ गोत्वादिसामान्यम् ।
१० अयं गौरवं गौरिति । ११ नायं ब्राह्मणो नायं ब्राह्मण इत्यादि । १२ एकमेव ।
१३ इन्द्रियादि । १४ गौरीरिति । १५ हेतोः । १६ सदृशपरिणामः—साध्यम् ।
१७ सर्वगतत्वम् । १८ असर्वगतत्वे । १९ व्यक्तीनां नित्यत्वमेकरूपत्वं च नास्ति
यतः । २० एकत्वानुमाने दूषणमाह । २१ विशेषेषु । २२ अभिज्ञत्वात्, तादा-
त्म्यापन्नत्वात् ।

वानेकत्वापत्तिः, युगपदनकेवस्तुपरिसमाप्तात्मरूपत्वात् दूरतरदेशौवच्छिन्नानेकभाजनगतवित्वादिफलवत् । ततोऽयुक्तमुक्तम्—
 'नात्र बाधकप्रत्ययोस्ति' इति; प्राक्प्रतिपादितप्रकारेणानेकबाध-
 कप्रत्ययोपनिपातात् । प्रत्येकसमवेतायांश्च जातेरसिद्धत्वात्
 ५ 'एकबुद्धिग्राह्यत्वात्' इत्याश्रयासिद्धो हेतुः । स्वरूपासिद्धश्च;
 अबाधसादृश्यबोधाधिगम्यत्वेनैकाकारप्रत्ययग्राह्यत्वस्यासिद्धेः ।
 ब्राह्मणादिनिवृत्तिश्च परमार्थतो नैकरूपास्तीति साध्यविकल-
 मुदाहरणम् ।

प्रातेन यदुक्तमुद्योतकरेण—“गवादिष्वनुवृत्तिप्रत्ययः पिण्डा-

१० दिव्यतिरिक्ताक्षिमिर्चाद्भवति विशेषकर्त्वात्रीलादिप्रत्ययवत् ।
 तथा गोतोऽर्थान्तरं गोत्वं मिश्रप्रत्ययविषयत्वाद्व्यापदिवत् तस्येति
 च व्यपदेशविषयत्वात्, यथा चैत्रस्याश्वश्चैत्राद्व्यपदिर्ह्यमानः”
 [न्यायवा० पृ० ३३३] इति; तन्निरस्तम्; अनुवृत्तिप्रत्ययस्य हि
 सामान्येन पिण्डादिव्यतिरिक्तनिमित्तमात्रसाधने सिद्धेसाध्यता-
 १५ नुपपन्नात्, सदृशपरिणामनिबन्धनतयाऽस्याभ्युपगमात् । नित्यै-
 कानुगामिसामान्यनिबन्धनत्वसाधने दृष्टान्तस्य साध्यविकलता ।
 न ह्यवम्भूतेन क्वचिदैन्वयः सिद्धः ।

न चानुगतज्ञानोपलम्भादेव तथाभूतसामान्यसिद्धिः । यतः किं
 यत्रानुगतज्ञानं तत्र सामान्यसम्भवः प्रतिपद्यते, यत्र वा सामान्य-
 २० सम्भवस्तत्रानुगतज्ञानमिति ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; गोत्वादि-
 सामान्येषु 'सामान्यं सामान्यम्' इत्यनुगताकारप्रत्ययोपलम्भे-
 नाऽपरिसामान्यकल्पनाप्रसङ्गात् । न चात्रासौ प्रत्ययो गौणः;
 अस्त्वलङ्घ्यत्वेन गौणत्वासिद्धेः । तथा प्रागभावादिविषयमात्रेषु

१ सङ्पूर्ण । २ मिश्रमिश्र । ३ नित्याया एकरूपायाः प्रत्येकं परिसमाप्तायाश्च ।
 ४ अयं गौरयं गौरिति । ५ आश्रयभूताया जातेरभावात् । ६ अयमनेन सदृश इति ।
 ७ अनेकरूपसामान्य । ८ कृत्वा । ९ एकाकारप्रत्ययेन प्राक्षं सामान्यं परमते ।
 १० सामान्यस्य । ११ नार्यं कृत्रियो ब्राह्मणो नार्यं वैश्यो ब्राह्मण इत्यादिना
 कृत्वाऽस्यावानामनेकत्वात्, अभावः अभाव इति प्रत्ययसंयुक्तप्रागभावादिवत् ।
 १२ एकत्वेन साध्येन । १३ मीमांसकं प्रति नित्यसर्वगतवातिमिराकरणपरेण ग्रन्थेन ।
 १४ शब्दलशावलेयादिविशेषगोपिण्डादि । १५ सर्वगनित्यत्वात् । १६ भेदकत्वात् ।
 १७ गौरिदं गोत्वमिति । १८ भेदेनाभिधीयमानः । १९ साधारणेन कृत्वा ।
 २० जैनानाम् । २१ पिण्डादिव्यतिरिक्ताक्षिलैकानुगामिसामान्याक्षिमिच्छाद्भवतीति
 साध्यम् । २२ यो यो भेदकप्रत्ययः स स नित्यैकानुगामिसामान्याद्भवतीति ।
 २३ परेण । २४ गवादिभ्यक्तिनिष्ठेषु गोत्वादिसामान्येषु घटत्वमपि सामान्यं घटत्वमपि
 सामान्यमित्यनुगताकारप्रत्ययः । २५ गोत्वादिव्यः । २६ कल्पित ।

‘अभावोऽभावः’ इत्यनुगतप्रत्ययप्रवृत्तिरस्ति, न च परैरभाव-
सामान्यमभ्युपगतम् । न खलु तत्रानुगाम्येकं निमित्तमस्त्यन्यत्र
सदृशपरिणामात् ।

ननु चापरसामान्यस्य प्रागभावादिष्वभावेऽपि सत्ताख्यं महा-
सामान्यमस्ति, तद्वलादेवाभावप्रत्ययोऽनुगतो भविष्यति । ५
उक्तञ्च—

“ननु च प्रागभावादौ सामान्यं वस्तु नेष्यते ।

सैतैव ह्यत्र सामान्यमनुत्पत्त्यादिरूपता” ॥ १ ॥

[मी० श्लो० अपोहवाद श्लो० ११]

अनुत्पत्त्यादिविशिष्टेत्यर्थः । तदयुक्तम्, अभिप्रेतपदार्थव्यतिरि- १०
क्तानां मतान्तरीयार्थानाम् उत्पाद्यकथार्थानां वाऽभावप्रतीतिविप-
यतोपलम्भेन सत्त्वप्रसङ्गात् । तत्राभावेऽनुवृत्तप्रतीतेरनुगाम्ये-
कसामान्यनिबन्धनत्वमस्तीत्यन्यत्राप्यस्यास्तत्रिवन्धनत्वाभावः ।
प्रयोगः—ये क्रमित्वानुगामित्ववस्तुत्वोत्पत्तिमत्त्वसत्त्वादधिभोपे-
तास्ते परकल्पितमित्येकसर्वगतसामान्यनिबन्धना न भवन्ति १५
यथाऽभावेऽभावोऽभाव इति प्रत्ययाः, सामान्येषु सामान्यं
सामान्यमिति प्रत्यया वा, तथा चामी प्रत्यया इति ।

अथ यत्र सामान्यं तत्रैवानुगतज्ञानकल्पना, न, पाचकादिषु
तदभावेऽनुगतप्रत्ययप्रवृत्तेः । न खलु तत्रानुगाम्येकं सामान्य-
मस्ति यत्प्रसादात्तत्प्रवृत्तिः स्यात् । निमित्तान्तरमस्तीति २०
चैतर्त्तिकं कर्म, कर्मसामान्यं वा स्यात्, व्यक्तिः, शक्तिर्वा ? न
तावत्कर्म, तस्य प्रतिव्यक्ति विभिन्नत्वात् । ‘विभिन्नं ह्यभिर्भेदस्य
कारणं न भवति’ इति सर्वोपमारम्भः । तच्चेद्भिन्नमपि तथाभूत-
कार्यकारणं तदैन्यत्र कः प्रद्वेषः ?

किञ्च, तत्कर्म नित्यं वा स्यात्, अनित्यं वा ? न तौर्बन्धित्यम्, २५
तथानुपलब्धेरनभ्युपगमाच्च । अनित्यं तु न सर्वदा स्थितिमदिति
विनष्टे तस्मिन् तथामृतो व्यपदेशो ह्येवं वा स्यात्, अपचतः

१ अभावत्वम् । २ परेण । ३ यत्रा सर्वंगता । ४ जादिना नित्यसर्वगतत्वादि-
ग्रहणम् । ५ ततोऽभावप्रत्ययोऽनुगतो भविष्यति । ६ अभिप्रेतानि द्रव्यगुणकर्मणि ।
७ अद्वैतप्रणानीनाम् । ८ लोके विविक्तकार्यानाम् । ९ पुरुषेषु । १० पाचकः
पाचक इत्यादि । ११ कर्म सामान्यं नास्तीत्युक्ते आह । १२ पचनक्रियायाः पूर्वं नास्ति ।
१३ देवदत्तपद्मदत्तचैत्रनेत्रेषु पचनक्रियालक्षणं कर्म भिन्नम् । १४ अनुगताकारसः ।
१५ जैनमतमभ्युपगते प्रतिव्यक्ति भिन्ने सदृशपरिणामे । १६ अन्वयवृत्तिकर्मणा प्रिकृणा-
वस्थावित्वाभ्युपगमात् । १७ परेण । १८ पाचक इति । १९ पाचक इति ।

क्रियाविरहात् । पचन्नेव हि तथा व्यपदिश्येत नान्यदा । तन्न कर्मैतस्य प्रत्ययस्य निबन्धनम् ।

नापि कर्मसामान्यम्; तद्धि कर्माश्रितम्, कर्माश्रयाश्रितं वा ? यदि कर्माश्रितम्; कथमन्यत्र ज्ञानं जनयेत् ? न ह्यन्यत्र वृत्ति-
५ मदन्यत्र ज्ञानकारणमतिप्रसङ्गात् ।

किञ्च, कर्मसामान्यात् 'पाकः पाकः' इति प्रत्ययः स्यान्न पुनः 'पाचकः पाचकः' इति । अथ कर्माश्रयाश्रितम्; तन्न; कर्माश्रित-
त्वात् । परम्परया कर्माश्रयाश्रितं तत्; इत्यसारम्; अपर्चतः कर्म-
विवेकात् । विविक्ते च कर्मणि न कर्मत्वं कर्मणि तदाश्रये वाऽऽ-
१० श्रितम्, अनाश्रितं च कथं तैस्तत्र तैश्चान्नहेतुः स्यात् ?

अथाऽपचतोऽतीतानागते कर्मणी तैश्चाव्यपदेशज्ञाननिबन्धनं
न कर्मत्वम्; ननु सती, असती वा ते तन्निबन्धनं स्याताम् । न
तावत्सती; अतीतस्य प्रच्युतत्वाद्नागतस्य चालब्धात्मस्वरूप-
त्वात् । असती च कथं कस्यापि निबन्धनमतिप्रसङ्गात् ? तन्न
१५ कर्मत्वमपि तैप्रत्ययस्य निबन्धनम् ।

नापि व्यक्तिः; अनिष्टेर्विभिन्नत्वाच्च ।

नापि शक्तिः; सा हि पाचकादन्या, अनन्या वा स्यात् ? अन-
न्यत्वे तयोरन्यतरदेव स्यात् । अन्यत्वे च अस्या एव कार्योपयोगि-
त्वेन कर्तुरकर्तृत्वानुषङ्गः । अथ पारम्पर्येणोपयोगः—कर्त्ता हि
२० शक्तावुपयुज्यते शक्तिश्च कार्ये । नन्वसौ शक्तावुपयुज्यते स्वरूपेण,
शक्त्यन्तरेण वा ? शक्त्यन्तरेणोपयोगेऽवस्था । स्वरूपेणोपयोगे
कार्येण्यसौ तथा किन्नोपयुज्यते किं परम्परापरिश्रमेण ? न
चान्यत्रिमित्तमस्ति ।

पाचकत्वमस्तीति चेत्, तर्हि द्वैव्योत्पत्तिकाले व्यक्तम्,
२५ अव्यक्तं वा ? व्यक्तं चेत्, तर्हि पाकक्रियायाः प्रागेव तैश्च ज्ञाना-
भिधाने स्याताम् । अथाऽव्यक्तम्; तर्हि पश्चादपि न ते स्यातां

१ पाचक इति । २ कर्मवत्पुरुषाभितम् । ३ कर्माश्रये देवदत्ते । ४ कर्मणि ।
५ देवदत्ते । ६ शुद्धे वृत्तिमान्मदीपो गुहायां ज्ञानकारणं सादितमिति । ७ कर्मत्वं
कर्माश्रितं कर्म च देवदत्ताभितमिति । ८ पुरुषस्य । ९ नष्टे । १० सामान्यम् ।
११ देवदत्ते । १२ पाचक इति । १३ पाचकः पाचक इति । १४ अनुगत-
प्रत्ययस्य । १५ परेणानुपपन्नमात् । १६ अनेकत्वात् । १७ पचनलक्षणं कार्यम् ।
१८ कर्मादिभ्योऽन्यत्रिमित्तं अभिधानातीत्याह । १९ पाचकः पाचक इति ज्ञानव्यपदेश-
बोरोनुगतप्रत्ययहेतुः । २० देवदत्तलक्षण । २१ पाचक इति ।

विशेषाभावात् । तथाहि—तत्पूर्वं द्रव्यसमवार्थधर्मः स्याद्वा, न वा ? सत्त्वे सत्त्ववत्पूर्वमेव व्येक्तिः, तर्थाव्यपदेशश्च स्यात् । अथ न, तदा पञ्चादपि द्रव्यसमवार्थधर्मत्वं न स्यादेकरूपत्वात्तस्य । तन्न पञ्चाद्व्यक्तिस्तस्य ।

अस्तु वा; तथाप्यसौ द्रव्येण, क्रियया, उभौभ्यां वाभिधीयते ? ५ न तावद्द्रव्येण, अस्य प्रागपि विद्यमानत्वात् । नापि क्रियया; तस्या भौनाधेयातिशयेऽकिञ्चित्करत्वात् । नाप्युभाभ्याम्; पृथगऽसामर्थ्यं सहितयोरप्यसौमर्थ्यात् । तच्चानुगतः प्रत्ययोऽनुगाम्येकं सामान्यमालम्बते ।

किञ्च, 'गोत्वं वर्त्तते' इत्यभ्युपेतं भवता, तन्न किं गोव्धेर्व गोत्वं १० वर्त्तते, किं वा गोषु गोत्वंमेव, गोषु गोत्वं वर्त्तते ऐवेति वा ? प्रथमपक्षेऽनन्वयित्वाविशेषावच्छेदेषु गोत्वं वर्त्तते तावदन्यत्रापि किञ्च वर्त्तते ? द्वितीये पक्षे तु सत्त्वद्रव्यत्वादीनां व्यवच्छेदाद्यप्येक-रूप्यभावप्रसङ्गस्तद्वृत्तत्वात्तस्याः । अथ 'गोषु गोत्वं वर्त्तते' एवेति पक्षः, 'तन्न चैन्यत्र गोत्वं वर्त्तते ऐवं' इति गोव्यक्तिवत्कर्त्तादावपि १५ 'गौगौः' इति ज्ञानं स्यात्तद्वृत्तेरविशेषात् । तन्न व्यक्त्यात्मकात् प्रतिव्यक्तिविभिन्नात्सदृशपरिणामात् अन्यद् व्यक्त्यभ्यो भिन्नमेकं सामान्यं घटते ।

विभिन्नं हि प्रतिव्यक्ति सदृशपरिणामलक्षणं सामान्यं विसदृश-परिणामलक्षणविशेषवत् । यथैव हि काचिद्व्यक्तिरुपलभ्यमाना २० व्यक्त्यन्तराद्विशिष्टा विसदृशपरिणामदर्शनादवतिष्ठते तथा सदृशपरिणामदर्शनात्किञ्चित्केनचित्समानमपि 'तेनायं समानः सोऽनेन समानः' इति प्रतीतेः । न च व्यक्तिसरूपादभिन्नत्वात्सामान्य-रूपताव्याघातोऽस्य; रूपादेरप्यत एव रूपादिसभावताव्याघात-

१ केदामावाशिलत्वसैकल्यमानत्वात् । २ देवदत्तलक्षण । ३ धर्मः=समाधायः । ४ देवदत्तस्य । ५ पाचकत्वस्य । ६ पाचकः पाचक इति । ७ द्रव्योपस्थिकाद्येपि । ८ पचाकत्वस्य । ९ पञ्चाद्व्यक्तिः (प्रकटनम्) । १० द्रव्यक्रियान्भ्याम् । ११ देव-दत्तादिना । १२ पचनलक्षणया । १३ पाचकत्वसामान्ये । १४ न च जैनानामिदं दूषणं तेषां शंकेरङ्गीकारात्, परेषां शंकेरङ्गीकारो नास्ति यतः । १५ नैयायिकेन । १६ नान्यत्रैतर्थाः । १७ न सत्त्वद्रव्यत्वादिकं गोषु वर्त्तते । इत्यन्यथाशुचिः (!) । १८ अन्यत्रापि गोत्वं वर्त्तते इत्यर्थः । १९ गोषु गोत्वसम्बन्धायावाविशेषात् । २० समवायादीनां प्रागेव प्रतिक्षिप्तत्वात् । २१ अनन्वयो=विभिन्नत्वमसम्बद्धत्वं वा । २२ अभाषादिषु । २३ कर्त्तादिषु । २४ यवकारयोगेनान्वययोगायोगाऽलम्बनाऽयोगव्यव-च्छेदादिति सिद्धम् । २५ जनेकम् । २६ व्यक्त्यात्मकादिति विशेषणं समर्थयति ।

प्रसङ्गात् । प्रत्यक्षविरोधोऽन्यत्रापि समानः-सामान्यविशेषात्म-
तयार्थस्याध्यक्षे प्रतिभासनात् ।

ननु प्रथमव्यक्तिदर्शनवेलायां सामान्यप्रत्ययस्याभावात्सदृश-
परिणामलक्षणस्यापि सामान्यस्यासम्भवः; तदप्यसाम्प्रतम्; तदा
५ सद्व्यवत्वादिप्रत्ययस्योपलम्भात् । प्रथममेकां गां पश्यन्नपि हि
सदादिना सादृश्यं तत्रार्थान्तरेण व्यपदिशत्येव । अननुभूत-
व्यक्त्यन्तरस्यैकव्यक्तिदर्शने कस्यान्न समानप्रत्ययोत्पत्तिः तत्र
सदृशपरिणामस्य भावादिति चेत् ? तत्रापि विशिष्टप्रत्ययोत्पत्तिः
कस्यान्न स्याद्वैसादृश्यस्यापि भावात् ? परापेक्षत्वात्तस्याप्रसङ्गोऽ-
१० न्यत्रापि समानः । समानप्रत्ययोपि हि परापेक्षस्तामन्तरेण क्वचि-
त्कदाचिदप्यभावात् द्वित्वंदिप्रत्ययवद्दूरत्वादिप्रत्ययवद्वा ।

द्विविधो हि वस्तुधर्मः-परापेक्षः, परानपेक्षश्च, सौल्यादि-
चङ्घर्णादिवर्धः । अतो यथान्यापेक्षो विशेषः स्वामर्थक्रियां व्यावृत्ति-
ज्ञानलक्षणां कुर्वन्नर्थक्रियाकारी, तथा सामान्यमप्यनुगतज्ञान-
१५ लक्षणामर्थक्रियां कुर्वन्नर्थक्रियाकारि न स्यात् ? तद्वाह्यां
पुनर्वाह्योद्वाच्यर्थक्रियां यथा न केवलं सामान्यं कर्तुमुत्सहते
तथा विशेषोपि, उभयार्त्तमेनो वस्तुनो गवादेस्तत्रोपयोगात्,
इत्यर्थक्रियाकारित्वेनैव सामान्यविशेषोपाकारयोरभेदात्सिद्धं वास्त-
वत्वम् ।

२० ततोऽपाकृतमेतत्—

“सर्वे भावाः स्वभावेन स्वस्वभावव्यवस्थितेः ।

स्वभावपरभावान्यां यसाद्यावृत्तिभागिनः ॥ १ ॥

तस्माद्यतो यतोऽर्थानां व्यावृत्तिस्तैन्निरवन्धनाः ।

१ व्यक्तिस्वरूपत्वादभिन्नत्वाविशेषात् । २ एकत्वम् । ३ सत्त्वादित्यर्थं सदृश
रत्नादि । ४ पुरुषस्य । ५ निशिष्टः=निसृष्टः । ६ परो=महिषादिः । ७ परा-
पेक्षाम् । ८ समानप्रत्ययस्य । ९ यथा द्वित्वमेकत्वापेक्षं दूरत्वं चासन्नत्वापेक्षम् ।
१० येतमीतादिवत् । ११ सदृशपरिणामलक्षणम् । १२ अनुगतज्ञानलक्षणार्थक्रिया
यतः । १३ विशेषनिरपेक्षम् । १४ केवलतया । १५ सामान्यविशेषात्मनः ।
१६ न केवलमवाधितप्रत्ययविषयत्वेन । १७ सामान्यविशेषावेव चाकारौ तयोरे-
भेदाद्विशेषाभावादित्यर्थः । १८ सामान्यविशेषाकारौ सिद्धौ यतः । १९ प्रतिक्षणं
ध्वंसिनः परस्परसंसृष्टाः परमाणुरूपा गवादिस्वलक्षणाः । २० वर्तन्ते इति
शेषः । २१ स्वेपां भावानां स्वरूपेण व्यवस्थितेः । २२ सजातीयविजातीयपर-
माणुरूपार्थतः । २३ विजातीयादर्थात् । २४ स्वलक्षणानाम् । २५ व्यावृत्ति-
निरवन्धनं येषां ते ।

ज्ञातिभेदाः प्रकल्प्यन्ते तद्विशेषोपवाहिनः ॥ २ ॥”

[प्रमाणवा० १।४१-४२] इति ।

ननु सादृश्ये सामान्ये ‘स एवायं गौः’ इति प्रत्ययः कथं शबलं दृष्ट्वा शबलं पश्यतो घटेतेति चेत् ? ‘एकत्वोपचारात्’ इति ब्रूमः । द्विविधं होक्तव्यम्-मुख्यम्, उपचरितं च । मुख्यमात्मादिद्रव्ये । ३ सादृश्ये तूपचरितम् । नित्यसर्वगतस्वभावत्वे सामान्यस्यानेक-दोषदुष्टत्वप्रतिपादनात् ।

‘तेन समानोयम्’ इति प्रत्ययश्च कथं स्यात् ? तयोरैकसामान्य-योगाच्चेत् ; न, ‘सामान्यवन्तावेतौ’ इति प्रत्ययप्रसङ्गात् । तयोर-भेदोपचारे तु ‘सामान्यम्’ इति प्रत्ययः स्यात्, न पुनः ‘तेन समानोयम्’ इति । यद्विपुरुषयोरभेदोपचाराद्यद्विसदृशचरितः पुरुषो ‘यद्विः’ इति यथा ।

ननु ‘व्यक्तिर्वैत्सर्मोनपरिणामेष्वपि समानप्रत्ययस्यापरसमान-परिणामहेतुकत्वप्रसङ्गादनवस्था स्यात् । तमन्तरेणाप्यत्र समान-प्रत्ययोत्पत्तौ पर्याप्तं खण्डादिव्यक्तौ समानपरिणामकल्पनया’ १५ इत्यन्यथापि समानम्-विसदृशपरिणामेष्वपि हि विसदृशप्रत्ययो यदि तदन्तरहेतुकोऽनवस्था । स्वभावतश्चेत् ; सर्वत्र विसदृश-परिणामकल्पनानर्थक्यम् ।

न च सदृशपरिणामानामर्थवत्त्वात्मन्यपि समानप्रत्ययहेतुत्वे अर्थानामपि तत्प्रसङ्गः, प्रतिनियतशक्तित्वाद्भावानाम्, अन्यथा २० घटादेः प्रदीपात्स्वरूपप्रकाशोपलम्भात्प्रदीपेपि तत्प्रकाशः प्रदीपा-न्तरादेव स्यात् । स्वकारणकलापादुत्पत्ताः सर्वेऽर्था विसदृशप्रत्य-यविषयाः स्वभावत एवेत्यभ्युपगमे समानप्रत्ययविषयास्ते तथा किं नाभ्युपगम्यन्ते अलं प्रतीत्यपलापेन !

१ सामान्यभेदाः । २ नासनासः । ३ ते खण्डादिकोऽदयश्च विशेषाश्च तान-वगाहन्ते इत्येवशीलाः । ४ विशेषा एव सन्ति न सामान्यमिति भावः । ५ जैने-नास्तीक्रियमाणे सादृश्ये सामान्ये सति । ६ स एवायमात्मादिः पदार्थ इति । ७-साक्षादिमत्त्वेन । ८ मयता भीमासकानान् । ९ खण्डमुष्टयोः शबलशबलयोर्वा । १० सामान्यतद्वतोः । ११ परेणास्तीक्रियमाणे । १२ इदं (व्यक्तिः) सामान्य-मिति । १३ कुन्ताः प्रमिश्रन्ति अथा आगच्छन्तीत्यादिवद्वा । १४ व्यक्तियथा सादृश्यपरिणामाद्येन मुष्टेन सदृशः खण्ड इत्यादि । १५ समान इति परिणामेषु । १६ विसदृशपरिणामपक्षेपि । १७ अपरमिसदृश । १८ तद्विति शेषः । १९ विशेष-रूपाणां । २० स्वात्मनि समानप्रत्ययहेतुत्वप्रसङ्गः । २१ प्रतिनियतशक्तित्वाभावात् । २२ सौगतेन ।

एतेन नित्यं निखिलब्राह्मणव्यक्तिव्यापकं ब्राह्मण्यमपि प्रत्याख्यातम् । न हि तत्तथाभूतं प्रत्यक्षादिप्रमाणतः प्रतीयते । ननु च 'ब्राह्मणोऽयं ब्राह्मणोऽयम्' इति प्रत्यक्षत एवास्य प्रतिपत्तिः । न चेदं विपर्ययज्ञानम्; बाधकाभावात् । नापि संशयज्ञानम्; उभयांशा-
५ नवलम्बित्वात् । पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानपूर्वकोपदेशसहाया चास्य व्यक्तियुक्तिरिति, तत्रापि तत्सहायेति । न चात्राऽनवस्था; वीजाङ्कुरादिवदनादित्वात्तत्तद्रूपोपदेशपरम्परायाः ।

तथानुमानतोपि; तथाहि—ब्राह्मणपदं व्यक्तिव्यतिरिक्तैकनिमित्त-
भिधेयसम्बद्धं पदत्वात्पटादिपदवत् । न चायमसिद्धो हेतुः;
१० धर्मिणि विद्यमानत्वात् । नापि विरुद्धः; विपक्षे एवाभावात् । नाप्य-
नैकान्तिकः; पक्षविपक्षयोरवृत्तेः । नापि दृष्टान्तस्य साम्यवैक-
ल्यम्; पटादौ व्यक्तिव्यतिरिक्तैकनिमित्तभिधेयसम्बद्धत्वाभावे
व्यक्तीनामानन्त्येनाऽनन्तेनापि कालेन सम्बन्धप्रदणाघटनात् ।
तथा, 'वर्णविशेषाध्ययनाचार्यश्चोपवीतादिव्यतिरिक्तनिमित्तनि-
१५ बन्धनं 'ब्राह्मणः' इति ज्ञानम्, तन्निमित्तबुद्धिर्विलक्षणत्वात्,
गवाश्वादिज्ञानवत्' इत्यतोपि तत्सिद्धिः । तथा 'ब्राह्मणेन
यष्टव्यं ब्राह्मणो भोजयितव्यः' इत्याद्यागमौघेति ।

अत्रोच्यते । यत्तावदुक्तम्—प्रत्यक्षत एवास्य प्रतिपत्तिः; तत्र
किं निर्विकल्पकात्, विकल्पकाद्वा ततस्तत्प्रतिपत्तिः स्यात्? न
२० तावन्निर्विकल्पकात्; तत्र जाल्यादिपरामर्शाभावात्, भावे वा
सविकल्पकानुषङ्गः । अन्यथा—

“अस्ति शालोर्ध्वनाशनं प्रथमं निर्विकल्पकम् ।

बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम् ॥ १ ॥

ततः परं पुनर्वस्तुचर्मैर्जात्यादिभिर्यथा ।

२५ बुद्ध्यावसीयते सापि प्रत्यक्षत्वेन सम्मता ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० प्रत्यक्षसू० ११२, १२०] इति वचो विरुद्ध्येत ।

१ विस्फारिताक्षस्य पुरुषस्य पुरो व्यवस्थितेषु क्षत्रियादिसङ्घे । २ इति—
अनुगतैकाकारप्रत्ययतया । ३ पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानादस्य पुत्रस्य ब्राह्मण्यमित्युपदेशः ।
४ वटकुलापादिः । ५ ब्राह्मणोऽयं ब्राह्मणोऽयमिति सामान्यस्य बाधकत्वात् ब्राह्मण इति
सामान्यपदम् । ६ ब्राह्मण्यं तदेवाभिधेयं तेन सम्बद्धम् । ७ पदत्वस्य । ८ नापि
दृष्टान्तस्य साम्यवैकल्यं पटादिपदे पदत्वस्य विद्यमानत्वात् । ९ पदत्व ।
१० द्वितीयमनुमानम् । ११ गौरत्वादि । १२ ब्राह्मण इति ज्ञानम् । १३ अनुसङ्ग-
कृताम् । १४ जाल्यादिपरामर्शकत्वेति निर्विकल्पकत्वे । १५ इन्द्रिय । १६ अक्षि-
विस्फाज्जावन्तरम् । १७ तज्ज्ञानं वस्तु न ज्ञान्यते यतः । विशेषणविशेष्यरहितं शुद्धं
भेदरहितसम्भाव्यब्रह्मण्यवस्तुतो जातम् । १८ भेदरहितं समन्वितमिति बोधम् ।

नापि स्वविकल्पकात्, कंठकलापादिव्यङ्गीनां मनुष्यत्वविशिष्ट-
तयेव ब्राह्मण्यविशिष्टतयापि प्रतिपत्त्यसम्भवात् । पित्रादि-
ब्राह्मण्यज्ञानपूर्वकोपदेशसहाया व्यक्तिर्व्यङ्गिकास्य; इत्यन्यसारम्;
यतः पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानं प्रमाणम्, अप्रमाणं वा? अप्रमाणं
चेत्; कथमतोर्थसिद्धिरतिप्रसङ्गात्? प्रमाणं चेत्; किं प्रत्य-
क्षम्, अनुमानं वा? प्रत्यक्षं चेत्; न, अस्य तद्वाहकत्वेन प्रागेव
प्रतिषेधात् ।

किञ्च, 'ब्राह्मण्यजातेः प्रत्यक्षतासिद्धौ यथोक्तोपदेशस्य प्रत्यक्ष-
हेतुतासिद्धिः, तत्सिद्धौ च तत्प्रत्यक्षतासिद्धिः' इत्यन्योन्या-
श्रयः । यथा च ब्राह्मण्यजातेः प्रत्यक्षत्वमुपदेशेन व्यवस्थाप्यते १०
तथा ब्रह्माद्यद्वैतप्रत्यक्षत्वमपि, तत्कथमप्रतिपक्षा पक्षसिद्धिर्भवतः
स्यात्? अथाद्वैताद्युपदेशस्याध्यक्षवाधितत्वाच्च प्रत्यक्षाङ्गत्वम्,
तदन्यत्रापि समानम् । ब्राह्मण्यविविक्तपिण्डग्राहिणाध्यक्षेणैव हि
तदुपदेशो बाध्यते । अथाऽद्वया ब्राह्मण्यजातिस्तेनायमदोषः;
कथं तर्हि सा 'प्रत्यक्षा' इत्युक्तं शोभेत? १५

किञ्च, औपाधिकोऽयं ब्राह्मणशब्दः, तस्य च निमित्तं वाच्यम् ।
तच्च किं पित्रोरविद्युतैस्त्वम्, ब्रह्मप्रभवत्वं वा? न तावदविद्युतैस्त्वम्;
अनादौ काले तस्याध्यक्षेण ग्रहीतुमशक्यत्वात्, प्रायेण प्रमदानां
कामातुरतयेह जन्मन्यपि व्यभिचारोपलम्भाच्च कुतो योनिनिब-
न्धनो ब्राह्मण्यनिश्चयः? न च विद्युतेतरपित्रऽपत्येषु वैलक्षण्यं २०
लक्ष्यते । न कलुषवद्वयायां गर्दभाश्वप्रभवापत्येष्विव ब्राह्मण्यां
ब्राह्मणशब्दप्रभवापत्येष्वपि वैलक्षण्यं लक्ष्यते ।

क्रियाविलोपोऽत शब्दाभावादेव जातिलोपः स्वयमेवाभ्युपगतः—

“शब्दाभावाच्च दसम्पर्काच्छूत्रेण सह भाषणात् ।

इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चाभिजायते ॥”

[

] इत्यभिधानात् ।

२५

१ कठः सुरे कर्षा भेदः । २ ब्राह्मणव्यङ्गीनाम् । ३ वैषम्यदृष्टान्तोऽयम् । यत्र
दृष्टान्तदार्ढ्यन्तयोक्तयोस्तत्त्वं तन्मान्यदृष्टान्तः । यत्रैकस्यास्तित्वमेकस्य नास्तित्वं
तत्र व्यतिरेकदृष्टान्तः । ४ संशयादपि स्वाभिमतार्थसिद्धिप्रसङ्गात् । ५ ब्राह्मण्य-
जाति । ६ अनन्तरमेव । ७ व्यवस्थाप्यतां शास्त्रोपदेशेन । ८ परपक्षस्यानिरा-
करणात् । ९ कर्जं=कारणम् । १० विशेष्यवाच्यस्य विशेषणं (तस्य वाचकत्वात्) ।
वचः (उदात्तार्क) इत्यभिधानात् । ११ प्रवृत्तेरिति शेषः । १२ अभ्रान्तत्वम् ।
१३ पित्रोः । १४ ब्राह्मण्यस्य । १५ जातेः ब्राह्मण्यस्य । १६ ततो नित्यत्वव्याघातः ।
१७ गीर्मांसेन ।

कथं 'चैवं वादिनो ब्रह्मव्यासविभ्वाभिन्नप्रभृतीनां ब्राह्मण्यसिद्धि-
स्तेषां तज्जन्यत्वासंभवात् । तन्न पित्रोरविष्टतत्वं तस्मिन्निमित्तम् ।

नापि ब्रह्मप्रभवत्वम्; सर्वेषां तत्प्रभवत्वेन ब्राह्मणशब्दाभि-
धेयतानुषङ्गात् । 'तन्मुखाज्जातो ब्राह्मणो नान्यः' इत्यपि मेदो
५ ब्रह्मप्रभवत्वे प्रजानां दुर्लभः । न खल्वेकवृक्षप्रभवं फलं मूले मध्ये
शाखायां च भिद्यते । ननु नागवल्लीपत्राणां मूलमध्यादिदेशोत्पत्तेः
कण्ठभ्रामर्यादिमेदो दृष्ट एवमत्रापि प्रजाभेदः स्यात्; इत्यप्यसत्;
यतस्तत्पत्राणां जघन्योत्कृष्टप्रदेशोत्पादात्तत्पत्राणां तद्भेदो युक्तो
ब्रह्मणस्तु तद्देशाभावात् तद्भेदः । तद्देशभावे चास्य जघन्योत्कृष्ट-
१० तादिप्रसङ्गः स्यात् ।

किञ्च, ब्रह्मणो ब्राह्मण्यमस्ति वा, न वा? नास्ति चेत्, कथमतो
ब्राह्मणोत्पत्तिः? न ह्यमनुष्यादिभ्यो मनुष्याद्युत्पत्तिर्घटते । अस्ति
चेत्किं सर्वत्र, मुखप्रदेश एव वा? सर्वत्र इति चेत्, स एव
प्रजानां भेदाभावोऽनुषज्यते । मुखप्रदेशे एव चेत्, अन्यत्र प्रदेशे
१५ तस्य शुद्रत्वानुषङ्गः, तथा च न पादादयोऽस्य वेन्धा वृषलादि-
वत्, मुखमेव हि विप्रोत्पत्तिस्थानं वन्द्यं स्यात् ।

किञ्च, ब्राह्मण एव तन्मुखाज्जायते, तन्मुखादेवासौ जायेत?
विकल्पद्वयेऽप्यन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि ब्राह्मणत्वे तस्यैव तन्मुखादेव
जन्मसिद्धिः, तत्सिद्धेश्च ब्राह्मणत्वसिद्धिरिति । अथ ज्ञात्वा
२० ब्राह्मण्यस्य सिद्धिस्तन्मुखादेव तज्जन्मनर्थायमदोषः, न; अस्याः
प्रत्यक्षतोऽप्रतीतेः । न खलु खण्डमुण्डादिषु सादृश्यलक्षण-
गोत्ववद्देवदत्तादौ ब्राह्मण्यजातिः प्रत्यक्षतः प्रतीयते, अन्यथा
'किमयं ब्राह्मणोऽन्यो वा' इति संशयो न स्यात् । तथा च
तन्निरासाय गोत्राद्युपदेशो व्यर्थः । न हि 'गौरयं मनुष्यो वा'
२५ इति निश्चयो गोत्राद्युपदेशमपेक्षते ।

ननु यथा सुवर्णादिकं परोपदेशसहायात्प्रत्यक्षात्प्रतीयते तथा
सापि; इत्यप्ययुक्तम्; यतो न पीततामात्रं सुवर्णमतिप्रसङ्गात्,
किन्तु तद्विशेषः, स च नाध्यक्षो दाहच्छेदादिवैयर्थ्यप्रसङ्गात् ।
तस्यापि सहायत्वे तज्जातौ किञ्चित्त्वाविधं सहायं वाच्यम्-तच्चा-

१ पित्रोरविष्टतत्वं ब्राह्मणशब्दप्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तमित्येवं वादिनः । २ जनिष्टव-
सित् । ३ ब्राह्मणशब्दप्रवृत्तिनिमित्तम् । ४ मूले उत्पन्नानि पत्राणि कण्ठस्य जघनं
कुर्वन्ति, मध्ये उत्पन्नानि कण्ठस्य मुखरत्वं कुर्वन्तीति मेदः । ५ तत्र ब्राह्मण्या-
भावात् । ६ सिद्धिरिति सम्बन्धः । ७ रीतिकादेः सुवर्णत्वप्रसङ्गात् । ८ सुवर्णादि-
ज्ञाने । ९ ब्राह्मण्यम् ।

कारविशेषो वा स्यात्, अध्ययनादिकं वा ? न तावदाकारविशेषः ; तस्याब्राह्मणेपि सम्भवात् । अत एवाध्ययनं क्रियाविशेषो वा तत्सहायतां न प्रतिपद्यते । इक्ष्यते हि शूद्रोपि स्वजातिविलोपा-
देशान्तरे ब्राह्मणो भूत्वा वेदाध्ययनं तत्प्रणीतां च क्रियां कुर्वणः ।
ततो ब्राह्मण्यजातेः प्रत्यक्षतोऽप्रतिभासनात्कथं व्रतवन्धवेदाध्य- ५
यनादि विशिष्टव्यक्तावेव सिद्ध्येत् ?

यदप्युक्तम्—‘ब्राह्मणपदम्’ इत्याद्यनुमानम् ; तत्र व्यक्त्यति-
रिक्तैकनिमित्ताभिधेयसम्बद्धत्वं तत्पदस्याध्यक्षवाधितम्, कठ-
कलापादिव्यक्तीनां ब्राह्मण्यविविकानां प्रत्यक्षतो निश्चयात्,
अभ्रातृणत्वविविकशब्दवत् । अप्रसिद्धविशेषणश्च पक्षः ; न खलु १०
व्यक्त्यतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयाभिसम्बद्धत्वं मीमांसकस्या-
साकं वा कैचित्प्रसिद्धम्, व्यक्तिभ्यो व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तस्य -
सामान्यस्याभ्युपगमात् ।

हेतुश्चानैकान्तिकः ; सत्ताकाशकालपदे अद्वैतादिपदे वा व्यक्ति-
व्यतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयसम्बद्धत्वाभावेपि पदेत्वस्य भावात् । १५
तत्रापि तत्सम्बद्धत्वकल्पनायाम् सामान्यवत्त्वेनैद्वैताभ्यविषाणो-
देवैस्तुभूतत्वानुपपन्नात् कुतोऽप्रतिपक्षा पक्षसिद्धिः स्यात् ? सत्ता-
याश्च सामान्यवत्त्वप्रसङ्गः, गगनादीनां वैक्यक्तिकत्वात्कथं
सामान्यसम्भवः ? इष्टान्तश्च साध्यविकलः ; पटादिपदे व्यक्ति-
व्यतिरिक्तैकनिमित्तत्वासिद्धेः । २०

पतेन वर्णविशेषेत्याद्यनुमानं प्रत्युक्तम् । नैगरादौ च व्यक्ति-
व्यतिरिक्तैकनिमित्तनिर्वर्धनाभावेपि तैथाभूतज्ञानस्योपलम्भोद-
नेकान्तः । न खलु नगरादिज्ञाने व्यतिरिक्तमनुवृत्तप्रत्ययनिब-
न्धनं किञ्चिदस्ति, काष्ठादीनामेव प्रत्यासत्तिविशिष्टत्वेन प्रासा-

१ ब्राह्मणे । २ ब्राह्मण्य । ३ साध्यवर्धनः । ४ अभ्रातृणत्वविविकशब्दस्याध्य-
क्षतो निक्षयाद्यप्यब्राह्मणः शब्द इति पक्षः प्रत्यक्षवाधितस्येत्यर्थः । ५ इष्टान्ते ।
६ निबन्धनजनकत्वे भिन्नं व्यक्तिभ्यः, पृथक्पृथक्प्रत्ययत्वादभिन्नं सामान्यमिति ।
७ मीमांसकैर्जनैश्च । ८ पदत्वादिति । ९ आदिना अश्वविषाणादिपदे । १० साध्या-
भावे । ११ हेतोः । १२ इदमेव विवृणोति । १३ पटादिवत् । १४ अवैयस्य ।
१५ परमते । १६ पथा भेदा उपचरिता इत्यर्थः । १७ नैकव्यक्तिकं सामान्यमिति
वचनात् । १८ गगनत्वादि । १९ इति साध्याभावो दर्शितः । २० पटादिपदव-
दिति । २१ निलसर्वगतादिरूपसामान्यं । २२ पदत्वानुमाननिराकरणेन । २३ पदे ।
२४ साध्याभावे । २५ वर्णविशेषादिनिमित्तानुबन्धवैकल्यस्योपलम्भात् । २६ नगर-
मिति शानोपलम्भात् । २७ व्यक्तेः सकाशात् ।

आदिव्यवहारनिबन्धनानां नगरादिव्यवहारनिबन्धनत्वोपपत्तेः,
अन्यथा 'षण्णगरी' इत्यादिव्यभि वेस्त्वन्तरकल्पनालुपङ्गः ।

'ब्राह्मणेन यष्टव्यम्' इत्याद्यागमोपि नात्र प्रमाणम्; प्रत्यक्ष-
वाधितार्थाभिधायित्वात् तृणाग्रे हस्तियूथशतमास्ते इत्यागमवत् ।

- ५ ननु ब्राह्मण्यादिजातिविलोपे कथं वर्णाश्रमव्यवस्थां तद्विबन्धनो
वा तपोदानादिव्यवहारो जैनानां घटेत् ? इत्याप्यसमीचीनम्;
क्रियाविशेषयज्ञोपवीतादिविन्धोपलक्षिते व्यक्तिविशेषे तद्व्यवस्था-
यास्तद्व्यवहारस्य चोपपत्तेः । कथमन्यथा परशुरामेण निःक्षत्री-
कृत्य ब्राह्मणदत्तायां पृथिव्यां क्षत्रियसम्भवं ? यथा चानेन निःक्ष-
१० त्रीकृतासौ तथा केनचिन्निर्वाहणीकृतापि सम्भाव्येत । ततः क्रिया-
विशेषादिनिबन्धन एवायं ब्राह्मणादिव्यवहारः ।

एतेर्नाविर्गानतस्त्रैवर्णिकोपदेशोत्रं वर्तुनि प्रमाणमिति प्रत्यु-
क्तम्; तस्याप्यव्यभिचारित्वाभावात् । इदमन्ते हि बहवस्त्रैवर्णि-
कैरविगानेन ब्राह्मणत्वेन व्यवहियमाणा विपर्ययभाजः । तत्र
१५ परपरिकल्पितायां जातौ प्रमाणमस्ति यतोऽस्याः सङ्गावः स्यात् ।

सङ्गावे वा वेद्यापाटंकादिप्रविष्टानां ब्राह्मणीनां ब्राह्मण्याभावो
निन्दा च न स्यात् जातिर्यतः पवित्रताहेतुः, सा च भवन्मते
तदवस्थैव, अन्यथा गोत्वादपि ब्राह्मण्यं निरुद्धं स्यात् । गवादीनां
हि चाण्डालादिगृहे चिरोषितानामपीदं शिष्टैरादानम्, न तु
२० ब्राह्मण्यादीनाम् । अथ क्रियाभ्रंशात्तत्र ब्राह्मण्यादीनां निन्दता,
न, तज्जात्युपलम्भे तद्विशिष्टवस्तुव्यवसाये च पूर्ववत्क्रियाभ्रंश-
स्याप्यऽसम्भवात् । ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टव्यक्तिव्यवसायो ह्यप्रवृ-
त्ताया अपि क्रियैषायाः प्रवृत्तेर्निमित्तम्, स च तदवस्थ एव

- १ नगरपङ्क्त्यतिरिक्तं षण्णगरीशब्दवाच्यवस्तुत्तरस्य । २ ब्राह्मण्ये । ३ ब्राह्मण्ये ।
४ ब्राह्मण्ये गृहीतादिः । ५ वर्णाश्रमाणां तदधीनत्वात् न तु ब्रह्मण्यधीनत्वस्य ।
६ ब्राह्मणादी । ७ यतो ज्ञायते क्रियानिवेधादिकं निर्दिष्टं इदमेव पुरोषेण क्षत्रियव्यवहारः
कृतः । ८ रावणेन । ९ पुनर्माह्वणेति व्यवहारः क्रियादिनिवेष्टेर्निर्दिष्टं इदमेव कुत्रोत्तीति
ज्ञायते । १० क्षत्रियब्राह्मणयोर्निराकरणे पुनर्भवसाधने च क्रियादिनिवेष्टे एव निब-
न्धनमित्यर्थः । ११ जागमनिराकरणपरेण । १२ अविवादत्वात् । १३ यत्र ब्राह्मण्य-
जातिस्त्रय त्रैवर्णिकोपदेश इति । १४ ब्राह्मण्ये । १५ त्रैवर्णिकशास्त्रोपदेशैः ।
१६ शङ्काः । १७ गृहभासादस्यादित्यनमेदे पाठकशब्दः । १८ इयं ब्राह्मणीति ।
१९ वेद्यागृहादिप्रवेशात्पूर्ववत् । २० वेद्यादिगृहे । २१ नवस्कारादेः ।
२२ वेद्यादिगृहाम् ।

भवदभ्युपगमेन । क्रियाभ्रंशे तज्जातिनिवृत्तौ च ब्रौत्येप्यस्या निवृत्तिः स्यात्तद्वंशाविशेषात् ।

किञ्च, क्रियानिवृत्तौ तज्जातेर्निवृत्तिः स्याद् यदि क्रिया तस्याः कारणं व्यापिका वा स्यात्, नान्यथातिप्रसङ्गात् । न चास्याः कारणं व्यापकं वा किञ्चिदिष्टम् । न च क्रियाभ्रंशे जातेर्विकारोस्ति; ५ “मिन्नेष्वमिन्ना नित्या निरवयवा च जातिः ।” [] इत्यभिधानात् । न चाविकृतया निवृत्तिः सम्भवत्यतिप्रसङ्गात् ।

किञ्चेदं ब्राह्मणत्वं जीवस्य, शरीरस्य, उभयस्य वा स्यात्, संस्कारस्य वा, वेदाध्ययनस्य वा गत्यन्तरासम्भवात् ? न ताव-जीवस्य, क्षत्रियविद्वशूरादीनामपि ब्राह्मण्यस्य प्रसङ्गात्, तेषामपि १० जीवस्य विद्यमानत्वात् ।

नापि शरीरस्य; अस्य पञ्चभूतात्मकस्यापि घटादिवद् ब्राह्मण्या-सम्भवात् । न खलु भूतानां व्यस्तानां समस्तानां वा तत्सम्भवति । व्यस्तानां तत्सम्भवे क्षितिजलपवनहुताशनाकाशानामपि प्रत्येकं ब्राह्मण्यप्रसङ्गः । समस्तानां च तेषां तत्सम्भवे घटादीनामपि १५ तत्सम्भवः स्यात्, तत्र तेषां सामस्यसम्भवात् । नाप्युभयस्य, उभयदोषानुवृत्तात् ।

नापि संस्कारस्य; अस्य शूद्रबालके कर्तुं शक्तितस्तत्रापि तत्प्र-सङ्गात् ।

किञ्च, संस्कारात्प्राग्ब्राह्मणबालस्य तदस्ति वा, न वा ? यद्यस्ति; २० संस्कारकरणं वृथा । अथ नास्ति; तथापि तद्वृथा । अब्राह्मणस्या-प्यतो ब्राह्मण्यसम्भवे शूद्रबालकस्यापि तत्सम्भवः केन वार्येत ?

नापि वेदाध्ययनस्य; शूद्रेपि तत्सम्भवात् । शूद्रोपि हि कश्चि-द्देशान्तरं गत्वा वेदं पठति पाठयति वा । न तावतास्य ब्राह्मणत्वं भवद्विरभ्युपगम्यत इति । ततः सदृशक्रियापरिणामादिनिबन्ध- २५ नैवेयं ब्राह्मणक्षत्रियादिव्यवस्था इति सिद्धं सर्वत्र सदृशपरिणाम-लक्षणं समानप्रत्ययहेतुस्तिर्यक्सामान्यमिति ।

किं पुनरूर्ध्वतासामान्यमित्याह—

१ नित्यत्वाधिकृपाया जातेः ततो नास्ति क्रियाभ्रंश इत्यर्थः । २ कदाचि-न्नमस्कारहीनेति । ३ अक्षिनिवृत्तौ भूमनिवृत्तिरतोऽग्निः कारणं भूमस्य तद्वत् । ४ इक्ष्मिनिवृत्तौ शिथिलतावनिवृत्तिरतो वृक्षः शिथिलताया व्यापकस्तद्वत् । ५ घटनिवृत्तौ घटनिवृत्तिः स्यात् । ६ क्रिया—सन्ध्यावन्दनादिः । ७ नाशरूपः । ८ आत्माका-शादेरपि निवृत्तिः स्यादिति । ९ वेदाध्ययनमात्रेण ।

परापरविवर्तव्यापिद्रव्यमूर्द्धता मृदिव स्थासादिषु ॥ ६ ॥

सामान्यमित्यभिसम्बन्धः । तदेवोदाहरणद्वारेण स्पष्टयति-
मृदिव स्थासादिषु ।

५ ननु पूर्वोत्तरविवर्तव्यतिरेकेणापरस्य तद्व्यापिनो द्रव्यस्याप्रती-
तितोऽसत्त्वात्कथं तल्लक्षणमूर्द्धतासामान्यं सत् । इत्यप्यसमीची-
नम् । प्रत्यक्षत एवार्थानामन्वैथिरूपप्रतीतेः प्रतिक्षणविशारदतया
स्वमेपि तत्र तेषां प्रतीत्यभावात् । यथैव पूर्वोत्तरविवर्तयोर्व्या-
वृत्तप्रत्ययादन्योन्यमर्भावः प्रतीतेस्तथा मृदाद्यनुवृत्तप्रत्ययात्स्ति-
१० तिरपि ।

ननु कालत्रयानुयौचित्वमेकस्य स्थितिः, तस्याश्चाऽक्रमेण प्रतीतौ
युगपन्मरणावधि ग्रहणम्, क्रमेण प्रतीतौ न क्षणिका बुद्धिस्तथा
तां प्रत्येतुं समर्था क्षणिकत्वात्, इत्यप्ययुक्तम् । वृद्धेः क्षणिकत्वेपि
प्रतिपूर्वैरक्षणिकत्वात् । प्रत्यक्षादिसहायो ह्यात्मैवोत्पादव्ययघ्नौ-
१५ व्यात्मकत्वं भौधानां प्रतिपद्यते । यथैव हि वटकपालयोर्विनाशो-
त्पादौ प्रत्यक्षसहायोस्तौ प्रतिपद्यते तथा मृदादिरूपतया स्थिति-
मपि । न खलु घंटादिस्तुंखौदीनां भेद एवावभासते न त्वेकत्व-
मित्यभिधातुं युक्तम् ; क्षणक्षयानुमानोपन्यासस्यानर्थक्यप्रसङ्गात् ।
स ह्येकत्वप्रतीतिरित्यर्थो न क्षणक्षयप्रतिपत्त्यर्थः, तस्य प्रत्यक्षे-
२० णैव प्रतीत्यभ्युपगमात् ।

१ पूर्वोपरकालवृत्ति त्रिकालानुयायीत्वमेव । २ पञ्चोपरकालवृत्तिपञ्चापित्वाद्यवृत्ति-
निष्ठत्वमूर्द्धतासामान्यं सिद्धम् । ३ विवर्तये । ४ तदेव जैनैरुपादानकारण प्रोक्तं
नैयायिकादिभिश्च समवायिकारणमुक्तमित्यर्थः । ५ सौगतः । ६ विषयानम् ।
७ सर्वविवर्तानुगामी—अन्वयी । ८ न केवलं आश्रयस्याभावात् । ९ पूर्वविवर्तानुवृत्त-
विवर्तौ व्यावृत्तः । १० भेदः । ११ गौडप्रते । १२ इदं सूक्ष्ममिदं सूक्ष्ममिति ।
१३ द्रव्यरूपपदार्थस्य । १४ सत्ताम् । १५ यथा भवति तथा । १६ ज्ञानं स्वादात्म-
द्रव्यादेः । १७ आत्मनः । १८ अक्षणिक आत्मा स चेत्सदेव कथं न जानातीत्युक्ते
आह । १९ आदिपदेन प्रत्यभिज्ञानादि । २० मृदादिपदार्थानाम् । २१ बाष्पपदार्थः ।
२२ आश्रयवर्तीयपदार्थः । २३ आदिना आत्मादीनाम् । २४ वटात्कपालं भिन्नं
कपालाकटो भिन्न इति भेदः परस्पर तथा सुखदुःखादेरात्मा भिन्नसत्त्वात्तद्व्यादि
भिन्नमिति भेदः परस्परम् । २५ अभिधीयते सौगतेन । २६ सर्वथा नास्तिरूपस्य
निषेधो न घटते अगलकुसुमवत् । २७ सौगतेन ।

न चानन्तरातीतानागतक्षेणयोः प्रत्यक्षस्य प्रवृत्तौ स्मरण-
प्रत्यभिज्ञानुमानानां वैफल्यम्; तत्र तेषां साफल्यानभ्युपगमात्,
अतिव्यवहिते तदङ्गीकरणात् । न चाक्षणिकस्यात्मनोऽर्थग्राहकत्वे
स्वगतवाल्लघुद्वाद्यवस्थानामतीतानागतजन्मपरम्परायाः सकल-
भावपर्यायाणां चैकदैवोपलम्भप्रसङ्गः; ज्ञानसहायस्यैवार्थग्राह-
कत्वाभ्युपगमात्, तस्यै च प्रतिवैन्धकक्षयोपशमाऽनतिक्रमेण
प्रादुर्भावाभोक्तैदोयानुपङ्गः ।

न च ब्रह्मग्रहणेऽतीताद्यवस्थानां ततोऽभिन्नत्वाद्ग्रहणप्रसङ्गः;
अभिन्नत्वस्य ग्रहणं ग्रैत्यनङ्गत्वात्, अन्यथा ज्ञानादिक्षेणानुभवे
सञ्चेतनादिवत् क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्त्याद्यनुभवांनुपङ्गः । तस्मा- १०
द्यत्रैवास्य ज्ञानपर्यायप्रतिबन्धापायस्तत्रैव ग्राहकत्वनियमो नान्य-
त्रेत्यनद्यम्-‘आत्मा प्रत्यक्षसहायोऽनन्तरातीतानागतपर्याययोरे-
कत्वं प्रतिपद्यते’ इति, स्मरणप्रत्यभिज्ञानसहायस्यातिव्यवहित-
पर्यायेऽपि । तथैव प्रामाण्यं ग्रैवेव प्रसाधितम् ।

ननु स्मरणप्रत्यभिज्ञानयोः पूर्वोपलब्धार्थविपर्ययत्वे तद्दर्शनकाल १५
एवोत्पत्तिप्रसङ्गः, तद्दर्शनवत्क्षिप्यत्वेनानयोरप्यविकलकारण-
त्वात्, न चैवम्, तस्माच्च ते तद्विपर्यये । प्रयोगः-यस्मिन्नविकलेपि
यन्न भवति न तत्क्षिप्यम् यथा रूपेऽविकले तन्नामवच्छेदो-
विज्ञानम्, न भवतोऽविकलेपि च पूर्वोपलब्धार्थे स्मृतिप्रत्यभि-
ज्ञाने इति, तदप्यपेक्षलम्; तद्दर्शनकाले तयोः कारणाभावे- २०
नाऽप्रादुर्भावात् । न ह्यर्थस्तयोः कारणम्; ज्ञानं प्रति कारणत्व-
स्यार्थे ग्रैवेव प्रतिवेधात् । स्मरणं हि संस्कारप्रबोधकारणम्,

१ प्रत्यक्षादिसहाय इत्यत्रादिग्रहण निर्वकमित्युक्ते आह । २ षट्कपाललक्षणयोः ।
३ जैनेन । ४ नित्य आत्मातीतानागतपर्यायानेकदैव ग्रहीष्यतीत्युक्ते आह । ५ अङ्गी-
क्रियमाणे जैनेः । ६ सतोऽभिज्ञाना पर्यायाणां । ७ जैनेः । ८ ज्ञानेन युगपद्द्वी-
ष्यतीत्युक्ते आह । ९ ज्ञानस्य । १० प्रतिबन्धकं कर्म । ११ युगपन्मरणावधि-
ग्रहणलक्षण । १२ धानम् । १३ अकारणत्वात् । १४ सप्तरात्रिः । १५ पदार्थे ।
१६ तत्र सौगतस्य । ज्ञानादिक्षणादभिन्नसङ्गात्वात् । १७ षट्कपाललक्षणयोः ।
१८ एकत्वं प्रतिपद्यते । १९ स्मृतिप्रत्यभिज्ञानयोः प्रामाण्यं न विद्यते, तत्सहाय
आत्मातिव्यवहितपर्यायेषु कथमेकत्वं जानीयादित्युक्ते सत्याह । २० तृतीयाध्याये ।
२१ प्रलक्षणे । २२ स उपलब्धोर्धो विषयो ययोस्ते तत्त्वे । २३ प्रत्यक्ष ।
२४ स उपलब्धोर्धो विषयो ययोस्ते । २५ अनुत्पाद्यमानत्वात् । २६ नार्थालोको
कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवदित्यत्र द्वितीयपरिच्छेदे । २७ तर्हि स्मरणप्रत्यभिज्ञानयोः
कारणं किमित्युक्ते आह ।

संस्कारैश्च कालान्तराविसरणकारणलक्षणधारणारूपः, तद्दर्शन-
काले नास्तीति कथं तदैवास्त्योत्पत्तिः प्रत्यभिज्ञानस्य वा? तदु-
त्पत्तौ हि दर्शनं पूर्वदर्शनाहितसंस्कारप्रबोधप्रभवस्मृतिसहायं
प्रवर्त्तते, तच्च प्राप्तास्तीति कथं तदैव तदुत्पत्तिः?

- ५ अथ मतम्-आत्मनः कैवल्यैवातीताद्यर्थग्रहणसामर्थ्ये सर-
णाद्यपेक्षावैयर्थ्यम्, तदसामर्थ्ये वा नितरां तद्वैयर्थ्यम्, न खलु
केवलं चक्षुर्विज्ञानं गन्धग्रहणेऽसमर्थं सत्तत्स्मृतिसहायं समर्थं
दृष्टमिति; तदप्यसङ्गतम्; यतः सरणादिरूपतया परिणतिरेवा-
त्मनोऽतीताद्यर्थग्रहणसामर्थ्यम्, तत्कथं तदपेक्षावैयर्थ्यम्? चक्षु-
१० विज्ञानस्य तु गन्धग्रहणपरिणामस्यैवाभावाच्च तत्स्मृतिसहाय-
स्यापि गन्धग्रहणे सामर्थ्यमिति युक्तमुत्पद्यामः।

- ततो निराकृतमेतत्-‘पूर्वोत्तरक्षणयोरग्रहणे कथं तत्र स्थासु-
ताप्रतीतिः’ इति; आत्मनो तयोर्ग्रहणसम्भवात्। भवतां तु तयोर्-
प्रतीतौ कथं मध्यक्षणस्य तत्राऽस्थासुताप्रतीतिरिति चिन्त्यताम्?
१५ पूर्वदर्शनाहितसंस्कारस्य मध्यक्षणदर्शनात्तत्क्षणस्मृतिसहाय-
‘स इह नास्ति’ इत्यस्थासुतावगमे स्थासुतावर्गेभ्योऽप्येवं किञ्च
स्यात्?

- ननु चास्थासुता पूर्वोत्तरयोर्मध्येऽभावः तस्य वा तत्रैव, स च
तदात्मकत्वात्तद्ग्रहणेनैव गृह्यते; तदप्यसारम्; तदप्रतीतौ तत्रास्य
२० अत्र वा तयोर्निबेधस्याप्यसम्भवात्। न ह्यप्रतिपक्षघटस्य ‘अत्र
घटो नास्ति’ इति प्रतीतिरस्ति। कथं चैवं स्थासुता न प्रतीयेत?
सापि हि पूर्वोत्तरयोर्मध्ये कैश्चित्सद्भावस्तस्य वा तत्रैव, स च
तदात्मकत्वात्तद्ग्रहणेनैव गृह्येत।

- ननु स्थासुतार्थानां नित्यतोच्यते, सा च त्रिकालापेक्षा, तद-
२५ प्रतिपत्तौ च कथं तदपेक्षनित्यताप्रतिपत्तिः? तदसाम्प्रतम्। वस्तु-
स्वभावाभ्यूतत्वेनान्यानपेक्षत्वाच्चित्यतायाः, तथाभ्यूतायाश्चास्याः
प्रत्यक्षादिप्रमाणप्रसिद्धत्वेन प्रतीतिः प्रतिपादनात्। न खलु सर्वं
नित्यतारहितस्य त्रिकालेनासौ क्रियतेऽनित्यतावत्। न हि वर्त-

१ कारणम्। २ द्वितीयम्। ३ तस्य प्रलयादिसहायरहितस्य। ४ क्षणिकतुल्या।
५ अक्षणिकेन। ६ अयं मध्यक्षणक्षान् नास्त्युक्तमविष्मतीति प्रदीतिः। ७ परेण।
८ क्षण। ९ दर्शनम्-अनुभवः। १० सकाशात्। ११ पूर्वदर्शनाहितसंस्कारस्य
मध्यक्षणदर्शनात्तत्क्षणस्मृतिः, तस्माच्च स इह इत्यकरोणास्तीति। १२ क्षणयोः।
१३ क्षणे। १४ अभावाः। १५ पूर्वोत्तरक्षणयोरभावात्प्रकाशान्मध्यक्षणस्य।
१६ इत्यकरोणे। १७ इत्यकरोणे। १८ इत्यकरोणे मध्यक्षणस्य। १९ अग्रे।
२० पदार्थस्य।

मानकालेनानित्यता क्रियते तस्याऽसत्त्वात्, सत्त्वे वा तदनित्य-
त्वस्यान्यपरेण करणेऽनवस्थाप्रसङ्गः । ततो यथा स्वभावतः
पूर्वोत्तरकोटिविच्छिन्नः क्षणो जातः क्षणिको विधीयते काल-
निरपेक्षश्च प्रतीयते तथाऽक्षणिकत्वंमपि ।

ननु चाक्षणिकत्वम् अर्थानामतीतानागतकालसम्बन्धित्वेना-
तीतानागतत्वम् । न च कालस्यातीतानागतत्वं सिद्धम्; तद्धि
किमपरातीतादिकालसम्बन्धात्, तथाभूतपदार्थक्रियासम्ब-
न्धाद्वा स्यात्, स्वतो वा ? प्रथमपक्षेऽनैवस्था ।

द्वितीयपक्षेऽपि पदार्थक्रियाणां कुतोऽतीतानागतत्वम् ? अपराती-
तानागतपदार्थक्रियासम्बन्धाच्चेत्, अनवस्था । अतीतानागतकाल-
सम्बन्धाच्चेत्, अन्योन्यार्क्ष्यः । स्वतः कालस्यातीतानागतत्वे अर्था-
नामपि स्वत एवातीतानागतत्वमस्तु किमतीतानागतकालसम्ब-
न्धित्वकल्पनया ? इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; स्वरूपत एवाती-
तादिसमयस्यातीतादित्वप्रसिद्धेः । अनुभूतवर्तमानत्वो हि सम-
योतीर्तः, अनुभवविषयवर्तमानत्वैश्चानागतः, तैस्सम्बन्धित्वा-
च्चाथानामतीतानागतत्वम् । न च कालवदर्थानामपि स्वरूपेणैवा-
तीतानागतत्वं युक्तम्, न ह्येकस्य धर्मोन्यत्राप्यासङ्गमितुं युक्तः,
अन्यथा निम्बादेस्तिकतादिधर्मो गुडादेरपि स्यात्, हानधर्मो
चाक्षरप्रकाशकत्वं घटादेरपि स्यात्, तद्वर्मो वा जडता हान-
स्यापि स्यात् ।

२०

ननु चानुवृत्ताकारप्रत्ययोपलम्भादक्षणिकत्वधर्मोर्थानां सा-
ध्यते, स च बाध्यमानत्वादसत्यः, तदप्यसम्यक्, यतोऽस्य
बाधको विशेषप्रतिभास एव, स चानुपपन्नः । तथाहि-अनु-
वृत्ताकारे प्रतिपक्षे, अप्रतिपक्षे वासौ तद्बाधको भवेत् ? यदि
प्रतिपक्षे; तदा किमनुवृत्तप्रतिभासात्मको विशेषप्रतिभासः, तद्व्य-
तिरिक्तो वा ? प्रथमपक्षेऽनुवृत्तप्रतिभासस्य मिथ्यात्वे विशेष-
प्रतिभासस्यापि तदात्मकवाच्यत्प्रसङ्गेः कथमसौ तद्बाधकः ?
द्वितीयपक्षेऽप्यनुवृत्ताकारप्रतिभासमन्तरेण स्यासकोशादिप्रति-
भासस्य तद्व्यतिरिक्तस्यासंवेदनात्तद्बाधकत्वायोगात् । अनुवृत्ता-
कारप्रतिपक्षौ च विशेषप्रतिभासस्यैवासम्भवात्कथं तद्बाधकता ? २०

१ लीगताभ्युपगमरीत्या । २ कालस्य । ३ कालेन । ४ कालनिरपेक्षम् । ५ अप-
रस्यापरत्वात्सिद्धान्त्योन्यामयप्रसङ्गात् । ६ कालस्यातीताऽनागतत्वे सिद्धे सति पदार्थ-
क्रियाणामतीतानागतत्वसिद्धिरासिद्धौ च तत्सिद्धिरिति । ७ इत्यन्यरूपेण पुराणैः ।
८ अण्वदे । ९ समयः । १० अतीतानागतकाल । ११ संयोगमित्युक्त्वा । १२ बाध-
कत्वेनेति शेषः । १३ मिथ्याकृतम् । १४ द्वितीयविकल्पोऽयम् ।

किञ्च, विपरीतार्थव्यवस्थापकं प्रमाणं बाधकमुच्यते । प्रति-
क्षणविनाशिपदार्थव्यवस्थापकत्वेन च प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा
प्रवर्त्ततान्यस्य प्रमाणत्वेन सौगतैरनभ्युपगमात् ? तत्र न ताव-
त्प्रत्यक्षं तद्व्यवस्थापकम् ; तत्र तथार्थानामप्रतिभासनात् । न हि
५ प्रतिक्षणं त्रुट्यद्रूपतां विभ्राणास्तत्रार्थाः प्रतिभासन्ते, स्थिरस्थूल-
साधारणरूपतयैव तत्र तेषां प्रतिभासनात् । न चान्याद्वग्भूतः
प्रतिभासोऽन्याद्वग्भूतार्थव्यवस्थापकोऽतिप्रसङ्गात् ।

न च तत्र तथा तेषां प्रतिभासेपि सदृशापरापरोत्पत्तिविमल-
मोक्षथानुभवं व्यवसायानुपपत्तेः स्थिरस्थूलादिरूपतया व्यव-
१० सायः, इत्यभिधातव्यम् ; अनुपहतेन्द्रियस्यान्याद्वग्भूतार्थनिश्चयो-
त्पत्तिकल्पनायां प्रतिनियतार्थव्यवस्थित्यभावानुपपत्तात् । नीलानु-
भवेपि पीतादिनिश्चयोत्पत्तिकल्पनाप्रसङ्गात् । तथा च “यत्रैव
जनयेदेनौ तत्रैवास्य प्रमाणता” [] इत्यस्य विरोधः ।
ततो यथाविधार्याध्यवसायी विकल्पस्तथाविधार्थस्यैवानुभवो
१५ प्राद्वहकोभ्युपगन्तव्यः । न चार्थस्य प्रति[क्षण]विनाशित्वात्तत्सा-
मर्थ्यबलोद्भूतेनाध्यक्षेणापि तद्रूपमेवानुकरणीयमिति वाच्यम् ;
इतरेतराश्रयानुपपत्तात्-सिद्धे हि क्षणक्षयित्वेऽर्थानां तत्सामर्थ्या-
विनाभाविनोध्यक्षस्य तद्रूपानुकरणं सिध्यति, तत्तिष्ठौ च क्षण-
क्षयित्वं तेषां सिध्यतीति ।

२० नाप्यनुमानं तद्भाहकम् ; तत्र प्रत्यक्षाप्रवृत्तावनुमानस्याप्रवृत्तेः ।
तथा हि-अध्यक्षाभिर्गतमविनाभावमाश्रित्य पक्षधर्मतावगमभ-
लादनुमानमुदयमासादयति । प्रत्यक्षाविषये तु स्वर्गादाविबानु-
मानस्याप्रवृत्तिरेव ।

किञ्च, अत्र स्वभावहेतोः, कार्यहेतोर्वा व्यापारः स्यात् ? न
२५ तावत्स्वभावहेतोः, क्षणिकस्वभावतया कस्यचिदर्थस्वभावस्या-
निश्चयात्, क्षणिकत्वस्याध्यक्षागोचरत्वात् । अध्यक्षगोचरे एव
ह्यर्थे स्वभावहेतोर्व्यवहृतिप्रवर्त्तनफलत्वम्, यथा विशददर्शनाव-
भासिनि तरौ वृक्षत्वव्यवहारप्रवर्त्तनफलत्वं शिशपायाः ।

१ आगमादेः । २ विनश्यद्रूपताम् । ३ पटश्चानं घटव्यवस्थापकं स्यात् ।
४ क्षणिकोयं क्षणिकोयमिति । ५ जायते । ६ निर्विकल्पकप्रत्यक्षं कर्तुं । ७ समिकल्पको
बुद्धिः । ८ निर्विकल्पकस्य । ९ अतिप्रसङ्गो यतः । १० तस्य विनाश्यर्पस्य ।
११ तस्य प्रतिक्षणं विनाश्यर्थस्य । १२ तथा च सति यथाविधार्थस्यैवानुभवो प्राद्वहो
अविष्यतीत्यर्थः । १३ क्षणिकेयं । १४ दृष्टान्तपरिमिति । १५ विनाशिपदार्थेन सह ।
१६ सत्त्वादिति । १७ दृष्टम् । १८ अयं वृक्षः शिशपात्वादिति ।

अथोच्यते-‘यो यद्भावं प्रत्यन्यानपेक्षः स तत्त्वभावनियतः यथाऽन्त्या कारणसामग्री स्वकार्योत्पादने, विनाशं प्रत्यन्यानपेक्षाश्च भावाः’ इति; तदप्युक्तिमात्रम्, हेतोरसिद्धेः । न खलु मुद्राद्यनपेक्षा घटादयो भावाः प्रमाणतो विनाशमनुभवन्तो नु-
भूयन्ते प्रतीतिविरोधात् । ५

किञ्च, अत्रान्यानपेक्षत्वमात्रं हेतुः, तत्त्वभावत्वे सत्यन्यानपेक्षत्वं वा ? प्रथमपक्षे यवबीजादिभिरनेकान्तो हेतोः, शाल्य-
ङ्करोत्पादनसामग्रीसन्निधानावस्थायां तदुत्पादनेऽन्यानपेक्षाणा-
मप्येषां तद्भावनियमाभावात् । द्वितीयपक्षे तु विशेष्यासिद्धो हेतुः,
तत्त्वभावत्वे सत्यन्यानपेक्षत्वासिद्धेः । न ह्यन्त्या कारणसामग्री १०
स्वकार्योत्पादनस्वभावापि द्वितीयक्षणापेक्षा तदुत्पादयति, बह्वन-
स्वभावो वा बह्विः करतलादिसंयोगानपेक्षो दाहं विदधाति ।
भौणे विशेषणासिद्धं च तत्त्वभावत्वे सत्यन्यानपेक्षत्वम्, शृङ्गो-
त्थशरादीनां क्षणिकस्वभावाभावात् ।

किञ्च, यदि नामाऽहेतुको विनाशस्तथापि यदैव मुद्रादिव्या- १५
पारानन्तरमुपलभ्यते तदैवासावभ्युपगमनीयो नोदयानन्तरम्,
कस्यचिच्चा तदुपलम्भाभावात् । न च मुद्रादिव्यापारानन्तर-
मस्योपलम्भात्प्रागपि संज्ञावः कल्पनीयः, प्रथमक्षणे तस्यानुपल-
म्भान्मुद्रादिव्यापारानन्तरमप्यभावानुसङ्गात् । न चोन्ते क्षयोप-
लम्भादादावर्थसावभ्युपगन्तव्यः, संस्तानेनानेकान्तोत् । २०

किञ्च, उदयानन्तरध्वंसित्वं भावानाम् मित्रामित्रविकल्पाभ्या-
मन्येन ध्वंसस्यासम्भवादवसीयते, प्रमाणान्तराद्वा ? तत्रोत्तरविक-
ल्पोऽयुक्तः, प्रत्यक्षादेरुदयानन्तरध्वंसित्वेनार्थग्राहकत्वाप्रतीतेः ।
प्रथमविकल्पे तु मित्रामित्रविकल्पाभ्यां मुद्राद्यनपेक्षत्वमेवास्ति

१ ‘भावा वर्मिणः, विनाशसमावनियता इति साध्यवर्गः, विनाशं प्रत्यन्यान-
पेक्षत्वादिति हेतुः’ इत्युपादिष्टः । २ साध्यागमे अवर्तमानत्वात् । ३ विनाशहेतुः ।
४ वांछमवेष्टेऽपि एकसिन्धुणे कारणं कार्यं न करोति यतः । ५ सर्वे भावा विनाश-
समावनियता इति पक्षस्यैकदेशे भागासिद्धो हेतुरित्यर्थः । ६ भट्टिपृष्ठादिशृङ्गेऽन्य-
निरपेक्षतयोत्पत्तिरावीन्यात् । ७ एकसिन्धुणे पदार्थ उत्पन्नः द्वितीयक्षणे मुद्रादि-
व्यापारमन्तरेण विनश्यतीति नाभ्युपगमनीयं त्वया सौगतेन । ८ तस्य विनाशस्य ।
९ मुद्रादिव्यापारानन्तरं विनाशोक्तिं मुद्रादिव्यापारात्पूर्वं (उत्पत्तिक्षणाद् द्वितीय-
क्षणे) नपि विनाशोक्तीत्युक्ते आह । १० विनाशस्य । ११ मुद्रादिव्यापारा-
त्पूर्वक्षणे । १२ मुद्रादिव्यापारस्यान्ते । १३ मुद्रादिव्यापारात्पूर्वम् । १४ निर्वाण-
स्यान्ते उत्तरक्षणात्पक्षेः क्षयोक्तिः, नादौ । १५ यद्यन्ते क्षयि तत्तदादौ क्षयीति ।
१६ मुद्रादिना । १७ सितिपक्षे उत्पादपक्षे चापि यदुक्तमस्ति तत्सर्वमत्र द्रष्टव्यम् ।

स्यात् न तद्वयानन्तरं भावः । न खलु निर्हेतुकस्याभ्वविषाणादेः
पैदाथोदयानन्तरमेव भावितोपलब्धा ।

अथाहेतुकत्वेन ध्वंसस्य सदा सम्भवात्कालाद्यनपेक्षातः पदा-
थोदयानन्तरमेव भावः, नन्वेवमहेतुकत्वेन सर्वदा भावोत्पत्त्यमः
५ क्षणे एवास्य भावानुषङ्गो नोदयानन्तरमेव । न ह्यनपेक्षत्वाद्-
हेतुकः क्वचित्कदाचिच्च भवति, तथाभावस्य सापेक्षत्वेनाहेतुकत्व-
विरोधिना सहेतुकत्वेन व्याप्तत्वात्, तथा सौगतैरप्यभ्युपगमात् ।

ननु प्रथमक्षणे एव तेषां ध्वंसे सत्त्वस्यैवासम्भवात्कुतस्त-
त्प्रच्युतिलक्षणो ध्वंसः स्यात् ? ततः खंहेतोरेवार्था ध्वंसस्यभावा-
१० प्रादुर्भवन्ति, इत्यप्यविचारितरमणीयम्, यतो यदि भावहेतोरेव
तत्प्रच्युतिः, तदा किमेकक्षणस्याधिभावहेतोस्तत्प्रच्युतिः, काला-
न्तरस्याधिभावहेतोर्वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः, एव(क)क्षणस्याधि-
भावहेतुत्वस्याऽद्याप्यसिद्धेः तत्कृतत्वं तत्प्रच्युतेरसिद्धमेव ।
द्वितीयपक्षे तु क्षणिकताऽभावानुषङ्गः ।

१५ किञ्च, भावहेतोरेवं तत्प्रच्युतिहेतुत्वे किमसौ भावजनना-
त्प्राप्ततत्प्रच्युतिं जनयति, उत्तरकालम्, समकालं वा ? प्रथमपक्षे
प्रागभावः प्रच्युतिः स्यान्न प्रध्वंसाभावः । द्वितीयपक्षे तु भावो-
त्पत्तिवेलायां तत्प्रच्युतेरुत्पत्त्यभावाच्च भावहेतुस्तद्धेतुः । तथै-
वोत्तरोत्तरकालभाविभावपरिणतिमपेक्ष्योत्पद्यमाना तत्प्रच्युतिः
२० कथं भावोदयानन्तरं भाविनी स्यात् ? तृतीयपक्षेपि भावोदयस-
मसमयभाविन्या तत्प्रच्युत्या सह भावस्यावस्थानाविरोधाच्च
कदाचिद्भावेन नष्टव्यम् । कथं चासौ मुद्गरादिव्यापारानन्तरमेवो-
पलभ्यमाना तदभावे चानुपलभ्यमाना तज्जन्या न स्यात् ?
अन्यत्रापि हेतुफलभावस्यान्वैयव्यतिरेकानुविधानलक्षणत्वात् ।

२५ न च मुद्गरादीनां कपालसन्तत्युत्पादे एव व्यापार इत्यभिधात-
व्यम्, घटादेः स्वरूपेणाविकृतस्यावस्थाने पूर्ववदुपलब्ध्यादि-
प्रसङ्गात् । न चास्य तदौ स्वयमेवाभावाच्चोपलब्ध्यादिप्रसङ्गः ।

१ अर्थस्य । २ नाशस्य । निर्हेतुकत्वात् । ३ अवलक्षण । ४ कालाद्यनपेक्षा-
विशेषात् । ५ किंतु सर्वदेव भवतीत्यर्थः । ६ क्वचित्कदाचिद्भवतः पदार्थस्य ।
७ कालादिना । ८ अनुत्पन्नत्वात् । ९ अवोत्पत्तिकारणात् । १० सूत्रकादेः ।
११ भावस्य घटादेः । १२ घटादिभावस्य । १३ घटप्रध्वंसस्य । १४ आवोत्पत्ति-
वेलायां येन कारणेन भावोत्पत्तिर्जाता तस्मिन्नेव समये तेनैव कारणेन घटप्रध्वंसो
जायते तदा उभयोः कारणमेकं स्यादिति भावः । १५ भावहेतोर्विनाशहेतुत्वाभावे
न । १६ कपालोत्पत्तौ । १७ मुद्गरादिना सह । १८ न घटप्रच्युतौ । १९ आदिना
जलाहरणादिग्रहणम् । २० मुद्गरादिसंनिधानकाले ।

तदभावस्यापि तद्वैवोपलभ्यमानतयाऽन्यदा चानुपलभ्यमानतया कपालादिवर्त्तकार्यतानुबन्नात् ।

अथ घट एव मुद्गरादिकं विनाशकारणत्वेन प्रसिद्धमपेक्ष्य समानक्षणान्तरोत्पादनेऽसमर्थं क्षणान्तरमुत्पादयति, तदप्यपेक्ष्य अपरमसमर्थतरम्, तदप्युत्तरमसमर्थतमम्, यावद्वदसन्ततेर्निः-
वृत्तिरित्युच्यते; ननु चात्रापि घटक्षणस्यासमर्थक्षणान्तरोत्पादक-
त्वेनाभ्युपगतस्य मुद्गरादिना कश्चित्सामर्थ्यविघातो विधीयते वा,
न वा? प्रथमविकल्पे कथमभावस्याहेतुत्वम्? द्वितीयविकल्पे
तु मुद्गरादिसञ्चिपाते तज्जनकस्वभावाऽव्याहृतौ संमर्थक्षणान्तरो-
त्पादप्रसङ्गः, समर्थक्षणान्तरजननस्वभावस्य भावात्प्राक्तनक्षणवत् । १०

किञ्च, भावोत्पत्तेः प्राग्भावस्याभावनिक्षये तदुत्पादककारणी-
पादनं कुर्वन्तः प्रतीयन्ते प्रेक्षापूर्वकारिणः तदुत्पत्तौ च निवृत्त-
व्यापाराः, विनाशकहेतुव्यापारानन्तरं च शैलुमित्रध्वंसे सुखदुः-
खमाजोऽनुभूयन्ते । न जानयोः सङ्भावः सुखदुःखहेतुः, ततस्त-
द्व्यतिरिक्तोऽभावस्तद्देर्तुमभ्युपगन्तव्यः । १५

किञ्च, अभावस्यार्थान्तरत्वाभ्युपगमे किं घट एव प्रध्वंसोऽ-
भिधीयते, कपालानि, तदपरं पदार्थान्तरं वा? प्रथमपक्षे घटस्वरू-
पेऽपरं नामान्तरं कृतम् । तत्स्वरूपस्य त्वविवक्षितत्वाभित्य-
तैवानुबन्धः । अथैकक्षणस्यापि घटस्वरूपं प्रध्वंसः, न, एकक्षण-
स्यापितया तद्रूपस्याद्याप्यप्रसिद्धेः । द्वितीयपक्षेपि प्राक्कपालो-
त्पत्तेः घटस्यावस्थितिः कालान्तरावस्थायितैवैवस्य, न क्षणिकता ।

किञ्च, कपालकाले 'सः, न' इति शब्दयोः किं मिन्नार्थत्वम्,
अभिन्नार्थत्वं वा? मिन्नार्थत्वे कथं न नञ्शब्दवाच्यः पदार्थान्तर-
मभावः? अभिन्नार्थत्वे तु प्रागपि नञ्प्रयोगेऽप्रसक्तिः । न चानु-
पलभ्ये सति नञ्प्रयोगे इत्यभिघातव्यम्; व्यवधानाद्यभावे २५

- १ घटाभावः कार्यं भवति मुद्गराद्यन्यव्यतिरेकानुविधायित्वात् । २ सहायमात्रम् ।
३ घटस्य घट एव । ४ घटमङ्गलक्षणम् । ५ मुद्गरादिकं कर्मत्वेन । ६ नवद्वयपक्षे ।
७ घटस्य । ८ मुद्गरादिकारणमन्यत्वात् । ९ समानक्षणान्तरोत्पादने । १० घटस्य ।
११ उपादात् । १२ सुखकादि । १३ स्वीकरणम् । १४ कसचित्पुरुषस्य घटं दृष्ट्वा
कोहो जायते कसमिषु देवो जायते इति स्वभावद्वयमुक्त्वावद्वद एव धट्टमित्ररूपः,
तस्य प्रध्वंसे । १५ अनेन वाक्येन सहेतुको विनाशोऽस्तीति दक्षितम् । १६ स
मुद्गरादिहेतुर्गस्य सः । १७ पटादिकमित्यर्थः । १८ प्रध्वंस इति । १९ गणनादिनम् ।
२० बहुतरकाद्यम् । २१ वायव्यं कपालानि । २२ घटे सस्यापि घटो नास्तीति ।
२३ घटस्य । २४ कर्तव्यः । २५ देहकाण्यदिना ।

स्वरूपादप्रच्युतार्थस्योत्पलम्मानुपपत्तेः । स्वरूपादप्रच्युतौ वा कथं न कपालकाले मुद्गरादिहेतुकं भावान्तरं प्रच्युतिर्भवेत् ?

अथ घटकपालव्यतिरिक्तं भावान्तरं घटप्रध्वंसः, नन्वत्रापि तेन सह घटस्य युगपदवस्थानाविरोधात् कथं तत्तत्प्रध्वंसः ? अन्य-
५ थोत्पत्तिकालेपि तत्प्रध्वंसप्रसङ्गाददस्योत्पत्तिरेव न स्यात् ।

अन्यानपेक्षतया चाग्नेरुष्णत्ववत्स्वभावतोऽभावस्य भावे स्थिते-
रपि स्वभावतो भावः किञ्च स्यात् ? शक्यते हि तत्राप्येवं वक्तुं
कालान्तरस्थायी स्वहेतोरेवोत्पन्नो भावो न तद्भावे भावान्तर-
मपेक्षते अग्निरिवोष्णत्वे । भिन्नाभिन्नविकल्पस्य चाभाववत्
१० स्थितावपि समानत्वात् तत्राप्यन्यानपेक्षया निर्हेतुकत्वानुषङ्गः ।
तथाहि-न वस्तुनो व्यतिरिक्ता स्थितिस्तद्देतुना क्रियते, तस्या-
ऽस्थास्युत्पत्तेः । स्थितिसम्यग्धात्स्थास्युता, इत्यप्ययुक्तम् । स्थिति-
तद्देतुर्व्यतिरेकपक्षाभ्युपगमे तावत्तादात्म्यसम्बन्धोऽसंस्कृतः ।
कार्यकारणभावोप्यनयोः सहभावादयुक्तः । असहभावे वा स्थितेः
१५ पूर्वं तत्कारणस्यास्थितिप्रसङ्गः । स्थितेरपि स्वकारणानुसरकाल-
भनाश्रयतानुषङ्गः । अव्यतिरिक्तस्थितिकरणे च हेतुवैयर्थ्यम् । ततः
स्थितिस्वभावनियतार्थसंज्ञावं प्रत्यन्यानपेक्षत्वादिति स्थितम् ।

अहेतुकिनाशाभ्युपगमे च उत्पादस्याप्यऽहेतुकत्वानुषङ्गो
विनाशहेतुपक्षनिक्षिप्तविकल्पानामत्राप्यविशेषात्, तथा हि-
२० उत्पादहेतुः स्वभावत एवोत्पित्सुं भावमुत्पादयति, अनुत्पित्सुं
वा ? आद्यविकल्पे तद्देतुवैयर्थ्यम् । द्वितीयविकल्पेपि अनुत्पि-
त्सोरुत्पादे गगनाम्भोजादेरुत्पादप्रसङ्गः । स्वहेतुसन्निधेरेवोत्पि-
त्सोरुत्पादाभ्युपगमे विनाशहेतुसन्निधानाद्विनश्वरस्य विनाशो-
प्यभ्युपगमनीयो न्यायस्य समानत्वात् ।

१ प्रसुप्तोदरादेः । २ घटलक्षणस्य । ३ घटात् । ४ तृतीयविकल्पः । ५ पदार्थो-
न्तरस्य सदैव सद्भावात् । ६ भिन्नाभिन्नविकल्पान्या यथाऽभावः कारणान्तरनिरपेक्ष
(बौद्धमते) तथा ताभ्यां स्थितिरपि कारणनिरपेक्षे (जैनमते) ति भावः । ७ घट-
पटयोरिव । ८ सन्ध्येतरगोविषाणवत् । ९ घटस्य । १० स्वकारणस्य क्षणभङ्गुरत्वेन
नष्टत्वादिति भावः । ११ घटात् । १२ अव्यतिरिक्तस्थितिकरणे च स्थितिमदस्तेन
कृतं स्यात्, तस्य च स्वहेतुनैव कृतत्वात्सिद्धेर्हेतुना कारणमनुपपन्नमित्यस्य
वैयर्थ्यम् । १३ स्थितानन्यानपेक्षतया निर्हेतुकत्वं सिद्धं यतः । १४ स्थितिस्वभावम् ।
१५ भिन्नाऽभिन्नवक्ष्यमाणानाम् । १६ स्वभावत एव भावस्योत्पत्तिसम्भवात् ।
१७ कारणेन ।

ततः कार्यकारणयोस्तत्पादविनाशौ न सहेतुकाऽहेतुकौ कारणानन्तरं संहभावादूपादिवत् । न चानयोः संहभावोऽसिद्धः, “नाशोत्पादौ समं यद्वन्नामोच्चाभौ तुलान्तयोः ॥” []

इत्यभिधानात् । न चाहेतुकेन पर्यायसहभाविना द्व्येणानेकान्तः, ‘कारणानन्तरम्’ इति विशेषणात् । न चैवमसिद्धत्वम्, ५, मुहुरादिव्यापारानन्तरं कार्योत्पादवत्कारणविनाशस्यापि प्रतीतिः, ‘विनष्टो घटः, उत्पन्नानि कपालानि’ इति व्यवहारद्वयदर्शनात् । न च साध्यविकलमुदाहरणम्, न हि कारणभूतो रूपादिकलापः कार्यभूतस्य रूपस्यैव हेतुर्न तु रसादेरिति प्रतीतिः । नाप्यसहभावो रूपादीनां येन साधनविकलं स्यात् । तत्रोक्तहेतोरर्थानां १० क्षणक्षयावसायः ।

नापि सत्त्वात्, प्रतिबन्धासिद्धेः । न च विद्युदादौ सत्त्वक्षणिकत्वयोः प्रत्यक्षत एव प्रतिबन्धासिद्धेर्घटादौ सत्त्वमुपलभ्यमानं क्षणिकत्वं गमयति इत्यभिधातव्यम्, तत्राप्यनयोः प्रतिबन्धासिद्धेः । विद्युदादौ हि मध्ये स्थितिदर्शनं पूर्वोत्तरपरिणामौ प्रसा- १५ धयति । न हि विद्युदादेरनुपादानोत्पत्तिर्युक्तिमती, प्रथमचैतन्यस्याप्यनुपादानोत्पत्तिप्रसङ्गतः परलोकभावानुपज्ञात्, विद्युदादिवच्चत्रापि प्रागुपादानाऽदर्शनात् । न चानुमीर्यमानमत्रोपादानम्, विद्युदादावपि तथात्वानुपज्ञात् ।

नौप्यस्य निरन्वया सन्तानोच्छिन्निः, चरमक्षणस्याकिञ्चित्क- २० रत्वेनावस्तुत्वार्षितितः पूर्वपूर्वक्षणानामप्येवस्तुत्वार्षितेः सकलसन्तानाभावप्रसङ्गः । विद्युदादेः सजातीयकार्याकरणेपि योगिकौनस्य करणाभावस्तुत्वमिति चेत्, न; आस्राद्यमानरससमानकालरूपोर्पादानस्य रूपाकरणेपि रससहकारित्वप्रसङ्गात् । ततो

१ ययोः सहभावस्योः सहेतुकासहेतुकत्वयानेन न जननमिति । २ रूप-रसादीनां यथा । ३ उपादानरूपः । ४ सहकारिक्षणः । ५ इत्युदाहरणस्य । ६ उदाहरणम् । ७ उत्सवभावत्वे सलन्यामपेक्षत्वादिति । ८ सन्दिग्धानेकान्तिकत्वे सत्याह । ९ प्रथमचैतन्यं जन्मान्तरचैतन्यपूर्वकं त्रिदिवचैतान्मध्यविदिवर्तवदिति । १० विद्युदुत्तरपरिणामाविनायाविनी न अनिष्यतीत्युक्ते आह । ११ उत्तराकारपरिणमनविषये । १२ अकिञ्चित्करत्वाविशेषात् । १३ अन्वयिचक्षुणस्यावैकियानुत्य-त्वेनासत्त्वप्रसङ्गात् तस्मात्सत्त्वे सत्पूर्वक्षणस्याप्यवैकियारहितत्वेनासत्त्वम्, तत एव सत्पूर्वक्षणानामप्यसत्त्वेन सर्वानुत्यतापचिरेव साह । १४ पूर्वोत्तरक्षणानां समूहः सन्तानः, सन्मध्ये एकैकक्षणः सन्तानी । १५ मिनातीयस्य । १६ पूर्वरूपस्य । १७ उत्तररूपाकरणे ।

रसाद्रूपानुमानं न स्यात् । 'तथो दृष्टत्वाश्च दोषः' इत्यन्यत्रापि समानम्, विद्युच्छब्दादेरपि विद्युच्छब्दाद्यन्तरोपलम्भात् ।

न चैकत्र सत्त्वक्षणिकत्वयोः सहभावोपलम्भात्सर्वत्र तत्सदनुमानं युक्तम्; अन्यथा सुवर्णं सत्त्वादेव शुक्लतानुमितिप्रसङ्गः, ५ शुक्ले शङ्के शुक्लतया तत्सहभावोपलम्भात् । अथ सुवर्णाकार-निर्मासिप्रत्यक्षेण शुक्लतानुमानस्य बाधितत्वाच्च तत्र शुक्लता-सिद्धिः; तर्हि घटादौ क्षणिकतानुमानस्य 'स एवायम्' इत्येकत्व-प्रतिभासेन बाधितत्वात्प्रतिक्षणविनाशितासिद्धिर्न स्यात् ।

अथैकत्वप्रत्यभिज्ञा भिन्नेष्वपि लूनपुनर्जातनखकेशादिष्वभेद-
१० मुल्लिखन्ती प्रतीयत इत्येकत्वे नाऽसौ प्रमाणम्, नन्वेवं काम-लोपद्व्युत्पत्त्याणां चवलिमामाविभ्राणेष्वपि पदार्थेषु पीताकारनिर्मा-सिप्रत्यक्षमुदेतीति सत्यपीताकारेपि न तत्प्रमाणम् । भ्रान्ता-दभ्रान्तस्य विशेषोन्यत्रापि समानः । प्रसाधितं च प्रत्यभिज्ञान-स्याभ्रान्तत्वं प्रागित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

१५ अथ विपक्षे बाधकप्रमाणवलात्सत्त्वक्षणिकत्वयोरविनाभावो-
गम्यते । ननु तत्र सत्त्वस्य बाधकं प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा स्यात् ? न तावत्प्रत्यक्षम्; तत्र क्षणिकत्वस्याप्रतिभासनात् । न चाप्रति-भासमानक्षणाक्षर्यस्वरूपं प्रत्यक्षं विपक्षाद्व्यावर्त्य सत्त्वं क्षणिकत्व-नियतमादर्शयितुं समर्थम् । अथानुमानेन तत्ततो व्यावर्त्य क्षणि-
२० कनियततया साध्येत; ननु तदनुमानेष्वविनाभावस्यानुमान-वलात्प्रसिद्धिः, तथा चानवस्था । न च तद्बाधकमनुमानमस्ति ।

ननु 'यत्र क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधो न तत्सत् यथा गगनाम्भोरुहम्, अस्ति च नित्ये सः' इत्येतानुमानात्ततो व्या-वर्त्तमानं सत्त्वमनित्ये एवावतिष्ठत इत्यवसीयते; तच्च; सत्त्वाऽ-
२५ क्षणिकत्वयोर्विरोधाऽसिद्धेः । विरोधो हि सहानवस्थानलक्षणाः, परस्परपरिहारस्थितिलक्षणा वा स्यात् ? न तावदाद्यः; स हि पदार्थस्य पूर्वमुपलम्भे पश्चात्पदार्थान्तरसङ्गात्वादमावावगतौ निश्चीयते शीतोष्णवत् । न च नित्यत्वस्योपलम्भोस्ति सत्त्वप्रस-
ङ्गात् । नापि द्वितीयो विरोधस्तयोः सम्भवति; नित्यत्वपरि-
३० हारेण सत्त्वस्य तत्परिहारेण वा नित्यत्वस्यानवस्थानात् ।

१ अत्यत्र मातुलिकं रूपं रसादिति । २ उपादानकारणाद्रूपात् सजातीयरूपकरण-प्रकारेण । ३ सुवीचपरिच्छेदे । ४ प्रत्यभिज्ञानस्याभ्रान्तत्वसमर्थनेन । ५ अक्षणिकत्वे । ६ सत्त्वस्य । ७ वसः । ८ सत्त्वं क्षणिकत्वनियतं तदन्वयव्यतिरेकानुविधानादिति । ९ नित्यं सन्न भवति क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात् । १० तयः प्रकाशयोरिव वा ।

‘क्षणिकतापरिहारेण ह्यक्षणिकता व्यवस्थिता तत्परिहारेण च क्षणिकता’ इत्यनयोः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणो विरोधः । न चार्थक्रियालक्षणसत्त्वस्य क्षणिकतया व्याप्तत्वाच्चित्येन विरोधः; अन्योन्याश्रयानुषङ्गात्—अर्थक्रियालक्षणं सत्त्वं क्षणिकतया व्याप्तं नित्यताविरोधात्सिध्यति, सोप्यस्य क्षणिकतया व्याप्तेरिति । ५

ननु च अर्थक्रियायाः क्रमयौगपद्याभ्यां व्याप्तत्वात्तयोश्चाक्ष-
णिकेऽसम्भवात्कुतः क्रमवत्यऽर्थक्रिया नित्ये सम्भविनी ? न च
सहकारिक्रमाच्चित्ये क्रमवत्यप्यसौ सम्भवति; अस्योपकारकानु-
पकारकपक्षयोः सहकार्यऽपेक्षाया एवासम्भवात् । नापि यौगपद्ये-
नासौ नित्ये सम्भवति; पूर्वोत्तरकार्ययोरेकक्षण एवोत्पत्तेर्द्वितीय- १०
क्षणे तस्यानर्थक्रियाकारित्वेनावस्तुत्वप्रसङ्गात्; इत्यप्यसारम्;
एकान्तनित्यवदऽनित्येपि क्रमाक्रमान्यामर्थक्रियाऽसम्भवात्,
तस्याः कैथञ्चित्त्ये एव सम्भवात्, तत्र क्रमाक्रमवृत्त्यनेकसमाव-
त्वप्रसिद्धेः, अन्यत्र तु तत्त्वभावत्वाप्रसिद्धेः पूर्वापरसमावल्यागो-
पादानान्वितरूपाभावात्, सकृदनेकशक्त्यात्मकत्वाभावाच्च । न १५
कलु कूटस्थेयं पूर्वोत्तरसमावल्यागोपादाने स्तः, क्षणिके चान्वितं
रूपमस्ति, यतः क्रमः कालकृतो देशकृतो वा । नापि युगपदनेक-
समावत्त्वं यतो यौगपद्यं स्यात्, कौटस्थ्यविरोधाच्चिरन्वयविना-
शित्वव्याघातोच्च ।

किञ्च, क्षणिकं वस्तु विनष्टं सत्कार्यमुत्पादयति, अभिनष्टम्, २०
उभयरूपम्, अनुभयरूपं वा ? न तावद्विनष्टम्; चित्तरनष्टत्वेना-
नन्तरनष्टस्याप्यसत्त्वेन जनकत्वविरोधात् । नाप्यविनष्टम्; क्षण-
मङ्गमङ्गप्रसङ्गात् सकलशून्यतानुषङ्गाद्वा, सकलकार्याणामेकदैवो-
त्पद्य विनाशात् । नाप्युभयरूपम्; निरंशैकसमावस्य विरुद्धोभय-
रूपासम्भवात् । नाप्यनुभयरूपम्; अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणामेक- २५
निषेधस्यापरविधाननान्तरीयकत्वेनानुभयरूपत्वायोगात् ।

कथं च निरन्वयनाशित्वे कारणस्योपादानसहकारित्वस्य
व्यवस्था तत्स्वरूपापरिज्ञानात् ? उपादानकारणस्य हि स्वरूपं किं

१ न तु सत्ताक्षणिकत्वयोः । २ प्रथममैवे नाश्वबाधकभावेन विरोधः । द्वितीय-
मेवे तु समावेनैव—यत्र क्षणिकत्वं तत्र न सत्त्वमिति विरोधः । ३ द्रव्यत्वेन ।
४ सर्वथा क्षणिके । ५ अवस्थितस्य पदार्थसैक्यस्य हि नानादेशकालकलाभ्यापित्वं
देशक्रमः कालक्रमश्च । ६ नित्यक्षणिगन्ध्या कृतानां कार्याणाम् । ७ एकानेकात्मक-
त्वप्रसङ्गेः । ८ क्षणिकत्वं । ९ युगपदनेकसमावत्ववत् क्रमेणापि तथा प्राप्तेः ।
१० द्वितीयक्षणे कार्याजनकत्वात् । ११ अविनाशित्वेन । १२ एकं कार्यं प्रत्युपादा-
नत्वमपरं प्रति सहकारित्वमिति । १३ नैनो बौद्धं प्रति वक्ति । १४ बौद्धमते ।

स्वसन्ततिनिवृत्तौ कार्यजनकत्वम्, यथा मृत्पिण्डः स्वयं निवर्तमानो घटमुत्पादयति, आहोस्विदनेकस्मादुत्पद्यमाने कौये स्वगतविशेषाधायकत्वम्, समनन्तरप्रत्ययत्वमात्रं वा स्यात्, नियमवदन्वयव्यतिरेकानुविधानं वा ? प्रथमपक्षे कथञ्चित्सन्ताननिवृत्तिः, सर्वथा वा ? कथञ्चिद्येत्, परमतप्रसङ्गः । सर्वथा चेत्, परलोकाभावानुषङ्गो ज्ञानसन्तानस्य सर्वथा निवृत्तेः ।

द्वितीयपक्षेपि किं स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वम्, सकलविशेषाधायकत्वं वा ? तत्राद्यविकल्पे सर्वज्ञज्ञाने सौकारार्पकस्यासदादिज्ञानस्य तत्प्रत्युपादानभावः, तथा च सन्तानसङ्करः । १० रूपस्य वा रूपज्ञानं प्रत्युपादानभावोऽनुषज्येत स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वाविशेषात् । रूपोपादानत्वे च परलोकाय दत्तो जैलाञ्जलिः । कतिपयविशेषाधायकत्वेनोपादानत्वे च एकस्यैव ज्ञानादिक्षणस्यानुवृत्तव्यावृत्ताऽनेकविधैर्धर्माध्यासप्रसङ्गात् स एव परमतप्रसङ्गः । द्वितीयविकल्पे तु कथं निर्विकल्पकाद्विकल्पोऽपत्तिः रूपाकारात्समनन्तरप्रत्ययाद्रसाकारप्रत्ययोत्पत्तिर्वा, स्वगतसकलविशेषाधायकत्वाभावात् ? सन्तानबहुत्वोपादानात्सर्वस्य स्वसदृशादेवोत्पत्तिरित्यभ्युपगमे तु एकस्मिन्नापि पुरुषे प्रमादबहुत्वोत्पत्तिः । तथा च गवाभ्वादिदर्शनयोर्मिन्नसन्तानत्वादेर्केन दृष्टेयं परस्यानुसन्धानं न स्यादेव वत्सेन दृष्टे यन्नदत्तवत् ।

१ (ज्ञानं प्रति) इन्द्रियार्थलोकादिकारणकलापात् । (घटं प्रति) रुदादिकारणकलापात् । २ ज्ञानवृद्धये घटदो वा । ३ पर्यायरूपेण । ४ ग्रन्थरूपेणापि । ५ तथैव जैनानामपीदृत्वात् । ६ एकजन्मनि वर्त्तमानस्य, उत्तरोत्तरज्ञानसन्तानस्यात्मेति वचनात् । ७ किञ्चिन्नित्यं वर्त्तयित्वाऽन्यात् चेतनत्वादिज्ञानगतविशेषात् सार्वपर्ययीति भावः । ८ सहकारिकारणमूलत्वं । ९ असदादिज्ञानं यदा सर्वत्रो विषयीकरोति तदा तत्साकारं कतिपर्यं समर्पयति वतः । १० सहकारिकारणमूलत्वं । ११ कार्यभूतम् । १२ कतिपयविशेषाः—रूपगतवृत्तं वर्त्तयित्वा स्वगतमेतदीपाधकारविशेषाः । १३ रूपज्ञानस्य । १४ अचेतनरूपादुपादानाच्चैतन्योत्पत्तिर्यतः । १५ रूपं रूपज्ञाने रूपं समर्पयति न तु जडत्वम् । १६ आदिना अर्थादि । १७ आप्तानामिन्द्रादिविशेषामेकस्याऽनुवृत्तव्यावृत्तरूप । १८ अनेकान्तात्मकत्वान् ज्ञानस्य । १९ उत्तरनिर्विकल्पकज्ञानस्योपादानात्सविकल्पकस्य सहकारिकारणात् । २० रूपज्ञानादुत्तररूपज्ञानस्योपादानादुत्तररूपज्ञानस्य सहकारिकारणात् । २१ एकस्मिन्पुरुषे । २२ निर्विकल्पकस्य निर्विकल्पकमुपादानं सविकल्पकस्य सविकल्पकमुपादानमिति भावः । २३ ज्ञानसन्तानस्य बहुत्वात् । २४ गोदर्शनेन । २५ अयादिदर्शनेन । २६ य एवाहं पूर्वं गामद्राक्षं स यवाहमिदानीमश्वं पश्यामीति क्रमेण, सुगमपश्यामीति पश्यामीत्यक्रमेण च ।

किञ्च, सकलसगतविशेषाधायकत्वे सर्वात्मनोपादेयक्षणे एवासौपयोगात् तत्रानुपयुक्तस्वभावान्तराभावाच्च एकसामग्र्य-
न्तर्गतं प्रति सहकारित्वाभावाच्च, तत्कथं रूपादेः रसतो गतिः ?
स्वभावान्तरोपगमे त्रैलोक्यान्तर्गतान्यजन्यकार्यान्तरापेक्षया तस्या-
जनकत्वमपि स्वभावान्तरमभ्युपगन्तव्यम्, इत्यायातमेकस्यैवो-
पादानसहकार्यजनकत्वाद्यनेकविरुद्धधर्माध्यासितत्वम् । न चैते
धर्माः काल्यनिकर्माः, तत्कार्याणामपि तथात्वप्रसङ्गात् ।

सैमनन्तरप्रत्ययत्वमभ्युपादानलक्षणमनुपपन्नम्, कार्ये सैमत्वं
कारणस्य सर्वात्मना, एकदेशेन वा ? सर्वात्मना चेत्, यथा
कारणस्य प्राग्भावित्वं तथा कार्यस्यापि स्यात्, तथा च सत्येतर-
गोविषाणवदेककालत्वात्तयोः कार्यकारणभावो न स्यात् । तथा
कारणाभिमतस्यापि स्वकारणकालेता, तस्यापि सेति सैकलशून्यं
जगदापद्येत । कथञ्चित्समत्वे योगिज्ञानस्याप्यसदादिज्ञानाव-
लम्बनस्य तदाकारत्वेनैकसन्तानत्वप्रसङ्गः स्यात् ।

अनन्तरत्वं च देशकृतम्, कालकृतं वा स्यात् ? न तावद्देशकृतं १५
तत्रोपयोगि, व्यवहितदेशस्यापि इह जन्ममरणचित्तस्य भावि-
जन्मचित्तोपादानत्वोपेक्षमात् । नापि कालानन्तर्यं तत्, व्यवहित-
कालस्यापि जाग्रच्चित्तस्य प्रबुद्धचित्तोत्पत्तावुपादानत्वाभ्युपग-
मात् । अव्यवधानेन प्रौढाद्यभावाच्चमनन्तरत्वम्, इत्यभ्युक्तम्;
क्षणिकैकान्तवादिनां विवक्षितक्षणानन्तरं निखिलजगत्क्षणानां २०
सुप्त्यन्तेः सैवैवामेकसन्तानत्वप्रसङ्गात् ।

निर्यमवदन्व्यव्यतिरेकानुविधानं तल्लक्षणम्, इत्यप्यसमीची-
नम्, बुद्धेर्निर्यमसाम्युपादानोपादेयभावानुषङ्गात्, तेषामव्य-
भिचारेण कार्यकारणभूतत्वाविशेषात् । निर्यमव्यवचितोत्पादात्पूर्वं

१ सगतसकलविशेषाधायकत्वे दूषणान्तरमाह । २ कार्यजन्ये । ३ रूपमुपादा-
नस्य । ४ पूर्वरूपरसौ एकसामग्री । ५ उत्तररसश्च । ६ पूर्वरूपस्य । ७ ज्ञानश्च ।
८ रूपावुपादानस्य । ९ आदिपदेन पूर्वकालभावित्वमुत्तरकालनाशित्वम् । १० अय-
थार्थाः । ११ द्वितीयविकल्पः । १२ प्रत्यय-कारणश्च । १३ समयकालत्वमित्यर्थः ।
१४ सर्वात्मना समानत्वात् । १५ पूर्वरूपक्षणे कार्ये पूर्वतररूपक्षणस्य कारणभूतस्य
समत्वम् । १६ कार्यकारणयोरभावात् । १७ शास्त्रेण । १८ बहुव्रीहिः ।
१९ कथञ्चित्समत्वेन सङ्गावात् । २० धौगतेन । २१ निद्रायात् । २२ अन्येन
वस्तुना तिरोधायकेन । २३ पूर्वरूपस्य कारणस्य । २४ चेतनाऽचेतनानां कार्या-
णाम् । २५ चतुर्थविकल्पः । २६ सुप्तम् । २७ किञ्चिच्च । २८ चित्तं ज्ञानम् ।
२९ असादादिज्ञानसङ्गादेः सुप्तस्यासादादिज्ञानविषयकज्ञानोत्पत्तिरुदात्तत्वे नोत्पत्ति-
रित्यन्यन्यतिरेकस्याम् । ३० आसन्नवहितचित्तम् ।

बुद्धचित्तं प्रति सन्तानान्तरचित्तस्याकारणत्वाच्च तेषामव्यभि-
चारी कार्यकारणभावः इति चेत्, यतः प्रभृति तेषां कार्यकारण-
भावस्तत्प्रभृतितस्तस्याव्यभिचारात्, अन्यथाऽस्याऽसर्वज्ञत्वं
स्यात् । “नाकारणं विषयः” [] इत्यभ्युपगमात् ।

५ अव्यभिचारेण कार्यकारणभूतत्वाविशेषेऽपि प्रत्यासत्तिविशेष-
वशात्केर्वाश्चिदेवोपादानोपादेयभावो न सर्वेषामिति चेत्, स
कोन्योन्यत्रैकैर्द्रव्यतादात्म्यात् ? देशप्रत्यासत्तेः रूपरसादिभिर्वाता-
तपादिभिर्वा व्यभिचारात् । कालप्रत्यासत्तेः एकसमयवर्तिभि-
रशेषार्थैरनेकान्तात् । भावप्रत्यासत्तेश्च पकार्याद्भूतानेकपुरुष-
१० विज्ञानैरनेकान्तात् ।

न चात्रान्वयव्यतिरेकानुविधानं घटते । न खलु समर्थे
कारणे सत्यमर्षतः स्वयमेव पश्चाद्भवतस्तदन्वयव्यतिरेकानु-
विधानं नाम नित्यवत् । ‘स्वदेशवत्स्वकाले सति समर्थे
कारणे कार्यं जायते नासति’ इत्येतावता क्षणिकपक्षेऽन्वयव्यति-
१५ रेकानुविधाने नित्येऽपि तत्स्यात्, स्वकालेऽनाद्यनन्ते सति समर्थे
नित्ये स्वसमये कार्यस्योत्पत्तेरसत्यऽनुत्पत्तेश्च प्रतीयमानत्वात् ।
सर्वदा नित्ये समर्थे सति स्वकाले एव कार्यं भवत्कथं तदन्वय-
व्यतिरेकानुविधायीति चेत् ? तर्हि कारणक्षणात्पूर्वं पश्चाद्भाना-
द्यनन्ते तदभावेऽविशिष्टे क्वचिदेव तदभावसमये भवत्कार्यं कथं
२० तदनुविधायीति समानम् ?

नित्यस्य प्रतिक्षणमनेककार्यकारित्वे कमशोनेकस्वभावत्वसिद्धेः
कथमेकत्वं स्यादिति चेत् ? क्षणिकस्य कथमिति समः पर्यनु-
योगः ? स हि क्षणस्थितिरैकोपि भावोऽनेकस्वभावो विचित्र-
कार्यत्वान्नानार्थक्षणवत् । न हि कारणशक्तिभेदमन्तरेण कार्य-
२५ नानात्वं युक्तं रूपादिज्ञानवत् । यथैव हि कर्कटिकादौ रूपादि-
ज्ञानानि रूपादिस्वभावभेदनिबन्धनानि तथा क्षणस्थितेरैकसा-

१ साक्षवत् । २ निराक्षवचित्तोत्पत्तेः । ३ यदेव घटस्तदेव घृतिपण्ड इति ।
४ बुद्धस्य । ५ यत्सुगतज्ञानोत्पत्तौ कारणं तदेव विषयः । ६ सुगतनिर्वाण
परस्परम् । ७ अत्रात्रैव एकद्रव्यम् । ८ प्रत्यासत्तिरत्रैकवत्, यत्र यत्र देशप्रत्या-
सत्तिस्तत्र तत्रोपादानोपादेयभाव इत्युच्यमाने । ९ भावः=स्वरूपम् । १० क्षणिके ।
११ पूर्वक्षणे जाग्रदज्ञानस्थिते । १२ उत्तरक्षणस्य प्रबुद्धचित्तस्य । १३ कारणं
विना । १४ सौमतेनादौ क्रियमाणे । १५ कारणे । १६ व्यापकत्वेनाभिमतम् ।
१७ क्षणिकस्यानेकस्वभावत्वं नास्त्यतः कथं समः पर्यनुयोग इत्याह । १८ विविध-
कार्यत्वमस्तु न तत्रैकस्वभावत्वमिति सन्निधानैकान्तिकत्वे सतीदम् ।

त्प्रदीपादिलक्षणाद् चर्तिकादादितैलशोषादिविविचित्रकार्याणि शक्ति-
मेदनिमित्तकानि व्यवतिष्ठन्ते, अन्यथा रूपादेरपि नानात्वं न
स्यात् ।

ननु च शक्तिमैतोऽर्थान्तरानर्थान्तरपक्षयोः शक्तीनामघट-
नात्तासां परमार्थसत्त्वाभावः; तर्हि रूपादीनामपि प्रतीतिसि-५
द्धद्रव्यादर्थान्तरानर्थान्तरविकल्पयोरसम्भवात्परमार्थसत्त्वाभावः
स्यात् । प्रत्यक्षबुद्धौ प्रतिभासमानत्वाद्व्रूपादयः परमार्थसन्तो न
पुनस्तच्छक्यस्तासामनुमानबुद्धौ प्रतिभासमानत्वात्; इत्यप्य-
शुक्तम्; क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्त्यादीनामपरमार्थसत्त्वप्रसङ्गात् ।
यतो यथा क्षणिकस्य युगपदनेककार्यकारित्वेभ्येकत्वाविरोधः, १०
तथाऽक्षणिकस्य क्रमशोनेककार्यकारित्वेपीत्यनवद्यम् ।

यथार्थक्रियालक्षणं सत्त्वमित्युक्तम्; तत्र लक्षणशब्दः कार-
णार्थः, स्वरूपार्थः, ज्ञापकार्थो वा स्यात् ? प्रथमपक्षे किमर्थक्रिया
लक्षणं कारणं सत्त्वस्य, तद्वार्थक्रियायाः ? तत्रार्थक्रियातः सत्त्व-
स्योत्पत्तौ प्राक् पदार्थानां सत्त्वमन्तरेणाप्यस्याः प्रादुर्भावान्-१५
हेतुत्वं निराधारकत्वं बालुष्येत । अथ स्त्वादर्थक्रियोत्पद्यते,
तद्वार्थक्रियातः प्रागपि सत्त्वसिद्धिर्भावानां स्वरूपसत्त्वमायातम् ।

अथ स्वरूपार्थोऽसौ; तत्रापि तद्वेतोरसत्त्वप्रसङ्गः, न ह्यर्थक्रिया-
काले तद्वेतुर्विद्यते । न चान्यकालस्यास्यान्यकाला सा स्वरूपम-
तिप्रसङ्गात् ।

२०

नापि ज्ञापकार्थोऽसौ; अर्थक्रियाकालेऽर्थस्यासत्त्वादेव । असत्-
त्वात्तासांऽतः कथं सत्ताशक्तिरितिप्रसङ्गोऽयं ? न चार्थक्रियोद्देशा-
द्व्याक् कारणमासीदिति व्यवस्थापयितुं शक्यम् । यतो यदि
स्वरूपेण पूर्वं हेतुरेवगतो भवेत्तदनन्तरं चार्थक्रिया, तद्वार्थक्रिया
प्रतिपक्षसम्बन्धोर्पलम्ब्यमाना प्राग्वेतुसत्ता व्यवस्थापयतीति २५

१ आदिना स्वरूपकायनादिग्रहणम् । २ अर्थात्सकाशात् । ३ मित्राक्षेच्छेति
सम्बन्धाभावः । सम्बन्धसिद्धयमुपकारकत्वेनेऽनवस्था । अक्षिप्तक्षेच्छक्य एव
शक्तिमन्त एव वा स्युः । ४ तस्य प्रदीपस्य । ५ साधनं विचार्यते । ६ लक्ष्यते
गम्यते कार्यमनेनेति लक्षणं कारणमित्यर्थः—अनेकार्थत्वादातुनाम् । ७ सत्त्वस्य ।
८ सत्त्वस्य । ९ द्वयोः पक्षयोर्मध्ये । १० कारणभूतात् । ११ सर्वथा क्षणिकत्वात् ।
१२ न हि स्वरूपिसरूपयोः कालभेदो यतः । १३ गगनकुसुमादेरपि ज्ञापकत्व-
प्रसङ्गात् । १४ अर्थक्रिया—ज्ञानपानादिः । १५ अणदिलक्षणः अर्थक्रियायाः
१६ कारणेन सह ।

स्यात् । न चार्थक्रियामन्तरेण हेतुः स्वरूपेण कदाचिदप्युपलब्धः
परैः स्वरूपसत्त्वप्रसङ्गात् ।

अर्थक्रियायाश्चापराथक्रिया यदि सत्त्वव्यवस्थापिका; तदान-
वस्था । न चार्थक्रियाऽनधिगतसत्त्वस्वरूपापि हेतुसत्त्वव्यवस्था-
पिका; अश्वविषाणादेरपि तत्सत्त्वव्यवस्थापकत्वानुपपन्नात् । न
च हेतुजन्यत्वादर्थक्रिया सती नार्थक्रियान्तरोदयात्, इत्यभि-
धातव्यम्; इतरेतराश्रयानुपपन्नात् हेतुसत्त्वाच्चऽर्थक्रिया सती,
तत्सत्त्वाच्च हेतोः सत्त्वमिति ।

अस्तु चार्थक्रियालक्षणं सत्त्वम् । तथाप्यतोर्थानां क्षणस्थायिता
१० क्षणिकत्वं साध्येत, क्षणादूर्ध्वभावो वा ? प्रथमपक्षे सिद्धसा-
ध्यता, नित्यस्याप्यर्थस्य क्षणावस्थित्यभ्युपगमात् । कथमन्य-
थास्य सदावस्थितिः क्षणावस्थितिनिवन्धनत्वात् क्षणान्तराद्यव-
स्थितेः ? अथ क्षणादूर्ध्वभावः साध्यते; तन्न; अभावेन सदास्य
प्रतिबन्धासिद्धेः । न चाप्रतिबन्धविषयोऽश्वविषाणादिवद-
१५ नुमेयः । तन्न सत्त्वादप्यर्थानां क्षणिकत्वावगतिः ।

नापि कृतकत्वात्; उक्तप्रकारेण क्षणिके कार्यकारणभाव-
प्रतिषेधतः कृतकस्याऽसिद्धस्वरूपत्वेन तदवगतिं प्रत्यनङ्गत्वात् ।
तैतः प्रतीत्यनुरोधेन स्थिरः स्थूलः साधारणस्वभावश्च भावो-
भ्युपगन्तव्यः ।

२० ननु चार्णूनामयःशलाकाकल्पत्वेनान्योन्यं सम्बन्धाभावतः
स्थूलादिप्रतीतेर्प्रान्तत्वात्कथं तद्वशात्तत्त्वभावो भावः स्यात् ?
तथाहि-सम्बन्धोर्थानां पारतन्त्र्यलक्षणो वा स्यात्, रूपश्लेष-
लक्षणो वा स्यात् ? प्रथमपक्षे किमसौ निष्पन्नयोः सम्बन्धिनोः
स्यात्, अनिष्पन्नयोर्वा ? न तावदनिष्पन्नयोः स्वरूपस्यैवाऽसत्त्वात्
२५ शशाश्वविषाणवत् । निष्पन्नयोश्च पारतन्त्र्याभावादसम्बन्ध एव ।

उक्तञ्च—

“पारतन्त्र्यं हि सम्बन्धः सिद्धे का परतन्त्रता ।

तस्मात्सर्वस्य भावस्य सम्बन्धो नास्ति तत्त्वतः ॥ १ ॥”

[सम्बन्धपरी०]

३० नापि रूपश्लेषलक्षणोसौ; सम्बन्धिनोर्द्वित्वे रूपश्लेषविरो-

१ अर्थक्रियाकारणम् । २ सौगतैः । ३ अनुमानत्रयेण क्षणिकत्वं पदार्थानां न
सिद्ध्यति यतः । ४ रूपरसगन्धस्पर्शपरमाणूनां समासीयविनासीयव्यावृत्तानां पर-
स्परसम्बन्धानाम् । ५ सम्बन्धिति । ६ सहाविन्ध्यवोरिव । ७ अन्योन्यस्वभावानु-
प्रवेशलक्षणः ।

धात् । तयोरैक्ये वा सुतरां सम्बन्धाभावः, सम्बन्धिनोरभावे सम्बन्धायोगात् द्विष्टत्वात्तस्य । अथ नैरन्तर्यं तयो रूपश्लेषः, नैः, अस्यान्तरालाभावरूपत्वेनाऽतात्त्विकत्वात् सम्बन्धरूपत्वा-योगः । निरन्तरतायाश्च सम्बन्धरूपत्वे सान्तरतापि कथं सम्बन्धो न स्यात् ? ५

किञ्च, असौ रूपश्लेषः सर्वात्मना, एकदेशेन वा स्यात् ? सर्वात्मना रूपश्लेषे अणूनां पिण्डः अणुमात्रः स्यात् । एकदेशेन तच्छ्लेषे किमेकदेशोस्तस्यात्मभूताः, परभूताः वा ? आत्मभूता-श्चेत्, न एकदेशेन रूपश्लेषस्तदभावात् । परभूताश्चेत्, तैरप्य-णूनां सर्वात्मनैकदेशेन वा रूपश्लेषे स एव पर्यनुयोगोऽनवस्था १० न स्यात् । तदुक्तम्—

“रूपश्लेषो हि सम्बन्धो द्वित्वे स च कथं भवेत् ।

तस्मात्प्रकृतिभिर्धानां सम्बन्धो नास्ति तत्त्वतः ॥ २ ॥”

[सम्बन्धपरी०]

किञ्च, परोपेक्षैव सम्बन्धः, तस्य द्विष्टत्वात् । तं चापेक्षते १५ भावः स्वयं सन्, असन्वा ? न तावदसन्, अपेक्षाधर्माश्रयत्ववि-रोधात् खरभृङ्गवत् । नापि सन्, सर्वनिराशंसत्वात्, अन्यथा सत्त्वविरोधात् । तन्न परापेक्षा नाम यद्रूपः सम्बन्धः सिद्ध्येत् । उक्तञ्च—

“परापेक्षा हि सम्बन्धः सोऽसन् कथमपेक्षते ।

२०

संश्च सर्वनिराशंसो भावः कथमपेक्षते ॥ ३ ॥”

[सम्बन्धपरी०]

किञ्च, असौ सम्बन्धः सम्बन्धिभ्यां मिश्रः, अभिन्नो वा ? यश्च-मिश्रः, तदा सम्बन्धिनावेव न सम्बन्धः कश्चित्, स एव वा न ताविति । मिश्रश्चेत्, सम्बन्धिनौ केवलौ कथं सम्बन्धौ (द्वौ) २५ स्याताम् ?

भवतु वा सम्बन्धोर्थान्तरम्, तथापि तेनैकेन सम्बन्धेन सह द्वयोः सम्बन्धिनां कः सम्बन्धः ? यथा सम्बन्धिना-र्थयोक्तदोषाश्च कश्चित्सम्बन्धस्तथात्रापि । तेनानयोः सम्बन्धा-

१ इति चेदित्युपरितः । २ अन्तरालाभावो नैरन्तर्यमिति । ३ पुच्छमावरूपत्वाद-भावस्य । ४ निरन्तरतावत्पदार्थद्वयापेक्षत्वाविरोधात् । ५ अशाः । ६ निरशत्वाद्गणः । ७ सम्बन्धिनाः । ८ प्रकृत्या=सत्त्वावेव । ९ अणूनाम् । १० सम्बन्धवत्तुल्यः । ११ सर्वेषु निराकाङ्क्षात्वात् । १२ परमपेक्षते चेत् । १३ परम् । १४ सम्बन्ध-रहितौ । १५ सम्बन्धिन्याम् ।

न्तराभ्युपगमे चानवस्था स्यात्तत्रापि सम्बन्धान्तरानुपपत्तात् ।
तत्र सम्बन्धिनोः सम्बन्धबुद्धिर्वास्तवी तद्व्यतिरेकेणान्यस्य
सम्बन्धस्यासम्भवात् । तदुक्तम्—

“द्वयोरेकामिसम्बन्धात्सम्बन्धो यदि तद्भयोः ।

५ कैः सम्बन्धोर्नवस्था च न सम्बन्धमतिस्तथा ॥ ४ ॥

ततः—

तौ च भावौ तदन्यत्र सर्वे ते स्वात्मनि स्थिताः ।

इत्यमिध्राः स्वयं भावास्ताद् मिश्रयति कल्पना ॥ ५ ॥”

[सम्बन्धपरी०]

१० तौ च भावौ सम्बन्धिनौ ताभ्यामन्यत्र सम्बन्धः सर्वे ते
स्वात्मनि स्वस्वरूपे स्थिताः । तेनामिध्रा व्यावृत्तस्वरूपाः स्वयं
भावास्तथापि तान्मिश्रयति योजयति कल्पना । अत एव तद्वा-
स्तवसम्बन्धाभावेऽपि तामेव कल्पनामनुबन्धानैर्व्यवहर्तुमिर्भावानां
नैवोऽन्यापोहस्तस्य प्रत्यायनाय क्रियाकारकादिवाचिनः शब्दाः
१५ प्रयोज्यन्ते—‘देवदत्त गामभ्याज शुक्लां दण्डेन’ इत्यादयः । न
अत्र कारकाणां क्रियया सम्बन्धोस्ति, क्षणिकत्वेन क्रियाकाले
कारकाणामसम्भवात् । उक्तञ्च—

“तामेव चानुबन्धानैः क्रियाकारकवाचिनः ।

भावसेदप्रतीत्यर्थं संयोज्यन्तेभिर्वाचकाः ॥ ६ ॥”

[सम्बन्धपरी०]

२० कार्यकारणभावस्तर्हि सम्बन्धो भविष्यति, इत्यप्यसमीचीनम् ।
कार्यकारणयोरसहभाववर्तमानस्यापि द्विष्टस्यासम्भवात् । न अत्र
कारणकाले कार्यं तत्काले वा कारणमस्ति, तुल्यकालं कार्य-
कारणभावानुपपत्तेः सव्येतरगोविषाणवत् । तत्र सम्बन्धिनौ
२५ सहभाविनौ विद्येते येनानयोर्वर्तमानोसौ सम्बन्धः स्यात् । अद्विष्टे
च भवेत् सम्बन्धतानुपपत्तैव ।

कार्ये कारणे वा क्रमेणासौ सम्बन्धो वर्तते, इत्यप्यसा-
म्प्रतम्, यतः क्रमेणापि भावः सम्बन्धाख्य एकत्र कारणे कार्ये

१ स च सम्बन्धिनौ च । २ सम्बन्धसम्बन्धिनोः । ३ अन्येति हेतुः ।
४ सम्बन्धः । ५ वास्तवरूपा कर्मा । ६ भावास्तवी । ७ कल्पनेव मिश्रयति वदः ।
८ सिरस्त्रुलसाधारणाकाररूपः । ९ जगोभ्यावृत्तिगौः, जगदभ्यावृत्तिवत् इत्यादि ।
१० कल्पनाप्रवाहनी शुक्तिम् । ११ सामान्यसम्बन्धः संवृत्त्य सम्बन्धविशेषं दूषव-
त्राह । १२ क्षणिकत्वात् । १३ कार्यकारणबुद्धौ । १४ कार्यकारणबुद्धौ ।

वा वर्तमानोऽन्यनिस्पृहः=कार्यकारणयोरन्यतरपक्षो नैकवृ-
त्तिमान् सम्बन्धो युक्तः, तदभावेपि=कार्यकारणयोरभावेपि
तद्भावात् । यदि पुनः कार्यकारणयोरेकं कार्यं कारणं वापेक्ष्या-
न्त्यत्र कार्ये कारणे वासौ सम्बन्धः क्रमेण वर्तत इति सस्पृह-
त्वेन द्विष्ट एवेत्यते; तदानेनापेक्ष्यमाणेनोपकारिणा भवितव्यं ५
यस्मादुपकार्योपेक्ष्यः स्यान्नान्यः । कथं चोपकरोत्यऽसन् ? यदा
कारणकाले कार्याख्यो भावोऽसन् तत्काले वा कारणाख्यस्तदा
नैवोपेक्ष्योदसामर्थ्यात् ।

किञ्च, यद्येकार्थ्याभिसम्बन्धात्कार्यकारणता तयोः कार्यकार-
णभावत्वेनाभिमतयोः, तर्हि द्वित्वसंख्यापरत्वापरत्वविभागादि-१०
सम्बन्धात्प्राप्ता सा सव्येतरगोविषाणयोरपि । न येन केनचिदेकेन
सम्बन्धात्सेव्यते; किं तर्हि ? सम्बन्धलक्षणेनैवेति चेत्, तन्न,
द्विष्टो हि कश्चित्पदार्थः सम्बन्धः, नातोर्थद्वयाभिसम्बन्धाद-
न्यस्य लक्षणम्, येनास्य संख्यादेर्विशेषो व्यवस्थान्येत ।

कैस्यचिद्भावे भौवोऽभावे चाभावः तौत्रुपाधी विशेषणं यस्य १५
योगस्य=सम्बन्धस्य स कार्यकारणता यदि न सर्वसम्बन्धः,
तदा तावेव योगोपाधी भावाभावौ कार्यकारणताऽस्तु किमसत्स-
म्बन्धकल्पनया ? सेदौचेत् 'भावे हि भौवोऽभावे चाभावः' इति
बहवोभिर्धेयाः कथं कार्यकारणतेत्येकार्थाभिधायिना शब्दे-
नोच्यन्ते ? नन्वयं शब्दो नियोकारं समाभितः । नियोक्ता हि यं २०
शब्दं यथा प्रयुञ्जे तथा प्रौढ, इत्यनेकत्राप्येकं धृतिर्न विरुध्यते
इति तावेव कार्यकारणता ।

यस्मात् पक्ष्येकं कारणाभिमतमुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्याऽदृष्टेः
कार्याख्यस्य दर्शने सति तद्दर्शने च सत्यऽपक्ष्यत्कार्यमन्वेति

१ 'अन्यनिस्पृहस्य' प्रत्ययः । २ प्रत्ययः । ३ अन्यतरस्य । ४ अस्य कार्यसेवं
कारणमिति । ५ हेतोः । ६ कार्येण कारणेन वा । ७ सम्बन्धेन । ८ लोके । ९ कार्ये-
कारणमपेक्ष्य कारणे कार्यमपेक्ष्य वो वर्तते सम्बन्धस्य । १० सविषाणादिवत् ।
११ सम्बन्धलक्षण । १२ द्वन्द्वः । १३ आदिवा प्रयुक्तवादि । १४ द्वित्वसंख्यालक्ष्यै-
कार्याभिसम्बन्धसाविधेयात् । १५ प्रमेन तद्वत् । १६ कार्यस्य कारणस्य वा । १७ कार्य-
कारणतायाः सात् । १८ भावाभावौ । १९ उपाधिः=विधेयणम् । २० सम्बन्धः ।
२१ जैनाचारशङ्कादौक्तः । २२ भावाभावार्था कार्यकारणभावसम्बन्धस्य । २३ सम्ब-
न्धस्य । २४ चत्वारोऽङ्गाः । २५ कार्यकारणसम्बन्धप्रतिपादकः कार्यकारणलक्षणः ।
२६ प्रत्ययमभिप्रेतानेकार्यं नाभिप्रेतम् । २७ यस्मात्कारणनेकार्थान्वा । २८ ययोदपिशब्दः
उदकानि अस्मिन्वीयन्ते स उदधिरित्यादिः । २९ कारणाभिमतपदार्थदर्शनापूर्वम् ।

‘इदमंतो भवति’ इति प्रतिपद्यते जनः ‘अत इदं जातम्’ इत्याख्यातुमिर्विनापि । तस्मादर्शनादर्शने-विषयिणि विषयोपचारात्-भावाभावौ मुक्त्वा कार्यबुद्धेरसम्भवार्त्तं कार्यादिश्रुतिरेष्यन्न ‘भावाभावयोर्मा लोकाः प्रतिपदमिरेतीं शब्दमालामभिदध्यात्’ ५ इति व्यवहारलाघवार्थं निवेशितेति ।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कार्यकारणता नान्या चेत् कथं भावाभावाभ्यां सा प्रसाध्यते ? तदभावाभावात् छिन्नात्कार्यतागतिर्याप्यनुवर्ण्यते ‘अस्येदं कार्यं कारणं च’ इति, सङ्केतविषयाख्या सा । यथा ‘गौरयं साक्षादिमत्त्वात्’ इत्यनेन गोव्यवहारस्य १० विषयः प्रदर्श्यते । यैतश्च ‘भावे भाविनि=भवनधर्मिणि तद्भावाः=कारणामिमतस्य भाव एव कारणत्वम्, भावे एव कारणामिमतस्य भाविता कार्यामिमतस्य कार्यत्वम्’ इति प्रसिद्धे प्रत्यक्षानुपलम्भतो हेतुफलते । ततो भावाभावावेव कार्यकारणता नान्या । तेनैतावन्मात्रं=भावाभावौ तावेव तैस्त्वं यस्यार्थस्यैसावे १५ तावन्मात्रतत्त्वः, सौथो येषां विकल्पाणां ते एतावन्मात्रतत्त्वार्थाः=एतावन्मात्रबीजाः, कार्यकारणगोचराः, दर्शयन्ति घटितानिष=सम्बद्धानिवाऽसम्बद्धानप्यर्थान् । एवं घटनाच्च मिथ्यार्थाः ।

किञ्च, असौ कार्यकारणभूतोर्थो मित्रैः, अभिज्ञो वा स्यात् ? यदि मित्रः, तर्हि मित्रे का घटना स्वस्वभावव्यवस्थितेः ? अथाऽ- २० मित्रः, तदाऽमित्रे कार्यकारणतापि का ? नैव स्यात् ।

स्यादेतत्, न मित्रस्याभिज्ञस्य वा सम्बन्धः । किं तर्हि ? सम्बन्धाख्येनैकेन सम्बन्धात्, इत्यत्रापि भावे सत्तायामर्थस्य

१ कथम् ? तथा हि । २ स्वयम् । ३ शब्दोल्लेखमन्तरेण उपदेशकैः पुरुषैः । ४ कारणस्य । ५ कार्यस्य । ६ कार्यकारणामिमतयोः पदार्थयोः कार्यकारणता भवति । ७ दर्शनादर्शनलक्षणे ज्ञाने । ८ भावाभावावेव कार्यं, नान्यदित्यर्थः । ९ श्रुतिः=शब्दः । १० न केवलं कार्यकारणश्रुतिः किन्तु । ११ भावे भावः ज्ञाने वाऽभावा इत्येतावतीत्यर्थः । १२ समर्थिता । १३ इति=सम्बन्धवादी भूते । १४ भावाभावाभ्यामनुमीयमाना यदि कार्यकारणता ताम्यामन्या तदा दूषणम् । १५ सम्बन्धकादिना । १६ तस्य=कारणस्य । १७ अस्य कारणस्येदं कार्यमस्य च कार्यस्येदं कारणमिति । १८ अनुमानेन । १९ प्रकारान्तरेण तावेव कार्यकारणतेति निरूपयति । २० कार्यलक्षणे । २१ स्वरूपम् । २२ कार्यकारणस्य । २३ अर्थः=विषयः । २४ आन्तश्चानानाम् । २५ वस्तु । २६ विकल्पाः । २७ प्रत्ययैः । २८ विकल्पाः । २९ परस्परम् । ३० सम्बन्धः । ३१ कार्यकारणयोः । ३२ कार्यस्य कारणस्य वा । ३३ प्रत्ययोर्यम् । ३४ मित्रस्य ।

सम्बन्धस्य विच्छिद्यै कार्यकारणामिमितौ विच्छिद्यौ स्याताम् कथं च तौ संयोगिसमवायिनौ ? औदित्प्रहणात्स्वस्वाम्यादिकम्, सर्वमेतेनानन्तरोक्तेन सामान्यसम्बन्धप्रतिषेधेन चिन्तितम् ।

संयोग्यादीनामन्योन्यमनुपकाराच्चाऽऽन्यजनकभावाच्च न सम्बन्धी च तादृशानुपकारोपकारकभूतः । ५

अथास्ति कश्चित्समवायी योऽन्यविरूपं कार्यं जनयति अतो नानुपकारावसम्बन्धितेति; तन्न; यतो जननेपि कार्यस्य केनचित्समवायिनाभ्युपगम्यमाने समवायी नास्ती तदा जननकाले कार्यस्यानिर्णयः । न च ततो जननात्समवायित्वं सिद्ध्यति; कुम्भकारादेरपि घटे समवायित्वप्रसङ्गात् । तैयोः समवायिनोः १० परस्परमनुपकारेपि ताभ्यां वा समवायस्य नित्यतया समवायेन वा तयोः परैश्च वा कश्चिदनुपकारेपि सम्बन्धो यदीष्यते; तदा विश्वं परस्परासम्बद्धं समवायि परस्परं स्यात् । यदि च संयोगस्य कार्यत्वात्तस्य तैभ्यां जननात्संयोगिता तैयोः तदा संयोगजननेपीष्टौ, ततः संयोगजननाच्च तौ संयोगिनौ, कर्मणोर्पि १५ संयोगितोपत्तेः । संयोगो ह्यन्यतैरकर्मजः उभयकर्मजश्चेष्यते । औदित्प्रहणात्संयोगैस्यापि संयोगिता स्यात् । न संयोगजननात्संयोगिता । किन्तर्हि ? स्यापनादिति चेत्; न स्थितिर्न प्रतिवर्तिता=ग्रन्थान्तरे प्रतिसिद्धौ, स्थाप्यस्थापकयोर्जन्यजनकत्वाभावाज्ज्ञान्या स्थितिरिति । २०

“कार्यकारणभावोपि तयोरसद्विभावतः ।

प्रसिद्ध्यति कथं द्विष्टोऽद्विष्टे सम्बन्धता कथम् ॥ ७ ॥

- १ लक्षणेन । २ कारिकायाः । ३ स्वामिश्रमावसम्बन्धादिकम् । ४ निराकृतम् । ५ अर्थः । ६ उपकारकः । ७ तन्वादिः । ८ सम्बन्धवादिना । ९ कार्येण समम् । १० समवायिना कारणेन कार्यस्य निष्पादनसमये कार्यस्यानिष्पत्त्यात्कुतः कार्येण समत्वं कारणस्य । तत्कारणे सति तस्य विनष्टत्वात् । ११ तन्वायाः । १२ तन्मुपपद्योः । १३ असमवायिनि कारणे कार्ये वा । १४ उपकारकत्वाभावाविशेषात् । १५ सम्बन्धस्य । १६ समवायिन्याम् । १७ संयोगिनोः । १८ क्रियायाः । १९ कर्मणः सकाशात्संयोगजननात् । २० तथा च ग्रन्थयोरेव हि संयोगो, न कर्मणोरेवेति सर्वं निषेधेत् । २१ शैलदेवमयोः । २२ मल्लवोः । २३ कारिकायाः । २४ गुणरूपस्य । २५ इत्युक्तकसंयोगात्काव्यपुस्तकसंयोगस्योत्पत्तेः । २६ संयोगिन्यां स्थाप्यपदार्थस्य संयोगवर्धनस्य सिद्धिनिष्पादनात् । २७ संयोगिनोः संयोगस्य च । २८ निराकृता । २९ प्रत्ययः । ३० जन्यजनकभावस्तु प्राप्तप्रतिक्षिप्त इत्यर्थः ।

- क्रमेण भाव एकत्र वर्त्तमानोन्यनिरूपहः ।
 तदभावेऽपि तैङ्गावात्सम्बन्धौ नैकवृत्तिमान् ॥ ८ ॥
 यद्यपेक्ष्य तयोरेकमन्यत्रासौ प्रवर्त्तते ।
 उपकारी ह्यपेक्ष्यः स्यात्कथं चोपकरोत्यसन् ॥ ९ ॥
- ५ यद्येकार्थमिसम्बन्धात्कार्यकारणता तयोः ।
 प्राप्ता द्वित्वादिसम्बन्धात्सव्येतरविषाणयोः ॥ १० ॥
 द्विष्टो हि कश्चित्सम्बन्धो नातोऽन्यत्तस्य लक्षणम् ।
 भावाभावोपधिर्योगः कार्यकारणता यदि ॥ ११ ॥
 योगोपाधी न तावेव कार्यकारणतात्र किम् ।
 १० मेदाश्वेन्नन्वऽयं शब्दो नियोक्तारं समाश्रितः ॥ १२ ॥
 पश्यन्नेकमदृष्टस्य दर्शने तददर्शने ।
 अपश्यत्कार्यमन्वेति विना व्याख्यादुर्भिर्जनः ॥ १३ ॥
 दर्शनादर्शने मुक्त्वा कार्यबुद्धेरसम्भवात् ।
 कार्योदिश्रुतिरप्यत्र लाघवार्थं निवेशिता ॥ १४ ॥
- १५ तैङ्गावाभावार्त्तत्कार्यगतिर्याप्यनुवर्ण्यते ।
 सङ्केतविषयाख्या सा साक्षादेर्गोतिर्यथा ॥ १५ ॥
 भावे भाविनि तङ्गावो भाव एव च भाविर्ता ।
 प्रसिद्धे हेतुफलते प्रत्यक्षानुपलम्भतैः ॥ १६ ॥
 एतावन्मात्रतत्त्वार्थाः कार्यकारणगोचराः ।
 २० विकल्पा दर्शयन्त्यर्थान् मिथ्यार्थां घटितानिष ॥ १७ ॥
 मित्रे का घट्टनाऽमित्रे कार्यकारणतामि का ।
 भावे ह्यन्यैस्य विशिष्टौ निष्ठौ स्यातां कथं च तौ ॥ १८ ॥
 संयोगिसमवाय्यादि सर्वमेतेन चिन्तितम् ।
 अन्योन्यालुपकाराच्च न सम्बन्धी च तादृशः ॥ १९ ॥
- २५ जननेऽपि हि कार्यस्य केनचित्समवायिना ।
 समवायी तदा नासौ न ततोतिप्रसङ्गतः ॥ २० ॥
 तैथोरनुपकारेऽपि समवाये परत्र वा ।
 सम्बन्धो यदि विश्वं स्यात्समवायि परस्परम् ॥ २१ ॥
 संयोगजननेपीष्टौ ततः संयोगिनौ न तौ ।

१ कार्ये कारणे वा । २ तयोः कार्यकारणयोः । ३ तस्य=सम्बन्धस्य ।
 ४ सम्बन्धः । ५ नरम् । ६ कारणम् । ७ कार्यम् । ८ तस्य=कारणस्य । ९ तस्य=
 कारणस्य । १० तस्य=कारणस्य । ११ साधनात् । १२ कार्यता । १३ अन्य-
 व्यतिरेकतः । १४ सम्बन्धः । १५ सम्बन्धस्य । १६ समवायिनोः । १७ तद्वैति
 शेषः । १८ कुतः । १९ यतः ।

कर्मादियोगितापत्तेः स्थितिश्च प्रतिवर्णिता ॥ २२ ॥”

[सम्बन्धपरी०] इति ।

अस्तु वा कार्यकारणभावलक्षणः सम्बन्धः, तथाप्यस्य प्रतिपन्नस्य, अप्रतिपन्नस्य वा सत्त्वं सिद्ध्येत्? न तावदप्रतिपन्नस्य, अतिप्रसङ्गात् । प्रतिपन्नस्य चेत्, कुतोस्य प्रतिपत्तिः-प्रत्यक्षेण, प्रत्यक्षा-^५नुपलम्भोभ्यां वा, अनुमानेन वा प्रकारान्तराऽऽसम्भवात्? प्रत्यक्षेण चेत्, अग्निस्वरूपग्राहिणा, धूमस्वरूपग्राहिणा, उभयस्वरूपग्राहिणा वा? न तावदग्निस्वरूपग्राहिणा; तद्धि तत्सद्भावमात्रमेव प्रतिपद्यते न धूमस्वरूपम्, तदप्रतिपत्तौ च न तदपेक्षयाग्रेः कारणत्वावगमः । न हि प्रतियोगिस्वरूपाप्रतिपत्तौ तं प्रति कैस्यचित्कारण-^{१०}त्वमन्यद्वा धर्मान्तरं प्रत्येतुं शक्यमतिप्रसङ्गात् । नापि धूमस्वरूपग्राहिणा प्रत्यक्षेण कार्यकारणभावावगमः; अत एव, उभयस्वरूपग्रहणे खलु तन्निष्ठसम्बन्धावगमो युक्तो नान्यथा । नाप्युभयस्वरूपग्राहिणा, तत्रापि हि तैयोः स्वरूपमात्रमेव प्रतिभासते न त्वग्रे-^{१५}र्ध्वं प्रति कारणत्वं तस्यैव तं प्रति कार्यत्वम् । न हि स्वरूपनिष्ठ-^{१५}पदार्थद्वयस्यैकज्ञानप्रतिभासमात्रेण कार्यकारणभावप्रतिभासः, घटपटादेरपि तैर्प्रसङ्गात् । यत्प्रतिभासानन्तरमेकत्र ज्ञाने तस्य प्रतिभासस्तयोस्तदवगमः, इत्यपि तार्क्यं, घटप्रतिभासानन्तरं पटस्यापि प्रतिभासनात् । न च ‘क्रममाविपदार्थद्वयप्रतिभास-^{२०}सम्बन्धव्येकं ज्ञानम्’ इति वक्तुं शक्यम्; सर्वत्र प्रतिभासमेवस्य ^{२०}मेदनिर्बन्धनत्वात् ।

अथाग्निधूमस्वरूपद्वयग्राहिज्ञानद्वयानन्तरभासिस्वरणसहकारीन्द्रियजनितविकल्पज्ञाने तद्वयस्य पूर्वापरकालमाविनः प्रतिभासा-
त्कार्यकारणभावनिरूप्यो भविष्यतीत्युच्यते; तदप्युक्तिमात्रम् ।
चक्षुरादीनां तज्ज्ञानजननासामर्थ्ये स्वरणसव्यपेक्षाणामपि जैन-^{२५}

१ गगनाब्जादेरपि सत्त्वप्रसङ्गोऽप्रतिपन्नत्वाविशेषात् । २ अन्यव्यतिरेकज्ञाना-
भ्याम् । ३ उक्तप्रकारेणः प्रमाणान्तरस्य परेणानव्युपगमात् । ४ अयमग्निधूमस्य
कारणमिति । ५ प्रतियोगी=धूमः । ६ धूमम् । ७ मन्वादेर्वस्तुनः । ८ सावृष्या-
दिकम् । ९ खड्गमुदार्कं प्रत्यपि कस्यचित्कारणत्वप्रसङ्गात् । १० अधिधूमयोः ।
११ न त्वयमग्निधूमस्य कारणं धूमोऽग्रेः कार्यमिति प्रतिभासः । १२ एव ।
१३ युक्तः । १४ तस्य=कार्यकारणभावस्य । १५ एकज्ञानप्रतिभासभावत्वस्याविशे-
षात् । १६ अर्थस्य । १७ कृतः । १८ यत् ज्ञानं परिहरति परः पदार्थद्वयप्रतिभासे ।
१९ अनुयायि । २० ज्ञाने वेद्ये च । २१ घटपटयोरेव । २२ तौ अग्निधूमाविति
भीमोसकाम्युपपत्तेः प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षे । २३ सम्बन्धवादिना । २४ अग्निधूमद्वय-
कार्यकारणभावज्ञानोत्पत्तिनासामर्थ्ये । २५ ज्ञानस्य ।

कत्वविरोधात् । न हि परिमलस्वरणसव्यपेक्षं लोचनं 'सुरभि चन्दनम्' इति प्रत्ययमुत्पादयति । तत्सव्यपेक्षलोचनव्यापारानन्तरमेते कार्यकारणभूता इत्यवभासनासङ्गावः सविकल्पकप्रत्यक्षप्रसिद्धः, इत्यप्यसमीचीनम्, गन्धस्यापि लोचनज्ञानविषय-
५ त्वप्रसङ्गात्, गन्धस्वरणसहकारिलोचनव्यापारानन्तरं 'सुरभि चन्दनम्' इति प्रत्ययप्रतीतेः । तच्च प्रत्यक्षेणासौ प्रतीयते ।

नापि प्रत्यक्षानुपलम्भाम्याम्, प्रत्यक्षस्येवानुपलम्भस्यापि प्रति-
वेर्ध्यविविक्तवस्तुमात्रविषयत्वेनात्राऽसामर्थ्यात् । अथाग्निसङ्गाव
एव धूमस्य भावस्तदभावे चाभावः कार्यकारणभावः, स चैताभ्यां
१० प्रतीयते इच्युच्यते, तर्हि वक्तृत्वस्यासर्वज्ञत्वादिना व्याप्तिः
स्यात् । तद्वि रागादिमत्त्वाऽसर्वज्ञत्वसङ्गावे स्वात्मन्येव दृष्टम्,
तदभावे चोपलशकलादौ न दृष्टम् । तथा च सर्वज्ञवीतरागाय
दत्तो जलाञ्जलिः ।

वैकृत्यस्य वक्तृकामताहेतुकत्वाभ्यां दोषः, रागादिसङ्गावेपि
१५ वक्तृकामताभावे तस्यासत्त्वात् । नन्वेवं व्यभिचारे विवक्षाप्यस्य
निमित्तं न स्यात्, अनर्थविवक्षायामप्यनर्थशब्दोपलम्भात्, अन्यथा
गोत्रैस्त्रलनादेरभावप्रसङ्गात् । अथार्थविवक्षाव्यभिचारेपि शब्द-
विवक्षायामप्यव्यभिचारः, न, सम्भावस्थायामन्यत्र गतवित्तस्य वा
शब्दविवक्षाभावेपि वक्तृत्वसंवेदनात् । न च व्यवहिता सा
२० तन्निमित्तमिति वक्तव्यम्, प्रतिनियतकार्यकारणभावाभावा-
प्रसङ्गात्, सर्वस्य तैत्प्राप्तेः । अथ 'असर्वज्ञत्वाद्यभावे सर्वज्ञं
वक्तृत्वं न सम्भवति' इत्यत्र प्रमाणाभावाच्च तस्य तेन कार्यकारण-
भावलक्षणः प्रतिवर्द्धः सिद्धयति, तैदग्निधूमादावपि समानम् ।

१ कर्तृपदम् । २ कर्मपदम् । ३ परिमलस्वरणसव्यपेक्षत्वेपि लोचने सति चन्दनं
सुरभीति ज्ञानं प्राणेश्चिदादेव जायत इत्यर्थः । ४ अग्निधूमादयः । ५ तदपि कुल इत्याह ।
६ अग्निधूमादि । ७ महादृष्टादि । ८ असर्वज्ञत्वादिसङ्गावे वक्तृत्वस्य सङ्गावस्यदभावे
चाभाव इति । ९ सर्वज्ञो वीतरागश्च नास्तीति भावः । १० सर्वज्ञास्तित्वादिना
ज्ञेनादिना । ११ सर्वज्ञास्तित्वं यज्यब्राह्म । १२ साधनस्य । १३ न तु रागादि-
हेतुकत्वात् । १४ असर्वज्ञत्वलक्षणः । १५ आदिना हेमादि । १६ उक्तप्रकारेण ।
१७ वक्तृत्वसाधनस्य । १८ अग्निदत्ता । १९ जिवदत्तादि । २० नाम । २१ वक्तृत्वस्य ।
२२ कार्यान्तरे । २३ शब्दविवक्षा यदासीत्तदा वक्तृत्वस्य निमित्तं स्वात्मार्यान्तरेणाप्यव-
हिता । अतोऽप्यवहिता वा शब्दविवक्षा यस्यात्तन्निमित्तं भवतीत्युक्ते आह । २४ व्यक-
ष्टितस्य कार्यस्य । २५ तस्य=व्यवहितकारणत्वस्य । २६ आदिना रागादिमत्त्वादि ।
२७ नृपु । २८ अविमाभावः । २९ दत्तो युक्तिमन्तरेण बौद्धेनोक्तमिति भावः ।

अथ 'अभ्यभावे धूमस्य भावे तद्धेतुकताविरहात्सकृदप्यहेतो-
रग्रेस्तास्य भावो न स्यात्, दृश्यते च महानसादावग्नितः,
ततो नानग्रेर्धूमसद्भावः' इति प्रतिबन्धसिद्धिरित्यभिधीयते;
तदप्यभिधानमात्रम्; यथैव हीन्धनावरेकदा समुद्भूतोप्यग्निः
अन्यद्वारणिनिर्मथनात् मर्ण्यादेर्वा भवन्नपलभ्यते, धूमो वाग्नितो ५
जायमानोपि गोपालघटिकादौ पावकोद्भूतधूमादप्युपजायते, तथा
'अभ्यभावेपि कदाचिद्धूमो भविष्यति' इति कुतः प्रतिबन्धसिद्धिः ?
अर्थ 'यादृशोऽग्निरिन्धनादिसामग्रीतो जायमानो दृष्टो न तादृशोऽ-
रणितो मर्ण्यादेर्वा । धूमोपि यादृशोऽग्नितो न तादृशो गोपाल-
घटिकादौ बह्विप्रभवधूमात्, अन्यादृशात्तादृशं भावेति प्रसङ्गात्' १०
इति नाग्निजन्यधूमस्य तत्सदृशस्य चानग्रेर्भावः । भावे वा तादृ-
शधूमजनकस्याग्नित्वभावतैव इति न व्यभिचारः । तदुक्तम्—

“अग्नित्वभावः शक्यस्य मूर्धा यद्यग्निरिव सः ।

अथानग्नित्वभावोऽसौ धूमस्तत्र कथं भवेत् ॥”

[प्रमाणवा० ३।३५] इत्यादि । १५

तदेतद्वक्तृत्वेपि समानम्—‘तद्धि सर्वेक्षे वीतरागे वा यदि
स्यात्, असर्वेक्षाद्वागादिमतो वा कदाचिदपि न स्यादेहेतोः
सकृदप्यसर्मेवात्, भवति च तत्ततः, अतो न सर्वेक्षे तस्य
तत्सदृशस्य वा सम्भवः’ इति प्रतिबन्धसिद्धिः ।

किञ्च, कार्यकारणभावः सकलदेशकालावस्थिताखिलाग्निधूम- २०
व्यक्तिर्कोटीकरणेनावगतोऽनुमाननिमित्तम्, नान्यथा । न च
निर्विकल्पकसविकल्पकप्रत्यक्षस्येयति वस्तुनि व्यापारः, प्रत्यक्षा-
नुपलम्भयोर्वा ।

किञ्च, कार्योत्पादनशक्तिविशिष्टत्वं कारणत्वम् । न चासौ
शक्तिः प्रत्यक्षावसेया किन्तु कार्यदर्शनगम्या, २५

“शक्यः सर्वभावानां कार्यार्थापत्तिगोचराः”

[सी० श्लो० शून्यवाद श्लो० २५४] इत्यभिधानात् ।

१ धूमोऽग्रेः कार्यं न भवतीति भावः । २ तस्य भावः । ३ अनेन प्रकारेण ।
४ कार्यकारणयोरविनाभावसिद्धिः । ५ वैनादिना भवता । ६ सर्वकान्तादेः ।
७ धूमाग्निकक्षणकार्यकारणयोः । ८ मतम् । ९ न दृष्ट इति सम्बन्धः । १० बहि-
प्रभवधूमः । ११ अकादशितद्भावप्रसङ्गात् । १२ सर्वस्य । १३ धूमाग्निकक्षणकार्य-
कारणयोः । १४ तर्हि । १५ कुतः । १६ वक्तृत्वस्य । १७ वक्तृत्वस्यासर्वत-
त्वादिना । १८ आद्यपत्तेन यकृत्वेन च ।

तत्र कार्योत्कारेणत्वावगमेऽनुमानाच्छक्त्यवगमः स्यात् । तत्रापि शक्तिकार्ययोः प्रतिबन्धप्रतीतिर्न प्रत्यक्षादेः, उक्तदोषानुषङ्गात् । अनुमानात्तदवगमेऽनवस्थेतेतराश्यानुषङ्गो वा स्यात् । एतेन तृतीयोपि पक्षश्चिन्तित इति ।

- ५ तदेतत्सर्वमसमीचीनम् ; सम्बन्धस्याध्यक्षेणैवार्थानां प्रतिभा-
सनात् ; तथाहि-पटस्तन्तुसम्बद्ध एवावभासते, रूपादयश्च
पटादिसम्बद्धाः । सम्बन्धाभावे तु तेषां विगृह्यः प्रतिभासः
स्यात्, तन्मन्तरेणान्यस्य संश्लिष्टप्रतिभासहेतोरभावात् । कथं च
सम्बन्धे प्रतीयमानेऽप्रतीयमानस्याप्यसम्बन्धस्य कल्पना प्रती-
१० तिविरोधात् ? अर्थक्रियाविरोधश्च, अपूर्णोभन्योन्यमसम्बन्धतो
जलधारणाहरणाद्यर्थक्रियाकारित्वानुपपत्तेः । रज्जुवंशदण्डादी-
नामेकदेशाकर्षणे तदर्थ्याकर्षणं चासम्बन्धवोदिनो न स्यात् । अस्ति
चैतत्सर्वम् । अतस्तदन्यथानुपपत्तिश्चासौ सिद्धः ।

- यथा-‘पारतन्त्र्यं हि’ इत्याद्युक्तम् ; तदप्युक्तम् ; एकत्वपरि-
१५ णतिलक्षणपारतन्त्र्यस्यार्थानां प्रतीतितः सुप्रसिद्धत्वात्, अन्य-
थोक्तदोषानुषङ्गः । न चार्थानां सम्बन्धः सर्वात्मनैकदेशेन
वाभ्युपगम्यते येनोक्तदोषः स्यात् प्रकारान्तरेणैवास्याभ्युपग-
मात् । सर्वात्मैकदेशाभ्यां हि तस्यासम्भवात् प्रकारेणान्तरस्य वा
भावात्, तत्प्रतीत्यन्यथानुपपत्तेश्च ताभ्यां जात्यन्तरतया स्तेषः
२० श्लिष्टरूपक्षतानियन्धनो बन्धोऽभ्युपगन्तव्योऽसौ सकृतोपादि-
वत् । विश्लिष्टरूपतापरित्यागेन हि संश्लिष्टरूपतया कैश्चि-
दन्यथात्वलक्षणैकत्वपरिणतिः सम्बन्धोऽर्थानां चित्रसंवेदने
नीलाद्याकारवत् । न हि चित्रसंविदो जात्यन्तररूपतयोर्त्पादा-

१ वृत्तादेः । २ अश्वत्थादेः । ३ कार्यकारणभावरूपेण । ४ अनुमानेन वाच्यो
कार्यकारणभावः प्रतीयते इति । ५ बोद्धव्यम् । ६ कथमर्थानां सम्बन्धस्याध्यक्षेण
प्रतिभासनमित्युक्ते सत्याह । ७ अवभासन्ते । ८ पटादेः सप्ताशक्तिः । ९ अन्यः
कश्चित्संश्लिष्टप्रतिभासहेतुर्न विन्यतीत्युक्ते सत्याह । १० प्रत्यक्षेण । ११ अर्वाभावात् ।
१२ अन्येति शेषः । १३ असम्बन्धपक्षे । १४ अन्यस्य=शेषसकलभागस्य ।
१५ सौगवत् । १६ परस्परसम्बद्धत्वात् । १७ वा नवमित्युक्ते सत्याह ।
१८ अनुमानतः । १९ स्वरूपेण । २० बाह्याभ्यात्मिकानाम् । २१ तत्र सौगवत्
स्यात् । २२ जैनैः । २३ सौगवत् । २४ पिण्डोपुमानः स्यादित्यादिः । २५ कथं
स्यात् । २६ जैनैः । २७ अपरप्रकारस्य । २८ प्रकारान्तर-
त्वेन । २९ परेण । ३० पञ्चलोलीमावात्मलक्षणया । ३१ पर्यायरूपेण । ३२ भावो
दधियुद्धौ शुक्ल तिष्ठतः पश्चात्सर्वयोगेन कृत्वाऽन्यथास्वभावं पर्यायरूपं पानकं जातमिति ।
३३ ज्ञानस्य । ३४ कथञ्चित्नीलाकारेभ्योऽश्वत्थविवेचनत्वेन । ३५ उत्पत्तेः ।

द्रव्यो नीलाद्यनेकाकारैः सम्बन्धः, सर्वात्मनैकदेशेन वा तैस्तस्याः सम्बन्धे प्रौक्तौशेषदोषानुपपन्नाविशेषात् ।

स चैवंविधः सम्बन्धोऽर्थानां क्वचिन्निखिलप्रदेशानामन्योन्य-प्रदेशानुप्रवेशात्-यथा सक्ततोयादीनाम्, क्वचित्तु प्रदेशसंनिष्ठ-तामात्रेण-यथाङ्गुल्यादीनाम् । न चान्तर्वह्निर्वा सांशवस्तुवादिनः ५ सांशत्वानुपपन्नो दोषायः इष्टत्वात् । न चैवमनवस्थाः तद्वैतस्तत्प्रदे-शानामत्यन्तभेदाभावात् । तद्वेदे हि तेषामपि तद्वता प्रदेशान्तरैः सम्बन्ध इत्यनवस्था स्यात् नान्यथा, अनेकान्तात्मैकवस्तुनोऽ-त्यन्तभेदाभेदाभ्यां जात्यन्तरत्वाच्चित्रसंवेदनवदेव ।

नैवेवं परमाणूनामप्यंशवस्त्वप्रसङ्गः स्यात्, इत्यप्यनुत्तरम्, १० यतोऽप्रांशशब्दः स्वभावार्थः, अवयवार्थो वा स्यात् ? यदि स्वभा-र्थार्थः, न कश्चिदोपस्तेषां विभिन्नदिग्विभागव्यवस्थितानैकाणुभिः सम्बन्धान्यैथानुपपत्त्या तावद्धा स्वभावभेदोपपत्तेः । अवयवार्थस्तु तत्रासौ नोपपद्यते, तेषामभेद्यत्वेनावयवासम्भवात् । न चैवं तेषामविभागित्वं विवक्ष्यते, यतोऽविभागित्वं भेदयितुमशक्यत्वं १५ न पुनर्निःस्वभावत्वम् ।

यत्तूक्तम्-‘निष्पन्नयोरनिष्पन्नयोर्वा पारतन्त्र्यलक्षणः सम्बन्धः स्यात्’ इत्यादि; तदप्यसारम्; कथञ्चिन्निष्पन्नयोस्तदभ्युपगमात् । पटो हि तन्तुद्रव्यरूपतया निष्पन्न एव अन्वयिनो द्रव्यस्य पटपरि-णामोत्पत्तेः प्रागपि सत्त्वात्, स्वरूपेण त्वऽनिर्भेदः, तन्तुद्रव्यमपि २० स्वरूपेण निष्पन्नं पटपरिणामरूपतयाऽनिष्पन्नम् । तथाङ्गुल्यादि-द्रव्यं स्वरूपेण निष्पन्नम् संयोगपरिणामात्मकत्वेनानिष्पन्नमिति ।

किञ्च, पारतन्त्र्यस्याऽभावाद्भावानां सम्बन्धामावे तेन व्याप्तः क्वचित्सम्बन्धः प्रसिद्धः, न वा ? प्रसिद्धश्चेत्, कथं सर्वत्र सर्वदा सम्बन्धामावः विरोधीत् ? नो चेत्, कथमव्योपकाभावादव्योप्य-२५ स्यामावसिद्धिरितिप्रसङ्गोत् ?

- १ मित्रः । २ सींगतेन । ३ पिण्डोणुमात्रः सादित्वादि । ४ सांशत्वादि । ५ इति प्रतिबन्धविधानम् । ६ सम्बन्धित्वे पदार्थे । ७ भवति । ८ सम्बन्धमात्रेण । ९ नैनस । १० पदार्थात् । ११ सर्वथा । १२ कथञ्चिदे । १३ अन्तोऽन्तः, कथञ्चिदेवाभेदरूपस्य । १४ सर्वमानेकर्तृकत्वान्म्याम् । १५ सांशवस्तुप्रकारेण । १६ तर्हि । १७ स्वभावभेदाऽभावे । १८ स्वभावभेदसम्भवे । १९ कथम् । २० तत्त्वादेः । २१ पटरूपेण । २२ पटः । २३ भावानां सम्बन्धो जाति पारम्प्य-भावात् । २४ अङ्गुल्यैः । २५ शार्ङ्गः । -२६ जातत्वस्य । २७ यथ न प्रसिद्धस्तर्हि । २८ असाध्य । २९ असाधनस्य । ३० अन्यथा । ३१ पदार्थावे पदमावयवसङ्गात् ।

‘रूपश्लेषो हि’ इत्याद्यप्येकान्तवादिनामेव दूषणं नास्माकम्, कथञ्चित्सम्बन्धिनोरेकत्वापत्तिस्वभावस्य रूपश्लेषलक्षणसम्बन्धस्याभ्युपगमात् । अशक्यविवेचनत्वं हि सम्बन्धिनो रूपश्लेषः, असाधारणस्वरूपता च तदऽश्लेषः । स चानयोर्द्वित्वं न विदुः ५ न्यात् तथा प्रतीतिश्चित्राकारैकसंवेदनवत् । न चापेक्षिकत्वात्सम्बन्धस्वभावो मिथ्याऽर्थानां सूक्ष्मत्वादिवदित्यभिधातव्यम्, असम्बन्धस्वभावस्यापि तथाभावानुषङ्गात् । सोपि ह्यापेक्षिक एव कञ्चिदर्थमपेक्ष्य कस्यचित्तद्वयवस्थित्यर्थयानुपपत्तेः स्थूलतादिवत् । ‘प्रत्यक्षेण बुद्धौ प्रतिभासमानः सोऽनैपेक्षिक एव तत्पृष्ठभावि- १० विकल्पेनाध्यवसीयमानो यथापेक्षिकस्तथाऽवास्तवोपि’ इत्यन्यत्रापि समानम् । न खलु सम्बन्धोऽध्यक्षेण न प्रतिभासते यतोऽनापेक्षिको न स्यात् ।

यतेनै ‘परापेक्षा हि’ इत्याद्यपि प्रत्युक्तम्, असम्बन्धेपि समानत्वात् ।

१५ ‘द्वयोरेकाभिसम्बन्धात्’ इत्याद्यप्यविज्ञातपरंभिप्रायस्य विजृम्भितम्, यतो नास्माभिः सम्बन्धिनोस्तथोपरिणतिव्यतिरेकेणान्यः सम्बन्धोभ्युपगम्यते, येनानवस्था स्यात् ।

तथा च ‘तामेव चानुबन्धानैः’ इत्याद्यप्युक्तम्, क्रियाकारकादीनां सम्बन्धिनां तत्सम्बन्धस्य च प्रतीत्यर्थं तदभि- २० धार्येकानां प्रयोगप्रसिद्धेः । अन्यापोहस्य च प्रागेवापास्तस्वरूपत्वाच्छब्दार्थत्वमनुपपन्नमेव । चित्रैर्ज्ञानैवञ्चानेकसम्बन्धितादात्म्येऽप्येकैकत्वं सम्बन्धस्याविरुद्धमेव ।

यदप्युक्तम्—‘कार्यकारणभावोपि’ इत्यादि, तदप्यविचारितरमणीयम्, यतो नास्माभिः सहभावित्वं क्रमभावित्वं वा कार्य-

१ अनेकान्तवादिना जैनानाम् । २ एकलोलीयाय । ३ इदं तोयमिमे सत्तन इति विभागस्य कर्तुमशक्यत्वात् । ४ सूक्ष्मत्ववयोभिन्नस्वरूपता । ५ पृथक्त्वम् । ६ इदं चित्रज्ञानमिमे चित्राकारा इति । ७ परेण । ८ अर्थानाम् । ९ आपेक्षिकत्वाविशेषात् । १० आपेक्षिकत्वाभावे । ११ निर्भिकल्पकबुद्धौ । १२ साधनमसिद्धमुद्भावयति । १३ स्वादेव । १४ भवदुक्त्या सम्बन्धस्य परानपेक्षित्वसमर्थनेन । १५ दूषणम् । १६ सौगतोक्त्यायस्य । १७ जैन । १८ सौगतस्य । १९ विच्छिन्नरूपतापरित्यागेन संछिद्रूपतया एकलोलीयावलक्षणपरिणतिः । २० सम्बन्धसिद्धौ । २१ देवदत्त गामभ्याजेल्लादीनाम् । २२ शब्दानाम् । २३ सम्बन्धिनामनेकत्वे सम्बन्धस्याप्यनेकत्वं साविश्रुते सत्यात् । २४ चित्रैर्ज्ञानवत् । २५ तन्तुलक्षणेः पक्षे नीलान्तरादिभिः । २६ पटस्य । २७ धैर्यैः ।

कारणभावनिवन्धनमिष्यते । किन्तु यद्भावे नियता यस्योत्पत्ति-
स्तत्तस्य कार्यम्, इतरश्च कारणम् । तच्च किञ्चित्सहभावि, यथा
घटस्य सुदृढ्यं वण्डादि वा । किञ्चित्तु क्रमभावि, यथा प्राक्तनः
पर्यायः । तत्प्रतिपत्तिश्च प्रत्यक्षानुपलम्भसहायेनात्मना निर्यते
व्यक्तिविशेषे, तर्कसहायेन वाऽनियते प्रसिद्धा । एकमेवं च ५
प्रत्यक्षं प्रत्यक्षानुपलम्भशब्दाभिधेयम् । तद्वि कार्यकारणभावामि-
मतीत्यविषेयं प्रत्यक्षम्, तद्विविक्तान्यैवस्तुविषयमनुपलम्भशब्दा-
भिधेयम् । तथाहि-यंतावद्विः प्रकारैर्धूमोभिजिन्यो न स्यात्-यदि
अग्निसन्निधानात्प्रागपि तत्र देशे स्यात्, अन्यतो वाऽऽगच्छेत्,
तदन्यहेतुको वा भवेत् । एतेष्व सर्वमनुपलम्भपुरस्सरेण प्रत्य-१०
क्षेण प्रत्याख्यातम् ।

यंतेन प्रागनुपलब्धस्य रासमस्य कुम्भकारसन्निधानानन्तर-
मुपलभ्यमानस्य तस्य तत्कार्यता स्यादिति प्रतिव्यूढम् ; यदि हि
तस्य तत्र प्रागसत्त्वमन्यदेशादनागमन्याहेतुकत्वं च निश्चेतुं
शक्येत स्यादेव कुम्भकारकार्यता । तत्तु निश्चेतुमशक्यम् । १५

न च मिथैवमिहाह प्रत्यक्षद्वयं द्वितीयोऽग्रहेणे तदपेक्षं कारणत्वं
कार्यत्वं वा ग्रहीतुमसमर्थमित्यभिधीतव्यम् ; क्षयोपशमविशेषवैता
धूममात्रोपलम्भेभ्यश्चासवशाद्द्विजन्यैत्वाद्यगमप्रतीतिः, अन्यथैव
वाष्पादिवैलक्षण्येनास्याऽनवधारणात्ततोऽयनुमाभावे सकलव्यव-
हारोच्छेदप्रसङ्गः । ततः कारणाभिमतपदार्थग्रहणपरिणामापरि- २०
त्यागवतात्मना कार्यस्वरूपप्रतीतिरभ्युपगम्येत्या नीलाद्याकारव्या-
प्येकज्ञाने तत्स्वरूपवत् ।

१ सद्यमवतीत्येवंशीलम् । २ यद् वयोत्पत्तिकाले भवति । ३ कुशलादिः ।
४ उत्तरपर्यायस्य कारणम् । ५ महानसे । ६ महाब्दे । ७ परिमिते । ८ दूमाभ्योः ।
९ वावाक् कश्चित्कार्यलक्षणपदार्थः स कारणे सति भवति, नान्यथेति । १० आत्मना ।
११ अनुपलम्भशब्देन किमुच्यते इत्याह । १२ नानुमावादिकम् । १३ अधिप्लुम् ।
१४ वतः । १५ महाब्दवादि । १६ 'अनुपलम्भ' इति । १७ प्रलक्षम् ।
१८ तथा हीलादिना भाक् प्रतिपादितार्थं व्यतिरेकद्वारेण समर्थयते । १९ प्राक्
प्रतिपादितैः प्रलक्षानुपलम्भादिभिः । २० तान्मकारानाह । २१ यवमस्तु इत्युक्ते
सत्याह । २२ प्रलक्षानुपलम्भादिभिः कार्यकारणभावसिद्धिसमर्थनेन । २३ निराकृतम् ।
२४ कुम्भकारावसितप्रदेहे । २५ कुम्भकारसन्निधानात् । २६ कुम्भकारापेक्षया ।
२७ तदि । २८ रासमस । २९ अधिप्लुम् । ३० अधिप्लुयोरन्येऽन्यतरस्य ।
३१ एकेन । ३२ अग्रहीतकर्तृकारणान्यतरापेक्षम् । ३३ परेण । ३४ कार्यकारण-
भावधानाच्छादककर्तृणः । ३५ नृणां । ३६ धूमस्य । ३७ पूर्वोक्ताकारणाधूमस्य
वगिहज्यत्वावगमाभावे । ३८ दूरता । ३९ धूमोभिः कार्यमिति । ४० परेण ।

ननु नालिकेरद्वीपादिवासिनामकस्याद्भूमस्याग्नेर्वोपलम्भेऽपि कार्यकारणभावस्यानिश्चयान्नसौ वास्तवः, तदप्यपेशलम्; बाह्यान्तःकारणप्रभवत्वात्तन्निश्चयस्य । क्षयोपशमविशेषो हि तस्यान्तःकारणम्, तद्भावभावित्वौभ्यासस्तु बाह्यम्, अकार्यकारणभावा-
५ वगमस्य त्वऽतद्भावभावित्वार्थ्यासः । तद्भावान्न कचित्तेषां कार्य-कारणभावस्याऽकार्यकारणभावस्य वा निश्चय इति ।

धूमादिज्ञानजननसामैग्रीमात्रार्तत्कार्यत्वादिनिश्चयानुत्पत्तेर्न कार्यत्वादि धूमादेः स्वरूपमिति चेत्; तर्हि क्षणिकत्वादिरपि तत्स्वरूपं मा भूतं एव । क्षणिकत्वाभावेऽवस्तुत्वम् अन्यत्रापि
१० समानम्, सर्वथाप्यकार्यकारणस्य वस्तुत्वानुपपत्तेः खरभृद्भवत् ।

न च कार्यस्यानुत्पन्नस्यैव कार्यत्वं धर्मः, असत्त्वात् । नाप्युत्पन्नस्यात्यन्तं भिन्नं तत्, तद्धर्मत्वात् । तत एव कारणस्यापि कारणत्वं धर्मो नैकान्ततो भिन्नम् । तच्च ततोऽभिन्नत्वात्तद्वाहिप्रत्यक्षेणैव प्रतीयते तद्व्यक्तिस्वरूपवत् । ईदृश्यते हि पिपासाद्याक्रान्तचेत-
१५ सामितरार्थव्यवच्छेदेनावालं तदपनोदसमर्थं जलोदौ प्रत्यक्षात्प्रवृत्तिः । तच्छक्तिप्रधानतायां तु कार्यदर्शनार्तं निश्चीयते तद्व्यतिरेकेणास्यासम्भवात् । न च स्वरूपेणाकार्यकारणयोस्तद्भावः सम्भवति । नाप्युत्तरकालं भिन्नेन तेनैनयोः कार्यकारणताऽभिन्ना कर्तुं शक्या, विरोधात् । नापि भिन्ना, तयोः स्वरूपेण कार्यकारणता-
२० प्रसङ्गात् । न च स्वरूपेण कार्यकारणयोरर्थान्तरभूततत्सम्बन्धकल्पने किञ्चित्प्रयोजनं कार्यकारणतायाः स्वतः सिद्धत्वात् ।

ननु कार्याप्रतिपत्तौ कथं कारणस्य कारणताप्रतिपत्तिस्तदपेक्षत्वात्तस्याः ? कथमेवं पूर्वापरभागाप्रतिपत्तौ मध्यमैगस्यातो व्यावृत्तिप्रतिपत्तिरपेक्षाकृतत्वाविशेषात् ? तैतः “पद्वैजयं क्षणि-

१ कारण । २ कार्यस्य । ३ पुनः पुनर्दर्शनम् । ४ कारणम् । ५ बाह्यान्तः-कारणयोः । ६ अग्निधूमयोरुपलम्भेऽपि येषां बाह्यान्तःकारणे स्तौतेषामेव तयोः कार्य-कारणभावपरिच्छिन्तित्वेनापि भावः । ७ नेत्रादि । ८ बहिः । ९ आदिना कारणत्वादि । १० आदिनाग्न्यादेः । ११ धूमादिज्ञानसामग्रीमात्रात् क्षणिकत्वा-निश्चयादेव । १२ धूमादिकं धर्म्यऽवस्तु भवतीति साध्यमकार्यकारणत्वाच्छ्रविषाणवत् । १३ धर्मधर्मिणोरत्यन्तभेदाभावात् । १४ समिद्धानैकान्तिकत्वेन परिहारः । १५ कारणभूते । १६ कारणत्वम् । १७ कार्यस्य । १८ घटपटयोरिव । १९ कार-णात् । २० सम्बन्धेन । २१ अभिन्ना चेत्कथं भिन्नेन सम्बन्धेन विधीयते ? विधीयते चेत्कथमभिन्नेति विरोधः । २२ अग्न्यादेः । २३ क्षणविशेषणम् । २४ वर्त-मानक्षणस्य । २५ पूर्वापरभागाद्व्यावृत्तिर्मेध्यक्षणसेति प्रतिपत्तिः कथं घटे । २६ मध्यभागस्यातो व्यावृत्तिप्रतिपत्त्यभावतः । २७ योगी ।

क्रमेव पश्यति" इति [] वचो विरुध्येत । मध्यक्षणस्वभावत्वा-
च्छाब्दावृत्तेः तद्भाहिज्ञानेन प्रतिपत्तिश्चेत्, तर्हि कार्योत्पादनशक्तेः
कारणस्वभावत्वाच्छाहिणैव ज्ञानेन प्रतिपत्तिरित्येतां विशेषा-
भावात् । उक्ता च कार्यप्रतिपत्तिः प्रत्यक्षादिसहायेनात्मनेत्यु-
परम्यते । ५

किञ्च, कार्यानिश्चये कैकेरप्यनिश्चये नीलादिनिश्चयोपि भा-
भूत् । यदेव हि तस्याः कार्यं तदेव नीलादेरपि, अर्नयोरभेदात् ।
वकृत्वस्य चासर्वज्ञत्वादिना व्याप्त्यसम्भवः सर्वज्ञसिद्धिप्रघटके
प्रतिपादितः ।

न च्चेन्धनादिप्रभवपावकस्य मण्यादिप्रभवपावकादेभेदो येन १०
नियतः कार्यकारणभावो न स्यात् । अन्यादृशाकारो हीन्धनप्रभवः
पावकोऽन्यादृशाकारश्च मण्यादिप्रभवः । तद्विचारे च प्रतिपन्ना
निर्गुणेन भाव्यम् । यत्नतः परीक्षितं हि कार्यं कारणं नातिवर्त्तते ।
कथमन्यथा वीतरागेतरव्यवस्था तथेष्टेयाः साङ्ख्योपलम्भात् ?

— कथं वैवंवादिनो मृतेतरव्यवस्था स्यात् ? व्यापारव्याहारा- १५
कारविशेषस्य हि कैचिच्चैतन्यकार्यतयोपलम्भे सत्यस्यत्र जीव-
च्छरीरे चैतन्यं व्यापारादिकार्यविशेषोपलम्भात्, मृतशरीरे तु
नास्ति तदनुपलम्भादिति कार्यविशेषस्योपलम्भानुपलम्भाभ्यां
कारणविशेषस्य भावाभावप्रसिद्धेस्तद्व्यवस्था युज्येत ।

अकार्यकारणभावेपि चैतत्सर्वं समानम्—सौपि हि द्विष्टः २०
कथमसहर्माविनोः कार्यकारणत्वाभ्यां निवेध्ययोर्वर्तते ? नै-
वाद्विष्टोसौ, सम्बन्धाभावविरोधोत् । पूर्वत्र भावे वर्त्तित्वा परत्र
क्रमेणासौ वर्त्तमानोऽन्यनिस्पृहत्वेनैकवृत्तिमत्त्वात्कथं सम्बन्धा-
भावरूपता(तां) प्रतिपद्येते ? अथाकार्यकारणयोरेकमपेक्ष्यान्य-
त्रासौ क्रमेण वर्त्तत इति सस्पृहत्वेर्नास्य द्विष्टत्वात्तदभावरूपते- २५

१ वसः । २ पत्र । ३ कार्यस्य । ४ मध्यक्षणस्वभावत्वाच्छाब्दावृत्तेस्तद्भाहिज्ञानेन
प्रतिपत्तिर्घटते, कार्योत्पादनशक्तेः कारणमानत्वाच्छाहिज्ञानेन प्रतिपत्तिर्नैव ।
५ कारणसम्बन्धिन्याः कार्योत्पादनलक्षणायाः । ६ तत्र सौगतस्य । ७ कृतः ।
८ शक्तिनीलजोः । ९ निरञ्जवस्तुवादिगते । १० जैनेः । ११ किंयु मेद पव ।
१२ सर्वज्ञेन । १३ अग्न्यादिलक्षणम् । १४ इन्धनमण्यादिकम् । १५ जपतपोध्या-
नादेः । १६ दृष्टान्तभूते । १७ कथम् । १८ योगहिमयोः । १९ अकार्यकारणयोः ।
२० अनयोः सम्बन्धाभावो यतः । २१ अकार्यकारणभावतः सम्बन्धाभावरूपो न
भवत्यद्विष्टत्वाद्धटसम्भवत् । २२ अभावात् । २३ अकारणे । २४ अकार्ये ।
२५ अथासौ सम्बन्धो न घटते तथा तवापीलर्षः । २६ असम्बन्धस्य ।

ध्यते; तदा तेनोपेक्ष्यमाणेनोपकारिणा भवितव्यम् । 'कथं चोप-
करोस्यसन्' इत्यादि सर्वमैवापि योजनीयम् ।

अकार्यकारणभावस्याव्यर्थानामनभ्युपगमे तु कार्यकारणभावो
वास्तवः स्यात् । उभयाभावस्तु न युक्तः विरोधात्, कश्चिन्नीले-
५ तरत्वाभाववत् । ततो यथा कुतश्चित्प्रमाणादकार्यकारणभावो
गवाश्वदीनामतद्भावभावित्वप्रतीतिः परस्परं परमार्थतो व्यव-
तिष्ठते, तथाग्निधूमादीनां तद्भावभावित्वप्रतीतिः कार्यकारण-
भावोपि बाधकाभावात् । तत्र प्रमाणतः प्रतीयमानः सैम्बन्धः
सैम्भिप्रेततत्त्ववैभिन्नवनीयो येन स्थूलादिप्रतीतेर्भ्रान्तत्वात्तत्त्व-
१० भावतार्थस्य न स्यात् । चित्रज्ञानवद्गुणपदेर्कस्यानेकाकारसम्ब-
न्धित्ववत्कमेणापि तत्तस्याविरुद्धम् । इति सिद्धं परापरविवर्त्त-
व्याप्येकद्रव्यलक्षणमूर्च्छतासामान्यम् ।

यथा च द्वेधा सामान्यं तथा—

विशेषश्च ॥ ७ ॥

१५ चकारोऽपिशब्दार्थे । कथं तद्वैविध्यमित्याह—

पर्यायव्यतिरेकभेदात् ॥ ८ ॥

तत्र पर्यायस्वरूपं निरूपयति—

**एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्यायाः
आत्मनि हर्षविषादादिवत् ॥ ९ ॥**

२० अत्रोदाहरणमाह आत्मनि हर्षविषादादिवत् ।

ननु हर्षादि विशेषैर्व्यतिरेकेणोत्तमनोऽसत्त्वादयुक्तमिदमुदाहरण-
मित्यन्यैः, सोप्यप्रेक्षापूर्वकारी, चित्रसंवेदनवदनेकाकारव्यापित्वे-
नात्मनः स्वसंवेदनप्रत्यक्षप्रसिद्धत्वात् । 'यद्यथा प्रतिभासते तत्त-

१ सौगतेन मया । २ असम्बन्धेन । ३ अकारणेनाऽकार्येण वा । ४ अकार्य-
मकारणं वा । ५ असम्बन्धे । ६ न केवलं कार्यकारणभावस्य । ७ परेण । ८ उक्त-
प्रकारेण सम्बन्धो निराकर्तुं न शक्यते-यतः । ९ असम्बन्धः । १० नरोपपत् ।
११ चैतन्यव्याहारादिकार्यवत् । १२ परस्पर परमार्थतो व्यवतिष्ठते । १३ उभयत्र ।
१४ कार्यकारणमिनाभावः । १५ सौगत । १६ असम्बन्धादिवत् । १७ किंतु
स्यादेव । १८ ज्ञानस्य । १९ जीवादिपदार्थस्य । २० ज्ञानसुखनीयदर्शनादय-
आत्मनः सदभावित्वाद्गुणः स्युः । क्रमभावित्वाच्च पर्यायाश्च अवगति-कृतो वस्तुनो-
नेकपर्यायलक्षणात् । २१ जेद । २२ अपरस्य । २३ सौगतः ।

यैव व्यवहर्तव्यम् यथा वेद्याद्याकारात्मसंवेदनरूपतया प्रतिभास-
मानं संवेदनम्, सुखौघनेकाकारैकात्मतया प्रतिभासमानाश्चात्मा^१
इत्यनुमानप्रसिद्धत्वाच्च ।

सुखदुःखादिपर्यायाणामन्योन्यमेकान्ततो भेदे च 'प्रागहं सु-
ख्यासं सम्प्रति दुःखी वर्ते' इत्यनुसन्धानप्रत्ययो न स्यात् । तथा-५
विषवासनाप्रबोधादनुसन्धानप्रत्ययोत्पत्तिः, इत्यप्यसत्यम्, अनु-
सन्धानवासना हि यद्यनुसन्धीयमानसुखादिभ्यो भिन्ना, तर्हि
सन्तानान्तरसुखादिवत्सन्तानेप्यनुसन्धानप्रत्ययं नोत्पादयेद्-
विशेषार्थे । तदभिन्ना चेत्, तार्वद्धा मिधेत । न खलु भिन्नादभिन्नै-
मिबं नामोऽतिप्रसङ्गात् । तथा तैत्प्रबोधात्कथं सुखादिष्वेकैकमनु-१०
सन्धानज्ञानमुत्पेधेत ? तेभ्यस्तस्याः कथञ्चिद्भेदे नौममात्रं मिधेत-
अहमहमिकया स्वसंवेदनप्रत्यक्षप्रसिद्धस्यात्मनः सहकमभाविनो
गुणपर्यायाणात्मसात्कुर्वतो 'वासना' इति नामान्तरकरणात् ।

क्रमवृत्तिसुखादीनामेकसन्ततिपतितत्वेनानुसन्धाननिबन्धन-
स्वम्, इत्यपि तादृगेव, आत्मनः सन्ततिशब्देनाभिधानात् । तेषां १५
कैथञ्चिदेकत्वाभावे नैकपुरुषसुखादिष्वेकसन्ततिपतितत्वेत्याप्य-
योगात् ।

आत्मनोऽभ्युपगमे च कृतनाशाकृताभ्यागमदोषानुपपन्नैः ।
कर्तुर्निरन्वयनाशे हि कृतस्य कर्मणो नाशः कर्तुः फलानमिसम्ब-
न्धात्, अकृताभ्यागमस्य अकर्तुरेव फलामिसम्बन्धात् । ततस्त-२०
दोषपरिहारमिच्छतात्मानुगमोभ्युपगन्तव्यः । न चाप्रमाणकोयम् ;
तत्सद्भावावेदकयोः स्वसंवेदनानुमानयोः प्रतिपादनात् ।

'अहमेव ज्ञातवौनहमेव वैशि' इत्यादेरेकप्रमादविषयप्रत्य-
भिज्ञानस्य च सद्भावात् । तथा चोक्तं भट्टेन—

१ आदिना वेदकसमिच्छिग्रहः । २ हर्षमिषादादिग्रहः । ३ साधनमसिद्धमित्युक्ते
सत्याह । ४ सर्वथा । ५ आत्मनः सकाशात् । ६ प्रत्यभिज्ञान । ७ गम्यमान ।
८ सर्वथा । ९ सुखादिसरूपेण । १० उभयत्र मिश्रत्वस्य । ११ तर्हि । १२ सुखादयो
भावन्तः । १३ एकम् । १४ अन्यथा । १५ वटपटादिभ्योऽभिज्ञाना तत्सरूपाणां
मिश्रत्वप्रसङ्गात् । १६ नासनाया अचेतनत्वे च । १७ अनेकवासना । १८ अनेक-
सुखानुसन्धानज्ञानमुत्पेधेत्यर्थः । १९ कारणवद्वत्त्वे कर्तृवद्वत्त्वमिति वचनात् ।
२० आत्मा वासनेति च । २१ अहं सुखहं दुःखीति । २२ स्वधर्मात् । २३ हर्ष-
मिषादादीना च । २४ आत्मद्रव्यापेक्षया । २५ कथम् ? । २६ कर्मणः ।
२७ पुरुषस्य । २८ कर्मणः । २९ कर्मफलकाले तदभावात् । ३० सौगतेन ।
३१ पूर्वम् । ३२ इदानीम् ।

“तस्मादुभयैर्हानेनैव व्यावृत्त्यनुर्गमात्मैकः ।

पुरुषोभ्युपगन्तव्यः कुण्डलादिर्यु सैर्षवत् ॥”

[मी० श्लो० आत्मवाद श्लो० २८] इति ।

“तस्मात्तत्प्रत्यभिज्ञानादात्मसर्वलोकावधारितात् ।

५ नैरात्म्यवादवाधः स्यादिति सिद्धं समीहितम् ॥”

[मी० श्लो० आत्मवाद श्लो० १३६] इति च ।

अथ कथमतः प्रत्यभिज्ञानादात्मसिद्धिरिति चेत् ? उच्यते—‘प्रमा-
तृविषयं तत्’ इत्यत्र तावदावेयोरविवाद एव । स च प्रमाता भव-
न्नात्मा भवेत्, ज्ञानं वा ? न तावदुत्तरः पक्षः, ‘अहं ज्ञातवानहमेव
१० च साम्प्रतं जानामि’ इत्येकप्रमातृपरामर्शेन ह्यहंबुद्धेरुपजायमा-
नाया ज्ञानक्षणो विषयत्वेन कल्प्यमानोतीतो वा कल्प्येत, वर्तमानो
वा, उभौ वा, सन्तानो वा प्रकारान्तरासम्भवात् ? तत्राद्यविकल्पे
‘ज्ञातवान्’ इत्ययमेवाकारावसीयो युज्यते पूर्वं तेन ज्ञातत्वात्,
‘सम्प्रति जानामि’ इत्येतत् न युक्तं, न ह्यज्ञातवीतो ज्ञानक्षणो
१५ वर्तमानकाले वेत्ति पूर्वमेवास्य निरुद्धत्वात् । द्वितीयपक्षे तु
‘सम्प्रति जानामि’ इत्येतद्युक्तं तस्येदानीं वेदकत्वात्, ‘ज्ञातवान्’
इत्याकारणग्रहणं तु न युक्तं प्रागस्यासम्भवात् । अत एव न
तृतीयोपि पक्षो युक्तः, न खलु वर्तमानातीतावुभौ ज्ञानक्षणौ
ज्ञानं(त)वन्तौ, नापि ज्ञानीतः । किं तर्हि ? एको ज्ञातवान् अन्यस्तु
२० जानातीति । चतुर्थपक्षोप्ययुक्तः, अतीतवर्तमानज्ञानक्षणव्यति-
रेकेणान्यस्य सन्तानस्यासम्भवात् । कल्पितस्य सम्भवेपि न
ज्ञातृत्वम् । न ह्यऽसौ ज्ञान(त)वान्पूर्वं नाप्यधुना जानाति,
कल्पितत्वेनास्याऽवस्तुत्वात् । न चावस्तुनो ज्ञातृत्वं सम्भवति
वस्तुधर्मत्वात्तस्य इति अतोऽन्यस्यै प्रमातृत्वासम्भवादात्मैव
२५ प्रमाता सिद्ध्यति । इति सिद्धोऽतः प्रत्यभिज्ञानादात्मैति ।

ननु चात्मासुखादिपर्यायैः सम्बद्धमानः परित्यक्तपूर्वैरूपो वा

१ सुखादिपर्यायाणां सर्वथात्मनः सकाशाद्भेदभेदो, तयोः । २ परिहारेण ।
३ सुखादिस्वरूपतया । ४ विद्रूपतया । ५ भेदाभेदात्मकः । ६ आकारेण । ७ स्वर्ण-
वदिति पाठान्तरम् । ८ ज्ञानसन्ततिरेवात्मा नान्यः कश्चिदिति हेतोर्नैरात्म्यम् । ९ जैन-
बौद्धयोः । १० प्रत्यभिज्ञानेन । ११ सौगतेन । १२ अतीतवर्तमानलक्षणौ ।
१३ निश्चयः । १४ अतीतज्ञानक्षणस्य । १५ अतीतज्ञानक्षणस्य । १६ कथम् ।
१७ विनष्टत्वात् । १८ एकस्य ज्ञातनस्वज्ञातृत्वासम्भवादेन । १९ इत्युल्लेखः ।
२० इत्युल्लेखः । २१ इत्युल्लेखो युक्तः । २२ अतीतज्ञानक्षणादेः । २३ अवशिष्य-
माणत्वात् ।

सम्बद्धेत, अपरित्यक्तपूर्वरूपो वा ? प्रथमपक्षे निरन्वयनाश-
प्रसङ्गः, अवस्थातुः कस्यचिदभावात् । द्वितीयपक्षे तु पूर्वोत्तरा-
वस्थयोरात्मनोऽविशेषादपरिणामित्वानुषङ्गः । प्रयोगः यत्पूर्-
वोत्तरावस्थासु न विशिष्यते न तत्परिणामि यथाकाशम्,
न विशिष्यते पूर्वोत्तरावस्थास्वात्मेति, तदपरीक्षिताभिधानम् ;^५
आत्मनो भेदेन प्रसिद्धसत्ताकैः सुखादिपर्यायैः स्वस्य सम्बन्धान-
भ्युपगमात् । आत्मैव हि तत्पर्यायतया परिणमते नीलाद्याका-
रतया चित्रज्ञानवत्, स्वपरग्रहणशक्तिद्वयात्मकतयैकविज्ञानवद्वा ।
न खलु ययैव शक्त्यात्मानं प्रतिपद्यते विज्ञानं तयैवार्थम्, तयोर-
भेदप्रसङ्गात् । अन्यथात्मनो येन रूपेण सुखपरिणामस्तेनैव दुःख-^{१०}
परिणामेऽपि अनयोरभेदो न स्यात् । न च तच्छक्तिभेदे तदात्मनो
ज्ञानस्यापि भेदः, अन्यथैकस्य स्वपरग्राहकत्वं न स्यात् । नापि
चित्रज्ञानस्य नीलाद्यनेकाकारतया परिणामेऽपि एकाकारताव्या-
घातः । तद्वत्सुखाद्यनेकाकारतया परिणामेऽपि आत्मनो नैकत्व-
व्याघातो विशेषाभावात् । न चैकत्र युगपत्, अन्यत्र तु कालभेदेन^{१५}
परिणामाद्विशेषः, प्रतीतेर्नियामकत्वात् । यत्र हि प्रतीतिर्देश-
कालभिन्ने तदभिन्ने वा वस्तुन्येकत्वं प्रतिपद्यते तत्रैकत्वं प्रति-
पत्त्यर्थम्, यत्र तु नानात्वं प्रतिपद्यते तत्र तु नानात्वमिति ।

ततो र्यदुक्तम्-सर्वात्मनैर्वाभेदे भेदस्तद्विपरीतः कथं भवेत् ?
न ह्येकदा विधिप्रतिषेधौ परस्परविरुद्धौ युक्तौ । प्रयोगः-यत्रा-^{२०}
भेदस्तत्र तद्विपरीतो न भेदः यथा तेषामेव पर्यायिणां द्रव्यस्य
च यत्प्रतिनियतमसाधारणमात्मस्वरूपं तस्य न स्वभावाद्भेदः,
अभेदश्च द्रव्यपर्यायैर्योरिति । किञ्च, पर्यायेभ्यो द्रव्यस्याभेदः,
द्रव्यात्पर्यायाणां वा ? प्रथमपक्षे पर्यायवद्द्रव्यस्याप्यनेकत्वानुषङ्गः ।

१ पूर्वाकारपरिणामात् । २ 'आत्मा ज्ञी' परिणामी न भवतीति साध्यम्
पूर्वोत्तरावस्थाविवक्षितत्वात् इत्युपरिष्ठात्सयोन्यम् । ३ भिषते । ४ का (पञ्चमी) ।
५ जैनैः । ६ कथम् ? तथा हि । ७ ज्ञानस्य शक्तिद्वयं न विभजे इत्याशङ्क्यामाह ।
८ ज्ञस्य स्वरूपम् । ९ एकमेव शक्त्या स्वरूपावयोः प्रतिपत्तौ । १० आत्मनि ।
११ आत्मनि । १२ ('प्रतीतेः' इति खपुस्तके पाठः) । १३ सुखादिपर्यायैः ।
१४ परेण । १५ नीलाद्यनेकाकारैः । १६ परेण । १७ सति । १८ द्रव्यपर्याययो-
र्भेदः । १९ भेदाभेदौ । २० द्रव्यपर्यायो धर्मिणौ भिन्नौ न भवत्तत्त्वयोरभेदादिति
अनुमानं सीगतप्रबुद्धमुपरितोत्र योज्यम् । २१ पक्षे नीलाद्याकाराणाम् । २२ प्रथ-
मपक्षे आत्मनः, द्वितीयपक्षे चित्रज्ञानस्य । २३ अन्योन्यम् । २४ पक्षे नीलाद्या-
कारचित्रज्ञानयोः । २५ पक्षे नीलाद्याकारेण्यः । २६ पक्षे चित्रज्ञानस्य ।

तथा हि—यद्वावृत्तिस्वरूपाऽभिन्नस्वभावं तद्वावृत्तिमत् यथा पर्यायाणां स्वरूपम्, व्यावृत्तिमद्रूपाव्यतिरिक्तं च द्रव्यमिति । द्वितीयपक्षे तु पर्यायाणामप्येकत्वानुषङ्गः । तथाहि—यदनुगत-स्वरूपाऽव्यतिरिक्तं तदनुगतात्मकमेव यथा द्रव्यस्वरूपम्, अनु-
५ गतात्मस्वरूपाऽभिन्नस्वभावाश्च सुखादयः पर्यायाः इत्यादि;

तन्निरस्तम्; प्रमाणप्रतिपक्षे वस्तुरूपे कुचोर्द्धाऽनवकाशात् । न खलु मदोन्मत्तो हस्ती सन्निहितम् व्यवहितं वा परं मारयति, सन्निहितस्य मारणे मेण्डस्यापि मारणप्रसङ्गः । व्यवहितस्य च मारणेऽतिप्रसङ्गः, इत्यनर्थानल्पकल्पनाभयात् स्वकार्यकर्णानुप-
१० रमेते । चित्रज्ञानादावपि चैतत्सर्वं समानम् । प्रतिक्षिप्तं च प्रतिक्षणं क्षणिकत्वं प्रागित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

अथेदानीं व्यतिरेकलक्षणं विशेषं व्याचिख्यासुरर्थान्तरेत्याह—

अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेकः

गोमहिषादिवत् ॥ १० ॥

१५ एकैसादर्थत्सजातीयो विजातीयो वार्थोऽर्थान्तरम्, तद्वतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् । यथा गोषु खण्ड-मुण्डादिलक्षणो विसदृशपरिणामः, महिषेषु विशालविसङ्कटत्व-लक्षणः, गोमहिषेषु चान्योन्यमसाधारणस्वरूपलक्षण इति । तावेवंप्रकारौ सामान्यविशेषावात्मा यस्यार्थस्याऽसौ तथोक्तः । स
२० प्रमाणस्य विषयः न तु केवलं सामान्यं विशेषो वा, तस्य द्वितीय-परिच्छेदे 'विषयमेदात्प्रमाणमेदः' इति सौगतमतं प्रतिक्षिपता प्रतिक्षिप्तत्वात् । नाप्युभयं स्वतन्त्रम्, तथामृतस्यास्याप्यप्रति-भासनात् ।

ननु चार्थस्य सामान्यविशेषात्मकत्वमयुक्तम्, तदात्मकत्वे-
२५ नास्य ग्राहकप्रमाणाभावात् । सामान्यविशेषाकारयोश्चान्योन्यं प्रतिभासमेवेनात्यन्तं मेदात् । प्रयोगः—सामान्याकारविशेषाकारौ

१ व्यावृत्त्यः—पर्यायाः । २ मेदवत् । ३ तस्मादनेकमिति । ४ अनुगतस्वरूपं—द्रव्यम् । ५ द्रव्यपर्यायात्मके । ६ कुप्रश्नः । ७ मदोन्मत्तो हस्ती मारयत्येवेति प्रमाण-प्रतिपक्षः । ८ इक्षिपकस्य । ९ मारणात् । १० हस्ती । ११ सर्वात्मनेत्यादि सौगतमते । १२ चित्रज्ञानाकारौ भिन्नौ न भवतः तयोरमेदादिलेख्य । १३ खण्ड-लक्षणाद्गोः सजातीयो मुण्डलक्ष्णो गौः, विजातीयो महिषः, खण्डापेक्षया मुण्डो विसदृशकारो महिषापेक्षया च विसदृशकार इत्यर्थः । १४ वैधेयिकः । १५ सर्वथा ।

परस्परतोऽत्यन्तं भिन्नौ भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वाद्धटपटवत् । पटादौ हि भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वमत्यन्तमेवे सत्येवोपलब्धम्, तत् सामान्यविशेषाकारयोरुपलब्ध्यमानं कथं नात्यन्तमेदं प्रसाधयेत् ? अन्यत्राप्यस्य तदप्रसाधकत्वप्रसङ्गात् । न खलु प्रतिभासमेदाद्विरुद्धधर्माध्यासाच्चान्यत् पटादीनामप्यन्योन्यं मेदनिवन्धनमस्ति । ५ स चावयवावयविनोर्गुणगुणिनोः क्रियातद्वतोः सामान्यविशेषयोः आस्त्येव । पटप्रतिभासो हि तन्तुप्रतिभासवैलक्षण्येनानुभूयते, तन्तुप्रतिभासश्च पटप्रतिभासवैलक्षण्येन । एवं पटप्रतिभासाद्रूपादिप्रतिभासवैलक्षण्यमप्यवगन्तव्यम् ।

विरुद्धधर्माध्यासोप्यनुभूयत एव, पटो हि पटत्वजातिस-१० स्मन्धी विलक्षणार्थक्रियासम्पादकोतिशयेन महत्त्वयुक्तः, तन्तवस्तु तन्तुत्वजातिसम्बन्धिनोत्पत्तिपरिमाणाश्च, इति कथं न भिद्यन्ते ? तादात्म्यं चैकत्वमुच्यते, तस्मिन् सति प्रतिभासमेदो विरुद्धधर्माध्यासश्च न स्यात्, विभिन्नविषयत्वात्तत्तयोः । यदि च तन्तुभ्यो नार्थान्तरं पटः, तर्हि तन्तवोपि नांशुभ्योर्थान्तरम्, १५ तेषां स्वावयवेभ्यः इत्येवं तावच्चिन्त्यं यावच्चिरंशाः परमाणवः, तेष्वप्यस्यैव सर्वस्यै कार्यस्यानुपलम्भः स्यात् । तस्मादर्थान्तरमेव पटास्तन्तवो रूपादयश्च प्रतिपत्तव्याः ।

तथैव विभिन्नैककर्तृकत्वात्तन्तुभ्यो भिन्नः पटो घटादिवत् । विभिन्नशक्तिकत्वाद्वा विषाऽर्गदिवत् । पूर्वोत्तरकालमावित्वाद्वा २० पितापुत्रवत् । विभिन्नपरिमाणत्वाद्वा वदरामलकवत् ।

तथा तन्तुपटादीनां तादात्म्ये 'पटः तन्तवः' इति वैचनमेदः, 'पटस्य भावः पटत्वम्' इति षष्ठी, तद्धितोत्पत्तिश्च न भ्रामोतीति ।

किञ्च, 'तादात्म्यम्' इत्यत्र किं स पट आत्मा येषां तन्तूनां तेषां २५ भावस्तादात्म्यमिति विग्रहः कर्तव्यः, ते वा तन्तवः आत्मा यस्य

१ सन्निधानैकान्तिकत्वे प्रतिपादिते सत्याह । २ साधनमिदम् । ३ स्वरूपम् । ४ कथम् ? तथा हि । ५ आदिपदेन क्रियादिग्रहः । ६ शीतारनोदादि । ७ अवयवावयव्यादयः । ८ प्रतिभासमेदे विरुद्धधर्माध्यासे च सत्यमि तादात्म्यं अपिप्यदीत्युक्ते सत्याह । ९ तन्तवयवेभ्यः । १० द्वयणुकादिलक्षणस्य । ११ परमाणुद्वयेन द्वयणुकमारभ्यते, द्वयणुक्रियेन त्रयणुकमारभ्यते, तच्च प्रत्यक्षमेव तत् उपरितननियमानावः । १२ चैनेन । १३ प्रतिभासमेदविरुद्धधर्माध्यासप्रकारेण । १४ सोपित्कुविन्द । १५ अगदः=जोषणम् । १६ एकनवनवद्वयनत्वेन । १७ भेदाभावे सति । भेदे षष्ठीति वचनात् ।

पटस्य, स च ते आत्मा यंसेति वा ? प्रथमपक्षे पटस्यैकत्वात्-
न्तूनामप्येकैत्वप्रसङ्गः, तन्तूनां वाऽनेकत्वात्पटस्याप्यनेकत्वानु-
षङ्गः । अन्यथा तच्चादात्म्यं न स्यात् । द्वितीयविकल्पेऽप्ययमेव
दोषः । तृतीयपक्षश्चाविचारितरमणीयः ; तद्व्यतिरिक्तस्य वस्तुनोऽ-
५ सम्भवात् । न हि तन्तुपटव्यतिरिक्तं वस्त्वन्तरमस्ति यस्य
तन्तुपटस्वभावतोच्येत ।

न च तन्तुपटादीनां कथञ्चिद्भेदाभेदात्मकत्वमभ्युपगन्तव्यम् ;
संशयादिदोषोपनिपातानुषङ्गात् । 'केन खलु स्वरूपेण तेषां भेदः
केन चाभेदः' इति संशयः । तथा 'यत्राभेदस्तत्र भेदस्य विरोधो
१० यत्र च भेदस्तत्राभेदस्य शीतोष्णस्पर्शवत्' इति विरोधः । तथा—
'अभेदस्यैकत्वस्वभावस्यान्यदधिकरणं भेदस्य चानेकस्वभावस्या-
न्यत्' इति वैयधिकरण्यम् । तथा 'एकान्तेनैकात्मकत्वे यो
दोषोऽनेकस्वभावत्वाभावलक्षणोऽनेकात्मकत्वे चैकस्वभावत्वामा-
लक्षणः सोऽप्यनुषज्यते' इत्युभयदोषः । तथा 'येन स्वभावे-
१५ नार्थस्यैकस्वभावता तेनानेकस्वभावत्वस्यापि प्रसङ्गः, येन चाने-
कस्वभावता तेनैकस्वभावत्वस्यापि' इति सङ्करप्रसङ्गः । "सर्वेषां
गुणपत्प्रसिद्धिः सङ्करः" [] इत्यभिधानात् । तथा 'येन स्वभावे-
नानेकत्वं तेनैकत्वं प्राप्नोति येन चैकत्वं तेनानेकत्वम्' इति व्यति-
करः । "परस्परविषयगमनं व्यतिकरः" [] इति प्रसिद्धेः । तथा
२० 'येन रूपेण भेदस्तेन कथञ्चिद्भेदो येन चाभेदस्तेनापि कथञ्चि-
दभेदः' इत्यनवस्था । अतोऽप्रतिपत्तितोऽभावस्तत्त्वस्यानुषज्येता-
नेकान्तवादिनाम् । एवं सर्वैवाद्यनेकान्ताभ्युपगमेऽप्येतेष्वै दोषा
द्रष्टव्याः । तच्च तैदात्मार्थः प्रमाणप्रमेयः ।

किन्तु परस्परतोऽत्यन्तविभिन्ना द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेष-
२५ समवायाख्याः षडेव पदार्थाः । तत्र पृथिव्यसेजोवाय्वाकाशकाल-
दिगात्ममनांसि नवैव द्रव्याणि । पृथिव्यसेजोवायुरित्येतच्चतुःसंख्यं

१ वस्तुनः । २ स तदात्मा, तस्य भावस्तादात्म्यम् । ३ एकरूपपटादिभिन्ना-
स्तन्तव एकरूपमापन्ना इति । ४ तन्तुपटौ स्वभावौ यस्य । ५ आदिपदेन गुणगुण्या-
दीनाम् । ६ कथम् ? तथा हि । ७ भेदाभेदात्मकत्वे वस्तुनोऽसाधारण्यकरण-
निबोधमशक्येः संशयः । ८ भेदाभेदात्मकत्वे । ९ अवमपि वैयधिकरण्येऽन्तर्भवति ।
१० स्वभावानाम् । ११ संशयादिदोषतः । १२ अनुपलम्ब्यः । १३ आदिना-
वसरवादः । १४ सामान्यविशेषात्मा । १५ आद्याः । १६ विभिन्नप्रत्ययविषय-
त्वाद्भिन्नलक्षणलक्षितत्वाद्भिन्नकारणप्रभवत्वाद्भिन्नार्थक्रियाकारित्वाच्च षट्पदवत् ।
१७ प्रमाणप्राप्ताः ।

द्रव्यं नित्यानित्यविकल्पाद्विभेदम् । तत्र परमाणुरूपं नित्यं सैद-
कारणवत्त्वात् । तदारब्धं तु द्रव्यणुकादि कार्यद्रव्यमनित्यम् ।
आकाशादिकं तु नित्यमेवानुत्पत्तिमत्त्वात् । येषां च द्रव्यत्वाभि-
सम्बन्धाद्रव्यरूपता ।

एतच्चेतरव्यवच्छेदकमेषां लक्षणम् ; तथाहि-पृथिव्यादीनि ५
मनःपर्यन्तानीतरेभ्यो भिद्यन्ते, 'द्रव्याणि' इति व्यवहर्त्तव्यानि,
द्रव्यत्वाभिसम्बन्धात्, यानि नैवं न तानि द्रव्यत्वाभिसम्बन्धवन्ति
यथा गुणादीनीति । 'पृथिव्यादीनामप्यवान्तरभेदेदतां पृथिवीत्वा-
द्यभिसम्बन्धो लक्षणम् इतिरेभ्यो भेदे व्यवहारे तच्छब्दवाच्यत्वे
चा साध्ये केवलव्यतिरेकिरूपं द्रव्यम् । अमेदवतां त्वाकाश-१०
कालदिग्द्रव्याणामनादिसिद्धा तच्छब्दवाच्यता द्रष्टव्या ।

एवं रूपादयश्चतुर्विंशतिगुणाः । उत्क्षेपणादीनि पञ्च कर्माणि ।
परिपर्यमेदभिन्नं द्विविधं सामान्यम् अनुगतज्ञानकारणम् । नित्यद्र-
व्यव्यावृत्त्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषा अत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतवः ।
अयुतसिद्धानामाधारार्थधारभूतानामिहेदमितिप्रत्ययहेतुर्यः सम्ब-१५
न्धः स समवायः ।

अत्र पदार्थपक्षे द्रव्यवहृणा अपि केचिर्चित्ता एव केचित्ते-
नित्यौ एव । कर्माऽनित्यमेव । सामान्यविशेषसमवायास्तु नित्या
एवेति ।

१ छकुसुमादिना व्यभिचारपरिहारार्थं सद्दिति, तेनाभ्यासिषटादिना व्यभिचार-
साभिदासाधर्मिककरणवत्त्वादिति । २ अवयविरूपम् । ३ उत्पत्तिमत्त्वात् । ४ सत्त्वे
सतीति बोध्यम् । ५ नवसद्वयोपेतपृथिव्यादीनाम् । ६ प्रतिपत्त्या । ७ इतरे-
गुणादयः । ८ असाधारणस्वरूपम् । ९ अत्राणि साध्याभावे साधनाभावोक्तिः ।
१० द्रव्याणां गुणादिभ्यो भेदादिकं प्रसाध्येदानीं नवद्रव्याणां तद्वेदानां च परस्परं
भेदादिकं साधयति वैज्ञेयिकः । ११ ननु यमपि यथानां पृथिव्यादीनां गुणादिभ्यो
भेदस्तथा व्यवहारस्तच्छब्दवाच्यत्वम् न समर्थितं तथापि तेषां तद्वेदानां च परस्परं
भेदस्तथा व्यवहारस्तच्छब्दवाच्यत्वमिति न साध्येषु किं साधनमित्युक्ते आह ।
१२ षट्पदादिसृष्ट्यलगादिप्रतिपादित्वात्तादि इत्यादयोऽनान्तरभेदाद्यं तेनैव सम्भ-
वमिति, आकाशादीनां नित्यनिरात्मन्यामवान्तरभेदासम्भवात् । १३ अवादिभ्यः ।
१४ साधनम् । १५ पृथिवी भूमिणीतरेभ्यो भिद्यते पृथिवीति ना व्यवहर्त्तव्या
पृथिवीत्वाभिसम्बन्धादवदादिवत्, एवमवादिष्वपि द्रष्टव्यम् । १६ पृथिव्यादिप्रकारेण ।
१७ सचाख्य । १८ द्रव्यत्वादि । १९ हर्दं सदिदं सद्य, हर्दं द्रव्यमिदं द्रव्यमित्ये-
वम् । २० अश्रुयनिसिद्धानाम् । २१ गुणगुण्यादीनाम् । २२ नित्यद्रव्याभिज्ञाः ।
२३ यथाकाशादौ परममहत्त्वादि । २४ अनित्यद्रव्याभिज्ञाः । २५ साभिदासादयः ।

अत्र प्रतिविधीयते । अनेकधर्मात्मकत्वेनार्थस्य ग्राहकप्रमाणा-
भावोऽसिद्धः, तथाहि—वास्तवानेकधर्मात्मकोर्थः, परस्परवि-
लक्षणानेकार्थक्रियाकारित्वात्, पितृपुत्रपौत्रभ्रातृभागिनेयाद्यने-
कार्थक्रियाकारिदेवदत्तवत् । न चायमसिद्धो हेतुः, आत्मनो
५ मनोह्लाङ्गनानिरीक्षणस्पर्शनमधुरध्वनिश्रवणताम्बूलादिरसास्वाद-
नकर्पूरादिगन्धग्राणमनोह्वयचनोच्चारणचङ्क्रमणावस्थानद्वर्षविषा-
दानुवृत्तव्यावृत्तज्ञानाद्यन्योन्यविलक्षणानेकार्थक्रियाकारित्वेन अ-
प्यक्षतोनुभवात् । घटादेश्च स्वान्यव्यक्तिप्रदेशौघपेक्षयानुवृत्तव्यावृ-
त्तसदसत्प्रत्ययस्थानगमनैजलधारणादिपरस्परविलक्षणानेकार्थ-
१० क्रियाकारित्वेन प्रत्यक्षतः प्रतीतेरिति । इष्टान्तोपि न साध्यसाधन-
विकलः, वास्तवानेकधर्मात्मकत्वाऽन्योन्यविलक्षणानेकार्थक्रिया-
कारित्वयोस्तत्र सङ्गावात् ।

ननु मिश्रप्रमाणग्राह्यत्वेन धर्मधर्मिणोरत्यन्तमेदमसिद्धेः सिद्धेपि
धर्मिणि वास्तवानेकधर्माणां सङ्गावे तादौत्म्याप्रसिद्धिः, इत्यप्य-
१५ समीचीनम्; अनैकान्तिकत्वादेतोः, प्रत्यक्षानुमानाभ्यां हि मिश्र-
प्रमाणग्राह्यत्वेऽप्यात्मादिवस्तुनो भेदाभावः, दूरेतरदेशवर्तिनाम-
स्पष्टेतरप्रत्ययग्राह्यत्वेपि वा पादपस्याऽभेदः । ननु चात्र प्रत्यय-
भेदाद्विषयभेदोऽस्त्येवं, प्रथमसमर्थवर्ति हि विज्ञानमूर्तताविषय-
मुत्तरं च शौक्लादिविशेषविषयम्, इत्यप्यसाम्प्रतम्, एवंविषय-
२० भेदाम्युपगमे 'यमहमद्राक्षं दूरस्थितः पादपमेतर्हि तमेव
पश्यामि' इत्येकत्वाव्यवसायो न स्यात्, स्पष्टेतरप्रतिभासानां सा-
मान्यविशेषविषयत्वेन घटादिप्रतिभासवद्भिन्नविषयत्वात् । अथ
पादपापेक्षया पूर्वोत्तरप्रत्ययानामेकविषयत्वं सामान्यविशेषापेक्षया
तु विषयभेदः, कथमेवमेकान्ताम्युपगमो न विशीर्येत ? गुण-

१ बाह्यार्थस्य । २ स्वस्थान्यत्र तौ व्यक्तिश्च प्रदेशादयश्च ते स्वान्ययोर्व्यक्ति-
प्रदेशादयः तेषामपेक्षा तथा, तत्तस्यायमर्थः स्वन्वयलपेक्षया स्वप्रदेशापेक्षयाऽन्य-
व्यवस्थलपेक्षयाऽन्यप्रदेशापेक्षया यथाक्रममनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययः सदसत्प्रत्ययलक्षणाधी-
क्रियाकारित्वादि । ३ आदिना कालमावग्रहणम् । ४ घटस्तिष्ठति । ५ घटो जले
गच्छति पत्रयाकाशे गच्छतीत्यादि । ६ सप्तमिपक्षं हेतोः सङ्गमयति परः । ७ धर्मः
सह धर्मिनो धर्मिणा वा धर्माणां । ८ सर्वथा भेदाभावे । ९ मिश्रप्रमाणग्राह्यत्वादि-
लक्ष्य । १० अहं मुखहं दुःखीत्यादिसंवेदनेन आत्मासि व्याघातादिकार्थ-
दर्शनादित्वावनुमानेन च । ११ पुरुषाणां । १२ यथा । १३ कुतस्तथा हि ।
१४ दूरतः । १५ समीपे ज्ञात्वादिमानसि । १६ जटः । १७ तव परस्व ।
१८ यदोर्मिश्रप्रमाणग्राह्यत्वं तयोः सर्वथा भेद इति ।

गुण्यादिष्वप्यतस्तद्वत्कथञ्चिद्भेदाभेदप्रसिद्धेर्भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वस्य
विरुद्धत्वम् ।

एकान्ततोऽवयवावयव्यादीनां भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वं चासिद्धम् ;
'पटोयम्' इत्याद्युल्लेखेनाभिन्नप्रमाणग्राह्यत्वस्यापि सम्भवात् ।
ननु 'पटोयम्' इत्याद्युल्लेखेनावयव्येव प्रतिभासते नावयवास्तत्क-^५
थमभिन्नप्रमाणग्राह्यत्वम् ; इत्यप्यपेशलम् ; तद्भेदाप्रसिद्धेः । तन्तव
एव ह्यातानवितानीभूता अवस्थाविशेषविशिष्टाः 'पटोयम्'
इत्याद्युल्लेखेन प्रतिभासन्ते नान्यस्ततोर्थान्तरं पटः । प्रमाणं हि
यथाविधं वस्तुस्वरूपं गृह्णाति तथाविधमेवाम्युपगन्तव्यम्, यत्रा-
त्यन्तमेदग्राहकं तत्तत्रात्यन्तमेदो यथा घटपटादौ, यत्र पुनः १०
कथञ्चिद्भेदग्राहकं तत्र कथञ्चिद्भेदो यथा तन्तुपटादविति ।

अतः कालात्ययापदिष्टं चेदं सार्धेन यथानुष्णोद्भिद्व्यत्वाज्जल-
वत् । न च घटादौ तैथाविधमेदेनास्य व्यास्त्युपलम्भात्सर्वत्रौल्यन्त-
मेदकरूपना युक्ताः क्वचित्सार्धत्वादिविशेषाधारेणाग्निना धूमस्य
व्यास्त्युपलम्भेन सर्वत्राप्यतस्तथाविधविशेषसिद्धिप्रसङ्गात् । १५
अथ तार्धत्वादिविशेषं परित्यज्य सकलविशेषसाधारणमग्निमात्रं
धूमात्प्रसाध्यते । नन्वेवमत्यन्तमेदं परित्यज्यावयवावयव्यादिष्वपि
भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वाद्भेदमात्रं किं न प्रसाध्येते विशेषाभावात् ?

दृष्टान्तैश्च सार्धविकलत्वाच्च साधनाङ्गम् ; अत्यन्तमेदस्यात्राप्य-
सिद्धेः । तदसिद्धिश्च सद्रूपतया घटादीनाममेदात् । साधनविकलञ्च २०
स्फारिताक्षस्यैकस्मिन्नप्यध्यक्षे घटादीनां प्रतिभाससम्भवात् । न
च प्रतिविषयं विज्ञानमेदोऽभ्युपगन्तव्यः ; मेवकज्ञानाभावप्रसङ्गात् ।
घटादिवस्तुनोप्येकविज्ञानविषयत्वाभावानुषङ्गाच्च, अत्राप्यूर्धाधो-
मध्यभागेषु तैद्भेदस्य कल्पयितुं शक्यत्वात् । तथैवावयविप्रसि-
द्धये दत्तो जलाज्जलिः । अतीतिविरोधोऽन्यत्रापि न काकैर्मक्षितः । २५

१ भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वात् । २ साध्यविषयव्याप्तौ विरुद्धः । ३ साधनम् । ४ अति-
रुद्धत्वं परिहरति पटः । ५ पटः । ६ पूर्वोक्ततया । ७ अभ्युपगन्तव्यः । ८ प्रमाणेन
सर्वथा भेदस्य नावयवात् । ९ न केवलमसिद्धम् । १० भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वादिति ।
११ घटपटयोः । १२ सर्वथा । १३ तन्तुपटादौ । १४ अग्निमात्रे साधिते सति
आदिराग्निस्य पाणीशिरपि लभ्यते एवं भेदमात्रे साधिते मेदो लभ्यतेऽमेदोपि
(ये कथञ्चिद्भेदोऽपि) लभ्यते इति भावार्थः । १५ परेण त्वया । १६ विशेषपरि-
त्यागस्य । १७ घटपटवदिति । १८ अत्यन्तमेदः साध्यः । १९ युगपत् ।
२० सेनावनादिज्ञानवत् । २१ सर्वथा । २२ तस्य ज्ञानस्य । २३ घटादिवस्तुनो
भेदे च । २४ ज्ञानमेदेनैव सिद्धेः । २५ यकोर्वं घट इति । २६ अवयवावय-
व्यादेः सर्वथा भेदे साध्ये ।

विरुद्धधर्माध्यासोपि धूमादिनानैकान्तिकत्वाच्चावयवावयवि-
नोरात्यन्तिकं भेदं प्रसाधयति । न खलु स्वसाध्येतरयोर्गम-
कत्वागमकत्वलक्षणविरुद्धधर्माध्यासेपि धूमो भिद्यते । नन्वत्रापि
सामग्रीभेदोस्त्येव-धूमस्य हि पक्षधर्मत्वादिकारणोपचितस्य
५ स्वसाध्यं प्रति गमकत्वम्, तद्विपरीतकारणोपचितस्य सामग्र्य-
न्तरत्वात्साध्यान्तरेऽगमकत्वम्, न त्वेकस्यैव गमकत्वागम-
कत्वं सम्भवति; इत्यप्यन्धसर्पविलप्रवेशन्यायेनानैकान्तावल-
म्बनम्; धूमस्याभिन्नत्वात् । य एव हि धूमोऽविनाभावसम्-
न्धस्तरणादिकारणोपचितो वर्हिः प्रति गमकः स एव साध्या-
१० न्तरेऽगमक इति । अथान्यः स्वसाध्यं प्रति गमकोऽन्यश्चान्यत्रागम-
कः; तर्हि यो गमको धूमस्तस्य स्वसाध्यवत्साध्यान्तरेपि
सामर्थ्यादेकसादेव धूमात्रिखिलसाध्यसिद्धिप्रसङ्गाद्देवन्तरोप-
न्यासो व्यर्थः स्यात् ।

किञ्च, अतोऽप्राप्तपटावस्थेभ्यः प्राक्तनावस्थाविशिष्टेभ्यस्त-
१५ न्तुभ्यः पटस्य भेदः साध्येत, पटावस्थाभाविभ्यो वा ? प्रथमपक्षे
सिद्धसाध्यता, पूर्वात्तरावस्थयोः सकलभावानां भेदाभ्युपगमात् ।
न खलु यैवार्थस्य पूर्वावस्था सैवोत्तरावस्था पूर्वाकारपरित्यागेनै-
वोत्तराकारोत्पत्तिप्रतीतेः । द्वितीयपक्षे तु हेतूनामसिद्धिः, न
खलु पटावस्थाभावितन्तुभ्यः पटस्य भेदाप्रसिद्धौ विरुद्धधर्मा-
२० ध्यासविभिन्नकर्तृकत्वादयो धर्माः सिद्धिर्भासादयन्ति । काला-
त्ययापदिष्टत्वं चैतेषाम्; आतानवितानीभूततन्तुव्यतिरेकेणार्था-
न्तरभूतस्य पटस्याध्यक्षेणानुपलब्धेस्तेन भेदपक्षस्य बाधितत्वात् ।

‘तन्तवः पटः’ इति संज्ञाभेदोप्यवस्थामेदनिबन्धनो न पुनर्ग-
व्यान्तरनिमित्तः । योषिदादिकरव्यापारोत्पन्ना हि तन्तवः कुवि-
२५ न्दादिव्यापारात्पूर्वं शीतापनोदाद्यर्थोसमर्थोस्तन्तुव्यपदेशं लभन्ते,
तद्व्यापाराच्चत्तरकालं विशिष्टावस्थाप्राप्तास्तत्समर्थाः पटव्यपदेश-
मिति ।

विभिन्नशक्तिकत्वाद्यैप्यवस्थामेदमेव तन्तूनां प्रसाधयति न
त्ववयवावयवित्वेनात्यन्तिकं भेदम् ।

१ हेतुः । २ चक्षुरादिना च । ३ ययोविरुद्धधर्माध्यासस्तयोरात्यन्तिको भेद
इत्यनुमाने । ४ उक्तमेव समर्थयन्ति । ५ महानसावौ । ६ जलद्वौ । ७ नादिना
पक्षधर्मत्वादिसिद्धयम् । ८ विरुद्धधर्माध्यासात् । ९ तैः । १० स्वात्मोपलब्धिः ।
११ विरुद्धधर्माध्यासादवो यदि भेदप्रसाधका न भवेयुस्तदा कथं सहाभेदो भविष्य-
तीत्याह । १२ साधनम् ।

यच्चोक्तम्-‘पदस्य भावः’ इत्यमेदे^१ पृष्ठी न प्राप्नोतीति; तदप्यप्रयुक्तम्; ‘वर्णां पदार्थानामस्तित्वम्, वर्णां पदार्थानां वर्गः’ इत्यादौ मेदामावेपि षष्ठ्याद्युत्पत्तिप्रतीतिः । न हि भवता षट्पदार्थव्यतिरिक्तमस्तित्वादीप्यते । ननु सतो ज्ञापकप्रमाणविषयस्य भावः सत्त्वम्-सदुपलम्भकप्रमाणविषयत्वं नाम धर्मान्तरं^५ वर्णानामस्तित्वमिष्यते, अतो नानेनानेकान्तः; तदसत्; षट्पदार्थसंख्याव्याघातानुषङ्गात्, तस्य तेभ्योन्यत्वात् । ननु धर्मिरूपा एव ये भावास्ते षट्पदार्थाः प्रोक्ताः, धर्मरूपास्तु तद्व्यतिरिक्ता इष्टा एव । तथी च पदार्थप्रवेशकग्रन्थः-“एवं धर्मैर्विना धर्मिणामेव निर्देशः कृतः” [प्रशस्तपादमा० पृ० १५] इति । १०

अस्त्येवं तथाप्यस्तित्वादेर्धर्मस्य षट्पदार्थैः सार्धं कः सम्बन्धो येन तत्तेषां धर्मः स्यात्-संयोगः, समवायो वा ? न तावत्संयोगः; अस्य गुणत्वेन द्रव्याश्रयत्वात् । नापि समवायः; तस्यैकत्वेनेष्टत्वात् । समवायेन चास्य समवायसम्बन्धे समवायानेकत्वप्रसङ्गः । सम्बन्धमन्तरेण धर्मधर्मिमावाभ्युपगमे चातिप्रसङ्गः । १५

किञ्च, अस्तित्वादेरपरस्तित्वाभावात्कथं तत्र व्यतिरेकनिबन्धना विभक्तिर्मवेत् ? अथ तत्राप्यपरमस्तित्वमङ्गीक्रियते तदानवस्थौ स्यात् । उच्यते-तत्तर्धर्मसमावेशेन च सैत्त्वादेर्धर्मिरूपत्वानुषङ्गात् ‘षडेव धर्मिणः’ इत्यस्य व्याघातः । ‘ये धर्मिरूपा एव ते षडेनावधारिताः’ इत्यप्युक्तम्; एवं हि गुणकर्मसामान्यविशेष-^{२०} समवायानामनिर्देशः स्यात् । न ह्येषां धर्मिरूपत्वमेव; द्रव्याश्रितत्वेन धर्मरूपत्वस्यापि सम्भवात् ।

१ सामान्यविशेषयोः । तन्तुपदादीनाम् । २ षट् पदार्था एव समूहः । ३ वस्तुतः । ४ तदेव । ५ षट्पदार्थेभ्यो मिश्रम् । ६ धर्मिधर्मरूपयोः षट्पदार्थास्तित्वयोः सर्वथा मेदामेदसद्भावात् । ७ यत्र पृष्ठीतद्विज्ञोत्पत्तिस्तत्रालम्बितो मेद इत्यस्य । ८ सप्तमपदानुपपत्तेः । ९ अस्तित्वादयः । १० मम वैशेषिकस्य । ११ धर्मिभ्यो वर्णानां व्यतिरिक्तानेवणप्रकरेण । १२ भूयते । १३ परेण । १४ अन्येति शेषः । १५ समवायपदार्थैस्तित्वेन आन्यं तत्तु तत्रापरसमवायपदार्थेन कृत्वा वर्तते । एवं तत्सनेकत्वापत्तिर्मवेत् । १६ गगनकुसुमाधस्तित्वाद्योर्धर्मिधर्मभावः स्वादित्यतिप्रसङ्गः । १७ यत्र पृष्ठी विभक्तिस्तत्रालम्बमेद इत्यस्यपक्षेऽनेकान्तिकं दूषणमुदाहरयति जैनः । १८ सामान्यस्य । १९ सत्त्वाया अस्तित्वं गोत्वादेरस्तित्वमित्यत्र । २० अनेकान्तदोषपरिहाराय परेण । २१ अपरापरस्तित्वसद्भावात् । २२ दूषणान्तरम् । २३ पूर्वस्य पूर्वस्य । २४ अर्थात्-यत्सर्वत्र, इत्यस्य निर्देशः स्यात् ।

तथा 'स्वस्य भावः स्वत्वम्' इत्यत्राभेदेऽपि तद्धितोत्पत्तेरुप-
लम्भान्न सापि भेदपक्षमेवावलम्बते ।

यच्चोक्तम्—'तादात्म्यमित्यत्र कीदृशो विग्रहः कर्तव्यः' इत्यादि ।
तत्रेत्यं विग्रहो द्रष्टव्यः—तस्य वस्तुन आत्मानौ द्रव्यपर्यायौ
५ सत्त्वासत्त्वादियमौ वा तदात्मानौ, तच्छब्देन वस्तुनः परामर्शात्,
तयोर्भावस्तादात्म्यम्—भेदाभेदात्मकत्वम् । वस्तुनो हि भेदः
पर्यायरूपतैव, अमेदस्तु द्रव्यरूपत्वमेव, भेदाभेदौ तु द्रव्यपर्याय-
स्वभावावैव । न खलु द्रव्यमात्रं पर्यायमात्रं वा वस्तुः, समयात्मनः
समुदायस्य वस्तुत्वात् । द्रव्यपर्याययोस्तु न वस्तुत्वं नाप्यव-
१० स्तुताः, किन्तु वस्तुवेकदेशता । यथा समुद्रांशो न समुद्रो
नाप्यसमुद्रः, किन्तु समुद्रैकदेश इति ।

'स पट आत्मा येषाम्' इत्यपि विग्रहे न दोषः, अवस्थाविशेषा-
पेक्षया तन्तूनामेकत्वस्याभीष्टत्वात् ।

'ते तन्तव आत्मा यस्य इति विग्रहे तन्तूनामनेकत्वे पटस्या-
१५ प्यनेकत्वं स्यादिति चेत्; किमिदं तस्यानेकत्वं नाम—किमनेका-
व्यवात्मकत्वम्, प्रतितन्तु तत्प्रसङ्गो वा? प्रथमपक्षे सिद्ध-
स्यात्यता; आतानवितानीभूतानेकतन्त्वाच्चैव व्यवात्मकत्वात्तस्य ।
द्वितीयपक्षस्तच्च युक्तः, प्रत्येकं तेषां तत्परिणामाभावात् । समुद्रो-
२० तानामेव ह्यातानवितानीभूतः परिणामोऽभीषां प्रतीयते, तथा-

२० भूताश्च ते पटस्यात्मेत्युच्यते ।
वस्तुनो भेदाभेदात्मकत्वे संशयादिदोषानुपपन्नोऽयुक्तः, भेदा-
भेदाऽप्रतीतौ हि संशयो युक्तः, कचित्स्थानुपपन्नत्वाप्रतीतौ
तत्संशयवत् । तत्प्रतीतौ तु कथमसौ स्थानुपपन्नत्वाप्रतीतौ
तत्संशयवदेव ? चलिता च प्रतीतिः संशयः, न चेयं तथेति ।

२५ न चानयोर्विरोधः, कथञ्चिदपि तयोः सत्त्वासत्त्वयोरिव भेदा-
भेदयोर्विरोधासिद्धेः, तथाप्रतीतेश्च । प्रतीयमानयोश्च कथं विरोधो
नामास्यानुपलम्भसाध्यत्वात् ? न च स्वरूपादिना वस्तुनः सत्त्वे
तदैव पररूपादिमिरसत्त्वस्यानुपलम्भोस्ति । न खलु वस्तुनः

१ पटेनोद्धृतासामान्यपर्यायलक्षणविशेषात्मकवस्तु गृहीतम् । २ पटेन तिर्यक्-
सामान्यव्यतिरेकविशेषात्मकं वस्तु सङ्गृहीतम् । ३ प्रत्येकम् । ४ तन्तूनाम् । ५ पटस्यै-
कत्वे तन्तूनामेकत्वानुपपन्नलक्षणः । ६ अवस्था=पटरूपा । ७ आदिना जंशुग्रहणम् ।
८ अस्माभिर्जनैः । ९ द्रव्यपर्यायापेक्षया । १० विवक्षितयोः (द्रव्ययोः) ।
११ स्वरूपद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया । १२ पर्यायापेक्षया भेदः । द्रव्यापेक्षया चाभेदः ।
१३ भेदाभेदप्रकारेण ।

सर्वथा भाव एव स्वरूपम्; स्वरूपेणेव पररूपेणापि भाव-
प्रसङ्गात् । नाप्यभाव एव; पररूपेणेव स्वरूपेणाप्यभावप्रसङ्गात् ।

न च स्वरूपेण भाव एव पररूपेणाभावः, परात्मना चाभाव
एव स्वरूपेण भावः; तदपेक्षणीयनिमित्तमेदात्, सैद्रव्यादिकं
हि निमित्तमपेक्ष्य भावप्रत्ययं जनयत्यर्थः परद्रव्यादिकं त्वपे-
क्ष्याऽभावप्रत्ययम् इति एकैकद्वित्वादिसंख्यावदेव वस्तुनि
भावामावयोर्भेदः । न ह्येकत्र द्वये द्रव्यान्तरमपेक्ष्य द्वित्वादि-
संख्या प्रकाशमाना स्वात्ममात्रापेक्षैकत्वसंख्यातो नान्या प्रती-
यते । नापि सोमयी तद्वतो मिश्रैव; अस्याऽसंख्येयत्वप्रसङ्गात् ।
संख्यासमवायात्तत्त्वम्, इत्यप्यसुन्दरम्, कथञ्चित्तादात्म्यव्यति-
रिक्तस्य समवायस्यासत्त्वप्रतिपादनात् । तत्सिद्धोऽपेक्षणीयभे-
दात्संख्यावत्सत्त्वासत्त्वयोर्भेदः । तर्थाभूतयोश्चान्योरेकवस्तुनि
प्रतीयमानत्वात्कथं विरोधः द्रव्यपर्यायरूपत्वादिना भेदाभेद-
योर्वा? मिथ्येयं प्रतीतिः, इत्यप्यसङ्गतम्; बाधकाभावात् ।
विरोधो बाधकः, इत्यप्ययुक्तम्; इतरेतराश्रयानुपपन्नात्-सति १५
हि विरोधे तेनास्याबाध्यमानत्वान्निध्यात्वसिद्धिः, ततश्च तद्वि-
रोधसिद्धिरिति ।

- विरोधश्च अविकलकारणस्यैकैकस्य भवेतो द्वितीयसंज्ञिधानेऽ-
भावादवसीयते । न च भेदसंज्ञिधानेऽभेदस्याऽभेदसंज्ञिधाने वा
भेदस्याभावोऽनुभूयते ।

२०

किञ्च, अत्र विरोधः सहानवस्थानलक्षणः, परस्परपरिहार-
स्थितिसभावो वा, बध्यघातकरूपो वा स्यात्? न तावत्सहान-
वस्थानलक्षणः, अन्योन्याव्यवच्छेदेनैकसिद्धाभावे भेदाभेदयो-
र्धर्मयोः सत्त्वासत्त्वयोर्वा प्रतिभासमानत्वादौ । परस्परपरिहार-
स्थितिलक्षणस्तु विरोधः सदैकत्रास्रफलादौ रूपरसयोरिवानयोः २५
सम्भवेतोरेव सौम्य त्वसम्भवेतोः सम्भवदसम्भवेतोर्वा ।

किञ्च, अयं विरोधो धर्मयोः, [धर्म] धार्मिणोर्वा? प्रथमपक्षे
सिद्धसाधनम्; एतल्लक्षणत्वाद् धर्माणाम् । ऐकाधिकारण्यं तु

१ भावः=अस्तित्वम् । २ तयोः=भावामावयोः । ३ कथम्? तथा हि ।

४ सापेक्षया फलत्वं यथा तथा परापेक्षया द्वित्वं च । ५ विशेषः । ६ संख्येयत्वम् ।

७ भवे । ८ मिश्रयोः । ९ सत्त्वासत्त्वयोः । १० जीतस्य । ११ जायमानस्य ।

१२ उच्यते । १३ ययोस्तथा प्रतिभासमानत्वं न तयोस्तथा विरोधो यथा रूपरसयोः,

तथा प्रतिभासमानत्वं च भेदाभेदयोरेति । १४ विद्यमानयोः । १५ असिन्विरोधे सति

दोषो नास्तीत्यर्थः । १६ अज्ञानविषयमिति । १७ द्रव्याऽद्वयत्वात्तदव्यवयोरिव ।

तेषां न विरुध्यते मातुलिङ्गद्रव्ये रूपादिवत् । धर्मधर्मिणोस्तु विरोधे धर्मिणि धर्माणां प्रतीतिरेव न स्यात्, न चैवम्, अबाध-
बोधाधिरूढप्रतिभासत्वाच्च तेषाम् । वध्यघातकभावोपि विरोधः फणिनकुलयोरिव बलवदवलगतोः प्रतीतः सत्त्वा-
५ सत्त्वयोर्भेदाभेदयोर्वा नाशङ्कनीयः; तयोः समानबलत्वात् ।

अस्तु वा कश्चिद्विरोधः; तथाप्यसौ सर्वथा, कथञ्चिद्वा स्यात्? न तावत्सर्वथा; शीतोष्णस्पर्शादीनामपि सत्त्वादिना विरोधा-
सिद्धेः । एकाधारतया चैकस्मिन्नपि हि धूपदहनादिभाजने कचित्प्र-
देशे शीतस्पर्शः क्वचिच्चोष्णस्पर्शः प्रतीयत एव । अथानयोः
१० प्रदेशयोर्भेद एवेष्यते; अस्तु नामानयोर्भेदः, धूपदहनाद्यवयवि-
नस्तु न भेदः । न चास्य शीतोष्णस्पर्शाधारता नास्तीत्यभिधात-
व्यम्; प्रत्यक्षविरोधात् । तन्न सर्वथा विरोधः । कैश्चिद्विरोधस्तु
सर्वत्र समानः ।

किञ्च, भावेभ्योऽभिन्नः, भिन्नो वा विरोधः स्यात्? न
१५ तावत्तेभ्योऽभिन्नो विरोधो विरोधको युक्तः; स्वात्मभूतत्वात्स-
त्स्वरूपवत्, विपर्ययानुषङ्गो वा । अथ भिन्नः; तथापि न
विरोधकः; अनात्मभूतत्वादर्थान्तरवत् । अथार्थान्तरभूतोपि
विरोधो विरोधको भावानां विशेषणभूतत्वात्, न पुनर्भावान्तरं
तस्य तद्विशेषणत्वाभावात्; तदप्यसमीचीनम्; विरोधो हि
२० तुच्छरूपोऽभावः, स यदि शीतोष्णद्रव्ययोर्विशेषणं तर्हि तथोर्दे-
शनापत्तिस्तत्सम्बद्धरूपत्वात् । असम्बद्धस्य च विशेषणत्वेऽति-
प्रसङ्गात् ।

अन्यतरविशेषणत्वेऽप्येतदेव दूषणम् । तदेव च विरोधि स्याद्य-

१ जैनमते । २ प्रदीपादौ । ३ स्वपरप्रकाशादीनाम् । ४ सत्त्वादिरूपान्वय-
च्छेदतः । ५ शीतस्पर्शः सन्नुष्णस्पर्शः सन्नितादिना वशेन । ६ शीतोष्णस्पर्शयो-
न विरुद्धा एकाधारतया प्रतीयमानत्वात्, वक्तव्या प्रतीयते न तत्सर्वथा विरुद्धं यथा
रूपरसादि, एककुलायां नामोन्नागादिर्वा, एकाधारतया प्रतीयन्ते च धूपदहनद्वौ
शीतोष्णस्पर्शादय इति । ७ परेण । ८ भावानामसाधारणस्वरूपप्रकरणेन । ९ षट्-
कारस्य षट्पटाभावात् । १० षट्पटादौ षट्पटरूपादौ वा । ११ भावा अपि विरोधस्य
विरोधकाः कुतो न अनेयुर्विरोधादभिन्नत्वाविशेषणम् ? । १२ भावा विशेष्याविरोधो
विशेषणमनयोर्भावयोर्विरोध इति । १३ षट्पटादिरूपः । १४ विनादापधे शीतोष्ण-
द्रव्ये वसिष्ठी न दृश्येते इति साध्यो वशेन; जगत्सम्बद्धरूपत्वात् कचित्प्रदेशे
षट्पदम् । १५ शीतोष्णद्रव्ययोर्भेदो शीतद्रव्यसोष्णद्रव्यस्य वा । १६ शीतोष्ण-
द्रव्ययोर्भेदो । १७ विरोधस्य । १८ अवर्जनापत्तिरुक्तम् । १९ द्वितीयम् ।

स्योसौ विशेषणं नान्यत् । न चैकत्र विरोधो नामास्य द्विष्टत्वात्,
अन्यथा सर्वत्र सर्वदा तत्प्रसङ्गः ।

अथ विरुध्यमानत्वविरोधकत्वापेक्षया कर्मकर्तृस्यो विरोधः,
विरोधसामान्यापेक्षयोभयविशेषणत्वाद्विष्टोभिधीयते । नन्वेवं
रूपादेरपि द्विष्टत्वापत्तिः किञ्च स्यात् तत्सामान्यस्यापि द्विष्टत्वा-५
विशेषात् ? विरोधस्याभावरूपत्वे सामान्यविशेषणत्वाभावानुपप-
त्तिश्च । गुणरूपत्वे गुणविशेषणत्वाभावानुपपत्तिः ।

अथ पद्व्यपदार्थव्यतिरिक्तत्वात् पदार्थविशेषो विरोधोऽनेकस्यो
विरोध्यविरोधकप्रत्ययविशेषप्रसिद्धः समाधीयते; तदाप्यस्या-
सम्बन्धस्य द्रव्यादौ विशेषणत्वम्, सम्बन्धस्य वा ? न तावदसम्ब-१०
द्धस्य; अतिप्रसङ्गात्, दण्डादौ तथाऽप्रतीतिश्च । न खलु पुरुषेणा-
सम्बद्धो दण्डस्तस्य विशेषणं प्रतीतो येनात्रापि तथाभावः । अथ
सम्बद्धः, किं संयोगेन, समवायेन, विशेषणभावेन वा ? न ताव
त्संयोगेन; अस्याद्रव्यत्वेन संयोगानाश्रयत्वात् । नापि समवायेन;
अस्य द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषव्यतिरिक्तत्वेनासमवायित्वात् । १५
नापि विशेषणभावेन; सम्बन्धान्तरेणासम्बद्धे वस्तुनि विशेषण-
भावस्याप्यसम्भवात्, अन्यथा दण्डपुरुषादौ संयोगादिसम्बन्धा-
भावेऽपि स स्यात् इत्यलं संयोगादिसम्बन्धकल्पनाप्रयासेन ।
'विरोध्यविरोधकप्रत्ययविशेषस्तु विशिष्टं वस्तुधर्ममेवालम्बते'
इति वक्ष्यते समवायसम्बन्धनिराकरणप्रक्रमे । ततो विरोधस्य २०
विचार्यमाणस्यायोगान्नानैयोरसौ घटते ।

नापि वैयधिकरण्यम्; निर्वाचबोधे भेदाभेदयोः सत्त्वासत्त्व-
योर्वा एकाचारतया प्रतीयमानत्वात् ।

१ शीतद्रव्यस्योष्णद्रव्यस्य वा । २ उष्णद्रव्यं शीतद्रव्यं वा । ३ उष्णद्रव्ये शीतद्रव्ये
वा । ४ तथा च घटस्य सद्रूपतावत् (सत्तासम्बन्धात्सद्रूपाणीति भावो वैशेषिकमते)
रूपादिसमावत्तापि न स्यात्, न चैतद्युक्तं प्रतीतिविरोधात् । ५ विरुध्यमानः=शीतः ।
६ विरोधकः=उष्णः । ७ विरोध्यविरोधकभावसम्बन्धापेक्षया । ८ ननु विशेषापेक्षया
यतः कर्तृस्यो विरोधो हि कर्मणि नास्ति कर्मस्थः कर्तारि नास्तीत्यद्विष्टो विशेषापेक्षयेति
भावः । ९ विरोधप्रकारेण । १० भावानां विरोधकत्वापत्तिः । ११ विरोधस्या-
भावरूपत्वं वा मूढगुणरूपत्वं सादित्युक्ते आहान्तर्यः । १२ गुणा निर्गुणा इति
नवनान्ध्रप्रतीत्यस्पर्शयोर्गुणरूपयोर्विरोधो गुणरूप इति विशेषणत्वमस्य न घटतेऽन्यथा ।
१३ सद्यो विन्ध्यं प्रति विशेषणं स्यादसम्बद्धत्वाविशेषात् । १४ असम्बद्धविशेषणत्व-
प्रकारेण । १५ असम्बद्धत्वप्रकारेण । १६ पञ्चसु पदार्थेषु समवायोऽस्ति यतः ।
१७ प्रलयो=वानश्च । १८ वस्तुनोऽप्यतिरिक्तमभावरूपं विरोधमवलम्बते न ह
न्यतिरिक्तम् । १९ भेदाभेदयोः सत्तासत्त्वयोर्वा ।

नाप्युभयदोषः; चौर[पार]दारिकाभ्यामचौरपारदारिकवत्
जैनाभ्युपगतवस्तुनो जात्यन्तरत्वात् । न खलु भेदाभेदयोः
सत्त्वासत्त्वयोर्वाऽन्योन्यनिरपेक्षयोरेकत्वं जैनैरभ्युपगम्यते येनायं
दोषः, तत्सापेक्षयोरेव तदभ्युपगमात्, तथाप्रतीतिश्च ।

५ नापि सङ्करव्यतिकरौ; स्वरूपेणैवार्थे तयोः प्रतीतिः ।

नाप्यनवस्था; 'धर्मिणो ह्यनेकरूपत्वं न धर्माणां कथञ्चन'
इति, वस्तुनो ह्यभेदो धर्म्येव, भेदस्तु धर्मा एव, तत्कथमनवस्था?

अभावदोषस्तु दूरोत्सारित एव; अशेषप्राणिनामनेकान्तात्म-
कार्यस्यानुभवसम्भवात् ।

१० ननु शरीरेन्द्रियबुद्धिव्यतिरिक्तात्मद्रव्यस्येच्छादिगुणाश्रयस्य
नित्यैकरूपत्वाकथं सर्वस्यानेकान्तात्मकत्वम्? न च नित्यैक-
रूपत्वे कर्तृत्वभोक्तृत्वजन्ममरणजीवनहिंसकत्वादिव्यपदेशा-
भावः; ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नानां समर्थायो हि कर्तृत्वम्, सुखादि-
संवित्समवायस्तु भोक्तृत्वम्, अपूर्वैः शरीरेन्द्रियबुद्ध्यादिभि-

१५ आभिसम्बन्धो जन्म, प्राणान्तैस्तैस्तु वियोगो मरणम्, जीवनं
तु सदेहस्यात्मनो धर्माधर्मापेक्षो मनसा सम्बन्धः, हिंसकत्वं च
शरीरचक्षुरादीनां वर्धात्र पुनरात्मनो विनाशात् । तथा च सूत्रम्-
"कार्याश्रयकर्तृवधादिसा" [न्यायसू० ३।१।६] इति । कार्या-
श्रयः शरीरं सुखादेः कार्याश्रयत्वात् । कर्तृणीन्द्रियाणि विषयो-
२० पलब्धेः कर्तृत्वादिति ।

तदप्यसमीक्षितामिधानम्; सर्वथाऽपरित्यक्तपूर्वरूपत्वेनास्या-
काशकुशेशयवत् ज्ञानादिसमवायस्यैवासम्भवात् कथं तदपेक्षया
कर्तृत्वादिस्वरूपसम्भवः? पूर्वरूपपरित्यागे वा कथं नानेकान्ता-
त्मकत्वम्; व्यौवृत्त्यनुगमात्मकस्योत्पन्नः स्वसंवेदनप्रत्यक्षतः

२५ प्रसिद्धेः । व्यावृत्तिः खलु सुखदुःखादिस्वरूपापेक्षया आत्मनः
अनुगमश्च चैतन्यद्रव्यत्वसत्त्वादिस्वरूपापेक्षया । तदात्मकत्वं
चाध्यक्षत एव प्रसिद्धम् ।

१ आत्मादिवस्तुनः । २ इत्थं पर्यायमपेक्ष्य कर्तृते पर्यायो द्रव्यमपेक्ष्य कर्तृते ।
३ परस्परपेक्षया । ४ मेचकरसादौ । ५ धर्माणामपरधर्माऽसम्भवात् । ६ प्रत्यक्षादि-
अमण्डलः । ७ येषां वादिनां शरीरेणात्मा इन्द्रियाण्येवात्मा बुद्धिरेवात्मा वा तेषां
मतनिरासार्थमिदं विशेषणम् । ८ आत्मना सह । ९ आदिना चिकीर्षाप्रयत्नादि ।
१० षट्ते । ११ आत्मनः । १२ व्यापित्वाव्यापित्वरूपे । १३ षट्पदादौ ।
१४ पर्यायपेक्षया व्यावृत्त्यात्मकस्य चैतन्यापेक्षया अनुगमात्मकस्य । १५ बाह्यत्वे-
लक्षणविशेषणम् । १६ आत्मसुखादिवत् ।

ननु चानुवृत्तव्यावृत्तस्वरूपयोः परस्परं विरोधात्कथं तदात्म-
कत्वमात्मनो युक्तम् ? इत्यप्यसत् ; प्रमाणप्रतिपक्षे वस्तुस्वरूपे
विरोधानवकाशात् । न खलु सर्पस्य कुण्डलेतरावस्थापेक्षया
अङ्गुल्यादेर्वा सङ्कोचितेतरस्वभावापेक्षया व्यावृत्त्यनुगमात्मकत्वं
प्रत्यक्षप्रतिपक्षं विरोधमध्यास्ते । ५

ननु सुखाद्यवस्थानामात्मनोऽत्यन्तभेदाच्च द्रव्यावृत्तावप्यात्मनः
किमायातं येनास्यापि व्यावृत्त्यात्मकत्वं स्यात् ? इत्यप्यपेशलम् ;
सुखाद्यात्मनोरत्यन्तभेदस्य प्रथमपरिच्छेदे प्रतिविहितत्वात् । ननु
चाकारवैलक्षण्येऽप्यात्मसुखादीनामनानात्वे अन्यत्राप्यन्यतोऽन्यै-
स्यान्यत्वं न स्यात् ; तदप्यविचारितरमणीयम् ; तद्वत्तादात्म्येना- १०
न्यत्राप्यस्य प्रमाणतोऽप्रतीतेः । प्रतीतौ तु भवत्येवाकारानात्वे-
प्यनावात्तम् प्रत्यभिज्ञाज्ञानवत्, सामान्यविशेषवत्, संशयज्ञान-
वत्, मेचकज्ञानवदेति ।

यद्योक्तम्-‘द्रव्यादयः षडेव पदार्थाः प्रमाणप्रमेयाः’ इत्यादि,
तदप्युक्तिमात्रम् । द्रव्यादिपदार्थषट्कस्य विचारसहत्वात् ; १५
तथाहि-यत्तावच्चतुःसंख्यं पृथिव्यादित्यानित्यविकल्पाद्विभेद-
मित्युक्तम् ; तदयुक्तम् ; एकान्तनित्ये क्रमयोगपद्याभ्यामर्थ-
क्रियाविरोधात् । तल्लक्षणसत्त्वस्यातो व्यावृत्त्याऽसत्त्वप्रसङ्गात् ।
यदि हि परमाण्वो ह्यणुकादिकार्यद्रव्यजननैकस्वभावाः, तर्हि
तत्प्रभवकार्याणां सङ्गदेवोत्पत्तिप्रसङ्गोऽविकलकारणत्वात् । २०
प्रयोगः-येऽविकलकारणास्ते सङ्गदेवोत्पद्यन्ते यथा समान-
समयोत्पादा बहवोऽङ्कुराः, अविकलकारणाश्चाणुकार्यत्वेना-
भिमतता भावा इति । तथाभूतानामप्यनुत्पत्तौ सर्वदानुत्पत्ति-
प्रसक्तिर्विशेषाभावात् ।

ननु समवाय्यऽसमवायिनिमित्तभेदात्रिविधं कारणम् । यत्र हि २५
कार्यं समवेति तत्समवायिकारणम्, यथा ह्यणुकस्याणुद्वयम् ।
यच्च कार्यकार्यसमवेतं कार्यकारणैकार्यसमवेतं वा कार्यमुत्पाद-
यति तदसमवायिकारणम्, यथा पटारम्भे तन्तुसंयोगः, पट-

१ षटे । २ पटस्य । ३ तादात्म्ये । ४ पूर्वोत्तरपर्यायज्ञानद्वयाकारवत् ।
५ वदादौ । ६ पदादेः । ७ यथा गोत्वं सामान्यमश्वत्सामान्यापेक्षाया विशेषः ।
८ एकान्तनित्यस्य । ९ एकान्तनित्याः । १० अविकलकारणत्वस्य । ११ साधनम-
सिद्धमिति परः सम्भावयति । १२ पृथग्रूपत्वेनोत्पद्यते । १३ कार्यं=पटः तेनैकार्यं
तन्तुलक्षणे समवेतं पटम् । १४ कार्यकारणं पटगतरूपादि (हेः कार्यस्य कारणं पटः)
तेन सद्यः पदार्थसमवेतं तन्तुगतरूपम् ।

समवेतरूपाधारम्मे पटोत्पादकतन्तुरूपादि च । शेषं तूत्पादकं निमित्तकारणम्, यथाऽदृष्टाकाशादिकम् । तत्र संयोगस्याऽपेक्षणीयस्याभावादविकलकारणत्वमसिद्धम्; तदप्यसाम्प्रतम्; संयोगादिनाऽनाद्येयातिशयत्वेनाऽणूनां तदपेक्षाया अयोगात् ।

५ अथ संयोग एवामीषामतिशयः; स किं नित्यः, अनित्यो वा? नित्यश्चेत्; सर्वदा कार्योत्पत्तिः स्यात् । अनित्यश्चेत्; तदुत्पत्तौ कोऽतिशयः स्यात्संयोगः, क्रिया वा? संयोगश्चेत्किं स एव, संयोगान्तरं वा? न तावत्स एव; अस्याद्याप्यसिद्धेः, स्वोत्पत्तौ स्वस्यैव व्यापारविरोधाच्च । नापि संयोगान्तरम्; तस्यानभ्युपगमात् । १० मात् । अभ्युपगमे वा तदुत्पत्तावप्यपरसंयोगातिशयकल्पनायामनवस्था । नापि क्रियातिशयः; तदुत्पत्तावपि पूर्वोक्तदोषानुबङ्गात् । किञ्च, अदृष्टापेक्षादौत्माणुसंयोगात्परमाणुषु क्रियोत्पद्यते इत्यभ्युपगमोत् आत्मपरमाणुसंयोगोत्पत्तावप्यपरोतिशयो वाच्यस्तत्र च तदेवैव दूषणम् ।

१५ किञ्च, असौ संयोगो द्व्यणुकादिनिर्वर्चकः किं परमाण्वाद्याश्रितः, तदैन्याश्रितः, अनाश्रितो वा? प्रथमपक्षे तदुत्पत्तौवाश्रयं उत्पद्यते, न वा? यद्युत्पद्यते; तदाणूनामपि कार्यतानुबङ्गः । अथ नोत्पद्यते; तर्हि संयोगस्तदैवाश्रितो न स्यात्, सैमवायप्रतिषेधात्, तेषां च तं प्रत्यकारकत्वात् । तदकारकत्वं चाऽनतिशयत्वैव । अनतिशयानामपि कार्यजनकत्वे सर्वदा कार्यजनकत्वप्रसङ्गोऽविशेषोत् । अतिशयान्तरकल्पने च अनवस्था-तदुत्पत्तावप्यपरतिशयान्तरपरिकल्पनात् । तैव-

१ आदिना कुविन्दादि । २ कारणत्रयमध्ये । ३ द्व्यणुकादिकार्योत्पादने । ४ परमाणुभिः । ५ परमाणूनां परमाणुभिः सह संयोगः । ६ नित्यत्वात् । ७ सर्वदा नित्यसंयोगलक्षणातिशयसङ्गात्वात् । ८ कारणम् । ९ परमाण्वोः । १० परमाण्वोः । ११ स्वयमनुत्पन्नस्य आत्मनि व्यापारः कथमिति विरोधः । १२ परेण । १३ द्व्यणुकादीनि कार्याण्यात्मनोऽदृष्टवृत्त्याज्जायन्ते आत्मनो व्यापकत्वादिति हेतोः । १४ द्व्यणुकादिकार्योत्पादकलक्षणा । १५ परेण । १६ अनवस्थालक्षणम् । १७ ततोऽन्यत्-अदृष्टाकाशादि निमित्तकारणम् । १८ तस्य संयोगस्य । १९ द्व्यणुकोत्पादकः संयोगः परमाण्वाश्रितः, त्र्यणुकोत्पादकसंयोगो द्व्यणुकाश्रितः, स्कन्धोत्पादकः संयोग-स्त्र्यणुकाश्रित इति । २० परमाण्वादिः । २१ उत्पन्नमानत्वादुक्तवत् । २२ तस्य परमाणोः । २३ समवायाद्भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । २४ अग्रे । २५ कार्यकारणभाव-सम्बन्धेन तदाश्रितो भविष्यतीत्युक्ते सत्याहान्वयः । २६ संयोगजनकत्वभावातिशयाभावात् । २७ अनतिशयत्वस्य । २८ संयोगागमस्यानुत्पन्नमानत्वेन संयोगसदाश्रितो न स्थायः ।

स्तेषामसंयोगरूपतापरित्यागेन संयोगरूपतया परिणतिरभ्युपग-
न्तव्या इति सिद्धं तेषां कथञ्चिदनित्यत्वम् । अन्याश्रितत्वेऽपि
पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गः । अनाश्रितत्वे तु निर्देष्टुकोत्पत्तिप्रसङ्गेः सदा
सत्त्वप्रसङ्गतेः कार्यस्यापि सर्वदा भावानुपङ्गः । कथं चासौ गुणः
स्यादनाश्रितत्वादाकाशादिवत् ? ५

किञ्च, असौ संयोगः सर्वात्मना, एकदेशेन वा तेषां स्यात् ?
सर्वात्मना चेत्, पिण्डोणुमौत्रः स्यात् । एकदेशेन चेत्, सांश-
त्वप्रसङ्गोऽभीषाम् । तदेवं संयोगस्य विचार्यमाणस्यायोगात्कथ-
मसौ तेषामतिशयः स्यात् ? निरतिशयानां च कार्यजनकत्वे तु
सङ्घनिखिलकार्याणामुत्पादः स्यात् । न चैवम् । ततोमीपां प्राक्त- १०
नाजनकत्वभावपरित्यागेन विशिष्टसंयोगपरिणामपरिणतानां जन-
कत्वभावसम्भवात्सिद्धं कथञ्चिदनित्यत्वम् । प्रयोगः—ये क्रमव-
त्कार्यहेतवस्तेऽनित्या यथा क्रमवदङ्कुरादिनिर्वर्तका बीजादयः,
तथा च परमाणव इति ।

ततोऽयुक्तमुक्तम्—‘नित्याः परमाणवः सदकारणवत्त्वादाका- १५
शावत् । न चेदमसिद्धंभावयोः परमाणुसत्त्वेऽविवादात् । अकार-
णवत्त्वं चातोऽल्पपरिमाणकारणभावात्तेषां सिद्धम् । कारणं हि
कार्यादल्पपरिमाणोपेतमेव, तथाहि—द्व्यणुकाद्यवयविद्रव्यं स्वप-
रिमाणादल्पपरिमाणोपेतकारणारब्धं कार्यत्वात्पठ्यते,’ इति;
अकारणवत्त्वाऽसिद्धिः (हेः), परमाणवो हि स्कन्धावयविद्रव्य- २०
विनाशकारणकाः तद्भावभावित्वाद् घटविनाशपूर्वककपालवत् ।
न चेदमसिद्धं साधनम्, द्व्यणुकाद्यवयविद्रव्यविनाशे सत्येव पर-
माणुसङ्गावप्रतीतेः । सर्वदा स्वतन्त्रपरमाणूनां तद्विनाशमन्तरेणा-
प्यत्रैव सम्भवाद् भागासिद्धो हेतुः, इत्यप्यसुन्दरम्, तेषामसिद्धेः ।
तथाहि—विर्वीदापन्नाः परमाणवः स्कन्धमेदपूर्वका एव तत्त्वाद् २५
द्व्यणुकादिमेदपूर्वकपरमाणवत् ।

ननु पटोत्तरकालभावितन्त्रेणां पटमेदपूर्वकत्वेऽपि पटपूर्वका-
लभाविनां तेषामतत्पूर्वकत्ववत् परमाणूनामप्यस्कन्धमेदपूर्व-

- १ पूर्वरूप । २ सतो हेतुरहितस्य सर्वदा व्यवस्थितेः । ३ द्व्यणुकादेः ।
४ अनाश्रितपक्षे रूपान्तरमाहाचार्यः । ५ अवयवितिवेधश्च भवेत् । ६ कथञ्चिदेकव-
लक्षणम् । ७ आदिना क्षितिबलवातातपादयः । ८ परमाणूनां कथञ्चिदनित्यत्वं यतः ।
९ भाग्यासिद्धे स्वरूपासिद्धं वा । १० नैनवेद्येनिकयोः । ११ द्वितीयविशेषणम् ।
१२ इष्टान्ये तन्तवः । १३ कथम् ? तथा हि । १४ अवयविद्रव्यमात्रं पूर्वममात्राना-
मित्यर्थः । १५ अगतिः । १६ सततत्वेव । १७ येदो—विनाशः । १८ साधन-
साधनान्तिफलमुक्तावयवति परः । १९ निष्पन्नपटासिद्धासिद्धानाम् ।

कत्वं केषाञ्चित्स्यात्, इत्यप्यनुपपन्नम्; तेषामपि प्रवेणीभेद-
पूर्वकत्वेन प्रतीत्या स्कन्धभेदपूर्वकत्वसिद्धेः । 'बैलवत्पुरुषप्रेरित-
मुद्राद्यभिधातादवयवक्रियोत्पत्तेः अवयवविभागात्संयोगविना-
शाद्विनाशोर्थानाम्' इत्यादि विनाशोत्पादप्रक्रियोद्धोषणं तु प्रागेव
५ कृतोत्तरम् । ततो नित्यैकत्वसमावाणूनां जनकत्वासम्भवा-
त्तद्वारब्धं तु ह्यणुकाद्यवयविद्रव्यमनित्यमित्यप्ययुक्तमुक्तम् ।

तन्वाद्यवयवेभ्यो भिन्नस्य च पटाद्यवयविद्रव्यस्योपलब्धिल-
क्षणप्राप्तस्यानुपलम्भेनासत्त्वात् । न चास्योपलब्धिलक्षणप्राप्तत्व-
मसिद्धम्; "महत्तैनेकद्रव्यत्वादूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः"
१० [वैशे० सू० ४।१।६] इत्यभ्युपगमात् । न च संमानदेशत्वादवय-
विनोऽवयवेभ्यो भेदेनानुपलब्धिः; वातातपादिभ्यो रूपरसादिभि-
श्चानेकान्तात्, तेषां समानदेशत्वेपि भेदेनोपलम्भसम्भवात् ।

किञ्च, अवयवावयविनोः शालीयदेशापेक्षया समानदेश-
त्वम्, लौकिकदेशापेक्षया वा ? प्रथमपक्षेऽसिद्धो हेतुः; पटावय-
१५ विनो ह्यन्ये पदवारम्भकास्तन्त्वादयो देशस्तेषां चाप्येवं वैद्विर-
भ्युपगम्यन्ते । द्वितीयपक्षेऽप्यनेकान्तः; लोके हि समानदेशत्व-
मेकभाजनवृत्तिलक्षणं भेदेनार्थानामुपलम्भेऽप्युपलब्धम्, यथा
कुण्डे चद्रादीनाम् ।

किञ्च, कतिपयावयवप्रतिभासे सत्यऽवयविनः प्रतिभासः,
२० निखिलावयवप्रतिभासे वा ? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; जलनिम-
ग्नमहाकायगजादेरुपरितनकतिपयावयवप्रतिभासेऽप्यखिलावयव-
व्यापिनो गजाद्यवयविनोऽप्रतिभासनात् । नापि द्वितीयविकल्पो
युक्तः; मध्यपरभागवर्तिसकलावयवप्रतिभासासम्भवेनावयवि-
नोऽप्रतिभासप्रसङ्गात् । भूयोऽवयवग्रहणे सत्यवयविनो ग्रहण-
२५ मित्यप्ययुक्तम्; यतोऽर्वागमाभाव्यवयवग्राहिणा प्रत्यक्षेण पर-
भागमाव्यवयवाग्रहणान्न तेन तद्वातिरवयविनो ग्रहीतुं शक्या,

१ स्कन्धभेदपूर्वकत्वेऽस्कन्धभेदपूर्वकत्वे च तत्त्वादिति हेतोर्वर्त्तनात् । २ पटविनाश-
पूर्वककपालवदिति वृष्टान्तं साध्यसाधनविकलं दर्शयन्नाह परः । ३ एवं प्रवेणीरूप-
स्यावैल्य विनाशो हेतुः, तन्तवस्तु स्वारम्भकावयवेभ्यः समुत्पद्यन्ते, ततः प्रवेणी-
भेदपूर्वकत्वं पटपूर्वकाण्यविनाशमपि तन्तुर्ना नास्तीति यावत् । ४ उक्तम्यायात् ।
५ योगपरिकल्पितं दृष्टान्तव्यविद्रव्यं निराकृत्यन्नाह जैनः । ६ सर्वथा । ७ भेदेन ।
८ विशेषणम् । ९ परमाणुनाऽन्यभिचारभवेत्तत् । १० आकाशेनान्यभिचारपरि-
हारार्थं रूपविशेष इति । ११ भेदे सत्यमि । १२ जन्मःक्षीरवत् । १३ पदस्य ।
१४ जन्मया समानदेशत्वाद्भेदेनानुपलब्धिवर्त्तते इति । १५ कथम् ? तथा हि ।
१६ प्रवेणिकासम्बन्धिनोऽशाः । १७ वैशेषिकैः । १८ सर्वथा तयोर्भेदात् । १९ यत् ।

व्याप्याग्रहणे तद्व्यापकस्यापि ग्रहीतुमर्शकेः। प्रयोगैः—यद्येन रूपेण प्रतिभासते तत्तथैव तद्व्यवहारविषयः यथा नीलं नीलरूपतया प्रतिभासमानं तद्रूपतयैव तद्व्यवहारविषयः, अर्वाग्भागभाव्यवयवसम्बन्धितया प्रतिभासते चावयवीति । न च परभागभाव्यव्यवहितावयवाप्रतिभासनेप्यव्यवहितोऽवयवी प्रतिभाती-५ त्यभिधातव्यम्, तदप्रतिभासने तद्वर्ततेनास्याऽप्रतिभासनात् । तथाहि—यस्मिन्प्रतिभासमाने यद्रूपं न प्रतिभाति तत्ततो भिन्नम् यथा घटे प्रतिभासमानेऽप्रतिभासमानं पटस्वरूपम्, न प्रतिभासते चार्वाग्भागभाव्यवयवसम्बन्धवयविस्वरूपे प्रतिभासमाने परभागभाव्यवयवसम्बन्धवयविस्वरूपम्, इति कथं निर्देशोकाव-१० यविसिद्धिः? अर्वाग्भागपरभागभाव्यवयवसम्बन्धित्वलक्षणविरुद्धधर्माध्यासेप्यस्याभेदे सर्वत्र भेदोपरतिप्रसङ्गः, अन्यस्य भेदनिबन्धनस्यासम्भवात् । प्रतिभासभेदो भेदनिबन्धनमित्यप्यपेक्षलम्, विरुद्धधर्माध्यासं भेदकमन्तरेण प्रतिभासस्यापि भेदकत्वासम्भवात् ।

१५

नापि परभागभाव्यवयवावयविप्राहिणा प्रत्यक्षेणार्वाग्भागभाव्यवयवसम्बन्धित्वं तस्यैव ग्रहीतुं शक्यम्; उक्तदोषानुषङ्गात् । नापि स्मरणेनार्वाक्परभागभाव्यवयवसम्बन्धवयविस्वरूपग्रहः; प्रत्यक्षानुसारेणास्य प्रवृत्तेः, प्रत्यक्षस्य च तद्ग्राहकत्वप्रतिषेधात् । नाप्यात्मा अर्वाक्परभागावयवव्यापित्वमवयविनो ग्रहीतुं समर्थः-२० र्जडतया तस्य तद्ग्राहकत्वानुपपत्तेः, अन्यथा स्वापमदमूर्च्छाद्यवस्थास्यपि तद्ग्राहित्वानुषङ्गः । प्रत्यक्षादिसंज्ञायस्याप्यात्मनोवयविस्वरूपग्राहित्वायोगः; अवयविनो निखिलावयवव्याप्तिप्राहित्वेनाभ्यसादेः प्रतिषेधात् ।

१ दण्डाग्रहणे तत्सम्बन्धवान्दण्डी गुणान् ग्रहीतुं न शक्यते यथा । २ अवयवी यमी अर्वाग्भागभाव्यवयवसम्बन्धितया तद्व्यवहारविषयत्वमेव प्रतिभासमानत्वादित्युपदिष्टावोच्यम् । ३ परभागभाव्यव्यवहितावयवाप्रतिभासमानेपि अव्यवहितोऽवयवी भाति, यत्तद्यैव प्रतिभासमानत्वमसिद्धमित्युक्ते सत्ताह । ४ अवयवी परभागभाव्यवयवगतत्वेन न प्रतिभासतेऽग्रहीतापारत्वान्मेकगुणं योदकराक्षिपत् । ५ भिन्नम् । ६ यस्मिन्प्रतिभासमानेऽप्रतिभासमानत्वादिति हेतोः । ७ तत्संज्ञितमेव । ८ भागद्वये सति । ९ तन्मुक्त्युपैरयोः कृत्वा पटोऽस्ती प्रतिपाद्यते तस्मात्सर्वथा भिन्ना अतो निरवयवी ते तस्मात्सर्वथा भिन्ना अतलोपा विनाशेपि अल विनाशो नातो निरवयवमिति शेषः । १० तत्र परस्मै । ११ व्यवहिताऽव्यवहितलक्षणम् । १२ पटपदादौ । १३ विषयधर्माध्यासादपरस्मै । १४ अवयविनः । १५ व्याप्याग्रहणे तद्व्यापकस्यापि ग्रहीतुमर्शकेति भाति । १६ परमते जडतात्मा । १७ भादिना स्मरणग्रहणम् ।

ननु चार्वागभाष्येने सत्युत्तरकालं परभागदर्शनानन्तरस्मरण-
सहकारीन्द्रियजनितं 'स एवायम्' इति प्रत्यभिज्ञाज्ञानमध्यक्षम-
वयविनः पूर्वापरावयवव्याप्तिग्राहकम्; तदप्यसाम्प्रतम्; प्रत्य-
भिज्ञाज्ञानेऽध्यक्षरूपत्वस्यैवासिद्धेः । अक्षाश्रितं विशदस्वभावं हि
५ प्रत्यक्षम्, न चास्यैतल्लक्षणमस्तीति । अक्षाश्रितत्वे चास्याखिला-
वयवव्याप्यवयवविस्तररूपग्राहकत्वासम्भवः; अक्षाणां सकलावयव-
ग्रहणे व्यापारासम्भवोत् । न च स्मरणसहायस्यापीन्द्रियस्या-
विषये व्यापारः सम्भवति । यद्यस्याविषयो न तत्तत्र स्मरणसहा-
यमपि प्रवर्तते यथा परिमलस्मरणसहायमपि लोचनं गन्धे,
१० अविषयश्च व्यवहितोऽक्षाणां परभागभाव्यवयवसम्बन्धित्वलक्ष-
णोऽवयविनः स्वभाव इति ।

न चानेकावयवव्यापित्वमेकस्वभावंस्यावयविनो घटते; तथा
हि-यन्निरंशैकस्वभावं द्रव्यं तत्र सकृदनेकद्रव्याश्रितम् यथा पर-
माणु, निरंशैकस्वभावं चावयविद्रव्यमिति । यद्वा, यदनेकं द्रव्यं
१५ तत्र सकृन्निरंशैकद्रव्यान्वितम् यथा कुटकुट्यादि, अनेकद्रव्याणि
चावयवा इति ।

अस्तु चानेकावयवविनो वृत्तिः; तथाप्यस्यासौ सर्वात्मना,
एकदेशेन वा स्यात्? यदि सर्वात्मना प्रत्येकमवयवेष्ववयवी
वर्तते; तदा यावन्तोऽवयवास्तावन्त एवावयविनः स्युः; तथा
२० चानेककुण्डादिव्यवस्थितवित्वादिवदनेकावयव्युपलम्भानुषङ्गः ।

अथैकदेशेन; अत्राप्यस्यानेकत्र वृत्तिः किमेकावयवक्रोडीकृतं
स्वभावेन, स्वभावान्तरेण वा स्यात्? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; तस्य
तेनैवावयवेन क्रोडीकृतत्वेनान्यत्र वृत्त्ययोगात् । प्रयोगः-यदैक-
क्रोडीकृतं वस्तुस्वरूपं न तदेवान्यत्र वर्तते यथैकभाजनक्रोडी-
२५ कृतमाग्रादि न तदेव भाजनान्तरमध्यमध्यास्ते, एकावयवक्रोडी-
कृतं चावयवविस्तररूपमिति । वृत्तौ वान्यत्र अत्रावयवे वृत्त्यनुपपत्ति-
रपरस्वभावाभावात् । एकावयवसम्बद्धस्वभावस्याऽतदेवावयवा-
न्तरसम्बन्धाम्युपगमे च तदेवयवानामेकदेशतार्पत्तिः, एकदेशो-
त्तायां चैकात्म्यमविभक्तरूपत्वात् । विभंकरूपावस्थितौ चैकदेशत्वं

१ स्मरणं हि पूर्वभागस्य । २ तदविषयत्वात् । ३ परपरिकल्पितमवयविनः
स्वरूपमवयवप्रधानतया निराकुर्वन्नाह । ४ एकस्वभावत्वं च नित्यनिरंशैकस्वभाव-
त्वात् । ५ अवयवान्तरे । ६ विवक्षितावयवे । ७ तेषां-विवक्षिताविषयिणानां ।
८ विभादापश्चादवयवा एकदेशत्वभाजो यवन्तैकस्वभावेनावयविना व्याप्यत्वादेका-
वयवत्वात् । ९ अवयवानां । १० अविभक्तरूपत्वमस्तिद्रव्यमित्युक्तं सत्याह ।

न स्यात् । अथ स्वभावान्तरेणासाववयवान्तरे वर्तते; तदास्य निरंशताव्याघातः, कथञ्चिदनेकत्वप्रसङ्गश्च, स्वभावभेदात्मकत्वाद्भस्तुभेदस्य । ते च स्वभावा यद्यतोऽर्थान्तरभूताः; तदा तेष्वप्यसौ स्वभावान्तरेण वर्ततेत्यनवस्था । अथानर्थान्तरभूताः; तर्ह्यवयवैः किमपराद्धं येनैते तथा नेष्यन्ते? तदिष्टौ वावयविनोऽने-^५कत्वमनित्यत्वं च स्वशिरस्ताडं पूत्कुर्वतोप्यायातम् ।

यदि चावयव्यविभागः स्यात्तदैकदेशस्यावरणे रागे च अखिल-
स्यावरणं रागश्चानुषज्यते, रकारकयोरावृतानावृतयोश्चावयवि-
रूपयोरेकत्वेनाभ्युपगमात् । न चैवं प्रतीतिः, प्रत्यक्षविरोधात् ।
न चान्योन्यं विरुद्धधर्माभ्यासेष्येकं युक्तम्, अत एव, अनुमान-^{१०}
विरोधाच्च । तथाहि-यद्विरुद्धधर्माभ्यासितं तन्नैकम् यथा कुट्ट-
कुट्टाद्युपलभ्यानुपलभ्यस्वभावम्, आवृतानावृतादिस्वरूपेण वि-
रुद्धधर्माभ्यासितं चावयविस्वरूपमिति । तथाप्येकत्वे विश्व-
स्यैकद्रव्यत्वानुषङ्गः ।

ननु र्वत्वादे रागः कुक्कुमादिद्रव्येण संयोगः, स चाव्याप्यवृत्ति-^{१५}
स्तत्कथमेकैत्र रागे सर्वैत्र राग एकदेशावरणे सर्वस्यावरणम्?
तदप्यसारम्, यतो यदि पटादि निरंशमेकं द्रव्यम्, तदा कुक्कुमा-
दिना किं तत्राव्यातं येनाऽव्याप्यवृत्तिः संयोगो भवेत्? अव्यातौ वा
भेदप्रसङ्गो व्याप्ताव्याप्तस्वरूपयोर्विरुद्धधर्माभ्यासेनैकत्वायोगात् ।

किञ्च, अस्याव्याप्यवृत्तित्वं सर्वद्रव्याव्यापकत्वम्, एकदेश-^{२०}
वृत्तित्वं वा? न तावत्प्रथमः पक्षः; द्रव्यस्यैकस्य सर्वशब्दविषय-
त्वानभ्युपगमोत् । अनेकत्र हि सर्वशब्दप्रवृत्तिरिष्टा । नापि
द्वितीयः, तस्यैकदेशासम्भवात्, अन्यथा सावयवत्वप्रसङ्गोत् ।
ततो नास्त्यवयवी वृत्तिविकल्पाद्यनुपपत्तेरिति ।

ननु चावयविनो निरासे यत्साधनं तर्त्तिकं स्वर्तन्त्रम्, प्रसङ्गसा-^{२५}

- १ किं तु साश्रवप्रसङ्गः । २ अवयविनः सकाशादभिज्ञाः । ३ तन्मुल्लङ्घनैः ।
४ अवयवी धर्मोऽनेको भवतीति साध्यो धर्मोऽवयवेष्वन्योन्यान्तरत्वात्तरूपवत् ।
अवयवी धर्मोऽनिलो भवति अवयवेष्वन्योन्यान्तरत्वात्तरूपवत् । अवयवाना बहु-
त्वादनिलत्वाच्चेति उभयत्र हेतुः । ५ वैशेषिकस्य । ६ निरुद्धस्य । ७ तस्यैकस्य ।
८ एकदेशे । ९ अव्याप्यवृत्तिर्गुणः सबोगलक्षण इति वचनात् । १० एकदेशे ।
११ देशे । १२ देशस्य । १३ परेण । १४ तथा च निरुद्धत्वव्याघातः स्यात् ।
१५ शशविषाणवत् । १६ पशुहेतुदृष्टान्तादयो यत्र निघ्नन्ते तत्सत्तत्त्वम् ।

धनं वा ? स्वतन्त्रं चेत्, धर्मिसाध्यपदयोर्व्याघातः, यथा-‘इदं च नास्ति च’ इति । हेतोराश्रयासिद्धत्वञ्च, अवयविनोऽप्रसिद्धेः । न च वृत्त्या सत्त्वं व्याप्तम्; समवायवृत्त्यनभ्युपगमेपि भवता रूपादेः सत्त्वाभ्युपगमात् । एकदेशेन सर्वात्मना वावयविनो वृत्तिप्रतिषेधे विशेषप्रतिषेधस्य शेषाभ्यनुष्ठाविषयत्वात् प्रकाशितरेण वृत्तिरभ्युपगता स्यात्, अन्यथा ‘न वर्तते’ इत्येवाभिधातव्यम् । वृत्तिश्च समवायः, तस्य सर्वत्रैकत्वाच्चिरवयवत्वाच्च कात्स्न्यैकदेशशब्दाविषयत्वम् । अथ प्रसङ्गसाधनं परस्पोष्योऽनिष्टापादनात् । ननु परेष्टिः प्रमाणम्, अप्रमाणं वा ? यदि प्रमाणम्, १० तर्हि तथैव बाध्यमानत्वादनुत्थानं विपरीतानुमानस्य । न चानेनैवास्या बाधा; तामन्तरेणास्योऽपक्षधर्मत्वात् । अथाप्रमाणम्, तर्हि प्रमाणं विना प्रमेयस्यासिद्धिरित्यभिधीतव्यम्, किमनुमानोपन्यासेनास्याऽपक्षधर्मतयाऽप्रमाणत्वात् ?

इत्यप्यपरीक्षिताभिधानम्, यतः प्रसङ्गसाधनमेवेदम् । तच्च १५ ‘साध्यसाधनयोर्व्याप्यव्यापकभावैसिद्धौ व्याप्याभ्युपगमो व्यापकाभ्युपगमनान्तरीर्यकः, व्यापकाभावो वा व्याप्याभावाविनाभावी’ इत्येतद्वैदर्शनफलम् । [व्याप्य] व्यापकभावसिद्धिश्चात्र लोकप्रसिद्धैव । लोको हि कस्यचित्कचित्सर्वात्मना वृत्तिमभ्युपगच्छति यथा वित्त्वादेः कुण्डादौ, कस्यचित्त्वेकदेशेन यथानेक- २० पीठादिशयितस्य चैत्रादेः । यत्र च प्रकारद्वयं व्यावृत्तं तत्र वृत्ते-

१ परेष्ट्यानिष्टापादनं यत्र तत्प्रसङ्गसाधनम् । २ अवयवी धर्मी, नास्तीति साध्यपदम् । ३ स्वमतापेक्षया वक्ति वैशेषिकः । लोकप्रसिद्धोऽस्ति नास्तीति प्रतिपाद्यते जैनैरिति विरोध इति भावः । परस्पर विरोध इत्यर्थः । ४ वादिनो जैनस्यापेक्षयाऽवयविनो धर्मिणः । ५ समवायवृत्त्यावयवेष्ववयवी वर्तते यतः । ६ जैनेन । ७ तादात्म्येन, न तु समवायेनेति भावः । ८ किञ्च । ९ शेषाभ्यनुष्ठा—साध्याभ्युपगमः । १० समवायेन । ११ विशेषप्रतिषेधस्य शेषाभ्यनुष्ठाविषयत्वाभावे । १२ न तु सर्वात्मनैकदेशेनेत्यभिधातव्यम् । १३ अवयवेष्ववयविनः । १४ अवयवेषु । १५ अवयवेष्ववयविनः समवायः कात्स्न्यैकदेशेन वेति शब्दः । १६ प्रतिवादिनो वैशेषिकस्य । १७ पराभ्युपगमेन परस्वानिष्टापादनात् । १८ अवयवस्यो भिन्नोऽवयवी सर्वथा निवर्ते इति परेष्टिः । १९ अवयवी नास्ति वृत्तिविरुद्धाद्यनुपपत्तेरिति । २० अवयवी नास्ति वृत्तिविरुद्धाद्यनुपपत्तेरित्यस्य । २१ विपरीतानुमानेन परेष्टेः पराभ्युपगमस्य यदा बाधा स्यात्तदा परेष्टिविषयस्यावयविनोऽसत्त्वात्तदसत्त्वं हेतोर्नास्तीति भावः । २२ अवयविरूपस्य । २३ जैनेन । २४ एवकारः स्वतन्त्रसाधननिरासार्थः । २५ कचिदुद्घाते । २६ अविनाशूतः । २७ धर्मिणि । २८ प्रसङ्गसाधनं भवति । २९ कात्स्न्यैकदेशवृत्तिस्थयोः । ३० अवयवेषु । ३१ अवयवेष्ववयविनः सर्वात्मनैकदेशेन वा वृत्ते ।

रमाव एव इति कथं न व्याप्तिर्यतोऽत्र प्रसङ्गसाधनस्यावकाशो न स्यात् । निरस्ता चानेकसिद्धेकस्य वृत्तिः प्रागेव ।

यच्चोक्तम्—‘परेष्टिः प्रमाणमप्रमाणं वा’ इत्यादि; तदप्ययुक्तम् । यतः प्रमाणाप्रमाणचिन्ता संवादविसंवादाधीना । परेष्टिमात्रेण च प्रतिपक्षेवयविनि संवादकप्रमाणाभावादप्रामाण्यं स्वयमेव^५ भविष्यति । ननु च ‘इहेदम्’ इति प्रत्ययप्रतीतेः प्रत्यक्षेणैवावयविनो वृत्तिसिद्धेः कथं संवादकप्रमाणाभावो यतोऽस्याः प्रामाण्यं न स्यात् ? इत्यप्यसङ्गतम् ; तन्त्वाद्यवयवेषु व्यतिरिक्तस्य पटाद्यवयविनः समवायवृत्तेः स्वप्नेत्यप्रतीतेः । न च मेदेनाप्रतिभासमानस्य ‘इहेदं वर्त्तते’ इति प्रतीतिर्युक्ता । न हि मेदेनाप्रतिभासमाने^{१०} कुण्डे ‘इह कुण्डे वदराणि’ इति प्रत्ययो दृष्टः ।

यद्य(द)न्युक्तम्—वृत्तिश्च समवायस्तस्य सर्वत्रैकत्वाच्चिरवयवत्वाच्च कात्स्न्यैकदेशशब्दाविषयत्वमिति; तदपि स्वमनोरथमात्रम् ; समवायस्याग्रे प्रवन्द्येन प्रतिषेधात् । ननु तथाप्येकसिद्धवयविनि कात्स्न्यैकदेशशब्दाप्रवृत्तेरयुक्तोर्यं प्रश्नः—‘किमेकदेशेन^{१५} प्रवर्त्तते कात्स्न्येन वा’ इति । कृत्वमिति श्लोकस्याशेषाभिधानम्, ‘एकदेशः’ इति चानेकैत्वे सति कस्यचिदभिधानम् । ताविमौ कात्स्न्यैकदेशशब्दावेकसिद्धवयविन्यनुपपत्तौ; इत्यप्यसमीचीनम् ; एकैकैकत्वेनावयविनोऽप्रतिभासमानात् प्रकारान्तरेण च वृत्तेरसम्भवात् । न खलु कुण्डादौ वदरादेः सत्त्वादौ वा वंशादेः^{२०} कात्स्न्यैकदेशं परित्यज्य प्रकारान्तरेण वृत्तिः प्रतीयते । ततोऽवयवेभ्यो भिन्नैस्यावयविनो विचार्यमाणस्यायोगात्सौ तथाभूतोऽभ्युपगन्तव्यः । किं तर्हि ? तन्त्वाद्यवयवानामेवावस्थाविशेषैः स्वात्मभूतैः शीतापनोदाद्यर्थक्रियाकारी प्रमाणतः प्रतीयमानः पटाद्यवयवीति प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् ।

२५

ननु रूपादिव्यतिरेकेणापरेस्यावस्थातुः शीताद्यपनोदसमर्थस्याप्रतीतितोऽसत्त्वात् कस्यावयवित्वं भवतापि प्रसाध्यते ? चेच्छुः-

१ एकदेशेन सर्वात्मना वेति प्रकाशयेन वृत्तिर्वासा, तथा वाऽवयवित्वस्य व्याप्तमिति हेतोः । २ एकस्यावयविनोऽनेकैश्वर्यवेषु वृत्तिर्भविष्यति नन्वित्याशङ्क्याया-
वाच्यः । ३ सकाशात् । ४ वदरेभ्यः । ५ विस्तरेण । ६ अक्षेधाणा स्वभावानाम् ।
७ देशानाम् । ८ देशस्य । ९ सर्वथा । १० अवयवेषु । ११ परमत्तापेक्षया ।
१२ वर्त्तनस्य । १३ सर्वथा । १४ आत्मानवितानीयूतपरिणामविशेषः । १५ अवयव-
ेभ्यः कयच्चिदभिन्नः । १६ रूपप्रतिवेचकः सौगतः । १७ आदिना रसगन्धव-
र्णशब्दाः । १८ अवयविरूपपदार्थस्य । १९ हेतोरसिद्धत्वं परिहरति परः ।

प्रभवप्रत्यये हि रूपमेवावभासते नापरस्तद्वान्, एवं रसनादिप्रत्ययेषु वाच्यम्; इत्यविचारितरमणीयम्; यतः किमेकस्य रूपादिमतोऽसम्भवो विरुद्धधर्माध्यासेनैकैकत्वानेकैकत्वयोस्तादात्म्यविरोधात्, तद्गृहणोपायासम्भवाद्वा ? प्रथमपक्षे तत्र तयोः कथञ्चित्तादात्म्यं विरुद्धते, सर्वथा वा ? सर्वथा चेत्, सिद्धसाध्यता । कथञ्चिदेकत्वं तु रूपादिभिर्विरुद्धधर्माध्यासेनैकस्यैव विरुद्धम् चित्रज्ञानस्येव नीलाद्याकारैर्विकल्पज्ञानस्येव वा विकल्पेतराकारैरिति । यथा च रूपादिरहितं प्रत्यक्षे न प्रतिभासते तथा तद्गृहिता रूपादयोपि । न खलु मातुलिङ्गद्रव्यरहितास्तद्रूपादयः स्वमेव्युपलभ्यन्ते । वस्तुनश्चेदमेवाध्यक्षत्वं यदनात्मस्वरूपपरिहारेण बुद्धौ स्वरूपसमर्पणं नाम । इमे तु रूपादयो द्रव्यरहितास्तत्र स्वरूपं न समर्पयन्ति प्रत्यक्षतां च स्वीकर्तुमिच्छन्तीत्यभ्युपगमनादक्रयिणः ।

किञ्च, इदं स्तम्भादिव्यपदेशार्हे रूपम्-किमेकं प्रत्येकम्, अनेकानंशपरमाणुसञ्चयमात्रं वा ? प्रथमपक्षे अधोमध्योर्ज्ञात्मकैकरूपवत् रसाद्यात्मकैकस्तम्भद्रव्यप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे तु किमेकमनेकपरमाण्वाकारं ज्ञानं तद्ग्राहकम्, एकैकपरमाण्वाकारमनेकं वा ? प्रथमविकल्पे चित्रैकज्ञानवद्रूपाद्यात्मकैकद्रव्यप्रसिद्धिरनिवेष्ट्या स्यात् । द्वितीयविकल्पे तु परस्परविविक्तज्ञानपरमाणुप्रति-
२० भासंस्यासंबिर्देनात्सकलशून्यतानुपपन्नैः ।

अथ तद्गृहणोपायासम्भवाद्रूपादिमतो द्रव्यस्याभावः, तच्च, 'यमहमद्राक्षं तमेतर्हि स्पृशामि' इत्यनुसन्धानप्रत्ययस्य तद्ग्राहिणः सद्भावात् । न च द्वाभ्यामिन्द्रियार्थौ रूपस्पर्शाचारैकार्यग्रहणं विना प्रतिसन्धानं न्यार्थ्यम् । रूपस्पर्शयोश्च प्रतिनियतेन्द्रियग्राह-
२५ त्वादेतन्न सम्भवति । चेत्तेनैवाच्चात्मनः स्पर्शोद्विपर्यायसहायस्य

१ एकस्मिन्स्तुति । २ अवयविनः । ३ रूपादीनाम् । ४ द्रव्यरूपतया । ५ साहित्ये । ६ अवयविनः । ७ इतरो=निर्विकल्पकः पूर्वसविकल्पकादुपादानपूर्वा-
त्रिविकल्पकात्सहकारिभूतात्सविकल्पकमुत्पद्यते तदा तदुभयोरान्तरं निश्चयम् । ८ इदमेव सम्भावयति । ९ तर्हि रूपादयो द्रव्यरहिता बुद्धौ स्वरूपसमर्पका भविष्यन्तीत्याह ।
१० द्रव्यरहितत्वादिति प्रथमान्तोपि हेतुर्बोध्यः । ११ मूल्यं स्वरूपसमर्पणलक्षणमद्वैता-
क्रयिण इति भावः । १२ सौगतमते चित्रैकज्ञानं स्वीकृतम् । १३ एकस्मिन्स्तुति ।
१४ लोके । १५ ज्ञेयग्राहकज्ञानाभावात् ज्ञेयस्याप्यभावात् । १६ अनुसन्धानं=
प्रतिज्ञानम् । १७ चक्षुःस्पर्शनाम्नाम् । १८ जनेन प्रत्यक्षमपि तद्ग्राहकमुक्तम्,
तद्वत्त्वात्मसिद्धिरिति । १९ वैशेषिकमतनिरासार्थम् । २० बौद्धमतनिरासार्थम् ।

अर्वाक्परभागावयवव्यापित्वग्रहणमप्यवयविद्रव्यस्योपपन्नम् । प्रसाधितं चानुसन्धानस्य सविपर्यत्वमित्यलमतिप्रसङ्गेन । तत्र परेषां चतुःसंख्यं द्रव्यं यथोपवर्णितस्वरूपं घटते, सर्वथा नित्यस्वभावाणामनर्थक्याकारित्वेनासम्भवतः तदारब्धद्व्यणुकावयविद्रव्यस्याप्यसम्भवात् । न हि कारणाभावे कार्यं प्रभवत्यतिप्रसङ्गात् । स्वावयवेभ्योर्धान्तरस्यावयविनो ग्राहकप्रमाणाभावाच्चासत्त्वम् ।

जातिभेदेनैव पृथिव्यादिद्रव्याणां भेदोपवर्णनं चानुपपन्नम्; स्वरूपासिद्धौ शशशृङ्गवद्भेदोपवर्णनासम्भवात् । जातिभेदेनात्यन्तं तेषां भेदे चान्योन्यमुपादानोपादेयभावो न स्यात् । येषां हि १० जातिभेदेनात्यन्तिको भेदो न तेषां तद्भावः यथात्मपृथिव्यादीनाम्, तथा तद्भेदश्च पृथिव्यादिद्रव्याणामिति । तन्तुपटाद्युपादानोपादेयभावेन व्यभिचारपरिहारार्थम् आत्यन्तिकविशेषणम् । न हि तन्नात्यन्तिकस्तद्भेदः, पृथिवीत्वादिसामान्यस्याभिन्नस्यापीष्टः । नन्वेवं द्रव्यत्वादिना पृथिव्यादीनामप्यभेदात्तद्भावोऽस्तु, १५ तन्न; आत्मपृथिव्यादीनामप्येवं तद्भेदाभावाद्युपादानोपादेयभावः स्यात्, तथा चात्माद्वैतप्रसङ्गात्कुतः पृथिव्यादिभेदः स्यात् ? तन्नात्यन्तिकभेदे पृथिव्यादीनां तद्भावो घटते । अस्ति चासौ चन्द्रकान्ताजलस्य, जलान्मुकाफलादेः, काष्ठादनलस्य, व्यजनादेः आनिलस्योत्पत्तिप्रतीतिः । चन्द्रकान्ताद्यन्तर्भूताजलादेरेव द्रव्या- २० जलाद्युत्पत्तिः; इत्यप्यनुपपन्नम्; तत्र तत्सद्भावावेदकप्रमाणाभावात् । तथापि चन्द्रकान्तादौ जलाद्यभ्युपगमे सृत्तिपण्डादौ घटाद्यभ्युपगमोऽपि कर्तव्य इति सांख्यदर्शनमेव स्यात् । ततो सृत्तिपण्डादौ घटादिबच्चन्द्रकान्तादौ जलादेरप्यप्रतीतितोऽभावात्, आत्यन्तिकभेदे चोपादानोपादेयभावासम्भवात्, 'पर्यायभेदेना- २५ न्योन्यं पृथिव्यादीनां भेदो रूपरसगन्धस्पर्शात्मकपुद्गलद्रव्यरूपतया चाभेदः' इत्यनवद्यम् । रूपादिसमन्वयश्च गुणपदार्थ-

१ रूपस्पर्श । २ प्रलम्बानसमर्थनसमये । ३ अनुमन्वावसमर्थनेन । ४ वैशेषिकाणाम् । ५ सर्वथा नित्यानित्यतया । ६ पृथिवीत्वादिना । ७ यथोपवर्णितमेवेन भेदो न तथोपादानोपादेयभावोऽस्तीत्युक्तं तद्वस्तुपटादौ व्यभिचारो भवति । ८ तन्तुत्वपदत्वजातिभेदे सत्यादि । ९ तन्तुपटादिषु । १० अवमात्मेने पृथिव्यादय इति । ११ मा भवत्वित्युक्ते सत्यादि । १२ पृथिवीरूपात् । १३ सर्वं सर्वत्र विद्यते इति वचनात् । १४ पृथिव्यानेव गन्धोऽप्येव रस इति नवनात्कर्तव्यं चतुर्णामविशेषेण रूपाणात्मकत्वमित्यादि । १५ समन्वयः सम्बन्धः ।

परीक्षायां चतुर्णामपि समर्थयिष्यते । तन्न नित्यादिस्वभावमा-
त्यन्तिकभेदभिन्नं च पृथिव्यादिद्रव्यं घटते ।

नाप्याकाशादिः सर्वथा नित्यनिरंशत्वादिधर्मोपेतस्यास्याप्य
प्रतीतेः । ननु चाकाशस्य तद्धर्मोपेतत्वं शब्दादेव लिङ्गात्प्रतीयते;
५ तथाहि-ये विनाशित्वोत्पत्तिमत्त्वादिधर्मोभ्यासितास्ते कैचिदा-
श्रिता यथा घटादयः, तथा च शब्दा इति । गुणत्वौ च ते कसिदा-
श्रिता यथा रूपादयः । न च गुणत्वमसिद्धम्, तथाहि-शब्दो
गुणः प्रतिविध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वे सति सत्तासम्बन्धित्वाद्-
पादिवत् । न चेदं साधनमसिद्धम्, तथाहि-शब्दो द्रव्यं न भव-
१० त्येकद्रव्यत्वाद्द्रूपादिवत् । न चेदमप्यसिद्धम्, तथाहि-एकद्रव्यः
शब्दः सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्तद्वदेव ।
'सामान्यविशेषवत्त्वात्' इत्युच्यमाने हि परमाणुभिर्व्यभिचारः,
तन्निवृत्त्यर्थम् 'इन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्' इत्युक्तम् । तथापि घटादिना
व्यभिचारः, तन्निरासार्थमेकविशेषणम् । 'एकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्'
१५ इत्युच्यमाने आत्मैना व्यभिचारः, तन्निवृत्त्यर्थं बाह्यविशेषणम् ।
रूपत्वादिना व्यभिचारपरिहारार्थं च 'सामान्यविशेषवत्त्वे सति'
इति विशेषणम् ।

तथा, कर्मापि न भवत्यसौ संयोगविभागाकारणत्वाद्द्रूपादि-
वदेवेति । तस्मात्सिद्धं-प्रतिविध्यमानद्रव्यकर्ममैवंत्वं शब्दस्य ।
२० 'सत्तासम्बन्धित्वात्' इत्युच्यमाने च द्रव्यकर्मभ्यामनेकान्तः,
तन्निवृत्त्यर्थं 'प्रतिविध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वे सति' इति विशे-
षणम् । 'प्रतिविध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वात्' इत्युच्यमानेपि सामा-
न्यादिर्ना व्यभिचारः, तन्निवृत्त्यर्थं 'सत्तासम्बन्धित्वात्' इत्यभिधा-
नम् । तत्सिद्धं गुणत्वेन कचिदाश्रितत्वं शब्दानाम् ।

१ जैनैः । २ गगने । ३ स्थावयवेषु । ४ तस्य त्वनिदायिता मन्त्रेण ।
५ आकाशविशेषगुणः शब्द इति वचनात् । ६ रूपिद्रव्ये । ७ शब्दो द्रव्यं न
भवति कर्मा च नेति । ८ त्रयः पदार्थाः स्वरूपेणासन्तः सत्तासम्बन्धासन्त इति
वचनात् । ९ गगनलक्षणमेकं द्रव्यं यस्य स एकद्रव्यतास्य भासः, दृष्टान्तपक्षे
घटाधिकद्रव्यं यस्य रूपादेः । १० सामान्यशब्देनात्रापरसामान्यं गृह्यते । ११ एक-
द्रव्यत्वाभावात् । १२ घटादीनामेकद्रव्यत्वाभावात् । १३ घटस्य स्पर्शनवद्वि-
न्द्रियान्तरा आह्वानात् । १४ यतो मनोलक्षणेन्द्रियप्रत्यक्ष आत्मा । १५ अनेक-
द्रव्याश्रितत्वात् । १६ विशेषणम् । १७ इदानीं विशेष्यं विचारयति । १८ सत्ता-
सम्बन्धित्वे द्रव्यकर्मणोर्गुणत्वामावात् । १९ आदिना विशेषसमवाययोर्महणम् ।
२० गुणत्वाभावात् । २१ सामान्यविशेषसमवायाः स्वरूपेण सन्तो न तु सत्ता-
सम्बन्धादित्यभिधानात् ।

यत्रैषामाश्रयस्तत्पारिशेष्यादाकाशम् । तथाहि-न तावत्स्पर्श-
वतां परमाणूनां विशेषगुणः शब्दोऽसदादिप्रत्यक्षत्वात्कार्यद्रव्य-
रूपाविवत् । नापि कार्यद्रव्याणां पृथिव्यादीनां विशेषगुणोसौ;
कार्यद्रव्यान्तराप्तादुर्भावेऽप्युपजायमानत्वात्सुखादिवत्, अकारण-
गुणपूर्वकत्वादिच्छादिवत्, अयावद्द्रव्यभावित्वात्, असदादिपुन-
५ षान्तरप्रत्यक्षत्वे सति पुरुषान्तराप्रत्यक्षत्वाच्च तद्वत्, आश्रया-
ङ्गेयोदिरन्यत्रोपलब्धेऽत्र । स्पर्शवतां हि पृथिव्यादीनां यथोक्तवि-
परीती गुणाः प्रतीयन्ते । नाप्यात्मविशेषगुणः, अहङ्कारेण विभे-
क्तग्रहणात्, बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्, आत्मान्तरग्राह्यत्वाच्च । बुद्ध्या-
दीनां चात्मगुणानां तद्वैपरीत्योपलब्धेः । नापि मनोगुणः, असदा-
१० दिप्रत्यक्षत्वाद्गुणादिवत् । नापि दिक्कालविशेषगुणः, तयोः पूर्वापरा-
दिप्रत्ययहेतुत्वात् । अतः पारिशेष्याहुणो भूत्वाकाशस्यैव लिङ्गम् ।

तच्च शब्दलिङ्गाविशेषोद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकम् । विभु च सर्व-
त्रोपलभ्यमानगुणत्वात्, निर्यते सत्यसदासुखोपलभ्यमानगुणो-
धिष्ठानत्वाच्चात्मादिवत् । नित्यं शब्दाधिकरणं द्रव्यं सामान्य-
१५ विशेषैवस्य सत्यनाश्रितत्वादात्मादिवत् । अनाश्रितं शब्दाधिकरणं
द्रव्यं गुणवत्स्य सत्यस्पर्शवत्वाच्चद्वत् । असमैवायवत्स्य सत्यऽना-
श्रितत्वाच्चास्य द्रव्यत्वमिति ।

१ पृथिव्यादिचतुर्णां । २ बोधिप्रलयेन व्यभिचारपरिहारार्थम् । ३ तेषामती-
न्द्रितत्वाच्चतुर्णोप्यतीन्द्रिय एवेति भावः । ४ कार्य=द्रव्यगुणः । ५ कारणस्य
गगनस्य गुणः कारणगुणः न विद्यते कारणगुणः पूर्वं यस्य शब्दस्यासावकारणगुण-
पूर्वकस्य भावस्तस्मात्, पृथिव्यादिविशेषगुणे परमाणुरूपस्य कारणस्य गुणपूर्व-
कत्वमस्तीति । ६ ब्रह्मन्तपक्षे आत्मा कारणम् । ७ गगने सर्वत्र न विद्यते यतः ।
८ इच्छादिवदेव । ९ बोधिश्रमेन दूरान्तरितः । १० सर्वत्र सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे
सत्याह । ११ कार्यद्रव्यान्तराप्तादुर्भावे समुपजायमानरूपस्याः । १२ अहं सुखयहं
दुःखीत्यादिवदहंशब्दान् ब्रह्महकारेण निमित्तस्य रहितस्य शब्दस्य ग्रहणात् ।
१३ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह । १४ हेतोरसिद्धत्वपरिहारार्थमिदम् । १५ दिगा-
काशकालादि सर्वगतं परमते शब्दस्य दिक्कालविशेषगुणत्वे शब्द एव सतोत्सद्भावे
लिङ्गं स्यादिति भावः । १६ अविशेषः एकत्वम् । १७ पटेन व्यभिचारपरि-
हारार्थम् । १८ परमाणुसिद्ध्यव्यभिचारपरिहारार्थम् । १९ स गुणः शब्दः ।
२० नित्यत्वमसिद्धमित्युक्ते सत्याह । २१ अभावेन वा व्यभिचारपरिहारार्थम् ।
२२ पटेन व्यभिचारपरिहारार्थम् । २३ असिद्धत्वे सत्याह । २४ श्रुतेन व्यभिचार-
परिहारार्थं श्रुण्वस्त्वमिति विशेषणं श्रुणानां निर्गुणत्वात् । २५ समवायेनाभावेन वा
व्यभिचारपरिहारार्थम् ।

अत्र प्रतिविधीयते । शब्दानां सामान्येनाश्रितत्वं किमेतः साध्यते, नित्यैकामूर्तविमुद्रव्याश्रितत्वं वा? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता; तेषां पुद्गलकार्यतया तदाश्रितत्वाभ्युपगमात् । द्वितीयपक्षे तु सन्दिग्धविपक्षव्यावृत्तिकत्वेनानैकान्तिको हेतुः; तथाभूतसाध्यान्वितत्वेनास्य कचिद्वृष्टान्तेऽप्रसिद्धे । प्रतिषिध्यमानकर्मभावत्वे सत्यपि च प्रतिषिध्यमानद्रव्यभावत्वमसिद्धम्; द्रव्यत्वाच्छब्दस्य । तथा हि-द्रव्यं शब्दः, स्पर्शाल्पत्वमहत्त्वपरिमाणसंख्यासंयोगगुणाश्रयत्वात्, यद्येवंविधं तत्तद्रव्यम् यथा वदरामलकविल्वादि, तथा चायं शब्दः, तस्माद्रव्यम् ।

- १० तत्र न तावत्स्पर्शाश्रयत्वमस्यासिद्धम्; तथाहि-स्पर्शवाञ्छब्दः स्वसम्बन्धार्थान्तराभिघातहेतुत्वात् मुद्ररादिवत् । सुप्रतीतो हि कंसपाज्यादिध्वानामिसम्यन्धेन श्रोत्राद्यभिघातस्तत्कार्यस्य बाधिर्यादेः प्रतीतेः । स चास्याऽस्पर्शवत्त्वे न स्यात् । न ह्यस्पर्शवता कालादिनामिसम्यन्धेऽसौ दृष्टः । न च शब्दसद्वचरितेन वायुना
- १५ तदभिघातः इत्यभिघातव्यम्; शब्दाभिसम्बन्धान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्तस्य, तथाभूतेपि तदभिघातेऽन्यस्यैव हेतुकल्पने तत्रापि कः समाश्वासः? शक्यं हि वक्तुम्-न वायवाद्यभिसम्बन्धात्तदभिघातः किन्त्वेन्येन, इत्यनवस्थानं हेतूनाम् । गुणत्वेनास्य निर्गुणत्वात्स्पर्शाभावात्तदभिघाताहेतुत्वे चक्रकप्रसङ्गः—गुणत्वं
- २० ह्यद्रव्यत्वे, तदप्यस्पर्शवत्त्वे, तदपि गुणत्वे इति । स्पर्शवतायेनाभिहन्यमानत्वाच्च स्पर्शवानसौ । न चानेनाभिहन्यमानत्वमस्यासिद्धम्; प्रतिघातमित्यादिभिः शब्दस्याभिहन्यमानतया सकलजनसाक्षिकत्वात् मूर्तेन चामूर्त्तस्याविरोधेनाऽप्रतिघाताद्गगनमित्यादिवत् । तच्चास्य स्पर्शाश्रयत्वमसिद्धम् ।

- २५ नाप्यल्पमहत्त्वपरिमाणाश्रयत्वम्; अल्पमहत्त्वप्रतीतिविषयत्वाद्वदरादिवत् । ननु च 'अल्पः शब्दो मन्दः' इत्यादिप्रतीत्या मन्द-

१ गुणत्वादिति हेतोः । २ इति विशेषणम् । ३ अतोमुनामसौ द्रव्यसिद्धिराश्रयमात्रस्यैव सिद्धिप्रसङ्गात् । ४ नैनानाम् । ५ विपक्षः अनित्यानेकमूर्त्ताऽविमुद्रव्याश्रितम् । ६ रूपादयो वृष्टान्तभूता अनिलादिविशिष्टपक्षे वर्तन्तेऽतोऽयमपि हेतुस्तादृशे पक्षे वर्तते अन्यादृशे वेति सन्दिग्धः । ७ गुणत्वात् । ८ नित्यैकव्याप्याश्रयत्वे साध्यविकलो वृष्टान्तो रूपादीनां तद्विपरीताश्रयश्रितत्वात् । ९ ते च ते गुणाश्च । १० अनिर्वचनीयेन । ११ आदौ क्तप्रतिपादितं सदेवान्ते स्यादिति चक्रकदोष इति भावः । १२ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे शब्दम् । १३ स्पर्शवद्विः । १४ असिद्धमिति संवन्धः । १५ शब्दस्य । १६ अल्पत्वमहत्त्वपरिमाणम् ।

त्वमेव धर्मो गृह्यते, 'महान् पटुस्तीव्रः' इत्यादिप्रतीत्या च तीव्र-
त्वम्, न पुनः परिमाणमित्युक्तानवधारणात् । नहि 'अयं महा-
च्छब्दः' इति व्यवस्यन् 'इयान्' इत्यवधारयति, यथा द्रव्याणि वद-
रामलकविल्वादीनि । मन्दतीव्रता चावान्तरो जातिविशेषो गुण-
वृत्तित्वाच्छब्दत्ववत्, तदप्यपेक्षलम्, यतः कथं शब्दस्य गुणत्वं^५
सिद्धं यतस्तद्वृत्तित्वान्मन्दत्वादेर्जातिविशेषत्वं सिद्धयेत् ? अद्रव्य-
त्वाच्चेत्, तदपि कथम् ? अल्पमहत्त्वपरिमाणानधिकरणत्वाच्चेत्,
तदपि कुतः ? गुणत्वात्, चक्रकप्रसङ्गः ।

द्रव्यान्तरवदित्युक्तानवधारणाच्चेत्, न; वायुनानेकान्तात् । न
खलु विल्ववदरादेरिव वायोरित्युक्तावधार्यते । वायोरप्रत्यक्षत्वा-^{१०}
दित्युक्ता सत्यपि नावधार्यते, न शब्दस्य विपर्ययात्, इत्यप्य-
युक्तम्; गुणगुणिनोः कथञ्चिदेकत्वे गुणप्रतिभासे गुणिनोपि
प्रतिभाससम्भवात् । वायुगतस्पर्शविशेषस्यैवाप्यक्षत्वाभ्युपगमे
च 'स्पर्शोत्र शीतः खरो वा' इति प्रतीतिः स्याच्च वायुरिति । न
खलु रूपावभासिनि प्रत्यये सौवभासते । स्पर्शविशेषपरिणामस्यैव^{१५}
च वायुत्वात्कथं नास्य प्रत्यक्षत्वम् ?

इयं चैवं यदि परिमाणवन्त्याः कथमन्यस्यानवधारणेऽन्यस्या-
भावः ? न खलु घटानवधारणे पटाभावो युक्तः । परिमाणं चेत्,
तर्हि 'इत्युक्तानवधारणात्परिमाणं नास्ति' इत्येव 'परिमाणं नास्ति
परिमाणानवधारणात्' इत्येतावदेवोक्तं स्यात् । अल्पत्वमहत्त्व-^{२०}
प्रत्ययतस्तत्परिमाणानवधारणे च कथं तदनवधारणं नामामल-
कादावपि तत्प्रसङ्गात् ? मन्दतीव्रताभिसम्बन्धात्तत्प्रत्ययसम्भवे
च मन्दवाहिनि नर्मदावीरे 'अल्पमेतत्' तीव्रवाहिनि च कुल्योजले

१ इवन्ति अवधारयति जनः । २ तीव्रत्व मन्दत्वं च परिमाणविशेषोऽस्त्वित्युक्ते
संज्ञाह । ३ शब्दे । ४ चक्रकपरिवारार्थं गुणत्वादिति हेतुसूत्रे इत्युक्तानवधारणादिति
हेतुं योजयति परः । ५ अल्पत्वमहत्त्वपरिमाणानधिकरणत्वे वायोरित्युक्ता नावधार्यते
इति भावः । ६ अनैकान्तिकत्वं हेतोः परिहरन्नाह । ७ प्रत्यक्षत्वात् । ८ इयत्वाभावोः ।
९ प्रदेशभेदाभावात् । १० ततश्च वायुगुणस्य स्पर्शस्य प्रत्यक्षत्वादायोरेव प्रत्यक्षत्वं
स्यात्, तथा च वायोरप्रत्यक्षत्वं बहुमशङ्क्यं तत्र परस्मै । ११ न वायुः शीतः खरो वेति
प्रतीतिः । १२ रूपी वायुः । १३ तथा च वायोरित्युक्तः स्यात् । १४ कथञ्चिदेक-
त्वेन । १५ त्वशिन्द्रियग्राह्यत्वम् । १६ इयत्वाया अनवधारणे शब्दस्याप्यल्पमहत्त्व-
परिमाणस्याभावः इत्यादिष्वप्येव दूषणान्तरम् । १७ इयत्ता परिमाणान्निमित्ताभिरिति
विकल्पप्रत्ययम् । १८ इयत्तालक्षणम् । १९ परिमाणलक्षणम् । २० अन्येति विकल्पाः ।
२१ द्वितीयपक्षे । २२ परिणामीक्रियमाणे । २३ बलम् । २४ अस्या सरित् कुल्याः

‘महदेतत्’ इति प्रत्ययः स्यात् । नै चैवम् । तस्माच्च मन्दतीव्रता-
निबन्धनोऽयं प्रत्ययः, अपि त्वल्पमहत्त्वपरिमाणनिबन्धनः, अन्यथा
बदरामलकादावपि तन्निबन्धनोऽसौ न स्यात् । बदरादीनां द्रव्य-
त्वेन तत्परिमाणसम्भवात्तस्यै तन्निबन्धनत्वे शब्देऽप्यत एवासौ
५ तन्निबन्धनोऽस्तु विशेषार्थाभावात् । कारणगतस्य चाल्पमहत्त्वपरि-
माणस्य शब्दे उपचारात्तथा प्रत्यये बदरादावप्यसौ तथानुव-
ज्येत । तन्नाल्पमहत्त्वपरिमाणाश्रयत्वमप्यस्यासिद्धम् ।

नापि सङ्ख्याश्रयत्वम्; ‘एकः शब्दो द्वौ शब्दौ बहवः शब्दाः’
इति संख्यावत्त्वप्रतीतिर्येदादिवत् । अथोपचाराच्छब्दे संख्याव-
१० त्वप्रतीतिः, ननु किं कारणगता, विषयगता वा शब्दे संख्योप-
चर्येत ? कारणगता चेत्, किं समवायिकारणगता, कारणमात्र-
गता वा ? आद्यपक्षे ‘एकः शब्दः’ इति सर्वदा व्यपदेशप्रसङ्गस्त-
स्यैकत्वात् । द्वितीयपक्षे तु ‘बहवः शब्दाः’ इति व्यपदेशः स्यात्तस्य
बहुत्वात् । विषयसंख्योपचारे तु गगनाकाशव्योमादिशब्दा बहु-
१५ व्यपदेशभाजो न स्युर्गगनलक्षणविषयस्यैकत्वात् । पञ्चोदीनां च
बहुत्वात् ‘एको गोशब्दः’ इति स्वमेपि दुर्लभम् । यथाऽविरोधं
संख्योपचारः, इत्यप्ययुक्तम्, स्वयं संख्यावत्त्वमन्तरेणाविरोधाऽ-
सम्भवात् ।

किञ्च, विपर्ययीतपोपलम्भस्य बाधकस्य सङ्गावे सत्युपचारकल्पना
२० स्यात्, न चाग्निस्वरहितपुरुषस्यैकत्वादिसंख्यारहितस्य शब्द-
स्योपलम्भोऽस्तीति कथमुपचारकल्पना ? तर्थापि तत्कल्पने अनुप-
चरितमेव न किञ्चित्स्यात् । तन्न संख्याश्रयत्वमप्यसिद्धम् ।

नापि संयोगोऽश्रयत्वम्; वाय्वादिनामिहन्यमानत्वात्, पांश्वादि-
वत् । संयुक्ता एव हि पांश्वादयो वायुनान्येन वाऽमिहन्यमाना
२५ दृष्टाः । तेनै तदभिघातश्च देवदत्तं प्रत्यागच्छतः प्रतिवातेन प्रति-

१ जलम् । २ भवत्तित्युक्ते सलाहानार्थः । ३ अल्पत्वमहत्त्वलक्षणः । ४ बद-
रादिभ्यस्त्वमहत्त्वप्रत्ययस्य । ५ अल्पत्वमहत्त्वप्रत्ययः । ६ द्रव्यत्वेनाल्पत्वमहत्त्वपरि-
माणसंज्ञमवयव । ७ शब्दस्य कारणमाकाशम् । ८ द्रव्यम् । ९ कार्यरूपे ।
१० तात्त्वादिभेदादिकारणमात्रम् । ११ विषयः=शब्दस्य बाधकः । १२ नातिव्यु-
रश्मिभारिनापाद्यस्वर्गाणां ग्रहणमादिशब्देन । १३ किन्तु गोशब्दा बहवो भवेत्युक्ति-
भावः, न तु गोशब्दो बहुप्रकारः । १४ एकसिन्धुते एकः शब्द इत्यादिवत् ।
१५ पदार्थानाम् । १६ शब्दलक्षणार्थानाम् । १७ असंख्यावत्त्वम् । १८ यत्तत्वादि-
संख्यारहितस्योपलम्भाभावेति । १९ संयोगो गुणः । २० शब्दस्य । २१ सन्दिग्धत्वे
सलाह । २२ साधनमसिद्धमित्युक्ते सलाह । २३ शब्दस्य ।

निवर्त्तनात्पांश्चादिवदेवावसीयते, तदप्यन्यदिगवस्थितेन अव-
णात् । ननु गन्धादयो देवदत्तं प्रत्यागच्छन्तस्तेन निवर्त्त्यन्ते, न
च तेषां तेन संयोगो निर्गुणत्वाद्गुणानाम्; तन्न; तद्वतो द्रव्यस्यै-
वानेन प्रतिनिवर्त्तनात्, केवलानां तेषां निष्क्रियत्वेनागमननिव-
र्त्तनायोगात् । ततः सिद्धं गुणवत्त्वाद्द्रव्यत्वं शब्दस्य । ५

क्रियावत्त्वाच्च बाणादिवत् । निष्क्रियत्वे तस्य ओत्रेणाऽग्रहणम-
नभिसम्बन्धात् । तथापि ग्रहणे ओत्रस्याप्राप्यकारित्वं स्यात् ।
तथा च, 'प्राप्यकारि चक्षुर्बाह्येन्द्रियत्वात्त्वग्निन्द्रियवत्' इत्यस्यानै-
कान्तिकत्वम् । सर्वेन्द्रधकल्पने ओत्रं वा शब्दोत्पत्तिप्रदेशं गत्वा
शब्देनाभिसम्बध्येत, शब्दो वा खोत्पत्तिदेशादागत्य ओत्रेणामिस- १०
म्बध्येत ? न तावद्धर्मार्थार्थ्यां संस्कृतकर्णशङ्कुल्यवचनमोदेश-
लक्षणओत्रस्य शब्दोत्पत्तिदेशे गतिः; तथा प्रतीत्यभावात्, निष्क्रि-
यत्वाच्च । गतौ वा विवक्षितशब्दान्तेरालवर्त्तिनामर्लेपशब्दानामपि
ग्रहणप्रसङ्गः, सर्वेन्द्रधाविशेषात् । अनुवातप्रतिवाततिर्यग्वातेषु
प्रतिपत्त्यप्रतिपत्तीषत्प्रतिपत्तिभेदाभावश्च, ओत्रस्य गच्छतस्तत्त- १५
तोपकारार्थयोगात् । नापि शब्दस्य ओत्रप्रदेशागमनम्, निष्क्रिय-
त्वोपगमैव । आगमने वा सक्रियत्वम् ।

ननु नाथ एवाकाशतच्छब्दमुक्तसंयोगेऽभेदः समवाय्यसम-
वायिनिमित्तकारणाज्ज्ञातः शब्दः ओत्रेणागत्य सम्बध्यते येनायं
दोषः, अपि तु बीचीतरङ्गन्यायेनापरापर एवाकाशशब्दोदिलक्ष- २०
णात् समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणाज्ज्ञातः तेनाभिसम्बध्यते,
तदप्यसमीचीनम्, सर्वत्र कियोच्छेदानुपपन्नात् । 'बाणादयोपि हि
पूर्वपूर्वसमानजातीयलक्षणप्रमवा लक्ष्यप्रदेशव्यापिनो न पुनस्ते
एव' इति कल्पयितुं शक्यत्वात् । तत्र प्रत्यभिज्ञानाभित्यत्वसिद्धेर्नैव

१ निधीयते । २ न चेदमसिद्धम् । ३ पुरुषेणावसीयते । ४ जनैकान्तिक-
हेतुमुक्तावयवि परः । ५ द्रव्यरहितानाम् । ६ व्यभिचारो नास्ति प्रतिनिवर्त्त-
नादिलक्ष्य हेतोर्वत्तः । ७ शब्दस्य । ८ तात्वादिकम् । ९ निष्क्रियत्वमसिद्ध-
मित्याह । १० अन्तराहं भेदादिसम्बन्धे । ११ अविवक्षितानां नरादिसम्बन्धानाम् ।
१२ ओत्रेण । १३ सत्यम् । १४ शब्दोत्पत्तिप्रदेशं प्रति । १५ आदिना अनुप-
कारेणुपकारग्रहणम् । १६ परेषु । १७ तथा च द्रव्यं शब्द इत्यावातम्
शब्दः क्रियावान्पूर्वदेशत्वागेन देशान्तरे समुपलम्ब्यमानत्वात्, यदिर्त्य तदित्यर्थं यथा
बाणादि, न चेदमसिद्धं वृत्तमुक्तप्रदेशत्वागेन ओत्रप्रदेशे समुपलम्ब्यमानत्वात् ।
१८ आदिनालुक्कवातादिग्रहः । १९ आदिना ईश्वरादिग्रहः । २० अन्तरा शब्दः ।
२१ प्रथममुक्ताः ।

कल्पना चेत्; नन्विदं प्रत्यभिज्ञानं शब्देऽपि समानम् 'उपाध्यायोक्तं शृणोमि शिष्योक्तं वा शृणोमि' इति प्रतीतिः ।

ननु प्रत्यभिज्ञानस्य भैवहरिनि दर्शनस्मरणकारणकत्वाद्वा च तदभावात्कथं तदुत्पत्तिः ? न खलूपाध्यायोक्ते शब्दे दर्शनवत्स्मरणं भवति; अस्य पूर्वदर्शनाद्याहितसंस्कारप्रबोधनिबन्धनत्वात् । न च कारणाभावे कार्यं भवत्यतिप्रसङ्गात् । इत्यप्यनुपपन्नम्; सम्बन्धितप्रतिपत्तिद्वारेणात्रैकत्वस्य प्रतीतिः । सम्बन्धितायां च दर्शनस्मरणयोः सद्भावसम्भवात्प्रत्यभिज्ञानस्योत्पत्तिरविरुद्धा । तथाहि— प्रत्यक्षानुपलम्भतोऽनुमानतो वा तत्कार्यतया तत्संबन्धिनं शब्दं १० प्रतिपद्येदानीं तैस्सृत्युपलम्भोद्भूतं प्रत्यभिज्ञानं तत्सम्बन्धितया तं प्रतिपद्यमानमेकत्वविशिष्टमेव प्रतिपद्येते, अन्यथा 'उपाध्यायोक्तं शृणोमि' इति प्रतीतिर्न स्यात्, किन्तु 'तदुक्तोद्भूतं तत्संबन्धं शब्दान्तरं शृणोमि' इति प्रतीतिः स्यात् । वीचीतरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिश्चात्रैव निवेद्यते ।

१५ यदि पुनर्लूनपुनर्जातनखकेशादिवत्सदृशापरापरोत्पत्तिनिबन्धनमेतत्प्रत्यभिज्ञानं न कालान्तरस्थायित्वनिबन्धनम्, तद्वाणादावपि समानम् । न समानमत्रैवाधकसद्भावात् तर्था कल्पना, नान्यत्र विपर्ययीत् । नन्वेव प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा बाधकं कल्प्येत ? प्रत्यक्षं चेत्; किमेकत्वविषयम्, क्षणिकत्वविषयं वा ? २० न तावदेकत्वविषयम्; समविषयत्वेन तदुक्तैकलत्वात् । नहि क्षणिकत्वविषयम्; शब्देऽन्यत्र वा तस्य विवादगोचरार्पणत्वात् । नाप्यनुमानम्; प्रत्यभिज्ञानं हि मानसप्रत्यक्षं भैवन्मते तस्य कथमनुमानं बाधकम् ? प्रत्यक्षमेव हि बाधकम् आभताग्राह्यैकशाखाप्रभवत्वानुमानस्य, न पुनस्तदनुमानं प्रत्यक्षस्य । अथाध्यक्षा-

१ पूर्वक्षणे । २ उत्तरक्षणे । ३ अहं शुरुः । ४ एकत्वप्राप्तिः । ५ जैनमते । ६ ओत्रेन्द्रियवशानवत् । ७ अन्यमुपाध्यायोक्तः शब्द इति । ८ मया वाः शब्दः भूयते स उपाध्यायेनोक्त इति । ९ अन्यव्यतिरेकतः । १० भूयमाणत्वं । ११ उपाध्यायसम्बन्धितेन तस्य शब्दस्य । १२ दर्शनसृष्टिप्रभवम् । १३ तेन उपाध्यायोक्तेन शब्देन । १४ व्यजनानिष्ठवत् । १५ न वैषयम् । १६ तथा चाशेषार्मानां क्षणिकत्वप्रसङ्गात्सौगतमवसिद्धिः स्यात् । १७ शब्दे । १८ क्षणिकत्वेन । १९ नेये ते बाणादय इत्यत्र बाधकभावात् । २० शब्दाक्षणिकत्वप्रत्यभिज्ञाने । २१ प्रत्यक्षानलैकविषयत्वं प्रत्यक्षस्यान्यैकविषयवत्त्वम् । २२ तेन—प्रत्यभिज्ञानेन । २३ क्षणिकत्वविषयस्य प्रत्यक्षस्य । २४ असिद्धत्वादिति भावः । २५ वैशेषिकमते । २६ पक्षा-न्येतानि फलानि एकशाखाप्रभवत्वादित्यनुमानस्याऽऽमताग्राह्यप्रत्यक्षं बाधकम् ।

भासत्वादस्यानुमानं बाधकम्, यथा स्थिरचन्द्रार्कादिविज्ञानस्य
द्वैशान्तरप्राप्तिलिङ्गजनितं गत्यनुमानम्; कथं पुनरस्याध्यक्षाभास-
त्वम्? अनुमानेन बाधनाच्चेत्; अनेनानुमानस्य बाधनादनुमाना-
भासता, किञ्च स्यात्? अथानुमानबाधितविषयत्वान्नेदमनुमानस्य
बाधकम्; अनुमानमप्येतद्बाधितविषयत्वान्नास्य बाधकं स्यात्। न ५
च तदनुमानमस्ति।

नन्विदमस्ति-क्षणिकः शब्दोऽसदादिप्रत्यक्षत्वे सति विमुद्रव्य-
विशेषगुणत्वात् सुखादिवत्। सत्यमस्ति, किन्त्वेकशास्त्राप्रभव-
त्ववदेतत्साधनं प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षबाधितकर्मनिर्देशानन्तरं प्रयुक्त-
त्वाच्च साध्यसिद्धिनियन्धनम्। विमुद्रव्यविशेषगुणत्वं चासिद्धम्; १०
शब्दस्य द्रव्यत्वप्रसाधनात्। धर्मादिना व्यभिचारश्च, अस्य विमु-
द्रव्यविशेषगुणत्वेऽपि क्षणिकत्वाभावात्। तस्यापि पक्षीकरणाद-
व्यभिचारे न कश्चिद्वैतव्यभिचारी, सर्वत्र व्यभिचारविषयस्य
पक्षीकरणात्। 'असदादिप्रत्यक्षत्वे सति' इति च विशेषणमर्थ-
कम्, व्यवच्छेद्यभावात्। धर्मादिश्च क्षणिकत्वे स्वोत्पत्तिसमया- १५
न्तरमेव विनष्टत्वात्ततो जन्मान्तरे फलं न स्यात्।

शब्दाकलब्धोत्पत्तिवद्धर्मादेर्वर्माद्युत्पत्तिः, इत्यप्ययुक्तम्; तथा-
भ्युपगमाभावात्, तद्वदपरापरतत्कार्योत्पत्तिप्रसङ्गाच्च। 'परस्यानु-
कूलेष्वनुकूलाभिमानजनितोभिलाषः अभिलषितुरर्थोभिमुखक्रिया-
कारणमैतन्निशेषगुणमाराधोति' अनुकूलेष्वनुकूलाभिमानजनि- २०

१ शब्देकत्वविषयसाध्यत्वम्। २ शब्दस्य क्षणिकत्वसाधनेन। ३ यत्नेन=
मानसप्रत्यक्षेण। ४ शब्दक्षणिकत्वानुमानम्। ५ परममहापरिमाणेन व्यभिचार-
परिहारार्थमिदं विशेषणम्। ६ विमुद्राकाशमत्तमा च। ७ वदादिपदरूपादिना
व्यभिचारनिरासार्थं विशेषेति। ८ उपहासे। ९ कर्म=प्रतिज्ञा। १० प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षेण
पूर्वं शब्दसाक्ष्यक्षणात् साधितं यतः। ११ विमुद्रव्यविशेषगुणत्वादिलेखोप्ययाने।
१२ क्षणिकत्व=साध्यम्। १३ अनेकान्तपरिहाराय, पश्चान्तःपातित्वाद्धर्मादेः क्षणि-
कत्वभावात्तमिति भावः। १४ व्यवच्छेदकफलं हि विशेषणमिति वचनात्। १५ अस-
दादिप्रत्यक्षत्वे सतीति विशेषणेन किञ्चासदाद्यऽप्रत्यक्षो धर्मादिव्यवच्छेदः, तस्यापि
पक्षीकरणे व्यवच्छेदधर्मस्य विशेषणस्य नास्तीति भावः, सर्वत्र पक्षीकरणादिविशेषणेन
परिहरणीयत्वमाभावात्। १६ परेण। १७ धर्मावर्त्ययोः क्षणिकत्वे। १८ अस्तु, न
नैवम्, न खलु धर्माद्युत्पत्तिवदपरापरवनिताद्यद्युत्पत्तिः प्रतीयते। १९ प्रकृतसाध्ये
हेतुन्तरमिदम्। २० अनुकूलवैरोक्तम्। २१ इत्यावागादिपूजादिषु धर्मोत्पादन-
कारणभूतेषु। २२ धर्मजनकत्वेन। २३ इमान्वनुकूलानीत्यभिमानत्वेन जनितः।
२४ अर्थ=सकृच्चन्दनादिकं प्रति। २५ क्रिया=कार्यम्। २६ उत्तरजन्मनि।
२७ धर्मलक्षणं दृष्टान्तपक्षे प्रयुक्तलक्षणं च। २८ उत्पादयति, साधयति।

तामिलाषत्वात् 'आत्मनोर्दुःकूलेष्वनुकूलाभिमानजनितामिलाष-
घत्' इत्यस्य च विरोधः, यस्माद्योऽसौ परस्यानुकूलेष्वनुकूला-
भिमानजनितामिलाषजनित आत्मविशेषगुणो नासावमिलषितु-
रर्थाभिमुखक्रियाकारणम्, तत्समानस्य तत्कारणत्वात्, यश्च
५ तत्क्रियाकारणं नासौ यथोक्तामिलाषजनित इति ।

'इच्छाद्वेषनिर्मितौ प्रवर्त्तकनिवर्त्तकौ धर्माधर्मौ, अव्यवधानेन
हिताहितविषयप्राप्तिपरिहारहेतोः कर्मणः कारणत्वे सत्यात्म-
विशेषगुणत्वात्, प्रवर्त्तकनिवर्त्तकप्रयत्नवत्' इत्यत्र हेतोर्व्यभिच-
रश्च-जन्मान्तरफलोदययोर्धर्माधर्मयोः अव्यवधानेन हिताहित-
१० विषयप्राप्तिपरिहारहेतोः कर्मणः कारणत्वे सत्यात्मविशेषगुणत्वे-
पीच्छाद्वेषजनितत्वाभावात् । ततः शब्दाच्छब्दोत्पत्तिवद्धर्माध-
र्माद्युत्पत्त्यभावात् । क्षणिकत्वे चातो जन्मान्तरे फलासम्भ-
वादक्षणीकत्वं तस्याभ्युपगन्तव्यमित्यनेनानैकान्तिको हेतुः ।

अथासदादिप्रत्यक्षत्वविशेषणविशिष्टस्य विमुद्रव्यविशेषगुण-
१५ त्वस्यैवात्रैकसम्भवाच्च व्यभिचारः । ननु मा भूद्यभिचारः, तथापि
साकल्येन हेतोर्विपक्षाल्पत्वसिद्धिः । विपक्षविरुद्धं हि विशेषणं
ततो हेतुं निवर्त्तयति । यथा सहेतुकैत्वमहेतुकैत्वविरुद्धं ततः

१ सामान्यं हेतुं भुवतां दोषाभावात् । २ जीवस्य स्वस्य वा । ३ वज्रादिषु अक्ष-
चन्दनादिषु च । ४ अनुमानस्य । ५ धर्माधर्मौ धर्मोपपत्तौ सत्त्वात् । ६ धर्मोच्छेदः ।
७ अनुष्ठानवैरोधिकस्य । ८ परापरोत्पत्त्या तस्यादन्यत्वात् । ९ अन्तो धर्मैः ।
१० इच्छाद्वेषौ निमित्तं कारणं ययोर्धर्माधर्मयोरिति भावः । ११ कार्यस्य निष्पादिका-
निष्पादकौ । १२ कारणत्वादित्युच्यमाने चक्षुरादिना व्यभिचारस्तच्चित्तस्यैवात्म-
विशेषगुणत्वादित्युक्तम्, तावत्युक्ते ह्यसादिनानेकान्तस्तत्परिहारार्थं कर्मणः कारणत्वं
सतीति विशेषणम्, तावत्युक्ते बुद्ध्यादिनानेकान्तस्तत्परिहारार्थं हिताहितविषयप्राप्ति-
परिहारहेतोर्नित्युपात्तम्, तावत्युक्ते इच्छाद्वेषाभ्यामनेकान्तस्तत्परिहारार्थमव्यवधानेनेति
विशेषणमुपादीयते । १३ धर्माद्विषयप्राप्त्यहितविषयपरिहारो यवतः, अयमाद्विहित-
विषयप्राप्तिद्विविषयपरिहारो स इति सम्बन्धः । १४ धर्माधर्मयोः । १५ अनुमाने ।
१६ धर्मादेः क्षणिकत्वे । १७ पूर्वधर्माधर्मसदृशयोः । १८ धर्मादेः क्षणिकत्वे साध्ये ।
१९ धर्मादेः क्षणिकत्वाभावात् । २० असदादिप्रत्यक्षत्वे सतीति विशेषणं लक्ष्णा
विमुद्रव्यविशेषगुणत्वादित्यत्र हेतुः । २१ व्यभिचारपरिहारार्थम् । २२ सामनस्य ।
२३ धर्मादौ । २४ अन्ते यथा सम्भवस्तथा धर्मादौ नास्ति यतः । २५ अक्षणीकत्वात् ।
२६ कथम् ? तथा हि । २७ हेतोर्विपक्षे धृष्टिं वारयति अतएव हेतुविशेषणम् ।
२८ अनित्यः शब्दः कादाचित्कत्वात् यदवदित्युक्ते खननोत्खेदनादिना कदाचित्केन
नभसानैकान्तिकत्वम्, तदवयवच्छेदार्थं सहेतुकत्वे सति कादाचित्कत्वादिति साधनं
प्रयोक्तव्यम् । २९ विशेषणम् । ३० अहेतुकत्वव्याकाशवि ।

कादाचित्कत्वम् । न चासदादिप्रत्यक्षत्वमक्षणिकत्वविरुद्धम् ;
अक्षणिकेऽपि सामान्यादिषु भावाः । ततो यथासदादिप्रत्यक्षा
अपि केचित्प्रदीपादयो भावाः क्षणिकाः सामान्यादयस्त्वक्षणि-
कास्तथासदादिप्रत्यक्षा अपि विमुद्व्यविशेषगुणाः 'केचित्क्ष-
णिकाः केचिदक्षणिका भविष्यन्ति' इति सन्दिग्धो व्यतिरेकः ।
अथाक्षणिके केचिदसदादिप्रत्यक्षत्वविशेषणविशिष्टस्य विमुद्व्य-
विशेषगुणत्वस्यादर्शनात्ततो व्यावृत्तिसिद्धिः ; न ; भवदीयादर्शनस्य
साकल्येन भावामावाप्रसाधकत्वात्, अन्यथा परलोकादेरप्य-
भावानुषङ्गः । सर्वस्यादर्शनं चासिद्धम् ; सतोऽपि निश्चेतुम-
शक्यत्वात् ।

१०

विपक्षेऽदर्शनमौत्राद्धौवृत्तिसिद्धौ—

“यद्वेदाध्ययनं किञ्चित्तदध्ययनपूर्वकम् ।

वेदाध्ययनवाच्यत्वादधुनाध्ययनं यथा ॥”

[मी० श्लो० पु० ९४९]

इत्थस्यापि गमकत्वप्रसङ्गः । न सन्तु वेदाध्ययनमतदध्ययन-
पूर्वकं दृष्टम् । तथा चास्यानादित्वसिद्धेरीश्वरपूर्वकत्वेन प्रामाण्यं
न स्यात् । न च कृतकत्वादावप्ययं दोषः समानः ; तत्र विपक्षे
हेतोः सङ्गाववाधकप्रमाणसम्भवात् ।

धर्मादेः आसदाद्यप्रत्यक्षत्वे 'देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः पश्चादयो
देवदत्तगुणाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वाद्वत्सादिवत्' इत्यनुमानं न
स्यात्, व्याप्तेरग्रहणात् । मानसप्रत्यक्षेण व्याप्तिग्रहणे सिद्धं धर्मा-
देरसदादिप्रत्यक्षत्वम् । अथ 'बाह्येन्द्रियेणासदादिप्रत्यक्षत्वे सति'

१ हेतुं निवर्तयति । २ असदादिप्रत्यक्षत्वविशेषणस्य । ३ पदार्थाः । ४ सुखा-
दयः । ५ धर्मादयः । ६ हेतोर्विपक्षाम्बावृत्तिः । ७ धर्मादौ । ८ बाहिना परमाण्व-
देव । ९ भवदीयादर्शनस्य परलोकादौ सङ्गावविशेषात्, तथा च चार्वाकमतप्रसङ्गः ।
१० नरस्य । ११ सर्वेषां हेतोर्विपक्षेऽदर्शनं विद्यते तस्मात् तस्य । १२ सर्वेषां
प्राणिनां ग्रहणायानात्, जन्मनाऽज्ञेयवत्त्वप्रसङ्गः । १३ अक्षणिके । १४ अदर्शन-
साग्रान्नात् । १५ विपक्षात् । १६ अपौरुषेयत्वच्छक्षणसाधकस्य । १७ अवेदाध्य-
यनपूर्वके लोकगमने विपक्षे हेतोरदर्शनमात्रादेतोर्विपक्षाद्वत्त्ववृत्तिसिद्धेः सङ्गावत् ।
१८ ईश्वरकर्तृकत्वेन । १९ अभ्यन्तरे । २० हेतौ । २१ नित्ये गगनादौ, यत्कृतकं
न भवति तदनिर्लभं न भवति यथा गगनमिति । २२ यद्यत्तं प्रत्युपसर्पणवत्तदेवदत्त-
गुणाकृतमिति प्रत्यक्षेण धर्मादेरसत्त्वत्वात् । २३ तत्तस्य धर्मादिना व्यभिचारः
पूर्ववदस्य यत् । २४ इति निश्चयेन ।

इति हेतुर्विशेष्यते तदा साधनवैकल्यं दृष्टान्तस्य, सुखादेस्तथा प्रत्यक्षत्वाभावात् ।

यदि च वीचीतरङ्गन्यायेन शब्दोत्पत्तिरिष्यते तदा प्रथमतो वक्तृव्यापारादेकैः शब्दः प्रादुर्भवति, अनेको वा ? यथेकः, कथं ५ नानादिकानेकशब्दोत्पत्तिः सकृदिति चिन्त्यम् । सर्वदिक्ताल्वादिव्यापारजनितवाय्वाकाशसंयोगानामसमवायिकारणानां समवायिकारणस्य चाकाशस्य सर्वगतस्य भावात् सकृत्सर्वदिक्कनानाशब्दोत्पत्त्यविरोधे शब्दस्यारम्भकर्त्वायोगः । यथैवाद्यः शब्दो न शब्देनारब्धस्ताल्वाद्याकाशसंयोगादेवासमवायिकारणादुत्पत्तेः, १० तथा सर्वदिक्कशब्दान्तराण्यपि ताल्वादिव्यापारजनितवाय्वाकाशसंयोगेभ्य एवासमवायिकारणेभ्यस्तदुत्पत्तिसम्भवात् । तथा च “संयोगोद्धिर्भागाच्छब्दाश्च शब्दोत्पत्तिः” [वैशे० सू० ३।३।३१] इति सिद्धान्तव्याधीतः ।

अथ शब्दान्तराणां प्रथमः शब्दोऽसमवायिकारणं तत्सदृश- १५ त्वात्, अन्यथा तद्विसदृशशब्दान्तरोत्पत्तिप्रसङ्गो नियामकभावात् । नन्वेवं प्रथमस्यापि शब्दस्य शब्दान्तरसदृशस्यान्यशब्दादसमवायिकारणादुत्पत्तिः स्यात् तस्याप्यपरपूर्वशब्दादित्यनादित्वापत्तिः शब्दसन्तानस्य स्यात् । यदि पुनः प्रथमः शब्दः प्रतिनिर्यतः प्रतिनियतावकृत्वापारादेवोत्पन्नः स्वसदृशानि शब्दान्तराण्यार- २० भेत; तर्हि किमाद्येन शब्देनासंभवायिकारणेन ? प्रतिनियतवक्तृव्यापारजनितप्रतिनियतवाय्वाकाशसंयोगेभ्यश्च सदृशपरापरशब्दोत्पत्तिसम्भवात् । तन्नैकः शब्दः शब्दान्तरारम्भकः ।

नाप्यनेकः, तस्यैकस्यात्ताल्वाद्याकाशसंयोगादुत्पत्त्यसम्भवात् । न चानेकस्ताल्वाद्याकाशसंयोगः सकृदेकस्य वक्तुः सम्भवति, २५ प्रयत्नस्यैकत्वात् । न च प्रयत्नमन्तरेण ताल्वादिक्रियापूर्वकोऽन्यतरकर्मजस्ताल्वाद्याकाशसंयोगः प्रसूते यतोऽनेकशब्दः स्यात् ।

अस्तु वा कुतश्चिदाद्यः शब्दोऽनेकः, तथाप्यसौ सर्वदेशे शब्दान्तराण्यारभते, देशान्तरे वा ? न तावत्स्वदेशे, देशान्तरे शब्दो-

१ विशुद्धव्यविशेषगुणत्वादित्यवम् । २ बाह्येन्द्रियेण सुखादिवदिति दृष्टान्तः प्रत्यक्षो न भवतीति भावः । ३ शब्दादेव । ४ सर्वदिक्कः—सर्वगतः । ५ उपादानसेत्तवः । ६ भवन्मते । ७ प्रथमस्य । ८ शब्दान्तरं प्रति । ९ शब्दान्तरेणारब्धानि । १० शब्द-
स्वारम्भकर्त्वायोगो च । ११ मेरीदण्डयोः । १२ वंशादिविनागाद्य । १३ वैशेषिकस्य तव । १४ प्रतिनियतस्वरूपः विशिष्टः । १५ कल्पितेव । १६ न चेदमसिद्धम् । १७ तात्वादियु । १८ स्तोत्रपदिदेशे तात्वादी । १९ स्तोत्रपदिदेशादन्यदेशेऽपि ।

पलम्भामावप्रसङ्गात् । अथ देशान्तरे, तत्रापि किं तद्देशे गत्वा, स्वदेशस्थ एव वा देशान्तरे तान्यसौ जनयेत् ? यदि स्वदेशस्थ एव, तर्हि लोकान्तेपि तज्जनकत्वप्रसङ्गः । अदृष्टमपि च शरीरदेशस्थ-मेव देशान्तरवर्त्तिमणिमुकाफलाद्याकर्षणं कुर्यात् । तथा च “धर्माधर्मौ स्वाश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे कर्मरमेते” [५] इत्यादिविरोधः । न च वीचीतरङ्गादावप्यप्राप्तकार्यदेशत्वे सत्या-रम्भकत्वं दृष्टं येनात्रापि तथा तत्कल्प्येताध्यक्षविरोधात् । अथ तद्देशे गत्वा, तर्हि सिद्धं शब्दस्य क्रियावत्त्वं द्रव्यत्वप्रसाधकम् ।

किञ्च, आकाशगुणत्वे शब्दस्यासदादिप्रत्यक्षता न स्यादाकाश-स्यात्यन्तपरोक्षत्वात् । तथाहि—यैऽत्यन्तपरोक्षगुणिगुणानां न तेऽस-१० दादिप्रत्यक्षाः यथा परमाणुरूपादयः, तथा च परेणाभ्युपगतः शब्द इति । न च चायुरूपेण व्यभिचारः, तस्य प्रत्यक्षत्व-प्रसाधनात् ।

किञ्च, आकाशगुणत्वेऽसदादिप्रत्यक्षत्वे चास्यात्यन्तपरोक्षा-काशविशेषगुणत्वायोगः । प्रयोगः—यदसदादिप्रत्यक्षं तत्रात्यन्त-१५ परोक्षगुणिगुणः यथा घटरूपादयः, तथा च शब्द इति ।

यच्चोक्तम्—‘सत्तासम्बन्धित्वात्’ इति, तत्र किं स्वरूपभूतया सत्तया सम्बन्धित्वं विवक्षितम्, अर्थान्तरभूतयो वी ? प्रथम-पक्षे सामान्यादिभिर्व्यभिचारः, तेषां प्रतिविध्यमानद्रव्यकर्म-भावत्वे सति तथाभूतया सत्तया सम्बन्धित्वेपि गुणत्वासिद्धेः । २० द्वितीयपक्षस्त्वयुक्तः, न हि शब्दादयः स्वयमसन्त एवार्थान्तर-भूतया सत्तया सम्बन्धयमानाः सन्तो नामाश्वविषाणादेरपि तथाभावानुषङ्गात् । प्रतिपेत्यते चार्थान्तरभूतसत्तासम्बन्धे-नार्थानां सत्त्वमित्यलमिति प्रसङ्गेन ।

यच्चोक्तम्—शब्दो द्रव्यं न भवत्येकद्रव्यत्वात्, तत्रैकद्रव्यत्वं २५ साधनमसिद्धम्, यतो गुणत्वे, गगने एवैकद्रव्ये समवायेन वर्तने च सिद्धे, तत्सिद्ध्येत्, तच्चोक्तया रीत्याऽपास्तमिति कथं तत्सिद्धिः ?

१ आणोऽनेकः शब्दः । २ साम्याः आत्मा आत्मनो व्यापकत्वात् । ३ मणिमुका-फलादौ, शरीरापेक्षया । ४ आकर्षणादिच्छाणम् । ५ कार्यम्—उत्तरवीचीच्छाणम् । ६ उत्तरतरङ्गाणम् । ७ नायुरूपेण अत्यन्तपरोक्षगुणिगुणो भवत्यसदादिप्रत्यक्षो न भवतीति न । ८ आकाशगुणः शब्दः । ९ सामान्यविशेषसमवायवत् (सामान्य-विशेषसमवायाः स्वतः सन्त इति वचनात्) । १० शब्दस्य । ११ द्रव्यगुणकर्मवत् । १२ जगदया सत्तासम्बन्धित्वस्य दृष्टत्वात्प्रकारान्तरासम्भवात् । १३ आदिना विशेष-समवाययोर्महणम् । १४ रूपादिवत् । १५ शब्दस्य ।

यदप्येकद्रव्यत्वे साधनमुक्तम्-‘एकद्रव्यः शब्दः सामान्य-
विशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्’ इति, तदपि प्रत्य-
क्षमानवाधितम्; तथाहि-अनेकद्रव्यः शब्दोऽसंदादिप्रत्यक्षत्वे
सत्यपि स्पर्शवत्त्वाद् घटादिवत् । वायुनानेकान्तश्च; स हि बाह्यैके-
न्द्रियप्रत्यक्षोपि नैकद्रव्यः, चक्षुषैकेनाऽसंदादिभिः प्रतीयमानैश्च-
न्द्रार्कादिभिश्च । असंदादिविलक्षणैर्बाह्यैर्निर्द्रियान्तरेण तत्प्रतीती
शब्देऽपि तथा प्रतीतिः किञ्च स्यात् ? अत्र तथानुपलम्भोऽन्यत्रापि
समानः ।

एतेनैवमपि प्रत्युक्तम्-‘गुणः शब्दः सामान्यविशेषवत्त्वे सति
१० बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वाद्रूपादिवत्’ इति, वाष्वादिभिर्व्यभिचारात्,
ते हि सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षा न च गुणाः,
अन्यथा द्रव्यसंख्याव्याघातः स्यात् । ततः शब्दानां गुणत्वासिद्धे-
र्युक्तमुक्तम्-‘यश्चैवामाश्रयस्तत्पारिशेष्यादाकाशम्’ इति ।

यश्चोक्तम्-‘न तावत्स्पर्शवतां परमाणूनाम्’ इत्यादि, तत्सिद्ध-
१५ साधनम्; तद्वृणत्वस्य तन्मानम्युपगमात् । यथा चासंदादिप्रत्य-
क्षत्वे शब्दस्य परमाणुविशेषगुणत्वस्य विरोधस्तथाकाशविशेष-
गुणत्वस्यापि । तथा हि-शब्दोऽत्यन्तपरोक्षाकाशविशेषगुणो
न भवत्यसंदादिप्रत्यक्षत्वात्कार्यद्रव्यरूपादिवत् । न ह्यसंदादि-
प्रत्यक्षत्वं परमाणुविशेषगुणत्वमेव निराकरोति शब्दस्य नाकाश-
२० विशेषगुणत्वम् उभयत्राविशेषात् । यथैव हि परमाणुगुणो
रूपादिरसंदाद्यप्रत्यक्षस्तथाकाशगुणो महत्त्वादिरपि ।

यथाप्युक्तम्-‘नापि कार्यद्रव्याणाम्’ इत्यादि; तदप्युक्तम्,
शब्दस्याकाशगुणत्वनिषेधे कार्यद्रव्यान्तराप्रादुर्भावेऽप्युत्पत्त्यभ्युप-
गमे शब्दो निराधारो गुणः स्यात् । तथा च ‘बुद्ध्यादयः कचिद्-

१ अनेकानि द्रव्याणि यस्य परमाणुद्वयावपेक्षया । २ योगिप्रत्यक्षेण परमाणुना
व्यभिचारपरिहारायम् । ३ एकैव वायुपरमाणुना व्यभिचारपरिहारायम् । ४ पर-
माणवपेक्षया । ५ परमाणवपेक्षया । ६ अनेकान्त इति संबन्धः एकद्रव्यवृणत्वसाध्या-
भावात् । ७ योगिभिः । ८ चक्षुषोपेक्षवान्येन स्पर्शैकगुणेन । ९ तथा कानै-
काभितक एव हेतुः सादिति भावः । १० एकद्रव्यः शब्द इत्यादिनिराकरणेन ।
११ आदिना प्रविश्येजसां ग्रहः । १२ त्वद्रव्याणां पञ्चद्रव्यत्वप्रसङ्ग इत्यर्थः ।
१३ शब्दो विशेषगुणो न भवत्यसंदादिप्रत्यक्षत्वात्कार्यद्रव्यरूपादिवत् । १४ जैनैः ।
१५ विशेषणे । १६ भवन्मते । १७ असन्मते । १८ असंदादिप्रत्यक्षत्वम् ।
१९ प्रविश्यादीनाम् । २० जैनैः । २१ परेण ।

तन्ते गुणत्वात्' इत्यस्य व्यभिचारः । ततः कार्यद्रव्यान्तरोत्पत्ति-
स्तत्राम्युपगन्तव्येत्यसिद्धो हेतुः ।

अकारणगुणपूर्वकत्वं चासिद्धम्; तथा हि-नाकारणगुणपूर्वकः
शब्दोऽस्मदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वे सति गुणैत्वात्पटरूपादिवत् । न
चाणुरूपादिना सुखादिना वा हेतोर्व्यभिचारः; 'बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वे
सति' इति विशेषणात् । नापि योगिबाह्येन्द्रियग्राह्येणाणुरूपादिना;
अस्मदादिग्रहणात् । नापि सामान्यादिना; गुणग्रहणात् ।

अथावद्रव्यभावित्वं च विरुद्धम्; साध्यविपरीतार्थप्रसाधन-
त्वात् । तथाहि-स्पर्शवद्रव्यगुणः शब्दोऽस्मदादिबाह्येन्द्रियप्रत्य-
क्षत्वे सत्यथावद्रव्यभावित्वात्पटरूपादिवत् । 'अस्मदादिपुरुषान्तर-१०
प्रत्यक्षत्वे सति पुरुषान्तराप्रत्यक्षत्वात्' इति वाखाद्यमानेन रसा-
दिनानैकान्तिकः । 'आश्रयाद्भेदादेरन्यत्रोपलब्धेः' इति चासङ्गतम्;
भेदादेः शब्दाश्रयत्वासिद्धेस्तस्य तन्निमित्तकारणत्वात् । आत्मादि-
गुणत्वात्त्वप्रतिषेधस्तु सिद्धसाधनाञ्च समाधानमर्हति ।

यच्च 'शब्दलिङ्गाविशेषात्' इत्याद्युक्तम्; तद्वन्ध्यासुतसौभाग्य-१५
व्यावर्णनप्रैक्यम्; कार्यद्रव्यस्य व्यापित्वादिधर्मासम्भवात् ।

एतेनेवमपि निरस्तम्-^{१५} 'दिवि भुव्यऽन्तरिक्षे च शब्दाः श्रूयमाणे-
नैकार्यसमर्वायिनः शब्दत्वात् श्रूयमाणायशब्दवत् । श्रूयमाणः
शब्दः समानजातीयासमवायिकारणः सामान्यविशेषवैधर्त्ये सति
नियमेनास्मदादिबाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात् कार्यद्रव्यरूपादिवत्' २०

१ शब्दस्य गुणरूपस्य कनिष्ठतनामावात् । २ कार्यद्रव्यान्तरात्परमाणुरूपाच्छब्द-
जनकत्वात् । ३ अकारणं=गगनम्, तस्य गुणो महत्त्वादिः । ४ किंतु स्पर्शरसगन्धवर्णव-
सुद्रव्यहेतुक इति भावः । ५ पट्यतरूपगुणो यथा तन्तुगत्यरूपगुणपूर्वकः । ६ असङ्ग-
साधनमेतत् । ७ आत्मनः स्वभावत्वात् । ८ बीजीतरङ्गन्यायेन शब्दाच्छब्दोत्पत्ते-
र्विमिदत्वात् । ९ असङ्गसाधनमेतत् । १० विज्ञेयगुणो न भवतीति साध्याभावात् ।
११ शब्दसान्त्वर्त्यरूपस्य । १२ आदिना मनोदिक्काया गृह्यन्ते । १३ भेदाभावाद्वै-
धर्त्येः । १४ सद्रष्टव्यम् । १५ शब्दस्य आकाशविज्ञेयगुणत्वनिराकरणेन कार्यद्रव्यविज्ञेय-
गुणत्वसाधनेन वा । १६ शब्देन । १७ एकार्थः=आकाशलक्षणार्थः । १८ गगनसम-
वायिकारणकाः । १९ बीजीतरङ्गन्यायागतेन श्रूयमाणेन षट्शब्देन आद्या षट्शब्दाः
श्रूयमाणा षट्शब्दसासमवायिकारणत्वेनाभिगता एकार्थसमवायिनो यथा । २० सामा-
न्यादिना व्यभिचारपरिहारार्थम् । २१ न चाकाशेन व्यभिचार इन्द्रियग्राह्यात्, नापि
षट्पादिना एकपदोपादानात्, नापि सुखादिना बाह्यपदोपादानात्, नापि योगिबाह्यै-
केन्द्रियप्रत्यक्षेण परमाणुना वद्रूपादिना वाऽस्मदादिषट्ग्रहणात्, नापि विशाचादिना
नियमेनेति पदोपादानात् । २२ पटसमवेतरूपाकारम्भे पटोपादकतन्तुरूपादिवत् ।

इति; प्रतिशब्दं पुद्गलद्रव्यस्य तत्समवायिकारणस्य भेदात्। शब्दस्य क्षणिकत्वनिषेधोऽत्र कथं समानजातीयासमवायिकारणत्वम् ?

यदि चाकाशमनवयवं शब्दस्य समवायिकारणं स्यात्; तर्हि शब्दस्य नित्यत्वं सर्वगतत्वं च स्यादाकाशगुणत्वात्तन्महत्त्ववत् ।
५ क्षणिकैकदेशवृत्तिविशेषगुणत्वस्य शब्दे प्रमाणतः प्रतिषेधोऽत्र । तत्त्वे वा कथं न शब्दाधारस्याकाशस्य सावयवत्वम् ? न हि निरवयवत्वे 'तस्यैकदेशे एव शब्दो वर्तते न सर्वत्र' इति विभागो घटते ।

किञ्च, सावयवमाकाशं हिमवद्विन्ध्यावरुद्धविभिन्नदेशत्वाद्-
१० मिवत् । अन्यथा तयो रूपरसयोरिवैकदेशाकाशावस्थितिप्रसक्तिः । न चैतद् दृष्टमिदं वा ।

कथं वा तदाधेयस्य शब्दस्य विनाशः ? स हि न तावदाश्रय-
विनाशाद्घटते; तस्य नित्यत्वाभ्युपगमात् । नापि विरोधिगुणसद्भा-
वात्; तन्महत्त्वादेरेकार्थसमवेतत्वेन रूपरसयोरिव विरोधिर्त्वा-
१५ सिद्धेः । सिद्धौ वा श्रवणसमयेपि तदभावप्रसङ्गः; तदा तन्मह-
त्त्वस्य भावात् । नापि संयोगादिविरोधिगुणः; तस्य तत्कारण-
त्वात् । नापि संस्कारः; तस्याकाशेऽसम्भवात् । सम्भवे वा
तस्याभावे आकाशस्याप्यभावानुषङ्गस्तस्य तदव्यतिरेकात् । व्यति-
रेके वा 'तस्य' इति सम्बन्धो न स्यात् । नापि शब्दोपलब्धिमाप-
२० कादृष्टाभावात्तदभावः; तुच्छाभावस्यासामर्थ्यतो विनाशाहेतुत्वात्
स्वरविषाणवत् । तत्र शब्दस्याकाशप्रभवत्वमभ्युपगन्तव्यम् ।

ननु चाऽस्य पौद्गलिकत्वेऽस्यदाद्यनुपलभ्यमानरूपाद्याश्रयत्वं
न स्यात्पटादिवत्; तत्र; व्युत्पादिना हेतोर्व्यभिचारात् । नाय-
नरश्मिषु जलसंयुक्तानले चानुद्भूतरूपस्पर्शवत् शब्दाश्रयद्रव्ये-
३५ ऽस्यदाद्यनुपलभ्यमानानामप्यनुद्भूततया रूपादीनां वृत्त्यविरोधः ।
यथा च प्राणेन्द्रियेणोपलभ्यमाने गन्धद्रव्येऽनुद्भूतानां रूपादीनां
वृत्तिस्तथात्रापि । यथा च तैजसत्वात्पार्थिवत्वाच्चात्रैतानुपलभ्येति

१ जनेकाद । २ पर्यायरूपेण वस्तुनो विनाशात् । ३ जनेन । ४ तन्महत्त्ववत् ।
५ तथा च हिमवद्विन्ध्ययोः सहचरयाव इति भावः । ६ परेण । ७ विरोधिगुण-
रूपस्य । ८ शब्दं प्रति । ९ संयोगादिः शब्दकारणमिति वचनात् । १० कार्यरूपेण ।
११ वपौद्गलिकं तदस्यदाद्यनुपलभ्यमानरूपाद्याश्रयमित्युक्ते द्रव्यगुणादिना पौद्गलिकेन
व्यभिचारोऽस्यदाद्यनुपलभ्यमानरूपाद्यवयववृत्तिसाध्याभावात् । १२ उष्णस्पर्शे । १३ अत्र
रूपं भावुरत् । १४ परमते । १५ परमते । १६ नावनरश्म्यादिषु (जलसंयुक्तानले
गन्धद्रव्ये) त्रिषु ।

रूपादीनामनुद्भूततयास्तित्वसम्भावना तथा शब्देऽपि 'पौद्गलिके-
त्वात् । न च पौद्गलिकत्वमसिद्धम्; तथाहि-पौद्गलिकः शब्दो-
ऽस्मदादिप्रत्यक्षत्वेऽचेतनत्वे च सति क्रियावत्त्वाद्वाणादिवत् ।
न च मनसा व्यभिचारः; 'अस्मदादिप्रत्यक्षत्वे सति' इति विशेष-
णत्वात् । नाप्यात्मना; 'अचेतनत्वे सति' इति विशेषणात् । ५
नापि सामान्येन; अस्य क्रियावत्त्वाभावात् । ये च 'अस्मदादि-
प्रत्यक्षत्वे सति स्पर्शवत्त्वात्' इत्यादयो हेतवः प्रागुपन्यस्तास्ते
सर्वे पौद्गलिकत्वप्रसाधका द्रष्टव्याः । ततः शब्दस्याकाशगुणत्वा-
सिद्धेर्नासौ तल्लिङ्गम् ।

कुतस्तर्हि तत्सिद्धिरिति चेद्? 'युगपन्निखिलद्रव्यावगाह-१०
कार्यात्' इति ब्रूमः; तथाहि-युगपन्निखिलद्रव्यावगाहः साधारण-
कारणापेक्षः तथावगाहत्वान्यथाऽनुपपत्तेः । ननु सर्पिणो मधुन्यव-
गाहो भस्मनि जलस्य जलेऽन्वादेर्यथा तथैवालोकतमसोरशेषार्था-
वगाहघटनाभाकाशप्रसिद्धिः; तच्च, अनयोरप्याकाशाभावेऽवगा-
हानुपपत्तेः । १५

ननु निखिलार्थानां यथाकाशेवगाहः तथाकाशस्याप्यन्यसि-
द्ध्यधिकरणेऽवगाहेन भवितव्यमित्यनवस्था, तस्य स्वरूपेवगाहे
सर्वार्थानां स्वात्मन्येवावगाहप्रसङ्गात्कथमाकाशस्यातः प्रसिद्धिः ?
इत्यप्यपेक्षालम्; आकाशस्य व्यापित्वेन स्वावगाहित्वोपपत्तितोऽ-
नवस्थाऽसम्भवात्, अन्येषामव्यापित्वेन स्वावगाहित्वायोगाच्च । २०
न हि किञ्चिद्वस्त्वपरिमाणं वस्तु साधिकरणं दृष्टम्; अन्वादेर्जला-
द्यधिकरणोपलब्धेः । कथमेवं दिक्कालात्मनामाकाशेवगाहो व्यापि-
त्वात्; इत्यप्यसाम्प्रतम्; हेतोरसिद्धेः । तदसिद्धिश्च दिग्द्रव्यस्या-
सत्त्वात्, कालात्मनोश्चासर्वगतद्रव्यत्वेनाग्रे समर्थनात्प्रसिद्धेति ।
ननु तथाप्यमूर्त्तत्वेन कालात्मनोः पाताभावात्कथं तदाधेयता? २५
इत्यप्युक्तम्, अमूर्त्तस्यापि ज्ञानसुखादेरात्मन्याधेयत्वप्रसिद्धेः ।

पतेनामूर्त्तत्वाभाकाशं कस्यचिदधिकरणमित्यपि प्रत्युक्तम्;
अमूर्त्तस्याप्यात्मनो ज्ञानाद्यधिकरणत्वप्रतीतेः । समानसमयवर्ति-
त्वाभिखिलार्थानां नाधाराधेयभावः, अन्यथाकाशादुत्तरकाले
भावस्तेषां स्यात्; इत्यप्यसमीचीनम्; समसमयवर्तिनामप्यात्मा- ३०
मूर्त्तत्वादीनां तद्भावप्रतीतेः । न खलु परेणाप्यत्र पौर्वापरीभावोऽ-

१ परस्मै त्वम् । २ पौद्गलिकत्वाभावाद्भावमनसः । ३ जैनेः । ४ वयं जैनाः ।
५ सकलद्रव्याणां साधारणमात्रकारणमात्रासम् । ६ साधारणकारणमन्तरं ।
७ आकाशाभावे । ८ मुह्यन्मिलयः । ९ जैनापेक्षया । १० आत्मादीनाम् । ११ वैशेषिकेण ।

भीष्टो नित्यत्वविरोधालुपङ्गात् । क्षणविशारदतया निखिलार्थानां
नाधाराधेयभावः, इत्यपि मनोरथमात्रम्, क्षणविशारदत्वस्या-
र्थानां प्रागेव प्रतिषेधात् । 'खे पतत्री' इत्याद्यऽवाधितप्रत्ययाश्च
तद्भावाप्रसिद्धेः । ततः परेषां निरवयवलिङ्गाऽभावाभाकाशद्रव्यस्य
५ प्रसिद्धिः ।

नापि कालद्रव्यस्य । यञ्चोच्यते—कालद्रव्यं च परापरादिप्रत्य-
यादेव लिङ्गात्प्रसिद्धम् । कालद्रव्यस्य च इतरस्माद्भेदे 'कालः' इति
व्यवहारे वा साध्ये स एव लिङ्गम् । तथा हि—काल इतरस्माद्भिद्यते
'काल' इति वा व्यतहर्त्तव्यः, परापरव्यतिकरयौगपद्यायौगपद्यन्धि-
१० रक्षिप्रप्रत्ययलिङ्गत्वात्, यस्तु नेतरस्माद्भिद्यते 'काल' इति वा न
व्यवहियते नासाद्रुकलिङ्गः यथा क्षित्यादिः, तथा च कालः,
तस्मात्तथेति । विशिष्टकार्यतया चैते प्रत्ययाः काले एव प्रतिबद्धाः ।
यद्विशिष्टकार्यं तद्विशिष्टकारणादुत्पद्यते यथा घट इति प्रत्ययाः,
विशिष्टकार्यं च परापरव्यतिकरयौगपद्यायौगपद्यन्धिरक्षिप्रप्रत्यया
१५ इति । परापरयोः सल्लु दिग्देशकृतयोः व्यतिकरो विपर्ययः—यत्रैव
हि दिग्विभागे पितर्युत्पन्नं परत्वं तत्रैव स्थिते पुत्रेऽपरत्वं, यत्र
चापरत्वं तत्रैव स्थिते पितरि परत्वमुत्पद्यमानं दृष्टमिति दिग्देशा-
भ्यामन्यन्निमित्तान्तरं सिद्धम्; निमित्तान्तरमन्तरेण व्यतिकरा-
सम्भवात् । न च परापरादिप्रत्ययस्य आदित्यादिक्रिया द्रव्यं बलि-
२० पलितादिकं वा निमित्तम्; तत्प्रत्ययविलक्षणत्वात्पटादिप्रत्यय-
वत् । तथा च सूत्रम् "अपरस्मिन्परं युगपदयुगपच्चिरं क्षिप्रमिति
काललिङ्गानि" [वैशे० सू० २।२।६] आकाशवच्चास्यापि विभुत्व-
नित्यैकत्वादयो धर्माः प्रतिपत्तव्ये इति ।

अत्रोच्यते—परापरादिप्रत्ययलिङ्गानुमेयः कालः किमेकद्र-
२५ व्यम्, अनेकद्रव्यं वा ? न तावदेकद्रव्यम्; मुख्येतरकालभेदेनास्य
द्वैविध्यात् । न हि समयावलिकादिर्व्यवहारकालो मुख्यकालद्रव्य-
मन्तरेणोपपद्यते यथा मुख्यसत्त्वमन्तरेण कैचिदुपचरितं सत्त्वम् ।

१ आत्मनः । २ सौगतमतमालम्ब्य । ३ आदिपदेन यौगपद्यायौगपद्यन्धिर-
प्रादिग्रहः । ४ नराः । ५ तद्येते प्रत्यया अवशिष्टनिमित्तका भविष्यन्तीत्युक्ते सत्याः ।
६ घटे सत्त्वेव प्रसिद्धाः । ७ कथम् ? तथा हि । ८ प्रत्ययः । ९ सन्निहितदिग्देशे ।
१० कालापेक्षया दूरत्वम् । ११ कालापेक्षया सन्निहितत्वम् । १२ कालद्रव्यम् ।
१३ कालद्रव्यम् विनाऽन्यन्निमित्तं परापरादिप्रत्ययस्य भविष्यतीत्याशङ्क्यामाह ।
१४ प्रत्ययः=प्रतीतिः । १५ जैनादिभिः । १६ जैनाः । १७ व्यवहारः । १८ आदिना
कालनिर्मेयवदिकामुहूर्तप्रहरादिग्रहणम् । १९ मन्त्रादेरस्तित्वम् । २० माणवके ।
२१ अग्नेः ।

स च मुख्यः कालोऽनैकद्रव्यम्, प्रत्याकाशप्रदेशं व्यवहारकालमे-
दान्यथानुपपत्तेः । प्रत्याकाशप्रदेशं विभिन्नो हि व्यवहारकालः
कुल्लेखलङ्घाकाशप्रदेशयोर्विषेसादिभेदान्यथानुपपत्तेः । ततः प्रति-
लोकाकाशप्रदेशं कालस्याणुरूपतया भेदसिद्धिः ।

तदुक्तम्—

“लोयैयासपपसे एकेके जे द्विया इ एकेका ।

रयणाणं रासीविव ते कालाणू मुणेयन्वा ॥ १ ॥”

[द्रव्यसं० गा० २२ (?)]

योगपद्यादिप्रत्ययाविशेषात्तस्यैकत्वम्, इत्यप्यसत्, तत्प्रत्यया-
विशेषासिद्धेः । तेषां परस्परं विशिष्टत्वात्कालस्याप्यतो विशिष्टत्व-१०
सिद्धिः । सहकारिणामेव विशिष्टत्वं न कालस्य, इत्यप्यनुत्तरम्,
स्वरूपमभेदयतां सहकारित्वप्रतिक्षेपात् ।

यदि चास्य निरवयवैकद्रव्यरूपताभ्युपगम्यते कथं तर्ह्यती-
तादिकालव्यवहारः ? स हि किमतीताद्यर्थक्रियासम्बन्धात्,
सतो वा स्यात् ? अतीताद्यर्थक्रियासम्बन्धाच्चेत्, कुतस्तासाम-१५
तीतादित्वम् ? अपरातीताद्यर्थक्रियासम्बन्धाच्चेत्, अनवस्था ।
अतीतादिकालसम्बन्धाच्चेत्, अन्योन्याश्रयः । स्वतस्तस्यातीतादि-
रूपता चायुक्ता, निरंशत्वभेदरूपत्वयोर्विरोधात् ।

योगपद्यादिप्रत्ययाभावश्चैवंवादिनः स्यात्, तथाहि-यत्कार्य-
जातमेकस्मिन्काले कृतं तद्युगपत्कृतमित्युच्यते । कालैकत्वे चास्मि-२०
लकार्याणामेककालोत्पाद्यत्वेनैकदैवोत्पत्तिप्रसङ्गाच्च किञ्चिदयुगप-
त्कृतं स्यात् ।

विरक्षिप्रव्यवहाराभावश्चैवंवादिनः । यत्तत्तु बहुना कालेन
कृतं तच्चिरेण कृतम् । यच्च स्वल्पेन कृतं तत्क्षिप्रं कृतमित्युच्यते ।
तच्चैतदुभयं कालैकत्वे दुर्बटम् ।

२५

१ कालपरमाणुलक्षणम् । २ मुख्यकालद्रव्यानेकत्वायाने । ३ हेतुरसिद्ध इत्युक्ते
सलाह । ४ चन्द्रार्कदिदक्षिणायनोत्तरायणयोः सतोः । ५ लोकाकाशप्रदेशे एकैके
ये सिद्धाः खण्ड एकैके । रत्नानां राशिरिव ते काव्यगवो ज्ञातव्याः । ६ सिद्धे हि
क्रियाणामीमादित्ये तत्सम्बन्धात्कालस्यातीतादित्वसिद्धिसिद्धौ च तत्सम्बन्धात्तासां
तत्तिष्ठिरिति । ७ निरंशस्य कालस्यातीतवर्तमानत्वमविच्छिन्नलक्षणधर्माणां सङ्गावो
न धदवे इति भावः । ८ कार्यसमूहः । ९ कालस्य विलेकत्वादिरूपत्वे । १० अवयव-
पद्याभावे तदपेक्षया जायमानस्य योगपदसाध्यभाव इति भावः ।

प्र० क० मा० ४८

ननु चैकत्वेपि कालस्योपाधिमेदाद्भेदोपपत्तेर्न यौगपद्यादि-
प्रत्ययाभावः । तदुक्तम्—“मणिवत्पाचकवद्भेदोपाधिमेदात्कालभेदः”
[] इति; तदप्युक्तम्; यतोऽत्रोपाधिभेदः
कार्यभेद एव । स च ‘युगपत्कृतम्’ इत्यत्राप्यस्यैवेति किमित्य-
५ युगपत्प्रत्ययो न स्यात् ? अथ क्रमभावी कार्यभेदः कालभेदव्यव-
हारहेतुः । ननु कोस्य क्रमभावः ? युगपदनुत्पादश्चेत्, ‘युगपद-
नुत्पादः’ इत्यस्य भाषितस्य कार्यः ? एकस्मिन्कालेऽनुत्पादः;
सोयमितरेतराश्रयः—यावद्धि कालस्य भेदो न सिद्ध्यति न ताव-
त्कार्याणां भिन्नकालोत्पादलक्षणः क्रमः सिद्ध्यति, यावच्च कार्याणां
१० क्रमभावो न सिद्ध्यति न तावत्कालस्योपाधिमेदाद्भेदः सिद्ध्यतीति ।
ततः प्रतिक्षणं क्षणपर्यार्यः कालो भिन्नस्तत्समुदायात्मको लव-
निमेषादिकालश्च । तथा चैककालमिदं चिरोत्पन्नमनन्तरोत्पन्न-
मित्येवमादिव्यवहारः स्यादुपपन्नो नान्यथा ।

एतेन परापरव्यतिकरः कालैकत्वे प्रत्युक्तः; तथाहि—भूम्यवय-
१५ वैरालोकावयवैर्वा बहुभिरन्तरितं वस्तु विप्रकृष्टं परमिति चोच्यते
स्वल्पैस्त्वन्तरितं सन्निकृष्टमपरमिति च । तथा बहुभिः क्षणैरद्भो-
रात्रादिभिर्वान्तरितं विप्रकृष्टं परमिति चोच्यते स्वल्पैस्त्वन्तरितं
सन्निकृष्टमपरमिति च । बहुवर्त्यभावश्च गुरुत्वपरिमाणौदिवदपेक्षा-
निबन्धनः कालैकत्वे दुर्घट इति ।

२० यौगपद्यादिप्रत्ययाविशेषात् कालस्यैकत्वे च गुरुत्वपरिमाणौ-
देरप्येकत्वप्रसङ्गस्तुल्याक्षेपसमाधानत्वात् । ततो गुरुत्वपरिमाणा-
देरनेकगुणरूपतावत्कालस्यानेकद्रव्यरूपताभ्युपगन्तव्यम् ।

ये तु वास्तवं कालद्रव्यं नाभ्युपगच्छन्ति तेषां परापरयौगपद्या-

१ यथा स्फटिकमणौ पावके च यथाकर्म जपाकुसुमादिच्छादिरादिलक्षणोपाधिमेदाद्भेद-
स्ताया कार्यलक्षणोपाधिमेदाद्भेदः कालस्यापीत्यर्थः; ततश्च व्यतिकरो न स्यादिति भावः ।
२ कालक्रमेणोत्पाद इत्यर्थः । ३ कालस्यैकत्वे यौगपद्याभावो यतः । ४ वसुः ।
५ विषयः । ६ कालस्य । ७ असादयं गुरुराद्युपरिति व्यवहारो वस्तुन धत्तने
दुर्घटो यथा । ८ स्वपरापेक्षा । ९ गुरुत्वादिप्रत्ययाविशेषात् । १० अल्पपरिमाणस्यापि ।
११ गुरुत्वपरिमाणमल्पत्वपरिमाणं च प्रतिपदार्थं भिद्यते इति समानम् । १२ तिलानिरैकद्रव्यरूपत्वे
न्यायानां भूतमविच्छेदमानत्वं दुर्घटमदीतानागतवर्तमानकालभेदाभावात्, सिद्धे हि
वस्त्रेदे तत्सम्बन्धादर्थानां तथा व्यपदेशः सामान्यथातिप्रसङ्गात् । न चास्य तत्सिद्धिर्घटते
तिलानिरैकरूपत्वात् । यदेवंविधं न तत्रादीत्यादिसरूपभेदाः । यथा परमाणौ ।
तिलानिरैकरूपस्य भयङ्गिः परिकल्पितः कालः । १३ भीमांसकसौपत्यविद्याः ।

यौगपद्यचिरक्षिप्रप्रत्ययानामभावः स्यात् । न खलु ते निर्निमित्ताः; कादाचित्कत्वादृष्टादिवत् । नाप्यविशिष्टनिमित्ताः; विशिष्टप्रत्ययत्वात् । न च दिग्गुणजातिनिमित्तास्ते; तज्ज्ञातप्रत्ययवैलक्षण्येनोपपत्तेः । तथा हि—अपरदिग्व्यवस्थितेऽप्रशस्तेऽर्धमजातीये स्थविरपिण्डे 'परोयम्' इति प्रत्ययो दृश्यते । परदिग्व्यवस्थिते चोत्तम-^५जातीये प्रशस्ते युनि पिण्डे 'अपरोयम्' इति प्रत्ययो दृश्यते ।

अथादित्यादिक्रिया तन्निमित्तम्; जन्मतो हि प्रभृत्येकस्य प्राणिन आदित्यवर्तनानि भूयांसीति परत्वमन्यस्य चाल्पीयांसीत्यपरत्वम् । नन्वेवं कथं यौगपद्यादिप्रत्ययप्रादुर्भावः एकस्मिन्नेवादित्यपरिवर्तने सर्वेषामुत्पादात्? तथाव्यपदेशाभावाच्च; ^{१०}'युगपत्कालः' इति हि व्यपदेशो न पुनः 'युगपदादित्यपरिवर्तनम्' इति ।

न च क्रियैव कालः; अस्याः क्रियोरूपतयाऽविशेषतो युगपदादिप्रत्ययाभावानुपपत्तात् । तस्य चोक्तकार्यनिर्वर्तकस्य कालस्य 'क्रिया' इति नामान्तरकरणे नाममात्रं भिद्येत । ^{१५}

न च कर्तृकर्मणी एव यौगपद्यादिप्रत्ययस्य निमित्तम्; यतो यौगपद्यं बहूनां कर्तॄणां कार्ये व्यापारो 'युगपदेते कुर्वन्ति' इति प्रत्ययसमधिगम्यः । बहूनां च कार्याणामात्मैकानामो 'युगपदेतानि कृतानि' इति प्रत्ययसमधिगम्यः । न चोत्र कर्तॄमात्रं कार्यमात्रं चाल्मर्भनमतिप्रसङ्गात् । यत्र हि क्रमेण कार्यं तत्रापि कर्तृकर्मणोः ^{२०}सङ्गावात्स्यादेतद्विज्ञानम्, न चैवम् । यथाऽ(तथाऽ)यौगपद्यप्रत्ययोप्ययुगपदेते कुर्वन्सीति, अयुगपदेतत्कृतमिति नाविशिष्टं कर्तृ-

१ किं तु कालकृष्णकारणोत्पत्त्या इत्यर्थः । २ अविशिष्ट—साधारणम् । ३ पर-प्रत्ययः, अपरप्रत्यय इत्यादिरूपेण । ४ परापरदिप्रत्ययानाम् । ५ निकटदिग् । ६ गुणायुक्त्या । ७ भातज्ञादी । ८ असद्रुणसविज्ञानोव वसः, यौगपद्यमादित्येषाम-यौगपद्यादीनां ते यौगपद्यादय इति, तेनायौगपद्यादिप्रत्ययप्रादुर्भावः कथमित्यर्थः संपन्नः । ९ युगपदादित्यपरिवर्तनमिति । १० अमुना हेतुना यौगपद्यस्याभावः कुतः । ११ कालम्यतिरिक्तस्य निमित्तस्य यौगपद्यादिप्रत्यये विचार्यमाणस्यानुपपन्नमानत्वाच्च-दित्यपरिवर्तनं सात्क्रियाविशेषो वा? न तावदादित्यपरिवर्तनेकस्मिन्नप्यादित्यपरिवर्तने सर्वेषामुत्पादादिति, अस्य परिवर्तनं नेकप्रादक्षिण्येन परिग्रहणमदोरात्रमभिधीयते, तस्मिन्नेकस्मिन्नपि यौगपद्यादिप्रतीतिनिवन्मृतापीनामुत्पादः प्रतीयते एव तथा व्यपदेशा-भावाच्चेति । १२ क्रिया कालो भविष्यतीत्याह । १३ स्वरूपरूपतया यौगपद्यादिप्रत्ययो, न पुनः क्रियारूपतया । १४ नेदाभावः । १५ तर्हि कर्तृकर्मणी यौगपद्यादिप्रत्ययस्य निमित्तं भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । १६ यौगपद्यम् । १७ यौगपद्यप्रत्यये । १८ निवयः, कारणमित्यर्थः ।

कर्ममात्रमालम्ब्यतेऽतिप्रसङ्गादेव । अतस्तद्विशेषणं कालोऽभ्युपगन्तव्यः । कथमन्यथा चिरक्षिप्रव्यवहारोपि स्यात्? एक एव हि कर्त्ता किञ्चित्कार्यं चिरेण करोति व्यासङ्गादनर्थित्वाद्वा, किञ्चित्तु क्षिप्रमर्थितया । तत्र 'चिरेण कृतं क्षिप्रं कृतम्' इति ५ प्रत्ययौ विशिष्टत्वाद्विशिष्टं निमित्तमाक्षिपत इति कालसिद्धिः ।

लोकव्यवहाराच्च; प्रतीयन्ते हि प्रतिनियत एव काले प्रतिनियता वनरूपतयः पुण्यन्तीत्यादिव्यवहारं कुर्वन्तो व्यवहारिणः । यथा वसन्तसमये एव पाटलादिकुसुमानामुद्भवा न कालान्तरे । इत्येवं कार्यान्तरेष्वप्यभ्यूह्यम् 'प्रसवनकालमपेक्षते' इति व्यव-
१० हारात् । समयमुद्भूतयामाहोरात्रार्द्धमासवैयनसंवत्सरादिव्यवहाराच्च तत्सिद्धिः । तत्र परपरिकल्पितं कालद्रव्यमपि घटते ।

नापि दिग्द्रव्यम्; तत्सद्भावे प्रमाणाभावात् । यच्च दिशः सद्भावे प्रमाणमुक्तम्—“मूर्तेष्वेव द्रव्येषु मूर्त्तद्रव्यमवधिं कृत्वेवमतः पूर्वेण दक्षिणेन पश्चिमेनोत्तरेण पूर्वदक्षिणेन दक्षिणापरे-
१५ णाऽपरोत्तरेणोत्तरपूर्वेणाधस्तादुपरिष्ठादित्यसी दश प्रत्यया यतो भवन्ति सा दिग्” [प्रश० भा० पृ० ६६] इति । तथा च सूत्रम्—“अत ईदमिति यतस्तद्दिशो लिङ्गम्” [वैश० सू० २।२।१०] तैसा च दिग्द्रव्यमितरेभ्यो भिद्यते दिगिति व्यवहर्त्तव्यम्, पूर्वादिप्रत्ययलिङ्गत्वात्, यत्तु न तथा न तत्पूर्वादि-
२० प्रत्ययलिङ्गम् यथा क्षित्यादि, तथा चेदम्, तस्मात्तथेति । न चैते प्रत्यया निर्निमित्ताः; कादाचित्कत्वात् । नान्यविशिष्टनिमित्ताः; विशिष्टप्रत्ययत्वाद्गुण्डीतिप्रत्ययवत् । न चान्योन्यापेक्षमूर्त्तद्रव्यनिमित्ताः; परस्परार्थ्यत्वेनोभयप्रत्ययाभावाजुषकात् । ततोऽन्यनिमित्तोत्पाद्यत्वासम्भवादेते दिश एवांजुमापकाः । प्रयोगः—
२५ यदेतत्पूर्वापरदिशानं तन्मूर्त्तद्रव्यव्यतिरिक्तपदार्थनिवन्धनं तस्यत्ययविलक्षणत्वात्सुखादिप्रत्ययवत् । निमुत्त्वैकत्वनित्यत्वादयश्चास्या घर्माः कालवदवगन्तव्याः । तस्याश्चैकत्वेपि प्राच्यादिभेदव्यवहारो भगवतः सवितुर्महं प्रदक्षिणमावर्त्तमानस्य लोकेपालगृहीतदिक्प्रदेशैः संयोगाद्घटते ।

१ जुगपदेते कुर्वन्ति जुगपदेतानि कृतानीति तयोः कर्त्तृकर्मणोः । २ पुरुषाः । ३ पुत्रोत्पत्त्यादिलक्षणेपु । ४ कानं भवतीति शेषः । ५ लिङ्गसिद्धौ । ६ वसः । ७ पदादिभत् । ८ साधारणाऽऽकाशादिकारणका न भवन्तीति भावः । ९ एकस्य वस्तुनः पूर्वत्वसिद्धौ सत्तां तदपेक्षया इतरस्यापरत्वसिद्धिरितरस्यापरत्वसिद्धौ सत्तां च तदपेक्षयाऽपरत्वसिद्धिः प्रथमस्य पूर्वत्वसिद्धिः इति । १० नान्यत्वाकाशादेः । ११ अन्नादि ।

तदप्यसमीचीनम्, प्रोक्तप्रत्ययानामाकाशहेतुकत्वैनाकाशादि-
शोऽर्थान्तरत्वासिद्धेः । तत्प्रदेशश्रेणिष्वेव ह्यादित्योदयादिवशात्प्रा-
च्यादिदिग्व्यवहारोपपत्तेर्न तेषां निर्हेतुकत्वं नाप्यविशिष्टपदार्थ-
हेतुकत्वम् । तथाभूतप्राच्यादिदिक्संबन्धाच्च मूर्च्छद्रव्येषु पूर्वापरा-
दिप्रत्ययविशेषस्योत्पत्तेर्न परस्परापेक्षया मूर्च्छद्रव्याण्येव तद्धेतवो ५
येनैकतरस्य पूर्वत्वासिद्धावेन्यतरस्यापरत्वासिद्धिः, तदसिद्धौ
चैकतरस्य पूर्वत्वायोगादितरेतराश्रयत्वेनोभयाभावः स्यात् ।

नन्वेवमाकाशप्रदेशश्रेणिष्वपि कुतस्तत्सिद्धिः ? स्वरूपत एव
तत्सिद्धौ तस्य परावृत्त्यभावप्रसङ्गः, अन्योन्यापेक्षया तत्सिद्धौ
अन्योन्याश्रयणादुभयाभावः, तदेतद्विशेषप्रदेशेष्वपि पूर्वापरादि-१०
प्रत्ययोत्पत्तौ समानम् । यथैव हि मूर्च्छद्रव्यमवधिं कृत्वा मूर्च्छेव
'इवमतः पूर्वेण' इत्यादिप्रत्यया दिग्द्रव्यहेतुकास्तथा दिग्मेदमवधिं
कृत्वा दिग्मेदेष्वेव 'इयमेतः पूर्वा' इत्यादिप्रत्यया द्रव्यान्तरहेतुकाः
सन्तु विशिष्टप्रत्ययत्वाविशेषात्, तथा चानर्हस्या । परस्परापेक्षया
तत्सिद्धावितरेतराश्रयणादुभयाभावः । स्वरूपतस्तत्प्रत्ययप्रसिद्धौ १५
तेनैवानेकान्तात् कुतो दिग्द्रव्यसिद्धिस्तत्प्रत्ययपरावृत्त्यभावश्चा-
नुषज्यः ।

सवितुर्मेवं प्रदक्षिणमावर्त्तमानस्येत्यादिन्यायेन दिग्द्रव्ये प्राच्या-
दिव्यवहारोपपत्तौ तैत्प्रदेशपङ्क्तिष्वप्यत एव तैद्भववहारोपपत्ते-
रलं दिग्द्रव्यकल्पनया, देशद्रव्यस्यापि कल्पनाप्रसङ्गात् 'अयमतः २०
पूर्वादेशः' इत्यादिप्रत्ययस्य देशद्रव्यमन्तरेणानुपपत्तेः । पृथिव्यादि-
रेव देशद्रव्यम्; इत्यसत्; तत्र पृथिव्यादिप्रत्ययोत्पत्तेः । पूर्वादि-

- १ आकाशसैकत्वादिव्यवहारः क्वं सादित्वा । २ आकाशप्रदेशलक्षण ।
३ पूर्वादिः । ४ पश्चिमादिः । ५ मूर्च्छद्रव्येषु पूर्वापरादिप्रत्ययविशेषोत्पत्तिप्रकारेण ।
६ तस्य=पूर्वापरत्वस्य । ७ पूर्वापरादिः । ८ परावृत्तिः=निवृत्तिः । ९ न च तथा
पूर्वादिदिशामपि कस्यचिदेशस्यापेक्षया पश्चिमादिव्यवदेशोक्तिः । १० पूर्वापेक्षयाऽपरः,
अपरापेक्षया पूर्व इति । ११ चोद्यम् । १२ भवन्मते । १३ दिक् । १४ दिशः
सकशात् । १५ जैनमते । १६ अन्यदिग्द्रव्यापेक्षयाऽनवस्था तस्मात् तत्प्रत्यय-
हेतुत्वस्यापरदिग्द्रव्यहेतुत्वप्रसङ्गात् । १७ दिग्मेदेषु दिग्द्रव्यमन्तरिक्तद्रव्यान्तराभावेति
पूर्वापरादिप्रत्ययस्य सत्तो नावमानत्वात् । १८ पूर्वापरेति । १९ पूर्वापरादिप्रत्ययेन ।
२० तत्प्रत्ययविकल्पनादित्यस्य हेतोः । २१ दिग्द्रव्यं पूर्वापरादिप्रत्ययस्य कारणं
न भवतीति भावः । २२ पूर्वापर । २३ तस्य=आकाशस्य । २४ प्राच्यादि ।
२५ तथा च नव द्रव्याणीति द्रव्यसंख्यान्यापातः स्यात् । २६ तस्य पृथिव्यादि-
प्रत्ययहेतुत्वेनायमतः पूर्वा देश इति प्रत्ययहेतुत्वाऽनुपपत्तेः ।

दिकृतः पृथिव्यादिषु पूर्वदेशादिप्रत्ययश्चेत्; तर्हि पूर्वाद्याकाश-
कृतस्तत्रैव पूर्वादिकप्रत्ययोस्त्वऽलं दिक्कल्पनाप्रयासेन ।

नन्वेवमादित्योदयादिवशादेवाकाशप्रदेशपङ्क्तिष्विव पृथिव्या-
दिष्वपि पूर्वापरादिप्रत्ययसिद्धेराकाशप्रदेशश्रेणिकल्पनाप्यनर्थिका
५ भवत्विति चेत्; न; 'पूर्वस्यां दिशि पृथिव्यादयः' इत्याद्याधारा-
धेयव्यवहारोपलम्भात् पृथिव्याद्यधिकरणभूतायास्तत्प्रदेशपङ्क्तेः
परिकल्पनस्य सार्थकत्वात् । आकाशस्य च प्रमाणान्तरैः
प्रसाधितत्वात् । तत्र परपरिकल्पितं दिग्द्रव्यमप्युपपद्यते ।

नाप्यात्मद्रव्यम् । तद्धि सर्वगतत्वादिधर्मोपेतं परैरभ्युपेयते ।
१० न चास्य तदुपेतत्वमुपपद्यते; प्रत्यक्षविरोधात् । प्रत्यक्षेण ह्यात्मा
'सुख्यहं दुःख्यहं घटादिकमहं वेदि' इत्यहमहमिकया सदेह
एव सुखादिस्वभावतया प्रतीयते, न देहान्तरे परसम्बन्धनि,
नाप्यन्तराले । इतरथा सर्वस्य सर्वत्र तथा प्रतीतिरिति सर्व-
दर्शित्वं भोजनादिव्यवहारसङ्करश्च स्यात् ।

१५ अनुमानविरोधाच्चास्य तद्धर्मोपेतत्वायोगः; तथाहि-नात्मा
परममहापरिमाणाधिकरणो द्रव्यान्तराऽसाधारणसामान्यवत्त्वे
सत्यनेकत्वाद्वटादिवत् । 'अनेकत्वात्' इत्युच्यमाने हि सामान्ये-
नानेकान्तः, तत्परिहारार्थं 'सामान्यवत्त्वे सति' इति विशेषणम् ।
तथाकाशादिना व्यभिचारः, तत्परिहारार्थं 'द्रव्यान्तरासाधारण-
२० सामान्यवत्त्वे सति' इत्युच्यते । एकसौख्यं द्रव्यादर्थद्रव्यं
द्रव्यान्तरम्, तदसाधारणसामान्यवत्त्वे सत्यनेकत्वमाकाशादौ
नास्तीति । अत एव परममहापरिमाणलक्षणगुणेनापि नानेकान्तः ।

तथा, नात्मा तत्परिमाणाधिकरणो दिक्कालाकाशान्यत्वे सति
द्रव्यत्वाद्वटादिवत् । न सामान्येन परममहापरिमाणेन घने-
२५ कान्तः, तयोरद्रव्यत्वात् । नापि दिगादिना, 'तदन्यत्वे सति'
इति विशेषणात् ।

तथा, नात्मा तत्परिमाणाधिकरणः क्रियावत्त्वाद्वाणादिवत् ।
न चेदमसिद्धम्; 'योजनमहमागतः क्रोशं वा' इत्यादिप्रतीति-
तस्तत्सिद्धेः । न च मनः शरीरं वागतमित्यभिधातव्यम्; तस्याहं-

१ व्योम । २ निखिलद्रव्यावगाहान्यथानुपपत्तेः । ३ आत्मनः सर्वैरात्मभिः सम्ब-
न्धात् । ४ गोत्वाश्वत्वमहिपत्वादिना । ५ सामान्यवत्त्वादित्युच्यमाने । ६ यतो द्रव्यत्वं
सत्त्वं वा सामान्यमाकाशादिषु । ७ आत्मलक्षणात् । ८ आकाशश्च । ९ गुणवत्सामा-
न्यसद्भावाद्नेकत्वाभावाच्च । १० तत्-परममहत् ।

प्रत्ययाऽवेद्यत्वाद्, अन्यथा चार्वाकमतप्रसङ्गः स्यात् । प्रसाध-
यिष्यते चाग्रे विस्तरतोऽस्य क्रियावत्त्वमित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

तथा, आत्माऽणुपरममद्वयपरिमाणानधिकरणः, चेतनत्वात्,
ये तु तत्परिमाणाधिकरणा न ते चेतनाः यथाकाशपरमाण्वा-
दयः, चेतनश्चात्मा, तस्माच्च तत्परिमाणाधिकरण इति । ५

ननु चात्मा परममद्वयपरिमाणाधिकरणो न भवतीति प्रति-
ष्ठाऽनुमानवाधितः । तच्चानुमानम्—आत्मा व्यापकोऽणुपरिमाणा-
नधिकरणत्वे सति नित्यद्रव्यत्वादाकाशवत् । अणुपरिमाणान-
धिकरणोऽसौ अस्मदौदिप्रत्यक्षविशेषगुणाधिकरणत्वाद्वदादिवत् ।
तथा नित्यद्रव्यमात्माऽस्पर्शवद्द्रव्यत्वादाकाशवदेवेति । १०

अत्रोच्यते—अणुपरिमाणप्रतिषेधोऽत्र पर्युदासः, प्रसज्यो वामि-
प्रेतः ? यदि पर्युदासः, तदासौ भावान्तरस्वीकारेण प्रवर्त्तते ।
भावान्तरं च किं परममद्वयपरिमाणम्, अवान्तरपरिमाणं वा
स्यात् ? प्रथमपक्षे साध्याविशिष्टत्वं हेतुविशेषणस्य । यथा
'नित्यः' शब्दोऽनित्यत्वे सति बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात् इति । १५
द्वितीयपक्षे तु विरुद्धत्वम्, यथा 'नित्यः' शब्दोऽनित्यत्वे सति
बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात् इति ।

प्रसज्यपक्षेऽप्यसिद्धत्वम्, तुच्छस्वभावभावस्य प्रमाणाविषयत्वेन
प्रतिपादनात् । सिद्धौ वा किमसौ साध्यस्यै स्वभावः, कार्यं वा ?
यदि स्वभावः, तर्हि साध्यस्यापि तद्वत्तुच्छरूपतानुषङ्गः । अथ २०
कार्यम्, तच्च, तुच्छस्वभावभावस्य कार्यत्वायोगात् । कार्यत्वं हि
किं स्वकारणसत्तासमवायः, कृतमिति बुद्धिविषयत्वं वा ? न
तावदाद्यः पक्षः, अभावस्य स्वकारणसत्तासमवायानभ्युपगमात्,
अन्यथा भावरूपतैवावस्य स्यात् । नापि द्वितीयः, तुच्छस्वभावा-
भावस्य तद्विषयत्वासम्भवात् । तस्य हि प्रमाणागोचरत्वे कथं २५
कृतबुद्धिविषयत्वं सम्भवेत् ? अनैकान्तिकं चैतत्, खननोत्सेच-
नानन्तरमकार्येऽप्याकाशे कृतबुद्धिविषयत्वसम्भवात् ।

१ अत्रैवात्मसर्वगतत्वादितिराकरणे । २ काष्ठालवापदिष्टेन हेतुना । ३ परमाणु-
मिरनेकान्तरपरिहारार्थमेतत्, परमाणुषु नित्यत्वमसि व्यापकत्वं च नास्तीति भावः ।
४ हेतोर्विशेषणसमर्थनार्थमेतत् । ५ बोधिसत्त्वविशेषगुणाधिकारैः परमाणुमिर्व्यमि-
चारस्तत्परिहारार्थमस्मदादिपदम् । ६ प्रलम्बाच्च ते विशेषगुणाच्च तेषामधिकरणम् ।
७ हेतोर्विशेष्यदलसमर्थनार्थम् । ८ क्रियाऽनेकान्तरपरिहारार्थं द्रव्येति । ९ हेतो-
र्विशेषणं निरसति जैनः । १० साध्यसमत्वम्, महापरिमाणत्वायै हि व्यापकत्वम्,
यस्य सति आत्मा व्यापकः व्यापकत्वादित्यापार्तं महापरिमाणव्यापकत्वयोः समानार्थ-
त्वात् । ११ व्यापकत्वविशिष्टसात्मनः ।

नित्यद्रव्यत्वं च किं कथञ्चित्, सर्वथा वा विवक्षितम् ? कथञ्चिच्चेत्, घटादिनानेकान्तः, तस्याणुपरिमाणानधिकरणत्वे कथञ्चिन्नित्यद्रव्यत्वे च सत्यपि व्यापित्वाभावात् । सर्वथा चेत्, असिद्धत्वम्, सर्वथा नित्यस्य वस्तुनोऽर्थक्रियाकारित्वेनाश्ववि-
 ५ षाणप्रत्ययत्वप्रतिपादनात् । अस्मादादिप्रत्यक्षविशेषगुणाधिकरण-
 त्वाच्चाणुपरिमाणप्रतिषेधमात्रमेव स्याद् घटादिवत्, तस्य चेष्ट-
 त्वात्सिद्धसाध्यता । अस्पर्शवद्रव्यत्वाच्चात्मनो यदि कथञ्चि-
 न्नित्यत्वं साध्यते; तदा सिद्धसाध्यता । अथ सर्वथा; तर्हि हेतो-
 रनन्वयैवमाकाशादीनामपि सर्वथा नित्यत्वस्य प्रतिषिद्धत्वात् ।

- १० ननु 'देहान्तरे परसम्बन्धिन्यन्तराले चात्मा न प्रतीयते'
 इत्ययुक्तमुक्तम्, अनुमानाच्चत्रास्य सङ्गावप्रतीतेः; तथाहि-देव-
 दत्ताङ्गनाथकं देवदत्तगुणपूर्वकं कार्यत्वे तदुपकारकत्वाङ्गासा-
 दिवत् । कार्यदेशे च सन्निहितं कारणं तज्जन्मनि व्याप्रियते
 नान्यथा, अतस्तदङ्गादिकार्यप्रादुर्भावदेशे तत्कारणवत्तदुप-
 १५ सिद्धिः । यत्र च गुणाः प्रतीयन्ते तत्र तदुपपन्नानुमीयते एव,
 तमन्तरेण तेषामसम्भवात्; इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतो देवदत्ता-
 ङ्गनाथङ्गादिकार्यस्य कारणत्वेनाभिप्रेता ज्ञानदर्शनादयो देवदत्ता-
 त्मगुणाः, धर्माधर्मौ वा ? न तावज्ज्ञानदर्शनसुखादयः स्वसंवेदन-
 स्वभावास्तज्जन्मनि व्याप्रियमाणाः प्रतीयन्ते । वीर्यं तु शक्तिः,
 २० सापि तदेह एवानुमीयते, तत्रैव तर्हि भूतक्रियायाः प्रतीतेः ।
 तज्ज्ञानादेस्तेह एव तत्कार्यकारणविमुखस्याध्यक्षादिनां प्रतीतेः
 तद्वाधितकर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्तत्वेन कालात्ययापदिष्टः 'कार्यत्वे
 सति तदुपकारकत्वात्' इति हेतुः ।

अथ धर्माधर्मौ; तदङ्गादिकार्यं तन्निमित्तं मस्माभिरपीक्यते एव ।
 २५ तदात्मगुणत्वं तु तयोरसिद्धम्; तथाहि-न धर्माधर्मौ आत्मगुणौ
 अचेतनत्वाच्छब्दादिवत् । न सुखादिना व्यभिचारः; अत्र हेतो-
 रवर्चनात्, तद्विरुद्धेन स्वसंवेदनलक्षणचैतन्येनास्याऽव्याप्तत्वा-
 साधनात् । नाप्यसिद्धता; अचेतनौ तौ स्वग्रहणविधुरत्वात्पट्टा-
 दिवत् । न च बुद्ध्यास्य व्यभिचारः; अस्याः स्वग्रहणात्मकत्व-
 ३० प्रसाधनात् । प्रसाधितं च पौद्गलिकत्वं कर्मणां सर्वज्ञसिद्धिः

- १ हेतोर्विशेषं निरसति । २ न तु परमपक्षापरिमाणमवान्तरपरिमाणं वा सिध्येत् ।
 ३ तयाविषयाभ्येन व्याप्तस्य हेतोर्दृष्टान्ते सत्त्वं नास्तीति भावः । ४ महेष्टरेणाने-
 कान्तपरिहारार्थमेतत् । ५ व्याप्तादिना व्यभिचारपरिहारार्थं तदुपकारकेति । ६ लिङ्ग-
 शापकम् । ७ भारनादादिकायाः । ८ देवदत्ताङ्गनाथङ्गादि । ९ वीर्यानुमान ।
 १० पक्ष । ११ वसः । १२ धर्माधर्मरूपाणाम् ।

प्रस्तावे तदलमतिप्रसङ्गेन । तदेवं धर्माधर्मयोस्तदात्मगुणत्व-
निषेधात् तन्निषेधानुमानवाधितमेतत्-‘देवदत्ताङ्गनाद्यङ्गं देवदत्त-
गुणपूर्वकम्’ इति ।

अस्तु वा तयोर्गुणत्वम्; तथापि न तदङ्गनाङ्गादिप्रादुर्भावदेशे
तत्सङ्गावसिद्धिः । न खलु सर्वे कारणं कार्यदेशे सदेव तज्जन्मनि ५
व्याप्रियते, अङ्गनतिलकमन्त्राऽयस्कान्तावेराकृत्यमाणाङ्गनादि-
देशेऽसतोप्याकर्षणादिकार्यकर्तृत्वोपलम्भात् । ‘कार्यत्वे सति’
इति च विशेषणमनर्थकम्; यदि हि तद्गुणपूर्वकत्वाभावेऽपि तदुप-
कारकत्वं दृष्टं स्यात् तदा ‘कार्यत्वे सति’ इति विशेषणं शुभ्येत,
‘सति सम्भवे व्यभिचारे च विशेषणमुपादीयमानमर्थवद्भवति’ १०
इति न्यायात् । कालेश्वरादौ दृष्टमिति चेत्; तर्हि कालेश्वरादिक-
मतद्गुणपूर्वकमपि यदि तदुपकारकम् कार्यमपि किञ्चिदन्यपूर्वक-
मपि तदुपकारकं भविष्यतीति सन्दिग्धविषयव्यावृत्तिकत्वादैनै-
कान्तिको हेतुः, कश्चित्सर्वज्ञत्वाभावे साध्ये वागादिष्वत् । न च
नित्यैकत्वभावात्कालेश्वरादेः कस्यचिदुपकारः सम्भवतीत्युक्तम् । १५

न च (ननु च) तद्गुणशरीरप्रध्वंसभावोऽहेतुपकारकोऽस्ति तस्मि-
न्सति सुखावासभ्रमणादिभावादतः सोऽपि तद्गुणपूर्वकः स्यात्,
तथा च कार्यत्वासम्भवेन सविशेषणस्य हेतोरवर्त्तमानाङ्गाणा-
सिद्धौ हेतुः । प्रत्युक्तं चाभावस्यानन्तरमेव कार्यत्वम् । अथाऽत-
द्गुणपूर्वकः; अन्येदप्यतद्गुणपूर्वकमपि तदुपकारकं किन्न स्यात् ? २०

साध्यविकलं चेदं निदर्शनं ग्रास्तादिवदिति । तत्र ह्यात्मनः को
गुणो धर्मादिः, प्रयत्नो वा स्यात् ? धर्मादिश्चेत्, साध्यवत्प्रसङ्गः ।
प्रयत्नश्चेत्, कोऽयं प्रयत्नो नाम ? आत्मनः तदवयवानां वा हस्ता-
धवयवप्रविष्टानां परिस्पन्दः; स तर्हि चलनलक्षणा क्रिया, कथं
गुणः ? अन्यथा गमनादेरपि गुणत्वानुपपत्त्यात्क्रियावात्तोच्छेदः । २५
तथा सायुकम्-क्रियावत्त्वं द्रव्यलक्षणम् ।

यदप्युक्तम्-‘अदृष्टं स्यान्नयसंयुक्ते आधर्म्यान्तरे कर्मारभते

१ तत्तत्त्वेतत्तत्त्वं कर्मणाम् । २ कर्मणा पौद्गलिकत्वसमर्थनम् । ३ आदिना
लोहादिदेशे । ४ हेतोर्विषये वृत्तिनिवृत्त्यर्थं हेतौ विशेषणं योजयन्त्याचार्या इति
वचनात् । ५ विषये । ६ कुत्रापिनिदर्शने । ७ विशेष्यस्य । ८ हेतोः । ९ अकार्य-
रूपे । १० अकार्यत्वे सति तदुपकारकत्वम् । ११ तस्य=देवदत्तादेः । १२ अभावस्य
कार्यत्वासम्भवेन । १३ अनुपरिमाणानविकरणत्वस्य प्रत्ययपक्षे । १४ देवदत्ताङ्गना-
पक्षमपि । १५ साध्यमसिद्धं यथा तथा धर्मादिगुणत्वमप्यसिद्धम् । १६ स्वाभावः=
आत्मा । १७ दीपान्तरवासिपदाद्यै ।

एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वात्प्रयत्नवत् । न चास्य क्रिया-
हेतुत्वमसिद्धम् ; तथाहि-अग्निरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्यक्पवनमणु-
मनसोश्चाद्यं कर्म देवदत्तविशेषगुणकारितं कार्यत्वे सति तदुप-
कारकत्वात् पाण्यादिपरिस्पन्दवत् । नाप्येकद्रव्यत्वम् ; तथाहि-
५ एकद्रव्यमदृष्टं विशेषगुणत्वाच्छब्दवत् । 'एकद्रव्यगुणत्वात्' इत्यु-
च्यमाने रूपादिभिर्यभिचारः, तन्निवृत्त्यर्थं 'क्रियाहेतुगुणत्वात्'
इति विशेषणम् । 'क्रियाहेतुगुणत्वात्' इत्युच्यमाने हस्तमुसल-
संयोगेन स्वाश्रयासंयुक्तस्तम्भादिक्रियाहेतुनानेकान्तः, तन्निवृत्त्य-
र्थम् 'एकद्रव्यत्वे सति' इति । 'एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुत्वात्'
१० इत्युच्यमाने स्वाश्रयासंयुक्तलोहादिक्रियाहेतुनाऽयस्कान्तेनाने-
कान्तः, तत्परिहारार्थं 'गुणत्वात्' इत्युक्तम् ।

तदेतद्व्यविचारितरमणीयम् ; अदृष्टस्य गुणत्वप्रतिषेधात्,
अतो विशेष्यासिद्धो हेतुः । विशेषणासिद्धश्च एकद्रव्यत्वप्र-
सिद्धेः । तद्धि किमेकस्मिन्द्रव्ये संयुक्तत्वात्, समवायेन वर्त्तमा-
१५ नात्, अन्यतो वा स्यात् ? न तावत्संयुक्तत्वात्, संयोगस्य गुणत्वेन
द्रव्याश्रयत्वात्, अदृष्टस्य चाद्रव्यत्वात् । अन्यथा गुणवत्त्वेनास्य
द्रव्यत्वानुपपन्नात् 'क्रियाहेतुगुणत्वात्' इत्येतद्विघटते । समवायेन
वर्त्तनं च समवाये सिद्धे सिद्धेत्, स चासिद्धः, अग्रे निषेधात् ।
तृतीयपक्षस्त्वनभ्युपगमादेव न युक्तः ।

२० क्रियाहेतुत्वं चास्याऽनुपपन्नम् । तथा हि-देवदत्तशरीरसंयुक्ता-
त्मप्रदेशे वर्त्तमानमदृष्टं द्वीपान्तरवर्त्तिषु मणिमुकाफलप्रवालादिषु
देवदत्तं प्रत्युपसर्पणवत्सु क्रियाहेतुः, उत द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्यसं-
युक्तात्मप्रदेशे, किं वा सर्वत्र ? तत्रापक्षस्यानभ्युपगम एव
श्रयान्, अतिव्यवहितत्वेन द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्यैस्तस्यानभिसम्बन्धेन
२५ तत्र क्रियाहेतुत्वायोगात् । ननु स्वाश्रयसंयोगसम्बन्धसंस्मवाचे-
र्गमनमिर्लम्बन्धोऽसिद्धः, अमुमेव ह्यात्मानमाश्रित्यादृष्टं वर्त्तते,
तेन संयुक्तानि सर्वाण्यप्याकृष्यमाणद्रव्याणि, इत्यप्युक्तम् । तस्य

१ एकद्रव्यमात्मा, वसः । २ यसः । ३ आत्मनसोः सर्वथा भेदात् । ४ अणु-
मनसोः शरीरोत्पत्तिदेशं प्रति गमनक्रिया । ५ अतिक्रमिति संबन्धः । ६ शुद्ध-
लक्षणैकद्रव्यं कर्षं वतः । ७ क्रिया=इननलक्षणा । ८ हस्तमुसलद्रव्यद्वयसद्भावात् ।
उल्लङ्घने धान्यादिके खण्ड्यमाने सति दूरतोऽसंयुक्तस्तम्भादिः पततीति भावः ।
९ स्वाश्रयो=भूम्यादि । १० क्रिया=आकर्षणम् । ११ भूम्यादौ स्थितोऽयस्कान्त
कर्षस्थितमसंयुक्तं लोहादिकमाकर्षतीति भावः । १२ परस्य त्वम् । १३ तस्यादृष्ट-
साश्रय आत्मा तेन संयोगः । १४ अदृष्टस्य । १५ द्रव्याणां । १६ अदृष्टेन
सह । १७ कथम् ? तथा हि ।

सर्वत्राविशेषेण सर्वस्याकर्षणानुपपत्तात् । अथ यद्वहेन यन्नान्यते
तद्वहेन तदेवाकृष्यते न सर्वम् ; तर्हि देवदत्तशरीरारम्भकार्णा
परमाणूनां नित्यत्वेन तद्वहेनान्यत्वात् कथं तद्वहेनाकर्षणम् ?
तथाप्याकर्षणेऽतिप्रसङ्गः । तच्चाद्यः पक्षो युक्तः ।

नापि द्वितीयः ; तथाहि-यथा वायुः स्वयं देवदत्तं प्रत्युपसर्पण-५
वानन्येषां गुणादीनां तं प्रत्युपसर्पणहेतुस्तथाऽदृष्टमपि तं प्रत्युप-
सर्पत्स्वयमन्येषां तं प्रत्युपसर्पतां हेतुः, द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्यसंयु-
क्तात्मप्रदेशस्थमेव वा ? प्रथमपक्षे स्वयमेवादृष्टं तं प्रत्युपसर्पति,
अदृष्टान्तराद्वा ? स्वयमेवास्त्य तं प्रत्युपसर्पणे द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्या-
णामपि तथैव तत् इत्यदृष्टपरिकल्पनमनर्थकम् । 'यदेवदत्तं प्रत्यु-१०
पसर्पति तदेवदत्तगुणारूढं तं प्रत्युपसर्पणात्' इति हेतुश्चानैका-
न्तिकः स्यात् । वायुवच्चादृष्टस्य सक्रियत्वम् गुणत्वं वाधेत । शब्द-
वच्चापरापरस्योत्पत्तौ अपरमदृष्टं निमित्तकारणं बाध्यम्, तत्राप्य-
परमित्यनवस्था । अन्यथा शब्देऽप्यदृष्टस्य निमित्तत्वकल्पना न
स्यात् । अदृष्टान्तरात्तस्य तं प्रत्युपसर्पणे तद्व्यवहान्तरं तं प्रत्युप-१५
सर्पत्यदृष्टान्तरात्तदपि तदन्तरादिति तद्व्यवस्थामनवस्थानम् ।

अथ द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्यसंयुक्तात्मप्रदेशस्थमेव तत्तेषां तं प्रत्यु-
पसर्पणहेतुः न ; अन्यत्र प्रयत्नादावात्मगुणे तथानन्युपगमात् । न
तत्र प्रयत्नो आसादिसंयुक्तात्मप्रदेशस्य एव इत्सादिसञ्चलनहेतु-
प्रासादिकं देवदत्तसुखं प्रापयति, अन्तरालप्रयत्नवैफल्यप्रसङ्गात् । २०

ननु प्रयत्नस्य विचित्रतोपलभ्यते, कश्चिदि प्रयत्नः स्वयम-
परापरदेशवानर्थेन क्रियाहेतुर्यथानन्तरोदितः । अन्यस्मान्यथा
यथा शरासनाव्यासंपदसंयुक्तात्मप्रदेशस्य एव शरीरा(शरा)
दीनां लक्ष्यप्रदेशप्राप्तिक्रियाहेतुरिति । सेवं विचित्रता एकद्रव्याणां
क्रियाहेतुगुणानां स्वाश्रयसंयुक्तार्संयुक्तद्रव्यक्रियाहेतुत्वेन किञ्चे-२५
त्यते विचित्रशक्तित्वाद्भावानाम् ? इत्यते हि आमकास्यस्याप-
स्कान्तस्य स्पर्शो गुण एकद्रव्यः स्वाश्रयसंयुक्तलोहद्रव्यक्रियाहेतुः,
आकर्षकास्यस्य तु स्वाश्रयासंयुक्तलोहद्रव्यक्रियाहेतुरिति ।

१ अनाकृष्यमाणेभ्यः । २ संयोगस्य । ३ सर्वस्यावार्त्तन्यप्रसङ्गः । ४ लघुपु-
सर्पणप्रहेन । ५ शब्दवदपरापरदृष्टसंयोगोः कर्त्तुं सक्रियत्वमिहाद्युपायमाह ।
६ 'इति चैव' अत्युपरिग्रहोक्तम् । ७ इत्यादिगतत्वप्रदेशस्यः । ८ चेन प्रयत्नेन
आसौ युष्मदे स प्रथमः प्रयत्नः, अन्तरालप्रयत्नस्तु येन आसादिकस्य कृत्वा सुखं
प्रति नीयते स इति । ९ वा प्रयत्नो निर्दिष्टं निर्दिष्टं प्रवेष्टं युष्मदीत्यर्थः । १० आसातौ ।
११ शरासनात्तु यदुपेक्ष्यते : तस्मिन्नाहं पदं सार्त्तं इत्युक्तं एव संयुक्ततावात्म-
प्रदेशस्य तत्र सिद्धीति विपरिवाक्यम् । १२ अदृष्टद्रव्यत्वम् ।

अथात्र द्रव्यं क्रियाहेतुर्न स्पर्शादिगुणः, कुत एतत्? द्रव्यरहितस्यास्य तद्धेतुत्वादर्शनाच्चेत्; तर्हि वेगस्य क्रियाहेतुत्वं क्रियायाश्च संयोगहेतुत्वं संयोगस्य च द्रव्यहेतुत्वं न स्यात्, किन्तु द्रव्यमेवात्रापि तैत्कारणम् । ननु द्रव्यस्य तत्कारणत्वे वेगादिरहितस्यापि ५ तत्स्यात्; तर्हि स्पर्शस्य तदकारणत्वे तद्रहितस्यैवायस्कान्तादेस्तद्धेतुत्वं किञ्च स्यात्? तथाविधस्यास्यादर्शनाच्चेति चेत्; तर्हि लोहद्रव्यक्रियोत्पत्तादुर्मयं दृश्यते उभयं कारणमस्तु विशेषाभावात् । तथाच 'एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वात्' इत्यस्यानेकांतः ।

सर्वत्र चादृष्टस्य वृत्तौ सर्वद्रव्यक्रियाहेतुत्वं स्यात् । 'यददृष्टं १० यद्रव्यमुत्पादयति तददृष्टं तत्रैव क्रियां करोति' इत्यत्रापि शरीरारम्भकाणुषु क्रिया न स्यादित्युक्तम् । अदृष्टस्य चाश्रय आत्मा, स च हर्षविषादादिविवर्तात्मको ह्रीपान्तरवर्तिद्रव्यैर्वियुक्तमेवात्मानं स्वसंवेदनप्रत्यक्षतः प्रतिपद्यते इति प्रत्यक्षवाधितकर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्तत्वेन कालात्ययापदिष्टो हेतुः । तद्वियुक्तत्वेनाऽतस्तत्प्रती- १५ तावप्यात्मनस्तद्रव्यैः संयोगाभ्युपगमे पटादीनां मेवादिभिल्लेषां वा पटादिभिः संयोगः किञ्चेत्यते यतः साङ्ख्यदर्शनं न स्यात्? प्रमाणवाचनमुभयत्र समानम् ।

किञ्च, धर्माधर्मयोर्द्रव्यान्तरसंयोगस्य चाल्मैक आश्रयः, स च भवन्मते निरंशः । तथा च धर्माधर्माभ्यां सर्वात्मनास्याल्लिङ्गित- २० तुत्वाच्च तत्संयोगस्य तत्रावकाशस्तेन वा न तयोरिति । अथ धर्माधर्माल्लिङ्गिततत्स्वरूपपरिहारेण तत्संयोगस्तत्स्वरूपान्तरे वर्त्तते; तर्हि घटादिवदात्मनः सावयवत्वं स्वारम्भकावयवारभ्यत्वमनित्यत्वं च स्यात् ।

एतैनैतन्निरस्तम्- 'देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः पश्वादयो देवदत्त- २५ गुणाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वाद्भासादिवत्' इति । यथैव हि तद्विशेषगुणेन प्रयत्नाख्येन समाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पन्तः समुपलभ्यन्ते भासादयः, तथा नयनास्रनादिना द्रव्यविशेषेणाप्याकृष्टाः स्याद- यस्तं प्रत्युपसर्पन्तः समुपलभ्यन्ते एव, अतः 'किं प्रयत्नसंघर्षमणा

१ अवयवमितल । २ अवयवेत्येव । ३ अवयवलक्षणतन्वामितल संयोगल । ४ अवयविलक्षणपटल । ५ अवयविद्रव्यम् । ६ क्रियासंयोगद्रव्येत्येव । ७ तस्य क्रियायाः संयोगस्य द्रव्यस्य च । ८ स्पर्शोयत्कान्तौ । ९ त्यर्थेन । १० 'किं वा सर्वत्र' इति सूचीयो विकल्पोयम् । ११ पूर्वम् । १२ सर्वं सर्वत्र निच्यते इति वचनात् । १३ असदुक्ते भवदुक्ते च । १४ द्रव्यस्यापि क्रियाहेतुत्वसमर्पणपरेण अख्येन एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वानुमाननिराकरणेन वा । १५ प्रयत्नसदृशेनेत्यर्थः ।

केनचिदाकृष्टाः पञ्चादयः किं वाञ्छनादिसधर्मणा' इति सन्देहः । शक्यं हि परेणाप्येवं वक्तुम्-विवादापेक्षाः पञ्चादयोऽञ्जनादिसधर्मणा समाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वात् कथादिवत् । अथ तदभावेपि प्रयत्नादपि तद्वृष्टेरनेकान्तः, तर्हि प्रयत्नसधर्मणो गुणस्याभावेप्यञ्जनादेरपि तद्वृष्टेर्मवदीयहेतोरप्यनैकान्तिकत्वं स्यात् । अत्रा-५ नुमीयमानस्य प्रयत्नसधर्मणो हेतुत्वादव्यभिचारे अन्यत्राप्यञ्जनादिसधर्मणोऽनुमीयमानस्य हेतुत्वादव्यभिचारः स्यात् । तत्र प्रयत्नस्यैव सामर्थ्यादस्य वैफल्ये अत्राप्यञ्जनादेरेव सामर्थ्यात्तद्वैफल्यं किं न स्यात् ? अथाञ्जनादेरेव तदेतुत्वे सर्वस्य तद्वतः कथाद्याकर्षणं स्यात्, न चाञ्जनादौ सत्यप्यविशिष्टे तद्वतः सर्वान्प्रति १० कथाद्याकर्षणम्, ततोऽवसीयते तदविशेषेपि यद्वैकल्यात्तत्र स्यात्तदपि तत्कारणं नाञ्जनादिमात्रम्, इत्यप्यपेशलम्, प्रयत्नकारणेपि समानत्वात् । न खलु सर्वे प्रयत्नवन्तं प्रति प्रासादयः समुपसर्पन्ति तदपहारादिदर्शनात् । ततोऽत्राप्यन्यत्कारणमनुमीयताम्, अन्यथा न प्रकृतेरप्यविशेषात् । १५

अञ्जनादेः कथाद्याकर्षणं प्रत्यकारणत्वे घटादिवत्तदर्थिनां तदुपादानं न स्यात् । उपादाने वा सिकतासमूहात्तैलवन्न कदाचित्तत्स्तत्स्यात् । न च दृष्टसामर्थ्याञ्जनादेः कारणत्वपरिहारेणात्रान्यकारणत्वकरूपने भवेतोऽनैवसंज्ञातो मुक्तिः स्यात् । अथाञ्जनादिकमदृष्टसहकारि तत्कारणं न कैवल्यम्; हन्तैव सिद्धमदृष्ट-२० वदञ्जनादेरपि तत्कारणत्वम् । ततः सन्देह एव-किं प्रासादिवत्प्रयत्नसधर्मणाकृष्टाः पञ्चादयः किं वा कथादिवदञ्जनादिसधर्मणा तत्संयुक्तेन द्रव्येण' इति । परिस्पन्दमानात्मप्रदेशव्यतिरेकेण प्रासादाकर्षणहेतोः प्रयत्नस्यापि तद्विशेषगुणस्य परं प्रत्यसिद्धेः साध्यविकलता दृष्टान्तस्य । २५

यच्चोक्तम्-दिवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः' इति; तत्र देवदत्तशब्दाच्चः कौशेय-शरीरम्, आत्मा, तत्संयोगो वा, आत्मसंयोगविशिष्टं शरीरं वा, शरीरसंयोगविशष्ट आत्मा वा, शरीरसंयुक्त

१ गुणेन । २ अदृष्टलक्षणेन द्रव्यविशेषेण । ३ जैत्रेयाणि । ४ गुणेन समाकृष्टा द्रव्येण वेति । ५ अञ्जनादिसधर्मद्रव्यविशेषाभावेति । ६ तस्य=प्रासादाकर्षणस्य । ७ तस्य=कथाद्याकर्षणस्य । ८ उपसर्पणकारणत्वात् । ९ अदृष्टलक्षणद्रव्यविशेषस्य । १० कथाद्याकर्षणे । ११ प्रासादाकर्षणे । १२ द्रव्यस्य । १३ कथाद्याकर्षणेति । १४ आग्निः । १५ अदृष्टः । १६ यतः । १७ वैज्ञेयिकस्य । १८ दृष्टसामर्थ्यस्यान्यकारणस्य परिहारेणैलादिप्रकारेण । १९ कारणानां पूर्वपूर्वकारणपरित्यागेनाऽपरापरकारणपरिकल्पनात् । २० अदृष्टः । २१ आत्मना । २२ द्रव्यमिवत् ।

आत्मप्रदेशो वा ? यदि शरीरम्, तर्हि शरीरं प्रत्युपसर्पणाच्छरी-
रगुणाकृष्टाः पञ्चादय इत्यात्मविशेषगुणाकृष्टत्वे साध्ये शरीरगु-
णाकृष्टत्वसाधनाद्विरुद्धो हेतुः ।

अथात्मा; तस्य समाकृष्यमाणार्थदेशकालाभ्यां संदाभिसम्ब-
न्धात् तं प्रति किञ्चिदुपसर्पेत् । न ह्यत्यन्तान्निष्ठकण्ठकामिनी
कामुकमुपसर्पति । अन्यदेशो ह्यर्थोऽन्यदेशं प्रत्युपसर्पति, यथा
लक्ष्यदेशार्थं प्रति बाणादिः । अन्यकालं वा प्रत्यन्यकालः, यथाह्वरं
प्रत्यपरापरशक्तिपरिणामलाभेन बीजादिः । न चैतदुभयं नित्य-
व्यापित्वाभ्यामात्मनि सर्वत्र सर्वदा सन्निहिते सम्भवति, अतो
१० 'देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः' इति धर्मविशेषणं 'देवदत्तगुणाकृष्टाः'
इति साध्यधर्मः 'तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वात्' इति साधनधर्मः परस्य
स्वरुचिविरचित एव स्यात् ।

अथ शरीरात्मसंयोगो देवदत्तशब्दवाच्यः, न; अस्य तच्छब्द-
वाच्यत्वे तं प्रति चैवमुपसर्पणे 'तद्गुणाकृष्टास्ते' इत्यायातम् । न
१५ च गुणेषु गुणाः सन्ति, निर्गुणत्वाच्चेष्टाम् ।

'आत्मसंयोगविशिष्टं शरीरं तच्छब्दवाच्यम्' इत्यत्रापि पूर्व-
वद्विरुद्धत्वं द्रष्टव्यम् ।

'शरीरसंयोगविशिष्ट आत्मा तच्छब्दवाच्यः' इत्यत्रापि प्राक्न
एव दोषः नित्यव्यापित्वेनास्य सर्वत्र सर्वदा सन्निधाननिवार-
२० णात् । न खलु घटसंयुक्तमाकाशं मेवादौ न सन्निहितम् ।

अथ शरीरसंयुक्त आत्मप्रदेशस्तच्छब्देनोच्यते; स कल्प-
निकः, पारमार्थिको वा ? कल्पनिकत्वे कल्पनिकात्मप्रदेशगु-
णाकृष्टाः पञ्चादयस्तथाभूतात्मप्रदेशं प्रत्युपसर्पणवत्त्वादिति तद्गु-
णानामपि कल्पनिकत्वं साधयेत् । तथा च सौगतस्येव तद्गुणकृतः
२५ प्रमेयभावोपि न पारमार्थिकः स्यात् । न हि कल्पितस्य पावकस्य
रूपादयस्तत्कार्यं वा दाहादिकं पारमार्थिकं दृष्टम् ।

पारमार्थिकाश्चेदात्मप्रदेशाः, ते ततोऽभिज्ञाः, भिज्ञा वा ? यद्य-
भिज्ञाः, तदात्मैव ते, इति नोक्तदोषपरिहारः । भिज्ञाश्चेत्, तर्हि-
शेषगुणाकृष्टाः पञ्चादय इत्येतत्तेषामेवात्मत्वं प्रसाधयतीत्यन्यात्म-
३० कल्पनानर्थक्यम् । कल्पने वा सावयवेत्वेन कार्यत्वमनित्यत्वं
चास्य स्यादित्युक्तम् ।

१ नित्यसर्वगतत्वादात्मनः । २ देशकालकृतोपसर्पणश्च । ३ वैशेषिकस्य । ४ इति
चेदिति योज्यम् । ५ पञ्चादीनाम् । ६ अभिर्माणवक इत्यादौ । ७ आत्मनः समा-
कृष्यमाणार्थदेशकालाभ्यामिहोदिना । ८ तस्य=आत्मनः । ९ आत्मप्रदेशानाम् ।
१० घटवत् ।

यथान्यदुक्तम्—‘सर्वगत आत्मा सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वादा-
काशवत्’ इति; तत्र किं स्वशरीर एव सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वं
हेतुः, उत स्वशरीरवत्परशरीरेऽन्यत्र च? तत्र प्रथमपक्षे विरुद्धो
हेतुः, तत्रैव ततस्तस्य सर्वगतत्वसिद्धेः। द्वितीयपक्षे त्वसिद्धः,
तथोपलम्भाभावात्। न खलु बुद्ध्यादयस्तद्गुणाः सर्वत्रोपलभ्यन्ते, ५
अन्यथा प्रतिप्राणि सर्वज्ञत्वादिप्रसङ्गः।

अथ मन्याखेटवत्त्वेदान्तरे मनुष्यजन्मवज्जन्मान्तरे चोपलभ्य-
मानगुणत्वं विवक्षितम्, तर्हि युगपत्, क्रमेण वा? युगपच्चेत्,
असिद्धो हेतुः। क्रमेण चेत्, सर्वे सर्वगताः स्युः, घटादीनामपि
तथा सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वसम्भवात्। तेषां देशान्तरगमना- १०
सत्सम्भवे आत्मनोपि ततस्तत्सम्भवोस्तु तद्वत्तस्यापि सक्रिय-
त्वात्। प्रत्यक्षेण हि सर्वो देशदेशान्तरमायातमात्मानं प्रतिपद्यते,
तथा च वदत्यहमद्य योजनमेकमागतः। मनः शरीरं वागतमिति
चेत्, किं पुनस्तद्दृष्टमत्ययवेद्यम्? तथा चेत्, चार्वाकमतानुषङ्गः।

ननु चास्य सक्रियत्वे लोष्टादिवन्मूर्तिभिः सम्बन्धः स्यात्। १५
तत्र केयं मूर्तिर्नाम-असर्वगतद्रव्यपरिमाणम्, रूपादिमत्त्वं वा
स्यात्? तत्राद्यपक्षो न दोषावहः, अभीष्टत्वात्। न हीष्टमेव दोषाय
जायते। रूपादिमती मूर्तिः स्यादिति चेत्, न, व्योम्यभावात्। रूपा-
दिमन्मूर्तिमानात्मा सक्रियत्वाद्वाणादिवत्, इत्यप्यसुन्दरम्; मन-
साऽनैकान्तिकत्वात्। न चास्य पक्षीकरणम्, ‘रूपादिविशेषगुणा- २०
नधिकरणं सन्मनोर्यं प्रकाशयति शरीरादर्थान्तरत्वे सति सर्वत्र
गौणकारणत्वादात्मवत्’ इत्यनुमानविरोधानुषङ्गात्।

ननु सक्रियत्वे सत्यात्मनोऽनित्यत्वं स्याददृष्टादिवत्, इत्यपि
पार्श्वम्; परमाणुभिर्मनसा चानेकान्तात्।

किञ्च, अस्यातः कथञ्चिदनित्यत्वं साध्येत, सर्वथा वा? कथ- २५
ञ्चिच्चैत्; सिद्धसाधनम्। सर्वथा चानित्यत्वस्य घटादावप्यसिद्ध-
त्वात्साध्यविकलता दृष्टान्तस्य।

१ अन्तराले। २ परशरीरादौ। ३ आदिना दुःखित्वादियदः। ४ द्वितीयपक्षे
दृष्टान्तप्रकरणार्थं परमाद्यङ्गाह। ५ अर्धं शब्दो ग्रामभेदे। ६ तथा प्रतीतेर-
भावात्। ७ तत आत्मना मूर्तिमत्ता आत्ममिति भावः। ८ शरीरमसर्वगतद्रव्यमत्र।
९ यद्यसक्रियं तच्छरूपादिमन्मूर्तिमदिति। १० मनसः सक्रियत्वेनैव रूपादिमन्मूर्ति-
मत्ताभावात्। ११ एवं निरूपणे षटेन व्यभिचारः। १२ दृष्टान्तिद्यौष्ये। १३ शान-
करणत्वादित्युच्यमाने चक्षुषा व्यभिचारस्तत्रिदृश्यं सर्वत्रेति विशेषणम्, तयापि
शरीरेण व्यभिचारपरिहारार्थं शरीरादित्यादि। १४ कारणमत्र सदृशम्।

किञ्च, आत्मनो निष्क्रियत्वे संसारमावो भवेत् । संसारो हि शरीरस्य, मनसः, आत्मनो वा स्यात् ? न तावच्छरीरस्य, मनुष्य-
लोके मस्मीभूतस्यामरपुराऽगमनात् ।

नापि मनसः, निष्क्रियस्यास्यापि तद्विरहात् । सक्रियत्वेपि
५ तत्क्रियायास्ततोऽभेदे तद्वत्तदनित्यत्वप्रसङ्गाभास्यं कचित्क्षण-
मात्रमवस्थानं स्यात् । भेदे सम्बन्धासिद्धिः, सैमवायनिषेधात् ।

अचेतनं च तदनिष्टनरकादिपरिहारेणेष्टे स्वर्गादौ कथं प्रवर्त्तत-
स्वभावतः, ईश्वरात्, तदात्मनः, अदृष्टाद्वा ? प्रथमपक्षे वृत्तः
सर्वत्र ज्ञानाय जल्लालिः । अथेश्वरप्रेरणात्, न; तन्निषेधात् ।
१० कौ वायमीश्वरस्याग्रहो यतस्तत्प्रेरयति, न तदात्मानम् ? अस्य
प्रेरणे चेदमनुगृहीतं भवति—

“अज्ञो जन्तुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः ।

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्सर्वं वा श्वभ्रमेव वा ॥”

[महाभा० वनपर्व० ३०।२८] इति ।

१५ ‘तदात्मप्रेरणात्’ इत्यत्रापि ज्ञातम्, अज्ञातं वा तच्चेन प्रेर्येत ? न
तावदाद्यो विकल्पः, जन्तुमात्रस्य तत्परिज्ञानाभावात् । नापि
द्वितीयः, अज्ञातस्य बाणादिवत्प्रेरणासम्भवात् । ननु स्वप्ने सह-
स्तादयोऽज्ञाता एव प्रेर्यन्ते; न; अहितपरिहारेण हिते प्रेरणा(ऽ)-
सम्भवात्, ज्वलज्ज्वलनज्वालाज्जालेपि तत्प्रेरणोपलम्भात् ।

२० अदृष्टप्रेरणात्, इत्यप्यसारम्; अचेतनस्यापि(स्यास्यापि) तत्प्रे-
रकत्वायोगात् । तत्प्रेरितस्यात्मन एव वरं प्रवृत्तिरस्तु चेतनत्वा-
त्तस्य । इदंयते हि वशीकरणौषधसंयुक्तस्य चेतनस्यानिष्टगृह-
गमनपरिहारेण विशिष्टगृहगमनम् । तन्न मनसोपि संसारः ।

१ पर्यायापेक्षया । २ क्रियामनसोः समवायेन सम्बन्धो मविष्यतीत्युक्ते सत्साहा-
चार्यः । ३ परमतेऽचेतनं मनः । ४ मनाःसम्पन्निजीबाह । ५ इष्टानिष्टवस्तु ।
६ ज्ञानाभावेऽचेतनस्य मनस इष्टानिष्टवस्तुषु प्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात् । ७ मन एव
प्रेरयति नात्मानमयमेवाग्रह इत्याशङ्क्याह । ८ अग्रे वक्ष्यमाणं भवच्छासकोक्तम् ।
९ भवता स्वीकृतम् । १० मनसः प्रेरणे चेदमनुगृहीतं न भवतीति भावः । ११ तदा-
त्मना । १२ अणुरूपमचेतनमतीन्द्रियं मनस्त्वस्य । १३ अनैकान्तिकलं सावयति ।
१४ ‘इति चेत्’ इत्युपरितः । १५ त्रयो विकल्पः । १६ मन एव । १७ न मनसः ।
१८ अनिष्टनरकादिपरिहारेण स्वर्गादौ । १९ चेतनत्वादात्मनः प्रवृत्तिरिति हेतुके
सत्साहाचार्यः ।

आत्मनस्तु स्यात् यद्येकदेहपरित्यागेन देहान्तरमसौ ब्रजेत्,
तथा च घटादिवत्तस्य सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वमित्युभयोः सर्व-
गतत्वं न वा कस्यचिदेविशेषात् ।

यथाकाशवदित्युक्तम्; तत्राकाशस्य को गुणः सर्वत्रोपल-
भ्यते-शब्दः, महत्त्वं वा? न तावच्छब्दः; अस्याकाशगुणत्वनिषे- ५
धात् । नापि महत्त्वम्; अस्यातीन्द्रियत्वेनोपलम्भासम्भवात् ।

एतेन 'बुद्ध्यधिकरणं द्रव्यं विभु नित्यत्वे सत्यसदाद्युपलभ्य-
मानगुणाधिष्ठानत्वादाकाशवत्' इत्यपि प्रत्युक्तम्; साधनविकल-
त्वाद्बुद्धान्तस्य । हेतोश्चानैकान्तिकत्वम्, परमाणूनां नित्यत्वे सत्य-
सदाद्युपलभ्यमानपाकजगुणाधिष्ठानत्वेऽपि विभुत्वाभावात् । तस्या- १०
कजगुणानामसदाद्यप्रत्यक्षत्वे हि 'विधादाध्यासितं क्षित्यादिक-
मुपलब्धिमत्कारणं कार्यत्वाद्घटादिवत्' इत्यत्र प्रथेने भ्यासिर्न
स्यात् । अथ 'नित्यत्वे सत्यसदादिबाह्येन्द्रियोपलभ्यमानगुणत्वात्'
इत्युच्यते; तर्हि बाह्येन्द्रियोपलभ्यमानत्वस्य बुद्ध्यावसिद्धेर्विशेषणा-
सिद्धौ हेतुः । १५

नित्यत्वं च सर्वथा, कथञ्चिद्वा विवक्षितम्? सर्वथा चेत्,
पुनरपि विशेषणासिद्धत्वम् । कथञ्चिच्चेत्, घटादिनानेकान्तः,
तस्य कथञ्चिन्नित्यत्वे सत्यसदाद्युपलभ्यमानगुणाधिष्ठानत्वेऽपि
विभुत्वाभावात् ।

यद्युक्तम्-सर्वगत आत्मा द्रव्यत्वे सत्यमूर्त्तत्वादाकाशवत् । २०
'द्रव्यात्' (द्रव्यत्वात्) इत्युच्यमाने हि घटादिना व्यभिचारः,
तत्परिहारार्थम् 'अमूर्त्तत्वात्' इत्युक्तम् । 'अमूर्त्तत्वात्' इत्यु-
च्यमाने च रूपादिगुणेन गमनादिकर्मणा वानेकान्तः, तस्मि-
न्नुत्तर्य 'द्रव्यत्वे सति' इत्युक्तम् ।

१ घटपक्षे देहान्तरपरित्यागेन देहान्तरमसौ ब्रजेत् । २ लोकत्रये । ३ आत्म-
घटयोः । ४ आत्मनोपीत्यर्थः । ५ सम्योर्गमनस्य । ६ अतः साधनविकलो दृष्टान्तः ।
७ सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वादित्यस्य निराकरणपरेण प्रपञ्चेन । ८ परमाणुभिर्भ्यभिचार-
परिहारार्थम् । ९ घटादिना व्यभिचारनिराकरणार्थम् । १० परेणातीक्रियमाणे ।
११ ईश्वरस्य । १२ तत्पाकजगुणानामसदाद्यप्रत्यक्षत्वे यद्यत्सर्वं तत्तद्दीमहेतुकमिति
मानसप्रत्यक्षेण साक्ष्येन व्याप्तिग्रहणं न स्यादिति भावः । कार्यप्रत्यक्षत्वे कार्य-
कारणयोर्व्याप्त्यसम्भवात् । १३ गुणरूपावात् । १४ द्रव्यापेक्षया । १५ असर्वगत-
द्रव्यपरिमाणलक्षणमूर्त्तत्वस्य रूपादिभ्यभावाद्भूपादीनाममूर्त्तत्वम्, रूपादीनां तत्परि-
भाषाभावात् कुतः? निर्गुणं गुणं इत्यभिधानात् ।

तदप्यसमीचीनम्, यतोऽमूर्तत्वं मूर्तत्वाभावः, तत्र किमिदं मूर्तत्वं नाम यत्प्रतिषेधोऽमूर्तत्वं स्यात्? रूपादिमत्त्वम्, असर्वगतद्रव्यपरिमाणं वा? प्रथमपक्षे मनसानेकान्तः, तस्य द्रव्यत्वे सत्यमूर्तत्वेऽपि सर्वगतत्वाभावात् । द्वितीयपक्षे तु किमसर्वगत-
 ५ द्रव्यं भवेतां प्रसिद्धं यत्परिमाणं मूर्तिर्वर्ण्यते? घटादिकमिति चेत्; कुतस्तत्तथा? तथोपलम्भाच्चेत्; किं पुनरसौ भवतः प्रमाणम्? तथा चेत्; तद्वदात्मनोऽपि स एवासर्वगतत्वं प्रसाधयतीति मूर्तत्वम्, अतः 'अमूर्तत्वात्' इत्यसिद्धो हेतुः । तदसाधने न प्रमाणम्—“लक्षणयुक्ते चाघासंभवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात्”
 १० [प्रमाणवार्तिकालं०] इति न्यायात् । तथा चातो घटादावप्यसर्वगतत्वमिति दुर्लभम् । शक्यं हि वक्तुम्—‘घटादयः सर्वगता द्रव्यत्वे सत्यमूर्तत्वादाकाशवत्’ इति । पक्षस्य प्रत्यक्षवाधनं हेतोश्चासिद्धिः उभयत्र समाना ।

ननु चात्मनः सर्वगतत्वात्तत्रास्त्यमूर्तत्वमसर्वगतद्रव्यपरिमाण-
 १५ सम्बन्धाभावलक्षणं न घटादौ विपर्ययात् । ननु चास्य कुतः सर्वगतत्वं सिद्धम्—साधनान्तरात्, अत एव वा? साधनान्तराच्चेत्; तदेव (तत एव) समीहितसिद्धेः ‘द्रव्यत्वे सत्यमूर्तत्वात्’ इत्यस्य वैयर्थ्यम् । अत एव चेदन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि तस्य सर्वगतत्वेऽसर्वगतद्रव्या(व्य)परिमाणसम्बन्धरूपमूर्तत्वाभावोऽमूर्तत्वं
 २० सिध्यति, अतश्च तत्सर्वगतत्वमिति ।

किञ्च ‘अमूर्तत्वात्’ इति किमयं प्रसज्यप्रतिषेधो मूर्तत्वाभावमात्रममूर्तत्वम्, पर्युदासो वा मूर्तत्वादन्यद्भावान्तरमिति? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; तुच्छाभावस्य प्रीकप्रबन्धेन प्रतिषेधात् । सतोऽपि चास्य ग्रहणोपायाभावादज्ञातासिद्धो हेतुः । न हि प्रत्यक्ष-
 २५ स्तद्ग्रहणोपायः; तस्येन्द्रियार्थसन्निकर्षजत्वात्, तुच्छाभावेन सह मनसोऽन्यस्य चेन्द्रियस्य सन्निकर्षाभावात् ।

ननु मन आत्मना सम्बद्धमात्मविशेषणं च तदेव भावः, ततः सम्बद्धविशेषणीभावस्तेन मनस इति । युक्तमिदं यद्यसावात्मनो विशेषणं भवेत् । न चास्यैतदुपपन्नम् । विशेष्ये हि विशिष्टप्रत्यय-

१ वैशेषिकाणाम् । २ असर्वगतत्वेन । ३ उपलम्भः । ४ असर्वगतद्रव्यपरिमाणोपलम्भः प्रमाणस्य लक्षणम् । ५ प्रमाणे । ६ प्रमाणस्यात्मन्यसर्वगतत्वासाधनलक्षणे वाचासंभवे । ७ तस्य=प्रमाणस्य । ८ आत्मन्यसर्वगतत्वोपलम्भस्याप्रमाणत्वे च । ९ आत्मनि घटादौ च । १० असर्वगतत्वात् । ११ अमूर्तत्वं । १२ अभावनिराकरणवसरे । १३ तुच्छभावेन सह मनसः सन्निकर्षं दर्शयति परः । १४ अमूर्तत्वाभावः । १५ सम्बन्धः । १६ परेणोक्तं यत् । १७ मूर्तत्वाभावलक्षणं विशेषणम् ।

हेतुर्विशेषणं यथा दण्डः पुंरूपे । न च तुच्छाभावस्तत्प्रत्ययहेतु-
र्धटते; सकलशक्तिविरहलक्षणत्वादस्य, अन्यथा भाव एव स्यादर्थ-
क्रियाकारित्वलक्षणत्वात् परमार्थसतो लक्षणांतराभावात् ।
सत्तासम्बन्धस्य तल्लक्षणस्य कृतोत्तरत्वात् ।

किञ्च, गृहीतं विशेषणं भवति, “नाऽगृहीतविशेषणा विशेष्ये”
बुद्धिः” [] इत्यभिधानात् । ग्रहणे चेतरेतराश्रयः ।
तथाहि—आत्मसम्बन्धेनेन्द्रियेणासौ गृहीतः सिद्धः सन्नात्मनो
विशेषणं लिप्यति, तत् आत्मसम्बन्धेनेन्द्रियेण ग्रहणमिति । यदि
चात्मा स्वयंसर्वगतद्रव्यपरिमाणसम्बन्धविकलः सिद्धस्तर्हि
तावतैव समीहितार्थसिद्धेः किमपरेण तदभावेनेति कथं विशेष- १०
णम् ? अयं विपरीतः; कथं तदभावो यतो विशेषणम् ?

किञ्च, आत्मतदभावाभ्यां सह विशेषणीभावः सम्बन्धः, अस-
म्बन्धो वा ? सम्बन्धश्चेत्, तर्हि यथात्मनि विशिष्टविकानविधाना-
दात्मवृत्तदभावो विशेषणम्, तथा विशेषणीभावोपि ‘आत्मा
विशेष्यस्तदभावो विशेषणम्’ इति विशिष्टप्रत्ययजननात् विशेषणं १५
समवायवत्प्रसक्तम्, तथा च तत्राप्यपरेण तत्सम्बन्धेन भवितव्य-
मित्यनवस्था । अथासम्बन्धः; कथं विशेषणविशेष्याभिमतयोः स
भवेत् यतस्तत्र विशिष्टप्रत्ययप्रादुर्भावः सम्बन्धो वा ? विशिष्टप्रत्य-
यहेतुत्वाच्चेत्, ईश्वरादौ प्रसङ्गः । तथापि स ‘तयोः’ इति कल्पने
भावस्याभावः समवायिनोऽस(नोः स)मवायस्तथैव स्यादित्यलं २०
तत्र विशेषणीभावसम्बन्धकल्पनया । तत्र प्रत्यक्षं तद्ग्रहणोपायः ।

नाप्यनुमानम्; परस्य प्रत्यक्षाभावे तदभावात्, तन्मूलत्वा-
त्तस्य । नन्विदमस्ति—आत्माऽमूर्त इति बुद्धिमिन्नाभावनिमित्तो,
अभावविशेषणभावविषयबुद्धित्वात्, अघटं भूतलमित्यादिवुद्धि-
वत्, इत्यन्यसारम्, तथाविद्याभावस्य विशेषणत्वासिद्धिप्रतिपा- २५
दनात् । अभावविचारे चानयोर्हेतुदाहरणयोः प्रतिहतत्वाच्च
साध्यसाधकत्वम् ।

१ दण्डीति विशिष्टप्रत्ययहेतुः । २ ज्ञातम् । ३ मनसा । ४ मूर्तत्वाभावः ।
५ असर्वगतद्रव्य—स्वीरव । ६ असर्वगतद्रव्यपरिमाणसंबन्धरहितः । ७ आत्मा अमूर्त
इति । ८ मूर्तत्वाभावः । ९ गुणगुणिनोः समवाय इति । १० विशेषणीभावस्य
विशेषणत्वे च । ११ स्वयं संबन्धरूपोपि नैव । १२ ईश्वरकाकाशादयोपि विशिष्ट-
प्रत्ययोत्पत्तौ निमित्तकारणकालेनामपि विशेषणीभावः सम्बन्धो भवतीति शेषः ।
१३ संबन्धस्य । १४ सम्बन्धाभावेति । १५ अभावो विशेषणप्रत्ययस्य, स चासौ
भावश्च स विषयो यस्यास्यासा भाव इति वक्तव्यम् । १६ द्रव्यत्वे सत्यमूर्तत्वादित्येत-
न्निरासेन । १७ तुच्छरूपस्य ।

पर्युदासपक्षेऽप्यसर्वगतद्रव्यपरिमाणसम्बन्धभावान्मूर्त्तत्वाद्व्य-
दमूर्त्तत्वं सर्वगतद्रव्यपरिमाणेन परममहत्त्वेन सम्बन्धा(न्ध)-
भावः, स च न कुतश्चित्प्रमाणात्प्रसिद्ध इति हेतोरसिद्धिः ।

यच्चान्यदुक्तम्-आत्मा व्यापको मनोन्यत्वे सत्यस्पर्शवद्द्रव्यत्वा-
५ दाकाशवदिति; तदप्येतेनैव प्रत्युक्तम्; स्पर्शवद्द्रव्यप्रतिषेधेऽत्रापि
प्राशुक्तशेषदोषानुपपन्नात् । सन्दिग्धानैकान्तिकश्चायं हेतुः; तथाहि-
अस्पर्शवद्द्रव्यत्वमाकाशादौ व्यापित्वे सत्युपलब्धं मनसि चाऽव्या-
पित्वे, तदिदानीमात्मन्युपलभ्यमानं किं 'व्यापित्वं प्रसाधयत्व-
व्यापित्वं वा' इति सन्देहः । ननु मनोद्रव्यत्व(मनोऽन्यत्व)वि-
१० शिष्टस्यास्पर्शवद्द्रव्यत्वस्य मनस्यनुपलम्भात्कथं सन्देहोऽत्रेति
चेत्? अत एव । यदि हि तद्विशिष्टं तत्तत्रोपलभ्येत तदा निश्चि-
तानैकान्तिकत्वमेवास्य स्यात् न तु सन्दिग्धानैकान्तिकत्वमिति ।
तन्नात्मनः कुतश्चित्प्रमाणात्सर्वगतत्वसिद्धिरित्यसर्वगत एवासौ
यथाप्रतीत्यभ्युपगन्तव्यः ।

१५ ननु चात्मनोऽसर्वगतत्वे दिग्देशान्तरवर्तिभिः परमाणुभिर्यु-
गपत्संयोगाभावोऽतश्चार्थकर्मभावः, तदभावादन्त्यसंयोग्यस्य
तन्निमित्तशरीरस्य तेन तत्सम्बन्धस्य चाभावादनुपपत्तिरिति
सर्वदात्मनो मोक्षः स्यात् । स्यादेवं यदि 'यद्येन संयुक्तं तं प्रति
तदेवोपसर्पति' इत्ययं नियमः स्यात् । न चास्ति-अयस्कान्तं
२० प्रत्ययसस्तेनाऽसंयुक्तस्याप्युपसर्पणोपलम्भात् ।

यस्य चात्मा सर्वगतः तस्यारब्धकार्यैरन्यैश्च परमाणुभिर्युगप-
त्संयोगात्तथैव तच्छरीरारम्भं प्रत्येकमभिमुखीभूतानां तेषामुप-
सर्पणमिति न जाने कियत्परिमाणं तच्छरीरं स्यात् ।

ननु ये तत्संयोगास्तदऽदृष्टापेक्षास्त एव स्वसंयोगिनां परमाणू-
२५ नामार्थं कर्म रचयन्तीति चेत्, अथ केयं तददृष्टापेक्षा नैम-
र्षकार्यसमवायः, उपकारो वा, सहायकर्मजननं वा? तन्नाद्यः
पक्षोऽयुक्तः; सर्वपरमाणुसंयोगानां तददृष्टैर्कार्यसमवायसङ्गा-

१ अस्पर्शवद्द्रव्यत्वादित्यत्र नष् पर्युदासः, प्रसज्यो वेत्यादि । २ विपक्षे वापकं
प्रमाणं नैदक्षि तदा सन्देहो निवर्त्ततेऽनुपलम्भमात्रेण तु परचेतोऽतिविशेषवद् सन्देहो
भवेदेवेति भावः । ३ शरीरारम्भकाणूनां शरीरोत्पत्तिदेशं प्रति गमनमार्थं कर्म ।
४ शरीरनिष्पत्त्यवसानकालमावस्य । ५ शरीरारम्भकाणूनां शरीरोत्पत्तिदेशं प्रति
गमनम् । ६ अत एव महच्छरीरं न स्यात् । ७ परमाणुसंयोगानाम् । ८ पर-
सिद्धात्मलक्षणेऽर्थे समवायोऽदृष्टस्य । ९ तस्मात्पनोऽदृष्टं तेन सहैकस्मिन्ने आत्मलक्षणे
समवायस्य सङ्गभावः ।

वात् । उपकारः, इत्यप्ययुक्तम् । अपेक्ष्यादपेक्षकस्यासम्बन्धान्न-
वस्थानुपपत्तेरुपकारसौवासम्मधात् । सहायकर्मजननम्, इत्यप्य-
सदः । तयोरन्यतरस्यापि केवलस्य तज्जननसामर्थ्ये परापेक्षा-
योगात् । यदि पुनः स्वहेतोरेवाददृशसंयोगयोः सहितयोरेव कार्य-
जननसामर्थ्यमिष्यते, तर्हि तत् एवाददृशस्यैव तत्संयोगनिरपेक्षस्य ५
तत्सामर्थ्यमस्तु । इदयते हि दृस्ताभ्येणायस्कान्तादिना स्वाश्रया-
संयुक्तस्य भूभागस्थितस्य लोहादेराकर्षणमित्यलमतिप्रसङ्गं ।

यदप्युक्तम्-सावयवं शरीरं प्रत्यवयवमनुप्रविशैस्तदात्मा
सावयवः स्यात्, तथा च घटादिवत्समीनजातीयावयवारभ्यत्वम्,
समानजातीयत्वं सावयवानामात्मत्वाभिसम्बन्धादित्येकत्रात्म-१०
म्यन्तात्मसिद्धिः, यथा सावयवक्रियातो विभागात्संयोगविना-
शाद्भवविनाशः तथात्मविनाशोपि स्यात्, इत्यप्यपरीक्षिताभिधान-
म् । सावयवत्वेन मित्रावयवारब्धत्वस्य घटादावप्यसदेः । न
सलु घटादिः सावयवोपि प्राक्प्रसिद्धसमानजातीयकपालसंयो-
गपूर्वको दृष्टः, सृष्टिर्घटात् प्रथममेव सावयवरूपाध्यात्मनोऽस्य १५
प्रादुर्भावप्रतीतिः । न चैकत्र घटादौ सावयवतन्तुसंयोगपूर्वकत्वो-
पलम्भात्सर्वत्र तैद्भावा युक्तः, अन्यथा काष्ठे लोहलेख्यत्वोपल-
म्भाद्भजेपि तथाभावः स्यात् । प्रमाणवाचनमुभयत्र समानम् ।

किञ्च, अस्य तथैवभूतावयवारब्धत्वम्-आदौ, मध्यावस्थायां वा
साध्येत ? न तार्वादौ, स्तनादौ प्रवृत्त्यभावानुषङ्गात्, तदेत्वमि-२०
लाषप्रत्यभिज्ञानस्मरणदर्शनीदेरभावात् । तैद्वारम्भकावयवानां
प्राक् सतां विषयदर्शनादिसम्भवे तेषामेवाहर्जातवेलायां सत्त्वा-
न्तराणामिव प्रवृत्तिः स्यात् । मध्यावस्थायां तु तत्साधने प्रत्यक्ष-

१ व्यापित्वादात्मनः । २ अपेक्षेणादृष्टेनापेक्षकस्यानुसंयोगस्य किमप्यण उपकार-
सहायकमित्रो मित्रो वा स्यात् । अनेदे सोमि तज्जन्मः स्यात् । जेदे संनचासिद्धिः ।
अथापकारमुपकारं कृत्वा तत्सम्बन्धीत्यादिपरिकल्पने चानवस्था । अवं संयोगस्योपकार
इति च घटते अन्यथातिप्रसङ्गः । यथा संयोगस्य तथान्वस्यापि । तथा चात्मपरमाणु-
संयोगस्य नित्यत्वव्याघातः स्यात् । ३ अदृष्टानुसंयोगयोर्मैव्येदृष्टस्य परमाणुसंयोगस्य
वा । ४ अनिवेद्यतः सर्वत्र तज्जननस्यापि प्रसङ्गात् । ५ आत्मनः । ६ अदृष्टात्मा-
संयोगयोः । ७ परेण । ८ तत्तत्प्राणसंयोगपरिकल्पनेन कियः । ९ वचः । १० तत्तत्
स्वाश्रयासंयुक्तमेव परमाण्वादिकयाकृत्यते आत्मना । तत्तत् सर्वगतत्वपरिकल्पनेवाक-
मात्मनः । ११ आत्मत्वेन । १२ आत्मनः । १३ वषादानकारणात् । १४ आत्मा-
दिषु । १५ सावयवसंयोगपूर्वकत्वम् । १६ वजे आत्मनि च । १७ समानजातीय-
मित्रावयव । १८ गर्भावस्थायाम् । १९ संस्कारस्य । २० तस्य आत्मनः ।

विरोधः । अन्त्यावस्थायां चास्यात्यन्तविनाशे स्मरणाद्यभावात्स्त-
नादौ प्रवृत्त्यभाव एव स्यात् । न चैवं विनाशोत्पादप्रक्रिया कचिद्
दृश्यते । न खलु कटकस्य केयूरीभावे कुतश्चिद्भागेषु क्रिया
विभागः संयोगविनाशो द्रव्यविनाशः पुनस्तदवयवाः केचलास्तद-
५ नन्तरं तेषु कर्मसंयोगक्रमेण केयूरीभाव इति, केवलं ध्रुवणकार-
का(कारकरा)दिव्यापारे कटकस्य केयूरीभावं पश्यामः । अन्यथा
कल्पने च प्रत्यक्षविरोधः ।

न च सावयवशरीरव्यापित्वे सत्यात्मनस्तच्छेदे छेदप्रसङ्गो
दोषाय; कथञ्चित्तच्छेदस्येष्टत्वात् । शरीरसम्बद्धात्मप्रदेशेभ्यो
१० हि तत्प्रदेशानां छिन्नशरीरप्रदेशोऽवस्थानमात्मनश्छेदः, स चास्मि-
न्स्थेव, अन्यथा शरीरात्पृथग्भूतावयवस्य कम्पोपलब्धिर्न स्यात् ।
न च छिन्नसावयवप्रतिष्ठस्यात्मप्रदेशस्य पृथगात्मत्वानुपपन्नः; तत्रै-
वानुप्रवेशात् । कथमन्यथा छिन्ने हस्तादौ कम्पादितैर्छिन्नोपलम्भा-
भावः स्यात् ?

१५ ननु कथं छिन्नैश्छिन्नयोः संघटनं पश्चात् ? न, एकान्तेन
छेदानभ्युपगमात्, पञ्चनालतन्तुवद्विच्छेदस्याभ्युपगमात् ।
तैर्नाभूतादृष्टवशाच्च तदविरुद्धमेव । ततो यद्यथा निर्वाधबोधे
प्रतिभाति तत्तथैव सङ्ख्यवहारमवतरति यथा स्मरन्मकतन्तुषु
प्रतिनियतदेशकालाकारतया प्रतिभासमानः पटः, शरीरे एव
२० प्रतिनियतदेशकालाकारतया निर्वाधबोधे प्रतिभासते चात्मेति ।
न चायमसिद्धो हेतुः; शरीराद्बहिस्तत्प्रतिभासाभावस्य प्रतिपादि-
तत्वात् । उक्तप्रकारेण चानवयवस्य बाधकप्रमाणस्य कस्यचिद्-
सम्भवाच्च विशेषणासिद्धत्वमिति । तच्च परेषां यथाभ्युपगत-
स्वभावमात्मद्रव्यमपि घटते ।

२५ नापि मनोद्रव्यम्; तस्य प्रागेव स्वसंवेदनसिद्धिप्रस्तावे निर-
कृतत्वात् । ततः पृथिव्यादेर्द्रव्यस्य यैथोपवर्णितस्वरूपस्य प्रमाण-
तोऽप्रसिद्धेः 'पृथिव्यादीनि द्रव्याणीतरेभ्यो भिद्यन्ते द्रव्यत्वाभि-
सम्बन्धात्' इत्यादिहेतूपन्यासोऽविचारितरमणीयः, तत्स्वरूपा
सिद्धौ हेतोराभ्यासिद्धत्वात् । स्वरूपासिद्धत्वाच्च; द्रव्यत्वाभिस-

१ समानजातीयमित्रावयवधारन्त्वं प्रलक्षणेन न ज्ञायते यतः । २ अग्रे बह्व्यमाणा ।
३ कारणात् । ४ अवयवेषु । ५ किंवा । ६ केयूरोत्पादः । ७ वयं जैमाः ।
८ अवयवपक्षेभ्यः । ९ जैनस्य । १० आत्मनि । ११ आत्मन्येव । १२ तस्य-
आत्मनः । १३ प्रदेशयोः । १४ सङ्घटनकारिकसंशयात् । १५ शरीरे एव प्रति-
नियतदेशकालाकारतया निर्वाधबोधे प्रतिभासमानत्वादिति । १६ वैशेषिकद्वारा ।

म्बन्धो हि समवायलक्षणो भवताम्युपगम्यते, न चासौ प्रमाणतः प्रसिद्ध इति । विशेषणासिद्धत्वं च; द्रव्यत्वसामान्यस्य यथाम्युपगमत्वभावस्यासम्भवात् । तत्र परपरिकल्पितो द्रव्यपदार्थो घटते ।

नापि गुणपदार्थः । स हि चतुर्विंशतिप्रकारः परैरिष्टः । तथाहि—
“रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ ५
परत्वापरत्वे बुद्ध्यः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्च तु गुणाः”
[वैशे० सू० १।१।६] इति सूत्रसङ्गृहीताः सप्तदश, चैशब्दसमु-
च्चिताः गुरुत्वद्रवत्वज्वलसंस्कारधर्माधर्मशब्दाश्च सप्तेति । तत्र
रूपं चक्षुर्ग्राह्यं पृथिव्युदकज्वलनवृत्तिः । रसो रसनेन्द्रियग्राह्यः
पृथिव्युदकवृत्तिः । गन्धो घ्राणग्राह्यः पृथिवीवृत्तिः । स्पर्शस्त्व- १०
गिन्द्रियग्राह्यः पृथिव्युदकज्वलनपवनवृत्तिः ।

संख्या त्वेकादिव्यवहारहेतुरेकत्वादिलक्षणा, एकद्रव्या चाने-
कद्रव्या च । तत्रैकसंख्या एकद्रव्या । अनेकद्रव्या तु द्वित्वादि-
संख्या । सा च प्रत्यक्षत एव सिद्धा, विशेषद्वेष्टे निमित्तान्त-
रापेक्षत्वादनुमानतोपि ।

१५

परिमाणव्यवहारकारणं परिमाणम्, महदणु दीर्घं ह्रस्वमिति
चतुर्विधम् । तत्र महद्विचिं नित्यमनित्यं च । नित्यमाकाशकाल-
दिगात्मसु परममहत्त्वम् । अनित्यं क्षणिकादिद्रव्येषु । अण्वपि
नित्यानित्यमेवाद्विविधम् । परिमाणमनस्तु परिमाणद्वयलक्षणं
नित्यम् । अनित्यं क्षणिके एव । वंदरामलकवित्त्वादिषु तु मह- २०
त्वपि तत्प्रकर्षाभावमपेक्ष्य भौकोऽणुव्यवहारः ।

ननु महदीर्घत्वयोरणुकादिषु प्रवर्त्तमानयोर्द्युणुके चाणुत्व-
ह्रस्वत्वयोः को विशेषः ? ‘महत्सु दीर्घमानीयतां दीर्घेषु महदानीय-
ताम्’ इति व्यवहारमेदप्रतीतेरस्त्यनयोः परस्परतो मेदः । अणुत्व-
ह्रस्वत्वयोस्तु विशेषो योगिनां तद्वर्तिनां प्रत्यक्ष एव । महदादि २५

१ वैशेषिकेय । २ निलनिरग्रत्वेन । ३ च इति कपुस्तके नास्ति । ख, ग,
घपुस्तकेभ्यः संगीतः । ४ एव । ५ विशेषः=मेदः । ६ एकादिप्रत्यया विशेषण]
अणुपेक्षा विशिष्टप्रत्ययत्वाहण्नीत्यादिप्रत्ययवदिति । ७ तत्रैकत्वसंख्या नित्यद्रव्येषु
नित्या कार्यद्रव्येष्वनित्या । द्वित्वादिसंख्या तु पराद्वीन्ता अपेक्षासु द्वित्रय्या सर्वत्रानित्या ।
८ घट्टणकारमित्यर्थः । ९ नन्वणु द्रव्यणुके एव यदि वर्त्तते तर्हि वंदरामलकादिष्वणु-
परिमाणव्यवहारः कथमित्याशङ्क्यागाह । १० तत्त्व=अतिशयस्य । ११ उपचरितः ।
१२ परिमाणयोः । १३ वस्तु । १४ वस्तु । १५ महदादिपरिमाणस्य रूपादि-
भ्योऽमेदो भविष्यतीत्युक्ते सत्याह ।

च परिमाणं रूपादिभ्योऽर्थान्तरं तत्प्रत्ययविलक्षणबुद्धिग्राह्यत्वात्सुखादिवत् ।

संयुक्तमपि द्रव्यं यद्वशात् 'अग्नेदं पृथक्' इत्यपोद्भिंयते तदपोद्धारव्यवहारकारणं पृथक्त्वं घटादिभ्योऽर्थान्तरं तत्प्रत्ययविलक्षणज्ञानग्राह्यत्वात्सुखादिवत् ।

अप्राप्तिपूर्विका प्राप्तिः संयोगः । प्राप्तिपूर्विका चाप्राप्तिर्विभागः । तौ च द्रव्येषु यथाक्रमं संयुक्तविभक्तप्रत्ययहेतू ।

'इदं परमिदमपरम्' इति यतोऽभिधानप्रत्ययौ भवतस्तद्यथाक्रमं परत्वमपरत्वं च । बुद्ध्यादयः प्रयत्नान्ताश्च गुणाः सुप्रसिद्धा एव ।

१० शुरुत्वं च पृथिव्युदकवृत्ति पतनक्रियानिबन्धनम् । द्रवत्वं तु पृथिव्युदकज्वलनवृत्तिः स्प(स्य)न्दनहेतुः । पृथिव्यनलयोनैमित्तिकम् । अपां सांसिद्धिकम् । जेहस्त्वऽम्भस्येव शिघ्रप्रत्ययहेतुः ।

संस्कारस्तु त्रिविधो वेगो भावना स्थितस्थापकमेति । तत्र वेगाख्यः पृथिव्यतेजोवायुमनस्सु मूर्तद्रव्येषु प्रयत्नाभिघातविशेषः १५ पापेक्षात्कर्मेणः समुत्पद्यते । नियतदिक्रियाप्रतिब(प्रब)न्धहेतुः स्पर्शवद्द्रव्यसंयोगविरोधी च । भावनाख्यः पुनरात्मगुणो ज्ञानजो ज्ञानहेतुश्च, दृष्टानुभूतश्रुतेष्वप्यर्थेषु स्मृतिप्रत्यभिज्ञाकार्योन्नीयमानसद्भावः । मूर्तिमद्द्रव्यगुणः स्थितस्थापकः, घनावयवसन्निवेशविशिष्टं समाश्रयं कालान्तरस्थायिनमन्यथाव्यवस्थितमपि प्रयत्नतः २० पूर्ववद्यथावस्थितं स्थापयतीति कृत्वा, इदयते च तालपत्रादेः प्रभूततरकालसंवेष्टितस्य प्रसार्यमुक्तस्य पुनस्तथैवावस्थानं संस्कारवशात् । एवं घटुःशास्त्राभृद्गदन्तादिषु भर्त्तापवर्तितेषु वस्त्रादौ चास्य कार्यं परिस्फुटमुपलभ्यत एव । धर्मादेर्यस्तु सुप्रसिद्धा एवेति ।

१ विभागात्प्रयत्नस्य भेदाभावात्प्रयत्नप्रतिपादनं किमर्थमित्युक्ते सत्याह । २ एषश्च क्रियते । ३ अस्तु विभागात्प्रयत्नस्य भेदस्तथापि घटादिभ्योऽभेदो नभिव्यतीत्युक्ते नकि । ४ अनिलावेव । ५ अनिलमेव । ६ अनिलमेव । ७ अनिला एव । ८ तत्र पार्थिव्याणुषु निलं द्रव्यगुणादिभिनिलम् । ९ लाक्षाद्योहसिषु । १० सर्पिःसुवर्णयोः । ११ अनिलमिलयः । १२ निलमिलयः । भाव्याणुषु निलमाप्यद्रव्यगुणादिषु त्वनिलम् । १३ असर्वगतद्रव्यपरिमाणवर्तिलस्ययः । १४ कर्मचारयः । १५ वृक्षादिकेन स्पर्शेपता द्रव्येण सह वेगाख्यस्य वागादेः संयोगे सति वेगाख्यः संस्कारः सर्वं विनश्यतीत्यर्थः । १६ आकृष्ट्युक्तेषु । १७ च त्रिविधोप्यं संस्कारो अनिल एव, नर्माधर्मात्मविशेषगुणानिलावेव, शब्दरसाकाशविशेषगुणोऽनिल एव ।

तदेतत्स्वरूपद्वयं परेषाम्; रूपादिगुणानां यथोपवर्णितस्वरू-
पेणावस्थानासम्भवात् । न खलु रूपं पृथिव्युदकज्वलनवृत्त्येव,
वायोरपि तद्वत्तासम्भवात् । तथाहि-रूपादिमान्वायुः पौद्गलिक-
त्वात् स्पर्शवत्त्वाद्वा पृथिव्यादिवत् । एवं जलानलयोरपि गन्धर-
सादिमत्ता प्रतिपत्तव्या । रूपरसगन्धस्पर्शमन्तो हि पुद्गलास्तत्कथं ५
तद्विकाराणां प्रतिनिर्यमः ? रूपाद्याविर्भावतिरोभावमात्रं तु तत्रा-
विरुद्धम्, जलकनकौदिसंप्रयुक्तानले मासुररूपोष्णस्पर्शयोस्ति-
रोभावाविर्भाववत् ।

संख्यापि संख्येयार्थव्यतिरेकेणोपलब्धिलक्षणप्राप्ता नोपल-
भ्यते इत्यसती खरविषाणवत् । न च विशेषणमसिद्धम्, तस्या १०
इदयत्वेनष्टेः । तथा च सूत्रम्-“संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं
संयोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि”
[चैशे० सू० ४।१।११] इति ।

‘एकादिप्रत्यया विशेष[ण]ग्रहणापेक्षा विशिष्टप्रत्ययत्वाद्दण्डी-१५
स्यौदिप्रत्ययवत्’ इत्यनुमानतोपि न संख्यासिद्धिः; यतो यथा
‘एको गुणोपि(णः) बहवो गुणाः’ इत्यादौ संख्ययामन्तरेणाप्येकादि-
बुद्धिस्तथा घटादिष्वप्यसहायादिस्वभावेष्वेकादिवुद्धिर्मविन्यती-
त्यलमर्थान्तरभूतयैकादिसंख्यया । न च गुणेषु संख्या सम्भ-
वति; अद्रव्यत्वात्तेषां तस्याश्च गुणत्वेन द्रव्याभितत्वात् । न च २०
गुणेषूपचरितमेकत्वादिज्ञानम्, अस्खलहृत्तत्वात् । यदि चाश्रय-
गता संख्येयकार्यसमवायाद्गुणेषूपचर्येत; तर्हि ‘एकस्मिन्द्रव्ये रूपा-
दयो बहवो गुणाः’ इति प्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात्, तदाश्रयद्रव्ये
बहुत्वसंख्याया अमावीत् । ‘षट् पदार्थाः’ इत्यादिव्यपदेशे च
किं निमित्तमित्यभिधातव्यम् ? न ह्यत्रैकार्यसमवायिनी संख्या २५
सम्भवति; तथा सह षट्पदार्थानां कैचित्समवायाभावात् । अस्तु
चा संख्या, तथाप्यस्याः कथं गुणत्वसिद्धिः सत्त्वादिवत् षट्स्यपि
पदार्थेषु प्रवृत्तेः ?

१ पृथिव्यादीनाम् । २ पृथिव्यामेव गन्ध इत्यादिः । ३ तर्हि सर्वत्र तेषामाविर्भावः
कुतो न सादित्युक्तं सत्याह । ४ उष्ण । ५ अग्नेरपलं प्रथमं गुणमिलिगमत्तः
प्रसिद्धतैमसत्वं कनकादीनां ततः कथमुक्तं कनकादिसंयुक्तानल इत्यारम्भयामाह कनकेति
पृथिव्यंशोस्तीति । ६ परस्व । ७ अत्र दण्डपुरुषयोः संयोगो विशेषः । ८ निर्गुणा
[शुण्डा] इति वचनात् । ९ संख्यारहितेभिलभः । १० अवापि । ११ नाभय-
गतद्रव्यसौकत्वात् । १२ कैवल्यद्रव्यसमवेता । १३ द्रव्यलक्षणोऽयं ।

ननु यदि संख्या गुणो न स्यात्तर्हानित्यत्वमसमवाधिकारणत्वं चास्या न स्यात् । अस्ति च तदुभयम् । तथा श्लोकम्—“एकादिव्यवहारहेतुः संख्याः । सा पुनरेकद्रव्या चानेकद्रव्या च । तत्रैकद्रव्यायाः सल्लिख्यदिपरमाणुरूपादीनामिव नित्यानित्यत्वनिष्पत्तयः ।
 ५ सल्लिख्यदिपरमाणवश्चेति विग्रहः । अनेकद्रव्या तु द्वित्वादिका परार्थान्ता । तस्याः स्वत्येकत्वेभ्योऽनेकविषयबुद्धिसहितेभ्यो निष्पत्तिः, अपेक्षाबुद्धिनाशाच्च विनाशाः कचिदार्थविनाशादुभयविनाशाच्चेति चार्थः । असमवाधिकारणत्वं च द्वित्वबहुत्वसंख्यायाः द्व्यणुकादिपरिमाणं प्रति” [प्रश्न० भा० पृ० १११-११३]
 १० इति, एतदपि मनोरथमात्रम्, भेदवद्व्याः कारणत्वभावात् । यथैव हि कार्यभिन्नतायां कारणभिन्नताया असमवाधिकारणत्वं भवता नैष्यते तथैकत्वस्यापि तत्रेष्टव्यं तस्याऽभेदपर्यायत्वात् । अत्र भेदभेदौ च स्वात्मपरात्मापेक्षौ रूपादिभ्येपि भेदतः । यथा चैकमभिन्नमिति पर्यायस्तथानेकं भिन्नमित्यपि । तथा च द्वित्वा-
 १५ दिरप्यनेकत्वपर्यायः, तस्योत्पत्त्यादिकल्पना न कार्या ।

नन्वेवं सर्वत्र ‘द्वे त्रीणि’ इत्यादिप्रतिभासप्रसङ्गादे प्रतिभासप्रवि-

१ उत्तरसंख्योत्पत्तौ प्राक्तनसंख्याऽसमवाधिकारणं, इत्थं समवाधिकारणमपेक्षा-
 किमितिप्रकरणमिति । २ आदिशब्देन द्वयो र्द्वयः । ३ सल्लिखि (कार्यकल्पन)
 रूपादीनामनित्यत्वनिष्पत्तिर्वया तथाऽनित्यैकद्रव्यगताया एकसंख्याया नित्यत्वनि-
 ष्पत्तिः, यथा च जगदिपरमाणुरूपादीनां (कारणरूपाणां) तथा नित्यै-
 कद्रव्यगताया एकसंख्याया नित्यत्वमिति यावः । ४ कार्यरूपाः । ५ कारणरूप-
 रमाणवः । ६ द्वित्वादिसंख्यां प्रलपेष्टाणुकेऽकारणत्वनेकत्वसंख्यायास्तत्समवाधि-
 कारणत्वमिति भावः । ७ इमौ द्वयौ भेदतः । ८ संख्येय आत्मयः ।
 ९ संख्येयस्य च । १० संख्यात् । ११ उत्तरपुनं प्रति प्राक्तनपुनस्तत्समवाधिकार-
 णत्वान्नुपपत्तात् । १२ द्वित्वादिसंख्यां प्रति । १३ द्वित्वादिसंख्यां प्रति । १४ जने-
 दपर्यायत्वेन्यसमवाधिकारणत्वं कुतो न भवतीत्युक्ते सलाह । १५ यकत्वानात्म्यम् ।
 १६ रूपस्य स्वरूपापेक्षयाऽभेदः, परापेक्षया भेदः, यत्र रसादिषु बाध्यम् ।
 १७ जनेदोऽसमवाधिकारणं न भवति इत्याहन्नाम वृत्तिमत्ताभेदवत्तरादिभेदोति ।
 १८ अमिश्रणं इत्थं प्राक्तं तत्रापि स्वपररूपापेक्षयाऽभेदमेव । १९ आदिशब्देन
 चाक्षसिद्धिसंग्रहः । २० द्वित्वादेरनेकत्वभावे वस्तुलक्षणेवापत्तयः, तस्य च
 स्वकारणकत्वापत्तयेरनेकविषयबुद्धिसहितेभ्यो निष्पत्तिरिलादि विरुद्धमिति यावः ।
 २१ द्वित्वादेरनेकत्वपर्यायत्वप्रकारेण । २२ विष्णुः पञ्चमहाविष्णुः । २३ द्वित्वादेर-
 नेकत्वपर्यायत्वात् ।

भागो न स्यादऽनेकत्वस्याविशिष्टत्वात्, तन्न, अपेक्षाबुद्धिविशेष-
वृत्तिसिद्धेरप्रतिबन्धात् । यथैव ह्यनेकविषयत्वाविशेषेऽपि काचि-
दपेक्षाबुद्धिः द्वित्वस्योत्पादिका काचिद्वित्वस्य । न ह्यपेक्षाबुद्धेः पूर्वं
द्वित्वादिगुणोक्तिः अनवस्थाप्रसङ्गात्, अपेक्षाबुद्धिजनितस्य वा
द्वित्वादेरानर्थक्यानुपङ्गात् । तथा द्वित्वादिप्रत्ययविभागोऽपि भवि-
ष्यति । यत एव चाभिन्नभिन्नत्वलक्षणाद्विशेषादपेक्षाबुद्धिविशेष-
स्तत एवैकत्वादिव्यवहारभेदोऽपि भविष्यति इत्यलमन्तर्गद्भुनैक-
त्वादियुगेन ।

एवं च गुणेष्वन्येकत्वादिव्यवहारोऽकष्टकल्पनः स्यात् । गणि-
तव्यवहारश्च 'पदपञ्चविंशतिभिः सार्धं शतम्' इत्यादिः १०
शुगमः । तस्मादभिन्नं तावदेकमित्युच्यते, तदपरेणाभिन्नेन
सह द्वे इति, ते त्वपरेणौमिन्नेन सह त्रीणीत्येवमादिः सप्तम्यो
लोकैः प्रसिद्धो गणितप्रसिद्धश्चैकत्वादिव्यवहारहेतुर्द्रष्टव्य इति ।

अथ द्वित्वबहुत्वसंख्यायां ह्यणुकादिपरिमाणं प्रत्यक्षमवाधि-
कारणत्वोपपत्तेः सङ्कावसिद्धिः, तन्न, अस्यास्तदसमवायिका-
रणत्वे प्रमाणाभावात् । परिशेषोऽस्तीति चेत्, न; कारणपरिमा-
णसौवासमवाधिकारणत्वसम्भवादूर्पादिवत् ।

ननु परमाणुपरिमाणजन्यत्वे ह्यणुकेऽपि परमाणुत्वप्रसङ्गः
स्यात्, तन्न, कार्यकारणयोस्तुल्यपरिमाणत्वे इष्टान्ताभावात् ।
सर्वत्र हि कारणपरिमाणादधिकमेव कार्यपरिमाणं दृश्यते । २०
परिमाणवच्च कैर्मन्यस्यसमवायिकारणत्वमस्याः स्यात् । दृश्यते
हि द्वौर्म्या बहुभिर्वा पापाणाद्युत्थापनम् । न चान्न संख्यायाः
कारणत्वं भवद्भिरिष्टम् । अथास्यास्तत्रापि निमित्तत्वमिष्यते,
को वै निमित्तत्वे विप्रतिपेद्यते ? सौमान्यादीनामपि तदभ्युपग-
मात् । असमवायिकारणत्वं तु तस्याः परिमाणवदुत्थापनादि-
कर्मण्यभ्युपगन्तव्यम्, न चान्यत्रौपीत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

१ कर्मण्यभ्युपगन्तव्यं प्रति कर्मण्येनामिमताया अपेक्षाबुद्धेरनेकत्वा-
मिषेनेति भेदो यथा तथा द्वित्वादिप्रत्ययविभागोऽपि । २ अपेक्षाबुद्धेः पूर्वमेव
द्वित्वादिगुणोक्त्युक्ते तस्मात् । ३ द्वित्वादिगुणस्यापि द्वित्वादिप्रत्ययपरसाद्वित्वा-
दिगुणवत्तत्वाव्यपारस्येति । ४ मित्रानिजाललक्षणाद्विशेषादेकत्वादिजननप्रकारेण ।
५ संख्येयात् । ६ यत्नेन । ७ अपरसंख्येयात् । ८ सङ्केतः । ९ ह्यणुकादिप-
रिमाणसमवायिकारणत्वं सद्रूपकार्यमाहृतवदित्यनुमानम् । १० कारणरूपादेर्व्या
कार्यरूपादिकं प्रत्यक्षमवाधिकारणत्वम् । ११ ह्यणुकादिपरिमाणम् । १२ परमाणुपरि-
माणरूपम् । १३ पापाणाद्युत्थापनकक्षणे । १४ नष्टत्वात् । १५ तैः ।
१६ निवारं करोति । १७ पुनस्तत्वादीनाम् । १८ अभ्युपगन्तव्यं चेति सम्बन्धः ।
१९ परिमाणे । २० सप्तमात्राः परिमाणं प्रत्यक्षमवाधिकारणत्वपरिष्कारणेन ।

यदप्युक्तम्—महदादिपरिमाणं रूपादिभ्योर्ध्वान्तरं तत्प्रत्ययवि-
लक्षणबुद्धिप्राप्तत्वात्सुखादिवत् । तदप्युक्तम् । हेतोरसिद्धेः,
पटाद्यर्थव्यतिरेकेण महदादिपरिमाणस्याभ्यस्तप्रत्ययप्राप्तत्वेनासं-
वेदनात् ।

- ५ असत्यपि मंददादौ प्रासादमालादिषु महदादिप्रत्ययप्राप्तुर्मा-
त्रप्रतीतेरनैकान्तिकश्चायम् । न च यत्रैव प्रासादादौ समवेतो
मालाख्यो गुणस्तत्रैव महत्त्वादिकमपि इत्येकार्थसमवायवशात्
'महती प्रासादमाला' इति प्रत्ययोत्पत्तेर्नानैकान्तिकत्वम् । सैसम-
यविरोधात् । न खलु प्रासादो भवद्विरवयविद्रव्यमभ्युपगम्यते
• विजातीयानां द्रव्यानारम्भकत्वात् । किं तर्हि ? संयोगात्मको
गुणः । न च गुणः परिमाणवान्, "निर्गुणा गुणाः" []
इत्यभिधानात् । ततो मालाख्यस्य गुणस्य प्रासादादिष्वभावात्
'प्रासादमाला' इत्ययमेव प्रत्ययस्तावदुक्तः, कुरत एव सा
'महती इत्या वा' इति प्रत्ययः, मालायाः संख्यात्वेन प्रासादानां
५ संयोगत्वेन महदादेस्त परिमाणत्वेन परैरभ्युपगमात् ।

- अथ माला द्रव्यसमावेक्ष्यते; तथापि द्रव्यस्य द्रव्याभ्यवत्त्वा-
भावाः संयोगस्वरूपप्रासादाभ्यर्थत्वं युक्तम् । अथासौ जातिस्व-
भावेक्ष्यते; तर्हि प्रत्याभयं जातेः समवेतत्वादेकस्मिन्नपि प्रासादे
'माला' इति प्रत्ययोत्पत्तिः स्यात् । 'एका प्रासादमाला महती
२० दीर्घा इत्या वा' इत्यादिप्रत्ययानुपपत्तिस्तत्र तदवस्थेन, मालायां
तदाभये च प्रासादादावेकत्वादेर्गुणस्याऽसम्भवाद । बह्वीषु च
प्रासादमालासु 'माला माला' इत्यनुगतप्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात्,
जाताश्चऽप्यपरजातेरनुपपत्तेः । नै' नौपचारिकोयं प्रत्ययोऽस्त्व-
ल्लहसित्वात् । न हि मुख्यप्रत्ययाविशिष्टस्यौपचारिकत्वं युक्तमति-
५ प्रसङ्गात् । अत एव मालादिषु महत्त्वादिप्रत्ययोपि नौपचारिकः ।
ततो यथा स्वकारणकलापात्प्रासादाद्यो महदादिरूपतयोत्पत्ता-

१ गुणरूपे । २ जातिना पर्वमालादिषु । ३ अन्यथा । ४ गुणे गुणसङ्का-
नानुपगमात् । ५ वैज्ञेयिकैः । ६ काष्ठादीनाम् । ७ प्रासादकङ्कणावयविद्रव्यम् ।
सस्य । ८ सन्त्वादिना सभावीना ये सन्त्वादप्यस्य पद पटावयवविद्रव्यारम्भका
इति भावः । ९ बहुत्वकङ्कणेन । १० काष्ठादिभिः । ११ वैज्ञेयिकैः । १२ वसः ।
१३ एकस्मिन्नपि प्रासादे भावनाः सङ्कावाप । १४ महत्त्वगुणमुक्तः । १५ द्वित्व-
बहुत्वादेः । १६ जातिरूपाद् । १७ निस्सामान्यानि सामान्यानीति वचनात् ।
१८ मुख्यमासौ प्रत्ययश्च कङ्कमुष्ठादिषु गौरीरत्नादिरूपक्षेनाविच्छिद्योऽनुगतत्वेन
समानासस्य । १९ मुख्यसाध्वीपचारिकत्वप्रसङ्गात् ।

स्तत्प्रत्ययगोचरास्तथा घटादयोपीत्यलमर्थान्तरभूतपरिमाणपरि-
कल्पनया ।

यदप्युक्तम्-‘नदरामलकादिषु भाकोऽणुव्यवहारः’ इत्यादि, तद-
प्युक्तिमात्रम्, मुख्यगौणप्रविभागस्यात्राप्रमाणत्वात् । न खलु यथा
सिद्धमाणवकादिषु मुख्यगौणविवेकप्रतिपत्तिः सर्वेषामभिगाने-
नास्ति तथा ‘झाणुके एवाणुत्वहस्तत्वे मुख्येऽन्यत्र भाके’ इति
कस्यचित्प्रतिपत्तिः । प्रक्रियामात्रस्य च सर्वशास्त्रेषु सुलभत्वा-
च्चातो विवादनिवृत्तिः ।

आपेक्षिकत्वाच्च परिमाणस्यागुणत्वम् । न हि रूपादेः सुखादेर्वा
गुणस्यापेक्षिकी सिद्धिः । योपि वीरवीरतरादेः सुखसुखतरादे-
र्वाऽऽपेक्षिको व्यवहारः सोऽपि तत्प्रकर्षापकर्षनिवन्धनो न
पुनर्गुणस्वरूपनिवन्धनः । ततो हस्तदीर्घत्वादेः संख्यानविशेषाद्व्य-
तिरेकीभावात्कथं गुणरूपता ? तद्विशेषस्यापि कथञ्चिन्नेवाभिधाने
व्यसन्नचतुरादेरपि भेदेनाभिधानानुपपन्नात्कथं तत्रैतदुर्विधत्वोप-
वर्णनं संशोभेतेति ? १५

यद्योक्तम्-पृथक्त्वं घटादिभ्योर्थान्तरं तत्प्रत्ययविलक्षणज्ञान-
प्राप्तत्वात्सुखादिवत्, तदप्युक्तिमात्रम्, हेतोरसिद्धत्वात् । न
खलु सहेतोवत्पक्षाऽन्योन्याध्यावृत्तार्थव्यतिरेकेणार्थान्तरभूतस्य
पृथक्त्वस्याप्यस्य प्रतिमास्त्विति, अत एवोपलब्धिलक्षणप्राप्त-
स्यास्यानुपपन्नमादसत्त्वम् । २०

रूपादिगुणेषु च ‘पृथक्’ इतिप्रत्ययप्रतीतिरनैकान्तः । न हि
तत्र पृथक्त्वमस्ति गुणेषु गुणासम्भवात् । न च गुणेषु
‘पृथक्’ इति प्रत्ययो भाकः, मुख्यप्रत्ययाविवक्षितत्वात् ।
न च लक्षणेणा (ण) व्यावृत्तानामर्थानां पृथक्त्वादिवैधत्वात्पृथ-
क्पता घटते, भिन्नाभिन्नपृथक्पताकरणेऽकिञ्चित्करत्वात् । भेदे-
न हि सम्भवाविति । असेदपक्षे तु पृथक्पृथक्त्वस्यैवोत्पत्तेरर्थो-
न्तरभूतपृथक्त्वगुणकल्पनावैयर्थ्यम् । प्रयोगः-वे परस्परव्यावृ-
त्त

१ परिमाणे । २ नविप्रतिपत्त्या । ३ झाणुके एवाणुत्वहस्तत्वे मुख्येऽन्यत्रा-
न्येति प्रक्रियातो मुख्यगौणविवेकप्रतिपत्तिर्मिथ्यातीत्युक्ते सत्ताह । ४ नपेक्षावनि-
तत्वात् । ५ भाकङ्कणीया । ६ आपेक्षिकत्वात्परिमाणस्य गुणत्वं नास्ति मतः ।
७ परिमाणस्य । ८ व्यतिरेको ज्ञेयः । ९ तत्त्व=परिमाणस्य । १० पृथक्त्वमिति ।
११ यदाप्यतो व्यावृत्त इति । १२ तद्व्यतिरेकेणार्थान्तरभूतस्य पृथक्त्वस्याप्यस्य
प्रतीयातो नास्ति मतः । १३ गगनकल्पनत् । १४ घटपटादीनाम् । १५ आदि-
शब्देन विभागपरिग्रहः । १६ कथम् ? तथा हि ।

चात्मानस्ते स्वव्यतिरिक्तपृथक्त्वानाधाराः यथा रूपादयः, पर-
स्परव्यावृत्तात्मानश्च वटादयोऽर्थे इति ।

ततो विभिन्नस्वभावतयोत्पन्नार्थस्यैव 'पृथक्' इतिप्रत्ययविषय-
त्वप्रसिद्धेरलं पृथक्त्वगुणकल्पनया । पृथक्प्रत्ययस्याप्यसाधारण-
५ धर्मादिवोपपत्तेः, यदा द्वेकं वस्त्वितरेभ्यो भिन्नं पश्यति प्रतिपत्ता
तदा 'एकं पृथक्' इति प्रतिपद्यते । यदा तु द्वे वस्तुवितरेभ्यो
विलक्षणैकधर्मयोगाद्विभिन्ने पश्यति तदा 'द्वे पृथक्' इति मन्यते ।
यदा त्वैकदेशत्वादिना धर्मेणतरेभ्यो बहूनि भिन्नानि पश्यति
तदा 'एतान्येतेभ्यः पृथक्' इति प्रतिपद्यते, यथा रूपादयो द्रव्या-
१० त्पृथगिति ।

संयोगस्तु समवायनिराकरणप्रबन्धकै प्रतिपेत्यते । तदेभावात्
'प्राप्तिपूर्विका अप्राप्तिर्विभागः' इत्यपि निरस्तम् । न हि ग्राम्यावि-
सान्तरैरूपतापरित्यागेन निरन्तररूपतयोत्पन्नवस्तुव्यतिरेकै-
णान्यः संयोगः संयुक्तप्रत्ययविषयोनुभूयते । भिच्छिन्नोत्पत्ति-
१५ कमेव हि वस्तु निरन्तरप्रत्ययविषयः निरन्तरोपरचितदेवदृश-
यवदत्तगृहवत् । न कलु गृहयोः परेणार्पि संयोगगुणाभ्यस्त-
मिष्टम्, निर्गुणत्वाङ्गणानाम्, तयोश्च संयोगात्मकत्वेन गुणत्वाद् ।
नापि विच्छिन्नोत्पन्नवस्तुव्यतिरेकेणान्यो विभागो विभक्तप्रत्यय-
विषयो हिमवद्विन्ध्यवत् । न हि तयोर्विभागाभ्यस्तं प्राप्तिपूर्वि-
२० काया अप्राप्तेर्विभागलक्षणायास्तयोरभावात् ।

प्रयोगः-या संयुक्ताकारा बुद्धिः सा भवत्परिकल्पितसंयोगा-
नास्पदवस्तुविशेषमात्रप्रभवा यथा 'संयुक्तौ प्रासादौ' इति
बुद्धिः, संयुक्ताकारा च 'चैत्रः कुण्डली' इत्यादिबुद्धिरिति ।
यद्वा, याऽनेकवस्तुसन्निपाते सति संयुत्पद्यते सा भवत्परिक-
२५ ल्पितसंयोगविकलानेकवस्तुविशेषमात्रभाविनी यथाऽनिरलाऽव-
स्थिताऽनेकतन्तुविषया बुद्धिः, तथा च विमल्यनिकरणभावापन्ना
संयुक्तबुद्धिरिति ।

तथा मेवादिषु विभक्तबुद्धिर्विभागरहितपदार्थमात्रनिबन्धना

१ स्वव्यतिरिक्तपृथक्त्वानाधारा वटादयो यतः । २ वस्तुव्यतिरिक्तपृथक्त्वानाधारा-
त्कर्म पृथक्त्वप्रत्ययोत्पत्तिरित्युक्ते सत्ताह । ३ वसाधारणः-तन्मात्रपरिः । ४ न्यायिना
काक्यलक्षकप्रत्ययः । ५ भिन्नरूपतेलवैः । ६ नभिरूपप्रत्ययवैः । ७ नभ्यवत् ।
८ न कैवल्यमसाभिः । ९ गृहस्य गुणत्वमसिद्धमित्याह । १० इन्द्रियाणामनेकवस्तुभिः
सुह सन्निपाते सन्निकर्तः समुत्पद्यते इत्यर्थः । ११ नयमसामान्येनाग्निवो देव कलादि-
प्रकारेण ।

विभक्तत्वाद्नेकपदार्थसंविधानार्थोदयत्वाद्वा देवदत्तमददत्त-
बृहद्विभागबुद्धिवद् द्विमवद्विन्व्यविभागबुद्धिवद्वा ।

सत्यपि वा संयोगे विभागस्य तदभावलक्षणत्वाच्च गुणरूपता ।
कथमन्यथा पुत्रादौ विभक्तित्वेऽपि संयोगे विभक्तप्रत्ययः स्यात् ?
न सन्न तत्र विभागः संभवति, नैव कियत्कालस्यापिगुणत्वेना-
नुपगमात् । कथं वा द्विमवद्विन्व्यादौ संयोगेऽनुत्पत्तेरपि विभक्त-
प्रत्ययः स्यात् संयोगाभावात् ? व्यतिरिक्तविभागस्वरूपस्य कश्चिद-
ननुपलम्भाद्योपचारकत्वापि संशयी ।

विभागभावे कुतः 'संयोगनिवृत्तिरिति चेत् ? 'कर्मण एव'
इति ज्ञेयम् । 'कर्मभावावपि तद्विवृत्तिः स्यात्' इत्यप्युक्तम् । १०
संयोगभावनिवृत्तेरिष्टत्वात् । संयोगविशेषनिवृत्तिस्तु कर्मविशे-
षात्, त्वमेते ततो विभागविशेषोत्पत्तिवत् । कर्मणः संयो-
गोत्पादकत्वात्कथं तद्विवर्तकत्वमिति चेत् ? तर्हि हस्तबाणादि-
संयोगस्य कर्मोत्पादकत्वोपलम्भात् कथं ब्रह्मादौ बाणादिसंयो-
गस्य तद्विवर्तकत्वं स्यात् ? अन्यस्य तद्विवर्तकत्वमन्यथापि १५
समानम् । न सन्न येनैव कर्मणा यः संयोगो जनितः स
तेनैव निवर्त्यते इति ।

एतेन विभागजविभागोऽपि चिन्तितः । तस्यापि संयोगाभावरू-
पस्य किंवात एवोत्पत्तिप्रसिद्धेः । ननु यदि विभागजविभागो न
स्यात्तर्हि हस्तकुण्डलसंयोगविनाशेऽपि शरीरकुण्डलसंयोगविनाशो न २०
भास्येति, तत्र हस्तकुण्डलसंयोगव्यतिरेकेण शरीरकुण्डलसंयोगस्यै-
वासंभवात् । हस्तकुण्डलसंयोगादेवाद्यौ कल्प्यते इति चेत्, तर्हि
हस्तकर्मवर्धनाच्छरीरेऽपि कर्म कस्याच्च कल्प्यते मुख्यक्षेपसमा-
धानत्वात् ?

१. नवेकपदार्थैः सह तद्विभक्तं दन्तिनामात्, तस्यानन्त उदयो नसा इति
कारणम् । २. विभागस्य । ३. ततो यत्र संयोगपूर्वको विभक्तप्रत्ययस्यैव
विभागव्यवहारो भव्यते, न भावयोः आह संयोगः गत्यादिभावा इति । ४. व्यति-
रिक्तमनुनः सत्यपि तद्विवृत्तिरिति । ५. कश्चिन्नुत्पत्तेरपि तद्विवृत्तिरिति । ६. कियत्कालः ।
७. ततो । ८. कस्यापिदेव कर्मण इत्यर्थः । ९. तस्य=संयोगस्य । १०. वैना-
शम् । ११. यत्र प्रत्ययान्तक (वत्स्यु) संयोगविशेषनिवृत्तिविशेषावर्तमानव्यति-
रिक्तप्रत्ययवर्तिनाम् इति संकल्पः । १२. तत्र=नैवेदिकस्य । १३. यत्र देहादेकान्तर-
व्यतिरिक्तप्रत्यये कर्म भव्यते । १४. ब्रह्मादौ संयुज्य बाणादिः पुनर्न ततोपदेष्ट-
व्यतीत्यर्थः । १५. संयोगनिवृत्तेः कर्मकामप्रतिफलदेव ।

यथोच्यते तत्प्रसिद्धयेऽनुमानम्—विश्वसितावयवक्रियाऽऽका-
शादिदेशेभ्यो विभागं न करोति, इन्द्रियारम्भकसंयोगविरो-
धिबिभागोत्पादकत्वात्, या पुनराकाशादिदेशविभागक्रीं सा
संयोगविशेषनिवर्त्तकविभागजनिकापि न भवति यथाकृच्छि-
५ क्रियेति । यदि भिद्यमानवशाद्यवयवविद्रव्यस्यावयवक्रिया आका-
शादिदेशेभ्यो विभागं कुर्यात् तर्हि वंशादिद्रव्यारम्भकसंयो-
गविरोधिबिभागोत्पादकमेवास्या न स्पष्टद्रव्यस्यावयवविद्रव्य-
क्रियावत् । ततोऽवयवविद्रव्यस्याकाशादिदेशविभागोत्पादकोऽ-
विभागोऽस्त्युपगन्तव्यः, इत्यप्यसाम्प्रतम्, वक्ष्यं विभागोत्पा-
१० दकत्वस्यासिद्धत्वात् । क्रियात् एव संयोगनिवृत्तेरवकत्वात् ।
अथ 'अवयविनस्तत्क्रियाऽऽकाशादिदेशसंयोगं न निवर्त्तयति
इन्द्रियारम्भकसंयोगनिवर्त्तकत्वात्' इतीदमत्र विवक्षितम्, तथा-
र्थसाधारणो हेतुः, सपक्षेप्याकाशादिदेशसंयोगानिवर्त्तकं रूपादी
वृत्तेरभावात् । न चावयवसंयोगादवयविनः संयोगोन्मः, तैर्दे-
५ कान्तस्य प्रागेव प्रतिक्षेपात्, विनीचोत्पादप्रक्रियायाश्च कृतो-
त्तरत्वात् । तत्र विभागो भटते ।

नापि परत्वापरत्वे, परापरप्रत्ययामिधानयोस्तदन्तरेणापि
रूपादी सम्प्रवात् । तथाहि—क्रमोत्पन्ननीलादिगुणेषु 'परं नीलम-
परं च' इति प्रत्ययोत्पत्तिः असत्यपि परत्वापरत्वलक्षणे गुणे दृष्टा
१० गुणानां निर्गुणतयोपगमात्, तथा बडादिष्वपि स्यात् । अद्याव-
दिक्कालकृतः परापरप्रत्ययः, ननु बडादिष्वप्यसौ तत्कृतोस्तु
विशेषाभावात् । तथा च प्रयोगः—थोरं परापरादिप्रत्ययः स पर-
परिकल्पितगुणैरहितैर्धर्माजकृतक्रमोत्पादव्यवस्थानिवन्धनः, परा-
परप्रत्ययत्वात्, रूपोदिषु परापरप्रत्ययवत् । 'विप्रकृष्टं परं संनि-
५ कृष्टमपरम्' इति र्धनयोरेकार्थत्वाच्च मेवं पक्ष्यामः । ततश्चायुक्त-

१ भिद्यमानवशाद्यवयवविद्रव्यत्वात् । २ भिद्यमानवशाद्यवयवविन इति चेत् १ । ३ इन्द्र-
यैकादि । ४ परमाशु । ५ असारमस्तुतेचनकृता । ६ इन्द्रियारम्भकसंयोगविरोधिवि-
भागोत्पादकत्वं च सादाकाशादिदेशेभ्यो निवर्त्तकं च कुर्यादिति सन्दिग्धानैकान्तिकमे
संज्ञाह । ७ विभागादिभागो जात धर्मेः । ८ वैवादिना । ९ तर्हि विभागानादे संयोग-
निवृत्तिः कथमिति शङ्क्यामाह । १० जनैकान्तिकः । ११ तयोः अवयवावयवविरोधः ।
१२ अवयवेषु क्रिया क्रियातः संयोगः संयोगादवयविन ऊपतिमिति प्रक्रियातत्त्वबोधेन
इत्युक्ते संज्ञाह । १३ इन्द्रियारम्भकसंयोगविरोधिविभागोत्पादकत्वसाधनमसिद्धं यथा ।
१४ न नु सामानिकः । १५ गुणौ परत्वापरत्वव्यप्यौ । १६ यवो विक्कालकृष्टव्यः ।
१७ गुणकृतेषु । १८ परमिप्रकृष्टयोरेकमिप्रकृष्टव्येन ।

युक्तम्—‘विप्रकृष्टसधिकृष्टबुद्धिभ्यां परत्वापरत्वयोरुत्पत्तिः’ इति ।
न हि बटबुद्धिमपेक्ष्य कुम्भ उत्पद्यते इति युक्तम् । नापि
पर्यायवाक्यमेवादर्थो भिद्यते इति ।

किञ्च, सामान्येषु महापरिमाणाल्परिमाणगुणेषु च महद्वल्पा-
धारत्वबुद्ध्यपेक्षयोः परत्वापरत्वयोरुत्पत्तिः कल्प्यतामविशेषात् ।^५

किञ्च, परत्वापरत्वयोरुणत्वमभ्युपगच्छता मध्यत्वं च गुणो-
भ्युपगन्तव्यः, कालविकृतमव्यवहारस्याप्यत्र समानत्वात् ।

सुखदुःखेच्छादीनां चाबुद्धिरूपत्वे रूपादिवन्नात्मगुणता युक्ता,
बुद्धिरूपत्वे चातो मेदेनाभिधानमयुक्तम् । कंचिद्विशेषमादाय
बुद्ध्यात्मकानामप्यतो मेदेनाभिधाने अभिधाना(धादी)दीनामपि^{१०}
मेदेनाभिधानं कार्यम् । इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

शुक्त्वादीनां तु पुत्रलगुणत्वं युक्तमेव । ‘अतीन्द्रियं शुक्त्वं
पातोपलम्भेनानुमेयत्वात्’ इत्येतन्न युक्तम्, करतलैषुपरिस्थिते
द्रव्यविशेषे पातानुपलम्भेऽपि शुक्त्वस्य प्रतिभासनात् । रजःप्रवृ-
त्तीनामपि शुक्त्वं कस्मात्त शङ्कते इति चेत् ? ग्रहणायोग्यत्वात् ।^{१५}
तावत्तैवातीन्द्रियत्वे गन्धरसादीनामप्यतीन्द्रियत्वं स्यात् । कचिद्दूरे
तवाभयस्यान्नफलादेः प्रत्यक्षत्वेऽपि तेषां ग्रहणाभावादिति ।

पृथिव्यनलयोरप्यस्ति द्रवत्वम्, इत्यनुपपन्नम् । सुवर्णादीनाम्
“अग्नेरपलं प्रथमं सुवर्णम्” [] इत्यागमतः प्रसिद्ध-
तैजसत्वानां अनुपपत्तिपार्थिवद्रव्याणां दौष्यस्यैव द्रवत्वस्य संयु-^{२०}
क्तसमायवधात्मतीतिसम्भवात् ।

अथ ‘सर्वं पार्थिवं तैजसं च द्रव्यं द्रवत्वसंयुक्तं कपित्वात्तो-
यवत्’ इत्यनुमानास्य द्रवत्वसिद्धिः, तन्न प्रत्यक्षेण स्य (स्य)
न्वनकर्मानुपलम्भेन च बाधितविषयत्वात् । अथेत्यन्धर्मकं तत्र
द्रवत्वं जातं यत्प्रत्यक्षं न भवति स्य (स्य) न्वनक्रियां च न^{२५}
करोतीत्युच्यते । तर्हि शुक्त्वरसावज्येबर्चर्मकौ कपित्वादेव किञ्च
तैजसोभ्युपगम्येते हुन्त्याक्षेपसमाधानत्वात् ? तथा चाऽऽलोके-
गतित्त्वभावता न स्यात्, ‘रसः पृथिव्युक्कचुत्तिः’ इत्यस्य च
विरोध इति ।

१ परपरकृषेण इत्यर्थः । २ समग्र जपेक्षानुवे । ३ नादिना मलकत्त-
न्नादिप्रमाणम् । ४ नादिपदेन हरित्वालीतिप्रमाणम् । ५ जलीयस्य । ६ प्रसङ्गो
न भवतः पतनादिक्रियां च न कुर्वत इति । ७ प्रसङ्गेन पतनादिकर्मानुपलम्भेन
च बाधितविषयत्वात् तेषतो शुबलं रसत्वमित्याक्षेपः, जमेत्वाद्भर्तृकं तेनति शुबलं
रसत्वं च जातं यत्प्रत्यक्षं न भवति तत्पतनादिक्रियां च न करोतीति समाधानम् ।
८ तैजोद्रव्यस्य शुक्त्वरसलोपगमे च । ९ तैजससि रसस्य भावात् ।

‘जेहोऽस्मत्स्येव’ इत्यप्ययुक्तम्, घृतादेरपि लोके वैद्यकादिशाले च स्निग्धत्वेन प्रसिद्धत्वात् । घृतादावन्यनिमित्तत्वेनौपचारिकः स्निग्धप्रत्ययः, इत्यप्यसाम्प्रतम्, विपर्ययस्यापि कल्पयितुं शक्यत्वात् । तथा हि—तोयसम्पर्केऽप्योदनादौ च स्निग्धप्रत्ययो नास्ति ५ घृतादिसम्पर्के तु स्निग्धप्रत्ययः सर्वेषामस्येवेति । कषिकादौ तोयस्य बन्धहेतुत्वोपलम्भात्तस्यैव जेहो विशेषगुणः, इत्यप्यसाम्प्रतम्, भवता जेहोऽहितत्वेनाभ्युपगतस्यापि क्षीरजतुप्रभृतेर्वन्धहेतुत्वेन प्रतीतेः ।

जेहस्य गुणत्वाभ्युपगमे च काठिन्यमार्दवादेरपि गुणत्वाभ्युपगमः कर्तव्यः, तथा च तत्संख्याव्याघातः स्यात् । ननु काठिन्यादेः संयोगविशेषरूपत्वात्कथं गुणसंख्याव्याघातहेतुत्वम् ? तथा चोक्तम्—“अवयवानां प्रक्षिथिलसंयोगो मृदुत्वम्” [] इत्यादि, तदप्यसङ्गतम्, चक्षुषा संयोगेषु प्रतीयमानेष्वपि मार्दवादेरप्रतिभासनात् । यो हि यद्विशेषः स तस्मिन्प्रतीयमाने प्रतीयत एव यथा रूपे प्रतीयमाने तद्विशेषो नीलादिः, न प्रतीयते च संयोगेषु प्रतीयमानेष्वपि काठिन्यादिः, तस्मान्नासौ तद्विशेष इति । कटाद्यवयवानां प्रक्षिथिलसंयोगेऽपि मृदुत्वामतीत्येव, विशिष्टवर्माद्यवयवानामप्यप्रक्षिथिलसंयोगित्वेऽपि मृदुत्वोपलब्धेऽप्येति ।

१० ननु काठिन्यादेः संयोगविशेषरूपत्वाभावे कथं कठिनमेव कणिकादिद्रव्यं मर्दनादिना मृदुत्वमापाद्यते ? इत्यप्यसुन्दरम्, न हि तदेव द्रव्यं मृदु भवति । किं तर्हि ? पूर्वैकठिनपर्यायनिवृत्तौ मृदुपर्यायोपेतं द्रव्यान्तरमुत्पद्यते । संयोगविशेषमृदुत्ववादिनापि पूर्वैकद्रव्यनिवृत्तिरत्राभ्युपगतैव । ततः स्पर्शविशेषो मृदुत्वादिर- १५ भ्युपगन्तव्यः ‘कठिनः स्पर्शो मृदुः स्पर्शः’ इति प्रतीतिदर्शनात् । तथा च पाकजत्वमपि स्पर्शस्योपपन्नं घटादिषु रूपादिवत् विलक्षणस्पर्शोपलम्भार्त् नान्यथा । न च काठिन्यादिव्यतिरेकेण स्पर्शस्यान्यद्वैलक्षण्यं व्यवस्थापयितुं शक्यमिति ।

वेगाख्यस्तु संस्कारो न केवलं पृथिव्यादावेवास्ति आत्मन्य- २० व्यस्य सम्भवात्, तस्यापि सक्रियत्वेन प्रसाधितत्वात् । न च

१ अन्यत्-नक्तम् । २ मृदुरूपोऽपि संयोगगुणविशेषः । ३ मृदुत्वादेः स्पर्शविशेषत्वे च । ४ मृदुत्वादेः स्पर्शविशेषत्वाभावे स्पर्शस्य न पाकजन्यं विलक्षणस्पर्शाभावादिमिति भावः । ५ काठिन्यादेः स्पर्शविशेषत्वाभावेऽपि स्पर्शस्यान्यद्वैलक्षण्यं सम्प्रतिपत्तिरतस्तत्र विलक्षणस्पर्शोपलब्धेन पाकजन्यमप्यविरुद्धं स्पर्शसंज्ञासङ्ख्यामाह । ६ आत्मनो निष्क्रियत्वात्कर्म वेगाख्यस्य संस्कारस्य सम्भवं इत्युक्तेः समाह ।

क्रियातोऽर्थान्तरं वेगः, अस्याः शीघ्रोत्पादमात्रे वेगव्यवहारप्र-
सिद्धेः । 'वेगेन गच्छति' इति प्रतीतेः क्रियातोर्थान्तरं वेगः, इत्य-
प्ययुक्तम्, 'वेगेन गच्छति, शीघ्रं गच्छति' इत्यनयोरेकत्वात् ।
न च कर्मणः कर्मारम्भकत्वेऽनुपरमप्रसङ्गः, शब्दवचनानुपरमोप-
पत्तेः । यथैव हि शब्दस्य शब्दान्तरारम्भकत्वेऽनुपरमस्तथात्रापि । ५
“कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते” [वैशे० सू० १।१।११] इत्यभि-
वचनमाश्रयत्वादविरोधकम् ।

न च विभिन्नः संस्कारो घाणादीनामपातहेतुः प्रतीयते, अन्य-
था कदाचिदपि तेषां पातो न स्यात्, तत्प्रतिबन्धकस्य वेगस्य
सर्वदावस्थानात् । न च मूर्तिमह्वाभ्यादिसंयोगोपहतशक्तित्वाद्दे- १०
गस्य तेषां पतनम्, प्रथममेव पातप्रसङ्गे, तत्संयोगस्य तद्विरो-
धिनस्तादापि सम्भवात् । न च प्राग्वेगस्य बलीयस्त्वाद्विरोधिन-
मपि मूर्च्छप्रव्यसंयोगमपास्य शरं देशान्तरं प्रापयति, इत्यभिघात-
त्वम्, पश्चादप्यस्य बलीयस्त्वात्तथैव तत्प्रापकत्वप्रसङ्गे । न
सङ्ख्यवेगस्य पश्चादप्ययात्वम्, तथोत्पत्तिकारणमाभावात्, तत्स- १५
मवाधिकारणत्वसंभवादेः सर्वदाऽविशिष्टत्वात् । न च कर्माख्यं
कारणं पश्चाद्विशिष्यते, तस्यापि तुल्यपर्यनुयोगत्वात् । न च
प्रभूताकाशप्रदेशसंयोगोत्पादनात् संस्कारप्रक्षयादिषोः पातः,
संस्कारस्यैकैकसमावत्त्वेनावस्थितस्य प्रागिव पश्चादपि प्रक्षयानुप-
पत्तेः । न चाकाशस्य प्रदेशाः परेजेभ्यन्ते, येन तत्संयोगानां २०
भूयस्त्वं संस्कारप्रक्षयहेतुत्वं वा युक्तियुक्तं भवेत् । कल्पनाधि-
ल्पिकल्पितानां संयोगमेदैकत्वं तदायत्तमेदानां च संयोगानां
संस्कारप्रक्षयहेतुत्वं दूरोत्सारितमेव ।

भावनास्यस्तु संस्कारो धारणापरनामा नानिष्टः, पूर्वपूर्वानु-
मवाहितसामर्थ्यलक्षणस्यात्मनोऽनर्थान्तरमृतस्य स्पृष्ट्यादिहेतुत्वे- २५
नास्यास्याभिरपीष्टत्वात् ।

स्थितस्थापककृपस्तु संस्कारोऽसम्भाव्य एव । स हि किं
स्वयमस्थिरस्वभावं भावं स्थापयति, स्थिरस्वभावं वा ? न तावद्-
स्थिरस्वभावम्, तत्समाधानातिक्रमात् । तथाविधस्यापि स्थापनेऽ-

१ शीघ्रत्वं च क्रियालक्ष्णं परम्ये लभते च । २ वेगस्य क्रियात्वे क्रियातः
क्रियोत्पत्तय इति भावः । ३ यद्यपि समवायिकारणमविशिष्टं तथापि कर्माख्यं
कारणं निक्षिप्यत इत्युक्ते सत्ताह । ४ न सङ्ख्यवेगस्य पश्चादप्ययात्वं ततोत्पत्ति-
कारणत्वादादिसाधिरूपेण । ५ निजलाङ्घ्यानात् । ६ आकाशप्रदेशानात् ।
७ संयोगानां नानाकारत्वम् ।

तिप्रसङ्गः । क्षणादूर्ध्वं धार्यस्य स्वयमेवाभावात्कस्यासौ स्थापकः
स्यात् ? भावे चाऽस्थिरस्वभावताविरोधः । अथ द्वितीयः पक्षः,
तदा स्थिरस्वभावेऽवस्थितानामर्थानां स्वयमेवावस्थानात्किमकि-
ञ्चित्करस्थापकप्रकल्पनया ? ततः स्वहेतुवशात्तथा तथा परिण-
५ तिरेवार्थानां स्थितस्थापकः संस्कारो नान्यः ।

धर्माधर्मशब्दानां तु गुणत्वं प्रागेव प्रतिविहितमित्यलमतिप्र-
सङ्गेन । ततः “कर्तुः फलदाय्यात्मगुण आत्ममनःसंयोगजः स्वका-
र्यविरोधी धर्माधर्मरूपतया मेवमानदृष्टाख्यो गुणः” []
इत्ययुक्तमुक्तम् । इदं तु युक्तम् “कर्तुः प्रियद्वित्तमोक्षहेतुर्वर्मः”,
१० अधर्मस्त्वप्रियप्रत्ययहेतुः” [प्रश्न० भा० पृ० २७२-२८०] इति ।
तत्र गुणपदार्थोपि श्रेयान् ।

नापि कर्मपदार्थः । स हि पञ्चप्रकारः परैः प्रतिपाद्यते- “उत्क्षे-
पणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि” [वैशे० सू०
१।१।७] इत्यभिधानात् । तत्रोत्क्षेपणं यदूर्ध्वाधःप्रदेशाभ्यां संयोग-
१५ विभागकारणं कर्मात्पद्यते, यथा शरीरावयवे तत्सम्बन्धे वा मूर्ति-
मद्रव्ये ऊर्ध्वदिग्भाविमिराकाशदेशाद्यैः संयोगकारणमधोदिग्भा-
गावच्छिन्नैश्च तैर्विभागकारणम् । तद्विपरीतसंयोगकारणं च कर्मा-
वक्षेपणम् । क्रज्जुद्रव्यस्य कुटिलत्वकारणं च कर्माकुञ्चनम्, यथा
क्रज्जनोक्त्यदिद्रव्यस्य येऽप्रावयवास्तेषामाकाशादिभिः स्वयंयो-
२० गिमिर्विभागे सति मूलप्रदेशैश्च संयोगे सति येन कर्मणाक्रुत्या-
दिरवयवी कुटिलः संपद्यते तदाकुञ्चनम् । तद्विपर्ययेण संयोग-
विभागोत्पत्तौ येनावयवी क्रज्जुः सम्पद्यते तत्कर्म प्रसारणम् ।
अनिर्यतदिग्देशैर्यत्संयोगविभागकारणं तद्गमनम् । उत्क्षेपणादिकं
तु चतुःप्रकारमपि कर्म नियतदिग्देशसंयोगविभागकारणमिति ।
२५ तदेतत्पञ्चप्रकारतोपवर्णनं कर्मपदार्थस्याविचारितरमणीयम्,
देशादेशान्तरप्राप्तिहेतुः परिस्पन्दात्मको हि परिणामोऽर्थस्य
कर्माच्यते । उत्क्षेपणादीनां चात्रैवान्तर्भावः । अत्रान्तर्भूतानामपि
कञ्चिद्विशेषमादाय मेदेनाभिधाने भ्रमणस्प(स्य)न्दनादीनामर्प्यतो
मेदेनाभिधानानुपपत्तात्कथं पञ्चप्रकारतैवावयवः ?

१ विषुवादीनामपि स्थापकः सादितप्रसङ्गः । २ स्वकार्ये क्रियमाणे सति
विरोधोऽभावो न सः । ३ सुसमाधिर्न्या । ४ प्रियः सुखदा । ५ द्विः परिण-
मपद्यः । ६ दुःखकारणम् । ७ ऊर्ध्वाधःप्रदेशाभ्यां विपरीतौ अवकाशप्रदेशौ ।
८ ऊर्ध्वाः । ९ ऊर्ध्वाधःप्रदेशयोः । १० गमनस्य यथाऽनित्यदिग्देशैः संयोगविभा-
गकारणत्वं तत्रोत्क्षेपणादेरनित्यदिग्देशाभ्यां संयोगविभागकारणत्वं ततश्च कथमुत्क्षेप-
णादीनां भेद इत्युक्ते सत्याह । ११ पञ्चप्रकारात्मकैः ।

न चैकरूपस्यार्थस्य क्रियासमावेशो युक्तः, सर्वदाऽविशिष्ट-
त्वात् । यत्सर्वदाऽविशिष्टं न तस्य क्रियासम्भवो यथाकाशस्य,
अविशिष्टं चैकरूपं वदन्ति । न चैकरूपत्वेऽप्यर्थानां गन्तव्यमा-
वता युक्ता; निश्चलत्वाभावाप्रसङ्गात्, सर्वदा गन्तव्यैकरूपत्वात् ।
अथाऽगन्तव्यरूपताप्येवामङ्गीक्रियते; तथा सत्याकाशवदगन्तव्यैव ५
स्यात् । एवं च गत्यवस्थायामप्यचलत्वमेवां प्रसक्तं तदपरित्य-
क्ताऽगतिरूपत्वाभिश्चलत्वावस्थावत् । न चोभयरूपत्वादेपार्थम्यम-
दोषः, गन्तव्यागन्तव्यविरुद्धधर्माभ्यासेनैकत्वव्याघातानुपपन्नादच-
लैऽनिलचत् ।

यथा चाक्षणिकैकरूपस्यार्थस्य क्रिया नोपपद्यते तथा क्षणिकैक- १०
रूपस्यापि, उत्पत्तिप्रदेश एवास्य प्रध्वंसेन प्रदेशान्तरप्राप्त्यसम्भ-
वात् । यो ह्युत्पत्तिप्रदेश एव ध्वंसमुपगच्छति न सोऽन्यदेशमाप्ता-
मति यथा प्रदीर्घः, उत्पत्तिप्रदेश(श्च)ध्वंसमुपगच्छति च क्षणिको
भाव इति । न चार्थस्य क्षणिकत्वादेशादेशान्तरप्राप्तिर्भान्ता,
क्षणिकत्वादस्य प्रतिषिद्धत्वात् । ततः परिणामिन्येवार्थे यथोक्तं १५
कर्मोपपद्यते ।

न चेदमर्थादर्थान्तरम्; तथाभूतस्यास्योपलब्धिबलक्षणप्राप्तस्या-
नुपलम्भेनासत्त्वात् । प्रयोगः—यदुपलब्धिबलक्षणप्राप्तं सन्नोप-
लभ्यते तन्नास्ति यथा कचित्प्रदेशे घटः, नोपलभ्यते च विशिष्टा-
र्थैकरूपव्यतिरेकेण कर्मेति । न चोपलब्धिबलक्षणप्राप्तत्वमस्याऽ- २०
सिद्धम्; “संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागी परत्वाप-
त्त्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि” [वैशे० सू० ४।१।११]
इत्यभिधानात् । तन्न कर्मपदार्थोपि परेषां घटते ।

नापि सामान्यपदार्थः; तस्य पराम्युपगतसमावस्य प्रागेव
प्रतिषिद्धत्वादिति । २५

विशेषपदार्थोऽप्यनुपपन्नः । विशेषो हि नित्यद्रव्यवृत्तयः परमा-

१ सिरससाडविचलितस जीवादेः । २ सर्वदाऽविशिष्टस स्वात्मिप्राप्तमेवैव
स्यादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्ताह । ३ गन्तव्यमेवागन्तव्यमेवेत्येकान्तप्रसङ्ग-
लक्षणः । ४ परवैवाच्यम् । ५ लम्बावसरो हि सौगतो भूते—अर्थस्याक्षणिकैकरूपत्वे
क्रिया न घटते तर्हि क्षणिकैकरूपत्वे नद्विषय इत्याशङ्क्यामाह । ६ वीरुमन्त्रादेशयो-
दाहरणम् । ७ सर्वदाऽक्षणिके क्षणिके धर्मेऽर्थाक्रिया न घटते यतः । ८ कर्मरूपतया
परिणतो विशिष्टः । ९ विशेषणमसिद्धमित्युक्ते सत्ताह । १० सामान्यनिपुणरूपमये ।
११ नित्यद्रव्यवृत्तयोऽनन्त्यावृत्तिहेतवो विशेषाः, विशेषा इति यदुपपन्नेनानन्तं
विषयिष्ठम् । १२ सामान्यरहितनित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषाः ।

ष्वाकाशकालदिगात्ममनस्सु वृत्तेरत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतवः । ते च जगद्विनाशारम्भकोटिमूलेषु परमाणुषु सुकात्मसु सुकमनस्सु चान्तेषु भवा 'अन्त्याः' इत्युच्यन्ते, तेषु स्फुटतरमालक्ष्यमाणत्वात् । वृत्तिस्तेषां सर्वसिद्धेव परमाण्वाद्वा नित्ये द्रव्ये विद्यते ५ एव । अत एव 'नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्याः' इत्युभयपदोपादानम् ।

व्यावृत्तिबुद्धिविषयत्वं च विशेषाणां सद्भावसाधकं प्रमाणम् । यथा ह्यस्मदादीनां गवादिषु आकृतिगुणक्रियावयवैसंयोगनिमित्तोऽन्वादिभ्यो व्यावृत्तः प्रत्ययो दृष्टः, तथा- 'गौः, शुक्रः, शीघ्रगतिः, पीनककुदः, महाघण्टः' इति यथाक्रमम् । तथासद्विशिष्टानां १० योगिनां नित्येषु तुल्याकृतिगुणक्रियेषु परमाणुषु सुकात्ममनस्सु चान्यनिमित्तभावे प्रत्याधारं यद्वलात् 'विलक्षणोयं विलक्षणो-यम्' इति प्रत्ययप्रवृत्तिस्ते योगिनां विशेषप्रत्ययोन्नीतसत्त्वा अन्त्या विशेषाः सिद्धाः ।

इत्यपि सामिप्रायप्रकाशनमात्रम्, तेषां लक्षणासम्भवतोऽस- १५ त्वात् । तथाहि-यवेतेषां नित्यद्रव्यवृत्तित्वादिकं लक्षणमभिहितं तदसम्भवदोषदुष्टत्वादलक्षणमेव, यतो न किञ्चित्सर्वथा नित्यं द्रव्यमस्ति, तस्य पूर्वमेव निरस्तत्वात् । तदभावे च तद्वृत्तित्वं लक्षणमेषां दूरोत्सारितमेव ।

यथायो (अ-यो) निग्रमवविशेषप्रत्ययबलादेषां सत्त्वं साध्यते, २० तदव्ययुक्तम् । यतोऽण्वादीनां स्वभावव्यवस्थितं स्वरूपं परस्परासङ्कीर्णरूपं वा भवेत्, सङ्कीर्णस्वभावं वा ? प्रथमे विकल्पे स्वत एवासङ्कीर्णाण्वादिरूपोपलम्भायोगिनां तेषु वैलक्षण्यप्रति-पत्तिर्भविष्यतीति व्यर्थमपरविशेषपदार्थपरिकल्पनम् । द्वितीये विशेषाख्यपदार्थान्तरसन्निधानेपि परस्परातिमिश्रितेषु परमाण्वा- २५ दिषु तद्वलाद्व्यावृत्तप्रत्ययो योगिनां प्रवर्तमानः कथमभ्रान्तः ? स्वरूपतोऽव्यावृत्तरूपेण्वादिषु व्यावृत्ताकारतया प्रवर्तमान-स्यास्याऽतांस्तेऽहणरूपतया भ्रान्तत्वानतिक्रमात् ? तथा चैत-त्प्रत्यययोगिनस्तेऽयोगिन एव स्युः ।

१ जसादयं सर्वथा व्यावृत्त इत्यारिरूपेण । २ अन्तेऽप्ताने भवन्ति सुन्वीति यावत्, वेभ्योऽपरे निशेपा न सन्वीत्यर्थः, सामान्यरूपेभ्यो विशेषेभ्योऽपरे गुणादयो विशेषाः सन्ति, यस्मिन् जापरे किन्त्वैवेव वैशिष्ट्यं समाप्यते । ३ अण्डमुण्डादि-रूपेषु विशेषेषु । ४ आकृतिः=भातिः । ५ गुणः=वेदादिः । ६ किंवा गण्डसादिः । ७ भवयवः ककुदादिः । ८ गण्टादिभिः । ९ लघीतं=जातम् । १० द्रव्यपरीक्षाप्रवृत्तेः । ११ सङ्कीर्णरूपे । १२ प्रज्ञासङ्कीर्णम् । १३ भ्रान्तप्रत्ययसम्बन्धिन इत्यर्थः ।

यदि च विशेषाख्यपदार्थान्तरव्यतिरेकेण विलक्षणप्रत्ययो-
त्पत्तिर्न स्यात्, कथं तर्हि विशेषेषु तस्योत्पत्तिस्तत्रापरविशेषा-
भावात्? भावे वा अनवस्था, 'वित्यप्रव्यवृत्तयः' इत्यभ्युपगमस्त-
तिश्च स्यात् । अथ सत एवात्रान्योन्यवैलक्षण्यप्रतिपत्तिः, तर्हि
परमाण्वादीनामप्यत एव तत्प्रत्ययप्रवृत्तिर्मविष्यतीति कृतं विशेषे-५
षाख्यपदार्थपरिकल्पनया ।

अथ विशेषेष्वपरविशेषयोगाद्भावावृत्तद्विपरिकल्पनायामनव-
स्थादियौघकोपपत्तेरुपचारात्तेषु तद्बुद्धिः । ननु कोऽयं तद्बुद्धेरुप-
सहारो नाम? असतो वस्तुसमीपस्य विषयत्वेनाक्षेपश्चेत्, कथं
नास्या मिथ्यात्वं तद्योगिनां चायोगित्वम्? १०

किञ्च, असौ वस्तुसमाधो विषयत्वेनाक्षिप्यमाणः संशयत्वेना-
क्षिप्यते, विपर्यस्तत्वेन वा? तत्राप्ये पक्षे व्यावृत्तरूपतया बलित-
प्रतिपत्तिविषयाणां विशेषाणां यथावत्प्रतिपत्त्यसम्भवात्तद्योगि-
नोऽयोगित्वमेव । द्वितीयेत्येतदेव दूषणम्, विशेषरूपविकलानपि
तान् विशेषरूपतया प्रतिपद्यमानस्याऽयोगित्वप्रसङ्गविशेषात् । १५

यदि च बौध्दकोपपत्तेर्विशेषेषु व्यावृत्तबुद्धिर्नापरविशेषनिव-
न्धना, तर्हि परमाण्वादिष्वसौ तद्विवन्धना नाभ्युपगन्तव्या तद्वि-
शेषात् । परमाण्वादौ हि विशेषेभ्योऽन्योन्यं व्यावृत्तबुद्ध्युत्पत्तौ
सकलविशेषेभ्यः परमाणूनां व्यावृत्तबुद्धिर्विशेषान्तरास्थादित्यन-
वस्थी । सतस्तेषां ततो व्यावृत्तबुद्धिहेतुत्वेऽन्योन्यमपि तदेतुत्वं २०
सत एव स्यादिति व्यर्थमर्थान्तरविशेषपरिकल्पनम् ।

ननु यथाऽमेच्यादीनां सत एवाशुचित्वमन्येषां तु भावानां
तद्योगात्तत्तद्येहापि तत्त्वमावत्त्वाद्विशेषेषु सत एव व्यावृत्तप्रत्य-
यहेतुत्वं परमाण्वादिषु तु तद्योगात् ।

किञ्च, अतदात्मिकेष्वन्यैर्निमित्तः प्रत्ययो भवत्येव, यथा २५
प्रदीपौत्पत्तादिर्बु, न पुनः पटादिभ्यः प्रदीपे, एवं विशेषेभ्यः
एवाण्वादौ विशिष्टः प्रत्ययो नाण्वादिभ्यस्तत्र, इत्यप्यसमीचीनम्;

१ विशेषेषु विशेषाणां प्रवृत्तेः । २ आदिना नित्यद्रव्यवृत्तयः द्रव्यभ्युपगमस्तित्येति ।
३ विशेषेषु । ४ तस्य=व्यावृत्तस्य । ५ अपरविशेषा उपचारात्पूतास्तत्संयोगात्तेषु जातोपि
प्रत्यय उपचाररूप इत्यर्थः । ६ असतो वैलक्षण्यस्य । ७ अन्योन्यव्यावृत्तरूपस्य ।
८ वैलक्षण्यरूपः । ९ उपचाररूपः । १० अनवस्थादिकसो वाचकः । ११ पर-
माण्वादिभ्यः सर्वेषां भिद्येभ्यः । १२ विशेषान्तराणामन्येभ्य इत्यादिप्रकारेण ।
१३ अण्वादिषु कण्यु मुकमनस्तु च । १४ अन्यो=विशेषः । १५ अन्यनिमित्तात् ।
१६ इत्ये पटादय इति प्रत्ययः । १७ सर्वेषां भिद्येभ्यः ।

यतोऽमेव्याद्यशुचिद्रव्यसंसर्गान्मोदकादयो भावा प्रच्युतप्राक्तन-
शुचिस्वभावा अन्ये एवाऽशुचिरूपतयोत्पद्यन्ते इति युक्तमेवामन्य-
संसर्गादशुचित्वम् । न चाण्वादिष्वेतत्सम्भवति, तेषां नित्यत्वादेव
प्राक्तनाविवेकिरूपपरित्यागेनापरविवेकिरूपतयावुपपत्त्युत्पत्तेः ।
५ प्रदीपदृष्टान्तोप्यत एवासङ्गतः, पटादीनां प्रदीपादिपदार्थान्तरो-
पाधिकस्य रूपान्तरस्योत्पत्तेः, प्रकृते च तदसम्भवात् ।

अनुमानवाधितश्च विशेषसङ्गावाभ्युपगमः, तथाहि-विवादा-
धिकरणेषु भावेषु विलक्षणप्रत्ययस्तादृशतिरिक्तविशेषनिबन्धनो
न भवति, व्यावृत्तप्रत्ययत्वात्, विशेषेषु व्यावृत्तप्रत्ययवदिति ।
१० तत्र विशेषपदार्थापि श्रेयान् साधकभावाद्वाधकौपपत्तेश्च ।

नापि समवायपदार्थोऽनवद्यतल्लक्षणाभावात् । ननु च “अयुत-
सिद्धानामाचार्याचारभूतानामिहेदम्प्रत्ययहेतुर्यः सम्बन्धः स सम-
वायः ।” [प्रश्न० भा० पृ० १४] इत्यनवद्यतल्लक्षणसङ्गावात्तद-
भावोऽसिद्धः । न चान्तरालाभावेन ‘इह ग्रामे वृक्षाः’ इतीहेद-
१५ म्प्रत्ययहेतुना व्यभिचारः, सम्बन्धग्रहणात् । न चासौ सम्ब-
न्धोऽभावरूपत्वात् । नापि ‘इहाकाशे शकुनिः’ इति प्रत्ययहेतुना
संयोगेन, ‘आभाराधेयभूतानाम्’ इत्युक्तेः । न आकाशस्य व्यापि-
त्वेनाद्यस्तादेव भावोस्ति शकुनेरुपर्यपि भावात् । नापि ‘इह कुण्डे
वृक्षः’ इतिप्रत्ययहेतुना, ‘अयुतसिद्धानाम्’ इत्यभिधानात् । न चानु-
२० तन्तुपटादिवहधिकुण्डादयोऽयुतसिद्धाः, तेषां युतसिद्धेः सङ्गा-
वात् । युतसिद्धिश्च पृथगाभयवृत्तित्वं पृथगेतिमत्त्वं चोच्यते ।
न चासौ तन्तुपटादिष्वप्यस्ति, तन्तून्विहाय पटस्यान्यत्रावृत्तेः ।

तथापि ‘इहाकाशे वाच्ये वाचक आकाशशब्दः’ इति वाच्यवा-
चकभावेन ‘इहात्मनि ज्ञानम्’ इति विषयविषयिर्मौवेन वा व्यभि-
२५ चारोऽत्रायुतसिद्धेरवाभाराधेयभावस्य च भौवात् । इत्यप्यसांख्य-
तम्, समयत्रैवधारणोऽऽश्रयणात् । एतयोश्च युतसिद्धेःष्वन्यना-

१ परमते । २ विशेषेभ्यो व्यावृत्तरूपत्वेनोत्पत्तिमत्तम् । ३ परमाण्वादीनां
नित्यत्वादेव । ४ प्रकाशकक्षणम् । ५ प्रादुर्गप्रमाणभावात् । ६ गुणगुणादीनाम् ।
७ आकाशपरमाण्वादीनां युतसिद्धत्वमवस्थापनार्थमिदं कथ्यम् । ८ न इहेदमव्यव-
हेतुः स समवाय इत्युच्यमाने । ९ कारणभूतेन । १० कारणभूतेन । ११ अयुतः-
अणुम् । १२ वसः, मत्तयोर्वेवा । १३ जेवयोर्वेवा वा । १४ अयुतसिद्धावाम-
चार्याचारभूतानामित्युपपदोपादानेति । १५ सम्बन्धेन । १६ आकाशतत्वावकाश-
योरात्मज्ञानयोश्च । १७ भाषायांभारभूतानामयुतसिद्धानां समवाय इवेति न निबन्ध-
न इति भावः । १८ अयुतसिद्धानामाचार्याचारभूतानामित्यत्र । १९ अनवधारण-
मपकारः, अयुतसिद्धानामेवाचार्याचारभूतानामेव समवाय इति ।

धारावेयभूतेष्वपि च भावात्, घटतच्छब्दज्ञानवत् । नन्वेवम्
‘अयुतसिद्धानामैव’ इत्यवधारणेऽप्यव्यभिचारात् ‘आधारावेयभूताना-
नाम्’ इति वचनमनर्थकम्, ‘आधारावेयभूतानामैव’ इत्यवधारणे
‘अयुतसिद्धानाम्’ इतिवचनवत्, ताभ्यामव्यभिचारात्, इत्यव्य-
सारम्, एकद्रव्यसमवायिनां रूपरसादीनामयुतसिद्धानामैव पर-
स्परं समवायाभावात् एकार्थसमवायसम्बन्धव्यभिचारनिवृत्त्यर्थ-
मुत्तरावधारणम् । न ह्ययं वाच्यवाचकभावादिवस्तुतसिद्धानामपि
सम्भवति । तथोत्तरावधारणे सत्यपि आधारावेयभावेन संयो-
गविशेषेण सर्वदाऽनाधारावेयभूतानामसम्भवता व्यभिचारे
मा भूदित्येवमर्थं पूर्वार्थधारणम् । १०

इति मेदकलक्षणस्याशेषद्वोपरहितत्वादिर्देमुच्यते-तन्तुपटा-
दयः सामान्यतर्हेदादयो वा ‘संयुक्ता न भवन्ति’ इति व्यवहर्त-
व्यम्, नियमेनायुतसिद्धत्वादाधारावेयभूतत्वाच्च, ये तु संयुक्ता
न ते तथा तथा कुण्डवदरादयः, तथा चैते, तस्मात्संयोगिनो न
भवन्तीति । यद्वा तन्तुपटादिसम्बन्धः संयोगो न भवति, निय- १५
मेनायुतसिद्धसम्बन्धत्वाद्, ज्ञानात्मनोर्विषयविषयिभाववदिति ।

अनु समवायस्य प्रमाणतः प्रतीतौ संयोगाद्वैकल्यण्यसाधनं
शुक्लम्, न चासौ तस्यास्ति, इत्यव्यसत्, प्रत्यक्षत एवायं प्रतीतेः ।
तथाहि-तन्तुसम्बन्ध एव पटः प्रतिभोसते तद्रूपादयश्च पटादि-
सम्बन्धाः, सम्बन्धाभावे सद्भाविग्न्यवहित्वेऽर्थमिति भासः स्यात् । २०

अनुमानाच्चासौ प्रतीयते; तथाहि-‘इह तन्तुषु पटः’ इत्यादीह-
प्रत्ययः सम्बन्धकार्योऽर्थोऽन्यमानेहप्रत्ययत्वात् इह कुण्डे दधीत्या-
दिप्रत्ययवत् । न तावदयं प्रत्ययो निर्हेतुकः, कादाचित्कत्वात् ।

१ कुण्डस्य धारं च कुण्डज्ञाने, तस्य घटस्य कुण्डज्ञाने तन्कुण्डज्ञाने, घटस्य
तन्कुण्डज्ञाने चेति इन्द्रः । २ न्यूनाच्चासौ घटतन्कुण्डाचारो जी तत्र सिद्धे,
घटतन्कुण्डे जातमन्यूनाचारे ते तत्र सिद्धे इति । ३ आधारावेयभूतानामिति वचनसम-
र्थार्थमिदम् । आधारावेयभावकं कुरत्तत्वावभावात् । ४ कुरत्तत्वात् एकार्थः ।
५ आधारावार्त्तुत्वावभावेति । ६ प्रथमानचारणेनैव तदव्यभिचारिणिद्रुपिः कुतो न
न्यवीत्याशङ्क्यात् । ७ नक्षिण्यर्धेति इन्द्रा इति । ८ अयुतसिद्धानामेवेति । ९ कनेन
प्रकारेणैवोपरहितत्वमयुतसिद्धेतादित्येदकलक्षणम्, इतरेभ्यो इत्यादिभ्यः समवायस्य
भेदकलक्षणम् भेदकमयुतसिद्धेतादि । १० अमेतत्वं प्रत्यक्षप्रतीतिवैचारिकमनुमानम् ।
संयोगायां प्रतिवेधात्समवायस्य सिद्धिरित्येवमस्ति ततः परिशेषानुमानमित्यर्थः ।
११ नादिपदेन शुण्णमितिः किंवातन्मस्य । १२ प्रत्यक्षवत् । १३ पटसद्रूपादीनाम् ।
१४ इत्यात्मनि कृपादिव इत्यादीहप्रत्ययवत् नाप्यमानेन व्यभिचारपरिहारावमिदम् ।

नापि तन्तुहेतुकाः पटहेतुको वा; तत्र 'तन्तवः, पटः' इति वा प्रत्ययप्रसङ्गात् । नापि वासनाहेतुकाः; तस्याः कारणरहितायाः सम्भवाभावात् । पूर्वज्ञानस्य तत्कारणत्वे तदपि कुतः स्यात् ? तत्पूर्ववासनातश्चेत्, अनवस्था । ज्ञानवासनयोरनावित्वादयमदोषश्चेत्, ५ न, एवं नीलादिसन्तानान्तरससन्तानसंविद्वैतादिसिद्धेरप्यभावा-
नुपपत्त्यात्, नैनादिवासनीयशावेव नीलादिप्रत्ययस्य सैतोऽवभासस्य च सम्भवात् । नापि तादात्म्यहेतुकोऽयम्, तादात्म्यं श्लोकत्वम्, तत्र च सम्बन्धाभाव एव स्यात् द्विष्ट(ष्ठ)त्वाच्च । न च तन्तु-
पटयोरेकत्वम्, प्रतिभासमेवाद्विकल्परूपमाभ्यासात् परिमाणसंख्या-
१० जातिभेदाच्च घटपटवत् । नापि संयोगहेतुकाः, युतसिद्धेर्बोध्यैषु संयोगस्य सम्भवात् । न चात्र समवायपूर्वकत्वं साध्यते येन
द्वयान्तः साध्यविकलो हेतुश्च विर्यद्वयः स्यात् । नापि संयोगपूर्वकत्वं येनाभ्युपगमविरोधः स्यात् । किं तर्हि ? सम्बन्धमात्रपूर्वकत्वम् । तस्मिन् सिद्धे परिशेषात्समवाय एव तज्जनको भविष्यति ।

१५ त(य)त्वेदम्- 'विवादास्पदमिदमिहेति ज्ञानं न समवायपूर्व-
कमवाधितेहज्ञानत्वात् इह कुण्डे दधीतिज्ञानवत्' इति विशेषे(ष)
विर्यद्वयानुमानम्; तत्सकलानुमानोच्चेदकत्वादनुमानवादिनां न
प्रयोक्तव्यम् ।

यच्चोच्यते-इदमिहेति ज्ञानं न समवायालम्बनम्, तत्सत्यम्,
२० विशिष्टाधारविषयत्वात् । न हि 'इह तन्तुषु पटः' इत्यादीहप्रत्ययः
केवलं समवायमालम्बते, समवायविशिष्टतन्तुपटालम्बनत्वात् ।
वैशिष्ट्यं ज्ञानयोः सम्बन्ध इति ।

१ तन्वादी । २ सौम्यं प्रलाह । ३ निरूपयानाद्यासना वासनातो निरूप-
यानमिति बीबाहुरवत् । ४ सन्तानान्तरं च ससन्तानश्च तौ नीजानीनां प्रादौ
नीजसन्तानान्तरससन्तानी च संसंविद्वैतादिव ज्ञानादिसिद्धिरित्यर्थः, तेषां सिकिरिति
यामवत् । ५ नीजदेः समुत्पन्नमानो नीजं नीजमिति प्रत्ययः सन्निव समुत्पन्नयो
विषयानानीजदेः समुत्पन्नमानत्वाच्च, ६ कल्पवास्तित्पिकल्पितवासनातः समुत्पन्नमानः
सन्समुत्पन्नवत् । ७ ततोनादिवासनाहेतुकत्वमस्य प्रत्ययस्य नैलप्यः । ८ कुतः ।
८ न तु नीजदेः । ९ जादिना सन्तावसंमहः । १० अन्यतोपवासनाने द्वेव,
प्रसक्तिसिद्धिरप्यस्य सतो विशेषणम् । ११ संविद्वैतस्य । १२ जैनमतमाशङ्क्य ।
१३ सम्बन्धमात्रे साध्ये सम्बन्धविशेषाभावात् । १४ किन्तु संयोगपूर्वकम् ।
१५ विशेषणसमवायपूर्वकत्वेन निरूपयसमवायपूर्वकत्वं तस्यानुमानम्, विशेषनिरुप-
यमाने इदमुदाहरणं पर्वतः पर्वतसेवाश्विचाक्षिमाश्च भवति दूयवत्सामान्यज्ञानसंविदिति ।
१६ पर्वतोभित्तिमधूमन्तरादित्यादेः सम्बन्धानुमानस्य बहुच्चेदकानुमानं तस्य बहुग-
णयत्नादिति भावः । १७ जैनादिना । १८ जैनादिना । १९ तस्य ज्ञानस्य ।

न चास्य संयोगवद्वानात्वम्, इहेति प्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च सप्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च संज्ञावत् । न च सम्बन्धत्वमेव विशेषलिङ्गम्, अस्यान्ययासिद्धत्वात् । न हि संयोगस्य सम्बन्धत्वेन नानात्वं साध्यतेऽपि तु प्रत्यक्षेण मित्राभ्रयसमवेतस्य क्रमेणोत्पादोपलब्धेः । समवायस्य चानेकत्वेऽसति अनुगतप्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात् । संयोगे तु संयोगत्वबलज्ञानात्वेऽपि स्यात् । न चैतत्समवाये सम्भवति, समवायत्वस्य समवाये समवायाभावात्, अन्यथानवस्था स्यात् । 'संयोगस्य गुणत्वेन द्रव्यवृत्तित्वात्, संयोगत्वं पुनः संयोगे समवेतमिति ।

न चैकत्वे समवायस्य द्रव्यत्वबहुवचनत्वस्यार्थमिव्यञ्जनं द्रव्यं १० कुतो न भवतीति धौक्यम् ? आधारशक्तिर्निर्धामकत्वात् । द्रव्याणां हि द्रव्यत्वाधारशक्तिरेव, गुणावेस्तु गुणत्वाधारशक्तिरिति । न आनुगतप्रत्ययजनकत्वेन सामान्यादस्याऽमेव, मिश्रलक्षणयोगित्वात् ।

यद्वा, 'समवायीनि द्रव्याणि' इत्यादिप्रत्ययो विशेषणपूर्वको १५ विशेष्यप्रत्ययत्वाद्दर्शनीत्यादिप्रत्ययवत् इत्यतः समवायसिद्धिः । न धौन्येषामत्रात्रुपेक्षाः सम्भवति । किन्तर्हि ? समवायस्यैव । अतः स एव विशेषणम् । अप्रतिपन्नसमयस्य 'समवायी' इतिप्रतिभासाभावावस्याऽविशेषणत्वम्, दण्डादावपि समानं सस्य

१ समवायविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च संज्ञाया नानात्वं नास्ति यथा । २ समवायो नाना सम्बन्धत्वात्संयोगवदिति । ३ संयोगस्य । ४ कर्त्तुं समवायोऽयं समवाय इति । ५ यद्वा समवायेऽपि समवायत्वबलज्ञानात्वेऽप्यनुगतप्रत्ययोत्पत्तिः स्यादिति दण्डाभावात् । ६ सामान्यस्य । ७ समवायत्वस्य समवाये संज्ञावेऽप्यस्य समवायः समवायत्वबलादि समवायत्वसमवायेऽप्यस्य समवायः समवाय इति । ८ तर्हि संयोगस्याप्यपरसंयोगपूर्वकत्वेनानवस्था कुतो न सादृश्यात् । ९ कर्त्तुं तर्हि संयोगत्वमिच्छात् । १० संयोगान्तरपेक्षा नास्तीति भावः । ११ येन समवायेन द्रव्ये द्रव्यत्वं समवेतं तेनैव समवायेन गुणे गुणत्वमपि समवेतं समवायसैकत्वात्, तत्तत्सामान्ये समवेतस्य द्रव्यत्वस्य द्रव्यमिव्यञ्जनं भवति यथा गुणत्वस्याप्यमिव्यञ्जनं कुतो न भवति एकसमवायसमवेतत्वाविशेषादिति भावः । १२ नैनादित्या । १३ द्रव्यलक्षणाभावाः । १४ द्रव्यस्य । १५ पदार्थानाम् । १६ द्रव्यत्वमेव लक्षणशक्तिरिति भावः, मित्रा हि शक्तिः प्रमिष्यादीनां प्रमिषीत्यादिकमेव । १७ गुणत्वादिप्रत्ययेन लक्षणं शक्तिः । १८ सामान्यस्यसैकमिव्यञ्जनं नान्ययेति भावः । १९ यथादिशानुगतप्रत्ययवहेतुः सामान्यमिति लक्षणं सामान्यस्य, समवायस्य त्वनुवसित्वेनादि । २० दण्डलक्षणविशेषणपूर्वकत्वमन । २१ तादात्म्यसंयोगादीनाम् । २२ समवायीनि द्रव्याणीति वचने । २३ विशेषणत्वम् । २४ अप्रतिपन्नदण्डस्य ।

दण्डाद्युल्लेखेन 'दण्डी' इत्यादिप्रत्ययानुत्पत्तेः । दण्डादेरभिधान-
नयोजनाभावेऽपि 'अनेन वस्तुना तद्वानयम्' इत्यनुपागप्रतीतिः ।
'संसृष्टा एते तन्नुपदादयः' इति सम्बन्धमात्रेऽपि तुल्या । केवलं
सङ्केताभावात् 'अयं समवायः' इति व्यपदेशाभावः । प्रतिपन्नस-
५ मयस्तु दण्डादेरिव समवायस्यापि विशेषणतामभिधाननयोजना-
द्वारेण प्रतिपद्यते ।

यथान्यत्समवाये बाधकमुच्यते—'नानिष्पन्नयोः समवायः
सम्बन्धिनोरनुत्पादे सम्बन्धाभावात् । निष्पन्नयोश्च संयोग
एव । असम्बन्धे चास्य 'समवायिनोः समवायः' इति व्यपदेशा-
१० नुपपत्तिः । सम्बन्धे वा न स्वतोत्पत्तिः, संयोगादीनामपि तथा
तत्प्रसङ्गात् । परतन्त्रेदनवस्था । न च शुष्णादीनामाधेयत्वं निष्क्रिय-
त्वात् । गतिप्रतियन्धकस्याधारेण जलादेर्घटादिवत् । तथा न
स्वरूपसंश्लेषः समवायो यतस्तस्मिन्स्तत्येकत्वमेव न सम्बन्धः ।
नापि पारतन्त्र्यम्, अनिष्पन्नयोराधारस्यैवासत्त्वात् । स्वतन्त्रेण
१५ निष्पन्नयोश्च न पारतन्त्र्यम्, इत्यप्यसमीचीनम्, यतो न निष्पन्न-
योरनिष्पन्नयोर्वा समवायः, सकारणसत्तासम्बन्धस्यैव निष्पत्ति-
रूपत्वात् । न हि निष्पत्तिरन्या समवायस्यान्यो येन पौर्वापर्यम् ।

एतेनैकैरूपसंश्लेषः पारतन्त्र्यं वा' इत्याद्यपास्तम् । नापि समवा-
यस्य सम्बन्धान्तरेण सम्बन्धो युक्तो येनानवस्था स्यात्, सम्ब-
२० धस्य समानलक्षणसम्बन्धेन सम्बन्धस्यान्यत्रादृष्टेः संयोगैव ।
अनेकव्यवस्थासु स्वत एवास्य सम्बन्धो युक्तः स्वत एव सम्बन्ध-
रूपत्वात्, न संयोगादीनां तदभावात् । न ह्येकस्य स्वभावोऽन्यै-
स्यापि, अन्यथा स्वतोभेदव्यवस्थादर्शनाल्ललादीनामपि तत्स्यात् ।

यच्चोक्तम्—'निष्क्रियत्वात्तेषां नाधेयत्वम्' इति, तदप्यसत् ।
२५ संयोगिद्रव्यविकक्षणत्वाद्गुणादीनाम्, संयोगिनां सक्रियत्वेनैव
तेषां निष्क्रियत्वेऽप्याधारधेयभावस्य प्रत्यक्षेण प्रतीतेरिति ।

१ समवायसामिधाननयोजनाभावेऽपि संसृष्टा एते तन्नुपदादय इति सम्बन्धमात्रेऽपि
अनुपागप्रतीतिः । २ नानाविधा । ३ नली समवायः सम्बन्धिनोरनिष्पन्नयोः साधि-
न्यन्नयोर्वेति निकल्पद्वयं इति निषाद्य दूषयति । ४ किञ्चातो समवायः समवायिन्ना-
मसम्बन्धः सम्बन्धो वेति निकल्पद्वयं निषाद्य प्रथमविकल्पे दूषयमाह । ५ सम्बन्धेऽस्तेऽस्मात्
परतो वेति निकल्पद्वयमत्रापि बोध्यम् । ६ स्वरूपयोः स्वभावयोः संकेतः सम्बन्धः ।
७ सकारणसत्तासम्बन्धस्यैव निष्पत्तिरुपपादितत्वेन प्रमेयम् । ८ समवायिना कद ।
९ अपरसमवायेन । १० संयोगिनोः संयोगकं च समवायेन सम्बन्धसङ्ग्राहः ।
११ कथं तद्वत्स्य सम्बन्ध इत्याहङ्गनामाह । १२ संयोगस्य । १३ शुष्मादीनाम् ।
१४ द्रव्याणाम् । १५ संयोगिनां सक्रियत्वादेव तेषामाधेयत्वमिति भावः ।

अत्र प्रतिविधीयते । यथावदुक्तमयुतसिद्धेत्यादि, तत्रेदमयुत-
सिद्धत्वं शास्त्रीयम्, कौकिकं वा ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः, तन्नुप-
ट्टादीनां शास्त्रीयायुतसिद्धत्वस्यासम्भवात् । वैशेषिकशास्त्रे हि
प्रसिद्धम्-अपृथगाभयवृत्तित्वमयुतसिद्धत्वम्, तच्चेह नास्त्येव,
'तन्तूनां स्वावयवांशुषु वृत्तेः पटस्य च तन्तुषु' इति पृथगाभय- ५
वृत्तित्वसिद्धेरपृथगाभयवृत्तित्वमसदेव । यत् गुणकर्मसामान्या-
नामप्यपृथगाभयवृत्तित्वाभावेः प्रतिपस्यः । लोकप्रसिद्धैकमात्र-
नवृत्तिरूपं त्वयुतसिद्धत्वम् दुग्धाम्भसोर्युतसिद्धयोरप्यस्तीति ।

ननु यथा कुण्डलद्वयवयवाभ्यां पृथग्भूतावाभ्यां तयोर्ऋ-
कुण्डलस्य वज्रश्च वृत्तिर्न तथार्थं चत्वारोर्थाः प्रतीयन्ते- 'द्वैवाभ्यां १०
पृथग्भूतौ द्वौ र्वाभयिणौ, तन्तोरेव स्वावयवापेक्षयाभयित्वात्
पटापेक्षया चाभयत्वाज्जयाणामेवार्थानां प्रसिद्धेः, 'पृथगाभयाभ-
यित्वं युतसिद्धिः' इत्यस्य युतसिद्धिलक्षणस्यामीषादयुतसिद्धत्वं
तेषामिति चेत्, कथमेवमाकौशादीनां युतसिद्धिः स्यात् ? तेषाम-
न्याभयविवेकतः पृथगाभयाभयित्वामावात् । १५

'निर्यानां च पृथग्व्यतिमत्त्वे' इत्यपि तत्रासम्भाव्यम् । न च लु-
विमुद्रव्यपरमाणुवद्विमुद्रव्याणामन्यतरपृथग्व्यतिमत्त्वं परमाणुद्व-
यवतुभयपृथग्व्यतिमत्त्वं वा सम्भवति, अविमुत्प्रसङ्गात् । तथैक-
द्व्याभयार्थानां गुणकर्मसामान्यानां परस्परं पृथगाभयवृत्तेरमावा-
युतसिद्धिप्रसङ्गतोऽन्योन्यं समवायः स्यात् । स च नैष्टलेषामा- २०
भयाभयिसमवाय (यिमावा) मावात् । इतरेतराभयभावा (यश्च-
समवाय) सिद्धौ हि पृथगाभयसमवायित्वलक्षणा युतसिद्धिः,
तत्सिद्धौ च तन्निषेधेन समवायसिद्धिरिति ।

ननु लक्षणं विद्यमानस्यार्थस्यान्यतो मेदेनावस्थापकं न ह
सङ्गावधारकम्, तेनायमवोच्यते, ननु ज्ञापकपक्षे सुतरामितरे- २५
तराभयत्वम् । तथाहि-नाऽज्ञातया युतसिद्ध्या समवायो ज्ञातुं
शक्यते, अनधिगतस्यासौ न युतसिद्धिमवस्थापयितुमुत्सहते इति ।

१ गुणादीनां गुणवदादिषु वृत्तिरेषा च स्वावयवेभ्योऽवयवेषु वृत्तिरिति भावः ।
२ अतिव्याप्तिरूपसिद्धिः । ३ कुण्डं च दधि च सरोक्षे तयोरेवयौ । ४ अतिक्रम-
युतयोः । ५ तन्नुपट्टादिषु । ६ ते के चत्वारोर्थाः यद्युक्ते सत्याः । ७ कुण्डलद्वयवयवौ ।
८ आभयो दधिकुण्डलावयवलक्षणी निषेधे वनोर्दधिकुण्डलोत्सावयवयोः । ९ समवाये ।
१० ततश्च । ११ ततश्च तेषां समवायसिद्धिरिति भावः । १२ आदिना जात्यसङ्क-
क्षिणां च । १३ निषेकः=जयायः, व्यापकवाचेपानेकावयववृत्तेः । १४ पृथगाभया-
भयित्वं युतसिद्धिलक्षणं निलेपु नयति नास्ति तथानि पृथग्व्यतिमत्त्वं नमिष्यतीत्याह ।
१५ लक्षणम् । १६ मन्वे । १७ यद्व्यति=विषु जात्याकाङ्क्षादि । १८ वचः ।

न चातो लक्षणात्समवायः सिद्ध्यति व्यभिचारात् । तथाहि-निय-
मेनायुतसिद्धसम्बन्धत्वमाधारधेयभूतसम्बन्धत्वं च 'आकाशे
वाच्ये वाचकस्तच्छब्दः' इति वाच्यवाचकभावे 'आत्मनि विषय-
भूते अहमिति ज्ञानं विषयि' इति विषयविषयिभावे च विद्यते
५ इति । ननु सर्वस्य वाच्यवाचकवर्गस्य विषयविषयिवर्गस्य च
नियमेनायुतसिद्धसम्बन्धत्वासम्भवो युतसिद्धेऽप्यस्य सम्भ-
वाद्दृष्टतच्छब्दज्ञानवत्, अतो न व्यभिचारः, इत्यप्यसारम्,
वर्गापेक्षयापि लक्षणस्य विपक्षैकदेशवृत्तेर्व्यभिचारित्वात् । इदं च
विपक्षैकदेशादव्यावृत्तस्य सर्वैरप्यनैकान्तिकत्वम् ।

१० यच्चोक्तम्-तन्तुपटादयः संयोगिनो न भवन्तीत्यादि, तत्स-
त्यम्; तत्र तादात्म्योपगमात् ।

यत्तूक्तम्-प्रत्यक्षत एव समवायः प्रतीयत इत्यादि, तदयुक्तम्,
असाधारणस्वरूपत्वे हि सिद्धे सिध्येदर्थानां प्रत्यक्षता पृथुबुधो-
दराद्याकारघटादिवत् । न चास्य तत्सिद्धम् । तद्धि किमयुतसिद्ध-
१५ सम्बन्धत्वम्, सम्बन्धमात्रं वा ? न तावदयुतसिद्धसम्बन्धत्वम्,
सर्वैरप्रतीयमानत्वात् । यत्पुनर्यस्य स्वरूपं तत्तेनैव स्वरूपेण सर्व-
स्यापि प्रतिभासते यथा पृथुबुधोदराद्याकारतया घट इति ।
न चैकस्य सामान्यात्मकं स्वरूपं युक्तम्, समानानामभावे सामा-
न्याभावोद्भूतगने गगनत्ववत् । नापि सम्बन्धमात्रं समवायस्यासा-
२० धारणं स्वरूपम्; संयोगादावपि सम्भवात् ।

किञ्च, तद्रूपतयासौ सम्बन्धबुद्धौ प्रतिभासेत, इहेति प्रत्यये
वा, समवाय इत्यनुभवे वा ? यदि सम्बन्धबुद्धौ, कोऽयं सम्बन्धो
नाम-किं सम्बन्धत्वजातियुक्तः सम्बन्धः, अनेकोपादानजनितो
वा, अनेकाश्रितो वा, सम्बन्धबुद्ध्युत्पादको वा, सम्बन्धबुद्धिवि-
२५ शयो वा ? न तावत्सम्बन्धत्वजातियुक्तः, समवायस्यासम्बन्धत्व-
प्रसङ्गात् । द्रव्यादित्रयान्यतरमरूपत्वाभावेन समवायान्तरासत्त्वेन
चात्र सम्बन्धत्वजातेरप्रवर्त्तनात् । अथ संयोगवदनेकोपादानज-
नितः, तर्हि घटादेरपि सम्बन्धत्वप्रसङ्गः । नाप्यनेकाश्रितः, घट-

१ विपक्षे । २ शब्दश्च ज्ञानं च शब्दज्ञाने, तस्य घटस्य शब्दज्ञाने तच्छब्दज्ञाने
इति इन्द्रः । ३ वाच्यवाचकभावविषयविषयिभावसमूहे विपक्षे नास्ति तथापि तल्लैक-
देशवृत्तिवादनैकान्तिकः । ४ असाधारणस्वरूपम् । ५ समवायस्य । ६ समवायेन
सह समानानां वस्तुनाम् । ७ तल्लैकत्वात्सामान्यज्ञानेकवृत्तित्वात् । ८ अयं सम्बन्ध
इति ज्ञाने । ९ समवायस्य । १० सम्बन्धत्वजातेर्बुद्धत्वं समवाये । ११ समवायान्तर-
रासत्त्वं च समवायस्यैकत्वादवगन्तव्यम् । १२ अनेकोपादानजनितत्वाविशेषात् ।

त्वादेः सम्बन्धत्वानुपपन्नात् । नापि सम्बन्धबुद्ध्युत्पादकः, लोचनो-
देरपि तत्त्वप्रसक्तेः । नापि सम्बन्धबुद्धिविषयः, सम्बन्धसम्बन्धि-
नोरेकज्ञानविषयत्वे सम्बन्धिनोपि तद्वृत्तानुपपन्नात् । न च प्रति-
विषयं ज्ञानमेदः, मैत्रकज्ञानाभावप्रसङ्गात् ।

अथेहबुद्धौ समवायः प्रतिभासते, नै, इहबुद्धेरधिकरणाध्य-
वसायरूपत्वात् । न चान्यस्मिन्नाकारे प्रतीयमानेऽन्याकारोऽर्थः
कल्पयितुं युक्तोतिप्रसङ्गात् ।

अथ समवायबुद्ध्यासौ प्रतीयते, तन्न, समवायबुद्धेरसम्भवात् ।
नहि 'पटे तन्तवः, अयं पटः, अयं च समवायः' इत्यन्योन्यवि-
विकृतं व्रित्तं बहिर्ग्राह्याकारतया कस्याश्चित्प्रतीतौ प्रतीयते तथाजु-१०
मवामावात् ।

सर्वसमवाय्यनुगतैकत्वभावो ह्यसौ तत्र प्रतिभासेत, तद्वा-
च्यत्वभावो वा ? न तावच्चद्वाच्यत्वभावः, सर्वतो व्यावृ-
त्तभावस्यान्यासम्बन्धित्वेन गगनाम्भोजवत्समवायत्वानुपपत्तेः ।
नापि तदनुगतैकत्वभावः, सामान्यादेरपि समवायत्वानुपपन्नात् । १५
न चाखिलसमवाय्यऽप्रतिभासे तदनुगतत्वभावतयासौ प्रत्यक्षेण
प्रत्येतुं शक्यः । अथानुगतव्यावृत्तरूपव्यतिरेकेण सम्बन्धरूपत-
यासौ प्रतीयते, तन्न, सम्बन्धरूपतायाः प्रागेव कृतोत्तरत्वात् ।

यदप्युक्तम्-'इह तन्तुपु पटः' इत्यादीहप्रत्ययः सम्बन्धकार्यो-
ऽवाध्यमानेहप्रत्ययत्वादिह कुण्डे वृक्षीत्यादिप्रत्ययवदित्यनुमाना-२०
न्नासौ प्रतीयते' इत्यादि, तदप्यसमीक्षिताभिधानम्, हेतोरप्यथा-
सिद्धत्वात् । तदसिद्धत्वं च 'इह तन्तुपु पटः' इत्यादिप्रत्ययस्य
धर्मिणोऽसिद्धेः । अप्रसिद्धविशेषणञ्चायं हेतुः, 'पटे तन्तवो वृक्षे
शाखाः' इत्यादिरूपतया प्रतीयमानप्रत्ययेन 'इह तन्तुपु पटः' इति
प्रत्ययस्य बाध्यमानत्वात् । स्वरूपासिद्धञ्चायम्, तन्तुपटप्रत्यये २५

१ आदिपदेन प्रकाश्यादेव, लोचनादिरपि वस्तुपु सम्बन्धबुद्धिं वचयति । २ प्रति-
विषयं ज्ञानमेवात्कर्म सम्बन्धिनोरेकज्ञानविषयत्वं वतः सम्बन्धिनोऽपि सम्बन्धरूपता
सादित्वाच्चक्षुषामाह । ३ इति चेदिति शेषः । ४ समवायस्यावाप्येयभावकक्षप-
सम्बन्धाकारोहेखित्वात्समवाय इति न वदते । ५ इति बुद्धेरपि सम्बन्धप्रत्ययत्वं कृतो
न सादित्युक्ते सहाह । ६ अधिकरणकक्षमेव । ७ सम्बन्धकक्षणः । ८ वदप्रतिभासे
पटप्रतिभासप्रसङ्गात् । ९ कोऽयं सम्बन्धो नाम ? किं सम्बन्धत्ववातिबुद्धः इत्यादि-
रीला । १० प्रतिवादिनं प्रति । ११ व्यवविविचि । १२ इह तन्तुपु पट इति व्यव-
वेष्यवविविनो वृष्टिद्वारेण प्रत्ययोल्लिखितैकप्रसिद्धेन वतः ।

इहप्रत्ययत्वस्यानुभवाभावात्, 'पटोयम्' इत्यादिरूपतया हि प्रत्य-
यानुभूयते ।

अनैकान्तिकश्च, 'इह प्रागभावेऽनादित्वम्, इह प्रध्वंसाभावे
प्रध्वंसाभावाभावः' इत्यवाच्यमानेहप्रत्ययस्य सम्बन्धपूर्वकत्वा-
५ भावात् । न चात्र विशेषणविशेष्यभावः सम्बन्धो वाच्यः, सम्ब-
न्धमन्तरेण विशेषणविशेष्यभावस्याऽसम्भवात्, अन्यथा सर्वं
सर्वस्य विशेषणं विशेष्यं च स्यात् । सम्बन्धे सत्येव हि द्व्यगुण-
कर्मादावेकस्य विशेषणत्वमपरस्य विशेष्यत्वं दृष्टम् । तदभावेपि
विशेषणविशेष्यभावकल्पनायामतिप्रसङ्गः स्यात् ।

१० न चात्रादृष्टलक्षणः सम्बन्धो विशेषणविशेष्यभावनिवन्धनम्
इत्यभिधातव्यम्, षोढासम्बन्धवादित्वव्याघातानुपपन्नात् । न
चास्य सम्बन्धरूपता । सम्बन्धो हि द्विष्टो भवताम्युपेतः । अदृष्ट-
आत्मवृत्तितया प्रागभावाऽनादित्वयोरसिद्धेर्नकथं द्विष्टो भवतीति
चिन्त्यमेतत् ? यदि चात्रादृष्टः सम्बन्धः, तर्हि गुणगुण्यादयोप्यत
१५ एव सम्बन्धा भविष्यन्तीत्यलं समवायादिसम्बन्धकल्पनया ।

किञ्च, अतोऽनुमानात्सम्बन्धमार्गं साध्यते, तद्विशेषो वा ?
प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता, तादात्म्यलक्षणसम्बन्धस्येष्टत्वात्तन्तु-
पटादीनाम् । ननु तेषां तादात्म्ये सति तन्तवः पटो वा स्यात्,
तथा च सम्यग्बिभोरेकत्वे कथं सम्बन्धो नामास्य द्विष्टत्वात् ?
२० तदप्ययुक्तम्, यो हि द्विष्टः सम्बन्धस्तस्येष्टमभावो युक्तः, यस्तु
तत्समावृतालक्षणः कथं तस्याभावो युक्तः ? तन्तुसमाव एव हि
पटो नार्थान्तरम्, आतानवितानीभूततन्तुव्यतिरेकेण देशभेदा-
दिना पटस्यानुपलभ्यमानत्वात् ।

अथ सम्बन्धविशेषः साध्यते, स किं संयोगः, समवायो वा ?
२५ संयोगश्चेत्, अभ्युपगमवाधा । समवायश्चेत्, दृष्टान्तस्य साध्य-
विकलता ।

अथोच्यते-न संयोगः समवायो वा साध्यते किन्तु सम्बन्ध-
मात्रम्, तत्सिद्धौ च परिशेषात् समवायः सिध्यतीति, तदप्युक्ति-
मात्रम्, परिशेषन्यायेन समवायस्य सिद्धेरसंभवात्, तस्यावेक-

१ यतः । २ सप्तमिन्वयोरपि विशेषणविशेष्यभावप्रसङ्गः सम्बन्धाभावाविशेषात् ।
३ प्रागभावे । ४ अभवर्तमानः सत् । ५ इह तन्तुषु पट इत्यादीहप्रत्ययः सम्बन्ध-
कार्योऽवाच्यमानेहप्रत्ययललादिलतः । ६ नैवानाम् । ७ सम्यग्बिभोरेकत्वप्रकारेण ।
८ तन्तव एव समावो यस्य पटस्यासौ तथोक्तस्तस्य भावस्तत्समावृता तैव उच्यते यस्य
सम्बन्धस्येति वतः । ९ इह कुण्डे दधीलादिमलमविलस ।

दोषदुष्टत्वेन प्रतिपादितत्वात् । यदि हि सर्वान्तरमनेकदोष-
दुष्टं समवायस्तु निर्दोषः स्यात्, तदासौ तज्यायात् सिध्येत् । न
चैवमित्युक्तम् ।

कश्चायं परिशेषो नाम ? प्रसक्तप्रतिषेधे विशि(षे शि)ष्यमाण-
संप्रत्ययहेतुः सै इति चेत्, स किं प्रमाणम्, अप्रमाणं वा ? न^५
तावदप्रमाणमभिप्रेतसिद्धौ समर्थम्, अतिप्रसङ्गात् । प्रमाणं चेत्किं
प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा ? न तावत्प्रत्यक्षम्, तस्य प्रसक्तप्रतिषेध-
द्वारेणाभिप्रेतसिद्धावैवसमर्थत्वात् । अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानं
परिशेषः, तर्हि प्रकृतानुमानोपन्यासवैयर्थ्यम्, तस्योपन्यासेपि
परिशेषमन्तरेणाभिप्रेतसिद्धेरभावात् । परिशेषस्तु प्रमाणान्तर-^{१०}
मन्तरेणापि तत्सिद्धौ समर्थ इति स पबोच्यताम्, न चासावुक्तः,
तत् कथं समवायः सिध्येत् ?

ननु चेहप्रत्ययस्य समवायाहेतुकत्वे निर्हेतुकत्वप्रसङ्गात् कादा-
चित्कत्वविरोधः, तदसत्, तादात्म्यहेतुकतयास्य प्रतिपादित-
त्वात् । महेश्वरहेतुकत्वाद्वा कादाचित्कत्वाविरोधः । तस्य तदहेतु-^{१५}
कत्वे वा तेनैव कार्यत्वादिहेतोर्व्यभिचारः । ननु महेश्वरोऽसम्बन्ध-
त्वात्कथं सम्बन्धवृद्धेः कारणमिति चेत् ? प्रमुशकेरविन्यत्वात् ।
यो हीश्वरस्यैलोप्यकार्यकरणसमर्थः स कथं 'पदे रूपादयः' इति
बुद्धिं न विदध्यात् ? प्रमुः खलु यदेवेच्छति तत्करोति, अन्यथा
प्रमुत्वमेवास्य हीयते । नच 'इह कुण्डे दधि' इत्यादिप्रत्यये^{२०}
सम्बन्धपूर्वकत्वोपलम्भादत्रापि तत्पूर्वकत्वस्यैव सिद्धिः, तत्रापी-
श्वरहेतुकत्वं कार्यस्येच्छतस्तत्त्वोर्ध्वानिवृत्तेः । संयोगव्याप्योर्ध्व-
भूतस्तेषामिति तत्त्वेर्नान्याप्यसिद्धः, तस्यासिद्धत्वरूपत्वात् ।

“ननु संयोगो नामार्थान्तरं न स्यात्तदा क्षेत्रे बीजादयो निर्वि-
शिष्टत्वात् सर्वदैवाङ्गुरादिकार्यं कुर्युः, न चैवम् । तस्मात्सर्वदा^{२५}

१ संयोगवादात्मादिरूपम् । २ प्रसक्तः=प्रसङ्गप्रसक्तः सर्वजनप्रसिद्धो वा संयोग-
वादात्म्यरूपः, तस्य प्रतिषेधे सति निक्षिप्यमाणः समवायरूपस्य सन्नह् प्रतीतिहेतु-
रित्यर्थः । ३ परिशेषः । ४ प्रमाणस्य सन्निहितरूपादिव्येव प्रवर्तमानत्वात् । ५ परि-
शेषोपि प्रमाणान्तरमन्तरेण तत्सिद्धावसमर्थो न विन्यतीत्युक्ते संज्ञाह । ६, ७ इहेदमिति
प्रत्ययस्य । ८ इहेदमिति प्रत्ययस्य । ९ इह कुरुषु पठ इत्यादीदमलयेति । १० इह
कुण्डे दधीत्यादिप्रत्यये । ११ दधीत्यादिप्रत्ययस्य । १२ वैदेतिकस्य । १३ तत्त्वोर्ध्व-
दि महेश्वरहेतुकत्वाद्वा कादाचित्कत्वाविरोध इत्यादि । १४ येषां संयोगक्रियायां
चाभ्यामन्यः संयोग इत्यर्थः । १५ इहेति प्रत्ययमिति ज्ञात्वेन । १६ इह कुण्डेति ।
१७ संयोगे सत्यप्यपूर्वसामर्थ्योद्भावाद्यादित्यर्थः । १८ गृहे स्थापिताः सन्तोपीत्यर्थः ।

कार्यानारम्भात् तेऽङ्कुरादिकार्योत्पत्तौ कारणान्तरसापेक्षाः, यथा मृत्पिण्डदण्डादयो घटकरणे कुम्भकारादिसापेक्षाः । योसावपेक्ष्यः स संयोग इति ।

किञ्च, द्रव्ययोर्विशेषणभावेनाध्यक्षत एवासौ प्रतीयते; तथाहि-
५ कैश्चित्केनचित् 'संयुक्ते द्रव्ये आहर' इत्युक्ते ययोरेव द्रव्ययोः संयोगमुपलभते ते एवाहरति, न द्रव्यमात्रम् ।

किञ्च, 'कुण्डली देवदत्तः' इत्यादिमतिरुपजायमाना किञ्चिन्वन्धनेत्यभिधातव्यम् ? न तावत्पुरुषकुण्डलमात्रे निवन्धना, सर्वदा तस्याः सङ्गावप्रसङ्गात् ।

१० किञ्च, यदेव केनचित्कचिदुपलब्धसत्त्वं तस्यैवान्यत्र विधि-प्रतिषेधमुखेन लोके व्यवहारप्रवृत्तिर्दृष्टा । यदि तु संयोगो न कदाचिदुपलब्धस्तत्कथमस्य 'चैत्रोऽकुण्डली कुण्डली' वा इत्येवं विभागेन व्यवहारो भवेत् ? 'चैत्रोऽकुण्डली' इत्यत्र हि न कुण्डलं चैत्रो वा प्रतिषिध्यते देशादिभेदेनानयोः सतोः प्रतिषेधायोगात् ।

१५ तस्माच्चैत्रस्य कुण्डलसंयोगः प्रतिषिध्यते । तथा 'चैत्रः कुण्डली' इत्यनेनापि विधिवाक्येन चैत्रकुण्डलयोर्नान्यतरस्य विधानं तयोः सिद्धत्वात् । पारिशेष्यात्संयोगस्यैव विधिर्विज्ञायते ।" [न्यायवा० पृ० २१८-२२२]

इत्यप्युद्योतकरस्य मनोरथमात्रम्; तथाहि-यसावदुक्तम्-
२० निर्विशिष्टत्वाद्बीजादयः सर्वदैवाङ्कुरं कुर्युः; तद्युक्तम्; तेषां निर्विशिष्टत्वासिद्धेः, सकलभावानां परिणामित्वात् । ततो विशिष्टपरिणामापन्नानामेव तेषां जनकत्वं नान्यथा ।

यच्चोक्तम्-'सर्वदा कार्यानारम्भात्' इत्यादि; तत्रापि कारणमात्रसापेक्षत्वसाधने सिद्धसाध्यता, अस्माभिरपि विशिष्टपरिणा-
२५ मापेक्षाणां तेषां कार्यकारित्वाभ्युपगमात् । अथाभिमतसंयोगा-ख्यपदार्थान्तरसापेक्षत्वं साध्यते; तदानेन हेतोरन्वय्यासिद्धेरनैकान्तिकता, तमन्तरेणापि संभवाविरोधात् । दृष्टान्तस्य च साध्यविकलता । यदि च संयोगमात्रसापेक्षा एव ते तज्जनकाः; तर्हि प्रथमोपनिपाते एव क्षित्यादिभ्योऽङ्कुरादिकार्योदयप्रसङ्गः पश्चा-

१ कारणान्तरं=संयोगः । २ द्रव्ये संयोगवती इति । ३ पुमान् । ४ पुंसा ।

५ संयोगरूपापूर्वसमावप्रादुर्भावानपेक्षा । ६ पुरुषकुण्डलयोः पार्ष्वक्येन सिद्धा-
वसायामपीत्यर्थः । ७ चैत्रोऽकुण्डलीति निषेधवाक्येन । ८ अन्यतः=अविनाभावः ।

९ मृत्पिण्डादयः कुम्भकारापेक्षा घटकरणे प्रभवन्ति तथापि नासौ कुम्भकारः संयोगस्वरूप इति ।

विशेषिकलकारणत्वात् । तदा तदनुत्पत्तौ वा पश्चादप्यनुत्पत्ति-
प्रसङ्गो विशेषमावात् ।

यदप्युक्तम्-द्रव्ययोर्विशेषणभावेनेत्यादि, तदप्युक्तम्, यतो न
द्रव्याभ्यामर्थान्तरभूतः संयोगः प्रतिपत्तुः प्रत्यक्षे प्रतिभाति यत-
स्तद्दर्शनाद्विशिष्टे द्रव्ये आहरेत् । किं तर्हि ! प्राग्भाविसान्तराव-५
स्थापरित्यागेन निरन्तरावस्थारूपतयोत्पत्ते वस्तुनी एव संयुक्त-
शब्दवाच्ये, अवस्थाविशेषे प्रमावितत्वात् संयोगशब्दस्य । तेन
यत्र तथाविधे वस्तुनी संयोगशब्दविषयमावापने पश्यति ते
एवाहरेति, नान्ये ।

यदप्युक्तम्-कुण्डलीत्यादि, तदप्युक्तिमात्रम्, यतो यथैव हि १०
चैत्रकुण्डलयोर्विशिष्टावस्थाप्राप्तिः संयोगः सर्वदा न भवति,
तद्वत् 'कुण्डली' इति मतिरप्यवस्थैविशेषनिबन्धना कथं तद-
भावे भवेत् ? विधिप्रतिषेधावपि न केवलयोश्चैत्रकुण्डलयोः,
किन्त्ववस्थाविशेषस्यैवेत्युक्तदोषानवकाशः । ततो ये अनेकव-
स्तुसञ्चिपते सत्युपजायन्ते प्रत्यया न ते परपरिकल्पित-१५
संयोगविषयाः यथा प्रविरलावस्थितावेकतन्तुविषयाः प्रत्ययाः,
तथा चैते संयुक्तप्रत्यया इति ।

यथान्यदुक्तम्-'विशेषविरुद्धानुमानं सकलानुमानोच्छेदक-
त्वाच्च वक्तव्यमिति, तत्किमनुमानामासोच्छेदकत्वाच्च वाच्यम्,
सम्यगनुमानोच्छेदकत्वाद्वा ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः, न हि काला-२०
लयापदिष्टहेतूत्थानुमानोच्छेदकस्य प्रत्यक्षादेरनुमानवादिनोप-
न्यासो न कर्तव्योऽतिप्रसङ्गे । द्वितीयपक्षोऽप्युक्तः, न हि धूमा-
दिसम्यगनुमानस्य विशेषविरुद्धानुमानसहस्रेणापि प्रत्यक्षादि-
भिरपहृतविषयेषु वाचा विघातुं पार्यते । न च विशेषविरुद्धा-
नुमानत्वादेवेदमवाच्यम्, यतो न विशेषविरुद्धानुमानत्वम-२५
सिद्धत्वादिवच्छेत्वाभासनिरूपणप्रकरणे दोषो निरूपितो येनानु-
मानवादिभिस्तदसिद्धत्वादिवच्च प्रयुज्यते । ततो यदुद्दमनुमानं
तदेव विशेषविघाताय न प्रयोक्तव्यम्-यथा 'अयं प्रदेशोऽत्रत्ये-
नाग्निनाग्निमात्रं भवति धूमवत्त्वान्माहानसवत्' इत्यादिकम् ।
यतस्तेन यो विशेषो निराक्रियते स प्रत्यक्षेणैव तद्विशेषसंपत्ते ३०

१ कुम्भकारस्य सवीरकमलानामादेव । २ उच्चारितत्वात् । ३ अवसानं सञ्च-
रणा । ४ चैत्रकुण्डलयोर्विधिप्रतिषेधकत्वाच्च सकलोपः । ५ इन्द्रियाणां सञ्चिकर्षे ।
६ अत्र प्रकरणे विशेषः=समवायः । ७ काव्यमवापदिष्टहेतूत्वात्तस्मै प्रत्यक्षादेर-
प्युच्छेदानुप्रसङ्गात् । ८ चैत्राद्यैः । ९ तस्य=नयेः ।

सति प्रतीयते । न चैतत् समवाये संभवति; प्रत्यक्षाद्यगोचर-
त्वेनास्य प्रतिपादितत्वात् । न चातद्विषयं वाचकमतिप्रसङ्गात् ।

यत्पुनरुक्तम्-न चास्य संयोगवन्नानात्वमित्यादि; तदप्यसमी-
चीनम्; तदेकत्वस्यानुमानवाधितत्वात् । तथाहि-अनेकः सम-
५ वायो विभिन्नदेशकालाकारार्थेषु सम्बन्धबुद्धिहेतुत्वात् । यो य
इत्थंभूतः स सोनेकः यथा संयोगः, तथा च समवायः, तस्मादनैक
इति । प्रसिद्धो हि दण्डपुरुषसंयोगात् कटकक्यादिसंयोगस्य भेदः ।
'निविडः संयोगः क्षिथिलः संयोगः' इति प्रत्ययभेदात्संयोगस्य
भेदाभ्युपगमे 'नित्यं समवायः कदाचित्समवायः' इति प्रत्यय-
१० भेदात्समवायस्यापि भेदोऽस्तु । समवायिनोर्नित्यकादाचित्क-
त्वाभ्यां समवाये तत्प्रत्ययोत्पत्तौ संयोगिनोर्निविडत्वक्षिथिल-
त्वाभ्यां संयोगे तथा प्रत्ययोत्पत्तिः स्यान्न पुनः संयोगस्य निवि-
डत्वादिसम्भावमेवार्थः, इत्येकं संधित्सोरन्यत् प्रच्यवते ।

तथा, 'नाना समवायोऽयुतसिद्धान्वयविद्रव्याधितत्वात् संख्या-
१५ वत्' इत्यतोप्यस्यानेकत्वसिद्धिः । न चैदमसिद्धम्; अनाश्रितत्वे हि
समवायस्य "वर्णनामाश्रितत्वमन्यत्र नित्यद्रव्येभ्यः" [प्रश० भा०
पृ १६] इत्यस्य विरोधः । अथ न परमार्थतः समवायस्याश्रितत्वं
नाम धर्मो येनानेकत्वं स्यात् किन्तूपचारात् । निमित्तं तूपचारस्य
समवायिषु सत्सु समवायबोधनम् । तत्त्वतो आश्रितत्वेस्य स्वाश्र-
२० यविनाशे विनाशप्रसङ्गो गुणादिषु; इत्यप्ययुक्तम्; विशेषैरपरि-
त्यागेनाश्रितत्वसामान्यस्य हेतुत्वात्, दिगादीनामाश्रितत्वापत्तेः,
मूर्त्तद्रव्येषूपलब्धिलक्षणप्राप्तेषु दिग्लिङ्गस्य 'इदमतः पूर्वेण' इत्या-
दिप्रत्ययस्य काललिङ्गस्य च परत्वापरत्वादिप्रत्ययस्य सङ्गात्वात् ।
तथा च 'अन्यत्र नित्यद्रव्येभ्यः' इति विद्वेज्यते । सामान्यस्या-
२५ नाश्रितत्वप्रसङ्गः; आश्रयविनाशेऽप्यविनाशात् समवायवत् ।

अस्तु नानाश्रितत्वं समवायस्य, तथाप्यनेकत्वमनिवार्यम्;
तथाहि-अनेकः समवायोऽनाश्रितत्वात्परमाणुवत् । नाकाशादि-

१ गगनकुसुमस्यापि वाचकप्रसङ्गात् । २ संवत् इति बुद्धिः सवन्बुद्धिः,
तस्माः । ३ इष्टान्तं समवन्ति । ४ परमाणुवद्द्रव्ययोः । ५ तन्तुपटयोः । ६ सम-
वायस्य । ७ वैशेषिकस्य । ८ द्रव्यगुणधर्मसामान्यविशेषसमवायानाम् । ९ प्रत्ययः ।
१० स्वरूपः । ११ तन्तुपटविशु । १२ समवाय इति ज्ञानम् । १३ क्षात्रवाद-
मित्रत्वात् । १४ गुणो गुण्यमितः, अवयवोवयव्यामित इति विशेषपरिभागेन ।
१५ आश्रयविनाशेऽप्याश्रितत्वसामान्यस्याविनाशे पक्षे तस्य नित्यत्वात् । १६ दिगा-
दीनामाश्रितत्वे च सति । १७ नित्यद्रव्याणामाश्रितत्वात् ।

भिर्व्यभिचारः, तेषामपि कथंचिज्ज्ञानात्वसाधनात् । तैतोऽयुक्त-
मुक्तम्— 'इहेति प्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकः समवायः'
इति । विशेषलिङ्गाभावस्यानन्तरप्रतिपादितलिङ्गसङ्गावतोऽसि-
द्धत्वात् । इहेति प्रत्ययाविशेषोप्यसिद्धः, 'इहात्मनि ज्ञानमिह पटे
रूपादिकम्' इतीहेति प्रत्ययस्य विशेषात् । विशेषणानुरागो
हि प्रत्ययस्य विशिष्टत्वम् । न चानुगतप्रत्ययप्रतीतिः समवाय-
स्यैकत्वं सिध्यति; गोत्वादि सामान्येषु पदपदार्थेषु चानुगतस्यै-
कत्वस्याभावेऽप्यनुगतप्रत्ययप्रतीतिः ।

'सत्तावत्' इति दृष्टान्तोपि साध्यसाधनविकलः; सर्वैकत्वस्य
सत्प्रत्ययाविशेषस्य चासिद्धत्वात् । सर्वैकत्वे हि सत्तायाः १०
'पटः सन्' इति प्रत्ययोत्पत्तौ सर्वथा सत्तायाः प्रतीत्यनुपपत्तात्
कचित् सत्तासर्वदेहो न स्यात् । तस्याः सर्वथा प्रतीतावपि तद्वि-
शेषार्थानामप्रतीतिः कचित्सत्तासर्वदेहे पटविशेषणत्वं तस्या अन्य-
द्व्यर्थान्तरविशेषणत्वम् इत्यायातमनेकरूपत्वं तस्याः ।

यदप्युक्तम्—समवायीनि द्रव्याणीत्यादिप्रत्ययो विशेषणपूर्वको १५
विशेष्यप्रत्ययत्वादित्यादि; तदप्यनस्पतमोविच्छसितम् । हेतो-
र्विशेषणासिद्धत्वात् । तदसिद्धत्वं च समवायानुरागस्याप्रतीतिः ।
प्रतीतौ चानुमानानर्थक्यम् । को हि नाम समवायानुरक्तं द्रव्या-
दिकं मन्यमानः समवायं न मन्येत ? तदनुरागमावेपि तेनास्य
विशेष्यत्वे खरभृङ्गेणापि तत्स्याद्विशेषात् । ननु सम्बन्धानुरक्तं २०
द्रव्यादिकं प्रतिभाति । सत्यं प्रतिभाति, समवाये तु किमायातम् ?
न च स एव स इति वाच्यम् । तादात्म्यादपि तैर्त्समवात् संयो-
गवत् । तथाप्यत्रैवाग्रहे खरविपाणेष्व्याग्रहः किञ्च स्यात् ? 'खर-
विपाणी पट इति प्रत्ययो विशेषणपूर्वको विशेष्यप्रत्ययत्वात्'
इति । अत्राश्रयासिद्धतान्यत्रापि समाना । न खलु 'समवायी २५
पटः' इति प्रत्ययः केनाप्यनुमूयते ।

अथाप्रतिपक्षसमयस्य संसर्गमात्रं प्रतिपक्षसमयस्य तु 'सम-
वायी' इति प्रतिभातीति चेत्, न, ज्ञानाद्वैयादेः प्रसङ्गात् ।
शक्यते हि तत्राप्येवं वक्तुम्—अप्रतिपक्षसमयस्य वस्तुमात्रम-

१ अवेष्टमैवापेक्षया । २ समवायस्य चानात्वं सिद्धं वक्तुः । ३ मित्रभिन्नविशे-
षणसंभवः । ४ इहेतिप्रत्ययस्य । ५ मित्रत्वम् । ६ गोत्वमपि सामान्यं वदत्वमपि
सामान्यमिति, नयमपि पदार्थोवमपि पदार्थं इत्येवं प्रकारेण । ७ दण्डभावे दण्डीति
प्रत्ययो यथा च आश्रया समवायवस्तुविशेषणत्वात्तैमि विशेष्यप्रत्ययो न स्यादिति
भावः । ८ समवाय पदानुरागः सम्बन्धस्य । ९ समवायेन । १० इत्यादेः ।
११ तस्य—अनुरागस्य । १२ जादिना महाद्वैतादेव ।

मिथोनयोजनारहितं प्रतिभाति, संकेतवशाच्चैतत्सर्वं ज्ञानाद्व-
यादि । स्वशास्त्रजनितसंस्कारवशाद्विज्ञानाद्वयादिप्रतिभासोऽप्र-
माणम् ; इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि तत्रापि स्वशास्त्रसंस्कारादते
'समवायी' इति ज्ञानमनुभवत्यन्यजनः । न चैतच्छास्त्रमप्रमाण-
५ मेतच्च प्रमाणमिति प्रेक्षावतां वक्तुं युक्तमविशेषात् ।

समवाय इति प्रत्ययेनानैकान्तिकं आर्यं हेतुः ; स हि विशेष्य-
प्रत्ययो न च विशेषणमपेक्षते । अथात्र 'समवायिनो विशेषणम् ।
नन्वस्तु तेषां विशेषणत्वं यत्र 'समवायिनां समवायः' इति प्रति-
भासते, यत्र तु 'समवायः' इत्येतावाननुभवस्तत्र किं विशेषणमिति
१० चिन्त्यताम् ? अथ विशेषणभावाज्ज्ञेयं विशेष्यज्ञानम्, तर्ह्यन्यस्य
विशेष्यस्यात्रासंभवाद्विशेषणज्ञानमपि तन्मा भूत् । न चैतद्युक्तम् ।
कथं त्वैवं 'पटः' इति प्रत्ययो विशेष्यः स्यात् विशेषणभावा-
विशेषात् ? अथात्र पटत्वं विशेषणम्, तर्हि 'समवायः' इति
प्रत्यये किं विशेषणम् ? न तावत्समवायत्वम् ; अनभ्युपगमात् ।

१५ अथ येन सत्ता विशिष्टः प्रत्ययो जायते तद्विशेषणम्, तत्र
'समवायः' इति प्रत्ययोत्पादे समवायत्वसामान्यस्यानभ्युपग-
मात्, द्रव्यादेर्भाप्रतिभासनाददृष्टस्यैव विशेषणत्वमिति ; तच्च,
यतः किं येन सत्ता विशेष्यज्ञानैस्तुपच्यते तद्विशेषणम्, किं वा
यस्यानुरागः प्रतिभासते तदिति ? प्रथमपक्षे चक्षुरालोकादेरपि
२० तदनिवार्यम् । अथ यस्यानुरागस्तद्विशेषणम् ; न तर्हि 'दण्डी'
इति प्रत्यये दण्डवद्दण्डशब्दोच्छेदेन 'समवायः' इति प्रत्ययेष्य-
दृष्टस्य तच्छब्दयोजनाद्वारेणानुरागं जनो मन्यते । तथाप्यदृष्टस्य
विशेषणत्वकल्पनयाम् 'दण्डी' इत्यादिप्रत्ययेष्यस्यैव तत्कल्प-
नास्तु किं द्रव्यादेर्विशेषणभावकल्पनया ?

२५ यच्चोक्तम्-स्वकारणसत्तासंबन्ध एवार्त्तलाम इत्यादि ; तच्च,
आत्मलामस्य स्वकारणसत्तासमवायपर्यायतायां नित्यत्वप्रसङ्गात्,
तन्नित्यत्वे च कार्यस्याविनाशित्वं स्यात् ।

१ अभिधानः शब्दः । २ समवाये । ३ वैधेयिकः । ४ विशेषणपूर्वकव्यञ्जनाप्या-
भावात् । ५ विशेष्यप्रत्ययत्वादिति । ६ तन्मुपपादयः । ७ समवायिन्मा निवृत्तः ।
८ समवायिप्रकल्पे । ९ उक्तं मा भूदिति । १० समवायः प्रतिभासते इति प्रत्यये
विशेषणमूलकं अनुपपादयः । ११ अदर्शनीमूलकं (पुण्य-भावरूपसं) । १२ इदं
विशेष्यमिति ज्ञानम् । १३ संबन्धः । १४ विधेयः । १५ दण्डीति प्रत्यये दण्डवद्दण्डो-
च्छेदेन दण्डस्य यथानुरागं मन्यते जनो न तथा प्रकृतेऽदृष्टव्यवयवोभनाद्वारेणादृष्टस्यानु-
रागमिति संबन्धः । १६ अदृष्टानुरागान्भ्युपगमाभावेति । १७ दण्डादेस्तन्मुपपादयः ।
१८ कार्यरूपस्य वस्तुनः स्वरूपोद्भवः । १९ सत्तासमवायपर्यायतायाः ।

किञ्च, असौ सत्तासमवायः, असत्ता वा स्यात्? न तावदसताम्, व्योमोत्पलादीनामपि तत्प्रसङ्गात् । अथात्यन्तासत्त्वात्तेषां न तत्प्रसङ्गः । शुण्णगुण्यादीनामत्यन्तासत्त्वाभावः कुतः? समवायाच्चेत् । इतरेतराश्रयः-सिद्धे हि समवाये तेषामत्यन्तासत्त्वाभावः, तदभावाच्च समवायः । नापि सताम्, समवायात्पूर्व^५ हि सत्त्वं तेषां समवायान्तरात्, स्वतो वा? समवायान्तराच्चेत्, न असौकत्वाभ्युपगमात् । अनेकत्वेपि अतोपि पूर्व(र्वै)समवायान्तरात्तेषां सत्त्वमित्यनवस्था । स्वतः सत्त्वाभ्युपगमे तु समवायपरिकल्पनानर्थक्यम् । ननु न समवायात् पूर्व तेषां सत्त्वमसत्त्वं वा, सत्तासमवायात्सत्त्वाभ्युपगमात्, इत्यप्यसङ्गतम् । १० परस्परव्यवच्छेदरूपाणामेकनिषेधस्यापरविधाननान्तरीयकत्वेनोभयनिषेधविरोधात् । न चानुपकारिणोः सत्तासमवाययोः परस्परसम्बन्धो युक्तोतिप्रसङ्गात् ।

अद्यापि चेदं सत्त्वलक्षणम् सत्तासमवायात्सविशेषेषु तस्यासंभवात् । “त्रिषु पदार्थेषु सत्करी सत्ता” [] इत्यभिवा^{१५} नात् । अतिव्यापि चाकाशकुशेशयादिभ्योपि भावात् । न च तेषामसत्त्वाच्च सत्तासमवायः, अन्योन्याभयानुपज्ञात्-असत्त्वे हि तेषां सत्तासमवायविरहः, तद्विरहाच्चासत्त्वमिति । न च सत्तासमवायः सत्त्वलक्षणं युक्तमर्थान्तरत्वात् । न ह्यर्थान्तरमर्थान्तरस्य स्वरूपम्, अतिप्रसङ्गादर्थान्तरत्वहानिप्रसङ्गाच्च । २०

किञ्च, सत्तासमवायात्पदार्थानां सत्त्वे तयोः कुतः सत्त्वम्? असत्सर्ववन्धात्सत्त्वे अतिप्रसङ्गात् । सत्तासमवायान्तराच्चेत्, अनवस्था । स्वतः^{२५} पदार्थानामपि तत्स्वत एवास्तु किं सत्तासमवायेन?

यदप्यभिहितम्-अनेकरूपतावदित्यादिः तदप्यभिधानमात्रम् । २५ यतः प्रत्यक्षसिद्धे पदार्थस्वभावे स्वभावैव स्वरं वक्तुं युक्तम् । न च ‘समवायस्य स्वतः सम्बन्धत्वं संपोगादीनां तु तस्मात्’ इत्यध्यक्ष-

१ व्योमोत्पलादीनां सर्वेषां असत्त्वे प्रतिपादिते नाक्षर्याः प्राहुः । २ जल=समवायस्य । ३ अतोपि=विवक्षितसमवायान्तरादपि । ४ सत्तात् । ५ व्यवच्छेदो हि परस्पर निरुद्धवर्त्ययोगिनामेव स्यात् । ६ परस्परत्वं । ७ इन्द्रोक्तं हेमः । ८ तेषां स्वरूपेभ्यः सत्त्वसमावृतात् । ९ तेषां हि सत्त्वसंज्ञादेव सर्वं सर्वं लक्षणमेवेति भावः । १० यदस्य पदलक्षणप्रसङ्गात् । ११ सत्ता सत्तासमवायाभ्यां सत्त्वः सत्त्ववन्धः, न सत्त्ववन्धोऽसत्त्ववन्धः । १२ यगवत्कुसुमादिषु । १३ अपरसत्तासमवायाभ्यां संबन्धाभावेपीत्यर्थः ।

प्रसिद्धम्, तत्स्वरूपस्याप्यक्षाद्यगोचरत्वप्रतिपादनात् । 'समवा-
योन्मेनै संवध्यमानो न स्वतः संवध्यते संवध्यमानात्वादुपादि-
वत्' इत्यनुमानविरोधाच्च । यदि चाग्निप्रदीपगङ्गोदकादीनामुष्ण-
प्रकाशपवित्रतावत्समवायः स्वपरयोः सम्बन्धहेतुः, तर्हि तदुष्ण-
५ न्तावष्टम्भेनैव ज्ञानं स्वपरयोः प्रकाशहेतुः किञ्च स्यात् ? तथाच
“ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं प्रमेयत्वात्” [] इति भ्रूयते ।

यद्योच्यते—‘समवायः सम्बन्धान्तरं नापेक्षते, स्वतः सम्बन्ध-
त्वात्, ये तु सम्बन्धान्तरमपेक्षन्ते न ते स्वतः सम्बन्धाः यथा घटा-
दयः, न चायं न स्वतः सम्बन्धः, तस्मात्सम्बन्धान्तरं नापेक्षते इति;
१० तदपि मनोरथमात्रम्, हेतोरसिद्धेः । न हि समवायस्य स्वरूपा-
सिद्धौ स्वतः सम्बन्धत्वं तत्र सिध्यति । संयोगेनानेकान्तार्थः, स
हि स्वतः सम्बन्धः सम्बन्धान्तरं चापेक्षते । न हि स्वतोऽसम्बन्ध-
स्वभावत्वे संयोगादेः परतस्तद्युक्तम्, अतिप्रसङ्गात् । घटादीनां च
सम्बन्धित्वाच्च परेतोपि सम्बन्धत्वम् । इत्ययुक्तमुक्तम्—‘न ते
१५ स्वतःसम्बन्धाः’ इति । तन्नास्य स्वतः सम्बन्धो युक्तः ।

परैतल्लोकि संयोगात्, समवायान्तरात्, विशेषणभावात्,
अदृष्टाद्याः ? न तावत्संयोगात्, तस्य गुणत्वेन द्रव्याभ्रयत्वात्,
समवायस्य चाद्रव्यत्वात् । नापि समवायान्तरात्, तैत्तिकरूप-
तयाम्युपगमात्, “तत्त्वं भवेन” व्याख्यातम् [विशेष० सू०
२० ७।१२८] इत्यभिधानात् ।

नापि विशेषणभावात्, सम्बन्धान्तरेऽभिसम्बद्धायेर्ध्वोर्ध्वस्य प्रवृ-
त्तिप्रतीतेर्दण्डविशिष्टः पुरुष इत्यादिवत्, अन्यथा सर्वं सर्वस्य
विशेषणं विशेष्यं च स्यात् । समवायादिसम्बन्धानर्थक्यं च, तद-
भावेपि गुणगुण्यादिमाषोपपत्तेः । समवायस्य समवायिविशे-
२५ षणतानुपपत्तिश्च, अत्यन्तमर्थान्तरत्वेनातद्धर्मत्वादाकाशवत् ।
न खलु ‘संयुक्ताविमौ’ इत्यत्र संयोगिधर्मतमन्तरेण संयोगस्य

१ तत्त्व=समवायस्य । २ तन्नुपपादिकगुणसर्वविधत्वात् सार । ३ समवायसम-
वायिनोः । ४ अवष्टम्भोऽवकल्पः साहाय्यं वा । ५ स्वतःसंनर्तनादिति हेतोः । ६ न
केवलं हेतोरसिद्धेरेव । ७ आदिना संयुक्तसमवायादिसंनर्तनप्रवृत्तम् । ८ समवायात् ।
९ तत्त्व=समवायस्य । १० दृष्टान्तसूतानाम् । ११ संयोगात् । १२ ‘समवायस्य
संनर्तः स्वसमवायिषु’ इति शेषः । १३ समवायस्य । १४ परेषु । १५ यकत्वम् ।
१६ सत्तया । १७ सम्बन्धान्तरे=तादात्म्यसंयोगादि । समवायसमवायिच्छन्नेभिरपरा
दिष्वपी । १८ विशेषणभावस्य । १९ अतद्धर्मत्वं च स्यात्समवायिनां विशेषणत्वं च
सादिति सन्दिग्धानैकान्तिकलपरिहारायैवमिदमाह ।

तद्विशेषणता दृष्टा । न च समवायसमवायिनां सम्बन्धान्तरा-
भिसम्बन्धत्वम्; अनभ्युपगमात् ।

किञ्च, विशेषणभावोऽप्येतेभ्योऽत्यन्तं भिन्नस्तत्रैव कुतो निया-
म्येत ? समवायाच्चेत्, इतरेतराभ्यः-समवायस्य नियमसिद्धौ हि
ततो विशेषणभावस्य नियमसिद्धिः, तत्सिद्धेः समवायस्य
तत्सिद्धिरिति ।

किञ्च, अयं विशेषणभावः षट्पदार्थेभ्यो भिन्नः, अभिन्नो वा ?
भिन्नश्चेत्, किं भावरूपः, अभावरूपो वा ? न तावद्भावरूपः, 'षडेव
पदार्थाः' इति नियमविरोधात् । नाप्यभावरूपः, अनभ्युपगमात् ।
अनेदेपि न तावद्भव्यम्, गुणाश्रितत्वाभावाप्रसङ्गात् । अत एव १०
न गुणोपि । नापि कर्मः, कर्माश्रितत्वाभावाप्रसङ्गात् । "अकर्म
कर्म" [] इत्यभिधानात् । नापि सामान्यम्, समवाये
तदनुपपत्तेः, पदार्थत्रयवृत्तित्वात्तस्य । नापि विशेषः, विशेषणां
नित्यद्रव्याश्रितत्वात् । अनित्यद्रव्ये चास्योपलब्धत्वात् समवाये
चाभावाप्रसङ्गात् । युगपदनेकसमवायिविशेषणत्वे चास्यानेकत्व- १५
प्राप्तिः । यदिह युगपदनेकार्थविशेषणं तदनेकं प्रतिपन्नम् यथा
वण्डकुण्डलादि, तथा च समवायः, तस्मादनेक इति । न च
सत्त्वादिनाऽनेकान्तः, तस्यानेकसमवायत्वप्रसङ्गनात् । तच्च
विशेषणभावेनाप्यसौ सम्बन्धः ।

नाप्यऽदृष्टेन, अस्य सम्बन्धरूपत्वासम्भवात् । सम्बन्धो हि २०
द्विष्टो भवताम्युपगतः, अदृष्टात्मावृत्तितया समवायसमवायि-
नोरतिष्ठन् कथं द्विष्टो भवेत् ? योहा सम्बन्धवादित्वव्याघातश्च ।
यदि चाऽदृष्टेन समवायः सम्बन्ध्यते, तर्हि गुणगुण्यादयोऽप्यत
एव सम्बन्धा भविष्यन्तीत्यलं समवायादिकल्पनया । न चादृष्टो-
प्यसम्बन्धः समवायसम्बन्धहेतुः अतिप्रसङ्गात् । सम्बन्धश्चेत्, २५
कुतोऽस्य सम्बन्धः ? समवायाच्चेत्, अन्योन्यसर्गमयः । अन्यतश्चेत्,
अभ्युपगमव्याघातः । तच्च सम्बन्धः समवायः ।

नाप्यसम्बन्धः, 'वर्णनामाश्रितत्वम्' इति विरोधाप्रसङ्गात् ।
कथं चासम्बन्धस्य सम्बन्धरूपतार्थान्तरवत् ? सम्बन्धवृद्धिहेतु-
त्वाच्चेत्, महेश्वरदेवपि तत्प्रसङ्गः । कथं चासम्बन्धोऽसौ सम- ३०

१ समवायः । २ समवायिन्वः । ३ विशेषा नित्यद्रव्यस्य इति वचनात् ।
४ विशेषणभावः । ५ पूर्वम् । ६ समवायसिद्धौ हि समवायेवाद्दृष्टस्य सम्बन्धस्य
सिध्यति तत्सिद्धौ चाऽदृष्टस्य सम्बन्धस्य समवायहेतुर्लभः सिध्यति । ७ समवायः सद्य
एव सम्बन्ध इत्यभ्युपगमः । ८ मतम् ।

वायिनोः सम्बन्धबुद्धिनिबन्धनम् ? न ह्यङ्गुल्योः संयोगो घट-
पटयोरप्रवर्त्तमानस्तयोः सम्बन्धबुद्धिनिबन्धनं दृष्टः । तथा,
'इहात्मनि ज्ञानमित्यादिसम्बन्धबुद्धिर्न सम्बन्ध्यऽसम्बद्धसम्ब-
न्धपूर्विका सम्बन्धबुद्धित्वात् दण्डपुरुषसम्बन्धबुद्धिवत्' इत्यनु-
५ मानविरोधश्च ।

किञ्च, अयं समवायः समवायिनोः परिकल्प्यते, असमवायि-
नोर्वा ? यद्यसमवायिनोः, घटपटयोरप्येतत्प्रसङ्गः । अथ सम-
वायिनोः, कुतस्तयोः समवायित्वम्-समवायात्, स्वतो वा ?
समवायाच्चेत्, अन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि समवायित्वे तयोः सम-
१० वायः, तस्माच्च सत्त्वमिति ।

किञ्च, अभिन्नं तेनानयोः समवायित्वं विधीयते, भिन्नं वा ? न
तावदभिन्नम्, तद्विधाने गगनादीनां विधानानुषङ्गात् । भिन्नं
चेत्, तयोस्तत्सम्बन्धित्वानुपपत्तिः । सम्बन्धान्तरकर्त्तृत्वे ज्ञान-
वस्था । तत एव तन्नियमे चेतरेतराश्रयः-सिद्धे हि समवायिनोः
१५ समवायित्वनियमे समवायनियमसिद्धिः, ततश्च तन्नियमसिद्धि-
रिति । स्वत एव तु समवायिनोः समवायित्वे किं समवायेन ?

ननु संयोगेऽप्येतत्सर्वं समानम्, इत्यप्यवाच्यम्, संस्तिष्ठतयो-
त्पन्नवस्तुस्वरूपव्यतिरेकेणास्याप्यसम्भवात् । भिन्नसंयोगवशात्
संयोगिनोर्नियमे समानमेवैतत् ।

२० यथान्यदुक्तम्-संयोगिद्रव्यविकक्षणत्वाद्गुणत्वादीनामित्यादि;
तदप्यनुक्तसमम्, यतो निष्क्रियत्वेऽप्येवमाभाषेयत्वमल्पपरिमाण-
त्वात्, तत्कार्यत्वात्, तथाप्रतिभासाद्वा ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः,
सामान्यस्य महापरिमाणगुणस्य ज्ञानाभाषेयत्वप्रसङ्गात् । द्वितीय-
पक्षोऽप्यत एवायुक्तः ।

२५ तृतीयपक्षोऽप्यविचारितरमणीयः, तेषामाभाषेयतया प्रतिभासा-
भावात् । तदभावश्च रूपादीनां स्वाभावेऽप्यन्तर्बहिश्च सत्त्वादेः ।
न ह्यन्यत्र कुण्डादावधिकरणे वदरादीनामाधेयानां तथा सत्त्व-
मस्ति । अथ रूपादीनामाधेयत्वे सत्यपि युतसिद्धेरभावाद्गुपरि-

१ सम्बन्धी । २ घटपट्यान्वां पृथग्भूतः । ३ अङ्गुलगगनाभ्यां समवाय्यभिन्नसं
समवायित्वस्य समवायेन विधानाद्ययोरपि विधानमिलनैः, एवं ज्ञानात्मादिष्वपि ।
४ समवायिनोर्निर्दं समवायित्वमिति सम्बन्धाभावा इति भावः । ५ तत्सम्बन्धित्व-
सिद्ध्यर्थम् । ६ तस्य-गुण्यादेः । ७ भावेवतया । ८ गणनवर्तिनः । ९ जल्पपरि-
माणत्वाभावात् । १० यदादिषु । ११ भावेनैव वक्षिरेव सत्त्वसङ्गादादिति भावः ।
१२ अन्तर्बहिःप्रकारेण ।

तनतया प्रतिभासाभावः, न; युतसिद्धत्वस्योपरितनत्वप्रतीत्य-
हेतुत्वात्, अन्यथोद्भावस्थितवंशादेः क्षीरनीरयोश्च सम्बन्धे
तत्प्रसङ्गात् । ततः परपरिकल्पितपदार्थानां विचार्यमाणानां
स्वरूपाव्यवस्थितेः कथं 'पदेव पदार्थाः' इत्यवधारणं घटते
स्वरूपासिद्धौ संख्यासिद्धेरभावात्? ५

प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनद्वयान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयदा-
वजल्पवितण्डाहेत्याभासच्छल[जाति]निग्रहस्थानानां नैयायिका-
भ्युपगतषोडशपदार्थानां पदपदार्थाभिष्येन व्यवस्थानाच्च । न
च पदार्थषोडशकस्य यद्वैतवान्तर्भावाच्चातोचिकपदार्थव्यवस्थे-
त्यभिधातव्यम्, द्रव्यादीनामपि पञ्चा प्रमाणप्रमेयरूपपदार्थद्वये-१०
ऽन्तर्भावात्पदार्थपदकस्याप्यनुपपत्तेः । अथ तदन्तर्भावव्यवन्तर-
विभिन्नलक्षणवशात् प्रयोजनवशाच्च द्रव्यादिपद्व्यवस्था; तर्हि
तत एव प्रमाणादिषोडशव्यवस्थाप्यस्तु विशेषाभावात् । न च
सापि युक्ता; परोपगतस्वरूपाणां प्रमाणादीनां यथास्थानं प्रति-
वेधात्, विपर्ययानध्यवसाययोश्च प्रमाणादिषोडशपदार्थभ्यो-१५
ऽर्थान्तरभूतयोः प्रतीतेः ।

धर्माधर्मद्वययोश्च । कुतः प्रमाणात्तत्सिद्धिरिति चेत्? अनुमा-
नात्, तथाहि-विवादापन्नाः सकलजीवपुद्गलक्षयाः सकलतयः
साधारणवैकानिमित्तापेक्षाः, युगपद्भाविगतित्वात्, एकसं-
ख्येन अयानेकमध्यगतिवत् । तथा सकलजीवपुद्गलस्थितयः २०
साधारणवैकानिमित्तापेक्षाः, युगपद्भाविस्थितिगतिवत्, एककु-
ण्डलाध्यानेकबद्धादिस्थितिवत् । यत्तु साधारणं निमित्तं स
धर्मोऽधर्मश्च, ताभ्यां विना तद्वैतस्थितिकार्यस्यासम्भवात् ।

गतिस्थितिपरिणामिन एवार्थाः परस्परं तद्वैतवञ्चेत् । न;
अन्योन्याध्यानुपपन्नात्—सिद्ध्यां हि तिष्ठत्पदार्थभ्यो गच्छत्पदा-२५
र्थानां गतौ तेभ्यस्तिष्ठत्पदार्थानां स्थितिसिद्धिः, तत्सिद्धौ च
गच्छत्पदार्थानां गतिसिद्धिरिति । साधारणनिमित्तरहिता एवा-
खिलार्थगतिस्थितयः प्रतियोग्यतत्त्वकारणपूर्वकत्वादिति चेत्;
कथमिदानीं नर्त्तकीर्क्षेणो निखिलप्रेक्षकजनानां नानातद्वेदनो-

१ इति चेन्न इत्यर्थः । २ युतसिद्धयोः । ३ उपरितननता प्रतिभासस्य ।
४ प्रमाणप्रमेयपदार्थद्वयेन्तर्भावः पञ्चा नियतत्वप्रकटिकावात् । ५ निनिवृत्त्यन-
वशात्प्रयोजनवशाच्च द्रव्यादिपद्व्यवस्था नवति प्रमाणादिषोडशव्यवस्था च न भवतीति
निर्णयं नोत्पद्यमानः । ६ वस्तु । ७ वस्तु निमित्तं धर्मः । ८ अत्र निमित्तधर्मः ।
९ तस्य=सकलजीवादेः । १० नर्त्तकी यत्र क्षण. परोपगतः । ११ कामोद्गदार्थः ।

त्पक्षौ साधारणं निमित्तम् ? सहकारिमात्रत्वेन चेत्, तर्हि सकलार्थगतिस्थितीनां सकृद्भूवां धर्माधर्मौ सहकारिमात्रत्वेन साधारणं निमित्तं किञ्चेष्यते ?

पृथिव्यादिरेव साधारणं निमित्तं तासाम्, इत्यप्यसङ्गतम् ;
५ गगनवार्त्तिपदार्थगतिस्थितीनां तदसम्भवात् । तर्हि नभः साधारणं निमित्तं तासामस्तु सर्वत्र भावात्, इत्यप्यपेशलम् ; तस्यावगाह-
निमित्तत्वप्रतिपादनात् । तस्यैकस्यैवानेककार्यनिमित्ततायाम्
अनेकसर्वगतपदार्थपरिकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात्, कालात्मदि-
क्क्षामान्यसमवायकार्यस्यापि यौगपद्यादिप्रत्ययस्य द्रुष्ट्यादेः
१० 'इदमतः पूर्वेण' इत्यादिप्रत्ययस्य अन्वयज्ञानस्य 'इहेदम्' इति
प्रत्ययस्य च नभोनिमित्तस्योपपत्तेस्तस्य सर्वत्र सर्वदा सङ्गावात् ।
कार्यविशेषात्कालादिनिमित्तमेदव्यवस्थायाम् तत एव धर्मादि-
निमित्तमेदव्यवस्थाप्यस्तु सर्वथा विशेषाभावात् ।

एतेनैवाहप्रतिमित्वमप्यासां प्रत्याख्यातम्, पुद्गलानामहदा-
१५ सम्भवाच्च । ये यदात्मोपभोग्याः पुद्गलास्तद्वतिस्थितयस्तीदा-
न्माऽहप्रतिमित्ताश्चेत्, तर्ह्यसाधारणं निमित्तमहदं तासां प्रति-
नियतात्माहदस्य प्रतिनियतद्रव्यगतिस्थितिहेतुत्वप्रसिद्धेः । न च
तदनिष्टं तासां क्षमादेरिवासाधारणकारणस्याहदस्यापीष्टत्वात् ।
साधारणं तु कारणं तासां धर्माधर्मावेवेति सिद्धः कार्यविशेषा-
२० चयोः सङ्गाव इति* ।

भेदेदानीं फलविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थमज्ञाननिवृत्तिरित्या-
द्याह—

अज्ञाननिवृत्तिः हानोपादानोपेक्षाश्च

फलम् ॥ ५।१ ॥

२५ प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च ॥ ५।२ ॥

१ तस्याः । २ अनेकानि—गतिस्थितिवगाहकस्यापि । ३ कार्यविशेषत्वस्य ।
४ सकृद्भूवा सकलार्थगतिस्थितीनां नभोनिमित्तत्वनिराकरणेन । ५ तेषां पुद्गलानां ।
६ वेनात्मना ते पुद्गला उपप्लव्यन्ते तस्य । ७ गलादीनाम् । ८ प्रमित्यादेः ।
९ जनानां । १० विषयविप्रतिपत्तिनिराकरणानन्तरम् । ११ प्रमाणादभिन्नमेव
फलमिति बोधाः अभिन्नमेवेति सौम्या इति निश्चायित्वास्यां फले विप्रतिपत्तिः ।

* (परीक्षासुखे—प्रमेयसमाख्यायां च अत्रैव चतुर्थपरिच्छेदस्य समाप्तिः, 'अज्ञान-
निवृत्तिः' इत्यादिचर्चं तु पञ्चमाध्याये संगमितम्)

द्विविधं हि प्रमाणस्य फलं ततो भिन्नम्, अभिन्नं च । तत्राद्यान-
निवृत्तिः प्रमाणादभिन्नं फलम् । ननु चाद्याननिवृत्तिः प्रमाणभूत-
ज्ञानमेव, न तदेव तस्यैव कार्यं युक्तं विरोधात्, तत्कृतोऽसौ प्रमा-
णफलम् ? इत्यनुपपन्नम्, यतोऽज्ञानमस्तिः स्वपररूपयोर्व्यामोहः,
तस्य निवृत्तिर्यथावत्तद्रूपयोर्हेतिः, प्रमाणधर्मत्वात् तत्कार्यतया
न विरोधमध्यास्ते । खैर्विषये हि स्वार्थस्वरूपे प्रमाणस्य व्यामोह-
विच्छेदाभावे निर्विकल्पकदर्शनात् सन्निकर्षाद्याविशेषप्रसङ्गतः
प्रामाण्यं न स्यात् । न च धर्मधर्मिणोः सर्वथा भेदोऽभेदो वा;
तद्भावविरोधानुपपन्नात् तदन्वयतरवदर्थान्तरवच्च ।

अथाद्याननिवृत्तिर्ज्ञानमेवेत्यनयोः सामर्थ्यसिद्धत्वादन्यथानुपप- १०
त्तैरभेदः, तच्च अस्याऽविरुद्धत्वात् । सामर्थ्यसिद्धत्वं हि भेदे
सत्येवोपलब्धं निमग्नये आकारणवत् । कथं त्वैवं बोद्धिना हेताव-
न्वयव्यतिरेकधर्मयोर्भेदः सिध्येत् ? 'साध्यसद्भावेऽस्तित्वमेव हि
साध्याभावे हेतोर्नास्तित्वम्' इत्यनयोरपि सामर्थ्यसिद्धत्वा-
विशेषात् । १५

न चानयोरभेदे कार्यकारणभावा विरुध्यते; अभेदस्य तद्भावा-
विरोधकत्वात्कीचिदुत्सादिवत् । साध्यकतमसमावर्तं हि प्रमाणम् स्वप-
ररूपयोर्हेतिसिद्धज्ञानमज्ञाननिवृत्तिं निवर्त्तयति तत्रान्येनास्या निर्व-
र्तनाभावात् । साध्यकतमसमावर्तत्वं चास्य स्वपरग्रहणव्यापार एव
तद्ग्रहणामिमुख्यलक्षणः । तद्धि स्वकारणकलापादुपजायमानं २०
स्वपरग्रहणव्यापारलक्षणोपयोगीरूपं सत्स्वार्थव्यवसायतृप्तया
परिणमते इत्यभेदेऽर्प्यनयोः कार्यकारणभावाऽविरोधः ।

नन्वेवमज्ञाननिवृत्तिरूपतयेव हेतूनादिरूपतयाप्यस्य परिणम-
सम्भवात् तदप्यस्याऽभिन्नमेव फलं स्यात्, इत्यप्यसुन्दरम्, अद्या-
ननिवृत्तिलक्षणफलेनार्थं व्यवर्धनसम्भवतो भिन्नत्वाविरोधात् । २५

१ सौम्यः प्राह । २ अद्याननिवृत्तेः । ३ प्रमाणविषये । ४ प्रमाणधर्मत्वादित्ये-
तस्याऽस्तित्वविरासार्थमिदम् । ५ अद्याननिवृत्तयोः सामर्थ्यमस्ति तस्मादेवमन्तरेण
नोपपद्यते तस्मादनयोर्भेद इति भावः । ६ अभेदमन्तरेण । ७ भेदस्य ।
८ आद्यानवत् । ९ अद्याननिवृत्तिर्ज्ञानमेवेत्यनयोः सामर्थ्यसिद्धत्वात्तदनुपपत्तैरभेद-
इत्येवंवादिनः । १० नन्वाद्याननिवृत्तिः प्रमाणादभिन्नं फलमित्यनेन प्रकारेण
प्रमाणफलवोरभेदे कार्यकारणभावा विरुध्यत इत्युक्ते तस्मात् । ११ प्रमाणाद्यान-
निवृत्तयोः । १२ सन्निकर्षादिना । १३ सर्वग्रहणे व्यापारो द्रव्ययोग इति वचनात् ।
१४ प्रमाणादयोः । १५ साक्षात्फलमेतत् । १६ परस्परफलमेतत् । १७ हानादेः ।
१८ प्रमाणाद्याननिवृत्तिः फलं स्यात्, अद्याननिवृत्तिफलतयाद्यानोपदानोपेक्षा
फलं स्यादिति भावः ।

अत आह-दानोपादानोपेक्षाश्च प्रमाणाङ्गिणं फलम् । अत्रापि कथञ्चिद्भेदो द्रष्टव्यः । सर्वथा भेदे प्रमाणफलव्यवहारविरोधात् । अनुमेवार्थं स्पष्टयन् यः प्रमिमीते इत्यादिना लौकिकैर्तत्प्रतिपत्तिप्रसिद्धां प्रतीतिं दर्शयति—

५ यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्त उपेक्षते चेति प्रतीतेः ॥ ५।३ ॥

यः प्रतिपत्ता प्रमिमीते स्वार्थग्रहणपरिणामेन परिणमते स एव निवृत्ताज्ञानः स्वविषये व्यामोहविरहितो जहात्यभिप्रेतप्रयोजनाप्रसाधकमर्थम्, तत्प्रसाधकं त्वादत्ते, उभयप्रयोजनाऽप्रसाधकं उपेक्षणीयमुपेक्षते चेति प्रतीतेः प्रमाणफलयोः कथञ्चिद्भेदाभेदव्यवस्था प्रतिपत्तव्या ।

नैवेवं प्रमातृप्रमाणफलानां भेदाभावात्प्रतीतिप्रसिद्धत्वावस्थाविलोपः स्यात्, तदसाम्प्रतम्, कथञ्चिद्व्यवस्थाभेदतत्त्वेषां भेदात् । आत्मनो हि पदार्थपरिच्छिन्नौ साधकतमत्वेन व्याभि-
१५ यमाणं स्वरूपं प्रमाणं निर्व्यापारम्, व्यापारं तु क्रियोच्यते, स्वातन्त्र्येण पुनर्व्याप्यमाणं प्रमाता, इति कथञ्चित्तद्भेदः । प्राक्कनपर्यायविशिष्टस्य कथञ्चिदवस्थितस्यैव बोधेस्य परिच्छि-
त्तिविशेषरूपतयोत्पत्तेरभेद इति । साधनभेदाच्च तद्भेदः, करणसाधनं हि प्रमाणं साधकतमसमावयम्, कर्तृसाधनस्तु
२० प्रमाता स्वतन्त्रस्वरूपः, भौवसाधना तु क्रिया स्वार्थनिर्णी-
तिस्वभावा इति कथञ्चिद्भेदाभ्युपगमादेव कायकारणभावस्याप्यविरोधः ।

यद्योच्यते-औत्मव्यतिरिक्तक्रियाकारि प्रमाणं कारकत्वाद्वा-
स्यादिवत्, तत्र कथञ्चिद्भेदे साध्ये सिद्धसाध्यता, अज्ञाननिवृत्ते-
२५ स्तद्धर्मतया हानादेश्च तत्कार्यतया प्रमाणात्कथञ्चिद्भेदाभ्युपग-
मात् । सर्वथा भेदे तु साध्ये साध्यविकलो दृष्टान्तः, वास्यादिना

१ इतरः शास्त्रहः । २ यः प्रतिपत्ता प्रमिमीते इत्यादिप्रकारेण । ३ जातमल-
रूपम् । ४ परिच्छिन्नरूपा । ५ प्रमाणम् । ६ फलरूपतया । ७ साधनं करण-
कर्मादि । ८ प्रमातृप्रमाणपरिच्छिन्नभिेदः । ९ करणे साधनं व्युत्पादनं वस्तु,
प्रमीयते वस्तुत्वं वेनेति तत्करणसाधनं प्रमाणम् । १० कर्तारं साधनं व्युत्पादनं
वस्तु प्रमातुः, प्रमिमीते इति जनोक्तम् । ११ प्रमितिः प्रमाणम् । १२ यः प्रतिपत्ता
प्रमिमीते इत्यनेन प्रकारेण प्रमाणफलबोधे कार्यकारणभावविरोध इत्युक्ते सत्ताह ।
१३ आत्मस्वरूपम् ।

हि काष्ठादेदिच्छदा निरूप्यमाणा छेद्यद्रव्यानुप्रवेशलक्षणैवावति-
ष्ठते । स चानुप्रवेशो वास्यादेरात्मगत एव धर्मो नार्थान्तरम् ।
ननु छिदा काष्ठस्या वास्यादिस्तु देवदत्तस्य इत्यनयोर्मेव एव,
इत्यप्यसुन्दरम् ; सर्वथा मेदस्यैवमसिद्धेः, सत्त्वादिनाऽमेदस्यापि
प्रतीतेः । न च 'सर्वथा करणाद्भिन्नैव क्रिया' इति नियमोस्तिः,^५
'प्रदीपः स्वात्मनात्मानं प्रकाशयति' इत्यत्रामेदेनाप्यस्याः प्रतीतेः ।
न खलु प्रदीपात्मा प्रदीपाद्भिन्नः, तस्याऽप्रदीपत्वप्रसङ्गात् पटवत् ।
प्रदीपे प्रदीपात्मनो भिन्नस्यापि समवायात्प्रदीपत्वसिद्धिरिति
चेत्, न; अप्रदीपेपि घटादौ प्रदीपत्वसमवायानुपपन्नात् । प्रत्यास-
त्तिविशेषात्प्रदीपात्मनः प्रदीप एव समवायो नान्यत्रेति चेत्, स १०
कोऽन्योन्यत्र कथञ्चित्तादात्म्यात् ।

यत्नेन प्रकाशनक्रियाया अपि प्रदीपात्मकत्वं प्रतिपादितं प्रति-
पत्तव्यम् । तस्मास्ततो मेदे प्रदीपस्याऽप्रकाशकद्रव्यत्वानुपपन्नात् ।
तत्रास्याः समवायाभावं दोषः, इत्यप्यसमीचीनम्, अनन्तरो-
क्ताऽशेषदोषानुपपन्नात् । तन्नान्योरात्यन्तिको मेदः । १५

नाप्यमेदः, तदऽव्यवस्थानुपपन्नात् । न खलु 'सांख्य्यमसौ
प्रमाणमधिगतिः फलम्' इति सर्वथा तादात्म्ये व्यवस्थापयितुं
शक्यं विरोधात् ।

ननु सर्वथाऽमेदेऽप्यनयोर्व्यावृत्तिमेदात्प्रमाणफलव्यवस्था घटते
एव, अप्रमाणव्यावृत्त्या हि ज्ञानं प्रमाणमफलव्यावृत्त्या च फलम्, २०
इत्यप्यविचारितरमणीयम्, परमार्थतः स्नेहसिद्धिविरोधात् । न
च समावमेदमन्तरेणान्यव्यावृत्तिमेदोऽप्युपपद्यते इत्युक्तं सां-
ख्य्यविचारे । कथं वास्याऽप्रमाणफलव्यावृत्त्या प्रमाणफलव्यव-
स्थावत् प्रमाणफलान्तरव्यावृत्त्याऽप्रमाणफलव्यवस्थापि न स्यात् ?
ततः पारमार्थिके प्रमाणफले प्रतीतिसिद्धे कथञ्चिद्भिन्ने प्रतिपत्तव्ये २५
प्रमाणफलव्यवस्थार्थेयानुपपत्तेरिति स्थितम् ।

१ इत्यमाना क्रियमाणा वा । २ भिन्नाधिकरणत्वेन । ३ लोके । ४ गाला-
सकर्म प्रदीपत्वमिति पाठः । ५ अन्यथा । ६ प्रदीपप्रदीपात्मनोरमेदमति-
पादनेन । ७ प्रयणफलम् । ८ सौगतमात्रज्ञोऽन्ये । ९ जनेन सादृश्यं
प्रमाणम् । १० निर्विकल्पकज्ञानम् । ११ स्नेहः प्रमाणफलमोर्मेदः । १२ पारमा-
र्थिकमभिहितत्वमतिरेकेण ।

योऽनेकान्तपदं प्रवृद्धमतुलं खेष्टार्थसिद्धिप्रदम्,
 प्राप्तोऽनन्तगुणोदयं निखिलविशिःशेषतो निर्मलम् ।
 स श्रीमानखिलप्रमाणविषयो जीवाज्जनानन्दनः,
 मिथ्यैकान्तमहान्धकाररहितः श्रीवर्द्धमानोदितः ॥

५ इति श्रीप्रभावन्नाविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे
 चतुर्थः परिच्छेदः ॥ श्रीः ॥

१ अखिलप्रमाणविषयपक्षे निखिलविष्ट केनञ्चार्थं यसादनैकान्तपदात्तनिखिल-
 विदनेकान्तपदम् । सर्ववपक्षे तु निखिलं वेत्तीति निखिलविष्ट । यत्तत्पदं सर्ववप-
 मात्मकं निवेद्यमपराणि निवेदयन्ति । तत्रम् निखिलवित्तसर्वयो जीवात् । विषय-
 क्षेत्रनिखिलार्थं प्रमाणानां विषयोऽर्थ इति वत्तपूर्वप्रस्तावः । सर्ववपक्षे तु निखिलवि-
 त्तवन्मूलाः अखिलप्रमाणविषयः सर्वप्रमाणमात्र इत्यर्थः ।

श्रीः ।

अथ पञ्चमः परिच्छेदः ॥

अथेदानीं तदाभासस्वरूपनिरूपणाय—

ततोऽन्यत्तदाभासम् ॥ १ ॥

इत्याद्याह ।

प्रतिपादितस्वरूपात्प्रमाणसंख्याप्रमेयफलाद्यद्वयत्तदाभास-
मिति । तदेव तथाहीत्यादिना यथाकर्म व्याचष्टे । तत्र प्रतिपादि- ५
तस्वरूपात्स्वार्थव्यवसायात्मकप्रमाणाद्वये—

अख्यैसंविदितगृहीतार्थदर्शनैः संशयादयः

प्रमाणाभासाः ॥ २ ॥

प्रवृत्तिविषयोपदर्शकत्वाभावात् ॥ ३ ॥

पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छतृणस्पर्शस्थाणुपु- १०

रुषादिज्ञानवत् ॥ ४ ॥

चक्षुरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च ॥ ५ ॥

एतच्च सर्वं प्रमाणसामान्यलक्षणपरिच्छेदे विस्तरतोऽभिहित-
मिति पुनर्नैवामिचीयते । तथा

अवैशये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्याकस्मा- १५

द्धमदर्शनाद् बह्विविज्ञानवत् ॥ ६ ॥

विशदं प्रत्यक्षमित्युक्तं ततोऽन्यसिद्धौ वैशये सति प्रत्यक्षं तदा-

१ तैर्ना=प्रमाणस्वरूपाविषयकज्ञानात् । २ अख्यसंविदितस्य स्वमाहकत्वाभावेना-
न्यप्रतिपत्त्यनोपाध्यावृत्तिविषयोपदर्शकत्वाभावात् । ३ निषिक्तपदं दर्शनम्, तस्य प्रवृत्ति-
विषयोपदर्शकत्वाभावात्प्रत्यक्षमित्युक्तस्यैव तदुपदर्शकत्वात् । ४ आदिना निषेधानव्य-
वसायी । ५ अत्रोदाहरणानि यथाक्रममाह । ६ सन्निकर्तव्यत्वं प्रत्यक्षं च दृष्टान्त-
माह । ७ अथमर्थो=अथ चक्षुरसयोः संयुक्तसमवायः सन्नति च प्रमाणं तथा चक्षुरप-
योरपि । तस्मादप्यपि प्रमाणाभासः प्रतीयते ।

भासं बौद्धस्याकस्मिकधूमदर्शनाद्विविधानवत् इत्यप्युक्तं प्रपञ्चतः प्रत्यक्षपरिच्छेदे ।

**वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं भीमांसकस्य
करणज्ञानवत् ॥ ७ ॥**

५ न हि करणज्ञानेऽध्यवधानेन प्रतिभासलक्षणं वैशद्यमसिद्धं
स्वार्थयोः प्रतीत्यन्तरनिरपेक्षतया तत्र प्रतिभासनादित्युक्तं तत्रैव ।
तथाऽनुभूतेर्ये तदित्याकारा सृष्टिरित्युक्तम् । अननुभूते—

**अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं जिनदत्ते
स देवदत्तो यथेति ॥ ८ ॥**

१० तथैकत्वादिनिबन्धनं तदेवेदमित्यादि प्रत्यभिज्ञानमित्युक्तम् ।
तद्विपरीतं तु—

**सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमल-
कवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम् ॥ ९ ॥**
असम्बन्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम्, यावाँस्त-

त्युत्रः स इयामः इति यथा ॥ १० ॥

व्याप्तिज्ञानं तर्क इत्युक्तम् । ततोऽन्यत्युत्रः असम्बन्धे—अव्याप्ति
तज्ज्ञानं=व्याप्तिज्ञानं तर्काभासम् । यावाँस्तत्युत्रः स इयाम इति
यथा ।

इदमनुमानाभासम् ॥ ११ ॥

२० साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानमित्युक्तम् । तद्विपरीतं त्विदं
वक्ष्यमाणमनुमानाभासम् । पक्षहेतुदृष्टान्तपूर्वकमनुमानप्रयोगः
प्रतिपादित इति । तत्रेत्यादिना यथाक्रमं पक्षमासादीनुदाहरति ।

तत्र अनिष्टादिः पक्षमासः ॥ १२ ॥

१ यथा धूमवाष्पादिविवेकनिश्चयाभावाद्वापिग्रहणाभासदकसाधूमदर्शनाच्चातं पक्ष-
द्विविधानं तस्यदाभासं भवति कसादनिश्चयात्, तथा बौद्धपरिकल्पितं यथिर्विकल्पक-
प्रत्यक्षं तत् प्रत्यक्षभासं भवति कसादनिश्चयात् । २ पक्षप्रत्यभिज्ञानाभासम् ।
३ सादृश्यप्रत्यभिज्ञानाभासम्, स्मरणं लेन सदृशमित्यर्थः । ४ धमकर्तृ=धुमकम् ।
५ भविनाभासाभावे ।

लोके हि प्राण्यङ्गत्वाविशेषेपि किञ्चिदपवित्रं किञ्चित्पवित्रं च वस्तुस्वभावात्प्रसिद्धम् । यथा गोपिण्डोत्पन्नत्वाविशेषेपि वस्तुस्वभावंतः किञ्चिदुग्धादि शुद्धं न गोमांसम् । यथा वा मणित्वाविशेषेपि कश्चिद्विषापहारादिप्रयोजनविधायी महामूल्योऽन्यस्तु ५ तद्विपरीतो वस्तुस्वभाव इति ।

स्ववचनवाधितो यथा—

माता मे वन्ध्या पुरुषसंयोगेप्यगर्भत्वा-
त्प्रसिद्धवन्ध्यावत् ॥ २० ॥

अथेदानीं पक्षामासानन्तरं हेत्वाभासेत्यादिना हेत्वाभासानाह—
१० हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्ति-
काऽकिञ्चित्कराः ॥ २१ ॥

साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुरित्युक्तं प्राक् । तद्विपरीतास्तु हेत्वाभासाः । के ते ? असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाऽकिञ्चित्कराः ।

१५ तत्रासिद्धस्य स्वरूपं निरूपयति—

असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः इति ॥ २२ ॥

सत्ता च निश्चयश्च [सत्तानिश्चयौ] असन्तौ सत्तानिश्चयौ यस्य स तथोक्तः । तत्र—

अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षु-
षत्वादिति ॥ २३ ॥

कथमस्याऽसिद्धत्वमित्याह—

स्वरूपेणासिद्धत्वात् इति ॥ २४ ॥

चक्षुर्ज्ञानग्राह्यत्वं हि चाक्षुषत्वम्, तच्च शब्दे स्वरूपेणासत्त्वात् सिद्धम् । पौल्लिकत्वात्तत्सिद्धिः, इत्यप्यपेशलम्; तद्विशेषेणानु-
२५ द्रुतस्वभावस्यानुपलम्भसम्भवाज्जलकनकादिसंयुक्तानले भासुर-
रूपोष्णरूपस्पर्शवदित्युक्तं तत्पौल्लिकत्वसिद्धिप्रघट्टके ।

ये च विशेष्यासिद्धादयोऽसिद्धप्रकाराः परैरिष्टान्तेऽसत्सत्ता-

कत्वलक्षणासिद्धप्रकारान्तरान्तरम्, तल्लक्षणमेदाभावात् । यथैव हि स्वरूपासिद्धस्य स्वरूपतोऽसत्त्वादसत्सत्ताकत्वलक्षणमसिद्धत्वं तथा विशेष्यासिद्धादीनामपि विशेष्यत्वादिसवरूपतोऽसत्त्वात्तल्लक्षणमेवासिद्धत्वम् ।

तत्र विशेष्यासिद्धो यथा-अनित्यः शब्दः सामान्यवत्त्वे सति ५ चाश्रुयत्वात् ।

विशेषणासिद्धो यथा-अनित्यः शब्दश्चाश्रुयत्वे सति सामान्यवत्त्वात् ।

आश्रयासिद्धो यथा-अस्ति प्रधानं विश्वपरिणामित्वात् ।

आश्रयैकदेशासिद्धो यथा-नित्याः परमाणुप्रधानात्मैश्वरा १० अकृतकत्वात् ।

व्यर्थविशेष्यासिद्धो यथा-अनित्याः परमाणवः कृतकत्वे सति सामान्यवत्त्वात् ।

व्यर्थविशेषणोपासिद्धो यथा-अनित्याः परमाणवः सामान्यवत्त्वे सति कृतकत्वात् । व्यर्थविशेष्यविशेषणोपासावसिद्धश्चेति । १५

व्यधिकरणासिद्धो यथा-अनित्यः शब्दः पटस्य कृतकत्वात् । व्यधिकरणोपासावसिद्धश्चेति । ननु शब्दे कृतकत्वमस्ति तत्कथमस्यासिद्धत्वम् ? तदयुक्तम् ; तस्य हेतुत्वेनाप्रतिपादितत्वात् । न चान्यत्र प्रतिपादितमन्यत्र सिद्धं भवत्यतिप्रसङ्गात् ।

भागासिद्धो यथा-[अ]नित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात् । २० व्यधिकरणासिद्धत्वं भागासिद्धत्वं च परैः प्रक्रियाप्रदर्शनमात्रं न यस्तुतो हेतुदोषः ; व्यधिकरणस्यापि 'उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात्, उपरि बृष्टो देवोऽधः पूरदर्शनात्' इत्यादेर्गमकत्वप्र-

१ परमार्थतः प्रधानं नास्तीति भावः । २ अवयवावयवस्तत्र प्रयान्वयो न स पय । ३ कृतकत्वेनाऽनित्यत्वसिद्धिर्यतः । ४ व्यर्थं विशेषण मस्य स तथोक्तः, स चासावसिद्धश्चेति विग्रहः । ५ विशेष्यं च विशेषणं च विशेष्यविशेषणे, व्यर्थं विशेष्यविशेषणे मत्तेति विग्रहः । ६ विभिन्नमधिकरणमस्तीति विग्रहः । ७ शब्दव्यस्य कृतकत्वस्य । ८ तथा प्रतिपादितमपि कृतकर्त्तृ शब्दे सिद्धं मविध्यतीत्युक्ते सत्यात् । ९ एकत्र हेतुपन्यासे सर्वत्र साध्यसिद्धिप्रसङ्गात् । १० पक्षेकभागे असिद्धः, आश्रयैकदेशासिद्धभागासिद्धयोरेवं विशेषः-तत्राश्रयैकदेशोऽसिद्धो हेतुस्य सिद्ध पय, अत्र त्वाश्रयैकदेशे हेतुरसिद्ध आश्रयैकदेशस्तु सिद्ध पय । ११ प्रयत्नानन्तरीयकत्वं पुरुषव्यापारोत्पत्ते शब्दे न तु मेवादिशब्दे इति भावः । १२ परे नैयायिकादयः । १३ जैनानाम् ।

तीतेः । अविनाभावनिबन्धनो हि गम्यगमकभावः, न तु व्यधिकरणाव्यधिकरणनिबन्धनः 'स इयामस्तत्पुत्रत्वात्, धवलः प्रासादः काकस्य काष्ण्यात्' इत्यादिवत् ।

नै च व्यधिकरणस्यापि गमकत्वे अविद्यमानसत्ताकत्वलक्षण-
५ मसिद्धत्वं विरुध्यते; न हि पक्षेऽविद्यमानसत्ताकोऽसिद्धोऽभि-
प्रेतो गुरुणाम् । किं तर्हि ? अविद्यमाना साध्येनासाध्येनोभयेन
चाऽविनाभाविनी सत्ता यस्यासावसिद्ध इति ।

भागासिद्धस्याप्यविनाभावसद्भावाद्गमकत्वमेव । न खलु प्रय-
ज्ञानन्तरीयकत्वेमनित्यत्वमन्तरेण क्वापि दृश्यते । यावति च
१० तत्प्रवर्तते तावतः शब्दस्यानित्यत्वं ततः प्रसिद्ध्यति, अन्येष्व-
त्वन्यतः कृतकत्वादिति । यद्वा- 'प्रयज्ञानन्तरीयकत्वहेतूपादा-
नसामर्थ्यात्' प्रयज्ञानन्तरीयक एव शब्दोत्र पक्षः । तत्र चास्य
सर्वत्र प्रवृत्तेः कथं भागासिद्धत्वमिति ?

अथेदानीं द्वितीयमसिद्धप्रकारं व्याचष्टे—

१५ अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्र
धूमादिति ॥ २५ ॥

कुतोस्याविद्यमाननियततत्त्वाद्—

तस्य बाष्पादिभावेन भूतसंघाते
सन्देहात् ॥ २६ ॥

२० मुग्धबुद्धेर्बाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात् । न खलु साध्य-
साधनयोरन्युत्पन्नप्रज्ञः 'धूमादिरीदृशो बाष्पादिश्चेदृशः' इति
विवेचयितुं समर्थः ।

साङ्ख्यं प्रति परिणामी शब्दः
कृतकत्वादिति ॥ २७ ॥

२५ चाविद्यमाननिश्चयः । कुत एतत् ?

तेनाज्ञातत्वात् ॥ २८ ॥

१ अव्यधिकरणव्यधिकरणत्वमुच्यते । तथाप्यविनाभावभावेनासन्देहत्वमिति
भावः । २ न चाशङ्कनीयम् । ३ वृष्टान्तेन । ४ हेतोः । ५ साधनम् ।
६ पुरुषस्यापारोक्षिके शब्दे । ७ ज्ञेयादिशब्दस्य धर्मरूपस्य । ८ बुद्धिभ्यादिलक्षणां
भूतानां संघातो धूमस्तस्मिन् भूये । ९ विद्यमानबुद्धेः ।

न ह्यस्याविर्भावादप्यत्र कारणव्यापारादसतो रूपस्यात्मलाभलक्षणं कृतकत्वं प्रसिद्धम् ।

सन्दिग्धविशेष्यादयोप्यविद्यमाननिश्चयतालक्षणातिक्रमाभावाद्भार्थान्तरम् । तत्र सन्दिग्धविशेष्यासिद्धो यथा-अद्यापि रागादियुक्तः कपिलः पुरुषत्वे सत्यद्याप्यनुत्पन्नतत्त्वज्ञानत्वात् । सन्दिग्धविशेषणासिद्धो यथा-अद्यापि रागादियुक्तः कपिलः सर्वदा तत्त्वज्ञानरहितत्वे सति पुरुषत्वात् । एते एवासिद्धमेदाः केचिदन्यतैरासिद्धाः केचिदुभेयासिद्धाः प्रतिपत्तव्याः ।

ननु नास्त्यन्यतरासिद्धो हेत्वाभासः; तथाहि-परेणासिद्ध इत्युद्भाविते यदि घादी तत्साधकं प्रमाणं न प्रतिपादयति, तदा प्रमा-१० णाभासवदुभयोरसिद्धः । अथ प्रमाणं प्रतिपादयेत्, तर्हि प्रमाणस्यापक्षपातित्वादुभयोरप्यसौ सिद्धः । अन्यथा साध्यमप्यन्यतरासिद्धं न कदाचित्सिद्धयेदिति व्यर्थः प्रमाणोपन्यासः स्यात्, इत्यप्यसमीचीनम्; यतो घादिना प्रतिघादिना वा सम्यक्समस्तं स्योपन्यस्तो हेतुः प्रमाणतो यावन्न परं प्रति साध्यते तावत् १५ प्रत्यस्य प्रसिद्धेरभावात्कथं नान्यतरासिद्धता? नन्वेवमप्यस्यासिद्धत्वं गौणमेव स्यादिति चेत्, एवमेतत्, प्रमाणतो हि सिद्धेरभावादसिद्धोसौ न तु स्वरूपतः । न खलु रक्षादिपदार्थस्तत्त्वतोऽप्रतीयमानस्तावत्कालं मुख्यतस्तदाभासो भवतीति ।

अथेदानीं विरुद्धहेत्वाभासस्य विपरीतस्येत्यादिना स्वरूपं २० दर्शयति—

विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धः अपरि-

णामी शब्दः कृतकत्वात् ॥ २९ ॥

साध्यस्वरूपाद्विपरीतेन प्रत्येकीकेन निश्चितोऽविनाभावो यस्यासौ विरुद्धः । यथाऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वादिति । कृत-२५ कत्वं हि पूर्वोत्तराकारपरिहारावासिस्थितिलक्षणपरिणामेनैवावि-

१ यत्तत्त्वस्य सर्वस्य वस्तुनः सङ्गावः सदेति वचः । २ साध्यशब्दः । ३ साधये-
नोक्तं भवता नैनाना विशेष्यासिद्धो हेतुरिति भावः । ४ वादिप्रतिवादिनोर्द्वये
पक्षस्य । ५ वादिप्रतिवादिनोः । ६ किन्तर्हि १ उभयासिद्ध एव । ७ प्रतिवा-
दिना । ८ उपन्यसेति निर्दुष्टे हेतुसाधके प्रमाणे यद्यसौ नोभयोः सिद्धः स्यात्तर्हि ।
९ साध्यस्यान्यतरासिद्धत्वात् । १० यावत्प्रमाणतः सिद्धेरभावावस्थावत्स्वरूपोपपत्तिः
कृपो न स्यादियुक्ते सत्याह । ११ सद्यः । १२ हेतोः । १३ पक्षत्वमाप्यऽङ्गि-
कलक्षणो नित्यैकलक्षणः । १४ साध्यविपरीतेन ।

नाभूतं बहिरन्तर्वा प्रतीतिविषयः सर्वथा नित्ये क्षणिके वा तदभावप्रतिपादनात् ।

ये चाद्यौ विरुद्धमेदाः परैरिष्टास्तेष्वेतदंलक्षणलक्षितत्वाविशेषतोऽत्रैवान्तर्भवन्तीत्युदाह्रियन्ते । सति सपक्षे चत्वारो विरुद्धाः ।
५ पक्षविपक्षव्यापकः सपक्षावृत्तिर्यथा-नित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात् । उत्पत्तिधर्मकत्वं हि पक्षीकृते शब्दे प्रवर्तते, नित्यविपरीते चानित्ये घटादौ विपक्षे, नाकाशादौ सत्यपि सपक्षे इति ।

विपक्षैकदेशवृत्तिः पक्षव्यापकः सपक्षावृत्तिश्च यथा-नित्यः शब्दः सामान्यवत्त्वे सत्यस्मदादिबाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात् । बाह्येन्द्रियग्रहणयोग्यतामात्रं हि बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वमत्र विवक्षितम्, तेनास्य पक्षव्यापकत्वम् । विपक्षैकदेशव्यापकत्वं चानित्ये घटादौ भावात्सुखादौ चाभावात् सिद्धम् । सपक्षावृत्तित्वं चाकाशादौ नित्येऽवृत्तेः । सामान्ये वृत्तिस्तु 'सामान्यवत्त्वे सति' इति विशेषणाद्व्यवच्छिन्ना ।

१५ पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षावृत्तिश्च यथा-सामान्यविशेषवती अस्मदादिबाह्यकरणप्रत्यक्षे वागमनसे नित्यत्वात् । नित्यत्वं हि पक्षैकदेशे मनसि वर्तते न वाचि, विपक्षे चास्मदादिबाह्यकरणाप्रत्यक्षे गगनादौ नित्यत्वं वर्तते न सुखादौ । सपक्षे च घटादावस्याऽवृत्तेः सपक्षावृत्तित्वम् । सामान्यस्य च सपक्षत्वं
२० सामान्या(न्य) विशेषवत्त्वविशेषणाद्व्यवच्छिन्नम् । योगिबाह्यकरणप्रत्यक्षस्य चाकाशादेरस्मदाद्यऽग्रहणादसपक्षत्वम् ।

पक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षावृत्तिर्विपक्षव्यापको यथा-नित्ये वागमनसे उत्पत्तिधर्मकत्वात् । उत्पत्तिधर्मकत्वं हि पक्षैकदेशे वाचि वर्तते न मनसि, सपक्षे चाकाशादौ नित्ये न वर्तते, विपक्षे
२५ च घटादौ सर्वत्र वर्तते इति ।

तथाऽसति सपक्षे चत्वारो विरुद्धाः । पक्षविपक्षव्यापकोऽविद्यमानसपक्षो यथा-आकाशविशेषगुणः शब्दः प्रमेयत्वात् । प्रमेयत्वं हि पक्षे शब्दे वर्तते । विपक्षे चानाकाशविशेषगुणे घटादौ, न तु सपक्षे तस्यैवाभावात् । न ह्याकाशे शब्दादन्यो विशेषगुणः
३० कश्चिदस्ति यः सपक्षः स्यात् । परममहापरिमार्गदेरन्यत्रापि प्रवृत्तितः साधारणगुणत्वात् ।

१ नैयायिकादिभिः । २ घटत्वं-विपरीतनिश्चिताविनाशवता । ३ सपक्षे अङ्गतिरवर्तनं यस्य स पक्षोक्तः । ४ नित्यरूपे सपक्षे ५ नित्यत्वस्य हेतोः । ६ सामान्यस्य सपक्षत्वं अविवक्षित्युक्ते सत्याह । ७ अनित्यत्वेन । ८ आदिना संख्यादेशः । ९ आत्मादावपि ।

पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिरविद्यमानसपक्षो यथा-सत्तासम्बन्धिनः
षट् पदार्था उत्पत्तिमत्त्वात् । अत्र हि हेतुः पक्षीकृतपदपदार्थैकदेशे
अनित्यद्रव्यगुणकर्मण्येव वर्तते न नित्यद्रव्यादौ । विपक्षे
चासत्तासम्बन्धिनि प्रागभावाद्येकदेशे प्रध्वंसाभावे वर्तते न तु
प्रागभावादौ । सपक्षस्य चासम्भवादेव तत्रास्यावृत्तिः सिद्धा । ५

पक्षव्यापको विपक्षैकदेशवृत्तिरविद्यमानसपक्षो यथा-आका-
शविशेषगुणः शब्दो बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वात् । अयं हि हेतुः
पक्षीकृते शब्दे वर्तते । विपक्षस्य चानाकाशविशेषगुणस्यैकदेशे
रूपादौ वर्तते, न तु सुखादौ । सपक्षस्य चासम्भवादेव तत्रा-
स्याऽवृत्तिः सिद्धा । १०

पक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापकोऽविद्यमानसपक्षो यथा-नित्ये
बाह्यमनसे कार्यत्वात् । कार्यत्वं हि पक्षस्यैकदेशे वाचि वर्तते
न मनसि । विपक्षे चानित्ये घटादौ सर्वत्र प्रवर्तते सपक्षे चावृ-
त्तिस्तस्याभावात्सुप्रसिद्धा ।

अथानैकान्तिकः कीदृश इत्याह—

१५

विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः ॥ ३० ॥

न केवलं पक्षसपक्षेऽपि तु विपक्षेऽपीत्यपिशब्दार्थः । एकसि-
द्भन्ते नियतो द्वैकान्तिकस्तद्विपरीतोऽनैकान्तिकः सव्यभिचार
इत्यर्थः । कः पुनरयं व्यभिचारो नाम ? पक्षसपक्षान्यवृत्तित्वम् ।
यः खलु पक्षसपक्षवृत्तित्वे सत्यन्यत्र वर्तते स व्यभिचारी २०
प्रसिद्धः । यथा लोके पक्षसपक्षविपक्षवर्ती कश्चित्पुरुषस्तथा वाय-
मनैकान्तिकत्वेनाभिमतो हेतुरिति । स च द्वेधा निश्चितवृत्तिः
शङ्कितवृत्तिश्चेति । तत्र—

निश्चितवृत्तिर्यथाऽनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद्

घटवदिति ॥ ३१ ॥

२५

कथमित्याह—

आकाशे नित्येऽप्यस्य सम्भवादिति ॥ ३२ ॥

शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो

वक्तृत्वादिति ॥ ३३ ॥

कृतोऽयं शङ्कितवृत्तिरित्याह—

सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात् ॥ ३४ ॥

एतच्च सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे प्रपञ्चितमिति नेहोच्यते । पराम्युप-
गतश्च पक्षत्रयव्यापकाद्यनैकान्तिकप्रपञ्च एतल्लक्षणलक्षितत्वावि-
५ शेपाच्चातोऽर्थान्तरम्, सर्वत्र विपक्षस्यैकदेशे सर्वत्र वा विपक्षे
वृत्त्या विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तित्वलक्षणसम्भवादित्युदाह्रियते । पक्ष-
त्रयव्यापको यथा-अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् । पक्षे सपक्षे विपक्षे
चास्य सर्वत्र प्रवृत्तेः पक्षत्रयव्यापकः ।

सपक्षविपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा-नित्यः शब्दोऽमूर्तत्वात् । अमू-
१० र्तत्वं हि पक्षीकृते शब्दे सर्वत्र वर्तते । सपक्षैकदेशे चाका-
शादौ वर्तते, न परमाणुषु । विपक्षैकदेशे च सुखादौ वर्तते
न घटादाविति ।

पक्षसपक्षव्यापको विपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा-गौरयं विषाणि-
त्वात् । विषाणित्वं हि पक्षीकृते पिण्डे वर्तते, सपक्षे च गोत्व-
१५ धर्माध्यासिते सर्वत्र व्यक्तिविशेषे, विपक्षस्य चागोरूपस्यैकदेशे
महिष्यादौ वर्तते न तु मनुष्यादाविति ।

पक्षविपक्षव्यापकः सपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा-अगौरयं विषाणि-
त्वात् । अयं हि हेतुः पक्षीकृतेऽगोपिण्डे वर्तते । अगोत्ववि-
पक्षे च गोव्यक्तिविशेषे सर्वत्र, सपक्षस्य चागोरूपस्यैकदेशे महि-
२० ष्यादौ वर्तते न तु मनुष्यादाविति ।

पक्षत्रयैकदेशवृत्तिर्यथा-अनित्ये वाग्मनसेऽमूर्तत्वात् । अमू-
र्तत्वं हि पक्षस्यैकदेशे वाचि वर्तते न मनसि, सपक्षस्य चैकदेशे
सुखादौ न घटादौ, विपक्षस्य चाकाशादेर्नित्यस्यैकदेशे गगनादौ न
परमाणुष्विति ।

२५ पक्षसपक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापको यथा-द्रव्याणि दिक्काल-
मनांस्यमूर्तत्वात् । अमूर्तत्वं हि पक्षस्यैकदेशे दिक्काले वर्तते न
मनसि, सपक्षस्य च द्रव्यरूपस्यैकदेशे आत्मादौ वर्तते न घटादौ,
विपक्षे चाद्रव्यरूपे गुणौदौ सर्वत्रेति ।

१ सर्वत्रे वक्तृत्वस्य बाधकप्रमाणाभावात्किं वक्तृत्वं तत्र वर्तते न वेति संदेहः ।
२ परेः नैयायिकादिभिः । ३ पक्षसपक्षविपक्षाः पक्षत्रयम् । ४ विपक्षेऽप्यविरुद्धेति ।
५ इयत्तावच्छिन्नपरिमाणयोगित्वं मूर्तिमत्त्वम् । निगुण्या गुण्या इति वचनादियत्ताव-
च्छिन्नपरिमाणाभावः ।

पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षव्यापको यथा-अद्रव्याणि दिक्का-
लमनांस्यमूर्तत्वात् । अत्रापि प्राक्तनमेव व्याख्यानम् अद्रव्यरूपस्य
गुणादेस्तु सपक्षतेति विशेषः ।

सपक्षविपक्षव्यापकः पक्षैकदेशवृत्तिर्यथा-पृथिव्यप्तेजोवाय्वा-
काशान्यनित्यान्यगन्धवत्त्वात् । अगन्धवत्त्वं हि पृथिवीतोऽन्यत्र ५
पक्षैकदेशे वर्तते न तु पृथिव्याम्, सपक्षे चानित्ये गुणे कर्मणि
च, विपक्षे चात्मादौ नित्ये सर्वत्र वर्तत इति ।

अथेदानीमकिञ्चित्करस्वरूपं सिद्ध इत्यादिना व्याचष्टे—

सिद्धे प्रत्यक्षादिवाधिते च साध्ये

हेतुरकिञ्चित्करः ॥ ३५ ॥

१०

सिद्धे निर्णीते प्रमाणान्तरात्साध्ये प्रत्यक्षादिवाधिते च हेतुर्न
किञ्चित्करोतीत्यकिञ्चित्करोऽनर्थकः ।

यथा श्रावणः शब्दः शब्दत्वादिति ॥ ३६ ॥

न ह्यसौ स्वसाध्यं साधयति, तस्याभ्यक्षादेव प्रसिद्धेः । नापि
साध्यान्तरम्, तत्रावृत्तेरित्यत आह—

१५

किञ्चिदकरणात् ॥ ३७ ॥

प्रत्यक्षादिवाधिते च साध्येऽकिञ्चित्करोसौ—

अनुष्णोग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ यथा

किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् ॥ ३८ ॥

कृतोऽस्याऽकिञ्चित्करत्वमित्याह—किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् । २०

ननु प्रसिद्धः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्वचनैश्च धाधितः पक्षा-
भासः प्रतिपादितः । तदोपेणैव चास्य दुष्टत्वात् पृथगकिञ्चित्क-
राभिधानमनर्थकमित्याशङ्क्य लक्षण एवेत्यादिना प्रतिविधत्ते—

लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य

पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ॥ ३९ ॥

२५

लक्षणे लक्षणव्युत्पादनशास्त्रे एवासावकिञ्चित्करत्वलक्षणो
दोषो विनेयव्युत्पत्त्यर्थं व्युत्पाद्यते, न तु व्युत्पन्नानां प्रयोगकाले ।
कृत एतदित्याह—व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ।

अथेदानीं दृष्टान्ताभासप्रतिपादनार्थं दृष्टान्तेत्याद्युपक्रमते ।
दृष्टान्तो ह्यन्वयव्यतिरेकभेदाद्विधैत्युक्तम् । तद्विपरीतस्तदाभा-
सोपि तद्वेदाद्विधैव द्रष्टव्यः । तत्र—

दृष्टान्ताभासा अन्वये असिद्धसाध्य-

५

साधनोभयाः ॥ ४० ॥

**अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुख-पर-
माणु-घटवदिति ॥ ४१ ॥**

इन्द्रियसुखे हि साधनममूर्तत्वमस्ति, साध्यं त्वपौरुषेयत्वं
नास्ति पौरुषेयत्वात्तस्य । परमाणुषु तु साध्यमपौरुषेयत्वमस्ति,
१० साधनं त्वमूर्तत्वं नास्ति मूर्तत्वात्तेषाम् । घटे तुभयमपि पौरुषे-
यत्वान्मूर्तत्वाच्चास्येति । न केवलमेत एवान्वये दृष्टान्ताभासाः
किन्तु—

विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम् ॥ ४२ ॥

विपरीतोऽन्वयो व्याप्तिप्रदर्शनं यस्मिन्निति^१ । यथा यदपौरुषेयं
१५ तदमूर्तमिति । ‘यदमूर्तं तदपौरुषेयम्’ इति हि साध्येन व्याप्ते
साधने प्रदर्शनीये कुतश्चिद्भ्रामोहात् ‘यदपौरुषेयं तदमूर्तम्’ इति
प्रदर्शयति । न चैवं प्रदर्शनीयम्—

विद्युदादिनाऽतिप्रसङ्गादिति ॥ ४३ ॥

विद्युद्वनकुसुमादौ ह्यऽपौरुषेयत्वेऽप्यमूर्तत्वं नास्तीति ।
२० व्यतिरेके दृष्टान्ताभासाः—

व्यतिरेके असिद्धतद्व्यतिरेकाः परमा-

पिविन्द्रियसुखाकाशवत् ॥ ४४ ॥

असिद्धतद्व्यतिरेकाः—असिद्धस्तेषां साध्यसाधनोभयानां व्यति-
रेको [व्या]वृत्तिर्येषु ते तथोक्ताः । यथाऽपौरुषेयः शब्दोऽमू-
२५ र्तत्वादित्युक्त्वा यन्नापौरुषेयं तन्नामूर्तं परमाण्विन्द्रियसुखाका-
शवदिति व्यतिरेकमाह । परमाणुभ्यो ह्यमूर्तत्वव्यावृत्तावप्यऽपौ-
रुषेयत्वं न व्यावृत्तमपौरुषेयत्वात्तेषाम् । इन्द्रियसुखे त्वपौरुषेय-
त्वव्यावृत्तावप्यमूर्तत्वं न व्यावृत्तममूर्तत्वात्तस्य । आकाशे तुभयं

न व्यावृत्तमपौरुषेयत्वादमूर्त्तत्वाच्चास्येति । न केवलमेत एव व्यतिरेके दृष्टान्ताभासाः किंतु—

**विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्त्तं तन्ना-
पौरुषेयम् ॥ ४५ ॥**

विपरीतो व्यतिरेको व्यावृत्तिप्रदर्शनं यस्येति । यथा यन्नामूर्त्तं^५ तन्नापौरुषेयमिति । 'यन्नापौरुषेयं तन्नामूर्त्तम्' इति हि साध्यव्यतिरेके साधनव्यतिरेकः प्रदर्शनीयस्तथैव प्रतिवन्धादिति ।

अव्युत्पन्नव्युत्पादनार्थं पञ्चावयवोपि प्रयोगः प्राक् प्रतिपादितस्तत्प्रयोगाभासः कीदृश इत्याह—

बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता ॥ ४६ ॥ १०

यथाग्निमानयं देशो धूमवत्त्वात्, यदित्थं

तदित्थं यथा महानस इति ॥ ४७ ॥

धूमवांश्चायमिति वा ॥ ४८ ॥

यो ह्यव्युत्पन्नप्रज्ञोऽनुमानप्रयोगे पञ्चावयवे गृहीतसङ्केतः स उपनयनिगमनरहितस्य निगमनरहितस्य बालुमानप्रयोगस्य तदा^{१५} भासतां मन्यते । न केवलं कियद्धीनतैव बालप्रयोगाभासः किंतु तद्विपर्ययश्च—तेषामवयवानां विपर्ययस्तत्प्रयोगाभासो यथा—

तस्मादग्निमान् धूमवांश्चार्यमिति ॥ ४९ ॥

सं ह्युपनयपूर्वकं निगमनप्रयोगं साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं मन्यते, नान्यथा । कुत एतदित्याह—

स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ॥ ५० ॥

स्पष्टतया प्रकृतस्य साध्यस्य प्रतिपत्तेरयोगात् । यो हि यथा गृहीतसङ्केतः स तथैव वाक्प्रयोगात्प्रकृतमर्थं प्रतिपद्येत नान्यथा लोकवत् । यस्तु सर्वप्रकारेण वाक्प्रयोगे व्युत्पन्नप्रज्ञः स यथा यथा वाक्प्रयुज्यते तथा तथा प्रकृतमर्थं प्रतिपद्येत^{२५} लोके सर्वभाषाप्रवीणपुरुषवत् । तथा च न तं प्रत्यनन्तरोक्तः कश्चित्प्रयोगाभास इति ।

१ कृत इत्याह । २ अविनाभाषात् । ३ अनुमानप्रयोगः । ४ बालव्युत्पत्त्यर्थमेव । ५ पञ्चावयवबालुमानवादी बालो वा । ६ निगमनपूर्वकमुपनयप्रयोगं न मन्यते ।

अथेदानीमागमाभासप्ररूपणार्थमाह—

रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमा-

गमाभासम् ॥ ५१ ॥

रागाक्रान्तो हि पुरुषः क्रीडावशीकृतचित्तो विनोदार्थं वेत्सु
५ किञ्चिदग्राभुवन्माणवकैरपि सह क्रीडाभिलाषेणेदं वाक्यमुच्चार-
यति—

यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति

धावध्वं माणवका इति ॥ ५२ ॥

तथा क्वचित्कार्ये व्यासक्तचित्तो माणवकैः कदर्थितो द्वेषाक्रा-
१० न्तोऽप्यात्मीयस्थानाच्चदुष्चाटनाभिलाषेणेदमेव वाक्यमुच्चारयति ।
मोहाक्रान्तस्तु सांख्यादिः—

अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति च ॥ ५३ ॥

उच्चारयति । न खल्वज्ञानमहामहीधराक्रान्तः पुरुषो यथाव-
द्वस्तु विवेचयितुं समर्थः ।

१५ ननु चैवंविधपुरुषवचनोद्भूतं ज्ञानं कस्मादागमाभासमित्याह—

विसंवादात् ॥ ५४ ॥

प्रतिपन्नार्थविवचनं हि विसंवादो विपरीतार्थोपस्थापकप्रमाणा-
वसेयः । स चाज्ञास्तीत्यागमाभासता ।

अथेदानीं संख्याभासोपदर्शनार्थमाह—

२० प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ॥ ५५ ॥

कस्मादित्याह—

लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य

परबुद्ध्यादेश्चासिद्धेः अतद्विषयत्वात् ॥ ५६ ॥

कुतोऽसिद्धिरित्याह—अतद्विषयत्वात् । यथा चाध्यक्षस्य परलो-
२५ कादिनिषेधादिविषयस्तथा विस्तरतो द्वितीयपरिच्छेदे प्रति-
पादितम् ।

१ क्रीडाकारणम् । २ वक्ष्यमाणव्यतिरिक्तम् । ३ सांख्यमते सर्वं सर्वत्र विद्यते
यतः । ४ रजते चेदं रजतमिति यथा । ५ रागादक्रान्तपुरुषवचनाज्जाते ज्ञाने ।
६ आदिना परबुद्ध्यादिग्रहः ।

अमुमेवार्थं समर्थयमानः सौगतदिपरिकल्पितां च संख्यां
निराकुर्वाणः सौगतेत्याद्याह—

सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानु-
मानागमोपमानार्थापत्त्यभावैः एकैकाधिकैः

व्याप्तिवत् ॥ ५७ ॥

५

यथैव हि सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां मते प्रत्यक्षानु-
मानागमोपमानार्थापत्त्यभावैः प्रमाणैरेकैकाधिकैर्व्याप्तिर्न सिध्यत्य-
तद्विषयत्वात् तथा प्रकृतमपि । प्रयोगः—यद्यस्याऽविषयो न तत-
स्तत्सिद्धिः यथा प्रत्यक्षानुमानाद्यविषयो व्याप्तिर्न ततः सिद्धिसौष-
शिक्षरमारोहति, अविषयश्च परलोकनिषेधादिः प्रत्यक्षस्येति । १०

मा भूत्प्रत्यक्षस्य तद्विषयत्वमनुमानादेस्तु भविष्यतीत्याह—

अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम् ॥ ५८ ॥

चार्वाकं प्रति । सौगतादीन्प्रति—

तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वम्

अप्रमाणस्य अव्यवस्थापकत्वात् ॥ ५९ ॥ १५

कृत एतदित्याह अप्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात् ।

प्रतिभासादिभेदस्य च भेदकत्वादिति ॥ ६० ॥

प्रतिपादितश्चायं प्रतिभासभेदः सामग्रीभेदश्चाप्यक्षादीनां प्रप-
ञ्चतस्तद्वेधेत्युपरम्यते ।

अथेदानीं विषयाभासग्रहणार्थं विषयेत्याहुपक्रमते—

२०

विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा

स्वतन्त्रम् ॥ ६१ ॥

विषयाभासाः—सामान्यं यथा सत्ताद्वैतवादिनः । केवलं विशेषो
वा यथा सौगतस्य । द्वयं वा स्वतन्त्रं यथा यौगस्य । कुतोस्य विष-
याभासतैत्याह—

२५

१ अनुमानस्य । २ परलोकनिषेधादेः । ३ अस्तु प्रायण्यमनुमानस्य किन्तु
तत्प्रत्यक्षे परान्तर्भवविषयवैल्युक्ते सत्याह । ४ ततः प्रत्यक्षेऽनुमानस्यान्तर्यामाभास
इत्यर्थः । ५ अन्योन्यनिषेधम् ।

तथाऽप्रतिभासनात् कार्याऽकरणाच्च ॥ ६२ ॥

स ह्येवंविधोर्थः स्वयमसमर्थः समर्थो वा कार्यं कुर्यात्? न तावत्प्रथमः पक्षः;

स्वयमसमर्थस्याऽकारकत्वात्पूर्ववत् ॥ ६३ ॥

५ एतच्च सर्वं विषयपरिच्छेदे विस्तारतोभिहितमिति नेह्यभिधीयते ।

नापि द्वितीयः पक्षः;

समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् ॥ ६४ ॥

परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा

१० तदभावादिति ॥ ६५ ॥

अथेदानीं फलमासं प्ररूपयन्नाह—

फलमासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा ॥ ६६ ॥

कुतोस्य फलमासतेत्याह—

अभेदे तद्वैवहारानुपपत्तेः ॥ ६७ ॥

१५ न खलु सर्वथा तयोरभेदे 'इदं प्रमाणमिदं फलम्' इति व्यवहारः शक्यः प्रवर्त्तयितुम् ।

ननु व्यावृत्त्या तयोः कल्पना भविष्यतीत्याह—

व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद्व्यावृत्त्याऽ-

फलत्वप्रसङ्गात् ॥ ६८ ॥

२० प्रमाणान्तराद्व्यावृत्तौ वाऽप्रमाणत्वस्येति ॥ ६९ ॥

एतच्च फलपरीक्षायां प्रपञ्चितमिति पुनर्नेह प्रपञ्चयते ।

तस्माद्वास्तवो भेदः ॥ ७० ॥

१ केवलसामान्यतया केवलविशेषतया इत्यस्य स्वतन्त्रतया वा । २ केवलसामान्यरूपः केवलविशेषरूपश्च । ३ पक्षादपि । ४ परस्व । ५ अनपेक्षाकारपरित्यागेनापेक्षाकारेण परिणमनात् । ६ सर्वथा । ७ तयोः प्रमाणफलयोः । ८ अफलाद्व्यावृत्तिः यथा तथा फलान्तराद्व्यावृत्त्या भाव्यम्, तथा सति फलान्तराद्व्यावृत्तिः फलविशेषाद्व्यावृत्तिरित्यर्थः, अफलत्वप्रसङ्गः गोर्व्यावृत्त्याऽगोर्त्वं भवति यथा ।

प्रमाणफलयोस्तद्व्यवहारान्यथानुपपत्तेरिति प्रेक्षादक्षैः प्रतिप-
त्तव्यम् ।

अस्तु तर्हि सर्वथा तयोर्भेद इत्याशङ्कापनोदार्थमाह—

भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तिः (त्तेः) ॥ ७१ ॥

समवायेऽतिप्रसङ्गः ॥ ७२ ॥

५

इत्यप्युक्तं तत्रैव ।

अथेदानीं प्रतिपन्नप्रमाणतदाभासस्वरूपाणां विनैयानां प्रमाण-
तदाभासावित्यादिना फलमादर्शयति—

प्रमाण-तदाभासौ दुष्टतयोद्भाविता परिहृता-ऽपरि-

हृतदोषौ वादिनः साधन-तदाभासौ प्रतिवा- १०

दिनो दूषण-भूषणे च ॥ ७३ ॥

प्रतिपादितस्वरूपौ हि प्रमाणतदाभासौ यथावत्प्रतिपन्नाप्रति-
पन्नस्वरूपौ जयेतरव्यवस्थाया निबन्धनं भवतः । तथाहि—चतुर-
ङ्गवादमुररीकृत्य विज्ञातप्रमाणतदाभासस्वरूपेण वादिना सम्य-
कप्रमाणे स्वपक्षसाधनायोपन्यस्ते अविज्ञाततत्त्वरूपेण तु तदा- १५
भासे । प्रतिवादिना वाऽनिश्चिततत्त्वरूपेण दुष्टतया सम्यकप्रमा-
णेपि तदाभासतोद्भाविता । निश्चिततत्त्वरूपेण तु तदाभासे
तदाभासतोद्भाविता । एवं तौ प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भाविता
परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो
दूषणभूषणे च भवतः । २०

ननु चतुरङ्गवादमुररीकृत्येत्याद्युक्तमुक्तम् ; वादस्याविजिगी-
षुविषयत्वेन चतुरङ्गत्वासम्भवात् । न खलु वादो विजिगीषतोर्व-
र्त्तते तत्त्वाभ्यवसायसंरक्षणार्थरहितत्वात् । यस्तु विजिगीषतो-
र्नासौ तथा सिद्धः यथा जल्पो विर्तेण्डा च, तथा च वादः,

- १ वास्तवभेदाभावे । २ वादिना प्रतिपन्नाप्रतिपन्नस्वरूपौ प्रतिवादिनापि तथैव ।
३ सम्यक्समाप्तिवादिप्रतिवादीति चत्वार्यङ्गानि यस्य स तयोक्तः । ४ अन्यवादिना ।
५ उपन्यस्ये । ६ अन्यप्रतिवादिना । ७ प्रतिवादिना । ८ वादिनेति शेषः ।
९ स्वपक्षस्य । १० योगः ग्राह्यः । ११ जनैः । १२ नीतपक्षकथा वादो योगमते
यतः । १३ जयेच्छाऽभावान्तेषां सत्यादीना प्रयोजनाभावो वादे इति भावः ।
१४ जल्पो वितण्डा च विजिगीषतोरतो न वादरूपः, व्यतिरेकी दृष्टान्तः ।

तस्मान्न विजिगीषतोरिति । न हि वादस्तत्त्वाध्यवसायसंरक्ष-
णार्थो भवति; जल्पवितण्डयोरेव तत्त्वात् । तदुक्तम्—

“तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितर्कण्डे वीजप्ररोहसंरक्षणार्थं
कंटकशाखावरणवत्” [न्यायसू० ४।२।५०] इति । तदप्यसमीची-
५ नम्; वादस्याविजिगीषुविषयत्वासिद्धेः । तथाहि—वादो नाविजि-
गीषुविषयो निग्रहस्थानवत्त्वात् जल्पवितण्डावत् । न चास्य निग्रह-
स्थानवत्त्वमसिद्धम्; ‘सिद्धान्ताविरुद्धः’ इत्यनेनापसिद्धान्तः, ‘पञ्चा-
वयवोपपन्नः’ इत्यत्र पञ्चग्रहणात् न्यूनाधिके, अवयवोपपन्नग्रहणा-
द्धेत्वाभासपञ्चकं चेत्यष्टनिग्रहस्थानानां वादे नियमप्रतिपादनात् ।

१० ननु वादे सतामप्येषां निग्रहबुद्ध्योद्भावनामावाञ्च विजिगी-
पास्ति । तदुक्तम्—“तर्कशब्देन भूतपूर्वगतिन्यायेन वीतरागकथा-
त्वज्ञापनादुद्भावननिर्यमोपलभ्यते” [] तेन सिद्धान्ता-
विरुद्धः पञ्चावयवोपपन्न इति चोत्तरपदयोः समस्तनिग्रह-
स्थानाद्युपलक्षणार्थत्वाद्वादेऽप्रमाणबुद्ध्या परेण छलजातिनिग्रह-

१५ स्थानानि प्रयुक्तानि न निग्रहबुद्ध्योद्भाव्यन्ते किन्तु निवारणबुद्ध्या ।
तत्त्वज्ञानायावयोः प्रवृत्तिर्न च साधनाभासो दूषणाभासो वा
तद्धेतुः । अतो न तत्प्रयोगो युक्त इति । तदप्यसाम्प्रतम्; जल्प-
वितण्डयोरपि तथोद्भावननियमप्रसङ्गात् । तयोस्तत्त्वाध्यवसाय-
संरक्षणाय स्वयमभ्युपगमात् । तस्य च छलजातिनिग्रहस्थानैः

२० कर्तुमशक्यत्वात् । परस्य तूष्णींभावार्थं जल्पवितण्डयोश्छलद्यु-

१ वादो न विजिगीषतोर्वैतां तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थश्च भवदिति सन्निवर्तनैका-
न्तिकत्वे सत्याह । २ सः । ३ प्रमाणतर्क (विचार) साधनो (स्वपक्षस्य) पालम्भः
(परपक्षस्य दूषणं) सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पञ्चप्रतिपक्षपरिग्रहो वाद इति
परकीयं वादलक्षणघट्टम् । जैनमते तु समर्थं (वादिप्रतिवादिनोर्जयपराजयार्थं) भवन्
वाद इति वादलक्षणम् । ४ प्रतिज्ञोपपन्न इत्यनेनाभ्यासिद्धहेत्वाभासग्रहणं, हेतूपपन्न
इत्यनेन स्वरूपासिद्धहेत्वाभासस्य, अन्यवृष्टान्तोपपन्न इत्यनेन विरुद्धहेत्वाभासस्य
व्यतिरेकवृष्टान्तोपपन्न इत्यनेनानैकान्तिकहेत्वाभासस्योपनयोपपन्न इत्यनेन काला-
यापदिष्टस्य, निगमोपपन्न इत्यनेन सत्यतिपक्षस्य च ग्रहणम् । ५ अनेनात्र भवितव्यं
नान्येनेति सम्भावनाप्रलयस्तर्को विचार इति यावत्, वादलक्षणे गृहीतेन ।
६ व्याख्यानकाले क्रियमाणे विचारे वीतरागत्वं वादिप्रतिवादिनोस्तथा वादकालेपि
तत्समाह । कुत यतः ? वादलक्षणे तर्कशब्दोपादानाद् ज्ञायते । ७ व्याख्यानकाले
विचारो वीतरागत्वस्य हेतुस्तथा वादेपीति चारपर्यम् । ८ अपसिद्धान्तादिक निग्रहबुद्ध्या
नोद्भावननीयमिति । ९ प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भ इति प्रथमपदापेक्षयोत्तरपदत्वमनयोः ।
१० ततश्च छलनात्यादीनां निवारणबुद्ध्योद्भावनमिति भावः, निग्रहस्थानैः प्रति-
वादिनो निराकरणं न तु तत्त्वनिर्णय इति भावः ।

ज्ञावनमिति चेत्, न; तथा परस्य तूष्णींभावाभावादऽसदुत्तरा-
णामानन्यात् ।

[न च] तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थत्वरहितत्वं च वादेऽ-
सिद्धम्; तस्यैव तत्संरक्षणार्थत्वोपपत्तेः । तथाहि-वाद एव
तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थः, प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भत्वे सिद्धा-
न्ताविरुद्धत्वे पञ्चावयवोपपन्नत्वे च सति पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहव-
त्त्वात्, यस्तु न तथा स न तथा यथाक्रोशादिः, तथा च वादः,
तस्मात्तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थ इति । न चायमसिद्धो हेतुः।

“प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोप-
पन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः ।” [न्यायसू० १।२।१] इत्यभि-१०
धानात् । ‘पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहवत्त्वात्’ इत्युच्यमाने जल्पोपि
तथा स्यादित्यवधारणविरोधः, तत्परिहारार्थं प्रमाणतर्कसाधनो-
पालम्भत्वविशेषणम् । न हि जल्पे तदस्ति, “यथोक्तोपपन्नदृष्ट-
जातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः ।” [न्यायसू० १।२।२] १५
इत्यभिधानात् । नापि वितण्डा तथानुषज्यते; जल्पस्यैव वितण्डा-
रूपत्वात्, “स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ।” [न्यायसू०
१।२।३] इति वचनात् । स यथोक्तो जल्पः प्रतिपक्षस्थापना-
हीनतया विशेषितो वितण्डात्वं प्रतिपद्यते । वैतण्डिकस्य च
स्वपक्ष एव साधनैवादिपक्षापेक्षया प्रतिपक्षो ह्यस्तिप्रतिहस्ति-
न्यायेन । तस्मिन्प्रतिपक्षे वैतण्डिको हि न साधनं वक्ति । केवलं २०
परपक्षनिराकरणायैव प्रवर्तते इति व्याख्यानात् ।

पक्षप्रतिपक्षौ च वस्तुधर्माविकाधिकरणौ विरुद्धावेककालावन-
वसितौ । वस्तुधर्माविति वस्तुविशेषौ वस्तुनः । सामान्येनाधिग-
तत्वाद्विशेषतोऽनधिगतत्वाच्च विशेषावयवमनिमित्तो विचारः ।

१ हेतुः । २ न जल्पवितण्डे इत्यर्थः । ३ पञ्चकारेण । ४ केवलम् । ५ यथो-
क्तौ न वादलक्षणेनोपपन्नः, यथोक्तोपपन्नग्रहणेन प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भमात्रमुपलक्ष्यते
न समस्तं वादलक्षणं सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्न इत्युत्तरपदद्वयस्य निग्रहस्थान-
नियमनिबन्धनस्यात्र सम्बन्धाऽभावात् जल्पे समस्तनिग्रहस्थानासम्भवात् । ६ तत्त्वाध्य-
वसायसंरक्षणत्वेन । ७ प्रतिवादि । ८ हस्तैव प्रतिहस्ती हस्तान्तरापेक्षया, तस्य
न्यायेन । ९ स्वपक्षसाधनाय हेतुम् । १० प्रतिवादी यं कञ्चन सिद्धान्तमव-
लम्ब्यावसितः प्रतिपक्षमङ्गमात्रेण विजयी भवति न तु जल्पवत्स्वपक्षसाधनेनेति
भावः । ११ पक्षप्रतिपक्षयोर्लक्षणं कृत्वा जल्पवितण्डयोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहत्वं निरा-
करोति जैनः । १२ शब्दाध्यायितनित्यातित्यत्वादिलक्षणौ । १३ शब्दादिलक्षणस्य ।
१४ भवतीति शेषः ।

एकाधिकरणविति, नानाधिकरणौ विचारं न प्रयोज्यत उभयोः प्रमाणोपपत्तेः; तद्यथा-अनित्या बुद्धिर्नित्य आत्मेति । अविरुद्धा-
वैष्येवं विचारं न प्रयोज्यतः, तद्यथा-क्रियावद्भूतं गुणवच्चेति ।
एककालाविति, भिन्नकालयोर्विचाराप्रयोजकत्वं प्रमाणोपपत्तेः,

५ यथा क्रियावद्भूतं निष्क्रियं च कालमेदे सति । तथाऽवसितौ
विचारं न प्रयोज्यतः; निश्चयोत्तरकालं विवादाभावादित्यनव-
सितौ तौ निर्दिष्टौ । एवंविशेषणौ धर्मौ पक्षप्रतिपक्षौ । तयोः
परिग्रह इत्थंभावनियमः 'एवंधर्माय धर्मौ नैवंधर्मौ' इति च ।
ततः प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भत्वविशेषणस्य पक्षप्रतिपक्षपरि-
१० ग्रहस्य जल्पवितण्डयोरसम्भवात् सिद्धं वादस्यैव तत्त्वाध्यवसा-
यसंरक्षणार्थत्वं लाभपूजाख्यातिवत् ।

तत्त्वस्याध्यवसायो हि निश्चयस्तस्य संरक्षणं न्यायवलात्निखिल-
वार्धकनिराकरणम्, न पुनस्तत्र बाधकमुद्भावयतो यथाकथञ्चि-
चिर्मुखीकरणं लकुटचपेटादिभिस्तद्व्यकरणस्यापि तत्त्वाध्यवसाय-
१५ संरक्षणार्थत्वानुपपत्तात् । न च जल्पवितण्डाभ्यां निखिलबाधक-
निराकरणम्; छलजात्युपक्रमपरतया ताभ्यां संशयस्य विपर्ययस्य
वा जननात् । तत्त्वाध्यवसाये सत्यपि हि परिनिर्मुखीकरणे प्रवृत्तौ
प्राज्ञिकास्तत्र संशेरते विपर्ययस्यन्ति वा- 'किमस्य तत्त्वाध्यवसा-
योस्ति किं वा नास्तीति, नास्त्येवेति वा' परनिर्मुखीकरणमात्रे
२० तत्त्वाध्यवसायरहितस्यापि प्रवृत्त्युपलम्भात् तत्त्वोपलब्धवादिवत् ।

तथो चाख्यातिरेवास्य प्रेक्षावत्सु स्यादिति कुतः पूजा लाभो वा ?
तैतः सिद्धश्चतुरङ्गो वादः स्वामिप्रेतार्थव्यवस्थापनफलत्वाद्वा-
त्त्वाद्वा लोकप्रख्यातवादवत् । एकाङ्गस्यापि वैकल्ये प्रस्तुतार्थाऽप-

- १ एकाग्रयोः नित्यानित्यलक्षणौ यथा । २ प्रवर्तयते यत इत्यभ्याहार्यम् । ३ प्रति ।
४ वादिप्रतिवादिनौ । ५ नानाधिकरणयोर्वस्तुधर्मयोः । ६ वस्तुधर्मद्वयस्यैकधिकरणत्वे
सति विचारो भवति, न तु नानाधिकरणे सतीति भावः । ७ अनित्यस्य दुष्प्रतिकरणं
नित्यस्य त्वारमाधिकरणम्, अत्र यथा प्रमाणोपपत्तेर्विचारो न स्यात् । ८ वादिप्रति-
वादिनौ । ९ वादिप्रतिवादिनोः । १० प्रति । ११ अनित्यलक्षणः । १२ शब्दादिः ।
१३ नित्यलक्षणः । १४ प्रमाणतर्काभ्यां पक्षप्रतिपक्षौ साधनोपालम्भस्वरूपौ जल्पवितण्ड-
योर्न भवतस्तत्र तयोर्विचारत्वात् । १५ लाभपूजाख्यातयो यथा वादस्यैव । १६ बाधकं
विरुद्धप्रमाणम् । १७ तस्य परस्य । १८ जल्पवितण्डाभ्यां निखिलबाधकनिराकरणं
भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । १९ उपक्रमः प्रस्तावः । २० परः प्रतिवादी । २१ सत्याम् ।
२२ सन्देहं कुर्वन्ति । २३ तत्त्वाध्यवसायाभावेन । २४ अप्रसिद्धिः । २५ वादिनः ।
२६ हेतोः । २७ चतुरङ्गत्वाभाषसाधनमविजिगीषुविषयत्वसाधनं तत्त्वाध्यवसाय-
संरक्षणार्थरहितत्वसाधनमसिद्धं यतः । २८ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वपरिहारमाह ।

रिसमाप्तेः । तथा हि । अहङ्कारग्रहग्रस्तानां मर्यादातिक्रमेण प्रवर्तमानानां शक्तित्रयसमन्वितौदासीन्यादियुगोपेतसमापतिमन्तरेण

“अपक्षपतिताः प्राज्ञाः सिद्धान्तद्वयवैदिनः ।

असद्वादनिषेद्धारः प्राक्षिकाः प्रग्रहा इव ।” इत्येवंविधप्राक्षिकांश्च विना को नाम नियामकः स्यात् ? प्रमाणतदाभासपरि-
ज्ञानसामर्थ्योपेतवादिप्रतिवादिभ्यां च विना कथं वादः प्रवर्तते ?

ननु चास्तु चतुरङ्गता वादस्य । जयेतरव्यवस्था तु छलजाति-
निग्रहस्थानैरेव न पुनः प्रमाणतदाभासयोर्दुष्टतयोद्भावितयोः
परिहृतापरिहृतदोषमात्रेण, इत्यप्यपेशलम् ; छलादीनामसदुत्तर-
त्वेन स्वपरपक्षयोः साधनदूषणत्वासम्भवतो जयेतरव्यवस्थानि-
बन्धनत्वायोगात् । ततः परेषां सामान्यतो विशेषतश्च छलादीनां
लक्षणप्रणयनमयुक्तमेव ।

तत्र सामान्यतश्छललक्षणम्—

“वचनविधातोर्थविकल्पोपपत्त्या छलम्” [न्यायसू० १।२।१०]
इति । “तद्विविधं वाक्छलं सामान्यच्छलमुपचारच्छलं च” १५
[न्यायसू० १।२।११] इति ।

तत्र वाक्छललक्षणं तेषाम्—“अविशेषाभिहितेयं चक्रुरभि-
प्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम्” [न्यायसू० १।२।१२] इति ।
अस्योदाहरणम्—“आढ्यो वै वैधवेयोयं वर्तते नवकम्बलः” इत्युक्ते
प्रत्यवस्थानम् कुतोऽस्य नव कम्बलाः ? नवकम्बलशब्दे हि सामा-
न्यवाचिन्यत्र प्रयुक्ते ‘नवोऽस्य कम्बलो जीर्णो नैव’ इत्यभिप्रायो
चक्रुः, तस्मादन्यस्यासम्भाव्यमानार्थस्य कल्पना ‘नव अस्य कम्बला
नाष्टौ’ इति । एवं प्रत्यवस्थानुरन्यायवादित्वात्पराजयः । न खलु
प्रेक्षावर्ता तत्त्वपरीक्षायां छलेन प्रत्यवस्थानं युक्तमिति यौगौः,
तेष्वतत्त्वज्ञाः, यतो यद्येतावतैव जिगीषुर्निगृह्येत तर्हि पत्रवाक्य-
मनेकार्थं व्याचक्षाणोपि निगृह्यताम् । न चैवम् । यत्र हि पक्षे
वादिप्रतिवादिनोर्विप्रतिपत्त्या प्रवृत्तिस्तत्सिद्धेरेवैकस्य जयोन्यस्य
पराजयः न त्वनेकार्थत्वप्रतिपादनमात्रम् । एवं च ‘आढ्यो वै

१ प्रमुत्साहमग्रेदात् । २ उदासीनः पक्षपातरहितः । ३ आदिना पापनीरतादि-
समूहः । ४ वादिप्रतिवादिनोः । ५ शकटोपयुक्तवलीवर्द्धन्द्वयपरामय (वलीवर्दा-
वरोपकरजः) इव । ६ इति चतुरङ्गत्वं सिद्धं वादस्य । ७ इति चातुरिभ्यम् ।
८ छलवासादिवादिनाम् । ९ न युक्तविधानेन । १० प्रतिवादिना । ११ दूषणदातुः
प्रतिवादिनः । १२ शुक्तिश्लाघायां । १३ नृवन्ति । १४ जनेकार्थप्रतिपादनमात्रेण ।
१५ छलवादी ।

वैधवेयो नवकम्बलत्वाद्देवदत्तवत्' इति प्रयोगे यदि वक्तुः 'नवः कम्बलोऽस्येति, नवास्य कम्बलाः' इति चार्थद्वयं 'नवकम्बलः' इति शब्दस्याभिप्रेतं भवति तदा-^५'कुतोऽस्य नव कम्बलाः' इति प्रत्यव-
तिष्ठमानो हेतोरसिद्धतामेवोद्गावयति । अन्यस्तु तदुभयार्थसम-
र्थनेन तदेकतरार्थसमर्थनेन वा हेतुसिद्धिं प्रदर्शयति । नवस्ताव-
देकः कम्बलोऽस्य प्रतीतो भवता, अन्येऽप्येष्टौ कम्बला गृहे तिष्ठ-
न्तीत्युभयथा नवकम्बलत्वस्य सिद्धेर्नासिद्धतोद्गावनीया । नव-
कम्बलयोगित्वस्य वा हेतुत्वेनोपादानात्सिद्ध एव हेतुः । इति
स्वपक्षसिद्धौ सत्यामेव वादिनो जयः परस्य च पराजयो
१० नान्यथा । तन्न वाक्छलं युक्तम् ।

नापि सामान्यच्छलम् । तस्य हि लक्षणम्-^१"सम्भवेतोर्यस्या-
तिसामान्ययोगादसद्भूतार्थकल्पना सामान्यच्छलम्" [न्यायसू०
१।२।१३] इति । तथा हि-^२'विद्याचरणसम्पत्तिर्ब्राह्मणे सम्भवेत्'
इत्युक्तेऽस्य वाक्यस्य विद्यातोऽर्थविकल्पोपपत्त्याऽसद्भूतार्थकल्प-
नया क्रियते । यदि ब्राह्मणे विद्याचरणसम्पत्सम्भवेति भौत्येपि
सम्भवेद्ब्राह्मणत्वस्य तत्रापि सम्भवात् । तदिदं ब्राह्मणत्वं विव-
क्षितमर्थं विद्याचरणसम्पल्लक्षणं 'कचिद्ब्राह्मणे तौदयेति' कचित्तु
भौत्येऽत्येति तदभावेपि भौवात्' इत्यतिसामान्यम्, तेन यौगा-
द्वक्त्रभिप्रेतादर्थोत्सद्भूतादन्यस्यासद्भूतार्थस्य कल्पना सामान्य-
२० च्छलम् । तच्चायुक्तम्; हेतुदोषस्यानैकान्तिकत्वस्यात्रोपरेणो-
द्गावनात् । न चानैकान्तिकत्वोद्गावनमेव सामान्यच्छलम्;
'अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद्वदवत्' इत्यादेरपि सामान्यच्छलत्वाजु-
पह्लात् । अत्रापि हि प्रमेयत्वं कचिद्वदादावनित्यत्वमेति, आका-
शादौ तदभावेपि भावादत्येतीति । तैथाप्यस्यानैकान्तिकत्वेपि
२५ प्रकृतेपि तदस्तु विशेषाभावात् । तन्न सामान्यच्छलमप्युपपन्नम् ।

१ प्रतिवादी । २ वादी । ३ प्रतिवादिना । ४ अन्येऽप्येष्टौ गृहे तिष्ठन्तीति, नवक-
म्बलयोगित्वस्य वा हेतुत्वेनोपादानात्सिद्ध एव हेतुर्नित्युभयथा नवकम्बलत्वस्य सिद्धेर्ना-
सिद्धतोद्गावनीया, इति स्वपक्षसिद्धौ सत्यामेव वादिनो जयः परस्य च पराजयो
नान्यथेति वाक्यरचना द्रष्टव्या । ५ नवो नूतनः । ६ स्वपक्षसिद्धान्ताने अवपराजयौ
न भवतो वादिप्रतिवादिनोरिति । ७ जायमानस्य । ८ अर्थं विद्याचरणसम्पत्तिराम्भ-
वति ब्राह्मणत्वाच्चादृशब्राह्मणवदिति । ९ वादिना । १० अर्थस्य विकल्पो भेदस्तत्त्वोप-
पत्त्या कृत्वा । ११ तर्हि । १२ अष्टे ब्राह्मणे । १३ कर्तुं । १४ व्यक्त्यन्तरे सपक्षे ।
१५ प्राप्तोति । १६ विषयरूपे । १७ विद्याचरणसम्पल्लक्षणमर्थं ब्राह्मणत्वं अतिक्रम्य
वर्तते इत्यर्थः । १८ ब्राह्मणत्वस्य । १९ अतिशयेन ब्राह्मणत्वस्य । २० अनुमाने ।
२१ अन्यथा । २२ अनुमाने । २३ अतिसामान्ययोगेपि ।

नाप्युपचारच्छलम् । तस्य हि लक्षणम्—“धर्मविकल्पनिर्देशेऽ-
र्थसंज्ञावप्रतिषेध उपचारच्छलम्” [न्यायसू० १।२।१४] इति ।
धर्मस्य हि क्रोशनादेर्विकल्पोऽध्वारोपस्तस्य निर्देशे ‘मञ्चाः क्रोशन्ति
गायन्ति’ इत्यादौ तात्स्थ्यात्तच्छब्दोपचारेणासङ्गतार्थस्य तु परि-
कल्पनं कृत्वा परेण प्रतिषेधो विधीयते—‘न मञ्चाः क्रोशन्ति किन्तु
मञ्चस्थाः पुरुषाः क्रोशन्ति’ इति । तच्च परस्य पराजयाय जायते
यथावक्तुरभिप्रायमप्रतिषेधात् । शब्दप्रयोगो हि लोके प्रधान-
भावेन गुणभावेन च प्रसिद्धः । ततो यदि वक्तुर्गौणोऽर्थोभिप्रेतः, तदा
तस्यानुष्ठानं प्रतिषेधो वा विधातव्यः । अथ प्रधानभूतः, तदा तस्य
तौविति । यदा तु वक्ता गौणमर्थमभिप्रेति प्रधानभूतं परिकल्प्य १०
परः प्रतिषेधति तदा तेन स्वमनीषा प्रतिषिद्धा स्यात् परस्यार्थ-
मर्थ इति नैयायमुपालम्भः स्यात्, तदनुपालम्भाद्धासौ परजी-
यते, इत्यप्यविचारितरमणीयम् ; यतो यद्येतौवतैसासौ निगृह्येत
तर्हि यौगोपि सकलशून्यवादिनं प्रति मुख्यरूपतया प्रमाणादि-
प्रतिषेधं कुर्वन्निगृह्येत, संव्यवहारेण प्रमाणादेस्तेनाभ्युपगमात् । १५
तैतः स्पष्टसिद्धौ परस्य पराजयो न पुनश्छलमात्रेण ।

नापि जातिमात्रेण । तथाहि—तस्याः सामान्यलक्षणम्—“साध-
र्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः” [न्यायसू० १।२।१८] इति ।
तस्याश्चानेकत्वं साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य भेदात् ।
तथा च न्यायभाष्यकारः—“साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य २०
विकल्पौजातिवद्भुत्वमिति” [न्यायभा० ५।१।१] । ताम्र खल्विमा
जातयः स्थोपनाहेतौ प्रत्युक्ते चतुर्विंशतिः प्रतिषेधहेतवः—
“साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्षवर्ण्यवर्ण्यविकल्पसाध्यप्राप्त्यऽप्राप्ति-
प्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तानुपपत्तिसंशयप्रकरणाहेत्वर्थोपपत्त्यविशेषोपप-
त्त्युपलब्ध्यनुपलब्धिनिवृत्त्यनित्यकार्यसैमाः” [न्यायसू० ५।१।१] २५
इति सूत्रकारवचनात् ।

१ मुख्यार्थप्रतिषेधः । २ उपचारः । ३ प्रयोगे कृते । ४ प्रतिवादिना । ५ वक्तु-
भिप्रायानतिक्रमेण प्रतिषेधः सादृष्टि भावः । ६ अनुष्ठानप्रतिषेधो विधातव्यो, इयं
व्यवस्था अवतु । ७ सा व्यवस्थात्रापि भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । ८ प्रतिवादिना ।
९ वादिनः । १० प्रतिषिद्धः । ११ वादिनः । १२ पराजयः । १३ तस्य-
वादिनः । १४ प्रतिवादी । १५ गौणैर्भिप्रेते मुख्यार्थप्रतिषेधमात्रेण । १६ ननु
सकलशून्यवादिनाऽमुख्यरूपतयाभ्युपगतस्य प्रमाणादेर्मुख्यरूपतयैव प्रतिषेधं विदधानः
कथं यौगो निगृह्येतेत्याशङ्क्यामाह । १७ उपचारेण । १८ ज्ञेयवत्ता प्रतिवादिनः
पराजयो यतः । १९ दूषणम् । २० भेदात् । २१ विविधाभ्यस्त । २२ कार्यभि,
• तैः समाः ।

तत्र साधर्म्यसमां जातिं न्यायभाष्यकारो व्याचष्टे-साधर्म्ये-
णोपसंहारे कृते साध्यधर्मविपर्ययोपपत्तेः साधर्म्येण प्रत्यवस्थानं
साधर्म्यसमः प्रतिषेधः । निदर्शनम्-‘क्रियावानात्मा, क्रियाहेतु-
गुणाश्रयत्वात्, यो यः क्रियाहेतुगुणाश्रयः स स क्रियावान् यथा
५ लोष्टः, तथा चात्मा, तस्मात्क्रियावान्’ इति साधर्म्योदाहरणेनोप-
संहारे कृते परः साध्यधर्मविपर्ययोपपत्तितः साधर्म्योदाहरणेनैव
प्रत्यवतिष्ठते-‘निष्क्रिय आत्मा विमुद्रव्यत्वादाकाशवत्’ इति । न
चास्ति विशेषः-‘क्रियावत्साधर्म्यात्क्रियावता भवितव्यं न पुनर्नि-
ष्क्रियत्वसाधर्म्यान्निष्क्रियेण’ इति साधर्म्यसमो दूषणमासः । न
१० ह्यात्मनः क्रियावत्त्वे साध्ये क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वस्य हेतोः स्वसा-
ध्येन व्याप्तिः विभुत्वाभिष्क्रियत्वसिद्धौ विच्छिद्यते । न च तद-
विच्छेदे तद्दूषणत्वम्, साध्यसाधनयोर्व्याप्तिविच्छेदसमर्थस्यैव
दोषत्वेनोपवर्णनात् ।

घातिकाकारस्त्वेवमाह-साधर्म्येणोपसंहारे कृते तद्विपरीतसा-
१५ धर्म्येण प्रत्यवस्थानं वैधर्म्येणोपसंहारे तत्साधर्म्येण प्रत्यवस्थानं
साधर्म्यसमः । यथा ‘अनित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात्कुम्भादि-
वत्’ इत्युपसंहृते परः प्रत्यवतिष्ठते-यद्यनित्यघटसाधर्म्यादय-
मनित्यो नित्येनाप्याकाशेनास्य साधर्म्यमूर्त्तत्वमस्तीति नित्यः
प्राप्तः । तथा ‘अनित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात्, यत्पुनरनित्यं
२० न भवति तन्नोत्पत्तिधर्मकम् यथाकाशम्’ इति प्रतिषेधिते परः
प्रत्यवतिष्ठते-यदि नित्याकाशवैधर्म्यादनित्यः शब्दस्तदा साधर्म्य-
मप्यस्याकाशेनास्त्यमूर्त्तत्वम्, अतो नित्यः प्राप्तः । अथ सत्यप्ये-
तस्मिन्साधर्म्ये नित्यो न भवति, न तर्हि वक्तव्यम्-‘अनित्यघट-
साधर्म्यान्नित्याकाशवैधर्म्याच्चाऽनित्यः शब्दः’ इति ।

२५ वैधर्म्यसमायास्तु जातेः-वैधर्म्येणोपसंहारे कृते साध्यधर्म-
विपर्ययाद्वैधर्म्येण साधर्म्येण वा प्रत्यवस्थानं लक्षणम् । ‘यथात्मा

१ जातिपु मध्ये । २ साध्यस्य । ३ साधनवादिना । ४ सक्रियत्वलक्षणानिष्क्रियत्वं
यथा विपर्ययः । ५ जातिवादिना । ६ गमनादि । ७ प्रयत्नोत्र गुणः । ८ अन्वयेन ।
९ वादिना । १० प्रतिवादी । ११ क्रियावत्साधर्म्यात्क्रियावानन्ववत् निष्क्रियत्वसाध-
र्म्यान्निष्क्रियो न भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । १२ आत्मना । १३ निराक्रियते ।
१४ व्याप्तिविच्छेदो ना भवतु तद्दूषणत्वं च भवत्वित्युक्ते सत्याह । १५ साध्यसम
इति । १६ उक्तसाधर्म्यात् । १७ वैधर्म्यस्य । १८ वादिना । १९ जातिवादी ।
२० प्रतिबुद्धतया परिवर्तते । २१ तर्हि । २२ वादिना । २३ जातिवादी ।
२४ उक्तवैधर्म्यात् । २५ यदि । २६ आकाशेन सह शब्दस्य । २७ घटेन सह
शब्दस्य साधर्म्यात् । २८ शब्दस्य ।

निष्क्रियो विमुत्वात्, यत्पुनः सक्रियं तन्न विमु यथा लोष्टादि, विमुञ्चात्मा, तस्मान्निष्क्रियः' इत्युक्ते परः ग्राह—निष्क्रियत्वे सत्यात्मनः क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वं न स्यादाकाशवत्, अस्ति चैतत्, ततो नायं निष्क्रिय इति । साधर्म्येण तु प्रत्यवस्थानम्—'क्रियावानेवात्मा क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वात्, य ईदृशः स ईदृशो ५ दृष्टः यथा लोष्टादिः, तथा चात्मा, तस्मात्क्रियावानेव' इति ।

उत्कर्षसमादीनां लक्षणम्—“साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पादुभय-साध्यत्वाच्चोत्कर्षापकर्षवर्ण्यवर्ण्यविकल्पसाध्यसमः” [न्यायसू० ५।१।४] इति ।

तत्रोत्कर्षसमायास्तावल्लक्षणम्—दृष्टान्तधर्म साध्ये समासर्ज-१० यतो मतोत्कर्षसमा जातिः । तद्यथा—'क्रियावानात्मा क्रिया-हेतुगुणाश्रयत्वाल्लोष्टवत्' इत्युक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते—यदि क्रिया-हेतुगुणाश्रयो जीवो लोष्टवत्क्रियावाँस्तदा तद्वदेव स्पर्शवान्मवेत् । अथ न स्पर्शवाँस्तर्हि क्रियावानपि न स्याद्विशेषात् ।

यस्तु तत्रैव क्रियावज्जीवसाधने प्रयुक्ते साध्ये साध्यधर्मिणि १५ धर्मस्याभावं दृष्टान्तात्समासञ्जयन्वकि सोऽपकर्षसमा जाति वक्ति । यथा लोष्टः क्रियाश्रयोऽसर्वगतो दृष्टस्तद्वदात्माप्यसर्वग-तोस्तु, विपर्यये विशेषो वा बोध्य इति ।

व्यापनीयो वर्ण्योऽव्यापनीयोऽवर्ण्यः । तेन वर्ण्येनावर्ण्येन च समा जातिः । तद्यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते—यथा-२० त्मा क्रियावान् वर्ण्यः साध्यस्तदा लोष्टादिरपि साध्योस्तु । अथ लोष्टादिरवर्ण्यस्तर्ह्यात्माप्यवर्ण्योस्तु विशेषाभावादिति ।

विकल्पो विशेषः, साध्यधर्मस्य विकल्पं धर्मान्तरविकल्पात्प्र-सञ्जयंतो विकल्पसमा जातिः । यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते—क्रियाहेतुगुणोपेतं किञ्चिद्द्रु दृश्यते यथा लोष्टादि, २५ किञ्चित्सु लघूपलभ्यते यथा वायुः, तथा क्रियाहेतुगुणोपेतमपि किञ्चित्क्रियाश्रयं युज्येत यथा लोष्टादि, किञ्चित्सु निष्क्रियं यथात्मेति ।

१ वादिना । २ आत्मा । ३ सामान्यलक्षणम् । ४ साध्यः=पक्षः । ५ विकल्पः=समारोपः । ६ समारोपवत्तः । ७ क्रियाहेतुगुणामयत्वस्य । ८ पक्षे । ९ सर्वगतत्व-लक्षणस्य । १० सर्वगतत्वे । ११ वादिना त्वया । १२ साध्यधर्मिधर्मः । १३ पक्षः । १४ दृष्टान्तोपि । १५ प्रकृत्यु । १६ क्रियामयत्वस्य । १७ भेदम् । १८ धर्मान्तर-विकल्पेन प्रत्यवस्थानं विकल्पसमा जातिः । १९ प्रतिवादिनः ।

हेत्वाद्यवयवयोगी धर्मः साध्यः, तमेव दृष्टान्ते प्रसङ्गयतः साध्यसमा जातिः । यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्राह-यदि यथा लोष्टस्तथात्मा तदा यथात्मायं तथा लोष्टः स्यात् । 'संक्रियः' इति साध्यश्चात्मा लोष्टोपि तथा साध्योस्तु । अथ लोष्टः क्रियावान् ५ साध्यः, तदात्मापि क्रियावान्साध्यो मा भूद्विशेषो वा धार्य इति ।

दूषणाभासता चासाम्-सत्साधने दृष्टान्तादिसामर्थ्ययुक्ते सति साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पमात्रात्प्रतिषेधस्य कर्तुमशक्यत्वात् । यत्र हि लौकिकेतरयोर्बुद्धिसाम्यं तस्य दृष्टान्तत्वान्न साध्यत्वमिति ।

सम्यक्संसाधने प्रयुक्ते प्राप्त्या यत्प्रत्यवस्थानं सा प्राप्तिरसमा १० जातिः । अप्राप्त्या तु प्रत्यवस्थानमप्राप्तिसमेति । तद्यथा-हेतुः साध्यं प्राप्य, अप्राप्य वा साधयेत् ? 'प्राप्य चेत्, हेतुसाध्ययोः प्राप्तयोर्युगपत्सम्भवात्कथमेकस्य हेतुतान्यस्य साध्यता युज्येत्' इति प्रत्यवस्थानं प्राप्तिरसमा जातिः । अथ 'अप्राप्य हेतुः साध्यं साधयेत्, तर्हि सर्वसाध्यमसौ साधयेत् । न चाप्राप्तः प्रदीपः १५ पदार्थानां प्रकाशको दृष्टः' इति प्रत्यवस्थानमप्राप्तिसमेति ।

ताविमौ दूषणाभासौ प्राप्तस्यापि धूमादेरद्वयादिसाधकत्वोपलम्भात्, कृत्तिकोदयादेस्त्वप्राप्तस्य शकटोदयादौ गमकत्वप्रतीतेरिति ।

दृष्टान्तस्यापि साध्यविशिष्टतया प्रतिपत्तौ साधनं वक्तव्यमिति २० प्रसङ्गेन प्रत्यवस्थानं प्रसङ्गसमा जातिः । यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-'क्रियाहेतुगुणयोगात्क्रियावाँलोष्टः' इति हेतुर्नोक्तः । न व हेतुमन्तरेण साध्यसिद्धिः ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वमे-यथैव हि रूपं दिदृक्षूणां प्रदीपोपादानं प्रतीयते न पुनः स्वयं प्रकाशमानं प्रदीपं दिदृक्षूणाम् । २५ तथा साध्यस्यात्मनः क्रियावत्त्वस्य प्रसिद्ध्यर्थं लोष्टस्य दृष्टान्तस्य ग्रहणमभिप्रेतं न पुनस्तस्यैव सिद्ध्यर्थं साधनान्तरस्योपादानम्, चादिप्रतिवादिनोरविवादविषयस्य दृष्टान्तस्य दृष्टान्तत्वोपपत्तेस्तत्र साधनान्तरस्याफलत्वादिति ।

प्रतिदृष्टान्तरूपेण प्रत्यवस्थानं प्रतिदृष्टान्तसमा जातिः । यथा- ३० त्रैव साधने प्रयुक्ते प्रतिदृष्टान्तेन परः प्रत्यवतिष्ठते-क्रिया-

१ आदिना प्रतिषाहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनानि । २ उभयोरपि दृष्टान्तसाध्ययोः साध्यत्वापादनेन प्रत्यवस्थानं साध्यसमा जातिः । ३ प्राकनवाक्यं विवृणोति । ४ सक्रिय इति । ५ अस्ति चेत्तर्हि । ६ त्वया वादिना । ७ उत्तरैरसमादिगण्णाय । ८ विवक्ष्य भारोपः । ९ विशेषाभावात् । १० हेतुमन्तरेण साध्यसिद्धिर्न निष्पत्तीत्युक्ते सत्यात् । ११ कथम् ? तथा हि ।

हेतुगुणाश्रयमाकाशं निष्क्रियं दृष्टमिति^१ । कः पुनराकाशस्य क्रियाहेतुगुणः ? संयोगो वायुना सह । कालत्रयेऽप्यसम्भवादाकाशे क्रियायाः । न क्रियाहेतुर्वायुना संयोगः, इत्यप्यसारम्, वायुसंयोगेन वनस्पतौ क्रियाकारणेन समानधर्मत्वादाकाशे वायुसंयोगस्य । यत्त्वसौ तत्र क्रियां न करोति तन्नाकारणत्वात्, ५ किन्तु परममहापरिमाणेन प्रतिवद्धत्वात् । अथ क्रियाकारणवायुवनस्पतिसंयोगसदृशो वाय्वाकाशसंयोगो न पुनः क्रियाकारणम्, न कश्चिदप्येवं हेतुरनैकान्तिकः स्यात्—‘अनित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वात्सुखादिवत्’ इत्यत्राप्यमूर्त्तत्वं हेतुः शब्देऽन्योन्यश्चाकाशे तत्सदृश इति कथमस्याकाशेनानैकान्तिकत्वम् ? सकलानुमानो- १० च्छेदश्च, अनुमानस्य सादृश्यादेव प्रवर्त्तनात् । न खलु ये धूमधर्माः कैचिद्धर्मे दृष्टास्त एवान्यत्र दृश्यन्ते तत्सदृशानामेव दर्शनात् । ततोनेनैकस्यचिद्धेतोरनैकान्तिकत्वं कैचिदनुमानात्प्रवृत्तिचेच्छता तद्धर्मसदृशस्तद्धर्मोऽनुमन्तव्य इति क्रियाकारणवायुवनस्पतिसंयोगसदृशो वाय्वाकाशसंयोगोऽपि क्रियाकारणमेव । तथा १५ च प्रतिदृष्टान्तेनाकाशेन प्रत्यवस्थानं प्रतिदृष्टान्तसमः प्रतिपेधः ।

स चायुक्तः, अस्य दूषणाभासत्वात् । तथाहि—यदि तावदयं वृत्ते—‘यथायं त्वदीयो दृष्टान्तो लोष्टादिस्तथा मदीयोऽप्याकाशादिः’ इति, तदा व्याघातः—एकस्य हि दृष्टान्तत्वेन्यस्यादृष्टान्तत्वमेव, उभयोस्तु दृष्टान्तत्वविरोधः । अथैवं वृत्ते—‘यथायं मदीयो न २० दृष्टान्तस्तथा त्वदीयोऽपि’ इति । तथापि व्याघातः—प्रतिदृष्टान्तस्य दृष्टान्तस्तथा त्वदीयोऽपि इति । तथापि व्याघातः—प्रतिदृष्टान्तत्वे दृष्टान्तत्वाद्वा दृष्टान्तत्वव्याघातः, प्रतिदृष्टान्ताभावे तस्य दृष्टान्तत्वोपपत्तेः । दृष्टान्तस्य वाऽदृष्टान्तत्वे प्रतिदृष्टान्तस्यादृष्टान्तत्वव्याघातः, दृष्टान्ताभावे तस्य तत्त्वोपपत्तेरिति ।

“प्रागुत्पत्तेः कारणभावाद्या प्रत्यवस्थितिः सानुत्पत्तिसमा २५ जातिः” [न्यायसू० ५।१।१२] तद्यथा—‘विनश्वरः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात्कडकादिवत्’ इत्युक्ते परः प्राह—‘प्रागुत्पत्तेरनुत्पत्तेः शब्दे विनश्वरत्वस्य यत्कारणं प्रयत्नानन्तरीयकत्वं तन्नास्ति ततो-यमविनश्वरः, शाश्वतस्य च शब्दस्य न प्रयत्नानन्तरं जन्म इति ।

सेयमनुत्पत्त्या प्रत्यवस्था दूषणाभासो न्यायातिलङ्घनात् । उत्पन्न- ३० स्यैव हि शब्दस्य धर्मिणः प्रयत्नानन्तरीयकत्वमुत्पत्तिधर्मकत्वं वा

१ तद्वदात्मापि निष्क्रियो भवति । २ ताण्डलादयः । ३ महानसादौ । ४ वादिना । ५ पर्वतादौ । ६ आतिवादी । ७ दृष्टान्तः । ८ व्याघातं भावयति । ९ शब्दस्य । १० कारणं तात्वादि । ११ प्रतिकूलता । १२ लिङ्गम् । १३ न्यायातिलङ्घनमेव भावयति ।

भजति नानुत्पन्नस्य । प्राशुत्पत्तेः शब्दस्याऽसत्त्वे किमाश्रयोयमु-
पालम्भः ? न ह्ययमनुत्पन्नोऽसन्नेव 'शब्दः' इति 'प्रयत्नानन्तरी-
यकः' इति 'अनित्यः' इति वा व्यपदेश्यं शक्यः । सत्त्वे तु सिद्ध-
मेव प्रयत्नानन्तरीयकत्वकारणं नश्वरत्वे साध्ये, अतः कथमस्य
५ प्रतिषेध इति ?

“सामान्यघटयोरैन्द्रियिकत्वे समाने नित्यानित्यसाधर्म्यात्सं-
शयसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।१४] यथा 'अनित्यः शब्दः
प्रयत्नानन्तरीयकत्वाद् घटवत्' इत्युक्ते परः सहस्रमपश्यन्
संशयेन प्रत्यवतिष्ठते-प्रयत्नानन्तरीयकेपि शब्दे सामान्येन साध-
१० र्म्यमैन्द्रियिकत्वं नित्येनास्ति घटेन चानित्येनास्ति, संशयः शब्दे
नित्यत्वानित्यत्वधर्मयोरिति ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वम्-शब्दाऽनित्यत्वाऽप्रतिबन्धितत्वात् ।
यथैव हि पुरुषे शिरःसंयमनादिनां विशेषेण निश्चिते सति न
स्थाणुपुरुषसाधर्म्यादूर्ध्वत्वात् संशयस्तथा प्रयत्नानन्तरीयकत्वेन
१५ विशेषेणानित्ये शब्दे निश्चिते न घटसामान्यसाधर्म्यादैन्द्रियि-
कत्वात् संशयो युक्त इति ।

“उभयसाधर्म्यात्प्रक्रियासिद्धेः प्रकरणसमा जातिः ।” [न्याय-
सू० ५।१।१६] 'यथा अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वाद् घटवत्'
इत्यनित्यसाधर्म्यात्प्रयत्नानन्तरीयकत्वाच्छब्दस्यानित्यतां कश्चि-
२० त्साधयति । अपरः पुनर्गोत्वादिना सामान्येन साधर्म्यात्तस्य
नित्यताम् इति, अतः पक्षे विपक्षे च प्रक्रिया समानेति ।

- ईदृश्यं च प्रक्रियाऽनतिवृत्त्या प्रत्यवस्थानमयुक्तम् ; विरोधात् ।
प्रतिपक्षप्रक्रियासिद्धौ हि प्रतिषेधो विरुध्यते । प्रतिषेधोपपत्तौ तु
प्रतिपक्षप्रक्रियासिद्धिर्चाह्वयते इति ।

२५ “त्रैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतुसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।१८]
यथा सत्साधने दूषणमपश्यन्परः प्राह-'साध्यात्पूर्वं वा साधनम्,
उत्तरं वा, सहभावि वा स्यात् ? न तावत्पूर्वम् ; असत्यर्थे तस्य
साधनत्वानुपपत्तेः । नाप्युत्तरम् ; असति साधने पूर्वं साध्यस्य
साध्यस्वरूपत्वासम्भवात् । नापि सहभावि; स्वतन्त्रतया प्रसिद्धयोः

१ श्रुतेर्दर्शनाभिहितव्याप्तेः साधर्म्यवैषम्यापातिप्रतिकूलत्वादिना पक्षे सन्देहो-
पादानं संशयसमा जातिः । २ शब्दत्वलक्षणेन । ३ साधर्म्यम् । ४ केशवव्यादिना ।
५ अनित्यनित्याभ्यां घटसामान्याभ्यां । ६ प्रत्यक्षमानेन प्रत्यवस्थानं प्रकरणसमा
जातिः । ७ ऐन्द्रियिकत्वात् । ८ प्रक्रिया बहुभावावचना । ९ साध्यस्य प्राप्तेन
सिद्धत्वात्किमनेन हेतुनेति आपः ।

साध्यसाधनभावासम्भवात्सह्यविन्ध्यवत्' इत्यहेतुसमत्वेन प्रत्य-
वस्थानमयुक्तम्; हेतोः प्रत्यक्षतो घृमादेर्वन्धादौ प्रसिद्धेरिति ।

“अर्थापत्तिः प्रतिपक्षसिद्धेर्यापत्तिसमा जातिः।” [न्यायसू०
५।१।२१] यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्राह-‘यदि प्रयत्नानन्तरी-
यकत्वेनानित्यः शब्दो घटवत्तदार्थापत्तितो नित्याकाशसाधर्म्या-
नित्योस्तु । यथैव ह्यस्पर्शवत्त्वं खे नित्ये दृष्टं तथा शब्देऽपि’ इति ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वम्; सुखादिनानैकान्तिकत्वात् । नचा-
नैकान्तिकाद्धेतोः प्रतिपक्षसिद्धिरिति ।

“एकधर्मोपपत्तेरविशेषे सर्वाविशेषप्रसङ्गात् सत्त्वोपपत्तितो-
ऽविशेषसमा जातिः।” [न्यायसू० ५।१।२३] यथात्रैव साधने १०
प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-प्रयत्नानन्तरीयकत्वलक्षणैकधर्मोपपत्ते-
र्घटशब्दयोरनित्यत्वाविशेषे सत्त्वधर्मस्याप्यखिलाथैपूपपत्तेरनि-
त्यत्वाविशेषः स्यात् ।

तस्याश्च दूषणाभासता; तथा साधयितुमशक्यत्वात् । न खलु
यथा प्रयत्नानन्तरीयकत्वं साधनधर्मः साध्यमनित्यत्वं शब्दे १५
साधयति तथा सर्वार्थे सत्त्वम्, धर्मान्तरस्यापि नित्यत्वस्याका-
शादौ सत्त्वे सत्युपलम्भात्, प्रयत्नानन्तरीयकत्वे च सत्यनित्य-
त्वस्यैवोपलम्भादिति ।

“उभयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमा जातिः।” [न्यायसू० ५।१।
२५] यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्राह-‘यद्यनित्यत्वे कारणं २०
प्रयत्नानन्तरीयकत्वं शब्दस्यास्तीत्यनित्योसौ तदा नित्यत्वेऽप्यस्य
कारणमस्पर्शवत्त्वमस्तीति नित्योऽप्यस्तु’ इत्युभयस्य नित्यत्व-
स्यानित्यत्वस्य च कारणोपपत्त्या प्रत्यवस्थानमुपपत्तिसमो दूषणा-
भासः । एवं नृवता स्वयमेवानित्यत्वकारणं प्रयत्नानन्तरीयकत्वं
तावदभ्युपगतम् । एवं तदभ्युपगमाच्चानुपपन्नस्तत्प्रतिषेध इति । २५

“निर्दिष्टकारणाभावेऽप्युपलम्भादुपलब्धिसमा जातिः।” [न्याय-
सू० ५।१।२७] यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-‘शाखा-
दिभङ्गजे शब्दे प्रयत्नानन्तरीयकत्वाभावेऽप्यनित्यत्वमस्ति’ इति ।

दूषणाभासत्वं चास्याः, प्रकृतसाधनाप्रतिवन्धित्वात् । न खलु ३०
‘साधनमन्तरेण साध्यं न भवति इति’ नियमोक्तिः, साधनस्यैव

१ अर्थापत्त्या प्रत्यवस्थानम् । २ घटसाधर्म्येण । ३ अतित्येन । ४ अस्पर्शवत्त्वा-
दिति । ५ परेणाङ्गीक्रियमाणे । ६ यथा सर्वार्थेषु साधनधर्मैः सत्त्वमनित्यत्वं न साधयति
तथा प्रयत्नानन्तरीयकत्वसाधनधर्मोऽनित्यत्वं न साधयतीत्युक्ते सत्याह । ७ निर्दिष्टस्य
साध्यधर्मसिद्धिकारणसामान्येण साध्यधर्मोपलम्भात् प्रत्यवस्थानम् । ८ साध्यस्य ।

साध्याभावेऽभावनियमव्यवस्थितेः । न चानित्यत्वे प्रयत्नानन्तरीयकत्वमेव गमकम्; उत्पत्तिमत्त्वादेरपि तद्वमकत्वात् ।

“तदनुपलब्धेरनुपलम्भादभावसिद्धौ तद्विपरीतोपपत्तेरनुपलब्धिसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।२९] ‘यथा अविद्यमानः शब्द उच्चारणात्पूर्वमनुपलब्धेरुत्पत्तेः पूर्वं घटादिवत् । न खलु उच्चारणात्प्राग्विद्यमानस्य शब्दस्यानुपलब्धिः तदावरणानुपलब्धेः, उत्पत्तेः प्राग्घटादेरिव । यस्य तु दर्शनात् प्राग्विद्यमानस्यानुपलब्धिसत्तस्य नावरणानुपलब्धिः, यथा भूम्याद्यावृत्तस्योदकादेः, आवरणानुपलब्धिश्च श्रवणात्प्राक् शब्दस्य ।’ इत्युक्ते परः प्राह-तस्य शब्दस्यानुपलब्धेरन्यनुपलम्भादभावसिद्धौ सत्यां शब्दस्याभावविपरीतत्वेन भावस्योपपत्तेरनुपलब्धिसमा जातिः ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वम्; अनुपलब्धेरनुपलब्धिसम्भावतयोपलब्धिविषयत्वात् । यथैव ह्युपलब्धिरुपलब्धेर्विषयस्तथानुपलब्धिरपि । कथमन्यथा ‘अस्ति मे घटोपलब्धिः तदनुपलब्धिस्तु १५ नास्ति’ इति संवेदनमुपपद्यते ?

“साधर्म्यानुल्यधर्मोपपत्तेः सर्वानित्यत्वप्रसङ्गादनित्यसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।३३] यथा ‘अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद् घटवत्’ इत्युक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-यदि शब्दस्य घटेन साधर्म्यं कृतकत्वादिनाऽनित्यत्वं साधयेत्, तदा सर्वं वस्तुनित्यं प्रसज्येत घटादिनाऽनित्येन सत्त्वेन कृत्वा साधर्म्यमात्रस्य सर्वत्राऽविशेषात् ।

तस्याश्च दूषणाभासत्वम्; प्रतिषेधकस्याप्यसिद्धिप्रसङ्गात् । पक्षो हि प्रतिषेध्यः प्रतिषेधकस्तु प्रतिपक्षः । तयोश्च साधर्म्यं प्रतिज्ञादियोगः तेन विना तयोरसम्भवात् । ततः प्रतिज्ञादियोगाद्यथा २५ पक्षस्यासिद्धिस्तथा प्रतिपक्षस्यापि । अथ सत्यपि साधर्म्यं पक्षप्रतिपक्षयोः पक्षस्यैवासिद्धिर्न प्रतिपक्षस्य; तर्हि घटेन साधर्म्यात्कृतकत्वाच्छब्दस्याऽनित्यतास्तु, सकलार्थानां त्वनित्यना तेन साधर्म्यमात्रात् मा भूदिति ।

१ तस्य=शब्दस्य । २ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वपरिहारमाह । ३ व्यतिरेकनिर्देशनमाह । ४ जातिवादी । ५ अनुपलब्धेरन्यनुपलम्भादभावसिद्धिः कथमित्युक्ते सत्याह । ६ द्वितीया-नुमानमाभिलषति वदति । ७ कृतः । ८ अनुपलब्धेरुपलब्धिविषयत्वं यदि न स्यात् । ९ पक्षस्यानित्यत्वे सर्वस्यानित्यत्वापादनमनित्यसमा जातिः । १० धर्मेण । ११ पूर्वोक्ताभा जातेः । १२ जन्मना । १३ प्रतिपक्षस्य । १४ कथम् । १५ प्रति-ज्ञादियोगेन ।

“शब्दाऽनित्यत्वोक्तौ नित्यत्वप्रत्यवस्थितिर्नित्यसमा जातिः ।”
[न्यायसू० ५।१।३५?] तद्यथा-‘अनित्यः शब्दः’ इत्युक्ते परः
प्रत्यवस्थितिष्ठते-शब्दाभ्यमनित्यत्वं किं नित्यम्, अनित्यं वा? यदि
नित्यम्, तर्हि शब्दोपि नित्यः स्यात्, अन्यथास्य तदाधारत्वं
न स्यात् । अथानित्यम्, तथाप्ययमेव दोषः-अनित्यत्वस्याऽ-
नित्यत्वे हि शब्दस्य नित्यत्वमेव स्यात् ।

दूषणाभासत्वं चास्याः, प्रकृतसाधनाऽप्रतिबन्धित्वात् । प्रादु-
र्भूतस्य हि पदार्थस्य प्रध्वंसोऽनित्यत्वमुच्यते, तस्य प्रतिज्ञाने
प्रतिषेधविरोधः । स्वयं तदप्रतिज्ञाने च प्रतिषेधो निराश्रयः
स्यात् । तन्नानित्यता शब्दे नित्यत्वप्रत्यवस्थितेर्निराकर्तुं शक्येति । १०

“प्रयत्नानेकार्क्यत्वात्कार्यसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।३७]
यथा ‘अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात्’ इत्युक्ते परः प्रत्यव-
स्थितिष्ठते-प्रयत्नानन्तरं घटादीनां प्रागऽसतामात्मलाभोपि प्रतीतः,
आवारकापनयनात् प्राक्सतामेवाभिव्यक्तिश्च । तत्कथमतः शब्द-
स्यानित्यतेति ? १५

दूषणाभासता चास्याः, प्रकृतसाधनाप्रतिबन्धित्वादेव । शब्दस्य
हि प्रागसतः स्वरूपलामलक्षणं जन्मैव प्रयत्नानन्तरीयकत्व-
मुपपद्यते प्रागनुपलब्धिनिमित्तस्याभावेऽप्यनुपलब्धितः सत्त्वा-
न्मवादिति ।

तदेतद्यौगकल्पितं जातीनां सामान्यविशेषलक्षणप्रणयनमयुक्तं २०
मेव, साधनाभासेपि साधर्म्यादिना प्रत्यवस्थानस्य जातित्वप्रस-
ङ्गात् । तथेष्टत्वात् दोषः, तथा हि-असाधौ साधने प्रयुक्ते यो
जातीनां प्रयोगः सोनमिश्रतया वा साधनदोषस्य स्यात्, तद्दोष-
प्रदर्शनार्थं वा प्रसङ्गव्याजेन, इत्यप्यसमीचीनम्, साधनाभासे-
प्रयोगे जातिप्रयोगस्य उद्योतकरेण निराकरणात् । २५

जातिवादी च साधनाभासमेतदिति प्रतिपद्यते वा, न वा? यदि
प्रतिपद्यते, तर्हि य एवार्थं साधनाभासत्वं हेतुदोषोऽनेन प्रतिपन्नः
स एव वक्तव्यो न जातिः, प्रयोजनाभावात् । प्रसङ्गव्याजेन दोष-
प्रदर्शनार्थं सा, इत्यप्ययुक्तम्, अर्थसंज्ञायात् । यदि हि परप्रयु-

१ पक्षस्थानित्यवधेः नित्यत्वापादनेन सूतीयासः प्रत्यवस्थानं नित्यसमा जातिः ।
२ अङ्गीकारे । ३ उत्पत्तेः । ४ प्रयत्नेन । ५ उक्तरणात् । ६ शब्दस्यानुपलब्धेर्निमित्त-
भावाकम् । ७ दूषणस्य । ८ मम योगस्य । ९ पूर्वपक्षवादिना । १० जातिवादिना
प्रयुक्ते । ११ पूर्वपक्षवादिना प्रयुक्ते । १२ प्रतिवादिप्रयुक्तस्य । १३ नैयायिक-
वायेन । १४ वादिनः । १५ अनर्थः दोषः ।

क्तायां जातौ साधनाभासवादी स्वप्रयुक्तसाधनदोषं पश्यन् समा-
यामेवं ब्रूयात् 'मया प्रयुक्ते साधनेऽयं दोषः स चानेन नोद्भाबितः,
जातिस्तु प्रयुक्ता' इति तदा तावज्जातिवादिनो न जयः प्रयोज-
नम्; उभयोरज्ञानसिद्धेः । नापि साम्यम्; सर्वथा जयस्यासम्भवे
५ तस्याभिप्रेतत्वात् "प्रेकान्तिकं पराजयाद्वरं सन्देहः" []
इत्यभिधानात् । तदप्रयोगेपि चैतत्समानम्-पूर्वपक्षवादिनो हि
साधनाभासाभिधाने प्रतिवादिनश्च तूष्णीभावे यत्किञ्चिदभिधाने
वा द्वयोरज्ञानप्रसिद्धितः प्राश्निकैः साम्यव्यवस्थापनात् । यदा च
साधनाभासवादी स्वसाधने दोषं प्रच्छाद्य परप्रयुक्तां जातिमेवो-
१० द्भावयति तदा न तद्वादिनो जयः साम्यं वा प्रयोजनम्; पराजय-
स्यैव सम्भवात् ।

अथ साधनाभासमेतदित्यप्रतिपाद्य जातिं प्रयुक्ते; तथाप्यफल-
स्तत्प्रयोगः प्रोक्तदोषानुपह्नात् । सम्यक्साधने तु प्रयुक्ते तत्प्रयोगः
पराजययैव । अथ तूष्णीभावे पराजयोऽवश्यंभावी, तत्प्रयोगे तु
१५ कदाचिदसदुत्तरेणापि निरुत्तरः स्यात् इत्यैकान्तिकपराजयाद्वरं
सन्देह इत्यसौ युक्त एवेति चेत्; न; तथाप्यैकान्तिकपराजयस्या-
निवार्यत्वात् । यथैव ह्युत्तरपक्षवादिनस्तूष्णीभावे सत्युत्तराऽ-
प्रतिपत्त्या पराजयः प्राश्निकैर्व्यवस्थाप्यते तथा जातिप्रयोगेऽप्यु-
त्तराप्रतिपत्तेरविशेषात्, तत्प्रयोगस्यासदुत्तरत्वेनानुत्तरत्वात् ।

२० ननु चास्य पराजयस्तैर्व्यवस्थाप्येत यद्युत्तराभासत्वं पूर्वपक्षवा-
द्युद्भावयेत्, अन्यथा पर्यनुयोज्योपेक्षणात्तस्यैव पराजयः स्यात् ।
नन्वेवमुत्तराभासस्योत्तरपक्षवादिनोपन्यासेपि अपरस्योद्भावनश-
क्त्यशक्त्यपेक्षया जयपराजयव्यवस्थायामनवस्था स्यात् । न खलु
जातिवादिवदस्यापि तूष्णीभावः सम्भवति, सम्यगुत्तराप्रतिपत्ता-
२५ वपि उत्तराभासस्योपन्याससम्भवात् । ततश्चोपन्यस्तजातिसवरूप-
स्यातोऽन्यस्य चोद्भावेनेपि उत्तरपक्षवादिनस्तत्परिहारे शक्ति-
मशक्तिं चापेक्ष्यैव पूर्वपक्षवादिनो जयः पराजयो वा व्यव-
स्थाप्येत जातिवादिन इवेतरस्योद्भावनशक्त्यशक्त्यपेक्ष इति ।
जातिलक्षणासदुत्तरप्रयोगादेव तत्परिहाराशक्तिनिश्चयात् पुनरु-
३० पन्यासवैफल्ये सत्साधनाभिधानादेवोत्तराभासत्वोद्भावनशक्तेर-
प्यवसायाद् इतरस्यापि कथं तद्वैफल्यं न स्यात् ? सत्साधनाभि-
धानात्तदभिधानसामर्थ्यमेवास्यावसीयते न परोपन्यस्तजात्युद्भा-

१ परानयायैव न जयायेति । २ वादिना । ३ प्रतिवादिनः । ४ जातिवादिनः ।

५ स्वयां जातिः प्रयुक्तेति वचनीयं तस्योपेक्षणात् । ६ तस्य उद्भावितस्य । ७ उपन्यासो
हि जातेः । ८ निश्चयात् । ९ तस्य=भाष्योद्भावनस्य ।

वनसामर्थ्यम्; तर्हि जातिप्रयोगेऽप्युत्तराभासवादिनः सम्यगु-
त्तराभिधानासामर्थ्यमेवावसीयेत न परोद्भावितजातिपरिहारा-
सामर्थ्यम् । ननु सदुत्तराभिधानासामर्थ्यादेव तत्परिहारासाम-
र्थ्यनिश्चयः, तत्सद्भावे हि न सदुत्तराभिधानासामर्थ्यं स्यात्;
एवं तर्हि सत्साधनाभिधानसामर्थ्यादेवास्य परोपन्यस्तजात्युद्भाव-
नशक्त्यवसायोऽस्तु, तदभावे तदभिधानसामर्थ्यायोगात् । सत्सा-
धनाभिधानसमर्थस्यापि कदाचिदऽसदुत्तरेण व्यामोहसम्भवात्
तदुद्भावनसामर्थ्यमवश्यं भवीति चेत्; तर्हि जातिवादिनः सदुत्त-
राभिधानासमर्थस्यापि स्वोपन्यस्तपरोद्भावितोत्तराभासपरिहार-
सामर्थ्यसम्भवात्पुनरुपन्यासश्चतुर्थोऽपेक्षणीयः स्यात् । साधन-१०
वादिनोपि तत्परिहारनिराकरणाय पञ्चमः । पुनर्जातिवादिनस्त-
न्निराकरणयोग्यतावबोधार्थं षष्ठ इत्यनवस्थानं स्यात् ।

ननु नायं दोषः पर्यनुयोज्योपेक्षणस्य प्रतिवादिनाऽनुद्भावनात्,
'कस्य पराजयः' इत्यनुर्युक्ताः प्राश्निका एव हि पूर्वपक्षवादिनः पर्य-
नुयोज्योपेक्षणमुद्भावयन्ति । न खलु निग्रहप्राप्तौ जातिवादी सं-
कीर्णान् विवृणुयात् । तर्हि जात्यादिप्रयोगमपि तं एवोद्भावयन्तु
न पुनः पूर्वपक्षवादी । पर्यनुयोज्योपेक्षणं ते पूर्वपक्षवादिन एवो-
द्भावयन्ति न जात्यादिवादिनो जात्यादिप्रयोगमिति महामा-
ध्यस्थ्यं तेषां येनैकस्य दोषमुद्भावयन्ति नापरस्येति । ततः पूर्वप-
क्षवादिनं तूर्णमावादिकमारचयन्तमुत्तराप्रतिपत्तिमुद्भावयन्नेव १५
जातिवादी निगृह्णातीत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

तत्रापि कथमभूतेनोत्तराप्रतिपत्त्युद्भावनेनासौ विजयते ? किं
स्वोपन्यस्तजात्यपरिज्ञानोद्भावनरूपेण, परोद्भावितजात्यन्तरनिरा-
करणलक्षणेन चो(वा, उ)त्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्भावनाऽऽकारेण
वा ? तत्राप्येविकल्पे 'अपकर्षसमाऽन्या वा जातिर्मया प्रयुक्तापि २५
न ज्ञातानेन' इत्येवं स्वोपन्यस्तजात्यपरिज्ञानमुद्भावयन्नैतन्मनः
सम्यगुत्तराप्रतिपत्तिमसम्बद्धमभिधायित्वं परकीयसाधनसम्य-
क्तत्वं चोद्भावयतीति जात्युपन्यासवैयर्थ्यम्, अवश्यमभावित्वात्प-

- १ प्राश्निकानाम् । २ भावपक्षवादिनः । ३ तत्तत्र चूलीया जातिरुद्भासनीत्येवम् ।
४ श्रुतः । ५ जातिवाच्यं जातिमुक्तवान् स्वभावादिना न सम्भावितेति न प्रतिपाद-
यतीति भावः । ६ श्रुतेन्द्रियम् । ७ प्राश्निकाः । ८ नोद्भावयन्तीति संन्यतः । ९ उप-
पादयन्मिदम् । १० प्राश्निकानाम् । ११ प्राश्निकानां माध्यस्थ्यभावो यतः ।
१२ जानन् । १३ परेण । १४ पक्षे । १५ वादिनम् । १६ पूर्वपक्षवादिनः ।
१७ परोद्भावादी । १८ ज्ञानान्तरं जातिविज्ञेयः । १९ त्रिषु विकल्पेषु मध्ये ।
२० उत्कर्षसमा वा जातिः । २१ पूर्वपक्षवादिना । २२ जातिवादी ।

राजयस्य । परेणाविज्ञातमात्मनो दोषं स्वयमुद्गावयन्नपि न परा-
जयमास्कन्दतीति चेत्, परेणाविज्ञातः स दोष इति कुतोऽवसि-
तम् ? तूष्णींभावादन्यस्य चोद्गावनादिति चेत्, न; वादविस्तरपटि-
हारार्थत्वात्तस्य । स्ववाम्यन्निता हि वादिनो न विचलिष्यन्तीति
५ स्वयमुद्गावनीयं दोषं परेणोद्गावयितुं तूष्णींभावोऽन्यस्य चोद्गा-
वनं नाज्ञानात् । स्वयमुद्गाविते हि दोषे जात्यादिवादी तत्परिहा-
रार्थं किञ्चिदन्यद्ब्रूयादिति न वादावसानं स्यात् । परस्याऽज्ञान-
माहात्म्यख्यापनार्थं वा; पश्यतैवंविधमस्याज्ञानमाहात्म्यं येन
स्वयमेव स्वदोषकलापमसत्ताधनस्य सम्यक्त्वं चोद्गावयतीति ।
१० एवं सौध्येन पूर्वपक्षवादिना प्रत्यर्वस्थिते किमत्र जातिवादी
ब्रूयात्—‘जातिर्मया प्रयुक्तापि न ज्ञातानेनेति वचनादुत्तरकाल-
मनेनैवावसितो दोषकलापो न प्राक्, अतोऽज्ञानेनैव प्रतिवादिना
तूष्णींभूतमन्यद्वोद्गावितम्’ इति । अत्रापि शपथः शरणम् । ननु
यदि नाम जानैव पूर्वपक्षवादिना तूष्णींभूतमन्यद्वोद्गावितं
१५ तथापि तेन सदुत्तरानभिधानात्कथं नास्य पराजयः स्यात् ? तदे-
तज्जातिवादिनो जात्युपन्यासेपि समानं जातीनां दूषणाभास-
त्वात् । तस्मान्न खोपन्यस्तजात्यपरिज्ञानोद्गावनरूपेणोत्तराऽप्रति-
पत्त्युद्गावनेन तूष्णींभूतमन्यद्वोद्गावयन्तमितरं निगृह्णन्ति ।

द्वितीयविकल्पे खोपन्यस्ता जातिः कथं परोद्गावितजात्यन्त-
२० ररूपा न भवतीति वादिनेतरः प्रतिपाद्यते ? न तावत्खोपन्यस्त-
जातिस्वरूपानुवादेन, यथा नेयमुत्कर्षसमा जातिरपकर्षसमत्वा-
दस्या इति; प्रथमपक्षोदितदोषप्रसङ्गात् । नाप्यनुपलम्भात्; अनु-
पलम्भमात्रस्याप्रमाणत्वात् । अनुपलम्भविशेषस्यापि खोपन्यस्त-
जातिस्वरूपोपलम्भलक्षणत्वात्, तत्र चोक्तदोषप्रसङ्गात् । तन्न
२५ जातिवादी जात्यन्तरमुद्गावयन्तं प्रतिवादिनं तदुद्गावितजात्यन्त-
रनिराकरणलक्षणेनोत्तराप्रतिपत्त्युद्गावनेन विजयते ।

नाप्युत्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्गावनरूपेण; ‘त्वया न ज्ञातमुत्तरम्’
इत्युत्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्गावने हि पूर्वपक्षवादिनस्तद्विशेषविषयः
प्रश्नोऽवश्यंभावी ‘मया तावदुत्तरमुपन्यस्तमेतच्च कथमनुत्तरम्’
३० इति । जातिवादिना चास्योत्तराप्रतिपत्तिर्विशेषेणोद्गावनीया

१ वादिना । २ तूष्णींभावादेः । ३ प्रतिवादिना । ४ वादिना जात्युद्गावनेपि
वादावसानं न भविष्यति ततश्च तूष्णींभावोऽन्योद्गावनं च वादावसानाय व्यर्थमिदुक्ते
सत्याह । ५ प्रयोजनान्तरं तूष्णींभावादेराह । ६ निरीक्षणं ययं सस्याः । ७ वसः ।
८ पर्यनुवृत्ते सति । ९ सकाशात् । १० पूर्वपक्षवादिना । ११ दोषम् । १२ पूर्व-
पक्षवादी । १३ दोषः=उत्तराप्रतिपत्तिः । १४ जातिवादी ।

‘मयोपन्यस्ताप्येषा जातिस्त्वया न ज्ञाता जात्यन्तरं चोद्भाविताम्’ इति । अत्र च प्रागुक्ताशेषदोषानुपपन्नः । तदेवमुत्तराऽप्रतिपत्त्युद्भावनत्रयेऽपि जातिवादिनः पराजयस्यैकान्तिकत्वात् ‘एकान्तिक-पराजयाद्वरं सन्देहः’ इति जानन्नपि जात्यादिकं प्रयुक्ते इत्येतद्भूतो नैयायिकस्यानैयायिकतामाविर्भावयेत् । ततः स्वपक्षसिद्धयैव ५ जयस्तदसिद्ध्या तु पराजयः, न तु मिथ्योत्तरलक्षणजातिशतैरपीति ।

नापि निग्रहस्थानैः । तेषां हि “विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम्” [न्यायसू० १।२।१९] इति सामान्यलक्षणम् । विपरीता कुत्सिता वा प्रतिपत्तिर्विप्रतिपत्तिः । अप्रतिपत्तिस्त्वा-१० रम्भविषयेऽनारम्भः, पक्षमभ्युपगम्य तस्याऽस्थापना, परेण स्थापितस्य वाऽप्रतिषेधः, प्रतिषेधस्य चाऽर्जुन्द्वार इति । प्रतिज्ञा-हान्यादिव्यकिगतं तु विशेषलक्षणम् ।

तत्र प्रतिज्ञाहानेस्तावल्लक्षणम्—“प्रतिदृष्टान्तधर्म्य(मां)र्जुना स्व-दृष्टान्ते प्रतिज्ञाहानिः” [न्यायसू० ५।२।२] “साध्यधर्मप्रत्यनीकेन १५ धर्मेण प्रत्यवस्थितः प्रतिदृष्टान्तधर्मं स्वदृष्टान्तेऽनुजानन् प्रतिज्ञां जहातीति प्रतिज्ञाहानिः । यथा ‘अनित्यः शब्द ऐन्द्रियिकत्वाद् घटवत्’ इत्युक्ते परं प्रत्यवसिष्ठते-सामान्यमैन्द्रियिकं नित्यं दृष्टम्, कस्मान्न तथा शब्दोपि ? इत्येवं स्वप्रयुक्तस्य हेतुराभास-तामवस्थैवपि कैथावसानमकृत्वा प्रतिज्ञात्यागं करोति-यद्यै-२०न्द्रियिकं सामान्यं नित्यं कामं घटोपि नित्योस्त्विति । न (स) कल्पेयं ससाधनस्य दृष्टान्तस्य नित्यत्वं असंजन्निगमनान्तमेव पक्षं जहाति । पक्षं च परित्यजन्प्रतिज्ञां जहातीत्युच्यते प्रतिज्ञा-अवस्थापक्षस्य” [न्यायभा० ५।२।२] ।

इति भाष्यकारमतमसङ्गतमेव; साक्षाद्दृष्टान्तहानिरुपत्वात्-२५ स्यात्तत्रैव साध्यधर्मपरित्यागात् । परम्परया तु हेतूपनयनिगम-

१ प्रागुक्तः=उत्तराप्रतिपत्तिः लक्षणादिः । २ परावयो न भवतीति । ३ तत्त्वप्रति-पत्तेरभागे विप्रतिपत्तिः । ४ कथम् ? तथा हि । ५ वादिपक्षस्य । ६ अपरिहारः । ७ उक्ते हेतौ दूषणोद्भावेन सति पक्षमभ्युपगमः प्रतिज्ञा । ८ अभ्युपगमः । ९ धर्म-वर्गसमुदायः प्रतिज्ञा तस्या हानिः । १० प्रतिवादिना पर्यनुयुक्तो वादी । ११ पर-कीयोदाहरणवर्तम् । १२ वादिनः । १३ इन्द्रियग्राह्यत्वात् । १४ वादिना । १५ प्रतिवादी । १६ जानन् । १७ कथा वादः । १८ साधनवादी । १९ वादी । २० अभ्युपगच्छन् । २१ घटादिर्दृष्टान्तः । २२ प्रतिज्ञाहानिः । २३ शब्दानिलतं साम्यधर्मः ।

नानां त्यागः, दृष्टान्तासाधुत्वे तेषामप्यसाधुत्वात् । तथा च 'प्रतिज्ञाहानिरेव' इत्यसङ्गतम् ।

वार्त्तिककारस्त्वैवमाचष्टे—“दृष्टश्चासार्वन्ते स्थितश्चेति दृष्टान्तः पक्षः स्वपक्षः, प्रतिदृष्टान्तः प्रतिपक्षः । प्रतिपक्षस्य धर्मं स्वपक्षेऽभ्यनुजानन् प्रतिज्ञां जहाति । यदि सामान्यमैन्द्रियिकं नित्यं शब्दोप्येवमस्त्विति ।” [न्यायवा० ५।२।२]

तदेतदप्युद्योतकरस्य जाढ्यमाविष्करोति; इत्थमेव प्रतिज्ञाहानेरवधारयितुमशक्यत्वात् । प्रतिपक्षसिद्धिमन्तरेण च कस्यचिन्निराहणधिकरणत्वायोगात् । न खलु प्रतिपक्षस्य धर्मं स्वपक्षेऽभ्यनुजानन् एव प्रतिज्ञात्यागो येनार्यमेक एव प्रकारः प्रतिज्ञाहानौ स्यात् । अधिकक्षेपादिभिराकुलीभावात् प्रकृत्या सभाभीकृत्वाद्ऽन्यमनस्कत्वादेर्वा निमित्तात्किञ्चित्साध्यत्वेन प्रतिज्ञाय तद्विपरीतं प्रतिजानतोऽप्युपलम्भात् पुरुषभ्रान्तेरनेककारणत्वोपपत्तेरिति ।

तथा “प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पात्तदर्थनिर्देशः प्रतिज्ञान्तरम् ।” [न्यायसू० ५।२।३] प्रतिज्ञातार्थस्याऽनित्यः शब्द इत्यादेरैन्द्रियिकत्वाख्यस्य हेतोर्व्यभिचारोपदर्शनेन प्रतिषेधे कृते तं दोषमनुद्धरन् धर्मविकल्पं करोति ‘किमयं शब्दोऽसर्वगतो घटवत्, किं वा सर्वगतः सामान्यवत्’ इति । यद्यसर्वगतो घटवत्; तर्हि तद्वदेवानित्योस्त्वित्येतत्प्रतिज्ञान्तरं नाम निर्ग्रहस्थानं सामान्योऽपरिज्ञानात् । स हि पूर्वस्याः ‘अनित्यः शब्दः’ इति प्रतिज्ञायाः साधनायोत्तराम् ‘असर्वगतः शब्दोऽनित्यः’ इति प्रतिज्ञामाह । न च प्रतिज्ञा प्रतिज्ञान्तरसाधने समर्थाऽतिप्रसङ्गात् ।

इत्यप्येतेनैव प्रत्युक्तम्; प्रतिज्ञाहानिचत्स्याप्यनेकनिमित्तत्वोपपत्तेः । प्रतिज्ञाहानितश्चास्य कथं भेदः पक्षत्यागस्योभयत्राऽविशेषात् ? यथैव हि प्रतिदृष्टान्तधर्मस्य स्वदृष्टान्तेऽभ्यनुज्ञानात्पक्षत्यागस्तथा प्रतिज्ञान्तरादपि । यथा च स्वपक्षसिद्ध्यर्थं प्रतिज्ञान्तरं विधीयते तथा शब्दाऽनित्यत्वसिद्ध्यर्थम्, भ्रान्तिवशात्तद्वच्छब्दोऽपि नित्योस्त्वित्यभ्यनुज्ञानम् । यथा चाभ्रान्तस्येदं विरुद्धते तथा प्रतिज्ञान्तरमपि । निमित्तभेदाच्च तद्वेदेऽनिष्टनिग्रहस्थानान्तरा-

१ विचारान्ते । २ नित्यत्वलक्षणम् । ३ अनित्ये । ४ वादी । ५ ऐन्द्रियिकत्वाविशेषात् । ६ प्रतिपक्षस्य स्वपक्षेऽभ्युपगमनेनैव । ७ वादिनः पक्षिवादिनो वा । ८ प्रतिदृष्टान्तधर्मस्य स्वपक्षेऽभ्युपगमः । ९ अधिकक्षेपस्तिरस्कारः । १० सामान्येन । ११ भेदम् । १२ वादी । १३ वादिनः । १४ ननु प्रतिज्ञान्तरात्पक्षत्यागस्य स्वपक्षसिद्ध्यर्थं विधीयमानत्वादित्युक्ते सलाह ।

णामप्यनुषङ्गः स्यात् । तेषां तत्रान्तर्भावे वा प्रतिज्ञान्तरस्यापि प्रतिज्ञाहानावन्तर्भावः स्यादिति ।

“प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः प्रतिज्ञाविरोधः” [न्यायसू० ५।२।४] यथा गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं रूपादिभ्यो भेदेनानुपलब्धेः । इत्यप्य-
सुन्दरम् ; यतो हेतुना प्रतिज्ञायाः प्रतिज्ञात्वे निरस्ते प्रकारान्तरतः ५
प्रतिज्ञाहानिरेवेयमुक्ता स्यात्, हेतुर्दोषो वात्र विरुद्धतालक्षणः,
न प्रतिज्ञादोष इति ।

“पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्थापनयनं प्रतिज्ञासंन्यासः ।” [न्याय-
सू० ५।२।५] यथा ‘अनित्यः’ शब्द ऐन्द्रियिकत्वाद् घटवत्
इत्युक्ते पूर्ववत्सामान्येनानैकान्तिकत्वे हेतोरुद्भाविने प्रतिज्ञा-१०
संन्यासं करोति-क एवमाह ‘नित्यः(अनित्यः)शब्दः’ ? इत्यपि
प्रतिज्ञाहानितो न भिद्येत हेतोरनैकान्तिकत्वोपलम्भेनात्रापि
प्रतिज्ञायाः परित्यागाविशेषादिति ।

“अविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषेधे विशेषमिच्छतो हेत्वन्तरम् ।”
[न्यायसू० ५।२।६] निदर्शनम्-‘एकप्रकृतीदं व्यक्तं विकाराणां १५
परिमाणान्मृतपूर्वकघटशराबोदञ्चनादिवत्’ इत्यस्य व्यभिचारेण
प्रत्यवस्थानम्-नानाप्रकृतीनामेकप्रकृतीनां इदं परिमाणमित्यस्य
हेतोरहेतुत्वं निश्चित्य ‘एकप्रकृतिसंमन्वये विकाराणां परि-
माणात्’ इत्याह । तदिदमविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषेधे विशेषं ब्रुवतो
हेत्वन्तरं नाम निग्रहस्थानम् । २०

इत्यप्यसुन्दरम् ; एवं सत्यविशेषोक्ते इष्टान्तोपनयनिगमने
प्रतिषेधे विशेषमिच्छतो इष्टान्ताद्यन्तैरपि निग्रहस्थानान्तर-
मनुष्येत तत्राक्षेपसमाधानानां समानत्वादिति ।

“प्रकृतादर्थ्यादप्रतिसम्बन्धार्थमर्थान्तरम् ।” [न्यायसू० ५।२।७]
यथोक्तलक्षणे पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहे हेतुतः साध्यसिद्धौ प्रकृतायां २५

१ प्रतिज्ञाहान्यादी । २ यत्र प्रतिज्ञा विरुध्यते हेतुना हेतुर्वा प्रतिज्ञा विरुध्यते
स प्रतिज्ञाविरोधः । ३ उक्तहेतौ दूषणोद्भावेन स्वसाध्यपरित्यागः प्रतिज्ञासंन्यासः ।
४ बादिना । ५ त्यागम् । ६ अविशेषोक्ते हेतौ व्यभिचारेण प्रतिषेधे पक्षादि-
वैषणोपादानं हेत्वन्तरम् । ७ प्रतिवादिना । ८ प्रचानम् । ९ महदादिकार्यम् ।
१० वस्तुभेदानाम् । ११ बादिनोक्तानुमानस्य । १२ घटमुकुटपटलकुटशक्यदीनाम् ।
१३ एककारणानुसृतत्वे सवील्यर्थः । १४ बादी । १५ इष्टान्ताद्यन्तर निग्रहस्थानं न
साधेहेत्वन्तरमपि निग्रहस्थानं वा भूदिति । १६ प्रकृतप्रमेयानुपयोगिवचनमर्थान्तर
नाम निग्रहस्थानम् । १७ वस्तुमार्गेणाधिकारणावित्यादि ।

प्रकृतं हेतुं^१ प्रमाणसामर्थ्येनौहमसमर्थः समर्थयितुमित्यवश्यमपि
कथामपरित्यजन्नर्थान्तरमुपन्यस्यति-नित्यः शब्दोऽस्पर्शवत्त्वा-
दिति हेतुः । हेतुश्च हिनोतेर्घातोस्तुप्रत्यये कृदन्तं पदम्, [पदं] च
नामाख्यातोपसर्गनिपाता इति प्रस्तुत्य नामादीनि व्याचष्टे ।

- ५ तदेतदप्यर्थान्तरं निग्रहस्थानं समर्थं साधने दूषणे वा प्रोक्ते
निग्रहाय कल्पेत, असमर्थं वा ? न तावत्समर्थः स्वसाध्यं प्रसाध्य
नृत्यतोपि दोषाभावाल्लोकवत् । असमर्थेपि प्रतिवादिनः पक्षसिद्धौ
तन्निग्रहाय स्यात्, असिद्धौ वा ? प्रथमपक्षे तत्पक्षसिद्धैवास्य
निग्रहो न त्वतो निग्रहस्थानात् । द्वितीयपक्षेप्यतो न निग्रहः पक्ष-
१० सिद्धेरर्थयोरप्यभावादिति ।

“वर्णक्रमनिर्देशवन्निरर्थकम् ।” [न्यायसू० ५।२।८] यथाऽ-
नित्यः शब्दो जवगडदृशत्वात् क्षमघटधष्वत् । इत्यपि सर्वथास-
न्नृत्यत्वान्निग्रहाय कल्पेत, साध्यानुपयोगाद्वा ? तत्राद्यविकल्पोऽ-
शुक्तः, सर्वथार्थशून्यस्य शब्दस्यैवासम्भवात् । वर्णक्रमनिर्देशस्या-
१५ प्यनुकार्येणार्थनार्थवत्त्वोपपत्तेः । द्वितीयविकल्पे तु सर्वमेव निग्रह-
स्थानं निरर्थकं स्यात्, साध्यसिद्धावनुपयोगित्वाविशेषात् । केन
चिद्विशेषमात्रेण मेदे वा सात्कृताकम्पहस्तास्फालनकक्षापिष्टिका-
देरपि साध्यसिद्ध्यनुपयोगिनो निग्रहस्थानान्तरत्वानुपपन्न इति ।

- “परिपत्प्रतिवादिभ्यां विरमिहितैर्मप्यविज्ञातमविज्ञातार्थम् ।”
२० [न्यायसू० ५।२।९] अत्रेदं मुख्यते-वादिना विरमिहितमपि वाक्यं
परिपत्प्रतिवादिभ्यां मन्दमतित्वादविज्ञातम्, गूढाभिधानतो वा,
दुतोच्चारद्वा ? प्रथमपक्षे सत्साधनवादिनोप्येतन्निग्रहस्थानं स्यात्,
तत्राप्यनयोर्मन्दमतित्वेनाविज्ञातत्वसम्भवात् । द्वितीयपक्षे तु
पञ्चवाक्यप्रयोगेपि तत्प्रसङ्गो गूढाभिधानतया परिपत्प्रतिवादि-
२५ नोर्महाम्राह्मयोरप्यविज्ञातत्वोपलम्भात् । अथाग्यामविज्ञातमप्येत-
द्वादी व्याचष्टे, गूढोपन्यासमप्यात्मनः स एव व्याचष्टाम् ।
अव्याख्याने तु जयाभाव एवास्य न पुनर्निग्रहः, परस्य पक्षसिद्धे-
रभावात् । दुतोच्चारपि अनयोः कथञ्चित् ज्ञानं सम्भवत्येव
सिद्धान्तद्वयवेदित्वात् । साध्यानुपयोगिनि तु वादिनः प्रलापमात्रे

१ असर्गकत्वमिति । २ वादी । ३ वादम् । ४ प्रकृतार्थं परित्यज्यमान्यर्थं मूले
श्लेषः । ५ तस्य वादिनः । ६ वादिप्रतिवादिनोः । ७ अर्थविरुद्धाभ्यां निरर्थकं
नाम निग्रहस्थानम् । ८ पक्षात्किमभावेन । ९ निरर्थकत्वाविग्रहसामानाधिक्यम् ।
१० वादिना । ११ वादिना निरुपन्यासमपि परिपत्प्रतिवादिभ्यामविज्ञातमविज्ञातार्थं
नाम निग्रहस्थानं वादिनः । प्रतिवादिनोप्येवम् । १२ तान्मार्तण्डे ।

तयोरज्ञानं नाविज्ञातार्थं वर्णक्रमनिर्देशवत् । ततो नेदमभि(वि)
ज्ञातार्थं निरर्थकान्निवृत्ते इति ।

“पौर्वापर्यायोगादप्रतिसम्बन्धार्थमपार्थक्यम् ।” [न्यायसू० ५।
२।१०] यथा वश दाडिमानि षड्पूपाः कुण्डमजाऽजिनं पल्ल-
पिण्डः । ५

इत्यपि निरर्थकान्न मिद्यते-यथैव हि जवगडदशत्वादौ वर्णानां
नैरर्थक्यं तथात्र पदानामिति । यदि पुनः पदनैरर्थक्यं वर्णनैरर्थ-
क्यादन्यत्वाग्निग्रहस्थानान्तरमभ्युपगम्यते; तर्हि वाक्यनैरर्थक्य-
स्याप्याभ्यामन्यत्वाग्निग्रहस्थानान्तरत्वं स्यात् । पदवत् पौर्वापर्ये-
णा(ष)प्रयुज्यमानानां वाक्यानामप्यनेकधोपलम्भात् । १०

“शङ्खः कदल्यां कदली च मेर्यां तस्यां च मेर्यां सुमहद्विमानम् ।

तच्छङ्खमेरीकदलीविमानमुन्मैत्तगङ्गप्रतिमं वभूव ॥” []
इत्यादिवत् । यदि पुनः पदनैरर्थक्यमेव वाक्यनैरर्थक्यं पद-
समुदायात्मकत्वात्तस्य; तर्हि वर्णनैरर्थक्यमेव पदनैरर्थक्यं स्याद्-
र्णसमुदायात्मकत्वात्तस्य । वर्णानां सर्वत्र निरर्थकत्वात्पद-१५
स्यापि तत्प्रसङ्गश्चेत्; तर्हि पदस्यापि निरर्थकत्वात् तत्समुदाया-
त्मनो वाक्यस्यापि नैरर्थक्यानुबन्धः । पदार्थापेक्षया पदस्यार्थवत्त्वे
वर्णार्थापेक्षया वर्णस्यापि तदस्तु प्रकृतिप्रत्ययादिवर्णवत् । न खलु
प्रकृतिः केवला पदं प्रत्ययो वा, नाप्यनयोरनर्थकत्वम् । अभि-
व्यक्तार्थाभावादनेर्थकत्वे पदस्यापि तत्स्यात् । यथैव हि प्रकृत्यर्थः २०
प्रत्ययेनाभिव्यज्यते प्रत्ययार्थश्च प्रकृत्या तयोः केवलयोरप्रयोगात्,
तथा ‘देवदत्तस्तिष्ठति’ इत्यादिप्रयोगे सुवन्तपदार्थस्य तिङन्त-
पदेन तिङन्तपदार्थस्य च सुवन्तपदेनाभिव्यक्तेः केवलस्याप्र-
योगः । पदान्तरापेक्षस्य पदस्य सार्थकत्वं प्रकृत्यपेक्षस्य प्रत्ययस्य
तदपेक्षस्य च प्रकृत्यादिवर्णस्य समानमिति । २५

“अवयवविपर्यासवचनमप्राप्तकालम् ।” [न्यायसू० ५।२।११]
अवयवानां प्रतिज्ञादीनां विपर्यासेनाभिधानमप्राप्तकालं नाम निग्रह-
स्थानम् । इत्यप्यपेक्षालम्; प्रेक्षावत्तां प्रतिपत्तृणामवयवक्रमनियमं
विनाप्यर्थप्रतिपत्त्युपलम्भाद्देवदत्तादिवाक्यवत् । ननु यथापशब्दा-

१ पूर्वापराऽसङ्गतपदकदम्बकोच्चारणद्व्यतिष्ठितवार्थमपार्थक्यं नाम निग्रहस्थानम् ।
२ सन्मत्ता गङ्गा बसिन्प्रदेवेऽसाधुन्मत्तगङ्गाः । ३ वाक्ये पदे च । ४ प्रकृत्यादावपि
पदानामेवार्थवत्त्वं न पुनर्वर्णानां येन दृष्टान्तः तिङ्गः सादित्युक्ते सत्तात् ।
५ वर्णस्य । ६ पदस्य । ७ सार्थकत्वम् । ८ वयस्कमोहद्वयेन प्रयुज्यमानमनुभाव-
वाक्यम् । ९ अप्राप्तवसरम् । १० देवदत्त गामन्यान् शृङ्गां दण्डेनेत्यादिवत् ।

च्युताच्छब्दस्मरणं ततोऽर्थप्रत्यय इति शब्दादेवार्थप्रत्ययः परम्प-
रया तथा प्रतिज्ञाद्यवयवव्युत्क्रमात् तत्कमस्मरणं ततो वाक्यार्थ-
प्रत्ययो न तद्व्युत्क्रमात्, इत्यन्यसारम्; एवंविधप्रतीत्यभावात् ।
यस्माद्धि शब्दादुच्चरिताद्यत्रार्थे प्रतीतिः स एव तस्य वाचको
५ नान्यः, अन्यथा 'शब्दात्तत्कमाश्चापशब्दे तद्व्युत्क्रमे च स्मरणं ततो-
ऽर्थप्रतीतिः' इत्यपि वक्तुं शक्येत । एवं शब्दाद्यन्वाख्यानवैयर्थ्यं
चेत्; न; एवं वादिनोऽनिष्टमात्रापादनात्, अपशब्देऽपि चान्वाख्या-
नस्योपलम्भात् । 'संस्कृताच्छब्दात्सत्याद्धर्मोऽन्यसादधर्मः' इति
नियमे चान्यधर्माधर्मोपायानुष्ठानवैयर्थ्यम् । धर्मो धर्मयोश्चाप्रति-
१० नियमप्रसङ्गः, अधार्मिके धार्मिके च तच्छब्दोपलम्भात् । भवतु
वा तत्कमादर्थप्रतीतिः, तथाप्यर्थप्रत्ययः क्रमेण स्थितो येन
वाक्येन व्युत्क्रम्यते तन्निरर्थकं न त्वऽप्राप्तकालमिति ।

"शब्दार्थयोः पुनर्बचनं पुनरुक्तमन्यत्रानुवादात् ।" [न्यायस०
५।२।१४] तत्रार्थपुनरुक्तमेवोपपन्नं न शब्दपुनरुक्तम्; अर्थमेवे
१५ शब्दसाम्येऽप्यस्याऽसम्भवात्

"इसति हसति सामिन्युच्चैरुदत्यतिरोदिति,
कृतपरिकरं स्वेदोद्गिरि प्रधावति धावति ।
गुणसमुदितं शोपापेतं प्रणिन्दति निन्दति,
वनलक्षपरिक्रीतं रथं प्रनुत्यति नृत्यति ।"

२०

[वादन्यायपृ० १११]

इत्यादिषत् । तैतः स्वेष्टार्थवाचकैस्तेरेवान्यैर्वा शब्दैः सत्या-
प्रतिपादनीयाः । तत्प्रतिपादकशब्दानां तु संस्कृतपुनः पुनर्बोधि-
धानं निरर्थकं न तु पुनरुक्तम् । यद्य(व)प्यर्थादापन्नस्य स्वशब्देन
पुनर्बचनं पुनरुक्तमुक्तम् । यथा 'उत्पत्तिधर्मकमनित्यम्'
२५ इत्युक्त्वाऽर्थादापन्नस्यार्थस्य योऽभिधायकः शब्दस्तेन स्वशब्देन
ब्रूयात् 'नित्यमनुत्पत्तिधर्मकम्' इति । तदपि प्रतिपन्नार्थप्रति-
पादकत्वेन वैयर्थ्याभिग्रहस्थानं नान्यथा । तथा चेदं निरर्थकज्ञ-
विशेष्येतेति ।

१ सत्यशब्दस्य । २ स्मृतशब्दात् । ३ निर्वर्णवात् । ४ स्मृतकमात् । ५ स्मृता-
पशब्दात्स्मृतात्कमात् । ६ शब्दादेरपशब्दादिसारथ्यप्रकरणे । ७ पुनः पुनः कपन-
मन्वाख्यानम् । ८ संस्कृताच्छब्दादगोऽन्यसादधर्म इति नियमाभावात्शब्देऽन्वाख्यान-
मस्तीत्युक्ते सत्याह । ९ शब्दाऽध्ययनाविरन्धः । १० सति । ११ क्रियाविशेषणम् ।
१२ क्रियाविशेषणम् । १३ मौल्येन समुद्गीतम् । १४ यथमिव यन्त्र=चालः ।
१५ शब्दपुनरुक्तस्योपपन्नं न भवेत्ततः । १६ प्रथमोच्चारितैः । १७ कथनानन्तर-
नेकतरम् । १८ कथं । १९ पुनरुक्तप्रकरणे ।

“विज्ञातस्य परिषदा त्रिरभिहितस्याऽप्रत्युच्चारणमनुभाषणम् ।” [न्यायसू० ५।२।१६] अप्रत्युच्चारयन्किमाश्रयं परपक्षप्रतिषेधं ज्ञेयात्? इत्यत्रापि किं सर्वस्य वादिनोक्तस्याननुभाषणम्, किं वा यच्चान्तरीयिका साध्यसिद्धिस्तस्येति? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; परोक्तमशेषमप्रत्युच्चारयतोपि दूषणवचनाऽव्याघातात् । यथा १ ‘सर्वमनित्यं सत्त्वात्’ इत्युक्ते ‘सत्त्वात् इत्ययं हेतुर्विरुद्धः’ इति हेतुमेवोच्चार्य विरुद्धतोद्भाव्यते-‘क्षणक्षयाद्येकान्ते सर्ववार्थक्रियाविरोधात्सत्त्वानुपपत्तेः’ इति, समर्थ्यते च, तावता च परोक्तहेतोर्दूषणात्किमन्योच्चारणेन? अतो यच्चान्तरीयिका साध्यसिद्धिस्तस्यैवाऽप्रत्युच्चारणमनुभाषणं प्रतिपत्तव्यम् । अथैवं दूषयितुम्-१० समर्थः शास्त्रार्थपरिज्ञानविशेषविकलत्वात्; तदाऽयमुत्तराऽप्रतिपत्तेरेव तिरस्क्रियते न पुनरननुभाषणादिति ।

“अविज्ञातं चाज्ञानम् ।” [न्यायसू० ५।२।१७] विज्ञातार्थस्य परिषदा प्रतिवादिना यदविज्ञातं(न)तदज्ञानं नाम निग्रहस्थानम् । अज्ञानं कस्य प्रतिषेधं ज्ञेयात्? इत्यप्यसारम्, प्रतिज्ञाहान्यादि-१५ निग्रहस्थानानां मेवाभावलुपकात् तत्राप्यज्ञानस्यैव सम्भवात् । तेषां तत्प्रमेवत्वे वा निग्रहस्थानप्रतिनियमाभावप्रसङ्गः परोक्त-साक्षाज्ञानादिमेवेन निग्रहस्थानानैकत्वसम्भवात् ।

“उत्तरस्याप्रतिपत्तिरप्रतिभा ।” [न्यायसू० ५।२।१८] साध्यज्ञानाच्च मिथत एव । २०

“निग्रहप्राप्तस्योनिग्रहः पर्यनुयोज्योपेक्षणम् ।” [न्यायसू० ५।२।२१] पर्यनुयोज्यो हि निग्रहोपपत्त्या चोद्दीनीयस्तस्योपेक्षणं ‘निग्रहं प्राप्तोसि’ इत्यननुयोग एव । एतच्च ‘कस्य पराजयः’ इत्यनुयुक्त्या परिषदा वचनीयम् । न खलु निग्रहप्राप्तः खं कौपीनं विवृणुयात् । इत्यप्यज्ञानाच्च व्यतिरिच्यत एव । २५

“अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानानुयोगो निरनुयोज्यानुयोगः ।” [न्यायसू० ५।२।२२] तस्याप्यज्ञानात्पृथग्भावोनुपपन्न एव ।

१ वादिना । २ प्रतिवादिना । ३ प्रतिवापुक्तस्य । ४ प्रतिवादिना । ५ अन्यत् परिसंज्ञादि । ६ सर्वस्य वादिनोक्तस्याननुभाषणं न वदते वक्तुः । ७ परेण । ८ हेतु-चारणं कृत्या । ९ प्रतिवादी । १० प्रतिवादी । ११ परिषदा विज्ञातस्यापि वादिनाकपस्य प्रतिवादिना यदविज्ञातं तदज्ञानं नाम । १२ प्रतिवादी । १३ वादिना अद्वैतोद्दि-ग्रहः । १४ प्राप्तदोषानुद्भावनं पर्यनुयोज्योपेक्षणं नाम निग्रहस्थानम् । १५ प्रति-वादिनः । १६ त्वं ते निग्रहस्थानमायातमसौ निग्रहीतोसीति वचनीयः । १७ पृथक् । १८ शुषम् । १९ दोषरहिते दोषोद्भावनं निरनुयोज्यानुयोगो नाम निग्रहस्थानम् ।

“कार्यव्यासङ्गात्कथाविच्छेदो विक्षेपः ।” [न्यायसू० ५।२।१९]
सिद्धाधयिषितस्यार्थस्याऽशक्यसाध्यतामवसीर्य कालथापनार्थं
यत्कर्तव्यं व्यासज्य कथां विच्छिनत्ति-इदं मे करणीयं परीक्ष्यते,
तस्मिन्नवसिते पश्चात्कथयिष्यामि । इत्यप्यज्ञानतो नार्थान्तरमिति
५ प्रतिपत्तव्यम् ।

“स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात् परपक्षे दोषप्रसङ्गो मतानुज्ञा ।”
[न्यायसू० ५।२।२०] यैः परेण चोदितं दोषमनुसृत्य ब्रवीति-“भव-
त्पक्षेऽप्ययं दोषः समानः” इति, स स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात्परपक्षे
दोषं प्रसजन् परमतमनुजानातीति मतानुज्ञा नाम निग्रहस्थान-
१० मापद्यते । इत्यप्यज्ञानाच्च भिद्यते एव । अनैकान्तिकता चात्र
हेतोः; तथाहि-‘तत्स्फुरोयं पुरुषत्वात्प्रसिद्धतत्स्फुरवत्’ इत्युक्ते
‘त्वमपि तत्स्फुरः स्यात्’ इति हेतोरनैकान्तिकत्वमेवोक्तं स्यात् ।
सं चात्मीयहेतोरात्मनैवानैकान्तिकत्वं दृष्ट्वा प्राह-भवत्पक्षेऽप्ययं
दोषः समानः-त्वमपि पुरुषोसि इत्यनैकान्तिकत्वमेवोद्भाव-
१५ यतीति ।

“हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन न्यूनम् ।” [न्यायसू० ५।२।२२] यसि-
न्वाक्ये प्रतिज्ञादीनामन्यतमोऽवयवो न भवति तद्वाक्यं हीनं नाम
निग्रहस्थानम् । साधनाभावे साध्यसिद्धेरभावात्, प्रतिज्ञादीनां च
पञ्चानामपि साधनत्वात्; इत्यप्यसमीचीनम्; पञ्चावयवप्रयोग-
२० मन्तरेणापि साध्यसिद्धेः प्रतिपादितत्वात्, पक्षहेतुवचनमन्तरे-
णैव तत्सिद्धेरभावात् अतस्तद्धीनमेव न्यूनं निग्रहस्थानमिति ।

“हेतुदाहरणाधिकमधिकम् ।” [न्यायसू० ५।२।२३] यसिन्वाक्ये
द्वौ हेतु द्वौ वा दृष्टान्तौ तदधिकं निग्रहस्थानम्; इत्यपि वार्त्तम्;
तथाविधाद्वाक्यात्पक्षप्रसिद्धौ पराजयायोगात् । कथं चैवं प्रमा-
२५ णसंज्ञोभ्युपगम्यते ? अभ्युपगमे वाधिकत्वाभिग्रहाय जायेत ।
‘प्रतिपत्तिदार्ढ्य-संवादसिद्धिप्रयोजनसङ्गात्वाच्च निग्रहः’ इत्यन्य-
त्रापि समानम् । हेतुना दृष्टान्तेन वैकेन प्रसाधितेऽप्यर्थे द्वितीयस्य
हेतोर्दृष्टान्तस्य वा नानर्थक्यम्, तत्प्रयोजनसङ्गात्वात् । न चैवंम-
नवस्था; कस्यचित्कंचिन्निराकाक्षतोपपत्तेः प्रमाणान्तरवत् । कथं
३० चास्य कृतकर्तृदौ स्वार्थिकप्रत्ययवचनम्, ‘यत्कृतकं तदनि-

१ शाला । २ स्वपक्षोक्तदोषपरिहृत्य परपक्षेऽपि दूषणमुद्भावयतो मतानुज्ञा नाम
निग्रहस्थानम् । ३ वादी । ४ प्रतिवादिना । ५ स्वपक्षे । ६ सम्बन्धयत् । ७ वादी ।
८ स्वयम् । ९ अनुमानस्य । १० अधिकस्य निग्रहस्थानत्वप्रकारेण । ११ एकसि-
न्प्रमाणविषये प्रमाणान्तरवर्तनं प्रमाणसंश्लेषः । १२ परेण । १३ हेतुदृष्टान्तान्तर-
न्येषणप्रकारेण । १४ अनुमाने । १५ अधिकनिग्रहस्थानवादिनः । १६ साधने ।

त्यम्' इति व्याप्तौ यत्तद्वचनम्, घृत्तिपदप्रयोगादेव चार्थप्रति-
पत्तौ वाक्यप्रयोगः अधिकत्वाभिग्रहस्थानं न स्यात्? तथाविध-
स्याप्यस्य प्रतिपत्तिविशेषोपायत्वात्तत्रेति चेत्, कथमनेकस्य हेतो-
र्द्वैष्टान्तस्य वा तदुपायभूतस्य वचनं निग्रहाधिकरणम्? निरर्थकस्य
तु वचनं निरर्थकत्वादेव निग्रहस्थानं नाधिकत्वादिति । ५

“सिद्धान्तमभ्युपेत्यानियमात्कथाप्रसङ्गोऽपसिद्धान्तः।” [न्याय-
सू० ५।२।२३] प्रतिज्ञातार्थपरित्यागाभिग्रहस्थानम् । यथा नित्या-
नऽभ्युपेत्य शब्दादीन् पुनरनित्यान् ब्रूते । इत्यपि प्रतिवादिनः
प्रतिपक्षसाधने सत्येव निग्रहस्थानं नान्यथा ।

“हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः।” [न्यायसू० ५।२।२४] असिद्धवि-१०
रुद्धानैकान्तिककालात्ययापदिष्टप्रकरणसमा निग्रहस्थानम् । इत्य-
त्रापि विरुद्धहेतुद्भावेन प्रतिपक्षसिद्धेर्निग्रहाधिकरणत्वं युक्तम् ।
असिद्धाद्युद्भावेन तु प्रतिवादिना प्रतिपक्षसाधने कृते तद्युक्तं
नान्यथेति ।

एतेनैसाधनाङ्गवचनार्थादि निग्रहस्थानं प्रत्युक्तम्; एकस्य स्वप-१५
क्षसिद्धौवान्यस्य निग्रहप्रसिद्धेः । ततः स्थितमेतत्—

“स्वपक्षसिद्धेरेकस्य निग्रहोन्यस्य वादिनः ।

नासाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः ॥” [] इति ।

इदं चानवस्थितम्—

“असाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः । २०

निग्रहस्थानमन्यसु न युक्तमिति नेष्यते ॥” [वादन्यापू० १]

इति । अत्र हि स्वपक्षं साधयन् वादिप्रतिवादिनोरन्यतरोऽसाधना-
ङ्गवचनाद्ऽदोषोद्भावनान्ना परं निगृह्णाति, असाधयन्वा? प्रथम-
पक्षे स्वपक्षसिद्धौवास्य पराजयादन्योद्भावनं व्यर्थम् । द्वितीयपक्षे तु
असाधनाङ्गवचनाद्युद्भावेनेपि न कस्यचिज्जयः पक्षसिद्धेरुभयोर-२५
भावात् ।

यश्चास्य व्याख्यानम्—“साधनं सिद्धिः तदङ्गं त्रिरूपं लिङ्गम्,
तस्याऽवचनं तूष्णींभावो यत्किञ्चिद्भाषणं वा । साधनस्य वा

१ समासोत्र इति । २ स्यादेव । ३ अधिकत्वाभिग्रहस्थानत्वं कः कारयेत्-
वचनस्य । ४ निरर्थकत्वाभिग्रहस्थानं मविष्यतीत्युक्ते सत्याह । ५ स्वीकृतागमविरुद्ध-
प्रसाधनमपसिद्धान्तो नाम निग्रहस्थानम् । ६ प्रतिपक्षसिद्धभावे । ७ सौगतमतमेतत् ।
८ वादिना अदोषोद्भावनान्ति । ९ वादिप्रतिवादिनोः । १० एतदीयं व्याख्यान-
मस्त्यग्रे । ११ असाधनाङ्गवचनं वादिन यत्र निग्रहस्थानमदोषोद्भावनं तु प्रतिवादिन
एवेति द्वयोरिति पदमुक्तम् । १२ हेतोः । १३ अन्वस्य दोषस्य ।

त्रिरूपलिङ्गस्याङ्गं समर्थनम् विपक्षे बाधकप्रमाणदर्शनरूपम्, तस्याऽवचनं वादिनो निग्रहस्थानम्” [वादन्यायपृ० ५-६] इति । तत्पञ्चावयवप्रयोगवादिनोपि समानम्-शक्यं हि तेनाप्येवं वक्तुम्-सिद्धिङ्गस्य पञ्चावयवप्रयोगस्यावचनात्सौगतस्य वादिनो ५ निग्रहः । ननु चास्य तदवचनेपि न निग्रहः, प्रतिज्ञानिगमनयोः पक्षधर्मोपसंहारस्य सामर्थ्याद्गम्यमानत्वात् । गम्यमानयोश्च वचने पुनरुक्तत्वानुपपन्नात् । ननु तत्प्रयोगेपि हेतुप्रयोगमन्तरेण साध्यार्था-प्रसिद्धिः, इत्यप्यपेशलम्, पक्षधर्मोपसंहारस्याप्येवमवचनानुप- १० पन्नात् । अथ सामर्थ्याद्गम्यमानस्यापि ‘यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकं यथा घटः संश्च शब्दः’ इति पक्षधर्मोपसंहारस्य वचनं हेतोरपक्षध-र्मत्वेनासिद्धत्वव्यवच्छेदार्थम्, तर्हि साध्याधारसन्देहापनोदार्थं गम्यमानस्यापि पक्षस्य निगमनस्य च पक्षहेतुदाहरणोपनयाना-मेकार्थत्वप्रदर्शनार्थं वचनं किन्न स्यात् ? न हि पक्षादीनामेकार्थ-त्वोपदर्शनमन्तरेण सङ्गतत्वं घटते, भिन्नविषयपक्षादिवत् ।

१५ ननु प्रतिज्ञातः साध्यसिद्धौ हेत्वादिवचनमनर्थकमेव स्यात्, अन्यथा नास्याः साधनाङ्गतेति चेत्, तर्हि भवतोपि हेतुतः साध्य-सिद्धौ दृष्टान्तोनर्थकः स्यात्, अन्यथा नास्य साधनाङ्गतेति समा- २० नम् । ननु साध्यसाधनयोर्व्याप्तिप्रदर्शनार्थत्वाद् दृष्टान्तो नानर्थकः तत्र तदप्रदर्शनं हेतोरगमकत्वात्, इत्यप्यसङ्गतम्, सर्वानित्यत्व- २० साधने सत्त्वादेर्दृष्टान्ताऽसम्भवतोऽगमकत्वानुपपन्नात् । विपक्षव्या-वृत्त्या सत्त्वादेर्गमकत्वे वा सर्वत्रापि हेतौ तथैव गमकत्वप्रसङ्गाद् दृष्टान्तोनर्थक एव स्यात् । विपक्षव्यावृत्त्या च हेतुं समर्थयन् कथं प्रतिज्ञां प्रतिक्षिपेत् ? तस्याश्चानभिधाने क हेतुः साध्यं वा वचते ? गम्यमाने प्रतिज्ञाविषये एवेति चेत्, तर्हि गम्यमानस्यैव २५ हेतोरपि समर्थनं स्यान्न तूक्तस्य । अथ गम्यमानस्यापि हेतोर्म-न्दमतिप्रतिपत्त्यर्थं वचनम्, तथा प्रतिज्ञावचने कोऽपरितोषः ?

यद्येदम्-‘असाधनाङ्गम्’ इत्यस्य व्याख्यानतरम्-“साधर्म्येण हेतोर्वचने वैधर्म्यवचनं वैधर्म्येण वा प्रयोगे साधर्म्यवचनं गम्य-मानत्वात् पुनरुक्तम् । अतो न साधनाङ्गम् ।” [वादन्यायपृ० ३० ६५] इत्यप्यसम्मतम्, यतः सम्यक्साधनसामर्थ्येन स्वपक्षं साधयतो वादिनो निग्रहः स्यात्, अप्रसाधयतो वा ? प्रथमपक्षे कथं

१ व्याख्यानम् । २ सौगतम् । ३ सौगतमतगालम्ब्याचार्येणोच्यते । ४ प्रतिज्ञा-निगमनप्रकारेण । ५ व्यतिरेकेण । ६ सौगतम् । ७ हेतुतः साध्यसिद्धिर्न भवतीति चेत् । ८ साध्यस्याऽङ्गापको भवति हेतुरिति भावः । ९ विपक्षोत्र नित्यः । १० सौगतः । ११ प्रतिपादनम् । १२ हेतोर्वचने । १३ प्रतिपादनम् ।

साध्यसिद्धयऽप्रतिबन्धिवचनाधिक्योपलम्भमात्रेणास्य निग्रहो विरोधात्? नन्वेवं नाटकादिदोषणातोप्यस्य निग्रहो न स्यात्; सत्यमेवैतत्; स्वसाध्यं प्रसाध्य नृत्यतोपि दोषाभावाल्लोकवत् । अन्यथा साम्बूलभक्षणभ्रूक्षेपखात्कृताकम्पद्वस्तास्फालनादिभ्योपि सत्यसाधनवादिनो निग्रहः स्यात् । अथ स्वपक्षमप्रसाधयतोऽस्य^५ निग्रहः; नन्वत्रापि किं प्रतिवादिना स्वपक्षे साधिते वादिनो वचनाधिक्योपलम्भाच्चिग्रहो लक्ष्येत, असाधिते वा? प्रथमविकल्पे स्वपक्षसिद्धैवास्या निग्रहाद्वचनाधिक्योद्भावनमनर्थकम्, तस्मिन् सत्यपि स्वपक्षसिद्धिमन्तरेण जयायोगात् । द्वितीयपक्षे तु युगपद्वादिप्रतिवादिनोः पराजयप्रसङ्गो जयप्रसङ्गो वा स्यात्स्व-^{१०} पक्षसिद्धेरभावाविशेषात् ।

ननु न स्वपक्षसिद्धयसिद्धिनिबन्धनौ जयपराजयौ तयोर्ज्ञानान्नित्यबन्धनत्वात् । साधनवादिना हि साधु साधनं ज्ञात्वा वक्तव्यं दूषणवादिना च तद्दूषणम् । तत्र साधर्म्यवचनाद्वैधर्म्यवचनाद्वाऽर्थस्य^१ प्रतिपत्तौ तदुभयवचने वादिनः प्रतिवादिना सभायामसा-^{१५} धनाङ्गवचनस्योद्भावेनात् साधुसाधनाभिधानाज्ञानसिद्धेः पराजयः, प्रतिवादिनस्तु तद्दूषणज्ञाननिर्णयाजयः स्यात्; इत्यप्यविचारितरमणीयम्, विकल्पानुपपत्तेः । स हि प्रतिवादी निर्दोषसाधनवादिनो वचनाधिक्यमुद्भावयेत्, साधनाभासवादिनो वा? तत्राद्यविकल्पे वादिनः कथं साधुसाधनाभिधानाऽज्ञानम्,^{२०} तद्वचनेत्यर्थाज्ञानस्यैवासम्भवात्? द्वितीयविकल्पे तु न प्रतिवादिनो दूषणज्ञानमवतिष्ठते साधनाभासस्यानुद्भावेनात् । तद्वचनाधिक्यदोषस्य ज्ञानादूषणज्ञोसाविति चेत्; साधनाभासाज्ञानाददूषणज्ञोपीति नैकान्ततो वादिनं जयेत्, तद्दोषोद्भावनलक्षणस्य पराजयस्यापि निवारयितुमशक्तेः । अथ वचनाधिक्यदोषोद्भाव-^{२५} नादेव प्रतिवादिनो जयसिद्धौ साधनाभासोद्भावनमनर्थकम्; नन्वेवं साधनाभासानुद्भावेनात्तस्य पराजयसिद्धौ वचनाधिक्योद्भावनं कथं जयाय प्रकल्प्येत? अथ वचनाधिक्यं साधनाभासं चोद्भावयतः प्रतिवादिनो जयः; कथमेवं साधर्म्यवचने वैधर्म्यवचनं तद्वचने वा साधर्म्यवचनं जयाय प्रभवैत्? ^{३०}

१ सम्यक्साम्यसिद्धिष्वेचिग्रहः कथं निग्रहयेत्ता कथमिति विरोधः । २ साध्यसिद्धप्रतिबन्धिवचनाधिक्यमात्रतोपि न निग्रह इति प्रकरणे । ३ साधनदूषणं ज्ञात्वा वक्तव्यम् । ४ साम्यलक्षणम् । ५ प्रतानत्यरियागेन साधुसाधनं वाच्यमिति ज्ञानम् । ६ सर्वथा । ७ तत्रैव जयावैधर्म्यवचनम् ।

कथं चैवं वादिप्रतिवादिनोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहवैयर्थ्यं न स्यात्? कचिदेकत्रापि पक्षे साधनसामर्थ्यज्ञानाज्ञानयोः सम्भवात् । न खलु शब्दादौ नित्यत्वस्यानित्यत्वस्य वा परीक्षायाम् एकस्य साधनसामर्थ्यं ज्ञानमन्यस्य चाज्ञानं जयस्य पराजयस्य वा ५ निबन्धनं न सम्भवति । युगपत्साधनसामर्थ्यस्य ज्ञानेन वादिप्रतिवादिनोः कस्य जयः पराजयो वा स्यात्तद्विशेषात्? न कस्यचिदिति चेत्, तर्हि साधनवादिनो वचनाधिक्यकारिणः साधनसामर्थ्याऽज्ञानसिद्धेः प्रतिवादिनश्च वचनाधिक्यदोषोद्भावनत्तदोपमात्रे ज्ञानसिद्धेर्न कस्यचिज्जयः पराजयो वा १० स्यात् । न हि यो यदोषं वेत्ति स तद्गुणमपि, कुतश्चिन्मारणशक्तिर्वैदनेपि विषद्रव्यस्य कुप्रापनयनशक्तौ संवेदानुदयात् । तन्न तत्सामर्थ्यज्ञानाज्ञाननिबन्धनौ जयपराजयौ शक्यव्यवस्थौ यथोक्तदोषानुपपन्नात् । स्वपक्षसिद्धिसिद्धिनिबन्धनौ तु तौ निरवधौ पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहवैयर्थ्याभावात् । कस्यचित्कृतश्चित्स्वपक्षसिद्धौ १५ सुनिश्चितायां परस्यै तत्सिद्ध्यभावात्ः सकृज्जयपराजयाप्रसङ्गात् ।

यच्चेदम्—‘अदोषोद्भावनम्’ इत्यस्य व्याख्यानम्—‘प्रसज्यप्रतिपक्षे दोषोद्भावनोऽभावमोपमदोषोद्भावनम्, पर्युदासे तु दोषाभासानामन्यदोषाणां चोद्भावनं प्रतिवादिनो निग्रहस्थानम्” [इति; तद्वादिना दोषवति साधने प्रयुक्ते २० सत्यनुमत्तमेव, यदि वादी स्वपक्षं साधयेत्, नान्यथा । वचनाधिक्यं तु दोषः प्रागेव प्रतिविहितः । यथैव हि पञ्चावयवप्रयोगे वचनाधिक्यं निग्रहस्थानम्, तथा त्र्यवयवप्रयोगे न्यूनतापि र्थाद्विशेषामावात् । प्रतिज्ञादीनि हि पञ्चाप्यनुमानाङ्गम्—‘प्रतिज्ञाहेतुदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः” [न्यायसू० १।१।३२] इत्य- २५ भिधानात् । तेषां मध्येऽन्यतमस्याप्यनभिधाने न्यूनताख्यो दोषोऽनुपपद्यत एव । “हीनमन्यतमेनापि न्यूनम्” [न्यायसू० ५।२।१२] इति वचनात् । ततो जयेतरव्यवस्थायाः ‘प्रमाणतदाभासौ’ इत्यादितो नान्यनिबन्धनं व्यवतिष्ठते, इत्येतच्छलादौ तन्निबन्धनत्वेनाग्रद्वयं परित्यज्य विचारकभावमाद्याऽमलमनसि प्रामाणिकाः ३० स्वयमेव सम्प्रधारयन्तु, कृतमतिप्रसङ्गेन ।

१ वादिनः । २ प्रतिवादिनः । ३ अलन्ताभावभावम् । ४ प्रतिवादिना । ५ वचनाधिक्यदोषनिराकरणसमये । ६ यौगल । ७ यौगल । ८ निग्रहस्थानम् ।

साभासं गदितं प्रमाणमखिलं संख्याफलस्वार्थतः,
 सुव्यक्तैः सकलार्थसार्थविषयैः स्वल्पैः प्रसन्नैः पदैः ।
 येनासौ निखिलप्रबोधजननो जीयाद्गुणाम्मोनिधिः,
 वाक्कीर्त्योः परमालयोऽत्र सततं माणिक्यनन्दिप्रभुः ॥ १ ॥

इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचिते प्रमेयकमलभार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे
 पञ्चमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

(परीक्षामुखसूत्रपाठपेक्षया तु 'सम्भवदन्यद्विचारणीयम्'
 इति सूत्रान्तं षष्ठ्यपरिच्छेदसमाप्तिः)

श्रीः ।

अथ षष्ठः परिच्छेदः ॥

प्राचां वाचाममृततटिनीपूरकपूरकल्पान्,
बन्धान(न्म)न्दा नवकुक्कुरयो नूतनीकुर्वते ये ।
तेऽयस्काराः सुभटमुकुटोत्पाटिपाण्डित्यभाजम्,
मित्वा खड्गं विदधति नवं पश्य कुण्डं कुठारम् ॥

- ५ ननूकं प्रमाणेतरयोर्लक्षणमक्षुणं नयेतरयोस्तु लक्षणं नोक्तम्,
तच्चावदयं वक्तव्यम्, तदवचने विनेयानां नाऽविकला व्युत्पत्तिः
स्यात् इत्याशङ्कमानं प्रत्याह—

सम्भवदन्यद्विचारणीयम् ॥ ६।७४ ॥

इति ।

- १० सम्भवद्विद्यमानं कथितात्प्रमाणतदाभासलक्षणादन्यत् नय-
नयाभासयोर्लक्षणं विचारणीयं नयनिष्ठैर्दिग्मानप्रदर्शनपरत्वादस्य
प्रयासस्येति । तल्लक्षणं च सामान्यतो विशेषतश्च सम्भवतीति
तथैव तद्व्युत्पाद्यते । तत्राऽनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंशग्राही ज्ञातु-
रभिप्रायो नयः । निराकृतप्रतिपक्षस्तु नयाभासः । इत्यनयोः
१५ सामान्यलक्षणम् । स च द्वेधा द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकविकल्पात् ।
द्रव्यमेवार्थो विषयो यस्यास्ति स द्रव्यार्थिकः । पर्याय एवार्थो
यस्यास्त्यसौ पर्यायार्थिकः । इति नयविशेषलक्षणम् । तत्राद्यो
नैगमसङ्गद्वयवहारविकल्पात् त्रिविधः । द्वितीयस्तु कलुषत्र-
शब्दसमभिरूढैवंभूतविकल्पाच्चतुर्विधः ।

- २० तत्रानिष्पन्नार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः । निगमो हि सङ्कल्पः,
तत्र भवस्तत्प्रयोजनो वा नैगमः । यथा कश्चित्पुरुषो गृहीतकु-
ठारो गच्छन् 'किमर्थं भवान्गच्छति' इति पृष्ठः सन्नाह—'प्रस्थमा-
नेतुम्' इति । ऐधोदकाद्याहरणे वा व्याम्रियमाणः 'किं करोति
भवान्' इति पृष्ठः ग्राह—'ओदनं पचामि' इति । न चासौ प्रस्थप-

१ कल्पः सङ्कल्पः । २ 'बन्धान्' इति विशेष्यपदमध्याहार्यम् । ३ परीक्षासुखस्य ।
४ प्रकरणस्य । ५ विकलादेशविशेषमाश्रित्य प्रकृतो ज्ञातुरभिप्रायो (ज्ञानस्वरूपः)
नयः । ६ सामान्यलक्षणलक्षितो नयः । ७ द्रवति द्रोष्यस्यदुद्वेष्टेति द्रव्यं जीवादि ।
८ जीवस्य यथा नरनारकादिः सुखदुःखादिर्वा । ९ प्रत्यो मानविशेषः । १० यथः—
काष्ठम् । दकमुदकम् ।

र्याय ओदनपर्यायो वा निष्पन्नस्तन्निष्पत्तये सङ्कल्पमात्रे प्रस्थादि-
व्यवहारात् । यद्वा नैकङ्गमो नैगमो धर्मधर्मिणोर्गुणप्रधानभावेन
विषयीकरणात् । 'जीवगुणः सुखम्' इत्यत्र हि जीवस्याप्राधान्यं
विशेषणत्वात्, सुखस्य तु प्राधान्यं विशेष(व्य)त्वात् । 'सुखी जीवः'
इत्यादौ तु जीवस्य प्राधान्यं न सुखादेर्विपर्ययात् । न चास्यैवं १
प्रमाणात्मकत्वानुषङ्गः, धर्मधर्मिणोः प्राधान्येनात्र क्लेशरसम्म-
वात् । तयोरन्यतैर एव हि नैगमनयेन प्रधानतया अनुभूयते । प्राधा-
न्येन द्रव्यपर्यायद्रव्यात्मकं चार्थमनुभवद्विज्ञानं प्रमाणं प्रतिपत्तव्यं
मान्यदिति ।

सर्वथानयोरर्थान्तरत्वामिर्सेत्विस्तु नैगमाभासः । धर्मधर्मिणोः १०
सर्वथार्थान्तरत्वे धर्मिणि धर्माणां वृत्तिविरोधस्य प्रतिपादि-
तत्वादिति ।

स्वजात्यविरोधेनैकैक्यमुपनीयार्थानाक्रान्तमेदानं समस्तग्रहणा-
त्संग्रहः । स च परोऽपरश्च । तत्र परः सकलभावानां सदात्मनै-
कत्वमभिप्रेति । 'सर्वमेकं सद्विशेषात्' इत्युक्ते हि 'सत्' इति-१५
बौग्विज्ञानानुवृत्तिलिङ्गानुमितसत्तात्मकत्वेनैकत्वमशेषार्थानां सं-
गृह्यते । निराकृताऽशेषविशेषस्तु सत्ताऽद्वैताभिप्रायसौदाभासो
दृष्टेर्द्वैताधनात् । तथाऽपरः संग्रहो द्रव्यत्वेनाशेषद्रव्याणामेकत्व-
मभिप्रेति । 'द्रव्यम्' इत्युक्ते छातीतानागतवर्तमानकालवर्तित्ववि-
क्षिताविषक्षितपर्यायद्रव्यवर्णशीलानां जीवाजीवतद्भेदप्रमेदानामेक- २०
त्वेन संग्रहः । तथा 'वदः' इत्युक्ते निखिलवदव्यक्तीनां वदत्वेनै-
कत्वसंग्रहः ।

सामान्यविशेषाणां सर्वथार्थान्तरत्वौभिप्रायोऽनैर्थान्तरत्वामि-
प्रायो वाऽपरसङ्गहाभासः, प्रतीतिविरोधादिति ।

सङ्गद्वगृहीतार्थानां विधिपूर्वकमबहरणं विभजनं भेदेन प्ररूपणं २५
व्यवहारः । परसंग्रहेण हि सङ्गर्माधारतया सर्वमेकत्वेन 'सत्'
इति संगृहीतम् । व्यवहारस्तु तद्विभागमभिप्रेति । यत्सत्तद्रव्यं

१ अन्योन्यगुणप्रधानभूतभेदभेदप्ररूपणो नैगमः । २ गौणमुख्यरूपेण । ३ धर्मो
धर्मी वा । ४ अभिप्रायः । ५ मिश्रत्वे । ६ स्वसामर्थ्यं जातिः सदात्मिकः ।
७ एकप्रकारम् । ८ अन्तर्लीनविशेषात् । ९ प्रति । १० वस्तुनाम् । ११ विषयी-
करोति । १२ द्रव्यः । १३ हृदं सदिदं सदिदि । १४ यवा यव लिङ्गं तेन ।
१५ मक्षपादः । १६ सङ्गहाभासः । १७ दृष्टेन प्रत्यक्षेणेष्टेनानुमानेन च । १८ परि-
णमनस्वभावानाम् । १९ विशेषस्य सव्यपेक्षः सम्प्राजग्राही सङ्गद्वः । २० भेदरूपेण ।
२१ भवेदरूपेण । २२ गौणस्य नीर्मासकस्य च ।

पर्यायो वा । तथैवापरः सद्ब्रह्मः सर्वद्रव्याणि 'द्रव्यम्' इति, सर्व-
पर्यायांश्च 'पर्यायः' इति संगृह्णाति । व्यवहारस्तु तद्विभागमभि-
प्रेति-यद्वयं तज्जीवादि पद्विधम्, यः पर्यायः स द्विविधः सह-
भावी क्रमभावी च । इत्यपरसद्ब्रह्मव्यवहारप्रपञ्चः प्रागुक्तुसंप्राप्त-
परसद्ब्रह्मादुत्तरः प्रतिपत्तव्यः, सर्वस्य वस्तुनः कैयञ्चित्सामान्य-
विशेषात्मकत्वसम्भवात् । न चास्यैवं नैगमत्वानुषङ्गः; सद्ब्रह्मविषय-
प्रविभागपरत्वात्, नैगमस्य तु गुणप्रधानभूतोभयविषयत्वात् ।

यः पुनः कल्पनारोपितद्रव्यपर्यायप्रविभागमभिप्रेति स व्यवहा-
राभासः, प्रमाणवाधितत्वात् । न हि कल्पनारोपित एव द्रव्यादि-
१० प्रविभागः; स्वार्थक्रियाहेतुत्वाभावप्रसङ्गाद्गगनाम्मोजवत् । व्यव-
हारस्य चाऽऽसत्यत्वे तदानुकूल्येन प्रमाणानां प्रमाणता न स्यात् ।
अन्यथा स्वभादिविभ्रमानुकूल्येनापि तेषां तत्प्रसङ्गः । उक्तं च—

“व्यवहारानुकूल्यास्तु प्रमाणानां प्रमाणता ।

नान्यर्था बाध्यमानानां ज्ञानानां तत्प्रसङ्गतः ॥” [लघी० का०
१५७०] इति ।

ऋजु प्रौढलं चर्तमानक्षणमात्रं सूर्ययतीत्युक्तुसूत्रः 'सुखक्षेणः
सम्प्रत्यस्ति' इत्यादि । द्रव्यस्य सतोप्यनर्पणात्, अतीतानागतक्षण-
योश्च विनष्टानुत्पन्नत्वेनासम्भवात् । न चैवं लोकव्यवहारविभो-
पप्रसङ्गः; नयस्याऽस्यैवं विषयमात्रप्ररूपणात् । लोकव्यवहारस्तु
२० सकलनयसमूहसाध्य इति ।

यस्तु बहिरन्तर्वा द्रव्यं सर्वथा प्रैतिक्षिपत्यखिलार्थानां प्रतिक्षणं
क्षणिकत्वाभिमानात् स तदाभासः, प्रतीत्यतिक्रमात् । बाधविधुरा
हि प्रत्यभिज्ञानादिप्रतीतिर्बहिरन्तश्चैकं द्रव्यं पूर्वोत्तरविचर्त्तवर्त्ति
प्रसाधयतीत्युक्तमूर्द्धतासामान्यसिद्धिप्रस्तावे । प्रतिक्षणं क्षणिकत्वं
२५ च तत्रैव प्रतिन्यूढमिति ।

कालकारकलिङ्गसंख्योसाधेनोपग्रहमेदाङ्गिभमर्थं शपतीति

- १ जीवाऽजीवधर्माऽधर्मनभःकालमेदात् । २ यथा चैतन्यम् । ३ सुखादिर्यथा ।
४ द्रव्यपर्यायविभिन्नत्वप्रकारेण । ५ नैगमोऽपि संग्रहनयप्रविभागपरो यविष्यतीत्युक्ते
सत्त्वात् । ६ व्यवहारानुकूल्यभावेन । ७ व्यक्तम् । ८ बोधयति । ९ शुद्धपर्याय-
ग्राही प्रतिपक्षसापेक्ष ऋजुसूत्रः । क्षणिकैकान्तनयस्तु तदाभासः । १० क्षणः पर्यायः ।
११ द्रव्यस्यातीतानागतक्षणयोश्च सत्यकः कुतो न स्यादित्युक्ते सत्त्वात् । १२ विवक्षाऽ-
भावात् । १३ सुखक्षणः सम्प्रतीत्यादिप्रकारेण । १४ निराकरोति । १५ नैजैः ।
१६ संख्या=पक्षवचनादिः । १७ साधनो गुणदसास्वमेदाभिधा । १८ उपग्रहः=
उपसर्गः ।

शब्दो नयः शब्दप्रधानत्वात् । ततोऽपास्तं वैयाकरणानां मतम् । ते हि “धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः” [पाणिनिव्या० ३।४।१] इति सूत्रमारभ्य ‘विश्वदृश्याऽस्य पुत्रो भविता’ इत्यत्र कालमेदेप्येकं पदार्थमाहताः—‘यो विश्वं द्रक्ष्यति सोऽस्य पुत्रो भविता’ इति, भविष्यत्कालेनातीतकालस्याऽभेदाभिधानात् तथा व्यवहारोपलम्भात् । ५ तच्चानुपपन्नम्; कालमेदेप्यर्थस्याऽभेदेऽतिप्रसङ्गात्, रावणशङ्खचक्रवर्तिशब्दयोरप्यतीतानागतार्थगोचरयोरेकार्थतापत्तेः । अथानयोर्भिन्नविषयत्वाच्चैकार्थता; ‘विश्वदृश्या भविता’ इत्यनयोरप्यसौ मा भूतत एव । न खलु ‘विश्वं दृष्टवान्=विश्वदृश्या’ इति शब्दस्य योऽर्थोतीतकालः, स ‘भविता’ इति शब्दस्यानागतकालो १० युक्तः; पुत्रस्य भाविनोऽतीतत्वविरोधात् । अतीतकालस्याप्यनागतत्वाभ्यारोपादेकार्थत्वे तु न परमार्थतः कालमेदेप्यभिन्नार्थव्यवस्था स्यात् ।

तथा ‘करोति क्रियते’ इति कर्तृकर्मकारकमेदेप्यभिन्नमर्थं तं एवाद्वियन्ते । ‘यः करोति किञ्चित् स एव क्रियते केनचित्’ इति १५ प्रतीतेः । तदप्यसाम्प्रतम्; ‘देवदत्तः कटं करोति’ इत्यत्रापि कर्दकर्मणोर्देवदत्तकटयोरभेदप्रसङ्गात् ।

तथा, ‘पुण्यस्तारका’ इत्यत्र लिङ्गमेदेपि नक्षत्रार्थमेकमेवाद्वियन्ते, लिङ्गमशिव्यं लोकाध्यत्वात्तस्य; इत्यसङ्गतम्; ‘पटः कुटी’ इत्यत्राप्येकत्वानुषङ्गात् । २०

तथा, ‘आपोऽम्भः’ इत्यत्र संख्यामेदेप्येकमर्थं जलान्यं मन्यन्ते, संख्यामेदस्याऽभेदकत्वाद्बर्वादिष्वत् । तदप्ययुक्तम्; ‘पटस्तन्तवः’ इत्यत्राप्येकत्वानुषङ्गात् ।

तथा ‘एहि मन्ये स्थेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता’ इति साधनमेदेप्यर्थाऽभेदमाद्वियन्ते “प्रहृष्टे मन्यवाचि शुष्मन्म- २५ न्यतेऽस्यदेकवचः” [जैनेन्द्रव्या० १।२।१५३] इत्यभिधानात् । तदप्यपेशलम्; ‘अहं पचामि त्वं पचसि’ इत्यत्राप्येकार्थत्वप्रसङ्गात् ।

तथा, ‘सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते’ इत्यत्रोपग्रहमेदेप्यर्थाभेदं प्रतिपद्यन्ते उपसर्गस्य धात्वर्थमात्रोद्घोतकत्वात् । तदप्यचारु; ‘सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते’ इत्यत्रापि स्थितिगतिक्रिययोरभेदप्रसङ्गात् । ततः ३०

१ कालादिभेदाद्विन्नमर्थं प्रतिपादयति शब्दो नयो यतः । २ शब्दभेदादर्थभेदमकुर्वताम् । ३ प्रतिशान्तः । ४ अत एवातीतार्थको विश्वदृशशब्दो द्रक्ष्यतीति नरसिंहलेन विगृह्यते । ५ वैयाकरणाः । ६ वैयाकरणाः । ७ आदिना रूपादिनहः । ८ जैनेन्द्रव्याकरणस्य सूत्रम् । मूल‘क’पुस्तके ‘प्रहसे’ इति पाठोऽस्ति । ९ वैयाकरणाः ।

कालादिभेदाद्भिन्न एवार्थः शब्दस्य । तथाहि-विवादापन्नो विभिन्न-
कालादिशब्दो विभिन्नार्थप्रतिपादको विभिन्नकालादिशब्दत्वात्
तथाविधान्यशब्दवत् । नन्वेवं लोकव्यवहारविरोधः स्यादिति
चेत् ; विरुध्यतामसौ तत्त्वं तु मीमांस्यते, न हि भेदपञ्चमस्तुरे-
५ च्छानुवर्ति ।

नानार्थान्समेत्यामिसुख्येन रूढः समभिरूढः । शब्दनयो हि
पर्यायशब्दभेदान्नार्थभेदमभिप्रैति कालादिभेदत एवार्थभेदाभि-
प्रायात् । अयं तु पर्यायभेदेनाप्यर्थभेदमभिप्रैति । तथा हि-‘इन्द्रः
शक्रः पुरन्दरः’ इत्याद्याः शब्दा विभिन्नार्थगोचरा विभिन्नशब्द-
१० त्वाद्वाजिवारणशब्दवदिति ।

एवमित्थं विवक्षितक्रियापरिणामप्रकारेण भूतं परिणतमर्थं
योभिप्रैति स एवम्भूतो नयः । समभिरूढो हि शकनक्रियायां
सत्यामसत्यां च देवराजार्थस्य शक्यपदेशमभिप्रैति, पशोर्गमन-
क्रियायां सत्यामसत्यां च गोव्यपदेशवत्, तथा रूढेः सद्भावात्,
१५ अयं तु शकनक्रियापरिणतिक्षणे एव शक्यमभिप्रैति न पूजनाभिप्रे-
चनक्षणे, अतिप्रसङ्गात् । न चैवंभूतनयामिप्रायेण कश्चिदक्रिया-
शब्दोस्ति, ‘गौरश्वः’ इति जातिशब्दाभिमतानामपि क्रियाशब्द-
त्वात्, ‘गच्छतीति गौराशुगाम्यश्वः’ इति । ‘शुक्लो नीलः’ इति
गुणशब्दा अपि क्रियाशब्दा एव, ‘शुचिभवनाच्छुक्लो नीलना-
२० नीलः’ इति । ‘देवदत्तो यज्ञदत्तः’ इति यज्ञच्छाशब्दा अपि क्रिया-
शब्दा एव, ‘देवा एनं देयासुः’ इति देवदत्तः, ‘यज्ञे एनं देयात्’
इति यज्ञदत्तः । तथा संयोगिसमवायिद्रव्यशब्दाः क्रियाशब्दाः
एव, दण्डोस्यास्तीति दण्डी, विषाणमस्यास्तीति विषाणीति ।
पञ्चतयी तु शब्दानां प्रवृत्तिर्व्यवहारमात्राच्च निश्चयात् ।

२५ एवमेते शब्दसमभिरूढैवम्भूतनयाः सापेक्षाः सम्यग्, अन्यो-
न्यमनपेक्षास्तु मिथ्यैति प्रतिपत्तव्यम् ।

एतेषु च नयेषु क्रजुसूत्रान्ताश्चत्वारोर्थप्रधानाः शेषास्तु त्रयः
शब्दप्रधानाः प्रत्येतव्याः ।

१ विशदृशा भविता करोति क्रियते इत्यादिः । २ रावणश्चक्रवर्तीतिशब्दवत् ।
३ लिङ्गवचनादिभेदेनार्थभेदप्रकारेण । ४ समाश्लि । ५ पर्यायभेदात्पदार्थनामाल-
प्ररूपकः समभिरूढः । ६ क्रियाश्लेषेण भेदप्ररूपणमित्यन्वयः । ७ यथा नमन-
क्रियां कुर्वतोषि पाचकवत्प्रसङ्गः साप । ८ क्रियाप्रधानतया । ९ अस्तीति क्रियात्र ।
१० जातिक्रियाशुण्यदृच्छासम्बन्धवाचकप्रकारेण ।

कः पुनरत्र बहुविषयो नयः को वात्यविषयः कश्चात्र कारण-
भूतः कार्यभूतो वेति चेत् ? 'पूर्वः पूर्वो बहुविषयः कारणभूतश्च
परः परोरूपविषयः कार्यभूतश्च' इति ब्रूमः । संग्रहाद्वि नैगमो
बहुविषयो भावाऽभावाविषयत्वात्, यथैव हि सति सङ्कल्प-
स्तथाऽसंत्यपि, सङ्ग्रहस्तु ततोऽप्यविषयः सम्मात्रगोचरत्वात्, ५
तत्पूर्वकत्वाच्च तत्कार्यः । संग्रहाद्व्यवहारोपि तत्पूर्वकः सङ्क्षि-
पावबोधकत्वादित्यविषय एव । व्यवहारात्कालत्रितयवृत्त्यर्थगो-
चरात् कञ्चसुत्रोपि तत्पूर्वको वर्तमानार्थगोचरतयात्यविषय
एव । कारकादिभेदेनाऽभिन्नमर्थं प्रतिपद्यमानादञ्चसुत्रतः तत्पू-
र्वकः शब्दनयोप्यत्यविषय एव तद्विपरीतार्थगोचरत्वात् । शब्द-१०
नयात्पर्यायभेदेनार्थाभेदं प्रतिपद्यमानात् तद्विपर्ययात् तत्पूर्वकः
समभिरुद्धोप्यत्यविषय एव । समभिरुद्धतश्च क्रियाभेदेनाऽभिन्न-
मर्थं प्रतीयतः तद्विपर्ययात् तत्पूर्वक एवम्भूतोप्यत्यविषय एवेति ।

नन्वेते नयाः किमेकस्मिन्विषयेऽविशेषेण प्रवर्तन्ते, किं वा
विशेषोस्तीति ? अत्रोच्यते—यत्रोत्तरोत्तरो नयोऽर्थो प्रवर्तते १५
तत्र पूर्वः पूर्वोपि नयो वर्तते एव, यथा सहस्रेऽष्टशती तस्यां वा
पञ्चशतीत्यादौ पूर्वसंख्योत्तरसंख्यायामविरोधतो वर्तते । यत्र
तु पूर्वः पूर्वो नयः प्रवर्तते तत्रोत्तरोत्तरो नयो न प्रवर्तते; पञ्च-
शत्यादावष्टशत्यादिवत् । एवं नयार्थं प्रमाणस्यापि सांशपस्तु-
षेदिनो वृत्तिरविरुद्धा, न तु प्रमाणार्थं नयानां वस्तुवशाभावेति-२०
नामिति ।

कथं पुनर्नयसप्तमङ्गलाः प्रवृत्तिरिति चेत् ? 'प्रतिपर्यायं वस्तुन्ये-
कत्राविरोधेन विधिप्रतिषेधकल्पनायाः' इति ब्रूमः । तथाहि—सङ्क-
ल्पमात्रग्राहिणो नैगमस्याभयणाद्विचिकल्पना, प्रस्थादिकं कल्पना-
मात्रम्—'प्रस्थादि स्यादस्ति' इति । संग्रहाभयणात् प्रतिषेधक-२५
ल्पना; न प्रस्थादि सङ्कल्पमात्रम्—प्रस्थादिसन्मात्रस्य तेषामतीतेर-
सतः प्रतीतिविरोधादिति । व्यवहाराभयणाद्वा द्व्यस्य पर्यायस्य

१ विषयाने वस्तुनि । २ अतीतेऽनागते च । ३ पर्यायभेदेन भिन्नार्थगोचरत्वा-
दित्यर्थः । ४ प्राप्नुवतः प्रकटयतो वा । ५ उत्तरोत्तरनयविषये पूर्वपूर्वनयप्रवर्तनप्र-
कारेण उत्तरोत्तरसंख्यायां पूर्वपूर्वसंख्याप्रवर्तनप्रकारेण वा पञ्चशत्यादावष्टशत्याधऽप्रव-
र्तनप्रकारेण वा । ६ अविरोधेनेत्यभिधानात्प्रत्याहविरोधविधिप्रतिषेधकत्ववाचाः, एकत्र
वस्तुनिलमिधानादनेकवस्तुभावनविधिप्रतिषेधकत्ववाचाश्च सप्तमङ्गीरुपा प्रयुज्य ।
७ विधिप्रतिषेधो अस्तिवनास्तित्वे । ८ संग्रहो नयः । ९ प्रत्यादित्वेव । १० गणन-
कृष्टमवत् ।

वा प्रस्थादिप्रतीतिः; तद्विपरीतस्याऽसतः सतो वा प्रत्येतुमशक्तेः ।
 क्रतुसूत्राश्रयणाद्वा पर्यायमात्रस्य प्रस्थादित्वेन प्रतीतिः, अन्यथा
 प्रतीत्यनुपपत्तेः । शब्दाश्रयणाद्वा कालादिभिन्नस्यार्थस्य प्रस्था-
 दिवम्, अन्यथातिप्रसङ्गात् । समभिरूढाश्रयणाद्वा पर्यायमेवेन
 ५ भिन्नस्यार्थस्य प्रस्थादित्वम्; अन्यथाऽतिप्रसङ्गात् । एवंभूताश्रय-
 णाद्वा प्रस्थादिक्रियापरिणतस्यैवार्थस्य प्रस्थादित्वं नान्यस्येति अति-
 प्रसङ्गादिति । तथा स्यादुभयं क्रमार्पितोभयनयार्पणात् । स्यादव-
 क्तव्यं संहर्पितोभयनयाश्रयणात् । एवमवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो
 भङ्गा यथायोगमुदाहार्याः ।

१० ननु चोदाहृता नयसप्तभङ्गी । प्रमाणसप्तभङ्गीतस्तु तस्याः
 किङ्कृतो विशेष इति चेत् ? 'सकलविकलादेशकृतः' इति ब्रूमः ।
 विकलादेशस्वभावा हि नयसप्तभङ्गी वस्त्वंशमात्रप्ररूपकत्वात् ।
 सकलादेशस्वभावा तु प्रमाणसप्तभङ्गी यथावद्वस्तुरूपप्ररूपक-
 त्वात् । तर्था हि-स्यादस्ति जीवादिवस्तु स्वद्रव्यादिचतुष्टयापे-
 १५ क्षया । स्यान्नास्ति परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया । स्यादुभयं क्रमार्पि-
 तद्वयापेक्षया । स्यादवक्तव्यं संहर्पितद्वयापेक्षया । एवमवक्तव्यो-
 त्तरास्त्रयो भङ्गाः प्रतिपत्तव्याः ।

कस्यात्पुनर्नयवाक्ये प्रमाणवाक्ये वा सतैव भङ्गाः सम्भव-
 न्तीति चेत् ? प्रतिपाद्यप्रश्नानां तावतामेव सम्भवात् । प्रभवशा-
 २० देव हि सप्तभङ्गीनियमः । सप्तविध एव प्रश्नोपि कुत इति चेत् ?
 सप्तविधजिज्ञासासम्भवात् । सापि सप्तधा कुत इति चेत् ?
 सप्तधा संशयोत्पत्तेः । सोपि सप्तधा कथमिति चेत् ? तद्विषयव-
 स्तुर्धर्मस्य सप्तविधत्वात् । तथा हि-सत्त्वं तावद्वस्तुधर्मः; तदन-
 भ्युपगमे वस्तुनो वस्तुत्वायोगात् खरशृङ्गवत् । तथा कथञ्चिद-
 २५ सत्त्वं तद्धर्म एव; स्वरूपादिभिरिव पररूपादिभिरप्यस्याऽसत्त्वा-

१ सङ्कल्पमात्रस्य प्रस्थादित्वेन हातुम् । २ प्रतिषेधकल्पना स्यात् । ३ सङ्कल्प-
 मात्रेण । ४ प्रतिषेधकल्पनेति सम्बन्धः । ५ पटादेरपि प्रस्थादित्वं स्यात् । ६ प्रतिषेध-
 कल्पना । ७ संकल्पमात्रेण । ८ सङ्कल्पमात्रेण । ९ प्रतिषेधकल्पना । १० सङ्कल्प-
 मात्रस्य । ११ पटावता स्यादस्ति स्यान्नास्तीति मद्भवं सिद्धम् । १२ प्रस्थादिः स्यादस्ति
 नास्ति च । १३ सह=युगपत् । १४ अपितः=विवक्षितः । १५ प्रस्थादिः स्यादस्त्य-
 वक्तव्यः, स्यान्नास्त्यवक्तव्यः, स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यश्चेति । १६ कथनात् । १७ नय-
 प्रमाणसप्तभङ्गा यथाक्रमं भेदज्ञानार्थमुल्लेखः कथ्यते स्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादिः । तथा
 च स्यादस्ति जीवादिवस्तु स्यान्नास्ति जीवादिवस्तु इत्यादि । १८ आदिना क्षेत्रकाल-
 भावग्रहः । १९ हातुमिच्छ जिज्ञासा । २० स्वरूपस्य । २१ पटोणाङ्गीक्रियमाणे ।
 २२ जीवादपदार्थस्य । २३ अन्यथा ।

निष्ठौ प्रतिनियतस्वरूपाऽसंभवाद्वस्तुप्रतिनियमविरोधः स्यात् । एतेन क्रमापितोभयत्वादीनां वस्तुधर्मत्वं प्रतिपादितं प्रतिपत्त-
व्यम् । तदभावे क्रमेण सदसत्त्वविकल्पशब्दव्यवहारविरोधात्,
सहाऽवकव्यत्वोपलक्षितोत्तरधर्मत्रयविकल्पस्य शब्दव्यवहारस्य
चासत्त्वप्रसङ्गात् । न चामी व्यवहारा निर्विषया एव; वस्तुप्र-
तिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिनिश्चयात् तथोविधरूपादिव्यवहारवत् ।

ननु च प्रथमद्वितीयधर्मवत् प्रथमतृतीयोदिधर्माणां क्रमेतरा-
पितानां धर्मान्तरत्वसिद्धेर्न सप्तविधधर्मनियमः सिद्ध्येत्; इत्यप्य-
सुन्दरम्; क्रमापितयोः प्रथमतृतीयधर्मयोः धर्मान्तरत्वेनाऽप्र-
तीतेः, सत्त्वद्वयस्यासम्भवाद्विवक्षितस्वरूपादिना सत्त्वस्यैकत्वात् । १०
तदर्थ्यस्वरूपादिना सत्त्वस्य द्वितीयस्य सम्भवे विशेषादेशात् तद्व-
तिपक्षभूतासत्त्वस्याप्यपरस्य सम्भवादपरधर्मसत्कर्तृसिद्धिः (हेः)
सप्तमङ्गान्तरसिद्धितो न कश्चिदुपालम्भः । एतेन द्वितीयतृतीय-
धर्मयोः क्रमापितयोर्धर्मान्तरत्वमप्रातीतिकं व्याख्यातम् । कथमेवं
प्रथमचतुर्थयोर्द्वितीयचतुर्थयोस्तृतीयचतुर्थयोश्च सहितयोर्धर्मा- १५
न्तरत्वं स्यादिति चेत्? चतुर्थेऽवकव्यत्वधर्मे सत्त्वासत्त्वयोरप-
रामर्शात् । न खलु सहापितयोस्तयोरवकव्यशब्देनाभिधानम् ।
किं तर्हि? तथापितयोस्तयोः सर्वथा वक्तुमशक्तेरवकव्यत्वस्य
धर्मान्तरस्य तेन प्रतिपादनमिष्यते । न च तेन सहितस्य सत्त्व-
स्यासत्त्वस्योभयस्य वाऽप्रतीतिर्धर्मान्तरत्वासिद्धिर्वा, प्रथमे भङ्गे २०
सत्त्वस्य प्रधानभावेन प्रतीतेः, द्वितीये त्वसत्त्वस्य, तृतीये
क्रमापितयोः सत्त्वासत्त्वयोः, चतुर्थे त्ववकव्यत्वस्य, पञ्चमे

१ परेण । २ पृथुप्रोदगाभाकारः साक्षाद्व्यवहारादिनां प्रतिनियतरूपः ।
३ सत्त्वासत्त्वयोर्वस्तुधर्मत्वसमर्पणपरेण ग्रन्थेन । ४ सहापितोभयत्वादीनां च ।
५ अवकव्यं सदवकव्यमऽसदवकव्यमुभयाऽवकव्यं चेति । ६ ननु येन्यः शब्द-
व्यवहारस्योऽन्यथानुपपत्त्या क्रमापितोभयत्वाद्वयः पञ्च धर्मा अवसाप्यन्ते ते निर्विषया
पवातः कथं तेभ्यस्तत्सिद्धिरित्यारेकायामाह । ७ तथाविधः प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्ति-
निश्चयहेतुभूतः । ८ तस्यापि निर्विषयत्वे सकलप्रलब्धादिव्यवहारापद्धावा कस्यचिद्व-
स्तव्यवसा स्यात् । ९ आदिना द्वितीयतृतीयादिग्रहः । १० युगपत् । ११ मनुष्य-
स्वरूपे स्वद्वयक्षेत्रकालमावाः स्वरूपश्च, आदिना पररूपसमग्रः, ते च यतः
परपीया द्रव्यादयः । १२ पक्षनीनस्य । १३ तस्मात् । १४ अन्यस्य देवादेः ।
१५ भवान्तरापेक्षया । १६ पर्यायकथनात् । १७ स=द्वितीयसत्त्वः । १८ वचः ।
१९ प्रथमतृतीयधर्मयोर्धर्मान्तरत्वनिराकरणेन । २० इति । २१ प्रथमतृतीयादि-
प्रकारेण । २२ स्यादस्यवकव्यमिति । २३ स्यात्तस्यवकव्यमिति । २४ स्यादस्ति
नास्यवकव्यमिति । २५ अप्रतीतेः ।

सत्त्वसहितस्य, पष्ठे पुनरसत्त्वोपेतस्य, सप्तमे क्रमे क्रमवत्तदुभययुक्तस्य सकलजनैः सुप्रतीतत्वात् ।

ननु वाचकव्यत्वस्य धर्मान्तरत्वे वस्तुनि वक्तव्यत्वस्याष्टमस्य धर्मान्तरस्य भावात्कथं सप्तविध एव धर्मः सप्तभङ्गीविषयः ५ स्यात् ? इत्यप्यपेशलम् ; सत्त्वादिभिरभिधीयमानतया वक्तव्यत्वस्य प्रसिद्धेः, सामान्येन वक्तव्यत्वस्यापि विशेषेण वक्तव्यतायामवस्थानात् । भवतु वा वक्तव्यत्वावक्तव्यत्वयोर्धर्मयोः प्रसिद्धिः, तथाप्याभ्यां विधिप्रतिषेधकल्पनाविषयाभ्यां सत्त्वासत्त्वाभ्यामिव सप्तभङ्गान्तरस्य प्रवृत्तेर्न तद्विषयसप्तविधधर्मनियमव्या-
१० घातः, यतस्तद्विषयः संशयः सप्तधैव न स्यात् तैद्धेतुर्जिज्ञासा वा तन्निमित्तः प्रश्नो वा वस्तुन्येकत्र सप्तविधवाक्यनियमहेतुः । इत्युपपन्नैयम्-प्रश्नवशादेकवस्तुन्यविरोधेन विधिप्रतिषेधकल्पना सप्तभङ्गी । ‘अविरोधेन’ इत्यभिधानात् प्रत्यक्षादिविरुद्धविधिप्रतिषेधकल्पनायाः सप्तभङ्गीरूपता प्रत्युक्ता, ‘एकवस्तुनि’ इत्यभि-
१५ धानाच्च अनेकवस्तुवाक्यविधिप्रतिषेधकल्पनाया इति ।

अथवा प्रागुक्तश्चतुरङ्गो वादः पत्रावलम्बनमप्यपेक्षते, अतस्तल्लक्षणमत्रावश्यमभिधातव्यम् यतो नास्याऽविज्ञातस्वरूपस्यावलम्बनं जयाय प्रभवतीति नृवाणं प्रति सम्भवदित्याह । सम्भवद्विद्यमानमन्यत् पत्रलक्षणं विचारणीयं तद्विचारचतुरैः । तथाहि-
२० स्वाभिप्रेतार्थसाधनानवद्यगूढपदसमूहात्मकं प्रसिद्धावयवलक्षणं वाक्यं पत्रमित्यवगन्तव्यं तथाभूतस्यैवास्य निर्दोषतोपपत्तेः । न खलु स्वाभिप्रेतार्थसाधकं ईदृं सुस्पष्टपदात्मकं वा वाक्यं निर्दोषं पत्रं युक्तमतिप्रसङ्गात् । न च क्रियापदादिगूढं काव्यमन्येवं पत्रं प्रसज्यते; प्रसिद्धावयवत्वविशिष्टस्यास्य पत्रत्वाभिधानात् ।
२५ न हि पदगूढादिकाव्यं प्रमाणप्रसिद्धप्रतिज्ञाद्यवयवविशेषणतया किञ्चित्प्रसिद्धम्, तस्य तथा प्रसिद्धौ पत्रव्यपदेशसिद्धेरवाधनात् । तदुक्तम्—

“प्रसिद्धावयवं वाक्यं स्वेष्टस्यार्थस्य साधकम् ।

साधु गूढपदप्रार्थं पत्रमाहुरनाकुलम् ॥” [पत्रप० पृ० १]

१ तदुभयं सत्त्वासत्त्वम् । २ आदिना ज्ञातव्यं सत्त्वासत्त्वे च संगृह्यते ।
३ वस्तुनः । ४ सदादिमहत्प्रयरूपेण संबटते इत्यादिप्रकारेण । ५ कल्पना भेदः ।
६ यथा स्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादि तथा स्याद्वक्तव्यं स्यादवक्तव्यं स्याद्वक्तव्यावक्तव्यमि-
त्यादिप्रकारेण । ७ वसः । ८ परीक्षायुगे । ९ पत्रस्य । १० अप्रशब्दबहुलम् ।
११ काव्यादेरपि पत्रत्वप्रसङ्गात् । १२ अवाधितम् ।

कथं प्रागुक्तविशेषणविशिष्टं वाक्यं पत्रं नाम, तस्य श्रोत्रसमधि-
गम्यपदसमुद्भवविशेषरूपत्वात्, पत्रस्य च तद्विपरीताकारत्वात् ?
न च यद्यतोऽन्यत्तत्तेन व्यपदेष्टुं शक्यमतिप्रसङ्गादिति चेत्,
'उपचरितोपचारात्' इति ब्रूमः । 'श्रोत्रपथप्रस्थागिनो हि वर्णा-
त्मकपदसमूहविशेषस्वभाववाक्यस्य लिप्यामुपचारस्तत्रास्य जनै-
रातोप्यमाणत्वात्, लिप्युपचरितवाक्यस्यापि पत्रे, तत्र लिखितस्य
तत्रस्थत्वात्' इत्युपचरितोपचारात्पत्रव्यपदेशः सिद्धः । न च
यद्यतोऽन्यत्तत्तेनोपचारादुपचरितोपचाराद्वा व्यपदेष्टुमशक्यम्,
शक्रादन्यत्र व्यवहर्तृजनाभिप्राये शक्रोपचारोपलम्भात्, तस्मा-
च्चान्यत्र काष्ठादादुपचरितोपचाराच्छक्यव्यपदेशसिद्धेः । अथवा १०
प्रकृतस्य वाक्यस्य मुख्य एव पत्रव्यपदेशः—'पदानि प्रायन्ते
गोप्यन्ते रक्ष्यन्ते परेभ्यः स्वयं विलिगीपुणा यस्मिन्वाक्ये
तत्पत्रम्' इति व्युत्पत्तेः । प्रकृतिप्रत्ययादिगोपनाद्धि पदानां
गोपनं विनिश्चितपदस्वरूपतदभिधेयतत्त्वेभ्योपि परेभ्यः सम्भव-
त्येव । तस्योक्तप्रकारस्य पत्रस्यावयवौ कंचिद्भावेव प्रयुज्येते १५
तावतैव साध्यसिद्धेः । तद्यथा—

“स्वान्तभासितमूल्याद्यन्यन्तात्मतदुभान्तवाक् ।

परान्तद्योतितोद्गीतमितीतस्वात्मकर्तृतः ॥” [

इति । अन्त एव ह्यन्तः, स्वार्थिकोऽप्य वानप्रस्थादिवत् । प्रौढि-
पाठापेक्षया सोरान्तः स्वान्तः उच्, तेन भासिता द्योतिता भूति- २०
रुद्भूतिरित्यर्थः । सा आद्या येषां ते स्वान्तभासितमूल्याद्याः ते
च ते ज्यन्ताश्च उद्भूतिव्ययध्रौव्यधर्मा इत्यर्थः । ते एवात्मानः
तांस्तनोतीति स्वान्तभासितमूल्याद्यन्यन्तात्मतत् इति साध्यधर्मः ।
उभान्ता वाग्यस्य तदुभान्तवाक्=विश्वम्, इति धर्मि । तस्य
साध्यधर्मविशिष्टस्य निर्देशः । उत्पादादित्रिस्वभावव्यापि सर्व- २५
मित्यर्थः । परान्तो यस्यासौ परान्तः प्रः, स एव द्योतितं द्योतनमुप-
सर्ग इत्यर्थः । तनोद्गीता चासौ मितिश्च तथा ईतः स्वात्मा यस्य
तत्परान्तद्योतितोद्गीतमितीतस्वात्मकं 'प्रमितिप्राप्तस्वरूपम्' इत्य-
र्थः । तस्य भावस्तत्त्वं 'प्रमेयत्वम्' इत्यर्थः, प्रमाणविषयस्य
प्रमेयत्वव्यवस्थितेः इति साधनधर्मनिर्देशः । ह्यह्यन्ताद्यभावेऽपि ३०
च हेतोर्गमकर्तृत्वम् “यतद्वयमेवानुमानाङ्गम्” [परीक्षामु० ३।३७]

१ षट्स षट्पथ्यपदेशप्रसङ्गात् । २ प्रुप्ति । ३ प्रतिवादिभ्यः । ४ अनुमानवाक्ये ।

५ निषेधः । ६ प्रमेयत्वात् । ७ अपराऽपसमन्नादिः प्रादिः । ८ न्याप्तोति ।

९ परान्तद्योतितेन । १० प्राप्तः । ११ स्वसाध्यप्रतिपादकत्वम् ।

प्र० क० मा० ५८

इत्यत्र समर्थितम् । अन्यथानुपपत्तिवलेनैव हि हेतोर्गमकत्वम्, सा चात्रास्त्येव एकान्तस्य प्रमाणागोचरतया विषयपरिच्छेदे समर्थनात् । एवं प्रतिपाद्याशयवशाद्भिन्नभूतयोग्यवयवाः पञ्चवाक्ये द्रष्टव्याः । तथाहि—

५ “चित्राद्यदन्तराणीयमारेकान्तात्मकत्वतः ।

यदित्थं न तदित्थं न यथाऽकिञ्चिदिति त्रयः ॥ १ ॥

तथा चेदमिति प्रोक्तौ चत्वारोऽवयवा मताः ।

तस्मात्तथेति निर्देशे पञ्च पत्रस्य कस्यचित् ॥ २ ॥”

[पत्रप० पृ० १०]

१० चित्रमेकानेकरूपम्, तदेततीति चित्रात्-एकानेकरूपव्यापि अनेकान्तात्मकमित्यर्थः । सर्वविश्वयदित्यादिसर्वनामपाठापेक्षया यदन्तो विश्वशब्दो ‘यत् अन्ते यस्य’ इति व्युत्पत्तेः । तेन राणीयं शब्दनीयं विश्वमित्यर्थः । तदनेकान्तात्मकं विश्वमिति पक्ष-निर्देशः । आरेका संशयः, सा अन्ते यस्येत्यारेकान्तः प्रमेयः

१५ “प्रमाणप्रमेयसंशय” [न्यायसू० १।१।१] इत्यादिपाठापेक्षया, स आत्मा यस्य तदारेकान्तात्मकम्, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्, इति साधनधर्मनिर्देशः । यदित्थं न भवति यच्चित्रात् न भवति तदित्थं न भवति आरेकान्तात्मकं न भवति यथाऽकिञ्चित्—न किञ्चित् अथवा अकिञ्चित् सर्वथैकान्तवाचभ्युपगतं तत्त्वम् । इति त्रयोऽ-

२० वयवाः पत्रे क्वचित्प्रयुज्यन्ते । तथा चेदमिति पक्षधर्मोपसंहार-वचने चत्वारः । तस्मात्तथाऽनेकान्तव्यापीति निर्देशे पञ्चेति ।

यत्चेदं यौगैः स्वपक्षसिद्ध्यर्थं पत्रवाक्यमुपन्यस्तम्— सैन्यलङ्-
माय नाऽनन्तरानर्थार्थप्रस्वापह्णदाऽऽशौर्दस्यतोऽनीङ्गोनेनलङ्घ्यं कु-
कुलोद्भवो वैषोप्यनैश्यतापेक्षतः ऽचरद्दलद्वन्द्व परापरतत्त्ववित्त-
२५ दन्योऽनादिरवायनीयत्वत एवं यदीदृक् तत्सकलविद्वर्गवदेतच्चैव-
मेवं तदिति पत्रम् । अस्यायमर्थः—इन आत्मा सकलस्यैहिकपार-
लौकिकव्यवहारस्य प्रभुत्वात्, सह तेन वर्तते इति सेनैः । स
एव चातुर्वर्ण्यादिवत्स्वार्थिकै ध्यणि कृते ‘सैन्यम्’ इति भवति ।
तस्य लङ्=विर्लोसः, तं भजते सेवते इति सैन्यलङ्काक्-‘देहः’

१ जैनैः । २ सर्वथा नित्यस्य क्षणिकस्य वा वस्तुनः । ३ अतः सातत्यगमने ।
४ खरविपाणवत् । ५ आरेकान्तात्मकम् । ६ देहः । ७ प्रयोषकरीन्द्रियादिकारण-
कलापः । ८ आसमुद्रात् । ९ गिरिनिकरो भुवनसन्निवेशश्च । १० इनलङ्घ्यं=
सर्वाचन्द्रमसौ । ११ इतिव्यादिकार्यद्रव्यसमूहः । १२ वक्ष्यते स्वयमेव श्रेयसार्थः ।
१३ ज्ञानयोगादिपदार्थः । १४ लङ् विकृते ।

इति यावत् । अर्थः प्रयोजनं तस्मै अर्थार्थः, न अर्थार्थोऽनर्थार्थः । प्रकृतो लौकिकस्वापाद्विलक्षणः स्वापः प्रस्वापः=बुद्ध्यादिगुणवियुक्तस्यात्मनोऽवस्थाविशेषः मोक्ष इति यावत् । न हि तत्साम्यं किञ्चित्प्रयोजनमस्ति; तस्य सकलपुरुषप्रयोजनानामन्ते व्यवस्थानात् । अनर्थार्थश्चासौ प्रस्वापश्च । नन्वेवं सौगतस्वापस्यापि ग्रहणं ५ स्यात्, सोऽपि ह्यनर्थार्थप्रस्वापो भवति सकलसन्ताननिवृत्तिलक्षणस्य मोक्षस्य सौगतैरभ्युपगमात् । तदुक्तम्—

“दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥
जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षम् । १०
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥”
[सौन्दरनन्द १६।२८, २९]

अत्राह—नानन्तरेति । अन्तो विनाशस्तं रति पुरुषाय ददातीत्यन्तरः । नान्तरोऽनन्तरः पुरुषस्य विनाशदायको नेत्यर्थः । अनन्तरास्वापवन्नर्थार्थप्रस्वापश्चानन्तराऽनर्थार्थप्रस्वापः । नेति निपातः १५ प्रतिषेधवाची । नानन्तरानर्थार्थप्रस्वापो लौकिको निद्राकृतः स्वाप इत्यर्थः । तं कृन्तति छिनत्तीति नानन्तरानर्थार्थप्रस्वापकृत्—“प्रबोधकारीन्द्रियादिकारणकलापः” इति यावत् । शिपु इत्ययं धातुर्भावादिकः सेचनार्थः, “जिपु हिपु शिपु विपु उक्ष पृपु वृपु सेचने” [] इत्यभिधानात् । तस्माच्छेपणं भावे घञि कृते २० ‘शेषः’ इति भवति । तस्मात्स्वार्थिकेऽणि कृते ‘शैर्षः’ इति जायते । शैर्षं करोति “तत्करोति तदाचष्टे, तेनातिक्रामति धुरूपं च” [] इति णिचि कृते षेः ‘क्षे च कृते शैपीति भवति । “तदन्ता घवः” [जैनेन्द्रव्या० २।१।३९] इति ध्रुसंज्ञायां सत्यां “प्राग्घोस्ते” [जैनेन्द्रव्या० १।२।१४८] इत्याह योगः । आशेष- २५ यति समन्ताद्भवः सेकं करोतीति किपि तस्य च सर्वापहारेण लोपे ङत्वे च कृते आशैडिति भवति । आशैह चासौ स्यञ्चाशैह स्यत् लोकप्रसिद्धः समुद्रः । तस्मादाशैहस्यतः—आ समुद्रादिति यावत् । निपूर्वं इप् इत्ययं धातुर्गत्यर्थः परिगृह्यते—“इप् गतिर्हिसनयोश्च” [] इति वचनात् । नीपते ३० गच्छतीति नीह, न नीडऽनीह । तस्मात्स्वार्थिके के प्रत्ययेऽनीह इति भवति । अचलो गिरिनिकर इत्यर्थः । यदि वा अं विष्णुं शीषति गच्छति समाश्रयतीत्यनीह=मुवनसन्निवेशः । तदुक्तम्—

१ अन्त्यार्थप्रस्वापः । २ परममोक्षस्य न तु जीवन्मोक्षस्य । ३ ए दाने । ४ शेष एव शैषः । ५ लोपे । ६ ‘ध्रु’ इति धातुसंज्ञा । ७ (भावे) ।

“युगान्तकालप्रतिसंहतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकासमासेते ।
तनौ ममुस्तत्र न कैटमद्विषैस्तपोधैनाभ्यागमसम्भवा मुदः ॥”

[शिशुपालव० १।२३]

न विद्यते ना समवाधिकारणभूतो यस्यासावऽना, “ऋणोः”
५ (नमोः) [जैनेन्द्रव्या० ४।२।१५३] इति कप् सान्तो न भवति
“सान्तो विधिरनित्यः” [] इति परिभाषाश्रयणात् । इनो
भानुः । लपणं लट् कान्तिः—“लप् कान्तौ” []
इति वचनात् । लषा युक् योगो यस्यासौ लड्युक् चन्द्रः । इनश्च
लड्युक् चैनलड्युक् सूर्याचन्द्रमसौ । कुलमिव कुलं सजातीयार-
१० म्भकावयवसमूहः । तस्मादुद्भव आत्मलाभो यस्यासौ कुलोद्भवः
पृथिव्यादिकार्यद्रव्यसमूहः । ‘वा’ इत्यनुक्तसमुच्चये, तेनानित्यस्य
गुणस्य कर्मणश्च ग्रहणम् । एषः प्रतीयमानः । अतो नाश्रयासिद्धिः ।
अङ्गो हितोऽप्यः—समुद्रादिः । निशायाः कर्म नैदयमन्धकारादि ।
ताप औष्ण्यम् । स्तनतीति स्तन् मेघः । एतेषां द्वन्द्वैकवद्भावः ।
१५ किम्भूतः स तैश्च । न विद्यते ना पुरुषो निमित्तकारणमस्येति ।
रटनं परिभाषणं तस्य लङ् विलासः, तं जुषते सेवते इति—“जुषी
प्रीतिसेवनयोः” [] इत्यभिधानात् । अनुरङ्-
लङ्जुद् । अत्रापि कवऽभावे निमित्तमुक्तम् ।

अत्र साध्यधर्ममाह । परापरतत्त्ववित्तदन्य इति । परं पार्थिवा-
२० दिपरमाण्वादिकारणभूतं वस्तु, अपरं पृथिव्यादिकार्यद्रव्यम्,
तयोस्तत्त्वं स्वरूपम्, तस्मिन्विद् बुद्धिर्यस्यासौ परापरतत्त्ववित्-
कार्यकारणविषयबुद्धिमान् पुरुष इत्यर्थः । तस्मात्परैकोक्तदन्यः
परापरतत्त्ववित्तदन्यो बुद्धिमत्कारण इत्यर्थः । यदा नपुंसकेन
सम्बन्धस्तदा परापरतत्त्ववित्तदन्यदिति व्याख्येयम् । कुत एत-
२५ दित्याह—अनादिरवायनीयत्वत इति । कार्यस्य हेतुरादिस्ततः
प्रागेव तस्य भावात् । तस्मादन्योऽनादिः कार्यसन्दोहः । तस्य
रवस्तत्प्रतिपादकं कार्यमिति वचनम् । तेनायनीयं प्रतिपाद्यं तस्य
भावस्तत्त्वम्, तस्मादनादिरवायनीयत्वतः—‘कार्यत्वात्’ इत्यर्थः ।
एवं यदनादिरवायनीयं तदीदृश बुद्धिमत्कारणम् । तत्कला अव-
३० यवा भागा इत्यर्थः, सह कलाभिर्वर्तते इति सकला । वित् आत्म-

१ तिष्ठन्ति । २ नारायणस्य । ३ प्रकारणात्तपोधनोत्र नारदः । ४ सन्तोषाः ।

५ समासान्त इत्यर्थः । ६ हेतोः । ७ अप्यादीनाम् । ८ शुद्धिनिर्दिष्टः सर्वः
नपुंसकलिङ्गनिर्दिष्टं सर्वम् । ९ सामान्यनरः । १० वसिष्ठि । ११ अनुसि-
मत्कारणात् ।

लामो-“विषु लामे” [] इति वचनात् । यस्य सकला वित् वृणोति प्रच्छादयतीत्यौणादिके ने वर्ग इति भवति । सकलविश्वासौ वर्गश्चेति सकलविद्वर्गः-पट इत्यर्थः । तेन तुल्यं वर्तते इति सकलविद्वर्गवत् । एतच्च तन्वादि एवमनादिरवा-यनीयप्रकारं तत्तत्साहचर्यमिदमकारणमिति । तदेतदसमीचीनम्; ५ अनुमानाभासत्वादस्य । तदाभासत्वं च तदवयवानां प्रतिष्ठाहेतू-दाहरणानां कालात्ययापदिष्टत्वाद्यनेकदोषदुष्टत्वेन तदाभासत्वा-स्तिद्वम् । एतच्चेत्स्वरनिराकरणप्रकरणाद्विशेषतोषगन्तव्यम् ।

ननु चोक्तलक्षणे पत्रे केनचित्कर्मज्युहिद्यावलम्बिते तेन च गृहीते भिक्षे च यदा पत्रस्य दातैवं ज्ञायात् ‘नायं मदीयपत्रस्यार्थः’ १० इति, तदा किं कर्तव्यमिति चेत्, तदासौ विकल्प्य प्रष्टव्यः-कोयं भवत्पत्रस्यार्थो नाम-किं यो भवन्मनसि वर्तते सोस्यार्थः, वाक्यरूपात्पत्रात्प्रतीयमानो वा स्यात्, भवन्मनसि वर्तमानः ततोपि च प्रतीयमानो वा प्रकारान्तरासम्भवात् ? तत्र प्रथमपक्षे पत्रावलम्बनमनर्थक्यम् । तद्वि(द्धि)प्रतिवादी समादाय विज्ञा-१५ तार्थस्वरूपस्तत्र दूषणं वदतु विपरीतस्तु निर्जितो भवत्वित्यवलम्ब्यते । यच्च तत्सादर्थ्यः प्रतीयते नासौ तदर्थ इति न तत्र केनचित्साधनं दूषणं वा चकव्यमनुपयोगात् । यस्तु तदर्थो भवचेतसि वर्तमानो नासौ कुतश्चित्प्रतीयते परचेतोवृत्तीनां दुरन्वयत्वौदिति ? तत्रापि न साधनं दूषणं वा सम्भवति । न २० अप्रतीयमानं वस्तु साधनं दूषणं बाह्येत्यतिप्रसङ्गात् । यदि पुनरन्यतः कुतश्चित् प्रतिपक्ष प्रतिवादी तत्र साधनादिकं ज्ञायात्, तर्हि पत्रावलम्बनानर्थक्यम् । तत एव तर्हि तत्पक्षि-अस्तिप्रमेतत्-‘तस्यासार्थ्यो न भवति ततश्च प्रतीयते’ इति, गोशब्दादप्यश्वादिप्रतीतिप्रसङ्गात् । संज्ञिते सति भवतीति चेत्कः २५ संज्ञेतं कुर्यात् ? पत्रदातेति चेत्, किं पत्रदानकाले, वादकाले वा, तथा प्रतिवादिनि, अन्यत्र वा ? तद्दानकाले प्रतिवादिनीति चेत्, न; तथा व्यवहाराभावात् । न खलु कैश्चिद् ‘अयं मम चेत-

१ अनुमानस्य । २ वादिना । ३ प्रतिवादिनस्य । ४ प्रतिवादिना । ५ शातार्थे । ६ अर्थ विचार्य पत्रे खण्डीकृते । ७ प्रतिवादिना । ८ कथम् ? । ९ तत् पत्रम् । १० व्यवहर्तृभिः । ११ प्रमाणात् । १२ अन्वयो=सिद्ध्यः । १३ चेतसि वर्तमाने-येषां । १४ चेतोवर्तमानपत्रार्थस्य । १५ चेतोवर्तमानपत्रार्थे । १६ तस्य चेतसि वर्तमानपत्रार्थस्य । १७ चेतसि वर्तमानः । १८ पत्रादप्रतीयमानोऽपि चेतसि वर्तमा-नपत्रार्थः संज्ञेतकाले तदर्थो मविश्वतीत्याशङ्काह । १९ प्रदानान्तरे । २० पत्रदानकाले प्रतिवादिनि संज्ञेतप्रकारेण । २१ वादी ।

स्यथो वर्त्ततेऽस्येदं पत्रं वाचकमसात्त्वयायमर्थो वादकाले प्रति-
पत्तव्यः' इति सङ्केतं विदधाति । तथा तद्विधाने वा किं पत्रदा-
नेन ? केवलमेवं वक्तव्यम्—'अर्थो मम चेतसि वर्त्तते, अत्र त्वया
साधनं दूषणं वा वक्तव्यम्' इति । दृश्यन्ते साम्प्रतमप्यऽमत्सराः
५ सन्त एवं वदन्तः—'शब्दो नित्योऽनित्य इति वाऽसाकं मनसि
प्रतिभाति, तत्र यदि भवतां दूषणाद्यभिधाने सामर्थ्यमस्ति यामः
सम्भ्यान्तिकम्' इति । कालान्तरेऽविसरैणार्थं तद्दानं चेत्, तर्ह्य-
गूढं पत्रं दातव्यम्, इतरथा तद्दानेपि विसरणसम्भवे किं कर्त्त-
व्यम् ? विसर्तुर्निग्रहश्चेत्, न; पूर्वसङ्केतविधानवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । न
१० तत्प्रसङ्गः प्रतिवादिनः पत्रार्थपरिज्ञानार्थत्वात्तस्येति चेत्, तर्हि
तत्परिज्ञानार्थं विस्मृतसङ्केतस्य पुनस्तद्विधानमेवास्तु, न तु
निग्रहः । यदि च भवच्चित्ते वर्त्तमानोप्यर्थः सङ्केतवलेन पत्रा-
देव प्रतीयते; तर्हि ततो यः प्रतीयते स तदर्थो न मनस्येव वर्त-
मानः । यदि पुनः सङ्केतसहायात्पत्रात्तस्य प्रतीतेर्न तदर्थत्वम्;
१५ तर्हि न कश्चित्कस्यचिदर्थः स्यात् सङ्केतमन्तरेण कुतश्चिच्छब्दा-
दर्थोऽप्रतीतेः । तत्र तद्दानकाले प्रतिवादिनि सङ्केतः । नापि
वादकाले; तथाव्यवहारविरहादेव । किं च वादकालेपि चेद्वादी
प्रतिवादिने स्वयं पत्रार्थं निवेदयति; तर्हि प्रथमं पत्रग्रहीतुरुपन्या-
सोऽनवसरः स्यात् । तत्रायमपि पक्षः श्रेयान् ।

२० अथान्यत्र; तर्हि स एव तदर्थज्ञः, इति कथं प्रतिवादी साधना-
दिकं वदेत् तस्य तदर्थोऽपरिज्ञानात् ? प्रतिवादिनस्तदर्थोपरिज्ञानं
वादिनोमीष्टमेव तदर्थत्वात्पत्रदानस्येति चेत्; तर्हि पत्रमनक्षरं
दातव्यमतः सुतरां तदपरिज्ञानसम्भवात् । अशिष्टचेष्टाप्रसङ्गोऽन्य-
त्रापि समानः । इति न किञ्चित्प्रागुक्तलक्षणपत्रदानेन प्रयोजनम् ।

२५ ननु वादप्रवृत्तिः प्रयोजनमस्त्येव—तद्दाने हि वादः प्रवर्त्तते,
साधनाद्यभिधानं तु मानसार्थं वचनान्तरात्प्रतीयमान इत्यभि-
धाने तु पराक्रोशमात्रं लिखित्वा दातव्यं ततोपि वादप्रवृत्तेः
सम्भवात् किमितिगूढपत्रविरचनप्रयासेन ? तत्राद्यपक्षे पत्राव-
लम्बनं फलवत् ।

अथ तच्छब्दाद्यः प्रतीयते स तदर्थः; तर्हि खात्पतिता नो
३० रत्नवृष्टिः प्रकृतिप्रत्ययादिप्रपञ्चार्थप्रविभागेन प्रतीयमानस्य पत्रा-
र्थत्वव्यवस्थितेः । अथ नायं तदर्थः; कथमन्यस्तदर्थः स्यात् ?

१ प्रतिवादिना । २ तर्हि किं ज्ञेयः । ३ सङ्केतितावयः । ४ कर्त्तव्य इति ज्ञेयः ।
५ पुरुषान्तरे । ६ अन्यः । ७ स्वमनसि व्यवस्थितार्थः । ८ नसाकम् । ९ तिरोऽ-
सदीयः पक्ष इत्यर्थः ।

अथान्यार्थसम्भवेऽपि यस्तदवर्त्मनेऽप्युच्यते स एव तदर्थः । कुत
एतत् ? ततः प्रतीतेऽप्येव । अन्योऽप्येव एव स्यात् । अथ ततः
प्रतीयमानत्वाविशेषेऽपि यस्तेनेऽप्युच्यते स एव तदर्थो नान्यः, ननु
शब्दः प्रमाणम्, अप्रमाणं वा ? प्रमाणं चेत्, तर्हि तेन यावानर्थः
प्रदर्श्यते स सर्वोऽपि तदर्थ एव । न खलु चक्षुषानेकस्मिन्नर्थे
घटादिके प्रदर्श्यमाने 'तद्वत्ता य इष्यते स एव तदर्थो नान्यः'
इति युक्तम् । अथाप्रमाणम्, तर्हि तेनेऽप्युच्यमाणोऽपि नार्थः । न हि
द्विचन्द्रादिकस्तद्दर्शनेऽप्युच्यमाणोऽर्थो भवितुमर्हति, अन्यथा परेणे-
ऽप्युच्यमाणोऽर्थो किं न स्यात् । तन्नायमपि पक्षो युक्तः ।

ततो यः प्रतीयते तद्वातुऽप्येव तसि च वर्तते स तदर्थः, इत्यत्रापि- १०
केनेदमवगम्यताम् वादिना, प्रतिवादिना, प्राश्निकैर्वा ? तत्राद्यवि-
कल्पे प्रतिवादिना वादिमनोर्यानुकूल्येन पत्रे व्याख्याते वादिना
तथावधारितेऽपि स वैर्यात्याद्यदैवं वदति 'नायमर्थोऽर्थो मम चेत्-
स्यान्यस्य वर्त्तनात्, विपरीतप्रतिपक्षेर्निगृहीतोऽसि' इति तदा किं
कर्तव्यं प्राश्निकैः ? तथाभ्युपगम्येत्, महामध्यस्थास्ते यत्सदर्थ- १५
प्रतिपादकस्यापि प्रतिवादिनो निग्रहं व्यवस्थापयन्ति वाद्यभ्युपग-
ममात्रेण । न तावन्मात्रेणास्य निग्रहोऽपि तु यदा वादी स्वमनोग-
तमर्थान्तरं निवेदयतीति चेत्, ननु 'तेन निवेद्यमानमर्थान्तरं
पत्रस्याभिधेयम्' इति कुतोऽवगम्यताम् ? तदप्रतिपक्षेन निवे-
दनाच्चेत्, तत एव प्रतिवादिप्रतिपाद्यमानोऽप्यर्थस्तदभिधेयोऽस्तु २०
विशेषाभावात् । वादिचेतस्यऽस्फुरणाच्चेति चेत्, इदमपि कुतो-
ऽवगम्यताम् ? तत्रार्थदर्शनाच्चेत्, किं पुनस्तच्चेतः प्राश्निकानां
प्रत्यक्षं येनैवं स्यात् ? तथा चेत्, अतीन्द्रियार्थदर्शिनस्तर्हि प्राश्नि-
कैर्भवेत्तत्त्वं नेतरपण्डितैः । तथा च प्रत्यक्षत एव वादिप्रतिवा-
दिनोः सारेतरविभागं निश्चायोपन्यासमन्तरेणैव अथैतरव्यवस्थां २५
रचयेयुः । नो चेत्कथं तत्र कस्यचित्स्फुरणमस्फुरणं वा ते
प्रतियन्तु ? न ह्यप्रतिपक्षभूतलस्य 'अत्र भूतले घटोऽस्ति नास्ति'
इति वा प्रतीतिरस्ति । अथ स्वयमेव यदासौ वदति- 'ममायमर्थो
मनसि वर्तते नायम्' इति तदा ते तथा प्रतिपद्यन्ते, न; तदापि
संदेहात्- 'किं प्रतिवादिना योऽर्थो निश्चितः स एवास्य मनसि ३०
वर्तते शब्देन तु वदति नायमर्थो मम मनसीति किन्त्वन्य एव-यो
मया प्रतिपाद्यते, उतायमेव, इति न निश्चयहेतुः । इदयन्ते ह्यने-

१ वादिना । २ पत्रं गृहीत्वा । ३ पत्रात् । ४ वाद्यार्थः । ५ पत्रस्य ।
६ स्वीकर्तव्यः । ७ वादी । ८ प्रतिवादिनिग्रहमानार्थस्य वादिचेतसि स्फुरण-
स्फुरणप्रकारेण । ९ इति चेदिति शेषः ।

कार्थं पत्रं विरचय्य, 'यदीदमस्यार्थतत्त्वं प्रतिवादी ज्ञास्यति तद्धोवं वदिष्यामः, नैदमर्थतत्त्वमस्य किन्त्विदमिति, अथेदं ज्ञास्यति तत्राप्यन्यथा गदिष्यामः' इति सम्प्रधारयन्तो वादिनः । अथ गुर्वादिभ्यः पूर्वमसौ तैश्चिवेदयति, तैस्तस्तेभ्यः प्राश्निकानां तैश्चि-
 ५ श्रयः, नैः अत्राप्यारेकाऽनिवृत्तेः, स्वशिष्यपक्षपातेनान्यथापि तेषां वचनसम्भवात् । यदि पुनर्वादी वादप्रवृत्तेः प्राक् प्राश्निकेभ्यः प्रतिपादयति—'मदीयपत्रस्यायमर्थः, अत्रार्थान्तरं ब्रुवन् प्रति-
 वादी भवद्भिर्निवारणीयः' इति । अत्रापि प्रागप्रतिपन्नपत्रार्थानां महामध्यस्थानामुभयाभिमतानामकस्मादाहृतानां सभ्यानां
 १० मध्ये निवादकरणे का वार्त्ता? 'पत्राद्यः प्रतीयते स एव तत्र तदर्थः' इति चेत्, अन्यत्रापि स एवास्त्वविशेषात् । तत्राद्यः पक्षो युक्तः ।

नापि द्वितीयः । न खलु प्रतिवादी वादिमनो जानाति येन 'योस्य मनसि वर्त्तते स एव मयार्थो निश्चितः, इति जानीयात् ।
 १५ एतेन' तृतीयोपि पक्षश्चिन्तितः, सभ्यानामपि तन्निश्चयोपायमा-
 वात् । किञ्चेदं पत्रं तदातुः स्वपक्षसाधनवचनम् परपक्षदूषणव-
 चनम्, उभयवचनम् वा? तत्राद्यविकल्पत्रये सभ्यानामग्रे त्रिरुच्चारणीयमेव तत्रैवापि नैपम्यात् । तथोच्चारि-
 तमपि यदा प्राश्निकैः प्रतिवादिना च न ज्ञायते वाद्यऽभिप्रेतार्था-
 २० नुक्कल्येन तदा तदातुः किं भविष्यति? निग्रहः, "त्रिरभिहितस्यापि
 कष्टप्रयोगदुतोच्चारदिभिः परिपदा प्रतिवादिना चाज्ञातमज्ञातं
 नाम निग्रहस्थानम्" [न्यायसू० ५।२।९] इत्यभिधानात्, इति
 चेत्, तस्य तर्हि स्वधाय कृत्योत्थापनम् उक्तविधिना सर्वत्र
 तदज्ञानसम्भवात् । तत्रैवन्मात्रप्रयोगाच्च स्वपरपक्षसाधनदूषणमात्रे
 २५ प्रतिवाद्युपन्यासमनपेक्ष्यैव सभ्याः वादिप्रतिवादिनोर्जयेतरव्य-
 वस्थां कुर्युः । चतुर्थपक्षे तु तन्निग्रहः सुप्रसिद्ध एव; स्वपरपक्षयोः
 साधनदूषणाऽप्रतिपादनात् । इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

अथेदानीमात्मनः प्रारब्धनिर्वहणमौद्धत्यपरिहारं च सूचयन्
 परीक्षामुखेत्याद्याह—

१ निवेदनयोगे चतुर्थी । २ वादी । ३ पत्रार्थम् । ४ निवेदनात् । ५ पदार्थः ।
 ६ इति चेदिति शेषः । ७ पक्षे । ८ न कापि । ९ अकस्मादाहृतेषु । १० पूर्व-
 प्राश्निकेभ्यः । ११ उभयपक्षनिराकरणेन । १२ स्वपरपक्षसाधनदूषणकारकपत्रम् ।
 १३ राक्षसी । १४ परिपदि । १५ तस्य—पत्रार्थस्य । १६ स्वपरपक्षसाधन-
 दूषणकारकपत्रम् । १७ परीक्षायाः ।

**परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः
संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद्व्यधाम् ॥१॥**

परीक्षा तर्कः, परि समन्तादशेषविशेषत ईक्षणं यत्रार्थ-
नामिति व्युत्पत्तेः । तस्या मुखं तद्व्युत्पत्तौ प्रवेशार्थिनां
प्रवेशद्वारं शास्त्रमिदं व्यधामहं विहितवानस्मि । पुनस्तद्विशेष-
णमादर्शमित्याद्याह । आदर्शधर्मसङ्गावादिदमप्यादर्शः । यथैव
ह्यादर्शः शरीरालङ्कारार्थिनां तन्मुखमण्डनादिकं विरूपकं हेयत्वेन
सुरूपकं चोपादेयत्वेन सुस्पष्टमादर्शयति तथेवमपि शास्त्रं हेयो-
पादेयतत्त्वे तथात्वेन प्रस्पष्टमादर्शयतीत्यादर्श इत्यभिधीयते ।
तदीदृशं शास्त्रं किमर्थं विहितवान् भवानित्याह । संविदे । कस्ये-
त्याह मादृशः । कीदृशो भवान् यत्सदृशस्य संवित्त्वर्थं शास्त्रमि-
दमारभ्यते इत्याह-बालः । एतदुक्तं भवति-यो मत्सदृशोऽल्प-
प्रज्ञस्तस्य हेयोपादेयतत्त्वसंविदे शास्त्रमिदमारभ्यते इति ।
किंचत् ? परीक्षादक्षवत् । यथा परीक्षादक्षो महाप्रज्ञः स्वसदृश-
क्षिप्यव्युत्पादनार्थं विशिष्टं शास्त्रं विदधाति तथाहमपीदं विधि-
तवानिति । ननु चाल्पप्रज्ञस्य कथं परीक्षादक्षवत् प्रारब्धैवविध-
विशिष्टशास्त्रनिर्बहणं तस्मिन्वा कथमल्पप्रज्ञत्वं परस्परविरोधात् ?
इत्यप्यचोद्यम्, औद्धत्यपरिहारमात्रस्यैवैवमात्मनो ग्रन्थकृता
प्रदर्शनात् । विशिष्टप्रज्ञासङ्गावस्तु विशिष्टशास्त्रालक्षणकार्योपल-
म्भादेवास्याऽवसीयते । न खलु विशिष्टं कार्यमविशिष्टादेव कार-
णात् प्रादुर्भावमर्हत्यतिप्रसङ्गात् । मादृशोऽवाल इत्यत्र नञ् वा
द्रष्टव्यः । तेनायमर्थः-यो मत्सदृशोऽवालोऽनल्पप्रज्ञस्तस्य हेयो-
पादेयतत्त्वसंविदे शास्त्रमिदमहं विहितवान् । यथा परीक्षादक्षः
परीक्षादक्षार्थं विशिष्टशास्त्रं विदधातीति । ननु चानल्पप्रज्ञस्य
तत्संविच्छेर्भवत इव स्वतः सम्भवाच्चं प्रति शास्त्रविधानं व्यर्थमेव; २५
इत्यप्यसुन्दरम्, तद्गृहणेऽनल्पप्रज्ञासङ्गावस्य विशिष्य विवक्षि-
तत्वात् । यथा ह्यहं तत्करणेऽनल्पप्रज्ञस्तज्ज्ञस्तथा तद्गृहणे योऽन-
ल्पप्रज्ञस्तं प्रतीदं शास्त्रं विहितम् । यस्तु शास्त्रान्तरद्वारेणा-
वगतहेयोपादेयस्वरूपो न तं प्रतीत्यर्थं इति ।

इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे

३०

धृष्टः परिच्छेदः समाप्तः ॥ छ ॥

- गर्भमीरं निखिलार्थगोचरमलं शिष्यप्रबोधप्रदम्,
 यद्भक्तं पदमद्वितीयमखिलं माणिक्यनन्दिप्रभोः ।
 तद्व्याख्यातमदो यथावगमतः किञ्चिन्मया लेशतः,
 स्थेयाच्छुद्धधियां मनोरतिगृहे चन्द्रार्कतारावधि ॥ १ ॥
- ५ मोहैध्वान्तविनाशनो निखिलतो विज्ञानशुद्धिप्रदः,
 मेयानन्तनभोविसर्पणपटुर्वस्तुकिभाभासुरः ।
 शिष्याब्जप्रतिबोधनः समुदितो योऽद्रेः परीक्षामुखात्,
 जीयात्सोत्र निबन्ध एष सुचिरं मार्त्तण्डतुल्योऽमलः ॥ २ ॥
- शुद्धः श्रीनैन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः ।
 नन्दताडुरितैकान्तरजाजैनमतार्णवः ॥ ३ ॥
- १० श्रीपद्मनन्दिस्सैद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः ।
 प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयाद्रत्ननन्दिपदे रतः ॥ ४ ॥
- श्रीभोजदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपरमेष्ठिपद्म-
 णामार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्र-
 १५ पण्डितेन निखिलप्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्घोतपरीक्षामुख्यपदमिदं
 विवृतमिति ॥

(इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचितः प्रमेयकमलमार्त्तण्डः समाप्तः)

॥ शुभं भूयात् ॥

१ अयेदानीं माणिक्यनन्दिपदव्यावर्णेनपूर्वकं तत्पदाशीर्वादपूर्वकं चात्मनः प्रारब्ध-
 निर्वहणमौदत्यपरिहारं च सूचयन्नाह गम्भीरेत्यादि । २ अप्रमितम् । ३ मार्त्तण्ड
 इत्यस्योपपत्तिं दर्शयति । ४ स्तम्भ । ५ माणिक्यनन्दी ।

प्रमेयकमलमार्तण्डस्य

॥ परिशिष्टानि ॥

प्रथमं परिशिष्टम् । परीक्षामुखसूत्रपाठः ।

॥ प्रथमः परिच्छेदः ॥

प्रमाणादर्थसिद्धिस्तदामासाद्विपर्ययः ।	४०
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्य सिद्धमल्पं लघीयसः ॥ १ ॥	२
१ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ।	७
२ हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ।	२५
३ तत्तद्विश्वयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ।	२७
४ अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ।	५९
५ दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक् ।	५९
६ स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ।	९८
७ व्यर्थस्यैव तदुन्मुखतया ।	९८
८ घटमहमात्मना वेदि ।	१२१
९ कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः ।	१२१
१० वाक्यानुवारेणोऽपि स्वस्यानुमानवत् ।	१२८
११ को वा तत्प्रतिभासः । स्वस्वरूपेण तथा चेच्छेदः ।	१४९
१२ प्रदीपवत् ।	१४९
१३ तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति ।	१४९

॥ द्वितीयः परिच्छेदः ॥

१ तद्वैषा ।	१७७
२ प्रत्यक्षेतरमेवात् ।	१८०
३ विशदं प्रत्यक्षम् ।	२१६
४ प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैयर्थ्यम् ।	२१९
५ इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः साव्यवहारिकम् ।	२२९
६ नार्थालोको कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ।	२३१
७ तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केचोऽण्डुकज्ञानवत्तद्विज्ञानवत् ।	२३३
८ अतस्तन्मयमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत् ।	२३९
९ स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिबिम्बितमर्थं व्यवस्थापयति ।	२४०
१० कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः ।	२४०
११ सामग्रीविशेषविच्छेदिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम् ।	२४१
१२ सावरणत्वे कारणजन्यत्वे च प्रतिबन्धसम्भवात् ।	२४१

॥ तृतीयः परिच्छेदः ॥

५०

१ परोक्षमितरत् ।	३३५
२ प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम् ।	"
३ संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः ।	—"
४ स देवदत्तो यथा ।	"
५ दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानम् । तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि ।	३३८
६ यथा स एवायं देवदत्तः । ७ गोसदृशो गवयः ।	३४०
८ गोविलक्षणो महिषः । ९ इदमस्माद् दूरम् ।	"
१० वृक्षोऽयमित्यादि ।	"
११ उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः ।	३४८
१२ इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति न भवत्येवेति च ।	३४९
१३ यथाऽभावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च ।	"
१४ साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् ।	३५४
१५ साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ।	"
१६ सहकमभावनियमोऽविनाभावः ।	३६९
१७ सहचारिणोर्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः ।	"
१८ पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः ।	"
१९ तर्कान्तर्निर्णयः ।	"
२० इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ।	"
२१ सन्दिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदम् ।	"
२२ अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं माभूदतिष्टाबाधितवचनम् ।	३७०
२३ न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ।	"
२४ प्रत्यायनाय हीन्हा वक्तुरेव ।	"
२५ साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी ।	३७१
२६ पक्ष इति यावत् ।	"
२७ प्रसिद्धो धर्मी ।	"
२८ विकल्पसिद्धे तस्मिन्सत्तरे साध्ये ।	"
२९ अस्ति सर्वज्ञो नास्ति खरविषाणम् ।	"
३० प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ।	३७२
३१ अभिमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा ।	"
३२ व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव ।	"
३३ अन्यथा तदघटनात् ।	"
३४ साध्यधर्मोधारसन्दिग्हापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ।	३७३
३५ साध्यधर्मिणि साधनधर्मोद्बोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् ।	"
३६ को वा त्रिषा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पश्यति ।	"

- ३७ एतद्भयमेवानुमानाज्ञं नोदाहरणम् । ३७४
- ३८ न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यज्ञं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापरात् । ३७५
- ३९ तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः । ३७५
- ४० व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्ताव-
नवस्थानं स्यात् दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् । ३७६
- ४१ नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्सृतेः । ३७६
- ४२ तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति । ३७६
- ४३ कुतोऽन्यथोपनयनिगमने । ३७७
- ४४ न च ते तदज्ञे । साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवासंज्ञात् । ३७७
- ४५ समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वाऽस्तु साध्ये तदुपयोगात् । ३७७
- ४६ बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्रयुपगमे शास्त्र एवासी न वादेऽनुपयोगात् । ३७७
- ४७ दृष्टान्तो द्वेष्टा । अन्यव्यतिरेकमेवात् । ३७७
- ४८ साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः । ३७८
- ४९ साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः । ३७८
- ५० हेतोर्वपसंहार उपनयः । ३७८
- ५१ प्रतिज्ञायास्तु निगमनम् । ३७८
- ५२ तदनुमानं द्वेष्टा । ३७८
- ५३ स्मार्थपरार्थमेवात् । ३७८
- ५४ स्मार्थमुक्तकथनम् । ३७८
- ५५ परार्थं तु तदर्थपरमार्थनिवचनात्मातम् । ३७८
- ५६ तद्वचनमपि तदेतुल्यम् । ३७८
- ५७ स हेतुर्वैधोपलब्ध्यनुपलब्धिमेवात् । ३७८
- ५८ उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च । ३७९
- ५९ अविरोद्धोपलब्धिर्विधौ बोद्धा व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरमेवात् । ३७९
- ६० रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित्कारणं
हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये । ३८०
- ६१ न च पूर्वोत्तरातिरिक्तोत्पादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः । ३८०
- ६२ भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्वोधयोरपि जातिद्वोद्वोधो प्रति हेतुत्वम् । ३८१
- ६३ तत्त्वापाराश्रितं हि तद्वानभाषितम् । ३८१
- ६४ सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च । ३८३
- ६५ परिणामी शब्दः, कृतकत्वात्, य एवं स एवं दृष्टो यथा घटः,
कृतकव्यायम्, तस्मात्परिणामी, यस्तु न परिणामी स न कृतको
दृष्टो यथा वन्ध्यास्त्रनन्धयः, कृतकव्यायम्, तस्मात्परिणामी । ३८४
- ६६ अस्त्यत्र देहिनि बुद्धिर्व्याहारादेः । ३८४
- ६७ अस्त्यत्र छाया छत्रात् । ३८४
- ६८ उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् । ३८४

६९ उदगाद्भरणिः प्राप्त एव ।	४८
७० अस्त्रत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात् ।	३८४
७१ विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा ।	"
७२ नास्त्रत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ।	३८५
७३ नास्त्रत्र शीतस्पर्शो धूमात् ।	"
७४ नास्त्रिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ।	"
७५ नोदेष्यति सुहृर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात् ।	"
७६ नोदगाद्भरणिर्मुहूर्तात्पूर्वं पुष्पोदयात् ।	"
७७ नास्त्रत्र भित्तौ परमागाभावोऽर्वागभागदर्शनात् ।	"
७८ अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा सभावव्यापककार्यकारणपूर्वो- त्तरसहचरानुपलम्भमेदात् ।	३८६
७९ नास्त्रत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः ।	"
८० नास्त्रत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः ।	३८८
८१ नास्त्रत्राप्रतिषेद्धसामर्थ्योऽभिर्धूमानुपलब्धेः ।	"
८२ नास्त्रत्र धूमोऽन्तेः ।	"
८३ न भविष्यति सुहृर्तान्ते शकटं कृत्तिकोदयानुपलब्धेः ।	"
८४ नोदगाद्भरणिर्मुहूर्तात्प्राक् तत एत ।	"
८५ नास्त्रत्र समतुलयायुष्मामो नामानुपलब्धेः ।	"
८६ विरुद्धानुपलब्धिर्विधौ त्रेधा । विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिमेदात् ।	"
८७ यथाऽस्मिन्प्राणिनि व्याधिविरोधोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः ।	"
८८ अस्त्रत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ।	"
८९ अनेकान्तात्मकं वस्त्वैकान्तस्वरूपानुपलब्धेः ।	३८९
९० परम्परया सम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम् ।	"
९१ अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ।	"
९२ कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ।	"
९३ नास्त्रत्र सुग्रायां मृगक्रीडनं सुगारिसंशब्दनात् कारणविरुद्धकार्य विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा ।	"
९४ व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा ।	३९०
९५ अभिमानयं देशस्त्यैव धूमवत्तपोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा ।	"
९६ हेतुप्रयोगो हि यथाव्याप्तिप्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते ।	"
९७ तावता च साध्यसिद्धिः ।	"
९८ तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः ।	"
९९ आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ।	३९१
१०० सहजयोग्यतासङ्केतवशादि शब्दादयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ।	४२७
१०१ यथा मेवादयः सन्ति ।	४२८

पृ०

॥ चतुर्थः परिच्छेदः ॥

- १ सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः । ४६६
- २ अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरज्ञात्पूर्वोत्तराकारपरिहारनाप्तिस्थितिलक्षण-
परिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च । ”
- ३ सामान्यं द्वेषा, तिर्यग्ध्वंसाभेदात् । ”
- ४ सदृशपरिणामस्तिर्यक्, खण्डमुण्डादिषु गोलवत् । ४६७
- ५ परापरविवर्तव्यापिद्व्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु । ४८८
- ६ विशेषश्च । ५२०
- ७ पर्यायव्यतिरेकभेदात् । ”
- ८ एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत् । ”
- ९ अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् । ५२४

॥ पञ्चमः परिच्छेदः ॥

- १ अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम् । ६२४
- २ प्रमाणादभिर्ज्ञं मिश्रम् । ६२४
- ३ यः प्रमिनीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहासादत्त उपेक्षते चेति प्रतीतेः । ६२८

॥ षष्ठः परिच्छेदः ॥

- १ ततोऽन्यत्तदामासम् । ६२९
- २ अस्मत्संविदितगृहीतार्थदर्शनसंज्ञयादयः प्रमाणाभासाः । ”
- ३ स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् । ”
- ४ पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छतृणस्पर्शस्थानुपुरुषादिज्ञानवत् । ”
- ५ चक्षुरस्योर्ध्वे संयुक्तसमवायवच्च । ”
- ६ अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदामासं बौद्धस्याकस्माद्भूतदर्शनाद्वह्निविज्ञानवत् । ६२९
- ७ वैशद्येऽपि परोक्षं तदामासं भीमांसकस्य करणज्ञानवत् । ६३०
- ८ अतस्मिन्सदिति ज्ञानं स्मरणाभासम्, जिनदत्ते स देवदत्तो यथा । ”
- ९ सदृशो तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमलकवदित्यादि
प्रत्यभिज्ञानाभासम् । ”
- १० असम्बन्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम्, यावत्स्तरपुत्रः स इयामो रथ्रा । ”
- ११ इदमनुमानाभासम् । ”
- १२ तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः । ”
- १३ अनिष्टो भीमांसकस्यानित्यः शब्दः । ६३१
- १४ सिद्धः आशयः शब्दः । ”
- १५ बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनेः । ”
- १६ अनुष्णोऽभिर्द्रव्यत्वाच्चलवत् । ”
- १७ अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् घटवत् । ”

१८	प्रेयासुखप्रदो धर्मः पुरुषाभितलादधर्मवत् ।	४०
१९	शुचि नरशिरःकपालं प्राण्यतलाच्छङ्खशुक्तिवत् ।	६३१
२०	माता मे वन्ध्या पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भलातप्रसिद्धवन्ध्यावत् ।	६३२
२१	हेलाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराः ।	॥
२२	असत्त्वतानिश्चयोऽसिद्धः ।	॥
२३	अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाशुषलात् ।	॥
२४	स्वरूपेणासत्त्वात् ।	॥
२५	अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यगिरत्र धूमात् ।	६३४
२६	तस्य चाष्पादिभावेन भूतसत्ताते सन्देहात् ।	॥
२७	सांख्यं प्रति परिणामी शब्दः कृतकलात् ।	॥
२८	तेनाज्ञातलात् ।	॥
२९	विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकलात् ।	६३५
३०	विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरेकान्तिकः ।	६३७
३१	निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयलात् घटवत् ।	॥
३२	आकाशे निक्षेप्यस्य निश्चयात् ।	॥
३३	शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृलात् ।	॥
३४	सर्वज्ञत्वेन वक्तृलाविरोधात् ।	६३८
३५	सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः ।	६३९
३६	सिद्धः आगणः शब्दः शब्दलात् ।	॥
३७	किञ्चिदकरणात् ।	॥
३८	यथाऽनुष्णोऽभिर्द्रव्यलादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमसक्यलात् ।	॥
३९	लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टलात् ।	॥
४०	दृष्टान्ताभासा अन्येऽसिद्धसाध्यसाधनोभयाः ।	६४०
४१	अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत् ।	॥
४२	विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम् ।	॥
४३	विद्युदादिनाऽतिप्रसङ्गात् ।	॥
४४	व्यतिरेकेऽसिद्धतव्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत् ।	॥
४५	विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम् ।	६४१
४६	बालप्रयोगाभासः पञ्चानयवेषु कियद्दीनता ।	॥
४७	अभिमानयं देशो धूमवत्त्वात् यदित्यं तदित्यं यथा महानस इति ।	॥
४८	धूमवांश्चायमिति वा ।	॥
४९	तस्मादभिमानं धूमवांश्चायमिति ।	॥
५०	स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ।	॥
५१	रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाच्चातमागमाभासम् ।	६४२
५२	यथा नद्यास्तीरे मोदकरावायः सन्ति चावर्ण्यं माणवकः ।	॥
५३	अङ्गुल्यग्रे हस्तियूयशतमात्र इति च ।	॥

५४	विसेवादात् ।	५०
५५	प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ।	६४२
५६	लौक्यातिक्रम्य प्रत्यक्षतः परलोकमिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेशासि- द्धेरतद्विषयत्वात् ।	६४३
५७	सौगतसंख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमा- नार्थापत्त्यभावेरेकैकाधिकैर्व्याप्तिवत् ।	”
५८	अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम् ।	”
५९	तर्कस्यैव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वम् अप्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात् ।	”
६०	प्रतिभासभेदस्य च भेदकत्वात् ।	”
६१	विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम् ।	”
६२	तथाऽप्रतिभासनात्कार्याकरणाच्च ।	६४४
६३	समर्थस्य करणे सर्वदोषप्रतिरूपेकत्वात् ।	”
६४	परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात् ।	”
६५	स्वयमसमर्थस्य अकारकत्वात्पूर्ववत् ।	”
६६	फलभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा ।	”
६७	अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः ।	”
६८	व्यावृत्त्याऽपि न तत्कल्पना फलान्तराव्यावृत्त्याऽफलप्रसङ्गात् ।	”
६९	प्रमाणाव्यावृत्त्येवाप्रमाणत्वस्य ।	”
७०	तस्माद्व्यस्त्यो भेदः ।	”
७१	भेदे ज्ञात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः ।	६४५
७२	समवायेऽतिप्रसङ्गः ।	”
७३	प्रमाणतदाभासौ बुद्धययोर्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ चादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च ।	”
७४	समवदन्यद्विचारणीयम् ।	६७६

परीक्षासुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः ।

संविदे माह्वो बालः परीक्षादक्षवद्व्याधाम् ॥ १ ॥

६६३

इति परीक्षासुखसूत्रं समाप्तम् ।

द्वितीयं परिशिष्टम् ।

अमेयकमलमार्त्तण्डगतानामवतरणानां सूचिः ।

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
अकथितम् [जैनेन्द्र व्या० १।२।१२०]	७ १
अकर्म कर्म []	६२१ ११
अकुर्वन् विहितं कर्म []	३०९ २१
अमिस्त्रभावः शाकस्य [प्रमाणवा० ३।३।५]	५१३ १३
अग्नेरपत्यं प्रथमं [रामता० उ० ६।५]	५९७ १९
अमेरुध्वज्वलनं [प्रश्न० न्यो० पृ० ४११]	२७४ २
अगोनिवृत्तिः सामान्यं [मी० श्लो० अपोह० श्लो० १]	४३३ ७
अज्ञो जन्तुरनीघोऽयं [महाभा० वनपर्व ३०।२८]	५८० १२
अत इदमिति यत्- [वैशे० सू० २।२।१०]	५६८ १७
अतद्भेदपरान्त- []	१८१ १७
अतीतानागतौ कालौ [तत्त्वसं० पृ० ६४३ पूर्वपक्षे]	३९८ २८
अतीतकालानां [प्रमाणवा० खट्व० १।१३]	३८१ २
अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ [न्यायनि० पृ० ३९]	७८ १५
अत्र ब्रूमी यदा [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८०]	४०८ ७
अथ तद्वचनेनैव [तत्त्वसं० पृ० ८३२ पूर्वपक्षे]	२५० १३
अथ ताम्रप्यनिर्ज्ञानं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१३]	४१६ २३
अथ शब्दोऽर्थवत्त्वेन [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६२-६३]	१८४ ४
अथ स्थणितमप्येतद्- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३३]	४२२ २१
अथान्यथा विद्योच्येयि [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९०]	४३८ १२
अथान्यदप्रयत्नेन []	१७५ ३
अथापीन्द्रियसंस्कारः [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६९]	४२४ ६
अथाऽसंख्यपि साहचर्ये [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ७६]	४३५ ३
अर्थवत्प्रमाणम् [न्यायभा० पृ० १]	२३७ १४
अर्थसहकारितया- []	२३५ १७
अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन- [न्यायसू० ५।२।१५]	३७२ २६
अर्थापत्तितः प्रसिद्ध- [न्यायसू० ५।१।२१]	६५७ ३
अर्थापत्तिरियं चोक्ता [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २३७]	४०५ २०
अर्थापरस्यावगम्यैव [मी० श्लो० अर्था० श्लो० ७]	१८८ २०
अर्थेन घटयत्वेनां [प्रमाणवा० ३।३०५]	१०७-१, ४७० ११
अदृष्टसंगतत्वेन [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४९]	४१० १४

अवतरणम्

पृष्ठं पङ्क्तिः

अधिष्ठानादुल्लाच [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८७]	४०८	२५
अज्ञादिनिधनं शब्द- [वाक्यप० १११]	३९	१३
अनादेरागमस्यार्थो- []	२५०	११
अनिग्रहस्थाने निग्रह- [न्यायसू० ५।२।११]	६६९	२६
अनिर्दिष्टफलं []	३	७
अनेकदेशवृत्तौ च [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९०]	४०९	५
अनैकान्तिकता तावद्धे- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९]	४२२	१४
अन्यथैवाग्निसम्बन्धा- [वाक्यप० २।४२५]	४४३-१८, ४४७	२
अन्यदेवेन्द्रियग्राह्य- []	४४६	१३
अन्यधियो गतेः []	३२५	९
अन्यार्थं प्रेरितो वायुर्य- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८०]	४२३	७
अन्ये तु चोदयन्त्यत्र [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८३]	४०८	१५
अन्यैस्त्वादिसंयोगै- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८१]	४२३	९
अन्वयेन विना तावद्- []	१८५	७
अन्वयो न च शब्दस्य [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८५]	१८४	१९
अपरस्मिन् परं [वैशे० सू० २।२।६]	५६४	२१
अपूर्वकर्मणामाश्रयनिरोधः [तत्त्वार्थसू० ९।१]	२४५	७
अप्रत्यक्षोपलम्भस्य []	२९	२०
अप्राप्तकर्णदेशलाद- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ७०]	४२४	८
अप्रामाण्यं त्रिधा भिन्नं [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५४]	१६१	९
अप्सु गन्धो रसश्चासी [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ६]	१९१	१
अप्सुर्यदधिनीं नित्यं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८६]	४०८	२३
अभावगम्यरूपे च [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९१]	४३८	१४
अभ्यासात्पक्वविज्ञानः [प्रश्न० व्यो० पृ० २० ख०]	३१०	३
अयमर्थो नायमर्थ [प्रमाणवा० २।३।१२]	४३१	५
अयमेवेति यो ह्येष [मी० श्लो० अभावपरि० श्लो० २०]	७७	१५
अयुतसिद्धानामाचार्या- [प्रश्न० भा० पृ० १४]	६०४	११
अवयवविपर्ययसम्बन्ध- [न्यायसू० ५।२।११]	६६७	२६
अवयवानां प्रक्षिपिल- []	५९८	१२
अविज्ञातं चाज्ञानम् [न्यायसू० ५।२।१७]	६६९	१३
अविनाभावित्वा चात्र [मी० श्लो० अर्थो० श्लो० ३०]	१९३	१७
अविशेषाभिहितेऽर्थे [न्यायसू० १।२।१२]	६४९	१७
अविशेषोक्तं हेतौ [न्यायसू० ५।२।६]	६६५	१४
असंस्मर्यतया पुंभिः [प्रमाणवा० १।२।३२]	१६६	८

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
असदकरणादुपादान- [सांख्यका० ९]	२८७	१८
असर्वज्ञप्रणीतास्तु [तत्त्वसं० पृ० ८३२ पूर्वपक्षे]	२५०	१७
असाधनाज्ञवचन- [वादन्याय० पृ० १]	६७१	२०
अस्ति शालोचनाज्ञानम् [मी० श्लो० प्रत्यक्षसू० श्लो० १२०]	४८२	२२
आकाशमपि नित्यं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३०-३१]	४२२	१७
आख्यातशब्दः सङ्घातो [वाक्यप० २।२]	४५९	२
आगच्छातो च विश्वेषो [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ११०]	४२७	५
आचेलकुद्देसिय [जीतकल्पभा० गा० १९७२ भग० भा० गा० ४२७]	३३१	६
आत्मलभे हि भावानां [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४८]	१५३	२१
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं []	३१०	१६
आप्तवचनादिनिबन्ध- [परीक्षामु० ३।१००]	३५५	२३
आशङ्केत हि यो [तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे]	१५७	१०
आसर्गप्रत्ययादेका []	२९४	४
आहुर्विधात् प्रत्यक्षं []	६५	६
आदिकेन निमित्तेन [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७९]	४०८	३
इदानीन्तनमस्तित्वं [मी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३४]	३३९	१४
इन्द्रियार्थसमिकर्षो- [न्यायसू० १।१।४]	२२०-१८, ३६५	१४
इम् गतिर्हिसनयोश्च []	६८७	२९
ईषत्सम्मिलितेऽङ्गुल्या [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८२]	४०८	१३
सत्क्षेपणमवक्षेपण- [वैशेष० सू० १।१।७]	६००	१२
सत्तमः पुरुषस्तन्यः [भगवद्गी० १।५।१७]	२६८	१७
सत्तरस्याप्रतिपत्ति- [न्यायसू० ५।२।१८]	६६९	१९
सत्पादव्ययप्रौढ्ययुक्तं [तत्त्वार्थसू० ५।३०]	२५९	१०
सपदेशो हि बुद्धादेर्धर्मा- [तत्त्वसं० पृ० ८३८ पूर्वपक्षे]	२५०	२१
समयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमा [न्यायसू० ५।१।२५]	६५७	१९
समयसाधर्म्यात् [न्यायसू० ५।१।१६]	६५६	१७
ऊर्णनाम इवांशुर्ला []	६५	९
ऊर्ध्ववृत्तितदेकलाद् [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८८]	४०९	१
ऋन्मोः [जैनेन्द्रव्या० ४।२।१५३]	६८८	४
एकधर्मोपपत्तेरविशेषे [न्यायसू० ५।१।२३]	६५७	९
एकप्रत्ययवर्गस्य हेतु- [प्रमाणवा० १।१।१०]	४७०	३
एकशास्त्रनिबारेषु [तत्त्वसं० पृ० ८३६ पूर्वपक्षे]	२५२	८
एकस्मिन्नपि दृष्टेऽयं [मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४६]	१८७	७
[ए] कर्त्तावैकभावस्य [प्रमाणवा० १।४४]	२३६	२

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
एकदिव्यवहारहेतुः [प्रश्न० भा० पृ० १११]	५९० २
एतद्भयमेवानुमा- [परीक्षासू० ३।३७]	६८५ ३१
एतावन्मात्रतत्त्वार्थाः [सम्बन्धपरी०]	५१० १९
एवं त्रिचतुरश्रान् [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६१]	१५७ ५
एवं धर्मैर्विना धर्मिणामेव [प्रश्नस्तपाहभा० पृ० १५]	५३१ ९
एवं परीक्षकज्ञानं [तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे]	१७५ ७
एवं परोक्षसम्बन्ध- []	२१ ५
एवं प्रागुक्तया वृत्त्या [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८९]	४०९ ३
एवं यत्पक्षधर्मैर्ल []	१९५ ७
ऐकान्तिकं पराजयाद्वरं []	६६० ५
कर्तुः प्रियहितमोक्षहेतुर्ध- [प्रश्न० भा० पृ० २७२-२८०]	६०० ९
कर्तुः फलदाय्यात्मगुण- []	६०० ७
कल्पनीयाश्च सर्वज्ञा [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १३५]	२५४ २५
कस्यचित्तु गरीष्येत [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७६]	१५५ ७
कारणानुविधायित्वं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१०-२११]	४१५ ३४
कार्यं धूमो हुतमुजः [प्रमाणवा० १।३५]	३५० ७
कार्यकारणभावादि- []	२१-१, ३८२ १६
कार्यकारणभावोपि [सम्बन्धपरी०]	५०९ २१
कार्यलान्यलक्ष्येन []	२७५ ६
कार्यव्यासप्राप्तिः [न्यायसू० ५।२।१९]	६७० १
कार्याभयकर्तृवधादिसा [न्यायसू० ३।१।६]	५३६ १८
किं स्वात्सा चित्रतेक- [प्रमाणवा० ३।२१०]	९६ १३
किन्तु गौरवमो हस्ती [तत्त्वसं० भा० ९११ पूर्वपक्षे]	४३२ ८
कीदृशाद्वचनामेदाह- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०९]	४२७ ३
कुल्यादिप्रतिबन्धोपि [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२९]	४१८ २४
कृपादिषु कृतोऽधस्तात् [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८४]	४०८ १७
क्रमेण भाव एकत्र [सम्बन्धपरी०]	५१० १
क्षयिका हि सा न [शाबरभा० १।१।५]	२३ ११
क्षीरे दधि भवेदेवं [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ५]	१९० २६
गत्ता गत्ता ह्यु तान्देवान् [मी० श्लो० भा० अर्थ० श्लो० ३८]	२२ १७
गवयश्चाप्यसम्बन्धाच्च [मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४५]	१८७ ५
गवये गृह्यमाणं च [मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४४]	१८७ ३
गवयोपमिताया गोस्त- [मी० श्लो० अर्थ० श्लो० ४-५]	१८८ १६
गवादिष्वनुवृत्तिप्रत्ययः [न्यायवा० पृ० ३३३]	४७६ ९

अवतरणम्

पृष्ठं पङ्क्तिः

गव्यसिद्धे लग्नौर्नास्ति [मी० श्लो० अपो० श्लो० ८५]	४३६	१३
गेहाभैत्रवहिर्भाव- [मी० श्लो० अर्था० श्लो० ७-८]	१८९	३
गोशब्दे ज्ञातसम्बन्धे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४४]	४०६	१४
गृहीतमपि गोलादि [मी० श्लो० सू० ४ श्लो० ३२]	३३९	१०
गृहीत्वा वस्तुसङ्गावं [मी० श्लो० अभावप० श्लो० २७]	१८९-९, २६५	२६
चित्रप्रतिभासाप्येकैव [प्रमाणवार्तिकालं०]	९५	१
चित्राद्यदन्तराणीय- [पत्रप० पृ० १०]	६८६	५
चैत्रः कुण्डली [न्यायवा० पृ० २१८]	६१४	१५
चोदनाजनिता बुद्धिः [मी० श्लो० सू० ५ श्लो० १८४]	१५८	३
चोदना हि भूतं भवन्तं [शाबरभा० १।१।२]	२५३-२०, २५५	१३
जननेपि हि कार्यस्य [सम्बन्धपरीक्षा]	५१०	२५
जलपात्रेषु चैकेन [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७८]	४०७	२२
जातेपि यदि विज्ञाने [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४९]	१५८	२३
जिषु छिषु शिषु []	६८७	१९
जीवस्तथा निर्द्वैति- [सौन्दरनन्द १६-२९]	६८७	१०
क्षुपी प्रीतिसेवनयोः [पा० धातुपा०]	६६८	१६
जैनकापिलनिर्दिष्टं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०६]	४२६	१७
ज्ञातसम्बन्धस्यैक- [शाबरभा० १।१।५]	३०	१५
ज्ञातैकलो यथा चासौ [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९९]	४०९	१३
ज्ञात्वा व्याकरणं दूरं [तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे]	२५२	१०
ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं []	६२०	६
व्योतिर्विष्य प्रकृत्येपि [तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे]	२५२	१२
णोकम्म कम्महारो []	३००	२१
ततो निरपवादलात्ते- [तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे]	१७५	५
ततः परं पुनर्वस्तुधर्मै- [मी० श्लो० प्रत्यक्ष० सू० ११२]	४८२	२४
तत्करोति तदाचष्टे []	६८७	२२
तत्प्रतिबिम्बकं च []	४४१	२६
तन्निविधं वाक्छलं [न्यायसू० १।२।११]	६४९	१५
तत्त्वं भावेन व्याख्यातं [वैशे० सू० ७।२।२८]	६२०	१९
तत्त्वाध्यवसायसंरक्ष- [न्यायसू० ४।२।५०]	६४६	३
तत्र ज्ञानान्तरोत्पादः [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५०]	१५९	१
तत्र प्रत्यक्षतो ज्ञाताद् [मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३]	१८८	१०
तत्र शब्दान्तरापोहे [मी० श्लो० अपोह० श्लो० १०४]	४४०	१०
तत्रापवादनिर्मुक्तिर्वि- [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६८]	१७५	१८
तत्रापूर्वार्थविज्ञानं []	६१	१०

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
तत्रैव बोधयेदर्थ [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८५]	४०८ १९
तथा (यथा) षष्ठादेर्दीपा- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ४२]	४२४ २०
तथा च स्यादपूर्वोपि [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४२]	४०६ १०
तथाचेदमिति प्रोक्तौ [पत्रप० पृ० १०]	६८६ ७
तथा मिश्रममिश्रं वा [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७१]	४११ २
तथा वेदेतिहासादि- [तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे]	२५२ १४
तथेदममलं ब्रह्म [बृहदा० मा० बा० ३।५।४४]	४५ १
तथैव यत्तत्मीपस्येर्नादैः [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८५-८६]	४२० १९
तथैवाभावमेदेपि न [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ४६]	१९२ १२
तदनुपलब्धेरनुपलम्भा- [न्यायसू० ५।१।२९]	२५८ ३
तदन्ता अव- [जैनेन्द्रव्या० २।१।३९]	६८७ २४
तद्गुणेरपकृष्टानां शब्दे [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६३] १७५-१४ ३९७	१७ १७
तद्भावाभाविता चात्र [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२७-१२८]	४१८ २२
तद्भावाभावात्तत्कार्य- [सम्बन्धपरीक्षा]	५१० १५
तद्योरनुपकारेपि [सम्बन्धपरीक्षा]	५१० २७
तर्कशब्देन भूतपूर्वगतिन्यायेन []	६४६ ११
तस्मात्तत्प्रकाशमिज्ञानात् [मी० श्लो० आत्म० श्लो० १३६]	५२२ ४
तस्मात्सर्वेषु यद्रूपं [मी० श्लो० अपोह० श्लो० १०]	४३३ १४
तस्मात्सतः प्रमाणत्वं [तत्त्वसं० पृ० ७५८ पूर्वपक्षे]	१७४ ८
तस्मादनुमानत्वं [मी० श्लो० शब्दप० श्लो० १८]	१८३ १०
तस्मादुत्पत्त्यभि- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८२]	४२३ ११
तस्मादुभयहानेन [मी० श्लो० आत्मवाद० श्लो० २८]	५२२ १
तस्माद्गुणेभ्यो दोषाणाम- [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६५]	१६१ १४
तस्माद्यतो ऋतोऽर्थानां [प्रमाणवा० १।४२]	१८० २३
तस्माद्यत्स्मर्यते तत्स्यात् [मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ३७] १८६-१, २४५	१३ १३
तस्माद् व्याख्याज्ञमि- [मी० श्लो० प्रति० सू० श्लो० २५]	३ १६
तस्यापि कारणे ह्युदे [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५१]	१५९ ३
तस्योपकारकत्वेन [मी० श्लो० अभाव० श्लो० १४]	१९१ १४
तां ग्राह्यलक्षणप्राप्तामास- [प्रमाणवा० ३।५।१३]	८४ ४
तादात्म्यं चेन्मतं []	४७४ १
तादात्म्यमस्य कस्माच्चेत् []	४७३ २०
तामेव चानुबन्धानेः [सम्बन्धपरी०]	५०६ १८
ताभ्यां तद्यतिरेकत्वे [प्रमाणवार्तिकल०]	४६८ ५
ता हि तेन विनोत्पन्ना [मी० श्लो० आकृति० श्लो० ३८]	४७४ १२

अवतरणम्

पृष्ठं पङ्क्तिः

तिष्ठन्त्येष पराधीना [प्रमाणवा० २।१९९]	९५	१६
तेन जन्मैव युद्धेर्विषये [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५६]	१६४	१६
तेन सम्बन्धवैलायां [मी० श्लो० अर्थार्थ० श्लो० ३३]	१९३	२०
तेन सर्वत्र दृष्टत्वाद्वा [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८८]	१८५	३
तेनात्रैवं परोपाधिः [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१८-१९]	४१७	१७
तेनेन्द्रियार्थसम्बन्धात् [मी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३६-२३७]	३३९	५
तेषां चाल्पकदेशत्वाद् [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७३]	४०७	९
तेषामनुपलब्धेश्च [मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० १२]	४१७	२८
तौ च भावौ तदन्यश्च [सम्बन्धपरी०]	५०६	७
त्रिगुणमविवेकि विषयः [सांख्यका० ११]	२८६	७
त्रिरभिहितस्यापि [न्यायसू० ५।२।९]	६९२	२०
त्रिषु पदार्थेषु सत्करी []	६१९	१५
त्रैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतु- [न्यायसू० ५।१।१८]	६५६	२५
लग्नप्राशस्त्यमन्ये [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०८]	४२७	१
दर्शनस्य परार्थत्वाद् [जैमिनिस् १।१।१८]	६२-१, ४०४	२४
दर्शनस्य परार्थत्वादित्य- [मी० श्लो० अर्थार्थ० श्लो० ७-८]	१८९	१
दर्शनादर्शने मुक्त्वा [सम्बन्धपरी०]	५१०	१३
दशहस्तान्तरं व्योम्नि [तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे]	२५२	१६
धीपो यथा निर्वृत्तिम- [सीन्दरनन्द १६-२८]	६८७	८
दृष्टत्वासावन्ते स्थितश्चेति [न्यायसू० ५।२।२]	६६४	३
देशकालादिभेदेन [मी० श्लो० प्रत्यक्ष सू० श्लो० २३३-३४]	२५८	७
देशभेदेन मिश्रत्वं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९७]	४०९	९
दृश्यमानाद्यदन्यत्र []	१८५	१०
दृष्टो न चैकदेशोक्ति लिङ्गं [तत्त्वसं० पृ० ८३० पूर्वपक्षे]	२५०	६
द्वयसंस्कारपक्षे तु [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८६]	४२४	३१
द्वयोरेकामिसम्बन्धात् [सम्बन्धपरी०]	५०६	४
द्वाविमौ पुरुषौ लोके [मगवद्गी० १५।१६]	२६८	१५
द्विधा कैश्चित्पदं मिश्रं []	४६४	२०
द्विष्टसम्बन्धसंवित्तिः []	९१	४
द्विष्टो हि कश्चित्सम्बन्धो [सम्बन्धपरी०]	५१०	७
द्विस्तावानुपलब्धो हि [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २५०]	४१०	१६
द्वीन्द्रियग्राह्यग्राह्यं []	२६९	२६
धत्तूरकपुष्पवदादौ सूक्ष्मा- []	२२७	१
धर्मे चोदनेन प्रमाणम् []	४०१	७

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
धर्मयोर्मेद इष्टो हि [मी० श्लो० अमाव० श्लो० २०]	१९२ ७
धर्मविकल्पनिर्देशेऽर्थ- [न्यायसू० १।२।१४]	६५१ १
धर्माधर्मौ स्वाध्वयसंयुक्ते []	५५९ ५
धर्मज्ञाननिषेधस्तु [तत्त्वसं० पृ० ८१७ पूर्वपक्षे]	२५३ ५
धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः [पाणिनिव्या० ३।४।१]	६७९ २
धियो (योऽ) नीलादिरूप- [प्रमाण वा० ३।४३१]	८४ १६
ध्वनीनां भिन्नदेशत्वं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७३]	४०७ ७
न च ध्वनीनां सामर्थ्यं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७२]	४०७ ५
न च स्वाध्वयहारोऽयं [मी० श्लो० अमाव० श्लो० ७]	१९० ३
न जागमविधिः कश्चिच्छि- [तत्त्वसं० पृ० ८३१ पूर्वपक्षे]	२५० ७
न चान्यरूपमन्यादक् [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८९]	४३८ १०
न चान्यार्थप्रधानैस्त्वैस्त्व- []	२५० ९
न चा (च) पर्यययोगोत्र [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ४३]	४२४ ३२
न चापि स्मरणात्पञ्चादि- [मी० श्लो० सू० ४ श्लो० ३५-३६]	३३९ ३
न चाप्यश्वादिशब्देभ्यो- [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८८]	४३८ ८
न चावस्तुन एते स्युर्मे- [मी० श्लो० अमाव० श्लो० ८]	१८० ८
न चावान्तरवर्णानां [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ११२]	४२७ ९
न चासाधारणं वस्तु [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८६]	४३८ ४
न चास्वाध्वयबाः सन्ति []	४१४ ३
न चैतस्यानुमानत्वं [मी० श्लो० उपमानप० श्लो० ४३]	१८७ १
न तावदनुमानं हि [मी० श्लो० शब्दप० श्लो० ५६]	१८४ २
न तावदिन्द्रियेणैवा [मी० श्लो० अमाव० श्लो० १८]	१८९ २०
न तावच्च त्र देवोऽसौ न [मी० श्लो० शब्दप० श्लो० ८७]	१८५ १
न तु (ननु) भावादभिज्ञ- [मी० श्लो० अमाव० श्लो० १८]	१९२ ५
नवीपूरोप्यधोदेशे []	१९५ ३
ननु च प्रागभावादौ [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ११]	४७७ ७
ननु ज्ञानफलाः शब्दा [भाष्यार्थलं० ६।१८]	४३२ १३
नन्वन्यापोहकृच्छन्दो [तत्त्वसं० का० ९१० पूर्वपक्षे]	४३२ ६
न मेदाग्निजगमस्यन्यत्सामा- []	४६७ १६
न याति न च तत्रासीद- [प्रमाणवा० १।१५३]	४७३ १६
नवानां गुणानामसन्तो- []	२७९ ६
न शाबलेयाहोबुद्धिस्ततोऽ- [मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४]	१७४ २३
न सोस्ति प्रत्ययो लोके [वाक्यप० १।१२४]	३९ ७
न स्यादव्यङ्ग्यता तस्मिन्- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ११६-१७]	४१६ ३४

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
न हि तत्क्षणमप्यास्ते [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५५]	१६४ १४
न हि स्मरणतो यत्प्राक् [मी० श्लो० सू० ४ श्लो० ३३४-३५]	३३९ १
नाकारणं विषयः []	३५५-११, ५०२ ४
नाऽकमात्क्रमिणो भावाः [प्रमाणवा० ११४५]	३२५ १६
नागृहीतविशेषणा विशेष्ये []	२१०-७१, ३८३-५, ४३७ १३
नाज्ञातं ज्ञापकं नाम []	१२४-१९, २०६ ७
नार्थशब्दविशेषेण वाच्य- []	३४० ८
नार्थालोको कारणं [परी० २१६]	२२५ १७
नादेनाऽहितवीजाया- [वाक्यप० ११८५]	४५६ १९
नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्यास्ति [प्रमाणवा० ३१३२७]	९० १०
नाऽपोल्लसमभाषानाम- [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९६]	४३९ ८
नाश्रुकं क्षीयते कर्म []	३०८ १५
नाशोत्पादौ सत्तं []	४९७ ३
नास्तिता पयसो दग्धि [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ३]	१९० १९
निग्रहप्राप्तस्थानिग्रहः [न्यायसू० ५१२१२१]	६६९ २१
निखलं व्यापकत्वं च []	४०६ २०
नित्यनैमित्तिके कुर्याद [मी० श्लो० सम्बन्ध० श्लो० ११०]	३०९ २३
नित्यनैमित्तिकैरेव [प्रश्न० व्यो० पृ० २० ख०]	३१० १
नित्याः शब्दार्थसम्बन्धास्त- [वाक्यप० ११२३]	४२९ ५
निर्गुणा गुणाः []	५९२ ११
निर्दिष्टकारणाभावेऽप्युपल- [न्यायसू० ५११२७]	५२७ २६
निष्फलत्वेन शब्दस्य [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १३९]	४०६ ४
नीलोत्पलादिशब्दा []	४३६ १६
नूनं स चक्षुषा सर्वान् [मी० श्लो० नोद० सू० श्लो० ११२]	४४९ ३
नेष्टोऽसाधारणस्तावद्वि- [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ३]	४३३ ११
नो चेद्भ्रान्तिनिमित्तेन [प्रमाणवा० ११४५]	४७० ८
नेकरूपा मतिर्गोवि [मी० श्लो० वनवा० श्लो० ४९]	४७५ १७
पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्था- [न्यायसू० ५१२१५]	६६५ ८
पक्षहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनान्य- [न्यायसू० १११३२]	३७४ १२
पदमाथं पदं चान्तरं पदं [वाक्यप० ११२]	४५९ ५
पदार्थपूर्वकस्तस्माद्वाक्या- [मी० श्लो० वाक्या० श्लो० ३३६]	४६१ ५
पदार्थानां तु मूलसमिष्टं [मी० श्लो० वाक्या० श्लो० १११]	५६१ ३
परलोकिनोऽभावात्परलोका- []	११६ ९
परस्परविषयममर्षं व्यतिकर []	५२६ १९

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
पराधीनेपि वै तस्माच्चा- [तत्त्वसं० पृ० ७५८ पूर्वपक्षे]	१७४ १०
परापेक्षा हि सम्बन्ध- [सम्बन्धप०]	५०५ २०
परिषत्प्रतिवादिभ्यां त्रिरभि- [न्या० सू० ५१२।९]	६६६ १९
पर्यायादविरोधश्चेद्यापि- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २००]	४०९ १५
पर्यायेण यथा चैको [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९८]	४०९ ११
पदयक्षयं क्षणिकमेव []	५१८ २४
पदयक्षेकमदृष्टस्य दर्शने [सम्बन्धपरी०]	५१० ११
पारतन्त्र्यं हि सम्बन्धः [सम्बन्धपरी०]	५०४ २७
पिण्डभेदेषु गोबुद्धिरेक- [मी० श्लो० वन० श्लो० ४४]	४७४ १९
पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन []	१९५-५, २५५ ५
पीनो दिवा न भुङ्क्ते [मी० श्लो० अर्था० श्लो० ५१]	१८८ १२
पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा []	३३३ १२
पुरुष एवेतत्सर्वं यद्भूतं [ऋक्सं० मण्ड० १० सू० ९० ऋ० २]	६४ २१
पृथग् न चोपलभ्यन्ते [मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० ११]	४१७ २६
पृथिव्य (व्या) पक्षेजोवायुरिति []	११६ १
पृथिव्येतेनोवायुभ्यो []	२३० ४
पौर्वापर्यायोगादप्रति- [न्यायसू० ५।२।१०]	६६७ ३
प्रकृतादर्यादप्रतिसम्बन्धा- [न्या० सू० ५।२।७]	६६५ २४
प्रकृतेर्महास्ततोऽहङ्कारस्त- [सांख्यका० २१]	२८५ २६
प्रक्षालनादि पङ्क्तस्य []	२८१ २३
प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्म- [न्या० सू० ५।२।३]	६६४ १४
प्रतिज्ञाहेतुज्ञाद्वरणोपनय- [न्यायसू० ५।२।३२]	६७४ २३
प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधो [न्यायसू० ५।२।४]	६६५ ३
प्रतिदृष्टान्तधर्म्या (मी०) जुह्वा [न्या० सू० ५।२।२]	६६३ १४
प्रतिनियतदेशा वृत्तिरभिव्य- []	१९ १३
प्रतिबिम्बस्य मुख्यमन्यापो- []	४४२ ४
प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या [मत्स्यपु० १४५।५८]	३९२ १८
प्रत्यक्षं कल्पनापोदं [प्रमाणवा० ३।१२३]	३२ १०
प्रत्यक्षनिराकृतो न पक्षः []	७८ ८
प्रत्यक्षपूर्वकं त्रिविधमज्ञ- [न्यायसू० १।१।५]	३६२ १८
प्रत्यक्षाद्वैरनुत्पत्तिः [मी० श्लो० अमाव० श्लो० ११] १८९-१२, २६५	१७
प्रत्यक्षाद्यवतारश्च [मी० श्लो० अमाव० श्लो० ९७] १९१-१७, २०६	१२
प्रत्यक्षेणावबुद्धश्च [मी० श्लो० स्तोद० श्लो० १४]	४१७ ३२
प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि [मी० श्लो० उपमान० श्लो० ३८] १८६-३, ३४५	१५

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
प्रत्यक्षेपि यथा देशे [मी० श्लो० उपमानप० ३९]	१८६ ५
प्रत्येकसमवेताथ विषया [मी० श्लो० वन० श्लो० ४६]	४७५ ६
प्रत्येकसमवेतापि [मी० श्लो० वन० श्लो० ४७-४८]	४७५ १५
प्रधानपरिणामः शुक्लं कृष्णं []	२४४-३, २८५ २०
प्रमाणं ग्रहणात्पूर्वं स्वरूपे [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ८३]	१५६ ९
प्रमाणप्रमेयसंशय- [न्या० सू० १।१।१]	६८६ १५
प्रमाणं हि प्रमाणेन- [तत्त्वसं० पृ० ७५९ पूर्वपक्षे]	१७४ १२
प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः [न्यायसू० १।२।१]	६४७ ९
प्रमाणपञ्चकं यत्र [मी० श्लो० अभाव० श्लो०]	१८९-१५, २६५-२२, ३९८ १
प्रमाणभूताय [प्रमाणसमुच्चय श्लो० १]	८०-८, ९५ १४
प्रमाणमविसंवादि ज्ञानं [प्रमाण वा० २।१]	३४१ १३
प्रमाणपङ्क्तविज्ञातो [मी० श्लो० अर्थो० परि० श्लो० १]	१८७ १३
प्रमाणस्यागौणत्वादनुमाना- []	१८० १
प्रमाणेतरसामान्यस्थितेर- []	१८०-५, ३२४ ४
प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं [न्यायभा० पृ० २]	१६ १८
प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरं []	२३७ १५
प्रयत्नानेककार्यत्वात्कार्यसमा [न्यायसू० ५।१।३७]	६५९ ११
प्रयत्नानन्तरं ज्ञानं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३१-३२]	४२२ १९
प्रयोगपरिपाटी तु प्रति- []	३७३ १७
प्रसज्यप्रतिषेधे दोषोद्भावना- []	६७४ १६
प्रसिद्धसाधन्यात्साध्य- [न्यायसू० १।१।६]	३४७-८, ३७४ १८
प्रसिद्धावयवं वाक्यं [पत्रपरी० पृ० १]	६८४ २८
ग्रहासे मन्यवाचि युष्मन्मन्यते- [जैनेन्द्र० २।१।१५३]	६७९ २५
प्रागगौरिति विज्ञानं [भागद्वार्ल० ६।१९]	४३२ १५
प्रागुत्पत्तेः कारणाभावा- [न्यायसू० ५।१।१२]	६५५ २५
प्रागघोस्ते [जैनेन्द्र० १।२।१४८]	६८७ २५
प्राज्ञेपि हि नरः सुसमानार्थ- [तत्त्वसं० पृ० ८२५ पूर्वपक्षे]	२५२ ६
प्राणश्चित्तमितिकम्य मध्यमा [वाक्यप० टी० १।१४४]	४२ ३
प्रामाण्यं व्यवहारेण [प्रमाणवा० ३।५]	२१७-८, ३८३ १४
बाधकप्रत्ययस्त्वावधार्य- [तत्त्वसं० पृ० ७५९ पूर्वपक्षे]	१७४ १४
बाधकान्तरमुत्पन्नं [तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे]	१७५ १
बुद्ध्यवसितमर्थं पुरुषव्येतयते []	१००-१०, ३२७ २३
बुद्धादयो ह्यवेदज्ञाः [तत्त्वसं० पृ० ८४० पूर्वपक्षे]	२५० २३

अवतरणसूचिः

७१५

अवतरणम्

पृष्ठं पङ्क्तिः

बुद्धितीव्रत्वमन्दत्वे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१९]	४१४	१४
बुद्धिरेवातदाकारा [प्रमाणवार्तिकालं० प्रथमपरि०]	२१८	५
बोधोद् बोधरूपता []	३४३	२३
भावान्तरविनिर्मुक्तो []	१६०	१२
भावान्तरात्मकोऽभावो [मी० श्लो० अपोह० श्लो० २]	४३३	९
भावामावयोस्तद्वत्ता [न्यायवा० पृ० ६]	१४	९
भावे भाविनि तद्भावो [सम्बन्धपरी०]	५१०	१७
भिन्ने का घटनाऽभिज्ञे [सम्बन्धपरी०]	५१०	२१
भिन्ने चैकलनित्यत्वे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७२]	४११	४
भुववहेतवः प्रधानपरमाण्व- [न्यायवा० पृ० ४५७]	२७०	११
भेदानां परिणामात्समन्वया- [सांख्यका० १५]	२८८	१३
मणिवत्पाचकवद्वोपाधि- [प्रश्न० भा० पृ० ६४]	५६६	२
मन्दप्रकाशिते मन्दा [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २२०]	४१४	१६
महत्त्वेनैकद्वयत्वात्प- [वैशेष० सू० ४।१।६]	२७०-५,	५४० ९
महाभूतादि व्यर्थ [न्यायवा० पृ० ४६७]	२६९	२०
मिथ्याभ्यारोपहानार्थ [प्रमाणवा० २।१९२]	३२१	१२
मूर्तेष्वेव प्रत्येषु [प्रश्न० भा० पृ० ६६]	५६८	१३
मूलप्रकृतिरविकृतिर्- [सांख्यका० ३]	३८९	२४
मेयो यद्वदभावो हि [मी० श्लो० अभाव० ४५]	१९२	१०
सृष्टिपण्डपण्डवक्रादि [तत्त्वसं० पृ० ७५७ पूर्वपक्षे]	१५३	२४
सृष्टोः स स्रुत्युमाप्नोति [बृहदा० स० ४।४।१९, कठ० ४।१०]	६५	३
यज्जातीयैः प्रमाणेभ्यु [मी० श्लो० बोधनासू० श्लो० ११३]	२५१	८
यत्र धूमोस्ति तत्राभिरस्ति- [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८६]	१८४	२१
यत्रापि स्वप्नादस्य [तत्त्वसं० पृ० ७५९ पूर्वपक्षे]	१७४	१६
यत्राप्यतिशयो दृष्टः स [मी० श्लो० बोधनासू० श्लो० ११४]	२५२	१
यत्रैव जनयेदेनां तत्रैवास्य []	२५-१५,	४९२ १२
यथा महत्त्वां खातायां [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१७]	४१७	१५
यथा निशुद्धमाकारा [बृहदा० भा० वा० ३।५।४३]	४४	१९
यथैवास्ति समिद्धोभिर्नैक- [भगवद्गी० ४।३७]	३०९	३
यथैव प्रथमज्ञानं [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७६]	१५५	५
यथैवोत्पद्यमानोऽयं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८४-८५]	४२०	१७
यथोक्तोपपन्नश्छलजाति- [न्यायसू० १।२।२]	६४७	१३
यदा चाऽशब्दवाच्यत्वात् [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९५]	४३९	६
यदा स्वतःप्रमाणत्वं [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५२]	१७३	२०

अवतरणम्

पृष्ठं पङ्क्तिः

यदि गौरित्ययं शब्दः [मामहालं० ६११७]	४३२	११
यदि पदभिः प्रमाणैः [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १११]	२४९	१
अद्यपि व्यापि चैकं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६८]	४२४	११
यद्यपेक्ष्य तयोरेकमन्यत्रा- [संवन्धपरी०]	५१०	३
यद्येकार्याभिसम्बन्धात्कार्य- [सम्बन्धपरी०]	५१०	५
यद्वातुच्छित्तिव्यावृत्ति- [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९]	१९०	१२
यद्वेदाध्ययनं किञ्चित्तद- [मी० श्लो० पृ० ९४९]	५५७	१२
यस्मात् प्रकरणचिन्ता स [न्यायसू० १।२।७]	३५७	९
यस्य यत्र यदोद्भूतिर्जि- [मी० श्लो० अभाव० श्लो० १३]	१९१	१२
यावत् प्रयोजनेनास्य [मी० श्लो० प्रति० सू० श्लो० २०]	३	१३
युगपज् ज्ञानातुत्पत्तिर्मेनसो [न्यायसू० १।१।१६]	१८	८
युगान्तकालप्रतिचिह्ना- [शिष्टपालव० १।२३]	६८८	१
युज्यते नाधिपक्षे च [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४१]	४०६	८
ये तु मन्वादयः सिद्धाः [तत्त्वसं० पृ० ८४० पूर्वपक्षे]	२५१	१
येऽपि सातिशया दृष्टाः [तत्त्वसं० पृ० ८२५ पूर्वपक्षे]	२५२	४
योगोपाधी न तावेव [सम्बन्धपरी०]	५१०	९
यो यो दृहीतः सर्वस्मिन्देहे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७१]	४०७	१
यो वेदाश्च ग्रहिणोति [श्वेता० ६।१८]	३९२	१९
रजोऽप्येव जन्मनि सत्त्व- [कादम्बरी पृ० १]	२९८	१७
रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्या [वैशेष० सू० १।१।६]	५८७	५
रूपश्लेषो हि सम्बन्धो [सम्बन्धपरी०]	५०५	१२
लक्षणयुक्ते बाधासम्भवे [प्रमाणवार्तिकालं०]	५८२	९
रूपं कान्तौ [पा० धातु पा० भ्या० ८८८]	६८८	७
लिखितं साक्षिणो भुक्तिः [याज्ञव० स्मृ० २।२२]	८	१८
लोयायासपणसे एकेके [इत्यसं० गा० २२ (१)]	५६५	६
वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य []	३९२	१७
वचनविधातोर्विकल्पोपपत्त्या [न्यायसू० १।२।१०]	६४९	१४
वटे वटे वैश्रवणः []	३९२	१४
वरिससयदिविख्याए []	३३०	२४
वर्णक्रमनिर्देशवशिरर्थ- [न्या० सू० ५।२।८]	६६६	११
वर्णान्तरजनी तावत्तत्पदत्वं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१२]	४१६	१
वर्णोऽनवयवलात्तु [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१३]	४१६	३
वस्तुत्वे सति चार्थ्यं [मी० श्लो० उप० श्लो० ३४]	३४६	३
वस्तुऽसङ्करसिद्धिश्च [मी० श्लो० अभाव० श्लो० २]	१९०	१७

अवतरणसूचिः

७१७

अवतरणम्	पृष्ठ	ङ्क्तिः
बाभूपता चेदुक्तामेदवबोधस्य [वाक्यप० १।१२५]	३९	१०
बादिप्रतिवादिनोर्यत्र []	३७४	१५
विकल्पोऽवस्तुनिर्मासः []	३१	१७
विगहगहमावण्णा केवलिणो [जीवकाण्डगा० ६६५ आवकप्रज्ञ० गा० ६८]	३००	२६
विज्ञातस्य परिषदा त्रिरभि- [न्यायसू० ५।२।१६]	६६९	१
विदुः क्षमे [पा० धातु पा०]	६८९	१
विधृतकल्पनाजाल [प्रमाणवा० ३-२८१]	३४	१३
विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्ति- [न्यायसू० १।२।३९]	६६३	८
विशेषेऽनुगमाभावः सामान्ये []	१७७	१६
विश्वतश्चक्षुरस्त विश्वतो [श्वेताश्वत० ३।३]	२६४-२०, २६८	१३
विषयस्यापि संस्कारे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८३]	४२०	१५
विषयेण हि बुद्धीर्ना [मी० श्लो० आकृति० श्लो० ३७]	४७४	१०
वेदाध्ययनं सर्वं गुर्वै- [मी० श्लो० अ० ७ श्लो० ३५५]	३९६	१९
वृक्षाद्यभिहतानां च [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १११]	४२७	७
व्यक्तिजन्यमन्यजाता चेदागता []	४७४	३
व्यक्तिनाशे न चेक्षष्टा []	४७४	५
व्यक्तिनित्यत्वमापन्नं तथा [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७३]	४११	६
व्यक्तेर्जात्यादियोगेपि []	४७४	७
व्यत्ययल्पसमहर्त्वे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१४]	४१६	२५
व्यङ्ग्यानां चैतदस्तीति [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१५-२१६]	४१६	३२
व्यञ्जकानां हि वायूनां [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ७९]	४२३	५
व्यवहारानुकृत्यास्तु प्रमा- [लघी० का० १५]	६७८	१३
शक्तयः सर्वमात्राणां कार्या- [मी० श्लो० शून्य० श्लो० २५४]	५१३	२६
शक्तस्य सूचकं हेतुवचो- [प्रमाणवा० ४।१७]	४४९	१०
शङ्कः कदल्यां कदली च []	६६७	११
शब्दं तावदनुचार्य [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २५६]	४१०	२३
शब्दः स्वसमानजातीय- []	२३०	२६
शब्दत्वं गमकं नात्र [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६४]	१८४	७
शब्दस्यागमनं तावददृष्टं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०७]	४२६	२४
शब्दादुदेति यज्ज्ञानमप्र- []	१८३	५
शब्दानित्यत्वोक्तौ नित्यत्व- [न्यायसू० ५।१।३५]	६५९	१
शब्दाद्विज्ञाद्व्य विशेषप्रतिपत्तौ []	२१७	३
शब्दे दोषोद्भवत्त्वावह- [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६२]	१७५-१२, ३९७	१५

अवतरणम्

शृङ्गं पङ्क्तिः

शब्देनागम्यमानं च [मी० श्लो० अपो० श्लो० ९४]	४३८	१७
शब्दे वाचकसामर्थ्यं ततो [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २३९]	४०६	२
शब्दे वाचकसामर्थ्यात्तन्मिलत्वं- [मी० श्लो० अर्थो० श्लो० ५६]	१८८	१८
शब्दोत्पत्तेर्निषिद्धत्वाद- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२६-१२७]	४१८	२०
शब्दो वर्तत इत्येव तत्र [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७२]	४०७	३
शावलेयाण भिन्नत्वं [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ७७]	४३५	५
शाकस्य द्वु फले ज्ञाते []	३	१०
शिरसोऽवयवा निम्ना [मी० श्लो० अपो० श्लो० ४]	१९०	२१
श्राद्धाच्छूद्रसम्पर्काच्छू- []	४८३	२४
श्रोता तत्तत्ततः शब्द- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७५]	४०७	११
श्रोत्रवीक्षाप्रमाणं [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७७]	१७०	७
वर्णात्माभितलम् [प्रश्न० भा० पृ० १६]	६१६-१६, ६२१	२८
संख्या परिमाणानि प्रथक्त्वं [वैश्वे० सू० ४११११]	५८९-११, ६०१	२१
संयोगजननेपीथौ ततः [सम्बन्धपरि०]	५१०	२९
संयोगिसमवाद्यादिसर्वमे- [सम्बन्धपरि०]	५१०	२३
संवादस्याय पूर्वैण []	१५५	१०
संज्ञस्य सर्वतश्चिन्तां स्मिति- [प्रमाणवा० ३११२४]	३२	७
स एवेति मतिर्नोपि [मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० १८]	४२६	१०
स चेदगोनिबृहत्वात्मा [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८४]	४३६	११
सत्त्वं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म [तैत्ति० २११]	६६	८
सदृशत्वात्प्रतीतिश्चे- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४८-४९]	४१०	१२
स धर्मोऽभ्युपगन्तव्यो [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४०]	४०६	६
सम्बद्धं वर्तमानम् [मी० श्लो० प्रत्यक्ष० श्लो० ८४]	५३	८
सम्बन्धज्ञानसिद्धिबोद्धुं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४३]	४०६	१२
सम्भवतोर्थस्यातिसामान्य- [न्यायसू० ११२१३]	६५०	११
सम्यग्ज्ञानपूर्विका सर्वपुरुषार्थ- [न्यायनि० १११]	७	९
सराया अपि वीतरगवन्ने- []	३२४	३१
सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारो- []	२७०	७
सर्वं खल्विदं ब्रह्म [भैष्यु०]	४६-१७, ६४	१९
सर्वचित्तचैतानामात्म- [न्यायनि० पृ० १९]	२९	११
सर्वज्ञसदृशं कश्चिदि [तत्त्वसं० पृ० ८३८ पूर्वपक्षे]	२५०	१९
सर्वज्ञोक्तया वाक्यं [तत्त्वसं० पृ० ८३२ पूर्वपक्षे]	२५०	१५
सर्वज्ञो हृदयते तावदेता- [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११७]	२५०	४
सर्वज्ञो नावबुद्धश्च येनैव [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १३६]	२५४	२७

अवतरणसूचिः

७१९

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
सर्वज्ञोऽयमिति शेषतत्काले- [मी० श्लो० चोदनासू० १३४]	२५४	२३
सर्वप्रमातृसम्बन्धिप्रत्यक्षा- [तत्त्वसं० पृ० ८२० पूर्वपक्षे]	२५३	३
सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य [मी० श्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १२]	३	४
सविज्ञेयेण हेतुवैत- [मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० १७७]	४०७	२०
सर्वेऽप्यनियमा हेतवे []	२१-३, ३८२	१८
सर्वे भावाः स्वभावेन [प्रमाणवा० १।४१]	४८०	२१
सर्वेषां युगपत्प्राप्तिः []	५२६	१६
स वेत्ति विश्वं न हि तस्य [श्वेताश्वत० ३।३]	२६४	२२
सा ते भवतु सुप्रतीता []	३९५	१६
सादृश्यस्य च वस्तुत्वं [मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० १८]	१८५	१७
साधनं सिद्धिः तदर्थं [वादन्या० पृ० ५]	६७१	२७
साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं [न्यायसू० १।२।१८]	६५१	१७
साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य [न्यायभा० ५।१।१]	६५१	२०
साधर्म्यवैधर्म्यात्कर्षोपकर्ष- [न्यायसू० ५।१।१]	६५१	२३
साधर्म्यांस्तुल्यधर्मोपपत्तेः [न्यायसू० ५।१।३३]	६५८	१६
साधर्म्येण हेतोर्वचने [वादन्या० पृ० ६५]	६७२	२७
साध्यद्वष्टान्तयोर्धर्म- [न्यायसू० ५।१।४]	६५३	७
साध्यधर्मप्रत्यनीकेन [न्याय० सू० ५।२।२]	६६३	१५
सान्तो विधिरनिष्ठाः []	६८८	५
सामान्यवद्योरेन्निग्रयकत्वे [न्यायसू० ५।१।१४]	६५६	६
सामान्यप्रत्यक्षाद्विज्ञेयाप्रत्य- [वैश्वे० सू० २।२।१७]	२३४	५
सामान्यवच्च सादृश्यमेकै- [मी० श्लो० उपमा० श्लो० ३५]	३४६	५
सामान्यविज्ञेयात्मा तदर्थः [परीक्षामु० ४-१]	१७८-२०, ४४५	२
सामान्यविषयत्वं हि [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ५५]	१८३	२३
सिद्धशानौरपोहेतु भोतिवैध- [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८३]	४३६	९
सिद्धान्तमभ्युपेक्षा- [न्या० सू० ५।२।२३]	६७१	६
सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं [मी० श्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १७]	३	१
सूर्यस्य देशमिच्छत्वं न [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७६]	४०७	१८
स्थानेषु विवृते वायौ [वाक्यप० टी० १।१४४]	४२	१
स्थिरवाय्वपनीक्षा च [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६२]	३१९	३
स्थान्द्वन्द्वस्य हि संस्कारा- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ५२]	४१९	१
स्वतः सर्वप्रमाणानां [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४७]	१५३	१०
स्वदेशमेव गृह्णाति [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८१]	४०८	९
स्वपक्षसिद्धेरेकस्य []	६७१	१७

अवतरणम्	श्रुतं पङ्क्तिः
स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात् [न्यायसू० ५।२।२०]	६४० १
कामानेप्यनिनाभावो [प्रमाणवा० १।४०]	३५० १०
स्वरूपव्योप्तिरेवान्तः [वाक्यप० टी० १।१।४४]	४२ ५
स्वरूपधारवमात्रेण च [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८७]	४३८ ६
समसमवेतानन्तरज्ञानवेषः []	१८३ ३
स्वान्तभासितभूत्याद्यभ्यः []	६८५ १७
इसति इसति [वादन्या० पृ० १११]	६६८ १६
हिरण्यगर्भं [ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १० सू० १२१]	२६४ २३
हिरण्यगर्भः समवर्ततामि [ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १० सू० १२१]	३९९ १८
हीनमन्यतमेनान्यवयवेन [न्यायसू० ५।२।१२]	६४०-१६; ६४४ २६
हेतुमदनेसमव्यापि [सांख्यका० १०]	२८६ २२
हेतुसाहरणाधिकमधिकम् [न्यायसू० ५।२।१३]	६४० २३
हेतोस्त्रिष्वपि रूपेषु [प्रमाणवा० १।१६]	३५४ १३
हेलाभासाश्च यथोक्तः [न्यायसू० ५।२।१४]	६४१ १०



३ परीक्षामुखगतानां लाक्षणिकशब्दानां सूचिः ।

अकिञ्चित्कर	६१३५	पर्याय (विशेष)	४१८
अनुमान	३११४	प्रत्यक्ष	२१३
अवैकान्तिक	६१३०	प्रत्यभिज्ञान	३१५
अन्वयदृष्टान्त	३१४८	प्रत्यभिज्ञानाभास	६१५
अपूर्वार्थ	११४, ५	प्रमाण	१११
अविनाभाव	३११६	प्रमाणाभास	६१२
अविद्व (हेत्वाभास)	६१२२	फलभास	६१६६
आगम	३१९९	बालप्रयोगाभास	६१४६
आराभास	६१५१	मुख्य (प्रत्यक्ष)	३१११
अपनय	३१५०	योग्यता	३१९
अर्थात्ता (सामान्य)	४१५	विरुद्ध (हेत्वाभास)	६१२९
अहं	३१११	विषय	४११
कमभाव	३११८	विषयाभास	६१६१
तदाभास (प्रमाणाभास)	६११	वैशय	३१४
तदाभास (प्रत्यक्षाभास)	६१६	व्यतिरेक	४१९
तदाभास (परोक्षाभास)	६१७	व्यतिरेकदृष्टान्त	३१४९
तर्काभास	६१०	सहभाव	३११७
तिर्बन्ध (सामान्य)	४१४	साध्य	३१२०
यमी	३१२७	संख्याभास	६१५५
निगमन	३१५१	सांख्यव्यहारिक	३१५
पक्षाभास	६११२	समरणाभास	६१८
परार्थ (अनुमान)	३१५५	स्पृति	३१३
परोक्ष	३११	हेतु	३११५

४ प्रमेयकमलमार्तण्डगतानां लाक्षणिक- शब्दानां सूचिः ।

अंगहारस्फोट	४५७	२०	नयामास	६७६	१४
अतीत	४९१	१५	निश्चय	२७	१८
अनागत	४८१	१५	नैगम	६७६	२०
अनुपक्रम	२४४	२६	नैगमाभास	६७७	१०
अनैकान्तिक	६३७	१७	पत्र	६०४।२१,२९	
अध्यक्ष	५४६	१०	पद	४५८	६
अवक्षेपण	६००	१८	पदस्फोट	४५६	१०
अहितपरिहार	२७	४	पर्यायार्थिक	६७६	१७
आकुंचन	६००	२१	परिशेष	६१३	४
इष्ट	३७०	२५	पद्यन्ती	४१	१६
उत्क्षेपण	६००	१४	पादस्फोट	४५७	१८
ऋजुसूत्र	६७८	१६	प्रवृत्ताभाव	२१५	१
औपक्रमिकी	२४४	२५	प्रमाण	२७	२०
करणसूत्र	९	१५	प्रमाणसप्तमंगी	६८२	१०
करणस्फोट	४५७	१९	प्रसारण	६००	२२
कर्तृता	९।१३; ११३।४;		प्रागयाव	२१४	१६
	२६७।२७; २७६।१		प्राप्ति	२५	१८
कर्तृत्व	५३६	१३	प्रामाण्य	१६३	१२
कर्मत्व	९	१४	बाधक	७६	१
कारक	११६	१३	बाध्य	७६	१७
गमन	६००	२३	भावनाज्ञान	३३७	२
चिन्तामयी	२४६	२८	मावेन्द्रिय	१५।२५; २२९।१८	
जन्म	५३६	१५	मोक्षल	५३६	१४
जाति	६५१	१८	मध्यमा	४१	१५
जीवन	५३६	१५	मरण	५३६	१५
तदाभास (ऋजुसूत्र)	६७८	२२	मात्रिकास्फोट	४५७	१९
द्रव्यार्थिक	६७६	१६	मोक्ष	३३४	५
द्रव्येन्द्रिय	२२९	२४	लब्धि	१२२।५; २२९	२९
नय	६७६	१६	वाक्य	४५८	७
नयसप्तमंगी	६८२	१२	वाक्यस्फोट	४५६	११

१ परिशिष्टेष्वेष्ट प्रथमोऽङ्कः पृष्ठसंख्यां द्वितीयस्य पङ्क्तिसंख्यां सूचयति ।

लाल्क्षणलकशब्दसूचलः

७२३

वलरुष	२२	९	संज्ञय	४७।१३; ४९।१०; ५२६।९;	
वलसंवाद	६४२	१७		५३२।२८	
वैखरी	४१	१३	सप्तमंगी	६८४	१३
व्यञ्जक	११६	१२	सममिरूढ	६८०	६
व्यवहार	६७७	२६	समर्थन	३७६	१६
व्यवहारभास	६७	९	समवायलकारण	५३७	२६
शब्दलय	६७९	१	समारुप	२७	१५
शुतमयी	२४६	२५	संवाद	६०	७
संकर	५२६	१६	सांव्यवहारलक	२२९	१७
संमह	६७७	१४	साधकतम	१४	८
संमहभास	६७७	२४	सूक्ष्मा	४१	१६
			हस्तस्फोट	४५७	१८

५ प्रमेयकमलमार्तण्डनिर्दिष्टाः ग्रन्था ग्रन्थकृतश्च ।

अकलङ्कदेव	६११४	प्रमेन्दु	११४
अद्वैतादिप्रकरण	८०१९	प्रशस्तमति	१७०१७
अविद्वक्त्र	२६९१२४	मह	२५१११; ४७४११८;
उद्योतकर	२७०१११; ४७६१९;	भारतादि	५२११२४
६१४११९; ६५९१२५; ६६४१७		भाष्य	२९६१२५
सपनर्ष	४६४११४	भाष्य (न्याय)	४२९१६
कादम्बर्यादि	३९३	भाष्यकार	२३७११५
कुमारिल	१८७११२; ४०८१६;	मन्वादि	१८७११२
	४७४१९	माणिक्यनन्दिन्	४०१
जीवसिद्धिप्रघट्टक	७३११		११७; ६७४१४;
जैमिनि	२५११२५; २६२१८	रत्ननन्दिन्	६९४१२, ९
सारोपप्लववादिन्	६४८१२०	रामायणादि	६९४११२
दिमाग	८०१९; ४३६११६	वार्तिककार	२५८१२
द्विसन्धानादि	४०२१९		२६९११९; २८३११९;
धर्मकीर्ति	७१८		६५२११४; ६३४१३
न्यायभाष्यकार	६५११२०; ६५२११;	विद्यानन्द	१७६१६
	६६३१२५	वेद	२६२१२
पदार्थप्रवेशकग्रन्थ	१३११९	वैद्यकादिशास्त्र	५९८११
पद्मनन्दिस्वैदान्त	६९४१११	वैशेषिकशास्त्र	६०९१३
परीक्षासूत्र	३९३११; ६९४१७	व्यास	२६८१२०
पाणिन्यादि	३९५	समन्तभद्र	१७६१४
प्रज्ञाकर	३८०११७	सूत्र	४२९१६; ५८९१११
प्रभाकर	२०१४; ५६१२, ७;	सूत्रकार	६५११२६
	१२८११	स्मृतिपुराणादि	३९९१२१
प्रभावन्द	६९४११२		

६ प्रमेयकमलमार्त्तण्डगताः कैचिद्विशिष्टाः शब्दाः ।

अंशुल्यभेदस्त्रियूयशतमासे १२८	८	अजं वै प्राणाः	८ १२
अजनतिलकमन्त्रायस्का-		अन्यापोह	४३१; ४४१।१०
न्तादि	५७३ ६	अपमृत्युरहित	३०६ २३
अकलद्वाय	२।७; १७६।३	अप्रमत्त	३०६ १३
अक्षर	२९।१६; २६८।१५	अग्रामाण्य	१६३ १३
अक्षिपद्मनिमेष	३०२ १३	अवाधितविषयल	३५८ २६
अग्निपाषाणादिशब्दश्रवण	४६ १५	अभावदोष	५३६ ८
अग्निप्रदीपगहोदकादि	६२० ३	अभेदवादिन्	७० ६
अग्निहोत्रादि	२६२ ९	अमूल्यदानकमिन्	५४६ १३
अचेलसयम	३३० १७	अयःशलाकाकल्प	५०४ २०
अजाजिन	६६७ ४	अयस्कान्त	५८५ ६
अक्षीन्द्रियार्थवेदिन्	५८ २	अयोगोलकादिवामेः	१०१ १
अत्यन्तोपकारकमुल्य	११२ ६	अर्थक्रियाकारिस्त्वन्माद्युप-	
अद्वैत	७० ९	लब्धि	७९ ७
अद्वैतप्रतिपादकागम	७२ ११	अयं तया लपरिच्छेदरूपा-	
अधीतानभ्यस्तशास्त्रवत्	५९ १३	शक्ति	१५३ ७
अनन्तपर्यायचेतनद्रव्य	७० १४	अर्थप्रधाननय	६८० २७
अनन्तप्रभातमात्राप्रसक्तिः	१७ ६	अर्थवाद	७० १७
अनन्तसुखवीर्य	३०६ २४	अर्धजरतीयन्याय १०४।१६; १०५।४	
अनन्तानुबन्धिकोधादि-		अर्हत्प्रणीतागमाश्रयणप्रसंग २४८ १४	
परमप्रकर्ष	२४५ २५	अर्हदादि	३३१ ४
अनवस्था	५२६ २१	अर्हन्	२५६ ११
अन्तरंगमन्य	३३२ २०	अवग्रहेहावायधारणास्मृत्या-	
अन्तराक्षरहिरान्तज्ञान-		दिविचित्रस्वभावता	३३६ २५
प्रातिहार्यादिभी	७ १२	अविद्या	६६ ११
अन्तराभवशरीर	३१४ ४	अशक्यविवेचनल	८२ ४
अन्तरायविषये	३०६ ४	अशुभप्रकृति	३०३ २५
अन्तर्गडना	१४।१६, ३३।१०	अशुभकाल्यादि	४०२ ५
अन्तर्गडना पीडाकारिणा	७१ १२	अश्वविषाण	५०४ ५
अन्तर्व्योमिः	१९४ १६	अष्टक	३९३ २०
अन्ध	२३ ६	असंयतसम्यग्दृष्ट्यादि	२४५ २२
अन्धपरम्परा	२१६ ४	असत्कार्यदर्शनसमाश्रयण	१५३ १३
अन्धसर्पविलप्रवेशन्याय	४६१।७; ५३०।७	असमवायिकारण	५३७ २८
		असातवेदनीयोदय	३०३ १

असाधारणनैकान्तिक	३५५ ५	उपचार	११२ १०
अहमहमिकया प्रतीयमान	७२ १७	ऊर्णनाम	६५११; ७२
आकलङ्क	६ १०	ऊहापोहविकल्पज्ञान	३५२ ८
आकर्षकाख्यायस्कान्त	५७५ २८	ऊदिविशेषहेतु	३३० ८
आगम	६३१ २१	एकं सन्निवृत्तोरन्यत् प्रच्य-	
आगमप्रामाण्यवादिन्	७० १७	वते	६१६ १३
आचार्य	२११०; ७३; १७७१८;	एकाक्षरता	६८ ६
	३६७१२२	एकान्तवादिन्	६३१२२; १४८१९;
आत्मश्रवणमननध्यान	६६ १९		५१६११
आत्माद्वैत	६४११५; ७०१७	एकेन्द्रियाण्डजत्रिदशादि	३०० २४
	३१६ २	एवम्भूत	६८० १२
आदर्शादि	१०२ ११	औदारिकक्षरीरस्थिति	३०१ २
आयुःकर्म	३०२ २	औशनस	४५४ १५
आर्यो	३३० २४	कंसपाण्यादिध्यान	५५० १२
आशुचक्षुः योगपथान्निमान	१३९ १४	कठकलापादि	४८३ १
आसयोगकेवलिन्	३०० १८	क पि ल	६३५
आहार	३०० २१	करणकुशलादि	६३ १८
आहारकथा	३०६ १३	करतलरेखादिक	३८१११०; ३८१२०
आहारिन्	३०० २७	कर्कटिकादि	२०२११; ५०२१२५
इक्षुकीरादिमाधुर्यतारतम्य	१७४ १३	कर्कादिव्यक्ति	४६९ २१
इन्द्रधनुष	४६८ १०	कर्मकर्तृकरणक्रिया	८५ १९
इन्द्रियसंस्कार	४२४ ५	कवलाहार	३०० ९
ईश्वर	५७३ १५	काकदन्तपरीक्षा	२ १८
उत्कलितत्वमात्र	१३१ ११	काकस्य	काण्ठार्थसूचकः
उत्कृष्टध्यान	३३४ ३	प्रासादः	२१७ २१
उत्तममकमणि	१९८ ४	कैर्मक्षितम्	२१४१११; २३९११;
उत्पेतननिपतनव्यापार	१३८ १९		५२९१२५
उत्पत्तिरक्षि	४७७ ११	काचकामलादिदोषलक्षणवि-	
उद्गमरक्षणशक्तिः	१५३११८;	शिष्टचक्षुरादि	१५० १३
	६५९१२९; ६६४१७	काचाभ्रकादिव्यवहितार्थ	३७ १
उन्मत्तकदिग्जनितोन्माद	२४३ १०	काण्वगाध्यन्दिनतैत्तिरीया-	
उपचरितोपचार	६८५ ४	दयः श्रद्धासेदाः	३९२ २१
उभयसंस्कार	४२४ ३०	कात्यायनाथनुमानाविशय	२५१ २४
उभयदोष	५२६ १४	क्षपित	२८११३; २८५१२५; ४२१६
उपयोग	२३० १	कामल्युपहतचक्षुषः श्ले-	
उपाध्यायज्ञान	३१४ ६	शंखे पीतज्ञानम्	१०९ ९

काम्यनिषिद्धकर्म	३०९ २४	शुद्धवराहपिपीलिकादिप्रत्यक्ष	
कायाकारपरिणतभूत	११८ १४		२५१।२२; २५८।३
कालप्रत्यासत्तिः	५०२ ८	शुद्धस्य	३३१ ५
कुण्डलादिषु सर्पवत्	५२२ २	गोत्रस्वल्प	४४९ २०
कुद्वेक्षेत्रलंकाकाश	५६५ ३	गोमयादि	११८ ९
कुल्याजल	५५१ २३	गोमांस	६३२ ३
कुष्ठिनीजीवत्	३१६ ८	गोलकायामय	२२२ ९
कुसुल	२८३ ३	घटप्रामारामादि	७३ १३
कूर्मरोमादि	७५ १०	घटाख्यच्छेदकमेद	६७ २
कृतनाशाकृताभ्यागमदोष	५२१ १८	यातिकर्मचतुष्टय	२५९ ६
कृतिकोदय	३२९।६; ६५४।१७	हृतादिना च पादयोः	
कृषीबलादि	१६७ १४	संस्कारे	२२२ १०
केनचिन्	२९९।३०; ३०१।१४	चतुरङ्गवाद्य	६४५ १३
केशीण्डुकक्षान	२३३।८; २४०।१९	चन्द्रकान्त	६५।१; ५४७।१९
केशीण्डुकादिकादि	६३ ७	चन्द्रार्कादिमिषय	२६ ७
कैटभक्षिप्	६८८ २	चाण्डाल्यदि	४८६ १९
कीपीन	६६१।१६; ६६९।२४	चार्याक	१८० १
किन्याविशेषयशोपवीतादि	४८६ ७	चार्याकमत	५७१।१; ५७९।१४
क्षणक्षयसर्गप्रापणक्षति	५०३ ९	चित्रकूट	२१३ १५
क्षत्रियमिहक्षुद्र	४८७ १०	चित्रज्ञान	९२ ३
क्षर	२६८ १५	चित्रपञ्चादिकान	६९ १४
क्षायिक	२४५ २७	चित्रसवेदन	५१४।२२; ५१६।५४
क्षायोपक्षमिक	२४५ २६		५२०।२३
क्षररटित	२८ ११	चित्राद्वैत	९५ ३
क्षरनिर्माण	६१७	चित्रैकज्ञान	५४६ १८
क्षरशृंग	५०५ १७	चोदना	२५३ २०
क्षाल्यतिता नो रजहृष्टिः	६९० ३०	चोदनाज्विताबुद्धि	१७५ २१
क्षे पुष्पसंसर्ग	५४ २	अपापुष्पसंविधानोपगीत-	
गजज्ञान	१६६ ६	स्फटिकरकिमा	१०१ ११
गण्डक	३४७ २०	जलनिमग्नमहाकायगजादि	५४० २१
गतसर्पस्य दृष्टिकुहनन्याय	६३।६; ७६।१२	जलधेर्मुखाफलादिपरिणाम	२३० ६
गर्दभाप्रग्रसनापक्ष	४८३ २१	जाततैमिरिक	१५९ १८
गिरितचपुरल्लादि	४३।८	जाततैमिरिकप्रतिभासविषय	५७ ६
गुणव्यतिरिक्त शुभी	१६८ १३	जिन	३०५ १८
शुद्ध	६३४ ६	जिनपतिमर्त	२९२ ९
		जिनपतिमर्ताहुसारिह	३७७ ५

जेन १११३; ९३१६; ३७०१३;	दूरे पर्वतः निकटो महीयो	
४२६११७, २०; ४८६१६; ६८५१६	बाहुः	१०३ १४
जेनमत १४५१६; ४५९१२३; ४६५१९	देवमनुष्य	७१ ६
ज्ञानाग्नि ३०९ ४	वैद्यप्रत्यापत्तिः	५०२ ७
ज्ञानाद्वयादि ६१७ २८	वैद्यसंनमिन्	३३० १८
तत्त्वचतुष्टय १११ ४	देवरक्ष हि किञ्चुका केन रक्ष्यन्ते	
तद्वितोत्पत्ति ५२५ २३		७५ २
तन्माद्युपयोगजनितविशिष्टा-	दोष	१६३ ८
निरति २४२ ११	द्विचन्द्रादि	५७ ६
तपोदानादिव्यवहार ४८६ ६	द्विचन्द्रादिप्रसङ्ग २८५; ३०१११७	
तिमिर ४५ १३	द्विचन्द्रादिवेदन ५८१११; ६२११०	
तिमिराद्युपहतचक्षुष् ३७ १७	७५; १०२१३	
तिमिरोपहत ४४ १९	द्वैतिम्	६७ ४
तिर्बन्धुहस्ताविसंयम ३३ ११	अतृकामुपयोगिन्	२४२ २७
दुराग्रभोक्तमात्रे श्मश्रु ४ १८	धनुःशास्त्राद्विद्वत्तादि	५८८ २२
मुलान्त ४९७ ३	धर्माधर्मद्वय	६३३ १७
दुश्चिच्छेदादि १६९ ४	धूपदहनदिभाजन	५३४ ८
तमिरिकप्रतिभास ७८ १	धूमपटिका	२७७ ४
तमिरिकस्य द्विचन्द्रदर्शन ८६११;	ध्यायकितवृक्षादिवेदन	२२० १
९१११२	नलकसकृत्वादि	३०२ १३
शोयशीतस्पर्शव्यञ्जकधाम्-	नक्षत्रोदक पादरोगः	८ १६
वयमिवत् २३० १७	नपुंसक	३३३ २८
जयीयव २९८ १९	नवीद्वीपदेशखर्गापवर्णादि	४४८ १९
त्रिगुणारमन् २९८ १९	नरखरःकपाळं	६३१ २४
त्रिचतुरपिच्छग्रहण ३३२ १४	नर्तकीलन	६३३ २९
त्रैक्य ३५४	नर्मदादीर	५५१ २३
दण्डकवाटप्रतरादि ३०३ २९	गायकर्मिकाविमर्दकरत-	
दधिप्रमुखादयः ४६९ ६	कचत्	२३० ९
दक्षदागिमादि ४५०१११; ६६७४४	नागवल्लीपत्र	४८४ ६
दिवोदकादिवेदन २१८ २१	नाटकादिचोषण	६७३ २
दिव्यपरमाद्यु ३०२ ११	नारकादिदुःखितप्राणि	७१ ३
दीर्घशाष्कलीमक्षण १८६; २८१६;	नारिकेलद्वीप	५१८ १
१२६११८	निग्रहस्थान	६६३ ९
दीर्घक्षपवात् १०४ १	निसानिरेक्षान्यायिन्	७२ ९
द्वर्षादि ६३२ ३	निसानैमित्तिक कर्म	३०९ १३
	निन्दावादः	७२ ५

निमज्जणे आकारणवत्	६२५ १२	पुथिव्यादिभूतचतुष्टय	११७ १
निराश्रयवन्ति	५०१ २४	पौराणिक	३९२ १७
निरुपाख्य	२०५ १५	प्रकरणसम	३५७
निर्जीविकादिचक्षुष्	२५८ २४	अशालिताशुचिमोदकपरि-	
निम्नकीटोद्ग्राहि	५ ६	त्यागन्याय	२८१ २४
नीलकुवलयसूक्ष्मांश	९७ ६	प्रक्रियोद्घोषण	२१६ ३
नीलोत्पल्लादि	१६५ १२	प्रतिकर्मव्यवस्था	८६ २०
छपलादेरतिभोगिनः	३१९ २२	प्रतिबन्धकमणि	१९८ ६
नैयायिकमत	३४७ १	प्रतीतिभूधरविस्तरारुढप्रामा-	
नैयायिकादि	९२ १२	रमादिप्रतिभास	९७ १४
नैयायिकाभ्युपगतबोद्धशफ-		प्रदीप	१३५ ७
दाय	६२३ ७	प्रधान	९९ १
नैयायिकस्यानैयायिकता	६६३ ५	प्रभाकरमत	५६ १७
न्यायवेदिन्	४५९ ६	प्रमत्तगुणस्थान	३०० ४
पथिकाभि	११८ १३	प्रमाणसम्बन्ध	६७० २४
पद्मनालतन्दु	५८६ १६	प्रमाणसम्बन्धवादिता	५९ ४
परपातकमे	३०३	प्रमाणान्तरवादिन्	१८३ ६
परमचारित्रप्रद	३०५ २८	प्रमेयद्वैविध्य	१८० १४
परमनैर्ग्रन्थ	३३२ १७	प्ररोह	६५ २
परमोदारिकनारीरस्थिति	३०१ ७	प्रक्रमञ्जादिसंस्कृतचक्षुष्	२५८ २३
प र ह र म	४८६ ८	प्रसङ्गविपर्यय	२५२ १९
परस्परपरिहारस्थिति	५३३ २१	प्रसङ्गसाधन	५४४ १४
परीषद्	३०६ २६	प्राणिभक्षणव्यवस्था	७२ ३
पल्लविपण्ड	६६७ ४	प्रातिभज्ञान	२५८ ११
पञ्च	२७ २	प्रागण्य	१६३
पाटलादिकुसुम	५६८ ८	प्राप्तिक	६४९/४; ६६०
पाटलिपुत्र	२१३ १५	फणिनकुलयोरिव	५३४/४
पारदारिकनदीनवद्वा	३०७ १२	जडवा	४८३ २१
पारिमाणव्य	५८७ १९	नदरामलकवत्	५२५ २१
पिच्छौषधादि	३३३ १३	नधिर	४३ १७
पिण्डवर्ज्ज	१८४ १४	नलवत्पुरुषप्रेरितमुद्गराद्यभि-	
पितापुत्रवत्	५२५ २१	जात	२१५ २६
पिशाचादि	२७७	नव्यवातक	५३३ २२
पिष्टोदकगुणधातक्यादि	११५/१४; ११७/२	बह्वस्तमःपटलपटावगुणित-	
पुनैद	३३८ २२	- विग्रह	११२/८; ११९/१९
		बहिरहग्रन्थ	३३२ २०

भाषकारणदोषज्ञानं	१५६ १४	मदसचिन्त	११५१५; ११७२
बा हु ब लि प्रधति	३०२ ८	मनुष्यपारावतमकीवर्द	२२५८
बीजाङ्कुरवद	४४२ ६	मनोनाम्नादिभिषगोरनीता-	
बीजाङ्कुरसन्तान	२४५ १५	रमसुख्यदि	१०१ १२
बीजाङ्कुरादि	२८३ १३	मनोरत्नादिमिकल्प	३३३३;
बुद्ध	२४८१८; २५६१५;		३५१८
	३५४१२३	मन्त्रादिसंस्कृतलोचन	२६१ १६
बुद्धचित्त	५०२ १	मन्त्राखेट	५४९ ७
बुद्धेतरचित्त	५०१ २३	मरीचिक	४८२०; ७६१९
बौद्ध	१८१२६; १०३१९;	महती आसदमात्र	५९२ ८
	६३०११	महर्षि	४२९ ५
ब्रह्म	४५११; ४६११८; ६४११९;	महेश्वर ७१४; १८११४; १३३११३;	
	६५१६; ६७१९	१४१११२; १४२१५; १४४११०;	
ब्रह्मकर्तृकवेद	३९३ १७	१४६११०; २८२; २८३; २९८;	
ब्रह्मज्ञ	४०१ २७	३१९१९; ६१३	
ब्रह्मवाद	९५ १२	महेश्वरज्ञान १३२१५; १३४; १३८	
ब्रह्म व्या स वि श्वा मि त्र ४८४ १		महेश्वरबुद्धिवत्	२७४ ११
ब्रह्मादिविद्याचान्त	२८४ १८	माणवके सिद्धाद्युपचार	७० ५
ब्रह्माद्यद्वैत	४८३ ११	माता मे वन्ध्या	२०६ १९
ब्रह्माद्वैतप्रपञ्च	७८ ६	मातुलिप्रपञ्च	५३४ १
ब्रह्मणक्षत्रियादिव्यवस्था	४८७ २६	मातुविवाहोपदेश	२ १९
भाद्र	१३५ ५	माध्यमिक	९७ ३
भाद्रना तारागिरसामिभः २९ ४		माया	६६ १८
भावनामियोगाक्षर्य	१६५ १४	मायापरमप्रकवे	३२९ २१
भावप्रसाधिति	५०२ १३	मायपाक	३३३ ८
भावभुतज्ञान	४५६ ११	मिथ्यालक्ष्योदय	४८ ८
भिक्षाष्टादि	३०५ १९	मिथ्यासाराधना	३३० १६
निरालिख स्त्रिजम्	१५३ ४	मिथ्यादृष्टि	२४५ २५
भुवगवशोर्गेषप्रसृति	२८४ २१	मीमांसक	३९३ २८
भूतसंभाव	६३४ २०	मीमांसकमत	१३८१४; १४३१५
भेषज्यमातुरेच्छाद्रवर्ति	६८० ४	मीमांसकमतानुसङ्ग	१०३१०; १०११०
भ्रामकक्ष्यानस्कान्त	५७५ २६	मुष्कारभवत्	३७७ १४
भूमिप्रभावा मण्डुदिः	१७० १५	मुष्कारक	५४७ १९
भूमिमुष्कारकप्रवाह	५७४ २१	मूलमिज्येदक	२४२ ३
भूतिज्ञान	३०४ १०	शृङ्खलके अथवाज्ञान	२४२ २७
भूतस्थिति	३०५ २०		

सुतिपङ्कदण्डनकादि	१५३ २४	लज्जपुनर्वातनखकेषादि	३४२।२४;
मेचकज्ञान	५२९ २३		४९८।९; ५५४।१५
मेचकज्ञानवत् सामान्यविशे-		लोकपाक्यहीतदिकूप्रदेश	५६८ २८
वष	२०१ १४	लौकायतिक	६४२ २३
मेण्ड	५२४ ८	वर्णाश्रमव्यवस्था	४९६ ५
मेध्या आपः	२६९ ४	वर्तिकावाहृतैलशोषादि	२०१।२;
मेर्वादि	२४२ १		५०३।१
मोहनीयकर्म	३०३ ३	वन्ध्यामुताधीन	९५ १७
महालुघानागम	३३०।२; ३३१।१६	वन्ध्यामुतसौमात्यव्याघर्षण-	
मशोपवीतादिनिधोपलक्षित	४८६ ७	अल्य	५६१ १५
मषाख्यातसंयम	३०६ २१	वल्गुतैल्यदि	४२४ १६
मुगपहुति	२८ ७	वर्ध भा व लि न	१७६ ७
मोमिन्	३४।१२; ४५	वल्मीकि	२७५ ३
मौग	१८।२६; ६४३।२४; ६५१।१४;	वलीकरणौषध	५८० २२
	६८६।२२	वसन्तसमम	५६८ ८
मौगकर्मित	६५९ २०	वाद	६४५ २३
रजःसम्पर्ककल्लबोदक	६६ २०	वालाग्रमपि खण्डयितुं	
रजोजुप्	२९८ १८	वाक्यदे	४८ १
रजोनीहाराधन्तरिततचनि-		वासीकर्तार्यादि	१४० ३
कर	२४२ १९	विग्रहगति	३०० २६
रज्जुर्वशदण्डादि	५१४ ११	विह्वलितमात्र	७७ ७
रजज्जमादराधन	३३२ १९	विनाशोत्पादप्रक्रियोद्धोषण	५०० ४
रलादिपदार्थ	६३५ १९	विरुद्धवर्गव्यास	५३० १
रा न ण	३८० १२	विरोध	५२६ १०
रा न ण र्श ख व क न र्या दि		विशेषतोदृष्टानुमान	३५० १७
	१८४।१६; ६७९।६	विषं विधान्तरं श्रमयति	६६ २२
रा न णा दि	२४२ १	विषयापहारस्य राज्ञां धर्मः	७५ २०
रूपशेष	५१६ ३	विषागदवत्	५२५ २०
रक्तुन्वपेठादि	६४८ १४	विषागहारादि	६३२ ४
रुधुहृति	२८ १२	विष्टिकर्मकरादिषट्	२७९ १९
रुभान्तराय	३०२।११; ३०६।१८	वीचीतरङ्गन्याय	४२६।२२५
रुल्लवत्	२३० १२		५५८।३
रुल्लकादिपल्लविक	३३१ २६	वीणादिरूपविशेष	१७० ९
रुज्जिगोचयसमुद्भवत्	१५८. ४	वृक्षशाकामंग	२७२ १३
रुज्जनादिक्रिया	३३१ १२	वृक्षो भ्यग्रोष इति	५९ ७
		वृक्षो हन्ती पल्लवकूटादिर्वा	२२० ५

शुद्धिकादि	११८	शुद्ध	
शुद्धादि	४८४ १६	शुद्धोत्पत्त्यादि	४८५ ३
वेद्य (वेदनीयकर्म)	३०३ २०४	श्री व र्द्ध मा न	४९३ १३
वेद्यापाठक	४८६ १६	श्रेणि	६२८ ४
वेद्योपदेशः	३१९ २२	श्रोत्रिय	३०६ १५
वेद्यवेद्य	६४९ १९	षड्रूपाः	२६० २७
वेदनवेद्यप्रत्यक्ष	२५८ २	योदासम्भन्धवादिन	६६७ ४
वेद्यधिकरण्य	५२६ १२		६१२/११;
वेद्याकरण	६७९ १		६२१/२२
व्यक्त	९९ १२	संकेतस्मरणविवक्षाप्रयत्न	
व्यतिकर	५२६ १९	तान्त्रदिपरिस्पन्दक्रमेणो-	
व्यभिचार	६३७ १९	पञ्चममानशब्द	६९ १६
व्याघ्रलब्धकप्रवृत्ति	३०५ २०	संविभित्तलाद्भावव्यवस्थितेः	१६ १६
व्योमोत्पल	६१९ २	संसर्गविशेषवशाद्विप्रलम्बः	१०० १६
प्रत्यक्षवेद्याभ्यानादि	४८५ ५	सकलव्याप्ति	३६५ ९
प्रास	६५० १५	सकलशून्यता	९७
शंखः कदल्याम्	६६७ ११	सकलशून्यवादिन्	६५१ १४
शं ख न क व ति	३८० १२	सङ्करव्यतिकरौ	५३६ ५
शकटोदय	६५४ १७	सखेलसंयम	३३० १३
शकटोदयाद्यर्थ	८६ ६	सत्ताद्वैतवादिन्	६४३ २३
शक्रादि	२८४ २६	स ख भा मा	४५९ १
शत्रुमित्रध्वंस	४९५ १३	सत्तेतरव्यवस्थासंकर	७६ ९
शब्दप्रधाननय	६८० २८	सन्तानान्तर	८० ५
शब्दप्रश्न	३९; ४४; ४५; ४६	संक्षिर्कषप्रमाणवादिन्	१७ ११
शब्दसंस्कार	४१९ ६	सप्तमवरकभूमि	२४५ १६
शब्दाद्वैत	३१६ १	सप्तमपृथिवी	३२८/१६; ३३४/३
शब्दाद्वैतवादिन्	३९ १	संप्रतिधादिरूपता	८६ १३
शब्दात्रुनिवृत्त	४६ १९	समानकालयावद्भव्यमावि-	१३३ ४
शरम	३४७ २१	समुदितेतराण्युद्वादि	४६९ १
शस्त्राका	३२२ १४	सम्बन्ध	५१४ २२
शशशृंगादि	७३ ११	सम्बन्धदर्शनाद्यन्तरासामग्री	२४१ ८
शालकार	३७३ २२	सम्बन्धदर्शनाराधक	३३३ २०
शुक्लशरिकोन्मसादि	४५० १५	सर्पस्य कुम्भकेतरावस्था	५३७ ३
शुक्लप्यान	३०३ ९	सर्वज्वरहरतक्षक चूडारत्न-	
शुक्लपर्व पीतकान	१३९ २२	लङ्कारोपदेश	६ २०
शुभप्रकृति	३०३ २२	सर्वज्ञ	८० ५

सर्वकल्पकप्रत्यक्षवादिन्	३४ १९	सौगतसांख्य यौगग्रामाकर-	
सव्येतरगोविषाण	२१४।१७; ५०१।	जैमिनीयानाम्	६४३ ६
	१०; ५०६।२४	सौगतादि	३९३।२७; ६४३।१
सहस्रकिरण	१३८ ५	सौगती गति	९६ १
सहानवस्थान	५३३ २१	जीविद	३२९ ३
सहोपलम्भनियम	७९।२; ८०।१४	स्थानरादि	३६७ १४
सांख्य	१९ ३	स्थितिकल्प	३३१ ७
सांख्यदर्शन	५७६ १६	ज्ञानपानावगाहन	७५ २०
सांख्यादि	६४२ ११	स्पष्टज्ञानावरणवीर्यान्तराय-	
सांसारिककल्मष	३३० ६	कयोपशम	२१८ १७
साकारवादप्रतिकोप	८६ २०	स्फटिकादि	२२८ ५
साधननिर्मासिज्ञान	१५५ १५	स्याद्वादिन्	३६७ २२
साधुतन्त्र	४२९ ६	सद्य	७१ ६
सार्वभौमनरपति	२८४ २०	सपरप्रकाश	१४७ १२
सिंह	३४७ २१	समावस्था	७५ ८
सिद्ध	३७० २७	सर्गपटल	२१९ ११
सिद्धि	५ १	सर्गादि	३३० १८
सुगत	८०।७; ९५; २३५।२५;	सर्गापूर्वदेवतादि	१७९ १९
	२३६।४; २४७।७	खववाय क्लृप्तोत्थापन	६९२ २३
सुगतज्ञान	२६।७; ९५।९	साक्षिरसाहं पृच्छवतः	५४३ ६
सुगतसत्ताका	९५।१३; ९६।२	ससाध्यं असध्यं नृत्यतोऽपि	
सुतीक्ष्णोऽपि स्रष्टः	१३६ १५	दोषाभावात्	६६६।६; ३७३।३
सुबिज्ञितोऽपि वा नटवदुः	१३६ १६	साममदमूर्च्छाद्यवस्था	२८० ३
सूच्यप्र	१३९ १३	हर्षनिवादाद्यनेकाकारसंमिश्र	१०० १२
सूर्याचन्द्रमसौ	६८८ ९	इत्थपादकारणमात्रिका-	
सृष्टि	७१ ४	द्वारादिस्फोट	४५७ १६
सेश्वरसांख्य	२९७ १७	हस्तिप्रतिहस्तिन्याय	६४७ १९
सौगत	७७।१२; ९०।९; १८०।१२;	हिमवद्विन्ध्यादि	५६२।९; ५९४।१९
	३८२।१; ६४३; ६७२।४; ६८७	हिरण्यगर्भ	३९३।२०; ३९८।१८
सौगतमत	५२४ २१	हीतीतादिनिष्ठरूप	३२१ २३
सौगतवज्रनैरिष्टं	१७८ ११		

**७ आरानगरस्य-श्रीजैनसिद्धान्तभवनसत्कायाः
प्रतेः पाठान्तराणि ।**

पृ०	पं०	सुवितपाठः	पाठान्तरम्
१	५	सुधिषः	सततम्
१	९	विस्फुरिताद्-	विस्फुरितैर्ग-
२	४	तदपहृति-	तदपहृति-
२	११	प्रयोजनवत्पद्मु-	प्रयोजनपद्मु-
२	१२	-समुष्ण-	-समुष्ण-
२	१३	-शास्त्रार्थसं-	-शास्त्रार्थ-
३	१४	असम्बद्ध-	असम्बद्ध-
५	१	ज्ञापक-	ज्ञायक-
६	९	-इतं तदेव-	-इतं सिद्धं तदेव
६	१५	-अनुत्पादनार्थ-	-अनुत्पत्त्यर्थ-
८	१७	-सामिधानकं	-सामिधानं
९	२१	-चेत्स-	-चेत्तत्स-
१०	१९	दृष्टस्य दृष्टि-	दृष्टदृष्टि-
१०	२०	निलयसमा-	निलयकसमा-
११	८	नाभि-	नाभि-
१३	८	-शोपलम्बि-	-शोपलम्बि-
१४	३	-दिना (संयुक्तसमवायः रूपलादिना) सं-	-दिना संयुक्तसमवायः रूपलादिना सं-
१४	४	वाभाव-	वाभाव-
१५	२१	यस्यस्य तस्य	-यस्यस्य तस्य
१६	२	कुम्भर (काष्ठ) च्छे-	काष्ठच्छे-
१६	९	वा	वा
१६	१८	भावे तद-	भावे वा तद-
१८	१	-भास्य योगजघर्मसह-	-भास्य सह-
१८	३	-करणं (योगजघर्मालु) यद्दीर्घं	-करणं योगजघर्मालुयद्दीर्घं
१८	२३	दृष्टते	दृष्टेत
१९	१३	-रमिष्यज्यते	-रमिष्यज्यते
२०	६	-देव प्रसिद्धः	-देव प्रमाणप्रसिद्धः
२०	१०	बाह्येन्द्रियमभिनिर्वाणं	बाह्येन्द्रियार्णं
२१	१५	तदनन्तरम्-	तदनन्तरं प्र-
२१	१९	भास	भास

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
२२	९	-हि को (एको)	हि एको
२३	१२	वापार्थ-	वापार्थ-
२३	२०	क्रिया परिस्प-	क्रिया स्प-
२४	१६	-शक्तिवत्त्वेन	-शक्तिवत्त्वेन
२६	२	-योमि(त्वं)तद्वि-	-योमि तद्वि-
२६	३	-स्य रूपदे-	-स्य चारूपदे-
२७	८	-वणमस्मा-	-वणमस्मा-
२८	३	ह्यन्यत्रान्य-	ह्यन्यत्रान्य-
२८	५	-स्वरूपं वै (पमवैश्वर्यं)परि-	-स्वरूपं परि-
२८	७	तदिति	तदिव
२९	२	-सा साह-	-साकृत्साह-
३०	१५	-वयस्यम् अन्य-	-वयस्यमध्ये अन्य-
३०	२३	विकल्पवर्मा-	विकल्पकवर्मा-
३२	१३	चात्राय-	चाप-
३३	६	-कलं षट्ते स्व-	-कलं स्व-
३३	९	-व्यामि(वि)रो-	-व्यामिरो-
३४	१०	अन्योत्पा-	अन्योपपा-
३४	१९	सविकल्पा(स्प)क-	सविकल्पक-
३५	१७	प्रभवत्त (वात् त) तो	प्रभवात्ततो
३६	४	-स्त्राम्रपादिबत् । कपाद्य-	-स्त्राम्रपाद्य-
३६	६	मीयते	मीयते
३६	१७	शब्दप्रभवत्वात् (प्राणार्थं विना-	शब्दप्रभवत्वाद्वा ग-
		तन्मात्रप्रभवत्वाद्वा) ग-	काचान्यका
३७	१	काचात्रका	-सतस्वतस्वद्वेद-
३७	११	-सतस्वद्वेद-	-पतिद्विषि-
३७	१५	-पतिप्रवृत्ति-	शब्दाध्य-
३८	२	शब्दाध्य-	-कार्या-
३८	५	-शस्त्रार्थ-	तत्स्ववर्ष-
३९	२	तत्स्ववर्ष-	-दैवोऽसौ
४०	८	-वैद्योऽसौ	-तापसाः
४०	१५	-सामप्रतिपक्षा-	लोचनाध्य-
४१	१३	लोचनाध्य-	षट्ते
४४	१३	षट्ते	-ब्रह्मणि
४४	१६	-ब्रह्मणि	

पृ० पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
४६ १८	द्वैतम्-	द्वैतसिद्धिम्-
४७ १४	-रेवसं-	-रेव स सं-
४८ ४	-अभवेतु-	-अभे हेतु-
४८ १६	-नाभिमे-	-नाभिमे-
५१ १	अवहिष्ठाऽस्थि-	अवहिरस्थि-
५१ १२	सत्त्वेनासत्त्वेनान्येन	सत्त्वेनान्येन
५४ २	खे खपुष्प-	खखपुष्प-
५७ ४	सामान्यमात्रम्-	सामान्यमात्रम्-
५७ ६	निषये सह-	निषयेषु सह-
५८ ४	सर्वस्यास्तम्-	सर्वस्याः स्पृतेस्तम्-
६२ १	मेदे अजु-	मेदाजु-
६३ २२	नचानेकान्त-	नचैकान्त-
६५ ९	मेदाजुप-	तदजुप-
६६ ७	वासल-	वासल-
६६ २२	खस्यं	खस्यं
६६ २४	मेदे समु-	मेदसमु-
६७ ७	मेदातयव-	मेदायव-
६७ १३	-य पक्षोप्य-	-य विक्रमोप्य-
६८ १२	तथा तत्त्वफि-	तथा व्यफि-
६९ २०	-साञ्छन्दे(न्दो)स्त्रीसंभ्यु-	-साञ्छन्दोत्पत्त्यभ्यु-
७० ४	-चारकप कल्प-	-चारकपकल्प-
७० ६	मुख्यं मेदा-	मुख्यमेदा-
७० ८	असिद्धिः	असिद्धः
७१ ५	प्रवर्तते	प्रवर्तत
७१ १४	परदुःखं	परत्र दुःखं
७१ १४	-न्ति पर-	-न्ति-तेषां पर-
७१ १५	प्रवृत्तौ	प्रवृत्तौ
७२ ११	कथमाद्वैत-	कथं द्वैत-
७५ १३	तस्मात्प्राप्यमानलाव	तस्मात्प्राप्य-
७५ १७	-सलमाभ्यु-	-सलमिलभ्यु-
७७ १०	यथायः पक्षल-	यथायः सपक्षल-
७८ १३	अनुपलब्धि-	अनुपलब्धि-
८३ १४	साक्षरो वा (मिश्रकालः समकालोवा)नी-	साक्षरो वा मिश्रकालः समकालो वा नी-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
८६	१३	सप्रतिधादि-	प्रतिधातादि-
९१	७	-स्याप्यक्षेपसि-	-स्याप्यक्षेप-
९१	१३	जडस्यापि पर-	जडस्यापर-
९२	२१	व्याप्तौ तौ प्रति-	व्याप्तेति प्रति-
९३	७	प्रसिद्ध-	सिद्ध-
९३	७	यतः स्वतः प्र-	यतः प्र-
९६	९	-व्यापित-	-व्यापित-
९६	१२	-व्यापितं	-व्यापितं
९९	९	ज्ञानस्वभावतावि-	ज्ञानस्वभाववि-
१०१	१३	निवर्तन-	निवर्तन-
१०३	१६	आकाराभावक-	आकारव्यापक-
१०४	५	-दुत्तरार्थक्षण-	-दुत्तरार्थक्षण-
१०४	१३	आत्मनोऽर्था-	आत्मनार्था-
१११	१३	पुनस्तत्त्वक्षणं	पुनस्तत्त्वक्षणं
१११	१८	तद्भावावेदकं	तत्सद्भावावेदकं
११४	४	नैतन्यम्,	नैतन्यस्येन्द्रियं
११९	१२	सर्वं	सर्वत्र
१३४	४	नव्यात्मीयज्ञानमा-	नव्यात्मायं ज्ञानमा-
१३५	१९	नास्य संयुक्त-	नास्य सन्निकर्षो वा संयुक्त-
१४१	२	संयोगोऽवि-	संयोगावि-
१४१	११	-स्यानिष्टदेहादि-	-स्यानिष्टदशादि-
१४१	११	-गोष्ठदेहा-	-गोष्ठदशा-
१४२	१	वाह्य-	न वाह्य-
१४२	१७	-मस्तु ज्ञाना-	-मस्तु किं ज्ञानान्तरेण ज्ञाना-
१४८	१	वार्थ	वार्थ
१४८	२	-नौ तर्हि तावेव	-नौ तावेव
१४८	१३	न	वा
१४९	१७	ज्ञानं	विज्ञानं
१५०	५	-ग्रीतो वा ग-	-ग्रीतो ग-
१५२	२१	न चात्र	न चासौ
१५३	३	येन तदुत्प-	येन प्रमाणं तदु-
१५४	१७	श्रुतिश्रुतकले	श्रुतिश्रुतकले
१५४	२१	प्रवृत्त्याभावे-	प्रवृत्त्याभावे-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
१५७	६	तावतैवेयं	तावतैवायं
१५८	११	प्रवर्तते	प्रवर्तते
१५८	२३	तावन्नार्थोऽभिधीयते	तावन्नार्थोऽभिधीयते
१५९	३	कारणे शुद्धे तज्ज्ञा-	कारणाशुद्धेर्ज्ञा-
१५९	४	न्व	तु
१५९	७	-न्द्रिये शक्ति-	-न्द्रियशक्ति-
१५९	१४	-क्षेण तेनो-	-क्षेण तत्तेनो-
१६०	१३	समस्त(सम्मतस्य)स्य	संयतस्तस्य
१६१	१२	चेन्द्रिये	वेन्द्रिये
१६२	३	कथन्तस्तस्यतः	कथन स्ततः
१६२	५	प्रमाणपक्षकामात्र-	प्रमाणिकामात्र-
१६२	६	चामात्रप्रमाणोत्पत्तौ	चामात्रप्रमाणोत्पत्तौ
१६३	३	नैर्मल्यदियुक्तस्य	नैर्मल्ययुक्तस्य
१६३	७	तत्रापि	तत्रापि
१६४	१६	जन्मैव	यत्रैव
१६५	३	प्रमाणस्य किं	प्रमाणस्य तु किं
१६५	९	-विनाभावस्य	-विनाभावत्वस्य
१६५	१०	हेतोः स्व-	हेतुत्व-
१६८	११	-क्रियाज्ञानस्याप्य-	-क्रियासाधनस्याप्य-
१६९	४	इद्विच्छेदा-	तद्विच्छेदा-
१६९	७	स्वप्रार्थकिया-	स्वप्रेष्यार्थकिया-
१७१	२	अपर (अपवर) कान्तर्देश-	
		सम्बन्धे तु मणा-	-अपवरकान्तर्देशसम्बन्धमणा-
१७१	१२	-निष्कयात्मकं	-निष्कायकं
१७२	६	-तत्तत्तत्तः	-तत्तत्तत्तः
१७२	११	कथित्वा-	किञ्चित्क-
१७२	१२	कथित्वा-	किञ्चित्क-
१७४	३	प्रागेव	इत्यपि प्रागेव
१७४	१०	वैतस्मि-	वैतस्मि-
१७५	११	नेष्यते	नेष्यते
१७५	१४	कान्दे स-	कान्दस-
१७६	७	सिद्धं सर्वजनप्रमोषेलादिलोकस्य	व्याख्यानं आ० प्रतौ नास्ति ।
१७७	३	-तद्विप्रमोषात्	-तद्विप्रमोषात्
१७७	७	-तैकद्विज्यादिप्रमाण-	-तैकत्वादिप्रमाण-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
१७७	१६	-साधनम् इति-	साधनं तद्वतोऽनुपपन्नत्वं-
१७८	७	कृतो (गौणत्वम्)	कृतो गौणत्वम्
१७८	११	-अयत्नस्या-	-अयत्नस्या-
१८१	१५	-विरोधी	-विरोधी
१८१	२०	ज्ञापक-	ज्ञापक-
१८१	२२	-ज्ञातस्य-	-ज्ञातस्य सद्य-
१८२	१३	-न्यस्य विज्ञे-	-न्यविज्ञे-
१८२	२१	सम्बद्धं	सम्बद्धे
१८३	१९	शब्दो	शब्दो
१८४	७	वाञ्छ	तञ्च
१८४	१०	हि सद्भावेन सत्तया	हि सत्तया
१८४	१२	बहिरस्तीत्यस्ति-	बहिरस्ति-
१८४	२२	न त्वेवं	न चैवं
१८५	३	चागतेः	चागमे
१८५	११	-तत्त्वज्ञे-	-तत्त्वज्ञे-
१८६	१२	न तद्व-	न तस्य तद्व-
१८७	१	न वेत्त-	न वेत्त-
१८७	३	न	वा
१८७	५	-अन्यथा न गो-	-अन्यथा न गो-
१८७	१३	अवच्छ	अवच्छेद
१९०	३	-विभागतः	-वियोगतः
१९०	९	को	यो
१९०	९	-दिनः	-दितः
१९१	५	वापरस्या-	न परस्या-
१९१	१२	चोप-	चोप-
१९२	३	-च्छेद्यत इति	-च्छेद्य इति
१९२	८	-वात्सल्यार्द्र-	-वात्सल्यार्द्र-
१९२	८	नाव-	नाव-
१९३	६	विना नो-	विना अन्येनो-
१९४	१९	सपक्षानुपमानानुगमभेदः	सपक्षानुपमभेदः
१९५	३	स्थिताम्	स्थिता
१९४	४	नियामिकाश्च	नियामिका
१९८	८	न तत्सम्बन्धिष्वपि	न तावत्सम्बन्धिष्वपि

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
१९८	१२	सहकरि	सहकरिणोः
१९८	१८	-राभावात्	-रासंभवात्
१९९	३	-प्येतच्चोर्यं समानम्	-प्येतयोः सृष्टं मानम्
२००	११	अनादिनिघन-	अनाद्यनिघन-
२०५	२	-लब्धिविशेषतः प्रति-	-लब्धोर्विशेषतः विप्रति-
२०७	१७	अनुष्णाग्नि-	अनुष्णोऽग्नि-
२०८	५	-स्वापात्स्वभाव-	-स्वापात्स्वभाव-
२०९	२६	-भावग्रहणस्य	-भावस्य
२१०	६	-भावग्रहणस्य-	-भावस्य
२१०	१३	-पटादिव्यक्तिय्यो-	-पटादिभ्यो-
२१०	१५	न निखिल-	नाखिल-
२१०	१७	-तराभयत्वं च	-तराभयत्वात्
२१३	४	विनाशेऽप्युत्प-	विनाशिन्युत्प-
२१५	२	-दिव्यापारवैय-	-विवैय-
२१५	११	घटादे-	पटादे-
२१५	१३	आधान्तर-	भावोत्तर-
२१५	१९	-रेव तेन वि-	-रेव वि-
२१८	२३	-स्योपपातः	-स्योपपातः
२१९	१७	वेदं	वेदं
२१९	२३	-नाम्नाप्यस-	-नाम्नाप्यस-
२२०	७	-विशेषवि-	-विशेषैर्वि
२२१	१२	तथा चेन्द्रि-	अथा चेन्द्रि-
२२१	१४	-मातमेव्यते	-वास्तु नेक्ष्यते
२२१	१९	रूपं चक्षुः	रूपचक्षुः
२२२	१४	-बलमं शक्त-	-बलमशक्त-
२२३	१०	अन्यथा-	नान्य
२२८	११	-कं तद्-	-कं दृष्टं तद्-
२३०	२३	रसामिव-	रसव्य-
२३१	८	तच्च	तत्र
२३२	१६	कार्यकारणभा-	कारणकार्यभा-
२३३	१२	अवति	अवेत्
२३३	१४	पुरःस्थितया	पुरःस्थिततः
२३४	१४	तदसतो	तदसतो
२३४	१५	-यजन्त्वे	-यजन्त्ये

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
२३४	२२	कारणकल्प-	कारणकल्प-
२३५	१	ततो नोपलभ्यते न	तत्त्वैवार्थोभावैऽपि उपलभ्यते। अत्रान्तं तु तद्भावं एवोपलभ्यते न
२३५	३	-भूतज्ञानं	-भूतं ज्ञानं
२३५	१५	लब्धा-	तल्लब्धा-
२३५	१६	-नाप्यतत्का-	-नाप्यका-
२३५	१९	-दे तस्यापि-	-देऽपि तस्यापि
२३५	२४	मैत्रे	मित्रे
२३६	५	प्रतीयते	प्रतीयते
२३६	१६	सान्ध्यास्यापि	सामान्यस्यापि
२३७	३	तदन्यज्ज्ञात-	तदन्यज्ज्ञात-
२३९	२६	निखिलार्था-	निखिलज्ञानेनाखिलार्था-
२४०	१५	वा	व
२४३	१५	-त्वेतत्पार-	-ज्ञातत्पार-
२४४	२८	-कर्मणो नि-	-कर्मणो नि-
२४६	२१	-प्राशेषज्ञान-	-प्राशेषज्ञान-
२४७	१३	-यज्ञानस्य (ज्ञानस्य त) ज्ञान-	-यज्ञानस्य तज्ज्ञान-
२५०	९	-यंप्रधानेस्त्रै-	-यंप्रमाणेस्त्रै-
२५३	४	लभ्यते	लभ्यते
२५३	८	-प्रभववानुमाना-	-प्रभववानुमाना-
२५३	९	-व्ययत्वेन तत्प्र-	-व्ययत्वे तत्प्र-
२५५	१०	यदि यद्वि-	यद् यदि-
२५५	२९	इति तत्सर्वा-	इति च सर्वा-
२५७	६	-ज्ञानं वक्तव्यम्	ज्ञानं वक्तुं शक्यम्
२५७	१०	प्रत्यक्षलाभ-	प्रत्यक्षाम-
२५८	५	-सम्बन्धिलस्यातीतदर्शन-	-सम्बन्धिलस्य च ग्राहि
२५८	१८	सम्बन्धिलस्य च ग्राहि भाविघर्मादेरतीतकालदेरिवावि-	सम्बन्धिलस्य च ग्राहि भाविघर्मादेरिवातीतकालदेरिव-
२५८	१९	-लोकोपमो-	-लोकोपमो-
२५९	२	-स्यानालो-	-स्याप्यनालो-
२६१	३	प्रक्षीण-	क्षीण-
२६२	६	यथोक्तं	यथोक्तं
२६२	९	तद्भाष्यार्थार्थ- तद्भाष्यानाध-	तद्भाष्यानाध-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
२६५	२	चार्ये	चार्ये
२६६	५	प्रपञ्चनो-	प्रसङ्गनो-
२६८	१	जानतो-	ज्ञानतो-
२७२	२२	-न्तिकं च	-न्तिकलाञ्च
२७३	६-९	तत्सम-	सम-
२७३	१०	-कान्ते व्य-	-कान्तेप्यव्य-
२७३	१५	-भूतलादि-	-भूतलादि-
२७३	२४	-बुद्धिने-	-बुद्ध्यादिवै-
२७४	२३	व्याप्येत	व्याप्यताम्
२७५	१३	बाधकप्रमाणव-	बाधकव-
२७७	१६	-क्षप्र-	-क्षरप्र-
२८१	१५	-गयापि	-गया हि
२८२	३	सेवामेवाहु-	सेवाहु-
२८३	२६	-सङ्गः स्यादि-	-सङ्गलादि-
२८३	२७	तेनैवा-	अनेनैवा-
२८६	१७	-धर्मिवत्	-धर्मि च
२८९	१७	-कत्वे	-कत्वेन
२८९	२०	-क्षीर्येत	-क्षीर्यते
२९३	२८	निश्चयस्योत्पा-	निश्चयोत्पा-
२९४	३	हि भव-	हि ज्ञानं भव-
२९४	१६	हु	व
२९५	२	-गाविस्या-	-आदिनियमस्य घटनाहुपादान-
			ग्रहणादिस्या-
३९५	५	सिद्ध्यति	सिद्ध्येत
३०१	१४	प्रसाध्य-	साध्य-
३०२	२८	-वति तन्निमित्तकर्मसङ्गादे तत्फल-	
		सिद्धिस्तस्याथ तन्निमि-	-वति शुभादिफलसङ्गादे तन्नि-
		त्तकर्मसङ्गावसिद्धिरिति	मित्तकर्मसिद्धावसिद्धिः तत्सिद्धौ
			च शुभादिफलसङ्गावसिद्धिरिति
३०३	१३	-तदुदयेऽपि	-तदुत्तरे तदुदयेऽपि
३०४	२	-मानं क्रियते	-मानं कर्म क्रियते
३०४	१३	निरतव्यामो-	व्यावृत्तव्यामो-
३०५	१२	घटेत	घटते
३०९	२४	मोक्षार्थी	मोक्षार्थ

पृ० पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
३१४ २०	-वनाभ्यासात्	वनावशात्
३१५ ९	-यां ग्रहो	-यां हि ग्रहो
३१५ १४	न प्रति-	न च प्रति-
३१८ ३०	इन्द्रियवक्त्रा-	इन्द्रियादिजन्यवक्त्रा-
३२० २४	-न [ख] आ-	-न स्वभा
३२३ २२	नास्ति तत्र तत्	नास्ति तत्
३२६ ७	-वरूपतया	-वतया
३२६ १४	एवेदानीं युक्तः	एव युक्तः
३२७ ६	-न्यात्मनिष्ठ-	-न्यात्मनः क-
३२७ २७	-तन्मत्त(ल)र्ष-	-तन्मत्त-
३२९ १३	-गतेनैव वा-	-गतेन च वा
३३० २४	दिविस्त्रुजो	दिविस्त्रुज
३३१ ६	-कन्म इत्यादेः	-कन्मे वदजिह्व-
		पठिक्कमणे मासं पञ्चोसम्-
		णकप्ये इत्यादेः
३३५ ८	तस्य मतो	तन्मतो
३३६ ९	-नं साङ्गं दृष्ट्वा क-	-नं दृष्ट्वा यतिं क-
३३६ २४	-विवेचनसादृशु-	-विवेचनसादृशु-
३३६ ३०	-[प] रि-	-यति-
३३७ २३	स्पृष्टावपि	स्पृष्टार्थावपि
३३९ २२	तं	तत्
३४० २०	-ज्ञानम्-	-ज्ञाप्-
३४१ २१	तस्य चास-	तस्यैवास-
३४२ ६	इत्यप्यसा-	इत्यसा-
३४२ २०	-स्यापि अन्य-	-स्यान्यस्त्यान्य-
३४४ ५	-ययप्रवृ-	-यये प्रवृ-
३४५ ८	लिङ्गान्म्यु-	लिङ्गेनाम्यु-
३४० ४	-कारेण बोप-	-कारेणैवोप-
३५० १०	-नुबन्धनि	-नुलम्बिनि
३५१ २१	तत्प्रस-	तत्प्रभवप्रस-
३५५ २०	लोके प्रसि-	लोकप्रसि-
३५६ १९	-चितं सा-	-चितसा-
३६१ ५	सु	च
३६६ ३	ज्ञाप्यते	ज्ञायते

पृ० पं०	शुद्धितपाठः	प्राञ्चान्तरम्
३६६ १६	-व्याप्तेरमा-	-व्यापाराभा-
३६९ २१	-वञ्चितप्र-	-मिषप्र-
३६९ २५	-रीतस्य	-रीतार्थस्य
३७१ २३	-न्द्रियप्र-	-न्द्रियार्थप्र-
३७३ १०	-नं सा-	-नं हि सा-
३७५ ९	गौरेपि तत्पुत्रे तत्पु-	गौरेऽपि तत्पु-
३८६ १९	-लभ्येत	-लभ्यते
३८७ ५	-भाववतो यो-	-भाववादिनो यो-
३८७ १४	यो व्याप्नु-	यो मु-
३९४ १९	-मानं विच्छे-	-मानं विच्छे-
३९५ ५	-श्यन्तया	-श्यन्तया
३९८ २	-क्षिरित (रितीत)रे-	-क्षिरितीतरे-
४०२ ९	-नेकप्रकृ-	-नेकधा प्रकृ-
४०२ १८	संकेते(त्वा)म-	संकेतान-
४०२ २१	यत्र पु-	यत्र यत्र पु-
४०७ ११	-यान्तमिष	-यातमिष
४०८ ७	यावज्ज-	तावज्ज-
५०९ २६	सम्बन्धावधारणम्	सम्बन्धावयमः
४११ १४	-तो लक्षितलक्षणया-	-तो लक्षणया
४१२ १३	चेत्किं पु-	चेत्किं पुनः पु-
४१३ १७	-यतिः	-यतिः
४१४ ३०	प्रथमे वि-	प्रथमवि-
४१५ १	-त्वेऽल्पतानि-	-त्वे कल्पनानि-
४१५ ३२	ननु चासि-	न चासि-
५१६ २१	चापह्वायो-	चासङ्गावायो-
४१७ २९	-दृश्ये चो-	-दृष्टे चो-
४१८ ८	तान्प्रति-	तावत्प्रति-
४१८ १०	-न्तरं कफांशा-	-न्तरं तत्र-कफांशा-
४१८ २४	कुल्यादि-	कुम्मादि-
४१९ ६	तस्मात्स-	स्वस्यास-
४१९ २६	नामैव	नास्त्येव
४२० ५	-रे सर्वदो-	-रे सर्वत्र सर्वदो-
४२० ६	इत्यप्यच-	इत्यच-
४२० १९	संस्कृतिः	सन्ततिः

पृ० पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
४२१ ९	नित्यस्यास्यानावेया-	नित्यस्यानादेया-
४२१ २७	स्वदेशे तद्वावारकाः तर्हन्तरा-	स्वदेशेन वावारकाः सूर्यान्तरा-
४२२ ५	शक्यम्	शक्यते
४२२ २८	-वातः । प्रत्य-	-घातः स्यात् । प्रत्य-
४२२ ३०	तथा च व्यञ्ज-	तथा व्यञ्जयवत् व्यञ्ज-
४२३ ९	हि	च
४३४ १	संस्पृ (संसृ)ष्ट-	संसृष्ट-
४३४ ११	-प्रसंगः	-प्रसङ्गात्
४३६ १३	-आवेप्य(आवेऽपि)गौः	-आवेऽपि गौः
४३७ ४	-वाच्यत्वात्	-व्याप्तत्वात्
४३७ १५	-ज्ञापनं (ज्ञानम् ;)	-ज्ञानम्
४३८ २१	-मपोष्यत	-मपोष्यत
४३९ ११	किञ्च	किञ्चा
४३९ १५	-लक्षणेण(तद्वैलक्षण्येन)	-लक्षण्येन
४४१ ३	परपेक्षा-	परीक्षा-
४४७ २१	तज्ज्ञा (तज्जा)	तज्ज्ञा
४५३ २४	-तक्षयो-	-तक्षानक्षयो-
४५६ १९	-मन्ये (न्ये)न	-मन्येन
४५६ २०	बुद्धौ शब्दोऽव-	शब्दो बुद्धाव-
४५८ १९	-णादिगम्य-	-णाभिगम्य-
४६० २३	पदासि-	पदसि-
४६७ ९	-णापिसद्भावा-	-णाविनाभावा-
४६७ ९	ततो व्यञ्ज-	ततो वस्तुव्यञ्ज-
४६७ १६	बुद्ध्यभेद-	बुद्धिभेद-
५६८ १६	प्रतिभासवत्	प्रतिभासनवत्
४७२ १५	मिज्जदेशेऽपु	मिज्जदेशेऽपु
४७४ ६	आसिः केति	आतिराकृतिः
४८१ ९	-पन्वारे तु	-भन्वारेत्
४८४ १४	अन्यत्र प्र-	अन्यत्र-
४८५ ७	-तिरिक्तैकनिमि-	-तिरिक्तैकनिबन्धननिमि-
४८६ ६	घटेत्	घटवे
४८६ २१	न तज्ज्ञा-	ननु तज्ज्ञा-
४८९ ८	-स्थानां त-	-स्थार्थानां त-
४९२ १५	प्रति [क्षण]वि-	प्रतिक्षणवि-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
४९२	२६	-णिकलस्याप्य-	-णिकार्यस्याप्य-
५०४	२०	-न्यं सम्बन्धा-	-न्यं बन्धा-
५०७	१७	-नेव यो-	-नेव न यो-
५०७	१७	-नौ का-	-नौ द्वौ का-
५०७	२१	प्रयुक्ते	अप्रयुक्ते
५०८	११	एव कारणाभि-	एव च कारणाभि-
५११	१७	घटप्र-	घटप्र-
५११	१९	पटस्यापि	घटस्यापि
५१२	२२	-न तस्य	-न चात्र तस्य
५१२	२३	तदभि-	तदेतदभि-
५१९	२४	-रूपता(तां)	रूपतां
५२१	४	सुखमाद्यं	सुखमाद्यं
५२१	१०	तथा त-	तथाच त-
५२१	११	-स्पष्टत	-स्पाष्टते
५२२	९	-स्याम-	-स्या वा भ-
५२३	६	स्यस्य	तस्य
५२७	१४	-व्यव्याहृ (व्यहृ)त-	-व्यहृत-
५२८	२४	सु नि-	सखि नि-
५३१	१६	-नात्कथं तत्र	-नात्का तत्र
५३२	२१	-वर्गोऽयु-	-वर्गोप्य-
५३६	६	-वदेव वस्तु-	वदेकवस्तु-
५३३	२७	[वर्मे] व-	वर्मेव-
५३६	१	चौर [पार]	चौरपार-
५३८	९	-भाष	-धः
५३९	२०	-दिः [देः]	-देः
५४४	१७	[व्याप्य] व्या-	व्याप्यव्या-
५४५	१८	युष्मा	युक्तिमती
५४५	२२	-द्यवयवानामेवाव-	-द्यवयवाव-
५४८	१०	एकद्रव्यः	एकद्रव्यं
५६१	५	रूपादिना सु-	रूपादिसु-
५६१	१४	-त्वा (ल) प्र-	-ल प्र-
५६७	२१	वयाऽ(तयाऽ)-	तयाऽ-
५७३	१६	नच	किंच
५७९	३	-वत्परशरीरेन्य-	-वदन्य-

पृ० पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
५८२ १७	तदेव (तत एव)	तत एव
५८२ १९	-व्या (व्य) प-	-व्याप-
५८४ ९	मनोद्रव्यत्न (मनोऽन्यत्न)	मनोऽन्यत्न-
५८४ १५	दिग्देशा-	हि देशा-
५८५ २०	-भिलाषप्रत्यभिज्ञानम्-	-भिज्ञानम्-
५८६ १२	-प्रतिष्ठ-	-प्रविष्ट-
५८८ ११	-स्प(स्य)	-स्य
५८८ १५	प्रतिब (प्रब)-	प्रब-
५८९ ५	-मन्तो	-बन्तो
५९० ७	-क्षिणाशा-	क्षिणिना-
५९० ८	द्विल्लवद्-	द्विवद्-
६०१ ६	-षं तदपरि-	-कमपरि-
६०१ १३	-मा(शे)र्ष-	-शेर्ष-
६०१ २६	हि नि-	हि तन्नि-
६०२ १८	लक्षणमेवां	लक्षणं तेषां
६०३ १४	-सीयेत्येतदेव	-तीयोऽप्यसदेव
६०३ १५	-योगितप्र-	योगिवत्प्र-
६०४ ३	-नुपप(त्प)तोः	नुत्पतोः
६०४ १४	-हः नचान्तराख्या-	-हः भावान्तराभा-
६०६ १६	-शेषे(व)वि-	शेषवि-
६०७ १८	समवायी इति	समवायीनि इति
६०८ २४	तदप्यसत्	तदसत्
६०९ ४	अपुन्यमाभ्यवृत्ति-	अपुन्यवृत्ति-
६०९ १६	तत्रासंभाव्यम्	तत्रासङ्गत्वात्
६०९ २१	-यिसमवाय(यिमावा) साधात्	-यिमावाभावात्
६०९ २१	-राशयमावा (यथ समवाय) सिद्धौ हि	-राशयस्य समवायसिद्धे हि
६१० २५	सम्बन्धलक्षा-	सम्बन्धजा-
६११ १७	-तयासौ प्र-	-तया प्र-
६१२ १८	पटो	मटो
६१५ १५	परपरिक-	परिक-
६१७ १८	-नर्थक्यम्	-नर्थक्यम्
६१७ २२	स एव स इति	स एवमिति
६२१ ४	समवायस्य नि-	समवायनि-

पृ० पं०	शुद्धितपाठः	पाठान्तरम्
६२१ ९	इति वि-	प्रतिवि-
६२२ २०	-हुणत्पायी-	-हुणापी-
६२४ १३	-या वि-	-यापि वि-
६२५ २४	-प्यमुन्दरम्	-प्ययुक्तम्
६२६ १७	बोध-	अवबोध-
६२८ ६	-दः	-दः समाप्तः
६३४ १७	-वियतये-	-निश्चयये-
६३५ ११	-भासवद्-	-भावादु-
६३६ १	नित्ये	नित्यत्वे
६४० १४	-रीतेऽन्व-	-रीतेऽप्य-
६४८ ४	-कयोः वि-	कयोः विवादापक्षयोः वि-
६५३ ८	-समः	-समाः
६५६ ६	-निश्चिकत्वे	-निश्चयत्वे
६६० ९	खसा-	खेष्टसा-
६६४ १९	साम-	साधनसाम-
६६५ १७	-नां ह-	नां ह-
६६७ १	नेदमनि(वि)ज्ञा-	नेदमविज्ञा-
६६८ २१	सख्याः	सभ्याः
६६९ २०	-स एव	-ये
६७० ३०	-यिकप्र-	यिकप्र-
६७१ १८	-नमदो-	-नं नादो-
६७४ ५	ज्ञानेन वा-	ज्ञाने च वा-
६७४ ७	-चिदिति चेत्तर्हि	-चिदेव तर्हि
६७६-	‘शान्तां वाचाम्’ इत्यादिभ्योऽप्य० प्रती नान्ति ।	
६७७ १३	-कव्यमु-	-कव्यमु-
६७८ ८	यः पुनः	यस्युनः
६७८ १९	विषयमात्रप्र-	विषयभावप्र-
६८९ १५	तद्वि (वि) प्र-	तद्विषं प्र-
६९४ १२	‘श्रीगोपदेवराज्ये’ इत्यादि प्रशस्तिः आ० प्रती नान्ति ।	

८. मूलटिप्पण्युपयुक्तग्रन्थसूचिः सङ्केतविवरणञ्च ।

अभिसमयालोकलं० अभिसमयालोकलद्वारः (गायकवाढ सीरिज बढौदा) ९५,
अष्टश० अष्टशती अष्टसहस्र्या मुद्रिता (निर्णयसागर प्रेस बम्बई) ३५, ३८।
७७, ८१, ८३, ९४, १०९।

अष्टसह० अष्टसहस्री (निर्णयसागर बम्बई) ३५, ३८, ५९, ६२, ६३, ७७, ८१,
९४, ९६-९८, १००, १०९, १११, ११७, ११८।

आप्तप० आप्तपरीक्षा (जैनसाहित्यप्रसारक का० बम्बई) ८३, ९३, ९४, ९९,
१३६, १३७।

आप्तमी० आप्तमीमांसा (जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था कलकत्ता) ७७, ९४,
अग्नेद० } ऋग्वेद संहिता ६४, २६४, ३९९।
ऋग्वेद० }

कठोप० कठोपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ६४।

कावन्वरी० कावन्वरी (निर्णयसागर बम्बई) २९८।

कुमारसं० टी० कुमारसंभवटीका (" ") ४९।

कथुर० कथुरोपनिषद् (" ") ६५।

नित्युत्थी० तत्त्वप्रदीपिका नित्युत्थी (" ") ५३।

छान्दोग्योप० छान्दोग्योपनिषद् (" ") ६४।

जीतकल्पमा० जीतकल्पमाध्यम् (जैनसाहित्यसंशोधकग्रन्थमाला पूना) ३३१।

जीवकाण्डगो० जीवकाण्डम् गोन्मटसारस्य (रायचन्द्रशास्त्रमाला बम्बई) ३००।

जैनेन्द्रव्या० जैनेन्द्रव्याकरणम् (जैनसिद्धान्त प्र० संस्था कलकत्ता) ७, १७६,
६७९, ६८७, ६८८।

जैमिनिस्० जैमिनिस्त्रयम् (आनन्दामग सीरिज पूना) ६२, ४०४।

तत्त्ववै० योगभाष्यतत्त्ववैशारदी (चौखम्बा सीरिज बनारस) ९४।

तत्त्वसं० तत्त्वसङ्ग्रहः (गायकवाढ सीरिज बढौदा) २९, ३२, ३९, ४४, ४५, ६५,
७१, ७२, ७७, ७९, ८३, ८४, १००, १५०, १५३, १५४, १५७, १६२, १६४-
१७१, १७४, २५०, २५२, २५३, ३९३, ४३९।

तत्त्वसं० पं० तत्त्वसंग्रहपत्रिका (गायकवाढ सीरिज बढौदा) ४३, ४५, ६५,
७९, ८१, ११६, ११७, १५७, १६३, १६५-१७१,

तत्त्वार्थश्लो० तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकम् (निर्णयसागर बम्बई) १९, २०, ४२, ४६,
६१, ६२, ९१, ९४, ११०, ११६, ११८, १२०-१२३, १२३, १२७, १४८, १५०।

तत्त्वार्थसू० तत्त्वार्थसूत्रम् (जैनसाहित्यप्रसारकका० बम्बई) २४५, २५९।

तत्त्वोपप्लव० } तत्त्वोपप्लवसिंहस्य मूल्यालोकम् (पं० मुखल्लसक्तम्
तत्त्वो० सिंहः } B. H. U. काशी) ४७, ४८, ५६, ५९, ६२, ६३, ७५, ७६,
११६, १०९।

तैत्ति० तैत्तिरीयोपनिषत् (निर्णयसागर बम्बई) ६६।

द्रव्यसं० द्रव्यसंग्रहः (रायचन्द्रशास्त्रिमाला बम्बई) ५६५।

न्यायकुमुदचन्द्रं० न्यायकुमुदचन्द्रः (माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई) २०, २५,
३१, ३८, ३९, ४२, ४३-४६, ४९, ५०-५३, ५५, ५६, ५९, ७२, ७७, ८३, ९४, ९५,
९७, ९९, १००-१०४, १०६, १०७, ११०, ११२-११९, १२१-१२५, १२७,
१३२, १३५-१३७, १४०-१४२, १४५, १४७, १४८, १५०, १६१, १६२, १६७,
१६९, १७०।

न्यायभा० न्यायभाष्यम् (चौखम्बा सीरिज काशी) १६, ५९, ९८, १६७, २३७,
६५१, ६६३।

न्यायवा० न्यायवार्तिकम् (चौखम्बा सीरिज काशी) १४, १६, ७५, १३२,
२६९, २७०, ४७६, ६१४, ६६४।

न्यायवा० ता० टी० न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका (चौखम्बा सीरिज काशी) १४,
२०, ४९, ५१, ५३, ५९, ९५, १३२।

न्यायमं० न्यायमञ्जरी (विजयनगरम् सीरिज काशी) १३, १४, २०, २५, ४६,
४९-५१, ५३, ५४, ५९, ६१, ६२, ६७, ७२-७४, ७७, ७९, ९४, १००, ११४,
११८, १६७।

न्यायवि० न्यायविन्दुः (चौखम्बा सीरिज काशी) ७, २२, ७८, ९३, १०३।

न्यायवि० टी० न्यायविन्दुटीका (,, ,) २५, २८।

न्यायविलि० न्यायविलिखनः (सिंघीजैन सीरिज कलकत्ता) ११९।

न्यायलीला० न्यायलीलावती (निर्णयसागर बम्बई) ५९।

न्यायसू० न्यायसूत्रम् (चौखम्बा सीरिज काशी) १८, ९७, १००, ११४,
११५, ११८, २२०, २५७, २५८, ३४७, ३५७, ३६२, ३६५, ३७२, ३७४, ५३६,
६४६, ६४७, ६४९-६५१, ६५३, ६५५-६५९, ६६३-६७१, ६७४, ६८६, ६९३।

पत्रप० पत्रपरीक्षा (जैनसिद्धान्तप्रकाशिनीसंस्था कलकत्ता) ६८४, ६८६,

परीक्षामु० परीक्षामुखम् (जैनसाहित्यप्रसारक का० बम्बई) १७८, २२५,
३५५, ४४५, ६८५।

पाणिनिधातुपा० पाणिनिधातुपाठः (सिद्धान्तकौमुद्यन्तर्गतः) ७, ६८८।

पा० महाभा० पातञ्जलमहामाष्यम् (निर्णयसागर बम्बई) १०४।

पाणिनिव्या० पाणिनिव्याकरणम् (निर्णयसागर बम्बई) ६७९।

प्रकरणप० प्रकरणपत्रिका (चौखम्बा सीरिज काशी) ५३, ५४, १२८।

प्रमाण० } प्रमाणपरीक्षा (जैनसिद्धान्तप्रकाशिनीसंस्था कलकत्ता) १५,
प्रमाण प० } १९, ३१, ३३, ३८, ६३, १२१, १२५, १२७, १२८, १३३-१३४,
१५०।

प्रमाणवा० प्रमाणवार्तिकम् (मिश्र राहुकसांख्यसाधनसूक्तं श्रुतपुस्तकम्) २८,
३२, ३४, ३८, ८३, ८४, ९०, ९५, ९६, १०३, १०४, १०७, १०८, १६६, १८०,

११७, ३२१, ३२५, ३३१, ३४१, ३५०, ३५४, ३८१, ३८३, ४३१, ४४९, ४७०,
४७३, ४८१, ५१३।

प्रमाणवा० स्वह० प्रमाणवार्तिकसोपज्ञप्तिः (भिक्षु राहुलसांक्रान्त्यायनसत्कं
ग्रन्थपुस्तकम्) ३८१।

प्रमाणवार्तिककालं० प्रमाणवार्तिकलङ्कारः (भिक्षु राहुलसांक्रान्त्यायनसत्कं मुद्रणीय-
पुस्तकम्) ५८, ९५, ८३, ९०, १०६, २१८, ४६८, ५८२।

प्रमाणसमु० प्रमाणसमुच्चयः (मैसूर यूनि० सीरिज) ८०, ९५, १०३।

प्रश्न० भा० प्रश्नस्तपादभाष्यम् (विजयनगरम् सीरिज काशी) १७, १००,
१०३, ११३-११५, ५३१, ५६६, ५६८, ५९०, ६००, ६०४, ६१६, ६२१।

प्रश्न० कन्द० प्रश्नस्तपादभाष्यकन्दलीटीका (विजयनगरम् सीरिज काशी)
१४, ३१, ५९, ११५, १४०, १५०।

प्रश्न० किरणावली प्रश्नस्तपादभाष्यकिरणावलीटीका (चौखम्बा सीरिज काशी)
१३३, १५०,

प्रश्न० व्यो० } प्रश्नस्तपादभाष्यव्योमवतीटीका (चौखम्बा सीरिज काशी)
व्योमव० } ८०-८२, ८४-८६, ९३, ९८, १११-११५, १३३, १४०, १४४,
२७४, ३१०।

प्रमेयरत्नमा० प्रमेयरत्नमाला (विद्याविनायक प्रेस काशी स० पं० फूलचन्द्रजी)
७०-७२, ८०-८३, ८५

बृहती आधारभाष्यबृहतीटीका (मद्रास यूनि० सीरिज) ५३, ५४, ९५।

पक्षिका बृहतीपक्षिकाश्रुविमल (" ") ९५।

बृहवा० बृहदारण्यकोपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ६४, ६५,

बृहदा० भा० वा० बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिकम् (आनन्दाश्रम पूना) ४४,
४५, ६४, ६५।

ब्रह्म० ब्रह्मोपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ६५, ६६, ८०, ९४,

ब्रह्मसू० शां० भा० रत्नप्रभा ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यरत्नप्रभा (निर्णयसागर बम्बई)
१०४।

ब्रह्मसू० शां० भा० ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (निर्णयसागर बम्बई) ११४।

भामती ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यस्य भामतीटीका (" ") ५१-५३, ५९, ६६, ८०,
९४, ११६।

भगवद्गीता भगवद्गीतोपनिषद् (" ") २६८, ३०९।

भामहलं० भामहविरचितः काव्यालङ्कारः (चौखम्बा सीरिज काशी) ४३१।

मत्स्यपु० मत्स्यपुराणम् (मुम्बई) ३९२।

मग० आ० मगवती आराधना (सोलपुर) ३३१।

महाभा० वन० महाभारतम् वनपर्व (मित्रसाल प्रेस पूना) ५८०।

मुष्ककोप० मुष्ककोपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ६५।

मी० श्लो० मीमांसाश्लोकवार्तिकम् (चौखम्बा सीरिज काशी) ३, २०, २२, ५३,
५९, ७०-७२, ७७, ९४, ९५, ११२, १३७, १५३, १५५-१५९, १६१, १६५,
१७४, १७५, १८०, १८३-१९३, २०६, २४९-२५२, २५४, २५८, २६५,
३०९, ३३९, ३४५, ३४६, ३९६, ४०६-४११, ४१४-४२०, ४२२-४२४,
४२६, ४२७, ४३३, ४३५, ४३६, ४३८-४४०, ४६१, ४७४, ४७५, ४७६,
४८२, ५१३, ५२२, ५५७।

मी० श्लो० व्याकरणम् मीमांसाश्लोकवार्तिकव्याख्यारत्नाकरव्याख्या (चौखम्बा
सीरिज काशी) १५१, १५२, १५४, १५६, १५७।

मैत्रु० मैत्रुपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ४६, ६४।

मुत्तयनु० मुत्तयनुशासनम् (माणिकचन्द्रजैनग्रन्थमाला बम्बई) ९४, ११६,
११७, १२७, १३२, १४३-१४५।

योगकारिका साङ्ख्ययोगदर्शनान्तर्गता (चौखम्बा सीरिज काशी) १९।

योगद० व्यासभा० योगसूत्रव्यासभाष्यम् (" ") १९, ९४।

योगसू० योगसूत्रम् (" ") ९४।

रत्नाकरवता० रत्नाकरवतारिका (यशोविजयग्रन्थमाला काशी) ९८, १२०।

रामता० उ० रामतापिन्युपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ५९७।

लघी० लघीयल्लयम् (सिंधी जैन सीरिज कलकत्ता) ६७८।

लघी० ख० लघीयल्लयसंविष्टतिः (" ") १२२।

वाक्यप० वाक्यपदीयम् (चौखम्बा सीरिज काशी) ३९, ४२९, ४४३।

वाक्यप० टी० वाक्यपदीयटीका पुण्यराजीया (" ") ४२, ४४७,
४५६, ४५९।

वादन्या० वादन्यायः (महानोषि सोसाइटी सारनाथ) ६६८, ६७१, ६७२।

विधिवि० विधिविवेकः (लाजरेसकम्पनी काशी) ७९, ९४, १३२,

विधिवि० न्यायक० विधिविवेकन्यायकणिकाटीका (लाजरेसकम्पनी काशी)
७९, ९४।

विवरणप्रमेयसं० विवरणप्रमेयसंग्रहः (विजयनगरम् सीरिज काशी) ५९।

वैद्ये० सू० वैद्येविकसूत्रम् (निर्णयसागर बम्बई) २३४, २७०, ५४०, ५६४, ५६८,
५८७, ५८९, ६००, ६०१, ६२०।

शाबरभा० शाबरभाष्यम् (आनन्दाश्रम पूना) २०, २१, २३, ९४, ११२, २५३,
२५५,

शिशुपालव० शिशुपालवधकाव्यम् (निर्णयसागर बम्बई) ६८८।

शास्त्री० शास्त्रीपिका (चौखम्बा सीरिज काशी) २०, ६०, ९४।

शास्त्र बा० टी० } शास्त्रवार्तासमुच्चयस्य यशोविजयविरचिता टीका
शास्त्र बा० समु० टी० } (जैनधर्मग्रं० समा भावनगर) ४५, ४६, १०४।

भावक प्रज्ञ० भावकप्रज्ञप्तिः (जैनधर्म ग्रं० " ") ३००।

शेताश्वत० शेताश्वतरोपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ६५, २६४, २६८, ३१२३।

सम्बन्धपरी० सम्बन्धपरीक्षा धर्मकीर्तिविरचिता तिब्बतीयभाषोपलब्धा ।

५०४-५०६, ५०९-५११।

सन्मति० डी० सन्मतितर्कटीका (गुजरात पुरातत्त्वमन्दिर अहमदाबाद) १४,

२५, २९, ३१, ३८, ३९, ४२, ४४, ४६, ५६, ५९, ६०-६३, ६५, ६७, ७०-७४,

७७-८०, ८२, ९०-९२, ९४, ९८, १००, १०७, १०८, ११२, ११६, ११९,

१२७, १२९, १३०, १३२, १३५, १३६, १३९-१४२, १४४, १४६, १४७,

१६०-१६२, १७२-१७४।

सांख्यका० सांख्यकारिका (चौखम्बा सीरिज काशी) ८८, ८९, ९८-१००,

२८५-२८९।

सांख्यका० गौडपादभा० सांख्यकारिकागौडपादभाष्यम् („ „) २८, १०१।

सांख्यका० भाठरद्विपति सांख्यकारिकामाठरद्विपतिः („ „) ९८, १०१।

सांख्यप्र० भा० सांख्यप्रवचनभाष्यम् (चौखम्बा सीरिज काशी) १९।

सांख्यसं० सांख्यसंग्रहः („ „ „) ९८।

सौन्दरनन्द० सौन्दरनन्दमहाकाव्यम् (पंजाब युनि० सीरिज) ६८७।

स्फुटार्थ० स्फुटार्थ-अभिधर्मकोशव्याख्या (विन्लोगिका बुद्धिका सीरिज राधिया)

१३६।

स्या० मं० स्याद्वादमञ्जरी (रायचन्द्रशास्त्रमाला बम्बई) ९४, ९८, ११३, १३७।

स्या० रत्ना० स्याद्वादरत्नाकरः (आर्हत्प्रभाकरकार्यालय पूना) १४, १९, २०,

२८-३०, ३३, ३५, ३६, ३८-४०, ४२-५२, ५६, ५९, ६२, ६५, ६७-७५, ७७,

७९, ८०-८३, ८५-८७, ८९, ९१, ९२, ९४, ९६, ९८-१०२, १२०-१२३,

१२५, १३२, १३३, १३५-१३९, १४७, १४८, १५७, १५९, १६१, १६२, १६७,

१६८, १७१।

हेतुविन्दुटीका अर्चटकृता लिखिता (पं० सुखलालसत्का B.H.U. काशी) १७।

मीमांसाभाष्यपरी० मीमांसाभाष्यपरिशिष्टम् (मद्रास युनि० सीरिज) १५६।

शुद्धिपत्रम्

पृ० पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
९ १२	कारण-	करण-
९ १७	आस्था-	आस्था-
९ १८	-रूपपता	रूपता
१९ १३	-रमिव्यज्येत्	रमिव्यज्येत
२२ ३४	न्यायवि०	न्यायवि०
२३ ३	विरोधे वा	अविरोधे वा
२९ ३१	पृ० ५०	पृ० ८०
३० ३५	पृ० ५०	पृ० ८०
३१ ३२	पृ० ५२	पृ० ८२
३३ ३४	पृ० ५४	पृ० ८४
३४ २	कणाक्षयादि-	कणाक्षयादि-
३५ ३४	पृ० ५६	पृ० ८६
३६ १३	अग्रहीत-	ग्रहीत-
३६ ३३	पृ० ५७	पृ० ८७
८४ १६	चियो (योऽ) लादि-	चियो(योऽ)नीलादि-
१०५ २०	सर्वत्रा-	सर्वत्रा-
१११ १६	-धारलक्षण-	धारलक्षण-
११८ ७	-तत्तादयो-	तत्तादयो-
१२० ३४	स्वा० रत्ना०	रत्नाकराव०
१४१ १०	-स्पादष्टास्या-	स्पादष्टेस्या-
१४२ १	चादष्ट-	न चादष्ट-
१४८ १३	-ज्योत्स्नप्र-	ज्योत्स्नप्र-
१५४ २१	प्रवृत्त्यामा-	प्रवृत्त्यमा-
१५६ १	-तद्विषयम्	तद्विषयम्
१५८ ८	-यक्ष	यक्षे
१९७ ४	मेदः	मेदः
२३७ १४	न्यायमा०	न्यायमा०
२४५ २७	हाने-वासं	हानेरेवासं-
२६० ६	करणक्रम-	करणक्रम-
२६३ २	-भाषत्	भाषात्
२६४ २४	न न	न
३०० १०	कण्ठेष्ठ-	कण्ठेष्ठ-

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
३४९	२-	भवसेवेति	भवसेवेति वा
३५७	५	आत्मता-	आमता-
३७३	१९	-ले नि-	लेऽनि-
३९५	१	समानम् । 'न च' इति	समानं नवेति
४०४	२४	[१११८]	[११११८]
४०८	२६	-मर्वावृ-	मवावृ-
४४५	१७	-सम्भावात्	सम्भावात्
४६०	२३	पदादि-	पदादिसि-
४६७	७	एतत् ? पूर्वो-	एतत् ? अनु-
			[इत्यव्याहृतप्रत्ययगोचरत्वात् पूर्वो-
५८६	१२	छिछा-	छिछा-
५९६	८	कोऽ वि-	कोऽवश्यं वि-
५९६	९	-तम्; वश्यं वि-	तम्; वि-
६२६	२१	कायकारण-	कार्यकारण-
६०६	१२	नियमोपलब्ध्य-	नियमो लब्ध्य-
	२२	प्रसुक्ते	प्रयुक्ते
१, १८		-धर्म्यम्-	धर्म्यमम्-
६५४	१२	शुज्येत्	शुज्येत
६५८	२७	-स्यता	-स्यता
६७३	३०	जयाय	पराजयाय

विषयसूच्याम्

२५	२३	यदभावे	यद्भावे
----	----	--------	---------

परिशिष्टेषु

७०४	८	अग्नेरपत्नं प्रथमं	[रामता० उ० ६।५] ५९७।१९
		" "	[" " अग्निस्तृतिः ६।६]
७१८	१०	अग्नाचाच्छ्रसम्पर्काच्छ्र-	["] ४८३।२४
		" "	[आपस्तम्बस्तृतिः ८।७]